Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशी की पाण्डित्य परम्परा

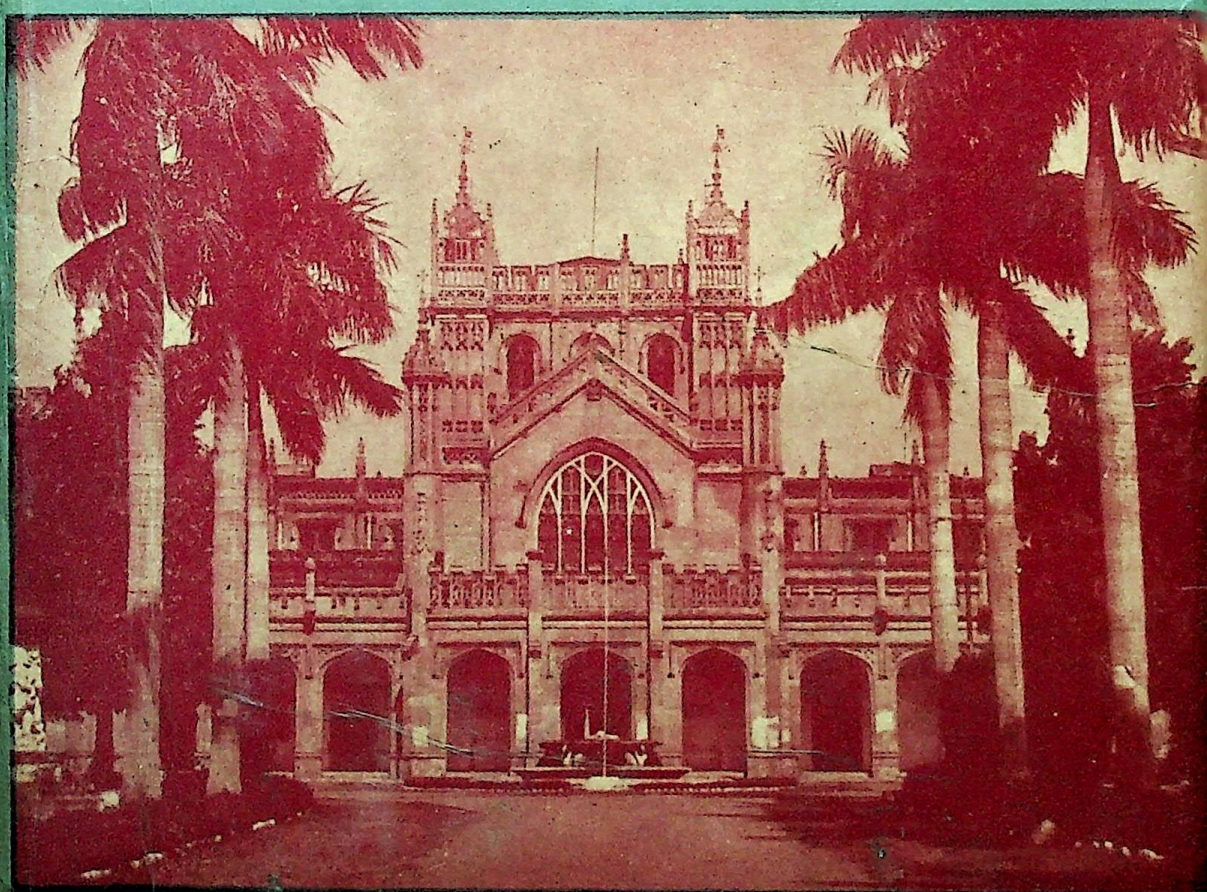

आचार्य पं॰ बलदेव उपाध्याय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह ग्रन्थ गत साढेसातसौ वर्षों की काशी की पाण्डित्य परम्परा का परिचायक विवरण प्रस्तुत करता है। मध्य युग (१२०० ई०–१७५० ई०) तथा अर्वाचीन युग (१७५० ई०-१९५० ई०) में काशी में अध्ययन-अध्यापन करने वाले संस्कृत विद्वानों के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का अनुसन्धानमूलक परिचय तथा उनके ग्रन्थों का समालोचन पहली बार यहाँ दिया जा रहा है। इसमें शताधिक विशुद्ध पण्डितों का, विद्वान् संन्यासियों का तथा अंग्रेजी-ज्ञाता संस्कृतज्ञों का एकत्र समवेत विवरण तथा विमर्शण इतः पूर्व कहीं भी उपलब्ध नहीं है। इन पण्डितों के शास्त्रीय वैदुष्य तथा व्यावहारिक चमत्कार-विषयक दिव्य संस्मरण नितान्त रोचक एवं विशद रूपेण ज्ञानवर्द्धक हैं। व्याकरण, अलंकारशास्त्र, न्याय, वेद-वेदान्त, पुराण, आयुर्वेद एवं तन्त्र आदि नाना शास्त्रीय परम्पराओं को अग्रसर करने वाले, अलौकिक प्रतिभा तथा पाण्डित्य से विभूषित विद्वानों के वृत्त आधुनिक कहानियों से भी अधिक आकर्षक बन पड़े हैं। शैली विमर्शात्मक तथा भाषा रोचक है। काशी की पाण्डित्य-परम्परा के लगभग आठ सौ वर्षों का यह प्रामाणिक इतिहास संस्कृत प्रेमियों, जिज्ञासुओं तथा शोधकर्ताओं के लिए एक अमूल्य निधि सिद्ध होगा। इन विद्वानों के एवं सम्बद्ध संस्कृत संस्थाओं के चित्र इसके अन्यतम अनुपम आकर्षण हैं।

मूल्य : १२५-००

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

72595

काशी की पाण्डित्य-परम्परा

(काशीस्थ संस्कृत विद्वानों के जीवनचरित एवं साहित्यिक
अवदानों का प्रामाणिक विवरण)
[१२०० ई०—१९५० ई०]

COMPILED

लेखक
आचार्य पण्डित बलदेव उपाध्याय

876,U 1 K
72595

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

KĀSHĪ KĪ PĀṆḌITYA PARAMPARĀ

by

ĀCHĀRYA PT. BALDEVA UPĀDHYĀYA

A Comprehensive historical account of the Sanskrit Pandits of Varanasi with their biography and works, literary attainments and reminiscences
(1200 A. D.—1950 A, D.)

८६६
३१वा

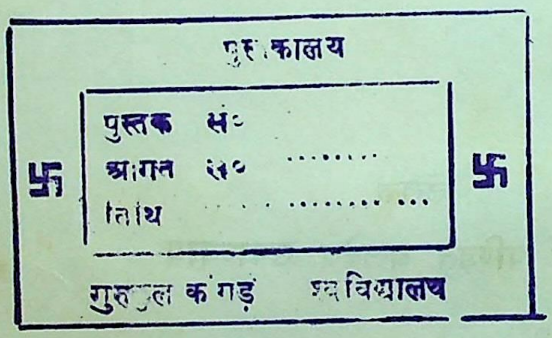

प्रथम संस्करण : १९८३ ई०

प्रकाशक

विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी-१

मुद्रक

तारा प्रिंटिंग वर्क्स, वाराणसी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

725951

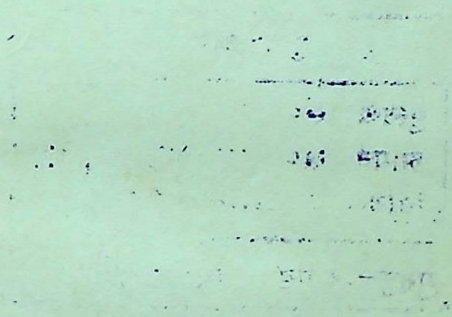

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलदेव उपाध्याय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समर्पण

अपनी परिभाषेन्दुशेखर-व्याख्या 'हैमवती' के द्वारा
व्याकरणशास्त्र को नवीन दिशा प्रदानकर्ता
व्याकरणवाचस्पति

पण्डित यागेश्वर ओझा

की

पुण्यमयी स्मृति में
सादर सप्रमोद समर्पित

बलदेव उपाध्याय

रसायनमयी शीता परमानन्ददायिनी।
नान्दयति कं नाम साधुसंगति-चन्द्रिका॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आमुख

योऽनुग्रहार्थं भजतां पादमूलमनामरूपो भगवाननन्तः ।
नामानि रूपाणि च जन्मकर्मभिर्भेजे स मह्यं परमः प्रसीदतु ॥

भगवान् अनन्त के आत्यन्तिक अनुग्रह से संस्कृत-साहित्य के अनुरागी पाठकों के सामने 'काशी की पाण्डित्य परम्परा' नामक यह नूतन रचना प्रस्तुत करते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है। इसमें विद्यानगरी काशी के मध्ययुगीन (१२०० ई०–१७५० ई०) तथा अर्वाचीन (१७५० ई०–१९५० ई०) संस्कृत विद्वानों की प्रामाणिक जीवनी, तत्प्रणीत ग्रन्थों की आलोचना एवं पावन संस्मरणों की परिचिति अतिशय निष्ठा, नैसर्गिक भक्ति तथा प्रभूत परिश्रम के द्वारा दी गई है।

इतः पूर्व कतिपय विद्वानों का ही परिचय उपलब्ध तथा प्रकाशित था। मध्ययुगीन संस्कृत विद्वानों का परिचय, संक्षिप्त ही सही, अवश्यमेव उपलब्ध होता है। महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराज का एतद्विषयक प्रयास नितान्त स्तुत्य है जिन्होंने अपनी 'काशी की सारस्वत साधना' के द्वारा उस युग के महनीय लेखकों का संक्षिप्त परिचय प्रदान किया है। परन्तु गत दो शताब्दियों का इतिहास तो अज्ञान के अन्धकार में ही छिपा है। इस युग के पण्डितों के नाम की जितनी प्रसिद्धि है, परिचय की उतनी ही अल्पता है। आज से सौ वर्ष पूर्व ही से पण्डितों का ध्यान इधर गया, परन्तु ग्रन्थों का नितान्त अभाव है। पण्डित गङ्गाधर शास्त्री तैलंग ने अपने दोनों गुरुओं—पण्डित राजाराम शास्त्री एवं पण्डित बालशास्त्री—का परिचय तत्कालीन प्रख्यात पत्र 'काशी विद्या सुधानिधि' में (जो 'दी पण्डित' अंग्रेजी नाम से अधिक विख्यात था) क्रमशः १८७६ ई० में तथा १८८३-८४ ई० में चम्पूशैली में ललित संस्कृत पद्यों में निबद्ध किया। यही प्रथम प्रयास था अर्वाचीन काशीस्थ विद्वान् के चरित लिखने का। तदनन्तर पण्डित शिवकुमारशास्त्री ने 'यतीन्द्रजीवन-चरितम्' में भास्करानन्द स्वामी का तथा पण्डित प्रमथनाथ तर्कभूषण ने 'विजयप्रकाशः' (१८९१ ई०) में स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती का चरित संस्कृत पद्यों में निबद्ध कर सम्मान्य संन्यासियों के परिचय देने की परम्परा चलाई। पण्डित सुधाकर द्विवेदी ने 'गणक तरङ्गिणी' में, पण्डित नारायण शास्त्री खिस्ते ने 'विद्वच्चरित-पञ्चकम्' में (१९२८ ई०) तथा डा० मंगलदेव शास्त्री ने 'सारस्वती सुषमा' के आरम्भिक अंक में (१९४२ ई०) इसी परम्परा को अग्रसर किया। हिन्दी में इन संस्कृतज्ञों की जीवनी लिखने का आरम्भ किया पं० माधवप्रसाद मिश्र ने 'विशुद्धानन्दचरितावली' की रचना से (१८८५ ई० के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसपास) जिसका अनुकरण पं० नारायण शास्त्री पटवर्धन ने किया बालशास्त्री तथा बापूदेव शास्त्री-विषयक लघुकाय हिन्दी ग्रन्थों के निर्माण द्वारा (१८६८ ई०, राजराजेश्वरी प्रेस, वाराणसी)। इन्हीं प्रामाणिक जीवनियों के आधार पर हिन्दी में छोटे-छोटे छिटफुट ग्रन्थों की रचना होती रही। परन्तु गत दो सौ वर्षों के भीतर उत्पन्न प्रख्यात संस्कृत पण्डितों का सामूहिक रूप से समवेत वर्णन अभी तक उपलब्ध नहीं होता। इसी त्रुटि के निवारणार्थ इस "काशी की पाण्डित्यपरम्परा" का प्रणयन किया गया है।

१२०० ई० से आरम्भ कर १६५० ई० तक साढ़े सात सौ वर्षों का काशीस्थ विद्वानों के साहित्यिक अवदान का यह प्रामाणिक विवरण एकान्त निष्ठा तथा सातिशय परिश्रम से प्रस्तुत किया गया है। यहाँ पण्डितों की केवल जीवनी ही नहीं दी गई है, प्रत्युत तद्विरचित ग्रन्थों का विश्लेषण एवं समालोचन प्रथम बार उपन्यस्त किया गया है। पण्डितों के रुचिकर एवं ज्ञानवर्धक संस्मरण अपने आप में एक महनीय उपलब्धि हैं। इनमें से कतिपय मैंने गुरुजनों से सुनकर संग्रह किया गया है, परन्तु अधिकांश संस्मरण मेरे निजी अनुभव की सम्पत्ति है। मैं इस विद्यानगरी में द्वादशवर्षी पञ्चयुगी से निरन्तर निवास कर रहा हूँ और समसामयिक सम्मान्य पण्डितों से सम्पर्क रखने का सतत प्रयत्न करता रहा हूँ। विद्वानों की जीवन गाथा की जिज्ञासा मेरे हृदय में पचासों वर्षों से जागरित है और इसी की पूर्ति का यह एक कमनीय प्रयास है।

ग्रन्थ में चुने गये विद्वानों को हम तीन श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम श्रेणी में उन विद्वानों की गणना है जिनके लिए वाराणसी अध्ययन-स्थली एवं अध्यापन-स्थली दोनों रही है। यहीं इन विद्वानों ने परम्परा से ज्ञान अर्जन किया और इसी परम्परा का अनुसरण करते हुए यहीं उस उपार्जित ज्ञान का वितरण भी किया। द्वितीय श्रेणी के विद्वान् वे हैं जिन्होंने संस्कृत के शास्त्रीय विषय का समुपार्जन तो यहाँ किया, परन्तु भारत के अन्य प्रान्तों में जाकर उस ज्ञान के समुचित वितरण में अपना जीवन बिताया। तृतीय श्रेणी के उन पण्डितों का समावेश किया गया है जिन्होंने संस्कृत के शास्त्रों का अध्ययन तो काशी के बाहर किया, परन्तु काशी के छात्रों को अपने पाण्डित्य का प्रसाद वितरित किया। काशी के तीन महनीय संस्थानों से ये पण्डित किसी न किसी रूप में सम्बन्ध रखते थे। इनमें से सर्वप्रधान है काशी राजकीय पाठशाला, जो संस्कृत कालेज या गवर्नमेंट संस्कृत कालेज के नाम से विख्यात है, जिसकी स्थापना १७९१ ई० में काशीनरेश महाराजा महीपनारायण सिंह के शासनकाल में हुई और जो १९५८ ई० में संस्कृत विश्वविद्यालय के रूप में परिणत होकर आज वाराणसेय (सम्पूर्णानन्द) संस्कृत विश्वविद्यालय के अभिधान से विख्यात है। दूसरा है महाराजा काशीनरेश का दरबार, जो अपने आरम्भ काल से ही पण्डितों का आश्रय स्थल रहा है। ये दोनों समसामयिक संस्थान हैं लगभग दो सौ वर्ष प्राचीन। इधर पचास-साठ वर्षों से तीसरा संस्थान भी महामना मदनमोहन मालवीयजी द्वारा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्थापित हिन्दू विश्वविद्यालय के अन्तर्गत संस्कृत महाविद्यालय के रूप में प्रतिष्ठित हुआ है। काशी में इस कालखण्ड के भीतर राजा-महाराजा, तथा सेठ-साहूकारों के द्वारा भी संस्कृत विद्या के प्रचारार्थ संस्कृत विद्यालयों की स्थापना की गई है जिनसे भी अनेक विद्वान् सम्बद्ध रहे हैं, परन्तु मुख्यता उपरिवर्णित तीन संस्थानों ही की है। फलतः विद्वानों के कार्यकलापों की पूरी जानकारी के लिए इन तीनों का वर्णन ग्रन्थ में तत्तत् स्थानों में किया गया है।

इस ग्रन्थ के तीन खण्ड हैं जो क्रमशः पूर्वपीठिका, अवतरणिका तथा उत्तरपीठिका के नाम से यहाँ अभिहित किये गये हैं। पूर्वपीठिका मध्ययुगीन (१२०० ई०–१७५० ई०) विद्वानों का, अद्वैती श्रीहर्ष से आरम्भ कर महावैयाकरण नागेशभट्ट तक, संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करती है। अवतरणिका मध्यस्थ खण्ड है जो पूर्व तथा उत्तर पीठिकाओं को संयुक्त करने का कार्य करता है। इसमें संस्कृत कालेज की स्थापना, काशीनरेश के इतिहास तथा संस्कृत प्रचार कार्य तथा काशीस्थ पण्डितों का वैशिष्ट्य क्रमशः वर्णित है। उत्तरपीठिका गत दो शताब्दियों के विद्वज्जनों का विस्तृत विवरण पूर्ण वैभव के साथ उपन्यस्त करती है। इस पीठिका के दो खण्ड हैं—प्रथम खण्ड में संस्कृत के विशुद्ध विद्वानों का ही परिचय है। इसमें ४० विद्वानों का मुख्यरूपेण वर्णन है, परन्तु इनके प्रतिस्पर्धी, सतीर्थ्य तथा शिष्य, शताधिक पण्डित भी यथास्थान उपन्यस्त हैं। द्वितीय खण्ड में छह विद्वान् संन्यासियों के तथा छह अंग्रेजी-वेत्ता संस्कृतज्ञों के जीवनचरित तथा कार्य-कलाप का क्रमशः प्रतिपादन किया गया है। इसके अनन्तर लेखक का आत्मचरित तथा कतिपय परिशिष्ट ग्रन्थ के अन्त में सन्निविष्ट किये गये हैं। यही 'काशी की पाण्डित्य परम्परा' के वर्ण्य विषयों की संक्षिप्त रूप-रेखा है।

परिशिष्ट खण्ड के पाँच परिशिष्टों के द्वारा मूल ग्रन्थ के कतिपय अंश की पूर्ति की गई है। प्रथम परिशिष्ट पुराणों में काशी का विवरण प्रस्तुत करता है जिसमें कतिपय पुराणों में निर्दिष्ट काशी-विषयक ललित पद्यों का उद्धरण देकर काशी के पुराणकालीन नगर विन्यास तथा वैभव का दिग्दर्शन कराया गया है। द्वितीय परिशिष्ट पाणिनि के प्रसिद्ध सूत्र 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रतिपादिकम्' (अष्टाध्यायी १।२।७५) के अर्थवत्व पदार्थ का स्वरूप परिष्कार शैली से निरूपण करने में चरितार्थ होता है। संस्कृतज्ञ व्याकरण-वेत्ताओं को लक्ष्य कर यह संस्कृत में दिया गया है। भाषा सुबोध है जिससे समझने में विशेष कष्ट नहीं होगा। तृतीय परिशिष्ट काशी के प्रख्यात साधक तैलंग स्वामी का परिचय देता है। स्वामीजी काशी की एक महनीय आध्यात्मिक विभूति थे। उनके अध्ययन-अध्यापन, लेख तथा ग्रन्थ का परिचय न होने से मूल ग्रन्थ में इनका स्थान नहीं दिया जा सका था। इसी की पूर्ति यह परिशिष्ट करता है। चतुर्थ परिशिष्ट डा० गंगानाथ झा के द्वारा विरचित विशाल साहित्य का एकत्र परिचय देता है और अन्तिम पञ्चम परिशिष्ट एक ऐसे विदेशी संस्कृतज्ञ का परिचय प्रस्तुत करता है जिसने अपने जीवन के चालीस वर्ष के सुदीर्घ काल को काशी में ही रहकर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिताया, संस्कृत का गम्भीर अध्ययन करता रहा तथा अनेक अनूदित ग्रन्थों में 'दुर्गासप्तशती' का अपनी मातृभाषा यूनानी में पद्यानुवाद प्रस्तुत किया। इस अल्पज्ञात यूनानी संस्कृतज्ञ 'डेमेट्रियस गेलोनोस' का यह परिचय प्रथम बार हिन्दी के माध्यम से यहाँ दिया जा रहा है। आशा है, इन परिशिष्टों के द्वारा मूल ग्रन्थ के ज्ञातव्य विषयों की यथेष्ट पूर्ति होगी।

भगवती की कृपा ही समझिये कि ग्रन्थ में वर्णित प्राचीन पण्डितों के चित्र भी खोज करने पर उपलब्ध हो सके जिन्हें यथास्थान उपन्यस्त किया गया है। सौभाग्य का विषय है कि काशी के वरिष्ठ विद्यासंस्थान साङ्गवेद विद्यालय रामघाट के अधिकारियों ने अपने विद्यालय में इन चित्रों को सुसज्जित कर रखा है। अधिकांश चित्र वहीं से लिये गये हैं और इसके लिए मैं विद्यालय के व्यवस्थापक पण्डित उदयकृष्ण नागर का विशेष आभार मानता हूँ।

ग्रन्थ की सामग्री का सङ्कलन एक विषम समस्या थी, परन्तु अनेक विद्वानों तथा सहयोगियों के उद्योग तथा सत्परामर्श से इस कार्य में मुझे विशेष सफलता प्राप्त हो सकी है। काशीनरेश डॉ० विभूतिनारायण सिंह का मैं प्रभूत उपकार मानता हूँ जिन्होंने अपने पुस्तकालय से काष्ठजिह्व स्वामी की अलभ्य रचनाओं को मेरे अध्ययन के लिए सुलभ बनाया तथा अपने पूर्वजों के महनीय वृत्तों का परिचय देकर मुझे श्लाघनीय सहायता दी। मेरे अनुज डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय इस ग्रन्थ के लिखने में मेरे सन्तत सहायक रहे हैं। इस ग्रन्थ के निर्माण के वे ही प्रेरणास्रोत रहे हैं तथा अनेक अंशों के लिपिबद्ध करने का श्रेय उन्हें प्राप्त है। इसके लिए मैं उन्हें आशीर्वाद देता हूँ। अनेक शुभचिन्तकों ने पुस्तक, लेख, चित्र आदि आवश्यक सामग्री को प्रस्तुत करने में मुझे सहयोग पहुँचाया है जिसके लिए मैं उनका विशेष आभार मानता हूँ। इनमें से कतिपय उपकारी सज्जनों का नाम यहाँ निर्दिष्ट करता हूँ— पं० गोपालदत्त पाण्डेय (सेवानिर्मुक्त उपशिक्षा-निदेशक, वाराणसी), पं० ब्रह्मदत्त द्विवेदी (अध्यक्ष मुरारका संस्कृत महाविद्यालय, पटना); पं० लालबिहारी पाण्डेय (प्रवक्ता, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी); डॉ० गङ्गासागर राय (सहसम्पादक 'पुराणम्', पुराण संस्थान, काशीराजन्यास, दुर्ग रामनगर, वाराणसी); पं० नरेश झा (प्राचार्य, श्यामा संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी); पं० वासुदेव द्विवेदी (अध्यक्ष, सार्वभौम संस्कृत विद्यालय, वाराणसी); पं० चक्रवर्ती रामाधीन चतुर्वेदी (रीडर, संस्कृत महाविद्यालय, हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी); सेठ मुरारीलाल केडिया (साहित्यप्रेमी उपकारव्रती उद्योगपति, वाराणसी)। पण्डित लालधर त्रिपाठी, 'प्रवासी' जी तथा मेरे ज्येष्ठ आत्मज गौरीशङ्कर जी ने ग्रन्थ के प्रूफ संशोधन में तथा अनुक्रमणिका के निर्माण में मेरी बड़ी सहायता की है। इसके लिए मेरा विशेष आभार।

विश्वविद्यालय प्रकाशन के अध्यक्ष बाबू पुरुषोत्तमदास मोदी ने बड़ी निष्ठा तथा लगन से इस विशालकाय ग्रन्थ का प्रकाशन किया है। इसे सुन्दर साज-सज्जा से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समन्वित करने में उन्होंने अपनी ओर से कुछ उठा नहीं रखा है। इसके लिए मैं उनका गुण मानता हूँ और आशा करता हूँ कि इसी प्रकार सत्-साहित्य के प्रकाशन में ये दत्तचित्त रहेंगे।

महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज जी ने ही सर्वप्रथम काशी के पण्डितों का सुव्यवस्थित विवरण देने का श्लाघनीय प्रयत्न अपने लघुकाय ग्रन्थ 'काशी की सारस्वत-साधना' में किया। यह ग्रन्थ मध्ययुगीन काशिकेय विद्वानों का संक्षेप में परिचय प्रदान करता है। इस ग्रन्थ की 'पूर्वपीठिका' लिखने में मैंने इसका पर्याप्तरूपेण उपयोग किया है। अतः मैं कविराज जी का विशेष आभार मानता हूँ। जहाँ यह ग्रन्थ समाप्त होता है, वहीं से इस ग्रन्थ की 'उत्तरपीठिका' आरम्भ होती है और यहीं मेरे विपुल शोध, अध्ययन तथा मनन का पर्यवसित प्रयास है। इस कालखण्ड के विद्वानों की ही सुखद संस्मृति तथा कमनीय कीर्ति आज भी यथाकथञ्चित् जागरूक है जिसे यहाँ शब्दमय विग्रह देने का मैंने यथाशक्ति प्रयत्न किया है।

लेखक के लिए आत्माभिव्यक्ति ही परमाह्लादजननी होती है। इस दृष्टि से मैंने अपने हार्दिक भावों की पूर्ण अभिव्यञ्जना का प्रयास इस ग्रन्थ में किया है। फलतः आनन्दातिरेक की अभिव्यक्ति होने के कारण मैं प्रस्तुत ग्रन्थ को अपने जीवन की सौभाग्यशाली रचनाओं में विशेष महनीय मानता हूँ। अर्जना (कमीशन) की सम्भाव्य त्रुटियों की मार्जना करने का मैंने सन्तत प्रयत्न किया है। वर्जना (ओमीशन) की त्रुटियों को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। विज्ञ पाठकों से मेरी प्रार्थना है कि जिन विद्वानों के नाम तथा काम परिचय के अभाव में यहाँ उपन्यस्त नहीं किये गये हैं, उनका परिचय देने की वे कृपा करें जिससे इस त्रुटि को दूर किया जा सके।

काशिकेय पण्डितों की विमल यशोगाथा का संरक्षण, उनके आदर्श जीवन के परिचय से विद्वानों को संस्कृत विद्या की उपलब्धि तथा समृद्धि के लिए सन्तत जागरण एवं प्रभूत ऋषिऋण से आत्मा का उन्मोचन—'काशी की पाण्डित्य परम्परा' के प्रणयन का यही महनीय उद्देश्य है। बाबा काशीपति विश्वनाथ से यह विनम्र निवेदन है कि काशी में ही एक काशिकेय विद्यासेवी द्वारा निबद्ध काशिकेय पण्डितों की यह कीर्तिकथा अपने कमनीय लक्ष्य की पूर्ति में सर्वथा सफल रहे और संस्कृत विद्या के समुन्नयन का दिव्य संदेश देकर इस भारतभूमि को भव्य बनावे।

विश्वाराध्य विश्वेश्वर से करबद्ध प्रार्थना है कि उनका हरिहरात्मक स्वरूप लेखक का परम मङ्गल सम्पादन करे—

अर्धं यदुत्पलदलैरुमयेन्दुगौरम्
अर्धं श्रियार्चितमलिद्युति मालतीभिः।
विच्छित्तिमेत्य निमिषेक्षणशुक्तिपेयां
तन्मङ्गलं दिशतु हारिहरं वपुर्नः॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने ही कुकर्मों से अधोगति को प्राप्त होने वाला यह जीव आपके तिरस्कार का पात्र कैसे हो सकता है ? अपनी तरुणाई से मतवाला पशु यदि अन्धकूप में स्वयं गिर जाता है, तो दयालु लोग क्या उसकी उपेक्षा करते हैं ? इसी प्रकार इस दुर्जन का आप अपनी करुणा द्वारा उद्धार कर दें –यही लेखक की अन्तिम प्रार्थना है—

स्वैरेव यद्यपि गतोऽहमधः कुकृत्यै–
स्तत्रापि नाथ तव नास्म्यवलेपपात्रम् ।
दृप्तः पशुः पतति यः स्वयमन्धकूपे
नोपेक्षते तमपि कारुणिको हि लोकः ।।

पुरुषोत्तमी एकादशी
सं० २०३९
१० मार्च, १९८३ बलदेव उपाध्याय
वाराणसी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयानुक्रम

प्रथम भाग

पूर्वपीठिका

अध्याय पृष्ठ

१. काशी का प्राचीन इतिहास एवं महत्त्व १-१८

वेद में काशी १-५; रामायण में काशी ५; महाभारत में काशी ६; बौद्धग्रन्थों में काशी ७-८; जैन ग्रन्थों में काशी ८-९; काशी और नवद्वीप विद्यापीठ की स्थापना १०-११ ।

काशी का महत्त्व ११-१८

पुराणों में काशी की महिमा १२; वाराणसी की स्थापना १३; काशिराज दिवोदास १४; काशी के विभिन्न नामों की निरुक्ति १५; काशी के तीर्थ १५; काशी के उपतीर्थ १७; पञ्चक्रोशीयात्रा १८ ।

२. काशी : विद्वानों का आकर्षण केन्द्र १९-२४

काशी की तीर्थस्थली १९; काशी—विद्या की केन्द्रस्थली २१; काशी में धर्माचार्यों का आगमन २२-२४; काशी—जीविका की साधिका २४ ।

३. काशी के विद्वानों का साहित्यिक अवदान (मध्ययुग) २५-८८

वेद तथा तन्त्र २६; **महीधर, भास्कर राय** २६ ।

पुराणेतिहास २७; **श्रीधर स्वामी, नीलकण्ठ** २७-२८ ।

न्यायवैशेषिक २८-३१;

शंकरमिश्र २८; प्रगल्भ (शुभङ्कर) २९; नरहरि विशारद २९ । वासुदेव सार्वभौम २९; विद्यानिवास भट्टाचार्य ३०; विश्वनाथ सिद्धान्त-पञ्चानन ३०; रुद्र न्यायवाचस्पति ३०; भवानन्द सिद्धान्तवागीश ३०; महादेव पुणताम्बेकर ३०-३१ ।

सांख्ययोग दर्शन ३१-३२

विज्ञानभिक्षु ३१; प्रसादमाधव योगी; भावागणेश दीक्षित; दिव्य सिंह मिश्र ३२ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीमांसा ३२–३५

खण्डदेव मिश्र ३२; उनके ग्रन्थ ३२; रामकृष्ण भट्ट ३३; शंकरभट्ट के ग्रन्थ ३३; कमलाकर भट्ट ३४; दिनकर (या दिवाकर) भट्ट ३४; विश्वेश्वर भट्ट (गागा भट्ट) ३४; शम्भु भट्ट ३४–३५ ।

वेदान्त ३५–४०

शंकराचार्य ३६; श्रीहर्ष ३६; ज्ञानानन्द, प्रकाशानन्द ३७; नृसिंहाश्रम सरस्वती ३७; मधुसूदन सरस्वती-जीवनचरित ३७–३८; ग्रन्थ ३९–४०; शिष्य पुरुषोत्तम सरस्वती, शेष गोविन्द ४०; नारायण तीर्थ ४० ।

धर्मशास्त्र ४०–४६

लक्ष्मीधर भट्ट ४१; कुल्लूक भट्ट ४१; कविकान्त सरस्वती ४२; नन्द पण्डित ४२; नारायण भट्ट ४२; कमलाकर भट्ट ४३; इनके ग्रन्थ ४४; नीलकण्ठ भट्ट ४५; भगवन्तभास्कर ४५; व्यवहार मयूख ४५; नागोजि भट्ट ४६; ।

ज्योतिषशास्त्र ४६–५१

मकरन्द ४६, अनन्त दैवज्ञ ४७, नीलकण्ठ दैवज्ञ ४७, राम दैवज्ञ ४७, कृष्ण दैवज्ञ ४८, रंगनाथ दैवज्ञ ४९, मुनीश्वर ४९, नृसिंह दैवज्ञ ५०, दिवाकर भट्ट ५०, कमलाकर भट्ट ५१, विट्ठल दीक्षित ५१ ।

व्याकरण शास्त्र ५१–६५

पतञ्जलि–जीवन चरित ५२, काल ५३, देश ५३, महाभाष्य का वैशिष्ट्य ५४ । रामचन्द्राचार्य ५५, शेष श्रीकृष्ण ५६, भट्टोजि दीक्षित ५६, दीक्षितजी का देशकाल ५७; दीक्षितजी के ग्रन्थ ५८, दीक्षितजी का परिवार—रङ्गोजि भट्ट ६०, भानुजिदीक्षित ६१, कोण्डभट्ट ६१, हरिदीक्षित ६१ । नागेशभट्ट ६२, रचनाएँ ६२, नागेश का वैशिष्ट्य ६३, रामराम भट्टाचार्य ६४, वैद्यनाथ पायगुण्डे ६४ ।

काव्य तथा अलंकार शास्त्र ६५–८८

पण्डितराज जगन्नाथ ६५; ग्रन्थ, रसगंगाधर ६६; विश्वेश्वर पाण्डेय ६६; अनन्त पण्डित ६७; श्रीहर्ष ६७; ग्रन्थ की समीक्षा ६८; लोष्टदेव ६९, पण्डितराज के काव्य-ग्रन्थ ६९-७०; चन्द्रशेखर कवि ७०; रामानन्दपति त्रिपाठी ७०; ग्रन्थ ७०-७१. काव्य सौन्दर्य ७३ । विश्वेश्वर पाण्डेय ७४ ।

कवीन्द्राचार्य सरस्वती–व्यक्तित्व ७५, जीवनचरित ७६; शाहजहाँ के दरबार में ७८; कवीन्द्रचन्द्रोदय ७९; प्रकाशित ग्रन्थ ८१; अप्रकाशित ग्रन्थ ८१; हिन्दी रचनाएँ ८३; कवीन्द्राचार्य का पुस्तकालय ८३; सरस्वतीजी की बर्नियर से मित्रता ८४; अन्तिम जीवन ८४-८५; सरस्वतीजी के समसामयिक लेखक ८५-८६ । मुगलकालीन संस्कृत लेखक ८६-८७ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवतरणिका

अध्याय ४. काशिराजकीय संस्कृत पाठशाला ९१–१०४

संक्षिप्त इतिहास ९१; कालेज का जन्म तथा उद्देश्य ९१-९२। अंग्रेज प्रिन्सिपल—(१) जे० म्योर ९३; प्रकाशित ग्रन्थ ९३-९४। (२) डा० बैलेन्टाइन--ग्रन्थ विवरण ९४; (३) डा० ग्रिफिथ ९५; (४) डा० थीबो—परिचय तथा ग्रन्थ ९६; (५) डा० आर्थर वेनिस-परिचय ९६; गुणग्राहकता ९८; संस्कृत सेवा ९८-१००;

भारतीय प्रिन्सिपल— ६) डा० गङ्गानाथ झा १००; (७) गोपीनाथ कविराज १०१; (८) डा० मंगलदेव शास्त्री १०१। संस्कृत विश्वविद्यालय—डा० आदित्यनाथ झा १०२; पं० मुरतिनारायणमणि त्रिपाठी १०३।

अध्याय ५. काशिराज का इतिहास तथा संस्कृत-सेवा १०५–१२३

काशिराज का उदय १०५; राजा मनसाराम १०५; महाराजा बलवन्त सिंह १०५; रघुनाथ हिन्दी कवि १०७। महाराजा चेतसिंह १०८ 'चेतसिंह-विलास' महाकाव्य का परिचय १०८-१०९। महाराजा महीपनारायणसिंह १०९; महाराजा उदित नारायण सिंह ११०; बबुआ ज्योतिषी ११०; बालकृष्ण ज्योतिषी १११; सेवाराम शर्मा ज्योतिषी १११। हिन्दी कवि–गोकुलनाथ भट्ट १११; महाभारतदर्पण ११२; गोपीनाथ ११३; मणिदेव ११३; ब्रह्मदत्त कवि ११५। महाराजा ईश्वरीनारायणसिंह ११५-११६; दरबारी संस्कृत कवि—ताराचरण तर्करत्न ११६; प्रियनाथ तत्त्वरत्न ११७; जयनारायण तर्करत्न ११८; कृष्णपन्त धर्माधिकारी ११८।

महाराजा प्रभुनारायण सिंह ११९—'पार्थपाथेय' उल्लाप्यक १२०;

आश्रित कवि—गणेशदत्त त्रिपाठी १२१; जीवन झा मैथिल १२१।

महाराजा आदित्य नारायण सिंह १२२।

महाराजा डा० विभूतिनारायण सिंह १२२-१२३।

अध्याय ६. काशीस्थ पण्डितों की सामान्य विशेषताएँ १२४–१३५

(क) पण्डितों की दिनचर्या—धार्मिक जीवन १२४; पण्डित सभा १२६; (ख) निःशुल्क विद्यादान १२७; (ग) शास्त्रार्थ पटुता १२८; (घ) वाणी की उदारता, परन्तु लेखन में बद्धमुष्टिता १२९; (ङ) संस्कृत साहित्य से प्रगाढ प्रेम १२९; (च) सादा जीवन उच्च विचार १३०; (छ) काशीस्थ विद्वानों की उच्चारण शुद्धि १३१–१३५।

अध्याय ७. आक्षेपों का निरसन १३६-१४३

(क) राष्ट्रभाषा की उपेक्षा १३६; (ख) समाज सेवा से विमुखता १३८; 'मानसोपायन' के संस्कृत कवि १४०; शारदा ऐक्ट का पण्डितों द्वारा विरोध १४१। अंग्रेजी सरकार द्वारा पण्डितों का सत्कार १४२। 'महामहोपाध्याय' पदवी का आरम्भ १४३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर पीठिका १४५–६४०

(प्रथम भाग)

(क) १८वीं शती का उत्तरार्ध : साहित्य एवं प्रवृत्ति १४७—१५३

बालम्मट्ट १४७; देव, भैरव मिश्र, नीलकण्ठ शास्त्री, अहोबल शास्त्री, राघवेन्द्राचार्य गजेन्द्रगडकर १४७, बालंभट्टी १४८, मनुदेव १४६, हरिदीक्षित १४६, परमानन्द पाठक १४६, बलभद्र कवि १५०, शिवलाल पाठक १५०, रामानन्द पाठक १५०, पण्डित लक्ष्मीपति १५१ ।

पाणिनीय व्याकरण की विकास दिशा १५१–१५३

(ख) काशिकेय पण्डितों का साहित्यिक अवदान

(अर्वाचीन युग १७५०ई०-१९५०ई०)

१. पण्डित काशीनाथ शास्त्री १५४–१५७

शास्त्रीजी की आरम्भिक शिक्षा १५४, व्याकरण में परिष्कारपद्धति का उदय १५४, गंगाराम त्रिपाठी १५५, शिष्य-रङ्गनाथ, जगन्नाथ शास्त्री गाडगिल तथा रघुनाथ शास्त्री १५५; काशीनाथ शास्त्री काशी में १५५; शास्त्रीजी की प्रशस्ति १५६, शास्त्रीजी के शिष्य १५७ ।

२. पण्डित राजाराम शास्त्री १५८–१६६

जन्म एवं अध्ययन १५८, पेशवा द्वारा सम्मान १५९, न्यायाधीश एवं संस्कृत कालेज में अध्यापक १५९, बलिष्ठ देहयष्टि १६१, स्वप्न में अध्यापनकार्य १६१, सरल स्वभाव, १६२, 'विधवोद्वाह समाधिः' स्वरचित ग्रन्थ का परिचय १६३, ग्रन्थ में निर्दिष्ट काशीस्थ विद्वान् १६४—१६५, 'दोषाभासनिरासः' नामक बालशास्त्री की टीका १६५; बालशास्त्री के रमणीय पद्य १६६ ।

३. पण्डित बापूदेव शास्त्री १६७—१८०

प्राचीन ज्योतिषाध्यापक—पं० लक्ष्मीपति, पं० कृष्णदेव, पं० लज्जाशंकर शर्मा १६७, पं० दुर्गाशंकर पाठक, पं० नन्दलाल शर्मा, पं० देवकृष्ण शर्मा १६८। पं० बापूदेवशास्त्री की जीवनी १६८–१६९; अध्ययन १७०; अध्यापन १७१, ग्रन्थ रचना—(क) संस्कृत ग्रन्थ १७२, (ख) हिन्दी ग्रन्थ १७३; सन्मान की प्राप्ति १७३; नवीन पञ्चाङ्ग का सूत्रपात्र १७४–१७६; शिष्यमण्डली–चन्द्रदेव पण्ड्या १७७; विनायक शास्त्री वेताल १७७, गणपतिदेव शास्त्री १७७, बापूदेवजी की हिन्दी देवा १७७–१७९; मूल्यांकन १८० ।

४. पण्डित बालशास्त्री १८१–१९४

जन्म १८१, बाजीराव पेशवा द्वारा सम्मान १८२; अध्ययन १८३–१८४, अध्यापन १८४, मण्डी की यात्रा १८५, सम्मान १८६, ग्रन्थरचना १८७, ज्योतिष्टोम यज्ञ का सम्पादन १८७, शेष जीवन १८९, बालशास्त्री की देवभाषा-रचना शैली १८९; शास्त्रीजी की पद्यरचना १९०, गद्यरचना—वेदार्थविचारः १९०—१९२, विक्टोरियाकालीन भारतदशा १९२

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५. पण्डित यागेश्वर ओझा १९५–२०७

अध्ययन १९५; सम्मान १९७; तपस्वी जीवन १९७; दिनचर्या १९८; पं० ठाकुरप्रसाद ओझा १९९; अध्यापन चातुरी २००; वीरेश्वरशास्त्री द्राविड़ २०१; गुरु की अलौकिक कृपा २०१; ग्रन्थ रचना २०२; हैमवती-स्वरूप तथा प्रभाव २०३; रामायण पर दृढ़ निष्ठा २०४; अध्यात्म-चिन्तन २०५–२०७।

६. पण्डित शिवकुमार शास्त्री २०८–२३५

प्रथम परिचय २०८–२०९; जीवन चरित २१०; अध्ययन २११; अध्यापन २१३; दरभङ्गा पाठशाला की स्थापना २१४; दिनचर्या २१५; शास्त्रार्थपटुता २१६; सम्मान २१६; व्यवस्था का आदर २१६; ग्रन्थ-यतीन्द्र जीवन चरितम् २१७; लक्ष्मीश्वरप्रतापः २१९; लक्ष्मीश्वरोपायनम् २२०; लिङ्गधारण चन्द्रिका-व्याख्या २२१; शिष्यमण्डली २२३; काशीस्थ स्मारक २२३; संस्मरण-कर्तव्यनिष्ठा २२५; उदाराशयता २२६; समाज-सेवा २२७; साधना का चमत्कार २२८; दरभङ्गाराज-दरबार में प्रवेश २२९; स्वाभिमान २३१; अखिल भारतीय कीर्ति २३२।

स्वामी मनीष्यानन्द २३३–२३५।

७. पण्डित गङ्गाधर शास्त्री २३६–२६४

गट्टूलाल से शास्त्रार्थ २३६; पूर्वपुरुष २२७; जन्म तथा अध्ययन २३८; स्वप्न में अध्ययन २३९; अध्यापन २४१; ग्रन्थ रचना २४२; यज्ञ का अनुष्ठान २४२; सम्मान २४३; परिवार २४३; शिष्य मण्डली; रामावतार शर्मा, नित्यानन्द पर्वतीय, दामोदर लाल गोस्वामी, हेमराज शर्मा, बालबोध मिश्र, दिवाकर भट्ट, नागेश्वर धर्माधिकारी, पञ्चनदीय पं० सुदर्शनाचार्य २४४; प्रभुनारायण सिंह, रामचन्द्र शास्त्री काले २४५; श्रद्धाञ्जलि २४५–२४६।

अलिविलासिसंलाप—रचनाहेतु २४६; उद्देश्य २४७; विषयविवेचन २४८; स्वरूप विमर्श २४९; शारदास्तुति, काशी वर्णन, पार्वती का भव्य रूप २५०; कावेरी का श्लिष्ट वर्णन २५०; मीनाक्षी वर्णन, पुरुषोत्तम स्तुति २५१–२५२; हंसाष्टक २५३–२५४।

संस्मरण रचनाचातुरी २५४; लोकचातुरी २५५; अध्यापनचातुरी २५६; रसिकता २५७; अध्ययन कुशलता २५८; लार्ड कर्जन से शास्त्री जी का चमत्कारी वार्तालाप २५९–२६३; शास्त्री जी तथा डॉ० वेनिस २६३; मूल्यांकन २६४।

८. पण्डित दामोदर शास्त्री २६५–२७८

शास्त्री जी का पं० बच्चा झा से शास्त्रार्थ २६५–२६६; शास्त्रार्थ की ऐतिहासिकता २६७–२६८; पूर्वपुरुष २६८; जन्म तथा शिक्षा २६९; अध्यापन २७०; शास्त्रार्थ निपुणता २७०; स्वभाव की ऋजुता २७१; भक्ति की भावना २७१;

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्यमण्डली–राममवन उपाध्याय २७२–२७३; चन्द्रधर शर्मा, ठाकुरप्रसाद द्विवेदी, देवनारायण त्रिपाठी २७३; गणपति शास्त्री मोकाटे, पूर्ण चन्द्राचार्य, चन्द्रभूषणजी, गयादत्त पाण्डेय, चिद्घनानन्द स्वामी २७४; प्रशंसा २७४।

पण्डित बच्चा झा—जन्म २७५; अध्ययन २७५; नौकरी २७६; ग्रन्थ-रचना २७६–२७७; शिष्य मण्डली–बालकृष्ण मिश्र, शशिनाथ झा, लक्ष्मीनाथ झा स्वामी पूर्णानन्द, स्वामी परमानन्द २७७; अगाध विद्वत्ता २७७–२७८।

९. पण्डित तात्या शास्त्री (रामकृष्ण शास्त्री) २७९–२८८

पूर्वपुरुष २७९; जन्म तथा शिक्षा २८०; अध्यापन २८०; लोकशास्त्रीय चातुरी २८१; ग्रन्थ-भूति २८१; परिवार २८२; शिष्यमण्डली २८३; ग्रन्थ का सम्पादन २८४; संस्मरण-पण्डित रामउदित उपाध्याय पर प्रभाव २८४; लेखप्रौढ़ि २८५।

पण्डित केशव शास्त्री मराठे—जीवनी २८६, अध्यापन कार्य २८७, ग्रन्थरचना, आत्मसोपान, स्नेहपूर्ति परीक्षा, बर्कले दर्शनशास्त्रम् २८७, शनि-माहात्म्य २८८, योगवार्तिक का सम्पादन २८८।

१०. पण्डित सुधाकर द्विवेदी २८९–३०७

जीवनी २८९, शिक्षा २९०, एक अविस्मरणीय घटना २९०, अध्यापन २९१, ग्रन्थरचना—मौलिक ग्रन्थ २९२, सम्पादित ग्रन्थ २९३, हिन्दी ग्रन्थ २९४, परिवार २९५, शिष्यमण्डली—पं० रामयत्न ओझा २९६, प० बलदेव-दत्त पाठक २९७, द्विवेदीजी की काव्य रचना २९७–२९९, उपसंहार २९९।

संस्करण—कर्मठता ३००, युक्तिमत्ता ३००, गणित का सफल अध्यापन ३०१, पाश्चात्य गणित का विशिष्टवेत्ता ३०२, समाज की सेवा ३०२, हिन्दी की अमूल्य सेवा ३०४, हिन्दी के प्रचारक ३०५, लार्ड कर्जन से मैत्री ३०६, व्यवहारनिपुणता ३०७।

११. पण्डित कैलासचन्द्र शिरोमणि ३०८–३२०

पूर्वपुरुष ३०८, शिक्षा ३०८, नवद्वीप विद्यापीठ—रघुनाथ शिरोमणि ३०९–३१०, अध्ययन ३११, अध्यापन कार्य ३१३, परिवार ३१४, शिष्यमण्डली ३१४, ग्रन्थरचना ३१४, विद्वत्ता ३१५, नैष्ठिक सदाचारी ३१५।

पण्डित राखालदास न्यायरत्न ३१६, अध्ययन ६१६, अध्यापन ३१७, काशी आगमन ३१७, ग्रन्थरचना ३१८, शास्त्रीय वैदुषी ३१८, एक विमल संस्मरण ३१९–३२०।

१२. पण्डित राममिश्र शास्त्री ३२१–३२७

जन्म तथा अध्ययन ३२१, अध्यापन ३२१, अलौकिक वैदुष्य ३२२, शास्त्रीजी के पुत्र केशव मिश्र ३२२, प्रचारकार्य ३२३, ग्रन्थरचना ३२४, प्रौढ लेखनकला ३२५, शिष्यमण्डली—डा० भगवानदास ३२५, हरिहर कृपालु, भागवताचार्य ३२६, शास्त्रीजी की गर्वोक्ति ३२६, अलौकिक व्यक्तित्व ३२७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१३. **पण्डित अम्बिकादत्त व्यास** ३२८–३४०

जीवनी ३२८, काव्यकला ३२९, विलक्षण समस्यापूर्तियाँ ३३०, आशुकवित्व ३३१, अध्ययन ३३१, अध्यापन ३३२, संस्कृत में ग्रन्थरचना ३३२, हिन्दी काव्यरचना ३३२–३३३, संस्कृत के प्रचारक ३३३, सनातन धर्म के प्रचारक ३३३, शिवराजविजय–आलोचना ३३४, सामवत नाटक ३३५, रचनाचातुरी ३३६, हिन्दी काव्य ३३७, शृंगार विलासिनी २३९।

पण्डित रमानाथ व्यास—३४०, कथाशैली ३४१, विशिष्ट संस्मरण ३४२–३४३।

पण्डित विद्यानाथ व्यास—जीवनी तथा वैशिष्ट्य ३४३–३४४।

१४. **पण्डित रामशास्त्री तैलङ्ग** ३४५–३५६

अध्ययन, अध्यापन ३४५, ग्रन्थरचना ३४६, चरित्र ३४६, काव्यरचना ३४७, शिवाश्वघाटी ३४९, आलोचना ३५०–३५१।

पण्डित नारायणशास्त्री खिस्ते ३५१, अध्ययन ३५१, डा० वेनिस का साहचर्य ३५२, अध्यापन ३५२। सरस्वती भवन का संक्षिप्त परिचय ३५३, पं० विन्ध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी—जीवन परिचय ३५३-३५४, खिस्तेजी की रचना ३५४, काव्यचमत्कार ३५५, परिवार–मुकुन्दशास्त्री खिस्ते, बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते ३५६।

१५. **पण्डित उमापति द्विवेदी (नकछेदराम दूबे)** ३५७–३७३

पूर्वपुरुष ३५७, जन्म ३५७, हरिदत्त द्विवेदी ३५८, जीवनचर्या ३५९, काशी में आगमन ३६०, व्यवहार-पटुता ३६१, ग्रन्थरचना ३६१, 'सनातन-धर्मोद्धार' की महामना द्वारा प्रशंसा ३६२, विषय-परिचय (पूर्वार्ध) ३६३, उत्तरार्ध का परिचय ३६४–३६५, द्विवेदीजी की लेखन शैली ३६५।

पण्डित काशीनाथ द्विवेदी—जन्म ३६६, अध्ययन ३६७, हिन्दी कविता ३६८, काव्यचमत्कार ३६९, रचना–'रुक्मिणीहरण' महाकाव्य–परिचय तथा समीक्षा ३७०-३७२; पं० रामबालक शास्त्री ३७२; पं० उमापति शर्मा द्विवेद ३७२–३७३।

१६. **पण्डित रामशास्त्री भागवताचार्य** ३७४-३८५

पूर्वपुरुष ३७४, शिक्षा ३७४, जीवनी ३७५, काशी में आगमन ३७५, अध्यापन ३७६, ग्रन्थरचना ३७७, दिनचर्या ३७७, व्यक्तित्व ३७८, ग्रन्थों का नाम ३७८, काव्यप्रतिभा ३७९–३८१, विद्वत्ता ३८१ पुत्र—पं० देवाचार्य ३८२।

पण्डित मोहनलाल वेदान्ताचार्य ३८२, ग्रन्थों का विवरण ३८३, 'महामोह-विद्रावण' की समीक्षा ३८४, लेखनशैली ३८४-३८५।

१७. **पण्डित नित्यानन्द पन्त पर्वतीय** ३८६–३९६

कुल परिचय ३८६, जन्म ३८६, अध्ययन ३८७, अध्यापन ३८७, विरक्ति ३८८, सात्विक स्वभाव ३८८; ग्रन्थरचना—जैमिनिसूत्रवृत्ति, ३८९, मीमांसा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिभाषा, कात्यायन श्रौतसूत्र टिप्पणी ३६०, संस्कारदीपक, परिशिष्टदीपक ३६०, अंत्यकर्मदीपक, वर्षकृत्य दीपक, कातीय-इष्टि दीपक, सापिण्ड्य दीपक ३६१, लघुशब्देन्दुशेखर दीपक ३६२, परमलघुमञ्जूषा ३६२, शिष्य – म० म० सीतारामशास्त्री शेंडे ३९२, म० म० माधवशास्त्री भण्डारी ३६३, गोपालशास्त्री नेने ३६५, अनन्तशास्त्री फडके ३६६, गोपालदत्त पाण्डेय ३६६।

१८. **पण्डित मुरलीधर झा** ३६७–४०१

जन्म तथा शिक्षा ३६७, विद्वत्ता ३६८, शिष्यमण्डली ३९८, ग्रन्थरचना ३९६।

पण्डित बलदेव मिश्र—जन्म तथा शिक्षा ४००, अध्यापन ४००, ग्रन्थ–आर्यमटीय की संस्कृत व्याख्या तथा हिन्दी अनुवाद ४०१, सम्मान ४०१।

१९. **पण्डित वामाचरण भट्टाचार्य** ४०२–४०८

व्यक्तित्व ४०२, स्वभाव ४०३, जन्म तथा शिक्षा ४०३, अध्यापन ४०४, शास्त्रार्थ नैपुण्य ४०४, परिवार ४०५, शिष्यमण्डली ४०५, ग्रन्थरचना ४०५–४०६।

पण्डित ताराचरण भट्टाचार्य—जन्म तथा शिक्षा ४०६, अध्यापन ४०७, परिवार ४०७, ग्रन्थरचना ४०८, मित्रगोष्ठी पत्रिका के व्यवस्थापक ४०८, अभिनय-कुशलता ४०८।

२०. **पण्डित चण्डीप्रसाद शुक्ल** ४०९–४१५

परिचय ४०६, गोयनका विद्यालय की स्थापना ४०६, अच्युत मुनिजी ४०६, शुक्लजी का जन्म तथा अध्ययन ४१०–४११; ग्रन्थरचना—'खण्डनखण्डखाद्य' का हिन्दी अनुवाद ४११, खण्डखण्डखाद्य का परिचय तथा वैशिष्ट्य ४१२–४१३। **पण्डित रामेश्वरदत्त शुक्ल** ४१४, सूर्यनारायण शुक्ल–अध्यापन ४१४, ग्रन्थरचना ४१५।

२१. **पण्डित लक्ष्मणशास्त्री तैलंग** ४१६–४३०

अध्ययन ४१६, अध्यापन ४१६, अट्ठकथा का सम्पादन ३१७, स्वभाव का परिचय ४१८, कारयित्री प्रतिभा के धनी ४१८, काव्य की समीक्षा ४१६–४२२।

पण्डित बटुकनाथ शर्मा—पूर्वपुरुष, जन्म ४२२, पिता ईश्वरीप्रसाद मिश्र की तन्त्रनिपुणता ४२२–४२३, शर्माजी की अध्यापनपटुता ४२३, ग्रन्थ रचना ४२४, कवि स्वभाव ४२५, हास्यरचना ४२५, सफल समीक्षक ४२७; रसिकता की मूर्ति ४२८–४३०।

२२. **पण्डित दामोदरलाल गोस्वामी** ४३१–४४२

जन्म तथा अध्ययन ४३१, काशी में अध्ययन ४३२, नवद्वीप के नैयायिक गुरु-राखालदास न्यायरत्न तथा यदुनाथ न्याय-सार्वभौम ४३२, अध्यापन ४३२,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थरचना—भगवन्नाम कौमुदी ४३३, भक्तिरसायन टीका, हरिभक्तिरसामृतसिन्धु, वाक्यपदीय, षड्दर्शन–समुच्चय ४३३, संस्मरण—४३४-४३५, काव्यरचना ४३५–४३६।

पण्डित देवीप्रसाद कविचक्रवर्ती ४३६, वंश ४३७, पिता दुःखभंजन कवीन्द्र का परिचय ४३७, 'चन्द्रशेखर-चरितम्' महाकाव्य ४३८ वाग्वल्लभ ४३८; देवीप्रसादजी का जन्म ४३८, अध्ययन ४३९, अध्यापन ४३९, काव्यकला ४४०–४४१।

पण्डित केदारनाथ सारस्वत—परिचय, ग्रन्थ ४४२।

२३. पण्डित लक्ष्मण शास्त्री द्राविड ४४३–४५६

कर्मठ जीवन ४४३, जन्म ४४३, शिक्षा, अध्यापन ४४४, महत्त्वपूर्ण कार्य ४४५, ब्राह्मण महासम्मेलन ४४५, वर्णाश्रम स्वराज संघ ४४६, ब्राह्मणसम्मेलन का विवरण ४४६–४४८।

पण्डितराज राजेश्वरशास्त्री द्राविड ४४८–४५६

जीवनी ४४८, अध्यापन ४४९, महनीय विचार, वेद का महत्त्व ४४९-४४० ग्रन्थ ४५०, शान्ति का अग्रदूत ३५०, वेदों का अपौरुषेयत्व ४५१, अर्थशास्त्र की 'वैदिक सिद्धान्तरक्षिणी' टीका ४५२, वैदुष्य ४५३, शिष्यमण्डली ४५३।

वल्लभराम शालिग्राम साङ्गवेदविद्यालय—परिचय तथा उपलब्धि ४५४–४५६।

२४. पण्डित पञ्चानन तर्करत्न ४५७–४६६

जन्म की घटना ४५७, शिक्षा ४५८, धार्मिक जीवन ४५९, आचार-विचार ४६०, परम्परावादी स्वरूप ४६०, कर्मठ जीवन ४६१, ग्रन्थरचना-संस्कृत काव्य तथा धार्मिक ग्रन्थ ४६२, बँगला ग्रन्थ ४६३, ब्रह्मसूत्र का शक्तिभाष्य-विवरण ४६३–४६४।

श्रीजीव भट्टाचार्य—परिचय ४६५–४६६।

२५. पण्डित देवनारायण तिवारी ३६७–४७२

जन्म एवं अध्ययन ३६७, श्रीचन्द्र पाठशाला की स्थापना ४६८, अध्यापन ४६८, सात्त्विक व्यक्तित्व ४६९।

शिष्य मण्डली—**पं रामाज्ञा पाण्डेय** ४६९, 'व्याकरण दर्शन' के तीन खण्ड—भूमिका, पीठिका तथा प्रतिमा ४७०–४७१।

पण्डित नृसिंह त्रिपाठी – परिचय तथा ग्रन्थ ४७१।

पण्डित रामप्रसाद त्रिपाठी—परिचय तथा ग्रन्थ ४७२।

२६. पण्डित काशीनाथ शास्त्री ४७३–४७६

जन्म तथा अध्ययन ७७३, अध्यापन ४७४, वैशिष्ट्य ४७५, शिष्यमण्डली ४७४-४७५, ग्रन्थ ४७५।

पण्डित रघुनाथ शर्मा ४७५–४७६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२७. पण्डित सभापति उपाध्याय ४७७–४८२

जन्म ४७७, अध्ययन ४७७, अध्यापन ४७८, बिरला संस्कृत महाविद्यालय का परिचय ४७८, ग्रन्थ रचना ४७९, स्वभाव ४७९, शिष्यमण्डली ४८०-४८१, सम्मान ४८१-४८२।

पण्डित अम्बिकाप्रसाद उपाध्याय ४८२।

पण्डित रामयश त्रिपाठी (महाशयजी) ४८२-४९१

पूर्वज तथा जन्म ४८३, अध्ययन ४८३, अध्यापन ४८४, संन्यास ग्रहण ४८५, अध्यापन वैशिष्ट्य ४८५, आचरण, अद्वितीय त्याग ४८६, मनस्विता, सरलता ४८७, एक विशिष्ट घटना ४८७, सत्यनिष्ठा ४८८, शिष्यमण्डली ४८९, निरञ्जन-देव तीर्थ ४८९, देवनायकाचार्य, रामानन्द सरस्वती, मुरलीधर उपाध्याय, श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, चण्डीप्रसाद पाठक ४८९, लालबिहारी मिश्र, शुकदेव झा, सत्यव्रत शास्त्री, वागीश शास्त्री ४९०, नैयायिक पण्डित ढुँढिराज शास्त्री टोपले ४९०-४९१।

२८. पण्डित प्रमथनाथ तर्करत्न ४९२–४९९

वंशपरिचय ४९२, जन्म तथा शिक्षा ४९३, अध्यापन ४९४, सम्मान ४९४ ग्रन्थ रचना ४९५, विशिष्ट ग्रन्थों का परिचय—विजयप्रकाशः ४९५, कोकिल-दूतम् ४९६, वैष्णवधर्म ४९६, कालविवेक एवं मनुस्मृति की बँगला अनुवाद ४९७, मायावाद (बँ०) कतिपय संस्मरण ४९७-४९९।

२९. पण्डित हरिहरकृपालु द्विवेदी ५००–५१४

जीवन परिचय ५००, अध्ययन ५०१, अध्यापन ५०२, मुरारका संस्कृत विद्यालय (पटना) का परिचय ५०२-५०३, शास्त्रार्थ पाटव ५०३, काशी आगमन ५०३, दरभंगा में शास्त्रार्थ ५०३, उदारता ५०४, सम्मान ५०७, संस्कृत ग्रन्थ कल्पकलिका ५०७, रमेश्वरकीर्ति-कौमुदी।

हिन्दी अनुवाद—बृहदारण्यक वार्तिकसार (२ खण्ड) ५०८, गीताभाष्य ५०८, काव्यरचना ५०९-५१०,

शिष्यमण्डली—स्वामी कृष्णबोधाश्रम, शंकरानन्द सरस्वती ५१०, रामानुज ओझा, रघुनन्दन त्रिपाठी, पुत्र ब्रह्मदत्त द्विवेदी ५११। एक दिव्य संस्मरण ५१२।

पण्डित कमलाकान्त मिश्र ५१४–५११

३०. पण्डित जयदेव मिश्र ५१५–५१८

जन्म तथा अध्ययन ५१५, अध्यापन ५१६, सदाचारी जीवन ५१६, ग्रन्थ ५१७, शिष्यपरम्परा—पण्डित गंगानाथ झा, पण्डित राजनारायण शास्त्री, पण्डित मार्कण्डेय मिश्र, पण्डित दामोदर मिश्र ५१७, वैदुष्य, विजया टीका, व्युत्पत्तिवाद की टीका ५१८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित हाराणचन्द्र भट्टाचार्य ५१८–५२३

जन्म तथा आरम्भिक जीवन ५१९, काशी में अध्ययन ५२०, अध्यापन ५२१, शास्त्रार्थप्रवीणता ५२१, रचना–कालसिद्धान्त-दर्शिनी ५२२, गुरुभक्ति का विलक्षण उदाहरण ५२२-५२३ ।

३१. **पण्डित यादवेश्वर तर्करत्न** ५२४–५२६

जन्म, काशी में अध्ययन ५२४, अध्यापन ५२५, सम्मान ५२५, संस्कृत ग्रन्थ ५२६. बँगला ग्रन्थ ५२६, पुत्र पं० वृन्दावन भट्टाचार्य ५२६ ।

पण्डित विधुशेखर शास्त्री ५२७–५३०

जन्म, अध्ययन ५२७, 'मित्रगोष्ठी' पत्रिका के सम्पादक ५२८, अध्यापन, रवीन्द्रनाथ का सम्पर्क, शान्तिनिकेतन के प्राचार्य ५२९, बँगला ग्रन्थ ५३०, अंग्रेजी ग्रन्थ ५३० ।

श्री क्षितिमोहन सेन ५३१–५३२

काशी में अध्ययन, शान्तिनिकेतन में अध्यापन ५३१, हिन्दी सन्तों पर बँगला ग्रन्थ ५३२ ।

३२. **पण्डित बालकृष्ण मिश्र** ५३३–५४७

जन्म तथा अध्ययन ५३३, अध्यापन ५३४, भाषण शैली ५३४, शिष्य-मण्डली—पण्डित बदरीनाथ शुक्ल ५३६, पण्डित केदारनाथ ओझा ५३६, अन्य शिष्य ५३७, ग्रन्थरचना ५३७, संस्मरण ५३७, विनोदी स्वभाव ५३८, सम्मान के प्रति उपेक्षा ५४०, कार्यकुशलता ५४१, गम्भीर आलोचक ५४२, संस्कृत पद्य ५४३ । आदर्श रानी चन्द्रावती—श्यामा विद्यालय ५४३-५४५ ।

पण्डित बालबोध मिश्र—अध्ययन ५४५, अध्यापन ५४६, शिष्यमण्डली ५४६, पद्यरचना ५४७ ।

३३. **पण्डित मधुसूदन ओझा**

जन्म तथा अध्ययन ५४८, अध्यापन, विदेशयात्रा ५४९, सम्मान ५५०, शिष्यमण्डली ५५०, कृतियाँ ५५१, पद्यबद्ध परिचय ५५१, छन्दोनिरुक्ति ५५१, ओझाजी का वैदिक विज्ञान ५५३, सिद्धान्त विवेचन ५५४ ५५५ ।

पण्डित परमेश्वर झा—जन्म तथा अध्ययन ५५६; अध्यापन ५५७; यक्षसमागम काव्य ५५७; ग्रन्थ ५५८; शिष्य ५५८ ।

३४. **पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी** ५५९–५७४

जन्म तथा अध्ययन ५५९, अध्यापन ५६०; ग्रन्थ–संस्कृत ५६२; हिन्दी ग्रन्थ ५६२ अप्रकाशित ग्रन्थ ५६४; व्यक्तित्व ५६५; धर्मोपदेशक रूप ५६६; सम्मान ५६७; संस्मरण ५५८; शिष्यमण्डली ५७०–५७१ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित देवनायकाचार्य—अध्यापन ५७२; कर्मठता ५७२; संस्मरण ५७३-५७४।

३५. **पण्डित अयोध्यानाथ शर्मा**—शास्त्रीय वैदुष्य ५७५; पण्डित जी की काव्य-रसिकता ५७६।

पण्डित रामनाथ ज्योतिषी—परिचय ५७७; ग्रन्थ तथा छात्र ५७८।

पण्डित हृषीकेश उपाध्याय—पिता रामेश्वरदत्त उपाध्याय का परिचय ५७८ हृषीकेश जी का अध्ययन ५७९; अध्यापन तथा स्वभाव ५८०; हृषीकेश पञ्चाङ्ग ५७९।

पण्डित सीताराम झा—परिचय ५८०; सम्मान ५८१, संस्कृत ग्रन्थ ५८१; मैथिली ग्रन्थ ५८२; स्वभाव ५८२।

संन्यासी संस्कृत कालेज का परिचय ५८२; स्वामी गोविन्दानन्द जी ५८३; स्वामी जयन्तपुरी जो ५८३; स्वामी कृष्णानन्द जी ५८४; स्वामी अतुलानन्द पुरी जो ५८४; कालेज के अध्यक्ष ५८४; वेदाध्यापक पं० दौलतराम के ग्रन्थ ५८४; न्यायाध्यापक पं० ज्वालाप्रसाद गौड़ की रचनाएँ ५८५;

शंकर चैतन्य भारती ५८५; खण्डनखण्डखाद्य की शारदा व्याख्या ५८५।

३६. **पण्डित फणिभूषण तर्कवागीश** ५८६-५९३

जन्म और शिक्षा ५८६; अध्यापन ५८६; शिष्यमण्डली ५८७; पं० दुर्गाधर झा ५८८; परिवार ५८८; ग्रन्थ-रचना—न्यायभाष्य का वंगीय अनुवाद ५८९; न्याय-परिचय ५८९; वैशिष्ट्य ५९०; संस्मरण ५९१।

पण्डित अन्नदाचरण तर्कचूडामणि—जन्म तथा अध्ययन ५९२; अध्यापन ५९२; पुराणरहस्यम् ५९३; धर्मशास्त्र-कोष ५९३; ग्रन्थ रचना—संस्कृत तथा बंगला ५९३।

३७. **पण्डित चित्रधर मिश्र** ५९४-५९६

अध्ययन ५९४; अध्यापन ५९५; ग्रन्थ रचना ५९५; स्वभाव तथा वैदुष्य ५९६।

पण्डित चिन्नस्वामी शास्त्री ५९६-६०५

जन्म तथा शिक्षा ५९७; अध्यापन ५९८; विविधकार्य ५९८; सम्मान ५९९; ग्रन्थ-रचना ५९९-६००; शिष्यमण्डलो ६००; व्यक्तित्व ६०१।

प्रधान शिष्य—पण्डित पट्टाभिराम शास्त्री, जीवनी तथा ग्रन्थ ६०१-६०२; पण्डित युधिष्ठिर मोमांसक ६०२; शिक्षा ६०३; अध्यापन ६०३; ग्रन्थ रचना ६०४ सम्मान तथा उपाधि ६०५; पण्डित सुब्रह्मण्यम् शास्त्री तथा पण्डित रामनाथ दीक्षित ६०५।

३८. **पण्डित सत्यनारायण शास्त्री** ६०६-६१९

मध्ययुग में आयुर्वेदिक परम्परा ६०६;

अर्वाचीन आयुर्वेद परम्परा—पं० त्र्यम्बक शास्त्री ६०६-६०८; पं० अर्जुन मिश्र ६०९; पं० उमाचरण कविराज ६०९; पं० धर्मदास कविराज ६०९-६१०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यनारायण शास्त्री की जीवनी ६११; पाण्डित्य ६१२; निर्भीकता ६१२; दवा का चमत्कार ६१३; काव्य-रचना ६१३–६१४; शिष्यमण्डली: पं० यदुनन्दन उपाध्याय ६१४; पं० विश्वनाथ द्विवेदी ६१५; पं० रमानाथ द्विवेदी ६१५; पं० गंगासहाय पाण्डेय ६१६; आचार्य प्रियव्रत शर्मा ६१६ ।

३९. पण्डित प्रभुदत्त अग्निहोत्री ६१७–६२८

जन्म तथा शिक्षा ६१७; अध्यापन ६१७; सम्मान ६१८; ग्रन्थरचना ६१८; याज्ञिक वैदुष्य ६१९ ।

पण्डित युगलकिशोर पाठक ६२०–६२१

परिचय ६२०; ग्रन्थ–शुक्लयजुःप्रतिशाख्य ६२०; शिक्षासंग्रह ६२१; ऋक्प्रातिशाख्य ६२१; वैदुष्य ६२१ ।

पण्डित विद्याधर गौड़ ६२१–६२८

जन्म तथा शिक्षा ६२२; अध्यापन कार्य ६२३; शिष्यगण ६२४; परिवार ६२४; प्रशस्ति ६२५; सम्मान ६२५; ग्रन्थ रचना ६२६; कात्यायन श्रौतसूत्र की 'सरला' व्याख्या ६२६; शास्त्रीय वैदुष्य ६२७–६२८ ।

४०. पण्डित रामचन्द्र शास्त्री रटाटे ६२९–६४०

काशी की महाराष्ट्रीय वैदिक परम्परा ६२९; ऋग्वेदी पाठशाला ६३०; दिनकर बालकृष्ण जोशी ६३०; बालदीक्षित काले ६३०; विनायक शास्त्री दीक्षित, रामकृष्ण दीक्षित फड़के ६३०; विनायक भट्ट डोंगरे ६३१; भिकं भट्ट पटवर्धन ६३१ ।

कृष्ण यजुर्वेद की वैदिक पाठशाला—६३१; राजाराम शास्त्री कार्लेकर, भिकं दीक्षित लेले ६३१; सोमनाथ भट बापट ६३२ ।

शुक्ल यजुर्वेद की पाठशाला ६३२

पण्डित कृपाकृष्ण जानी ६३२; नरहरि भट सप्तर्षि ६३२, महादेव भट पेठकर ६३३ ।

सामवेदीय परम्परा ६३३

पं० गणेशराम सामवेदी ६३३; पं० रणवीरदत्त त्रिपाठी ६३३; पं० दुर्गादत्त त्रिपाठी ६३३; आदित्यराम त्रिपाठी ६६४ ।

अथर्ववेदीय परम्परा ६३४

पं० जयदेव पञ्चोली ६३४; पं० भगवान लाल अग्निहोत्री ६३४; जीवन परिचय तथा वैशिष्ट्य ६३५ ।

रटाटेजी

वंश परिचय ६३५; जीवनी ६३६; अध्यापन ६३६; ऋग्वेद सम्पादन में साहाय्य ६३७; संस्मरण ६३७–६३८ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर पीठिका

द्वितीय भाग

विद्वान् संन्यासी १–२५०

१. श्री काष्ठजिह्व स्वामी (श्री देवतीर्थ स्वामी) १–१६

जीवन चरित ३–५, विद्यारण्य तीर्थ का परिचय ४–५ ग्रन्थ रचना ५, संस्कृत ग्रन्थ ६-८, हिन्दी ग्रन्थ ८–११, (१) देवरत्न–६, (२) रामसुधा १० ।

(३) रामायण परिचर्या ११–१७

रामायण परिचर्या की रचना कथा १२, रामायण परिचर्या का उद्देश्य १३, व्याख्या का वैशिष्टय १४–१७, काशिराज-सागर १७, स्वामीजी की काव्य कला १८–१६ ।

२. श्री रामनिरंजन स्वामी (स्वामी महादेवाश्रम) २०–२७

अध्ययन-अध्यापन २०-२१, स्वामीजी काशी मे २१, स्वामीजी की ख्याति २१-२३; विलक्षण भविष्यवाणी २३, आरंभिक जीवनवृत्त २४-२६; स्वामीजो का ग्रन्थ २६, स्वामीजी के सेवक २६-२७ ।

३. श्री स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती २८-४८

वंश तथा जन्म २८-२९, सैनिक वृत्ति २९; स्वामीजी की उत्तराखण्ड यात्रा ३०, स्वामीजी काशी में ३०; स्वामीजी का सार्वभौम प्रभाव ३१, स्वामीजी की विरक्ति ३२, शिष्यमण्डली ३२-३५, ग्रन्थ-रचना ३५, स्वामी दयानन्दजी के साथ शास्त्रार्थ ३६, शास्त्रार्थ का संक्षिप्त विवरण ३६-४२, स्वामीजी का महाप्रयाण ४३-४६, स्वामीजी की प्रशस्ति ४६-४८ ।

४. श्री स्वामी भास्करानन्द सरस्वती ४९–६६

जीवनी ४६; तपश्चर्या ४०; तीर्थाटन ५०–५२, त्याग की साधना ५२; आकर्षण के केन्द्र ५३; चमत्कार ५३; स्वामीजी के ग्रन्थ ५४-५६; स्वदेशी भक्त तथा दर्शक वृन्द ५६-५६; विदेशी भक्त और दर्शक वृन्द ५९-६१, स्वामीजी और मार्क ट्वेन ६१-६३, स्वामी जी और जंगी लाट ६३; भास्करानन्द-प्रशस्ति ६४-६६ ।

५. श्री स्वामी करपात्री जी (स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती) ६७-८२

जन्म और शिक्षा ६७; विवाह तथा वैराग्य ६८, नरवन में अध्ययन २८; घोर तपस्या ६६; धर्मसंघ की स्थापना ७०; संघ का राजनैतिक विभाग ७०;

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू कोड बिल का विरोध ७०; 'सन्मार्ग' तथा 'सिद्धान्त' का प्रकाशन ७१; गोहत्या-प्रतिरोध, यज्ञों का अनुष्ठान ७१; दैनिक चर्या ७२ ।

संस्कृत रचनाएँ ७२–७४

(१) वेदार्थ पारिजातः ७२; (२) वेदस्वरूपविमर्शः ७३; (३) वेदप्रामाण्य-मीमांसा ७३; (४) श्रीविद्यारत्नाकरः ७४; (५) भक्तिरसार्णवः ७४ ।

हिन्दी रचनाएँ ७४–७७;

(१) विचार पीयूष ७५; (२) रामायण मीमांसा ७५; (३) भक्तिसुधा ७६; ४. भगवत्तत्त्व ७७; इतर ग्रन्थ ७७ । करपात्रीजी का व्यक्तित्व ७६ ।

काशी में भागवत व्यासों की परम्परा ८०; पण्डित भागवतीजी—जीवनी ८१-८२ ।

६. श्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती ८३–८६

विशिष्टता ८३, जन्म ८३, शिक्षागुरु ८४, संन्यासी ८४; साधु-महात्माओं से सत्संग ८४, तीर्थाटन ८५; ट्रस्टों का स्थापना ८५; ग्रन्थ रचना ८६; भागवत के उत्कृष्ट प्रवचनकर्ता ८६; लीला तथा चरित का अन्तर ८७; कृष्णलीला का वैशिष्ट्य ८७; स्वामीजी की पद्यरचना ८८-८६ ।

अंग्रेजीवेत्ता संस्कृत विद्वान्

७. महामना पं० मदनमोहन मालवीय ९०–११८

व्यक्तित्व ९०; वंश तथा जन्म ९०; पितृभक्ति ९१; गुरुभक्ति ९२; अद्भुत वक्तृत्वशक्ति ९४; अध्यापन ९५; नैष्ठिक उपासक ९६; शिवभक्ति का परिचय ९६; दिनचर्या ९७ । महामना के साहित्यिक संस्मरण ९८-१०१ ।

जीवन की सिद्धान्तचतुष्टयी १०१–१०५

(क) मृदुता की तीक्ष्णता १०१; (ख) धर्म की कसौटी १०२, (ग) उद्योग की निरन्तर संवर्धना १०२; (घ) सात्त्विक कर्ता की दृष्टि १०२ । आस्तिक्य १०२, कर्तव्यनिष्ठा १०३, उत्साह १०४, आत्मविश्वास १०५, देशी भाषा १०६, महामना की संस्कृत-सेवा १०७ ।

संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना १०६–११८; साङ्गवेदाध्ययन की व्यवस्था १०६ प्राच्य विद्या तथा धर्मविज्ञान संकाय ११०; आयुर्वेद महा-विद्यालय ११०, संस्कृत महाविद्यालय १११ ।

पण्डित कालीप्रसाद मिश्र ११२–११३

पण्डित लक्ष्मीकान्त झा ११४-११६ । इतर विभागों के प्राध्यापक; उनकी रचनाएँ । श्री बदरीनाथ शुक्ल द्वारा रचित ग्रन्थ ११६–११८

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८. पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य ११९–१३३

महत्त्व ११६; गुरु गौरव गान—महामना की लेखनी से ११६-१२७; जन्म तथा अध्ययन १२०-१२२, अध्यापन १२२, छात्रप्रेम १२३; हिन्दू विश्वविद्यालय की सेवा १२४; पारिवारिक शोक १२४; पण्डित जी की आत्मानुभव-सम्बन्धी बातें १२५-१२७; संस्कृत का प्रचार कार्य १२७; धार्मिकता १२८; साधुओं का जीवन पर प्रभाव १२६; राष्ट्रीयता तथा सुधारप्रियता १२९; परिवार १३०; स्वभाव १३१ ।

बाबू प्रमददास मित्र

जीवन तथा ग्रन्थ-रचना १३१—१३३

९. पण्डित रामावतार शर्मा १३४—१५६

जन्म १४४, अद्भुत स्मरणशक्ति १३५, शब्दनिर्माण शक्ति १३७–३८, अलौकिकता १३८–१४०, राष्ट्रप्रेम १४०, सामाजिक विचार १४१;

शर्माजी का साहित्य १४१—१४४

(क) संस्कृत ग्रन्थ १४१,—१४३

(१) वाङ्मयार्णव १४१, (२) मारुतिशतक (३) मुद्गर दूत, (४) धीर-नैषध, (५) प्रियदर्शिप्रशस्तयः—१४२, (६) सदुक्तिकर्णामृतम्, (७) कल्पद्रुकोश, (८) परमार्थदर्शनम् (९) प्रकीर्णप्रबन्धाः १४३

(ख) हिन्दी ग्रन्थ १४३—१४४

(१) पाश्चात्य दर्शन १४३, (२) निबन्धावली १४४

(ग) अंग्रेजी ग्रन्थ १४४

शर्माजी का तत्त्वज्ञान १४४, शास्त्रार्थ प्रवीणता १४५–१४६; तर्ककुशलता १४६–१४७; शर्माजी का स्वभाव १४७ ।

अद्भुत कवित्व शक्ति १४८—१५५; हिन्दी तथा भोजपुरी प्रेम १४९, शर्माजी की काव्य प्रतिभा १५०; मारुतिशतक की आलोचना १५१, मुद्गरदूत की मीमांसा १५२; भारतगीतिका १५४ ।

पण्डित गोपाल शास्त्री दर्शनकेशरी १५५–१५६ जीवनचरित १५५; ग्रन्थ १५५; स्वभाव १५६ ।

१०. डाक्टर गङ्गानाथ झा १५७–१७६

महत्त्व १५७; पूर्वपुरुष १५८; जन्म १५८; शिक्षा १५९, क्वीन्स कालेज में अध्ययन १६०, नौकरी १६१; अध्यापन १६१, प्राचार्य : संस्कृत कालेज में १६२; कुलपतिः प्रयाग विश्वविद्यालय में १६२; सम्मान तथा उपाधियाँ १६३; ग्रन्थरचना १६४; गंगानाथ झा शोध संस्थान १६५; सरलता १६६; आस्तिकता १६६; सस्कृत के प्रचारक १६७; सिद्धान्त की दृढ़ता १६७; संस्मरण १६८-१७१ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्य—डा० बाबूराम सक्सेना १७२; डा० उमेश मिश्र १३३, जीवनी तथा ग्रन्थ रचना १७३—१७४; प्रो० क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय—जन्म तथा शिक्षा १७४; भाषण तथा ग्रन्थ १७५, वैदुष्य तथा स्वभाव १७६। विद्यानिवास मिश्र १७६।

११ पण्डित गोपीनाथ कविराज १७७ २०२

परिचय १७७, जन्म १७८, शिक्षा १७८—१८०, काशी में अध्ययन १८०, नौकरी १८१, परिवार १८२, सम्मान और उपाधियाँ १८३, सादा जीवन, उच्च परिवार १८४, दैनिक दिनचर्या १८५, शिष्यमण्डली १८६, गुण और स्वभाव १८६, ग्रन्थरचना १८७, हिन्दी १८७, अंग्रेजी-बंगला ग्रन्थ १८८, संस्मरण १८६, महापुरुषों से भेंट १६१, आध्यात्मिक जीवन १६२, परमहंस विशुद्धानन्द जी १६३, आनन्दमयी माँ १६५।

कविराज जी के उपदेश—अखण्ड महायोग १६६, नामजप की प्रक्रिया १९६, जपयोग १६७, प्रेमसाधना, योगद्वारा देहत्याग १६८। व्यक्तित्व का मूल्यांकन १९८–२०२

१२. आचार्य आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव २०३–२२३

व्यक्तित्व २०३, प्रथम परिचय २०३, सफल अध्यापक २०५, अध्यापन शैली २०५, पैनी साहित्य दृष्टि २०७। पूर्वपुरुष २०८, जन्म तथा शिक्षा २०६, अध्यापन २१०, परिवार २१० दार्शनिक व्युत्पत्ति २११, ध्रुवजी की वाग्मिता २१३, हिन्दूविश्वविद्यालय में ध्रुवजी २१४, सफल शासक २१५, सम्मान तथा उपाधि २१५, ग्रन्थरचना २१६, हिन्दी ग्रन्थ २१७, शिवपूजा-अग्निपूजा की परिणति २१८, ध्रुवजी का व्यक्तित्व २१६; शिष्यमण्डली—(१) डा० हरदत्त शर्मा २२०, (२) चिम्मनलाल गोस्वामी, (३) सत्यांशुमोहन मुखोपाध्याय २२०, (४) बलदेव उपाध्याय २२३।

१३. आत्मपरिचय २२४–२५०

जन्म २२४, पिताजी २२४, माताजी २२६, शिक्षा-दीक्षा २३७; डा० गणेशप्रसाद से पहली भेंट २२६; कवीन्द्र रवीन्द्र का प्रथम दर्शन २३०; पण्डित विष्णुदिगम्बर की वह संगीत सन्ध्या २३२; पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी से साक्षात्कार २३३; अध्यापकों की अध्यापन-शैली २३५; अध्यापन कार्य २३७।

उपाध्याय साहित्य—सम्पादित संस्कृत ग्रन्थ २३८; सम्पादित ग्रन्थों का परिचय २३६; हिन्दी ग्रन्थ सूची २४१; भारतीय दर्शन—रचना तथा वैशिष्ट्य २४२; बौद्धदर्शन मीमांसा का वैशिष्ट्य २४३; 'आचार्य शंकर' की रचना २४३; 'भागवत सम्प्रदाय' का महत्त्व २४४; 'भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा' की गरिमा २४५; साहित्य–इतिहास एवं आलोचना २४५, वैदिक ग्रन्थ २४५; संस्कृत साहित्य का इतिहास २४५; संस्कृत शास्त्रों का इतिहास २४६; आलोचना-ग्रन्थ २४६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवार परिचय २४७–२५०
परिशिष्ट १—वाराणसी माहात्म्य : पुराणों में २५१–२५३
परिशिष्ट २—अर्थवत्त्व परिष्कारः २५४–२५५
परिशिष्ट ३—परमयोगी तैलंग स्वामी २५६–२६१
परिशिष्ट ४—डा० गङ्गानाथ झा के ग्रन्थ २६२–२६८
परिशिष्ट ५—काशी-वासी यूनानी संस्कृतज्ञ गैलेनोस २६९–२७१
सहायक ग्रन्थसूची १–३
नामानुक्रमणी ५–१६
ग्रन्थानुक्रमणी १७–४०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

7 2595 1

चित्रसूची

प्रथम भाग

चित्र संख्या	नाम	संदर्भित पृष्ठ संख्या
१.	पं० राजाराम शास्त्री	१५८
२.	पं० बापूदेव शास्त्री	१६७
३.	पं० बालशास्त्री	१८१
४.	पं० बालशास्त्री का हस्तलेख	१९४
५.	पं० शिवकुमार शास्त्री	२२०
६.	पं० गङ्गाधर शास्त्री	२३७
७.	पं० गट्टूलाल शास्त्री	२३८
८.	पं० दामोदर शास्त्री	२६५
९.	पं० बच्चा झा	२७४
१०.	पं० तात्या शास्त्री	२७९
११.	पं० केशवशास्त्री मराठे	२८६
१२.	पं० सुधाकर द्विवेदी	२८९
१३.	पं० कैलासचन्द्र शिरोमणि	३०८
१४.	पं० राखालदास न्यायरत्न	३१६
१५.	पं० राममिश्र शास्त्री	३२१
१६.	पं० अम्बिकादत्त व्यास	३२८
१७.	पं० रमानाथ व्यास	३४०
१८.	पं० रामशास्त्री तैलंग	३४५
१९.	पं० नारायण शास्त्री खिस्ते	३५१
२०.	पं० उमापति द्विवेदी	३५७
२१.	पं० काशीनाथ द्विवेदी	३६६

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri.

२२.	पं० रामशास्त्री भागवताचार्य	३७४
२३.	पं० नित्यानन्द पर्वतीय	३८६
२४.	पं० वामाचरण भट्टाचार्य	४०२
२५.	पं० चण्डीप्रसाद शुक्ल	४०९
२६.	पं० लक्ष्मण शास्त्री तैलंग	४१६
२७	पं० बटुकनाथ शर्मा	४२२
२८.	पं० दामोदरलाल गोस्वामी	४३१
२९	पं० लक्ष्मण शास्त्री द्राविड़	४४३
३०.	पं० राजेश्वर शास्त्री द्राविड़	४४८
३१.	पं० पञ्चानन तर्करत्न	४५७
३२.	पं० देवनारायण त्रिपाठी (तिवारी जी)	४६७
३३.	पं० काशीनाथ शास्त्री	४७३
३४.	पं० सभापति उपाध्याय	४७७
३५.	पं० प्रमथनाथ तर्करत्न	४९२
३६.	पं० हरिहरकृपालु द्विवेदी	५००
३७.	पं० कमलाकान्त मिश्र	५१३
३८.	पं० जयदेव मिश्र	५१५
३९.	पं० हाराणचन्द्र भट्टाचार्य	५१८
४०.	पं० विधुशेखर शास्त्री	५२७
४१.	श्री क्षितिमोहन सेन	५३१
४२.	पं० बालकृष्ण मिश्र	५३३
४३.	पं० मधुसूदन ओझा	५४८
४४.	पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	५५९
४५.	पं० देवनायकाचार्य	५७२
४६.	पं० फणिभूषण तर्कवागीश	५८६
४७.	पं० अन्नदाचरण तर्कचूड़ामणि	५९२

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४८.	पं० चिन्नस्वामी शास्त्री	५९६
४९.	पं० सत्यनारायण शास्त्री	६०६
५०.	पं० त्र्यम्बक शास्त्री	६०८
५१.	पं० प्रभुदत्त अग्निहोत्री	६१७
५२.	पं० रामचन्द्र शास्त्री रटाटे	६२९
५३.	पं० कृष्णकृष्ण जानी	६३२
५४.	पं० जयदेवाश्रम स्वामी	६३४

द्वितीय भाग

५५.	काष्ठजिह्व स्वामी	३
५६.	काष्ठजिह्व स्वामी उपदेश देते हुए	१३
५७.	स्वामी विशुद्धानन्द् सरस्वती	२८
५८.	स्वामी दयानन्द सरस्वती का शास्त्रार्थ	३६
५९.	स्वामी भास्करानन्द सरस्वती	४९
६०.	स्वामी करपात्री जी	६०
६१.	स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती	६१
६२.	महामना पं० मदनमोहन मालवीय	६२
६३.	पं० आदित्यराम भट्टाचार्य	११९
६४.	पं० रामावतार शर्मा	१३४
६५.	पं० गोपाल शास्त्री दर्शनकेसरी	१५५
६६.	डा० गंगानाथ झा	१५७
६७.	पं० गोपीनाथ कविराज	१७७
६८.	पं० आनन्दशङ्कर बापूभाई ध्रुव	२०३

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६९.	पं० बलदेव उपाध्याय	२२३
७०.	पं० रामसुचित उपाध्याय	२२४
७१.	मातृश्री मूर्तिदेवी	२२६
७२.	पं० रामउदित उपाध्याय	२२८
७३.	श्री तैलङ्ग स्वामी तथा रामकृष्ण परमहंस	२५६
७४.	पं० विद्याधर गौड़	६२१

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय १

काशी का प्राचीन इतिहास एवं महत्त्व

भारतीय संस्कृति, साधना एवं साहित्य की केन्द्रस्थली के रूप में परम पावनी काशी नगरी का स्थान मूर्धन्य रहा है। विभिन्न युगों में हमें इसकी गौरव-गरिमा के दर्शन भारतीय वाङ्मय के माध्यम से होते हैं। बल्कि, कहा तो यहाँ तक जा सकता है कि इस नगरी से प्रस्फुटित ज्ञानरश्मियों ने समय-समय पर ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में समग्र भारतीय नभोमण्डल को प्रोद्भासित किया है। परा-अपरा विद्याओं के मर्मज्ञ मनीषियों की आश्रमस्थली के रूप में काशी की प्रसिद्धि की परम्परा अति प्राचीन काल से चली आ रही है। यही कारण है कि संस्कृत-भाषा, भारतीय संस्कृति एवं साधना के अनेकानेक उन्नायकों ने अपना सम्पूर्ण अथवा आंशिक जीवन-काल यहीं व्यतीत किया। अतएव यह निर्विवाद है कि संस्कृत-साहित्य के विकास में काशी का योगदान अन्यतम और महत्त्वपूर्ण रहा है।

काशी भारतवर्ष की प्राचीनतम एवं पवित्रतम नगरी है। विद्यानगरी होने के साथ ही धर्मनगरी होने का भी महनीय गौरव काशी को प्राप्त है। काशी की प्राचीनता का इतिहास वैदिक साहित्य में भी उपलब्ध होता है। वैदिक साहित्य के तीनों स्तरों में—संहिता, ब्राह्मण एवं उपनिषद् में—काशी का विवरण पाया जाता है। पैप्पलाद शाखानुसारी अथर्ववेद के एक मन्त्र (५।२२।१४) में 'काशि' के बहुवचनान्त रूप (काशयः) का प्रयोग मिलता है। 'काशयः' का अभिप्राय काशिजनपद के निवासियों से है। इस मन्त्र में 'तक्मा' (ज्वर) को संबोधित करते हुए कहा गया है कि वह कोशल, काशि और विदेह जनपदों में चला जाय। इससे स्पष्ट है कि ये तीनों ही उस काल में पार्श्ववर्ती जनपद थे।

ब्राह्मण साहित्य में गोपथ ब्राह्मण एवं शतपथ ब्राह्मण में तथा बृहदारण्यक उपनिषद् में काशिराज का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। शतपथ ब्राह्मण[1] ने एक गाथा उद्धृत की है जिसमें यह वर्णन मिलता है कि जिस प्रकार भरत ने सत्वत् लोगों के साथ व्यवहार किया था उसी प्रकार सत्राजित् के पुत्र शतानीक ने काशि लोगों के पवित्र यज्ञीय अश्व को पकड़कर रख लिया था। शतपथ ब्राह्मण[2] में ही धृतराष्ट्र विचित्रवीर्य को काश्य (काशी का रहने वाला) कहा गया है। गोपथ ब्राह्मण[3] में 'काशिकोशलाः' का समस्त रूप में प्रयोग किया गया है। बृहदारण्य-

---

१. श० प० ब्रा० १३।५।४।२१।
२. वही १४।३।१।२२
३. गो० ब्रा० (पूर्वभाग) २।६

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोपनिषत्[१] तथा कौषीतकी उपनिषद्[२] में वर्णन मिलता है कि बालाकि गार्ग्य बड़ा ही अहंकारी पुरुष था। वह काशी के राजा अजातशत्रु—(सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक राजा अजातशत्रु नहीं, जो मगध का राजा था)—के पास उन्हें ब्रह्मज्ञान की शिक्षा देने के लिए गया था।

सात्राजित शतानीक ने जो अश्वमेधीय अश्व बलात् पकड़ लिया था उसी के द्वारा उसने अपना अश्वमेध यज्ञ पूरा किया।[3] इस प्रकार चूँकि काशी के राजा का अश्वमेध यज्ञ पूर्णतया समाप्त नहीं हो सका, अतः इस हार के कारण काशी वासियों ने अग्नि कर्म अग्निहोत्र—करना ही छोड़ दिया।[४] इस उद्धरण में यह कहा गया है कि—"काशीवासी कहते हैं कि हमसे सोमपान छीन लिया गया है। इसलिए हम श्रौताग्नि धारण नहीं कर रहे हैं।" इस कथन से काशीवासियों की वैदिक धर्म के प्रति अपूर्व निष्ठा और धार्मिक कट्टरपन का परिचय मिलता है। इस उद्धरण में प्रयुक्त 'काश्य' शब्द काशी के राजा का सूचक है तथा 'काशयः' का प्रयोग काशी की जनता के लिए किया गया है।

उपनिषदों में, मिथिला के ही समान, काशी को भी अध्यात्मविद्या का केन्द्र स्वीकार किया गया है। बृहदारण्यक उपनिषद् (२।१।१); (३।८।२) में एवं कौषीतकी उपनिषद् (४।१) में यह उल्लेख मिलता है कि "काशी के राजा अजातशत्रु के पास गार्ग्य बालाकि नामक विद्वान् ब्रह्मज्ञानी - जो अभिमानी भी थे—आये और उनसे कहा कि आपको ब्रह्मज्ञान का उपदेश करूँगा। इस पर राजा ने उत्तर दिया कि काशी में आकर हमारे सामने ब्रह्मविद्या का उपदेश करने की जो बात आपने हमसे कही, उसी के पुरस्कार स्वरूप हम आपको एक सहस्र गायें देंगे क्योंकि आज कल लोग जनक, जनक कहते हुए मिथिला की ओर ही दौड़ते हैं।"[५]

राजा का मूल कथन इस प्रकार है :

"सः होवाचाजातशत्रुः सहस्रमेतस्यां वाचि दद्मो जनको जनक इति वै जनाः धावन्ति।"

---

१. बृ० र० उ० २।१।१

२. कौ० उ० ४।१।

३. तदेतद् गाथयाभिगीतम्।

शतानीकः समन्तासु, मेध्यं सात्राजितो हयम्।
आदत्त यज्ञं काशीनां, भरतः सत्वतामिव॥
शतपथ ब्राह्मण १३।५।४।२१

४. सात्राजित ईजे काश्यस्याश्वमादाय ततो हैतदर्वाक् काशयोऽग्नीन्नादधत। आत्त-सोमपीथाः स्म इति वदन्तः। —शतपथ ब्राह्मण १३।५।४।१६

५. बृहदारण्यक उपनिषद्, अध्याय २, ब्राह्मण १, वर्ग १ (२।१।१)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस कथन से पता चलता है कि उस युग में मिथिला का स्थान काशी से ऊँचा था। फिर भी अध्यात्मज्ञान की प्राप्ति के लिए, अपने ज्ञान की पिपासा की तृप्ति के लिए लोग काशी आया करते थे।

महर्षि पाणिनि ने काशी शब्द को गण के आदि में दिखलाया है।[१] अष्टाध्यायी में 'काशीयः' रूप की भी सिद्धि बताई गई है।[२] यह बात ध्यान देने योग्य है कि ऋग्वेद[३] की सर्वानुक्रमणी में ऋषि प्रतर्दन को काशिराज कहा गया है। हिरण्य-केशि गृह्यसूत्र[४] ने तर्पण में काशीश्वर को विष्णु एवं रुद्रस्कन्द के साथ उल्लिखित किया है। ऋग्वेद में राजा दिवोदास का वर्णन अनेक स्थानों में हुआ है। ऋग्वेद[५] में यह विवरण उपलब्ध होता है कि इन्द्र ने दिवोदास की ९० (नब्बे) नगरियों को जीत लिया था। इस वेद से यह भी पता चलता है कि इन्द्र ने दिवोदास को १०० नगर भी प्रदान किया था।[६] पतञ्जलि के महाभाष्य[७] में 'काशि-कोसलीयाः' उदाहरण के रूप में दिया गया है। इस ग्रन्थ में मथुरा और काशी के समान लम्बाई-चौड़ाई वाले वस्त्र के मूल्य में अन्तर बतलाया गया है।[८] इससे प्रकट होता है कि आधुनिक काल के समान ही ई० पू० दूसरी शताब्दी में भी काशी अपने बारीक वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध थी। उपर्युक्त उल्लेखों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि शतपथ ब्राह्मण के निर्माण काल के बहुत पहिले से ही काशी एक देश या जनपद का नाम था और वही नाम इसी अर्थ में पतञ्जलि के समय (ई० पू० द्वितीय शताब्दी) तक चलता आया था। सुप्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान (३९९ ई०—४१३ ई०) काशी राज्य के वाराणसी नगर में आया था। इससे प्रकट होता है कि लगभग चौथी शताब्दी में भी काशी एक जनपद था और वाराणसी उसकी राजधानी थी। किन्तु महाभाष्य के निर्देशों से पता चलता है कि काशी नगर एवं देश (जनपद) दोनों का नाम था।

वाराणसी की स्थापना

महाभारत के अनुशासन पर्व में राजा दिवोदास के पितामह हर्यश्व 'काशि' लोगों के राजा कहे गये हैं। हर्यश्व का पुत्र सुदेव था जो 'काशि' का राजा बना और वह अन्त में अपने पिता की ही भाँति मारा गया था। इसके उपरान्त उसके पुत्र—अर्थात् हर्यश्व के पौत्र—दिवोदास ने काशी के राज्य के सिंहासन को सुशोभित किया। इसी

---

१. काश्यादिभ्यष्ठनिठौ। अष्टाध्यायी ४।२।११६
२. वही ४।२।११३
३. ऋग्वेद १०।१७९।२
४. हि० के० गृ० सू० २।८।१९।६
५. ऋग्वेद १।१३०।७
६. ऋग्वेद ४।३०।२०
७. अष्टाध्यायी ४।१।५४ के वार्तिक ४ पर महाभाष्य देखिए।
८. महाभाष्य, जिल्द २, पृ० ४१३ (कीलहार्न का संस्करण)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा ने गोमती के उत्तरी तट पर सभी वर्णों से युक्त वाराणसी नगर की स्थापना की। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में काशी एक राज्य का नाम था और प्राचीन विश्वास के अनुसार राजा दिवोदास ही वाराणसी नगरी का संस्थापक या प्रतिष्ठापक था।

राजा दिवोदास का पुत्र प्रतर्दन हुआ। इसने दुर्दम से काशी के अपहृत तथा नष्टभ्रष्ट राज्य को पुनः प्राप्त कर लिया। दिवोदास के पौत्र तथा प्रतर्दन के पुत्र अलर्क ने काशी के राज्य को संगठित कर वाराणसी को पुनः बसाया। हरिवंशपुराण (१ अध्याय २९ से ज्ञात होता है कि वाराणसी का कई बार नाश हुआ और इस पर अनेक कुलों का राज्य स्थापित हुआ। वायु पुराण (अध्याय ९८) से भी इसका समर्थन होता है।[1]

काशिराज दिवोदास

काशिराज की वंशपरम्परा में आयुर्वेद के रक्षण और प्रचार-प्रसार का कार्य आरम्भ से ही होता आता था। दिवोदास ने उसे एक सुव्यवस्थित एव विशिष्ट रूप दिया। सम्भवतः ये एक आयुर्वेदीय विद्यापीठ का संचालन करते थे और स्वयं ही शल्यप्रधान आयुर्वेद की शिक्षा देते थे। उसी विद्यापीठ के आश्रम में बैठ कर दिवोदास ने आयुर्वेद के विशिष्ट विद्वान् बारह शिष्यों को शल्य चिकित्सा का शिक्षण दिया जिनमें 'सुश्रुत संहिता' के निर्माता सुश्रुत सर्वश्रेष्ठ शिष्य थे। इसका उल्लेख उन्होंने स्वयं किया है—आश्रमस्थं काशिराजं दिवोदासं धन्वन्तरिं (सुश्रुत संहिता १।५)। इस उल्लेख में दिवोदास 'धन्वन्तरि' कहे गये हैं। 'धन्वन्तरि' समुद्रमन्थन के समय समुद्र से उत्पन्न चौदह रत्नों में से अन्यतम थे जो अपने हाथ में अमृतकलश लेकर आविर्भूत हुए थे तथा जो भगवान् विष्णु के अंशावतार माने जाते थे। वे आयुर्वेद के आद्य प्रवर्तक आचार्य थे। आयुर्वेद की वैदुषी से मण्डित होने के कारण ही सम्भवतः 'दिवोदास' को 'धन्वन्तरि' नाम उपाधि के रूप में प्रदान किया गया था। फलतः आद्य प्रवर्तक से भिन्नता दिखलाने के लिए दिवोदास को धन्वन्तरि द्वितीय कहना अधिक उचित तथा स्पष्ट होगा।

काशिराज दिवोदास वैदिक संहिता, ब्राह्मण एवं उपनिषद् में उल्लिखित किये गये हैं। काठक संहिता में महर्षि आरुणि के समकालीन भीमसेन के पुत्र दिवोदास का उल्लेख किया गया है। कौषीतकि ब्राह्मण तथा कौषीतकि उपनिषद् में दैवोदासि प्रतर्दन का उल्लेख नामतः मिलता है। इससे स्पष्ट है कि दिवोदास भीमसेन के पुत्र तथा प्रतर्दन के पिता थे। यह वैदिक निर्देश इनके व्यक्तित्व की ऐतिहासिकता सिद्ध करने में उपादेय माना जायेगा। इस वंश परम्परा का उल्लेख हरिवंशपुराण (पर्व १, अध्याय २९), वायुपुराण (उत्तरकाण्ड, अध्याय ३०) एवं ब्रह्माण्ड पुराण

---

१. काणे : धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग ३, पृ० १३३९–४०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(उपोद्घात पाद, अध्याय ६७) में मिलता है जिससे वैदिक एवं पौराणिक परम्परा की एकता स्वयं सिद्ध होती है। दिवोदास ने ही इन्द्र की आज्ञा से 'वाराणसी' नगरी को बसाया था अर्थात् ये ही इस नगरी के संस्थापक थे :

दिवोदासस्तु विज्ञाय वीर्यं तेषां यतात्मनाम्।
वाराणसीं महातेजा निर्ममे शक्रशासनात्॥

—म० भा०, अनुशासन ३०।१९

दिवोदास के आविर्भावकाल का निर्णय अनुमानतः किया जा सकता है। पाणिनि की अष्टाध्यायी (सूत्र ५।१।६२ तथा ४।४।१२४) में तथा यास्क के निरुक्त (१–९) में निर्दिष्ट होने के कारण कौषीतकी ब्राह्मण का काल अष्टमशती विक्रमी पूर्व है। शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने इस ब्राह्मण का समय ३०००–१५०० वि० पू० माना है। कौषीतकि ब्राह्मण में निर्दिष्ट दिवोदास का समय इससे प्राचीनतर होना ही चाहिए। दिवोदास धन्वन्तरि के द्वारा प्रचारित होने के कारण शल्यप्रधान आयुर्वेद 'धान्वन्तरीय सम्प्रदाय' के नाम से तथा उसके उपासक वैद्य 'धान्वन्तरीय' (सर्जन) के नाम से प्रसिद्ध हुए। चरकसंहिता के अनेक स्थलों पर धन्वन्तरि का मत उद्धृत किया गया है तथा धान्वन्तरीयों के विशिष्ट अधिकार को मान्यता दी गई है। इसके विपरीत सुश्रुत संहिता में आत्रेय अग्निवेश का नाम कहीं नहीं मिलता। फलतः दिवोदास आत्रेय अग्निवेश से, जिनका समय लगभग १००० वर्ष ई० पूर्व माना जाता है,—कुछ पूर्ववर्ती निश्चयेन सिद्ध होते हैं। अतएव काशिराज दिवोदास धन्वन्तरि द्वितीय का समय १२०० वर्ष ईस्वी पूर्व मानना सर्वथा उचित है :[1]

शल्यचिकित्सा के संस्थापक होने के कारण काशी का नाम आयुर्वेद के इतिहास में सुवर्णाक्षरों में अंकित किया जाता है। तथ्य यह है कि इतने सुदूर प्राचीनकाल में काशी ने अध्यात्म विद्या की पीठस्थली एवं शल्यचिकित्सा की उद्गम-स्थली होने के नाते अखिल भारतीय ख्याति का अर्जन किया था, यह अपने आप में एक नितान्त महनीय तथा समादरणीय घटना है।

रामायण में काशी का उल्लेख

वाल्मीकीय रामायण में काशी के सम्बन्ध में कतिपय उल्लेख उपलब्ध होते हैं। दशरथ ने अपने अश्वमेध यज्ञ में काशिराज को भी आमन्त्रित किया था।[2] अयोध्या-काण्ड में यह वर्णन मिलता है कि कैकेयी के क्रोध शान्त करने के लिए राजा दशरथ ने इस देश (काशी राज्य) में उत्पन्न होनेवाली वस्तुएँ भी प्रस्तुत करने के

---

१. द्रष्टव्य—आचार्य प्रियव्रत शर्मा : आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास, पृ० ५०-५२ (प्रकाशक : चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी १९७५ ई०।

२. वाल्मीकीय रामायण, १।१३।२३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए कहा था।[1] किष्किन्धा काण्ड से पता चलता है कि सुग्रीव ने इस देश में सीता को खोजने के लिए विनत को भेजा था। वाल्मीकि ने अन्य घटना का उल्लेख इस प्रकार किया है :

"तद् भवानद्य काशेय ! पुरीं वाराणसीं व्रज।
रमणीयां त्वया गुप्तां, सुप्रकारां सुतोरणाम् ॥
राघवेण कृतानुज्ञः, काशेयो ह्यकुतोभयः।
वाराणसीं ययौ तूर्णं राघवेण विसर्जितः ॥[2]

महाभारत में काशी का वर्णन

व्यास की शतसाहस्री संहिता में काशी का उल्लेख दो प्रसंगों में हुआ है - (१) तीर्थ के रूप में, (२) काशिराज का महाभारत के युद्ध में पाण्डवों की ओर से लड़ने के प्रसंग में।

यह विशद रूप से उल्लेखनीय है कि काशी का तीर्थरूप में वर्णन सबसे पहिले महाभारत में ही हुआ है। वनपर्व में पाण्डवों के अज्ञातवास के अवसर पर उनके काशी आने का उल्लेख पाया जाता है। वनपर्व में लिखा है[3] :

"अविमुक्तं समासाद्य, तीर्थसेवी कुरूद्वह।
दर्शनात् देवदेवस्य मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥
× × ×
ततो वाराणसीं गत्वा देवमर्च्य वृषध्वजम्।
कपिला—ह्रदमुपस्पृश्य, राजसूयफलं लभेत् ॥[4]

इस निर्देश से पता चलता है कि उस समय काशी में 'कपिला ह्रद' नामक तीर्थ बड़ा प्रसिद्ध था। आजकल यह तीर्थ 'कपिलधारा' के नाम से विख्यात है और काशी नगरी के भीतर न होकर पंचक्रोशी की प्रदक्षिणा के मार्ग में अवस्थित है।

महाभारत के युद्ध में काशी के राजा का उल्लेख 'काशिराज' अथवा 'काश्य' शब्दों से किया गया है। परन्तु काशी का कौन-सा राजा महाभारत-युद्ध में लड़ने गया था इसका नाम से उल्लेख नहीं पाया जाता। महाभारत में जिस काशिराज के नाम का पता है उसके काम का पता नहीं चलता और जिसके काम का पता है उसके नाम का ही पता नहीं चलता। उदाहरण के लिए युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में काशी

---

१. वा० रा०, (४।१०।३७-३८)।
२. वही, ७।३८।१७, १९।
३. महाभारत, वनपर्व ८४।७८।
४. वही, ८४।७९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के किसी राजा ने भाग लिया था परन्तु उसका नाम ज्ञात नहीं है। इसी प्रकार जिस काशिराज की तीन कन्याओं—अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका का भीष्म ने अपहरण किया था उसके नाम का उल्लेख महाभारत में नहीं पाया जाता।[1]

बौद्ध ग्रन्थों में काशी

काशी का उल्लेख बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में भी उपलब्ध होता है। प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों से पता चलता है कि वाराणसी बुद्ध-काल (कम से कम पाँचवीं ई० पू० शताब्दी) में चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत एवं कौशाम्बी जैसे महान् एवं प्रसिद्ध नगरों में परिगणित होती थी।[2] गौतम बुद्ध ने गया में सम्बोधि प्राप्त करने के उपरान्त वाराणसी के पास मृगदाव अर्थात् सारनाथ में आकर 'धर्मचक्र-प्रवर्तन' किया था। इससे प्रकट होता है कि उस समय तक यह नगर (वाराणसी) आर्यों की संस्कृति के क्रियाकलापों का प्रमुख केन्द्र बन चुका था। कतिपय जातक कथाओं में वाराणसी के राजा ब्रह्मदत्त का उल्लेख पाया जाता है। कुछ जातक कथाओं का तो प्रारम्भ ही "अतीते वाराणसियं ब्रह्मदत्ते राजं कारेन्ते" इस पंक्ति से होता है। जातक की कथाओं का समय ई० पू० तृतीय शताब्दी है। इस प्रकार ईसा के जन्म के कई शताब्दियों पूर्व ही वाराणसी ब्रह्मदत्त राजाओं की राजधानी बन चुकी थी। मत्स्य पुराण ने एक ही प्रकार की उपाधियों वाले सैकड़ों राजाओं का उल्लेख किया है और १०० (एक सौ) ब्रह्मदत्त और १०० काशि और १०० कुश राजाओं का वर्णन किया है :[3]

बुद्धकाल में काशी की महिमा को जानने के लिए त्रिपिटक तथा जातकों का बड़ा महत्त्व है। इनके अध्ययन से काशी के राजनैतिक महत्त्व का अनुमान सहज में ही लगाया जा सकता है। बुद्ध के समय में यह देश षोडश महाजनपदों में विभक्त था। इन महाजनपदों में कोशल और मगध के समान काशी भी प्रसिद्ध था। सच तो यह है कि काशी जनपद इन सभी जनपदों से श्रेष्ठ, महत्त्वपूर्ण तथा विख्यात था। काशी के राजा ने कोशल तथा विदेह जनपदों को अपने साम्राज्य के अन्तर्गत कर लिया था। इस प्रकार काशी का एकच्छत्र साम्राज्य था। काशिराज सार्वभौम राजा माना जाता था।

काशी के राजा मनोज ने कोशल, मगध तथा अंग के राजाओं को पराजित किया

---

१. म० भा०, आदिपर्व १०२।५६, ६४-६५।

२. महापरिनिब्बानसुत्त तथा महासुदस्सनसुत्त का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद। सेक्रेड बुक आफ दि ईस्ट सीरीज, जिल्द ११, पृ० ९९ तथा २४७ (आक्सफोर्ड)।

३. मत्स्य पुराण २७३।७२–७३।

शतमेकं धार्तराष्ट्रा, ह्यशीति र्जनमेजयाः।
शतं वै ब्रह्मदत्तानां, वीराणां कुरवः शतम्॥
ततः शतं च पाञ्चालाः शतं काशिकुशादयः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। काशी के राजाओं में ब्रह्मदत्त का प्रभुत्व तथा महत्त्व बहुत अधिक था। उसने महती, विशाल सेना को लेकर कोशल पर आक्रमण किया था और उसे अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया था। पाली में प्रायः सब जातकों का आरम्भ इन शब्दों से होता है—

'अतीते वाराणसियं ब्रह्मदत्ते रज्जं कारेन्ते' जिससे सूचित होता है कि वाराणसी के शासकों की 'ब्रह्मदत्त' उपाधि थी। इस तथ्य की पुष्टि पुराणों (मत्स्य तथा वायु) एवं महाभारत से भी होती है। महाभारत के सभापर्व (अध्याय ८।२३) में यह उल्लेख मिलता है :

धृतराष्ट्राश्चैकशतमशीतिर्जनमेजयाः।
शतं च ब्रह्मदत्तानां वीरिणामीरिणां शतम्॥

इस श्लोक की टीका में नीलकण्ठ ने स्पष्ट शब्दों में सेनापत्य आदि के समान ही धृतराष्ट्रादि नामों को अधिकारीवाचक माना है, व्यक्तिवाचक नहीं।

भोजाजानीय (नं० २३) जातक में यह उल्लेख मिलता है कि काशी का राजा बड़ा ही समृद्धिशाली था। सभी राजा उससे द्वेष करते थे। अतः उसे परास्त करने के लिये सात राजाओं ने एक संघ (कानफेडेरेसी) का निर्माण किया और सातों ने एक साथ मिल कर काशी के राजा पर चढ़ाई कर दी। परन्तु फिर भी वे लोग इसे परास्त नहीं कर सके। वे राजा सभ्यता तथा संस्कृति में काशी की तुलना नहीं कर सकते थे। अतः काशी पर इनकी गिद्ध दृष्टि सदा लगी रहती थी। परन्तु युद्ध में विजयश्री ने सदा काशी के राजा को ही वरण किया।

इस घटना का उल्लेख डा० रायचौधरी ने बड़े ही सुन्दर शब्दों में किया है[1] :—

जैन ग्रंथों में काशी

जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ—जो अन्तिम तीर्थंकर महावीर से २५० वर्ष पहिले लगभग ७७७ ई० पू० में पैदा हुए थे—उन्होंने काशी में ही चैत्र कृष्ण चतुर्थी को जन्म ग्रहण किया था। इनके पिता काशी के राजा थे और उनका नाम अश्वसेन था। काशी के ही समीप इसिपत्तन (वर्तमान सारनाथ) भी जैनधर्मियों के लिए एक बहुत बड़ा तीर्थ स्थान है।

---

1. We learn from Bhoja janiya Jatak that "all the kings round coveted the kingdom of Benares. We are told that on one Occassion seven kings encompassed Benares. Benares in this respect resembled ancient Babylon and mediaeval Rome, being the coveted prize of its more warlike but less civilized neighbours."

Dr. Roy Chaudhury : Political History of Ancient India (University of Calcutta 1953) sixth edition, p. 98.

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारनाथ जैन आगम ग्रन्थों में सिंहपुर के नाम से प्रख्यात है। यहीं पर जैन धर्म के ११ वें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ ने जन्म ग्रहण किया था और अपने अहिंसा धर्म का प्रचुर प्रचार भारतवर्ष में किया था।

पार्श्वनाथ की जन्मभूमि के स्थान पर निर्मित मंदिर आज भी भेलूपुरा मुहल्ले में महाराजा विजयानगरम् के महल के पास स्थित है। जब तीर्थङ्कर महावीर की मृत्यु हुई तब काशी और कोशल के अठारह संयुक्त राजाओं ने लिच्छवियों और मल्लकों के अन्य राजाओं के साथ अमामासी के दिन प्रकाश किया था।[1]

महाकवि अश्वघोष ने अपने 'बुद्धचरित' में वाराणसी और काशी को एक ही माना है।[2] बुद्धचरित में एक अन्य स्थान पर लिखा है कि[3] बुद्ध वणारा के पास एक वृक्ष की छाया में पहुँचे। संभवतः अश्वघोष के द्वारा वर्णित यह वणारा आधुनिक वरणा नदी है। इससे प्रकट होता है कि कम से कम पहिली शताब्दी में वाराणसी और काशी समानार्थक थीं।

बुद्ध के द्वारा काशी के समीप ही 'इसिपत्तन' में 'धर्मचक्र प्रवर्तन' से सिद्ध होता है कि बुद्ध के जन्म (५६३ ई० पू०) से पहिले ही काशी धर्म की नगरी एवं अध्यात्म का केन्द्र बन चुकी थी।

बौद्ध काल के पश्चात् भारत में मौर्य वंश का साम्राज स्थापित हुआ। मौर्यवंश के सबसे महान् सम्राट् अशोक ने काशी के पास सारनाथ में धमेक स्तूप की स्थापना की तथा एक शिलालेख को उत्कीर्ण कराया। उस काल में इसिपत्तन में बौद्धों का बहुत बड़ा विहार भी था जिसके खण्डहर आज भी उपलब्ध होते हैं।

गुप्त युग में भी काशी का महत्त्व कुछ कम नहीं था। इन राजाओं ने संस्कृत भाषा को राजभाषा घोषित कर अपने समस्त शिलालेखों तथा ताम्रलेखों को संस्कृत में ही उत्कीर्ण कराया है। सम्राट् स्कन्दगुप्त ने हूणों को परास्त करने के लिए काशी की यात्रा की थी। गाजीपुर जिले में भितरी नामक स्थान पर उसका एक शिलालेख प्राप्त हुआ है जिससे पता चलता है कि हूणों के साथ उसका जो भयंकर युद्ध हुआ था उससे पृथ्वी काँपने लगी थी। उसने तीन दिनों तक जमीन पर सोकर अपनी रात काटी थी और इस प्रकार हूणों को प्रचण्ड रूप से परास्त किया था।[4]

---

१. सैक्रेड बुक आफ दि ईस्ट, जिल्द २२, पृ० २६६ और २७१।

२. बुद्ध चरित १५।१०१।

वाराणसीं प्रविश्याथ भासा सम्भासयञ्जिनः।
चकार काशिदेशीयान् कौतुकाक्रान्तचेतसः॥

३. सै० बु० दि०, जिल्द ४९, भाग १, पृ० १६९।

४. डा० वासुदेव उपाध्याय—गुप्त अभिलेख (हिन्दी अकादेमी, पटना, बिहार) सन् १९७५ ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूणैर्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्यां धरा कम्पिता।

× × ×

क्षितितलशयनीये येन नीता त्रियामा।

मध्ययुग की १२ वीं शताब्दी में गाहड़वाल राजाओं ने कान्यकुब्ज के अतिरिक्त काशी को भी अपनी राजधानी बनाया था। आज भी काशी में राजघाट के पास इन राजाओं के दुर्ग के खण्डहर उपस्थित हैं। इन राजाओं में जयचन्द्र तथा उसके पिता विजयचन्द्र प्रसिद्ध थे जिन्होंने काशी को धार्मिक महत्त्व के साथ ही राजनैतिक महत्त्व भी प्रदान किया।

मुसलमानी काल में विभिन्न मुस्लिम शासकों ने काशी पर पाँच बार आक्रमण किया और इसके प्रधान मंदिरों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। फिर भी कालान्तर में इन मंदिरों का जीर्णोद्धार हो गया और काशी की जनता पर इन आक्रमणों का कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ सका। काशीवासियों का धार्मिक जीवन अक्षुण्ण गतिमान रहा और काशी धर्म और शिक्षा की केन्द्र स्थली पूर्ववत् बनी रही।

बंगाल के नवद्वीप में १५ वीं शती में जिस न्याय विद्यापीठ की स्थापना हुई थी उसमें भी काशी का महत्त्वपूर्ण योगदान माना जा सकता है। यह ऐतिहासिक घटना इस प्रकार घटी थी।[1] नवद्वीप के सुप्रसिद्ध न्याय के विद्वान् वासुदेव सार्वभौम (लगभग १४५०—१५२५ ई०) नव्य न्याय में प्रौढ़ि प्राप्त करने के निमित्त मिथिला में पक्षधर मिश्र के विद्यापीठ में अध्ययन के लिए उपस्थित हुए थे। वहाँ रहकर उन्होंने न्यायशास्त्र का विधिवत् अध्ययन किया और नव्य न्याय में प्रकृष्ट व्युत्पत्ति प्राप्त की। उस युग के मैथिल नैयायिक न्यायशास्त्र के ग्रन्थों को मूल्यवान् धरोहर के रूप में रखते थे और वे इन हस्तलिखित ग्रन्थों को अपने देश (मिथिला) के बाहर किसी भी मूल्य पर किसी को ले जाने नहीं देते थे। सार्वभौम के सामने भी यही समस्या उत्पन्न हुई। परन्तु उन्होंने अपनी चतुराई से इस समस्या का समाधान अनायास ही कर लिया। उन्होंने उदयनाचार्य की **न्याय-कुसुमाञ्जलि** तथा गंगेश उपाध्याय के **तत्त्वचिन्तामणि**—इन दोनों ग्रन्थों को पूर्णतया कंठाग्र कर लिया इतनी सावधानी से, कि कोई भी अंश छूटने नहीं पाया। इस प्रकार न्याय-रूपी इस निधि को अपने कण्ठ में स्थापित करके वे नवद्वीप लौटे परन्तु अपने ऊपर चोरी के सम्भावित सन्देह के निवारण के लिए वे सीधे बंगाल न जाकर काशी चले आये। यहाँ आकर उन्होंने दो महत्त्वपूर्ण कार्य किये। पहिला काम तो यह था कि उन्होंने अपनी विलक्षण मेधा शक्ति के द्वारा इन अधीत दोनों ग्रन्थों को अक्षरशः लिपिबद्ध कर लिया। दूसरा काम था वेदान्त का अध्ययन। यहाँ

---

१. द्रष्टव्य—डा० सतीशचन्द्र विद्याभूषण : हिस्ट्री आफ इण्डियन लाजिक, (कलकत्ता वि० विद्या० १९२१) पृ० ४६१–६२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के संन्यासियों से इन्होंने वेदान्त की शिक्षा प्राप्त की। वंग देश में लौटकर, काशी में लिपिबद्ध किये गये हस्तलेखों के आधार पर ही इन्होंने अपने शिष्यों का अध्यापन करना प्रारम्भ किया। इस प्रकार काशी में लिखे गये ये हस्तलिखित ग्रन्थ ही नवद्वीप में नव्य न्याय के अध्ययन और अध्यापन की आधारशिला बने।

राजपूत काल में राजपूत राजाओं तथा मराठे राजाओं ने इस नगरी को बड़ा महत्त्व प्रदान किया। सुप्रसिद्ध महारानी अहिल्याबाई ने विश्वनाथ जी के भग्न मंदिर का पुनर्निर्माण किया। ग्वालियर के सिंधिया और नागपुर के भोंसला राजाओं ने काशी में गंगा के तट पर अनेक मंदिरों तथा घाटों का निर्माण किया जो आज भी उनकी कीर्ति को उच्च स्वर से घोषित कर रहे हैं।

अंग्रेजी राज्य में भी काशी का कुछ कम महत्त्व नहीं था। लार्ड कार्नवालिस के समय में इस नगर में गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज की स्थापना हुई जो आधुनिक काल में संस्कृत की सबसे पुरानी शिक्षा संस्था है। आज काशी धर्म का ही केन्द्र नहीं है बल्कि विद्या की भी स्थली है। आज यहाँ पर तीन-तीन विश्वविद्यालय, अनेक डिग्री कालेज, सैकड़ों संस्कृत विद्यालय विद्यमान हैं जो संस्कृत विद्या का प्रचार-प्रसार अबाध गति से कर रहे हैं।

काशी का महत्त्व

वेदों, ब्राह्मणों, उपनिषदों, पुराणों तथा विभिन्न धार्मिक स्तोत्र-ग्रन्थों में काशी की महिमा का जितना वर्णन किया गया है, संभवतः संसार के किसी भी नगर की इतनी महिमा नहीं गायी गयी होगी। म० म० डा० काणे ने तो ठीक ही लिखा है कि काशी का महत्त्व ईसाइयों के रोम, मूसाइयों के यारुसलेम और मुसलमानों के मक्का से भी कहीं अधिक है।[1] भगिनी निवेदिता (मिस मारग्रेट नोबेल) ने काशी की महिमा का प्रतिपादन करते हुए यहाँ तक लिखा है[2]-"यह हिन्दुओं के लिए कैण्टरबरी ही नहीं, बल्कि आक्सफोर्ड भी है। रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के अनुयायियों के लिए पोप-पुरी (वेटिकन) का जो महत्त्व है, काशी की गरिमा उससे भी कहीं सहस्रगुनी अधिक है।" इस प्रकार काशी संसार की नगरियों में अत्यन्त पवित्र, प्रसिद्ध तथा मुक्तिदायिनी मानी जाती है।

पुराणों में तो वाराणसी की महिमा प्रचुर परिमाण में पायी ही जाती है। प्रायः प्रत्येक पुराण में काशी की प्रशंसा मे अनेक श्लोक उपलब्ध होते हैं। मत्स्य पुराण में लिखा है कि[3] "वाराणसी मेरा सर्वोत्तम तीर्थस्थल है। सभी प्राणियों के लिए यह मोक्ष का कारण है। यह तीर्थराज प्रयाग से भी महान् है। ज्योंही कोई व्यक्ति इस

---

१. काणे : हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, भाग ४।
२. सिस्टर निवेदिता : फुटफाल्स आफ इण्डियन हिस्ट्री।
३. मत्स्यपुराण, १८०।४७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अविमुक्त क्षेत्र—काशी—में प्रवेश करता है, त्योंही उसके सहस्रों अतीत जीवनों में किये गये पाप नष्ट हो जाते हैं। सहस्रों जन्मों की योगसाधना के उपरान्त मोक्ष-प्राप्ति होती है, परन्तु काशी में मृत्यु होने से इसी जीवन में मनुष्य को परम मोक्ष प्राप्त हो जाता है।[१] पद्मपुराण के अनुसार यहाँ पापी, शठ एवं अधार्मिक व्यक्ति भी पापमुक्त हो जाता है।[२] भोगी एवं कामचारिणी स्त्रियाँ भी यहाँ पर मोक्ष प्राप्त कर लेती हैं[३] इस विश्व में बिना योग के मानव मोक्ष नहीं पा सकता किन्तु अविमुक्त क्षेत्र में निवास करने से योग और मोक्ष दोनों ही की प्राप्ति होती है।[४] दुष्ट प्रकृति के पुरुषों के द्वारा जान या अनजान में जो भी दुष्ट कर्म किये जाते हैं वे सब यहाँ आते ही भस्म हो जाते हैं।[५] काशी में निवास करने वाला म्लेच्छ भी भाग्यशाली है, परन्तु काशी से बाहर रहने वाला, चाहे वह यज्ञ करने वाला दीक्षित ब्राह्मण ही क्यों न हो, मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। इन विवरणों से काशी की महती महिमा का कुछ अनुमान किया जा सकता है।

पुराणों में काशी की महिमा

अनेक पुराणों में काशी अथवा वाराणसी की विशद प्रस्तुति गायी गयी है।

स्कन्द पुराण के केवल काशी खण्ड में काशी के तीर्थों और उपतीर्थों का वर्णन १५,००० (लगभग पन्द्रह हजार) श्लोकों में किया गया है। यदि विभिन्न पुराणों में काशी के सम्बन्ध में दिये गये श्लोकों का केवल संग्रह मात्र कर दिया जाय तो एक बृहत् ग्रन्थ का निर्माण हो सकता है। परन्तु यहाँ स्थानाभाव से विभिन्न पुराणों के नाम, काशी से सम्बन्ध रखने वाले सन्दर्भ-स्थल और प्रत्येक पुराण में काशी सम्बन्धी श्लोकों की समस्त संख्या पाठकों की सुविधा के लिए प्रस्तुत की जाती है[६] :—

पुराण का नाम	सन्दर्भ स्थल	श्लोक संख्या
(१) मत्स्य पुराण	(अध्याय १८० से १८५ तक)	४११
(२) कूर्म पुराण	(पूर्वार्ध ३१ अ० से ३५ अ०)	२२६
(३ लिंग पुराण	(पूर्वार्ध, अध्याय ९२)	१९०
(४) पद्मपुराण	(आदि खण्ड, अ० ३३ से ३७ तक)	१७०
(५) अग्नि पुराण	( )	११२
(६) स्कन्द पुराण	(काशी खण्ड)	१५,०००
(७, नारदीय पुराण	(उत्तर अध्याय ४८ से ५१ तक)	
		१६,१०९

१. वही।
२. पद्मपुराण १।३३।३८
३. मत्स्यपुराण १८४।३६
४. वही १८५।१५–१६
५. स्कन्दपुराण (का० ख०) ८५।१५
६. काणे : ध० शा० इ०, भा० ३, पृष्ठ १३४२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि नारदीय पुराण के श्लोकों की भी संख्या इसमें जोड़ दी जाय तो पुराणों में काशी का वर्णन कम से कम लगभग १६,५०० श्लोकों में उपलब्ध होता है।

स्कन्द पुराण का तो एक पृथक् खण्ड ही **काशी-खण्ड** के नाम से प्रसिद्ध है। इस खण्ड में काशी के समस्त तीर्थों, मन्दिरों तथा देवी और देवताओं के आयतनों का भौगोलिक परिचय दिया गया है। इस पुराण में काशी को विष्णु-पीठ, शिव-पीठ, देवी-पीठ, आदित्य-पीठ, विनायक-पीठ, षडानन-पीठ, भैरव-पीठ आदि में विभक्त कर उन पीठों से सम्बन्धित तीर्थों, देवताओं तथा देवायतनों का साङ्गोपाङ्ग विवरण प्रस्तुत किया गया है। काशी के धार्मिक स्वरूप को जानने के लिए यह काशीखण्ड दर्पण के समान है।

काशी के महत्त्व के विषय में पुराणों ने यह डिण्डिम नाद करते हुए घोषणा की है—"काश्यां मरणान् मुक्तिः" अर्थात् काशी में मरने से मुक्ति की प्राप्ति होती है और इसकी सिद्धि के लिए उन्होंने अनेक प्रमाणों तथा युक्तियों को प्रस्तुत किया है।

पुराणों में यह श्लोक[1] अनेक स्थलों पर पाया जाता है :

"अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका।
पुरी, द्वारावती चैव, सप्तैता मोक्षदायिकाः॥"

अर्थात् ऊपर लिखित सातों नगरियों में निवास तथा दर्शन करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है, परन्तु इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि नगरियाँ स्वतः मोक्ष प्रदान करने वाली नहीं हैं। बल्कि इन नगरियों में निवास करने के पुण्य के फलस्वरूप मनुष्य काशी में आता है और यहाँ मृत्यु होने पर उसे मुक्ति की सद्यः प्राप्ति होती है। अतः इन सातों नगरियों में काशी सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। 'त्रिस्थली सेतु' में यह पुराणवचन उद्धृत है—

"अन्यानि मुक्तिक्षेत्राणि, काशीप्राप्तिकराणि हि।
काशीं प्राप्य विमुच्येत नान्यथा तीर्थकोटिभिः॥"

इस उद्धरण से उपर्युक्त कथन को समर्थन प्राप्त होता है।

काशी के विभिन्न नाम

प्राचीन काल में काशी के विभिन्न नाम प्रचलित थे जिनमें से पाँच नाम अत्यन्त प्रसिद्ध हैं :—(१) काशी, (२) वाराणसी, (३) अविमुक्त, (४) आनन्द-कानन और (५) श्मशान या महाश्मशान। इन विभिन्न नामों के तात्पर्य के विषय में पुराणों एवं अन्य ग्रन्थों में संकेत प्राप्त होते हैं।[2]

इन नामों की निरुक्ति—काशी शब्द काश् धातु (चमकना) से बना है। कोशकार आप्टे के अनुसार काशी शब्द 'काश् दीप्तौ' धातु से अच् तथा ङीष् प्रत्यय करने से निष्पन्न होता है।'[3] स्कन्द पुराण में लिखा है कि काशी इसलिए प्रसिद्ध हुई

१. काशीखण्ड २३।७, गरुड़पुराण, प्रेतखण्ड २४।५।
२. काणे : धर्मशास्त्र का इतिहास, भा० ३, पृ० १३४३।
३. आप्टे : संस्कृत हिन्दी कोश, पृ० २७४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि यह निर्वाण अर्थात् मोक्ष के मार्ग में प्रकाश डालती है। अथवा यहाँ अनिर्वचनीय ज्योति अर्थात् साक्षात् शिव भासमान रहते हैं।[1] वाराणसी नाम की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में पुराणों में दो मत प्रचलित हैं। (१) प्रथम मत के अनुसार वरणा और असि नामक दो धाराओं के बीच में अवस्थित होने के कारण इस नगरी का यह नाम पड़ा है। वरणा नदी वाराणसी की उत्तरी तथा असि दक्षिणी सीमा बनाती है। (२) दूसरे मत के अनुसार वाराणसी शब्द 'वरणा' और 'नासी' शब्दों के योग से बना हुआ है। (न कि वरणा और असि से)। वरणा का नाम इसलिए पड़ा कि यह इन्द्रियजन्य दोषों का निवारण करती है और 'नासी' इन्द्रियजन्य पापों का नाश करने वाली है। अतः वाराणसी का व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ हुआ—वह नगरी जो विभिन्न इन्द्रियों से उत्पन्न होने वाले दोषों तथा पापों को नष्ट करती है।[2] वामन पुराण में 'असी' शब्द का प्रयोग पाया जाता है। पद्मपुराण में भी यह उल्लेख उपलब्ध होता है। काशी का तीसरा नाम अविमुक्त (क्षेत्र) भी है। यहाँ निषेधात्मक 'न' के अर्थ में अ का प्रयोग किया गया है। अनेक पुराणों के अनुसार इस पवित्र स्थान का नाम 'अविमुक्तं' इसलिए पड़ा कि शिव (बाबा विश्वनाथ) और शिवा (माता अन्नपूर्णा) ने इस नगर को कभी नहीं छोड़ा, न परित्याग किया (अ + विमुक्त)।[3] लिंग पुराण में इस शब्द की एक अन्य व्युत्पत्ति दी गई है। इसके अनुसार 'अवि' का अर्थ पाप है। अतः यह नगरी पाप (अवि) से मुक्त अर्थात् रहित है (अवि + मुक्त)।[4]

भगवान् शिव को वाराणसी नगरी अत्यन्त प्रिय है। यह उन्हें आनन्द देती है। अतः यह आनन्दकानन या आनन्द वन है।[5] कुछ कारणों से काशी श्मशान अथवा

---

१. स्क० पु० (का० ख०) २६।६७

२. सर्वानिन्द्रियकृतदोषान् वारयति तेन वरणा भवति। सर्वानिन्द्रियकृतान् पापान् नाशयति तेन नाशी भवति। अविमुक्तः वरणायां नाश्यां च मध्ये प्रतिष्ठितः। जाबाल उप०, खण्ड २।

३. (क) मुने प्रलयकालेऽपि न तत्क्षेत्रं कदाचन।
विमुक्तं हि शिवाभ्यां यदविमुक्तं ततो विदुः॥
स्क० पु० (का० ख०), २६।२७; त्रि० से०, पृ० ८६।

(ख) विमुक्तं न मया यस्मान्मोक्ष्यते वा कदाचन।
मम क्षेत्रमिदं तस्मात् अविमुक्तमिति स्मृतम्॥
लिं० पु० (पूर्वार्ध ९२।४५-४६)

४. अवि शब्देन पापस्तु वेदोक्तः कथ्यते द्विजैः।
तेन मुक्तं मया जुष्टं अविमुक्तमतोच्यते॥
लिं० पु० (पूर्वार्ध ६२।१४३)

५. यथा प्रियतमा देवि! मम त्वं सर्वसुन्दरी।
तथा प्रियतरं चैतन् मे सदानन्दकाननम्॥
(स्क० पु०, काशी खण्ड अ० ३२।१११ श्लो०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाश्मशान भी कही जाती है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि काशी लोगों को संसार से मुक्ति प्रदान करती है।[1] काशी में मृत्यु प्राप्त करने के लिए भारत के सुदूर प्रान्तों से भक्त लोग आते हैं। उनका यह अटल विश्वास है कि काशी में मरने से मुक्ति मिलती है—'काश्यां मरणान् मुक्तिः।' काशी में गंगा के तट पर मणिकर्णिका घाट पर सर्वदा शव जलते रहते हैं। साधारणतया श्मशान को अपवित्र माना जाता है। परन्तु आज हजारों वर्षों से यह स्थल श्मशान घाट होने पर भी परम पवित्र समझा जाता है। स्कन्द पुराण के अनुसार 'श्म' का अर्थ शव है और 'शान' का अर्थ सोना, शयन करना अथवा पृथ्वी पर सदा के लिए सो जाना है। जब विश्व का प्रलय या अन्त होता है तब महान् तत्त्व, शवों के समान, यहाँ पड़ जाते हैं। अतएव यह स्थान (काशी) महाश्मशान कहलाता है। पद्मपुराण[2] में लिखा है कि शिव जी कहते हैं कि 'अविमुक्त एक विख्यात श्मशान है। मैं काल देवता बनकर यहाँ रहता हूँ तथा विश्व का नाश करता हूँ।'' मत्स्य पुराण में बहुधा वाराणसी को श्मशान कहा गया है। इन उल्लेखों से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में काशी उपर्युक्त पाँच नामों से प्रसिद्ध थी और उसके विभिन्न नामकरण के कारण भी भिन्न-भिन्न थे।

काशी के तीर्थ

पुराणों में ऐसा वर्णन मिलता है कि काशी क्षेत्र में पद-पद पर तीर्थ हैं। यहाँ एक तिल भी ऐसा स्थान नहीं है जहाँ शिव का लिंग न हो।[3] स्कन्दपुराण के काशी खण्ड के केवल दसवें अध्याय में ही ६४ लिङ्गों का उल्लेख किया गया है। ह्वेनसाङ्ग ने लिखा है कि उसके समय में बनारस में एक सौ (१००) मंदिर थे। उसने एक ऐसे मंदिर का उल्लेख किया है जिसमें शिव (देव महेश्वर) की ताम्र प्रतिमा एक सौ फुट (१००) से कम ऊँची नहीं थी। सन् ११९४ ई० में कुतुबुद्दीन ऐबक ने काशी के एक हजार (१०००) मंदिरों को तोड़-फोड़कर नष्ट कर दिया था।[4] अलाउद्दीन खिलजी ने गर्व के साथ कहा था कि उसने केवल बनारस में ही एक सहस्र (१०००) मंदिरों को

---

१. नमामि गंगे तव पादपंकजं,
सुरासुरैर्वन्दितदिव्यरूपम्।
भुक्तिश्च मुक्तिश्च ददासि नित्यं
भावानुसारेण सदा नराणाम्॥
उपर्युक्त वर्णन काशी में ही विराजमान गंगा का है।

२. प० पु०, १।३३।१४

३. (क) तीर्थानि सन्ति भूयांसि, काश्यामत्र पदे पदे।
न पंचनदतीर्थस्य कोटयंशेन समान्यपि॥
का० ख०—५६। १। ८
(ख) तिलान्तरापि नो काश्यां भूमिर्लिङ्गं विना क्वचित्।
वही—१०।१०३

४. इलिएट एण्ड डाउसन : हिस्ट्री आफ इण्डिया, जिल्द २, पृ० २२२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नष्ट कर भूमिसात् कर दिया था।[१] इस तोड़-फोड़ में विश्वनाथ जी का मंदिर भी था। सन् १५८५ ई० में अकबर के राजस्व मन्त्री राजा टोडरमल की सहायता से, नारायण भट्ट ने विश्वनाथ जी के मंदिर को पुनः बनवाया। किन्तु यह मंदिर भी कुछ काल के बाद नष्ट कर दिया गया।

काशी में प्राचीन विश्वेश्वर के मन्दिर को तोड़कर औरंगजेब ने एक मसजिद बनवायी जो आज भी स्थित है। उसने हजारों मन्दिरों को नष्ट करने के साथ ही पंचगंगा घाट पर स्थित बिन्दु-माधव का भी मन्दिर तोड़कर नष्ट कर दिया था। इसका परिणाम यह हुआ कि औरंगजेब के काल (सन् १६५९ ई० से १७०७ ई० तक) में काशी में बीस मन्दिरों को भी पाना कठिन था।[२] परन्तु इस काल के पश्चात् मराठा राजाओं तथा सरदारों ने अनेक मन्दिर बनवाये और अंग्रेजों के शासन काल में भी बहुत से मन्दिरों का निर्माण हुआ। सन् १८२८ ई० में जेम्स प्रिन्सेप ने गणना कराई थी जिससे पता चलता है कि काशी में उस समय एक हजार (१०००) मन्दिर विद्यमान थे। शेरिंग ने लिखा है कि उसके समय में १४५४ मन्दिर स्थित थे।[३] हैवेल का कथन है कि उसकी गणना के अनुसार उस समय १५०० मन्दिर काशी में मौजूद थे और दीवारों में लगी हुए प्रतिमाएँ अथवा मूर्तियाँ असंख्य थीं।[४]

तीर्थ – वाराणसी के रक्षक देवता विश्वनाथ माने जाते हैं और उनका मन्दिर सर्वोच्च एवं परम पवित्र है। औरंगजेब के द्वारा विश्वनाथ का मन्दिर नष्ट कर दिया गया था। तब से लगभग एक सौ वर्षों से अधिक समय तक काशी में विश्वनाथ का कोई भी मन्दिर नहीं था। विश्वनाथ जी का आधुनिक मन्दिर सुप्रसिद्ध महारानी अहल्याबाई होल्कर के द्वारा १८ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में बनवाया गया था। 'त्रिस्थली सेतु' के अनुसार पापी तथा अस्पृश्य भी विश्वनाथ के लिंग को स्पर्श कर पूजा कर सकता है।[५]

मत्स्यपुराण के अनुसार विश्वेश्वर (विश्वनाथ) के आनन्द कानन (वाराणसी) में पाँच प्रमुख तीर्थ हैं—(१) दशाश्वमेध, (२) लोलार्क, (३) केशव (आदि केशव), (४) बिन्दुमाधव और (५) मणिकर्णिका। आधुनिक काल में प्रमुख पंचतीर्थ हैं :— असि और गंगा का संगम, दशाश्वमेध घाट, मणिकर्णिका, पंचगंगा घाट और वरणा तथा गंगा का संगम। लोलार्क तीर्थ असि (वाराणसी की दक्षिणी सीमा) एवं गंगा के संगम पर अवस्थित माना जाता है। दशाश्वमेध घाट शताब्दियों से विख्यात रहा है। डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने लिखा है कि यहाँ पर भारशिव राजाओं ने दस

---

१. शेरिंग : दि सेक्रेड सिटी आफ दि हिन्दूज, पृ० ३१।
२. शेरिंग : वही, पृ० ३२।
३. वही, पृ० ४१–४२।
४. हैवेल, पृ० ७६।
५. त्रिस्थली सेतु, पृ० १८३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान कर यहाँ अभिषेक किया था, यह मत उचित ही है।[1] इस घाट की महिमा का विशेष वर्णन काशी खण्ड[2] और त्रिस्थली[3]-सेतु में उपलब्ध होता है। मणिकर्णिका – जिसे मुक्ति क्षेत्र भी कहा जाता है—वाराणसी के धार्मिक जीवन का केन्द्र है और यहाँ के सभी तीर्थों में सर्वोच्च माना जाता है। पंचगंगा घाट का नाम इसलिए प्रसिद्ध हुआ कि यहाँ पाँच नदियों या धाराओं के मिलने की कल्पना की गई है।[4] नारदीय पुराण तथा काशी खण्ड में कहा गया है कि जो मनुष्य पंचगंगा में स्नान करता है वह पंच तत्वों से रचित इस शरीर को पुनः धारण नहीं करता अर्थात् उसकी मुक्ति हो जाती है। वरणा और गंगा का संगम तीर्थ अर्थात् आदि केशव घाट बहुत ही प्राचीन है। कन्नौज के गाहड़वाल राजाओं ने, जो विष्णु-भक्त थे, जब काशी को अपनी राजधानी बनाया तब इस घाट को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया। उनके ताम्रपत्रों तथा शिलालेखों से यह सिद्ध होता है कि यह घाट लगभग एक हजार वर्ष प्राचीन है। इन राजाओं ने सन् १०९९ ई० (सं० ११५६ वि०) में इस घाट पर ५०० ब्राह्मणों को ३० गाँव दान में दिया था।[5]

उपतीर्थ—वाराणसी में बहुत से उपतीर्थ भी हैं। काशीखण्ड में ज्ञानवापी का उल्लेख मिलता है। यह स्थान आजकल विश्वनाथ जी के मन्दिर के पास ही उत्तर दिशा में स्थित है। विश्वेश्वर के मन्दिर से दो मील की दूरी पर भैरवनाथ का मन्दिर स्थित है। वे काशी के कोतवाल माने जाते हैं। ये बड़ी मोटी पत्थर की लाठी (दण्ड) धारण करते हैं। इसलिए इन्हें 'दण्डपाणि' भी कहा जाता है। इनका वाहन कुत्ता है। काशी में गणेश जी के भी अनेक मन्दिर हैं। काशीखण्ड में ५६ गणेशों के नाम दिये गये हैं। इन में ढुण्ढिराज गणेश और बड़ा गणेश—जिनका मन्दिर मुहल्ला लोहटिया में है—प्रसिद्ध हैं। बारहवीं शताब्दी में काशी में गंगा तट पर कपालमोचन घाट भी था। सन् ११२० ई० में सम्राट् गोविन्दचन्द्र ने इस घाट पर स्नान कर व्यास नामक ब्राह्मण को एक गाँव दान में दिया था।[6] सम्भवतः आजकल काशी में इस नाम से कोई घाट तो प्रसिद्ध नहीं है परन्तु तीर्थ अवश्य विद्यमान है।

पुराणों में काशी के लिङ्गों और तीर्थों का बड़े ही विस्तार के साथ वर्णन उपलब्ध होता है।[7] केवल काशीखण्ड में १४ नामों का उल्लेख हुआ है जो महालिंग के नाम

---

१. डा० जायसवाल : हिस्ट्री आफ इण्डिया (१५० ई० से ३५० ई० तक), पृ० ५।
२. स्क० पु० (का० ख०), ५२।८३
३. त्रि० से०, पृ० १५९
४. किरणा, धूतपापा च, पुण्यतोया सरस्वती।
गंगा च यमुना चैव; पंच नद्यः पुनन्तु माम् ॥
५. डा० काणे : धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग ३, पृ० १३४८।
६. डा० काणे : वही, पृ० १३५०।
७. इस वर्णन के लिए देखिए--
लि० पु० (पूर्वार्द्ध ९२।६७–१००); पद्मपुराण (आ० ख०, अध्याय ३४–३७);

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से प्रसिद्ध हैं।[1] काशीखण्ड में पुनः १४ लिंगों के वर्णन हैं जो इनसे भिन्न हैं। इसके साथ ही १४ आयतनों का विवरण भी दिया गया है। काशी खण्ड में काशी के १२५ तीर्थों का वर्णन किया गया है।[2] इस प्रकार काशी के तीर्थों और उपतीर्थों का वर्णन पुराणों में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है।

पंचक्रोशी यात्रा काशी की पंचक्रोशी की यात्रा के वर्णन के बिना सम्भवतः यह विवरण अधूरा ही रहेगा। काशी की पंचक्रोशी का विस्तार लगभग ५० (पचास) मील में है और इस मार्ग पर सैकड़ों तीर्थ स्थित हैं। काशी खण्ड में पंचक्रोशी का नाम आया है।[3] इसमें प्रथम दिन की यात्रा मणिकर्णिका घाट से, दूसरे दिन की यात्रा धूपचण्डी नामक गाँव से, तीसरे दिन की रामेश्वर ग्राम से, चौथे दिन की यात्रा शिवपुर गाँव से प्रारम्भ होती है। पाँचवें दिन यात्री कपिलधारा पहुँचता है। छठे दिन कपिलधारा से वरणा संगम पहुँचकर यह यात्रा समाप्त होती है। काशी की पंचक्रोशी की यात्रा अत्यन्त प्रसिद्ध है।

कू० पु० (१।३२।१–१२ तथा १।३५।१–१५); स्क० पु० (का० खं० १०। ८६–९७; अध्याय ३३; ५३।२७ एवं अध्याय ५५–५८ तथा ६१)

१. डा० काणे : ध० शा० इ०, भा० ३, पृ० १३५०।

२. स्क० पु० (का० ख०), अध्याय ८३ और ८४।

३. स्क० पु० (का० ख०), २६।२८ एवं ११४ तथा ५५।४४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय २

काशी : विद्वानों का आकर्षण केन्द्र

काशी उपनिषत् काल से ही विद्या की विश्रुत स्थली है। यहाँ विद्याध्ययन के लिए भारत के अनेक प्रान्तों से विद्वान् आते थे और यहाँ के प्रकृष्ट विद्वानों से विभिन्न शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन कर अपनी विद्वत्ता को परिपुष्ट करते थे। बहुत से लोग अपने जीवन की गोधूलि में काशीवास के लिए भी आया करते थे। इस प्रकार काशी आगमन के प्रति विद्वानों में बड़ा आकर्षण था। इस आकर्षण के प्रधानतया तीन कारण माने जा सकते हैं—

१. काशी का तीर्थस्थली होना।
२ काशी का विद्याकेन्द्र होना।
३. जीविका का सुगम साधन होना।

काशी अत्यन्त प्राचीन काल से तीर्थ स्थान रहा है। वेद तथा उपनिषत् के काल में काशी एक महती तीर्थस्थली रही होगी, यद्यपि इसका स्पष्टतः उल्लेख नहीं मिलता। तीर्थ स्थानों के भ्रमण करने से और वहाँ स्नान, दानादि के सम्पादन करने से पुण्य की प्राप्ति होती है—यह कल्पना महाभारत काल में प्रचलित हो गई थी। यद्यपि यह परम्परा इसके पहिले भी वर्तमान रही होगी परन्तु महाभारत में ही इसका सर्वप्रथम उल्लेख स्पष्टतः पाया जाता है। महाभारत के वन पर्व में ये श्लोक उपलब्ध होते हैं :[1]

अविमुक्तं समासाद्य, तीर्थसेवी कुरूद्वह !
दर्शनात् देवदेवस्य, मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥
ततो वाराणसीं गत्वा, देवमर्च्य वृषध्वजम् ।
कपिला ह्रदमुपस्पृश्य, राजसूयफलं लभेत् ॥

इस उल्लेख से पता चलता है कि महाभारत के काल में अर्थात् आज से कम से कम २३०० वर्ष पूर्व काशी एक तीर्थस्थान के रूप में प्रसिद्ध हो गयी थी और यहाँ शिव की पूजा का प्रचार था। तब से लेकर काशी भारत की एक विख्यात तीर्थस्थली रही है और आज भी इसकी तीर्थरूपेण ख्याति कुछ कम नहीं है। महामहोपाध्याय डा० काणे ने काशी के एक प्रसिद्ध तथा महत्त्वपूर्ण तीर्थ होने के सम्बन्ध में लिखा है —[2]

"विश्व में ऐसा कोई नगर नहीं है जो बनारस (वाराणसी) से बढ़ कर प्राचीनता, निरन्तरता एवं मोहक आदर का पात्र हो। लगभग तीन सहस्राब्दियों से यह पुनीतता

१. महाभारत, वनपर्व, अ० ८४।७८-७९।
२. म० म० डा० काणे : धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग ३, पृ० १३३६ : अर्जुन चौबे काश्यप के द्वारा हिन्दी अनुवाद (हिन्दी समिति, लखनऊ) तृतीय संस्करण १९८० ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रहण करता आ रहा है। इस नगर के कई नाम प्रचलित हैं जैसे वाराणसी, अविमुक्त और काशी। काशी से बढ़कर हिन्दूमात्र की धार्मिक भावनाओं को जगाने वाला कोई अन्य नगर नहीं है। हिन्दुओं के लिए यह नगर अटूट धार्मिक पवित्रता, पुण्य एवं विद्या का प्रतीक रहा है। अपनी महान् जटिलताओं एवं विरोधों के कारण यह नगर सभी युगों में भारतीय जीवन का एक सूक्ष्म स्वरूप रहता आया है। न केवल हिन्दू धर्म अपने कतिपय सम्प्रदायों के साथ यहाँ फूलता-फलता आया है, प्रत्युत संसार के एक बहुत बड़े धर्म—बौद्ध धर्म—के सिद्धान्त यहाँ उद्घोषित हुए हैं। वाराणसी या काशी के विषय में महाकाव्यों एवं पुराणों में सहस्रों श्लोक कहे गये हैं। गत सैकड़ों वर्षों के भीतर इसके विषय में अनेक ग्रन्थों का प्रणयन हुआ है और यह परम्परा आज भी जागरूक है।"

एक अन्य स्थान पर डा० काणे लिखते हैं—[1]

"काशी के नाम के साथ विद्या की महान् परम्पराएँ लगी हुई हैं। ××× यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि बनारस एवं कश्मीर अलबेरूनी के काल में हिन्दू विद्वानों की उत्तम पाठशालाओं के लिए प्रसिद्ध थे।[2] आईने अकबरी में लिखा है कि बनारस पुरातन काल से भारत में विद्या का प्रथम पीठ रहा है।[3] काशी खण्ड में उल्लिखित है कि यह विद्या का सदन है—"विद्यानां सदनं काशी।" इस प्रकार काशी की महिमा वेद से लेकर पुराणों तक में गाई गई है और यह अत्यन्त प्राचीन काल से विद्या की स्थली रही है।"

अतः प्राचीन काल से काशी के एक प्रख्यात तीर्थस्थान होने के कारण विद्वान् तथा साधारण जन पुण्य की प्राप्ति के लिए यहाँ आया करते थे। कान्यकुब्ज के गाहड़वाल राजाओं ने काशी को अपनी राजधानी बनाकर १२ वीं शती में इसे राजनैतिक महत्त्व भी प्रदान किया। उस काल से साधारण जन-समुदाय के अतिरिक्त यह विद्वानों के लिए भी आकर्षण केन्द्र बन गई। इसी समय राजतरंगिणी के सुप्रसिद्ध लेखक कल्हण के समकालीन **लोष्टक** या **लोष्टदेव** नामक कवि अपने जीवन की सन्ध्या में संन्यासी बनकर ११०० ई० के आसपास काशी आये थे। यहाँ निवास करते हुए इन्होंने काशी विश्वनाथ की स्तुति में **'दीनाक्रन्दन स्तोत्र'** की रचना भी की थी।[4]

पुराणों में काशी की महिमा के सम्बन्ध में लिखा है **'काश्यां मरणान्मुक्तिः'** अर्थात् काशी में मरने से साक्षात् मुक्ति की प्राप्ति होती है। इस विचार से प्रभावित होकर अनेक विद्वान् अपने जीवन के अन्तिम दिनों को व्यतीत करने के लिए काशी आया करते थे। लोष्टदेव का उदाहरण ऊपर दिया गया है। भागवत के प्रसिद्ध टीकाकार श्रीधरस्वामी जो उत्कल-निवासी थे—ने काशी में १६०० ई० के आसपास आकर

१. काणे : धर्मशास्त्र का इतिहास (हिन्दी), भाग ३, पृ० १३५०।
२. वही, जिल्द १, पृ १७६।
३. वही, जिल्द २, पृ० १५८।
४. प्रो० बलदेव उपाध्याय : सं० सा० इ०, पृ० ३६५ (१९७८ ई०)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

7 2595

श्रीमद्भागवत पर अपनी विख्यात श्रीधरी टीका लिखी। ये यहाँ ही पंचगंगा घाट पर 'बिन्दु माधव' के मन्दिर के पास रहते थे और यहाँ ही उनका काशीवास हो गया।

(२) काशी विद्या की केन्द्र-स्थली

अत्यन्त प्राचीन काल से काशी विद्या की केन्द्र स्थली रही है। ब्राह्मण काल में ही राजा दिवोदास ने यहाँ पर एक आयुर्वेदीय विद्यापीठ की स्थापना की थी, इसका उल्लेख अन्यत्र किया गया है। उपनिषद् काल में भी काशी के तत्कालीन राजा अजातशत्रु, जो स्वयं बहुत बड़े ब्रह्मवेत्ता थे, के पास विद्वानों का जमघट लगा रहता था। स्कन्द पुराण के काशी खण्ड में **जैगीषव्य** नामक प्रसिद्ध ऋषि का उल्लेख पाया जाता है जो इस युग के महान् योगी थे।[1] काशी में ही ये ऋषि एक गुफा में रहा करते थे जो आज भी जागेश्वर महादेव के मठ (मुहल्ला औसानगंज के पास) विद्यमान है। इसे आज भी **"जैगीषव्य गुफा"** कहते हैं। यहीं पर भगवान् का दर्शन इन्हें उपलब्ध हुआ था और भगवान् ने इनसे कहा था कि तुम योग-विद्या में अत्यन्त निपुण हो। अतः तुम यहीं रह कर इसकी शिक्षा अन्य व्यक्तियों को प्रदान करो।[2]

"त्रिरात्रं तत्र कृत्वा वै, यो नरः पूजयिष्यति।
गुह्यं प्रविश्यते चैव ज्ञानयुक्तो भवेन्नरः॥"

पुराणों तथा महाभारत के रचयिता महर्षि वेदव्यास भी काशी में ही निवास करते थे। आज भी इनका मंदिर व्यासपुरी में विद्यमान है जो काशी से लगभग पाँच मील की दूरी पर अवस्थित है। माघ के महीने में व्यास जी का दर्शन करना काशी निवासियों के लिए आवश्यक बतलाया गया है। आज भी उस मंदिर के पास, माघ मास में मेला लगता है जो 'वेदव्यास का मेला' के नाम से प्रसिद्ध है। महाराज काशीनरेश के रामनगर के दुर्ग में भी पश्चिम भाग की ओर **व्यासेश्वर** की मूर्ति विराजमान है जिसे साधारण जनता 'छोटा वेदव्यास' के नाम से पुकारती है। वास्तव में वेदव्यास की यही मूर्ति सबसे प्राचीन है। यही उनका आदिम स्थान है। सन् ११९४ ई० में मुसलमानों के आक्रमण के फलस्वरूप तोड़-फोड़ के बाद इसकी पुनः स्थापना समीप के ही एक गाँव में की गई जहाँ यह शिवलिंग बाद के कई बार के तोड़-फोड़ से किसी प्रकार से बच गया था। व्यास जी के द्वारा काशी को शाप देने के कारण विश्वेश्वर (विश्वनाथ जी) के द्वारा व्यास जी काशी से निष्कासित कर दिये गये। तब व्यास जी लोलार्क मंदिर के आग्नेय कोण में गंगा जी के पूर्वी तट पर स्थित हुए।[3] इस घटना का उल्लेख काशी खण्ड में इस प्रकार दिया गया है :

लोलार्कात् अग्निदिग्भागे, स्वर्धुनीपूर्वरोधसि।
स्थितो ह्यद्यापि पश्येत्सः, काशीप्रासादराजिकाम्॥
स्कन्दपुराण, काशी खण्ड, ६६।२०१

---

१. पं० कुबेरनाथ सुकुल : वाराणसी-वैभव (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९७७), पृ० १२०, तथा १५८ प्रथम संस्करण।
२. कृत्यकल्पतरु में लिङ्गपुराण का उद्धृत वचन
३. कुबेरनाथ सुकुल : वाराणसी वैभव, पृ० १७४।

पुस्तकालय
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यास जी ने पुराणों तथा महाभारत की रचना करने के पश्चात् ब्रह्मसूत्रों की रचना भी यहाँ ही की थी।

नवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भगवान् शंकराचार्य ने भारत के सुदूर दक्षिणी प्रान्त केरल में जन्म ग्रहण करने पर भी वहाँ से पैदल चलकर उस अतीत काल में – जब रेल का आविष्कार नहीं हुआ था और न पक्की सड़कों का ही निर्माण हुआ था · काशी आये और यहीं रहकर उन्होंने ब्रह्मसूत्रों के ऊपर अपने शारीरक भाष्य का निर्माण किया। शंकराचार्य का काशी में पधारने का उद्देश्य यह था कि जहाँ रहकर स्वयं व्यास ने इन ब्रह्मसूत्रों की रचना की वहाँ निवास करने पर मुझे स्फूर्ति तथा प्रेरणा प्राप्त होगी। अतएव काशी में ही अपने भाष्य की रचना कर अपनी कृति पर काशी की मुहर लगा कर ही उन्होंने समस्त भारत के प्रधान तीर्थों की परिक्रमा की थी।

शंकराचार्य के बाद श्री वैष्णवधर्म के आचार्य भी जब उत्तर भारत की तीर्थ यात्रा करते थे तब काशी अवश्य ही आते थे। इन लोगों ने भी विद्या की केन्द्रस्थली होने के कारण काशी को महत्त्व प्रदान किया था। ऐसे आचार्यों में यामुनाचार्य का नाम विशेष उल्लेखनीय है जो दशम शताब्दी के उत्तरार्ध में काशी पधारे थे।[1] इसी प्रकार द्वैत मत के संस्थापक मध्वाचार्य (जीवन काल १२३८ ई० से १३१७ ई०) ने उत्तर भारत की यात्रा दो बार की थी। इन्होंने उडुपी (कर्नाटक) से बदरीनाथ तक की पैदल यात्रा की थी। वहाँ से लौटते समय कुरुक्षेत्र, दिल्ली, काशी होते हुए ये अपने देश को गये थे। इनका भी निवास काशी में कुछ दिनों तक अवश्य रहा।[2]

स्वामी वल्लभाचार्य के पिता तो काशी में ही निवास करते थे। परन्तु मुसलमानों के उत्पात के कारण जब वे काशी से अपने देश को लौट रहे थे तब रास्ते में मध्य-प्रदेश के रायपुर जिले के चम्पारन नामक गाँव में वल्लभ का जन्म वि० १५३५ वि० (१४७८ ई०) में हुआ था। परन्तु रायपुर में जन्म होने पर भी वल्लभाचार्य का यज्ञोपवीत तथा शिक्षा-दीक्षा सब काशी में ही हुई थी। इस प्रकार ये काशी की ही देन थे। आज भी काशी में गोपाल मन्दिर—जो चौखम्भा मुहल्ले में स्थित है—वल्लभ सम्प्रदाय का बड़ा भारी केन्द्र माना जाता है।

गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के संस्थापक महाप्रभु चैतन्य ने (सन् १४८५ ई०—१५३३ ई०) भी जगन्नाथपुरी से वृन्दावन की यात्रा के लिए आते-जाते काशी में कई महीनों तक निवास किया था। सं० १५७२ वि० (सन् १५१५ ई०) में विजया दशमी के दिन चैतन्य ने जगन्नाथपुरी से वृन्दावन के लिए प्रस्थान किया और झारखण्ड (उड़ीसा तथा छोटा नागपुर के वन्य प्रदेश) के मार्ग से चलकर कार्तिक मास में काशी पहुँचे। यहाँ तपन मिश्र नामक अपने पूर्व-बंगीय शिष्य के घर पर दस दिनों तक निवास किया। इसके अनन्तर वे प्रयाग होते हुए कार्तिक मास के अन्त में वृन्दावन

१. आचार्य बलदेव उपाध्याय : वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य और सिद्धान्त (चौखम्भा अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी, वि० २०३५), पृ० १५६।
२. वही, पृ० १७०–७१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँचे। वहाँ दो मास—अगहन तथा पौष तक निवास कर वे पुनः इसी मार्ग से जगन्नाथ-पुरी लौटे। मार्ग में उन्होंने माघ की अमावस्या—मकर संक्रान्ति के दिन त्रिवेणी में स्नान किया। इसके बाद वे काशी आये और दो मास तक यहाँ भी निवास किया। ये काशी के जतनबड़ मुहल्ले—जो विश्वेश्वरगंज के पास है—में निवास करते थे। उस समय इनके सम्बन्ध की दो घटनाएँ प्रसिद्ध तथा महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं। काशी में उस समय **प्रकाशानन्द सरस्वती** नामक संन्यासी रहते थे जो अद्वैत वेदान्त के पोषक थे। महाप्रभु ने शास्त्रार्थ में परास्त कर उन्हें अपना शिष्य बना लिया। प्रकाशानन्द ने अब **प्रबोधानन्द** नाम धारण कर लिया। दूसरी घटना यह है कि महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी - जो पहिले बंगाल के नवाब हुसेनशाह के प्रधान मंत्री थे—को भक्तिशास्त्र का उपदेश यहीं दिया और इन्हें अपना पट्टशिष्य स्वीकार कर लिया। आचार्य ने अपने श्रीमुख से भक्ति के तत्त्वों का प्रतिपादन इसी काशी में किया था। इस प्रकार काशीपुरी चैतन्य सम्प्रदाय में भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

रामावत सम्प्रदाय के संस्थापक **रामानन्द जी** की साधना स्थली यही काशी ही तो थी। वे काशी में पंचगङ्गा घाट पर रहते थे। आज भी इस घाट पर वह मढ़ी (कक्ष) बनी हुई है जहाँ पर इन्होंने कबीर को 'राम-नाम' का उपदेश दिया था। रामानन्द ने अपने **वैष्णव मताब्ज भास्कर** की तथा वेदान्त के **ब्रह्मसूत्रों** पर **आनन्द भाष्य** की रचना इसी काशी में ही की। सन्त कबीर की जन्मस्थली तथा साधना स्थली—दोनों ही काशी थी। आज भी काशी का एक मुहल्ला कबीरचौरा के नाम से प्रसिद्ध है जहाँ उनकी भव्य मूर्ति स्थापित है।

रामचरितमानस के रचयिता **गोस्वामी तुलसीदास जी** की जन्मस्थली तो राजापुर थी परन्तु उनकी कर्मस्थली तथा साधनास्थली काशी ही थी। वे यहाँ अस्सी घाट पर रहा करते थे जहाँ उन्होंने अपने निवास स्थल पर हनुमान की विभिन्न दिशाभिमुखी चार मूर्तियों की स्थापना की थी। आज भी काशी में वह मन्दिर स्थित है। अस्सी घाट में जिस स्थान पर गोस्वामी जी रहा करते थे, वह आजकल 'तुलसी घाट' के नाम से प्रसिद्ध है। तुलसीदास ने रामायण का प्रारम्भ 'अवधपुरी' में अवश्य किया था परन्तु उसके अन्तिम चार काण्डों की रचना उन्होंने यहाँ ही की थी। अस्सी घाट पर दक्षिणाभिमुख हनुमान जी की मूर्ति के पास ही उन्होंने रामयंत्र की स्थापना की थी जो आज भी दर्शनीय है।

तुलसीदास जी के ही काल में महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त **एकनाथ जी** सं० १६२८ वि० (सन् १५७१ ई०) में काशी आये थे और उन्होंने अपने दो प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना यहीं की थी जिनके नाम **'नाथ-भागवत'** तथा **'रुक्मिणी स्वयंवर'** हैं। इनमें नाथभागवत **श्रीमद्भागवत** के एकादश स्कन्ध की मराठी भाषा में छन्दोबद्ध विस्तृत अनुशीलनात्मक टीका है, जिसमें ज्ञान एवं भक्ति के सिद्धान्तों का विशद विवेचन है।

छत्रपति शिवाजी के गुरु तथा महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध कर्मयोगी सन्त **रामदास** ने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी काशी में पधारने की कृपा की थी। सन्त रामदास ने सन् १६३१ ई० में भारतवर्ष की यात्रा प्रारम्भ की थी जब उनकी अवस्था केवल २३ वर्ष की थी। वे लगातार १२ वर्षों तक भ्रमण करते रहे। इसी भ्रमण के बीच वे काशी भी आये थे। उस समय उनकी अवस्था संभवतः तीस वर्ष की रही होगी।

सिक्ख धर्म के प्रवर्तक गुरु नानक (१४६९ ई०–१५३८ ई०) का जन्म पंजाब के तलवण्डी नामक गाँव में १४६९ ई० में हुआ था। 'नानकाना' के नाम से प्रसिद्ध सिखों का यह प्रधान तीर्थस्थल पाकिस्तान में चला गया है, जहाँ यात्रा के लिए भारतवर्ष से सैकड़ों तीर्थयात्री प्रतिवर्ष जाया करते हैं। गुरुजी ने भारतवर्ष की दो यात्राएँ की थीं। प्रथम यात्रा उत्तर भारत की दस वर्षों (१४९९ ई०–१५०९ ई०) में समाप्त हुई थी। इसी यात्रा में वे काशी पधारे थे सम्भवतः १५०५ ई० में और जिस बगीचा में उन्होंने निवास किया था वह आज 'गुरु का बाग' नाम से प्रख्यात है।

इस प्रकार गौतम बुद्ध से लेकर गुरु नानक तक भारत के महान् सम्प्रदाय-प्रवर्तकों तथा आचार्यों के आकर्षण का केन्द्र काशी सर्वदा रही। काशी में निवास कर इन आचार्यों ने अपने सिद्धान्तों को अपनी साधना के द्वारा परिपुष्ट तथा वाणी के द्वारा उनका प्रचार किया। ये आचार्य काशी के विद्वानों के द्वारा अपने सम्प्रदाय की प्रामाणिकता की छाप लगवाने के लिए ही यहाँ आये थे। यही उनके आकर्षण का प्रधान कारण था।

(३) काशी विद्वानों तथा संस्कृत के अध्येताओं के लिए जीविका की साधिका भी थी। यहाँ राजा-महाराजाओं तथा श्रेष्ठीजनों ने अनेक अन्नसत्रों की स्थापना की थी जहाँ विद्वानों तथा साधु महात्माओं को निःशुल्क भोजन दिया जाता था। ये सत्र आज भी काशी में विद्यमान हैं यद्यपि इनकी संख्या धीरे-धीरे कम होती जा रही है। भारत के विभिन्न प्रान्तों के विद्वान् इस कारण भी काशी में आना अधिक पसन्द करते थे कि यहाँ जीविका की कोई समस्या नहीं थी। भोजन की प्राप्ति के लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता था। 'क्षेत्रे भोजनं मठे निद्रा' की सूक्ति इसी तथ्य की द्योतिका है जिसका उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है। सच तो यह है कि काशी में आकर कोई भूखा नहीं रह सकता। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने काशी के विषय में ठीक ही तो लिखा है— "आधा पेट कोई ना सुतता, ऐसी है यह काशी ॥"

— (प्रेम योगिनी)

इन्हीं कारणों से भारत के प्रत्येक प्रान्त के विद्वानों का काशी के प्रति सार्वभौम आकर्षण था। इस देश के नाना प्रान्तों से ब्राह्मणों के विशिष्ट कुल या वंश काशी आते थे। वे विद्याध्ययन तथा भोजन की सुविधा पाकर यहीं बस जाते थे तथा अध्ययन एवं अध्यापन द्वारा अपना जीवन बिताते थे। इसीलिए शास्त्र की यह सूक्ति यथार्थ ही है— **"मरणं मंगलं यत्र, विभूतिश्च विभूषणम्।**
कौपीनं यत्र कौशेयं, सा काशी किन्न सेव्यते ॥"

●

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ३

काशी के विद्वानों का साहित्यिक अवदान
(मध्ययुग)

काशी भारत की नितान्त प्रख्यात नगरी है। यहाँ के मनीषियों द्वारा विरचित संस्कृत साहित्य अपनी मौलिकता तथा प्रामाणिकता के कारण अखिल भारतवर्षीय कीर्ति से मण्डित है, पुण्यक्षेत्र होने के साथ ही साथ यह विद्या क्षेत्र भी है जिसने भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों से पण्डितों को अपना जीवन पुण्यमय तथा पवित्र बनाने के लिए आकृष्ट किया। भारत के विभिन्न प्रान्तीय विद्वानों ने काशी में निवास कर इसे अपनाया तथा संस्कृत के विभिन्न शास्त्रों में अपनी रचनाएँ निर्मित कर संस्कृत के साहित्य को अधिक विकसित किया। दक्षिण भारत के आन्ध्र, द्रविड़, कर्नाटक तथा महाराष्ट्र से, पश्चिम के गुजरात तथा राजस्थान से, पूरब के बंगाल तथा मिथिला से, उत्तर के काश्मीर तथा कूर्मांचल से आकर विद्वान् ब्राह्मणों ने काशी को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। धनी मानी राजा-महाराजा तथा धनाढ्य सरदारों ने इन पण्डितों की जीविका का प्रबन्ध कर संस्कृत की उन्नति में स्मरणीय सहायता प्रदान की। इन पण्डितों ने इन आश्रयदाताओं की सहायता का स्मरण तथा अभिनन्दन अपनी रचनाओं में बड़ी उदारता से किया है। महाकवि श्रीहर्ष को काशी के प्रशासक गोविन्दचन्द्र तथा उनके पुत्र जयचन्द्र से (ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्), शेष श्रीकृष्ण को अकबर के राजस्वमन्त्री टोडरमल्ल तथा राजा बीरबल से (जिनके कुल का वर्णन उन्होंने अपने 'प्रक्रिया प्रकाश' के आरम्भ में बहुशः किया), नीलकण्ठ भट्ट को मध्यप्रदेश के सरदार भगवन्त सिंह से (जिनके नाम पर उन्होंने अपना महत्त्वपूर्ण धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ 'भगवन्तभास्कर' का प्रणयन १२ मयूखों अथवा प्रकरणों में किया), नागोजि भट्ट को शृंगवेरपुर के बिसेनवंशी राजा राम से (शृंगवेरपुराधीशाद् रामतो लब्धजीविकः) तथा बालशास्त्री को मंडी के महाराजा विजयसेन सिंह से प्रभूत आर्थिक सहायता मिलती थी जिससे अपनी जीविका से निश्चिन्त होकर इन पण्डितों ने प्रचुर ग्रन्थों का प्रणयन किया। साहित्य के संवर्धन में काशीमण्डल के भी निवासी पण्डितों का क्रियाकल्प भी कम महत्त्वशाली नहीं है।

काशी में निर्मित साहित्य संस्कृत का सारभूत प्राणवान् साहित्य है। काशी के पण्डितों ने प्रत्येक शास्त्र के विकास में एक नवीन दिशा दिखलायी, एक नया मोड़ दिया, जिसके सूत्र को पकड़ कर ये शास्त्र उन्नति के मार्ग में अग्रसर होते गये। अनेक शास्त्रों के इतिहास में 'नव्य सम्प्रदाय' के प्रतिष्ठापन-प्रचारण का श्रेय इन पण्डितों को है जिन्होंने अपनी घोर तपस्या तथा साहित्य-साधना से देववाणी के भण्डार को अपने जीवन-रस से पूर्ण किया। काशी के इन्हीं मध्ययुगीय सारस्वत साधकों की साधना का संक्षिप्त वर्णन अगले पृष्ठों में किया जा रहा है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद तथा तन्त्र

काशी के मनीषियों ने वेद तथा तन्त्र का प्रगाढ़ अनुशीलन, अनुसन्धान तथा ग्रन्थ-निर्माण किया था। इन उभयविध शास्त्रों में ग्रन्थ प्रणयन का श्रेय पण्डितवर्य **महीधर** को दिया जाता है। ये वत्सगोत्रीय अहिच्छत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम विभिन्न रूपों में मिलता है – पूर्णभट्ट, पूर्णभद्र आदि। पितामह का नाम रत्नाकर था। ये मूलतः अहिच्छत्र (उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद मण्डल का रामनगर) के निवासी थे, परन्तु संसार की असारता की भावना से प्रेरित होकर वृद्धावस्था में, सम्भवतः अपने पुत्र 'कल्याण' के साथ काशी में चले आये। ये काशी में कालभैरव के निकट ही रहते थे और इन्होंने रामेश्वर शिव के निकट देहत्याग किया था। इनका समय षोडश शती का उत्तरार्ध मानना सर्वथा समुचित है।

वैदिक ग्रन्थों में इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है – (१) **वेददीप** जो माध्यन्दिन संहिता की विशद विस्तृत व्याख्या है। ग्रन्थ के आरम्भ में इन्होंने उवट तथा माधव (सायणाचार्य) के एतद्विषयक भाष्यों से अपनी अधमर्णता स्वीकार की है। (२) **चरणव्यूह टीका**; ३) कात्यायन शुल्वसूत्र की टीका (रचनाकाल १६४६ वि०—१५९० ई०) (४) **मन्त्र निघण्टु**, (५) **पुरुष सूक्त टीका** आदि इनके वेदसम्बन्धी इतर ग्रन्थ हैं। तन्त्रशास्त्र में भी इनकी वैदुषी नितान्त उच्चकोटि की थी। इस विषय में इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ **मन्त्रमहोदधि** है जिसपर इन्होंने स्वयं नौका नामक टीका लिखी (रचनाकाल १६४५ वि०—१५८८ ई०)। **मातृकार्णव निघण्टु** नामक लघुकाय तन्त्र ग्रन्थ का भी निर्माण इसी वर्ष किया गया। इन विषयों के अतिरिक्त इन्होंने वैष्णव साहित्य, वेदान्त तथा ज्यौतिष में भी ग्रन्थों का निर्माण किया।

अभिज्ञानशकुन्तल के प्रख्यात व्याख्याकार **राघवभट्ट** ने प्रसिद्ध तन्त्र ग्रन्थ 'शारदा तिलक' के ऊपर 'पदार्थादर्श' नामक व्याख्यान का प्रणयन काशी में ही किया (रचनाकाल १५५० वि० – १४९३ ई० है)। 'शारदा तिलक' के ही ऊपर एक नवीन टीका के रचयिता **प्रेमनिधि पन्त** काशी के ही निवासी थे। इस टीका का नाम है—**शब्दार्थ-चिन्तामणि**। ये भरद्वाज गोत्री कूर्माचलीय पण्डित उमापति पन्त के पुत्र थे। इनके तन्त्रशास्त्रीय इतर ग्रन्थ हैं—**कार्तवीर्यसपर्या, नित्याप्रयोग-रत्नाकर**। इनकी तृतीया विदुषी पत्नी **प्राणमञ्जरी** द्वारा विरचित तन्त्रराज की **सुदर्शना** टीका में भी इनका सहयोग अनुमानगम्य है। मीमांसा के प्रसिद्ध विद्वान् शम्भु भट्ट संन्यासी होने पर 'शंकरानन्द' नाम से प्रसिद्ध हुए और इसी नाम से तन्त्रशास्त्र में **सुन्दरी-महोदय** नामक एक अपूर्व ग्रन्थ का निर्माण किया (समय १८ शती का आरम्भिक काल)।

तन्त्रशास्त्र के इतिहास में काशी का नाम उजागर करने वाले **भास्करराय** इसी युग की एक जाज्वल्यमान विभूति थे। भास्करराज दीक्षित, भासुरानन्द, भास्करानन्द नाथ-इनके अपर नाम हैं। इनके पिता का नाम था गम्भीरराय दीक्षित तथा माता का कोनाम्बिका। पिता ने ही शैशवावस्था में इन्हें सारस्वत मन्त्र का उपदेश दिया था

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसकी आराधना से समस्त विद्याएँ एवं कलाएँ इनके स्वायत्त हो गयीं। इनके ग्रन्थ तन्त्र साहित्य के उज्ज्वल हीरक हैं जिनमें मुख्य हैं—**गुप्तवती** (दुर्गा सप्तशती की व्याख्या), **वरिवस्यारहस्य** (तान्त्रिकपूजा का रहस्य प्रकाशक ग्रन्थ), **सेतुबन्ध** (वामकेश्वर तन्त्र के अन्तर्गत 'नित्या षोडशी' की व्याख्या), **सौभाग्य भास्कर** ('ललितासहस्रनाम' का गम्भीरार्थ-प्रतिपादक भाष्य, रचना काल १७२८ ई०), **भावनोपनिषद् भाष्य** तथा **कौलोपनिषद्-भाष्य**। त्रिपुरा के महनीय साधक, उद्भट तान्त्रिक तथा चतुरस्र पाण्डित्य से मण्डित भास्करराय एक दिव्य विभूति थे। इनका मूलस्थान गुजरात था, परन्तु समस्त भारत का भ्रमण कर अन्त में काशी में ही स्थायी रूप से निवास करते थे। काशी में इनके द्वारा प्रचारित तन्त्रपरम्परा पर्याप्तरूपेण जागरूक रही तथा आज भी उसके अन्तर्भुक्त साधक विद्यमान बताये जाते हैं। इनके शिष्य **उमानन्द नाथ** (पूर्वाश्रम का नाम जगन्नाथ) ने १७४२ ई० में **हृदयामृत** तथा १७४५ ई० में **नित्योत्सवनिबन्ध** नामक तन्त्र ग्रन्थों का प्रणयन किया। इन ग्रन्थों के रचनाकाल से इनका समय १८वीं शती का मध्यकाल निश्चित होता है। इसी परम्परा में रामेश्वर ने परशुरामकल्पसूत्र की वृत्ति की रचना १७५३ शकाब्द (१८३१ ई०) में की।

पुराणेतिहास

पुराणेतिहास के महनीय ग्रन्थों के अर्थोद्घाटन का श्रेय काशी के दो विख्यात विद्वानों को प्राप्त है—

(१) **श्रीधर स्वामी** (१३५० ई०–१४५० ई० के आसपास) चतुर्दश शती में काशी में मणिकर्णिका घाट पर एक मठ में रहते थे जो उन्हीं के नाम से आज भी विख्यात है। ये किसी भिन्न प्रान्त के मूल निवासी थे। इन्होंने 'भावार्थदीपिका' व्याख्या द्वारा श्रीमद्भागवत के गम्भीर अर्थ का प्रकाशन किया जो इन्हीं के नाम पर **श्रीधरी** कहलाती है। विष्णुपुराण के मर्म का प्रकाशन इनकी दूसरी 'आत्मप्रकाश' टीका करती है। भगवद्गीता पर श्रीधरी सुबोध तथा सरल व्याख्या है और उसका 'सुबोधिनी' नाम यथार्थ है। **'भक्ति-रत्नावली'** के रचयिता विष्णुपुरीजी स्वामीजी के विशिष्ट भक्त थे। चैतन्य महाप्रभु श्रीधर स्वामी को भागवत के अर्थद्योतन के निमित्त प्रमाण मानते थे।

(२) महाभारत के अर्थ प्रकाशन का श्रेय **नीलकण्ठ** को देना सर्वथा समुचित है (समय १६५० ई०–१७०० ई०) जिनकी 'भारतभावदीप' नामक व्याख्या नितान्त लोकप्रिय है। इसके पहले महाभारत पर अनेक टीकाएँ विद्यमान[1] थीं परन्तु इस व्याख्या के प्रभाव के कारण वे प्रायः विस्मृत हो गयी हैं। इनका मूलस्थान महाराष्ट्र

---

१. द्रष्टव्य बलदेव उपाध्याय : संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ६६–७० (दशम सं० १९७८ ई०, काशी)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में था जहाँ से आकर ये काशी में बस गये थे। भावदीप का निर्माण काशी में ही हुआ। इन्होंने 'मन्त्र रामायण' तथा 'मन्त्रभागवत' नामक अपूर्व ग्रन्थों में ऋग्वेद के मन्त्रों के द्वारा क्रमशः रामकथा तथा कृष्णकथा का वर्णित होना सिद्ध किया है। इनके पुत्र-पौत्रों ने भी नाना विषय के ग्रन्थों का निर्माण किया है।

न्याय-वैशेषिक

शंकर मिश्र—न्याय-वैशेषिक दर्शन के विकास में भी काशी के विद्वानों का क्रिया-कलाप नितान्त महत्त्पूर्ण तथा आदरणीय है। मिथिला के सर्वश्रेष्ठ नैयायिक शंकर मिश्र ने काशी में निवास करते समय ही अपनी सर्वश्रेष्ठ कृति की रचना की जिनके नाम हैं (१) **उपस्कार** तथा (२) **भेदरत्न प्रकाश**। उपस्कार महर्षि कणाद के वैशेषिक सूत्रों की सर्वश्रेष्ठ वृत्ति है जिसमें मूलग्रन्थ के गम्भीर सिद्धान्तों के रहस्य का उद्घाटन है। 'भेदरत्न प्रकाश' न्यायशास्त्र के भेदवादी दृष्टिकोण को प्रकाशित करने वाला मौलिक ग्रन्थ है। इस 'भेदरत्न प्रकाश' ग्रन्थ की एक हस्तलिखित प्रति का लेखन काल १५१९ वि० (१४६८ ई०) है जो जम्मू के रघुनाथ मन्दिर के पुस्तकालय में सुरक्षित है। यह प्रति उनके जीवन काल में ही लिखी गई थी। अतः इनका समय १५ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। ये मिथिला के 'सरखव' गाँव के निवासी थे। इनके पूज्य पिता पण्डित भवनाथ मिश्र भी उस समय के प्रकाण्ड विद्वान् समझे जाते थे।

शंकर मिश्र ने अपने विद्वान् पिता से सकल शास्त्रों का अध्ययन किया था। परन्तु पिता जी ने इनकी विद्या को अधिक प्रखर करने के लिए इन्हें अध्ययनार्थ काशी भेजा। यहाँ शंकर मिश्र ने अत्यन्त ख्याति प्राप्त की। इनके बढ़ते हुए यश को देखकर काशी के पण्डितों में ईर्ष्या की भावना जाग्रत हुई और उन्होंने इनके चरित्र पर कल्पित तथा असत्य आरोप लगाकर इनके पिता के पास पत्र प्रेषित किया। पिता भवनाथ मिश्र ने अपने पुत्र को जो पत्र भेजा वह इस प्रकार श्लोकरूप में है :

"शैत्यं नाम गुणस्तवैव तदनु स्वाभाविकी स्वच्छता,
किं ब्रूमः शुचितां भवन्ति शुचयः स्पर्शेन यस्यापरे ॥
किं वाऽतः परमुच्यते स्तुतिपदं त्वं जीवनं जीविनां,
त्वं चेन्नीचपथेन गच्छसि पुनः कस्त्वां निरोद्धुं क्षमः ॥

इस श्लोकबद्ध पत्र को पाकर अपनी सफाई देते हुए इनके पुत्र शंकर मिश्र ने जो उत्तर भेजा वह निम्नांकित है :

"तापो नापगतस्तृषा न च कृशा, धौता न धूलिस्तनोः,
न स्वच्छन्दमकारि कन्दकवलः, का नाम केलेः कथा।
दूरोत्क्षिप्तकरेण हन्त ! करिणा स्पृष्टा न वा पद्मिनी,
प्रारब्धो मधुपैरकारणमहो झाङ्कारकोलाहलः ॥

इस अभिराम पद्य में अन्योक्ति के द्वारा शंकर मिश्र ने अपनी निर्दोषता तथा 'मधुप' शब्द के प्रयोग से काशी के पण्डितों की लम्पटता की ओर संकेत बहुत ही सरस शब्दों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में किया है। इस उत्तर को पाकर इनको सावधान करते पिता जी ने यह पत्र पुनः प्रेषित किया।

"परीवादस्तथ्यो भवतु वितथो वाऽपि महतां,
तथाऽप्युच्चैर्धाम्नां हरति महिमानं जनरवः।
तुलोत्तीर्णस्यापि प्रकटितहताशेष-तमसो,
रवेस्तादृक् तेजो नहि भवति कन्यां गतवतः॥

यहाँ 'कन्या' शब्द श्लिष्ट है। भाव यह है कि जिस प्रकार कन्या राशि में संक्रान्त होने पर सूर्य का भी तेज कम हो जाता है उसी प्रकार किसी कन्या से सम्पर्क करना कीर्ति को नष्ट करने वाला सिद्ध हो सकता है। इस पत्र को पाकर सदाचारी तथा दृढ़प्रतिज्ञ शंकर मिश्र ने परीवाद से नहीं डरना चाहिए इस आशय का उत्तर पिता के पास भेजा

"सुधांशोर्जातेयं कथमपि कलङ्कस्य कणिका,
विधातुर्दोषोऽयं न च गुणनिधेस्तस्य किमपि।
स किं नात्रेः पुत्रो हरशिरसि चूडार्चनमणिः,
न वा हन्ति ध्वान्तं, जगदुपरि किं वा न वसति॥

इसमें शंकर मिश्र ने चन्द्रमा के साथ अपनी तुलना करते हुए अपने चरित्र के कल्पित कलंक को निन्दकों की काली करतूत सिद्ध किया।

पिता-पुत्र के इस साहित्यिक पत्र-व्यवहार से पता चलता है कि शंकर मिश्र खूसट नैयायिक नहीं थे, प्रत्युत एक स्निग्धहृदय सरस कवि थे। इनका समय १५वीं शती का उत्तरार्ध है।

इसी काल के एक नितान्त प्रौढ़ गौडीय नैयायिक का भी कार्यक्षेत्र काशी ही था। नाम इनका था **प्रगल्भ** अथवा शुभङ्कर। काशी में ही इन्होंने 'तत्त्व चिन्तामणि' का अध्यापन आरम्भ किया था जिसके चारों खण्डों पर इनकी प्रमेयबहुला टीका थी तथा उसके विद्वान् रचयिता की कीर्ति पर्याप्तरूपेण सर्वत्र व्याप्त रही। **'खण्डन-दर्पण'** नामक वेदान्त ग्रन्थ में प्रगल्भाचार्य ने अभिनव वाचस्पति के खण्डनोद्धार का खण्डन कर श्रीहर्ष के खण्डन खण्ड खाद्य' का मण्डन किया है। 'न्याये प्रगल्भ.' वाक्य इनकी प्रौढ़ नैयायिक वैदुषी का स्पष्ट परिचायक है।

१६ वीं शताब्दी में अनेक तार्किकों ने काशी को अपनी कर्मस्थली बनाया जिनमें नरहरि विशारद, रुद्र न्यायवाचस्पति, विश्वनाथ सिद्धान्तपञ्चानन, महेश ठक्कुर तथा भवानन्द सिद्धान्तवागीश के नाम उल्लेखनीय हैं। नरहरि विशारद प्रख्यात नैयायिक तथा कृष्णभक्त वासुदेव सार्वभौम के पिता थे जो १६वीं शती के बंगाली पण्डितों में प्रधान थे।

नवद्वीप में नव्यन्याय विद्यापीठ की स्थापना का श्रेय प्रख्यात नैयायिक रघुनाथ शिरोमणि के गुरु वासुदेव सार्वभौम को दिया जाता है। इन्होंने भी काशी में वेदान्त के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्ययनार्थं कतिपय वर्षों तक निवास किया था और काशी में ही उन्होंने मिथिला में कंठस्थ किये गये तत्त्वचिन्तामणि एवं न्यायकुसुमाञ्जलि को अपनी अलौकिक मेधा के सहारे अक्षरशः लिपिबद्ध किया था। इसका परिचय अन्यत्र लिखा गया है।

विशारद जी के ही कनिष्ठ आत्मज विद्या वाचस्पति के पुत्र **विद्यानिवास भट्टाचार्य** भी काशो में ही रहकर अपनी कीर्ति का विस्तार करते थे। ये भी प्रौढ़ नैयायिक थे, परन्तु दुर्भाग्यवश उनके न्यायशास्त्रीय ग्रन्थों का पता नहीं चलता। इस विषय में इनके दोनों प्रख्यात पुत्र अपने पिता से भी अधिक भाग्यशाली थे। विद्यानिवास के कनिष्ठ पुत्र **विश्वनाथ सिद्धान्तपञ्चानन** की अनेक नैयायिक रचनाओं में **न्यायसूत्र वृत्ति** (रचनाकाल १५५६ शकाब्द = १६३४ ई०) नितान्त प्रख्यात है। 'भाषा परिच्छेद' तथा न्यायमुक्तावली' इनके ही ग्रन्थ माने जाते हैं, परन्तु नई खोज से ये कृष्णदास सार्वभौम की रचनाएँ प्रतीत होती हैं।[1] इनके ज्येष्ठ भ्राता **रुद्र न्यायवाचस्पति** एक ही साथ कवि तथा नैयायिक थे। इन्होंने जयपुर नरेश राजा मानसिंह के पुत्र भावसिंह के प्रसादनार्थ जहाँ **भावविलास** अन्योक्तिपरक काव्य का प्रणयन किया, वहीं तत्त्वचिन्तामणि, कुसुमाञ्जलि कारिका, रघुनाथ शिरोमणि रचित 'चिन्तामणि दीधिति' आदि अनेक प्रौढ़ न्यायशास्त्रीय ग्रन्थों पर प्रमेयबहुल टीकाओं की भी रचना की। **महेश ठक्कुर** मिथिला के वर्तमान राजवंश के संस्थापक के रूप में पर्याप्तरूपेण प्रख्यात हैं, परन्तु उनका दार्शनिक वैदुष्य भी प्रथम कोटि का था और उसी के बल पर उन्होंने मिथिला का राज्य प्राप्त किया। वे काशी में ही रहते थे और उन्होंने गङ्गेश उपाध्याय के 'तत्त्वचिन्तामणि' की पक्षधर मिश्र रचित 'आलोक' नाम्नी टीका की व्याख्या 'दर्पण' नाम से लिखी। नैयायिक होने पर भी वे वेदान्त पर श्रद्धालु थे और न्याय की अपेक्षा उसे ही 'श्रुति-स्मृति-पुराण-शिष्टानुशिष्ट' मानते थे। इसी शती के अन्त में हम बंगाल के एक लब्धप्रतिष्ठ नैयायिक को काशी में निवास करते पाते हैं। इनका नाम था— **भवानन्द सिद्धान्तवागीश**। इन्होंने 'चिन्तामणि दीधिति' पर प्रौढ़ व्याख्या लिखी थी जो इन्हीं के नाम पर **भवानन्दी** नाम्ना प्रख्यात हुई, परन्तु नवद्वीप के बंगीय विद्वानों ने असूयावश इसकी विपरीत आलोचना की। फलतः भवानन्दी बंगाली नैयायिकों की दृष्टि में सर्वदा उपेक्षित ही रही। इसका आदर काशी में विशेष हुआ महाराष्ट्र पण्डितों के द्वारा, क्योंकि काशी के ही एक महाराष्ट्र विद्वान् ने बंगीय विद्वानों के द्वारा प्रचारित दोषाभासों से इसका उद्धार कर भवानन्द के तार्किक वैदुष्य का प्रमाणपुरःसर समर्थन किया। इनका नाम था — **महादेव पुणताम्बेकर**।

इनका वंश सम्भवतः १६वीं शती के अन्त अथवा १७वीं के प्रारम्भ में ही अपने मूल स्थान गोदावरी-तीरस्थ पुण्यस्तम्भ नामक स्थान से काशी में आया था। महादेव पुणताम्बेकर अपने वंश के सबसे बड़े विश्रुत विद्वान् तथा प्रौढ़ नैयायिक थे। भवानन्द सिद्धान्तवागीश पर इनकी बड़ी आस्था थी। महादेव ने इनकी भवानन्दी टीका पर विशाल व्याख्या लिखी जिसका नाम है—**भवानन्दी-प्रकाश**। यह बड़ी ही विस्तृत

१. दिनेशचन्द्र भट्टाचार्य : वंगे नव्यन्यायचर्चा, पृ० ११७–२०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टीका है जो भवानन्दी के सिद्धान्तों पर गौडीय नैयायिकों द्वारा आरोपित विपरीत आलोचना का खण्डन कर मूल लेखक के भावों का मण्डन करती है। इसका एक लघु संस्करण भी इन्होंने तैयार किया था **'सर्वोपकारिणी'** नाम से। काशी में इनका परिवार आज भी विद्यमान है। परिवार के पुस्तकालय में इनके स्वहस्तलिखित अनेक ग्रन्थ हैं जिनमें सबसे प्राचीन काल का निर्देश सम्वत् १७२७ विक्रमी (१६७० ई०) है। इससे १७वीं शती के उत्तरार्ध में इनका आविर्भाव काल सिद्ध होता है। तब से लेकर आज तक काशी में न्याय के दोनों सम्प्रदायों के ग्रन्थों के पठन-पाठन की परम्परा जागरूक है। इस युग के विद्वानों ने अनेक टीका-ग्रन्थों का प्रणयन भी किया है।

सांख्ययोगदर्शन

सांख्य तथा योगदर्शन के इतिहास में काशी के एक विश्रुत सांख्य-योगाचार्य का नाम अपनी प्रौढ़ता तथा मौलिकता के लिए सर्वदा उल्लेखनीय रहेगा। इनका नाम है **विज्ञान भिक्षु** और इनके आविर्भाव का काल है १६वीं शती। इनके अभिधान में 'भिक्षु' शब्द को देखकर यह सम्भावना प्रतीत होती है कि ये संन्यासी थे, परन्तु तथ्य यह नहीं है। ये संन्यासी नहीं थे, प्रत्युत इन्होंने अद्वैतियों का प्रबल खण्डन अपने ग्रन्थों में किया है और इस विषय में इनका एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही विद्यमान है—**पाषण्ड-मत-खण्डन** जिसमें शंकर मतानुयायियों को 'पाषण्ड' कह कर तिरस्कृत किया गया है। अन्यत्र 'वेदान्तिध्रुव' शब्द द्वारा उनका उपहास किया गया है। इन्होंने 'ब्रह्मसूत्र' पर **'विज्ञानामृत भाष्य'** का निर्माण कर अपने वेदान्त-विषयक मतवाद का प्रतिपादन किया जो 'अविभागाद्वैत' नाम्ना संकेतित किया जाता है। इस मत के अनुसार जगत् के समस्त पदार्थों से अविभक्त ब्रह्म ही एक अद्वैत तत्त्व है।

सांख्य दर्शन को इन्होंने एक नवीन दिशा की ओर विकसित किया। औपनिषद सांख्य ईश्वरवादी है और वह वेदान्त के समकक्ष है। कपिल ने 'सांख्यसूत्र' में ईश्वर का खण्डन नहीं किया, परन्तु ईश्वर कृष्ण द्वारा विरचित 'सांख्यकारिका' में व्याख्यात सांख्य निरीश्वरवादी है और इसी का प्रमुख मण्डन 'प्रधानमल्ल निवर्हण' न्याय से आचार्य शंकर ने अपने ब्रह्मसूत्र शारीरक भाष्य में बड़ी प्रौढ़ता तथा दृढ़ आस्था से किया।[1] सांख्यदर्शन के इस अनीश्वरवादी रूप का विज्ञान भिक्षु ने बड़ी विशदता से सांख्यसूत्र के स्वनिर्मितभाष्य **सांख्यप्रवचनभाष्य'** में खण्डन किया और उसे विशुद्ध औपनिषदस्वरूप प्रदान करने का श्रेय इसीलिए उन्हें दिया जाता है। व्यासकृत पातञ्जलयोगभाष्य पर विज्ञानभिक्षु ने **योगवार्तिक** नामक एक प्रमेयबहुल व्याख्यान

---

१. अतः प्रधानमल्लनिवर्हणन्यायेनातिदिशति। एतेन प्रधानकारणवाद-प्रतिषेध-न्यायकलापेन सर्वेऽण्वादिकारणवादा अपि प्रतिषिद्धतया व्याख्याता वेदितव्याः।

—शारीरकभाष्य १।४।२८

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का निर्माण किया जिसमें वाचस्पति मिश्र कृत 'तत्त्ववैशारदी' की विभिन्न स्थलों पर समालोचना की गई है। योगदर्शन के अध्ययन के लिए यह वृहद् ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है। **सांख्यसार** तथा **योगसार संग्रह** दोनों दर्शनों के सिद्धान्त संक्षेप में प्रस्तुत करते हैं।

विज्ञानभिक्षु के तीन प्रधान शिष्य माने जाते हैं—(१) **प्रसादमाधव** योगी, जिन्होंने **कारिकाभाष्य** या '**कारिकार्थविनिश्चय**' नामक ग्रन्थ में 'एकया द्वे विनिश्चित्य' इस प्रसिद्ध कारिका[1] पर भाष्य लिखा। (२) **भावागणेश दीक्षित**—ये **तत्त्वयाथार्थ्यदीपन** नामक तत्त्वसमास की व्याख्या के प्रणेता हैं। (३) **दिव्यसिंह मिश्र,** जिन्होंने प्रसादमाधव रचित 'शारीरककारिका भाष्य' पर वार्तिक की रचना की थी। इनके मत में प्रसादमाधव ही विज्ञान भिक्षु के मुख्य छात्र थे, परन्तु ख्याति भावागणेश की ही अधिक हुई थी।

मीमांसा

मीमांसा दर्शन के इतिहास में भी काशीस्थ विद्वानों का योगदान कम महत्त्व का नहीं है। यहीं के प्रख्यात मीमांसक **खण्डदेव** मिश्र ने मीमांसा शास्त्र को एक नवीन दिशा विकास के लिए प्रदान की। इन्होंने ही सर्वप्रथम तत्त्वचिन्तामणि द्वारा उद्भासित नव्यन्याय की शैली का प्रयोग मीमांसा के व्याख्यान में किया जिससे मीमांसा के मौलिक सिद्धान्तों का आविष्कार और परिष्कार अभिनव प्रकार से किया गया। इसीलिए खण्डदेव भट्टसम्प्रदाय के इतिहास में 'नवीन मत' के संस्थापक के रूप में सर्वदा ही समादृत तथा विश्रुत रहेंगे। इनके पिता का नाम 'रुद्रदेव' था। ये काशी के ही ब्रह्मनाल मुहल्ले में रहते थे। खण्डदेव मिश्र का व्यक्तित्व पूर्णतया अज्ञात है। फलतः यह कहना दुष्कर है कि ये काशी-मण्डल के ही ब्राह्मण थे अथवा मिथिला या बंगाल के मूल निवासी थे। इनके प्रधान शिष्य शम्भुभट्ट के कथनानुसार इनकी मृत्यु १७७२ वि० सं० (= १६६५ ई०) में हुई। अतः इनका आविर्भावकाल १६०० ई०—१६६५ ई० सामान्यतः मानना सर्वथा उचित है।

इनके तीन प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं—**भाट्टकौस्तुभ, भाट्टदीपिका** तथा **भाट्टरहस्य**। भाट्टकौस्तुभ मीमांसासूत्र के बलाबलाधिकरण तक (३।३।७) का बड़ा ही विस्तृत, विशद तथा नव्य नैयायिक शैली में निबद्ध तर्कबहुल व्याख्यान है। भाट्टकौस्तुभ एवं भाट्टदीपिका दोनों में तर्कपाद की टीका इन्होंने नहीं लिखी ऐसा इनके शिष्य शम्भुभट्ट का कथन है। भाट्टदीपिका इनका मौलिक ग्रन्थरत्न है जिसका अध्ययन मीमांसा में पाण्डित्य की पूर्ण सिद्धि के लिए नितरां अपेक्षित है। यह निबन्ध ग्रन्थ है—स्वतन्त्र विवेचना से मण्डित तथा नवीन रहस्यों का प्रकाशक। भाट्टरहस्य इन दोनों ग्रंथों से विषय विवेचन में पार्थक्य रखता है। इसमें मीमांसा शास्त्रानुसार शाब्दबोध का प्रौढ़

---

१. एकया द्वे विनिश्चित्य त्रींश्चतुर्भिर्वशीकुरु।
पञ्च जित्वा विदित्वा षट् सप्त हित्वा सुखी भव॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवेचन तथा प्रतिपादन है। काशी के इस मीमांसकमूर्धन्य के ये तीनों ग्रन्थ मीमांसा में पाण्डित्य के निकषग्रावा हैं।

खण्डदेव अप्पय दीक्षित का बड़ा आदर करते थे। जब दीक्षित जी काशीवास करते थे, तब उनसे इनका परिचय होना प्रतीत होता है। काशीवास के समय में दीक्षित जी ने क्या लिखा? इसका पता नहीं चलता। खण्डदेव ने अपने ग्रन्थों में इनका 'मीमांसक मूर्धन्य' नाम से सातिशय आदर के साथ उल्लेख किया है। खण्डदेव से लगभग एक शताब्दी पूर्व **रामकृष्णभट्ट** ने **'युक्तिस्नेह-प्रपूरणी'** नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया था (रचनाकाल १६०० वि० सं० = १५४३ ई०) जिसमें शास्त्र-दीपिका के तर्कपादान्त भाग की टीका प्रस्तुत की गई है। मुख्यतः यह टीका ही है, परन्तु प्रसंगतः नाना शास्त्रों के विषय विवेचित किये गये हैं। इनके पिता पाराशर-गोत्री माधव भट्ट अपने देश मालवा से काशी में आये। रामकृष्ण का जन्म काशी में ही हुआ। समय १६ शती का मध्य भाग।

भट्टकुल के प्रख्यात धर्मशास्त्री नारायणभट्ट के पुत्रों तथा पौत्रों ने मीमांसा शास्त्र के विषय में प्रमेयबहुल ग्रन्थों का निर्माण कर इस शास्त्र के इतिहास में अपना नाम अमर कर दिया। नारायणभट्ट के दो पुत्र थे—रामकृष्णभट्ट तथा शंकरभट्ट। इनमें शंकरभट्ट की मीमांसाविषयक रचनाएँ संख्या में अधिक तथा महत्त्व में विश्रुत हैं। रामकृष्णभट्ट की एक ही रचना मिलती है और वह है—कुमारिल के तन्त्रवार्तिक की टीका, परन्तु शंकरभट्ट की चार रचनाएँ प्रख्यात हैं—

(१) **शास्त्रदीपिका प्रकाश**—पार्थसारथि मिश्र (लगभग १०५० ई०—११२० ई०) की विश्रुत रचना शास्त्रदीपिका की यह अभिराम व्याख्या है।

(२) **मीमांसा बालप्रकाश**—यह एक प्रकरणग्रन्थ है जिसमें जैमिनि मीमांसा-सूत्र के समग्र १२ अध्यायों के विषयों का सारांश प्रस्तुत किया गया है। (चौखम्भा, काशी १६०२)।

(३) **मीमांसासार-संग्रह**—जो पद्यों में मीमांसा के मूलसिद्धान्तों का विवरण प्रस्तुत करता है (काशी, १६०४ में प्रकाशित)।

(४) **विधिरसायन-दूषण**—प्रसिद्ध शैवदार्शनिक अप्पयदीक्षित के 'विधिरसायन' में प्रतिपादित सिद्धान्तों का खण्डन खण्डदेव के साक्षात् शिष्य **शम्भुभट्ट** ने अपने गुरु के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भाट्टदीपिका' की अपनी व्याख्या 'प्रभावती' में स्पष्ट शब्दों में संकेत किया है कि खण्डदेव मिश्र ने अनेक स्थलों पर 'प्रकाशकार' को निर्दिष्ट किया है तथा यह प्रकाशकार 'विधि रसायन दूषण' के प्रणेता हैं। इससे स्पष्ट है कि शंकरभट्ट अप्पयदीक्षित तथा खण्डदेव के मध्यकाल में उत्पन्न हुए थे। फलतः इनका आविर्भाव काल १५५० ई० से १६२५ ई० तक मानना समुचित प्रतीत होता है। नारायणभट्ट (१५१३ ई०—१५७३ ई०) के पुत्र होने से इस तथ्य की पर्याप्त पुष्टि होती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमलाकर भट्ट शंकर भट्ट के ही अग्रज रामकृष्ण भट्ट के आत्मज थे। धर्मशास्त्र के क्षेत्र में इनकी अलौकिक प्रतिभा का दर्शन होता ही है। मीमांसा में भी इनके दो ग्रन्थ मिलते हैं—(१) तन्त्रवार्तिक 'तात्पर्य' नामक व्याख्यान तथा (२) शास्त्रदीपिका की 'आलोक' नामक व्याख्या। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ **निर्णयसिन्धु** की रचना की समाप्ति माघ कृष्ण चतुर्दशी विक्रम संवत् १६६८ में हुई थी जो अंग्रेजी गणना से १६१२ ईस्वी की २० फरवरी को पड़ती है। फलतः इनका आविर्भाव १६०० ई० से १६५० ई० तक मानना समुचित है।

दिनकर भट्ट या दिवाकर भट्ट—कमलाकर भट्ट के ही भ्राता थे। ये मीमांसाशास्त्र के बड़े ही प्रकृष्ट विद्वान् के रूप में प्रसिद्ध हैं। इन्होंने जैमिनीय मीमांसा दर्शन के समग्र द्वादश अध्यायों पर संक्षिप्त वृत्ति का प्रणयन किया है जो शास्त्रदीपिका के आदर्श पर लिखी गई है। कमलाकर के अनुज होने से इनका समय उनसे कुछ हट कर होना चाहिए—१६२० ई०–१६७० ई०।

इन दोनों भ्राताओं के पुत्रों ने भी मीमांसा के ग्रन्थों का निर्माण किया है, जिनमें कमलाकर भट्ट के पुत्र **अनन्त भट्ट** की रचना **शास्त्रमालावृत्ति**, जो शास्त्रदीपिका के ढंग पर मीमांसा सूत्रों की लघुकाय वृत्ति है, अभी तक मुद्रित नहीं हो पाई है, परन्तु दिवाकर भट्ट के आत्मज गागाभट्ट (जो विश्वेश्वर भट्ट नाम्ना भी प्रसिद्ध हैं) की मीमांसा-रचना इस विषय में अधिक सौभाग्यशाली है कि वह मुद्रित है तथा लोकप्रिय है। यह है उनका ग्रन्थ **भाट्टचिन्तामणि** जो जैमिनि सूत्रों के बारहों अध्यायों की महत्त्वपूर्ण विस्तृत व्याख्या है। इनके अन्य दो ग्रन्थ हैं **शिवार्कोदय** (श्लोकवार्तिक की टीका) तथा **कुसुमाञ्जलि** (सूत्रों की वृत्ति, जो भाट्टचिन्तामणि में निर्दिष्ट की गई है)। गागाभट्ट ने छत्रपति महाराज शिवाजी का राज्याभिषेक १६७४ ई० में सम्पन्न कराया था और वे उस युग के काशी के पण्डितों, विशेषतः महाराष्ट्रीय पण्डितों में, सर्वश्रेष्ठ विद्वान् माने जाते थे। उनका समय इस प्रकार १७ वीं शती का उत्तरार्ध माना जाता है—१६४० ई०–१७०० ई०। लौगाक्षिभास्कर का 'अर्थसंग्रह' १७ वीं सदी की एक नितान्त लोकप्रिय पुस्तक है जिसे हम मीमांसा का प्राइमर कह सकते हैं।

काशी के प्रख्यात मीमांसक शम्भु भट्ट गागाभट्ट के ही समकालीन थे। इनका भी समय १७ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है (१६५० ई०–१७०० ई०)।

खण्डदेव मिश्र के दो शिष्यों का परिचय हमें प्राप्त है जिनमें एक हैं शम्भुभट्ट और दूसरे हैं **पेरुभट्ट** (पण्डितराज जगन्नाथ के पिता, जिनका उल्लेख पण्डितराज ने रस गङ्गाधर के आरम्भिक पद्य में किया है देवादेवाध्यगीष्ट स्मरहर-नगरे शासनं जैमिनीयम्)। पेरुभट्ट की रचना का संकेत नहीं मिलता, परन्तु शम्भुभट्ट ने अपने गुरु खण्डदेव के प्रमुख ग्रन्थ भाट्टदीपिका के ऊपर **प्रभावली** नामक अपनी प्रख्यात व्याख्या का प्रणयन किया जो नितान्त प्रामाणिक एवं लोकप्रिय मानी जाती है। शम्भुभट्ट

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खण्डदेव के साक्षात् शिष्य हैं जिसका उल्लेख प्रभावली के आरम्भ के इस पद्य में मिलता है—

यो वेद-शास्त्रार्णवपारदृश्वा
यज्ञादिकर्माचरणेऽतिदक्षः।
सदाशिवाराधन-शुद्धचित्तः
तं बालकृष्णं पितरं नमामि।
श्री खण्डदेवं प्रणिपत्य सद्गुरुं
मीमांसकस्वान्तसरोजभास्करम्।

इनके पिता का नाम **बालकृष्ण भट्ट** था जो वेद तथा शास्त्र के पारगामी विद्वान्, यज्ञादि कर्मों के अधिष्ठाता एवं भगवान् शंकर की आराधना से शुद्धचित्त भक्त थे। शम्भुभट्ट साक्षात् शिष्य होने के नाते अपने गुरुदेव खण्डदेव के मन्तव्यों को भली-भाँति जानते थे और इसीलिए यह टीका मूल ग्रन्थ के सिद्धान्तों का यत्र-तत्र उपबृंहण भी करती है। यह बहुत ही विस्तृत व्याख्या है जो मीमांसा के नव्यमत की पर्यालरूपेण पुष्टि करती है। प्राचीन मीमांसकों का जैसे पार्थसारथि मिश्र, अप्पय दीक्षित, आपदेव तथा शंकरभट्ट आदि आचार्यों का—प्रभूत खण्डन भी यहाँ उपलब्ध होता है।

इस प्रकार काशी के पूर्वोक्त मीमांसकों ने प्राचीन मीमांसा ग्रन्थों पर व्याख्या-निर्माण के साथ हो साथ मीमांसा दर्शन में नव्यमत की प्रतिष्ठा की। इससे मीमांसा-शास्त्र के प्रभूत उपबृंहण, प्रचारण एवं नव्य दिशा के दर्शन के कारण काशीस्थ मीमांसकों का नाम इस शास्त्र के इतिहास में **चिरस्मरणीय** रहेगा।

वेदान्त

काशीस्थ मनीषियों ने वेदान्त के प्रसार तथा प्रचार के निमित्त जो कार्य किया, वह वेदान्त के इतिहास में सुवर्णाक्षरों से अंकित करने योग्य है। तथ्य तो यह है वेदान्त की सार्वभौम मौलिक रचनाओं के निमित्त दार्शनिक समाज काशी के विद्वानों का चिर ऋणी रहेगा। इस अभिनव प्रयास में विरक्त संन्यासियों तथा अनुरक्त गृहस्थों दोनों का सम्मिलित योगदान सर्वदैव श्लाघनीय तथा स्मरणीय रहेगा। विद्वान् संन्यासियों का योगदान अधिक होने से निःसन्देह मननीय तथा माननीय है। इनके रचनाकलाप के अनुशीलन करने से एक विशिष्ट तथ्य की अभिव्यक्ति होती है और वह है ज्ञानमार्गी ग्रन्थों के प्रणयन के साथ ही भक्तिमार्गी ग्रन्थों का निर्माण। यह तथ्य कतिपय संन्यासियों की रचनाओं के द्वारा ही परिस्फुटित होता है अवश्य, परन्तु इसका अपलाप कथमपि नहीं किया जा सकता। 'अद्वैतसिद्धि' के प्रणेता श्री मधुसूदन सरस्वती एक साथ ही प्रौढ़ दार्शनिक तथा सहृदय भक्त दोनों थे। 'अद्वैतसिद्धि' जैसे प्रमेयबहुल तार्किक ग्रन्थ के निर्माण का श्रेय जहाँ उन्हें प्राप्त है, वहीं 'भक्तिरसायन' जैसे भक्तिरस के प्रतिष्ठापक ग्रन्थ की रचना का गौरव भी उन्हें उपलब्ध है। नारायण-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीर्थ का भी वैदुष्य इसी प्रकार का था। जहाँ उन्होंने वेदान्त, सांख्य, योग तथा न्याय-वैशेषिक के विषय में ग्रन्थों का निर्माण किया, वहीं शांडिल्यकृत भक्तिसूत्र की भी **'भक्तिचन्द्रिका'** नाम्नी अपूर्व व्याख्या की रचना की जिसमें भक्तिशास्त्र के महनीय सिद्धान्तों का परिष्कार बड़े कौशल तथा वैशद्य से किया गया है। इसे काशीस्थ संन्यासियों का वैशिष्ट्य मानना कथमपि अनुचित न होगा। और लेखक की दृष्टि में श्रीमद्भागवत का गम्भीर अध्ययन इस वैशिष्ट्य का साधक प्रमाण माना जा सकता है। श्रीमद्भागवत में अद्वैत के साथ भक्ति का मञ्जुल समन्वय प्रस्तुत किया गया है। भागवत दोनों के साहचर्य तथा सामरस्य का प्रतिपादक एक गम्भीरार्थद्योतक दिव्य-ग्रन्थ है जिसके अध्ययन से अद्वैतवादी संन्यासियों का दार्शनिक सिद्धान्त भक्तिरस से स्निग्ध तथा मञ्जुल है। काशी के अद्वैती संन्यासियों की यह परम्परा आज भी जागरूक है। आज भी करपात्रीजी महाराज की जहाँ कट्टर अद्वैत के प्रतिपादन में तार्किक बुद्धि का विलास मिलता है, वहीं 'रासपञ्चाध्यायी' के विशद अनुशीलन में तथा 'भक्तिरसार्णव' जैसे भक्तिरस के संस्थापक ग्रंथ के निर्माण में उनका भक्तिरसाप्लुत स्निग्ध हृदय भी अभिव्यक्त होता है।

आदि शङ्कराचार्य ने काशी को अपनी कर्मस्थली बनाकर उसे गौरव ही प्रदान नहीं किया, प्रत्युत उस प्राचीन परम्परा का ही अनुसरण किया जो विद्वानों को अपने सिद्धान्तों के परीक्षण तथा समीक्षण के लिए काशी में आने के लिए आग्रह करती थी। आचार्य शंकर ने अपने ग्रन्थों का निर्माण कहाँ किया ? इस प्रश्न के उत्तर में विद्वानों में ऐकमत्य नहीं है ? कुछ तो बदरीनाथ के पास 'व्यास गुहा' को भाष्यों की रचना का स्थल मानते हैं[1], परन्तु अधिकांश आलोचक काशी को इसके लिए गौरव प्रदान करते करते हैं। जो कुछ भी हो, काशी में वेदान्त-भाष्य के अध्ययन-अध्यापन का कार्य अवश्य ही सुसम्पन्न हुआ। फलतः काशीस्थ विद्वानों का अद्वैत के प्रति दृढ़ आग्रह और अद्वैतविषयक ग्रन्थों के प्रणयन के प्रति नैसर्गिक निष्ठा बोधगम्य है। यहाँ विशिष्ट वेदान्त तत्त्वज्ञों का ही संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

द्वादश शती के अन्तिम चरण में नैषधचरित 'महाकाव्य' के रचयिता श्रीहर्ष (श्रीहर्ष मिश्र) ने "खण्डन-खण्ड-खाद्य" जैसे प्रौढ़ ग्रन्थ की रचना कर नव्यन्याय की शैली में द्वैत मत का तीव्र खण्डन कर अद्वैत मत की वैजयन्ती फहराई। उनसे पूर्व-युग के प्रख्यात नैयायिक उदयन के मौलिक ग्रन्थ तात्पर्य-परिशुद्धि, बौद्धधिक्कार तथा 'न्याय कुसुमाञ्जलि' श्रीहर्ष की आलोचना के मुख्य लक्ष्य हैं। इन तीनों में प्रतिपादित मतों का खण्डन श्रीहर्ष ने बड़ी मार्मिकता से 'खण्डन खण्ड खाद्य' में किया।[2] फलतः

---

१. द्रष्टव्य – बलदेव उपाध्याय : श्री शङ्कराचार्य पृ० ९३, द्वितीय सं०, प्रकाशक हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, १९६३।

२. द्रष्टव्य बलदेव उपाध्याय : संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० २२७, नवीन सं०, शारदा मन्दिर, वाराणसी, १९७३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्याय के द्वैतमत का गम्भीर आलोचन तथा खण्डन एवं अद्वैतमत का मण्डन तथा संस्थापन श्रीहर्ष का बहुचर्चित कार्य है। श्रीहर्ष कान्यकुब्ज के ब्राह्मण थे। पिता का नाम था हीरमिश्र, माता का मामल्लदेवी। आश्रयदाता थे गहड़वाल वंशी विजयचन्द्र तथा उनके पौत्र जयचन्द्र जिन्होंने मिलकर ११५६ ईस्वी से लेकर ११९३ ई० तक काशी की अपनी राजधानी से राज्य किया था।

चतुर्दशशती के वेदान्तज्ञ संन्यासियों में स्वामी **ज्ञानानन्द** का विशिष्ट स्थान था। इनके प्रधान शिष्य **प्रकाशानन्द** ने 'वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली' नामक अपूर्व ग्रन्थ का निर्माण किया। यह 'एकजीववाद' का प्रतिपादक ग्रन्थ है। वेदान्त के दो प्रख्यात सम्प्रदाय हैं—(क) सृष्टि-दृष्टिवाद तथा (ख) दृष्टि-सृष्टिवाद। प्रकाशानन्द का ग्रन्थ इसी द्वितीय मत का प्रतिपादक तथा गम्भीर विवेचक है। इस ग्रन्थ की रचना से दो शताब्दी पीछे षोडशशती में अनेक वेदान्त-मर्मज्ञ संन्यासियों ने काशी को अलंकृत किया जिनमें नृसिंहाश्रम, मधुसूदन सरस्वती, नारायण तीर्थ तथा ब्रह्मानन्द सरस्वती का नाम विशेष-रूपेण उल्लेखनीय है। **नृसिंहाश्रम** उस युग के परम प्रसिद्ध तथा आदरणीय संन्यासी थे। ये अपने को 'वेदान्तसिद्धान्त-साराभिज्ञ' कह कर उल्लिखित करते हैं। ये पहिले नर्मदा तट पर रहते थे। पीछे काशी में आकर निवास करने लगे थे। इनकी वेदान्तविषयक अनेक रचनाएँ उपलब्ध हैं जिनमें प्रधान हैं— **भावप्रकाशिका** (प्रकाशात्मदेव रचित 'पञ्चपादिका-विवरण' की टीका); **वेदान्ततत्त्वविवेक** तथा उसकी टीका **दीपन** (रचनाकाल मूलग्रन्थ का १६०४ वि = १५४७ ई०), **तत्त्वदीपन** (अभेदरत्न की टीका), **भेदधिक्कार** (भेदवाद का खण्डन)। इनके उपास्य देव नृसिंह देव थे। ये सम्भवतः काञ्ची के निवासी थे। इनके ऊपर अप्पयदीक्षित की असीम श्रद्धा थी और इनके कहने पर अप्पयदीक्षित ने शैव मत का त्याग कर वेदान्त का आश्रय लिया। नृसिंहाश्रम के शिष्य भारतवर्ष के अनेक प्रान्तों में फैले हुए थे। **अप्पयदीक्षित** भी काशी में इसी शती में विद्यमान थे, परन्तु यहाँ निवास करते समय इन्होंने किन ग्रन्थों का प्रणयन किया था? इस विषय में अनुसन्धान की अपेक्षा है।

मधुसूदन सरस्वती

इनका संक्षिप्त परिचय उनके ग्रन्थों की सहायता से प्राप्त है। इनके वंश के मूल पुरुष का नाम श्रीराम मिश्र था। बंगाल के फरीदपुर के अन्तर्गत 'कोटालपाड़ा' ग्राम सरस्वती जी का जन्मस्थान था। इनके पिता का नाम प्रमोदन पुरन्दर था जिनके चार पुत्रों में से मधुसूदन तृतीय पुत्र थे। इनका मूल नाम था—कमलनयन। नवद्वीप में हरिराम तर्कवागीश से इन्होंने न्यायशास्त्र का गम्भीर अध्ययन किया था। न्याय के अगाध विद्वान् गदाधर भट्टाचार्य इनके सहाध्यायी थे। न्याय के आमूलचूल अध्ययन के अनन्तर ये काशी पधारे और यहाँ **विश्वेश्वर सरस्वती** से इन्होंने अद्वैत वेदान्त का गाढ़ अनुशीलन किया और उन्हीं से संन्यास की दीक्षा ग्रहण की। मधुसूदन अपने गुरु को श्री शंकराचार्य का नूतन अवतार मानते थे जिसका उल्लेख

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्होंने अपने 'सिद्धान्तबिन्दु' के मंगल श्लोक में किया है[1]। माधव सरस्वती से इन्होंने शास्त्रों का अध्ययन किया था[2]। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री के मतानुसार माधव नारायण भट्ट के पिता रामेश्वर भट्ट के छात्र माधव सरस्वती से अभिन्न थे। श्रीराम या रामानन्द इनके परम गुरु माने जाते हैं। इन तीनों गुरुओं का स्मरण एक साथ मधुसूदन ने अपने गीताभाष्य की समाप्ति पर किया है :

श्रीराम-विश्वेश्वर-माधवानां
प्रसादमासाद्य मया गुरूणाम् ।
व्याख्यानमेतद् विहितं सुबोधं
समर्पितं तच्चरणाम्बुजेषु ॥

मधुसूदन सरस्वती का पाण्डित्य सर्वतोमुखी था। ये वेदान्त के जैसे प्रगाढ़ पण्डित थे; नव्य न्यायादि शास्त्रों में भी इनकी वैसी ही अप्रतिहत गति थी। किंवदन्ती है कि जब सरस्वती जी एक बार नवद्वीप में आये थे, तो वहाँ के नैयायिकों में खलबली मच गई थी। इसका चित्रण एक कवि ने इस प्रकार किया है :

नवद्वीपं समायाते मधुसूदनवाक्पतौ ।
चकम्पे तर्कवागीशः कातरोऽभूद् गदाधरः ॥

सुनते हैं कि ये अपने सतीर्थ्य गदाधर के घर पर ही टिके थे। जब गदाधर अपने अन्तेवासियों को नव्यन्याय का अध्यापन करने लगे, तब मधुसूदन ने सोपहास पूछ डाला—क्या छात्रावस्था में संकलित अपनी टिप्पणी ही पढ़ाते हो, या और कुछ अधिक ? इसी प्रसंग में शास्त्रचर्चा छिड़ गयी। तब गादाधरी के स्वनामधन्य लेखक गदाधर को सरस्वती की अपूर्व तर्कशैली का अवलोकन कर नतमस्तक होना पड़ा था और इन्हें साष्टांग प्रणाम कर इनके नैयायिक वैदुष्य को मानना पड़ा था। मधुसूदन सरस्वती ने 'अद्वैतसिद्धि' के अपनी नानाविद्याओं, विशेषकर न्याय के, मनन तथा तर्क के उपयोग करने का स्वतः संकेत प्रस्तुत किया है इस पद्य में :

गुरूणां माहात्म्यान्निज विविध विद्यापरिचयान्
श्रुतेर्यन्मे सम्यङ् मनन परिनिष्पन्नमभवत् ।
परब्रह्मानन्दस्फुरणमखिलानर्थशमनं
तदेतस्मिन् ग्रन्थे निखिलमतियत्नेन निहितम् ॥
(अद्वैतसिद्धि की परिसमाप्ति)

मधुसूदन सरस्वती की वेदान्त-रचनाएँ इस प्रकार है—

(क) सिद्धान्तबिन्दु—यह शंकराचार्य की दशश्लोकी की टीका है जो बलभद्र के

---

१. श्री शंकराचार्य-नवावतारं विश्वेश्वरं विश्वगुरुं प्रणम्य ।
वेदान्तशास्त्र-श्रवणालसानां बोधाय कुर्वे कमपि प्रबन्धम् ॥

२ श्री माधव सरस्वत्यो जयन्ति यमिनां वराः ।
वयं येषां प्रसादेन शास्त्रार्थे परिनिष्ठिताः ॥
—अद्वैतसिद्धि की परिसमाप्ति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुरोध से लिखी गयी थी। यह टीका क्या है? अखिल वेदान्त के तत्त्वों का परिनिष्ठित निरूपण एवं अनुशीलन है। (ख) **वेदान्त कल्पलतिका**—भारतीय दर्शनों में मोक्ष की गम्भीर एवं तुलनात्मक आलोचना यहाँ प्रस्तुत की गयी है। (ग) **अद्वैत-रत्नरक्षण**—नैयायिक शंकर मिश्र के 'भेदरत्न' का यह खण्डन है। (घ) **संक्षेप-शारीरिक सारसंग्रह**—संक्षेपशारीरिक की व्याख्या, (ङ) **गूढ़ार्थदीपिका**—भगवद् गीता का विस्तृत भाष्य, जिसमें नाना शास्त्रों के प्रमेयों का विस्तार से आलोड़न, मन्थन तथा आलोचन किया गया है। यही मधुसूदनी टीका की लोकप्रिय आख्या द्वारा प्रसिद्ध है जो सरस्वती के लोकातीत वैदुष्य का परिचायक है। (च) **अद्वैतसिद्धि**—यह उनके अद्वैती ग्रन्थों का मुकुटमणि है तर्कों के विन्यास में, भेदवाद के पुंखानुपुंख खण्डन में एवं अद्वैत तत्त्व के विपुल परिष्करण में। माध्वसम्प्रदाय के प्रख्यात विद्वान् **व्यासराज** ने **न्यायामृत** की रचना कर भेदवाद को वेदप्रतिपाद्य, न्यायानुमोदित एवं तर्क प्रमाण सिद्ध करने का जो विपुल प्रयास किया, उसी का यह तर्ककर्कश तीव्र खण्डन है। **नृसिंहाश्रम** ने भी न्यायामृत का खण्डन किया था, परन्तु वह उतना तीव्र नहीं था जितना तीव्र है मधुसूदन सरस्वती का अद्वैतसिद्धि में निबद्ध खण्डन। इस खण्डन का **रामाचार्य** ने अपनी **न्यायामृततरङ्गिणी** में उत्तर दिया। ये रामाचार्य गोदावरी तीरस्थ अम्बापुर के निवासी तथा उत्तरादि मठ के प्रसिद्धसाधु द्वैतवादी **रघूत्तमतीर्थ** के शिष्य थे जिनका निधन १४९६ ई० में हुआ था। किम्वदन्ती ऐसी भी है कि इन्हीं रामाचार्य ने मधुसूदन के समीप छद्मवेश में प्रत्येक पंक्ति अद्वैतसिद्धि का पाठ ग्रहण किया और गुरुदक्षिणा के रूप में अद्वैतसिद्धि का खण्डन गुरु को समर्पित किया। इस घटना का संकेत अद्वैतसिद्धि के अन्त में स्पष्टतः मिलता है :

इह कुमतिरतत्त्वे तत्त्ववादी वराकः
प्रलपति यदकाण्डे खण्डनाभासमुच्चैः।
प्रतिवचनममुष्मै तस्य को वक्तु विद्वान्
न हि रुतमनुरौति ग्रामसिंहस्य सिंहः॥

मधुसूदन सरस्वती की कृष्ण-भक्ति अतुलनीय है। वे जैसे ज्ञानी थे, वैसे ही भक्त भी थे। इस प्रकार उनके समान अद्वैत वेदान्त तथा कृष्ण-भक्ति का मधुमय सामञ्जस्य अन्यत्र निराला ही दिखाई पड़ता है। उन्होंने अपने गीताभाष्य में विष्णु भगवान् के प्रति अपनी भक्ति का परिचय सर्वत्र ही दिया है। श्रीकृष्ण की उनकी स्तुति कितनी भव्य, भावुक तथा मनोमोहक है—

वंशी-विभूषितकरान् नव-नीरदाभात्
पीताम्बरादरुणबिम्ब-फलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दु-सुन्दर-मुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात् परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥

भक्तिशास्त्र में उनका अनमोल ग्रन्थ है—**भगवद्भक्ति-रसायन** तथा उसके प्रथम उल्लास की टीका, श्रीमद्भागवत के प्रथम या प्रथम तीन श्लोकों की टीका; शिव-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महिम्न स्त्रोत की हरिहरात्मक टीका। **आनन्द मन्दाकिनी** तथा **कृष्णकुतूहल** सरस्वती जी के क्रमशः काव्य तथा नाटक हैं। मधुसूदन तुलसीदास के प्रति श्रद्धा रखते थे और इस विषय में उनका यह पद्य नितान्त लोकप्रचलित है :

आनन्द-कानने काश्यां तुलसी जङ्गमस्तरुः।
कविता मञ्जरी यस्य रामभ्रमर-भूषिता॥

श्रद्धा हो क्यों नहीं ? आखिर गोसाईं जी भी तो अद्वैत ज्ञान के साथ भक्ति के मञ्जुल सामञ्जस्य के ही तो उपासक प्रचारक थे। भागवत के प्रथम श्लोक की व्याख्या में कितनी नम्रता से सरस्वती जी ने अपने उद्देश्य का परिचय दिया है :

अनुदिनमिदमायुः सर्वदाऽसत्प्रसङ्गैः
बहुविध-परितापैः क्षीयते व्यर्थमेव।
हरिचरित-सुधाभिः सिच्यमानं तदेतत्
क्षणमपि सफलं स्यादित्ययं मे श्रमोऽत्र॥

मधुसूदन के एक शिष्य थे **पुरुषोत्तम सरस्वती** जिन्होंने गुरु के ग्रन्थ सिद्धान्तबिन्दु पर 'बिन्दुसंदीपन' नामक टीका लिखी और उनके दूसरे शिष्य थे **शेष गोविन्द** जिन्होंने सिद्धान्तबिन्दु पर ही **सिद्धान्त रहस्य** नामक टीका लिखी थी।

इसी परम्परा के अन्तर्भुक्त १७वीं तथा १८वीं शती में भी अनेक अद्वैती संन्यासियों ने सुन्दर ग्रन्थों का निर्माण किया--(क) **नारायण तीर्थ** ने अनेक दर्शनों पर ग्रन्थों की रचना की। वेदान्त के विषय में इनका ग्रन्थ **सिद्धान्तचन्द्र** (अपर नाम लघु व्याख्या) सिद्धान्तबिन्दु की व्याख्या है। भक्तिशास्त्र में इनकी **भक्तिचन्द्रिका** नितान्त प्रख्यात है जिसमें शाण्डिल्यसूत्रों का भाष्य प्रस्तुत किया गया है। ख) **ब्रह्मानन्द सरस्वती** जगद्-विख्यात वेदान्त विद्वान् थे। ये वंगदेशीय प्रतीत होते हैं क्योंकि 'गौड ब्रह्मानन्द' के नाम से इनकी प्रसिद्धि है। इनकी रचनाएँ हैं--(१) **अद्वैतचन्द्रिका** (मधुसूदन रचित अद्वैतसिद्धि की व्याख्या। इसके दो संस्करण हैं--लघुचन्द्रिका तथा गुरुचन्द्रिका) (२) **न्यायरत्नावली** (सिद्धान्त बिन्दु की टीका) तथा (३) अद्वैत-सिद्धान्त-विद्योतन।

इसके अनन्तर भी अद्वैत वेदान्त का परम्परागत पठन-पाठन, प्रसार-प्रचार आज तक काशी में चल रहा है। इस संक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि काशी के विद्वान् संन्यासियों ने तथा पण्डित गृहस्थों ने वेदान्त के इतिहास में अपनी विमल तपस्या से, अपने तर्कमण्डित ग्रन्थों से तथा अपने सुयोग्य शिष्यों से अपनी अनुपम कीर्ति स्थापित की। द्वैतमत का तर्कसम्मत प्रौढ़ खण्डन कर अद्वैत मत का प्रसारण तथा संरक्षण काशी के वेदान्ती पण्डितों की अपूर्व देन है।

धर्मशास्त्र

धर्मशास्त्र के इतिहास में भी काशी के विद्वानों का योगदान अपना विशेष महत्त्व रखता है। इनकी रचनाएँ अखिल भारतीय मान्यता से मण्डित हैं, क्योंकि इनका आदर एवं प्रामाण्य समस्त भारतवर्ष के धर्मशास्त्रियों ने स्वीकार किया है। इन्होंने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने मौलिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन द्वारा इस शास्त्र को एक नई दिशा प्रदान की। १२वीं शती से लेकर आज तक का इतिहास इस तथ्य का सद्यः प्रतिपादक है।

लक्ष्मीधरभट्ट

१२वीं शती के उत्तरार्ध में लक्ष्मीधर भट्ट ने १७ खण्डों में विभक्त अपने विशालकाय ग्रन्थ **'कृत्यकल्पतरु'** के द्वारा धर्मशास्त्र के विविध विषयों का गम्भीर तथा विशद विवेचन कर निबन्ध' ग्रन्थ की रचना का सूत्रपात किया। ये काशी के गहड़वाल वंशी महाराजाधिराज गोविन्दचन्द्र के 'सान्धि-विग्रहिक' थे तथा भट्ट हृदयधर के पुत्र थे। व्रत, तीर्थ, श्राद्ध आदि धार्मिक विषयों की जानकारी के लिए यह निःसन्देह मूल्यवान् विश्वकोश है। बंगाल के सभी प्रसिद्ध लेखकों (जैसे बल्लालसेन, शूलपाणि, रघुनन्दन) ने कल्पतरु की चर्चा की है तथा इसके लेखक के मत को आदर से उल्लिखित किया है। मैथिल धर्मशास्त्री चण्डेश्वर ने 'विवाद रत्नाकर' में तथा श्रीदत्त ने 'आचारादर्श' में कल्पतरु का बहुशः उल्लेख किया है। दक्षिण तथा पश्चिम भारत में भी इसका प्रभूत प्रभाव लक्षित होता है। तभी तो हेमाद्रि द्वारा इसका सादर उल्लेख आश्चर्यजनक नहीं प्रतीत होता।

'कृत्यकल्पतरु' के स्थान पर यह ग्रन्थ केवल कल्पतरु, कल्पद्रुम या कल्पवृक्ष भी कहा जाता है। कल्पतरु में लिखा है कि लक्ष्मीधर की कूटनीतिक चालों से ही गोविन्दचन्द्र ने अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। इसमें आचार-सम्बन्धी बातों के अतिरिक्त व्यवहारविषयक भी कई काण्ड थे। राजधर्म पर भी इन्होंने पर्याप्त प्रकाश डाला है। फलतः इस विशालकाय ग्रन्थरत्न का महत्त्व केवल धार्मिक दृष्टि से न होकर व्यवहार (कानून) तथा राजनीति की दृष्टि से भी उपलब्ध होता है। विशेषतः उद्धरण तथा संकेत स्मृतिकारों, महाकाव्यों एवं पुराणों के ही हैं, परन्तु व्यवहार काण्ड में मेधातिथि, विज्ञानेश्वर (मिताक्षरा), हलायुध एवं कामधेनु नामक निबन्धों के भी उद्धरण मिलते हैं। लक्ष्मीधर ने याज्ञवल्क्यस्मृति के विख्यात व्याख्याकार विज्ञानेश्वर (समय ११०० ई०) को उद्धृत किया है एवं बंगाल के प्राचीन एवं प्रसिद्ध धर्मशास्त्री **अनिरुद्ध** के द्वारा **'पितृदयिता'** अथवा **कर्मोपदेशिनी पद्धति** (रचना काल ११६० ई०) में उद्धृत किये गये हैं। फलतः इनका समय ११०० ई०–११५० ई० के बीच मानना उचित है।

कुल्लूकभट्ट

कुल्लूकभट्ट की मनुस्मृति की टीका **मन्वर्थमुक्तावली** मनुभाष्यों में अति उत्तम मानी जाती है। इनकी व्याख्या संक्षिप्त, स्पष्ट एवं उद्देश्यपूर्ण है। मेधातिथि एवं गोविन्दराज के भाष्यों से उद्धरण दिया है, परन्तु कृतज्ञता प्रकाशन के बिना ही। कटु आलोचना भी इनकी की है। ये बंगाल के वारेन्द्र श्रेणी के नन्दन निवासी दिवाकरभट्ट के पुत्र थे। ग्रन्थ का प्रणयन काशी में किया गया। कुल्लूकभट्ट ने भोजदेव, कल्पतरु की चर्चा की है। फलतः ये ११५० ई० के पश्चाद्वर्ती तथा रघुनन्दन के द्वारा दायतत्त्व में निर्दिष्ट होने से १३०० ई० से पूर्ववर्ती थे। सम्भवतः ११५० ई०–१३०० ई० के बीच में कभी वर्तमान थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१३वीं शती में **कविकान्त सरस्वती** ने **'विश्वादर्श'** का निर्माण किया जिसमें सदाचार, व्यवहार, प्रायश्चित्त तथा ज्ञानकाण्ड का वर्णन १९५ श्लोकों में किया गया है। मिताक्षरा का उल्लेख करने से एवं हेमाद्रि द्वारा 'चतुर्वर्गचिन्तामणि' के परिशेष-खण्ड में उल्लिखित होने से इनका समय १३वीं शती मानना उपयुक्त है।

१६–१७वीं शती में काशी में धर्मशास्त्र का अनुशीलन अपनी प्रौढ़ावस्था पर पहुँच गया। महाराष्ट्र के मूल निवासी काशीवासी दो महाराष्ट्रीय ब्राह्मण कुल के पण्डितों ने इस शास्त्र का खूब ही गौरव बढ़ाया। **नन्द पण्डित** धर्माधिकारी नामक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण वंश में उत्पन्न थे। इन्होंने लगभग १३ ग्रन्थों का प्रणयन किया जिनमें प्रख्यात रचनाएँ हैं – (१) **विद्वन्मनोहरा** (पराशर स्मृति की व्याख्या), (२) **प्रमिताक्षरा** (मिताक्षरा पर संक्षिप्त भाष्य), (३) **श्राद्धकल्पलता**, (४) **शुद्धि-चन्द्रिका**, (५) **दत्तकमीमांसा** तथा (६) **वैजयन्ती** (या केशव वैजयन्ती; विष्णुधर्मसूत्र का विशद भाष्य)। आधुनिक हिन्दू कानून की वाराणसी शाखा में वैजयन्ती का प्रामुख्य है। अंग्रेजों के प्रभुत्वकाल में **'दत्तकमीमांसा'** का हवाला प्रिवी कौन्सिल तक दिया जाता रहा है और आज भी दत्तक लेने के विषय में यह सर्वापेक्षया महत्त्वशाली ग्रन्थ है। मिताक्षरा का बहुशः अनुसरण होने पर भी स्थान-स्थान पर प्रमिताक्षरा में उसका खण्डन नन्दपण्डित के मौलिक चिन्तन का स्पष्ट निदर्शन है।

नन्दपण्डित की **वैजयन्ती**, जो 'विष्णुधर्मसूत्र' पर बड़ा ही विशद एवं प्राञ्जल भाष्य है, सम्भवतः उनकी अन्तिम रचना थी। इसका निर्माण काशी में १६२३ ई० में हुआ था। अनुमान के आधार पर कहा जा सकता है कि नन्दपण्डित की कृतियों का निर्माणकाल १५९० ई० से लेकर १६२५ ई० तक है। फलतः इनका आविर्भावकाल १६ वीं शती का उत्तरार्ध एवं १७वीं शती का प्रथम चरण है।

नारायण भट्ट

नारायण भट्ट वाराणसी के सुप्रसिद्ध भट्ट कुल के सर्वश्रेष्ठ लेखक माने जाते हैं। ये अपने वंश में सूर्य के समान एक ज्योतिष्मान् नक्षत्र थे जिसके प्रकाश से यह भट्टकुल सदियों से प्रकाशित होता रहा है। नारायण भट्ट के पिता का नाम रामेश्वर भट्ट था जो प्रतिष्ठान (पैठन) से बनारस आये थे। इनकी विद्वत्ता से आकृष्ट होकर सुदूर प्रान्तों के शिष्य गण इनके चरणों में बैठकर विद्याध्ययन के लिए काशी आया करते थे।

नारायण भट्ट के पुत्र शंकरभट्ट ने अपने पिता का जीवन चरित लिखा है जिसके अनुसार उनका जन्म सन् १५१३ ई० में हुआ था। नारायण भट्ट अपने पिता – रामेश्वर भट्ट के समान ही प्रकाण्ड विद्वान् थे। इनकी विद्वत्ता के कारण इनके वंश को बड़ी सुप्रसिद्धि प्राप्त हुई। नारायण भट्ट की अगाध विद्वत्ता की ख्याति चारों ओर फैल गई और विद्वानों ने इसी कारण इनको 'जगद् गुरु' की उपाधि से विभूषित किया था। भट्टकुल के वैदुष्य के कारण ही काशी में दक्षिणी ब्राह्मण विद्वानों की इतनी प्रतिष्ठा हो सकी तथा इन लोगों का लोहा सभी मानने लगे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थ – नारायण भट्ट ने धर्मशास्त्रसम्बन्धी अनेक ग्रन्थों की रचना की है जिनमें (१) **अन्त्येष्टि-पद्धति**, (२) **त्रिस्थली-सेतु** एवं (३) **प्रयोग-रत्न** अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इनका प्रथम ग्रन्थ 'अन्त्येष्टि पद्धति' और्ध्व दैहिक पद्धति के नाम से भी प्रसिद्ध है। त्रिस्थली सेतु इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसके प्रथम भाग में सभी तीर्थों से सम्बन्धित कृत्यों का विवेचन किया गया है। परन्तु इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें प्रयाग, काशी और गया इन तीन तीर्थ स्थानों का बड़ा विशद, विस्तृत तथा विद्वत्ता-पूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रन्थ का निर्माण लगभग १५८०–६० ई० के बीच में हुआ था।[1] (३) **प्रयोग रत्न** – यह ग्रन्थ आश्वलायन गृह्यसूत्र के आधार पर निर्मित किया गया है। इसमें गर्भाधान से लेकर विवाह तक के समस्त संस्कारों का वर्णन किया गया है।

नारायण भट्ट का रचना-काल सन् १५४० ई० से लेकर सन् १६७० ई० तक माना जाता है। उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त इन्होंने अनेक भाष्यों की भी रचना की है। इस प्रकाण्ड विद्वान् ने अपने पुत्रों और पौत्रों द्वारा भारतवर्ष के समस्त लेखकों को प्रभावित किया।

कमलाकर भट्ट

नारायण भट्ट के वंश में उत्पन्न कमलाकर भट्ट ने अपनी प्रतिभा और अलौकिक विद्वत्ता के द्वारा इसकी ख्याति में अतिशय वृद्धि की। ये नारायण भट्ट के पौत्र थे। इनके पिता का नाम रामकृष्ण भट्ट था। कमलाकर भट्ट का समय निश्चित रूप से बतलाया जा सकता है। इन्होंने सन् १६१२ ई० में **निर्णय सिन्धु** नामक अपने ग्रन्थ की रचना की थी जो इनकी प्रारम्भिक कृतियों में माना जाता है। इन्होंने बीसियों ग्रन्थों की रचना की है। अतः इनका रचना काल सन् १६१० ई० से लेकर १६४० ई० तक माना जा सकता है।

कमलाकर भट्ट बड़े ही उद्भट विद्वान थे। इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। इसीलिए इन्होंने विभिन्न विषयों पर अपने विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थों की रचना की है। ये तर्कशास्त्र, न्यायशास्त्र, व्याकरण शास्त्र, मीमांसा, वेदान्त, साहित्य शास्त्र, धर्मशास्त्र तथा वैदिक कर्मकाण्ड आदि सभी विषयों के गम्भीर विद्वान् थे। इनकी सारग्राहिणी प्रतिभा ने सकल शास्त्रों का आलोड़न किया था और उससे जो रत्न निकले उन्हें अपने वैदुष्य-पूर्ण ग्रन्थों में निहित किया है। इनके द्वारा निर्मित 'विवादताण्डव' नामक ग्रन्थ में उल्लिखित है कि इन्होंने कुमारिल कृत मीमांसा (शास्त्र तत्त्व) के वार्तिक पर 'निर्णय सिन्धु' नामक भाष्य लिखा था। विवाद ताण्डव से यह भी पता चलता है कि इस भाष्य के अतिरिक्त इन्होंने अन्य २० (बीस) ग्रन्थों की रचना की थी। कहीं-कहीं इनके निर्मित ग्रन्थों की संख्या २२ (बाईस) भी उपलब्ध होती है। इनके

---

१. यह ग्रन्थ आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना से प्रकाशित हुआ है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थों की संख्या जो भी रही हो, इतना तो निश्चित रूप से निर्विवाद कहा जा सकता है कि ये विलक्षण प्रतिभा से सम्पन्न विद्वान् थे और इनकी लेखनी विभिन्न शास्त्रों के गहन तत्त्वों के उद्घाटन में बड़ी सफलता से चलती थी।

ग्रन्थ—कमलाकर भट्ट ने जिन बीस या बाईस ग्रन्थों की रचना की है उनमें से आधी पुस्तकें धर्मशास्त्र से सम्बन्धित हैं जिनके नाम निम्नांकित हैं :

(१) निर्णय सिन्धु, (२) दान कमलाकर, (३) शान्तिरत्न, (४) पूर्त कमलाकर, (५) व्रत कमलाकर, (६) प्रायश्चित्त रत्न, (७) विवाद ताण्डव, (८) बह्वृचाह्निक, (९) गोत्र-प्रवर-दर्पण, (१०) कर्मविपाक रत्न, (११) शूद्र कमलाकर और (१२) सर्व-तीर्थ विधि। इन ग्रन्थों में से शूद्र कमलाकर, विवाद ताण्डव एवं निर्णय सिन्धु अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। स्थानाभाव के कारण इन सभी ग्रन्थों का वर्णन यहाँ सम्भव नहीं है। अतएव केवल प्रसिद्ध ग्रन्थों का ही संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाता है :

(१) **शूद्र कमलाकर**—भट्ट जी का यह एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। जैसा कि इसके नाम से ही विदित होता है इसमें शूद्रों के सम्बन्ध में कुछ चर्चा की गई है। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम 'शूद्र धर्मतत्व' या 'शूद्र धर्मतत्व प्रकाश' भी है। ऐसा माना जाता है कि शूद्र वेदाध्ययन नहीं कर सकते। वे ब्राह्मणों द्वारा स्मृतियों और पुराणों का केवल पाठ सुन सकते हैं। इन शूद्रों की धार्मिक क्रियाएँ केवल पौराणिक मन्त्रों द्वारा सम्पादित होनी चाहिए। इस ग्रन्थ के अन्य विषय हैं—विष्णु पूजा, अन्य देवताओं की पूजा, व्रत और उपवास आदि। सर्वसाधारण जनता के कल्याण के कार्यों में शूद्र दान दे सकता है, शूद्र गोद भी ले सकता है। वैदिक मन्त्रों के बिना इनके विभिन्न संस्कारों के विधान के सम्बन्ध में मत-भेद का भी उल्लेख किया गया है।

(२) **निर्णय-सिन्धु**—कमलाकर भट्ट के ग्रन्थों में निर्णय-सिन्धु सबसे अधिक प्रख्यात है। यह ग्रन्थ इनकी अगाध विद्वत्ता, कठोर परिश्रम तथा गम्भीर चिन्तन का प्रतीक है। यह एक अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। नीलकण्ठ तथा मित्र मिश्र के केवल दो अपवादों को छोड़कर, किसी अन्य धर्मशास्त्रकार ने इतने अधिक ग्रन्थों तथा ग्रन्थकारों का उल्लेख नहीं किया है जितना कमलाकर भट्ट ने। इन्होंने लगभग एक सौ (१००) स्मृतियों तथा तीन सौ (३००) से भी अधिक निबन्ध-कारों का उल्लेख अपने ग्रन्थों में किया है। यह आश्चर्य का विषय है कि इतने अधिक ग्रन्थों का इन्होंने कैसे और कब अध्ययन किया और इन विभिन्न ग्रन्थों की यह विपुल राशि इन्हें कहाँ से प्राप्त हुई जब कि उस काल में प्रेसों का अभाव था और पुस्तकें केवल हस्तलेख के रूप में ही सुरक्षित रहती थीं। इसी तथ्य से भट्ट जी की बहुज्ञता, बहुश्रुतता और बहुपठनशीलता का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

निर्णय-सिन्धु तीन परिच्छेदों में विभक्त है। इस ग्रन्थ में जिन विषयों का सामान्यतया वर्णन किया गया है उनका विवरण इस प्रकार है। इस ग्रन्थ का प्रमुख उद्देश्य विविध धार्मिक कृत्यों के उचित समयों के सम्बन्ध में निश्चित मत देना है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौर आदि मास, चान्द्र महीनों के विभिन्न चार प्रकार, मलमास, क्षयमास, तिथियों के विषय में उनका शुद्धा और विद्धा होना; वर्ष के विभिन्न व्रत एवं उत्सव; गर्भाधान आदि विभिन्न संस्कार, सपिण्ड सम्बन्ध और मूर्ति प्रतिष्ठा आदि विषयों का इसमें विस्तृत प्रतिपादन किया गया है।

नीलकण्ठ भट्ट

ये नारायण भट्ट के पौत्र और शंकर भट्ट के पुत्र थे। अतः विद्वत्ता तथा प्रतिभा इन्हें अपने पिता और मितामह से रिक्थ रूप में मिली थी। शंकर भट्ट एक प्रकाण्ड मीमांसक थे। उन्होंने मीमांसा पर शास्त्रदीपिका, विविध रसायन दूषण, मीमांसा बाल प्रकाश आदि ग्रन्थों की रचना की है। इसके अतिरिक्त उन्होंने द्वैतनिर्णय, धर्मप्रकाश या सर्वधर्मप्रकाश आदि ग्रन्थों का भी निर्माण किया है जिनका संबंध धर्मशास्त्र से है। नीलकंण्ठ ने सेंगर वंशी बुन्देल सरदार भगवन्त देव के सम्मान में **'भगवन्त-भास्कर'** नामक धार्मिक ग्रन्थ लिखा है जो १२ (बारह) मयूखों या प्रकरणों में समाप्त हुआ है। इन प्रकरणों के नाम हैं : (१) संस्कार, (२) आचार, (३) काल, (४ श्राद्ध, (५) व्यवहार, (६) दान, (७) उत्सर्ग, (८) प्रतिष्ठा, (९) प्रायश्चित्त, (१०) शुद्धि एवं (११) शान्ति आदि। नीलकण्ठ ने **'व्यवहार मयूख'** का एक संक्षिप्त संस्करण भी **व्यवहार तत्त्व** के नाम से प्रकाशित किया है। इनमें सबसे प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय ग्रन्थ—**'व्यवहार मयूख'** है जिसका प्रचुर उपयोग आजकल भी हिन्दू कानून की जानकारी के लिए कचहरी में भारत न्यायपालिका के द्वारा किया जाता है।

कालनिर्णय—नीलकण्ठ शंकर भट्ट के कनिष्ठ पुत्र थे। शंकर भट्ट ने अपने द्वैत-निर्णय में टोडरानन्द के मतों का उल्लेख किया है। ये टोडरानन्द वही हैं जो अकबर बादशाह के प्रधान दरबारी तथा मंत्री थे। अतः इनका समय ज्ञात है। इन्होंने सन् १५७० ई० से १५८९ ई० तक अपने ग्रन्थों का निर्माण किया था।

द्वैत निर्णय का समय सन् १५९० ई० के पूर्व प्रतीत नहीं होता। नीलकण्ठ भट्ट शंकर भट्ट के कनिष्ठ पुत्र होने के नाते कमलाकर भट्ट के पूर्व ग्रन्थ की रचना नहीं कर सकते थे। कमलाकर भट्ट ने अपने 'निर्णय सिन्धु' की रचना सन् १६१२ ई० में की थी। अतः नीलकण्ठ का लेखनकाल सन् १६१० ई० के बाद ही समझना चाहिए। व्यवहार तत्त्व की एक हस्त लिखित प्रति का काल १६४४ ई० है। इससे स्पष्ट होता है कि इस तिथि से पहिले ही इस ग्रन्थ की रचना हो चुकी होगी। अतः इनका रचना काल सन् १६१० ई० से १६४५ ई० के बीच मानना समुचित प्रतीत होता है।

नीलकण्ठ भट्ट की गणना प्रसिद्ध निबन्धकारों में की जाती है। ये मीमांसकों के कुल में उत्पन्न हुए थे। अतः धर्मशास्त्र में मीमांसा के नियमों के प्रयोग में ये बड़े सिद्धहस्त थे। इनकी लेखन शैली सुन्दर थी। विद्वत्ता और स्मृतिज्ञान में ये मध्य काल में उत्पन्न सभी धर्मशास्त्रकारों में सर्वश्रेष्ठ थे। यद्यपि इन्होंने विज्ञानेश्वर और हेमाद्रि आदि की प्रशंसा की है किन्तु वे किसी भी विद्वान् का अन्ध अनुकरण करते हुए नहीं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखाई पड़ते। व्यवहार मयूख इनका सबसे प्रधान ग्रन्थ है जो पश्चिम भारत में व्यवहार (कानून) के संबंध में अत्यन्त प्रामाणिक पुस्तक मानी जाती है।

नागोजि भट्ट

नागोजि भट्ट सुप्रसिद्ध महावैयाकरण भट्टोजि दीक्षित की शिष्य-परम्परा में उत्पन्न हुए थे। यह महाराष्ट्र ब्राह्मण थे और इनकी उपाधि काले थी। इनकी विद्वत्ता का प्रधान क्षेत्र व्याकरण शास्त्र था। परन्तु ये बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। इसीलिए इन्होंने व्याकरण के अतिरिक्त धर्मशास्त्र के संबंध में भी अनेक ग्रन्थों की रचना की थी। ये प्रयाग के समीप शृङ्गवेरपुर के, बिसेन कुलोत्पन्न, राम नामक राजा के आश्रय में रहते थे जिसका उल्लेख इन्होंने स्वयं अपने एक ग्रन्थ में किया है।[1] नागोजि भट्ट भट्टोजि दीक्षित के पौत्र के शिष्य थे। भट्टोजि दीक्षित १७वीं शताब्दी के प्रथमार्ध में हुए थे। अतः दीक्षित के एक सौ वर्ष पश्चात् १८वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध इनका समय मानना चाहिए।

नागोजि भट्ट ने व्याकरण शास्त्र का प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी, साहित्य शास्त्र, धर्म-शास्त्र, योग-शास्त्र तथा अन्य शास्त्रों पर भी अधिकारपूर्वक ग्रन्थों की रचना की है। अब तक इनके तीस (३०) ग्रन्थ प्राप्त हो चुके हैं जिनमें से कुछ प्रधान ग्रन्थों के नाम निम्नांकित हैं : (१) आचारेन्दुशेखर, (२) तिथीन्दुशेखर, (३) तीर्थेन्दुशेखर, (४) प्रायश्चित्तेन्दुशेखर, (५) श्राद्धेन्दुशेखर, (६) सपिण्डि मंजरी, (७) अशौचनिर्णय, (८) सापिण्डय दीपक आदि। ये सभी इनके द्वारा लिखित धर्म-शास्त्र संबंधी ग्रन्थ हैं।

ज्योतिष शास्त्र

काशी में ज्योतिष शास्त्र की भी परम्परा मध्ययुग में विशेषरूपेण दृष्टिगोचर होती है। १६वीं से लेकर १८वीं शती तक तीन सौ वर्षों में काशी ने महनीय ज्योतिर्विदों को जन्म दिया है जिनकी कृतियाँ अखिल भारतीय ख्याति से मण्डित हैं। इन दैवज्ञों ने ज्योतिर्विद्या को नये आयाम दिये, नूतन शास्त्रीय ग्रन्थों का प्रणयन किया तथा इसे पूर्ण प्रतिष्ठित किया।

ऐसे दैवज्ञों में **मकरन्द** का नाम अग्रगण्य है। इन्होंने काशी में ही सूर्यसिद्धान्त के अनुसार तिथ्यादि के साधन के निमित्त अपने नाम से प्रसिद्ध **मकरन्द** नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया। ग्रन्थ में दी गयी सारणी से इसका आरम्भ १४०० शक से होता है। फलतः यही इसका रचना काल है—१४७८ ई०। यदि ग्रन्थ के आरम्भ काल में इनका वय चालीस वर्ष माना जाय, तो इनका जन्मकाल १४३८ ई० में अनुमानतः सिद्ध है। इसके ऊपर दिवाकर दैवज्ञ रचित 'विवरण' तथा विश्वनाथ कृत 'उदाहरण' प्रकाशित हैं। पंचांग के निर्माण के निमित्त यह महान् उपयोगी है। मध्ययुग में काशी में महाराष्ट्रीय ब्राह्मणों के अनेक कुल काशीवास करने की दृष्टि से यहाँ आकर निवास करने लगे थे। उनमें **अनन्त दैवज्ञ** का वंश ज्योतिर्विद्या के उन्नयन तथा प्रचारण में

---

१. शृङ्गवेरपुराधीशात् रामतो लब्धजीविकः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेषरूपेण प्रख्यात हुआ। ये अनन्त दैवज्ञ विदर्भ (वर्तमान बरार) प्रान्त के अन्तर्गत धर्मपुर के निवासी थे। इनके पिता का नाम **चिन्तामणि दैवज्ञ** था। अपने पुत्र के उल्लेखानुसार इन्होंने दो ग्रन्थों का निर्माण किया था : (१) जातक पद्धति तथा (२) कामधेनु गणित की टीका। **कामधेनु-गणित** प्रसिद्ध लेखक बोपदेव के पुत्र महादेव की प्रख्यात रचना है (१३५७ ई०) इसी के ऊपर अनन्त दैवज्ञ ने अपनी टीका लिखी थी। अपने पुत्र **नीलकण्ठ** के द्वारा प्रणीत ताजिक नीलकण्ठी की रचना के समय (१५०९ शक = १५८७ ई०) अनन्त जीवित थे। यदि उस समय उनका वय पचास वर्ष हो, तो इनका जन्म १५३७ ई० में माना जा सकता है।

अनन्त दैवज्ञ के दो पुत्र थे—(१) नीलकण्ठ तथा (२) राम। **नीलकण्ठ दैवज्ञ** अकबर बादशाह के दरबार के प्रधान पण्डित थे। इसका उल्लेख इन्हीं के पुत्र गोविन्द दैवज्ञ ने मुहूर्त चिन्तामणि की टीका **पीयूषधारा** के आरम्भ में इस प्रकार किया है :

सीमा मीमांसकानां कृतसुकृतचयः कर्कशस्तर्कशास्त्रे
ज्योतिःशास्त्रे च गर्गः फणिपति भणितिव्याकृतौ शेषनागः।
पृथ्वीशाकब्बरस्य स्फुरदतुलसभामण्डनं पण्डितेन्द्रः
साक्षात् श्रीनीलकण्ठः समजनि जगतीमण्डले नीलकण्ठः॥

गुणग्राही बादशाह अकबर का प्रधान पण्डित होना कोई हँसी-खेल की बात नहीं थी। ऊपर के पद्य में वे मीमांसकों में अग्रगण्य, तर्कशास्त्र में कर्कश तार्किक, व्याकरण में पतञ्जलि तथा ज्योतिःशास्त्र में साक्षात् गर्गाचार्य बतलाये गये हैं। अकबर के दरबार में रहते समय नीलकण्ठ ने अरबी ज्योतिष का गम्भीर अध्ययन किया और उसी का परिणत फल था—**ताजिक नीलकण्ठी** का प्रणयन। यह ग्रन्थ फलादेश के लिए ज्योतिषियों का कण्ठहार है। नीलकण्ठ की दूसरी रचना है—**जातक पद्धति** जिसमें ६० श्लोक हैं और जो मिथिला प्रान्त में सर्वाधिक प्रसिद्ध है। नीलकण्ठी का रचना काल १५०९ शक संवत् (१५८७ ई०) है। उस समय यदि नीलकण्ठ का वय तीस वर्ष का हो, तो इनका जन्म १५३७ ई० अनुमान से प्रतीत होता है।

नीलकण्ठ के अनुज थे **राम दैवज्ञ** जिनकी रचना **मुहूर्त चिन्तामणि** मुहूर्त विषय में समस्त भारतवर्ष में नितान्त लोकप्रिय तथा आदरणीय ग्रन्थरत्न है। रचना काल है १५२२ शक = १६०० ई०। इन्होंने अकबर बादशाह के कृपापात्र जयपुर नरेश राम नृपति के सन्तोषार्थ **रामविनोद** नामक करण ग्रन्थ का भी प्रणयन किया (१५१२ शाके = १५९० ई०)। राजपूताने में इस ग्रन्थ का बहुल प्रचार है और वहाँ के ज्योतिषी इसी के अनुसार पञ्चांग बनाते हैं। सुनते हैं इनकी तीसरी रचना **'मन्त्रप्रकाश'** नामक है। अकबर के ही प्रख्यात मन्त्री टोडरमल के प्रसन्नार्थ इन्होंने **टोडरानन्द** नामक ज्योतिष ग्रन्थ का भी निर्माण किया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम दैवज्ञ के ही भ्रातुष्पुत्र **गोविन्द दैवज्ञ** ने अपने पितृव्य राम दैवज्ञ कृत मुहूर्त-चिन्तामणि की **पीयूषधारा** टीका का प्रणयन काशी में ही १५२५ शाके अर्थात् १६०३ ई० में किया। यह टीका मुहूर्त के विषय में अनेक उपयोगी तथ्यों का वर्णन प्राचीन आचार्यों के वचनों की सहायता से करती है जिससे टीकाकार की बहुज्ञता का पूरा संकेत मिलता है।

इसी वंश के समान ही बल्लाल ज्योतिषी का कुल भी ज्योतिर्विद्या के उन्नयन तथा उपबृंहण के कारण काशीस्थ दैवज्ञों में सातिशय प्रसिद्ध है। बल्लाल की धर्म-पत्नी का नाम गोजि था। बल्लाल स्वयं गणक थे एवं महादेव शंकर के बड़े नैष्ठिक भक्त तथा उपासक थे। इनके पाँच पुत्र हुए जिनके नाम हैं—राम, कृष्ण, गोविन्द, रंगनाथ और महादेव। इन पञ्चभ्राताओं में द्वितीय कृष्ण तथा चतुर्थ रंगनाथ अपनी अलौकिक प्रतिभा एवं ग्रन्थ-निर्माण-कुशलता के कारण काशी के ज्यातिर्विदों में मूर्धन्य स्थान पाने के योग्य हैं।

(१) **कृष्ण दैवज्ञ**—इन्होंने भास्कराचार्य के बीजगणित की अनेक विशेषताओं से मण्डित **बीजाङ्कुरा** अथवा **नवाङ्कुरा** नाम्नी महनीय टीका की रचना की। यह टीका आजकल समस्त ज्यातिर्विदों के द्वारा समादृत तथा सम्मानित व्याख्या मानी जाती है। ग्रन्थ के आदि में अपने गुरु के तथा अन्त में अपने वंश का वर्णन बड़ी सुन्दरता से किया गया है। परन्तु ग्रन्थ के प्रणयन का काल निर्दिष्ट नहीं है। इनके अनुज के जन्मकाल से इनका अनुमित जन्म समय १४८७ शाके अर्थात् १५६७ ई० सुधाकर द्विवेदी ने माना है। इन्होंने **श्रीपतिपद्धति की टीका** एवं **छादक-निर्णय** नामक ग्रंथों का प्रणयन किया था। रंगनाथ के कथनानुसार ये जहाँगीर बादशाह के दरबार में विश्वस्त पण्डितपद पर अधिष्ठित थे।[1] बीजाङ्कुरा के अन्त में इन्होंने बड़े गर्व से लिखा है कि इस ग्रन्थ के प्रणयन में जो जो परिश्रम मैंने किया है, उसे परमेश्वर को छोड़ और कौन जान सकता है? अतएव भगवान् की तुष्टि के निमित्त यह ग्रन्थ उन्हीं के चरणों में समर्पित है :

यैर्यैः श्रमैर्विरचितोऽस्ति नवाङ्कुरोऽसौ
तेषामभिज्ञ इह कः परमात्मनोऽन्यः।
इत्थं विचिन्त्य जगदीश! तवैव तुष्टयै
सर्वज्ञ ते चरणयोर्निहितस्ततोऽयम्॥

---

१. सार्वभौम जहाँगीर विश्वासास्पदभाषणम्।
यस्य तं भ्रातरं कृष्णं बुधं बन्दे जगद्गुरुम्॥
ततः स कृष्णो जहाँगीर-सार्वभौमस्य सर्वाधिगतप्रतिष्ठः।
श्रीभास्करीयं विवृतं तु येन बीजं तथा श्रीपतिपद्धतिः सा॥
—सूर्यसिद्धान्त, टिप्पणे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) **रङ्गनाथ दैवज्ञ**—ये कृष्णदैवज्ञ के तृतीय भ्राता थे। इन्होंने सूर्यसिद्धान्त का 'गूढार्थप्रकाशक' नामक टिप्पण १५२२ शाके = १६०३ ई० में अकबर के राज्य के अन्तिम वर्षों में बनाया। उस समय फिरंगियों (=अंग्रेजों या यूरोप देश के गौरांगों) का वाणिज्य के लिए भारतवर्ष में आना जाना आरम्भ हो गया था। इन्होंने सूर्य-सिद्धान्त के गोलाध्याय (यन्त्राधिकार, २२ श्लोक) की टीका में लिखा है—'इयं स्वयंवहविद्या समुद्रान्तर्निवासिजनैः फिरङ्गाख्यैः सम्यगभ्यस्तेति।' ग्रन्थलेखन के समय यदि इनका वय तीस साल का मान लिया जाय, तो इनका जन्म १५७३ ई० के आसपास माना जा सकता है। इस टिप्पण के साथ सूर्यसिद्धान्त कलकत्ते के एशियाटिक सोसाइटी के द्वारा प्रकाशित है।

इनके पुत्र **मुनीश्वर** भी अपने युग के विद्वान् ज्योतिर्विद थे। इस टिप्पण की रचना के समय ही मुनीश्वर का जन्म हुआ था। इसलिए रङ्गनाथ ने अपने ग्रन्थ को मुनीश्वर का 'सहज' या साथ उत्पन्न होने वाला भाई कहा है।

गूढप्रकाशकं दृष्ट्वा रंगनाथभवं भुवि।
मुनीश्वरस्य सहजं लभन्तां गणकाः सुखम्॥

मुनीश्वर ने भास्कराचार्य के दोनों प्रख्यात ग्रन्थ लीलावती तथा सिद्धान्तशिरोमणि के ऊपर अपनी टीका लीलावती पर '**निसृष्टार्थदूती**' तथा सिद्धान्तशिरोमणि पर **मरीचि**[1] नामक व्याख्या लिखी। यह मरीचि प्रमेयों के बाहुल्य, प्राचीन ग्रन्थों के उद्धरण एवं सिद्धान्तों के तर्कयुक्त विवरण के कारण भाष्य नाम से अभिहित किया जाता है। इसके दो खण्ड हैं—पूर्वार्ध की रचना १५५७ शक (=१६३५ ई०) में तथा उत्तरार्ध का निर्माण तीन साल पीछे १५६० शक (=१६३८) में हुआ। मुनीश्वर को शाहजहाँ बादशाह का आश्रय प्राप्त था। शाहजहाँ के राज्याभिषेक का ठीक समय हिजरी सन् में यहाँ दिया गया है जो ४ फरवरी १६२८ ई० में सूर्योदय से ३ घड़ी बाद सिद्ध होता है। इन्होंने दो स्वतन्त्र ग्रन्थों का भी प्रणयन किया था—(१) **सिद्धान्तसार्वभौम** (सिद्धान्त ज्योतिष का मौलिक ग्रन्थ, स्वोपज्ञ टीका के साथ। ग्रन्थ का रचनाकाल १५६८ शक (१६४६ ई०) टीका का निर्माण काल १५७२ शक (= १६५० ई० ई०)। (२) **पाटीसार** (पाटी गणित पर स्वतन्त्र ग्रन्थ)।

इन ग्रन्थों में **मरीचि भाष्य** ही मुनीश्वर का सर्वाधिक उत्कृष्ट तथा प्रमेयबहुल ग्रन्थ है। मुनीश्वर भास्कराचार्य के परम भक्त थे। और इसीलिए भास्करविरोधी कमलाकर भट्ट के साथ इनका महान् संघर्ष हुआ था। इस संघर्ष के खण्डन-मण्डन के प्रमापक ग्रन्थों का उल्लेख गणक-तरंगिणी (पृ० ९२) में विस्तार से किया गया है। इतने प्रौढ़ ग्रन्थों की रचना से स्पष्ट है कि मुनीश्वर १७वीं शती के ज्योतिर्विदों में अति-उन्नत स्थान के अधिकारी माने जाते थे।

---

१. पण्डित केदारदत्त जोशी ने अपनी हिन्दी विवृति के साथ इस भाष्य का संस्करण दो भागों में प्रकाशित किया है (हिन्दू विश्वविद्यालय, १९६४ ई०)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशी में ही एक अन्य महाराष्ट्रीय ब्राह्मण कुल ने ज्योतिर्विद्या के सम्वर्धन में अभूतपूर्व योगदान किया है। इस वंश का मूलस्थान गोदावरी नदी के तट पर अवस्थित गोल नामक ग्राम था। वहीं से आकर यह वंश काशी में निवास करने लगा। इस वंश के ज्योतिर्विदों ने अपना पूरा परिचय दिया है। मूलपुरुष का नाम **राम** था जो गणक कार्य में नितान्त दक्ष थे। वंशपरम्परा = राम—भट्टाचार्य—दिवाकर (इन्होंने वेदान्त का अभ्यास कर पुण्यमय शरीर को काशी में ही विसर्जित किया। ये भी गणक थे तथा सम्भवतः अपने मूलस्थान से काशी में निवास करने वाले **प्रथम** व्यक्ति थे)—श्रीकृष्ण दैवज्ञ, विष्णु, मल्लारि, केशव तथा विश्वनाथ (पाँच पुत्र)। इनमें से ज्येष्ठ भ्राता श्रीकृष्ण दैवज्ञ के दो पुत्र हुए—(१) नृसिंह तथा (२) शिव दैवज्ञ। इनमें से नृसिंह के चार पुत्र उत्पन्न हुए—(१) दिवाकर, (२) कमलाकर, (३) गोपीनाथ तथा (४) रंगनाथ।

इस परिवार के **नृसिंह दैवज्ञ** अपनी प्रतिभा तथा उत्कृष्ट ज्योतिष-विषयक वैदुष्य के कारण १७वीं शती के पूर्वार्ध में काशी के दैवज्ञों में नितान्त विश्रुत थे। पचीस वर्ष के वय में इन्होंने सूर्यसिद्धान्त की टीका **सौरभाष्य** का तथा पैंतीस साल की उम्र में भास्कर के सिद्धान्त-शिरोमणि की **वासनावार्तिक** नामक प्रमेय-विशेष गर्भित व्याख्या का प्रणयन किया। इनका जन्म १५०८ शक (= १५८६ ई०) में हुआ। सौरभाष्य का निर्माण काल है १५३३ शक (१६११ ई०) तथा शिरोमणि वार्तिक का रचना-समय १५४३ शक (१७२१ ई०) है। नृसिंह दैवज्ञ के ही अनुज **शिव दैवज्ञ** ने ज्योतिष शास्त्र के विशेष अध्यापक होने के नाते अपनी पूरी आयु अध्यापन कार्य में ही व्यतीत की। इनकी केवल दो रचनाओं का उल्लेख मिलता है - गणित में 'अनन्त सुधारस' ग्रन्थ की विवृति तथा फलित में **मूहूर्त-चूडामणि** नामक ग्रन्थ। इस फलित ग्रन्थ के आदि में इन्होंने अपने वंश का विस्तृत वर्णन किया है। इसी के आधार पर इस वंश का ऊपर वर्णन किया गया है[1]।

नृसिंह दैवज्ञ के ही ज्येष्ठ आत्मज **दिवाकर भट्ट** का जन्म १५२८ शक (= १६०६ ई०) में काशी में हुआ था। इन्होंने अपने सुयोग्य पितृव्य शिव दैवज्ञ से ज्योतिर्विद्या का गाढ़ अनुशीलन किया था। ग्रन्थों की रचना करने में इनकी पटुता नितान्त अभिनन्दनीय है—(१) **पद्धति-प्रकाश** (अपरनाम **पद्मजातक**)—यह जातक-पद्धति केशव तथा श्रीपति दैवज्ञ की जातक पद्धति का अनुसरण करती है। इसके आरम्भ में अपने गुरु एवं पितृव्य शिवभट्ट की यह उदात्त स्तुति उपलब्ध होती है—

श्रीमच्छिवाख्यं गणितज्ञचक्रचूडामणिं सज्जनवृन्दवन्द्यम्।
विद्वद्विदो यं धिषणेन तुल्यं तं नौमि नित्यं धिषणासिहेतोः॥

(२) **मकरन्द विवरण** (मुद्रित उपलब्ध होता है)।

---

१. द्रष्टव्य : गणक तरंगिणी, पृ० ८६-८८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) **प्रौढ मनोरमा** (केशवरचित पद्धति की टीका); इसका रचनाकाल १५४८ शाके (= १६२६ ई०) उल्लिखित है।

(४) **गणित-तत्त्व-चिन्तामणि** (अपने ही ग्रन्थ पद्धतिप्रकाश की उदाहरण-सम्पन्न टीका)

कमलाकर भट्ट—नृसिंह दैवज्ञ के द्वितीय पुत्र, दिवाकर के अनुज तथा शिष्य प्रख्यात ज्योतिर्विद् कमलाकर भट्ट के जन्म सम्वत् का उल्लेख नहीं मिलता। अपने अग्रज एवं गुरु दिवाकर भट्ट के जन्म से यदि इनका जन्म दस साल के बाद हुआ हो, तो इनका अनुमित जन्म-काल १६१६ ई० है। इन्होंने अपने विश्रुत ग्रन्थ 'सिद्धान्त-तत्त्व-विवेक' का निर्माण ४२ वर्ष के वय में काशी में ही किया था। सुधाकर द्विवेदी ने लिखा है कि कमलाकर भट्ट ने अपने ग्रन्थ की रचना जिस वर्ष में की, उस समय इंगलैण्ड में प्रख्यात गणितज्ञ और वैज्ञानिक न्यूटन का वय १६ वर्ष था। इस उल्लेख द्वारा सुधाकर जी दोनों की मौलिक विचारधारा की ओर संकेत करते हैं।

'मरीचिभाष्य' के निर्माण के बीस वर्ष के बाद कमलाकर भट्ट ने अपने प्रख्यात ग्रंथ **सिद्धान्त-तत्त्व-विवेक** का प्रणयन किया (१५८० शके = १६५८ ई०)। फलतः ये मुनीश्वर के कनिष्ठ समसामयिक थे। इनका यह ग्रन्थ इस समय प्रचलित सूर्यसिद्धान्त के अनुसार सौरतत्त्व विवेचन करने वाला है। ये सूर्यसिद्धान्त के कट्टर अनुयायी थे और इस कारण उसके विचारों के विरोधी तथा आलोचक ज्योतिर्विदों के ये तीव्र विरोधी थे। कमलाकर भट्ट एकसाथ उद्भट एवं उद्धत ज्योतिषी थे। ये इतने उद्भट विद्वान् थे कि आलोचकों की दृष्टि में गोल-विषय का इतना बड़ा विशेषज्ञ विद्वान् भारतवर्ष में दूसरा हुआ ही नहीं। साथ ही साथ इतने उद्धत थे कि भास्कराचार्य जैसे समन्वयवादी ज्योतिषी को अपशब्द कहने से नहीं चूकते। सूर्यसिद्धान्त का तनिक भी विरोध इन्हें असह्य था। कमलाकर भट्ट ज्योतिष शास्त्र के इतिहास पर अपनी अमिट छाप छोड़ गये हैं। इनके लगभग तीस साल पूर्व ही **विट्ठलदीक्षित** ने काशी में रहकर अपने दोनों ग्रन्थों – मुहूर्तकल्पद्रुम तथा इसकी व्याख्या मञ्जरी—का प्रणयन १५४६ शाके (= १६२५ ई०) में किया था।

इन्हीं मान्य ज्योतिर्विदों ने काशी में जिस गणितीय पाण्डित्य की परम्परा स्थापित की उसका पालन इनके बाद होने वाले काशिकेय पण्डितों ने भलीभाँति किया। १८ वीं शती के अन्तिम दशक में काशिराजकीय संस्कृत पाठशाला में ज्योतिषशास्त्र आरम्भ से ही एक स्वतन्त्र विभाग के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। तब से उसका अध्ययन-अध्यापन काशी में मुख्यरूपेण प्रचलित है।

व्याकरण

वाराणसी व्याकरण का नितान्त प्रख्यात अखाड़ा था जहाँ विद्वानों में प्राचीन काल से शास्त्रीय तत्त्वों के विषय में शास्त्रार्थ के रूप में मल्लयुद्ध होता आया है और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज भी होता है। पाणिनीय व्याकरण को नया मोड़ देने में काशी के वैयाकरणों को विशेष गौरव दिया जाना सर्वथा समुचित है। व्याकरण के प्रति काशीस्थ पण्डितों की एकान्त निष्ठा का विशेष कारण खोजा जा सकता है।

ईसवी पूर्व द्वितीय शताब्दी में महाभाष्य के रचयिता पतञ्जलि काशी-मण्डल के ही निवासी थे। उनके जीवन चरित तथा रचनाओं का संक्षिप्त वर्णन यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

पतञ्जलि

व्याकरण शास्त्र के इतिहास में पतञ्जलि पाणिनि के पश्चात्, सर्वश्रेष्ठ स्थान के अधिकारी हैं। 'मुनित्रयं' की गणना में ये अन्तिम मुनि हैं। शंकराचार्य जैसे अनेक अलौकिक विद्वानों ने अनेक भाष्यों की रचना की, परन्तु पतञ्जलि का भाष्य ही 'महाभाष्य' कहलाने का अधिकारी हुआ। आचार्य शंकर ने जिस प्रकार अद्वैत वेदान्त को अपनी रचनाओं द्वारा उदात्त तथा उच्चभूमि पर प्रतिष्ठापित किया, उसी प्रकार पतञ्जलि ने पाणिनि व्याकरण को महाभाष्य की रचना द्वारा स्थिरता प्रदान कर प्रतिष्ठित कर दिया।

पतञ्जलि की प्रतिभा अलौकिक तथा बहुमुखी थी। व्याकरणशास्त्र के तो ये पारंगत पण्डित थे ही, परन्तु अन्य शास्त्रों पर भी इनका अधिकार कुछ कम नहीं था। व्याकरण शास्त्र में पतञ्जलि का कथन अत्यन्त प्रामाणिक माना जाता है। 'उत्तरोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्' इस कथन से यह बात सिद्ध हो जाती है।

महाभाष्य के अनुशीलन से पता चलता है कि पतञ्जलि ने जन-जीवन का निरीक्षण कितनी सूक्ष्म दृष्टि से किया था। तत्कालीन समाज का चित्रण जिस सूक्ष्मता से इस ग्रन्थ में किया गया है, वैसा अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि महाभाष्य व्याकरण का चूडान्त ग्रन्थ होने के अतिरिक्त पतञ्जलिकालीन समाज का विश्वकोश है।

जीवन-चरित—पतञ्जलि शेषनाग के अवतार थे, यही बात सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त इनके जीवन-चरित के विषय में हमारा ज्ञान नगण्य है। परन्तु द्रविड़ देश के सुकवि रामभद्र दीक्षित—जो सोलहवीं शताब्दी में उत्पन्न हुए थे—ने **'पतञ्जलि-चरित'** नामक काव्य में महाभाष्यकार के जीवन के विषय में कुछ नवीन तथ्यों की उद्भावना की है। उनके मत से शंकराचार्य के दादा-गुरु आचार्य गौडपाद भाष्यकार पतञ्जलि के शिष्य थे, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि यह तथ्य परम्परा से कितना पुष्ट है। इधर उनसे प्राचीन विद्यारण्य स्वामी ने अपने 'शंकर दिग्विजय' में शंकराचार्य के गुरु गोविन्दपादाचार्य को पतञ्जलि का रूपान्तर माना है। इस उल्लेख से स्पष्ट प्रतीत होता है कि पतञ्जलि का सम्बन्ध अद्वैत वेदान्त के सम्प्रदाय से आचार्यों ने जोड़ा है। इसका कारण यह भी प्रतीत होता है कि शब्दब्रह्म के प्रतिपादक पतञ्जलि शब्दाद्वैतवादी थे। शब्द से ही सृष्टि होती है और शब्द में ही

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टि का विलय होता है। इसी शब्दाद्वैतवाद के प्रतिष्ठापक होने से पतञ्जलि को अद्वैतवादी सम्प्रदाय से सम्बद्ध किया गया है।

पतञ्जलि का समय—महाभाष्य के अतरंग अनुशीलन से पतञ्जलि के समय का निर्धारण किया जा सकता है। पतञ्जलि ने पुष्यमित्र को स्वयं यज्ञ कराने का उल्लेख किया है और इस क्रिया को वर्तमान-कालिक बतलाया है। पुष्यमित्र कण्व वंश का संस्थापक ब्राह्मण राजा था जिसने विजय के उपलक्ष्य में अनेक अश्वमेध यज्ञ किये थे। पतञ्जलि ने इसी यज्ञ की ओर संकेत किया है। यह घटना ईसवी पूर्व द्वितीय शताब्दी के उत्तरार्ध में घटित हुई थी। इसी प्रकार लङ् लकार की व्याख्या में उनका कहना है कि लोक-विज्ञात परोक्ष के लिए—जो प्रयोक्ता के दर्शन का विषय हो सकता है—लङ् का प्रयोग होता है। इसके उदाहरण में उन्होंने 'अरुणत् यवनः साकेतम्' तथा 'अरुणत् यवनो माध्यमिकाम्' का उल्लेख किया है। यह यवन आक्रामक 'मिनाण्डर' था जो बौद्ध हो जाने पर 'मिलिन्द' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पंजाब तथा अफगानिस्तान पर वह १४२ ई० पू० के आसपास शासन करता था। अतः इन उदाहरणों के आधार पर महाभाष्य की रचना का काल ई० पू० द्वितीय शताब्दी का मध्य भाग अथवा १५० ई० पू० स्वीकार किया जा सकता है। इसलिए पतञ्जलि का समय इन उल्लेखों के आधार पर ईसा-पूर्व द्वितीय शताब्दी निश्चित रूप से माना जा सकता है।

पतञ्जलि का देश

पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक ने पतंजलि को काश्मीर देश का निवासी बतलाया है। परन्तु यह मत नितान्त असत्य तथा निर्मूल है। महाभाष्य की अन्तरंग समीक्षा करने पर उनके देशकाल का पर्याप्त परिचय प्राप्त होता है।

पतंजलि भारत के उत्तर प्रदेश के पूर्वी अंचल से पूर्णतया परिचित ज्ञात होते हैं। इनका प्रतिनिधि व्यक्ति 'देवदत्त' नाम का है जिसको सम्बोधित कर कोई अन्य पुरुष कहता है कि जानते हो देवदत्त ! मैं कश्मीर जाऊँगा और वहाँ जाकर सत्तू पीऊँगा या खाऊँगा। उस व्यक्ति को कश्मीर जाने की बड़ी उत्कण्ठा हो रही है। यदि पतंजलि कश्मीर के निवासी होते तो ऐसी बातें नहीं लिखते। पतंजलि ने देवदत्त को दही-भात खाने का शौकीन बतलाया है। वह सातू पीने का भी अभ्यासी है। मगध प्रदेश के सुगन्धित शालि का, व्रीहि तथा नीवार आदि चावलों के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख महाभाष्य में पाया जाता है। दधि के साथ मिलाकर सातू पीने तथा गुड़ की चाशनी से पकाया गया भूंजा धान 'गुड़धाना' (तिलकुट) खाने तथा ब्राह्मण भोजन में दही परोसने का वर्णन पतंजलि ने अपने महाभाष्य में भूरिशः किया है। इतना ही नहीं, पतंजलि ने जिन मुहावरों का प्रयोग किया है वे भी पूर्वाञ्चल में ही प्रयुक्त होते हैं। महाभाष्य में लिखित इन सब वर्णनों के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पतंजलि काशी-मण्डल के ही निवासी थे, कश्मीर के निवासी कदापि नहीं थे।[1]

रचना--पतञ्जलि की एकमात्र रचना महाभाष्य है जो उनकी कीर्ति को अमर बनाने के लिए पर्याप्त है। दर्शन शास्त्र के इतिहास में जो स्थान शंकराचार्य का ब्रह्म-सूत्रों पर लिखित शारीरक भाष्य का है, संभवतः वही स्थान व्याकरण शास्त्र के इतिहास में महाभाष्य का है। महाभाष्य का महत्त्व केवल इसी बात से जाना जा सकता है कि अन्य शास्त्रों के ऊपर अनेक विद्वानों तथा मनीषियों ने जो व्याख्याग्रन्थ लिखे हैं वे केवल भाष्य के नाम से अभिहित होते हैं परन्तु पतञ्जलि का यह ग्रन्थ महाभाष्य के नाम से प्रसिद्ध है। पतंजलि ने इस ग्रन्थ की रचना कर पाणिनि व्याकरण की प्रामाणिकता पर अपनी अन्तिम मुद्रा (सील) लगा दी है। (उत्तरोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्. इस कथन के आधार पर पाणिनि व्याकरण के शंकास्थलों पर पतंजलि ही अन्तिम प्रमाण (एथारिटी) हैं। इसीलिए महाभाष्य का नाम व्याकरण शास्त्र में बड़े ही आदर तथा श्रद्धा के साथ लिया जाता है।

महाभाष्य अष्टाध्यायी के सूत्रों की व्याख्या न होकर उसके वार्तिकों का भी बृहत् व्याख्यान है। पतंजलि से पूर्व में अनेक वैयाकरणों ने अष्टाध्यायी के ऊपर वार्तिकों का निर्माण किया जिनमें **कात्यायन** तथा **सुनाग** के वार्तिक मुख्य थे। इन सभी आचार्यों के मतों की यथार्थ समीक्षा कर खण्डन-मण्डन के द्वारा पतंजलि ने अपनी विशिष्ट इष्टियों की उद्भावना की। महाभाष्य व्याकरण शास्त्र का अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसमें व्याख्यान के द्वारा व्याकरण-दर्शन के सिद्धान्तों का विस्तार से निरूपण किया गया है। पतंजलि के सिद्धान्तों के आधार पर ही भर्तृहरि ने अपने 'वाक्यपदीय' नामक ग्रन्थ का प्रासाद प्रतिष्ठित किया तथा नागेश भट्ट ने अपनी 'मंजूषा' के निमित्त सिद्धान्त-रत्नों का संकलन किया। महाभाष्य की वर्णन-शैली इतनी सुबोध तथा प्रसादमयी है कि इसके तथ्यों को हृदयंगम करने में विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं होती। यह ग्रन्थ व्याकरण शास्त्र के सिद्धान्तों का ही आकर नहीं है, प्रत्युत निखिल शास्त्रों के तथ्यों की प्रतिपादिका महनीय कृति है।

महाभाष्य की दूसरी विशेषता यह है कि यह तत्कालीन सामाजिक प्रथाओं, रीति-रिवाज, रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा आदि का विश्वकोश है। पतंजलि ने अपने समय के समाज का जो सर्वाङ्गीण तथा सटीक चित्रण किया है वह अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता। व्याकरण जैसे शुष्क विषय के प्रतिपादक ग्रन्थ में इतनी रोचक तथा तथ्यपूर्ण सामग्री की उपलब्धि पाठकों को आश्चर्यान्वित कर देती है। किम्बहुना पतञ्जलि की पैनी दृष्टि से लोक में बहुशः प्रयुक्त होने वाले मुहावरे भी ओझल नहीं हो पाये हैं। एक दो उदाहरण ही यहाँ पर्याप्त हैं।

(१) द्विर्बद्धं सुबद्धं भवति।

---

१. इस विषय के विशेष विवरण के लिए देखिए—
आचार्य बलदेव उपाध्याय : सं० शा० इ०, पृ० ४४८–६०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित् ।
(३) आम्रान् पृष्टः कोविदारान् आचष्टे ।
(पूछा आम, बतावै इमिली)

रामचन्द्राचार्य

मध्ययुग में काशी पाणिनीय व्याकरण के उपबृंहण में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। १४वीं शती से लेकर १८वीं शती तक के समय को व्याकरण के इतिहास में स्वर्णयुग माना जाना चाहिए और इस सुवर्णयुग के लाने का श्रेय काशी के ही वैयाकरणों को प्राप्त है। इस युग के प्रख्यात वैयाकरण **रामचन्द्राचार्य** ने (१३५० ई०—१४०० ई०) 'प्रक्रियाकौमुदी' नामक अपनी विश्रुत रचना के द्वारा व्याकरण के इतिहास में एक नये युग का सूत्रपात किया। प्रयोगानुसारी क्रम में अष्टाध्यायी के सूत्रों को विषय-क्रम से बाँधना रामचन्द्राचार्य की नई सूझ है। इन्होंने इस ग्रन्थ के निर्माण में कातन्त्र का तथा बोपदेवीय व्याकरण का भी सहानुभूति से उपयोग किया है। फलतः इस घटना से इनकी उदार वृत्ति का हमें परिचय मिलता है। इस प्रक्रिया कौमुदी पर दो विद्वानों ने व्याख्याएँ लिखीं जिनमें एक हैं—ग्रन्थकार के ही पौत्र विट्ठल जिनकी व्याख्या का नाम 'प्रसाद' है और दूसरे हैं--उस युग के पारगामी वैयाकरण **शेष कृष्ण** जिनकी टीका का नाम 'प्रकाश' है।[1]

रामचन्द्राचार्य 'प्रक्रिया कौमुदी' के रचयिता के रूप में समधिक प्रसिद्ध हैं। इनके पौत्र का नाम विट्ठल था जिन्होंने 'प्रक्रिया कौमुदी' पर 'प्रसाद' नाम्नी वृत्ति का निर्माण किया। विट्ठल ने इस वृत्ति के प्रारम्भ में तथा अन्त में अपने वंश का विस्तृत वर्णन दिया है। इस वर्णन के आधार पर इनके वंश का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया जा सकता है।

रामचन्द्राचार्य का वंश भी आन्ध्र देश के सम्बद्ध था। इस वंश की उपाधि 'शेष' थी जिसे ये लोग अपने नाम के पूर्व में लिखा करते थे। ये कौण्डिन्य-गोत्री ऋग्वेदी ब्राह्मण थे। रामचन्द्राचार्य के पिता का नाम कृष्णाचार्य था। ये अपने पिता के कनिष्ठ पुत्र थे। ये सार्वभौम विद्वान् थे तथा चतुर्दश विद्याओं का अध्यापन करते थे जिनमें पतञ्जलि का महाभाष्य की सम्मिलित था।

इन्होंने तीन ग्रन्थों का प्रणयन किया था जिनके नाम हैं—(१) प्रक्रिया-कौमुदी, (२) काल-निर्णय-दीपिका तथा (३) वैष्णव-सिद्धान्त-दीपिका। इन्होंने अपने ज्येष्ठ पितृव्य गोपालाचार्य तथा पूज्य पिता कृष्णाचार्य से अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया था। अतः ये दोनों ही इनके गुरु थे।

प्रक्रियाकौमुदी--यह रामचन्द्राचार्य का सबसे प्रसिद्ध तथा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। रामचन्द्र ने अपने इस ग्रन्थ में महाभाष्य तथा काशिका के कतिपय श्लोकों को उद्धृत किया है। प्रक्रिया-शैली का प्राचीन ग्रन्थ होने के कारण प्रक्रियाकौमुदी का

१. प्रसाद का प्रकाशन बम्बई से हुआ था और—प्रकाश का प्रथम प्रकाशन संस्कृत विश्वविद्यालय के द्वारा काशी से हुआ है। सं० २०३३ विक्रमी, वाराणसी। दो भाग प्रकाशित हैं। तृतीय भाग यन्त्रस्थ है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्त्व अत्यधिक है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि भट्टोजि दीक्षित ने इसी ग्रन्थ से प्रेरणा तथा प्रोत्साहन प्राप्त कर अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'सिद्धान्त-कौमुदी' का निर्माण किया। यह तथ्य इन दोनों ग्रन्थों की तुलना से नितान्त स्पष्ट है।

प्रक्रियाकौमुदी का उद्देश्य लोकव्यवहार में प्रयुक्त शब्दों की साधुता की परीक्षा करना है। इसके फलस्वरूप रामचन्द्राचार्य ने एक सौ से अधिक अपाणिनीय प्रयोगों—जिनका लोक में व्यवहार होता है—को सिद्ध करने की सुन्दर व्यवस्था की है। इन्होंने लोक-व्यवहार को दृष्टि में रखकर पाणिनि से विभिन्न वैयाकरणों के भी मतों को प्रक्रिया-कौमुदी में संगृहीत किया है। इस प्रकार रामचन्द्राचार्य का पाणिनितंत्र में अन्य वैयाकरणों के मतो का सन्निवेश करना इनका भट्टोजि दीक्षित के सिद्धान्तों से स्पष्ट पार्थक्य सिद्ध कर रहा है।[1]

शेष श्रीकृष्ण

रामचन्द्राचार्य के अनन्तर काशी के वैयाकरणों में सर्वाधिक ख्याति प्राप्त करने वाले शेष श्रीकृष्ण नृसिंह के पुत्र थे। 'शेष' इनकी उपाधि थी जिसे ये अपने नाम के पूर्व लिखा करते थे। इन्होंने प्रक्रिया-कौमुदी पर 'प्रकाश' नाम की व्याख्या लिखी है। यह व्याख्या बड़ी ही विशद तथा विस्तृत है। शेष श्रीकृष्ण ने प्रक्रियाकौमुदी की अपनी वृत्ति को 'सत्-प्रक्रिया-व्याकृत' नाम दिया है परन्तु यह 'प्रकाश' के नाम से ही विशेष प्रसिद्ध है। भट्टोजि दीक्षित इन्हीं शेष कृष्ण के व्याकरण शास्त्र के शिष्य थे, तथापि अपनी 'प्रौढ़ मनोरमा' में 'प्रक्रिया-प्रकाश' में उपन्यस्त अपने गुरु के मत के खण्डन करने से वे कथमपि पराङ्मुख नहीं हुए। ऐसे अनेक स्थल उपलब्ध होते हैं जहाँ दीक्षित ने शेष कृष्ण के मत का खण्डन अपने ग्रन्थों में किया है। पण्डितराज जगन्नाथ ने शेष कृष्ण के पुत्र—शेष वीरेश्वर—से व्याकरणशास्त्र का अध्ययन किया था। अतएव अपने गुरु के पूज्य पिता के ग्रन्थ में भट्टोजि दीक्षित के द्वारा प्रदर्शित दोषों की कल्पना उनके लिए असह्य हो उठी और इसलिए उन्हें बाध्य होकर 'प्रौढ़ मनोरमा' का खण्डन लिखना पड़ा था। इस प्रकार शिष्य के द्वारा अपने गुरु के मत के खण्डन को महान् अपराध मानकर पण्डितराज जगन्नाथ ने भट्टोजि दीक्षित को 'गुरुद्रोही' की अपमानजनक उपाधि प्रदान की थी। इन्होंने 'मनोरमा-कुच-मर्दन' नामक अपने व्याकरण-सम्बन्धी ग्रन्थ को लिखकर दीक्षित के प्रत्याख्यानों का बुरी तरह से खण्डन किया है और शेष कृष्ण के मूल आशय को बड़ी ही प्रौढ़ता के साथ प्रतिपादित कर उनके मत का मण्डन किया है। शेष कृष्ण के पौत्र तथा शेष वीरेश्वर के पुत्र **चक्रपाणि दत्त** या **शेष चक्रपाणि** ने 'प्रौढ़ मनोरमाखण्डन' लिखकर प्रक्रिया-प्रकाश के दूषणों का प्रत्याख्यान पूर्व में ही किया था। इन्होंने 'प्रक्रिया-दीपक' नामक एक अन्य ग्रन्थ भी बनाया था।

---

१. विशेष द्रष्टव्य डा० आद्याप्रसाद मिश्र रचित प्रक्रियाकौमुदी-विमर्श (प्रकाशक संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रक्रिया प्रकाश—शेष वंश के प्रख्यात विद्वान् शेष कृष्ण ने इस विस्तृत तथा पाण्डित्यपूर्ण टीका का प्रणयन किया है। ये अकबर के समकालीन थे। अकबर के प्रसिद्ध मंत्री बीरबल के पुत्र कल्याण को व्याकरण सिखाने के लिए उन्हीं के आदेश से इन्होंने यह व्याख्या लिखी थी। शेष कृष्ण शेष नृसिंह के पुत्र थे और १६ वीं शताब्दी के वैयाकरणों में प्रधान थे। शेष कृष्ण ने अपने ग्रन्थ के आरम्भ में अपने आश्रयदाता राजा बीरबल के वंश वृक्ष का ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत किया है।

प्रक्रिया प्रकाश के अतिरिक्त इन्होंने अनेक काव्य तथा नाटकों की भी रचना की है जिनका उल्लेख निम्नलिखित है :—

(क) कंसवध नाटक, (ख) पारिजातहरण चम्पू, (ग) शब्दालंकार, (घ) पद-चन्द्रिका, (ङ) कृष्णकौतूहल जो पद चन्द्रिका का विवरण है।

भट्टोजि दीक्षित

पाणिनीय व्याकरण के क्षितिज में भट्टोजि दीक्षित एक प्रकाशमान् नक्षत्र के समान हैं। ये व्याकरण के अद्वितीय विद्वान् थे। संस्कृत व्याकरण के प्रचार तथा प्रसार में इन्होंने जितना अद्भुत योगदान दिया है उतना संभवतः अन्य किसी वैयाकरण ने नहीं। पाणिनीय व्याकरण के सबसे लोकप्रिय तथा प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सिद्धान्त-कौमुदी' की रचना कर इन्होंने एक नये सम्प्रदाय की स्थापना की। यह ग्रन्थ व्याकरण-शास्त्र के इतिहास में मूलग्रन्थ के रूप में माना जाता है। दीक्षित जी का यह ग्रन्थ इतना प्रसिद्ध हुआ कि बाद के अनेक वैयाकरणों के लिए इस ग्रन्थ की टीका-टिप्पणी लिखना ही उनके पाण्डित्य की कसौटी माना जाने लगा।

भट्टोजि दीक्षित केवल व्याकरण शास्त्र के ही प्रकाण्ड तथा दुर्धर्ष विद्वान् नहीं थे, प्रत्युत धर्मशास्त्र में भी अनेक ग्रन्थों की रचना कर इन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। दीक्षित जी की दूसरी विशेषता यह थी कि इनकी एक नहीं, बल्कि पीढ़ियाँ संस्कृत व्याकरण की सेवा में निरन्तर संलग्न रहीं। दीक्षित के पुत्र **भानुजि दीक्षित** तथा इनके पौत्र एवं भानुजि के पुत्र **हरि दीक्षित** भी व्याकरण के तलस्पर्शी विद्वान् थे और इन लोगों ने अपनी प्रौढ़ रचनाओं के द्वारा व्याकरण शास्त्र के भण्डार को भरा है।

भट्टोजि दीक्षित ने जहाँ एक ओर अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'सिद्धान्त कौमुदी' की रचना कर व्याकरण के पठन-पाठन में एक नये सम्प्रदाय की स्थापना की, वहाँ उन्होंने अपने पुत्र-पौत्रों तथा शिष्यमण्डली द्वारा इस शास्त्र के भण्डार की वृद्धि कर इसका प्रचुर प्रचार भी किया। व्याकरण शास्त्र के इतिहास में भट्टोजि दीक्षित और उनके परिवार तथा शिष्यमण्डली ने जितना अलौकिक योगदान दिया है उतना संभवतः अन्य किसी व्यक्ति ने नहीं। इसलिए दीक्षित जी व्याकरण शास्त्र में शीर्षस्थ स्थान के निश्चित रूप से अधिकारी हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशकाल—भट्टोजि दीक्षित आन्ध्रदेश के निवासी थे। ये तैलंग ब्राह्मण थे। ये महाराष्ट्रीय नहीं थे जैसा कि सामान्य लोगों का असामान्य विश्वास है। इनके कुल को व्याकरण शास्त्र के पारंगत तथा प्रकाण्ड विद्वानों को उत्पन्न करने का श्रेय प्राप्त है। इनके पिता का नाम लक्ष्मीधर भट्ट और भ्राता का नाम रंगोजि भट्ट था। इनके पुत्र भानुजि दीक्षित थे जिन्होंने संन्यास लेकर अपना नाम 'रामाश्रम' रखा था। इनके पौत्र हरिदीक्षित के नाम से प्रसिद्ध थे तथा भ्रातुष्पुत्र कौण्ड भट्ट थे।

भट्टोजि दीक्षित व्याकरण, धर्मशास्त्र, वेदान्त और मीमांसा आदि अनेक शास्त्रों के पारंगत पण्डित थे। इन्होंने 'प्रक्रिया कौमुदी' के व्याख्याकार शेष कृष्ण से व्याकरण तथा धर्मशास्त्र का अध्ययन किया था। वेदान्त का पाठ नृसिंहाश्रम से पढ़ा था जिनकी 'तत्त्वविवेक' नामक टीका पर इन्होंने स्वयं 'विवरण' नाम्नी टीका लिखी थी। मीमांसा शास्त्र का अध्ययन इन्होंने दक्षिण भारत के भ्रमण के अवसर पर अप्पय दीक्षित से किया था। दीक्षित जी ने वेदान्त और धर्मशास्त्र के विषय में अनेक मौलिक तथा टीका ग्रन्थों की रचना की है परन्तु वैयाकरण के रूप में ही इनकी प्रसिद्धि लोकविश्रुत हुई। इन्होंने सिद्धान्त कौमुदी की रचना से पूर्व अपने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन काशी में ही किया था। इन्होंने अष्टाध्यायी की महनीय व्याख्या 'शब्द-कौस्तुभ' के नाम से लिखी जो आज अपूर्ण रूप में ही मिलती है।

दीक्षित जी ने सिद्धान्त कौमुदी पर स्वयं ही **प्रौढ़ मनोरमा** नामक प्रथम व्याख्या लिखी थी। ये खण्डन-मण्डन में रस लेने वाले पण्डित थे। इसलिए न्यास, पदमंजरी तथा काशिका का इनके द्वारा किया गया खण्डन विद्वानों को आश्चर्य में डाल देता है। परन्तु इससे भी आश्चर्यजनक बात विद्वानों के लिए यह है कि इन्होंने अपने ही गुरु शेष कृष्ण द्वारा रचित 'प्रक्रिया प्रकाश' के मतों का अपनी 'प्रौढ़ मनोरमा' में पदे-पदे प्रचुर खण्डन किया है। ये वैयाकरणों के द्वारा स्थापित मतों का खण्डन करने में बद्ध-परिकर थे। पूर्व वैयाकरणों के सिद्धान्तों का खण्डन करने में ये गौरव का अनुभव किया करते थे। तभी ये कहा करते थे कि कैयट से लेकर आज तक के विद्वानों के ग्रन्थ शिथिल ही हैं। भट्टोजि दीक्षित का व्याकरण-शास्त्र-संबंधी वैदुष्य नितान्त स्पृहणीय तथा आदरणीय था—इस विषय में दो मत हो ही नहीं सकते। इनकी **सिद्धान्त कौमुदी** के अध्ययन की अखिल भारतीय परम्परा रही है और आज भी है। इस प्रकार दीक्षित जी व्याकरण शास्त्र में एक परम्परा के प्रतिष्ठापक के रूप में प्रतिष्ठित पाये जाते हैं।

भट्टोजि दीक्षित के आविर्भाव-काल के विषय में विद्वानों में ऐकमत्य नहीं है। परन्तु अनेक हस्तलेखों के आधार पर इनके समय का निर्णय किया जा सकता है। विद्वानों ने इनके समय को १५६० ई० से १६१० ई० के बीच में स्वीकार किया है।[1]

१. इसके विस्तृत विवरण के लिए देखिए—
बलदेव उपाध्याय : सं० शा० इ०, पृ० ५०२–३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भट्टोजि दीक्षित के ग्रन्थ

दीक्षित जी ने व्याकरण, धर्मशास्त्र, वेदान्त और मीमांसा आदि विषयों में अनेक ग्रन्थों की रचना की है परन्तु इनकी कीर्तिकौमुदी को प्रकाशित करने वाली इनकी व्याकरणशास्त्र संबंधी रचनाएँ ही हैं। इन्होंने व्याकरण-संबंधी निम्नलिखित ग्रन्थों की रचना की :—

(१) शब्दकौस्तुभ (२) सिद्धान्तकौमुदी (३ प्रौढ़ मनोरमा (४) धातुपाठ-निर्णय तथा (५) लिङ्गानुशासन-वृत्ति।

इनमें से प्रथम तीन ग्रन्थ दीक्षित की शास्त्रीय वैदुषी के प्रतिष्ठापक ग्रन्थ हैं जिनके ऊपर इनकी कीर्ति प्रतिष्ठित है। **'शब्द कौस्तुभ'** का उल्लेख सिद्धान्त कौमुदी के अन्त—उत्तर कृदन्त—में किया गया है। अतः यह ग्रन्थ सिद्धान्त कौमुदी के निर्माण से प्रथम ही विरचित हो गया था। शब्द कौस्तुभ व्याकरण शास्त्र का बड़ा ही प्रौढ़ तथा व्यापक ग्रन्थ है। परन्तु यह तृतीय अध्याय के चतुर्थ आह्निक तक ही लिखा गया था। यह ग्रन्थ अष्टाध्यायी की ही विस्तृत वृत्ति है परन्तु महाभाष्य में प्रतिपाद्य विषयों का भी समीक्षण तथा परिवृंहण करने के कारण यह महाभाष्य का भी विवेचक ग्रन्थ माना जाता है। इसके विषय में दीक्षित ने स्वयं लिखा है कि "महाभाष्य रूपी समुद्र से उद्धृत किया गया यह कौस्तुममणि है।"[१] इस प्रकार दीक्षित जी स्वयं इस ग्रन्थ को महाभाष्य के सिद्धान्तों का सार मानते हैं।

प्रौढ़-मनोरमा—भट्टोजि दीक्षित ने अपनी सिद्धान्त कौमुदी पर स्वयं प्रौढ़ मनोरमा नाम की विशद तथा विस्तृत व्याख्या का निर्माण किया। इस ग्रन्थ में खण्डन-मण्डन का प्राचुर्य है। भाष्य के ऊपर इनकी महती आस्था है। फलतः इसी ग्रन्थ को केन्द्र बिन्दु मान कर अपने व्याकरण शास्त्र के गुरु शेष कृष्ण द्वारा रचित प्रक्रिया-प्रकाश ग्रन्थ में निहित मतों के खण्डन करने से ये पराङ्मुख नहीं हुए। शेष कृष्ण के मतों के इस खण्डन से उनके पक्षधर पण्डितों का क्षुब्ध होना स्वाभाविक ही है। इसलिए शेष कृष्ण के पौत्र तथा शेष वीरेश्वर के पुत्र शेष चक्रपाणि ने 'परमत-खण्डन' लिख कर तथा शेष वीरेश्वर के शिष्य पण्डितराज जगन्नाथ ने 'मनोरमा-कुच-मर्दन' लिखकर अपने पितामह तथा गुरु के खण्डन का मुंहतोड़ उत्तर दिया।

सिद्धान्त-कौमुदी—यह प्रक्रिया-पद्धति का चूडान्त अध्यवसाय है। इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह पाणिनीय व्याकरण का सबसे अधिक लोकप्रिय तथा लोकमान्य ग्रन्थ है। यह प्रक्रिया पद्धति का प्रतिष्ठापक ग्रन्थ है। इसी ग्रन्थ को मूलभूत मानकर संस्कृत व्याकरण का अध्ययन अध्यापन समस्त भारत में होता रहा है और आज भी होता है।

सिद्धान्त कौमुदी में अष्टाध्यायी के समग्र सूत्र तत्तत् प्रकरणों में सन्निविष्ट कर दिये गये हैं। इसमें समस्त सूत्रों की संख्या ३९९२ है। यह ग्रन्थ अष्टाध्यायी के समस्त

---

१. फणि-भाषित भाष्याब्धेः शब्दकौस्तुभ उद्धृतः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूत्रों का प्रक्रियानुसारी संकलन है। यही इसकी लोकप्रियता का प्रधान कारण है। आज भी सिद्धान्त कौमुदी संस्कृत व्याकरण के विद्वानों तथा विद्यार्थियों का उपजीव्य तथा मूल ग्रन्थ माना जाता है।

सिद्धान्त कौमुदी के प्रक्रिया पद्धति का मूलभूत ग्रन्थ होने के कारण अनेक विद्वानों ने टीका तथा व्याख्या-ग्रन्थों की रचना की है। कौमुदी के सबसे प्राचीन टीकाकार हैं ज्ञानेन्द्र सरस्वती जिनकी **तत्वबोधिनी** टीका प्रौढ़ मनोरमा पर आश्रित होने के कारण अत्यन्त प्रख्यात तथा प्रामाणिक मानी जाती है। दूसरी लोकप्रिय तथा छात्रोपयोगी व्याख्या **बालमनोरमा** है जिसके लेखक वासुदेव दीक्षित है। नागेश भट्ट का **शब्देन्दु-शेखर परिभाषेन्दु-शेखर** इसी ग्रन्थ के प्रायः व्याख्यान माने जाते हैं।

इतरग्रन्थ—दीक्षित जी ने व्याकरण के अतिरिक्त धर्मशास्त्र तथा वेदान्तशास्त्र के ग्रन्थों का भी प्रणयन किया है। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या लगभग ३४ (चौंतीस) है। धर्मशास्त्र के विषय में इनका ग्रन्थ है 'आशौच-प्रकरण, तिथि-निर्णय तथा लघु-त्रिस्थली सेतु'। वेदान्त शास्त्र-संबंधी इनके निम्न ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं (१) वेदान्त तत्त्व-कौस्तुभ, (२ दीपन-व्याख्या, (३) अद्वैत-कौस्तुभ और (४) तत्त्व-सिद्धान्त-चन्द्रिका। इनके इतर कुछ ग्रन्थों के नाम हैं—(क) तन्त्राधिकार निर्णय, (ख) वेद भाष्यसार, (ग) तत्त्व सिद्धान्त दीपिका और (घ) तैत्तिरीय सन्ध्याभाष्य। इन ग्रन्थों की रचना से पता चलता है कि भट्टोजि दीक्षित की प्रतिभा बहुमुखी थी और वे अनेक शास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित तथा तलस्पर्शी विद्वान् थे।

भट्टोजि दीक्षित का परिवार

भट्टोजि दीक्षित स्वयं तो व्याकरण तथा धर्मशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे ही। उन्होंने अपने पुत्र और पौत्र के रूप में संस्कृत साहित्य को जो रिक्थ प्रदान किया वह अलौकिक तथा अनुपमेय है। इतना ही नहीं, इनके भ्राता तथा भ्रातुष्पुत्र ने भी संस्कृत साहित्य के भाण्डार को भरा है। इस प्रकार संस्कृत विद्या के इतिहास में शायद ही कोई ऐसा परिवार हो जिसने लगातार तीन पीढ़ियों तक सुरभारती की इतनी अमूल्य सेवा की हो।

(१) रङ्गोजि भट्ट—ये भट्टोजि दीक्षित के सहोदर भ्राता थे। इन्होंने अपने ग्रन्थ में भट्टोजि को अपना गुरु माना है। अतः इससे पता चलता है कि ये उनके अनुज थे। रङ्गोजि भट्ट अद्वैत वेदान्त के विद्वान् थे। इस विषय में इनकी तीन रचनाएँ उपलब्ध होती हैं :

(१) अद्वैत-चिन्तामणि तथा (२) अद्वैत-सारोद्धार। अद्वैत चिन्तामणि दो परिच्छेदों में विभक्त है। प्रथम परिच्छेद में न्याय वैशेषिक के पदार्थों का विस्तृत खण्डन है तथा द्वितीय में अद्वैत वेदान्त के तत्त्वों का यथाविधि विवरण प्रस्तुत किया गया है। इनका तीसरा ग्रन्थ **(३) ब्रह्म सूत्रवृत्ति** है जिसका निर्देश कौण्ड भट्ट ने अपने **वैयाकरणभूषण में किया है।**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) **भानुजि दीक्षित**--ये भट्टोजि दीक्षित के पुत्र थे। इनका दूसरा नाम वीरेश्वर दीक्षित था। संन्यास ग्रहण करने पर ये रामाश्रम के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्होंने भी अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है जिनमें अमरकोश की टीका व्याख्या-सुधा-- जो रामाश्रमी के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध है-- विद्वत्ता के कारण बड़ी प्रामाणिक मानी जाती है। धर्मशास्त्र के सम्बन्ध में इनका ग्रन्थ '**दान विवेक**' प्रसिद्ध है। व्याकरण शास्त्र सम्बन्धी इनकी '**मनोरमा मण्डन**' नामक रचना विद्वत्तापूर्ण है जिसमें शेष चक्रपाणि के 'परमत खण्डन' का खण्डन कर भट्टोजि दीक्षित के मत का मण्डन किया गया है।

(३) **कोण्ड भट्ट**--रङ्गोजि भट्ट के पुत्र तथा भट्टोजि दीक्षित के भ्रातुष्पुत्र कोण्ड भट्ट ने व्याकरण तथा न्याय-वैशेषिक पर अनेक ग्रन्थों की रचना की है। इनका **वैयाकरण-भूषण** तथा **वैयाकरण-भूषण-सार** नामक ग्रन्थ पाणिनि व्याकरण के दार्शनिक तथ्यों के प्रकाशक ग्रन्थ-रत्नों में अन्यतम हैं। इन ग्रन्थों के हस्तलेखों से पता चलता है कि इनका प्रणयन १६५० ई० से पूर्व ही हो गया था। **न्याय-पदार्थ-दीपिका** (अथवा पदार्थ दीपिका) में कोण्ड भट्ट ने वैयाकरण-भूषण और तर्करत्न नामक अपने ग्रन्थों का उल्लेख किया है। फलस्वरूप पदार्थ दीपिका की रचना वैयाकरणभूषण के बाद की घटना है। इनके अन्य ग्रन्थ **तर्कप्रदीप** तथा **तर्करत्न** हैं। इस प्रकार ये व्याकरण के अतिरिक्त न्यायशास्त्र के भी प्रकाण्ड पण्डित थे।

(४) **हरि दीक्षित**--ये भट्टोजि दीक्षित के पौत्र तथा भानुजि दीक्षित के पुत्र थे। ये अपने समय के प्रौढ़ वैयाकरण माने जाते थे। नागोजि भट्ट जैसे प्रकाण्ड विद्वान् का गुरु होने का गौरव इन्हें प्राप्त है। इन्होंने 'शब्दरत्न' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया जो भट्टोजि दीक्षित की प्रौढ़ मनोरमा की टीका है। इस ग्रन्थ में इन्होंने अपने पितामह के इस ग्रन्थ के खण्डन करनेवाले विद्वानों के मतों का खण्डन कर उनके मत का विस्तारपूर्वक मण्डन किया है। शब्दरत्न के दो संस्करण उपलब्ध होते हैं : (१) लघु शब्द-रत्न तथा (२) बृहत् शब्द-रत्न। पण्डितों की मान्यता यह है कि लघु शब्द-रत्न का निर्माण नागोजि भट्ट ने ही किया था परन्तु अपने पूज्य गुरु हरि दीक्षित के नाम से इसे प्रचारित किया। इस ग्रन्थ की दो टीकाएँ उपलब्ध होती हैं : (१) श्री वैद्यनाथ पायगुण्डे की 'भाव प्रकाशिका तथा (२) भैरव मिश्र की 'रत्न प्रकाशिका'। इस प्रकार हरि दीक्षित ने अपने पितामह भट्टोजि दीक्षित की कीर्ति को अक्षुण्ण बनाने तथा विद्वत्-परम्परा को प्रवाहित रखने में प्रचुर योगदान दिया।[1]

---

१. भट्टोजि दीक्षित तथा उनके परिवार के विशेष तथा प्रामाणिक विवरण के लिए देखिए—
आचार्य बलदेव उपाध्याय : सं० शा० इ०, पृ० ५०१-५१२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागेश भट्ट

इन्हें नव्य व्याकरण के प्रतिष्ठापक होने का गौरव प्राप्त है। ये हरि दीक्षित के प्रमुख तथा पट्ट शिष्य थे। काशी में ही रहकर इन्होंने अपने समस्त ग्रन्थों की रचना की। अन्त में इन्होंने क्षेत्र-संन्यास ले लिया था जिसके कारण जयपुर (राजस्थान) के संस्थापक महाराजा जयसिंह के द्वारा निमन्त्रित होने पर भी ये उनके विश्रुत अश्वमेध यज्ञ में सम्मिलित न हो सके। यह प्रख्यात अश्वमेध आषाढ़ बदी द्वितीया सं० १७६९ वि० (१७४२ ई०) में जयपुर में सम्पन्न हुआ था। अतएव नागेश भट्ट का समय १७वीं शताब्दी का अन्तिम चरण तथा १८वीं शती का पूर्वार्द्ध (अर्थात् १६७५ ई० से लेकर १७४५ ई० के लगभग) समझना चाहिए।

नागेश भट्ट महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम शिव भट्ट और माता का नाम सती देवी था। इनका उपनाम काले था अतः महाराष्ट्रीय परम्परा के अनुसार इनका पूरा नाम नागेश शिव भट्ट काले था। प्रयाग के समीपस्थ शृंगवेरपुर (वर्तमान नाम सिंगरौर) के राजा इनके आश्रयदाता थे जिनका उल्लेख इन्होंने इस प्रकार किया है :

याचकानां कल्पतरोऽरिकक्षहुताशनात्
शृंगवेरपुराधीशात् रामतो लब्धजीविकः।

ये नाना शास्त्रों के प्रौढ़ विद्वान् थे। इन्होंने साहित्य, धर्मशास्त्र, कर्मकाण्ड, तन्त्र तथा व्याकरण आदि विषयों पर अपनी लेखनी चलाई परन्तु इनकी कीर्ति का मेरुदण्ड व्याकरण शास्त्र ही है। ये मुख्यतः वैयाकरण थे और उनकी व्याकरण-सम्बन्धी रचनाएँ नागेश के गम्भीर पाण्डित्य, अलौकिक शास्त्र-वैदुष्य तथा दृढ़ तर्क-निपुणता का परिचय देती हैं। व्याकरण शास्त्र में इनके द्वारा रचित मान्य ग्रन्थ हैं : (१) **वैयाकरण सिद्धान्त मञ्जूषा** जो लघु मञ्जूषा और परम लघु मञ्जूषा के नाम से दोनों संस्करणों में उपलब्ध हैं। (२) **परिभाषेन्दुशेखर**, ३) **लघु शब्देन्दुशेखर**। इसका परिवर्धित संस्करण बृहत् शब्देन्दुशेखर के नाम से तीन बृहत् भागों में संस्कृत विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुआ है। (४) **महाभाष्य-प्रदीपोद्योत** – जो महाभाष्य के ऊपर कैयट के प्रदीप की टीका है। इन चारों ग्रन्थों का प्रभाव अवान्तरकालीन वैयाकरणों के ऊपर इतना अधिक है कि प्राचीन व्याकरण-सम्बन्धी ग्रन्थों को छोड़कर इन्हीं ग्रन्थों में व्युत्पत्ति लाभ करना आजकल वैदुष्य का निकषग्रावा माना जाता है। अतः व्याकरण सम्प्रदाय के आधुनिक काल को **'शेखर युग'** कहना कथमपि अत्युक्ति नहीं है।

ग्रन्थ-परिचय

(१) **वैयाकरण-सिद्धान्त-मञ्जूषा** का विषय व्याकरण के दार्शनिक तत्त्वों का तुलनात्मक अनुशीलन तथा मार्मिक विवेचन है। व्याकरण केवल शब्दरूपों की सिद्धि करने वाला ही सामान्य शास्त्र नहीं है, प्रत्युत धात्वर्थ, कारकार्थ, समासार्थ, नाना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्फोट पदार्थ, सृष्टि-तत्त्व आदि गम्भीर तत्त्वों का विवेचक विशिष्ट शास्त्र है। अनेक विषयों के विवेचन में न्याय-वैशेषिक तथा जैमिनीय मीमांसा से विपरीत सिद्धान्त के समर्थक होने से नागेश भट्ट ने व्याकरणागम के सिद्धान्तों का बड़ी प्रौढ़ता के साथ इस मंजूषा में उपन्यास किया है। वाक्यपदीय के अनन्तर एक सहस्र वर्षों के बाद ऐसे महनीय ग्रन्थरत्न की सृष्टि नागेश के लोकातीत वैदुष्य का प्रबल प्रमाण है।

(२) **परिभाषेन्दुशेखर**—पाणिनीय तन्त्र के लिए उपयोगी एवं स्वीकृत परिभाषाओं के स्वरूप का विवेचक यह ग्रन्थ निःसन्देह अप्रतिम है। इसकी टीका सम्पत्ति इसके महत्त्व की भूरिशः परिचायिका है।

(३) **लघु शब्देन्दुशेखर**—प्रौढ़ मनोरमा की विस्तृत व्याख्या होने के साथ ही साथ नवीन सिद्धान्तों के विद्योतक होने के कारण निःसन्देह मौलिक ग्रन्थ है। 'बृहत् शब्देन्दुशेखर' का निर्माण कर नागेश ने अपने मस्तिष्क की उर्वराशक्ति का तथा अपने लेखनकौशल का बड़ा ही प्रगल्भ प्रदर्शन किया है।

(४) **महाभाष्य प्रदीपोद्योत**—पातञ्जल महाभाष्य के प्रमुख व्याख्याकार काश्मीर-निवासी कैयट रचित व्याख्यान प्रदीप के गूढ़ अर्थ को प्रकाश में लाने वाला महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। ये चारों ही ग्रन्थ नागेश के उत्कृष्ट एवं गम्भीर विवेचन के साक्षात् परिचायक हैं।

नागेश का वैशिष्ट्य

नागेश का वैदुष्य व्याकरण-शास्त्र में अनुपम था। अपने प्रौढ़ ग्रन्थों की रचना के कारण वे अपने युग में भी प्राचीन शास्त्रों के मर्मवेत्ता तथा विशिष्ट वैदुष्य-मण्डित पण्डित माने जाते थे। उद्योत के द्वारा महाभाष्य के तथा शब्देन्दु-शेखर (बृहत् तथा लघु द्विविध संस्करण) के द्वारा प्रौढ़-मनोरमा के गम्भीर रहस्यों की पूर्ण अभिव्यक्ति करने में वे सर्वथा समर्थ हैं– इस विषय में विद्वानों में ऐकमत्य है। परिभाषेन्दु-शेखर में उन्होंने विशेष अनुशीलन के द्वारा परिभाषाओं के स्वरूप तथा क्षेत्र का विशिष्ट प्रतिपादन कर विषय को नवीनता के साथ उपस्थित किया। आज के व्याकरण युग को 'शेखर-युग' की संज्ञा देना नितान्त समुचित है। शेखर इतना छाया हुआ है आज हमारे व्याकरण अनुशीलन पर कि इसके मूलभूत ग्रन्थ महाभाष्य का अध्ययन-अध्यापन नगण्य हो गया है। आज शेखर की विजय नागेश के पाण्डित्य का ही डिण्डिम-घोष है।

परन्तु यथार्थ में नागेश का **वैयाकरण-सिद्धान्त-मञ्जूषा** ही सर्वाधिक मौलिक ग्रन्थ है जो पाणिनीय दर्शन के विस्मृत स्वरूप को विद्वानों के सामने पूर्ण वैभव के साथ प्रस्तुत करने में कृतकार्य हुआ है। व्याकरण-दर्शन का बीज तो अष्टाध्यायी में ही है, उसे अंकुरित किया दाक्षायण व्याडि ने अपने लक्ष-श्लोक-परिमाण वाले 'संग्रह' में, उसे पल्लवित-पुष्पित किया पतञ्जलि ने महाभाष्य में और उसे फल-सम्पन्न बनाया भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में। परन्तु वाक्यपदीय के लुप्तप्राय अध्ययन तथा अनुशीलन को १८वीं शती के मध्य-भाग में नागेश भट्ट ने सिद्धान्त-मञ्जूषा के द्वारा पुनः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवर्तित किया और वैयाकरणों का ध्यान इस विषय की ओर बलात् आकृष्ट किया। व्याकरण के दर्शनत्व की प्रतिष्ठा की ओर नागेश के समस्त वैदुष्य की धारा अग्रसर होती है। उन्होंने वाक्यपदीय के अध्ययन की ओर विद्वानों का जो ध्यान आकृष्ट किया, वह क्षणिक ही रहा। उसे स्थायिता प्राप्त न हो सकी। यह सौभाग्य का विषय है कि विद्वानों की दृष्टि आजकल वाक्यपदीय के गम्भीर तथा सर्वाङ्गीण अनुशीलन के प्रति आकृष्ट हुई है। इस प्रसंग में ध्यान देने की बात है कि भर्तृहरि ने पाणिनीय तन्त्र के दार्शनिक तथ्यों की अवगति के लिए व्याकरण आगम की ओर स्पष्ट संकेत किया है। यह आगम शैव-आगम की ही अन्यतम धारा थी। आज शैव आगम की विभिन्न धाराओं के तथ्यों से हमारा परिचय बढ़ता जा रहा है। उत्तर भारत में काश्मीर का अद्वैतवादी त्रिकदर्शन तथा दक्षिण भारत में द्वैतवादी शैवसिद्धान्त उसी शैवागम के ऊपर आधारित दार्शनिक सम्प्रदाय हैं। व्याकरण-दर्शन का भी इस शैवागम के साथ पूर्ण सम्बन्ध है—भर्तृहरि ने अपने ग्रन्थ में इसका विशद संकेत किया है। इस शैवागम के साथ पूर्ण सामंजस्य स्थापित कर ही व्याकरणदर्शन अपनी विशद अभिव्यक्ति कर सकता है। नागेश के ग्रन्थों में इस शैवागम के सिद्धान्तों के साथ व्याकरण का कितना सामंजस्य स्थापित किया गया है— यह तो उनके ग्रंथों के गम्भीर अनुशीलन-अध्ययन के बाद ही निश्चित किया जा सकता है। परन्तु आलोचकों के चित्त में यह सन्देह जागरूक है कि नागेश ने शैवागम की अपेक्षा अद्वैत-वेदान्त के प्रकाश में ही पाणिनीय दर्शन की व्याख्या प्रस्तुत की है। लगभग एक सहस्र वर्षों के अनन्तर वाक्यपदीय के महत्त्व की ओर विद्वानों के ध्यान आकृष्ट करने के लिए पण्डित-समाज नागेशभट्ट का सर्वदा अधमर्ण रहेगा और नागेश की सार्वभौम प्रतिष्ठा का यही मर्म है।

नागेश की गुरु-शिष्य परम्परा

नागेश भट्ट ने महाभाष्य का अध्ययन भट्टोजि दीक्षित के पौत्र **हरि दीक्षित** से किया था तथा न्यायशास्त्र का अध्ययन **रामराम भट्टाचार्य** से किया था जो काशी में उस युग के प्रख्यात तर्कवेत्ता थे। नागेश को अपने गुरु पर असीम श्रद्धा थी और श्री रामराम की अनुकम्पा से न्यायशास्त्र के अपने गम्भीर ज्ञान पर भी उन्हें सविशेष गर्व था। इस तथ्य का संकेत उन्होंने लघुमञ्जूषा में इन शब्दों में स्वयं किया है—

अधीत्य फणिभाष्याब्धिं सुधीन्द्र-हरिदीक्षितात्।
न्यायतन्त्रं रामरामाद् वादिरक्षोघ्नरामतः॥
'दृढस्तर्केऽस्य नाभ्यास' इति चिन्त्यं न पण्डितैः।
दृषदोऽपि हि संतीर्णाः पयोधौ रामयोगतः॥

इन दो गुरुओं के अतिरिक्त इनके अन्य गुरु का परिचय हमें प्राप्त नहीं है।

इनके अनेक शिष्य रहे होंगे; यह कल्पना अनुचित नहीं है, परन्तु इन शिष्यों में अग्रणी थे—**वैद्यनाथ पायगुण्डे**। इन्होंने अपने गुरु की प्रायः समग्र वैयाकरण ग्रन्थों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ऊपर गुरु की मर्मप्रकाशिका व्याख्याएँ लिखी हैं जिनमें नागेश के भावों का विशद विशदीकरण है। इनके पिता का नाम महादेव भट्ट था। गुरु के समान ही वैद्यनाथ भी व्याकरण के पारगामी पण्डित थे। इनके नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थ ये हैं—(१) शब्द-कौस्तुभ की टीका (**प्रभा**); (२) शब्दरत्न की टीका (**भाव-प्रकाशिका**); (३) उद्योत की टीका (**छाया**); (४) लघुशब्देन्दुशेखर की टीका (**चिदस्थि-माला**); (५) परिभाषेन्दु की टीका (**गदा और काशिका**); (६) मञ्जूषा की टीका (**कला**); (७) लघुशब्दरत्न की टीका तथा (८) र प्रत्यय का खण्डन। ये टीकाएँ प्रमेय-बहुल, प्रख्यात तथा प्रकाशित हैं।

काव्य तथा अलंकार शास्त्र

ललित काव्य के सर्जन तथा उसके समालोचन एवं समीक्षण के प्रति भी काशी के पण्डितों की अभिरुचि कुछ न्यून नहीं थी। इनकी अनेक रचनाओं को अखिल भारतीय कीर्ति प्राप्त है तथा ये अपने विषय के प्रसिद्ध एवं बहुचर्चित ग्रन्थ हैं। ऐसे ग्रन्थों में पण्डितराज जगन्नाथ का 'रस-गंगाधर' तथा विश्वेश्वर पाण्डेय का 'अलंकार कौस्तुभ' अपने प्रौढ़ तार्किक विवेचन तथा गम्भीर आलोचना के कारण अलंकार साहित्य के इतिहास में अनुपम स्थान रखते हैं।

पण्डितराज जगन्नाथ

पण्डितराज जगन्नाथ अलंकार-शास्त्र के इतिहास में सबसे प्रसिद्ध तथा अन्तिम प्रौढ़ आलंकारिक थे। ये तैलंग ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम पेरुभट्ट एवं माता का नाम लक्ष्मी देवी था। पण्डितराज अप्पय दीक्षित के समकालीन थे। इनके पिता ने वेदान्त की शिक्षा ज्ञानेन्द्र भिक्षु से, न्याय-वैशेषिक की महेन्द्र पण्डित से, पूर्वमीमांसा की खण्डदेव से तथा व्याकरण की शिक्षा शेष वीरेश्वर से ली थी। पण्डितराज ने इन विषयों का अध्ययन अपने पिता से तथा अपने पिता के ही एक गुरु वीरेश्वर से किया था।

इनके विषय में अनेक किंवदन्तियाँ सुनी जाती हैं। दिल्ली के तत्कालीन बादशाह शाहजहाँ ने इन्हें '**पण्डितराज**' की उपाधि से विभूषित किया था। ये कुछ दिनों तक शाहजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह को संस्कृत पढ़ाते थे। अपने 'जगदाभरण' काव्य में इन्होंने दाराशिकोह की प्रशंसा की है। कहा जाता है कि गंगालहरी का पाठ करते समय स्वयं गंगा बढ़ती चली गईं और काशी में इन्होंने गंगा की गोद में प्रवेश किया।

इन्होंने अपना यौवन काल दिल्ली के बादशाह शाहजहाँ की छत्रछाया में व्यतीत किया जैसा स्वयं इनके उल्लेख से ज्ञात होता है :—

दिल्ली-वल्लभ-पाणिपल्लवतले नीतं नवीनं वयः।

ये परम वैष्णव थे। भगवान् विष्णु की स्तुति में इनके सरस पद्यों को पढ़कर कोई

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी आलोचक इनकी अहैतुकी भक्ति से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। काशी इनकी जन्मभूमि न होते हुए भी कर्मभूमि अवश्य थी।

समय—बादशाह शाहजहाँ तथा दाराशिकोह के समकालीन होने के कारण पण्डितराज का समय भली-भाँति निश्चित किया जा सकता है। इन्होंने शाहजहाँ की प्रशंसा में अपना एक पद्य रस-गंगाधर में दिया है। दाराशिकोह की प्रशंसा में इन्होंने अपना सम्पूर्ण काव्य 'जगदाभरण' लिखा है। शाहजहाँ के दरबार के एक सरदार आसफ खाँ की मृत्यु के दुःख में इन्होंने 'आसफ-विलास' नामक ग्रन्थ लिखा था। इन सब उल्लेखों से इनका काल सत्रहवीं (१७) शताब्दी का मध्यभाग सिद्ध होता है।

ग्रन्थ—पण्डितराज जगन्नाथ ने अनेक काव्य-ग्रन्थों की रचना की है जिनमें 'भामिनी-विलास', गंगा-लहरी, करुणा लहरी, अमृत-लहरी, लक्ष्मी लहरी, आसफ-विलास, जगदाभरण, प्राणाभरण, सुधा लहरी, यमुना वर्णन-चम्पू प्रसिद्ध हैं। भट्टोजि-दीक्षित की प्रौढ़ मनोरमा के खण्डन के लिए इन्होंने 'मनोरमा-कुच-मर्दन' नामक व्याकरण शास्त्र के ग्रन्थ की भी रचना की थी।

रसगंगाधर—अलंकार-जगत् में पण्डितराज का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ रसगंगाधर है। यह ध्वन्यालोक तथा काव्यप्रकाश के समान ही प्रामाणिक ग्रन्थ है। यह अधूरा होने पर भी नितान्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। रसगंगाधर पाण्डित्य का निकषग्रावा समझा जाता है। पण्डितराज ने इस ग्रन्थ में पाण्डित्य तथा वैदग्ध्य का अद्भुत सम्मिश्रण प्रस्तुत किया है। इनकी आलोचना निष्पक्ष होती थी और खण्डन के अवसर पर विलक्षण तीव्रता दिखलाती थी। इन्होंने मम्मट और आनन्दवर्धन की भी आलोचना करने में कोई संकोच नहीं किया; परन्तु अप्पय दीक्षित के मत का इन्होंने विशेष खण्डन किया है। दीक्षित के 'चित्र-मीमांसा' नामक अलंकार ग्रन्थ के खण्डन के लिए ही इन्होंने 'चित्र-मीमांसा-खण्डन' की रचना की।

रस-गंगाधर की केवल दो टीकाएँ उपलब्ध हैं जिनमें नागेश भट्ट कृत **'गुरुमर्म-प्रकाशिका'** ही अब तक प्रकाशित हुई है। रसगंगाधर की दूसरी टीका का भी पता चला है जिसका नाम 'विषमपदी' है। परन्तु यह अब तक अप्रकाशित है। इसके ऊपर सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय ने हाल में ही नैयायिक प्रवर पण्डित केदारनाथ ओझा की **'रसचन्द्रिका'** नाम्नी प्रौढ़ व्याख्या (दो भागों में) प्रकाशित की है। ओझा जी न्याय के निष्णात विद्वान् हैं। फलतः रसगंगाधर की नैयायिक ग्रन्थियों के उद्घाटन का सफल प्रयास इस व्याख्या को महत्त्व प्रदान कर रहा है।

विश्वेश्वर पाण्डेय

विश्वेश्वर पाण्डेय अल्मोड़ा जिला के अन्तर्गत पाटिया ग्राम के पाण्डेय थे। इनका समय १८वीं शताब्दी का प्रारम्भ निश्चित रूप से माना जाता है (१७०० ई०)। ये अपने समय के एक मूर्धन्य विद्वान् थे। इनके पिता का नाम लक्ष्मीधर था जिनका उल्लेख इन्होंने अपने ग्रन्थों के अन्त में किया है। इनके ज्येष्ठ भ्राता का नाम उमापति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। विश्वेश्वर साहित्य के अतिरिक्त व्याकरण तथा न्यायशास्त्र के भी प्रकाण्ड पण्डित थे। 'वैयाकरण सिद्धान्त-सुधानिधि' इनका विशाल वैयाकरण ग्रन्थ है। 'तर्ककुतूहल' तथा 'दीधित प्रवेश' इनके तर्कशास्त्रसम्बन्धी ग्रन्थ हैं। इन्होंने अलंकार शास्त्र से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों की रचना की थी जिनका उल्लेख प्रस्तुत किया जाता है।

(१) **अलंकार-कौस्तुभ**—विश्वेश्वर पण्डित का यह सबसे प्रसिद्ध तथा उत्कृष्ट ग्रन्थ है। अलंकारकौस्तुभ पण्डितराज की शैली में निबद्ध अलंकार शास्त्र का अन्तिम प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसकी महती विशेषता है अलंकारों के स्वरूप का प्रामाणिक विवेचन जिसमें स्थान-स्थान पर अप्पय दीक्षित तथा पण्डितराज के मतों का बड़ी युक्ति के साथ खण्डन किया गया है। इनका पाण्डित्य बड़ा व्यापक था। ये साहित्य के अतिरिक्त न्याय तथा व्याकरण के भी अद्वितीय पंडित थे। इनके अलंकार-सम्बन्धी अन्य ग्रन्थों के नाम हैं—

(२) **अलंकार मुक्तावली**, (३) **रस चन्द्रिका**, (४) **अलंकार प्रदीप** तथा (५) **कवीन्द्र-कण्ठाभरण**। यह चित्रकाव्य का बड़ा ही सुन्दर उदाहरण है।

अनन्त पण्डित

अनन्त पण्डित का मूलस्थान गोदावरी नदी के किनारे पुण्यस्तम्भ नामक नगर था। परन्तु बाद में ये काशी में आकर निवास करने लगे थे। इन्होंने भानुदत्त की 'रस-मंजरी' पर **व्यङ्ग्यार्थ कौमुदी** नामक टीका काशी में ही रहते समय सं० १६९२ वि० (१६३६ ई०) में की थी। इसके अतिरिक्त इन्होंने गोवर्धन की सप्तशती के ऊपर भी टीका लिखी है जो 'काव्यमाला' में मूल ग्रन्थ के साथ प्रकाशित हो चुकी है। इन दोनों की रचना काशी में ही की गई थी।

काव्य-रचना

काशी के कवियों में मूर्धन्य स्थान है **श्रीहर्ष** का जो संस्कृत साहित्य के प्रथम श्रेणी के महाकवि थे और इसके साथ ही एक अति उत्कृष्ट प्रकाण्ड दार्शनिक भी थे। इनमें पाण्डित्य और वैदग्ध्य का अनुपम सम्मिलन था। ये जिस प्रकार हृदय-कलिका को प्रफुल्लित करनेवाली स्वभाव-मधुरा कविता लिखने में नितान्त दक्ष थे, उसी प्रकार मस्तिष्क को आश्चर्यान्वित करनेवाली, पण्डित-समाज का मद चूर्ण करनेवाली तर्क-कर्कशा वाणी के गुम्फन में भी अत्यन्त प्रवीण थे। जिस श्रीहर्ष ने काव्यकला के अनुपम शृंगारभूत नैषधीय काव्य की रचना की, उसी श्रीहर्ष ने प्रखर पाण्डित्य के चूडान्त निदर्शन रूप 'खण्डन खण्ड खाद्य' की भी सृष्टि की। जिस श्रीहर्ष ने अपनी मनोहारिणी कविता के कारण कश्मीर देश में अपनी विमल कीर्तिपताका फहराई, उन्हीं ने जयचन्द्र के दरबार में अपने पूज्य पिता को परास्त करनेवाले मानी तार्किक-प्रकाण्ड उदयन का भी मद चूर्ण कर डाला।

श्रीहर्ष केवल कवि-पण्डित ही नहीं थे, प्रत्युत एक प्रचण्ड साधक तथा उत्कृष्ट योगी भी थे। गुरु से दीक्षा लेकर श्रीहर्ष ने चिन्तामणि मन्त्र को सिद्ध किया था

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे प्रसन्न होकर भगवती सरस्वती ने इन्हें अलौकिक प्रतिभा प्रदान की थी। श्रीहर्ष उच्चकोटि के योगी भी थे। उन्होंने स्वयं लिखा है कि वे समाधि में ब्रह्मानन्द का आस्वादन किया करते थे।

श्रीहर्ष कान्यकुब्ज नरेश जयचन्द्र की सभा में विद्यमान थे जिसका उल्लेख उन्होंने स्वयं बड़े आदर के साथ किया है। ये नरेश गहड़वाल कहलाते थे। इनकी राजधानी कन्नौज थी परन्तु बाद में इन्होंने काशी को ही अपनी राजधानी बनाया। जयचन्द्र ने तथा उसके पिता विजयचन्द्र ने मिलकर सन् ११५६ ई० से लेकर ११९३ ई० तक शासन किया। अतः श्रीहर्ष का समय बारहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है।

ग्रन्थ—महाकवि श्रीहर्ष ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है जिनके नाम हैं—(१) स्थैर्य-विचारण-प्रकरण, ( ) विजय-प्रशस्ति, (३) खण्डन खण्ड खाद्य, (४) गौडोर्वीश कुल प्रशस्ति, ५) छिन्द प्रशस्ति, (६) नवसाहसांकचरित चम्पू तथा (७) नैषधीय चरित। परन्तु ये संस्कृत साहित्य में अपनी अन्तिम रचना-नैषधीय चरित–के लिए ही प्रख्यात हैं। यह महाकाव्य २२ लम्बे-लम्बे सर्गों में विभक्त है जिसमें कुल मिलाकर २८३० श्लोक हैं। इस महाकाव्य में नल और दमयन्ती की कथा का वर्णन किया गया है।

श्रीहर्ष कवि होने के अतिरिक्त एक बहुत बड़े दार्शनिक थे जिसका पता इनके खण्डन-खण्ड-खाद्य नामक ग्रन्थ से चलता है। स्वयं नैषधीय चरित में भी इनकी दर्शन-शास्त्र-सम्बन्धी विद्वत्ता सर्वतोभावेन दिखाई पड़ती है। अपने महाकाव्य के १७वें सर्ग में इन्होंने अनेक दार्शनिक सम्प्रदायों की कलि के द्वारा खिल्ली उड़ाई है। इन वर्णनों में पद-पद पर इनकी दार्शनिकता दिखाई पड़ती है।

समीक्षा—श्रीहर्ष की कवि-प्रतिभा अत्यन्त उच्च कोटि की है। परन्तु कालिदास की प्रसाद-गुण-विशिष्ट शैली और रस-भावमयी पद्धति से उसकी तुलना कथमपि नहीं की जा सकती। श्रीहर्ष अलंकृत शैली के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। ये शृंगार काव्य के प्रवीण रचयिता हैं। शृंगार के दोनों पक्षों—संयोग और वियोग का वर्णन इन्होंने बड़े घटाटोप के साथ किया है परन्तु इसमें हृदय-पक्ष का अभाव है और कला-पक्ष की ही प्रधानता है। नैषधीयचरित के चतुर्थ सर्ग में वियोग का वर्णन अवश्य किया गया है परन्तु वह मस्तिष्क का पोष करता हैं, मन का तोष नहीं।

अलंकारों में श्रीहर्ष श्लेष, यमक और अनुप्रास के विशेष प्रेमी ज्ञात होते हैं। श्लेष की पराकाष्ठा वहाँ दिखाई पड़ती है जहाँ एक ही श्लोक में पंच नली का पृथक् वर्णन एकाकार शब्दावली में किया गया है। श्रीहर्ष वैदर्भी रीति के कवि हैं जिसकी प्रशंसा इन्होंने स्वयं की है। प्रकृति-वर्णन में भी इन्होंने जो लोकव्यवहार से अप्रस्तुत विधान का संग्रह किया है वह अवश्य ही अत्यन्त सुन्दर हुआ है।

श्रीहर्ष अपने अलौकिक पाण्डित्य के लिए जितने प्रसिद्ध थे उतनी ही अपनी प्रकृष्ट प्रतिभा, विलक्षण वर्णन-चातुरी तथा रसमयी अनूठी उक्तियों के लिए भी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विख्यात हैं। नैषध कलात्मक काव्य का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है एवं 'बृहत्-त्रयी' का यह अन्तिम तथा श्रेष्ठ ग्रन्थ माना जाता है। इनके सम्मुख भारवि और माघ सब फीके पड़ जाते हैं। अतः यह ठीक ही कहा है—

"तावद् भा भारवेर्भाति, यावन्माघस्य नोदयः।
उदिते नैषधे काव्ये, क्व माघः क्व च भारविः॥"

लोष्टदेव

लोष्टक या लोष्टदेव का 'दीना-क्रन्दन स्तोत्र" भक्तिरस से स्निग्ध हृदय के भावों की मधुर अभिव्यक्ति करने वाला नितान्त रमणीय स्तोत्र है। ये कल्हण के समकालीन कश्मीरी कवि थे। 'श्रीकण्ठचरित' के अन्तिम सर्ग से लोष्टदेव तथा इनके पूज्य पिता रम्यदेव का पर्याप्त परिचय प्राप्त होता है। रम्यदेव काश्मीर के महान् अध्यात्म-चिन्तक वेदान्ती थे जो अपने छात्रों के संरक्षण तथा शिक्षण दोनों के लिए कल्पवृक्ष के समान थे। इनके पुत्र लोष्टदेव अपने जीवन की सन्ध्या में संन्यासी बनकर वाराणसी में रहते थे। इसी समय इन्होंने बाबा विश्वनाथ की स्तुति में एक स्तोत्र की रचना की थी जिसका 'दीनाक्रन्दन' अभिधान दीनता की अभिव्यक्ति तथा सरस भावों की विज्ञप्ति के कारण सर्वथा समुचित है।

पण्डितराज जगन्नाथ

पण्डितराज जगन्नाथ का विशेष परिचय अलंकार शास्त्र के प्रसंग में दिया जा चुका है। ये अपने समय के बड़े ही उच्च कोटि के विद्वान् तथा सरस कवि थे। ये परम वैष्णव थे जिसका परिचय वृद्धावस्था में मथुरा में निवास के अतिरिक्त उनकी भक्तिमयी कविताओं से विशेष रूप से मिलता है।

संस्कृत साहित्य में पण्डितराज अपने सम्बन्ध में कही गई अभिमानपूर्ण गर्वोक्तियों के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। भवभूति तथा श्रीहर्ष के समान इनमें भी आत्माभिमान की मात्रा अत्यधिक थी। पण्डितराज जगन्नाथ रसमयी पद्धति के प्रौढ़ कवि थे। काव्य की रचना करने में इनकी प्रतिभा अलौकिक थी। इनकी शैली प्रसादमयी तथा कल्पना की उड़ान नितान्त ऊँची थी। भगवान् की स्तुति में इन्होंने अपने कोमल भावपूर्ण हृदय का परिचय दिया है। इनके भाव बड़े कोमल तथा रुचिर हैं। मुगल दरबार में आदर-पूर्वक रहने पर भी इनकी कविता दरबारी नहीं है। 'जगदाभरण' काव्य में दाराशिकोह का, आसफ विलास (गद्य काव्य) में नवाब आसफ खां का तथा 'प्राणाभरण' काव्य में कामरूप के राजा प्राणनारायण का वर्णन इन्होंने अवश्य किया है, परन्तु देवविषयक प्रशस्तियों के लिखने में इनका हृदय विशेष रूप से रमता था। कवित्व के साथ ही पाण्डित्य का मंजुल सम्मिलन इनके काव्यों की विशेषता है। कविता के निर्माण की शक्ति इनमें इतनी अधिक थी कि रसगंगाधर में अलंकारों तथा रसों के उदाहरण के लिए इन्होंने स्वरचित नवीन श्लोकों को प्रस्तुत किया है। किसी प्राचीन कवि की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविता को उदाहरण के लिए उच्छिष्ट समझ कर उसे छूना भी इन्होंने उचित नहीं समझा।

ग्रन्थ— पण्डितराज के काव्य-ग्रन्थों में पाँच लहरियों का स्थान मुख्य है। (१) **करुणा लहरी**—इसमें भगवान से दया की प्रार्थना की गई है। (२) **गंगालहरी**-या पीयूष लहरी—इसमें भगवती भागीरथी (गंगा) की स्तुति सुन्दर शिखरिणी छन्द के ५२ पद्यों में की गई है। यह अपने भावोद्रेक के लिए रसिकों में विश्रुत लोकप्रिय स्तुति है। (३) **अमृत-लहरी**—इसमें केवल दस पद्यों में यमुना की स्तुति की गई है। (४) **सुधा-लहरी**—यह तीस स्रग्धरा वृत्तों में निबद्ध भगवान् सूर्य की स्तुति है। (५) **लक्ष्मी-लहरी**—इसमें भगवती लक्ष्मी की स्तुति ४१ शिखरिणी छन्दों में की गई है जो बहुत ही सुन्दर तथा सरस है। इनका एक अन्य ग्रन्थ **भामिनी-विलास** भी है जिसमें अनेक अन्योक्तिपरक कविताओं के साथ सुन्दर भावनाओं का सन्निवेश किया गया हैं।

पण्डितराज की कविता में स्वाभाविक प्रवाह है, पदों की मनोरम शय्या है, तथा कल्पना का अभिनव चमत्कार है। भगवान् कृष्ण के चरणों में प्रगाढ़ भक्ति के कारण इनकी कविता भक्तिरस से पूर्ण है जिसे 'द्राक्षापाक' का सुन्दर उदाहरण कहा जा सकता है। ये संस्कृत के मध्ययुग के अन्तिम प्रतिभापूर्ण सरस कवि थे —इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

चन्द्रशेखर कवि

चन्द्रशेखर का समय १६वीं शताब्दी का अन्तिम भाग समझना चाहिए। ये गौड़ (बंगाल) देश के निवासी थे। इन्होंने **'सुरजन चरित'** नामक महाकाव्य की रचना काशी में की थी। इस महाकाव्य में वर्णित राजा सुरजन अकबर बादशाह के बड़े ही विश्वास-पात्र सामन्त थे तथा उसके द्वारा अनेक महत्वपूर्ण स्थानों में युद्ध करने के निमित्त भेजे गये थे। इस काव्य में बीस सर्ग हैं जिनमें बूंदी के हाड़ा-वंशीय राजाओं का चरित बड़ी ही सुन्दरता के साथ वर्णित किया गया है, अतः साहित्यिक सौन्दर्य के साथ इसका ऐतिहासिक मूल्य भी कुछ कम नहीं है। चन्द्रशेखर कवि ने कालिदास की शैली का सफल अनुकरण किया है।

पण्डित रामानन्दपति त्रिपाठी

१७वीं शती के काशिकेय विद्वानों की मण्डली में रामानन्दपति त्रिपाठी शीर्ष स्थान पर विराजमान थे। ये चतुरस्र पाण्डित्य से मण्डित एक अलौकिक व्यक्ति थे जो दिल्ली के तत्कालीन मुगल बादशाह शाहजहाँ के द्वारा विशेष प्रतिष्ठा तथा सत्कार-सम्मान के पद पर प्रतिष्ठित किये गये थे। शाहजहाँ ने अपने ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह को वाराणसी मण्डल में अपना वरिष्ठ अधिकारी बनाकर भेजा था। तब रामानन्द जी उसके सम्पर्क में आये और उसे संस्कृत के अध्यात्मशास्त्र को विधिवत् पढ़ाया। दाराशिकोह की दुःखद मृत्यु (१६५८ ई०) के अनन्तर विह्वलचेता त्रिपाठी जी ने पद्यचतुष्टयी के द्वारा अपना शोक प्रकट किया था, जिसके दो पद्य इस प्रकार हैं :

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

येनेयं श्रीदकाशीसकलकविजनोद्दामदानप्रकाशै-
राकीर्णा धर्मवर्णामृतयुतसलिलैः संस्कृता स्वर्णदी च ।
आकूपारं क्षितीशो नतिविनयमतिर्यश्च कर्त्ताश्वरस्तद्
दाराशाहेन्द्रमौलौ विपदि कथमहो जीवनीयं हि विश्वम् ॥
धर्मस्तुर्ययुगे न तेन जयति त्वेकाङ्घ्रितां श्रावितो
यावत् तावदपुण्यपण्यनिरतं निर्जित्य दानैः कलिम् ।
यः पुण्यामृतवाहिनीं सुकृतवान् विश्वम्भरां श्रीदवद्
दाराशाहविपत्सु हा कथमहो प्राणा न गच्छन्त्यमी ॥

इस घटना से तथा ग्रन्थों के रचनाकाल से स्पष्ट प्रतीत होता है कि पण्डित रामानन्द त्रिपाठी का आविर्भाव १७वीं शती के मध्य भाग में हुआ था (लगभग १६२५ ई०–१६७५ ई०)। इस प्रकार ये पण्डितराज जगन्नाथ के समकालीन सिद्ध होते हैं।

सौभाग्य से रामानन्द त्रिपाठी के वंश का पूरा परिचय उपलब्ध होता है। इनके प्रपितामह पण्डित दिवाकर त्रिपाठी गोरखपुर मण्डल से विद्याध्ययन के निमित्त काशी आये और काशी में ही पाण्डित्य अर्जन कर यहीं के निवासी बन गये। इनका पूरा परिवार ही सरस्वती का आराधक एवं लक्ष्मी का अनुग्रहभाजन था। इनके पूज्य पिता का नाम मधुकर त्रिपाठी था। पण्डित रामानन्द त्रिपाठी चतुरस्र पाण्डित्य से मण्डित होने के कारण तद्युगीन पण्डितमण्डली के सिरमौर माने जाते थे—इसमें तनिक भी आश्चर्य नहीं है। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों के अनुशीलन से रामानन्द त्रिपाठी की विद्वत्ता का पूरा संकेत प्राप्त होता है। ये तन्त्र विद्या में जितने निपुण थे, उतने ही प्रतिभासम्पन्न सरस काव्यकला में तथा अलंकार शास्त्र के गम्भीर आलोडन में भी थे।

सुनते हैं कि इन्होंने वृद्धावस्था में संन्यास ले लिया था। तब इनका नाम पड़ गया—**ज्ञानानन्द**। इन्होंने काशी में लक्ष्मीकुण्ड के समीप ही 'कालोमठ' की स्थापना की, जहाँ आज भी भगवती कालीजी की दिव्य मूर्ति विराजमान है। तन्त्रविषयक स्तोत्रों में **आद्यास्तवराज, श्यामास्तवराज** तथा **बगलामुखीस्तवराज** पूर्णतः उपलब्ध होते हैं। इनके तन्त्रविषयक अन्य ग्रन्थों के नाम हैं : आकाशवासिनो सपर्या, असितादि विद्या-पद्धति, कालरात्रि विधानम् (१७३५ विक्रमी = १६७८ ई० में लिखित) तथा गुह्य-सोढा-विवरणम्।

श्यामास्तवराज में १६ विकट पद्यों में भगवती कालिका की भक्तिभाव से उच्छलित दिव्यभावनामयी स्तुति निबद्ध की गई है। इसका एक पद्य उदाहरणार्थ प्रस्तुत है[1]—

१. यह पूरा स्तोत्र त्रिपाठी जी के 'विराड् विवरणम्' नामक ग्रन्थ के साथ प्रकाशित है जिसका इसी वंश के पण्डित नारायणपति त्रिपाठी द्वारा रचित हिन्दी पद्यानुवाद भी संलग्न है (काशी, वि० सं० १९९०)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वामे पाणौ कृपाणां विकटनरलसच्छिन्नमुण्डं दधानां
ऊर्ध्वाधोदक्षपाणावभयवरवतीमम्बुद-श्यामलाङ्गीम् ।
दिग्वस्त्रां घोरदंष्ट्रोत्कट-रुचिर-गलद्रक्तधाराकरालां
वन्दे कालीं सकालां स्मितमुदितमुखीं बिभ्रतीं मुण्डमालाम् ।।

पण्डित रामानन्द त्रिपाठी मुख्यतया सरस कविता की रचना में दक्ष एक सरस कवि थे जिनकी कविता पदशय्या तथा भावभंगिमा से अलंकृत रहती थी, नवीन भावों के आविष्कार तथा शब्दों में आलंकारिक चमत्कार दिखलाने में सर्वथा समर्थ थी तथा रसिकों के हृदय को आवर्जन करने में सातिशय कुशल थी। इनके साहित्यविषयक ग्रन्थों की संख्या कम नहीं हैं जिनमें प्रधान हैं--

(१) **रसिक जीवनम्**—यह नायिका-नायक-विषयक ग्रन्थ है। इसमें प्रथमतः वर्ण्य भेद का लक्षण दिया गया है। तदुपरान्त उसका सरस उदाहरण है (प्रकाशित)।

(२) **पद्यपीयूषम्**--इसमें अन्योक्तियों का ललित संग्रह है। इस ग्रन्थ में ३८ पद्य विद्यमान थे जिनमें आदिम २१ पद्य उपलब्ध नहीं हैं। शेष पद्यों में वृक्षान्योक्ति, वायु-वर्णन, नवरस निरूपण कीर्ति-प्रस्ताव, दान प्रस्ताव आदि विषयों का वर्णन मिलता है।

(३) **रामचरित्रम्** -वाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड की कथा का दोहा तथा चौपाई छन्दों में अभिराम वर्णन संस्कृत में उपलब्ध होता है।

(४) कटाक्ष शतकम्, (५) धन्य शतकम्, (६) शशांक शतकम्, (७) हास्य सागरः (लघु प्रहसन), (८) काशी कुतूहल (विशाल ग्रन्थ, परन्तु खण्डित। नाना प्रकार के कुतूहलों का वर्णन); (९) किरात भाव दीपिका (किरातार्जुनीय महाकाव्य की खण्डित टीका), (१०) काव्य-प्रकाश—प्राकृतार्थः (काव्य-प्रकाश के प्राकृत पद्यों का संस्कृतानुवाद)। ये इनके अन्य ग्रन्थ हैं। इनमें से केवल प्रथम ग्रन्थ ही प्रकाशित है।[1]

पण्डित रामानन्द त्रिपाठी भगवती विन्ध्यवासिनी की तीव्र उपासना के फलस्वरूप कमनीय कविता की रचना में पारगामी सहृदय कवि थे। संस्कृत भाषा के ऊपर इनकी अगाध प्रभुता थी। विभिन्न नायिकाओं के स्वरूप को इन्होंने अपने 'रसिक जीवन' में बड़ी सहृदयता तथा अन्तरंगता के साथ चित्रित किया है। इनकी अन्योक्तियाँ बड़ी मार्मिक एवं मनोहारिणी हैं। इनकी रसमयी तथा चमत्कार-रुचिरा कविता के कतिपय उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं—

मध्या प्रोष्यत्-पतिका का यह चारु चित्रण कितना मर्मस्पर्शी है :—

---

१. पण्डित करुणापति त्रिपाठी द्वारा सम्पादित विस्तृत भूमिका के साथ (संस्कृत विश्वविद्यालय, काशी १९७८ ई०)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गन्तुं पृच्छति वल्लभे नयनयोर्बाष्पं तिरोभावितं
नोच्चैर्निःश्वसितं मनागपि न वा सोद्वेगमुद्विग्नया ।
केशैः किन्तु मृगीदृशः सरसिजैः शैवाल-जालैरिवो-
त्कीर्णैः सुन्दर कान्ति वक्त्रमभितो रोलम्बवल्लम्बितैः ॥
(रसिक जीवन १।१११)

विटावतरण देखिए—

मरीचि —रुचिसञ्चयैश्चपलचञ्चुकोटीभृतः
समुल्लसति चन्द्रमाश्चपलयंश्चकोरानिह ।
मरुच्चलति शीतलो रटति चञ्चरीकश्चिरं
भविष्यति हि निश्चलस्तव स चण्डि ! मानः कथम् ॥
(वही २।१५)

रसाल विषयक अन्योक्ति का आस्वादन कीजिए—

रसाल ! किमचीकरत् किल भवानपूर्वं तपो
गुणप्रकरमीरितुं न खलु शक्यते मादृशैः ।
यथा तव पचेलिमामृतफले रसः पीयते
तथा न तरुणीजनाधरसुधोद्भवा माधुरी ॥

संस्कृत का यह दोहा देखिए, कितना सुन्दर है—

नश्वरमिदमिति तत्त्वतः संसारं कलयन्ति ।
तदपि न हरिमिह तत्त्वतो 'रामानन्द' भजन्ति ॥
(रामचरित्र)

चन्द्रमा के कलङ्क के विषय में एक सुन्दर उत्प्रेक्षा का चमत्कार देखिए—

पायसपिण्डश्चन्द्रः तत्र कलङ्कस्तिल-प्रक्षेपः ।
विष्णुपदे किल दत्तो रत्या कामाय कान्ताय ॥
(शशाङ्क शतक)

'विष्णु पद' का श्लिष्ट अर्थ अवलोकनीय है । एक अर्थ है आकाश और दूसरा अर्थ है गयाधाम में भगवान् विष्णु का चरण, जिसपर श्राद्धपिण्ड दिये जाते हैं ।

रामानन्द त्रिपाठी हिन्दी के भी सुकवि थे । फलतः इनकी हिन्दी कविताएँ भी बड़ी रोचक तथा आकर्षक हैं—

शरद् का वर्णन

बिरह झकोरी मन नेकऊ न उझकोरी
औचक चकोरी बैन बिष सो सुनाई है ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाज आयो जिऊ कैसे करि जीतिएँ री जिऊ
'रामानन्द' चंद जिऊ जारत जुन्हाई है ॥
चंचरीक चंचल रो देखि चित चंचल री
कियो चित चंचल री तैहूं चंचलाई है ।
बिरह सरद ही मैं विरह सर दही मैं
बिरह दरद को सरद देन आई है ॥

चतुरस्र पाण्डित्य से मण्डित ऐसे विद्वान् को 'दाराशिकोह' ने यदि **'विविध विद्या-चमत्कार-पारङ्गम'** की पदवी से विभूषित किया, तो आश्चर्य की कोई बात नहीं है। रामानन्दपति त्रिपाठी का वंश आज भी काशी में विराजमान है जो भगवती शारदा के साथ ही साथ भगवती लक्ष्मी का भी कृपापात्र बनकर संस्कृत की सेवा कर रहा है। उसी वंश के विद्वत्तल्लज पण्डित करुणापति त्रिपाठी ने 'रसिक जीवन' का विस्तृत प्रस्तावना से मण्डित विशुद्ध संस्करण प्रकाशित कर साहित्य-सेवियों का महान् उपकार किया है।

विश्वेश्वर पाण्डेय

विश्वेश्वर पाण्डेय की 'मन्दार मंजरी' कादम्बरी की शैली में निबद्ध गद्यकाव्य का एक मनोरम रूप प्रस्तुत करती है। विश्वेश्वर पाण्डेय अल्मोड़ा जिले के पाटिया ग्राम के निवासी भारद्वाज गोत्री पर्वतीय ब्राह्मण थे। इनके पिता लक्ष्मीधर वृद्धावस्था में काशी आये और बाबा विश्वनाथ की अलौकिक कृपा से उन्हें पुत्ररत्न प्राप्त हुआ जिसका नामकरण उन्हीं के नाम पर विश्वेश्वर किया गया। ये अलौकिक प्रतिभा-सम्पन्न विद्वान् थे तथा अनेक शास्त्रों पर इन्होंने ग्रन्थ-रचना की है। अलंकार शास्त्र के प्रसंग में इनके अन्य ग्रन्थों का उल्लेख किया जा चुका है।

मन्दारमंजरी—यह गद्य-काव्यमयी प्रौढ़ रचना है। ग्रन्थ के आरम्भ में २१ आर्या छन्दों में देवताओं की स्तुति के अनन्तर अनेक प्राचीन कवियों की स्तुति की गई है। यह कवि की उदात्त तथा सरस कृति है। गद्य काव्य के प्रख्यात गुणों से मण्डित यह रचना विशेष लोकप्रिय होने की योग्यता रखती है। इस ग्रन्थ में वर्णन को स्निग्ध तथा सरस बनाने के लिए कवि का विशेष आग्रह पाया जाता है। कादम्बरी से प्रभावित होने पर भी कवि ने सर्वत्र नवीनता लाने का सफल प्रयास किया है। प्रकृति का चित्रण भी इसमें प्रचुर मात्रा में हुआ है। अलंकारों की छटा—विशेषकर परिसंख्या अलंकार का प्रयोग—बाणभट्ट की स्मृति को नवीन कर देता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवीन्द्राचार्य सरस्वती

व्यक्तित्व और कृतित्व

कवीन्द्राचार्य सरस्वती काशी में सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में विद्यमान विद्वानों में अलौकिक, अप्रतिम तथा अद्वितीय थे। ये अपने काल के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् थे। यों तो उस समय काशी में अनेक संन्यासी विद्यमान थे और आज भी हैं, परन्तु इनके समान ओजस्वी, तेजस्वी, वावदूक एवं प्रतिभाशाली विद्वान् संन्यासी का मिलना कठिन ही नहीं, दुर्लभ है।

कवीन्द्राचार्य सरस्वती सामान्य संन्यासी नहीं थे, प्रत्युत अपने काल के एक अत्यन्त उत्कृष्ट विद्वान् तथा वैदुष्य-सम्पन्न व्यक्ति थे। "काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः" इस वाक्य के कट्टर पक्षपाती होने पर भी जनता के हित के लिए, परोपकार के कार्यों में अग्रणी बनना इनके जीवन का परम लक्ष्य था। संन्यस्तता तथा कर्मठता, संसार से विरक्ति के साथ ही जनहित के कार्यों में आसक्ति, जगत् से उदासीनता के साथ ही परोपकार में संलग्नता, संसार की असारता का ज्ञान होते हुए भी, इसे ससार (सारयुक्त) समझना और संन्यास-योग के साथ ही कर्मयोग का कट्टर अनुगामी ही नहीं बल्कि उस पर आचरण करना—ये परस्पर-विरोधी ऐसे गुण थे जिन्होंने कवीन्द्राचार्य के व्यक्तित्व को सर्वाधिक प्रोद्दीप्त बना दिया था।

व्यक्तित्व

संस्कृत में एक श्लोक है :

"विद्यया, वपुषा, वाचा, वस्त्रेण, विभवेन च।
वकारैः पञ्चभिर्युक्तो नरः प्राप्नोति गौरवम्॥"

अर्थात् उपर्युक्त पाँच वकारों से युक्त होने पर मनुष्य गौरव को प्राप्त करता है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ये पाँचो 'वकार' कवीन्द्राचार्य जी के व्यक्तित्व में पूर्ण मात्रा में विद्यमान थे। फ्रांस देश का प्रख्यात यात्री **बर्नियर** उसी समय (१७६० ई०) के आस-पास भारत भ्रमण करने के लिए आया था। आगरा में कवीन्द्राचार्य की बर्नियर से भेंट हुई थी और दोनों तीन वर्षों तक साथ ही रहे थे। अतः बर्नियर ने अपने यात्रा-वृत्तान्त में इनके विषय में जो कुछ लिखा है वह निरीक्षण तथा अनुभव के आधार पर आश्रित है। अतः उसमें त्रुटि अथवा अतिशयोक्ति का कोई कारण नहीं हो सकता। वह लिखता है :

"कवीन्द्राचार्य सरस्वती का शरीर अत्यन्त दृढ़ और सुगठित था। उनका वस्त्र साधारण था। वे अपनी कमर में सफेद रेशम की धोती पहिनते थे जो कटि में बँधी रहती थी। यह धोती घुटने तक लटकती रहती थी। वे उत्तरीय के रूप में लाल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेशम की बनी चादर अपने कन्धों पर ओढ़े रहते थे। मैंने उनको इसी अत्यन्त साधारण वेश में आगरा की सड़कों पर, दीवाने आम में अथवा मुगल बादशाह के सामने दीवाने खास में उपस्थित देखा है। वे आगरा की सड़कों पर प्रायः पैदल चला करते थे अथवा पालकी में बैठकर निकलते थे।" इस प्रकार बर्नियर ने उनके शारीरिक सौन्दर्य का जो चित्र खींचा है वह अत्यन्त प्रभावोत्पादक है।[1]

कवीन्द्राचार्य की विद्वत्ता के विषय में कुछ कहना व्यर्थ है। इनके द्वारा लिखित पुस्तकों की जो सूची अन्यत्र दी गई है तथा इनके विशाल पुस्तकालय का जो वर्णन किया गया है उसी से इनकी विद्वत्ता तथा विद्याव्यसनिता का कुछ अनुमान किया जा सकता है। इण्डिया आफिस, लण्डन में सुरक्षित 'कवीन्द्र कल्पतरु' की हस्तलिखित प्रति में स्वयं कवीन्द्राचार्य ने अपने द्वारा अधीत विविध शास्त्रों के नाम तथा संन्यास-धर्म ग्रहण करने की चर्चा इस पद्य में की है :

"अधीत्य वेदवेदाङ्ग-काव्यशास्त्राणि सर्वशः।
ततः स्वीकृत्य संन्यासं ब्रह्माभ्यासं समाश्रितः॥"

बर्नियर जब बनारस आया था, तब उसने अपने मित्र के पास भेजे गये एक पत्र में लिखा है : "जब मैं गंगा के किनारे किनारे घूम रहा था तब मैंने बनारस के प्रधान पण्डित को अपने पुस्तकालय में बैठे देखा। वह फकीर (संन्यासी) और भक्त है। बादशाह शाहजहाँ इन्हें दो हजार रुपयों की पेंशन इनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर देता है।"[2] और वह धन कवीन्द्राचार्य काशी में गंगा के किनारे ब्राह्मणों में वितरण कर देते थे, अपने पास एक पैसा भी नहीं रखते थे। बर्नियर के इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि कवीन्द्राचार्य आजकल के संन्यासियों की भाँति मधुकरी वृत्ति पर अपना जीवनयापन करनेवाले व्यक्ति नहीं थे, बल्कि एक समृद्ध संन्यासी थे जो दूसरों को भी दान दिया करते थे।

जीवनचरित

कवीन्द्र अथवा आचार्य कवीन्द्र मूलतः गोदावरी के तीरस्थ 'पुण्यभूमि' के निवासी थे। इन्होंने वेद, वेदाङ्ग एवं इतर शास्त्रों का अध्ययन किया। अनन्तर इन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया और ब्रह्मचिन्तन में अपना समय बिताया। ये ऋग्वेद की आश्वलायन शाखा के अध्येता थे। संन्यासी बनने पर इन्होंने काशी को अपना कार्यक्षेत्र बनाया और यहीं निवास करने लगे। ये वरुणा नदी के किनारे जिस बगीचे में रहा करते थे, वह काशी की जनता में 'वेदान्ती का बगीचा' के नाम से प्रख्यात हुआ। वे अनेक शास्त्रों के प्रौढ़ विद्वान् थे। वे ग्रन्थ संग्रह करने में विशेष अभिरुचि रखते थे। उनका अनेक दुर्लभ हस्तलेखों से मण्डित पुस्तकालय उनकी वैदुषी तथा नाना शास्त्रों की अभिज्ञता का पर्याप्त सूचक था। इस पुस्तकालय की ग्रन्थसूची बड़ोदा संस्कृत

---

१. डा० पी० के० गोडे : 'स्टडीज इन इण्डियन लिटरेरी हिस्ट्री' भाग २, पृ० ३६८।
२. डा० गोडे : वही, पृ० ३६७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीरीज में डा० गंगानाथ झा के सम्पादकत्व में प्रकाशित है जो पूर्वोक्त तथ्य को प्रमाणित करती है।

मुगल बादशाह शाहजहाँ (राज्यकाल १६२८ ई०-१६५८ ई०) ने काशी तथा प्रयाग के तीर्थयात्रियों पर यात्री-कर (पिलग्रिम टैक्स) लगा दिया था जिससे इन तीर्थों में यात्रा करने वाली आस्तिक हिन्दू जनता का कष्ट बढ़ गया था। एक तो भारत के दूर-दूर प्रान्तों से यात्रा करना उस युग में नितान्त कष्ट-साध्य था, तिस पर यात्री-कर का बोझ ऊपर से त्रास दे रहा था। ऐसी विषम स्थिति में सर्वत्र त्राहि-त्राहि मची हुई थी। उनके दुःख-दर्द की कहानी आगरा जाकर बादशाह को सुनाने की कौन हिम्मत करे ? फरियाद करने के नाम पर अपनी जान को जोखिम में कौन डाले ?

ऐसी ही विषम परिस्थिति में भारत की सामान्य जनता की, विशेषकर काशी के विद्वानों की दृष्टि, उस समय के सर्वश्रेष्ठ कर्मठ एवं वावदूक संन्यासी कवीन्द्राचार्य पर पड़ी। सब लोगों ने मिलकर समवेत स्वर में इस दुःखद कर से मुक्ति दिलाने के लिए स्वामीजी से प्रार्थना की। उस युग की यातायात कठिनाइयों को देखकर किस व्यक्ति का चित्त यात्रा की कठिनाइयों से आक्रान्त न हो उठेगा ? न सवारी की व्यवस्था, न पक्की सड़कों की स्थिति। चोर-डाकुओं एवं राहजनों का भय ऊपर से विद्यमान। इन सब असुविधाओं का बिना विचार किये श्री कवीन्द्राचार्य जी मुट्ठीभर अपने इने-गिने काशीस्थ सहयोगियों के साथ अपने महनीय उद्देश्य की पूर्ति के लिए काशी से आगरा के लिए चल ही पड़े।

यात्रा का अभियान--कवीन्द्राचार्य जी ने आगरा की यात्रा करने के पहिले यात्रा के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। उनके संन्यस्त मन में परोपकार की इतनी उमंग थी, जनता-जनार्दन की सेवा की त्रिवेणी इतने अत्यधिक वेग से प्रवाहित होती थी कि उसके आगे समस्त बाधाएँ तिनके की तरह बह जाती थीं। उन दिनों काशी से आगरा पैदल जाना कोई हँसी-खेल का काम नहीं था। रास्ते में न तो गंगा नदी पर पुल बना था और न यमुना पर ब्रिज (सेतु)। अतः निश्चित रूप से छोटी डोंगियों में बैठकर इन विशाल नदियों को पार करना पड़ा होगा। सड़कों के न रहने के कारण कुश-कण्टकावृत पगडण्डियों पर पैर रखकर मार्ग में चलना पड़ा होगा। यद्यपि बर्नियर ने कवीन्द्राचार्य के आगरा जाने के मार्ग का कुछ वर्णन नहीं किया है तथापि निश्चय ही उन्हें काशी से लेकर आगरा तक जंगल-झाड़ियों, घाटियों, बीहड़ों, नदियों की रेतियों तथा पेटियों से गुजरना पड़ा होगा।

कवीन्द्राचार्य के इस आगरा अभियान की समानता सिक्खों के स्वनामधन्य गुरु, गुरु तेगबहादुर के अभियान से की जा सकती है जो हिन्दुओं के दुःखों को सुनकर मुगल बादशाह से मिलने दिल्ली चल पड़े थे। दोनों का उद्देश्य एक ही प्रकार पावन और पवित्र था। अन्तर केवल इतना ही था कि गुरु तेगबहादुर की सेना सशस्त्र थी और कवीन्द्राचार्य के साथी शान्ति सेना के सिपाही थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवीन्द्राचार्य : शाहजहाँ के दरबार में

शाहजहाँ का ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह बड़ा ही उदारचेता, सहृदय, विद्यानुरागी तथा भारतीय दर्शन एवं संस्कृत विद्या का प्रेमी था। जैसा कि बर्नियर ने लिखा है कवीन्द्राचार्य अपने समय के भारत के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् थे।[1] अतः उसने इनकी अगाध विद्वत्ता से प्रभावित होकर इन्हें अपना गुरु-समकक्ष मानकर इनसे प्रगाढ़ मैत्री प्राप्त कर ली। उसका उदारचेता पिता शाहजहाँ भी कवीन्द्राचार्य की अलौकिक विद्वत्ता से प्रभावित होकर इनका बड़ा आदर तथा सम्मान करने लगा। उसने इनके अगाध पाण्डित्य एवं अलौकिक त्याग के कारण इन्हें 'विद्या निधान' अथवा 'सर्व-विद्या-निधान' की उपाधि से अलंकृत किया था।[2] शाहजहाँ ने इनके लिए २०००) दो हजार रुपये की पेंशन भी प्रदान की थी। परन्तु संन्यासी होने के कारण ये इन रुपयों का स्वयं अपने लिए उपयोग न करके काशी के पण्डितों में वितरित कर दिया करते थे जिसका उल्लेख 'कवीन्द्र चन्द्रोदय' में किया गया है।[3]

इस प्रकार शाहजहाँ के दरबार में तथा उसके संस्कृत-प्रेमी पुत्र दाराशिकोह के हृदय पर कवीन्द्राचार्य ने अपना गहरा प्रभाव जमा लिया था। इन्हीं दिनों, किसी शुभ घड़ी में इन्होंने शाहजहाँ से काशी प्रयाग में लगे हुए यात्री करों को निरस्त कर देने की प्रार्थना की। भारत के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक तथा संस्कृत के विद्वान् डा० हरप्रसाद शास्त्री ने इस घटना का वृत्तान्त बड़े ही सजीव शब्दों में इस प्रकार किया है। "कवीन्द्राचार्य अपने बहुसंख्यक अनुगामियों के साथ आगरा पहुँचे और वहाँ के 'दीवाने-आम' (राजदरबार) में जाकर हिन्दू यात्रियों से यात्री-कर हटाने के पक्ष में अनेक अकाट्य तर्कों तथा युक्तियों को देते हुए इतना प्रबल तथा ओजस्वी भाषण दिया कि उस दरबार में उपस्थित इराक, ईरान, बलख और बदख्शां से आये हुए अमीर और उमरा उनकी प्रचण्ड वाक्शक्ति से आश्चर्यचकित हो गये। इस भाषण को सुनकर शाहजहाँ तथा दाराशिकोह ने हिन्दू यात्रियों के कष्टों को सोचकर अत्यन्त दुःख प्रकट किया और इस यात्री-कर (पिलग्रिम टैक्स) को निरस्त कर दिया।" इस प्रकार जिस कार्य के लिए कवीन्द्राचार्य सरस्वती ने इतने कष्टों को सहते हुए काशी से यात्रा की थी उस कार्य में इन्हें पूर्ण

---

१. "One of the most celebrated Pandits in all the Indies."
—वर्नियर का यात्रा वृत्तान्त (ट्रेवेल्स)

२. विद्यानिधानकृतमान बहु प्रदान-
दील्लीश्वराहृतशमत्र भवत्कृपातः।
—कवीन्द्र चन्द्रोदय, पृ० ५

३. श्री विश्वेश्वर-काशिका-सुरनदीतीरे सुवर्णं ददौ।
श्रीमत् साहिजहाँ दिलीप-कृपया विद्यानिधानाधिपः॥
—कवीन्द्र चन्द्रोदय, पृ० १६

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफलता प्राप्त हो गयी और इन्होंने हिन्दुओं को इस कर से मुक्ति दिला कर बहुत बड़ा पुण्य कार्य किया।

इस घटना का उल्लेख 'कवीन्द्र चन्द्रोदय' में इस प्रकार किया गया है[1] :—

"येन श्री साहिजाहाँ-नरपतितिलकः स्वस्य वश्यः कृतोऽभूत्
किं चावश्यं प्रपन्नः पुनरपि विहितः शाहि-दाराशिकोहः।
काशी-तीर्थ-प्रयाग-प्रति-जनित-करग्राह-मोक्षैक-हेतुः
सोऽयं श्रीमान् कवीन्द्रो जयति कविगुरुस्तीर्थराजाधिराजः॥

कवीन्द्राचार्य ने जिस प्रबल ओजस्विता तथा प्रचण्ड एवं प्रखर वावदूकता के साथ अकाट्य तर्कों और प्रबल युक्तियों के सहित यात्री-कर की व्यर्थता तथा कष्टदायिता का वर्णन सम्राट् के दरबार में किया उसका बड़ा ही सजीव चित्रण 'कवीन्द्र चन्द्रोदय' में निम्न रीति से किया गया उपलब्ध होता है :—

"काश्मीरैराककारस्करदरद-खुरासान-हवशान—जाताः,
बङ्गाब्बाः फिरङ्गास्तुरुक-शक-बदक्शान-मुल्तान-बल्काः।
खान्दाराः काविलेन्द्राः अपि धरणिभृतस्ते मगाः रूम-सामाः
श्रीमत् श्रीसाहिजाहां नरपति सदसि त्वां कवीन्द्रं स्तुवन्ति॥

यह अवसर समस्त हिन्दुओं के लिए आनन्द और उछाह का था। इसी शुभ अवसर पर मानो इनकी विजयश्री को अधिक उज्ज्वल बनाने के लिए शाहजहाँ ने इनको 'सर्वविद्यानिधान' की महनीय पदवी से अलंकृत किया था। डा० हरप्रसाद शास्त्री ने इस घटना का इतना सजीव रूप में वर्णन किया है कि उसे मूलरूप में देने का लोभ हम संवरण नहीं कर सकते।[2]

कवीन्द्र-चन्द्रोदय—कवीन्द्राचार्य सरस्वती ने अपने अथक उद्योग, अविश्रान्त परिश्रम तथा अलौकिक वाग्मिता के द्वारा शाहजहाँ के दरबार में जाकर काशी और

---

१. कवीन्द्र चन्द्रोदय, पृ० २३–२४।

2. "He (Kabindracharya) journeyed to Agra with a large following and proceeded to Diwan-i-am and there he pleaded the cause of the Hindu pilgrims, **with so much force of eloquence**, that all the noble men of the court from Irak, Iran, Badak-Shan, Balkh etc. were struck with wonder. Shah Jahan and Dare shikoh relented and abolished the tax (i. e. the pilgrim tax). That was the day of great rejoicing throughout Hindu India. It was on this occassion that the title of सर्व विद्यानिधान was conferred on him."

Dr. H. P. Shastri : Indian Antiquary, Vol. XLI, (1912) p. II.

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयाग के हिन्दू यात्रियों पर लगने वाले यात्री-कर को सदा के लिए निरस्त करा दिया। इस निरस्तीकरण के उपलक्ष्य में काशी की जनता तथा विशेषतः तत्कालीन विद्वान् इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने कवीन्द्राचार्य की स्तुति में एक प्रशस्ति-ग्रन्थ की रचना की जो "कवीन्द्र-चन्द्रोदय" के नाम से प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ के सम्पादक हैं डॉ० हरदत्त शर्मा और एम० एम० पाटकर, जो ओरियन्टल सीरीज नामक ग्रन्थमाला, पूना से प्रकाशित हुआ है।

इस ग्रन्थ में काशी के समसामयिक ६२ लेखकों तथा कवियों—जिनकी सूची परिशिष्ट में दी गई है—ने कवीन्द्राचार्य सरस्वती के विशाल व्यक्तित्व, अद्भुत गुणों तथा शाहजहाँ एवं उसके गुणग्राही पुत्र दाराशिकोह के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध का वर्णन किया है। किस प्रकार काशी और प्रयाग के तीर्थयात्रियों पर से यह यात्रीकर हटा लिया गया इसका वर्णन हीराराम कवि ने निम्नांकित श्लोक में बड़ी सुन्दर भाषा में किया है :—

"येन श्रीशाहजाहाँ नरपतितिलकः स्वस्य वश्यः कृतोऽभूत्
किं चावश्यं प्रपन्नः पुनरपि विहितः शाहि दाराशिकोहः।
काशीतीर्थप्रयागप्रतिजनितकरग्राहमोक्षैकहेतुः
सोऽयं श्रीमान् कवीन्द्रो जयति, कविगुरुः तीर्थराजाधिराजः॥

इन पण्डितों ने इस ग्रन्थ में कवीन्द्राचार्य की विशद शब्दों में भूरि-भूरि प्रशंसा की है। तत्कालीन मुगल बादशाह शाहजहाँ तथा उसके पुत्र दाराशिकोह पर इनका कितना प्रभाव था। काशी के विद्वानों तथा निर्धन लोगों को दान के रूप में देने के लिए शाहजहाँ इन्हें प्रचुर धन दिया करता था। इसका उल्लेख निम्नलिखित श्लोक में पाया जाता है:—

दिल्लीश्वराय निगमागम-शास्त्रबुद्ध्या,
संबोधयन् प्रतिदिनं त्रिजगत्कवीन्द्रः।
श्री विश्वेश्वर-काशिका-सुरनदीतीरे सुवर्णं ददौ
श्रीमत् साहिजहाँ दिलीप कृपया विद्यानिधानाधिपः॥

किसी कवि ने दिल्ली जाकर कवीन्द्र का दर्शन करके सुखी होने की बात लिखी है।

द्रष्टुं वाञ्छसि चेत्तदा बुधवरं दिल्लीपुरं सादरम्।
गत्वा विज्ञ-कवीन्द्र-वर्य-विबुधं दृष्ट्वा सुखी त्वं भव॥

शाहजहाँ ने इनकी विद्वत्ता से प्रसन्न होकर इन्हें 'विद्यानिधान' की उपाधि प्रदान की थी।

विद्यानिधान-कृतमान-बहुप्रदानः, दिल्लीश्वरादृतशमत्र भवत्कृपातः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक और प्रशंसा सुनिए :—

भूपालाः कति नागतास्तव गृहे, किं वर्णयामो वयम् ।
दिल्लीशो यवनाधिपः नर-वरो, भाग्योदयं वाञ्छति ।।

'कवीन्द्र चन्द्रोदय' में उल्लिखित इन श्लोकों से पता चलता है कि पण्डितों की दृष्टि में कवीन्द्राचार्य का कितनी अधिक निष्ठा तथा श्रद्धा थी ।

ग्रन्थ-रचना

कवीन्द्राचार्य साहित्य और दर्शन के प्रकाण्ड तथा तलस्पर्शी विद्वान् थे । परन्तु लोकोपकारी कार्यों में इनका इतना अधिक समय व्यतीत होता था कि इन्हें ग्रन्थ-रचना के लिए अवकाश ही नहीं मिलता था । अतः इन्होंने कुछ ही ग्रन्थों का प्रणयन किया जिनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है ।

(क प्रकाशित ग्रन्थ

(१) **दण्डी के दशकुमारचरित की टीका**—जहाँ तक प्रस्तुत लेखक को ज्ञात है कवीन्द्राचार्य ने यों तो अनेक ग्रन्थों की रचना की है परन्तु इनका केवल एक ही ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित हुआ है । यह ग्रन्थ महाकवि दण्डी के दशकुमारचरित की 'पदचन्द्रिका' नामक टीका है । अनेक हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर श्री एन० बी० गोडबोले तथा श्री के० पी० परब नामक विद्वानों ने इस ग्रन्थ का वैज्ञानिक पद्धति से सुसम्पादित संस्करण 'निर्णय सागर प्रेस' बम्बई से सन् १८८३ ई० में प्रकाशित किया था । यह टीका दशकुमारचरित के केवल आठ उच्छ्वासों तक ही उपलब्ध होती है ।[1] पूर्व पीठिका तथा उत्तर पीठिका पर यह टीका प्राप्त नहीं होती । डा० मित्र के हस्तलेख की पुष्पिकाओं में कवीन्द्राचार्य के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया गया है उनसे उनकी विद्वत्ता का कुछ पता चलता है ।

(ख) अप्रकाशित ग्रन्थ

(२) **कवीन्द्र कल्पद्रुम**—यह एक काव्यात्मक रचना है । इस हस्तलिखित पुस्तक में १५७२ श्लोक हैं जिससे ज्ञात होता है कि निश्चित ही एक बहुत बड़ा काव्य ग्रन्थ होगा । इसमें अनेक नदियों, देवियों, देवताओं, भगवान् के विभिन्न अवतारों तथा अनेक

---

१. डा० राजेन्द्रलाल मित्र ने संस्कृत हस्तलिखित पुस्तकों की सूची (नोटिसेज) भाग ६, सन् १८८८ ई० में 'पद चन्द्रिका' का जो उल्लेख किया है उसकी समाप्ति इस प्रकार उल्लिखित है—

"इति श्री सकलशास्त्रार्थं सार्थकीकृत शेमुषीविलास रससान्द्र प्रवर्तिताशेषयशः समुद्रपरिषच्चन्द्रः **यतीन्द्र सर्वविद्यानिधान श्रीमत् कवीन्द्राचार्य सरस्वती कृतायां** दशकुमार-व्याख्यायां पदचन्द्रिकाभिधानायां विश्रुतचरितं नाम अष्टमः उच्छ्वासः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य विषयों का भी वर्णन किया गया है जैसा कि इसकी विषय सूची से ज्ञात होता है।

इस ग्रन्थ में जिन विषयों का वर्णन किया गया है उनकी सूची निम्नांकित है—

(१) गणेश स्तोत्र कीर्तनं, (२) गंगा स्तोत्र कीर्तनं, (३) यमुना स्तोत्रं, (४) वितस्ता स्तोत्रं, (५) सूर्य्य स्तोत्रं, (६) शिव स्तोत्रं, (७) भवानी स्तोत्रं, (८) नृसिंह-रूप वर्णनं, (९) श्रीकृष्ण-रूप वर्णनं, (१०) रामचन्द्र-रूप वर्णनं, (११) हनुमत्स्तोत्रं, (१२) प्रास्ताविक श्लोक कथनं, (१३) शिवराम वर्णनं, (१४) पत्रावलम्बन पद्य कथनं और (१५) पत्र-प्रशस्ति वर्णनम्।

इस पुस्तक का जिस प्रकार समापन किया गया है उससे ज्ञात होता है कि कवीन्द्राचार्य सरस्वती का शाहजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह से बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध था। यह घटना अत्यन्त महत्वपूर्ण समझी जानी चाहिए जिसका उल्लेख पहिले भी किया जा चुका है।[1]

(३) **योग भास्कर**—डा० आउफ्रेक्ट ने इसका उल्लेख अवश्य किया है परन्तु पुस्तक के विषय में विशेष ज्ञात नहीं है। इसके नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि योगशास्त्र के सम्बन्ध में इसका निर्माण किया गया होगा। परन्तु इसका उल्लेख अन्य किसी हस्तलेख-सूची में प्राप्त नहीं होता।

(४, **शतपथ ब्राह्मण भाष्य**—कलकत्ता के सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० राजेन्द्रलाल मित्र ने बीकानेर राजदरबार की हस्तलिखित पुस्तकों की सूची में इसका उल्लेख किया है जहां पर इसके सम्बन्ध में यह लिखा मिलता है—"शतपथ ब्राह्मण के छठे खण्ड के ऊपर कवीन्द्राचार्य सरस्वती द्वारा विरचित टीका या व्याख्या"। इस उल्लेख से ज्ञात होता है कवीन्द्राचार्य ने शतपथ ब्राह्मण पर भी कोई व्याख्या लिखी थी जो आज पूर्णतया उपलब्ध नहीं होती।

(५) **हंसदूत काव्य**—डा० बर्नल ने तंजौर हस्तलिखित पुस्तकों की सूची १८७९) पृ० १६३ (A) में इस ग्रन्थ का इस प्रकार से वर्णन किया है—

इस हस्तलेख के ऊपर "सर्वविद्यानिधान कवीन्द्राचार्य सरस्वतीनां" ऐसा उल्लेख उपलब्ध होता है जिससे ज्ञात होता यह हस्तलिखित प्रति कभी कवीन्द्राचार्य के पास रही होगी। इस हस्तलेख की प्रतिलिपि करने की तिथि १६५० (शक ? या संवत्) दी गई है। यदि यह तिथि सम्वत् मान ली जाय तो इसकी प्रतिलिपि सन् १५९४ ई० में की गई होगी। इस ग्रन्थ के लेखक का नाम अज्ञात है। डा० बर्नल ने इस

---

१. तत्त्वज्ञान दूरीकृत महामोह समवगत सप्तभूमिका समारोह महम्मद दाराशिको (ह) कृता नारायणेत्यष्टाक्षर-मंत्रपूर्वका नमस्काराः सन्ति - कवीन्द्रकल्पद्रुम का अन्तिम अंश।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हंसदूत' को कवीन्द्राचार्य सरस्वती की रचना स्वीकार किया है। परन्तु पूना के सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० पी० के० गोडे के विचार से यह मत भ्रमात्मक तथा अशुद्ध है।[1]

कवीन्द्राचार्य जी की दो हिन्दी रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। कवीन्द्र, कवीन्द्र-सरस्वती तथा कवीन्द्राचार्य सरस्वती—इन तीन नामों से ग्रन्थ के लेखक का निर्देश किया गया है। संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् का हिन्दी भाषा से परिचय पाना तथा हिन्दी में पद्य रचना करना - दोनों ही बातें उनके लोकजीवन के साथ सम्पर्क की सूचिका हैं। पहिले ग्रन्थ का नाम है—**वसिष्ठसार** जिसमें **योगवासिष्ठ** के उपदेशों का सारांश हिन्दी पद्यों में दिया गया है। इसके अन्य नाम हैं—**ज्ञानसार** और **योगवासिष्ठ सार**। रचनाकाल है १७१४ विक्रमी संवत् (= १६५७ ईस्वी)। दूसरे ग्रन्थ का नाम है—**समय सार** जिसका विषय युद्ध में जाने के समय मुहूर्त का विचार है। पहिले का विषय अध्यात्म है, दूसरे का ज्योतिष[2]। ये दोनों अमुद्रित हैं। इनके हस्तलेख ही उपलब्ध होते हैं।

कवीन्द्राचार्य का पुस्तकालय

कवीन्द्राचार्य सरस्वती केवल एक संन्यासी ही नहीं थे, बल्कि संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् भी थे। इनका पुस्तकालय बड़ा विशाल था जिसमें हजारों पुस्तकें हस्तलिखित रूप में विद्यमान थीं। उस अतीत काल में जब पुस्तकों की 'कैटेलागिंग' की प्रणाली प्रचलित नहीं थी, कवीन्द्राचार्य ने अपने पुस्तकालय की पुस्तकों का 'सूची-पत्र' तैयार किया था। जिस प्रकार आधुनिक पुस्तकालयों की प्रत्येक पुस्तक पर उस महाविद्यालय या विश्वविद्यालय की 'सील' (मोहर या मुद्रा) अंकित रहती है उसी तरह आज से तीन सौ वर्ष पहिले कवीन्द्राचार्य ने अपनी समस्त पुस्तकों के मुख पृष्ठ पर "सर्वविद्या-निधान कवीन्द्राचार्य सरस्वतीनां पुस्तकम्" यह मुद्रा (सील या मुहर) अंकित की थी जिससे आज इन पुस्तकों को पहिचानने में बड़ी सरलता होती है।

कवीन्द्राचार्य सरस्वती संन्यासी थे। अतः इनका कोई उत्तराधिकारी नहीं था। इन्होंने कोई अपनी गद्दी भी स्थापित नहीं की। अतएव इनकी मृत्यु के पश्चात् इनका विशाल पुस्तकालय बिखर गया अथवा नष्ट हो गया। इनके पुस्तकालय की अधिकांश पुस्तकों को सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी ने खरीद लिया है जिससे उनकी सुरक्षा हो रही है। कवीन्द्राचार्य के पुस्तकालय की अनेक हस्तलिखित पुस्तकें "ओरियण्टल इन्स्टीटचूट, बड़ौदा" में विद्यमान हैं जिनकी पहिचान उनके मुखपृष्ठ पर

---

१. डा० गोडे : स्टडीज इन इण्डियन लिटरेरी हिस्ट्री, भाग २, पृ० ३७९।

२. द्रष्टव्य : 'हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण' (दो खण्ड) प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० वि० २०२१ (= १९६४ ई०) पृ० ३६६-३६७; पृ० ५१८ (द्वितीय खण्ड)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखे "सर्वविद्यानिधान कवीन्द्राचार्य सरस्वतीनां पुस्तकम्" इस उल्लेख से होती है। "गायकवाड़ ओरियण्टल इन्स्टीटयूट, बड़ौदा" ने इनकी पुस्तकों का एक सूचीपत्र 'कवीन्द्राचार्य सूचीपत्रम्' के नाम से 'गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज' संख्या १७ बड़ौदा से सन् १९२१ ई० में प्रकाशित किया था। यह सूचीपत्र वाराणसी के किसी मठ से प्राप्त किया गया था। डा० सर गंगानाथ झा ने उस सूचीपत्र की भूमिका में लिखा है : "कवीन्द्राचार्य संन्यासी थे और एक धनी व्यक्ति थे। ऐसी दशा में इनके पुस्तकालय का विशाल तथा समृद्ध होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।"

कवीन्द्राचार्य की कुछ हस्तलिखित पुस्तकें "भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीटयूट, पूना" में भी सुरक्षित हैं। इस शोधसंस्थान में जनार्दन के द्वारा लिखित (१५१४–१४५८ ई०) 'तत्त्वालोक' नामक ग्रन्थ का एक हस्तलेख विद्यमान है जिस पर यह वाक्य अंकित है "श्रीमत् विद्यानिधान कवीन्द्राचार्य सरस्वतीनां वेदान्त-तत्त्वालोकः"।

इन उल्लेखों से पता चलता है कि कवीन्द्राचार्य का पुस्तकालय कितना विशाल तथा महत्त्वपूर्ण था। इनकी मृत्यु के पश्चात् इनका कोई उत्तराधिकारी न होने के कारण यह सुसंगठित पुस्तकालय बिखर गया और इसकी पुस्तकें सुदूर बड़ौदा और पूना तक पहुँच गयीं।

बर्नियर से मित्रता—जब कवीन्द्राचार्य सरस्वती आगरा में थे तभी फ्रांस का सुप्रसिद्ध यात्री बर्नियर भारत भ्रमण करने के लिए आया हुआ था। वह भारतीय संस्कृति का बड़ा प्रेमी था। अतः कवीन्द्राचार्य जैसे प्रकाण्ड विद्वान् से परिचय प्राप्त करना उसके लिए स्वाभाविक था। उसी समय शाहजहाँ के दरबार में दानिशमन्द खाँ नामक व्यक्ति रहता था जो बादशाह का बड़ा प्रियपात्र और प्रभावशाली सरदार था। आगरा में वह बर्नियर का आश्रयदाता था। अतः जब कवीन्द्राचार्य आगरा पहुँचे तब बर्नियर के माध्यम से इनका परिचय दानिशमन्द खाँ से भी हो गया। चूँकि वह स्वयं गुणग्राही व्यक्ति था अतः कवीन्द्राचार्य के प्रकाण्ड पाण्डित्य से प्रभावित होकर उसने इन्हें भी अपने आश्रय में स्थान दिया। बहुत सम्भव है कि हिन्दुओं के ऊपर लगाये गये यात्रीकर को हटाने में दानिशमन्द खाँ का भी हाथ रहा हो, यद्यपि बर्नियर ने इसका कहीं उल्लेख नहीं किया है। कवीन्द्राचार्य तीन वर्षों तक आगरा में रहे जहाँ इन्हें शाहजहाँ और दाराशिकोह की कृपा और दानिशमन्द खाँ का आश्रय प्राप्त था। बर्नियर से इनकी बड़ी घनिष्ठ मित्रता हो गई थी जिसने इनकी भूरि भूरि प्रशंसा की है और 'समस्त भारत का एक महान् विद्वान्' की उपाधि से इन्हें मण्डित किया है।

कवीन्द्राचार्य का अन्तिम जीवन

सन् १६५८ ई० में औरंगजेब ने शाहजहां को बन्दी बना कर आगरा के किले में बन्द कर दिया। सन् १६५९ ई० में उसने दाराशिकोह का बड़ी निर्दयता के साथ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कत्ल कर दिया। दानिशमन्द खां की मृत्यु सन् १६७० ई० में हो गयी। अतः अपने आश्रयदाता मुगल बादशाह तथा उसके गुणग्राही पुत्र की हत्या के बाद कवीन्द्राचार्य काशी लौट आये। सन् १६६७ ई० के पहिले बर्नियर काशी की यात्रा के लिए आया था और उसने अपने यात्रावृतान्त में लिखा है कि उसने कवीन्द्राचार्य के विशाल पुस्तकालय का निरीक्षण किया था। इसी अवसर पर कवीन्द्र ने काशी के तत्कालीन छः महान् विद्वानों को बर्नियर से भारतीय दर्शन पर वार्तालाप करने के लिए आमंत्रित किया था। बर्नियर ने मूर्तिपूजा की उपयोगिता पर इन लोगों से प्रश्न भी किया था जिसका इन्होंने बड़ा ही तर्कपूर्ण उत्तर दिया था।

कवीन्द्राचार्य का अन्तिम जीवन काशी में ही पठन-पाठन तथा पूजा-पाठ में व्यतीत हुआ। ये शाहजहां के द्वारा प्रदत्त धन को काशी के पण्डितों तथा निर्धनों में वितरित कर दिया करते थे। इसमें सन्देह नहीं कि कवीन्द्राचार्य के समान विद्वान्, कर्मठ, परोपकारी, त्यागी और तपस्वी संन्यासी का होना अत्यन्त कठिन ही नहीं, दुर्लभ भी है।

परिशिष्ट (१)

सत्रहवीं शताब्दी में वर्तमान काशी के उन विद्वानों के ये नाम हैं, जिन्होंने कवीन्द्राचार्य सरस्वती के द्वारा यात्री-कर के निरस्त कर दिये जाने के उपलक्ष्य में, उनकी स्तुति में, गद्य और पद्य में, प्रशस्ति लिखी थी। इस सूची से ज्ञात होता है कि उस समय में ये प्रसिद्ध विद्वान्, पण्डित तथा कवि वर्तमान थे। इनकी संख्या ६९ (उनहत्तर) थी जो निम्नांकित है :—

(१) श्री कृष्ण उपाध्याय (२) महाराज मिश्र या हेमराज मिश्र (३) जयराम भट्टाचार्य (४) माधव भट्ट (५) रामदेव भट्टाचार्य (६) कूर्माचल वीरेश्वर पण्डित (जो संभवतः कुमायूँ के निवासी थे) (७) खड्ग मिश्र (८) रघुनन्दन द्विवेदी (९) रघुनाथ दीक्षित (१०) क्षमानन्द वाजपेयिन् (११) भैय्या भट्ट या भय्या भट्ट (१२) केशव मिश्र (१३) सिद्धेश्वर भट्ट मीमांधक (१४) चक्रपाणि पण्डित (१५) गणेशभट्ट धर्माधिकारिन् (१६) नागेश जो सोमराज पण्डित के पुत्र थे। (१७) परमेश्वराचार्य (१८) रामकृष्ण नागर (१९) विश्वंभर मैथिलोपाध्याय (२०) जगदीश जानी (२१) रामेश्वर पंचानन भट्टाचार्य (२२) जयकृष्ण उपाध्याय (२३) गौरीपति मिश्र (२४) नीलकण्ठ आचार्य (२५) दामोदर भट्टकाल (२६) विश्वनाथ ज्योतिर्विद (२७) धर्मेश्वर अग्निहोत्री (२८) दामोदर उपाध्याय मैथिल (२९) ब्रजभूषण कवि (३०) श्री स्वामिन् (३१) कृष्णचन्द्र भट्ट (३२) बालकृष्ण त्रिपाठिन् (३३) अनिरुद्ध मिश्र (३४) बाल गोविन्द ज्योतिर्विद् (३५) पूर्णानन्द ब्रह्मचारिन् (३६) मुरलीधर जो कालिदास मिश्र के पौत्र थे। (३७)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णाचार्य (३८) महादेव पट्टवर्धन (३९) लीलाधर भट्ट (४०) बदरीनाथ उपाध्याय (४१) हीराराम कवि (४२) मौनि वीरेश्वर भट्ट (४३) श्री महीपति उपाध्याय (४४) शिवदत्त मिश्र (४५) कवि शेखर (४६) भूधर पाठक (४७) रघुनाथ उपाध्याय (४८) लक्ष्मण महापात्र (४९) श्री स्वामि शिष्य (५०) तिलभाण्डेश्वर (५१) ब्रह्मेन्द्र सरस्वती (५२) ब्रह्मेन्द्र स्वामिन् (५३) नारायण चतुर्वेद (५४) मानभट्ट या भानु भट्ट (५५) तैलंग बैकुण्ठ भट्ट (५६) गंगाराम मिश्र ५७) जगन्नाथ पंचानन भट्टाचार्य (५८) मैथिल कायस्थ (५९) गुर्जर (६०) स्वामिन् (६१) दयालु मिश्र (६२) वीरेश्वर भट्ट (६३) कमलनयन दीक्षित (६४) ब्रह्मगिरि (६५) त्वरित कविराय या त्वरित-गति कवि (६६) रामचन्द्र वाजपेयिन् (६७) मौनिरंगनाथ भट्ट ६८) दिवाकर भट्ट और (६९) रंगनाथ भट्ट गुर्जर।

काशी के ये समस्त (६९) विद्वान् कवीन्द्राचार्य के समसामयिक थे और बर्नियर ने जब सन् १६६७ ई० में बनारस की यात्रा की थी उसके पहिले ये सभी विद्वान् जीवित थे। यह बहुत संभव है कि कवीन्द्राचार्य ने बर्नियर से जिन छः विद्वानों का परिचय तथा वार्तालाप कराया था वे छः इन्हीं पण्डितों में से हों। यह घटना सन् १६५६ ई० से लेकर सन् १६६७ ई० के बीच कभी घटित हुई थी।

परिशिष्ट (२)

प्रोफेसर श्रीराम शर्मा ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "बिब्लियोग्राफी आफ मुगल इण्डिया" (१५२६–१७०७ ई०) में, जिसे कर्नाटक पब्लिशिंग हाउस, बम्बई ने सन् १९३९ ई० में प्रकाशित किया है—परिशिष्ट III पृ० १५४–१६५ पर 'संस्कृत राइटर्स आफ दि मुगल पीरियड" नाम से तत्कालीन विद्वानों की एक सूची दी है जिससे कवीन्द्राचार्य के विषय में यह सूचना मिलती है :—

कवीन्द्राचार्य—यह एक विख्यात वैदिक विद्वान् थे जिन्होंने ऋग्वेद के ऊपर एक टीका लिखी थी जिसका एक अंश ही त्रुटित रूप में उपलब्ध होता है। संभवतः यह उल्लेख 'शतपथ ब्राह्मण भाष्य' के संबंध में ही ज्ञात होता है जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

संस्कृत के विद्वानों के लिए, उनकी अनुसन्धान संबंधी सुविधा के लिए, मुगल-काल (१५२६–१७०७ ई०) के उन सभी विद्वानों का यहाँ नाम्ना उल्लेख कर दिया जाता है जो लगभग इन दो शताब्दिशों के बीच उत्पन्न हुए थे और जिनमें से संभवतः अधिकांश काशी के ही निवासी थे।[1]

---

१. इस सूची के प्रामाणिक विवरण के लिए देखिए :
डा० बी० के० गोडे : स्टडीज इन इण्डियन लिटरेरी हिस्ट्री, भाग २, पृ० ३३७।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) अनन्त भट्ट (२) अनन्त पण्डित (३) अनन्त देव (४) कमलाकर भट्ट (५) कमलाकर (६) कविचन्द (७) कृष्ण (१६४५ ई०) (८) कृष्णदत्त मिश्र (सन् १६५० ई० के आसपास) (९) कालिदास (१६३२) (१०) गङ्गाधर (१६३३ ई०) (११) गंगाधर (१२) गोविन्द (१३) गोकुलजित (१४) गौरीपति (१६४० ई०) (१५) चिन्तामणि (१६३० ई०) (१६) जगन्नाथ पण्डित (१७) जगदानन शर्मन (१८) जिनार्जुन (१९) जीव गोस्वामी (२०) दया द्विवेद (१६८८ ई०) (२१) दुर्गा-दास (१६२८) (२२) देवसागर (१६६०), (२३) धनराज (२४) नन्द पण्डित (२४) नित्यानन्द (१६२९,१६४०) (२६) नीलकण्ठ भट्ट (२७) नीलकण्ठ दीक्षित (१८) पुरुसोत्तम (१६८८), (२९) बलभद्र (३०) भावदेव मिश्र (३१) भावदेव (१६६४) (३२ भट्टोजि दीक्षित—यह वैयाकरण तथा विधिवेत्ता उस समय तक (१६२८) जीवित था, यद्यपि डा० पी० के० गौड़ ने इसमें सन्देह प्रकट किया है। (३३) मणिराम (१६४२) (३४) मणिराम दीक्षित (३५) माधव शुक्ल (१६४५) (३६) माधव ज्योतिर्विद् (३७) महादेव (३८) मित्र मिश्र (३९) रघुनाथ (१६५६) (४०) रंग-नाथ (१६५६) (४१) रामचन्द्र राजर्षि (१६३३) (४२) रामनाथ विद्यावाचस्पति (४३) रामाश्रम (४४) दत्त (४५) विजयानन्द (१६४१ (४६) विद्यानन्द (४७) विद्याधर (१६३९, १६४४) (४८) विष्णुपुरी (४९) विष्णु (५०) विष्णुराम (४१) विश्वरूप (५२ विश्वनाथ दैवज्ञ (५३) विश्वनाथ पंचानन भट्टाचार्य (५४) वेदाङ्ग-राय (१६४३), (५५) वेणिदत्त (१६४४), शिवराम, श्री धर्मपति शर्मन (५६) सहज कीर्ति (५७) हरिदत्त भट्ट (१६३०) और (५८) अथर्वण प्रातिशाख्य के टीकाकार कोई अज्ञात लेखक।

मुगलकालीन विद्वानों की ऊपर सूची दी गई है। उन में से अनेक वैयाकरण जैसे—भट्टोजि दीक्षित, विधि-वेत्ता जैसे नन्द पण्डित; सबने काशी को ही अपनी कर्मस्थली बनाया था। इस सूची में उल्लिखित जगन्नाथ पण्डित से तात्पर्य पण्डितराज जगन्नाथ से ही समझना चाहिए जो मुगल बादशाह शाहजहाँ के अत्यन्त प्रियपात्र थे और उसके ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह के गुरु थे। संस्कृत साहित्य के इतिहास के विद्यार्थियों में लिए तथा काशी की पाण्डित्य परम्परा के अनुसन्धान-कर्त्ताओं के लिए, यह सूची अत्यन्त उपयोगी है। इसके साथ ही काशी के कवीन्द्राचार्य के समसामयिक जिन ६९ विद्वानों तथा कवियों ने उनकी प्रशंसा में प्रशस्ति की रचना की है उस सूची का भी ऐतिहासिक मूल्य बहुत अधिक है। आशा है भविष्य में अनुसंधानकर्त्ता इन दोनों सूचियों का उपयोग कर अपने शोध को प्रगति प्रदान करेंगे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशी के मध्ययुगीय विद्वानों की सरस्वती सेवा का यह सर्वेक्षण यहीं समाप्त किया जाता है। इसके अनुशीलन से उसकी महत्ता, नूतनता तथा विकास की नवीन दिशा का संकेत सद्यः उपलब्ध होता है।

अन्त में यह कहना उचित प्रतीत होता है—

धन्येयं नगरी काशी, धन्यास्तत्रत्य पण्डिताः।
धन्यं तत्सृष्ट-साहित्यं, धन्यास्तद्रसिका बुधाः॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय खण्ड

अवतरणिका

अध्याय ४ : काशिराजकीय संस्कृत पाठशाला का संक्षिप्त इतिहास।

अध्याय ५ : काशिराज का इतिहास तथा संस्कृत सेवा।

अध्याय ६ : काशीस्थ पण्डितों की सामान्य विशेषताएँ।

अध्याय ७ : आक्षेपों का निरसन।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ४

काशिराजकीय संस्कृत पाठशाला

(गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस)

संक्षिप्त इतिहास

काशी की पाण्डित्य परम्परा के इतिहास में २८ अक्टूबर १७९१ ई० (सं० १८४८ वि०) का दिनांक सुवर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है क्योंकि इसी दिन के मंगल प्रभात में **काशि-राजकीय संस्कृत पाठशाला** की स्थापना की गई थी। इसी पाठशाला में विधिवत् अध्ययन करने वाले छात्रों ने तथा अध्यापन करने वाले गुरुजनों ने संस्कृत विद्या के नाना विभागों की अभिवृद्धि में अभूतपूर्व योगदान दिया। इसी विद्यालय ने प्राचीनकाल से चली आती हुई संस्कृत परम्परा का संरक्षण किया तथा विगत दो सौ वर्षों से अखिल भारत में संस्कृत विद्या के प्रचार तथा प्रसार का श्रेय भी प्राप्त किया। इसी विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करके अनेक विद्वानों ने अखिल भारतीय कीर्ति प्राप्त की और अपनी यशरूपी पताका फहराई।

काशी के पण्डितों तथा विद्वानों के लिए यह पाठशाला विद्या की उत्स-भूमि रही है। संभवतः कदाचित् ही कोई संस्कृत का ऐसा विद्वान् रहा हो जो इस पाठशाला से छात्र अथवा शिक्षक के रूप में संबद्ध न रहा हो। प्राचीनकाल से ही काशी विद्या की केन्द्रस्थली रही है। परन्तु इस विद्यालय के द्वारा काशी की यह कीर्ति शताधिक गुण वृद्धि को प्राप्त हो गई। अनेक भारतीय राजा और महाराजा अपने राजगुरुओं को काशी के इस विद्यालय में संस्कृत का अध्ययन करने के लिए भेजा करते थे। सच तो यह है कि इस विद्यालय में बिना अध्ययन किये हुए किसी विद्वान् की विद्या पूर्ण नहीं समझी जाती थी।

कालेज का जन्म तथा उद्देश्य

इसी समय (१७५० ई०) के आस-पास ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अधिकार बंगाल, बिहार तथा उत्तर प्रदेश में हुआ। कम्पनी के अधिकारियों ने इस देश में अपने राज्य को प्रतिष्ठित करने के लिए हिन्दुओं तथा मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए उनकी प्राचीन विद्या को सुरक्षित करने का संकल्प किया और इसी संकल्प को कार्यान्वित करने के लिए उन्होंने मुसलमानों की शिक्षा के लिए कलकत्ता में 'मदरसा' को स्थापित किया। हिन्दुओं की प्राचीन तथा पवित्र संस्कृत विद्या को संरक्षण प्रदान करने के लिए उन्होंने काशी को चुना। उस समय काशी-मण्डल के शासनाधिकारी (रीजेण्ट) डंकन साहब थे जिन्होंने लार्ड कार्नवालिस (शासनकाल १७८६ ई०—१७९४ ई०) से प्रार्थना कर यहाँ एक संस्कृत विद्यालय की स्थापना करने की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वीकृति प्राप्त कर ली। इसी डंकन साहब के प्रार्थना तथा अनुरोध करने पर तत्कालीन काशीनरेश **महाराजा महीपनारायण** सिंह ने प्रचुर धन तथा भूमि प्रदान कर एक विद्यालय की स्थापना की, जिसका नाम **'काशिराजकीय संस्कृत पाठशाला'** रखा गया। महाराजा ने इस पाठशाला के संचालन के लिए मिर्जापुर जिले का 'सतासी परगना' नामक अपनी जमींदारी का एक विशिष्ट भाग भी प्रदान किया। उन्होंने वह विस्तृत भूमिखण्ड भी दान में दिया जहाँ वह पाठशाला—जो अब सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के नाम से प्रसिद्ध है—आज भी स्थित है।

इस प्रकार सन् १७९१ ई० में काशिराजकीय संस्कृत पाठशाला की स्थापना काशीनरेश की आर्थिक सहायता से सम्पन्न हुई। इसकी स्थापना करने में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के तत्कालीन अधिकारी **जोनाथन डंकन** साहब का प्रमुख हाथ रहा। ये डंकन साहब कम्पनी की ओर से कम्पनी के अधिकार में आने वाले भारत के पूर्वी प्रदेश के शासनाधिकारी (रीजेण्ट) नियुक्त किये गये थे। इन्होंने बनारस तथा इसके आसपास के पूर्वी जिलों में जमीन के लगान का बन्दोबस्त एक नयी शैली से किया जो उन्हीं के नाम पर 'डंकनी बन्दोबस्त' के नाम से आज भी प्रसिद्ध है।

इस संस्कृत विद्यालय में—जो बाद में गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज के नाम से प्रसिद्ध हुआ—वेद, वेदाङ्ग, दर्शन और धर्मशास्त्र का अध्यापन किया जाता था। परन्तु इन विषयों में भी धर्मशास्त्र की शिक्षा पर सरकार का विशेष बल था। क्योंकि उन दिनों की सरकारी कचहरियों में हिन्दू ला (विधि) की मीमांसा करने के लिए इन धर्मशास्त्रियों की नितान्त आवश्यकता थी। इन्हीं धर्मशास्त्रियों की सहायता से तत्कालीन न्यायाधीश (जज) हिन्दू ला (विधि) सम्बन्धी व्यवहारों (मुकदमों) का निर्णय किया करते थे। इसके अतिरिक्त शासकों का यह भी उद्देश्य था कि हिन्दुओं के कानून के अनुसार उनके मुकदमों का निर्णय करने से वे प्रसन्न होंगे तथा ब्रिटिश सरकार की न्यायप्रियता में विश्वास करने लगेंगे। इस प्रकार इस संस्कृत विद्यालय की स्थापना का उद्देश्य केवल संस्कृत विद्या का प्रचार ही नहीं था, बल्कि सरकारी अदालतों में इन पण्डितों से सहायता लेना भी था। इसीलिए इस विद्यालय के सर्वप्रथम विद्वान् पण्डित **राजाराम शास्त्री** की नियुक्ति, इस महाविद्यालय में नियुक्ति के पूर्व, आजमगढ़ के जिला जज की कचहरी में न्याय-पण्डित के पद पर की गई थी।

इस प्रकार आरम्भ की अर्ध-शताब्दी में सन् १७९१ ई० से लेकर सन् १८४४ ई० तक—इस महाविद्यालय की व्यवस्था तथा संरक्षण का कार्य यहाँ के शासनाधिकारियों (रीजेण्ट) के हाथों में ही रहा। परन्तु धीरे-धीरे इन अधिकारियों को यह ज्ञात होने लगा कि भारतवासियों को यूरोपीय साहित्य तथा दर्शन शास्त्र का ज्ञान कराना आवश्यक है। इसलिए वे ऐसे किसी व्यक्ति को इस विद्यालय का प्रिन्सिपल बनाना चाहते थे जो प्रथमतः तो संस्कृतज्ञ हो और इसके साथ ही यूरोप के ज्ञान-विज्ञान से भी परिचित हो। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए यूरोप से ऐसे विद्वानों को बुलाया जाने लगा जो उपर्युक्त दोनों कार्यों को करने में समर्थ हों।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंग्रेज प्रिन्सिपल

इस महाविद्यालय के प्रथम प्रिंसिपल के पद पर (१) **जे० म्योर** की नियुक्ति की गई जिन्होंने सन् १८४४ और १८४५ ई० केवल दो वर्षों तक कार्य किया। इसके अनन्तर जे० आर० बेलेन्टाइन दूसरे प्रिन्सिपल (सन् १८४६ से १८६१ ई०) नियुक्त हुए। इन दोनों प्रिंसिपलों के कार्यकाल में इंगलैण्ड के इतिहास, पश्चिमी दर्शन, नीतिशास्त्र, पश्चिमी विज्ञान आदि विषयों के ऊपर संस्कृत के माध्यम से नये-नये ग्रन्थों की रचना की गई। इन विषयों के ऊपर इस महाविद्यालय में अनेक भाषण भी होते थे।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक अंग्रेजी ग्रन्थों का संस्कृत में अनुवाद भी किया गया जिनमें से कुछ के नाम निम्नांकित हैं—

(१) **नूत्नोदन्तोदोत्स**—(नूत्न + उदन्त + उद + उत्स) इसमें इंगलैण्ड के इतिहास का संस्कृत भाषा में वर्णन था।

(२) **इतिहास-तमोमणि**—यह भारतवर्ष का संस्कृत में निबद्ध इतिहास था।

(३) **विज्ञान-सार-संग्रह**—बर्कले, बेकन, मिल आदि सुप्रसिद्ध अंग्रेज विद्वानों के ग्रन्थों पर आधारित, परन्तु स्वतन्त्र रूप से निर्मित, यह ग्रन्थ संस्कृत पण्डितों के लिए अत्यन्त उपयोगी था।

(४) सुप्रसिद्ध दार्शनिक बेकन के द्वारा निर्मित प्रसिद्ध ग्रन्थ नोवुम आरगैनुम[1] के प्रथम तथा द्वितीय भाग का अनुवाद इस महाविद्यालय के ही एक पण्डित **विट्ठल शास्त्री** ने किया था।

उस युग में इस महाविद्यालय में—जो उन दिनों बनारस संस्कृत कालेज के नाम से प्रसिद्ध था—पश्चिमी विद्वानों के द्वारा निर्धारित ज्ञान तथा विज्ञान के विभिन्न अंगों तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों के ऊपर भाषण भी हुआ करते थे जिनका सारांश अंग्रेजी भाषा में तथा उसका अनुवाद संस्कृत में प्रकाशित किया जाता था। कम से कम ऐसी चार व्याख्यानमालाएँ हुईं जिनमें से **चौथी** व्याख्यानमाला सन् १८४६ ई० में इलाहाबाद के प्रेसबिटेरियन मिशन प्रेस से छपी थी।

इस व्याख्यानमाला का **चौथा** भाग Lecturs on the sub-divisions of knowledge and their mutual relations नाम से प्रकाशित हुआ है जिसका कुछ अंश संस्कृत में यहाँ नमूने के रूप में दिया जा रहा है—

"अथ यूरोपाख्य-देशवर्ति-लोकमतानुसारेण जनव्यवहारेतिहासः संक्षेपतो वर्ण्यते। ईश्वरेण सृष्टोऽयं संसारः। प्रथमं स्त्री पुंसौ ईश्वराज्ञाभङ्गेन ईश्वरानुग्रहायोग्यौ बभूवतुः। तथा च पापदुःखयोः प्रवेशो बभूव। भारतवर्षस्योत्तरदिशि वाक्त्र्याख्यदेशे मनुजानां प्रथमं वसतिः कल्प्यते। ततश्च क्रमेण सर्वस्यां पृथिव्यां विस्तीर्णा बभूव।

---

१. Novum Organum

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत में इन भाषणों का नाम **विद्याचक्रम्** था। इस ग्रन्थ के अनुशीलन से पता चलता है कि भाषणों की माला यहीं तक समाप्त नहीं हो गई बल्कि इसका क्रम आगे भी चलता रहा। यद्यपि इस भाषणमाला का उद्देश्य बहुत ही पवित्र तथा उपयोगी था, तथापि भारत की इस उर्वराभूमि में भी यह विदेशी पौधा तनिक भी पनप नहीं सका, इसे अत्यन्त दुःख का ही विषय समझना चाहिए। अंग्रेजों के इस शिक्षण-प्रयास को काशीस्थ विद्वानों ने निरर्थक मानकर उसके प्रति अपनी उपेक्षा भावना का ही प्रदर्शन किया। फलतः बैलेन्टाइन साहब के अनन्तर यह योजना समाप्त ही कर दी गयी।

(२) **डा० बैलेन्टाइन** (१८४६–१८६१ ई०)

गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज बनारस के संस्कृतज्ञ प्रिन्सिपल **बैलेण्टाइन साहब (जेम्स० आर० बैलेण्टाइन)** थे। इन्होंने भी अंग्रेजी के माध्यम से संस्कृत भाषा को सीखने के लिए अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया :—

(१) बैलेण्टाइन ने संस्कृत सीखने के लिए एक छोटा सा व्याकरण भी अंग्रेजी में लिखा था जिसका हिन्दी अनुवाद डा० अमरनाथ पाण्डेय, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, काशी विद्यापीठ ने प्रकाशित कराया है। ग्रन्थ छोटा होने पर भी उपादेय है।

(२) **लघुसिद्धान्त कौमुदी** का सुबोध अंग्रेजी अनुवाद। यह अनुवाद बड़ी ही सुबोध भाषा में किया गया है जिसकी सहायता से इस आरम्भिक ग्रन्थ का पूरा परिचय पाठकों को मिल जाता है। इस ग्रन्थ की भूमिका ३१ जुलाई १९०९ ई० में लिखी गई थी और यही इसके प्रथम प्रकाशन का वर्ष है। यह ग्रन्थ बड़ा ही लोकप्रिय हुआ। चतुर्थ संस्करण १८६१ ई० में प्रकाशित हुआ था। इसी का पुनः मुद्रण मोतीलाल बनारसीदास ने दिल्ली से प्रकाशित किया है। (प्रथम पुनर्मुद्रण १९६७ में था; द्वितीय पुनर्मुद्रण १९७६ में)।

(३) इनका तीसरा ग्रन्थ कपिल के सांख्यसूत्रों का अंग्रेजी अनुवाद है— **सांख्य अफारिज्म्स आफ कपिल**। इसका प्रथम प्रकाशन १८५२ ईस्वी में हुआ था और दूसरा मुनर्मुद्रण चौखम्भा ने काशी से इधर प्रकाशित किया है (१९५० ई०)। यह बड़ा उपादेय अनुवाद है केवल मूलसूत्रों का ही नहीं, प्रत्युत सांख्यप्रवचन भाष्य के उपयोगी अंशों का भी, जिससे सूत्र का तात्पर्य भली-भाँति बोधगम्य हो जाता है। ग्रन्थ की भूमिका में डा० बैलेन्टाइन ने बड़ी ईमानदारी से लिखा है कि "इस अनुवाद का उद्देश्य यही है कि अंग्रेजी से परिचित होने वाले हमारे विद्यालय के पण्डितजन इसकी समीक्षा करें कि संस्कृत के पारिभाषिक शब्दों तथा दुरूह सिद्धान्तों का अनुवाद अंग्रेजी के माध्यम से ठीक-ठीक हो सका है या नहीं। उनकी अनुकूल आलोचना से ही मैं अपने परिश्रम को सफल मानूँगा"। इसका प्रचुर प्रचार उस युग में हुआ तथा इनका प्रयोजन पर्याप्तरूपेण सफल हुआ।

(४) डा० बैलेण्टाइन का चतुर्थ ग्रन्थ सदानन्द के **'वेदान्तसार'** का एक सुन्दर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्करण है जिसको अंग्रेजी अनुवाद के साथ उन्होंने १८४० ईस्वी में प्रकाशित किया था। यह उस समय बहुत प्रसिद्ध हुआ था, परन्तु १८९३ ई० से बहुत ही पहिले ही दुर्लभ हो गया था। इसकी सूचना का कर्नल जेकब के द्वारा सम्पादित टीकाद्वयी के साथ सम्पन्न 'वेदान्तसार' की भूमिका[1] से पता चलता है।

(३) **आर० टी० एच० ग्रिफिथ**—(१८६१–१८७८ ई०)।

(४) **डा० जी० टीबो**—(१८७६ ई०–१८८८ ई०)।

इन दोनों उपर्युक्त प्रिन्सिपलों के काल में इस संस्कृत महाविद्यालय (कालेज) की बड़ी उन्नति हुई। इन्होंने अपने पूर्व के प्रिन्सिपलों की नीति को बदल कर संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों का अंग्रेजी में अनुवाद करने का उद्देश्य बनाया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए इन्होंने **'काशी विद्या सुधानिधि'** अथवा 'दि पण्डित' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन सन् १८६६ ई० से प्रारम्भ किया जिसमें अप्रकाशित प्राचीन ग्रन्थ, नवीन संस्कृत की गद्य-पद्यात्मक रचनाएँ तथा संस्कृत के प्राचीन एवं कठिन ग्रन्थों का अंग्रेजी में अनुवाद प्रकाशित होता था। यह पत्रिका सन् १९१७ ई० तक—अर्थात् अर्ध शताब्दी से भी अधिक वर्षों तक—निरन्तर प्रकाशित होती रही। इसके माध्यम से संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों का उद्धार हुआ तथा विशेषतः दर्शन तथा ज्योतिष विषय के कठिन ग्रन्थों का अंग्रेजी अनुवाद भी प्रस्तुत किया गया।

इन दोनों प्रिन्सिपलों ने भी संस्कृत साहित्य की अनुपम सेवा की। ग्रिफिथ साहब मूलतः साहित्य के विद्वान् होने के अतिरिक्त कवि भी थे। अतः उन्होंने चारों वेदों का अंग्रेजी में पद्यानुवाद प्रस्तुत किया। इस के अतिरिक्त वाल्मीकीय रामायण का भी सुन्दर अनुवाद अंग्रेजी पद्यों में किया। आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् तथा हरिद्वार गुरुकुल के संस्थापक मुन्शीराम जी (स्वामी श्रद्धानन्द जी) ने अपने आत्मचरित (ज्ञानमण्डल, काशी से प्रकाशित) में ग्रिफिथ साहब के विषय में अनेक रोचक तथ्यों का उल्लेख किया है। मुन्शीराम जी के पिता काशी में ही कोतवाल थे। फलतः उनकी शिक्षा-दीक्षा काशी में ही हुई थी। उन्होंने लिखा है कि ग्रिफिथ साहब ने विवाह नहीं किया था। उन्होंने अपने बँगले को, जो कालेज के ही हाते में था, बड़ी सहृदयता से सजा रखा था। सायंकाल बग्गी पर चढ़कर वे जब बाहर घूमने जाया करते थे, तब उनका नौकर दर्शनार्थियों को उनका बँगला दिखाया करता था जिसे देखने के लिए शहर के शौकीन लोगों की भीड़ लगी रहती थी। वे भारतीयों से खूब प्रेम करते थे। आत्मीयता का व्यवहार करते थे। जिस स्थान पर बैठकर उन्होंने रामायण का अनुवाद किया था वह वर्तमान संस्कृत विश्वविद्यालय के मुख्य कार्यालय

---

१. वेदान्तसार नृसिंह सरस्वती तथा रामतीर्थ की टीका के साथ सम्पादित (निर्णय-सागर प्रेस, बम्बई, १९१६ ई०)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के समीप में ही था। उसकी स्मृति में आज यह सुन्दर श्लोक यहाँ संगममंर पर अंकित है—

तमसातट-कोकिलेन यच्चरितं कूजितमूर्जितं हरेः।
तदिहैव निषीदता सुखं ग्रिफिथेनात्मगिराऽप्यगीयत॥

ग्रिफिथ के अनन्तर १८७८ ई० में डा० थीबो कालेज के प्रिन्सिपल नियुक्त किये गये और दस वर्षों तक वे उस महनीय पद पर वर्तमान रहे। थीबो साहब जर्मन थे। वे गणित के बहुत ही उत्कृष्ट विद्वान् थे तथा दर्शन में—विशेषतः वेदान्त में, उनका पाण्डित्य यूरोपीय विद्वानों में प्रसिद्ध था। पण्डित सुधाकर द्विवेदी के साथ उनकी घनिष्ठ मित्रता थी। दोनों ने मिलकर अनेक प्राचीन ज्योतिष के ग्रन्थों का सम्पादन किया। 'पञ्च-सिद्धान्तिका' का विमर्शात्मक संस्करण दोनों के सम्मिलित प्रयास का परिणत फल था। वे बड़े गुणग्राही थे। पण्डित सुधाकरजी की अलौकिक गणितीय विद्वत्ता को उन्होंने खूब पहिचाना था और उन्होंने ही सरस्वती भवन के पुस्तकालयाध्यक्ष पद से उन्नति कर अध्यापन कार्य में उन्हें नियुक्त किया था। ब्रह्मसूत्र के शंकराचार्य के शारीरक भाष्य तथा रामानुजाचार्य के श्रीभाष्य—दोनों दुरूह भाष्यों का अंग्रेजी में पहिली बार अनुवाद उन्होंने ही किया जो बड़ा ही सफल तथा प्रामाणिक अनुवाद माना जाता है। कालेज में उस युग में अनेक दार्शनिक विद्वान् विराजमान थे। इनकी भी विद्वत्ता का उपयोग इस अनुवाद कार्य में किया गया है। थीबो साहब ने ग्रन्थ की भूमिका में इसका उल्लेख भी किया है। ये दोनों अनुवाद प्रोफेसर मैक्समूलर द्वारा सम्पादित 'सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट' नामक विश्वविश्रुत ग्रन्थमाला (आक्सफोर्ड) में प्रकाशित हुए हैं। १८८८ ई० में प्रिन्सिपल पद से निवर्तमान होने पर ये म्यूर सेण्ट्रल कालेज (इलाहाबाद) में प्रिन्सिपल नियुक्त हुए। डा० गंगानाथ झा से भी इनकी बड़ी घनिष्ठता थी और दोनों विद्वानों ने मिलकर दर्शन के अनेक दुरूह संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद कर 'इण्डियन थाट' नामक पत्रिका के द्वारा प्रकाशित किया था। डा० थीबो के पश्चात् डा० वेनिस कालेज के अध्यक्ष नियुक्त हुए।

(५) डा० आर्थर वेनिस (१८८८–१९१८ ई०)

डा० आर्थर वेनिस का दीर्घ अध्यक्ष-काल संस्कृत कालेज के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। डा० वेनिस सब अर्थों में काशी के सुयोग्य पुत्र थे। काशी के ही उस युग के विख्यात चिकित्सक डा० इ० जे० लाजरस साहब की वे योग्य सन्तान थे। उनका समस्त जीवन काशी में ही व्यतीत हुआ। जन्म, पोषण, अध्ययन, अध्यापन—सब कुछ इस विद्या नगरी काशी में ही सम्पन्न हुआ। केवल कुछ वर्षों के लिए आक्सफोर्ड में अंग्रेजी तथा संस्कृत अध्ययन के लिए वे अवश्य गये हुए थे, परन्तु उस काल के अतिरिक्त उनका काशी से कभी वियोग नहीं हुआ।

उन्हीं के साधोलाल छात्र पण्डित अम्बिकाप्रसाद उपाध्यायजी ने वेनिस साहब के विषय में बहुत ही तथ्यपूर्ण जानकारी इस लेखक को दी है जिसके आधार पर हम कह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकते हैं कि पण्डितों के प्रति उनका नैसर्गिक आदर-भाव, संस्कृत भाषा की उन्नति के लिए उनका अनवरत प्रयास, छात्रों के प्रति उनका मञ्जुल उदार व्यवहार तथा भारतीय दर्शन का उनका गाढ़ अनुशीलन सर्वथा स्तुत्य है। संस्कृत के पण्डितों को, संस्कृत कालेज के अध्यापक विद्वानों को वे कभी अपने अधीनस्थ व्यक्ति नहीं मानते थे, प्रत्युत वे उनका सर्वतोभावेन समादर एवं सत्कार करते थे। महामहोपाध्याय कैलासचन्द्र शिरोमणि तथा महामहोपाध्याय गंगाधर शास्त्री को वे गुरुतुल्य मानते थे, क्योंकि इनके संग उन्होंने दर्शन के विशिष्ट ग्रन्थों का पंक्तिशः अध्ययन किया था। वे भरी सभा में भी उनके चरण को छूकर अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करने में कभी संकोच का अनुभव नहीं करते थे। न्यायशास्त्र तथा वेदान्त में उनका प्रशंसनीय प्रवेश था। यूनानी दर्शन का अध्ययन उन्होंने मूल ग्रन्थों के आधार पर किया था। पाश्चात्य-दर्शन की अपनी अभिज्ञता के आधार पर वे भारतीय दर्शन के प्रौढ़ ग्रन्थों के तुलनात्मक अध्ययन में सर्वथा कृतकार्य थे। **वेदान्त परिभाषा** का उन्होंने अंग्रेजी में अनुवाद किया था जो 'पण्डित पत्र' के चतुर्थ खण्ड में प्रकाशित हुआ था। यह केवल अक्षरशः अनुवाद नहीं है, प्रत्युत स्थान-स्थान पर मार्मिक व्याख्याओं से भी संवलित है। अन्य प्रौढ़ ग्रन्थों के भी जैसे **वेदान्त-मुक्तावली** के उनके अनुवाद उस समय प्रकाशित हुए थे और जो आज भी प्रामाणिकता की दृष्टि से अनुपम हैं।

अपने छात्रों को उत्साहित तथा शोधकार्य के निमित्त प्रेरित करने में वे सर्वथा संलग्न रहते थे। कविराज गोपीनाथजी तो अपने को उनका मानस पुत्र ही मानते थे। अधिक वेतन पर कलकत्ता विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए तत्कालीन कुलपति आशुतोष मुखर्जी ने बहुत प्रयास किया, परन्तु कविराजजी सदा यही कहते थे कि 'डा० वेनिस ने जिस अध्यापन परम्परा का प्रचार काशी में किया है, उस कार्य को अग्रसर करना मैं अपने जीवन का लक्ष्य मानता हूँ।' वेनिस के छात्रानुराग का स्पष्ट संकेत उन पत्रों के द्वारा मिलता है जिन्हें उन्होने कविराजजी को भेजा था। वे संस्कृत भारती के निश्छल आराधक थे और इसीलिए उनके काल में इस विद्यालय की विशेष उन्नति हुई। उन्हीं के शासनकाल में **'बनारस संस्कृत सीरीज'** तथा **'चौखम्भा संस्कृत सीरीज'** का सार्वत्रिक अभ्युदय सम्पन्न हुआ। **'सरस्वती भवन'** की नयी इमारत तैयार हुई। पुस्तकालय की विशेष उन्नति हुई। संस्कृत परीक्षाओं का विशेष प्रसार-प्रचार हुआ तथा वे पहिले की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय बनती गयीं। सरस्वती भवन के उपयोगी हस्तलेखों को मुद्रित करने तथा शोध-पत्रिका निकालने की योजना उन्हीं ने बनाई थी जिसकी कार्य रूप में परिणति आगे चल कर डा० गंगानाथ झा के कार्यकाल में हुई।

डा० वेनिस वेदान्त के साथ ही साथ न्याय के भी बहुत ही गम्भीर विद्वान् थे। वे न्याय के इतिहास के विषय में एक ग्रन्थ लिखना चाहते थे जिसका प्रकाशन जर्मनी की ग्रुन्ड्रिश ग्रन्थमाला में होनेवाला था, परन्तु आकस्मिक निधन होने के कारण वे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस ग्रन्थ का निर्माण ही नहीं कर सके। **'वेदान्त-परिभाषा'** के अनुवाद को बोधगम्य बनाने के लिए इन्होंने अनेक उपादेय टिप्पणियाँ लिखी हैं। कर्नल जैकब ने 'वेदान्त-सार' के अपने संस्करण की टिप्पणियों में इन्हें उपयोगी होने के कारण बड़े सम्मान तथा आदर के साथ उद्धृत किया है।

गुणग्राहकता—डा० वेनिस का सबसे बड़ा गुण यह था कि ये बड़े ही गुणग्राही विद्वान् थे। ये दूसरों के गुणों का बड़ा ही आदर करते थे तथा उसे प्रोत्साहन प्रदान किया करते थे। पं० गोपीनाथजी कविराज पर इनकी बड़ी कृपादृष्टि रहती थी। डा० वेनिस तथा कविराजजी का जो पारस्परिक पत्राचार प्रकाशित हुआ है उससे स्पष्ट पता चलता है कि डा० वेनिस ने गोपीनाथ कविराज की कितनी सहायता की थी। जब कविराजजी ने जयपुर से बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण कर गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस में एम० ए० की कक्षा में प्रवेश लेने की इच्छा प्रकट की तब डा० वेनिस ने जयपुर छोड़कर इनके काशी आने का कारण पूछा। इस पर कविराजजी ने उत्तर दिया—आपके नाम की प्रसिद्धि सुनकर काशी आया हूँ। डा० वेनिस के द्वारा यह पूछने पर कि तुमने मेरा नाम कैसे जाना, कविराजजी ने एपिग्राफिका इण्डिका तथा इण्डियन एण्टीक्वेरी में प्रकाशित डा० वेनिस के लेखों का उल्लेख किया, जिसको सुनकर गुणग्राही वेनिस साहब बहुत ही प्रसन्न हुए। इतना ही नहीं, कविराजजी ने 'सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट' में डा० थीबो के द्वारा प्रकाशित ब्रह्मसूत्र के अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में डा० वेनिस का नामोल्लेख भी किया जिससे उन्हें पता चल गया कि यह छात्र मेधावी तथा बहुश्रुत है। फिर तो डा० वेनिस ने कविराज को एम० ए० की कक्षा में केवल प्रवेश ही नहीं दिया; बल्कि कालेज के छात्रावास में रहने के लिए स्थान की व्यवस्था कर दी तथा इन्हें छात्रवृत्ति भी प्रदान की।

डा० वेनिस ने ही कविराजजी की सरस्वती भवन के पुस्तकालयाध्यक्ष के पद पर नियुक्ति की, इनके पठन-पाठन तथा शोधकार्यों में इन्हें सदा उत्साहित किया तथा इनकी विद्वत्ता की प्रशंसा सदा दूसरों से भी करते रहे। **"मनीषी की लोकयात्रा"**[1] नामक पुस्तक में डा० वेनिस द्वारा कविराजजी को लिखित जो पत्र-व्यवहार प्रकाशित हुआ है उससे डा० वेनिस की विद्वत्ता, उदारता तथा गुण-ग्राहकता का पूर्णतया परिचय मिलता है।

डा० वेनिस की संस्कृत सेवा—डा० वेनिस संस्कृत विद्या की सर्वाङ्गीण उन्नति चाहते थे। उनका यह दृढ़ विचार था कि संस्कृत के पण्डितों को प्राचीन भारतीय पद्धति से शास्त्रों का गहन अभ्यास करने के साथ ही, नवीन पाश्चात्य शैली से अनुसंधान कार्य भी करना चाहिए। अपने इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए उन्होंने निम्नाङ्कित चार कार्यों का शुभारम्भ अपने जीवन काल में किया :—

---

१. डा० भगवतीप्रसाद सिंह : 'मनीषी की लोकयात्रा' प्रकाशक : विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, १९७८ ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) साधोलाल रिसर्च स्कालरशिप की स्थापना।

(२) सरस्वती भवन टेक्सट्स के प्रकाशन की योजना।

(३) सरस्वती-भवन स्टडीज के प्रकाशन की योजना।

(४) बनारस संस्कृत सीरीज तथा विजयानगरम् संस्कृत सीरीज का शुभारम्भ।

अपने विचारों को कार्यरूप में परिणत करने के लिए डा० वेनिस ने काशी के तत्कालीन रईस तथा धनाढ्य व्यक्ति राजा मुंशी माधोलाल से प्रार्थना कर अपने कालेज में माधोलाल रिसर्च स्कालरशिप की स्थापना की। इस स्कालरशिप का उद्देश्य यह था कि आचार्य की सर्वश्रेष्ठ परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् संस्कृत के जो छात्र अनुसंधान करना चाहें उन्हें यह छात्रवृत्ति प्रदान की जाय। डा० वेनिस इन शोध छात्रों की कक्षा को स्वयं लिया करते थे तथा उन्हें अभिलेख शास्त्र (एपिग्राफी), हिस्ट्री (इतिहास) तथा वेदान्तशास्त्र पढ़ाते थे।

डा० वेनिस का दूसरा कार्य सरस्वती भवन 'टेक्सट्' का प्रकाशन था। यह कहने की आवश्यता नहीं है कि 'सरस्वतीभवन' का ठोस पाषाण का बना हुआ जो दो मंजिला विशाल भवन है, उसे डा० वेनिस ने ही बनवाया था। इस पुस्तकालय में एक लाख से भी अधिक संस्कृत हस्तलिखित पुस्तकें विद्यमान हैं जिनमें से अनेक ग्रन्थ आज भी प्रकाश में आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इस पुस्तकालय में दुर्लभ तथा अलभ्य हस्तलिखित प्रतियाँ विराजमान हैं जिनकी संसार में केवल एक प्रति इस ग्रन्थागार में ही विद्यमान है। डा० वेनिस इन दुर्लभ पुस्तकों को प्रकाशित करके संस्कृत के विद्वानों के समक्ष उन्हें लाना चाहते थे जिससे संस्कृत भाषा के अक्षय भाण्डार का पता लोगों को चल सके। इसलिए दुर्लभ पुस्तकों के प्रकाशन के लिए इन्होंने 'सरस्वती भवन टेक्सट्स' ग्रन्थमाला की स्थापना की योजना तैयार की थी।

डा० वेनिस का तीसरा प्रयास 'सरस्वती भवन स्टडीज' के प्रकाशन की योजना था। वे चाहते थे अनुसंधान में लगे छात्रों के शोध प्रबन्धों का प्रकाशन इस ग्रन्थमाला के द्वारा किया जाय। इन दोनों ग्रन्थमालाओं में अनेक पुस्तकों का प्रकाशन हुआ जिनमें से अनेक अलभ्य थीं। इनमें से 'सरस्वती भवन टेक्सट्स' ग्रन्थमाला का प्रकाशन आज भी चालू है जिसमें सैकड़ों अमूल्य ग्रन्थ अब तक छप चुके हैं।

डा० वेनिस ने स्वयं तो संस्कृत विद्या की सेवा की ही, इन्होंने अनेक धनीमानी व्यक्तियों को इस कार्य के लिए प्रेरित तथा प्रोत्साहित किया। 'साधोलाल रिसर्च स्कालर' की चर्चा पहिले की जा चुकी है। इसके अतिरिक्त डा० वेनिस ने काशी के महाराजा विजयानगरम् से प्रार्थना कर उनको 'विजयानगरम् संस्कृत सीरीज' नामक ग्रन्थमाला प्रकाशित करने की प्रेरणा प्रदान की। महाराजा ने सन् १८९० ई० में अपने विपुल धन से इस 'सीरीज' में अनेक दुर्लभ ग्रन्थों का प्रकाशन कर सुरभारती के भाण्डार को भरने की कृपा की। इसके अतिरिक्त इन्हीं की प्रेरणा से 'काशी संस्कृत सीरीज' नामक ग्रन्थमाला का अभ्युदय सत्पन्न हुआ। सन् १८९३ ई० में "चौखम्भा संस्कृत सीरीज"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामक नवीन ग्रन्थमाला के प्रादुर्भाव होने में डा० वेनिस की प्रेरणा तथा प्रोत्साहन ही प्रधान कारण था। इस प्रकार डा० वेनिस ने अनेक प्राचीन ग्रन्थों का पुनरुद्धार करने में अपना महनीय योगदान किया।

डा० आर्थर वेनिस ने गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज, बनारस की लगातार तीस वर्षो तक सेवा की। ये सन् १८८८ ई० से लेकर १९१८ ई० तक इस कालेज में प्राध्यापक तथा प्रिन्सिपल के महनीय पद पर कार्य करते रहे। संभवतः इतने दीर्घ काल तक—तीस वर्षों तक—किसी भी यूरोपीय अथवा भारतीय प्रिन्सिपल ने इस कालेज की सेवा नहीं की।

डा० वेनिस की प्रिन्सिपली का काल इस कालेज का अत्यन्त उत्कर्ष काल माना जाता है। इस कालेज में उस समय भारत-प्रसिद्ध विद्वानों के प्राध्यापक होने के अतिरिक्त, इस कालेज की इस अवधि में सर्वाङ्गीण उन्नति हुई। डा० वेनिस के पहिले संस्कृत की अलभ्य पुस्तकों को एकत्र स्थापित करने के लिए भवन नहीं था। डा० वेनिस ने 'सरस्वती भवन' का निर्माण करा कर इन पुस्तकों के लिए एक सुन्दर भवन प्रदान किया।

डा० वेनिस इस कालेज के अन्तिम अंग्रेज प्रिन्सिपल थे। ये संस्कृत विद्या तथा भारतीय संस्कृति के परम अनुरागी थे। अतः संस्कृत के प्रति इनकी सेवाओं को कभी भुलाया नहीं जा सकता।

(६) **डा० गङ्गानाथ झा** (१९१८–१९२३ ई०)

(७) **पण्डित गोपीनाथ कविराज** (१९२३–१९३७ ई०)

डा० वेनिस के अनन्तर **डा० गङ्गानाथ झा** संस्कृत कालेज के अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित किये गये। उन्होंने केवल पाँच वर्षों तक (१९१८–१९२३ ई०) अध्यक्ष के पद को सुशोभित किया। उस समय पण्डित गोपीनाथ कविराज सरस्वती भवन पुस्तकालय के अध्यक्ष थे। दोनों विद्वान् संस्कृत विद्या के उत्थान के लिए कृतसंकल्प थे। गङ्गानाथ झा संस्कृत कालेज के प्रथम भारतीय प्रिन्सिपल थे। कविराज जी उनके अनन्तर द्वितीय भारतीय प्रिन्सिपल बने तथा १९२३ ई०-१९३७ ई० तक अपने पद का उत्तरदायित्व बड़ी योग्यता तथा सावधानी से सँभाला। दोनों विद्वानों ने मिलकर १९२० ई० में 'सरस्वती भवन ग्रन्थमाला' तथा 'सरस्वतीभवनानुशीलन पत्रिका' (अंग्रेजी) का बड़े समारोह से आरम्भ किया जो आगे डा० मंगलदेव शास्त्री के कार्यकाल में भी सुचारु रूप से चलता रहा।

अनुसंधान छात्रवृत्ति की व्यवस्था डा० वेनिस ने प्रथमतः की। राजा मुंशी माधो लाल को १९०५ ई० में प्रेरित कर चार हजार रुपयों की एक द्रव्यराशि स्थापित की गई जिससे **'साधोलाल छात्रवृत्ति'** देने की व्यवस्था उस समय की गई थी। १९२० ई० में डा० गङ्गानाथ झा ने 'पोस्ट आचार्य' नामक छः छात्रवृत्तियों की स्थापना की। इन दोनों वृत्तियों की सहायता से अनेक छात्रों ने आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण होने के उपरान्त नवीन शास्त्रीय विषयों का अध्ययन तथा अनुशीलन किया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० गंगानाथ झा के अनन्तर म० म० पण्डित गोपीनाथ कविराज संस्कृत कालेज के अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित किये गये। उनके समय मे विद्यालय की विशेष उन्नति हुई। उन्होंने १४ वर्षों तक (१९२३ ई० १९३७ ई०) बड़ी योग्यता के साथ अपने गम्भीर उत्तरदायित्वपूर्ण पद का संचालन किया। डा० गङ्गानाथ झा के द्वारा संचालित कार्यों के संचालन में कविराज जी ने किसी प्रकार की त्रुटि नहीं की। उनके समय में शोधकार्य तथा ग्रन्थ प्रकाशन का कार्य बड़ी तेजी से आगे बढ़ता गया। परन्तु स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण उन्होंने समय से पहिले ही अवकाश ग्रहण कर लिया (१९३७ ई० में) और सेवामुक्त होकर वे अध्यात्म के चिन्तन तथा अनुशीलन में अपना समय बिताने लगे।

(८) डा० मङ्गलदेव शास्त्री

पण्डित गोपीनाथ कविराज १९३७ ई० में अपने समय से पहिले ही अध्यक्ष पद से निवृत्त हो गये। तदनन्तर डा० मंगलदेव शास्त्री विद्यालय के अध्यक्ष बने। साथ ही साथ ये संस्कृत परीक्षाओं के परीक्षाधिकारी रजिस्ट्रार भी थे। डा० साहब ने बी० ए० की परीक्षा हिन्दू विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण की थी। अनन्तर पंजाब विश्वविद्यालय में डा० ऊलनर के छात्र रूप में एम० ए० परीक्षा पास की तथा सरकारी छात्रवृत्ति प्राप्त कर वे आक्सफोर्ड में अनुसंधान कार्य के लिए चले गये। वहीं से ऋक्प्रातिशाख्य का अनुसंधान तथा अनुशीलन कर डी० फिल० की उपाधि प्राप्त की। ऋक्प्रातिशाख्य के मूल का विमर्शात्मक संस्करण तथा अंग्रेजी अनुवाद उनकी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं। संस्कृत में श्लोक रचना भी वे बड़ी निपुणता से करते थे। उनके कार्यकाल में संस्कृत कालेज की विशेष उन्नति हुई।

उत्तर प्रदेश के बदायूँ जिले में इनका १९८० ई० में जन्म हुआ था। आक्सफोर्ड से लौटने पर ये संस्कृत कालेज के अन्तर्गत 'सरस्वती भवन' पुस्तकालय के अध्यक्ष नियुक्त किये। अनन्तर कविराज जी के सेवानिवृत्त होने पर कालेज के प्रिंसिपल हुए (१९३७ ई०)। बाद में कालेज जब 'वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय' में परिणत हुआ, तब कुछ समय तक उसके कुलपति भी रहे। वैदिक प्रातिशाख्य, वैदिक संस्कृति एवं भाषाविज्ञान के ऊपर निर्मित इनके ग्रन्थ बड़े ही उपयोगी तथा ज्ञानवर्धक हैं। भाषाविज्ञान के अतिरिक्त आपने वैदिक साहित्य में स्थान-स्थान पर उदात्त मानवीय गुणों के सम्बन्ध में प्रायः होने वाली सूक्तियों का बड़े अध्यवसाय से संकलन किया है। मुख्य ग्रन्थ—हिन्दी, **भाषाविज्ञान** (१९२६ ई०), **भारतीय संस्कृति का विकास—वैदिक धारा** (१९५६ ई०)। संस्कृत-संपादित **'ऋग्वेद-प्रातिशाख्य'** (तीन भाग, १९३१ ई०) **रश्मिमाला** (१९५४ ई०) तथा **सूक्ति-सप्तशती** (उदात्त संस्कृत सूक्तियों का कमनीय संग्रह, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली से प्रकाशित)।

डा० सम्पूर्णानन्द की प्रेरणा तथा श्लाघनीय उद्योग के कारण संस्कृत कालेज संस्कृत विश्वविद्यालय के रूप में परिणत हो गया। यह घटना १९५८ ई० में हुई। तबसे इसका

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्युदय दिन-प्रतिदिन हो रहा है। इस विश्वविद्यालय के अभ्युत्थान में दो कुलपतियों का अध्यवसाय विशेष उल्लेखनीय है। इनमें से एक हैं डा० आदित्यनाथ झा, जो इसके प्रथम व्यवस्थापक हैं तथा दूसरे हैं पण्डित सुरतिनारायणमणि त्रिपाठी, जिन्होंने महान् उत्साह, नैसर्गिक निष्ठा तथा अदम्य शासनिक दक्षता से इसे सुचारु रूप से परिचालित किया। इन दोनों कुलपतियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

(१) डा० आदित्यनाथ झा

डा० आदित्यनाथ झा आई० सी० एस०, गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस के प्रिंसिपल तथा बाद में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वाइसचांसलर, स्वनाम-धन्य, डा० सर गंगानाथ झा के पाँचवें तथा कनिष्ठ पुत्र थे। ये बड़े ही तीक्ष्ण-बुद्धि व्यक्ति थे। इन्होंने आई० सी० एस० जैसी कठिन परीक्षा में सम्मानजनक उत्तीर्णता प्राप्त की थी तथा उत्तर प्रदेश में शासकीय सेवा में नियुक्त हो गये थे। जब सन् १९५८ ई० में डा० सम्पूर्णानन्द जी की प्रेरणा तथा प्रयास से गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, संस्कृत विश्वविद्यालय के रूप मे परिणत कर दिया गया, तब आप उत्तर प्रदेश सरकार के चीफ सेक्रेटरी (मुख्य सचिव) के पद पर सुस्थित थे। उस समय संस्कृत विश्वविद्यालय को एक ऐसे कुलपति की आवश्यकता थी जो संस्कृत का विद्वान् होते हुए भी एक कुशल प्रशासक भी हो। अतः आपकी नियुक्ति इस विश्वविद्यालय के प्रथम कुलपति के रूप में हुई।

आपके कुलपतित्व काल में इस विश्वविद्यालय की सर्वाङ्गीण उन्नति हुई। आप स्वयं उत्तर प्रदेश सरकार के चीफ सेक्रेटरी रह चुके थे। अतः कुलपति के रूप में आप जो भी आर्थिक योजना सरकार के पास भेजते थे वह सदा स्वीकृत हो जाती थी। अतः इनके काल में संस्कृत विश्वविद्यालय को प्रचुर आर्थिक अनुदान (ग्राण्ट) प्राप्त हुआ। आपने अनेक नये-नये विभागों की यहाँ स्थापना की तथा उसके संचालन के लिए प्रचुर धनराशि प्राप्त की। आपके समय में अनेक नवीन छात्रावासों के निर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ। आपके प्रयास से आल इण्डिया ओरिएण्टल कानफरेन्स का अधिवेशन इसी विश्वविद्यालय में हुआ था जिसका संचालन आपने बड़ी योग्यता से किया था। उस कान्फरेन्स की स्वागत समिति के आप सभापति थे। उस समय सरल, सुबोध, काव्यमय संस्कृत गद्य में जो भाषण आपने दिया था वह आपकी अगाध संस्कृत विद्वत्ता का परिचायक था।

डा० आदित्यनाथ झा को संस्कृत विद्या अपने पूजनीय पिता डा० गंगानाथ झा से रिक्थ के रूप में प्राप्त हुई थी और शासन का गुण आपको अपनी प्रतिभा के प्रसाद के रूप में प्राप्त हुआ था। ऐसी दशा में एक कुलपति में शासन तथा विद्वत्ता के जो दो गुण अपेक्षित हैं, वे दोनों ही आपमें प्रचुर मात्रा में विद्यमान थे। आपके पद ग्रहण से पहिले संस्कृत विश्वविद्यालय का कोई एक परिसर नहीं था। वह दो स्थानों में विभक्त था। डा० झा ने इन दोनों स्थानों को एक में मिलाकर विश्वविद्यालय को एक संयुक्त

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिसर (कैम्पस) प्रदान किया। इसके चारों ओर चहारदीवारी बनाने का आयोजन किया और संग्रहालय का भी सूत्रपात किया। कहने का आशय है, इस विश्वविद्यालय के प्रारम्भिक काल में जैसे सुयोग्य तथा विद्वान् कुलपति की आवश्यकता थी, झा साहब उसके सर्वथा अनुकूल थे। परन्तु दुःख यही है कि वे अधिक वर्षों तक इस पद को सुशोभित नहीं कर सके और सरकार ने इन्हें पुनः प्रशासनिक सेवा में वापस बुला लिया। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में ये दिल्ली के उप-राज्यपाल (लेफ्टिनेण्ट गवर्नर) के पद को अलंकृत कर रहे थे। परन्तु स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण इस पद से अवकाश प्राप्त करने के पहिले ही इनका असामयिक निधन हो गया।

(२) पं० सुरतिनारायणमणि त्रिपाठी

पं० सुरतिनारायणमणि त्रिपाठी आई० ए० एस० संस्कृत विश्वविद्यालय के दूसरे कुलपति थे जिनमें शासन और विद्वत्ता का मणि-काञ्चन योग पाया जाता है। यदि डा० आदित्यनाथ झा ने इस विश्वविद्यालयरूपी वृक्ष की जड़ों को सुदृढ़ तथा मजबूत किया तो उसे पल्लवित और पुष्पित करने का श्रेय त्रिपाठी जी को प्राप्त है। आपके काल में इस विश्वविद्यालय ने चतुरंगीण समुन्नति प्राप्त की जिसका उल्लेख आगे किया जाएगा।

त्रिपाठी जी ने अपना जीवन वकील (अभिवक्ता) के रूप में प्रारम्भ किया था। परन्तु इस काल से ही समाज-सेवा की धुन इनमें इतनी पक्की थी कि जब सन् १९२०-२१ ई० में सुप्रसिद्ध चौराचौरी काण्ड हुआ था जिसके फलस्वरूप लगभग १७० व्यक्तियों को फाँसी की सजा हो गयी थी, तब त्रिपाठी जी ने ही इन अभियुक्तों के मामले को लेकर महामना मालवीय जी से हाईकोर्ट में इन अभियुक्तों की ओर से वकालत करने की प्रार्थना की और मालवीय जी की अकाट्य दलीलों और अद्भुत वचन चातुरी तथा गम्भीर कानूनी ज्ञान के कारण एक सौ से भी अधिक व्यक्तियों को फाँसी की सजा से मुक्ति मिल गयी और वे बेदाग छोड़ दिये गये। यह थी त्रिपाठी जी की सामाजिक सेवा और लगन।

त्रिपाठी जी बाद में पी० सी० एस० की परीक्षा उत्तीर्ण कर प्रशासनिक सेवा में चले आये और उन्नति करते-करते आई० ए० एस० ग्रेड को भी सुशोभित करने लगे। प्रशासनिक सेवा से अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् त्रिपाठी जी लोक-सेवा-आयोग, उत्तर प्रदेश के अनेक वर्षों तक सदस्य भी रहे।

सन् १९६३ ई० में आपकी नियुक्ति संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति के पद पर हुई और चार वर्षों तक (१९६६ ई० तक) कुलपति रहे। इनके कुलपतित्व के काल में विश्वविद्यालय में अनेकानेक नये विभागों की सृष्टि हुई। तंत्र तथा योगशास्त्र एवं प्राचीन राजनीति शास्त्र विभाग आपके ही समय में खोले गये थे। इसमें प्रथम पद पर महामहोपाध्याय डा० गोपीनाथ कविराज तथा द्वितीय पद पर पण्डित राजराजेश्वर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्री द्राविड़ को सम्मानपूर्वक आमंत्रित किया गया था। त्रिपाठी जी बड़े ही गुण-ग्राही व्यक्ति थे। ये सुयोग्य विद्वानों को चुन-चुनकर अपने विश्वविद्यालय में लाया करते थे। यहाँ पुराण तथा इतिहास विभाग में प्रोफेसर का पद बहुत दिनों से खाली पड़ा था। त्रिपाठी जी ने आचार्य बलदेव उपाध्याय को सादर निमंत्रित कर इस पद पर कार्य करने का निवेदन किया। इतना ही नहीं, जब इस विश्वविद्यालय में संस्कृत शोध संस्थान के निदेशक का पद रिक्त हुआ तब भी किसी योग्य व्यक्ति के अभाव में पुनः त्रिपाठी ने आचार्य बलदेव उपाध्याय से इस पद के कार्यभार को सँभालने का आग्रह किया। यह थी त्रिपाठी जी की गुण-ग्राहकता। इन्होंने अनेक सुप्रसिद्ध विद्वानों को सादर बुलाकर अपनी संस्था को गौरवान्वित करने की चेष्टा की। आजकल संस्कृत विश्वविद्यालय जो कुछ भी पुष्पित और पल्लवित दिखाई पड़ता है उसका अधिकांश श्रेय पंडित सुरतिनारायणमणि त्रिपाठी को प्राप्त है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन प्रमाण-पत्र

श्रीः

ओझोपनामकठाकुरशर्मा पण्डितवरयागेश्वरशर्मणो भ्रातुष्पुत्रः सप्तषष्ट्यधिकाष्टादशशततमे खीष्टशके काशीस्थराजकीयपाठशालायां पठनार्थं प्रविष्टो रघुवंशकुमारसम्भवकिरातार्जुनीयमाघनैषधादीनि काव्यानि सिद्धान्तकौमुदीमनोरमाशब्दरत्नपरिभाषेन्दुशेखरादीन् व्याकरणग्रन्थान् लीलावत्यादिकतिपयज्योतिषग्रन्थांश्चाधीत्याधीतग्रन्थेषु दत्तसम्यक्परीक्षः साम्प्रतमयमधीतग्रन्थाध्यापनादिपाण्डित्यकार्यनिर्वहणक्षमः संपन्न इति निश्चिन्वन्ति।

We certify that Pandit Thákura Ojhá the nephew of the great Pandit Yágeśvara Sharmá; with a desire of reading entered the Sanskrit College Benares 1867. Here, he read, in Poetry, the Raghuvansá, Kumárásambhava, Kirátárjuníya, Mágha, Naishadha and so forth; in Grammar, Siddhánta-Kaumudí, Manoramá, Śabdaratna, Paribháshendusékhara and others; and a few astronomical works as Lílavatí and so on. He has passed a good examination in the works which he has read. He is, now, qualified to discharge the duties of a Pandit viz. the teaching of the works he has read and others.

बालशास्त्री
बाबूदेवशास्त्री।
देवकृष्णशर्म्मा
रामनाचार्याः
द्विवेदपण्डितवस्तीरामशर्म्मा
पं. वेङ्कटेशशर्म्मा
शिवकुमारशर्म्मा
प. शीतलाप्रसादत्रिपाठी
कैलासचन्द्रशर्म्मा
रामनिश्रशास्त्री

कालीप्रसादशर्म्मा

Archibald E. Gough
Offg Principal

Benares College
August 4. 1876.

आज से १०० वर्ष पूर्व संस्कृत कालेज के प्रमाण-पत्र का एक नमूना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ५

काशिराज का इतिहास तथा संस्कृत सेवा

वर्तमान काशिराज वंश की स्थापना आज से लगभग ढाई सौ वर्ष पूर्व हुई थी। यह गौतम गोत्री भूमिहार ब्राह्मण वंश है। गौतम ऋषि के वंश में कृष्णमिश्र नामक एक तपस्वी ब्राह्मण हुए। सुनते हैं[1] कि इनकी दो पत्नियाँ थीं जिनसे एक-एक पुत्र उत्पन्न हुआ—देव शर्मा तथा राम शर्मा। इस वंश का मूल आवास स्थान दातृपुर नामक ग्राम था जिसका आज-कल नाम 'दतरिया' है और जो काशी से पश्चिम लगभग दस कोस पर स्थित 'गंगापुर' नामक प्रसिद्ध गाँव के निकट ही है। जेठे पुत्र **देवशर्मा** शास्त्र-धर्म का अवलम्बन कर मूल स्थान छोड़ कर कहीं अन्यत्र चले गये, परन्तु कनिष्ठ पुत्र **राम शर्मा** दातृपुर में ही रहकर शास्त्र तथा शस्त्र दोनों से सम्पन्न होकर म्लेच्छ द्वारा उत्पीड़ित आस-पास के भूमिखण्ड पर विधिवत् शासन करने लगे। रामशर्मा का वंश धीरे-धीरे बहुत विस्तृत हो चला। इस बढ़े हुए वंश की दूर परम्परा में **मनुरञ्जन** नामक एक प्रतापशाली व्यक्ति हुए जिनके चार पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र **मनसाराम** ने इस राजवंश के संस्थापक एवं प्रभावशाली शासक होने का महनीय गौरव प्राप्त किया। इनके तीनों अनुजों—दशाराम, दयाराम एवं मायाराम ने अपने अग्रज मनसाराम के सहायक तथा अनुगामी बनकर उनके शासन को सुस्थिर तथा दृढ़ करने में अपनी समस्त शक्ति का उपयोग किया।

राजा मनसाराय

राजा मनसाराम बड़े ही शौर्य-सम्पन्न तथा अनुशासन-प्रिय पुरुष थे। यवनों के शासन के अन्तिम काल में डाकुओं के द्वारा प्रजा बड़ी ही दुःखित थी, जीवन असुरक्षित था, जान तथा माल दोनों पर चोट करने वाले डाकुओं का टोटा नहीं था। मनसाराम ने अपनी शूरता, वीरता तथा युक्तिप्रियता के सहारे इन अराजक तत्त्वों के ऊपर अपना प्रभाव जमाया। उन्हें छिन्न-भिन्न कर अपना शासन दृढ़ किया और एक नवीन राजवंश की स्थापना का गौरव तथा श्रेय भी प्राप्त किया।

महाराजा बलवन्त सिंह

मनसाराम की नन्दकुमारी नामक धर्मपत्नी के गर्भ से **बरिबंड सिंह** या बलवन्त

---

१. काशिराज के आरम्भिक काल का यह वर्णन राजा चेत सिंह के सभापण्डित बलभद्र कविरचित 'चेतसिंह विलास' के आधार पर है। इस अमुद्रित ग्रन्थ के लिए द्रष्टव्य—विद्यामन्दिर पत्रिका (१९७६ ई०) पृ० २०–२२, रामनगर दुर्ग से प्रकाशित।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिंह का जन्म हुआ। ये अपने पिता से भी अधिक प्रभावशाली व्यक्ति हुए और पिता के द्वारा जीते गये भूखण्ड को इन्होंने और बढ़ाया, राज्य का पूरा विस्तार किया और गंगापुर से हटकर रामनगर को अपनी राजधानी बनाया। रामनगर के वर्तमान दुर्ग के बनाने वाले शासक महाराजा बलवन्त सिंह बहादुर ही थे। इस दुर्ग या किले के बनाने का समय १७४० ई० के आस-पास है। किले के पश्चिम ओर महाराजा ने भगवान् शंकर का मन्दिर बनवा कर उसमें शिवलिंग की स्थापना की है। इस मन्दिर के द्वार पर अंकित ये दो श्लोक उपलब्ध होते हैं—

श्रीमत् गौतमवंश-भूषणमणिस्त्रैलोक्यरक्षामणिः
स्त्रीणां कान्तमणिर्वनीयकजन-प्रख्यात-चिन्तामणिः ।
पौत्रः श्रीमनरञ्जनस्य मनसारोमात्मजः श्रीयुतो
वीरः श्रीबरिबंडसिंहनृपतिर्वर्वर्ति सर्वोपरि ॥
यश्चतुर्दिक्षु काशीतः सौराज्यं कुरुतेतराम् ।
मान्धातेव धराधीशो येन राजन्वती मही ॥
सं० १७९९ १७४२ ई०

इस शिलालेख से महाराज के वंश, पिता-पितामह तथा शासन क्षेत्र का निःसंदिग्ध संकेत मिलता है। राजा बलवन्त सिंह के जीवनचरित तथा शासनकाल का विवरण देने वाला ग्रन्थ उर्दू में निबद्ध **बलवन्त नामा** है। उसका अध्ययन इनके विषय में पूरी जानकारी के लिए नितान्त आवश्यक है। यह **बलवन्त नामा** महाराजा काशीनरेश के पुस्तकालय में उपलब्ध है। रामनगर किला के लिए मुहूर्त शोधन करने वाले प्रवीण फलितदैवज्ञ का नाम **पण्डित परमानन्द पाठक** था। ये बलवन्त सिंह की सभा के सर्व-श्रेष्ठ विद्वान् एवं गणक थे। फलित ज्योतिष के विषय में इन्होंने **प्रश्न-माणिक्यमाला** नामक ग्रन्थ की रचना की है जिसका विशेष विवरण आगे दिया जावेगा।

निष्कर्ष यह है कि महाराजा बलवन्त सिंह शौर्यसम्पन्न शासक होने के अतिरिक्त धर्मानुरागी व्यक्ति थे। गंगा की प्रबल तीव्र धारा से सर्वदा टकराने पर भी अपनी अडिग स्थिति बनाये रखनेवाला यह किला राजा बलवन्त सिंह के वास्तु-निर्माण-कौशल का भी पूरा परिचायक है। उनकी सभा में सरस्वती के सेवकों का आदर होता था। 'बलवन्तनामा' का पूरा अनुशीलन करने पर ही उनकी साहित्य सेवा का पूरा अंकन किया जा सकता है। इतना तो कहा ही जा सकता है कि **'प्रश्न-माणिक्यमाला'** के लेखक **पण्डित परमानन्द पाठक** को अपना प्रधान पण्डित बनाकर महाराजा ने अपनी गुणग्राहिता का पूरा परिचय दिया। महाराजा की दो पत्नियाँ थीं। 'पतिप्राणा' नामक पत्नी से दो पुत्र उत्पन्न हुए—चेतसिंह और सुजानसिंह। दूसरी पत्नी से एकमात्र कन्या उत्पन्न हुई, जो दरभंगा में नरहन नामक रियासत के स्वामी को ब्याही गई थी। बलवन्त सिंह की मृत्यु १७७० ई० में हुई।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रानी का नाम चेतसिंह विलास के आधार पर ऊपर दिया गया है। इतिहास के ग्रन्थों में ये नाम भिन्न प्रकार से मिलते हैं। बनारसीलाल पाण्डेय 'आर्य' द्वारा प्रणीत 'महाराजा बलवन्त सिंह' नामक ग्रन्थ[1] में पहिली रानी का नाम गुलाब कुँवर तथा दूसरी रानी का नाम पन्ना कुँवर दिया गया है (पृष्ठ २८-३२)। पहिली रानी पिंडरा के बाबू बरियार सिंह की कन्या तथा दूसरी रानी डोमी के रघुवंशी क्षत्रिय भीम सिंह की कन्या बताई गई हैं। दूसरी रानी से राजा चेतसिंह का जन्म हुआ था।

काशीनरेश के राज्याश्रित कवि-गण

राजा बलवन्त सिंह के आश्रित दरबारी कवि **रघुनाथ** थे। काशी के राजा सदा से संस्कृत के विद्वानों तथा हिन्दी के कवियों के आश्रयदाता रहे हैं। अनेक कवि इन राजाओं के दरबार को सुशोभित करते रहते थे। कवि रघुनाथ बन्दीजन (भाट) थे और प्रसिद्ध कवि थे।

रघुनाथ कवि

ठाकुर शिवसिंह ने अपने सरोज में इनके चार ग्रन्थों का उल्लेख किया है : **'काव्य-कलाधर'**, **'रसिक मोहन'**, **'जगत मोहन'** और **'इश्क-महोत्सव'**। इनका कविताकाल सं० १७९० (१७३३ ई०) से सं० १८१० (१७५३ ई०) समझना चाहिए।[2] नागरी प्रचारिणी से प्रकाशित 'हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवेचन'[3] के द्वितीय खण्ड में 'इश्क महोत्सव' का नाम नहीं है। अन्य तीन ग्रन्थों का नाम इस प्रकार है— **जगत-विमोहन, दूषण दूषण** तथा **बालगोपाल-चरित्र**। इनके ये छहों ग्रन्थ पद्यात्मक बताये गये हैं। कतिपय ग्रन्थों का विषय उनके नाम से ही प्रकट होता है।

इनके सुपुत्र गोकुलनाथ ने अपने पिता के समान ही कवित्व-शक्ति प्राप्त की थी। इन्होंने चेतसिंह की प्रशस्ति में लिखे गये अपने ग्रन्थ **चेतचन्द्रिका** में राजा बलवन्त सिंह की उदारता का परिचय इन दोहों में किया है :

आदर करि बरिबण्ड नृप, राख्यो कवि रघुनाथ।
दै हय गज रथ पालकी, दीन्हें अगनित गाथ॥
दियो ग्राम चौरा तिन्हें, सुरसरिता के तीर।
सुरसरिता सी बसत जहँ सकति सुमति की भीर॥

---

१. 'महाराजा बलवन्त सिंह और काशी का अतीत, प्रकाशक बनारसी लाल पाण्डेय, 'आर्य', गुरुबाग, लक्सा, वाराणसी, सन् १९७५।
२. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १५वाँ संस्करण, पृ० २७५)।
३. प्रकाशनकाल सं० २०२१ विक्रमी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे स्पष्ट है कि राजा बलवन्त सिंहजी ने अपने आश्रित कवि **रघुनाथ** को गंगा के तीर पर स्थित चौरा नामक ग्राम दिया था। राजा साहब मुसलमान सन्तों को भी आश्रय देते थे। उस युग के मशहूर फकीर फारस के **शेख अली-हजी** को आपने काशी में रहने के लिए स्थान तथा आश्रय प्रदान किया था। ये शेख साहब मूलतः ईरान के निवासी थे। ये नादिरशाह के भय से भागकर दिल्ली आये थे। वहाँ की अशान्ति से ऊबकर वे काशी आये। यहाँ शान्तिमय वातावरण में निवास करते थे। इन्होंने काशी की प्रशंसा में फारसी में शेर लिखा है। राजा बलवन्त सिंह इनका बड़ा आदर और सम्मान करते थे। उनकी मजार आज भी काशी में विद्यमान है। शाह साहब को आश्रय देने से स्पष्ट है कि बलवन्त सिंह बड़े ही उदार एवं सब धर्मों के आश्रयदाता नरेश थे। सनातनधर्मी हिन्दू राजा के लिए यह बड़े ही गौरव की बात है।

महाराजा चेतसिंह

काशी के राजाओं में महाराजा चेत सिंह का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। भारत में ब्रिटिश शासन के इतिहास से परिचित कौन ऐसा व्यक्ति होगा जिसने चेत सिंह का नाम न सुना हो। ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के शासन के प्रारम्भिक काल में प्रथम ब्रिटिश गवर्नर जनरल लार्ड वारेन हेस्टिंग्स (१७७४ ई०–१७८५ ई०) से इन्होंने लोहा लिया था। हेस्टिंग्स ने काशी पर आक्रमण तो कर दिया परन्तु काशी की समस्त जनता ने चेत सिंह के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया और इस प्रकार उसे लेने के देने पड़ गये। उस समय वारेन हेस्टिंग्स इतना भयभीत और घबरा गया था और इतनी हड़बड़ी में यहाँ से भागा कि इस घटना से सम्बद्ध यह कहावत आज भी प्रचलित है :—

"घोड़ा पर हौदा, और हाथी पर जीन।
रातों रात भाग गया वारेन हेस्टीन॥"

यदि यह अंग्रेज शासक भाग न गया होता, तो उसकी जान की भी आफत आ जाती और भारत का इतिहास ही कुछ बदल गया होता।

महाराजा चेत सिंह ने सन् १७७० ई० से १७८१ ई० अर्थात् केवल १० वर्षों तक राज्य किया। इसी अल्पकाल में इन्होंने अपने पराक्रम तथा वीरता का जो परिचय दिया वह भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है।

महाराजा चेत सिंह के जीवन का ऐतिहासिक पक्ष अत्यन्त उजागर है जिसे सभी इतिहास के विद्यार्थी जानते हैं। परन्तु इनके जीवन का धार्मिक पक्ष तथा साहित्य संवर्धन पक्ष सर्वसाधारण लोगों को विदित नहीं है। इन पक्षों का द्योतक साधन **'चेत सिंह विलास'** काव्य के रूप में अभी उपलब्ध हुआ है। इसका प्रणयन इन्हीं राजा के दरबारी कवि श्री बलभद्र ने किया था। इस काव्य में नाना छन्दों में ११६६ पद्य हैं। इसमें कवि ने चेत सिंह के दादा मनसाराम और पिता बलवन्त सिंह का परिचय देने के पश्चात् महाराजा चेत सिंह के जीवन का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। इसमें चेत सिंह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के दरबार के प्रधान विद्वानों तथा पण्डितों के नामों का भी उल्लेख किया गया है जिनमें प्रधान निम्न थे—ज्योतिषी **रंगनाथ**, पुरोहित **देवभद्र**, कविवर **रघुनाथ कवि** के पुत्र **गोकुलनाथ** चेतसिंह के गुरु का नाम **भोलानाथ मिश्र** था जिन्होंने इन्हें साहित्य में दीक्षित किया था। इन्होंने ही चेत सिंह का राज्याभिषेक भी कराया था। पण्डित भोलानाथ मिश्र ने ही चेत सिंह को शिक्षित तथा विनीत बनाया, इसकी सूचना निम्न श्लोक से स्पष्ट मिलती है :

"विद्या-विनय-दाक्षिण्य-क्रिया-प्रागल्भ्यशालिना।
भोलानाथेन मिश्रेण चेतसिंहो व्यनीयत॥"

राजा चेत सिंह के राज्यारोहण का संकेत इस पद्य में बड़ी ही सुन्दर भाषा में किया गया है :

"बलवति बलिवन्द्ये बालशीतांशुमौलि,
प्रविशति जगतः श्री सानुरागान् कटाक्षान्।
दरविकसितपद्मश्रेणिदम्भेन चक्रे,
शरदमलपटीका चेतसिंहे नृसिंहे॥"

चेत सिंह ने राजगद्दी पर बैठने के पश्चात् काशी की पंचक्रोशी की यात्रा की थी। इस यात्रा में अनेक मंदिरों का इन्होंने दर्शन किया। अपने गाँव ये गंगापुर भी गये थे जहाँ पर स्थित सागर (जलाशय) का सुन्दर वर्णन 'चेतसिंह विलास' में इस प्रकार पाया जाता है।

"अदूर-गंगापुर-सुन्दरीक्षणैरगाधतोयानतिपंकजोऽपि यः,
प्रभूतविद्याकरतां विगाहते प्रगे प्रगे स्नानविधौ प्रसंगिणी।
कियन्ति रत्नानि यदङ्कसंगता बुधाः प्रतिष्ठासमये न लेभिरे;
यशः सुधांशुर्वलिवन्द्य-भूपतेर्यतः स दृष्टः शिवसागरोऽमुना॥"

इस ग्रन्थ में घटनाओं की तिथि तथा मास तो दिया गया है, परन्तु सन्-संवत् का कहीं भी उल्लेख नहीं है। अतः इतिहास की दृष्टि से यह ग्रन्थ विशेष मूल्यवान् न होते हुए भी साहित्य की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है। यह ग्रन्थ वर्तमान काशीनरेश के पुस्तकालय में अपूर्ण हस्तलिखित प्रति के रूप में सुरक्षित है जिसके प्रकाशन की अत्यन्त अपेक्षा है।[1]

महाराजा महीपनारायण सिंह

महीपनारायणसिंह राजा चेतसिंह के अपदस्थ किये जाने के अनन्तर १७८१ ई० में काशीराज की गद्दी पर आरूढ़ हुए। ये महाराजा बरिबंडसिंह के दौहित्र थे। अभी राज्य में अस्तव्यस्तता विराजती थी जिसे इन्होंने बड़ी बुद्धिमत्ता से दूर किया। काशिराज-

१. 'चेतसिंह विलास' के विस्तृत विवरण के लिए देखिए—
'विद्या मंदिर पत्रिका' सन् १९७६ वार्षिकी)
दुर्ग रामनगर, वाराणसी, पृ० २०–३०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत-पाठशाला की स्थापना २१ मार्च १७९१ ई० में आपकी ही उदारता तथा विद्या-प्रेम की परिचायिका है। इसके लिए इन्होंने मिर्जापुर जिले में 'सतासी' नामक एक पूरा परगना ही दे डाला तथा वह भूमिखण्ड भी दे दिया जिसके ऊपर पाठशाला की भव्य इमारत खड़ी की गई जिसमें आजकल सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के अन्तर्गत नाना विभागों की कक्षाएँ चलती हैं तथा जो अपनी 'गाथिक' शैली की रचना के निमित्त नितान्त प्रसिद्ध है। इनके विषय में ब्रह्मदत्त कवि ने अपने **दीपप्रकाश** नामक अलंकार ग्रन्थ में यह प्रशस्ति लिखी है -

भाल विशाल सुभाग को शाली मनोवच काली के प्रेम परायन।
बुद्धि विचार अगार उदार सुसीलमैं संयत सूधे सुभायन॥
कंज से नैन कलानिधि सो मुख बाहु प्रलम्ब करौ कमलायन।
पायन पूजे किते पुहमीप भये कुलदीप महीप नारायन॥

इनके तीन पुत्र थे—(१) **उदित नारायण**, जो ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण राज्य के उत्तराधिकारी हुए; (२) **दीप नारायण**, मध्यम पुत्र जिनके आग्रह तथा अनुग्रह से ब्रह्मदत्त ने अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए उन्हीं के नाम पर 'दीपप्रकाश' नामक यह ग्रन्थ बनाया।

(३) **प्रसिद्धनारायण** (कनिष्ठ पुत्र)।

महाराजा उदितनारायण सिंह (सन् १७८३-१८३५ ई०)

महाराजा महीपनारायण सिंह के निधन (१७९६ ई०) के अनन्तर उन्हीं के सुपुत्र राजकुमार महाराजा उदितनारायण सिंह राजगद्दी पर बैठे। ये संस्कृत विद्या के प्रेमी, धर्मानुरागी तथा गो-ब्राह्मण-सेवक थे। इनके आश्रय में पनपने वाले पण्डितों में **बबुआ ज्योतिषी** की ख्याति सबसे अधिक थी। ये काशी के ही महाराष्ट्र ब्राह्मण थे। इनका वंश बड़ा ही प्रतिष्ठित था। ज्योतिष शास्त्र के समस्त विभागों के ये पारंगत पण्डित थे परन्तु फलित ज्योतिष में ही इनकी विशेष ख्याति थी। ये मुहूर्त के बहुत ही बड़े विद्वान् थे। मुहूर्त (यात्रा का उचित समय) बतलाने में इनकी इतनी प्रसिद्धि थी कि हिन्दू राजा और मुसलमान बादशाह दोनों ही समान रूप से इनके यहाँ मुहूर्त पूछने के लिए आया करते थे। ऐसी प्रसिद्धि है कि नेपाल के राजा को—जिन्हें ब्रिटिश सरकार ने पदच्युत कर दिया था—इन्होंने इतना शुभ मुहूर्त बतलाया था कि उसी मुहूर्त में वह अपने देश नेपाल गये। वहाँ जाने पर उनके ऊपर जितने प्रतिबन्ध ब्रिटिश सरकार ने लगाये थे वे सब उठा लिए गये और वे राजा अपने देश में शासक के रूप में सुखपूर्वक रहने लगे।

इसी प्रकार लखनऊ के नवाब आसफउद्दौला के पुत्र—जो वजीरअली के नाम से अधिक प्रसिद्ध था—को इन्होंने युद्ध का मुहूर्त दिया था। परन्तु वजीरअली ने शुभ मुहूर्त के पहिले ही अंग्रेजों से युद्ध छेड़ दिया। अतः युद्ध में वह पराजित हो गया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार से यह भी प्रसिद्धि है कि इन्होंने किसी यवन (मुसलमान) को यात्रा का शुभ मुहूर्त दिया था। उसने उसी मुहूर्त में प्रस्थान किया। परन्तु कुछ दूर जाने के बाद बीमार पड़ गया। कहीं यात्रा में मृत्यु न हो जाय इस डर से उसने चार रुपयों में एक खच्चर खरीदा और उसी पर चढ़ कर घर लौट आया। कुछ दिनों के बाद ज्योतिषी जी पर रोष प्रकट करते हुए उसने अपनी दुर्गति की गाथा कह सुनाई। ज्योतिषी जी ने उस मृत खच्चर की बची हुई काठी (चारजामा) को ही फाड़ने का आदेश दिया। परन्तु उस समय उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उस काठी के भीतर से दो सौ सुवर्ण मुद्राएँ (अशर्फियाँ) निकलीं। वह बबुआ ज्योतिषी के इस मुहूर्त से अत्यन्त प्रसन्न हुआ और दक्षिणा में इन्हें अनेक सुवर्ण मुद्राएँ दीं।

यह थी बबुआ ज्योतिषी के फलित ज्योतिष की करामात। सचमुच ज्योतिष का ऐसा गम्भीर विद्वान् आज मिलना अत्यन्त दुर्लभ है।

बबुआ ज्योतिषी के अनुज **पण्डित बालकृष्ण ज्योतिषी** थे। ये भी महाराजा के राज ज्योतिषी थे जो अपनी विद्या के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध थे। बबुआ ज्योतिषी के पुत्र पं० जयराम भी ज्योतिष शास्त्र के प्रकाण्ड ज्ञाता थे। ये गणित ज्योतिष के कठिन प्रश्नों का उत्तर बिना पाटी की सहायता से ही अपने मन में हिसाब लगाकर दे दिया करते थे। ये अपने शास्त्र के अद्वितीय विद्वान् थे। पण्डित जयराम जी के पुत्र भाऊजी भी ज्योतिष शास्त्र के अलौकिक विद्वान् थे। इन्हें अपने पूर्वजों की ही भाँति महाराजा से वृत्ति मिलती थी। इस प्रकार से बबुआ ज्योतिषी के परिवार में अनेक पीढ़ियों तक ज्योतिष विद्या विराजमान थी और प्रायः सभी लोगों ने काशीराज का आश्रय प्राप्त कर यश तथा धन प्रचुर मात्रा में अर्जित किया।

इसी वंश के ऊपर लिखित पं० बालकृष्ण ज्योतिषी के पट्टशिष्य **पं० सेवाराम शर्मा** थे जो म० म० पं० बापूदेव शास्त्री के गुरु थे। बबुआ ज्योतिषी का जन्मकाल सन् १७५६ ई० था और निधन काल सन् १८१६ ई० था। फलतः आज से १५० वर्षों पूर्व ही इनका निधन हो गया था।

गोकुलनाथ भट्ट—इन्होंने चेतसिंह, महीपनारायणसिंह एवं उदितनारायणसिंह तीनों काशीनरेशों की सभा को सुशोभित किया था। पूर्व में ये राजा चेतसिंह के दरबारी कवि थे। इन्होंने आश्रयदाता चेतसिंह की कीर्तिकौमुदी को फैलाने वाली काव्यरचना **'चेत-चन्द्रिका'** के नाम से की है (रचनाकाल १८२८ वि० = १७७१ ई०)। यह अलंकार-ग्रन्थ है जिसके उदाहरण अधिकतर चेतसिंह के स्तुतिपरक हैं। इसका साहित्यिक मूल्य के अतिरिक्त राजनैतिक महत्त्व भी है, क्योंकि इसके आरम्भ में काशिराज के वंश का वर्णन दिया गया है। बलभद्र कवि ने अपने चेतसिंह विलास चम्पू में इन्हें चेत सिंह का आश्रित कवि बतलाया है। बन्दीजन होने के नाते ये प्रातःकाल कमनीय पद्यों के द्वारा काशिराज का उद्बोधन (जागरण) कराया करते थे। इससे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीत होता है कि एक महनीय शासक होने के लिए जिस साजसज्जा की, आभूषण अलंकरण की औपचारिक आवश्यकता होती है, उसे राजा चेत सिंह ने पूरा कर लिया था। 'चेत चन्द्रिका' तो कभी भारती जीवन प्रेस, काशी से प्रकाशित हुई थी, परन्तु इनके इतर ग्रन्थों के मुद्रण का परिचय नहीं मिलता। ये ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

अमरकोष भाषा); कविमुखमण्डन (पद्य); राधाकृष्ण विलास (पद्य); राधा जू को नखशिख (पद्य); सीताराम गुणार्णव रामायण (पद्य); महाभारत दर्पण (पद्य)। इनमें से अन्तिम दोनों ग्रन्थ बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। सीताराम गुणार्णव रामायण अध्यात्म रामायण का भाषानुवाद अथवा तदाश्रित निर्मित पद्यबद्ध काव्य है। महाभारत के अनेक अनुवाद हिन्दी पद्यों में प्राप्त हैं। **धर्मदास** कृत अनुवाद (१६६४–१७११ विक्रमी = १६०७ ई० से लेकर १६५४ ई० तक प्रणीत) तथा **सबल सिंह चौहान** रचित अनुवाद (रचना-काल १७१८ वि०–१७३४ वि० अर्थात् १६६१ ई०–१६७७ ई०) १७वीं शती की रचनाएँ हैं, परन्तु साहित्यिक दृष्टि से से उतने अभिराम एवं मनोरम नहीं हैं जितना महाभारत दर्पण कमनीय एवं ललित है।

महाभारत दर्पण

गोकुलनाथ ने अपने पुत्र गोपीनाथ तथा शिष्य मणिदेव के साथ मिलकर हिन्दी साहित्य में एक बहुत बड़ा कार्य किया। इन्होंने संस्कृत के महाकाव्य तथा लक्ष-श्लोकात्मक समस्त महाभारत एवं हरिवंश (जो महाभारत का ही परिशिष्ट माना जाता है) का हिन्दी पद्य में अनुवाद किया। इस अनुवाद में अनेक छन्दों का प्रयोग किया गया है जो अत्यन्त कवित्वपूर्ण हैं। कथा-प्रबन्ध का इतना बड़ा महाकाव्य हिन्दी साहित्य में दूसरा उपलब्ध नहीं है। इस महाकाव्य का हिन्दी में अनुवाद लगभग दो हजार (२०००) पृष्ठों में समाप्त हुआ है। इतना बड़ा ग्रन्थ होने पर भी न तो इस अनुवाद में कहीं शिथिलता आने पाई है और न रोचकता में कहीं कमी हुई है। इसमें काव्य गुण भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं।

इतने बड़े महाकाव्य में, छन्दों का विधान जिस रीति से होना चाहिए इन्होने ठीक उसी रीति से किया है। जिस छन्द को लिया है उसका कुछ दूर तक उचित रीति से निर्वाह किया है। महाकवि केशवदास की भाँति इन्होने छन्दों का तमाशा नहीं दिखलाया और न इसे छन्दों का 'अजायबघर' ही बनाया। विभिन्न छन्दों का चुनाव भी बहुत उत्तम हुआ है। घनाक्षरी, सवैया, रूपमाला आदि मधुर छन्दों का ही इसमें अधिक प्रयोग हुआ है परन्तु बीच-बीच में दोहा और चौपाइयों का भी उपयोग किया गया है। इस ग्रन्थ की भाषा प्राञ्जल और सुव्यवस्थित है। अनुप्रास आदि शब्दालंकारों पर अधिक आग्रह न होने पर भी यथास्थान इनका आवश्यक विधान हुआ है। यह रचना सभी प्रकार से साहित्यिक और मनोहर है और इन तीनों लेखकों की काव्य-कुशलता का परिचय देती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशीनरेश महाराजा उदितनारायण सिंह की आज्ञा से इस ग्रन्थ की रचना हुई थी। इन्होंने इसके लिए लाखों रुपये व्यय किये थे। इस महाग्रन्थ के निर्माण में ५० वर्षों से भी अधिक समय लगा था। अनुमानतः इसका प्रारम्भ सं० १८३० (१७७३ ई०) में हो चुका था और यह सं० १८८४ वि० (सन् १८२७ ई०) में जाकर समाप्त हुआ। इस महान् साहित्यिक यज्ञ के अनुष्ठान के लिए हिन्दी जगत् महाराजा उदितनारायण सिंह का सदा कृतज्ञ रहेगा। काशिराज का यह अविस्मरणीय योगदान हिन्दी संसार के कल्याणार्थ है।

गोकुलनाथ

महाभारत का यह अनुवाद गोकुलनाथ, गोपीनाथ और मणिदेव इन तीनों के सम्मिलित प्रयास का उत्तम परिणाम है। परन्तु इन तीनों अनुवादकों में भी गोकुलनाथ ही श्रेष्ठ स्थान के अधिकारी हैं। इनका कविता काल सं० १८४० से सं १८७० वि० तक माना जा सकता है। इन्होंने रीति और प्रबन्ध दोनों प्रकार के ग्रन्थों की प्रचुर रचना की है। इतने अधिक परिमाण में और इतने प्रकार की काव्य-रचना करने में वही व्यक्ति समर्थ हो सकता है जो पूर्ण साहित्यमर्मज्ञ, काव्य-कला में सिद्धहस्त और काव्य-भाषा का पूर्ण अधिकारी हो। गोकुलनाथ जी ऐसे ही व्यक्ति थे। रीति ग्रन्थ-रचना और प्रबन्ध-रचना दोनों में समान रूप से कुशल, इनको छोड़कर अन्य कोई कवि,[1] रीति काल के अन्तर्गत नहीं पाया जाता।

मणिदेव—गोकुलनाथ के पट्टशिष्य मणिदेव बंदीजन भरतपुर राज के जहानपुर नामक गाँव के निवासी थे। ये अपनी विमाता के दुष्ट व्यवहार से रुष्ट होकर काशी चले आये थे। काशी में ये अपने गुरु गोकुलनाथ जी के यहाँ ही रहते थे। जीवन के अन्तिम दिनों में ये कभी-कभी विक्षिप्त भी हो जाते थे। इनकी मृत्यु सं० १९८० (१८६६ ई०) में हुई। इन्होंने महाभारत के कुछ अंशों का हिन्दी में अनुवाद किया है।

कविता के उदाहरण—महाभारत का अनुवाद सम्मिलित रूप से उपर्युक्त तीनों कवियों ने किया परन्तु जिस-जिस अंश का अनुवाद जिसने-जिसने किया है उस अंश में उसका नाम दिया हुआ है। अतः इन कवियों के काव्य का नमूना जानने में कोई कठिनाई उपस्थित नहीं होती।

गोकुलनाथ की कविता[2]—ये बड़े ही सरस, सहृदय और विदग्ध कवि थे। महाभारत के अनुवाद में शाल्व के युद्ध का इन्होने जो वर्णन किया है उसका एक उदाहरण लीजिए—

---

१. पं० रामचन्द्र शुक्ल : हि० सा० इ०, रीतिमाल, प्र० ३—अन्य कवि, पृ० ३४८–५०।

२. शुक्ल : वही।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"दुर्ग अति ही महत् रक्षित भटन सो चहुँ ओर।
ताहि घेरचो शाल्व भूपति सेन लै अति घोर॥
एक मानुष निकसिबे की रही कतहुँ न राह।
परी सेना शाल्व नृप की भरी जुद्ध-उछाह॥"

परन्तु जहाँ गोकुलनाथ जी ने किसी सरस वस्तु का वर्णन किया है वहाँ पर इनकी कविता बड़ी मधुर, रसपेशल और सुन्दर है। राधा के बिछुओं (पैर का एक आभूषण) की आवाज की करामात सुनिए जो सखियों के कान में कोकिल की मधुर ध्वनि पैदा करती है परन्तु सौतिन (सपत्नी) के कर्ण कुहरों में हलाहल विष ही उड़ेलती है। पदशय्या कितनी कोमल है।

"सखिन की श्रुति में उकुति कल कोकिल की,
गुरुजन हू पै पुनि लाज के कथान की।
'गोकुल' अरुन चरनाम्बुज पै गुंज पुंज,
धुनि सी चढ़ति चंचरीक चरचान की॥
प्रीतम के श्रवन समीप ही जुगुति होती,
मैन मंत्र-तंत्र के बरन गुन-गान की।
सौतिन के कानन में हलाहल ह्वै हूलति,
एरी सुखदानि! तौ बजनि बिछुवान की॥"

(राधाकृष्ण विलास)

गोपीनाथ की कविता का उदाहरण--

"सर्व दिसि में फिरत भीषम को सुरथ मनमान।
लखे सब कोउ तहाँ भूप अलात चक्र समान॥
सर्व थल सब रथिन सों तेहि समय नृप सब ओर।
एक भीषम सहस सम रन जुरो हो तहँ जोर॥"

(महाभारत से)

मणिदेव की कविता

"बचन यह सुनि कहत भो चक्रांग हंस उदार।
उड़ौगे मम संग किमि तुम कहहु सो उपचार॥
खाय जूठो पुष्ट, गर्वित काग सुनि ये बैन।
कह्यौ जानत उड़न की शत रीति हम बल ऐन॥"

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि गोपीनाथ और मणिदेव की कविताएँ अत्यन्त साधारण कोटि की हैं परन्तु इन लोगों ने महाभारत जैसे, महाग्रन्थ के अनुवाद करने का साहस किया इसी को बहुत मानना चाहिए।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मदत्त कवि

महाराजा उदित नारायण सिंह के दरबारी कवियों में ब्रह्मदत्त अन्यतम थे। इन्होंने दीपनारायण सिंह के आदेशानुसार उन्हीं के नाम पर 'दीप प्रकाश'[1] नामक अलंकार ग्रन्थ की हिन्दी में रचना की। ये 'जखिनी' नामक ग्राम में उत्पन्न हुए थे जो रामनगर से अग्निकोण में पाँच कोस पर स्थित है। अन्त में ग्रन्थ की रचना का काल १८६७ विक्रमी संवत् (१८१० ई० बतलाया गया है। फलतः ये १६ वीं सदी के प्रथम चरण में विद्यमान थे। यह हिन्दी की रीतिकालीन शैली में निबद्ध ग्रन्थ है। साहित्य के रस, अलंकार आदि विषयों का प्रथमतः लक्षण दिया गया है, तदनन्तर उसके उदाहरण भी दिये गये हैं। बाबू जगन्नाथदास (रत्नाकर) ने इस ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है—"अन्त में विरक्त होकर ये काशी के पंचगंगा घाट पर रहते थे। महाराजा के यहाँ से इन्हें भोजन के लिए सीधा मिलता था और वही इनकी जीविका का आधार था। इनके परमेश नामक एक पुत्र थे जो अच्छे कवि थे। जानकी जी के वर्णन में आठ कवित्त इनके लिखे रत्नाकर को मिल गये थे। 'ब्रह्म' कवि के नाम से ये कविता करते थे। महाराज उदित नारायण सिंह की इनकी लिखी प्रशस्ति इस प्रकार है—

तत् क्षण ही ढरिबो बिचक्षण बिलोकि कीबो
लक्षन को मौज प्रतिपच्छन पछारिबो।
कहै "कवि ब्रह्म" अम्भ अंबर सरित कैसो
उज्जल सुजस जगती में बिसतारिबो।
चोप सों चरित भगवन्त कौ निहारिबो औ
भारी भूमिभार भुजदण्डनि सँभारिबो।
महाराज उदित नरेश के ये काज
गजराजन को दीबो मृगराजन को मारिबो॥ ७॥

महाराजा ईश्वरीनारायण सिंह (१८२१–१८८९ ई०)

महाराजा उदित नारायण सिंह के अनन्तर उनके ज्येष्ठ पुत्र महाराजा ईश्वरीनारायण सिंह सन् १८३५ ई० केवल चौदह वर्ष के वय में ही गद्दी पर बैठे। इन्होंने लगातार चौवन (५४) वर्षों तक राजगद्दी को सुशोभित किया। काशिराज के इतिहास में महाराजा ईश्वरीनारायण का काल सुवर्ण युग मानना चाहिए, क्योंकि इस युग में काशी का राज अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच गया। इनके राज्यकाल में भारतीय विद्या, संस्कृत तथा संस्कृति की बड़ी ही उन्नति हुई। तत्कालीन काशी

---

१. दीपप्रकाश भारत जीवन प्रेस काशी में मुद्रित हुआ था। सं० १९४६ माघ (=१८८९) में बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर) द्वारा परिशोधित तथा उन्हीं के द्वारा प्रकाशित।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के समाज पर महाराजा ईश्वरीनारायण सिंह का प्रभुत्व छाया हुआ था। उस समय काशी में कोई भी ऐसा सामाजिक अथवा सांस्कृतिक कार्य नहीं होता था जिसमें काशिराज का योगदान न हो। इनके दरबार में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र प्रायः आया-जाया करते थे और महाराज इनको अपने पुत्र के समान मानते थे। दोनों से खूब नोंक-झोंक चलती थी। सुनते हैं, एक बार महाराजा ने हरिश्चन्द्र के अपव्यय की कथा सुनकर इनसे कहा कि "बबुआ! इतना अधिक अपव्यय मत किया करो।" इस पर हाजिर जवाब भारतेन्दु ने तपाक से उत्तर दिया कि "महाराज! इस धन ने हमारे पूर्वजों को खा डाला है। अब मैं इसे खा डालूँगा।"

महाराजा ईश्वरीनारायण सिंह जी बड़े गुणग्राही व्यक्ति थे। अतः इनके दरबार में विद्वानों तथा गुणियों का जमघट लगा रहता था। पण्डित लोग इनका आश्रय प्राप्त करने के लिए दूर-दूर से आते थे और राजदरबार में आदर-सम्मान प्राप्त कर संतुष्ट हो जाते थे। महात्मा काष्ठजिह्व स्वामी इनके गुरु थे। महाराजा उनका बड़ा सम्मान करते थे और उनसे अपने राज-काज में भी सलाह लेते थे। इन्होंने गुरु के द्वारा रचित ग्रन्थ **रामसुधा** के ऊपर टीका लिखी है जिसमें महाराजा ने स्वामी जी के पदों में अन्तर्निहित अध्यात्म पक्ष को प्रकाशित करने का सफल प्रयास किया है। इनकी सबसे महत्त्वपूर्ण साहित्यिक रचना रामायण की टीका है जो 'रामायण परिशिष्ट' के नाम से प्रसिद्ध है। सन् १८३५ ई० में राजगद्दी पर आसीन होने के दो वर्ष के भीतर ही महाराजा ने रामायण की टीका लिखने के लिए काष्ठजिह्व स्वामी को प्रेरित किया। स्वामी जी के द्वारा लिखित टीका का नाम 'रामायण परिचर्या' है जिसमें केवल संक्षिप्त टिप्पणियाँ दी गई हैं। इन्हीं टिप्पणियों को स्पष्ट करने के लिए महाराजा ने अपनी टीका का निर्माण किया। यह टीका बहुत ही अच्छी है। स्वामी जी ने जो टिप्पणियाँ लिखी हैं वे इतनी दुरूह हैं कि साधारण लोग उन्हें नहीं समझ सकते। महाराज ने अपनी टीका के द्वारा स्वामी जी के तात्पर्य को अधिक स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

महाराजा ईश्वरीनारायण सिंह बड़े ही गुणग्राही तथा विद्वानों के आश्रयदाता थे। इसीलिए उनके दरबार में विद्वानों का जमघट जमा करता था। इनमें से कतिपय संस्कृत पण्डितों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है—

(क) ताराचरण तर्करत्न—ये ईश्वरीनारायण सिंह की सभा के नाना शास्त्रों में निष्णात सर्वश्रेष्ठ पण्डित थे। ये न्यायशास्त्र के अच्छे विद्वान् तथा काव्यरचना में दक्ष सुकवि थे। मुख्य सभापण्डित होने के कारण ये पण्डित-सभाओं में महाराजा के साथ ही रहते थे। दयानन्द स्वामी का जो शास्त्रार्थ काशी में दुर्गाकुण्ड के समीपस्थ आनन्दबाग में हुआ था, उसमें सभापति महाराजा के आदेश से पं० ताराचरण जी ने प्रमुख भाग लिया था। इसका विवरण आगे विशुद्धानन्द सरस्वती के प्रसंग में किया जायगा। इन्होंने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) **तर्करत्नाकर**—जिसमें न्यायशास्त्र का सार ६ तरंगों में संस्कृत पद्यों में प्रस्तुत किया गया है। महाराजाधिराज काशीनरेश के आज्ञानुसार इसे विरचित होने का तथ्य मुख्य पृष्ठ पर अंकित है। रचनाकाल १७७६ शाके अर्थात् १८५७ ई० तथा मुद्रणकाल सं० १९१५ विक्रमी (= १८६८ ई०) निर्दिष्ट है। बनारस के लाइट प्रेस में गोपीनाथ पाठक द्वारा मुद्रित किया गया था।

(२) **सत्यनारायण कथा**—सत्यनारायण की कथा स्कन्द पुराण के रेवाखण्ड में उपलब्ध न होने से महाराजा की आज्ञा से इसका निर्माण तर्करत्न जी ने किया। ऋग्वेद के मंत्रों के आधार पर अश्विनीकुमार की परोपकारमयी कथा श्लोकों में निबद्ध की गई है। पत्रात्मक रूप में मुद्रित है।

(३) **कानन शतक**—महाराजा के राज्यान्तर्गत चकिया के जंगल का अभिराम संस्कृत पद्यों में मनोरम वर्णन है। नाना छन्दों में १३४ पद्य हैं। इस ग्रन्थ में कवि ने अपना परिचय दिया है कि वंगदेश के प्रख्यात भट्टपल्ली ग्राम के निवासी वसिष्ठगोत्री ताराचरण जी थे। ये महाराज ईश्वरीनारायण सिंह जी की सभा की विद्वन्मण्डली के अग्रगण्य नेता थे –

श्रीकाशीश सभा बुधाग्रपदवीं प्राप्तस्य तर्कप्रिय—
श्री ताराचरणस्य साम्प्रतमियं निष्ठां गता सत्कृतिः ॥
(शतक का अन्तिम पद्य)

कविता बड़ी सुन्दर प्रसादमयी है। अपने आश्रयदाता के विषय में तर्करत्न जी का यह पद्य है –

यदनुरागरक्तानां स्फुरति कृतिचमत्कृतिः कृतिनाम्।
स जयति काशीराजः श्रीईश्वरीप्रसादनारायणो द्विजः ॥

बनारस लाइट प्रेस में १९२५ विक्रमी (= १८६८ ई०) में मुद्रित।

(४) तर्करत्न जी के रसालङ्कार विवेचनपरक ग्रन्थ को लेखक ने लीथो में छपा देखा था। इसमें रस तथा अलंकार का विवरण शास्त्रीय दृष्टि से दिया गया है। रससंख्या के विषय में इन्होंने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के मत का उल्लेख बड़े आदर के साथ किया है— **हरिश्चन्द्रास्तु एवं मन्यन्ते**। भारतेन्दु जी ने अनेक नवीन रसों की प्रकल्पना की थी और उनका सुन्दर उदाहरण भी प्रस्तुत किया था। यह तथ्य नवीन है जो शायद ही किसी भाषा-ग्रन्थ में उल्लिखित हो। भारतेन्दु के आचार्यत्व का द्योतक यह ग्रन्थ सचमुच अपूर्व एवं विलक्षण है। भारतेन्दु जी का मत इतना प्रमाणपुरःसर था कि संस्कृत के रस-ग्रन्थ में उसे उद्धृत करने की आवश्यकता एक संस्कृत विद्वान् को भी प्रतीत हुई।

(ख) प्रियनाथ तत्त्वरत्न

पण्डित ताराचरण जी के दो पुत्रों का परिचय मिलता है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) **प्रियनाथ तत्त्वरत्न** तथा (२) **प्रमथनाथ तर्कभूषण** जिनमें द्वितीय पुत्र आगे चलकर महामहोपाध्याय एवं हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत महाविद्यालय के प्रख्यात अध्यक्ष हुए। इनका वर्णन आगे दिया जायगा।

पण्डित प्रियनाथ तत्त्वरत्न की दो कृतियों का पता चलता है (क) **तत्त्वरत्नाकर** (रचनाकाल १८८३ ई०)—युवराज प्रभुनारायण सिंह जी की आज्ञा से उनके पुत्र आदित्यनारायण सिंह को पढ़ाने के लिए यह ग्रन्थ लिखा गया। सांख्य आदि दर्शनों के सिद्धान्तों का पद्यबद्ध वर्णन जिज्ञासुओं के लिए बड़ा ही उपादेय है।

(ख) **विरहगीतिका**—यह काव्यग्रन्थ भी युवराज प्रभुनारायण सिंह के द्वारा अनुमोदित होकर विरचित तथा प्रकाशित है (प्रकाशनकाल १९४२ विक्रमी = १८८५ ई०)। सुन्दर वैदर्भी शैली में यह विरहवर्णनपरक काव्यग्रन्थ अत्यन्त मनोरम तथा आवर्जक है। पद्यसंख्या १०४। काम के जलाने का यह कारण पढ़िए—

सतनुरेष सदैव वियोगिनी—
वधरतो भवितेति रतीश्वरः।
सखि! सती-विरहाकुलचेतसाऽ-
तनुरसौ विहितोऽम्बरवाससा॥

(ग) **जयनारायण तर्करत्न—तर्करत्नावली** (न्यायशास्त्र के तत्त्वों का नैयायिक भाषा में सुबुद्ध उपादेय वर्णन) ग्रन्थ का प्रकाशनकाल १९४५ विक्रमी सं० (१८८८ ई०) है। ग्रन्थ के अन्त में लेखक ने अपने गाँव का नाम कोटालिपाड़ा लिखा है और अपना गोत्र 'काश्यप' बतलाया है।

(घ) **कृष्णपन्त धर्माधिकारी**

इन्होंने 'काशीश विनोद' चम्पू काव्य की रचना ईश्वरीनारायण सिंह के विनोदार्थ की थी जिसका संशोधन युवराज श्री प्रभुनारायण सिंह की आज्ञा से मानवल्ली गंगाधर शास्त्री ने किया। अमर प्रेस में मुद्रित १९४२ विक्रमीसं० १८८५ ई० में काशीनरेश के मनोविनोद के निमित्त यह काव्य प्रणीत हुआ है। गद्य पद्य दोनों रुचिर एवं आवर्जक हैं। रामनगर की राजधानी का बड़ा ही सुन्दर तथा मनोमोहक वर्णन है।

कृष्णपण्डित जी काशी के विशिष्ट धर्माधिकारी महाराष्ट्रीय वंश में उत्पन्न हुए थे। इनका जन्म १८३३ ई० में तथा निधन १८८४ ई० में हुआ। ये काशी से राजपूताने के प्रसिद्ध नरेश उदयपुर के राजा सज्जन सिंह की सभा में गये थे और वहीं इन्होंने राजा की स्तुति में **'सज्जनेन्द्र प्रयोग कल्पद्रुम'** नामक व्याकरण ग्रन्थ का प्रणयन किया[1]। इनका यह पद्य इस तथ्य का संकेत करता है—

---

१. चौखम्भा संस्कृत सीरीज में प्रकाशित (काशी, १९३३ ई०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

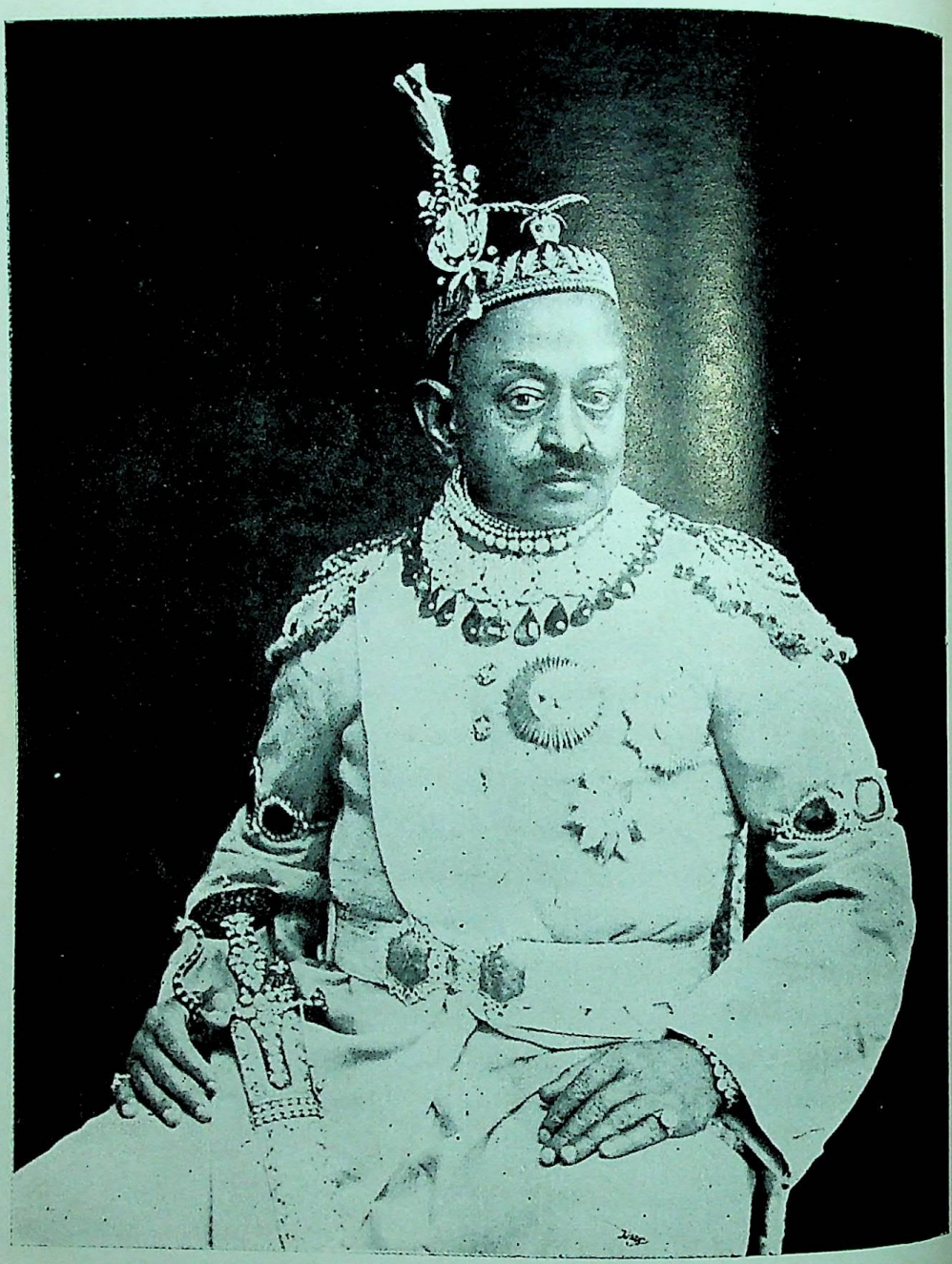

संस्कृत विद्या के संरक्षक एवं पोषक
महाराजा प्रभुनारायण सिंह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अविमुक्ततो मेदपाटे वृत्यात्यागस्य सुन्दरम् ।
सज्जनेन्द्रप्रयोगोयं ग्रन्थं रचितवानहम् ॥
(पृ० ४६)

इस ग्रन्थ में पाँच कुसुम हैं—कारककुसुम, समासकुसुम, तद्धितकुसुम, तिङ्कुसुम तथा कृत्कुसुम । इनका लक्षण पद्यबद्ध है तथा उदाहरण के समस्तश्लोक उदयपुराधीश राजा सज्जन सिंह की प्रशंसा में हैं । साथ ही साथ व्याकरण के रूपों की भी शिक्षा मिलती है । इस प्रकार व्याकरण के प्रयोगों का शिक्षण सुगमता से करना ही इस ग्रन्थ का उद्देश्य है । उदाहरण देखिए—

शतवर्षं तु कल्याणी भूयात् सज्जनभूपतिः ।
राज्यं चायुतगव्यूति तस्य भूयादकण्टकम् ॥

ग्रन्थ की रचना का समाप्ति वर्ष है १९३७ विक्रमी संवत् (अर्थात् १८८० ई०) इनके अन्य दो ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित हैं—**रत्नावली** (गद्य काव्य) तथा **कालिकामन्दाक्रान्ता शतक** (शतक काव्य) । प्रतीत होता है उदयपुर में रहते ही समय इन्होंने पूर्वनिर्दिष्ट चम्पूकाव्य का प्रणयन किया था ।

महाराजा प्रभुनारायण सिंह

महाराजा प्रभुनारायण सिंह का जन्म १८५५ ई० तथा निधन १९३१ ई० में हुआ । इस प्रकार इन्होंने ७६ वर्षों की लम्बी आयु पायी थी । ये सन् १८८९ ई० में ३४ साल के वय में गद्दी पर बैठे थे । इन्होंने ४२ वर्षों तक राज्य किया । महाराजा ईश्वरीनारायण सिंह ने राज की जो परम्परा चलाई थी उसका इन्होंने अक्षरशः अनुसरण किया । सच तो यह है कि महाराजा ईश्वरीनारायण सिंह तथा इनके राज के समय में काशी का राज अपनी उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ था । इन्हीं महाराज प्रभुनारायण सिंह के काल में काशिराज एक स्वतन्त्र रियासत (राज्य) के रूप में परिणत हो गया और भारत के प्रधान स्वतन्त्र नरेशों में इनकी भी गणना होने लगी ।

ये महाराजा अपने पिता की ही भाँति पण्डितों, गुणियों तथा कवियों के आश्रयदाता थे । इनके दरबार में अनेक कवियों का जमघट लगता था परन्तु इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि ये केवल कवियों के आश्रयदाता ही नहीं थे, बल्कि स्वयं भी एक सुकवि थे । ये संस्कृत में समस्या पूर्ति भी किया करते थे । म० म० पं० गंगाधर शास्त्री समस्या-पूर्ति के सम्बन्ध में जो 'सूक्ति-सुधा' नामक पत्रिका प्रकाशित करते थे, उसमें महाराजा की अनेक समस्यापूर्तियाँ प्रकाशित होती थीं ।

महाराजा प्रभुनारायण सिंह अभिज्ञानशकुन्तल नाटक के बड़े ही प्रेमी थे, इन्होंने रामनगर के अपने राजप्रासाद में एक 'शकुन्तला गृह' का निर्माण कराया था जिसमें शकुन्तला नाटक के विभिन्न दृश्यों को बड़ी ही सुन्दर रीति से दीवालों पर चित्रित

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया गया था। महाराजा स्वयं भी संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। इन्होंने 'पार्थ-पाथेय'[1] नामक उल्लाप्य– जो उपरूपक का एक भेद है—की रचना करके अपनी सरस कवित्व शक्ति का परिचय दिया है। इसमें महाभारत के वीर अर्जुन के जीवन की उस घटना का उल्लेख है जब अर्जुन जंगल में एक विशिष्ट प्रतिज्ञा के पालन करने के लिए घूम रहे थे और जिसका अवसान सुभद्रा के हरण से हुआ था। प्रभुनारायण सिंह में कवित्व शक्ति प्रचुर मात्रा में विद्यमान थी। इनकी कविता के एक-दो उदाहरण ही पर्याप्त होंगे—

"एधः शुद्धं विधमसि मुधा पाचिके साचिवेषा,
पेषिण्येषा दृषदुपलतः पिष्यते किं विशिष्य।
नाङ्गारोऽयं विरम सरले नापि भद्रे हरिद्रा,
मुद्रा हेम्नः सदनलुठिता काशिराजेन दत्ता॥

श्लोक का आशय यह है कि हे पाचिका (रसोइया) तुम केवल शुद्ध लकड़ी को क्यों फूँक रही हो ए पीसनेवाली! तुम क्यों हलदी पीस रही हो? तुम जानती नहीं कि न तो यह अंगार है और न यह हलदी है। बल्कि यह काशिराज के द्वारा दान में दी गई सुवर्ण मुद्राएँ हैं जो घर में पीली-पीली दिखाई पड़ती हैं। इस श्लोक में काशिराज की दानशीलता का वर्णन किया गया है।

महाराजा संस्कृत में गीतों की रचना में भी निपुण थे। उक्त नाटक की प्रस्तावना में महाराजा ने किसी विरहिणी नायिका का वर्णन कितनी मधुर तथा सरस भाषा में गीति के रूप में किया है। यह एक ही गीति इनके काव्य की सरसता तथा मधुरता की परिचायिका है :

विपिने नृत्यति मत्त कलापी--ध्रु०
वर्षति, हृष्यति, तरुमारोहति, तपातपैरुपतापी।
अतिलोभादुचितं जहाति पुरुषः प्रथमेऽपि च पापी
अभिसदनं पथिको निवर्तते, नीडमेति वियदापी।
न तु हतविधेरुपैति वल्लभो वर्षाणामपयापी,
विरहिजनं आसयति मन्मथो जलदमिषादुपजापी॥

महाराजा ने संस्कृत विद्या तथा भारतीय संस्कृति के प्रचार के लिए सबसे बड़ा तथा महत्त्वपूर्ण कार्य यह किया कि इन्होंने महामना मालवीयजी महाराज के निवेदन पर हिन्दू विद्यालय की स्थापना के लिए हजारों एकड़ जमीन दान रूप में दे दी। इससे महाराज की दानशीलता का पता चलता है। हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना

---

१. रामनगर फोर्ट, वाराणसी १९२७ ई० में प्रकाशित। इस ग्रन्थ की टीका उन्हीं के सभापण्डित श्री हरिकान्त झा ने की है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से संस्कृत विद्या तथा भारतीय संस्कृति का कितना प्रचार हुआ यह विद्वानों को अविदित नहीं है। अतः इस पवित्र कार्य के लिए महाराजा ही निमित्त कारण थे।

महाराज प्रभुनारायण सिंह जी ने अखिल भारतवर्षीय ब्राह्मण महासम्मेलन के स्वागताध्यक्ष के पद से जो संस्कृत में अभिभाषण किया था सं० १९८५ विक्रमी में (१९२८ ई० में) वह नितान्त गम्भीर, भावप्रवण एवं हिन्दू समाज के अभ्युदय-प्रापक उपायों का विशिष्ट निर्देशक है। प्रभुनारायण सिंह जी को १८८६ ई० में महारानी विक्टोरिया ने 'लेफ्टिनेण्ट कर्नल' की उच्च उपाधि प्रदान की थी। उस समय पर काशी (भदैनी) के निवासी **गणेशदत्त त्रिपाठी जी** वैद्य ने आपकी **'काशीश्वर-पुष्पाञ्जलि'** नामक २८ पद्य सन्दर्भों के द्वारा जो काव्य प्रशस्ति बनाई थी उसमें एक-दो श्लोक यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

ऐश्वर्यं धनदस्य पाण्डुजनुषः शौर्यं मतिर्गीष्पतेः
विज्ञानं जनकस्य वेदविदितं गाम्भीर्यमम्भोनिधेः।
दानं कल्पतरोर्बलेरिह जगत्येकत्र ते स्युर्यदि
श्रीमत्काशिनरेश्वरस्य परितः साम्यं तदोन्मीलतु॥

काशिराज की काव्यरचना-चातुरी का यह अभिराम वर्णन नितान्त आवर्जक है—

यः साहित्यकला-विलास-कलना-वैदग्ध्यलीलागुरुः
येनाविष्क्रियतेऽनवद्य – कविता – वेद्यप्रमोदार्णवः।
तस्यामिन्दुनरेन्द्रवन्दितपदद्वन्द्वस्य काशीपतेः
सान्द्रानन्दमयीमहो किल यशोमूर्ति कथं कीर्त्यते॥

इस पुष्पाञ्जलि के रचयिता कवि भदैनी मुहल्ले के निवासी चिकित्सा में प्रख्यातकीर्ति पण्डित गणेशदत्त वैद्य थे जिन्हें चिकित्सा के समान कविता लिखने में भी प्रचुर कीर्ति प्राप्त थी। इसका प्रकाशन काशी के भारतजीवन प्रेस १९४६ सं० वि० (=१८८९ ई०) में हुआ था।

महाराजा प्रभुनारायण सिंह के प्रधान सभापण्डित थे **पण्डित जीवन झा मैथिल** जो दरभंगा के हरिपुर ग्राम के निवासी थे तथा पण्डित वनमाली शर्मा के पुत्र थे। ये महाराजा के दानाध्यक्ष भी थे। ये स्निग्ध कविता लिखने में नितान्त दक्ष थे। १९०२ ई० में सप्तम एडवर्ड के राज्याभिषेक के अवसर पर इन्होंने **'शृंगार सागर'** नामक रस का वर्णनपरक अलंकार-ग्रन्थ बनाया था। यहाँ रस के अंगों और उपांगों का लक्षण देकर सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। जीवन झा जी काव्यकला के प्रवीण पारखी थे और पद्य रचना में भी चतुर थे। इस ग्रन्थ से कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं—

वासकसज्जा नायिका के स्वरूप का परिचायक यह पद्य सुन्दर तथा सौष्ठवसम्पन्न है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देहली-गेहलीनाधंदेहा स्नेहात् कमीक्षसे ?
रत्यै वासकसज्जा स्यात् गेहदेहे प्रसाधनी ॥

खण्डिता नायिका का यह चित्रण भी मनोभिराम है—

विशिनष्टि सुमैः सौधं पिनद्धि मृदुचन्दनम् ।
खण्डिताऽन्यसमासक्तप्रेयसा रात्रिमुज्झिता ॥

रसाभास का यह उदाहरण पदशय्या से सुतरां सम्पन्न है –

कोकी सोमोद्भवाकूले न दिवापि प्रसीदति ।
भिनत्ति करजैर्भिल्लो भिल्लीधमिल्लमातपे ॥

महाराजा आदित्यनारायण सिंह

महाराजा प्रभुनारायण सिंह के एकमात्र आत्मज महाराजा आदित्यनारायण सिंह को रामनगर की गद्दी पर बैठने का सुयोग केवल आठ वर्षों (१९३१ ई०–१९३९ ई०) तक ही प्राप्त हुआ । इस काल में वे अपने पूज्य पिता के द्वारा दिखाये गये मार्ग का विधिवत् पालन करते थे । धर्म में निष्ठावान् व्यक्ति थे और संस्कृति की उन्नति में भी अपना हाथ बँटाते थे ।

महाराजा डाक्टर विभूतिनारायण सिंह

महाराजा आदित्यनारायण सिंह के निधन के अनन्तर महाराजा विभूतिनारायण सिंह उनके उत्तराधिकारी के रूप में अंग्रेजी शासन के द्वारा प्रतिष्ठित किये गये। इनका जन्म ५ नवम्बर १९०७ ई० को हुआ । आठ वर्ष के वय में आदित्यनारायण सिंह ने इन्हें अपना दत्तक पुत्र बनाया (१९३४ ई० में) और इनकी शिक्षा-दीक्षा की विधिवत् व्यवस्था की । उचित समय पर इनका यज्ञोपवीत संस्कार भी कराया, परन्तु बारह साल के वय में ही महाराजा आदित्यनारायण जी की छत्रछाया इनके सिर से हट गई । इनके नाबालिग होने के कारण राज्य का कार्य चार सदस्यों की एक कमेटी को सुपुर्द किया गया । कुछ सालों के अनन्तर महामना मालवीय महाराज के आदेश से ये अजमेर के महाराजा कालेज में पढ़ने के लिए गये जहाँ अंग्रेजी शासकों की ओर से राजकुमारों के अध्यापन की विशेष व्यवस्था थी । आगे चलकर इन्होंने हिन्दू विश्वविद्यालय से संस्कृत विषय में एम० ए० की परीक्षा पास की। विश्वविद्यालय के आजकल चान्सलर तथा संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलाधिपति हैं । हिंन्दू विश्वविद्यालय ने इन्हें डि० लिट्० की मानद उपाधि से विभूषित किया है ।

बालिग होने पर १९४७ ई० में इन्हें राजगद्दी विधिवत् मिली । राज्य के शासन में सुधार करने की आयोजन हो ही रहा था कि १९४९ ई० राज्य का स्वतन्त्र भारत विलयन हो गया ।

वैदिकधर्म तथा संस्कृतशास्त्रों के प्रति नैसर्गिक निष्ठा की भावना इन्हें अपने पूर्वजों से रिक्थ के रूप में प्राप्त हुई है । संस्कृत भाषा के प्रचार के तथा संस्कृत विद्या के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

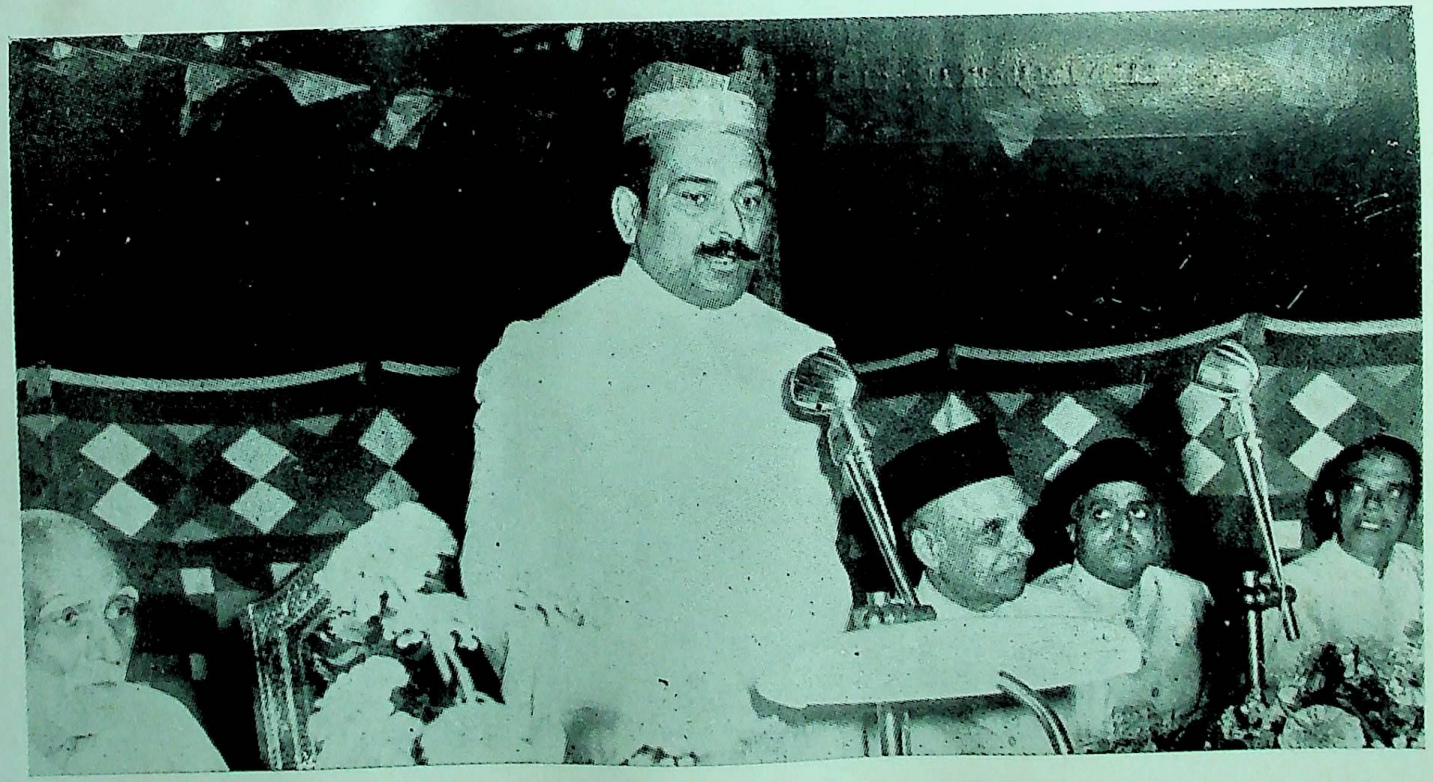

काशी के सुप्रसिद्ध परम्पराशील तथा वैदिक शिक्षा के लिए विख्यात सांगवेद महाविद्यालय के वार्षिक समारोह के अवसर पर पं० राजेश्वर शास्त्री द्राविड़, काशीनरेश महाराजा विभूतिनारायण सिंह, पं० गिरधारीलाल मेहता, पं० हरीलाल मेहता तथा डॉ० गौरीनाथ शास्त्री ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

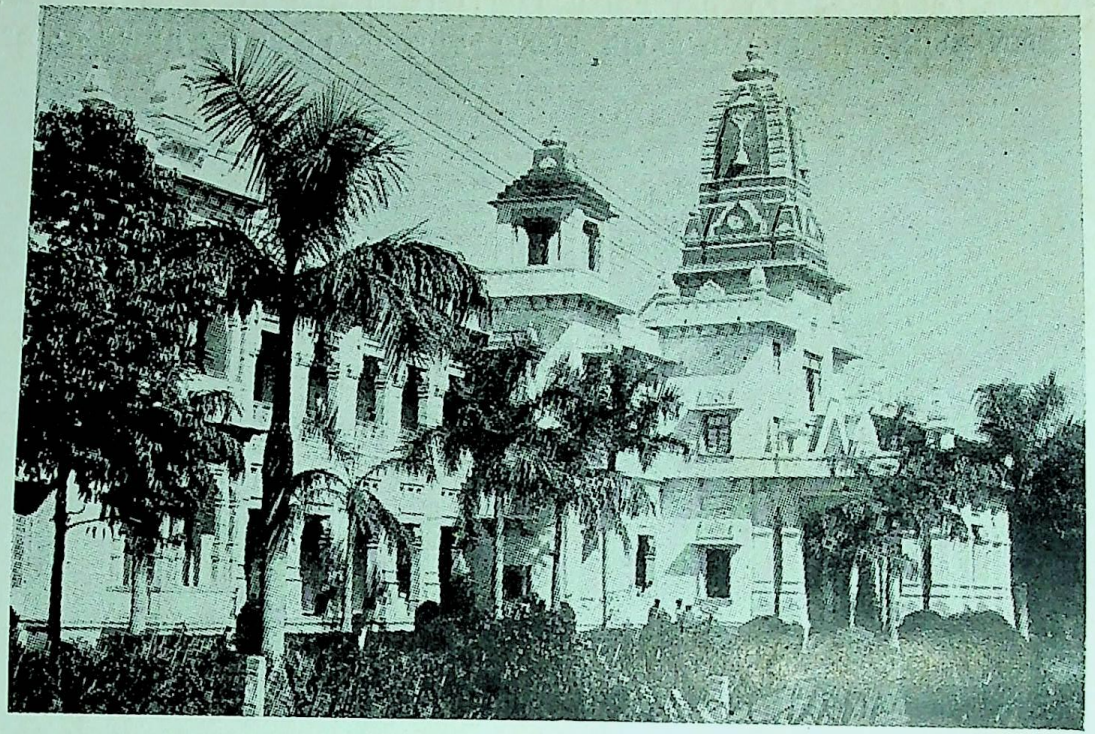

संस्कृत शिक्षा का प्रमुख केन्द्र : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का प्राच्यविद्या संकाय
(संस्कृत महाविद्यालय)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्युत्थान में इनका अकृत्रिम प्रेम नितान्त श्लाघनीय एवं अनुकरणीय है। इन्होंने 'अखिल भारतीय काशिराज न्यास' की स्थापना की है जिसके अन्तर्गत अनेक धार्मिक कृत्यों का सम्पादन होता है। इसके अनुसार पुराणों के वैज्ञानिक संस्करण यावत् उपलब्ध हस्तलेखों के आधार पर प्रकाशित किये जाते हैं। आज तक **वामन** तथा **कूर्म पुराणों** का विमर्शात्मक संस्करण तथा उनके हिन्दी एवं अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। **वाराह पुराण** इसी वर्ष प्रकाश्यमान है। इस न्यास से **पुराणम्** नामक एक षाण्मासिकी पत्रिका भी संस्कृत-अंग्रेजी में प्रकाशित होती है जो केवल इतिहास पुराणों से सम्बद्ध शोधपूर्ण लेख प्रकाशित करती है। अपने लेखों के उच्चस्तर तथा वैदुष्य के कारण इस पत्रिका ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर ली है। महाराजा ने अपने किले में प्राचीन राजकीय कलात्मक वस्तुओं का एक अभिराम संग्रहालय भी स्थापित किया है जिससे इनकी कलात्मक अभिरुचि का परिचय मिलता है।

इस न्यास के अतिरिक्त अनेक धार्मिक न्यासों का भी स्थापन तथा संचालन किया जाता है जिनके द्वारा धार्मिक कार्य ही केवल नहीं, प्रत्युत संस्कृत एवं अंग्रेजी का शिक्षण भी निष्पन्न किया जाता है। अपने राजकुमार अनन्त नारायण सिंह को अंग्रेजी शिक्षण देने से पूर्व इन्होंने संस्कृत भाषा तथा साहित्य का प्रथमतः शिक्षण दिलाया है। मनु ने मानवों के लिए पिता-पितामह के द्वारा अभ्यस्त मार्ग के अनुगमन का जो प्रशस्त उपदेश दिया है उसे महाराजा विभूतिनारायण जी यथासाध्य अपने जीवन में पालन करते हैं और सफलतापूर्वक पालन करते हैं—

येनास्य पितरो याता येन याता पितामहाः।
तेन यायात् सतां मार्गं तेन गच्छन् न रिष्यति॥

मनु स्मृति (४।१७८)

फलतः वर्तमान महाराजा का संस्कृत की अभिवृद्धि का प्रयास नितान्त श्लाघनीय एव अनुकरणीय है। काशी की धार्मिक जनता की दृष्टि में काशिराज का गौरव एवं उच्च सम्मान नितान्त अक्षुण्ण है जो हरहर महादेव के उच्च अभिवादन से अभिव्यक्त होता है।

शताधिक वर्षों से चलने वाली **रामलीला** का वर्तमान महाराजा बड़ी निष्ठा, आस्था तथा आदर से उसके पूर्ण वैभव के साथ आज भी प्रतिवर्ष सम्पादन करते हैं, यह उनकी धार्मिक प्रवृत्ति का उज्ज्वल प्रतीक है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ६

काशीस्थ पण्डितों की सामान्य विशेषताएँ

काशी के पण्डितों में कुछ ऐसी विशेषताएँ थीं जो प्रायः सभी में समान रूप से पायी जाती थीं। इन विद्वानों में सादा जीवन, उच्च विचार, स्वभाव में सरलता, व्यवहार में कृत्रिमता का नितान्त अभाव, सच्चरित्रता, धार्मिकता आदि ऐसे गुण विद्यमान थे जो सामान्य जनता के हृदय पर अमिट छाप डालने में समर्थ होते थे। गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज के अंग्रेज प्रिन्सिपल तथा विदेशी विद्वान् भी इनके पाण्डित्य से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके।

काशी के इन पण्डितों की सामान्य विशेषताओं को निम्नांकित सात वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(क) धार्मिक जीवन (दिनचर्या)
(ख) निःशुल्क विद्या दान
(ग) शास्त्रार्थ-पटुता
(घ) वाणी की उदारता परन्तु लेखन में बद्धमुष्टिता
(ङ) संस्कृत के प्रति प्रगाढ़-प्रेम
(च) सादा जीवन, उच्च विचार
(छ) वेदों का शुद्ध उच्चारण

इन्हीं विषयों का संक्षेप में यहाँ विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

(क) काशी के पण्डितों की दिनचर्या— धार्मिक जीवन

काशिकेय पण्डितों की दिनचर्या की रामकहानी अपने आप में एक गम्भीर रहस्य सँजोये विराजमान है। वह गम्भीर रहस्य है उनकी आध्यात्मिकता, तापस वृत्ति एवं पूजा-अर्चा के प्रति नैसर्गिक निष्ठा। विशिष्ट पण्डितों की ओर दृष्टिपात करते हुए यह दिनचर्या अंकित की जाती है। वे प्रातःकाल भगवती भागीरथी में स्नान करने के अभ्यासी थे। तदन्तर भूतभावन बाबा विश्वनाथ का अभिषेक तथा काशीपुराधीश्वरी भगवती अन्नपूर्णा का दर्शन एवं सप्तशती का पाठ उनकी जीवनधारा की एक सामान्य दिशा थी। जो पण्डित अन्नपूर्णा जी से दूर रहता था वह अपने ही आवास पर सप्तशती का पाठ भले ही करे परन्तु भगवती का दर्शन कभी न कभी दिन में अवश्य करता था। काशी के संस्कृत कालेज में अध्यापनकाल प्रायः पूर्वाह्न में होता था। अतएव पूर्वाह्न में अध्यापन का कार्य समाप्त कर वह अपने आवास पर भोजनादि कार्यों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का विधिवत् सम्पादन करता था तथा कुछ समय विश्राम करने के पश्चात् वह अपने छात्रों के अध्यापन मे पुनः प्रवृत्त हो जाता था। यह व्यापार सायंकाल तक चलता रहता था। सन्ध्यावेला में वह काशी के परिसर में विद्यमान उद्यानों एवं बगीचों में अवश्य जाता था अकेले नहीं, प्रत्युत अपने मित्रों के साथ, परन्तु अधिकतर अपने छात्रों के साथ; जिन्हें वह रास्ते में भी शास्त्रीय विषयों का चिन्तन कराता चलता था। वह शास्त्रार्थ करने की पद्धति का रहस्य भी बतलाता चलता था। इस प्रकार 'बहरी तरफ' से निपट कर घर लौटने पर वह अन्य उपस्थित छात्रों को पढ़ाया करता था और यह प्रक्रिया बहुत रात तक चलती रहती थी। वह रात्रि बेला में अपने भी पठनीय एवं अभ्यसनीय ग्रन्थों का मनन-चिन्तन किया करता था। इस प्रकार उसका जीवन पूजा-अर्चा तथा अध्ययन-अध्यापन के सुवर्णमय संयोग से सम्पन्न था। यही थी उसकी दिनचर्या की एक सामान्य प्रणाली। काशी के पण्डित सरस्वती की गम्भीर उपासना में ही अपना समय बिताते थे। इन पण्डितों का आवास ही स्वतः एक महनीय विद्यालय था जहाँ वे निष्ठापूर्वक अपने अधीत शास्त्रों का विधिवत् अध्यापन कर भगवती सरस्वती की दिव्य आराधना में अपना समय बिताते थे।

इन पण्डितों की जीविका के प्रधान साधन थे पाठशालीय अध्यापन तथा विद्वत्सभा का सेवन। काशी में भारतवर्ष के राजाओं ने अपने-अपने विद्यालयों की स्थापना की थी। उनका एकमात्र लक्ष्य था संस्कृत विद्या की उन्नति जिसके द्वारा भारतीय धर्म तथा आचार-विचार की सुचारु रूप से रक्षा हो सके। ये राजा संस्कृत विद्यालयों की स्थापना कर संस्कृत विद्या के प्रचार को अपने धर्म का अविभाज्य अंग मानते थे। यह उनका धार्मिक कृत्य था जिसके लिए अपनी शक्ति के अनुसार एक विशिष्ट धनराशि की व्यवस्था राजकीय कोष से प्रतिवर्ष की जाती थी।

गंगा के घाटों का निर्माण भारतीय राजाओं की धर्मनिष्ठा का ही एक समुज्ज्वल प्रतीक है। घाटों के निर्माण के अनन्तर वे देवताओं के मन्दिरों का भी निर्माण करते थे जहाँ पूजन-अर्चन के लिए सुन्दर आर्थिक व्यवस्था की गई थी। यहाँ पाठशालाएँ भी स्थापित की जाती थीं जहाँ विद्यार्थियों के लिए तथा निर्धन व्यक्तियों के भोजन-छाजन के निमित्त 'अन्न सत्र' का भी प्रबन्ध था। फलतः संस्कृत के विद्यार्थी अपने भोजन छाजन के लिए कभी चिन्तित नहीं रहते थे। इसीलिए काशी में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि 'सत्रे भोजनं, मठे निद्रा'। अर्थात् काशी का छात्र सत्र में भोजन तथा मठ या मन्दिर में शयन करके अपना जीवन सुखपूर्वक बिताता था। सत्र में भोजन तथा पाठशाला में अध्ययन—इन दोनों की समुचित व्यवस्था से वह निर्धन छात्र संस्कृत का विशिष्ट विद्वान् बन कर अपने घर लौटता था और काशी में अभ्यस्त शास्त्रों की शिक्षा-दीक्षा से अपने जीवन को सुचारु रूप से बिताता था। इसके साथ ही अपने सुन्दर आचार-विचार से स्थानीय जनता का उपकार करता था। विद्यालयों के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्थापक राजा-महाराजाओं के द्वारा सम्पादित यह सुन्दर व्यवस्था वैदिक धर्म के उत्थान एवं प्रचार की साधिका बनती थी। इस प्रकार संस्कृत के प्रचार और प्रसार के द्वारा भारतीय संस्कृति के प्रसार की प्रतिष्ठा काशी में भारतीय नरेशों की कीर्ति कौमुदी को उजागर करती थी। मन्दिरों में पुराणों का प्रवचन पूर्वाह्न एव अपराह्न में विधिवत् होता था। इसके लिए पौराणिक पण्डितों की वृत्ति की सुचारु रूप से व्यवस्था थी। इस प्रकार काशी के पण्डितों को अपनी जीविका के लिए कभी चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी।

राजा, महाराजा, धनी-मानी श्रेष्ठी लोग काशी में विद्वानों की गोष्ठी का आयोजन प्रायः किया करते थे। इस गोष्ठी में पण्डित लोग अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन करने के लिए आपस में शास्त्रार्थ किया करते थे। इसमें जय पराजय का कोई प्रश्न नहीं होता था, बल्कि यह शास्त्रार्थ केवल मनोरंजन तथा विद्वज्जन विनोद के लिए हुआ करता था। शास्त्रार्थ के अन्त में उस गोष्ठी में समागत सभी पण्डितों को समान रूप से दक्षिणा तथा मिष्ठान्न दिया जाता था। इसी विद्वद् गोष्ठी को 'पण्डित सभा' के नाम से पुकारा जाता था।

पण्डित सभा

काशी के पण्डितों के लिए इस पण्डित सभा का दुगुना उपयोग था। पहिला उपयोग तो उनके जीवन का प्रधान आर्थिक स्रोत होने के कारण था और दूसरा उपयोग उनकी विद्या-बुद्धि के परिष्कार का महनीय माध्यम होने के हेतु था। राजा-महाराजाओं के द्वारा पण्डित सभा के अनुष्ठान के लिए सुव्यवस्थित नियम बनाये गये थे। किसी राजा ने प्रतिमास सभा करने का नियम निर्धारण कर दिया था, तो किसी ने प्रत्येक पक्ष में उसका विधान बनाया था। विजयादशमी, दीवाली, होली, नवरात्र आदि प्रमुख धार्मिक उत्सवों पर तो सभा अवश्यमेव की जाती थी। धनी-मानी, धनाढ्य सेठ भी कभी-कभी काशी के विद्वानों के समादर एवं सत्कार करने के लिए इसकी योजना किया ही करते थे। फलतः काशी में सभाएँ आयेदिन होती ही रहती थीं। यह पण्डितों की जीविका का एक महनीय साधन था। इसका दूसरा उपयोग और भी गम्भीर एवं आदरणीय था। काशी की पण्डित सभाएँ विद्वानों की विद्या-बुद्धि, शास्त्रीय चिन्तन तथा दार्शनिक अनुशीलन के विकास के निमित्त निःसन्देह एक शक्तिशाली माध्यम थीं। शास्त्रार्थ में समस्या का समाधान सद्यः करना पड़ता था। इसलिए पण्डितों को ग्रन्थों की पूरी तैयारी करनी पड़ती थी—नयी-नयी कोटि-कल्पना से परिचय पाने का उन्हें अवसर मिलता था। असमाधेय प्रश्नों के उत्तर जानने के लिए उनके हृदय में तीव्र लालसा का उदय होता था। तात्पर्य यह है कि काशिकेय विद्वानों के सारस्वत विकास एवं बुद्धि वैभव के प्रदर्शन के निमित्त पण्डित सभाएँ बहुत ही समर्थ साधन होती थीं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशी के पण्डितों की बुद्धि की उत्तरोत्तर चमत्कारिणी अभिवृद्धि के लिए सभा की उपादेयता नितान्त होती थी और इन्हीं सभाओं के फलस्वरूप वे बाहर जाकर अपनी विद्वत्ता का सिक्का अन्यप्रान्तीय विद्वानों पर जमाने में कृतकार्य होते थे। सावन के महीने में दुर्गाजी के मन्दिर के परिसर में एवं नागकुआँ पर छात्रों की सभाएँ शिक्षण कार्य करती थीं। व्याकरण शास्त्र में परिष्कार पद्धति के उपबृंहण में एवं अभिवृद्धि में इन सभाओं का विशेष योगदान था। प्रश्नों के उत्तर में विद्वान् लोग अपनी बुद्धि का वैभव दिखला कर श्रोता मण्डली को चमत्कृत किया करते थे। आजकल शास्त्रार्थ के दुर्दिन का समय है। शास्त्रों के अध्ययन के प्रति निष्ठा के अभाव का साम्राज्य चारों ओर छाया हुआ है। ऐसी विपन्नावस्था में शास्त्रार्थ की प्रबुद्ध शैली को समाप्त होने से बाबा विश्वनाथ ही बचावें– यही उनसे हमारी विनम्र प्रार्थना है।

उस युग में वेद के अध्ययन के प्रति भी छात्रों के हृदय में विशेष उत्सुकता थी और शास्त्रों की शिक्षा से पहिले अपनी शाखा वाली संहिता का आरम्भ में अध्ययन करना अनिवार्य माना जाता था। बाल्यकाल में अधीत वेद का भविष्य में बड़ा ही कल्याणकारी परिणाम होता था। महाराष्ट्र पण्डितों में वेदाध्ययन के प्रति तात्त्विक निष्ठा थी और इसीलिए वे श्रौतयाग के सम्पादन में बड़े दक्ष होते थे। काशी-मण्डल के ब्राह्मणों में वेद के प्रति श्रद्धा का उदय धीरे-धीरे सम्पन्न हुआ। यही कारण है कि बालशास्त्री में शास्त्र-पाण्डित्य के साथ-साथ वैदिक कर्मकाण्ड का ज्ञान भी मणिकाञ्चन-योग माना जाता था और इसीलिए वे श्रौतयागों के सम्पादन में स्वयं ही ऋत्विक् का कार्य करते थे। अपने जीवन की सन्ध्यावेला में उन्होंने अग्निष्टोम का विधान बड़े आग्रह एवं निष्ठा के साथ किया था। पण्डित गङ्गाधर शास्त्री भी वेद एवं शास्त्र दोनों विषयों के अगाध पण्डित थे। उत्तर भारतीय ब्राह्मणों में पं० युगलकिशोर पाठक एवं उनके सुयोग्य शिष्य महामहोपाध्याय पं० प्रभुदत्त गौड़ तथा उनके सुपुत्र महामहोपाध्याय पं० विद्याधर गौड़ इस विषय के परिनिष्ठित विद्वान् माने जाते थे। दुःख की बात है कि शास्त्रों के अध्ययन के समान, वेदों का भी अनुशीलन इस समय ह्रास पर है। भगवान् की अनुकम्पा से ही इसका पुनरुद्धार हो सकेगा ऐसी आशा करना सर्वथा समुचित है।

(ख) निःशुल्क विद्या दान

काशी के पण्डितों की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे छात्रों को निःशुल्क विद्या-दान दिया करते थे। ये विद्यालय में अध्यापन करने के पश्चात् छात्रों को अपने घर पर भी पढ़ाते थे। परन्तु कभी किसी पण्डित ने किसी छात्र से एक पैसा भी शुल्क नहीं लिया। आजकल के युग में जब आधुनिक अध्यापक अपने अध्यापन कार्य का मूल्यांकन प्रति घण्टे रुपयों के हिसाब से करते हैं और चाँदी के टुकड़ों को

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये बिना अध्यापन की बात भी नहीं करते, तब इन पण्डितों का निःशुल्क अध्यापन अलौकिक त्याग का निःसन्देह अनुपम आदर्श है। पण्डित गंगाधर शास्त्री के विषय में यह कहा जाता है कि उनके यहाँ अध्ययन करने वाले छात्रों की भीड़ लगी रहती थी। घर में, निवास स्थान में जगह का अभाव होने के कारण छात्र गली में खड़े रहते थे। छात्रों की एक टोली के पढ़ने के पश्चात् ही दूसरी टोली पढ़ने के लिए घर के भीतर जाती थी। 'तिवारी जी' तथा 'महाशय जी' के विषय में भी यही बात सुनी जाती है। इन गुरुओं को अपने छात्रों को निःशुल्क विद्या-दान का व्यसन-सा था और वे दिन-रात अध्यापन में ही अपना जीवन बिताते थे। कुछ अध्यापक तो अपने छात्रों को निःशुल्क भोजन तथा आवास भी देते थे अथवा इसका प्रबन्ध कर देते थे।

(ग) शास्त्रार्थ पटुता

काशी व्याकरण तथा न्यायशास्त्र के अध्ययन की केन्द्रस्थली रही है। महर्षि पतञ्जलि की कर्मस्थली होने के कारण काशी व्याकरण शास्त्र के अध्ययन की पीठ-स्थली रही है। अतः यहाँ के विद्वान् व्याकरण, वेदान्त, न्याय और धर्मशास्त्र में शास्त्रार्थ करने में अत्यन्त पटु तथा प्रवीण थे।

वैयाकरण-केसरी म० म० पण्डित दामोदर शास्त्री और मैथिल पण्डित बच्चा झा में जो प्रचण्ड ऐतिहासिक शास्त्रार्थ हुआ था वह अब इतिहास की वस्तु बन गया है। इन दोनों पण्डितों के गम्भीर शास्त्रार्थ को देखने के लिए विद्वानों के अतिरिक्त साधारण जनता भी हजारों की संख्या में उपस्थित हुई थी। आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती से काशी के अनेक सुप्रसिद्ध विद्वानों—जिनमें पंडित बाल-शास्त्री भी सम्मिलित थे—का जो सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुआ था वह आर्य समाज के इतिहास की एक प्रसिद्ध घटना है। स्वामी जी ने शास्त्रार्थ में सर्वत्र विजयश्री प्राप्त की थी परन्तु काशी के पण्डितों के समक्ष उन्हें भी अपनी पराजय स्वीकार करनी पड़ी थी, आज भले ही उनके अनुयायी इस बात को न मानें।

काशी के मूर्धन्य विद्वान् म० म० पण्डित गंगाधर शास्त्री का वल्लभ सम्प्रदाय के विख्यात विचक्षण पण्डित प्रज्ञाचक्षु श्री गट्टूलाल जी से गोपाल मन्दिर में जो प्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुआ उसकी स्मृति आज भी विद्वानों में जागरूक है। इस शास्त्रार्थ में विजयश्री ने पंडित गंगाधर शास्त्री को वरण किया था।

उन दिनों काशी में आयेदिन 'सभा' आयोजित हुआ करती थी। इन सभाओं में समागत विद्वान् पहिले शास्त्रार्थ करते थे और इसके उपरान्त ही दक्षिणा को स्वीकार करते थे। नागपंचमी के दिन काशी के नागकुआँ पर पण्डितों तथा छात्रों के आपस में शास्त्रार्थ करने की परम्परा आज भी प्रचलित है। किम्बहुना, आज भी विवाह के अवसर पर कन्या और वर पक्ष के विद्वान् आपस में नाना उपयोगी प्रमेयों पर शास्त्रार्थ किया करते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन काल में किसी विद्वान् व्यक्ति की विद्वत्ता की परीक्षा करने के लिए शास्त्रार्थ ही निकषग्रावा स्वीकार किया जाता था। यह परम्परा काशी में आधुनिक काल तक विद्यमान रही है। परन्तु दुःख है कि अब धीरे-धीरे इस परम्परा का ह्रास होने लगा है। अभी कुछ वर्षों पूर्व तक काशी में पण्डित हाराणचन्द्र भट्टाचार्य तथा पण्डित पूर्णचन्द्राचार्य बहुत बड़े शास्त्रार्थी थे जो व्याकरण शास्त्र में वाद-विवाद करने में बड़े ही प्रौढ़ एवं प्रसिद्ध थे। सच तो यह है कि अध्यापन के साथ ही शास्त्रार्थ करना काशी के पण्डितों का व्यसन था और वे इस कला में अत्यन्त निपुण थे। किसी पण्डित के पाण्डित्य को परखने के लिए शास्त्रार्थरूपी मौखिक परीक्षा एक अचूक माध्यम तथा साधन था। यहाँ के काशीस्थ विद्वानों ने इसमें अपूर्व सफलता प्राप्त की थी—इसमें किसी को शंका के लिए तनिक भी स्थान नहीं है।

(घ) वाणी की उदारता परन्तु लेखन में बद्धमुष्टिता

काशी के पण्डित वाणी के बड़े ही धनी थे। ये वाग्वैभव से अत्यन्त सम्पन्न थे। इनकी शास्त्रार्थ पटुता की चर्चा अभी पिछले पृष्ठों में की जा चुकी है। इन विद्वानों की वाग्मिता प्रसिद्ध थी। किसी शास्त्रीय विषय को लेकर लगातार घंटों तक उसका विवेचन करते रहना इनके बायें हाथ का खेल था। ये वावदूक ही नहीं, वाग्मी भी थे।

परन्तु यह दुःख का विषय है कि ये विद्वान् वाग्वैभव से जितने ही समृद्ध थे, विद्या दान में जितने ही दानी थे वे लेखन कर्म में उतने ही बद्धमुष्टि थे। इसका प्रधान कारण यह था कि शास्त्रों के अध्ययन तथा अध्यापन में ये इतने निमग्न रहते थे कि इन्हें ग्रन्थ-लेखन के लिए अवकाश ही नहीं मिलता था। दूसरा कारण यह था कि इनकी प्रतिभा मौखिकी थी। यही कारण है कि इनकी लेखनी की प्रतिभा का प्रसाद हमें प्राप्त नहीं हो सका। म० मं० पं० कैलासचन्द्र शिरोमणि जैसे दुर्धर्ष नैयायिक तथा म० मं० पं० हाराणचन्द्र भट्टाचार्य जैसे प्रकाण्ड वैयाकरण ने अपनी विद्वत्ता को रिक्थ रूप में अग्रिम पीढ़ियों के लिए कुछ भी नहीं छोड़ा। म० म० पं० गंगाधर शास्त्री जैसा साहित्य का गंभीर ज्ञाता तथा सरस कवि नैषधीय चरित के समान किसी अन्य महाकाव्य की रचना में पूर्णतया सक्षम था, परन्तु उन्होंने भी 'अलिविलासि-संलाप' को छोड़कर अपनी अलौकिक काव्य-पटुता का प्रसाद हमें नहीं दिया। कहने का आशय यह है कि केवल दो-चार विद्वानों के अपवाद को छोड़कर अधिकांश ने सुरभारती के भाण्डार को भरने की कृपा नहीं की।

(ङ) संस्कृत साहित्य से प्रगाढ़ प्रेम

काशी के विद्वानों का संस्कृत से प्रगाढ़ प्रेम था। इनका जीवन संस्कृतमय था यदि यह कहा जाय तो कुछ भी अत्युक्ति न होगी। ये पण्डितगण भारतवर्ष के विभिन्न राज्यों से अपना घर-बार छोड़कर सुदूर काशी में केवल विद्याध्ययन के लिए आये।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनमें से कोई मिथिला से आया था तो कोई बंगदेश से। कोई महाराष्ट्र से पधारा था—तो कोई तमिल देश से। कोई कर्णाटक का निवासी था तो कोई आन्ध्र प्रदेश का। किसी ने पंजाब से पदार्पण करने का कष्ट किया था तो किसी ने राजस्थान से। परन्तु इन सभी विद्वानों का एकमात्र लक्ष्य था काशी में आकर संस्कृत के विभिन्न शास्त्रों का अध्ययन।

इन पण्डितों ने यावज्जीवन संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन किया। धर्मशास्त्रों में वर्णित आचार का पालन किया। यद्यपि इनकी मातृभाषा तमिल, तेलुगु, कन्नड़, गुजराती, मराठी, मैथिली, बंगला और पंजाबी थी तथापि इन्होंने अपनी भाषा में ग्रन्थों की रचना न करके केवल संस्कृत में ही ग्रन्थों का प्रणयन किया। यद्यपि एक-दो विद्वान् इस नियम के अपवाद हो सकते हैं तथापि उन्होंने भी अपनी प्रधान तथा महत्त्वपूर्ण कृतियों की रचना केवल संस्कृत में ही की। संस्कृत इनके विचारों के प्रकाशन की वाणी थी और संस्कृत ही इनके जीवन की प्रक्रिया थी जिसका निर्वाह इन्होंने यावज्जीवन किया।

(च) सादा जीवन, उच्च विचार

काशी के पण्डितों का जीवन अत्यन्त सरल और कृत्रिमता से रहित था। ये 'सादा जीवन, उच्च विचार' के ज्वलन्त प्रतीक थे। इन्होंने अपने जीवन में बनावटीपन को कभी स्थान नहीं दिया। इनकी वेश-भूषा बड़ी साधारण होती थी। प्राचीन ऋषियों की भाँति ये प्रायः अधोवस्त्र (धोती) और उत्तरीय (चादर) को ही धारण करते थे। यही इनकी सामान्य वेशभूषा थी। दाक्षिणात्य पण्डित अपने सिर को मराठी पगड़ी से सुशोभित करते थे जो बड़ी सुन्दर होती थी। उत्तर भारत के विद्वान् सिर पर रेशमी अथवा सूती पगड़ी बाँधते थे। इनकी देह में अंगरक्षा विराजती थी और पैरों में साधारण उपानह या जूता। इनकी वेशभूषा में न तो किसी बनावट का स्थान था और न कृत्रिमता के लिए जगह।

ऐसा सादा तथा साधारण जीवन बिताने पर भी इन मनीषियों का विचार अत्यन्त उच्च था। ये ब्रह्म, जीव, जगत्, आत्मा और परमात्मा का सदा चिन्तन किया करते थे; भारतीय दर्शन के उच्च विचारों में सदा निमग्न रहते थे। कुछ पण्डितों ने तो घर-गृहस्थी के झंझटों को त्याग कर अध्ययन, मनन और निदिध्यासन में ही अपनी वृत्ति रमा ली थी। काशी में गंगा में स्नान तथा बाबा विश्वनाथ का दर्शन ही इनके जीवन का ध्येय था। ऐसे ही एक विद्वान् ने संस्कृत के पण्डितों का प्रतिनिधित्व करते हुए अपने विषय में उचित ही कहा था :—

"अधीतमध्यापितमर्जितं यशः, न चिन्तनीयं किमपीह भूतले।
अतः परं श्री भवनाथशर्मणो, मनो मनोहारिणि जाह्नवीतटे॥"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(छ) काशीस्थ विद्वानों की उच्चारण-शुद्धि

काशी के विद्वानों का वेद तथा लौकिक संस्कृत का उच्चारण अत्यन्त शुद्ध तथा आदर्श माना जाता है। यहाँ के महाराष्ट्र पण्डित वैदिक मन्त्रों का जैसा शुद्ध उच्चारण करते थे और आज भी करते हैं वह आदर्श तथा मानक (स्टैण्डर्ड) माना जाता था और आज भी माना जाता है। काशी के पण्डितों के उच्चारण की विशेषता की ख्याति केवल इस देश में ही सीमित नहीं थी, बल्कि वह सुदूर विदेशों में भी फैली हुई थी। इस प्रसंग में एक विशेष घटना का उल्लेख करना आवश्यक है जिससे ज्ञात होता है कि विदेशी विद्वानों को भी काशी के पण्डितों के शुद्ध उच्चारण पर कितनी आस्था थी।

आज से लगभग पचहत्तर वर्ष पूर्व की यह घटना है। उस समय गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस के प्रिन्सिपल डा० वेनिस थे और म० म० पं० सुधाकर द्विवेदी कालेज के प्रथम पण्डित थे। उसी काल में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् डा० मैकडानल संस्कृत विभाग के अध्यक्ष थे और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में डा० रैप्सन संस्कृत की अध्यक्षता कर रहे थे। ये दोनों ही वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इन दोनों विद्वानों में वेद की किसी ऋचा के उच्चारण में स्वर-संबंधी विवाद खड़ा हो गया। एक विद्वान् का कथन था कि वैदिक प्रातिशाख्य के अनुसार उस मंत्र के उच्चारण में उदात्त स्वर का प्रयोग होना चाहिए परन्तु दूसरे विद्वान् की सम्मति में उसका उच्चारण स्वरित में होना ही समुचित था। इन दोनों मनीषियों में स्वर-संबंधी यह विवाद इतना बढ़ गया कि अन्त में दोनों ने यही निश्चिय किया कि इसका निर्णय काशी के वैदिक विद्वान् ही कर सकते हैं। उक्त ऋचा का वे जिस स्वर में उच्चारण करते हैं उसी को ठीक तथा प्रामाणिक माना जाएगा।

गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, काशी के तत्कालीन प्रिन्सिपल डा० वेनिस के पास यह सूचना भेजी गई कि वे काशी के वैदिक पण्डितों से उस मंत्र का शुद्ध उच्चारण करवा कर, उसका रेकार्ड तैयार करावें तथा उसे इङ्गलैण्ड भेज दें। डा० वेनिस ने अपने गुरु पं० गंगाधर शास्त्री को यह काम सौंपा। शास्त्री जी ने कालेज के वैदिक पण्डितों को इस कार्य के लिए कलकत्ता भेजने का प्रबन्ध किया क्योंकि उन दिनों काशी में कोई रेकार्डिङ्ग कम्पनी नहीं थी। वहाँ जाकर इन पण्डितों ने विवादास्पद मंत्र के आगे पीछे अनेक मन्त्रों का सस्वर पाठ किया। उसका रेकार्ड तैयार किया गया और उसे इङ्गलैंड भेजा गया। इस प्रकार इन दोनों अंग्रेज वैदिक विद्वानों के स्वरसम्बन्धी विवाद का निपटारा हुआ। उस वैदिक ऋचा की रेकार्डिङ्ग को सुनकर उन्हें पता चला कि उक्त मंत्र में किस स्वर को विशुद्ध मानना चाहिए। इस घटना से विदेशी वैदिकों का स्वर के प्रति आग्रह तथा जिज्ञासा दिखाई पड़ती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस घटना से यह भी पता चलता है कि काशी के वैदिक विद्वानों के विशुद्ध उच्चारण के सम्बन्ध में विदेशी वैदिकों की भी कितनी ऊँची आस्था थी।[1]

इस प्रसंग में शब्दों की उच्चारण विधि के स्वरूप तथा विशुद्ध उच्चारण के नियमों का संक्षिप्त निरूपण यहाँ प्रस्तुत करना कथमपि अप्रासंगिक न होगा।

संस्कृत भाषा में उच्चारण की शुद्धता पर सबसे अधिक आग्रह है। वेद का एक महनीय अंग ही 'शिक्षा' के नाम से प्रख्यात है और 'शिक्षा' का अर्थ है उच्चारण की शिक्षा देनेवाला ग्रन्थ। वैदिक मन्त्रों के उच्चारण में यदि छोटी-सी भी त्रुटि हो जाती है, वर्ण की अथवा स्वर की, तो महान् अनर्थ उत्पन्न हो जाता है, और इस अनर्थ का भाजन स्वयं वृत्र को बनना पड़ा था, जिसे यज्ञ में स्वर के अपराध से लेने के देने पड़ गये थे। महर्षि पाणिनि ने व्याघ्री को अपने बच्चे को मुँह में ले जाते देखा था और उसी को उन्होंने वर्णोच्चारण-विधान में आदर्श माना। बोलनेवाले को चाहिए कि न तो वह वर्णों को काटे, न वर्णों को मुँह से बिखरने दे :

व्याघ्री यथा हरेत् पुत्रान् दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत्।
भीता पतन-भेदाभ्यां तद्वद् वर्णान् प्रयोजयेत्॥

(पाणिनीय शिक्षा, श्लोक २५)

स्वरों की तो महिमा ही अलग है। वेद में स्वरों के यथावत् निर्वाह के ऊपर मन्त्रों का उचित अर्थ भी आश्रित रहता है। अतः स्वरों का माहात्म्य एक विशिष्ट वस्तु है। जो व्यक्ति संस्कृत के शब्दों का ठीक-ठीक उच्चारण नहीं कर सकता वही 'म्लेच्छ' है। 'म्लेच्छ' शब्द में आरम्भ से ही, उच्चारण की ही भावना जागरूक है; धार्मिक भावना का उदय अवान्तर घटना है। जो व्यक्ति वैदिक धर्म का अनुयायी न हो उसे धर्मशास्त्रों ने 'म्लेच्छ' की संज्ञा अवश्य प्रदान की है, परन्तु मूलतः वही 'म्लेच्छ' है जो संस्कृत शब्दों का यथार्थतः उच्चारण नहीं कर सकता। इसीलिए, महाभाष्यकार पतञ्जलि का कथन है :

"तेऽसुरा हेलयो हेलय इति कुर्वन्तः पराबभूवुः।
तस्माद् ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवै, नापभाषितवै।
म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्दः॥"

इस वाक्य का अर्थ है कि असुर लोग 'हेलयः', 'हेलयः' कहते हुए पराजय को प्राप्त हुए। इसलिए, ब्राह्मण को चाहिए कि वह कभी गलत उच्चारण न करे। अपशब्द

---

१. स्वरों के सम्बन्ध में उक्त घटना का उल्लेख, गंगाधर शास्त्री के तत्कालीन पट्ट शिष्य तथा इस घटना के समसामयिक साक्षी व्याकरणाचार्य पण्डित केशवप्रसाद मिश्र (अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, हि० वि० वि०, वाराणसी) ने लेखक से किया था। इस घटना के यथार्थ होने में किसी भी प्रकार के संशय के लिए स्थान नहीं है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही म्लेच्छ कहलाता है। 'हेऽलयः', 'हेऽलयः' में अपशब्द क्या है ? इसके विषय में विभिन्न मत हैं। कैयट ने दोनों का उल्लेख प्रदीप में किया है। किसी का मत है कि यहाँ प्लुत तथा प्रकृति-भाव होना चाहिए था, जिनके न होने से यह अपशब्द हुआ। दूसरे आलोचकों की सम्मति में पदद्विर्वचन के स्थान पर वाक्य का द्विर्वचन तथा रेफ का लकार होना वहाँ म्लेच्छन है ('हेऽरयः' का 'हेलयः' होना)। शतपथ-ब्राह्मण में इस प्रसंग का दूसरा रूप मिलता है। वहाँ असुरों की पराजय 'हेलवो हेलवो इति वदन्तः' हेलव-हेलव कहने के कारण हुआ था। यहाँ यकार के स्थान पर वकार का प्रयोग अपशब्द हुआ। जो कुछ भी हो, असुरों की पराजय का कारण उच्चारण की त्रुटि थी, यह वेदों में माना गया है। अतः, सुसंस्कृत व्यक्ति के लिए अपशब्द का प्रयोग नितान्त निन्दनीय है।

भारत के विभिन्न प्रान्तों के निवासियों का सस्कृतोच्चारण अपनी विशिष्टता लिए हुए है, जिसका उल्लेख राजशेखर ने अपनी 'काव्यमीमांसा' (सप्तम परिच्छेद) में सुन्दरता से किया है। यह वर्णन मध्ययुगीय उच्चारण की विशिष्टता जानने में अनुसन्धानप्रेमियों के लिए परमोपयोगी है। आजकल भी भारत के प्रत्येक प्रान्त के निवासियों के उच्चारण में विलक्षणता दीख पड़ती है। प्राचीनकाल का शुद्ध वैदिक उच्चारण काशी के महाराष्ट्र वैदिकों के मुख से आज भी श्रुतिगोचर होता है। गुजरातियों के मुख में संस्कृत के अनेक शब्द विकृत हो जाते हैं। 'तुलसी' का 'तलसी' तथा 'मुकुन्द' का 'मकन्द' होना तो श्रोताओं को उतना नहीं खलता, जितना खलता है 'शिव' का 'शव' हो जाना। प्रातःकाल किसी गुजराती सज्जन के मुख से शव-शव की ध्वनि सुनते ही श्रोता के मन में विचित्र उद्वेग उत्पन्न होता है। इसीलिए, गुजराती उच्चारण पर यह व्यंग्योक्ति वस्तुतः तथ्योक्ति ही है :

'तुलसी तलसी जाता मुकुन्दोऽपि मकन्दताम्।
गुर्जराणां मुखं प्राप्य शिवोऽपि शवतां गतः॥'

बंगालियों के मुख से दन्त्य स, मूर्धन्य ष तथा तालव्य श के पारस्परिक विभेद का सर्वथा लोप होकर एकमात्र तालव्य शकार का उच्चारण ऐतिहासिक कारणों से है। अकार का गोल-मटोल ओकार के रूप में ही उच्चारण नहीं है, प्रत्युत एकार का ह्रस्व अकार के रूप में उच्चारण भी कम विचित्र नहीं है। 'रसगुल्ला' का 'रोसोगुल्ला' उच्चारण सुनकर यदि वक्ता के मुँह के मिठाई से भरपूर होने की सम्भावना से हम चमत्कृत होते हैं, तो 'केला' को 'कला' के रूप में कलकतिये रेल के डब्बों में बिकते हुए सुनकर हमें कम अचरज नहीं होता।

विभिन्न प्रान्तों के उच्चारणों में कभी-कभी आश्चर्यजनक साम्य भी दृष्टिगोचर होता है। यदि भोजपुरी में 'चहुँपना' सुनकर हम घबराते हैं, तो पंजाबी में 'आमदी' का 'मतबल' जानकर हमें कम आश्चर्य नहीं होता। यदि अवध के किसी निवासी के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुँह से 'फबेरे फबेरे मुँह फेंकारे फतुआ फटाफट फाँक आवा' सुनकर हमारे मुँह से हँसी का फौवारा फूट पड़ता है, तो हमें भूलना न चाहिए कि जापान का निवासी भी 'फिफ्टी' (Fifty) को सदा 'सिफ्टी' ही कहता है। प्राकृत में ही पकार का बकार नहीं होता, अपि तु आज भी अनेक मिस्र-निवासी मार्गदर्शक सायंकाल नमाज पढ़ने के समय Let me bray कहकर भारतीय यात्रियों को अचम्भित करता है (Pray= प्रार्थना करना; Bray = रेंकना, गधे की बोली)।

ध्यान देने की बात है कि मिस्र देश के अनेक निवासी पकार के स्थान पर बकार का ही उच्चारण करते हैं। उनकी यही प्रकृति है। फलतः सन्ध्या होने पर मिस्र का मार्गदर्शक गाइड नमाज पढ़ने के लिए जब किसी मसजिद में जाना चाहता है, तब वह आगन्तुक दर्शनार्थियों से प्रार्थना करने की बात कहकर कुछ समय के लिए अवकाश चाहता है। अंग्रेजी में उसे कहना चाहिए—लेट मी प्रे (Let me pray = मुझे नमाज पढ़ने का हुकुम दीजिए), परन्तु 'प' के स्थान 'ब' के विनिमय के कारण वह कह उठता है – लेट मी ब्रे Let me bray)। अंग्रेजी में ब्रे का प्रयोग गदहे के रेंकने के लिए होता है। फलतः मिस्री गाइड के वाक्य का अर्थ होता है— मेहरबानी कर मुझे रेंकने दीजिए और उच्चारण वैषम्य से अर्थ का यह विकार-वैषम्य हँसी का प्रधान कारण बन जाता है। काशी के ही शिक्षाविद् पण्डित रामनारायण मिश्र ने अपने 'यात्रा-विवरण' में इस हास्योत्पादिनी घटना का उल्लेख किया है।

उच्चारण की विशिष्टता पर आज भी नामकरण का विधान पाया जाता है। पतञ्जलि ने महाभाष्य में 'यर्वाणः तर्वाणः' नामक ऋषियों का उल्लेख किया है जो 'यद्वानः, तद्वानः' के स्थान पर यही विलक्षण उच्चारण किया करते थे।[1] आज भी लड़के विचित्र उच्चारण के बल पर अपने अध्यापकों को विचित्र नाम दे डालते हैं। अँगरेजी के एक प्रोफेसर साहब Calculation (कैलकुलेशन) शब्द का 'कालकुलेशन' उच्चारण किया करते थे, फलतः उनका नाम ही हो गया कालकुलेशन साहब। संस्कृत के एक पण्डित जी 'ज्ञ' का उच्चारण 'ज्यँ' के समान करते थे। फलतः, उनका नाम ही छात्रों ने 'ज्याँनी' जी रख छोड़ा था।

उच्चारण की गलतियों का उल्लेख पाणिनि ने अपने सूत्रों में किया है।[2] परीक्षा काल में एक गलती या अप-पाठ करनेवाला व्यक्ति 'ऐकान्यिक'[3] तथा दो गलतियाँ

---

१. एवं हि श्रूयते 'यर्वाणस्तर्वाणो नाम ऋषयो बभूवुः। ते तत्रभवन्तो 'यद्वानस्तद्वान' इति प्रयोक्तव्ये यर्वाणस्तर्वाण इति प्रयुञ्जते। (महाभाष्य, पस्पशाह्निक)

२. कर्माध्ययने वृत्तम् ४।४।६३; वहूवृचूपूर्वपदात् ठच् ४।४।६४।

३. यस्याध्ययने प्रवृत्तस्य परीक्षाकाले विपरीतोच्चारणरूपमेकं स्खलितं जातम्।
(कौमुदी)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेवाला व्यक्ति 'द्वैयन्यिक' कहलाता है। जो व्यक्ति बारम्बार अशुद्ध स्वरों का उच्चारण करता है, उसके लिए 'पदं मिथ्या कारयते' का प्रयोग काशिका में किया गया है। एक बार अशुद्ध उच्चारण के लिए 'कारयति' का प्रयोग होता है, अर्थात् बारम्बार अशुद्ध उच्चारण करने पर 'कारयते' आत्मनेपद का प्रयोग समुचित माना जाता है। इसके लिए पाणिनि का विधान इस सूत्र में है—'मिथ्योपपदात् कृञोऽभ्यासे' (१।३।७१)।

उच्चारण की गलती करनेवाले छात्र को दण्ड देने की विधि भी प्राचीन भारत में विचित्र थी। पतञ्जलि ने उदात्त के स्थान पर अनुदात्त की गलती करनेवाले छात्र के लिए लिखा है कि उसके अध्यापक छात्र को चपत रसीद करते थे—'चपेटा' देते थे। यही प्राचीन विधि है, और हाल तक हमारे गुरु लोग भी उच्चारण की शिक्षा के लिए इस विधान को विशेष उपयोगी पाते थे। परन्तु, पुरानी बाइबिल में 'शकार' का शुद्ध उच्चारण न करने के कारण ऐसे जघन्य दण्ड का विधान पाया जाता है, जिसे सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यहूदी लोगों में एक जाति थी, जिसका नाम था 'इफ्रैमाइट'। इसने बगावत की थी और इसे दण्ड देने की विचित्र व्यवस्था की गई थी —'शिब्बोलेथ' (Shibboleth) शब्द का शुद्ध उच्चारण। 'शिब्बोलेथ' यहूदी शब्द है, जिसका अर्थ होता है 'अनाज की बाली'। परन्तु उस जाति के लोगों की जीभ ही ऐसी थी कि तालव्य शकार का उच्चारण नहीं कर सकती थी, फलतः वह दन्त्य सकार ही बोल सकती थी, ठीक उसी तरह जैसे आज के स्पेन तथा लिथुएनिया के निवासी श के स्थान पर दन्त्य सकार ही बोल सकते हैं; यहूदी लोगों ने, इस जाति के सभी लोगों को, जिनकी संख्या ४२ हजार थी, मृत्यु के घाट उतार दिया। जोर्डन नदी के घाटों पर नदी पार करने के स्थानों पर यह दुर्घटना घटी थी। ऐसे दण्ड की नैतिकता पर टीका करना व्यर्थ है। इतना जान लीजिए कि इस पूरी जाति को उच्चारण-सम्बन्धी त्रुटि के लिए एक महान् दण्ड सहना पड़ा था और उसका उच्छेद सदा के लिए हो गया। बाइबिल में इस विचित्र घटना का उल्लेख किया गया है।[1]

अशुद्ध उच्चारण के निमित्त इससे घोरतम दण्ड की कल्पना शायद ही की जा सकती है। इसमें प्रतिहिंसा की भावना ही अधिक व्यापक तथा बद्धमूल है। भगवान् बचाये शुद्ध उच्चारण के ऐसे दुराग्रह से !!!

---

1. ".....and he said Sinboleth; for he could not frame to pronounce it right; then they laid hold on him, and slew him at the fords of Jordan : and there fell at that time of Ephraim forty and two thousand."

—Old Testament; The Judges, XII, (R. V.)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ७

आक्षेपों का निरसन

(क) राष्ट्रभाषा की उपेक्षा

काशी के संस्कृत विद्वानों पर यह दोषारोपण—और वह भी आग्रहपूर्ण—लगाया जाता है कि वे राष्ट्रभाषा हिन्दी से अनभिज्ञ होते थे तथा उसकी घोर उपेक्षा करते थे। परन्तु यह आरोप नितान्त मिथ्या है एकदम झूठ, सरासर झूठ। हिन्दी में काव्य-रचना करना ही हिन्दी प्रेम के परिचय का प्रमापक नहीं है। अनेक संस्कृत विद्वानों ने हिन्दी में काव्यों की रचना की है। ध्यान देने की बात तो यह है कि काशी की विद्वन्मण्डली भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों से आकर यहाँ जमी थी। पण्डितों की मातृभाषाएँ भिन्न-भिन्न थीं। महाराष्ट्री, तेलुगु तमिल, बंगाली, मैथिली, गुजराती, राजस्थानी आदि भाषाएँ काशिकेय संस्कृत पण्डितों की मातृभाषाएँ थीं जिन्हें वे परिवार के परिचित व्यक्तियों से बोलबाल में प्रयोग करते थे। परन्तु वे राष्ट्रभाषा हिन्दी से कथमपि अनभिज्ञ नहीं थे। संस्कृत विद्यालयों में देववाणी हो निश्चय रूप से शिक्षण की माध्यम भाषा थी जिसका प्रयोग गुरुजन छात्रों से अपने भावों को प्रकट करने के लिए किया करते थे। परन्तु जब छात्र शास्त्रीय तथ्यों को संस्कृत के माध्यम से हृदयंगम नहीं कर सकता था, तब उसे समझाने के लिए गुरुजन हिन्दी का ही प्रयोग किया करते थे। फलतः इन संस्कृत विद्यालयों में हिन्दी द्वितीय भाषा के रूप में व्यवहृत होती थी। वह संस्कृत पण्डितों के द्वारा कथमपि उपेक्षित नहीं की जाती थी।

उस युग के पण्डितों ने जनता को समझाने के लिए जिन ग्रन्थों का प्रणयन किया, उनकी भाषा निश्चयेन हिन्दी ही थी। उस युग में दर्शन, ज्योतिष, गणित, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र तथा वेदान्त के ग्रन्थों का मूल संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद करने का कार्य पण्डितों ने बड़े उत्साह तथा लगन के साथ किया। मराठी भाषाभाषी म० म० पण्डित बापूदेव शास्त्री ने 'बीजगणित' का प्रणयन हिन्दी में किया जो बम्बई से १८५० ई० में प्रकाशित हुआ। उस युग में अभी तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा प्रवर्तित एवं परिशोधित 'हरिश्चन्द्री हिन्दी' का जन्म भी नहीं हुआ था।

भारतेन्दु युग को महती देन है—भाषा को नया परिधान। भारतेन्दु जी १८७३ ई० को वर्तमान हिन्दी के सूत्रपात का वर्ष मानते हैं। जिस हिन्दी की संरचना उस समय की गई, वह न तो फारसी शब्दों को अपने में समेटे थी और न वह संस्कृत के शब्दों के द्वारा बोझिल थी। काशी की जनता की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोलचाल की भाषा का ही मुख्य आधार उसमें विद्यमान था और उसी का परिष्कृत रूप हम आज अपने व्यवहार में लाते हैं। ध्यान देने की बात है कि बापूदेव शास्त्री के ऊपर निर्दिष्ट ग्रन्थ की भाषा यही हिन्दी है जिसे हम बोलते हैं और समझते-बूझते हैं। उन्होंने मराठीभाषी होते हुए भी जनता के लिए निर्मित अपने ग्रन्थ में १८७३ ई० से लगभग २५ वर्ष पूर्व ही उस हिन्दी का प्रयोग किया है जिसे प्रचलित करने का श्रेय भारतेन्दु जी को दिया जाता है। दिवंगत रायकृष्णदास जी ने भी लेखक के पूर्वोक्त मत की ही प्रकारान्तर से पुष्टि की है।

उनका कहना है कि पण्डित लोगों में से कुछ व्यक्ति हिन्दी को हेयदृष्टि से भले ही देखते हों, परन्तु हिन्दी के विकास में उन्होंने कोई अड़ंगा नहीं लगाया। "हिन्दी का जो प्रचार चल रहा था, उसमें उन्होंने किसी तरह टांग अड़ाई हो यह तो हमें नहीं मालूम। हिन्दी के प्रचार के विरोध में कोई आन्दोलन किया हो, इसका कोई प्रमाण नहीं। हिन्दी एवं जनता के प्रतिनिधि स्वरूप भारतेन्दु जी संस्कृत के विद्वानों का बड़ा सम्मान, आदर करते थे—यह पूर्वोक्त तथ्य का पोषक है।"[1]

तेलुगु भाषा-भाषी पण्डित नरसिंह शास्त्री (महामहोपाध्याय गंगाधर शास्त्री के पिता) ने काशीनरेश के दरबार में रह कर उनके पूर्वजों के विषय में 'साहित्य-सागर' नामक एक महाकाव्य की रचना हिन्दी में की थी जो आज भी काशिराज के पुस्तकालय में सुरक्षित है। तमिल भाषाभाषी पण्डित लक्ष्मण शास्त्री तथा उनके सुयोग्य पुत्र पण्डितराज राजेश्वर शास्त्री ने 'पण्डित पत्र' की स्थापना ही नहीं की, प्रत्युत इसमें वे हिन्दी के द्वारा ही अपने लेखों का प्रकाशन करते रहे। धर्म एवं राजनीति-विषयक भाषणों में वे लोग हिन्दी ही का प्रयोग करते थे। अन्य भाषाभाषी पण्डितों की भी यही रीति थी।

राजस्थानीभाषी, जयपुरिया पण्डित, अम्बिकादत्त व्यास की हिन्दी सेवा तो नितान्त प्रसिद्ध ही है। भारत धर्ममहामण्डल के बंगलाभाषी स्वामी दयानन्दजी ने **धर्मकल्पद्रुम** जैसे विराट् ग्रन्थ की रचना कर हिन्दी के धार्मिक साहित्य की विशेष श्रीवृद्धि की है। हिन्दी भाषाभाषी संस्कृत पण्डितों की हिन्दी-सेवा भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। संस्कृत कालेज के ही अध्यापक पं० रामजसनजी ने 'कामन्दक नीति सार' का हिन्दी में अनुवाद कर जनता को प्राचीन राजनीतिक तथ्यों का परिचय भलीभाँति कराया। काशीनरेश ईश्वरीनारायण सिंह के गुरु स्वामी काष्ठजिह्व ने रामकृष्ण की लीलाओं का ललित पदों में वर्णन कर हिन्दी में एक विशिष्ट पदावली साहित्य का सर्जन किया है। इतना ही नहीं, उन्होंने रामचरितमानस की **परिचर्या** नामक टीका लिखकर पहिली बार मानस के गूढ़ भावों का बड़ा ही सुन्दर विश्लेषण किया है। महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी की हिन्दी सेवा की प्रशंसा किन शब्दों में की

१. धर्मयुग १ मार्च १९८१ का अंक, पृ० ३०-३१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाय जिन्होंने भारतीय एवं पाश्चात्य गणित के सिद्धान्तों का हिन्दी भाषा द्वारा विवरण प्रस्तुत कर एक नितान्त प्रशंसनीय कार्य का अनुष्ठान किया । पिछले कैंड़े के पण्डितों की हिन्दी सेवा नितान्त प्रसिद्ध है जो अपने भाषणों, लेखों तथा रचनाओं के द्वारा शास्त्रीय ज्ञान का प्रचुर प्रचार करते थे ।

इन तथ्यों पर दृष्टिपात करने से काशिकेय संस्कृत पण्डितों पर हिन्दी की उपेक्षा का दोषारोपण क्या कभी कोई सचेता कर सकता है ? नहीं, कभी नहीं ।

(ख) समाज-सेवा से विमुखता

संस्कृत पण्डितों पर सामान्यतः, और काशीस्थ पण्डितों के ऊपर विशेषतः, यह दोषारोपण किया जाता रहा है कि वे लोग भारतीय समाज से एकदम पृथक् रहते हैं, वे अपने अध्ययन-कक्ष में शास्त्र के चिन्तन में इतने व्यस्त रहते हैं कि वे यह न जानते हैं और न जानने का प्रयास ही करते हैं कि बाहरी भारतीय समाज किस सघर्ष से जूझता रहता है, उसके सुख-दुःख की दशा उनकी शास्त्रीय बुद्धि के बाह्य तट को भी स्पर्श नहीं करती । वे अपने में ही मस्त रहते हैं, अपने शास्त्रों के चिन्तन में व्यस्त रहते हैं । फलतः उनके अध्ययन से, उनकी विशाल विद्वत्ता से, भारतीय समाज का कोई लाभ नहीं होता । उनका पठन-पाठन नितान्त निरर्थक है ।

यह दोषारोपण जितना अपमानजनक है, उतना ही मिथ्या अपलाप भी है । तथ्य तो यह है कि संस्कृतज्ञ विद्वान् किसी अन्य लोक का जीव न होकर भारतीय देश का ही नागरिक है । यह कैसे हो सकता है कि जनता की विषम समस्याएँ उसे स्पर्श नहीं करें, उसके मानसिक सन्तुलन को क्षुब्ध न बना डालें । कुछ ठोस उदाहरणों के द्वारा इस दोष का निराकरण यहाँ प्रस्तुत किया जाता है । आज से एक सौ वर्ष पूर्व गत शताब्दी के मध्यकाल में विधवा-विवाह को लेकर बड़ा हंगामा मचा था । बंगाल का ब्रह्म-समाज और महाराष्ट्र का प्रार्थना-समाज तथा पंजाब एवं उत्तर प्रदेश का आर्य-समाज—इन तीनों समाजों में एकवाक्यता थी कि विधवाओं का विवाह कर देने पर ही हिन्दूसमाज का कल्याण हो सकता है और इस विषय के प्रचार के लिए वे बद्धपरिकर होकर आगे बढ़ने लगे थे । इसी समय १८५० ई० के आस-पास बंगाल की ब्राह्मण-सभा ने काशी के उस युग के महान् धर्मशास्त्री पण्डित राजाराम शास्त्री से इस विषम प्रश्न का समुचित समाधान करने के लिए बड़ा आग्रह किया । शास्त्रीजी ने वेदसम्मत धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों का गाढ़ अनुशीलन कर अपनी सम्मति विधवा-विवाह के विपक्ष में दी और दूसरे पक्ष के तर्कों और युक्तियों का समुचित खण्डन कर अपना मत स्थिर किया । इतना ही नहीं, उन्होंने उस समय के काशी के अन्य मान्य पण्डितों के पास अपनी व्यवस्था भेजकर उनकी भी बहुमूल्य सम्मति प्राप्त की । उन लोगों ने भी शास्त्रीजी की व्यवस्था के औचित्य एवं प्रामाण्य को समुचित ठहराया । इसी प्रकार बम्बई के किसी सज्जन ने उसे खण्डन करने का दृढ़ प्रयास किया, तब काशी के उनके

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्य बालशास्त्रीजी ने उस खण्डन का पुङ्खानुपुङ्ख खण्डन किया तथा उस ग्रन्थ की अपनी नवीन टीका लिखकर तुरन्त प्रस्तुत किया। मूलग्रन्थ का नाम था—'विधवोद्वाह-शंका-समाधिः' तथा टीका का नाम था—दोषाभास-निरासः। समाज को धार्मिक संकट से उबारने के लिए काशीस्थ पण्डितों का यह श्लाघनीय प्रयास नितान्त प्रशंसनीय था।

उसी समय काशी के सम्पन्न अग्रवाल समाज में मृत्यु के उपरान्त आशौच के विषय में घोर विवाद उठ खड़ा हुआ। समाज के वरिष्ठ व्यक्ति तो प्राचीन परम्परा के ही भक्त थे जो वैश्यों का आशौच मासार्ध—१५ दिनों का मानने की थी, परन्तु नवीन अंग्रेजी शिक्षित युवक एकता तथा समता के नाम पर ब्राह्मणवर्ग के समान दस दिनों का ही आशौच मानने के पक्ष में था। बड़ा उद्वेग था काशीस्थ अग्रवाल समाज में तब भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की सलाह से निर्णय का गुरुतर भार काशी के दूसरे मनीषी महामहोपाध्याय स्वामी राममिश्र शास्त्री को सौंपा गया। उन्होंने एतद्विषयक समग्र विषयों का अनुशीलन कर अपना सिद्धान्त 'शुद्धि-सर्वस्व' नामक नवीन ग्रन्थ का ही प्रणयन कर प्रचारित किया जो प्राचीन परम्परा का समर्थक था।

बाबू हरिश्चन्द्र की प्रेरणा से विक्रमी संवत् १९२७ (=१८७० ई०) में महारानी विक्टोरिया के सुपुत्र ड्यूक आफ एडिनबरा के काशी आगमन के अवसर पर 'सुमनोऽञ्जलिः' नामक एक काव्यपुस्तिका प्रकाशित की गई थी जिसमें उनके आगमन पर हर्ष तथा ड्यूक की प्रशस्ति संस्कृत पद्यों में बड़ी भव्यता के साथ सम्पन्न की गई थी। जिन कवि-पण्डितों के पद्य उसमें सम्मिलित किये गये थे उनके नाम ये हैं—

(१) श्री बापूदेव शास्त्री, (२) श्री राजाराम शास्त्री, (३) श्री बेचनराम शास्त्री, (४) श्री बस्तीराम शास्त्री, (५) श्री बाल शास्त्री, (६) श्री गोविन्ददेव शास्त्री, (७) श्री शीतलप्रसाद, (८) श्री ताराचरण शास्त्री, (९) श्री गङ्गाधर शास्त्री, (१०) श्री रमापति दूबे, (११) नृसिंह शास्त्री, (१२) श्री ढुंढिराज धर्माधिकारी, (१३) श्री विश्वनाथ शास्त्री, (१४) श्री विनायक शास्त्री, (१५) रामकृष्ण शास्त्री पटवर्धन, (१६) नारायण कवि, (१७) हनुमान कवि।

(अन्तिम दोनों कवियों की हिन्दी रचना सम्मिलित की गई है)।

इस ग्रन्थ की भूमिका अंग्रेजी में लिखी है (१० मार्च, १८७० ई०) भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने, जिसमें २० जनवरी १८७० ई० को उन्हीं के आवास पर एक सभा के होने का विवरण है। इसमें पूर्वोक्त पण्डितों के अतिरिक्त नगर के उपस्थित गण्यमान्य नागरिकों के भी नाम दिये गये हैं। इस अवसर पर उपरिनिर्दिष्ट पण्डितों ने अपनी कविताएँ सुनाई थीं और प्रकाशित काव्य-पुस्तिका ड्यूक को भेंट की गई थी। सभा के आरम्भ में भारतेन्दु जी ने ड्यूक की जीवनी हिन्दी में बताई थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८७७ ई० में हरिश्चन्द्र ने **'मानसोपायन'** नामक काव्य-संग्रह पुस्तक प्रकाशित की जिसको उन्होंने विक्टोरिया के पुत्र राजकुमार को समर्पित किया उनके भारत आगमन के अवसर पर। इनमें श्रीमती महारानी को 'भारत की राजराजेश्वरी' के पद ग्रहण करने की सूचना दी गई है। इसी अवसर पर यह संकलन प्रकाशित किया गया था। इसमें हिन्दी, पंजाबी, महाराष्ट्री, उर्दू (१६ पृ०), बंगला (५२ पृ०), अंग्रेजी (४ पृ०), तेलुगु आदि भाषाओं (८ पृष्ठ) की कविताएँ संगृहीत कर प्रकाशित की गई हैं। इस संग्रह में संस्कृत के पद्य ३१ पृष्ठों में प्रकाशित हैं। ६६ कवियों ने अंग्रेजी राज, विक्टोरिया आदि की स्तुति में पद्यों की रचना की है। इनके नाम हैं—

(१) पं० बापूदेव शास्त्री, (२) पं० सखाराम भट्ट, (३) वेंकटेश शास्त्री, ४) पं० विष्णुदत्त, (५) राजाराम गोरे, (६) कैलासचन्द्र शिरोमणि, (७) बालकृष्ण भट्ट, (८) गदाधरशर्मा मालवीय, (९) आबा शास्त्री हलदीकर, (१०) विहारी शर्मा चतुर्वेदी, (११) गोपाल शर्मा, (१२) लक्ष्मीनाथ द्राविड़, (१३) रामचन्द्र शास्त्री, (१४) रामशरण त्रिपाठी, (१५) पं० रामचन्द्र, (१६) अनन्तराम भट्ट, (१७) चित्रधर मैथिल, १८) गोविन्द शर्मा, (१९) पं० माधवराम, (२०) भवानी प्रसाद, (२१) रामप्रसाद मिश्र, (२२) रामगोविन्द मिश्र, (२३) श्रीधर मैथिल, (२४) पं० शालिग्राम, (२५) हरिनाथ द्विवेदी, (२६) गोस्वामी रामगोपाल शर्मा, (२७) ईश्वरदत्त, (२८) दामोदर शास्त्री, (२९) रामकृष्ण पटवर्धन, (३०) कान्तानाथ भट्ट, (३१) शिवनारायण शर्मा ओझा, (३२) विश्वनाथ शर्मा, (३३) गोविन्द भारद्वाज, (३४) रामब्रह्म शास्त्री, (३५) विश्वनाथ शास्त्री, (३६) परमेश्वर मैथिल, (३७) नारायण पण्डित, (३८) पं० विजयनाथ, (३९) नन्दकुमार शर्मा, (४०) सोहन शर्मा, (४१) भद्दू शास्त्री अष्टपुत्रे, (४२) पं० विश्वेश्वर नाथ, (४३) पं० उदयानन्द शर्मा, (४४, राजेश्वर द्रविड, (४५) केशव शास्त्री पर्वतीय, (४६) काशीनाथ भट्ट, (४७) बापू शर्मा, (४८) पं० शीतलाप्रसाद, (४९) पं० गणेशदत्त, (५०) पं० बस्तीराम द्विवेदी, (५१) दामोदर भारद्वाज, (५२) शिवकुमार मिश्र, (५३) गंगाधर शास्त्री तैलंग, (५४) रामकृष्ण पटर्धन, (५५) पं० राजाराम, (५६) पं० राममिश्र, (५७) पं० सरयू प्रसाद, (५८) शीतलाप्रसाद त्रिपाठी, (५९) श्री मकरध्वज सिंह, (६०) कन्हैयालाल पाण्डेय, (६१) बेचनराम त्रिपाठी, (६२) पं० राधाकृष्ण, (६३) कालीप्रसाद शिरोमणि, (६४) लक्ष्मीनाथ कवि, (६५) पण्डित माधोदास और (६६) पं० राधाकृष्ण।

इन पद्य लेखकों में कुछ तो हमारे परिचित काशीस्थ विद्वानों के नाम ऊपर परिगणित किये गये हैं, परन्तु अन्य लेखकों के विषय में इदमित्थं रूप से नहीं कहा जा सकता कि वे काशी के ही निवासी थे। प्रतीत होता है कि संकलन को व्यापक तथा विशद बनाने की दृष्टि से काशी के बाहर के भी कविजनों के पद्य संकलित किये गये हैं। आज से १०३ वर्ष पूर्व प्रकाशित इस संग्रह-ग्रन्थ के अवलोकन से पता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलता है कि संस्कृत के ज्ञाता कविजनों की संख्या पर्याप्तरूपेण विस्तृत थी। काशी के पण्डितों द्वारा राजपुरुषों का यह साहित्यिक अभिनन्दन किसी स्वार्थ को दृष्टि में रखकर नहीं किया गया था, प्रत्युत यह उस प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुरूप ही था जिसमें राजा को देवता के रूप में माना जाता था। काशी के प्रबुद्ध समाज के द्वारा किये गये इस राजकीय अभिनन्दन को पण्डितों ने भी स्वीकार किया और इस महनीय कार्य में अपना योगदान किया।

१९११ ई० की एक मार्मिक घटना की ओर ध्यान दीजिए। भारतवर्ष में मनुष्य गणना होने जा रही थी। सरकार द्वारा यह घोषणा प्रचारित की गई कि निम्न अछूत जातियों (हरिजनों) के सामने धर्म के निर्दिष्ट स्थान (कालम) में हिन्दू न लिखकर 'अहिन्दू' लिखा जावेगा। फिर क्या था ? महान् कोलाहल मचा। वादविवाद का बाजार गर्म हो गया। काशी के टाउनहाल के मैदान में काशीवासियों की ओर से एक विराट् सभा हुई। सभा के मन्त्री पण्डित रामनारायण मिश्र ने लेखक को बताया कि वे स्वयं शिवकुमार शास्त्री के पास नागरिकों का सन्देश लेकर पहुँचे और इस विषम स्थिति की तथा सरकारी घोषणा की सूचना उन्हें दी। सभा का सभापति बनने के लिए उनसे आग्रह किया। शास्त्री जी ने बिना किसी हिचकिचाहट के तुरन्त सभापति बनना स्वीकार कर लिया। सभामण्डप में अपने शिष्यों तथा सहयोगियों के साथ शास्त्री जी पधारे और सभा का विधिवत् संचालन किया। पण्डित शिवकुमार शास्त्री जी ने सभापति के आसन से घोषणा की कि "अछूत होने से कोई व्यक्ति हिन्दू धर्म के क्षेत्र से बहिष्कृत नहीं किया जा सकता। वह उतनी ही मात्रा में हिन्दू है जितनी मात्रा में कोई सवर्ण व्यक्ति। अछूत हिन्दू समाज का अविभाज्य अंग है। उसे हिन्दू समाज से बहिष्कृत कर देना नितान्त अनुचित, अव्यावहारिक एवं अशास्त्रीय है।" शिवकुमार पण्डित जी की यह व्यवस्था जब सरकारी शासकों के सामने रखी गई, तब नतमस्तक होकर उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया। इस प्रकार अछूत हिन्दू समाज के ही अंग बने रहे। समस्या का समाधान पण्डित जी ने सर्वदा के लिए कर दिया।

शारदा ऐक्ट का पण्डितों द्वारा विरोध

सन् १९२८–२९ ई० में शारदा एक्ट के पास हो जाने पर काशी के पण्डितों ने इसे अशास्त्रीय घोषित कर इसका प्रचण्ड विरोध किया। म० म० पं० लक्ष्मण शास्त्री द्राविड़ इस आन्दोलन के नेता थे। उन्होंने 'पण्डित पत्र' का प्रकाशन कर इस ऐक्ट के विरोध में बड़ा प्रचार किया। इतना ही नहीं, काशी के अनेक विद्वानों ने अपनी महामहोपाध्याय की महनीय पदवी का भी परित्याग कर दिया। यद्यपि इस आन्दोलन से यह ऐक्ट निरस्त तो नहीं हो सका, परन्तु इससे पण्डितों की शास्त्रों के प्रति निष्ठा तथा हिन्दू समाज के कल्याण के प्रति उनकी प्रबुद्ध दृष्टि का परिचय भली-भाँति मिलता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे स्पष्ट दृष्टान्तों के होते हुए पण्डित-मण्डली को कौन व्यक्ति भारतीय समाज से उदासीन बताने का साहस कर सकता है ?

अंग्रेजी सरकार द्वारा पण्डितों का सत्कार

गत शताब्दी में ब्रिटिश सरकार ने भारतवर्ष में अपने राज्य को दृढ़ बनाने के लिए भारतीय संस्कृति तथा धर्म के अभ्युत्थान के निमित्त अनेक प्रयत्न किये। १८३७ ई० में महारानी विक्टोरिया इग्लैण्ड की गद्दी पर आसीन हुईं। उस समय भारतवर्ष कम्पनी के अधीन था। इस अधिकार की समाप्ति तब हुई जब १८५७ के बलवे में भारतवर्ष के निवासियों ने अपने को स्वतन्त्र करने के प्रयास में अंग्रेजी सरकार से बगावत की। इसके अनन्तर भारत का शासन इंग्लैण्ड की महारानी के हाथ में साक्षात्कार रूप में आ गया। विक्टोरिया को भारतवर्ष की सम्राज्ञी महारानी घोषित किया गया। उसने भी भारतीयों के धर्म में, आचार-विचार में, किसी प्रकार के व्याघात डालने की नीति का सर्वदा के लिए परित्याग कर दिया और भारतीय विद्या तथा विद्वानों का समादर करने की नीति अपनाई।

१८८७ ई० में महारानी विक्टोरिया की 'सुवर्ण जुबिली' का उत्सव मनाया गया क्योंकि यह उसके सिंहासन पर बैठने का ५० वाँ वर्ष था। इसी जुबिली के उपलक्ष्य में ब्रिटिश सरकार ने सुयोग्य संस्कृत विद्वानों को समादृत करने के लिए एक नवीन उपाधि की स्थापना की। इसका नाम है—महामहोपाध्याय की उपाधि। इस प्रसंग में बड़े लाट की ओर से जो विज्ञप्ति प्रकाशित हुई थी उसका आवश्यक अंश इस प्रकार है—

"His Excellency the Viceroy and Governor General having taken into his consideration that adequate means do not exist whereby he can recognise eminent distinction in learning among the loyal Hindu and Mohamedan subjects of Her Most Gracious Majesty the Queen-Emperess of India and being desirous to commemorate the event of the Jubilee of Her Majesty's Accession to the throne has resolved to institute a new title for eminent services rendered by Hindus or Mohamedans in the promotion of Oriental Learning."[1]

इसका आशय यह है कि वाइसराय हिन्दुओं तथा मुसलमान विद्वानों के द्वारा अर्जित विद्वत्ता का सम्मान करना चाहते हैं परन्तु इसके लिए अब तक उचित प्रबन्ध नहीं था। महारानी के इस जुबिली-महोत्सव पर ऐसे सम्मान के लिए प्रबन्ध करने

1. Foreign Dept. Notification No. 811,16 फरवरी 1887, Vide कलकत्ता गजट, फरवरी 23,1887, पार्ट I A, पृ० 23।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का निर्णय किया गया है। हिन्दुओं में संस्कृत विद्या के वरिष्ठ विद्वानों को महामहोपाध्याय की उपाधि दी जायगी। इस वर्ष से यह आरम्भ हो रहा है और प्रतिवर्ष यह उपाधि देने की व्यवस्था की जाएगी।

इस घोषणा के अनुसार १८८७ के फरवरी मास में इस उपाधि को देने की व्यवस्था की गई। इस उपाधि के चिह्न रूप उष्णीष तथा उत्तरीय दो वस्तुएँ दी जाती थीं। उष्णीष तो पगड़ी है तथा उत्तरीय है शाल। दरबार में इन लोगों का बैठने के स्थान राजाओं के बाद ही निश्चित किये गये थे। आरम्भ में तो किसी प्रकार की दक्षिणा नहीं थी, परन्तु १९१७ ई० में महोमहोपाध्याय उपाधिधारी पण्डितों के लिए वार्षिक पेंशन १००) रु० नियत किया गया जो यावत्-जीवन पण्डितों को मिलता था। इस उपाधि का प्रमाणपत्र भी मिलता था जिससे 'सनद' कहते थे। उस सनद में सर्वप्रथम उपाधि प्राप्त करनेवाले का नाम रहता था और उसके बाद यह वाक्य रहता था :—

"I here by confer upon you the title of Maha Mahopadhyaya as a personal distinction."

(हस्ताक्षरित)
वाइसराय तथा गवर्नर जनरल
भारतवर्ष

नई दिल्ली
तिथि—वर्ष

जब तक अंग्रेजी शासन रहा संस्कृत पण्डितों को महामहोपाध्याय की उपाधि तथा साथ में वार्षिक वृत्ति मिलती रही। अंग्रेजी राज्य के अवसान होने पर यह समाप्त हो गया। स्वतन्त्र भारत में पण्डितों के सत्कार की यह प्रक्रिया आज भी प्रचलित है। इसको Award of President's Certificate कहते हैं जो १५ अगस्त से प्रतिवर्ष दिया जाता है। इसके लिए वार्षिक वृत्ति पाँच हजार रुपयों की है। इस प्रकार महामहोपाध्याय की परम्परा आज भी किसी न किसी रूप में चालू है।

स्वतन्त्रता दिवस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरपीठिका

(क) १८वीं शतो उत्तरार्ध—रचना एवं प्रवृत्ति

(ख) काशिकेय पण्डितों का साहित्यिक अवदान

अर्वाचीन युग

(१७५० ई०–१९५० ई०)

अर्वाचीनयुगीनानां विदुषां यदपेक्षितम् ।
चरितं रचनं चैव तत् संक्षिप्तं विविच्यते ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८वीं शती का उत्तरार्ध : साहित्य एवं प्रवृत्ति

(१७५० ई०—१८०० ई०)

महावैयाकरण नागेशभट्ट के निधन तथा काशिराजकीय पाठशाला (स्थापनाकाल १७६१ ई०) की स्थापना के बीच में लगभग ५० वर्षों का अन्तराल है। इस काल-खण्ड की साहित्यरचना के विषय में विशेषरूप से हमारा परिचय नगण्य ही है। इतना तो निश्चित है कि यह काल नागेश के शिष्य-प्रशिष्यों की व्याकरण एवं धर्मशास्त्र-सम्बन्धी रचनाओं के द्वारा उद्भासित हुआ था। नागेशभट्ट के पट्टशिष्य **वैद्यनाथ पायगुण्डे** के कतिपय ग्रन्थों का निर्माण काल इस कालखण्ड के आदिम वर्षों के भीतर आता है—ऐसा अनुमान लगाना अनुचित नहीं है। वैद्यनाथ ने अपने गुरुवर्य नागेश के महनीय ग्रन्थों के ऊपर अपनी जिन टीकाओं का निर्माण किया, उनमें से कतिपय का रचनाकाल इस कालखण्ड के आरम्भिक दशक में माना जा सकता है।

नागेशभट्ट के पट्टशिष्य वैद्यनाथ पायगुण्डे के सम्बन्धी तथा शिष्यों के द्वारा पाणिनीय व्याकरण महाराष्ट्र मण्डल में भी प्रविष्ट हो गया और वहाँ के प्रमुख वैयाकरण एक प्रकार से नागेश की शिष्यपरम्परा के अन्तर्गत ही आते हैं। यह पायगुण्डे के वैदुष्य का प्रभाव है। पायगुण्डे के जामाता **देव** तथा शिष्य **भैरव मिश्र** दोनों ही व्याकरण के महनीय आचार्य थे। प्रसिद्ध है कि पूना के प्रख्यात वैयाकरण **नीलकण्ठ शास्त्री** जिस **अहोबल शास्त्री** के शिष्य थे उन्होंने पायगुण्डे के जामाता **देव** के पास ही विद्याध्ययन किया था। ये नीलकण्ठ शास्त्री अपने समय के बड़े ही प्रौढ़ वैयाकरण तथा प्रतिभाशाली विद्वान् थे। इन्हीं के विद्यार्थी थे **राघवेन्द्राचार्य गजेन्द्रगड़कर** जो नागेश की जोड़ी के विद्वान् माने जाते थे। व्याकरण शास्त्र में **विषमी, त्रिपथगा, प्रभा** आदि इनके ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। केलकर का कहना है कि काशी की विद्वन्मण्डली इनकी त्रिपथगा को विशेष महत्त्व देती है तथा परिभाषेन्दुशेखर के अनन्तर त्रिपथगा पर आग्रह रखती है।[1]

बालम्भट्ट

वैद्यनाथ के पुत्र **बालम्भट्ट पायगुण्डे** तथा उनके प्रधान शिष्य **ननुदेव** की रचनाओं का काल इस निर्धारित समय खण्ड के बीच में ही आता है। बालम्भट्ट वैयाकरण से बढ़कर धर्मशास्त्रवेत्ता थे। 'मिताक्षरा' के ऊपर 'लक्ष्मी' नामक व्याख्या मिलती है जिसके आचार-खण्ड तथा व्यवहार-खण्ड का प्रकाशन हो चुका है।

---

१. नरसिंह चिन्तामणि केलकर—संस्कृत विद्येचे पुनरुज्जीवन—पृ० ४९-५० (द्वितीय सं० १९२८, पूना)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालम्भट्टी

मिताक्षरा की भाष्यभूता **बालम्भट्टी** के विषय में कहा जाता है कि यह पुस्तक लक्ष्मीदेवी नामक किसी विदुषी नारी के द्वारा रचित है। अतः इसे **'लक्ष्मी व्याख्यान'** भी कहते हैं। यह एक बृहद् ग्रन्थ है; परन्तु बहुत ही अस्त-व्यस्त पद्धति से इसकी रचना की गयी है। बालम्भट्टी में अनेक ग्रन्थों तथा ग्रन्थकारों के नामों का निर्देश किया गया है जिनमें कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थ निम्नांकित हैं : निर्णयसिन्धु, वीरमित्रोदय, नीलकण्ठ द्वारा लिखित मयूख, संस्कार-कौस्तुभ और कायस्थ-धर्म-प्रदीप। ग्रन्थकारों में नीलकण्ठ के भतीजे **सिद्धेश्वर भट्ट**, मीमांसा सूत्र पर भाट्टदीपिका के लेखक **खण्डदेव** और **गागाभट्ट** का नाम आया है।

बालम्भट्टी के लेखक के विषय में कुछ लिखना पहेली बूझना है। साहित्य के क्षेत्र में शीला, विज्जका, अवन्तिसुन्दरी जैसी कवयित्रियों के नाम प्रसिद्ध हैं। लेकिन धर्म-शास्त्र के क्षेत्र में नारी-लेखकों का प्रायः अभाव-सा पाया जाता है। परन्तु यह सन्तोष का विषय है कि 'बालम्भट्टी' जैसे धर्मशास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थ की रचना एक नारी ने ही की है। इसकी लेखिका का नाम **लक्ष्मी** था जो पायगुण्डे की पत्नी और मुद्गल गोत्र में उत्पन्न महादेव की पुत्री थी। बालम्भट्टी के प्रारम्भ से पता चलता है कि इस लक्ष्मी का दूसरा नाम उमा भी था। इस ग्रन्थ के आचारभाग के अन्तिम अंश से यह भी ज्ञात होता है बालम्भट्टी की लेखिका लक्ष्मी महादेव और उमा की पुत्री, वैद्यनाथ पायगुण्डे की पत्नी और बालकृष्ण की माता थी। लक्ष्मी ने स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा करने का भरपूर प्रयत्न किया है। इस ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर नागोजिभट्ट के शिष्य वैद्यनाथ पायगुण्डे के ग्रन्थ तथा लेखक के गुरु एवं पिता के ग्रन्थों की चर्चा उपलब्ध होती है। अतः इससे अनुमान किया जा सकता है कि 'बालम्भट्टी' नामक ग्रन्थ या तो वैद्यनाथ पायगुण्डे ने स्वयं लिखा और उन्होंने प्रेम-वश लेखक के रूप में अपनी पत्नी का नाम दे दिया अथवा यह पुस्तक उनके पुत्र बालकृष्ण—जिनका अपर नाम बालम्भट्ट भी था—के द्वारा रचा गया और उन्होंने आदर तथा श्रद्धा प्रदर्शित करने के लिए अपनी माता का नाम दे दिया। वैद्यनाथ पायगुण्डे तथा बालकृष्ण दोनों ही धर्मशास्त्र के प्रसिद्ध लेखक थे, इसमें सन्देह का कोई स्थान नहीं है। बहुत सम्भव है कि बालकृष्ण ने ही बालम्भट्टी का प्रणयन किया हो।[1]

सम्भवतः पत्नी को आदर तथा सम्मान देने की दृष्टि से टीका का नामकरण उसी के नाम पर किया गया है। **'बालम्भट्टी'** के अन्वर्थक नाम्ना प्रख्यात यही ग्रन्थ

---

१. इस विषय के विस्तृत तथा प्रामाणिक विवरण के लिए देखिए :
डॉ० काणे : धर्मशास्त्र का इतिहास (हिन्दी संस्करण), भाग १, पृ० ९५-९६; १९८० ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाराणसी सम्प्रदाय के धर्मशास्त्रियों का उपजीव्य मुख्य ग्रन्थ है। बालम्भट्ट ने कलकत्ते के अंग्रेज संस्कृतज्ञ अधिकारी डॉ० कोलब्रुक (हेनरी टामस कोलब्रुक १७६५ ई०—१८३७ ई०) के आदेश से अपने मुख्य शिष्य मनुदेव के सहयोग से **धर्मशास्त्र-संग्रह** नामक धर्मशास्त्र के व्यवहारविषयक सिद्धान्तों का प्रतिपादक ग्रन्थ तैयार किया (१८०० ई०) जो उस समय अंग्रेजी कचहरियों में हिन्दुओं के कानून जानने का प्रधान साधन माना जाता था। बालम्भट्ट ने १८३० ई० में ६० वर्ष की आयु में देह त्यागी। फलतः इनका जन्म १ ६० ई० में हुआ था और इनका आविर्भाव काल १७६० ई० से १८३० ई० तक माना जाता है।

मनुदेव

वैद्यनाथ पायगुण्डे के प्रधान शिष्य मनुदेव व्याकरण तथा धर्मशास्त्र दोनों विषयों में निष्णात विद्वान् थे। 'धर्मशास्त्र-संग्रह' में इनके साहाय्य देने का संकेत ऊपर किया गया है। इन्होंने कोण्डभट्ट के 'वैयाकरणभूषण सार' पर **लघुभूषणकान्ति** नामक टीका का प्रणयन सम्भवतः १८वीं शती के अन्तिम चरण में किया।

हरिदीक्षित

ये इसी कालखण्ड के एक महनीय वैयाकरण थे। इनके पिता का नाम केशव दीक्षित काले था। फलतः ये महाराष्ट्र ब्राह्मण थे। इन्होंने कोण्डभट्ट के वैयाकरण-भूषण सार पर **काशिका** नामक व्याख्या लिखी जो विशद, विस्तृत एवं प्रमेयबहुल है। इसकी रचना का काल ग्रन्थ में ही निर्दिष्ट किया गया है[1]—वि० १८५४ (= १७९७ ई) मार्गशीर्ष शुक्ल पूर्णिमा। काशी में ही इसका निर्माण किया गया। फलतः यह ग्रन्थ काशिराजकीय पाठशाला की स्थापना के छठे वर्ष काशी में निर्मित हुआ था।

परमानन्द पाठक

काशिराज्य के आदिम अधिपति महाराजा बलवन्त सिंह के सभापण्डित, उस युग के प्रख्यात ज्योतिषी **पण्डित परमानन्द पाठक** ने फलितज्योतिष के विषय में **'प्रश्नमाणिक्यमाला'** ग्रन्थ का प्रणयन किया (सम्भवतः १८६० ई० में)। यह ग्रन्थ चार खण्डों में विभक्त है। प्रथम तीन खण्डों की रचना परमानन्द ने ही की है तथा अन्तिम खण्ड का प्रणयन उन्हीं के वंशज पण्डित उमापति शर्मा ने स्वयं कर पाठक जी के ग्रन्थ को पूरा किया। **प्रश्नमाणिक्यमाला** फलितज्योतिष का एक बहुमूल्य, नितान्त

---

१. युगभूतदिगीशात्म-सम्मिते वत्सरे गते
मार्गशीर्षशुक्लपक्षे पौर्णमास्यां विधोर्दिने
समाप्तिमगमद् ग्रन्थः तेन तुष्यतु नः शिवः ॥

वैयाकरण भूषणसार का काशिका के साथ प्रकाशन १९१५ ई० में बाम्बे संस्कृत ग्रन्थमाला में किया गया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपादेय तथा प्रामाणिक ग्रन्थ है। जन्मकुण्डली के बारहों भावों के शुभाशुभ फलों का निर्णय प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर बड़ी विशदता से यहाँ किया जाता है। ये पञ्चांग की भी रचना करते थे जिसमें फलादेश-सम्बन्धी अनेक विषयों का निर्देश भी किया गया उपलब्ध होता है। ये सारस्वत ब्राह्मण थे और काशी के ही निवासी थे। महाराज बलवन्त सिंह के समकालीन होने से इनका समय १८वीं शती का मध्यकाल है।[1]

बलभद्र

महाराजा बलवन्त सिंह के ही ज्येष्ठ पुत्र तथा उनके उत्तराधिकारी राजा चेतसिंह (१७७०-१७८१ ई०) के प्रधान सभापण्डित **बलभद्र जी** उस युग के बड़े ही प्रतिष्ठित तथा विश्रुत राजकवि थे। इन्होंने १७७५ ई० के आसपास अपने आश्रयदाता राजा चेतसिंह के राज्यारोहण एवं यज्ञानुष्ठान का बड़ा ही सांगोपांग वर्णन अपने महाकाव्य **चेतसिंह-विलास** में किया है जो अधूरा ही है तथा अभी तक मुद्रित नहीं हुआ है। यह एक महान् काव्य है जिसमें एक सहस्र के ऊपर पद्य उपलब्ध होते हैं।

शिवलाल पाठक

अठारहवीं शती के अन्तिम चरण में ही **पण्डित शिवलाल पाठक** नामक एक नितान्त प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् का आविर्भाव काशी में हुआ था। ये सरयूपारीण ब्राह्मण सोनौरा पाठक कश्यप गोत्री थे और काशी में ही असीसंगम के निकट निवास करते थे। ये त्रिस्कन्ध ज्योतिष शास्त्र में परिगामी, पुराण, इतिहास के वेत्ता तथा तन्त्र विद्या में नितान्त कुशल विद्वान् थे। ज्योतिर्विद् होने के अतिरिक्त ये वास्तु विद्या में चतुर तथा संगीत विद्या के नितान्त मर्मज्ञ एवं रसिक व्यक्ति थे। इन्होंने वाल्मीकि रामायण की **सुन्दरी** नामक टीका का प्रणयन किया था। गोस्वामी तुलसीदास के ग्रन्थों के ऊपर भी इनकी महती प्रीति तथा गाढ़ अनुराग था। इनके द्वारा संशोधित विनय-पत्रिका की एक प्रति के लेखन-समय का निर्देश सुधाकर द्विवेदी ने अपनी गणकतरंगिणी में (पृ० ११२) १८५१ विक्रमी (=१७९४ ई०) किया है। यदि उस समय इनका वय साठ साल के आसपास हो, तो इनका जन्मकाल १७३४ ई० सिद्ध होता है। फलतः इनका आविर्भाव काल १८वीं शती का उत्तरार्ध मानना चाहिए—लगभग १७३४ ई०–१८०० ई०।

रामानन्द पाठक

इनके विद्वान् पुत्र का नाम **रामानन्द पाठक** था। ये काशिराजकीय पाठशाला में सब पण्डितों में मूर्धन्य पण्डित के रूप में नियुक्त किये गये (१७९१ ई० में), तब इनके पिताजी ने विरक्त होकर अपना घर-द्वार छोड़ दिया। कारण? इन्होंने देखा कि पुत्र के द्वारा अर्जित विधर्मी अंग्रेजों के द्रव्य से खरीदे गये अन्न का मुझे भोजन करना पड़ेगा। इसी आशंका से धर्मभीरु पिताजी विरक्त हो गये और भगवान् के भजन-

---

१. द्रष्टव्य, गणकतरंगिणी, पृ० ११२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूजन में अपना दिन बिताने लगे। ऐसी अपूर्व निष्ठा थी पण्डित शिवलाल जी की सनातनधर्म के पालन में तथा सदाचार के निभाने में।

पण्डित लक्ष्मीपति

इन्हीं पण्डित शिवलाल पाठक के गुरु थे प्रख्यात दैवज्ञ **पण्डित लक्ष्मीपति**। ये पर्वतीय ब्राह्मण थे। इस युग में कूर्माचल से पर्वतीय ब्राह्मण कुलों का काशी में आगमन आरम्भ हो गया था। ये ज्योतिष सिद्धान्त तथा पाटीगणित एवं बीजगणित में अत्यन्त प्रगल्भ तथा उत्कृष्ट विद्वान् माने जाते थे। सुधाकर द्विवेदी ने लिखा है कि इन्हीं के समय से काशी में फलित विद्या का ह्रास तथा सिद्धान्त विद्या की वृद्धि होने लगी। इनके छात्र भारत के विभिन्न प्रान्तों मे भी लब्धकीर्ति थे तथा ज्योतिर्विद्या के धुरन्धर विद्वान् माने जाते थे। काशिराजकीय संस्कृत पाठशाला की स्थापना के समय ही ये विद्यालय में ज्योतिष विषय के प्रधान अध्यापक नियुक्त किये गये। इनका जन्म १६७० शाके (= १७४८ ई०) में तथा निधन १७४२ शाके (= १८२० ई०) हुआ। इस प्रकार ये १८वीं शती के उत्तरार्ध तथा १९वीं शती के प्रथम चरण में आविर्भूत हुए थे। इन्हीं पर्वतीय ज्योतिर्विद् लक्ष्मीपति को काशी में **सिद्धान्त ज्योतिष** के विशेष प्रचारक होने का महनीय गौरव प्राप्त है। इसी युग में काशी में ही **बबुआ ज्योतिषी** नामक एक अन्य दैवज्ञ थे जो फलित ज्योतिष के सर्वश्रेष्ठ मर्मज्ञ विद्वान् माने जाते थे। गुरु पण्डित लक्ष्मीपति एवं शिष्य शिवलाल पाठक—ये ही दोनों विद्वान् उस युग के मूर्धन्य दैवज्ञ होने की ख्याति से मण्डित थे।

पाणिनीय व्याकरण की विकाश-दिशा

पाणिनीय सम्प्रदाय को अखिल भारतीय होने का गौरव प्राप्त है। कैयट, भट्टोजिदीक्षित और नागेश भट्ट जैसे शास्त्र-धुरन्धर विद्वानों के हाथ में पड़ने से विद्वत्समाज में इसको विशेष गौरव तथा सम्मान मिला। इन विद्वानों ने अपनी अलोक-सामान्य प्रतिभा के बल पर इस शास्त्र को एक विशिष्ट धारा में प्रवाहित किया जिससे परिचय रखना शब्दों के साधुत्व-ज्ञान के लिए न होकर शब्दार्थ-सम्बन्ध के विमर्श के लिए अत्यावश्यक है। इस विशिष्ट धारा का त्रिविध रूप दृष्टिगोचर होता है—पदार्थ-चर्चा, न्यास और परिष्कार। पदार्थ-चर्चा के कारण अब पाणिनीय-व्याकरण पदविद्या न होकर पदार्थविद्या माना जाने लगा। पदार्थ-विचार में अभिधा, लक्षणा, व्यञ्जनावृत्ति, धात्वर्थ, प्रातिपादिकार्थ, कारकार्थ, समासार्थ आदि विषयों का समावेश होता है। 'वैयाकरण-सिद्धान्तभूषण' तथा 'लघुमञ्जूषा' में इन समस्त विषयों का बड़ा ही सोङ्गापाङ्ग विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इन विषयों पर न्याय तथा मीमांसा के भी अपने विशिष्ट मत हैं। उन मतों के साथ व्याकरण मत का संघर्ष होना स्वाभाविक है। जैसे नैयायिकों के मत में फल और व्यापार धात्वर्थ है, तिङ्

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अर्थ कृति है। मीमांसक फल को धात्वर्थ मानते हैं और व्यापार को तिङर्थ। इन दोनों के विरुद्ध वैयाकरण फल और व्यापार को धात्वर्थ मानते हैं और आश्रय (कर्तृ, कर्म) को तिङर्थ।[1] दृष्टान्तों के सहारे इसे समझना चाहिए। 'देवदत्तः ओदनं पचति' इस वाक्य के शाब्दबोध में नैयायिकों के अनुसार कर्ता विशेष्य है— वर्तमान-कालिक-ओदनकर्मक-पचनानुकूल-व्यापाराश्रयो देवदत्तः। वैयाकरणों के मतानुकूल शाब्दबोध में व्यापार विशेष्य है—देवदत्तकर्तृको वर्तमानकालिक ओदनकर्मकः पचनानुकूलो व्यापारः। स्फोटवाद के प्रतिपादन में वैयाकरणों ने अपूर्व प्रतिभा दिखलाई। शब्द को अनित्य मानने वाले नैयायिक, शब्द को नित्य मानने वाले मीमांसक—इन दोनों के मतों का खण्डन कर वैयाकरणों ने **स्फोटवाद** का नया सिद्धान्त निकाला, जिसके अनुसार ध्वनिरूप-शब्द तो अनित्य है, परन्तु स्फोटरूप शब्द नित्य है। अर्थ के प्रकाशन की क्षमता स्फोट में है, ध्वनि में नहीं। भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में इसी स्फोटरूपी शब्द को ब्रह्म मानकर संसार को शब्दब्रह्म का विवर्त कहा है—

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥

वैयाकरणों ने स्फोट के प्रतिपादनार्थ स्वतन्त्र ग्रन्थों का प्रणयन किया। इनके कारण विचारशास्त्र के रूप में पाणिनीय व्याकरण का मस्तक ऊँचा हुआ।

प्राचीन वैयाकरण लक्ष्यैक-चक्षुष्क थे। वे भाषा में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन कर उनको नियमों के द्वारा बाँधने का उद्योग करते थे। पिछले युग के वैयाकरण लक्षणैक-चक्षुष्क बन गये, सूत्रार्थ की व्याख्या तथा सूत्रस्थ पदों की सार्थकता पर ही विचार करना आरम्भ किया, तब उनके स्वतन्त्र मत का परिष्कार दृष्टिगोचर होने लगा। अब मूल ग्रन्थ का प्रणयन उनका ध्येय न था, प्रत्युत पूर्व ग्रन्थों की टीका-उपटीका की रचना तथा मतों का खण्डन-मण्डन ही लक्ष्य बन गया। व्याकरणशास्त्र में यह खण्डन-मण्डन की परम्परा आज भी जागरूक है और इसका प्रत्यक्ष दर्शन शास्त्रार्थ के अवसर पर हमें होता है। इस परम्परा को हम मोटे तौर से चार भागों में बाँट सकते हैं—प्राचीनतर, प्राचीन, नवीन तथा नवीनतर। प्राचीन-तर में वामन-जयादित्य, जिनेन्द्रबुद्धि, कैयट, हरदत्त, रामचन्द्र, विट्ठल तथा शेष श्रीकृष्ण आते हैं। प्राचीन में भट्टोजिदीक्षित प्रधान हैं। नवीन में नागेश तथा उनके पट्टशिष्य वैद्यनाथ पायगुण्डे हैं। नवीनतर में शब्दरत्न, शब्देन्दुशेखर तथा परिभाषेन्दुशेखर के टीकाकार हैं। आज-कल हम इसी युग में हैं जिसे हम **'शेखर-युग'** के नाम से अभिहित

---

१. फलव्यापारयोर्धातुराश्रये तु तिङः स्मृताः।
फले प्रधानं व्यापारस्तिङर्थस्तु विशेषणम्॥

—वैयाकरणभूषण, कारिका द्वितीय।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं। इन चारों परम्पराओं में उत्तर परम्परा ने पूर्वपरम्परा का खण्डन तो किया ही, किन्तु परम्परा के भीतर भी उत्तर विद्वान् पूर्व विद्वान् का खण्डन करते थे। जैसे जिनेन्द्रबुद्धि का खण्डन हरदत्त ने किया। इस प्रणाली को भट्टोजिदीक्षित ने खूब प्रोत्साहन दिया जिसके फलस्वरूप उनके टीकाकारों ने इस शैली की खूब ही वृद्धि की। उधर नव्य-न्याय की विषय-प्रतिपादन की तथा सम्बन्ध-निर्णय की शैली ने व्याकरणशास्त्र के भीतर प्रवेश किया, तब वैयाकरणों ने अपनी बुद्धि की प्रखरता दिखलाने के लिए **न्यास** का आश्रय लिया। **न्यास** शैली है, ग्रन्थ नहीं। पाणिनि के किसी सूत्र को लेकर उसमें लाघव के लिए परिवर्तन करने के प्रयास को **न्यास** की पारिभाषिक संज्ञा दी जाती है। सूत्रों में परिवर्तन करने से कौन-सी कठिनाई उत्पन्न हो सकती है और उस कठिनाई का दूरीकरण किस प्रकार किया जा सकता है—आदि विषयों का सूक्ष्म विचार इतनी प्रौढ़ता से किया जाता है कि वास्तव में बुद्धि-वैभव के चमत्कार को देखकर चकित हो जाना पड़ता है। यह शास्त्रार्थ-प्रणाली काशी के वैयाकरणों की महती देन है उनकी बुद्धि का विशद चमत्कार है। पहले ये युक्तियाँ गुरुमुखैकगम्य थीं। आज अनेक क्रोड-पत्र प्रकाशित हो गये हैं। फलतः अध्ययन के लिए ये उपलब्ध हैं, परन्तु उनके भीतर प्रवेश करना तथा शाब्दिक चक्रव्यूह का भंग करना गुरुकृपा की पूर्ण अपेक्षा रखता है।

आज वाराणसेय वैयाकरणों के सम्प्रदाय में जो नवीनतम प्रणाली प्रचलित है वह न्यास नहीं, परिष्कार है। नव्यन्याय की अवच्छेदकावच्छिन्न शैली में सूत्रार्थ की व्याख्या करना **परिष्कार**[1] कहलाता है। न्यास का प्रचार व्याकरण के छात्रों के लिए है, परिष्कार का प्रचार व्याकरण के विद्वानों के निमित्त है। इस शैली का आरम्भ नागेशभट्ट से होता है और उनके उत्तरकालीन टीकाकारों के ग्रन्थों में यह शैली अपने पूर्ण वैभव के साथ हमारे सामने उपस्थित होती है। समय के प्रवाह में उत्तरोत्तर टीकाएँ परिष्कार से जटिल होती जाती हैं। उदाहरणार्थ, गुरुप्रसाद शास्त्री द्वारा सम्पादित लघुशब्देन्दुशेखर का षट्-टीका-सम्पन्न नवीनतम संस्करण देखने योग्य है। परिभाषेन्दुशेखर की ताट्याशास्त्री की **भूति** टीका में तथा जयदेव मिश्र की **विजया** टीका में भी इसका स्वरूप देखने योग्य है। परिभाषेन्दुशेखर की पण्डित यागेश्वरशास्त्री रचित **हैमवती** टीका में परिष्कार शैली के स्थान पर प्राचीन प्रक्रिया शैली का ही विशुद्ध रूप देखने को मिलता है। इधर ग्रन्थों के प्रकाशन से परिष्कार शैली के मूर्त विग्रह का दर्शन आलोचकों को होने लगा है। यह शैली वाराणसेय वैयाकरणों की ही देन है। उचित है कि इस शैली की रक्षा की जाय। शास्त्रार्थ की प्रणाली का संरक्षण होना चाहिए जिससे काशी का यह वैशिष्ट्य अक्षुण्ण बना रहे। भगवान् विश्वनाथ की भूयसी अनुकम्पा से ही इस शास्त्र का संरक्षण हो सकेगा। तथास्तु।

●

---

१. परिष्कार के उदाहरण के लिए द्रष्टव्य परिशिष्ट (१)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१

श्रीकाशीनाथ शास्त्री

(आस्पद—अष्टपुत्रे; उपाधि -- वैयाकरण-सार्वभौम)

अब अर्वाचीन युग के आदिकाल में प्रतिष्ठित काशिकेय विद्वानों के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का परिचय दिया जा रहा है। १८वीं शती के अन्त में काशिराजकीय पाठशाला विद्वानों की केन्द्रस्थली रही थी। अतः उस विद्यालय के विद्वानों से यह परिचय आरम्भ होता है।

काशिराजकीय संस्कृत पाठशाला के आरम्भिक काल के व्याकरणाध्यापक विद्वानों के परिचय-प्रसंग में श्री **काशीनाथ शास्त्री** का नाम अग्रगण्य के रूप में आलोचकों के सामने उपस्थित होता है। उनके विषय की जानकारी एक अप्रत्याशित स्रोत से हमें उपलब्ध होती है। महाराष्ट्र के प्रख्यात साहित्यिक श्री नरसिंह चिन्तामणि केलकर ने 'संस्कृत विद्ये चे पुनरुज्जीवन' नामक मराठी ग्रन्थ[1] में 'महाराष्ट्रांतील कांही पंडित-घरानीं' शीर्षक अध्याय में महाराष्ट्र के प्रसिद्ध नगर 'बाई' में पनपने वाले पण्डित घरानों के अन्तर्गत काशीनाथ शास्त्री के पूज्य पिता गोविन्दाचार्य अष्टपुत्रे का विशेष उल्लेख किया है। इस उल्लेख से पता चलता है कि **गोविन्दाचार्य** महाराष्ट्र के तत्कालीन पण्डितों में नितान्त प्रसिद्ध थे, पुण्यपत्तन (पुणे) के संस्कृत विद्यालय के मुख्य अध्यापक थे तथा महामहोपाध्याय **गोपालाचार्य कह्नाडकर** जैसे विद्वान् शिष्य के गुरु होने के महनीय गौरव से मण्डित थे। काशीनाथ शास्त्री इन्हीं गोविन्दाचार्य के आत्मज थे। जन्मस्थान इनका बाई था। पिता से इन्होंने विधिवत् अध्ययन किया था। व्याकरण-शास्त्र में विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिए इनके पिता ने अपने पुत्र को सतारा के सुप्रसिद्ध विद्वान् **भास्कर शास्त्री अभ्यंकर** के पास अध्ययन के लिए भेजा। काशीनाथ ने अभ्यंकर शास्त्री से व्याकरण का विशिष्ट अध्ययन कर विशेष योग्यता प्राप्त की, परन्तु काशी के वैयाकरण विद्वानों के पास अध्ययन से अपनी योग्यता में सातिशय प्रौढि प्राप्त करने के उद्देश्य से ये काशी आये। उस समय काशी में व्याकरण शास्त्र की परिष्कार पद्धति का उदय हो चुका था।

परिष्कार पद्धति का उदय

नागेश भट्ट के निधन के अनन्तर काशी में नव्य व्याकरण की परम्परा को प्रतिष्ठित एवं पल्लवित करने का श्रेय पण्डित **गंगाराम त्रिपाठी** को है। ये पर्वतीय ब्राह्मण थे—मूलतः कूर्माचल (अलमोड़ा) के निवासी। इनके पूज्य पिताजी १८वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में अलमोड़ा से काशी आये। यहीं पर गङ्गारामजी ने पाणिनीय

---

१. प्रकाशक, काशीनाथ नरसिंह केलकर, द्वितीयावृत्ति, १९२८, पूना।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याकरण एवं नव्यन्याय का विधिवत् अध्ययन किया और वैयाकरण सिद्धान्तों के अनुशीलन में नव्यन्याय की शैली का प्रयोग कर व्याख्या की एक नवीन पद्धति को जन्म दिया जो **परिष्कार शैली** के नाम से प्रख्यात हुई। पण्डितों ने नागेश भट्ट के दोनों ग्रन्थ—लघुशब्देन्दुशेखर एवं परिभाषेन्दुशेखर का अध्ययन-अध्यापन इस शैली से कराना आरम्भ किया। इस परिष्कार शैली में नये-नये परिष्कार की कोटियों पर आधारित शास्त्रार्थ की परम्परा चल निकली जिससे इस पद्धति के अभ्युदय में विशेष बल प्राप्त होता गया। नव्य व्याकरण की इस परिष्कार पद्धति के जन्मदाता के रूप में श्री गंगाराम त्रिपाठी शास्त्री की कीर्ति अक्षुण्ण है।

त्रिपाठी जी के तीन प्रमुख शिष्य थे—

(१) पण्डित **रङ्गनाथ जी** जो नेपाल के महाराजा के गुरु एवं अमात्य थे।

(२) पण्डित **जगन्नाथ शास्त्री गाडगिल** जो अन्तिम पेशवाओं के राजगुरु थे।

(३) पण्डित **रघुनाथ शास्त्री**।

इन तीनों शिष्यों में से आदिम दोनों शिष्य राजमान्य थे और अपने महनीय पदों का उपयोग कर इन दोनों ने अपने आश्रयदाता राजाओं के द्वारा पण्डित गङ्गाराम शास्त्री जी को बहुत सी जमीन माफी रूप में दिलवाई। गङ्गाराम शास्त्री जी ने अपने शेखर की पोथियों को अपनी नवीन परिष्कारमयी व्याख्याओं से मण्डित किया है। ये पोथियाँ शास्त्री जी के ही सम्बन्धी महामहोपाध्याय नित्यानन्द पर्वतीय जी के पास सुरक्षित हैं और इनके अध्ययन से त्रिपाठी जी की व्याख्या-शैली के स्वरूप का पूरा परिचय प्राप्त होता है। ये पोथियाँ पण्डित नित्यानन्द जी के ही दौहित्र पण्डित गोपालदत्त पाण्डेय के संग्रहालय में सुरक्षित हैं जहाँ जिज्ञासुजनों के अध्ययन के लिए आज भी सुलभ हैं।

काशीनाथ शास्त्री : काशी में

जब काशीनाथ शास्त्री अध्ययन के लिए काशी पधारे तब यही परिस्थिति थी। ये गंगाराम त्रिपाठी के अन्तिम समय के छात्र थे तथा त्रिपाठी जी के विद्वान् शिष्य पण्डित जगन्नाथ शास्त्री गाडगिल के सम्पर्क में आने का भी सुयोग इन्हें प्राप्त हुआ। इन्होंने गुरु-चरणों में बैठकर इसी परिष्कार पद्धति से शेखरद्वय का गम्भीर अध्ययन किया। काशीनाथ जी ने गुरु से प्राप्त विद्या को अपनी लोकातीत प्रतिभा के बल पर और भी आगे बढ़ाया और परिष्कार पद्धति को अधिक प्रभावशाली बनाया। अध्ययन की समाप्ति के बाद ये काशिराजकीय पाठशाला में व्याकरण शास्त्र के अध्यापक नियुक्त किये गये।

इनका कार्यकाल १८२० ई० से लेकर १८५० ई० तक अनुमानतः माना जाना चाहिए। उस समय परीक्षोत्तीर्ण छात्रों को दिये गये प्रमाणपत्रों पर प्रथम पण्डित के रूप में इनके हस्ताक्षर विन्यस्त हैं। ७ मई १८४४ ई० में संस्कृत कालेज के द्वारा प्रकाशित सूचनापत्र पर काशीनाथ शास्त्री का सर्वप्रथम हस्ताक्षर उपलब्ध होता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सूचनापत्र में छात्रों के अध्ययन-क्रम तथा अध्येय विषयों का निर्धारण किया गया गया है कि किस विषय का अध्ययन किस अध्यापक के पास जाकर करना चाहिए। इस सूचनापत्र से पता चलता है कि महाभाष्य के अध्येता छात्रों को महाभाष्य के अध्ययन के लिए काशीनाथ शास्त्री के पास ही पढ़ने जाना चाहिए। सूचनापत्र का वह वाक्य इस प्रकार है—

"काशीनाथ शास्त्रिणश्च समीपेऽपि महाभाष्याध्ययनेच्छवो महाभाष्यं पठितुं शक्नुवन्ति।"

इससे भी इनकी विद्यालय में प्रमुखता का पता चलता है।

काशी में काशीनाथ शास्त्री जी अद्वितीय विद्वान् माने जाते थे—प्रथमगण्य पण्डित माने जाते थे। उस समय यह सर्वत्र प्रसिद्धि थी—

काश्यामेकः काशिनाथः।

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास संस्कृत कालेज के ही छात्र थे तथा उस युग के पण्डितों के वैदुष्य से पूर्ण परिचय रखते थे। उन्होंने अपने एक निबन्ध में[1] काशीनाथ शास्त्री को उस युग में काशी में व्याकरण को राज्याभिषेक देने वाला लिखा है अर्थात् वे व्याकरण के सर्वमान्य सम्राट् ही थे जिनके आधिपत्य में यह शास्त्र काशी में खूब पनपा और विकसित हुआ।

काशीनाथ शास्त्री के पट्टशिष्य पण्डित **राजाराम शास्त्री** ने अपने विश्रुत धार्मिक निबन्ध 'विधवोद्वाह-शङ्कासमाधिः' के एक पद्य में 'गुरुवर पण्डित काशीनाथ शास्त्री' की चरण-सेवा से अपने में प्रखर बुद्धि के उत्पन्न होने की बात लिखी है—

गुरुवर-बुध-काशीनाथ-शास्त्र्यङ्घ्रिसेवा,-
प्रबलधिषण-राजाराम शास्त्री करोति।
मुनिवचन-सुदृष्ट्या लब्धवर्ण्येति विद्व-
दभिनव-विधवीयोद्वाहशङ्का-समाधिम् ॥

(पद्य ६[2])

---

१. द्रष्टव्य, साहित्य नवनीत (काशी, १६३९), पृष्ठ ७८।

२. इस पद्य के भावानुसार ही बालशास्त्रीजी ने भी इस ग्रन्थ की टीका में अपने गुरुवर्य पं० राजाराम शास्त्रीजी की चरण-सेवा से विरोधियों के मत के खण्डन की बात लिखी है—

गुरुवर-बुध-राजाराम-शास्त्र्यङ्घ्रिसेवा-
प्रबल-सुमतिशाली बालशास्त्री करोति।
मुनिवचनसुदृष्ट्या मुंबयीयाख्य पूःस्था-
बुधजन-विधवीयोद्वाहकामस्य दाहम् ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशीनाथजी के ही अन्यतम शिष्य **पण्डित यागेश्वर ओझा** ने परिभाषेन्दुशेखर की अपनी **हैमवती** टीका में इन्हें 'समस्त विदुषांधुर्यं' तथा 'सुधीनां वरम्' कहकर इनके प्रकृष्ट पाण्डित्य का संकेत किया है। ओझाजी के शब्द हैं —

"श्रीविष्णुं विधि-नारद-प्रभृतिभिः संसेविताङ्घ्रिद्वयं
काशीनाथ-गुरुं सम-त विदुषां धुर्यं सुधीनां वरम्।"

ये समस्त प्रशस्तियाँ शास्त्रीजी की अलौकिक प्रतिभा एवं पाण्डित्य की सूचिकाएँ हैं।

काशीनाथ शास्त्री के तीन प्रमुख शिष्य थे –

(१) पण्डित राजाराम शास्त्री (कार्लेकर)।
(२) पण्डित बालशास्त्री (रानाडे)।
(३) पण्डित यागेश्वर शास्त्री (ओझा)।

इन्हीं पण्डितों की शिष्य-परम्परा काशी में सातिशय पल्लवित एवं पुष्पित हुई जिसके प्रयास से पाणिनि व्याकरण की परिष्कार-पद्धति ग्रन्थों की रचना से एवं शास्त्रार्थ के मौखिक प्रवचनों से और भी आगे पल्लवित एवं विकसित होती गई। इसी विकास की कथा आगे दी गई है।

●

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२

श्रीराजाराम शास्त्री

(आस्पद—कार्लेकर; उपाधि—योगिसम्राट्)

पण्डित राजाराम शास्त्री संस्कृत भाषा के नाना शास्त्रों के प्रौढ़ विद्वान् होने के अतिरिक्त, व्यावहारिक योगविद्या के भी निष्णात मनीषी थे। पाणिनीय व्याकरण में तो वे महाभाष्यकर्ता पतञ्जलि के नूतन अवतार ही माने जाते थे। बुद्धि के निर्मल विलास, प्रतिभा के उदात्त चमत्कार तथा अध्यात्मज्ञान की अन्तर्मर्मज्ञता के कारण वे अपने काल की काशीस्थ विद्वन्मण्डली में शीर्षस्थानापन्न माने जाते थे। सौभाग्य से उन्हीं के प्रिय शिष्य महामहोपाध्याय पण्डित गङ्गाधर शास्त्री ने अपने गुरु के पवित्र चरित्र का वर्णन काशी से ही प्रकाशित होनेवाले सुविख्यात 'पण्डित पत्र' (काशी-विद्या-सुधानिधि) के जिल्द १० में संक्षेप में किया है। उसी के आधार पर श्रीराजाराम शास्त्री की जीवनी का संक्षिप्त परिचय यहाँ उपन्यस्त किया जाता है।

जन्म एवं अध्ययन

काशी में श्रौतविद्याधुरन्धर, तपस्वी, दाक्षिणात्य, चित्तपावन जातीय, गोविन्द शर्मा नामक ब्राह्मण निवास करते थे। इन्हीं के तीन पुत्रों में कनिष्ठ पुत्र राजाराम शास्त्री जी थे। जब इनका वय दस वर्ष का था, तभी इनके पिता कैलासवासी हो गये। पिताजी के और्ध्वदैहिक संस्कारों का विधिवत् सम्पादन कर पण्डित राजारामजी ने संस्कृत के अध्ययन की ओर अपनी चित्तवृत्ति लगाई। फलतः काशी में त्रिलोचन घाट के निवासी तपोमूर्ति **पण्डित हरि शास्त्री रानाडे** के पास अपना अध्ययन आरम्भ किया और थोड़े ही समय में इन्होंने कौमुदी तथा सकल काव्य आदि में व्युत्पत्ति प्राप्त कर ली। अनन्तर उस युग के महनीय विद्वान् नैयायिक **पण्डित दामोदर शास्त्री** से इन्होंने तर्कशास्त्र का भी सुनिष्ठित अध्ययन किया। उस समय दामोदर शास्त्री वृद्ध हो गये थे। अतएव प्रतिभासम्पन्न राजाराम शास्त्री जैसे प्रतिभाशाली, व्युत्पन्न छात्र के अध्यापन में अपने विशेष कष्ट की आशंका से, इन्होंने संस्कृत कालेज के व्याकरणागम के प्रधान पण्डित काशीनाथ शास्त्री अष्टपुत्रे के ऊपर अपने छात्र के अध्यापन का भार सौंपकर, अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह किया। राजाराम शास्त्री ने गुरुवर्य काशीनाथ शास्त्रीजी के चरणों में बैठकर व्याकरण के प्रौढ़ ग्रन्थों का तलस्पर्शी आलोडन किया और गुरु के नैसर्गिक अनुग्रह से उस विषय के पारगामी विद्वान् बन गये। इस घटना का उल्लेख म० म० पं० गंगाधर शास्त्री ने अपने गुरु के 'जीवनचरित' में निम्नांकित श्लोक में किया है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यः सिक्त्वा श्रमवारिभिः कुसुमयन् नानाविधैर्हेतुभिः,
सिद्धान्तैः फलितं विधाय, बहुलैर्विद्वद्द्विजानन्ददम् ।
विद्याकल्पतरुं चिरं स्थिरतरं कुर्याद् भवन्मूलकं,
रत्नं नूत्नमिदं ददामि भवते यत्नादयं पाल्यताम् ।।"

विद्या का सम्मान

उन्हीं दिनों विनायकराव पेशवा चित्रकूट में निवास कर अपना सात्त्विक जीवन-यापन कर रहे थे। उनके यहाँ प्रतिवर्ष नाना देशों से समागत माननीय विद्वानों का शास्त्रार्थ-चर्चा के निमित्त समागम होता था तथा विशिष्ट विद्वानों को समधिक सत्कार तथा पारितोषिक दिया जाता था। उस वर्ष की 'वार्षिकी' सभा में राजाराम शास्त्री भी सम्मिलित हुए और अपने प्रमेयबहुल शास्त्रार्थ-चिन्तन के प्रदर्शन से उन्होंने पेशवा को प्रभावित किया जिन्होंने इन्हें सम्मान तथा पारितोषिक देकर अपना हार्दिक भाव प्रकट किया। उपस्थित समस्त पण्डितों को अपने वाग्वैभव तथा तर्कविन्यास से राजाराम शास्त्री ने परास्त कर दिया। इस तथ्य का उल्लेख कर पण्डित गङ्गाधर शास्त्री ने चित्रकूट में प्रवास करनेवाले भगवान् रामचन्द्र से भी इन्हें समधिक विशिष्टता से सम्पन्न व्यक्ति सिद्ध किया है—

"प्रागाश्रीयत रामेण चित्रकूटगिरिस्थितिः ।
खण्डिता वादिनां तेन चित्रकूटगिरि स्थितिः ।।"

काशी आकर इन्होंने गुरुवर काशीनाथ शास्त्री से अवशिष्ट ग्रन्थरत्नों का अध्ययन समाप्त किया। उसी समय काशिराजकीय पाठशाला के अध्यक्ष जान म्यूर साहब ऐसे विद्वान् की खोज में थे जो धर्मशास्त्र आदि संस्कृत शास्त्रों का प्रौढ़ विद्वान् तथा अंग्रेजी कचहरी में न्यायाधीश (जज) का गौरवपूर्ण कार्य करने की प्रभूत दक्षता रखता हो। राजाराम शास्त्री में अपेक्षित सभी गुण प्रचुर मात्रा में विद्यमान थे। वे धर्मशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् होने के साथ ही साथ व्यवहार कार्य में भी कुशल थे। फलतः म्यूर साहब ने इन्हें आजमगढ़ जिले की कचहरी में जज के महत्त्वपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित किया। वहाँ शास्त्रीजी ने लगभग पाँच वर्षों तक अपने नूतन कार्य का विधिवत्, सुचारुरूपेण सम्पादन किया। उस समय अंग्रेजी सरकार यह चाहती थी कि दीवानी कचहरियों में न्यायाधीश के पद पर संस्कृत के ऐसे विद्वानों की नियुक्ति की जाय जो धर्मशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित हों और हिन्दू स्मृतियों के अनुसार व्यवहार (मुकदमों) का निर्णय कर सकें। चूँकि शास्त्रीजी उस समय काशी के सबसे बड़े विद्वान् थे, अतः सरकार ने बड़े सम्मान के साथ इनकी नियुक्ति आजमगढ़ जिले की कचहरी में न्यायाधीश के पद पर की। इससे स्पष्ट ही अनुमान किया जा सकता है कि शास्त्री जी का राजकीय क्षेत्र में भी कितना आदर था तथा धर्मशास्त्र के ये कितने बड़े विद्वान् थे। इसी कारण काशी से बाहर के विद्वान् भी धर्मशास्त्र के सम्बन्ध में इनकी व्यवस्था लेने के लिए इनके पास आया करते थे और अपनी शंकाओं का समाधान कराया करते थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पद से निवृत्त होकर ये ग्वालियर गये और तत्कालीन महाराजा की सभा के पण्डितों को शास्त्रार्थ में पराजित कर ग्वालियर नरेश के द्वारा बहुमूल्य वस्त्र तथा द्रव्यराशि के द्वारा सम्मानित होकर वहीं कई महीनों तक ठहरे रहे।

ग्रन्थ-रचना

सं० १९१२ विक्रमी (१८५५ ईस्वी) में ग्वालियर से ये काशी लौट आये और अपने घर पर छात्रों को शास्त्रों का अध्यापन करते रहे। इसी समय अपने गुरुवर्य काशीनाथ शास्त्री के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का अवलम्बन कर इन्होंने **'विधवोद्वाह-शङ्का-समाधिः'** नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया। उस युग में विधवाओं के विवाह के विषय में बड़ा मतभेद था। नवीन सुधारकगण उनके विवाह के पक्षपाती थे, परन्तु प्राचीन धार्मिक परम्परा के अनुयायी विद्वान् विधवा-विवाह के नितान्त विरोधी थे। हिन्दू समाज में उत्पन्न यह बहुचर्चित आन्दोलन पण्डितों के भी क्षोभ-विक्षोभ का कारण बना हुआ था जिसकी मीमांसा वैदिक धर्म के विद्वानों के लिए भी ज्वलन्त विषय था। इसी का विमर्श गुरु तथा शिष्य के बीच कोटि-प्रकोटि परिष्कार के रूप में इस ग्रन्थ में संगृहीत किया गया है।

पण्डित राजाराम शास्त्री ने ग्रन्थ का प्रणयन कर अपने गुरुवर के चरणों में इसे समर्पित कर दिया, परन्तु गुणैकपक्षपाती गुरु ने प्रसाद-रूप से शिष्य के नाम से ही इसके प्रकाशन का आदेश दिया। फलतः यह ग्रन्थ राजाराम शास्त्री जी के कृति-रूप में प्रकाशित हुआ।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन से प्रसन्न होकर काशिराजकीय पाठशाला के तत्कालीन अध्यक्ष वेलेन्टाइन साहब ने (जो १८४६ ई० से लेकर १८६१ ई० तक– पन्द्रह वर्षों तक अध्यक्ष रहे) शास्त्री जी को १८५६ ई० में कालेज में सांख्यशास्त्र के अध्यापक के पद पर नियुक्त किया। इसके बाद १९२० विक्रमी सं० (१८६३ ई०) में कालेज के नये अध्यक्ष ग्रिफिथ साहब ने शास्त्री जी की पदोन्नति कर धर्मशास्त्र के प्रधान अध्यापक के पद पर नियुक्त किया। कई वर्षों तक अध्यापन कार्य का निर्वाह इन्होंने किया। इसी काल में बालशास्त्री ने इनसे धर्मशास्त्र आदि शास्त्रों का अध्ययन किया। अनेक छात्रों को अपनी अध्यापन कला के द्वारा शास्त्रीय पाण्डित्य से सम्पन्न कर वृद्धावस्था आने पर इन्होंने कालेज से स्वेच्छया अवकाश ले लिया। भगवती भागीरथी के तीर पर किसी मठ में योगाभ्यास करते हुए ये अपना जीवन बिताने लगे।

पाँच-छह वर्षों तक इसी प्रकार योगाभ्यास करते हुए शास्त्रीजी निरन्तर अध्यात्म-चिन्तन में संलग्न रहे। १९३२ वि० सं० (= १८७५ ई०) में भाद्रकृष्ण तृतीया के दिन श्री राजाराम शास्त्री अपनी पाञ्चभौतिक देह का विसर्जन कर परमधाम में लीन हो गये।

इस समय इनका वय यदि सत्तर वर्ष मान लिया जाय, तो इनका जन्म लगभग सं० १८६२ वि० (= १८०५ ई०) में हुआ होगा। संस्कृत कालेज में अध्यापक के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद पर इन्होंने केवल १३ वर्ष तक ही कार्य किया १९१३०–१९२६ वि० सं० (१८५६–१८६९ ई०), परन्तु इनका अध्यापन का कार्य लगभग २० वर्ष तक चलता रहा। इससे पूर्व ये आजमगढ़ में जज के पद पर भी कार्य करते रहे। इस प्रकार पण्डित राजाराम शास्त्री ने नाना दिशाओं में अपनी अलौकिक शेमुषी का प्रकाश कर योग से अपने जीवन का साफल्य प्राप्त किया।

बलिष्ठ देहयष्टि

श्रीयुत राजाराम शास्त्रीजी के विषय में दो संस्मरण बड़े महत्त्व के हैं। एक तो है उनके वैदुष्य तथा दैहिक बल के विषय में और दूसरा है उनके आध्यात्मिक शिक्षण के बारे में। इनके वैदुष्य के विषय में विद्वन्मण्डली की मान्यता है कि इनके व्याकरण आगम के अलौकिक पाण्डित्य को देखकर प्रतीत होता था कि पाणिनीय तन्त्र के पुनर्जीवन के लिए नया अवतार धारण करने वाले मानों ये पतञ्जलि हों। योग के सन्तत अभ्यास के कारण इनकी देहयष्टि इतने शौर्य तथा वीर्य से सम्पन्न प्रतीत होती थी, मानों इनकी दृढ़ भुजाएँ भीमसेन की बाहुओं का स्मरण दिलाती हों। ये अखाड़े में उतर कर पहलवानों से मल्लयुद्ध किया करते थे तथा अपने दाँव-पेंच का प्रदर्शन कर दर्शकों को मन्त्र-मुग्ध बना दिया करते थे। सुना जाता है कि शास्त्रार्थ के प्रसंग में ये एक बार नेपाल पधारे। वहाँ का राजकीय नियम था कि दरबार के बाहर रखे गये नगाड़े को उतनी बार बजाना पड़ता था जितने शास्त्रों में उस पण्डित को शास्त्रार्थ करना अभीष्ट होता था। शास्त्रीजी नगाड़े को बजाते ही रह गये। ऐसे विलक्षण व्यक्ति को आदर के साथ राजा के सामने दरबार में लाया गया और नगाड़े पर निरन्तर चोट करने का जब कारण पूछा गया, तब इन्होंने सीधे-सादे शब्दों में कहा कि मैं समग्र शास्त्रों का वरेण्य पण्डित हूँ और उन सब शास्त्रों में यहाँ के पण्डितों से शास्त्रार्थ करने आया हूँ। शास्त्रार्थ के अनन्तर मैं अखाड़े में कुश्ती की भी अपनी कलाबाजी तथा दाँव-पेंच दिखाऊँगा। इसी अभिप्राय से मैंने नगाड़े को इतनी बार बजाया है। दरबार के पण्डितों के साथ राजाराम शास्त्रीजी का जमकर कई दिनों तक शास्त्रार्थ चलता रहा। अन्त में विजयश्री इन्हें ही प्राप्त हुई। तदनन्तर अखाड़े में उतर कर शास्त्रीजी ने नेपाल के पहलवानों को कुश्ती के लिए ललकारा। अनेक पहलवानों से जमकर कुश्ती हुई, परन्तु शास्त्रीजी ने सब पहलवानों को धूल चटा दी। इस प्रकार अखाड़े की लड़ाई में भी ये विजयी हुए। इनका फोटो देखकर इनके बलिष्ठ तथा पुष्ट शरीर का परिचय पाना असम्भव नहीं है। इस प्रकार मस्तिष्क के विकास और शरीर के उपचय दोनों के विषय में राजाराम शास्त्रीजी अपना प्रतिस्पर्धी नहीं रखते थे।

स्वप्न में अध्यापन कार्य

दूसरी घटना नितान्त आश्चर्यजनक है। पण्डित गङ्गाधर शास्त्री, शास्त्रीजी के पट्टशिष्य थे, जिन्होंने समस्त शास्त्रों का अध्ययन इनसे कर अद्भुत वैदुषी की सम्पत्ति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त की थी। परन्तु शास्त्रीजी के निधन के कारण योगसूत्रों के प्रामाणिक व्याख्यान व्यासभाष्य के अध्ययन का कुछ अंश अवशिष्ट रह गया। उन अंशों के अध्ययन की विकट समस्या सामने आई। कहा जा चुका है कि राजाराम शास्त्रीजी योगशास्त्र के केवल सिद्धान्तों के ही ज्ञाता नहीं थे, प्रत्युत व्यावहारिक रूप के भी प्रवीण मर्मज्ञ थे। अतः ऐसे योगविद् गुरु से, योग के ग्रन्थों के विधिवत् अध्ययन करने की कामना किसी शिष्य में होना स्वाभाविक ही है। कहा जाता है कि गङ्गाधर शास्त्रीजी अपने अध्ययन के योग्य विषम स्थल वाले व्यासभाष्य की पोथी खोलकर अपने टेबुल पर रखकर सो जाते थे। रात में स्वप्न में ही राजाराम शास्त्रीजी उन अंशों को अपने प्रिय शिष्य को पढ़ा देते थे। फलतः जगने पर शिष्य को सब दुरूह अंशों का तात्पर्य सुगम सुबोध हो जाता था। कोई भी स्थल अव्याख्यात तथा अज्ञात नहीं रहता था। इस प्रकार पण्डित राजाराम शास्त्री के स्वप्नलोकीय अध्यापन के प्रभाव से गंगाधर शास्त्री की सब शंकाएँ निरस्त हो जाती थीं और समग्र ग्रन्थ का तथ्य हस्तामलकवत् उन्हें प्राप्त हो जाता था।

स्वप्नलोक के अध्ययन-अध्यापन की सत्ता पर सन्देह करने का कोई कारण नहीं है। गुरु जिस प्रकार भौतिक शरीर से अपने शिष्य को उपदेश देता है, उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर से भी वह कार्य निष्पन्न कर सकता है—इस तथ्य में लेशमात्र शंका करने का स्थान नहीं है। महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराज ने भी अपने एक गुरु शिवराम किंकर (सान्याल महाशय) के विषय में ऐसे ही तथ्यों का उद्घाटन किया है। सान्याल महाशय अपने समय के एक वरिष्ठ तपस्वी, साधक तथा नाना शास्त्रों के विचक्षण मनीषी थे। पतञ्जलि का महाभाष्य पढ़ने की उन्हें बड़ी अभिलाषा थी। कलकत्ते में बंगीय पण्डितों में पाणिनीय तन्त्र के विद्वान् व्यक्ति के अभाव के कारण उनकी अभिलाषा पूर्ण नहीं हो रही थी। उन्होंने कलकत्ता प्रवासी किसी मराठी वैयाकरण के सामने अपनी जिज्ञासा प्रकट की, तो उन्होंने इन्हें बड़ी डाँट बताई तथा अपमान भी किया। इस पर सान्याल महाशय ने प्रतिज्ञा की कि अब मैं पतञ्जलि से ही महाभाष्य पढ़ूंगा। थे वे बड़े नैष्ठिक साधक, तपोमूर्ति विद्वान्। उन्होंने बहुत ही दुःखित होकर, रो-रोकर, अपने अपमान की बात अपने मित्रों से कह सुनाई। एक रात रोते हुए सोने पर स्वप्न में महर्षि पतञ्जलि ने दर्शन दिया और ग्रन्थ के विषम स्थलों की ग्रन्थियों के सुलझाने की स्वीकृति दी। फलतः रात को सोते समय सान्याल महाशय ग्रन्थ के अध्ययन वाले पृष्ठों को खोलकर टेबुल पर रख देते थे। दूसरे दिन उठने पर उन पृष्ठों का तात्पर्य स्वतः हृदयंगम हो जाता था। इस प्रकार उन्होंने समग्र महाभाष्य का महर्षि पतञ्जलि से ही विधिवत् अध्ययन किया।

सरल स्वभाव

पण्डित राजाराम शास्त्रीजी की सौम्यता तथा सरलता के विषय में एक घटना प्रसिद्ध है जिसका उल्लेख पण्डित लक्ष्मण शास्त्री द्राविड ने 'विचारत्रयी' की अपनी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिका में किया है। राजाराम शास्त्रीजी के एक शिष्य संन्यास धारण कर कृष्णाश्रम स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हुए। वे बड़े ही वावदूक थे तथा बड़ी सुन्दर कथा कहा करतेथे। एक बार जब शास्त्रीजी पंचगंगा घाट पर गंगास्नान कर सोढ़ियों से ऊपर चढ़कर आये तब किसी मन्दिर के प्राङ्गण में से किसी कथावाचक के मधुर शब्द इनके कानों में पड़े। ये गली में ही मन्दिर के सामने रुक कर कथा सुनने लगे। कथावाचक विष्णुसहस्र नाम की कथा कह रहे थे और 'अमानी मानदो मान्यः' इन नामों की व्याख्या सुना रहे थे। उन्होंने कहा -- भगवान् अमानी हैं — स्वयं मान नहीं करते, परन्तु 'मानद' हैं—दूसरों को मान (सम्मान, आदर) देते हैं। और इसीलिए वे मान्य हैं - सबके द्वारा माननीय तथा आदरणीय हैं। इस व्याख्या को सुनकर राजाराम शास्त्रीजी ठिठक कर खड़े रह गये। किसी श्रोता ने कथावाचक से शास्त्रीजी की उपस्थिति की बात कही, तो वे कथा बन्द कर बाहर निकले। वे शास्त्रीजी के पुरातन शिष्य कृष्णानन्द स्वामीजी थे। बाहर आने पर राजाराम शास्त्री ने उन्हें प्रणाम कर कहा—"मैं विष्णुसहस्र नाम का नित्य पाठ करता हूँ, परन्तु आपने इन तीन नामों में जो पारस्परिक सम्बन्ध तथा स्वारस्य दिखलाया, वह नितान्त अभिनन्दनीय है। इस उपदेश के लिए मैं आपका कृतज्ञ हूँ और प्रणाम करता हूँ।"

कृष्णानन्द स्वामीजी ने स्वयं गुरुजी को प्रणाम किया और कहा कि मैं तो आप का ही शिष्य हूँ। आपने मुझे जो शास्त्र पढ़ाया है उसी के बल पर कथा कहता हूँ। आप मेरे प्रणम्य हैं। प्रणाम कर मुझे लज्जित न करें। राजाराम शास्त्रीजी ने उन्हें रोक कर कहा—"आप जब मुझसे पढ़ते थे, तब मेरे शिष्य थे। इस वेश में आप मेरे उपदेष्टा गुरु ही हैं। मैं निश्चय आप को प्रणाम करूँगा। आप मेरा प्रणाम स्वीकार करें।"

कैसा निश्छल हृदय था राजाराम शास्त्रीजी का और कितनी सरलता थी उनकी वाणी में और कितनी उदात्तता थी उनके चरित्र में। उनके प्रति किसका मस्तक आदर से नत न हो जायगा। वे 'गुरूणां गुरु' थे–आदर्श चरित्र, उदात्त व्यवहार तथा नैसर्गिक सरलता की प्रतिमूर्ति !!!

नव्यन्यायपरिष्कृति-रीत्या शब्दानुशासनेऽनुपमः।
श्रीबालशास्त्रिपूज्यः श्रीराजारामशास्त्रिवरः॥

ग्रन्थ-परिचय

पण्डित राजाराम शास्त्रीजी की केवल एक ही रचना प्रकाशित है, परन्तु वह इतनी प्रौढ़, प्रमाण-पुरस्कृत तथा पण्डितजनानुमोदित है कि केवल उसी रचना के आधार पर उनके लोकातीत पाण्डित्य की एक भव्य झाँकी विद्वज्जनों के सामने उपस्थित हो जाती है। वह एक महत्त्वपूर्ण लघुकाय धर्मशास्त्रीय निबन्ध है जिसका नाम है, **'विधवोद्वाहशङ्का समाधिः'** रचना काल है १९१२ विक्रमी संवत् (१८५५ ईस्वी)। यह तो सर्वत्र विख्यात ही है कि विधवा-विवाह के औचित्य का प्रथम प्रतिपादन बंगाल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के राजा राममोहन राय ने किया था तथा उसके प्रचार के लिए 'ब्रह्मसमाज' एक नवीन धार्मिक संस्थान की स्थापना की थी। फलतः सनातनी बंगदेशीय जनता में इस प्रचार के कारण बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ। तदनुसार बंगाल के कतिपय मान्य पण्डितों ने काशी के उस समय के वरिष्ठ धर्मशास्त्री पण्डित राजाराम शास्त्रीजी से विधवा-विवाह के शास्त्रीयत्व तथा अशास्त्रीयत्व के विषय में शंका उपस्थित कर उसके समाधान के निमित्त विशेष आग्रह किया था। उसी आग्रह की पूर्ति के लिए राजाराम शास्त्रीजी ने इस अनुपम ग्रन्थ का प्रणयन किया था। ये इस शंका के समाधान के लिए सर्वोत्तम व्यक्ति थे। ये काशिराजकीय पाठशाला में धर्मशास्त्र के प्रधान अध्यापक थे और इससे पूर्व ये कचहरी में धर्मशास्त्र के नियमानुसार निर्णय के लिए जज के पद पर नियुक्त भी किये गये थे।

विधवा-विवाह की शास्त्रीय व्यवस्था देने के लिए इन्होंने धर्मशास्त्र तथा मीमांसा का गाढ़ अनुशीलन कर अपने निर्णय को प्रामाणिक बनाया है। इस शंका के जितने पक्ष-विपक्ष उपस्थित किये जा सकते हैं, सबका इन्होंने समाधान बड़ी ही सुन्दर युक्तियों तथा प्रौढ़ तर्कों के आधार पर किया। आज से ठीक सवा सौ साल पहिले यह ग्रन्थ रचा गया था। अपने निर्णय को सार्वभौम तथा परिष्कृत बनाने के लिए इन्होंने उस समय के गण्यमान्य पण्डितों की भी सम्मति ले ली। सम्मति देने वाले पण्डितों की नामावली नीचे दी जाती है जिससे उस समय के पण्डितों के नामों का भी पता चलता है—

१. बैजनाथ भट्ट
२ सखाराम भट्ट
३. जयरामशर्मा भट्ट
४. रामचन्द्रशर्मा धर्माधिकारी
५. वेणीराम शर्मा शेष
६. शम्भु शर्मा चतुर्धर
७. गंगाधर शास्त्री
८. विश्वनाथ शर्मा हर्डीकर
९. रामशास्त्री भट्ट
१०. काशीनाथ शास्त्री
११. उमाराव शर्मा सुकुल
१२. राजगुरु जीवनाथ पण्डितराज
१३. हीरानन्द शर्मा
१४. पं० गुलजार शर्मा
१५. ईश्वरीदत्त शर्मा पाण्डेय
१६. शालग्राम उपाध्याय
१७. लज्जाशङ्कर शर्मा
१८. मनोरथ शर्मा
१९. देवदत्त शर्मा
२०. नारायण शास्त्री कुण्टे
२१. विट्ठल पण्डित
२२. सिद्धेश्वर शर्मा
२३. शङ्कर शास्त्री
२४. बैजनाथ भट्ट विश्वरूप
२५ गिरजाशंकर पाठक
२६ अग्निहोत्री वैद्यनाथ पाठक
२७. नारायण मेघंकर
२८. काकाराम पण्डित
२९. गोपालकृष्ण शर्मा याज्ञिक
३०. गणेश श्रौती
३१. घनश्याम मिश्र
३२. पुरुषोत्तम शास्त्री जोग

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३३. सुन्दर शर्मा
३४. लक्ष्मीकान्त पण्डित
३५. तुलसीदत्त ओझा
३६ हरिचरण पण्डित
३७. मथुरानाथ शुक्ल
३८. प्रयागदत्त शर्मा त्रिपाठी
३९. व्यास लक्ष्मीशंकर शर्मा
४०. द्विवेद बस्तीराम शर्मा
४१. न्यायपञ्चानन ठाकुरदास देवशर्मा
४२. चन्द्रदेव शर्मा विद्यालंकार
४३. कालीप्रसाद शर्मा
४४. भगवतीचरण देवशर्मा
४५. हरनारायण तर्कालङ्कार
४६. सार्वभौम कृष्णदेव देवशर्मा
४७. रामशरण तर्कपञ्चानन
४८. ओझा चन्द्रधर शर्मा मैथिल
४९. उपाध्याय भोलानाथ शर्मा
५०. ओझा श्रीझुमक शर्मा
५१ ज्योतिर्विद् सेवाराम शर्मा
५२. दुर्गादत्त शर्मा

इस सूची के अवलोकन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस समय के पंडितों में दाक्षिणात्यों की ही प्रधानता न थी जैसा सामान्यतः समझा जाता है, प्रत्युत मैथिल, बंगीय, गुजराती तथा कान्यकुब्ज-देशीय पण्डितों की भी अच्छी संख्या थी और वे गण्यमान्य विद्वानों में गिने जाते थे जिनकी सम्मति का महत्त्व था तथा जिनकी सम्मति की व्यवस्थापत्र पर अपेक्षा रहती थी।

इन ५ पण्डितों की सम्मति का रूप यही था—

श्रुतिस्मृति-निर्णीते शास्त्रार्थेऽस्यत्र सम्मतिः।

इस प्रकार काशी की समग्र विद्वन्मण्डली की सम्मति से समन्वित यह व्यवस्था-पुस्तक एकदेशीय न होकर सार्वभौम ग्रन्थ था और पण्डित राजाराम शास्त्री ने इसे विचारपूर्वक यही स्वरूप प्रदान भी किया था।

बालशास्त्री की टीका

परन्तु कालान्तर में बम्बई के किसी दाक्षिणात्य पण्डित ने **विधवोद्वाहविवेक** नामक ग्रन्थ की रचना की और अपने को राजाराम शास्त्रीवाले ग्रन्थ का खण्डन करनेवाले व्यक्ति के रूप में उल्लिखित किया। शास्त्रीजी ने उसकी उपेक्षा की, परन्तु उन्हीं के प्रख्यात-कीर्ति शिष्य बालशास्त्री ने इस विवेक का अक्षरशः खण्डन अपनी तिलकनाम्नी टीका में किया जिसका नाम उन्होंने रखा—**दोषाभास-निरासः**। उन्होंने इसे स्वतन्त्र ग्रन्थ का रूप न देकर **विधवोद्वाहशंकासमाधिः** के ही तिलक (व्याख्या) के रूप में प्रकाशित किया। मूल ग्रन्थ के साथ यह बालशास्त्री प्रणीत 'तिलक' सं० १९२६ (सन् १९६९) में काशी के 'मेडिकल हाल' यन्त्रालय में मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ। विद्वान् गुरु तथा प्रतिभाशाली शिष्य की यह सम्मिलित रचना अपने वैदुष्य, प्रामाणिकता एवं उपादेयता के कारण निःसन्देह एक आदरणीय तथा प्रौढ़ निबन्ध है।

पण्डित राजाराम शास्त्री ने ग्रन्थ के आरम्भ में अपने गुरु काशीनाथ शास्त्रीजी का आदरपूर्वक स्मरण किया है तथा विषयानुमत होने से पतिव्रता-शिरोमणि दाक्षायणी,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौरी, अनुसूया तथा अरुन्धती की स्तुति की है। उन्हीं में से उदाहरण रूप से दो-तीन श्लोक यहाँ दिये जाते हैं :

"कल्याणाचलकुञ्जगुञ्जदलिनी-सङ्गीतलोलापि या;
कर्णौ काश्यपधर्मसूक्तिकलितौ नान्यत्र दत्ते मनाक्।
या माता महसस्त्रयीमयतनोर्मूर्तेव पातिव्रती;
सा नो भद्रममुद्रमाकलयतां दाक्षायणी सन्ततम्॥"

यह तो भगवती दाक्षायणी अदिति की प्रशस्ति है। अब वशिष्ठ-पत्नी अरुन्धती की स्तुति पढ़िए—

"या यायावरमुख्यतापसगणैस्तोष्टूय्यमानाऽनिशं
सद्धर्मं गृणती पुनाति भुवनं साध्वी न यस्याः समा।
सच्चारित्र-विभूषणा गुणनिधिः, शच्यादि सीमन्तिनी-
नित्याराधितपादपङ्कजयुगा साऽरुन्धती पातु नः॥"

विधवा-विवाह के आकर्षण का भी वर्णन सुनिए –

"विषयाभिलाषुकाणां नृपतीनामिव नृणां न केषां वा।
प्रीत्यै भवति पुनर्भूपरिग्रहो लोलबुद्धीनाम्॥"

परन्तु विधवा-विवाहकर्ता सर्वदा निन्दनीय ही है—

"तदपि सनातनधर्मं प्राप्यानुश्रविकमात्महितकामैः।
नादरणीयाः कुधियः सुकृतक्षतिहेतवो बुधैर्जातु॥"

●

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३

श्री बापूदेव शास्त्री

(आस्पद—'देव', उपाधि—महामहोपाध्याय तथा सी० आई० ई०)

गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज के इतिहास के प्रारम्भिक पचास वर्षों में कालेज में अनेक शास्त्रों का अध्यापन किया जाता था और अनेक शास्त्रों के अध्यापक नियुक्त किये गये थे परन्तु इन विद्वानों के विषय में थोड़ा भी विवरण प्राप्त नहीं होता। इन पण्डितों का कुछ वर्णन 'स्केच आफ दि राइज एण्ड प्रोग्रेस आफ दि बनारस पाठशाला' नामक अप्रकाशित अंग्रेजी ग्रन्थ में पाया जाता है। इसी ग्रन्थ के आधार पर तथा तत्कालीन वृद्ध-जनों से सुनी-सुनायी जन-श्रुतियों का अवलम्बन कर पण्डित सुधाकर द्विवेदी ने **'गणक-तरंगिणी'** नामक अपनी खोजपूर्ण पुस्तक में इस काल के केवल ज्योतिष-शास्त्र के कतिपय अध्यापकों का कुछ विवरण प्रस्तुत किया है। इसी के आधार पर इन आरम्भकालीन पण्डितों की संक्षिप्त चर्चा यहाँ की जाती है।

(क) प्राचीन ज्योतिषाध्यापक

(१) पण्डित लक्ष्मीपति—ये पर्वतीय ब्राह्मण थे। काशी में ये सिद्धान्त ज्योतिष के प्रचारक थे तथा पाटीगणित एवं बीजगणित में अत्यन्त प्रगल्भ थे। इनके समय से ही फलित ज्योतिष का ह्रास और गणित ज्योतिष की उन्नति प्रारम्भ हुई। काशिराजकीय पाठशाला में ये गणित ज्योतिष के प्रथम अध्यापक थे। इनका जन्म लगभग १७४८ ई० तथा मृत्यु १८२० ई० में हुई थी। इन्होंने अनेक छात्रों को तैयार किया जिनमें पं० कृष्णदेव, पं० शिवलाल और पं० दुर्गाशंकर पाठक आदि विख्यात हुए।

(२) पण्डित कृष्णदेव—ये लक्ष्मीपति के पुत्र तथा शिष्य दोनों थे। पिता की मृत्यु के बाद ये इसी संस्कृत कालेज में ज्योतिष के प्रधानाध्यापक हुए। ये ज्योतिष शास्त्र की गोलविद्या में अत्यन्त निपुण थे, परन्तु इन्होंने किसी ग्रन्थ का निर्माण नहीं किया। इनका जीवनकाल सन् १७७५ ई० से लेकर १८३५ ई० समझना चाहिए। अपने पिता की मृत्यु के अनन्तर ये सन् १८२० ई० में राजकीय पाठशाला में ज्योतिष शास्त्र के अध्यापक नियुक्त हुए।

(३) पं० लज्जाशंकर शर्मा—ये गुजराती मोढ़ ब्राह्मण थे। इन्होंने लक्ष्मीपति तथा दुर्गाशंकर पाठक से ज्योतिष शास्त्र का सम्यक् अध्ययन किया था। ये पण्डित कृष्णदेव जी के सहायक थे और उनकी मृत्यु के पश्चात् इन्होंने इसी पाठशाला में ज्योतिष शास्त्र की गद्दी को सुशोभित किया। इनका जन्म सन् १८०४ ई० तथा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्यु सन् १८५९ ई० में हुई थी। इस प्रकार इन्होंने केवल ५५ वर्ष की आयु प्राप्त की थी।

(४) पं० लज्जाशंकर शर्मा के गुरु **पण्डित दुर्गाशंकर पाठक** प्रकाण्ड विद्वान् थे। ये अपने घर पर ही शिष्यों को ज्योतिष तथा काव्यशास्त्र का अध्यापन किया करते थे। ये औदीच्य ब्राह्मण थे और अपनी विद्वत्ता के कारण 'जगद्गुरु' कहलाते थे। यह प्रसिद्धि है कि पंजाब के राजा रणजीत सिंह के अनन्तर राजा खड्ग सिंह के गद्दी पर बैठने का शुभ मुहूर्त इन्हीं पाठक जी ने दिया था। राजकुमार निहाल सिंह के जन्म के अवसर पर इन्होंने राजकुमार की जो जन्मकुण्डली बनायी थी वह बहुत ही चित्र-विचित्र थी जिस पर प्रसन्न होकर महाराजा ने इनको एक लाख रुपया पुरस्कार के रूप में प्रदान किया था। पं० दुर्गाशंकर पाठक के अनेक शिष्य थे जिनमें ज्योतिष शास्त्र के शिष्य पं० लज्जाशंकर की चर्चा की जा चुकी है। साहित्य शास्त्र में इनके पट्टशिष्य **पं० हीरानन्द चतुर्वेदी** थे जो इसी पाठशाला में कालान्तर में साहित्य-विभाग के प्रधानाध्यापक नियुक्त हुए। इस प्रकार पं० दुर्गाशंकर पाठक केवल ज्योतिष के ही विद्वान् नहीं थे, प्रत्युत काव्यशास्त्र के भी ये प्रवीण पण्डित थे।

(५) **पण्डित नन्दलाल शर्मा** -- इसी काल में पं० लज्जाशंकर शर्मा के विभाग में ये द्वितीय अध्यापक थे जो पं० सुधाकर द्विवेदी के पिता पं० कृपालुदत्त द्विवेदी के गुरु थे। ये इलाहाबाद जिले के कड़ामानिकपुर गाँव के निवासी सरयूपारीण ब्राह्मण थे। ये फलित ज्योतिष के बहुत बड़े विद्वान् थे और इस विद्या से इन्होंने प्रचुर धन का अर्जन किया था। इनकी जन्म तिथि १८०४ ई० तथा मृत्यु १८६७ ई० थी।

(६) **देवकृष्ण शर्मा**—इनके पिता का नाम रामधन मिश्र था। इनका जन्म १८१८ ई० में हुआ था। इन्होंने लज्जाशंकर शर्मा से सकल शास्त्रों का अध्ययन करके २०-२२ वर्ष की अवस्था में ही अपने घर पर ही छात्रों को ज्योतिष का अध्यापन प्रारम्भ कर दिया था। उन दिनों कश्मीर में राजा रणवीर सिंह राज्य करते थे। इन्हीं राजा के निमंत्रण पर शर्मा जी कश्मीर गये और राजज्योतिषी के पद पर प्रतिष्ठित होकर नौ वर्षों तक कश्मीर (जम्मू) में निवास किया। जम्मू से लौटने के पश्चात् ये सन् १८६८ ई० में गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज में ज्योतिष के अध्यापक हो गये। इन्होंने सन् १८८६ ई० में कालेज से अवकाश ग्रहण किया। म० म० पं० सुधाकर द्विवेदी इन्हीं शर्मा जी के पट्टशिष्य थे। पं० देवकृष्ण शर्मा म० म० बापूदेव शास्त्री के समय में ज्योतिष के सहायक अध्यापक थे। शर्मा जी की नियुक्ति के पहिले ही म० म० पं० बापूदेव शास्त्री की नियुक्ति सन् १८४२ ई० में हो गई थी जिसका विस्तृत विवरण दिया जा रहा है।

(ख) जीवनी

महामहोपाध्याय पं० बापूदेव शास्त्री सी० आई० ई० अपने युग के महान् विद्वान् और प्रतिभाशाली ज्योतिर्विद् थे। इनका प्रतिद्वन्दी शायद ही कोई व्यक्ति हो। उस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युग में पश्चिमी गणित का प्रचार अंग्रेजी शिक्षा के साथ-साथ देश में होने लगा था परन्तु भारतीय परम्परागत गणितज्ञों का ध्यान इस शास्त्रीय विषय की ओर अभी तक आकृष्ट नहीं हुआ था। उभय प्रकार की गणित-पद्धतियों का यह सम्मेलन केन्द्र था। पाश्चात्य गणित को आत्मसात् करने की आवश्यकता थी। उसके सिद्धान्तों को लेकर अपने प्राचीन भारतीय सिद्धान्तों के साथ उसके समन्वय की अत्यन्त अपेक्षा थी। परन्तु इस समन्वय के लिए एक ऐसे विचक्षण गणितज्ञ की आवश्यकता थी जो पाश्चात्य गणित के साथ, भारतीय गणित का सामञ्जस्य स्थापित कर सके। इसी प्रकार की लोकातीत प्रतिभा के धनी तथा समन्वय कार्य में पाटव-सम्पन्न पण्डित थे म० म० बापूदेव शास्त्री। इन्होंने अपनी प्रतिभा के बल से भारतीय ज्योतिष को एक नया मोड़ दिया। भारतीय ज्योतिष का क्षेत्र बड़ा संकीर्ण तथा सीमित हो गया था। उस संकीर्णता से हटा कर, पाश्चात्य गणित के विशाल प्रांगण में इसे लाकर इन्होंने खड़ा कर दिया। इस कार्य की परिणति तो पं० सुधाकर द्विवेदी की अलौकिक विद्वत्ता का फल है परन्तु इसे आरम्भ करने का श्रेय पं० बापूदेव शास्त्री को ही प्राप्त है। यह इनकी महानीयता है। यही इनकी महती उपलब्धि है।

पूर्व पुरुष तथा जन्म

महाराष्ट्र में पश्चिमी समुद्र के किनारे रत्नागिरि जनपद में बेलणेश्वर महादेव के द्वारा अलंकृत बेलणेश्वर नामक गाँव वर्तमान है जहाँ पर दाक्षिणात्य ब्राह्मणों के अन्तर्गत वेद-पाठ-परायण परांजपे नामक चित्तपावन ब्राह्मण निवास करते हैं। महादेव की सेवा में निरत होने के कारण वहाँ के निवासियों ने इन लोगों को 'देव-परांजपे' की उपाधि से मण्डित किया। कुछ दिनों के पश्चात् वहीं के निवासी चिन्तामणि परांजपे उस गाँव से हटकर अहमदनगर मण्डल के अन्तर्गत 'काय गाँव टोका' नामक गाँव में आकर रहने लगे। इसी चिन्तामणि परांजपे के पुत्र का नाम सदाशिव था जिनके आत्मज सीताराम परांजपे हुए। यही सीताराम शास्त्री हमारे चरित-नायक के पिता थे। इन्हीं की पत्नी सत्यभामा के गर्भ से बापूदेव शास्त्री का जन्म कार्तिक शुक्ल षष्ठी रविवार, विक्रमी सं० १८७६ (तदनुसार २४ अक्टूबर १८१६ ई०) में हुआ। इनके पिताजी ने इनका नाम 'नृसिंह' रखा परन्तु घर वालों ने अत्यन्त प्रिय होने के कारण इस बालक का नाम 'बापू' रख दिया और इसी नाम से ये अपने जीवन में प्रसिद्ध हुए।

शिशु की रुग्णता के कारण इनकी माता सत्यभामाजी बड़ी खिन्न एवं उदास रहती थीं। एक तो उनकी अनेक संतानें कालकवलित हो गयी थीं तथा दूसरे नया दो साल का शिशु भी सर्वदा बीमार ही रहा करता था। फलतः माता ने अपने कुल-देवता नरसिंहजी की कृपा पाने के लिए बड़ी प्रार्थना की। नरसिंह ने १८७८ वि० सं० कार्तिक शुक्ल षष्ठी को सत्यभामा को स्वप्न दिया कि चिन्ता मत करो। यह तेरा शिशु चिरंजीवी तथा भाग्यशाली होगा और कुल की प्रतिष्ठा का मूल कारण होगा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माता नरसिंह जी के इस आशीर्वाद से नितान्त प्रसन्न हुईं और इसी तिथि को शिशु का जन्म दिन मानने लगीं, परन्तु यह माता की विशेष भावुकता ही थी अन्यथा बापूदेव जी का वास्तविक जन्म संवत् १८७६ ही है, १८७८ नहीं।

शिक्षा

प्राचीन दाक्षिणात्य परम्परा के अनुसार इन्होंने आरम्भ में अष्टाध्यायी, शिक्षा, पिंगल सूत्र, रूपावली, अमरकोष तथा आयुर्वेदीय 'माधव-निदान' आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया। उपनयन संस्कार के पश्चात् वेद तथा वेदाङ्गों का भी पारायण किया। परन्तु किसी दारुण रोग से आक्रान्त हो जाने के कारण इन अधीत ग्रन्थों की स्मृति इनके मस्तिष्क से जाती रही। अतएव इनके पिता इन्हें अपने साथ नागपुर ले गये जहाँ वे नौकरी करते थे। वहाँ फिर इन्होंने रघुवंश तथा लघुकौमुदी आदि पढ़ना प्रारम्भ किया। इसके अनन्तर ये अपने पिता के साथ महाराष्ट्र की बौद्धिक राजधानी पूना गये। इसी नगर में पण्डित पाण्डुरंग तात्या दिवेकर की पाठशाला में गणित शास्त्र का अध्ययन करने लगे। इस शास्त्र के अध्ययन में इनकी बुद्धि का विकास होने लगा। पूना में कुछ दिनों तक रहकर ये पिता के साथ पुनः नागपुर चले आये। यहीं पर इन्होंने पं० ढुण्ढिराज मिश्र नामक एक कान्यकुब्ज ज्योतिर्विद् से लीलावती तथा बीजगणित आदि ज्योतिष के प्रसिद्ध ग्रन्थों का अध्ययन किया।

बापूदेव शास्त्री के द्वारा ज्योतिष शास्त्र के प्रौढ़ ग्रन्थों के अनुशीलन तथा पाश्चात्य गणित के अध्ययन की अपनी एक रोचक कहानी है। इनके पिता के मित्र मिस्टर लान्सिलाट विलकिन्सन नामक अंग्रेज विद्वान्, सिहोर के 'पोलिटिकल एजेन्ट' थे। वे पाश्चात्य गणित के विद्वान् थे। उन्होंने बापूदेव शास्त्री की ख्याति सुनकर इन्हें बुलाया तथा बीजगणित-सम्बन्धी कुछ प्रश्न पूछे जिनका सम्यक् उत्तर पाकर विलकिन्सन साहब बहुत ही प्रसन्न हुए। परन्तु सिद्धान्त गणित के प्रश्नों का उत्तर देने में ये असमर्थ रहे। अतः विलकिन्सन साहब सिद्धान्त गणित के गम्भीर अध्ययन के लिए इन्हें अपने साथ सिहोर लेते आये और सिहोर नगर के पं० सेवाराम के सान्निध्य में इनके अध्ययन करने का प्रबन्ध कर दिया। इन गुरु के चरणों में बैठकर ये 'सिद्धान्त-शिरोमणि' ग्रन्थ का और विलकिन्सन साहब से बीजगणित और रेखागणित का अध्ययन करने लगे।

सिहोर नगर उस समय बड़ा प्रसिद्ध नगर माना जाता था। मध्यप्रदेश में स्थित सिहोर जिले का यह आज प्रशासनिक नगर है। ब्रिटिश शासनकाल में यह सैनिक छावनी था और इस कारण यहाँ पोलिटिकल एजेन्ट रखे जाते थे। १८३० ई० से १८४० ई० के बीच में मिस्टर लान्सलाट विल्किसन वहाँ के पोलिटिकल एजेन्ट और एक प्रकार से उस क्षेत्र के शासनाधिकारी थे। उन्हीं की विशेष कृपा से बापूदेव जी को गणित के अध्ययन का विशेष अवसर मिला और आगे चलकर काशी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के संस्कृत कालेज में ज्योतिष विभाग में नियुक्ति भी हुई। राजपूताने के सिरोहीराज के मुख्य नगर सिरोही से इसकी अभिन्नता मानना नितान्त अनुचित है।

इस प्रकार इन विषयों में इन्होंने प्रगाढ़ पाण्डित्य प्राप्त कर लिया बापूदेव शास्त्री की यह बड़ी अभिलाषा थी कि गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, काशी में स्थापित ज्योतिष विभाग के अध्यापक पद पर नियुक्त हो जायँ। परन्तु अपने आश्रयदाता विलकिन्सन साहब के दिवंगत हो जाने से इनकी अभिलाषा उस समय पूर्ण नहीं हो सकी।

काशिराजकीय पाठशाला की व्यवस्था एक कमेटी के हाथ में थी जिसमें काशी-नरेश, काशी के कलक्टर तथा काशी के गण्यमान्य रईस सम्मिलित थे। कोई प्रिन्सिपल या अध्यक्ष नहीं था। केवल एक मुंशी पण्डितों की हाजिरी लेता, मासिक वेतन देता और कमेटी की आज्ञा सुनाता था। सन् १८४० के १६ दिसम्बर को कमेटी ने निश्चय किया कि फोर्ट विलियम कालेज (कलकत्ता) के सेक्रेटरी कप्तान जे० टी० मार्शल साहब कलकत्ते के प्रख्यात संस्कृत विद्वान् **पण्डित जय नारायण तर्कपञ्चानन** के साथ इस विद्यालय का निरीक्षण करें और अध्यापन के विषय में सुझाव दें। उन्होंने विद्यालय का निरीक्षण किया और संस्तुति की कि नैचुरल फिलासफी तथा संस्कृत गणित पढ़ाने के लिए एक नये अध्यापक की आवश्यकता है। इसकी खबर मेजर टी० विल्किसन साहब को लगी और उन्होंने बापूदेवजी को सर्वथा योग्य समझकर उनके लिए कलकत्ते में सिफारिश भेजी। सिफारिश सफल रही और बापूदेवजी की यहाँ नियुक्ति हो गई।

कहना न होगा कि विल्किन्सन साहब की कृपा का ही यह शुभ परिणाम था, परन्तु इस आश्रयदाता का ३५ साल की कच्ची उम्र में ही हठात् निधन हो गया। भाग्य की कृपा समझिए कि उन्हीं दिनों दिवंगत साहब के भ्राता मेजर टी० विल्किन्सन नागपुर के रेजिडेन्ट नियुक्त हुए थे। बापूदेव जी ने एक प्राचीन शिलालेख की नकल इतनी सुन्दरता तथा शुद्धता से बनाकर साहब को दी कि वे अत्यन्त प्रसन्न हो गये। दो सौ रुपयों का पुरस्कार देकर इन्हें काशी भेज दिया। काशी ये बड़े आनन्द तथा प्रसन्नता से आये। यहाँ आने पर ये अपना कार्य सँभालने लगे।

अध्यापन कार्य

सन् १८४२ ई० में १५ फरवरी को इनकी नियुक्ति गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज में ज्योतिष अध्यापक के पद पर हुई। उस समय छात्रों के लिए पाठ्य-पुस्तकों का नितान्त अभाव था। अतः शास्त्री जी ने छात्रों के कल्याण के लिए सिद्धान्त तथा गणित शास्त्र के नवीन ग्रन्थों का निर्माण तथा सम्पादन करके शिष्यों का बड़ा ही उपकार किया। इसी समय इन्होंने अंग्रेजी भाषा का भी अध्ययन किया। इनकी विद्वत्ता, ग्रन्थ-लेखन एवं सरल स्वभाव से इस कालेज के तत्कालीन प्रिन्सिपल बैलेण्टाइन साहब अत्यधिक प्रसन्न थे। आठ वर्षों तक अध्यापन करने के पश्चात् सन् १८५० ई० में काशी के तत्कालीन जिलाधीश मेकलोड साहब ने इनसे गणितसम्बन्धी ग्रन्थों के निर्माण करने का आग्रह किया। फलस्वरूप इन्होंने **'बीजगणित'** नामक ग्रन्थ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को हिन्दी में लिखकर सन् १८५० ई० में बम्बई से प्रकाशित कराया। यह पुस्तक इतनी विद्वत्तापूर्ण थी कि पश्चिमोत्तर प्रान्त (आधुनिक उत्तर प्रदेश) के तत्कालीन लेफ्टिनेण्ट गवर्नर ने इन्हें दो हजार रुपयों के पुरस्कार से सम्मानित किया। "इंग्लिश जर्नल आफ एजुकेशन" नामक शोध-पत्रिका में सिद्धान्त ज्योतिष-विषयक एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसकी सूचना इन्हें अपने प्रिन्सिपल से मिली। बापूदेव शास्त्री ने उस लेख को पढ़कर उसमें अनेक अशुद्धियाँ निकालीं जिन्हें उस लेख के प्रणेता ने स्वीकार भी कर लिया। सन् १८६१ ई० में इन्होंने लान मिलट विल्किन्सन महोदय द्वारा **'सूर्य सिद्धान्त'** ग्रन्थ के अंग्रेजी अनुवाद को अपनी उपपत्ति तथा टिप्पणियों के साथ 'एशियाटिक सोसाइटी आफ बेङ्गाल' की सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थमाला 'बिब्लोथिका इण्डिका' में प्रकाशित कराया। इसी ग्रन्थ के 'गोलाध्याय' का भी अंग्रेजी अनुवाद १८६१ ई० में इसी प्रकाशन संस्था के द्वारा प्रकाशित होकर विख्यात हुआ। पं० बापूदेवजी की रचनाओं में संस्कृत में निबद्ध **'सरल त्रिकोणमितिः'**[1] पाश्चात्य गणित के तथ्यों को देववाणी के माध्यम से अभिव्यक्ति देने की प्रक्रिया में एक सफल महनीय ग्रन्थ है जो सौ वर्षों से अधिक बीतने पर भी आज अपनी महत्ता से विरहित नहीं हो सका है। शास्त्रीजी की ही प्रेरणा से पौरस्त्य तथा पाश्चात्य गणित के महामनीषी पण्डित-प्रवर नीलाम्बर झा ने संस्कृत में **'गोलप्रकाश'** नामक ग्रन्थ की रचना की जिसे शास्त्रीजी ने ही १७९३ शकाब्द (१८७१ ई०) में अपने ही तत्त्वावधान में काशी से प्रकाशित कराया था। आगे चलकर **'चापीय त्रिकोणमिति'** के नाम से इसी का एक भाग प्रकाशित हुआ। आज भी इसके समकक्ष ग्रन्थों के अभाव के कारण यही ग्रन्थ विश्वविद्यालयों में विशिष्ट पाठ्यग्रन्थ है।

(ग) ग्रन्थ रचना

पं० बापूदेव शास्त्री ने संस्कृत तथा हिन्दी दोनों ही भाषाओं में ग्रन्थ रचना की है जिनकी सूची प्रकाशन काल के साथ यहाँ दी जाती है।

(क) संस्कृत के ग्रन्थ

	प्रकाशन काल
१. सूर्यसिद्धान्तः-सोपपत्तिकः	सन् १८६१ ई०
२. फलित विचारः	,, १८६२ ई०
३. सायनवादः	,, ,, ,,
४. मानमन्दिर वर्णनम्	,, ,, ,,
५. प्राचीन ज्योतिषाचार्याशय-वर्णनम्	,, ,, ,,
६. तत्त्वविवेक-परीक्षा	,, ,, ,,
७. विचित्र-प्रश्नसंग्रहः, सोत्तरः	,, ,, ,,

१. गोविन्द पाठक के सम्पादकत्व में संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित, काशी २०३४ वि० (१९७७ ई०) में।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८. अतुल यंत्रम्	सन् १८६५ ई०
९. पञ्चक्रोशीयात्रा निर्णयः	,, १८७२ ,,
१०. नूतन पञ्चाङ्ग निर्माणम्	,, १८७५ ,,
११. पञ्चाङ्गोपपादनम्	,, १८७५ ,,
१२. सिद्धान्तशिरोमणिग्रन्थे चलगणितम्	,, १८५८ ,,

(ख) हिन्दी भाषा में निर्मित ग्रन्थ

१३. बीजगणितम्	सन् १८५६ ई०
१४. व्यक्त गणितम्	,, १८५० ,,
१५. भूगोल वर्णनम्	,, ,, ,,
१६. खगोलसारः	,, ,, ,,

इस प्रकार बापूदेव शास्त्री ने अनेक विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थों की रचना की। इन ग्रन्थों की सूची के निरीक्षणमात्र से ही इनकी गम्भीर विद्वत्ता का पता चलता है। म० म० बापूदेव शास्त्री संस्कृत के सबसे प्रथम पण्डित थे जिन्होंने हिन्दी भाषा में ज्योतिष के ग्रन्थों के निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया था। पं० सुधाकर द्विवेदी ने इन्हीं का पदानुसरण किया, यह कथन कुछ अनुचित न होगा।

बापूदेव शास्त्री ने अंग्रेजी भाषा में भी कम से कम अपने दो ग्रन्थों को प्रकाशित किया था जिनमें एक था अङ्कगणित का और दूसरा था बीजगणित का पहिले का नाम था एलिमेण्ट्स आफ अरिथमेटिक (दो भाग, प्रकाशन समय १८७५ ई०) और दूसरे का नाम था एलिमेण्ट्स आफ अलजब्रा (भाग प्रथम, प्रकाशन वर्ष १८७५ ई०)।

इससे स्पष्ट है कि शास्त्रीजी गणित की अभिवृद्धि के लिए सर्वतोभावेन समर्पित थे। इन्होंने केवल संस्कृत में ही रचना नहीं की, प्रत्युत लोकप्रियता की दृष्टि से हिन्दी तथा अंग्रेजी में भी एतद्विषयक ग्रन्थों का निर्माण किया।

सम्मान की प्राप्ति

म० म० पं० बापूदेव शास्त्री को अपनी अलौकिक विद्वत्ता के कारण बहुशः सम्मान की प्राप्ति हुई। सन् १८६४ ई० में पाश्चात्य-अंग्रेज-विद्वानों ने इनके अलौकिक पाण्डित्य से प्रभावित होकर इन्हें लन्दन की रायल एशियाटिक सोसाइटी का आनरेरी मेम्बर (मानद सदस्य) बनाकर इन्हें सम्मानित किया। डाक्टर बेलेण्टाइन के द्वारा सूर्यसिद्धान्त नामक ग्रन्थ पर इसके विद्वत्तापूर्ण कार्य से अवगत होने पर पंजाब के तत्कालीन गवर्नर मेकलोड साहब ने इनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। अपने बीज-गणित नामक ग्रन्थ की इन्होंने अनेक परिष्कारों के साथ द्वितीयावृत्ति प्रकाशित की जिससे प्रसन्न होकर पश्चिमोत्तर प्रदेश (अब उत्तर प्रदेश, के लेफ्टि० गवर्नर सर विलियम म्योर ने इन्हें तीर्थराज प्रयाग में बहुमूल्य रेशमी वस्त्र तथा एक सहस्र मुद्रा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरस्कार के रूप में प्रदान की थी। सन् १८७० ई० में भारत के वाइसराय ने शास्त्री महोदय को कलकत्ता विश्वविद्यालय का फेलो (सम्मान्य सदस्य) नियुक्त कर इनकी विद्वत्ता का समादर किया। सन् १८७३ ई० में इन्होंने सूर्य और चन्द्र ग्रहण लगने का जैसा समय निर्धारित किया था उस समय से यह ग्रहण एक क्षण भी इधर-उधर नहीं हुआ। इससे प्रसन्न होकर कश्मीर के महाराजा ने इन्हें पाँच सौ रुपये मूल्य का पश्मीने का दुशाला तथा एक सहस्र मुद्रा पारितोषिक के रूप में प्रदान की। सन् १८७५ ई० में काशीनरेश की आज्ञा से इन्होंने नूतन पंचांग का निर्माण किया जिसके लिए महाराजा ने दो सौ रुपये प्रतिवर्ष पेन्शन के रूप में प्रदान किया।

इनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर भारत के वाइसराय ने इन्हें अनेक पदवियों से विभूषित किया। सन् १८७७ ई० में महारानी विक्टोरिया के राजराजेश्वरी होने के सन्मान में माननीय पचास भारतीय विद्वानों को पदक प्रदान कर सन्मानित किया गया था, उनमें पं० बापूदेव शास्त्री अन्यतम थे। दूसरे वर्ष भी सन् १८७८ ई० की पहिली जनवरी को विक्टोरिया के 'राजराजेश्वरी' पद प्राप्त करने के निमित्त जो विशेष समारोह हुआ था उसमें इन्हें सी० आई० ई० की महनीय उपाधि से विभूषित किया गया था। ये संस्कृत के सर्वप्रथम पण्डित थे जिन्हें यह उपाधि प्राप्त करने का गौरव प्राप्त है। सन् १८८७ ई० में महारानी विक्टोरिया की जो गोल्डेन जुबिली (सुवर्ण जयन्ती) मनायी गई थी उसी समय संस्कृत पण्डितों के सन्मान के लिए सर्वप्रथम 'महामहोपाध्याय' की पदवी का निर्माण किया गया था। उस समय बापूदेव शास्त्री इस 'महामहोपाध्याय' की पदवी से विभूषित किये गये। सन् १८८९ ई० में ४७ वर्षों के सुदीर्घ काल तक राजकीय कालेज में सेवा करके इन्होंने अवकाश ग्रहण किया। इस प्रकार इन्होंने ७० वर्ष के वय तक सरकारी नौकरी की। परन्तु इन्होंने अगले वर्ष ही आषाढ कृष्ण चतुर्थी शुक्रवार वि० सं० १९४७ (सन् १८९० ई० के ७ जून) को काशीधाम में अपने पाञ्चभौतिक शरीर का परित्याग किया।

(घ) नवीन पंचाङ्ग का सूत्रपात

श्री बापूदेव शास्त्री जी का भारतीय पञ्चाङ्ग निर्माण में भी विशेष योगदान सर्वदा अविस्मरणीय रहेगा। इस पञ्चाङ्ग का नाम है—**दृक्-सिद्ध पञ्चाङ्ग**। इसका वैशिष्ट्य यह है कि यह आधुनिक यन्त्रों के द्वारा निर्मित ग्रहवेधों के ऊपर आश्रित है। फलतः इसके निर्माण में भी पाश्चात्य ज्योतिष गणना का समुचित उपयोग किया गया है। लण्डन के ग्रीनविच राजकीय वेधशाला के द्वारा सम्पन्न तथा 'भारतीय नाटिकल अलमनक' को आधार मानकर ग्रहों का वेध स्वीकार किया जाता है। इस पञ्चांग के निर्माण का आरम्भ बापूदेव शास्त्री जी ने काशिराज ईश्वरीनारायण सिंह जी की अनुमति से वि० स० १९३३ (=१८७६ ई०) में किया। तब से वे प्रतिवर्ष इस दृक्-सिद्ध पञ्चांग का प्रकाशन करते रहे। उनके कैलासवासी होने पर उनके शिष्य ज्योतिःशास्त्र-मार्तण्ड श्री चन्द्रदेव शास्त्री, दैवज्ञवाचस्पति श्री विनायक शास्त्री वेताल तथा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्योतिर्वेद-विशारद श्री महादेव शास्त्री घाटे आदि विद्वान् बापूदेव शास्त्री की पद्धति का अनुसरण कर १९८० विक्रमी (=१९२३ ई०) तक इस पञ्चाङ्ग को प्रकाशित करते रहे। तदनन्तर शास्त्री जी के सुयोग्य पुत्र दैवज्ञ पं० श्री गणपतिदेव शास्त्री इसका परिवर्धन कर स्वयं पञ्चांग प्रकाशित करते रहे। अपने वार्धक्य के कारण शास्त्री जी ने म० म० नारायण शास्त्री खिस्ते के माध्यम से उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री सम्पूर्णानंद जी को इसे समर्पित कर दिया। तब से उत्तर प्रदेशीय सरकार ही इसे प्रकाशित करती रही। २१ मार्च १९५८ वि० सं० में संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना होने पर इसके प्रकाशन का भार अब इस विश्वविद्यालय को ही है। आज इस पञ्चांग के प्रकाशन का १०५वाँ वर्ष है और यह विश्वविद्यालय के अनुसन्धान संस्थान द्वारा नियमित रूप से प्रकाशित होकर धार्मिक जनता की सेवा कर रहा है। वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय में तिथि तथा उत्सवादि की मान्यता इसी पञ्चांग द्वारा सम्पन्न की जाती है।

'दृक्-सिद्ध पञ्चांग' की विद्वन्मान्यता की कथा बड़ी रोचक एवं शिक्षाप्रद है। आज से १०५ वर्ष पहिले १९३३ विक्रमी वर्ष के लिए पं० बापूदेव शास्त्री ने अपना प्रथम पञ्चांग बड़े परिश्रम तथा अध्यवसाय के साथ बनाया। यह काशीनरेश ईश्वरी-नारायण सिंह जी के आदेशानुसार निर्मित किया गया था। शास्त्री जी ने इसे पण्डितों के द्वारा मान्य तथा प्रामाणिक होने की अभिलाषा से काशी के ही विद्यानुरागी तथा विद्वज्जनानुरागी रईस बाबू गुरुदास मित्र से अपना अभिप्राय प्रकट किया। काशी के चौखम्भा महल्ले में आज भी एक बंगाली कोठी (हवेली) है जो एक छोर से दूसरे छोर तक फैली हुई है। इसके मालिक राजेन्द्र मित्र नामक एक सम्पन्न अधिकारी पुरुष थे जो बंगाल से आकर काशी में रहने लगे थे। मित्र परिवार के ऊपर लक्ष्मी तथा सरस्वती दोनों की अकृत्रिम कृपा थी। इस परिवार के द्वारा प्रतिवर्ष दुर्गापूजा का समारोह बड़े उत्साह तथा वैभव के साथ मनाया जाता था जिसमें काशीनरेश स्वयं देवी के दर्शनार्थ पधारते थे। इस परिवार में आगे चल कर बाबू प्रमदादास मित्र नामक सज्जन हुए जो काशी में संस्कृत विद्या तथा सनातन धर्म के प्रचार-प्रसार में सक्रिय भाग लेते थे। वे संस्कृत के विशेष विद्वान् थे। संस्कृत कालेज के ऐंग्लो विभाग में वे अध्यापक भी थे। उनके द्वारा प्रस्तुत 'साहित्यदर्पण' का अंग्रेजी अनुवाद आज भी उपादेय तथा संग्रहणीय है। वे निर्धन संस्कृत छात्रों को द्रव्य तथा पुस्तकों की भरपूर सहायता किया करते थे। फलतः यह बंगाली मित्र-परिवार काशी के जनकल्याणकारी आयोजनों में सदा अग्रगण्य माना जाता था और आज भी है।

इसी परिवार के उस समय के प्रधान पुरुष बाबू गुरुदास मित्र ने सं० १९३३ विक्रमी ज्येष्ठ शुक्ल नवमी बुधवार को पण्डितों की एक सभा का आयोजन अपनी ही हवेली में किया जिसमें उस युग के मान्य पण्डित सखाराम भट्ट, भवानीप्रसाद शर्मा, बस्तीराम द्विवेदी, बालशास्त्री, आदि तथा मान्य ज्योतिर्विद् लक्ष्मण शास्त्री, विष्णु-शंकर रामशंकर जोशी, श्यामाचरण शर्मा आदि उपस्थित थे। सभा के पण्डितों ने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बापूदेव शास्त्री से अपने पञ्चांग की शुद्धता तथा प्रामाणिकता के विषय में उपपादन करने का आदेश दिया। शास्त्री जी ने पहिले से तैयार किये गये लगभग १५-१६ पृष्ठों का अपना उपपादन पढ़ कर सुनाया जिसमें उन्होंने वसिष्ठ तथा ब्रह्मसिद्धान्त के वचनों का उद्धरण देकर अपना मत स्पष्ट किया था। वसिष्ठ का वचन है—

"यस्मिन् पक्षे यत्र काले येन दृग्गणितैक्यकम्।
दृश्यते येन पक्षेण कुर्यात् तिथ्यादिनिर्णयम्॥"

जिस किसी के मत में, जिस काल में, जिस गणित से दृष्टि और गणित इनका ऐक्य दीख पड़े, उसी मत से (तब हर एक कोई) तिथि आदि के काल का निर्णय करे अर्थात् तिथि आदि काल को ठहरावे।

ब्रह्मसिद्धान्त में भी इसी की पुष्टि की गई है—

"संसाध्य स्पष्टतरं बीजं नलिकादि यन्त्रेभ्यः।
तत्-संस्कृत ग्रहेभ्यः कर्तव्यौ निर्णयादेशौ॥"

ज्योतिषी को चाहिए कि वह नलिका आदि यन्त्रों के द्वारा ग्रहों का वेध करके उसमें और गणित में जो बीज अर्थात् अन्तर हो, उसको स्पष्ट सिद्ध करके उसका ग्रहों में संस्कार करे और उन बीज-संस्कृत ग्रहों से तिथि आदि निर्णय और शुभाशुभ का कथन करे। इसी सिद्धान्त को आधार मानकर इस पंचांग का निर्माण किया गया है। उपपादन का मुख्य शास्त्रीय सिद्धान्त यही है।

इस उपपादन[1] को सुनकर मित्र महाशय ने उपस्थित पण्डितों तथा ज्योतिषियों की सम्मति जाननी चाही। इतने में नीलाम्बर ओझा नामक प्रसिद्ध मैथिल ज्योतिषी ने बड़े आडम्बर के साथ इस मत का खण्डन किया और आग्रहपूर्वक कहा कि हम तो सूर्य-सिद्धान्त के ही मत को माननेवाले हैं-यही हमारी परम्परा रही है। परम्परावादी पक्ष से और कोई ज्योतिर्विद् नहीं आया। नीलाम्बर ओझा से ही बहुत देर तक झकझक होती रही। रुष्ट होकर उनके चले जाने पर सभा समाप्त हो गई और जिन उपस्थित विद्वानों ने उस व्यवस्थापत्र पर अपनी सम्मति दी थी तथा हस्ताक्षर किये थे उनके नाम इस प्रकार हैं—भट्ट सखाराम, लक्ष्मण ज्योतिर्विद्, रामदीन शर्मा, भवानीप्रसाद शर्मा, सिद्धेश्वर शर्मा, रामशंकरात्मज विष्णुशंकर शर्मा ज्योतिषी, सुधाकर शर्मा, भवानीदत्त शर्मा अनन्तराम शर्मा, द्विवेद पण्डित बस्तीराम शर्मा, श्यामाचरण शर्मा, राजाजी शर्मा, वेणीशंकर शर्मा, नारायणदेव शास्त्री, द्वारिकादत्त शर्मा, बालशास्त्री रानाडे तथा बापूदेव शास्त्री।

---

१. यह उपपादन तथा सभा का विवरण १९३३ वि० सं० में काशीनरेश की आज्ञा से छापा गया था। इसका पुनर्मुद्रण पण्डित गणपतिदेव शास्त्री ने २०२० वि० सं० में प्रकाशित किया था। उसी के आधार पर यह विवरण प्रस्तुत किया गया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्य मण्डली

शास्त्रीजी के शिष्यों में चन्द्रदेव पाण्डया तथा **पण्डित विनायक शास्त्री बेतालजी** की विशेष मान्यता थी। बापूदेव शास्त्री के शिष्यों में बेतालजी अग्रगण्य माने जाते थे। ये ज्योतिष विद्या के प्रवीण विद्वान् थे तथा गणित एवं फलित उभय ज्योतिष-स्कन्धों के व्युत्पन्न पण्डित माने जाते थे। इनके गुणों से आकृष्ट होकर उदयपुर के महाराणा शम्भुसिंह ने इन्हें अपने यहाँ बुलाकर महाराणा स्कूल नामक विद्यालय में प्रधानाध्यापक पद पर नियुक्त किया। उनके अनन्तर होने वाले महाराणा सज्जन सिंह एवं महाराणा फतह सिंह के राज्यकाल में ये उसी स्थान पर १८ वर्ष तक विराजमान रहे। इनके जेठे पुत्र **श्रीनाथ शास्त्री बेताल** ने **'उदयान्वय वर्णन'** नामक ऐतिहासिक काव्य का प्रणयन किया जिसमें राज्य के मूलपुरुष महाराणा उदय सिंह से लेकर फतह सिंह तक के राजाओं का वर्णन किया गया है। अनन्तर भूपाल सिंह के शासन काल में भी वे वहाँ विद्यमान थे। विनायक शास्त्री के कनिष्ठ पुत्र **अनन्त शास्त्री बेताल** से लेखक का पूरा परिचय था। वे संस्कृत के अच्छे कवि थे। उन्होंने अनेक प्राचीन ग्रन्थों का संशोधन तथा प्रकाशन किया है जिनमें **'सज्जनेन्द्र प्रयोग कल्पद्रुम'** अन्यतम है। यह व्याकरण-सम्बन्धी पद्यबद्ध ग्रन्थ है जिसकी सहायता से पाणिनीय व्याकरण में सुगमता से प्रवेश हो सकता है।

शास्त्री जी के दो पुत्रों में से पं० गणपतिदेव शास्त्री जेठे थे। इन्होंने संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के ज्योतिष विभाग में अध्यापन कार्य करते हुए अपने पिता के द्वारा संस्थापित तथा प्रतिष्ठित **'दृक्सिद्ध पञ्चाङ्ग'** का अनेक वर्षों तक सम्पादन किया। ये भी गणित के पारगामी पण्डित थे। इनका जन्म अगहन शुक्ल चतुर्थी वि० सं० १९४४ (१८८७ ई०) को हुआ था तथा निधन पौष शु० ६ सं० २०३० (३१।१२।१९७३ ई०) को ८६ वर्ष की आयु में हुआ।

शास्त्रीजी तथा हिन्दी

पण्डित बापूदेव शास्त्री ने हिन्दी की भी बड़ी सेवा की। उस समय छात्रों के पढ़ाने के लिए गणित के ग्रन्थों का हिन्दी में नितान्त अभाव था। इस कमी को दूर करने के लिए इन्होंने हिन्दी में **'व्यक्त गणित'** के नाम से अङ्कगणित के विषय में ग्रन्थ का प्रणयन १८५० ई० में किया, जिसका प्रथम संस्करण बम्बई से प्रकाशित हुआ और द्वितीय परिवर्धित संस्करण १८७५ ई० से काशी से ही प्रकाशित हुआ। यह ग्रन्थ अनेक दृष्टियों से विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण है। प्रथम विशिष्टता यह है कि यह सीधी-सादी बोलचाल की हिन्दी में निबद्ध किया गया है। संस्कृत के विद्वान् होने से सम्भावना यह है कि बापूदेवजी ने इसमें संस्कृत की शब्दावली का अधिकतर प्रयोग किया होगा, परन्तु तथ्य इसके विपरीत है। यह काशी में बोली जाने वाली हिन्दी

---

१. प्रकाशक : चौखम्भा संस्कृत सीरीज ग्रन्थमाला, काशी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने १८७३ ई० में नया परिधान देकर जिस हिन्दी का अभिराम रूप प्रस्तुत किया, उस भाषा का दर्शन हमें शास्त्रीजी की कृपा से उससे २५ वर्ष पूर्व ही इस ग्रन्थ में प्राप्त होता है। उसकी दूसरी विशिष्टता है व्यापार-सम्बन्धी। इस व्यक्त गणित में दिये गये प्रश्नों की समीक्षा करने से भलीभाँति पता चलता है कि उस युग में आज से सवा सौ साल पहिले नाना वस्तुओं का, व्यवहार में आने वाले पदार्थों का बाजार में क्या भाव था। मणि-माणिक्य, मोती आदि आजकल के मूल्यवान् पदार्थ उस युग में किस भाव से बिकते थे। आवश्यक भोज्य-पदार्थों के दामों की परीक्षा बड़े सस्ते युग की स्मृति हमारे सामने प्रस्तुत करती है। इन उभय दृष्टियों से शास्त्रीजी के हिन्दी ग्रन्थ बड़े महत्त्व के हैं।

इस ग्रन्थ में दिये गये उदाहरणों के अध्ययन से उस युग में आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों का भी संकेत मिलता है। वह सस्ती का जमाना था। चीजें बड़ी सस्ती मिलती थीं। पान की खरीद के जो उदाहरण दिये गये हैं उनसे ज्ञात होता है कि १ पैसे में १०० पान, १ पैसे में २५ सुपारियां तथा १ पैसे में ५ इलायचियाँ मिलती थी। अनाजों का भी भाव उस समय बहुत सस्ता था। गेहूँ की भिन्न-भिन्न किस्में थीं जिसमें अति उत्तम गेहूँ १ रु० में १४ सेर, मध्यम कोटि का १ रु० में १६ सेर तथा निकृष्ट कोटि का गेहूँ १ रु० में १९ सेर प्राप्त होता था। कहना व्यर्थ है कि उस युग में शुद्ध घी का प्रयोग होता था जो सस्ता मिलता था। हीरे, जवाहरात भी उस युग में सस्ते थे। उस युग में मोती का दाम बीस रुपये, हीरे का ३० रु०, नीलम का ३५ रुपये और बढ़िया माणिक्य का दाम ४४ रु० था। जानवरों के विषय में जो उदाहरण हैं उनके देखने से प्रतीत होता है कि ६० रु० से लेकर ८० तक में बढ़िया घोड़ा खरीदा जा सकता था। बढ़िया जीन १९० रु० मिलता था। फलतः उस युग में इतने ही दामों में राजसी ठाट-बाट से जीवन बिताया जा सकता था। जिस प्रकार आजकल गाँवों में दूर यात्रा के लिए सत्तू का चूर्ण राह खर्च के लिए उपयोगी है, उसी प्रकार उस युग की भी दशा थी। उस युग में भी सत्तू का खुलकर प्रयोग होता था और यात्रा में राह खर्च के लिए उसी का प्रयोग ग्रामीण लोग किया करते थे।

ये कुछ ही उदाहरण हैं। अन्य उदाहरणों की परीक्षा करने पर उस युग की वाणिज्य-विषयक अनेक बातों का पता लगाया जा सकता है।

हिन्दी के प्रति संस्कृत विद्वानों के दृष्टिकोण की भी आलोचना यहाँ अप्रासङ्गिक नहीं है। हिन्दी को संस्कृत के कुछ पण्डित हेयदृष्टि से भले ही देखते हों (आज के प्रबुद्ध राजनैतिक युग में भी इसकी कमी नहीं है) परन्तु हिन्दी की उन्नति के मार्ग में उन्होंने अपनी ओर से किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित नहीं किया, बल्कि संस्कृत के गूढ़ आध्यात्मिक भावों को धार्मिक जनता के सामने रखने के लिए अनेक पण्डितों ने कठिन मूलग्रन्थ का अनुवाद सुबोध हिन्दी में करके जनता के सोचने-समझने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए मूल्यवान् सामग्री उपस्थित की। स्वर्गीय रामकृष्ण दास जी ने अपने एक संस्मरण में लेखक के पूर्वोक्त कथन की सत्यता के अनेक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। भारतेन्दु युग के विषय में उनका कहना है—

"संस्कृत के पण्डितों की ओर से कोई संघर्ष हुआ हो। मान लीजिए उन्होंने हिन्दी के विपरीत कोई आन्दोलन किया हो, या इसलिए किया हो कि हिन्दी का प्रचार न हो पावे—इसका मुझे प्रमाण नहीं मिला। बल्कि तथ्य यह है कि संस्कृत के जो पण्डित थे, वे हिन्दी के गण्यमान्य लोगों से समादृत ही होते थे। हमने 'कविववचन सुधा' में देखा है कि भारतेन्दुजी ने महामहोपाध्याय बापूदेव शास्त्री को, जो अपने समय के ज्योतिष के पण्डित थे, दुशाला भेंट दिया था, रुपया भेंट दिया था, उनका सम्मान किया था, तो हिन्दी वालों की तरफ से उनका सम्मान ही होता रहा, लेकिन उन लोगों की ओर से कोई विरोध हुआ– यह तो हमको ज्ञात नहीं।"[१]

इस उद्धरण से भारतेन्दु युग में बहने वाली हवा के रुख का साफ पता चलता है कि काशी के पण्डित लोग हिन्दी जनता के द्वारा समादृत होते थे, क्योंकि वे हिन्दू-समाज से अपने को हटाकर अलग अपना अस्तित्व नहीं मानते थे। उस युग के सामाजिक कार्यों में भी अन्य पण्डितों के साथ बापूदेव शास्त्री आगे रहते थे और इसीलिए वे सम्मान के भाजन थे—श्रद्धा तथा समादर के पात्र थे।

पं० बापूदेव शास्त्री बड़े ही गुणग्राही विद्वान् थे। ये दूसरे विद्वानों के गुण को ग्रहण कर उन्हें सदा सहायता पहुँचाते रहे। पं० कैलासचन्द्र शिरोमणि न्याय के प्रकाण्ड विद्वान् थे। वे बंगाल से काशी आकर अपनी निजी पाठशाला में शिष्यों को पढ़ाया करते थे। उनकी विद्वत्ता तथा अध्यापन कौशल की कीर्ति पं० बापूदेव शास्त्री के कानों में पड़ी। इन्होंने इतने बड़े नैयायिक का एक साधारण सी पाठशाला में पढ़ाते रहना विद्वत्ता का अपमान समझा और शासक वर्ग में अपने निजी प्रभाव के कारण कैलासचन्द्र शिरोमणि की नियुक्ति गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज में न्याय के अध्यापक के पद पर करवा दी। इस प्रकार इन्होंने एक योग्य व्यक्ति को योग्य पद पर प्रतिष्ठापित करने का श्रेय प्राप्त किया। ये विशाल हृदय तथा उदारचेता विद्वान् थे। 'बालादपि सुभाषितं ग्राह्यम्' इस लोकोक्ति के चरितार्थ करने वाले ये मनीषी थे। ऐसा कहा जाता है कि एक बार पं० सुधाकर द्विवेदी ने– जब वे उसी कालेज के छात्र थे जहाँ बापूदेव शास्त्री ज्योतिष विभाग के अध्यक्ष थे—शास्त्रीजी के बीजगणित में कुछ अशुद्धियों का निर्देश किया। शास्त्री जी ने अशुद्धियों की जाँच करने पर उन्हें सत्य तथा प्रामाणिक पाया। इस घटना से ये सुधाकरजी पर क्रुद्ध होने के स्थान पर उनकी प्रतिभा को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और तत्कालीन

---

१. द्रष्टव्य, धर्मयुग मार्च १, १९८१ (पृ० ३०–३१) राय कृष्णदास के संस्मरणों में 'भोलेनाथ की नगरी काशी और हिन्दी साहित्य' शीर्षक लेख—लेखक कृष्णनाथ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रिन्सिपल ग्रिफिथ साहब के पास उनके विषय में संस्तुति लिखकर छात्रवृत्ति दिलवा दी। भला आजकल के कलुषित हृदयवृत्ति के युग में क्या यह सम्भव है? यह घटना शास्त्रीजी के हृदय की विशालता को सद्यः प्रकट करती है।

ज्योतिष शास्त्र में पं० बापूदेव शास्त्री का सबसे महान् योगदान आधुनिक पाश्चात्य गणित का ग्रहण करना है। ऊपर कहा ही गया है कि शास्त्रीजी ने महाराजा काशीनरेश के आदेश से, 'दृक् सिद्ध पञ्चाङ्ग' का निर्माण किया था जिसमें ग्रहों तथा नक्षत्रों के चाल की गणना पाश्चात्य गणित के अनुसार की गई थी। शास्त्रीजी का यह नवीन पञ्चाङ्ग जब प्रथम बार प्रकाशित हुआ तब काशी के पण्डितों में खलबली मच गई। इनकी गणना को लेकर पण्डितों में अनेक वाद-विवाद और शास्त्रार्थ हुए परन्तु अन्त में शास्त्रीजी की ही विजय हुई। पाश्चात्य पद्धति की गणना पर आधारित इनका यह पञ्चाङ्ग आज भी संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से प्रकाशित होता है।

म० म० पं० बापूदेव शास्त्री ने सर्वप्रथम पाश्चात्य गणित का गम्भीर अध्ययन कर उसके अनेक महनीय सिद्धान्तों का ग्रहण कर, उसका समन्वय भारतीय ज्योतिष से किया। इन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से पाश्चात्य गणित की महत्ता का आकलन किया और भारतीय ज्योतिष के साथ उसकी इस प्रकार अन्विति बैठाई कि कहीं से भी यह मिश्रण मालूम नहीं पड़ता। पं० बापूदेव शास्त्री की मृत्यु के बाद उनकी गद्दी को सुशोभित करने वाले म० म० पं० सुधाकर द्विवेदी ने इस प्रणाली का परिष्कार किया परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रणाली के प्रथम उद्भावक बापूदेव शास्त्री ही थे। अतः ज्योतिष शास्त्र के क्षेत्र में भारतीय तथा पाश्चात्य गणित में समन्वय स्थापित करने की यह पद्धति शास्त्रीजी का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान है। ये इस योगदान के लिए सदा अजर, अमर रहेंगे। इनके ग्रन्थों के विशिष्ट अध्ययन, आलोचना एवं आलोडन की नितान्त आवश्यकता है। म० म० बापूदेव शास्त्री के विषय में एक विस्तृत समीक्षात्मक महानिबन्ध (थीसिस) की उपादेयता अभी तक बनी है। पण्डित नारायण शास्त्री पटवर्धन द्वारा रचित 'जीवन वृत्तान्त'[1] एकदम लघुकाय एवं अधूरा है। तब भी उनका काम श्लाघनीय ही है। तथास्तु—

श्रीमान् बापूदेव शास्त्री दैवज्ञकुलशेखरः।
विनयातिशयो यस्य श्लाघ्योऽङ्गीकृतपालने॥

●

१. प्रकाशक तथा मुद्रक राजराजेश्वर प्रेस, पञ्चगङ्गाघाट, वाराणसी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४

श्री बालशास्त्री

(आस्पद—रानाडे; उपाधि—'बाल सरस्वती')

पण्डितप्रवर बालशास्त्री अपने युग के एक विचक्षण विद्वान् थे। ये अलौकिक प्रतिभा से सम्पन्न तथा लोकातीत शेमुषी से विभूषित थे। ये महानुभाव व्याकरणशास्त्र में नवीन परिष्कारों के आविष्कर्ता के रूप में अखिल भारत में प्रतिष्ठित माने जाते थे। ये थे वेदपाठियों में प्रवरतम वेदपाठी, कर्मकाण्डियों में श्रेष्ठ कर्मकाण्डी, धर्मशास्त्र-निष्णात विद्वानों में धर्मतत्त्व-प्रतिपादन-परायण मुनि, धर्माचारों के सम्पादकों में साक्षात् धर्म ही, व्याकरणज्ञाताओं में साक्षात् पाणिनि, सभा तथा वादकुशल सभ्यों में तत्तत् शास्त्रों में अचल के समान अडिग तथा प्रतिष्ठित एवं संस्कृतवाणी के प्रवक्ताओं में अपर बृहस्पति। ऐसे महनीय विद्वान्-महर्षि के जीवनचरित तथा उनके द्वारा सम्पादित कार्यों से परिचय पाकर कौन सचेता अपने को धन्य नहीं मानेगा ?

जन्म

ये चित्तपावन जातीय महाराष्ट्रीय कोंकणस्थ ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। ये कृष्णयजुर्वेद के अन्तर्गत हिरण्यकेशी शाखा के चित्तपावन ब्राह्मण थे जिनका गोत्र था भारद्वाज तथा उपनाम था 'रानाडे'। रानाडे उपनाम वाले ब्राह्मण स्वभाव से आचार-निष्ठ तथा विद्यावरिष्ठ होते थे। इस वंश में सबसे प्रतिष्ठित तथा विद्वान् रावबहादुर महादेव गोविन्द रानाडे बम्बई हाईकोर्ट के जज थे तथा उस युग के भारतीय नेताओं में भी महनीय माने जाते थे। ये गोविन्द भट्टजी के बहुत पास के गोत्रज थे। बाल-शास्त्री के पिता गोविन्द भट्ट का मूल ग्राम कोंकण में अंजनवेली के पास 'मातगाँव' के नाम से प्रसिद्ध है। ये ही कोंकण से काशी आये और अस्सी घाट पर ही दाक्षिणात्यों की उस समय विशेष बस्ती होने के कारण वहीं रहने लगे। गोविन्द भट्ट का विवाह दक्षिण के 'बाई' क्षेत्र के प्रसिद्ध रईस 'जनार्दन पन्त ओक' की पुत्री काशीबाई के साथ सं० १८८६ विक्रम (= १८२६ ईस्वी) में काशी में ही हुआ। उस समय वधू का वय केवल १० वर्ष था तथा वर का २८ वर्ष। काशीबाई से अनेक सन्तानें उत्पन्न हुईं; परन्तु शैशवकाल में ही वे सभी मृत्यु को प्राप्त हो गयीं। इस पर परमशैव गोविन्द भट्ट ने शिव के उग्रावतार 'शरभ' का अनुष्ठान किया जिसका परिणत फल बालशास्त्री का जन्म माना जाता है। सं० १८८६ विक्रमी (= १८३९ ई०) में पौष कृष्ण दशमी सोमवार को इस महापुरुष का जन्म काशी में ही हुआ था। इनके पिता ने इनका नाम 'विश्वनाथ' रखा। बाल्यकाल में सर्वप्रिय होने के कारण ये 'बाल' आख्या के द्वारा प्रसिद्ध हुए। बालक बड़ा ही अलौकिक तथा पूर्व संस्कारों का धनी-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानी व्यक्ति प्रतीत होता था, क्योंकि एक साल समाप्त होने के पूर्व ही उसने अपनी मातृभाषा—मराठी को ठीक-ठीक बोलने का अभ्यास कर लिया। तृतीय वर्ष में पिता गोविन्द भट्ट महती तपस्या के फलस्वरूप प्राप्त इस शिशु को अपने विद्वान् मित्र श्रौतविद्यानिपुण 'धारप' उपनाम वाले **श्री रामकृष्ण दीक्षित** को समर्पित कर स्वयं कालकवलित हो गये। दीक्षितजी इस शिशु का अपने पुत्र के समान ही लालन-पालन, पोषण-वर्धन करने लगे और पाँच वर्ष के वय में इसका उपनयन संस्कार कर दिया। इस संस्कार के अनन्तर दीक्षितजी ने इस बालक को तैत्तिरीय शाखानुसारी कृष्णयजुर्वेद का अध्यापन आरम्भ किया। एक बार के पढ़ाने पर ही बालक को मन्त्रों की उपस्थिति होने लगी। जान पड़ता था कि पूर्वजन्म में अर्जित विद्या के समान एक बार के श्रवण-मात्र से मन्त्रराशि बालक के स्मृतिपटल पर सद्यः स्फुरित होने लगी। इस प्रकार बालक को समस्त कृष्णयजुर्वेद शिक्षा-दीक्षा से अल्पकाल में ही स्वायत्त हो गया।

बालम्भट्ट और बाजीराव पेशवा

उस समय पेशवा बाजीराव द्वितीय, जो पूरे महाराष्ट्र के अधीश्वर थे, अपने परिवार तथा परिकर के साथ राज्यच्युत होकर ब्रह्मावर्त में ही निवास कर रहे थे। यह ब्रह्मावर्त बिठूर के नाम से आज भी विख्यात है तथा कानपुर के समीप ही दर्शनीय स्थानों में अन्यतम है। बिठूर धार्मिक तथा राजनीतिक उभय दृष्टियों से नितान्त महत्त्वशाली नगर है। यह कानपुर शहर से पश्चिम अठारह मील दूर गंगाजी के किनारे एक परमपावन तीर्थस्थल है। मनुस्मृति आदि स्मृति-ग्रन्थों में आर्यावर्त के अन्तर्गत जिस पवित्र देश—ब्रह्मावर्तका बहुशः उल्लेख पाया जाता है उसके केन्द्रस्थल ब्रह्मावर्त का परिचायक यही महत्त्वशाली नगर है। राजनीति की दृष्टि से भारतीय इतिहास के पृष्ठों में यह नगर तब लोगों के सामने अपना महत्त्व प्रगट करने लगा, जब अन्तिम पेशवा बाजीराव द्वितीय (१७७५ ई०–१८५१ ई०) अंग्रेजों के हाथों पराजित होकर यहाँ रहने के लिए विवश किये गये। अन्तिम मराठा युद्ध में विजयी होकर अंग्रेजों ने बाजीराव द्वितीय को सन्धि करने के लिए बाध्य किया (५ नवम्बर, १८१७ ई०)। सन्धि में एक शर्त यह भी थी कि वे अपनी राजधानी पूना (पुणें) छोड़कर बिठूर में निवास करें। तदनुसार वे यहाँ आकर रहने लगे और मृत्यु पर्यन्त यहीं रहे। उनकी मृत्यु के (१८५१ ई०) बाद उनके दत्तक पुत्र नानासाहब पेशवा (जो ढुंढु पेशवा के नाम से प्रख्यात थे) यहीं बिठूर में ही रहते थे। अंग्रेजों के दुर्व्यवहार से नितान्त खिन्न होकर उनके मन में देश को स्वाधीन एवं स्वतन्त्र करने की भावना जाग उठी। उन्होंने परामर्शदाता तात्याटोपे, महारानी झाँसी की रानी आदि अन्य अपने राजनीति-पटु समर्थकों की सहायता से भारत को अंग्रेजों से स्वतन्त्र करने की महनीय योजना यहीं बनाई थी। वह योजना भले ही सफल नहीं हुई, तथापि उस योजना को ठोस रूप देने का कार्य यहीं सम्पन्न किया गया था। फलतः भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में बिठूर राजनैतिक गौरव तथा महत्त्व रखता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहीं पर अपने हितचिन्तक गुरुजनों के साथ बालक बालंभट्ट ने बाजीराव पेशवा का साक्षात्कार किया। दरबार के वृद्ध वेदवित् पण्डितों ने बालक की अलौकिक मेधा-शक्ति का परिचय पाकर उसे वेद का साक्षात् अवतार माना। बाजीराव पेशवा की प्रेरणा से ही ये काशीस्थ वेदज्ञों के साथ चित्रकूट-प्रवासी विनायकराव पेशवा से मिलने के लिए चित्रकूट गये। पेशवा के यहाँ मकर संक्रान्ति के दिन बड़ा समारोह जुटता था जिसमें वैदिकों तथा पण्डितों का विशेष सम्मान किया जाता था। इसी अवसर पर यह बाल वैदिक विनायकराव पेशवा की सभा में उपस्थित हुआ। पेशवा स्वयं विद्वान् थे, संस्कृत तथा वेद के ज्ञाता थे। उन्होंने **बालखिल्य शस्त्र** पूछा। बालक बालम्भट्ट ने उस शस्त्र को इतनी सुन्दरता के साथ आमूल कह सुनाया कि उपस्थित वैदिकगण एक स्वर से उस बालक के वेदपारायण की प्रशस्त प्रशंसा करने लगे। **बालखिल्य शस्त्र**[1] का पाठ इतना कठिन तथा दुरूह माना जाता है कि अनेक वर्षों तक अनेक बार अभ्यास करने वाले वैदिक भी उसमें दस-बारह अशुद्धि कर ही डालते हैं, परन्तु इस बालक के **शस्त्रपठन** में एक भी च्युति नहीं हुई। 'आश्चर्यं महद् आश्चर्यं' उपस्थित वैदिकगण बोल उठे। पेशवा ने जब बालक का—जो उस समय केवल आठ वर्ष का ही था – यह चमत्कार देखा, तब वे बड़े प्रसन्न हुए और नाना प्रकार के आभूषणों के द्वारा बालक का सत्कार ही नहीं किया, प्रत्युत उन्होंने **'बाल सरस्वती'** की महनीय उपाधि से भी उसे अलंकृत कर अपनी गुणग्राहिता का परिचय दिया। सभा के वृद्ध वैदिकों ने भी इस बालक का विद्यावृद्ध होने के नाते विशेष आदर तथा सत्कार किया। बालंभट्ट की यह प्राथमिक विजय यात्रा थी। पेशवा के हाथों सम्मान पाना कोई साधारण घटना नहीं थी। परन्तु इस विचक्षण मेधावी बालक ने आठ वर्ष के अल्प वय में जो चमत्कार सिद्ध कर दिखाया, उसे उससे चौगुनी उम्र वाले भी वैदिक दिखा नहीं सकते। इसीलिए तो वह बालक सरस्वती का अवतार माना जाने लगा। 'बाल सरस्वती' उपाधि का यही तो मञ्जुल स्वारस्य है।

---

१. ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के मध्य में सूक्त ४९ से लेकर सूक्त ५६ तक (११ सूक्त) 'बालखिल्य' कहलाते हैं। इनमें मन्त्रों की संख्या अस्सी (८० मन्त्र) है। सूक्त ४६ तथा सूक्त ५० के आदिम दो मन्त्र अथर्ववेद के २० वें काण्ड के ५१ सूक्त के आदिम चार मन्त्र हैं। इस प्रकार ऋग्वेद की चार ऋचाएँ अथर्ववेद में उपलब्ध होती हैं। ऋग्वेद के मन्त्रों के सस्वर पाठ को 'शंसन' अथवा 'शस्त्र' कहते हैं। यह वेद का पारिभाषिक शब्द है। बालखिल्य मन्त्रों के शंसन की प्रक्रिया बड़ी कठिन है, क्योंकि उन मन्त्रों का क्रमशः पाठ यागविशेष में नहीं किया जाता। प्रत्युत पाठ की एक विशिष्ट विधि है। पाठ के अनेक प्रकार हैं— सूक्त की प्रथम ऋचा के पाठ के अनन्तर अगले सूक्त की प्रथम ऋचा का पाठ किया जाता है। कभी प्रथम मन्त्र की आधी ऋचा के पाठ के बाद अगले सूक्त के प्रथम मन्त्र की आधी ऋचा (अर्धर्चशः) का पाठ किया जाता है। कभी-कभी प्रथम मन्त्र के प्रथम पाद के पाठ के बाद अगले सूक्त के प्रथम मन्त्र के प्रथम

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्ययन

बालशास्त्री की द्वितीय यात्रा ग्वालियर नगर की हुई। यह उनकी अध्ययन यात्रा थी, क्योंकि उन्होंने ग्वालियर पहुँच कर तत्रत्य विद्वानों से नाना शास्त्रों का अध्ययन किया। उस समय ग्वालियर महाराजा के न्यायाधीश थे षट् शास्त्रों के पारगामी विद्वान श्री कुप्पा शास्त्री। उन्होंने बाल शास्त्री की परीक्षा ली, इन्हें सुयोग्य पाया और अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया। ग्वालियर निवासी **बाबा शास्त्री बापट** महोदय से इन्होंने छह मास के भीतर ही समस्त सिद्धान्तकौमुदी का अध्ययन कर लिया। पश्चात् कुप्पा शास्त्री के अन्तेवासी बन कर समग्र पूर्व मीमांसा की भी शिक्षा पूरा कर ली। सौभाग्यवश पुणें (पूना) के निवासी मोर शास्त्री किसी कार्यवश ग्वालियर में उन दिनों पधारे थे। उनसे इन्होंने सम्पूर्ण न्यायशास्त्र का अध्ययन किया तथा तर्ककुशल पाण्डित्य का विधिवत् अर्जन कर लिया। सभा में बाल शास्त्री का लोकातीत वैदुष्य, प्रकाण्ड पाडित्य तथा आवर्जक वाग्मिता का निरीक्षण कर तत्रत्य पण्डितों को महान् आश्चर्य होता था। इस प्रकार ग्वालियर का महत्त्व बालशास्त्री के जीवन में अध्ययन-स्थली होने के कारण ही नहीं, प्रत्युत श्वशुरालय होने के हेतु भी विशेष था, क्योंकि यहीं के पण्डित बच्चा शास्त्री की कन्या से बालशास्त्री का विवाह वि० सं १९१२ (= १८५५ ई०) में सम्पन्न हुआ, जब ये सोलह वर्ष के थे।

अध्यापन

बाल शास्त्री ग्वालियर में प्राथमिकी विद्या तथा प्रथम पत्नी प्राप्त कर वाराणसी सकुशल लौट आये। अब काशीस्थ गुरुजनों के चरणों के तले बैठने का इन्हें सुयोग प्राप्त हुआ। उस समय के लोकविश्रुत विद्वान् तथा काशिराजकीय पाठशाला में व्याकरण की गद्दी के अध्यक्ष पण्डित **काशीनाथ शास्त्री** अष्टपुत्रे से इन्होंने व्याकरण का कुछ अध्ययन किया। तदनन्तर उन्हीं की आज्ञा से पण्डित राजाराम शास्त्री के चरणों में बैठ कर समग्र व्याकरण, महाभाष्य के गम्भीर तथ्यों का अध्ययन तथा अनुशीलन कर तात्त्विक ज्ञान प्राप्त किया। उस काल में काशीनाथ शास्त्री 'अपर पाणिनि' माने जाते थे, तो पण्डित राजाराम शास्त्री पतञ्जलि के ही अपर विग्रह स्वीकृत किये गये थे। इन दोनों

पाद का पाठ करना उचित होता है (पादशः)। जो पद्धति आरम्भ की जाती है, वह अन्त तक चलाई जाती है। बालखिल्य के प्रथम सूक्त (८ मण्डल ४६ वें सूक्त) में १० ऋचाएँ हैं और अगले सूक्त (५० वें सूक्त) में भी मन्त्रों की इतनी ही संख्या है। इन दोनों सूक्तों को आपस में मिलाकर स्वर में बिना कोई त्रुटि किये शंसन करना कितना कठिन है—यह बताने की आवश्यकता नहीं। श्रौतयाग में बालखिल्य शस्त्र का प्रयोग होता है। विषम सम्मेलन के कारण 'बालखिल्य शस्त्र' का विशुद्ध शस्त्र वैदिकों के वेदपाठ के ज्ञान का उदात्त प्रतीक माना जाता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षियों के अध्यापन का परिणत फल यह हुआ कि बाल शास्त्री का वैदुष्य व्याकरण में तथा योग, न्याय आदि दर्शनों में चमक उठा। इसी समय इनकी नियुक्ति काशि-राजकीय पाठशाला में सं० १९२१ विक्रमी (सन् १८६४ ई०) में प्रिन्सिपल ग्रिफिथ महोदय के द्वारा सांख्य-शास्त्र के अध्यापक के पद पर बड़े सम्मान के साथ की गई। उस समय शास्त्री जी का वय केवल २५ वर्ष था। यह समय शास्त्री जी के जीवन का चरमोत्कर्ष काल माना जाता है। इनके पाण्डित्य से आकृष्ट होकर अनेक प्रतिभा-सम्पन्न छात्र इनसे विद्याध्ययन के लिए पाठशाला में आने लगे।

मण्डी की यात्रा

काशी ही इनके कीर्तिकलाप को सीमित करने वाली नगरी नहीं थी। इनका यश उत्तर भारत में सर्वत्र फैल गया। शिमला के समीप मण्डी के महाराज इनकी कीर्ति तथा वैदुषी से आकृष्ट होकर इनके शिष्य हो गये। शिष्य की निरन्तर प्रार्थना से आकृष्ट होकर बाल शास्त्री ने अपने परिवार के साथ मण्डी नगरी की १८२४ वि० सं० (= १८६७ ई०) में यात्रा की। इस यात्रा में ये अपने अभिन्न-हृदय सुहृद् पण्डित यागेश्वर शास्त्री ओझा को भी अपने साथ ले गये थे। इन दोनों विद्वानों में अपूर्व सौहार्द था। कुल के भेद से दोनों में कोई पार्थक्य लक्षित नहीं होता था। बालशास्त्री महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे और यागेश्वर पण्डित सरयूपारीण ब्राह्मण थे, परन्तु दोनों ही सतीर्थ्य थे—एक ही गुरु के अन्तेवासी थे। काशीनाथ शास्त्री के चरणों में बैठकर व्याकरण शास्त्र के अध्ययन का सौभाग्य दोनों को समानरूपेण प्राप्त हुआ था। दोनों काशी के एक ही मुहल्ले में निवास भी करते थे। फलतः दोनों की मित्रता सात्त्विक आधार पर अवलम्बित थी। बालशास्त्री ने आगे चलकर जब अपना विशाल यज्ञ सम्पन्न किया, तब यागेश्वर शास्त्री जी को उसमें आचार्य पद पर अभिषिक्त किया था। पण्डितों में दुर्भाव का बाजार उस समय भी गरम था, परन्तु इन दोनों विचक्षणों की सार्वभौम मैत्री, दृढ़ सौहार्द तथा आवर्जक सख्यभाव विदग्धों के भी आश्चर्य का विषय था।

पंजाब में मण्डी के पूर्वोक्त राजा श्रीमान् विजयसेन सिंह वर्मा अपनी नाबालिगी में काशी आये थे ओर यहीं पर विद्वद्-गोष्ठियों में बालशास्त्री का भाषण सुनकर इनके परमभक्त बन गये थे। जब उन्हें मण्डी की राजगद्दी मिली, तब उन्होंने अपने राज-पुरोहित पं० देवीरामजी को काशी भेजा और बालशास्त्री तथा उनके गुरु राजाराम शास्त्री जी को अपनी राजधानी में बुलाया। अपने गुरु, मित्र यागेश्वर ओझा तथा अन्य शिष्यों (तात्या शास्त्री आदि) के साथ बालशास्त्री ने मण्डी नरेश की इच्छा पूर्ण की। नरेश ने शास्त्रीजी तथा काशी के विद्वानों का बड़ा आदर-सत्कार किया तथा बालशास्त्री से मन्त्र दीक्षा देने का भी आग्रह किया। शास्त्री जी इस प्रस्ताव से सहमत नहीं थे, परन्तु राजा की उत्कट गुरुभक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें गणेश मन्त्र

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का उपदेश दिया। मण्डीनरेश ने अपने गुरु को नाना प्रकार के स्वर्णाभूषण तथा हीरे, मोती ही नहीं दिये, प्रत्युत अनेक बीघे जमीन भी दी जिसका उपयोग शास्त्री जी के दत्तक पुत्र विष्णु दीक्षित अपने जीवन भर करते रहे।

सम्मान

आज से सौ वर्ष पहिले काशी में बालशास्त्री जी सर्वसम्मति से सर्वश्रेष्ठ पण्डित माने जाते थे। उस युग में इनसे बढ़कर आचार-विचार, अध्ययन-अध्यापन के विषय में कोई भी विद्वान् न था। पण्डित-समाज के ऊपर इनकी प्रभुता सर्वतोभावेन मान्य थी। तत्कालीन काशीनरेश ईश्वरीनारायण सिंह जी इनका बड़ा ही आदर एवं सम्मान करते थे और बिना इनकी सम्मति के किसी धार्मिक विषय में अपना निर्णय नहीं देते थे। इसका पता बालशास्त्री जी को भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र द्वारा भेजे गये निम्नांकित पत्र से स्पष्टतः चलता है—

"अनेक कोटि साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणामानन्तर बस्तीराम, ताराचरणादिक लोग सब कल रामनगर गये थे। पर इनको काशीराज ने फेर दिया और कहा कि जब तक बाबू हरिश्चन्द्र न कहेंगे मैं कुछ न मानूँगा। और यह भी कहा कि यदि श्री बालशास्त्री का सम्मत नहीं है, तो मुझे आग्रह नहीं। आज से लेकर सात-आठ दिन तक नित्य धर्म-सभा में बैठ के विचार करो। जो सिद्धान्त हो उस पर सम्मति करो। अब विचार करना चाहिए।

हरिश्चन्द्र"

इस पत्र में निर्दिष्ट बस्तीराम तथा ताराचरण उस समय के बड़े ही मान्य पण्डित थे। बस्तीराम जी काशिराजकीय महाविद्यालय के अध्यापक थे तथा ताराचरण जी काशिराज के ही सभापण्डित थे जिन्होंने दयानन्द सरस्वती वाली सभा में भी महत्त्वपूर्ण भाग लिया था।

बालशास्त्री वाद-विवाद के अवसर पर अपने वैदुष्य का चमत्कार भली भाँति प्रदर्शित करते थे। संस्कृत पाठशाला में पारितोषिक वितरण के समय अनेक बार इन्होंने सरस, सरल, मधु-मधुर तथा भावभूषित गीर्वाण वाणी के द्वारा अपनी वक्तृत्व शक्ति का भी अच्छा परिचय दिया था। उस समय छात्रों को अध्यापनीय शास्त्रों में व्याकरण तथा वेदान्त की प्रमुखता थी, यद्यपि धर्मशास्त्रीय व्यवस्था-पत्र देने में भी इनकी बहुमुखी प्रतिभा पण्डितों को चमत्कृत कर देती थी। इनके शिष्यों की एक लम्बी परम्परा थी जिनमें महामहोपाध्याय पदवी से मण्डित चार शिष्यों की गणना प्रथम श्रेणी में सर्वसम्मति से की जाती थी। इनके नाम हैं—महामहोपाध्याय पं० शिवकुमार शास्त्री, म० म० गङ्गाधर शास्त्री, म० म० दामोदर शास्त्री तथा म० म० रामकृष्ण शास्त्री, (प्रसिद्ध अभिधान तात्या शास्त्री)। अपनी गरिमा तथा विद्वत्ता के कारण इन चतुर्धुरीण शास्त्रियों के संस्मरण पृथक् रूप से आगे दिये गये हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थ—

शास्त्राध्यापन के साथ ही साथ प्रौढ़ ग्रन्थों का सम्पादन तथा नवीन ग्रन्थों का प्रणयन भी चलता रहा। बालशास्त्री जी अध्यापन कार्य का सम्पादन इतनी निष्ठा तथा नियम से करते थे कि वह सामान्य स्तर से उठकर उच्चस्तर पर पहुँच जाता था। वेदान्त में वेदान्त सूत्र के शंकराचार्य प्रणीत शारीरक भाष्य की पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या भामती के ये सिद्धहस्त अध्यापक माने जाते थे। इसका अध्यापन धार्मिक कृत्य के सदृश पवित्र तथा पूर्ण समाधानपूर्वक होता था।

प्रातःकाल गंगास्नान तथा धार्मिक कृत्यों के निर्वाहानन्तर शास्त्री जी कुश के आसन पर स्वयं बैठकर कुशासनासीन छात्रों को भामती पढ़ाया करते थे। इस अध्यापन की कीर्ति से आकृष्ट होकर कलकत्ते की एशियाटिक सोसाइटी नामक प्रख्यात प्रकाशन-संस्था ने भामती से संवलित शारीरक भाष्य का विमर्शात्मक संस्करण शास्त्री जी से तैयार कराकर स्वयं मुद्रित तथा प्रकाशित किया। भामती पर इन्होंने विशिष्ट टिप्पणी की भी रचना की। विद्यालय के अध्यक्ष ग्रिफिथ साहब तथा स्थानापन्न अध्यक्ष गफ साहब की प्रेरणा से बालशास्त्री ने **काशी विद्यासुधि** (प्रसिद्ध नाम **दी पण्डित** पत्र) में भी अनेक प्राचीन तथा प्रौढ़ ग्रन्थों का संशोधन कर उन्हें प्रकाशित किया। इनके स्वरचित मौलिक ग्रन्थों में **'व्याकरण-महाभाष्य टिप्पण,' परिभाषेन्दुशेखर** की **'सारासार विवेक'** नामक टिप्पणी, **'बृहज्ज्योतिष्टोम पद्धति'** आदि मुख्य हैं। अपने गुरु पं० राजाराम शास्त्री द्वारा निबद्ध 'विधवोद्वाहशङ्का समाधि' नामक प्रख्यात ग्रन्थ पर इन्होंने सं० १९२६ विक्रमी में (= १८६९ ई०) 'दोषाभास-निरास' नामक तिलक लिखा। इस ग्रन्थ की रचना द्वारा धर्मशास्त्र के विषय में भी अपनी लोकातीत वैदुषी का इन्होंने प्रख्यापन किया। इस प्रकार पण्डित बालशास्त्री जी ने शास्त्राध्यापन एवं ग्रन्थ-प्रणयन दोनों प्रकारों से सुरभारती की अमूल्य सेवा की जिसके लिए पण्डित-समाज इनका सर्वदा ऋणी रहेगा।

बालशास्त्री जी ने अपने गुरुवर राजाराम शास्त्री जी के साथ १९१९ वि० सं० (= १८७२ ई०) में अनेक तीर्थों के दर्शन किये। इसके दो वर्ष के अनन्तर गुरु जी संन्यास लेकर जब कैलासवासी हो गये, तब काशिराजकीय पाठशाला के अध्यक्ष महोदय की प्रार्थना से उनके रिक्त धर्मशास्त्र का अध्यापक पद इन्होंने स्वीकार किया (१९७५ ई०) परन्तु इस महनीय अध्यापक पद को भी अध्यात्म-साधना में विघ्नरूप मानकर शास्त्री जी ने कुछ ही वर्षों के अनन्तर त्याग दिया। अध्यक्ष ने आधे वेतन की पेन्शन देने का भी प्रस्ताव रखा, परन्तु शास्त्री जी ने इसे भी अस्वीकार कर दिया।

ज्योतिष्टोम यज्ञ का सम्पादन

बालशास्त्री जी के जीवन की सबसे महनीय आध्यात्मिक घटना है ज्योतिष्टोम याग का समारोहपूर्वक अनुष्ठान। कहा जाता है कि शास्त्री जी वेद तथा शास्त्र दोनों के प्रकाण्ड पण्डित थे। यह एक अनहोनी विरल घटना मानी जानी चाहिए। वेद तथा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक कर्मकाण्ड के विद्वान् को समय नहीं रहता कि वह शास्त्रों के पचड़े में अपने आपको डाले। और उधर शास्त्र के अभ्यासी पण्डित को वेद के जटिल अध्ययन में अपने को डालने के लिए अवकाश नहीं मिलता। इसलिए दोनों को एकांगी पण्डित कह सकते हैं। परन्तु बालशास्त्री जी दोनों के प्रौढ़ तथा मार्मिक विद्वान् थे। इससे हमें शास्त्री जी के असाधारण वैशिष्ट्य को मानने के लिए बाध्य होना पड़ता है। शास्त्री जी ऋग्वेदीय शस्त्रों के ही मार्मिक विद्वान् नहीं थे, प्रत्युत औद्गात्र के लिए आवश्यक सामगायन के मधुर गायक भी थे। सुनते हैं कि काशी में विनायकशास्त्री ने जो आप्तोर्याम यज्ञ किया था, उसमें औद्गात्र ऋत्विक् का पद ग्रहण कर बालशास्त्री ने इतना सुन्दर, सरस तथा मधुर सामगायन किया था कि तत्कालीन वृद्धजन कहा करते थे कि ऐसा मधुर सामगायन उन्होंने कभी सुना ही नहीं। यज्ञ कार्य के सुचारु निष्पादन के लिए ही शास्त्रीजी ने ३३ वर्ष के वय में अपनी वृद्धा माता तथा नितान्त वृद्ध गुरु रामकृष्ण दीक्षित के अत्याग्रह के कारण अपना तृतीय विवाह भी किया था।

१९३७ विक्रमी संवत् तदनुसार १८८० ई० का वर्ष बालशास्त्री के जीवन में एक अलौकिक सन्देश लेकर आया। वे ४१ साल के हो चले थे। ब्रह्माघाट के समीप ही इस अनुपम यज्ञ के लिए स्थान का चयन किया गया और बड़े समारोह के साथ यह यज्ञ शुभ मुहूर्त में आरम्भ हुआ। उस युग के नितान्त वृद्ध वैदिक पण्डितों ने इसके सुचारु सम्पादन में अपना अनमोल सहयोग दिया। वह विलक्षण दृश्य देखने ही योग्य था। ८० वर्षों से भी अधिक वय वाले उन्हीं के श्रौत गुरु पं० रामकृष्ण दीक्षित अध्वर्यु थे। आपके व्याकरण गुरु श्री राजाराम शास्त्री के ज्येष्ठ भ्राता, ८५ साल से अधिक वय वाले सखाराम भट्ट कार्लेकर ब्रह्मा थे। साक्षात् श्रद्धा के समान अल्पवयस्का यजमान-पत्नी अपने उपयोगी मन्त्रों का पाठ स्वयं कर रही थीं। समस्त वेदशास्त्रों के ज्ञाता, यागकर्म के परिनिष्ठित विद्वान्, धर्म की अपर मूर्ति के समान धर्मवेत्ता श्री बालशास्त्री स्वयं यजमान थे और शास्त्री जी के अभिन्न हृदय मित्र व्याकरणागम के मनीषी विद्वान् पतञ्जलि के नवीन अवतार माने जाने वाले पण्डित यागेश्वर ओझा जी आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होकर विराजमान थे। ऐसा था यह अपूर्व गरिमा-सम्पन्न श्रौतयाग। प्रत्येक ऋत्विक् अपने विषय का पारगामी पण्डित था। यजमान के वैदुष्य की तो बात ही निराली थी। बड़े ही पावन वातावरण में सम्पन्न हुआ यह यज्ञ। यज्ञीय धूम की सुगन्ध से पूरा वातावरण स्निग्ध एवं सुरभित हो रहा था। यज्ञ के अवसान पर मणिकर्णिका घाट पर अवभृथ स्नान के समय तो पूरी काशी नगरी ही भागीरथी के पावन तीर पर उपस्थित होकर यह स्वर्गीय दृश्य देखकर अपने नेत्रों को पवित्र करने लगी थी। इतना ही नहीं, इसे देखने के लिए ग्रामीणजनों का भी तांता बँधा था। जान पड़ता था कि किसी विशिष्ट सूर्यग्रहण का मेला लगा हो। जन-संबाध के कारण उस समय यही दृश्य उपस्थित हुआ था। यज्ञ की समाप्ति पर सपत्नीक बालशास्त्री जी ने ऋत्विजों को प्रभूत दक्षिणा देकर उनके चरणों पर अपना मस्तक नवाकर अपने जीवन की अन्तिम

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिलाषा को सानन्द परिणति पर पहुँचा दिया। यह विख्यात ज्योतिष्टोम याग माघ शुक्ल पूर्णिमा (सं० १९३७ विक्रमी) से आरम्भ हुआ था और पाँच दिनों तक लगातार चलता रहा। इसके अपूर्व समारोह का वर्णन कल्पनागम्य ही है।

शेष जीवन

१९३९ विक्रमी संवत् (= १८८२ ईस्वी) बालशास्त्रीजी के जीवन का अन्तिम वर्ष था। वे अर्श रोग से पीड़ित रहते थे और उनकी पत्नी भी रुग्ण ही होकर अपना जीवन बिता रही थीं। सन्तान के अभाव में ये दम्पति नितान्त खिन्न थे। फलतः इन्होंने ऐकमत्य से चार वर्ष के एक ब्राह्मण बालक को अपना दत्तक पुत्र बनाया। दत्तक की शास्त्रीय विधि द्वारा इस कार्य पर शास्त्र की मुहर लगा दी गयी। इस बालक का नाम रखा गया विष्णु दीक्षित। १९३९ सं० की ज्येष्ठ शुक्ल द्वितीया को शास्त्रीजी की पत्नी का निधन हो गया। फलतः वह पतिव्रता अपने पति की विद्यमानता में ही मृत्यु को पाकर धन्य हो गयी। एक मास के बाद ही १९३९ सं० आषाढ़ मास की दशमी को बालशास्त्रीजी ने भी उस यज्ञभूमि पर गणेश, रुद्र आदि देवों की स्थापना की। इसके अगले महीने श्रावण कृष्ण त्रयोदशी शिव तिथि (१९३९ वि०) सन् १८८२ ई० को अपनी धवल यशोराशि का विस्तार कर इन्होंने अपने पाञ्चभौतिक शरीर का त्याग कर भगवान् विश्वनाथ के साथ सायुज्य प्राप्त कर लिया। शास्त्रीजी के मूल नाम विश्वनाथ की तब निश्चयेन सार्थकता सिद्ध हो गयी। ४३ वर्ष के अल्प वय में ही यह शास्त्रीय विभूति अपनी लोकातीत कीर्ति का विस्तार कर सदा के लिए अस्तंगत हो गयी।

1839
43
1882

रचना-शैली

श्री बालशास्त्रीजी को अध्ययन-अध्यापन से कभी अवकाश नहीं मिलता था जिससे वे ग्रन्थों का प्रणयन करते। इसलिए उनकी रचनाओं का भी विशेष महत्त्व है। महत्त्व है, और सातिशय महत्त्व है उनके द्वारा तैयार की गई शिष्यमण्डली का। इस शिष्यमण्डली ने शास्त्रों का स्वयं अनुशीलन एवं मनन कर ऐसी सुबुद्ध शिष्य-परम्परा स्थापित की जो आज भी किसी न किसी रूप में विराजमान है।

शास्त्रीजी की महत्त्वपूर्ण कतिपय रचनाएँ ही उपलब्ध हैं—

(१) कहा गया है कि कलकत्ते की एशियाटिक सोसाइटी के आग्रह पर शास्त्री जी ने ब्रह्मसूत्रों के ऊपर शाङ्करभाष्य की टीका, भामती का एक बहुत ही विशुद्ध संस्करण तैयार कर प्रकाशित कराया था जो इस उदात्त ग्रन्थ का सर्वादिम संस्करण है। उन्होंने व्याकरण शास्त्र में दो ग्रन्थों का प्रणयन किया, जिनमें एक तो है—(२) महाभाष्य पर टिप्पणी[1] और दूसरा है—परिभाषेन्दुशेखर पर ३) 'सारासार विवेक'

१. कैयट की टीका के साथ राजराजेश्वरी प्रेस (दुर्गा घाट, काशी) से प्रकाशित, १८९५ ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामक व्याख्यान। श्रौतविषय में शास्त्रीजी का एक प्रामाणिक ग्रन्थ प्रकाशित है— **बृहत् ज्योतिष्टोम पद्धति** जिसके अनुशीलन से उनके श्रौतविषयक प्रगाढ़ पाण्डित्य का पूर्ण परिचय मिलता है।

संस्कृत में उनका लेख बड़ा ही गम्भीर एवं पाण्डित्यपूर्ण होता था। उनके लेख अब तो अप्राप्य ही हैं। केवल दो लेख यहाँ उदधृत किये जाते हैं, उनकी उदात्त लेखन-शैली की अवगति के निमित्त।

'विधवोद्वाहशंका समाधिः' नामक ग्रन्थ की अपनी टीका के आरम्भ में बालशास्त्री ने पाँच पद्यों की रचना की है जिसमें आदिम दो पद्यों में आशीर्वाद के लिए इष्टदेवता की स्तुति की गई है।

शिव की स्तुति का यह पद्य कितना विषयोचित है—

"शम्भुस्त्रयीनिहित-धर्मपथानुवर्ति-
प्रोत्साहकाभयवराभिनयं दधानः।
शिष्टागृहीतपदवीं श्रयतां निहत्यै
शूलं च मामवतु शाश्वतसार्वभौमः॥"

पातिव्रत्य-रूपी कल्पवृक्ष का यह वर्णन बड़ा ही रोचक तथा आवर्जक है—

"यं संश्रयन्त्यगसुता वशयाञ्चकार
त्रैलोक्यभूपतिगिरीशमरुन्धती च।
आस्ते सुरेडितपदाभिमुखः स जीया-
न्निर्विघ्नमेकपतिकाव्रतकल्पवृक्षः॥"

इस वृक्ष के उन्मूलन का प्रयत्नकर्ता व्यक्ति सर्वदा भर्त्सना के योग्य है—

"तस्यास्य यो दुरितजालमहाग्रहेण
ग्रस्तो वियुक्तपतिकोद्वहनाग्रहेण।
उन्मूलने प्रयतते स कथं न भर्त्स्यः
पौलस्त्य एव परमत्र निदर्शनं यत्॥"

बालशास्त्री ने राजाराम शास्त्री को अपने गुरु के रूप में उल्लिखित किया है (श्लोक ४)। अतएव गुरु तथा शिष्य—दोनों के सम्मिलित प्रयास का यह परिणाम है।

वेदार्थ विचार

श्रीमत् सायणाचार्यकृत वेदभाष्यस्यास्वारसिकत्वं मन्यमानान् प्रति किञ्चिदुच्यते—

अहह महानयं कतिपयमारत जनस्याविवेको यदहमेव परीक्षाकोऽहमेव च प्रेक्षावान्। मया च यदुच्यते तदेव प्रमाणम्। सर्वोऽपिजनो न किमपि वस्तुतत्त्वं निश्चेतुं शक्नोति मट्टते इति सुदृढं निश्चित्य नानाविधैर्दुर्भाषणैरपवादयति युगपत् सर्वान् आर्यावर्तीयान्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न ह्यस्माकं वेदः शाकुन्तलं नाम नाटकं, येन तस्य महाबुद्धिमत्ता बलवत् प्रयत्नशालिनाऽपि दिव्यविमानं विनैव क्रियमाणं व्याख्यानं विश्वासार्हं स्यात् प्रवर्तयेन्निवर्तयेद् वा प्रेक्षावतः। धर्माधर्माद्यतीन्द्रियेषु वस्तुषु केवलमार्षं विज्ञानमेव व्याचक्षाणस्य प्रामाण्ये उपयुज्यते, न पुनर्बुद्धिपरिश्रममात्रम्। अस्माभिरपि किं तथाविधानि वेदव्याख्यानानि न निर्मातुं शक्यन्ते यादृशानि महाशय मोक्षमूलरप्रभृतिभिर्निर्मितानि, तादृशानां च लौकिकदृष्ट्या कुत्रचिदंशे भगवद् विद्यारण्यप्रणीतभाष्यसंदर्भापेक्षया चारुतरत्वेन परिदृश्यमानानामपि किं धर्माधर्मयोः प्रामाण्यं स्यात्, किं द्वीपान्तरीयोऽपि महाजनो भगवन्तं परमेश्वरमपि तदीयलोकोत्तरमहैश्वर्यदर्शनं विनैव धर्माधर्मयोः प्रमाणीकुरुते स्म। अथ च निःशङ्कां तदाज्ञावाक्यमनुप्रवर्तते स्म, भारता वा व्यासादि, न वयं तथा श्रद्धाजडा यत् कोऽपि किमपि वदतु तत्प्रमाणत्वेनानुमन्तव्यमनुमन्तारं च वाग्वज्रेण प्रहर्तव्या, यथा श्री मोक्षमूलरादि व्याख्यानानुसारिणः कतिपये भारताः। परं वयं द्वीपान्तरवासिनोऽपि भारतदेशीयशास्त्रेऽतिप्रवीणान् श्रीमन्मोक्षमूलरप्रभृतीन् समीक्ष्य तेषां परमोत्तमबुद्ध्यभ्यासोद्रेकं शिरसा श्लाघामहे। अति परिश्रमशालि प्रज्ञावद्गणगणनायां प्रथमं गणयामहे। नैतावता ते चोत्तमपण्डिता इति कृत्वा बलिष्ठेषु गायकेषु भटेष्वपि प्रथमं गणनीया, गणनेऽपि न काचित् तेषां प्रशंसा स्यात् प्रत्युत गणयितुरविवेक एव प्रकाशितः स्यात्। एवमेतत् कतिपयानां विद्यारण्य व्याख्यानस्यास्वारसिकत्वाभिमानपुरस्सरं नवीनव्याख्यानस्य प्रामाणिकत्वेनानुमन्तां व्याख्यातॄणां प्रसादार्थं क्रियमाणं परं महाशयानां तेषामप्रसादमेव सम्पादयेदिति निश्चयः। नहि कोऽपि महात्मा मिथ्या-प्रशंसया तुष्यतीति प्रसिद्धावप्येषामस्मदीयभारतीयानामत्यन्तमाश्चर्यावहा तथा प्रवृत्तिः केवलमर्थी दोषान्न पश्यतीत्यस्य मुख्यमुदाहरणं भवितुमर्हति। अस्माकं तु द्वीपान्तरीयान् ईदृशविद्योद्रेक शालिनो दृष्ट्वाऽत्यर्थं मोदमानानामपि निष्पक्षपातधीरेव मिथ्याप्रशंसा-प्रवृत्तिं कुण्ठयतीति किं कुर्महे।

अत्रायमेव प्राचीन-नवीन-व्याख्यानां परीक्षानिकषोपलो योऽग्वेदस्य प्रथमाष्टक प्रथमाध्यायैकादशवर्गीयो मन्त्रः। अस्य चाधुनिकं व्याख्याचतुष्टयं श्रीमद्विल्सन, वेम्फि, लांग्लूइस, मोक्षमूलराभिधैः प्रणीतं, तत्रायं सायणाचार्यानुसार्येव, पराणि त्रीणि तद्विरुद्धानि, तत्राप्यर्वाचीनतरैः कतिपयैर्विशेषतोऽस्य शब्दस्यार्थो विचारितः बहुमन्त्रासंवादप्रदर्शनपुरःसरमुज्ज्वलपरतया व्यवस्थापितः। परंतु तान् सर्वान् प्रतिवदामः तैत्तिरीय ब्राह्मणस्य तृतीय काण्डस्थ-तुरीयानुवाकार्थानुसन्धानपुरःसरं सायणचार्येणायमर्थो निरूपितस्ततः; स्पष्टं तादृश एवार्थस्तस्य मन्त्रस्यावधार्यते इत्यलमर्थान्तरोपवर्णनार्थैः क्लेशैः। नहि श्रुत्यैव स्वार्थे बोधिते तत्र कुतर्काणामवकाशः। सिंहपरस्य हरिपदस्य सहस्रस्थलेषूपलम्भेऽपि वक्ता मण्डूके स्वतात्पर्यं यदि स्पष्टं बोधयेत् तर्हि तद्धरिपदस्य सिंहपरता शक्याऽवधारयितुम्। तथाऽवधारयिता च शुक्लाम्बरधर व्याख्यातेवोपेक्षणीयः स्यात्। तथा च लौकिकानां गाथा—शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजं प्रसन्नवदनं ध्यायेदिति भगवद् गणेशध्यानस्य केनचिदित्थमर्थोपवर्णनमकारि—शुक्ला गौरी अम्बा यस्य स शुक्लाम्बो गणेशः, तं राति वहनीयत्वेनादत्ते इति शुक्लाम्बरो मूषिकः, तं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्षणार्थं धरतीति शुक्लाम्बधरो मार्जारः शशिवर्णः शुभ्रः, चतुर्भुजत्वं तु स्पष्टमेव, भक्ष्यलाभेन प्रसन्नवदनोऽपीति गौरमार्जारध्यानमनेन विधीयते इति ।

अन्येन चान्यथैव व्याख्यातं रजकरासभपरोऽयं श्लोक इति । भवति च स शुक्लाम्बरधरः पीतगौरत्वात् शशिवर्णः महामूढपशुत्वाच्चिन्तालेशराहित्येन प्रसन्नवदनोऽपीति ।

इत्थं चात्र मात्सर्यमुत्सार्य निष्पक्षपातधिया विचार्यं तारतम्यं सुधीभिरिति शम् ॥

बालशास्त्री का यह सुन्दर साहित्यिक भाषा में निबद्ध लेख उस युग की रामकहानी कहता है जब पाश्चात्य वेदज्ञ विद्वानों की वेद की मनमानी व्याख्या से भारतीय पण्डित-समाज क्षुब्ध और उन लोगों के कृत्यों से मर्माहत हो रहा था । शास्त्री जी ने बड़ी ही सुन्दर शैली में उस व्याख्या की खिल्ली उड़ाई है जो प्रसंग एवं सन्दर्भ का बिना ध्यान किये ही शब्दों से अर्थों को बलात् खींचकर प्रस्तुत की जाती है । उन्होंने हँसी में दिखलाया है कि ऐसी मनमानी करने पर तो 'शुक्लाम्बरधरं देवं' जैसा गणेशपरक श्लोक उजली बिल्ली के ध्यान का वर्णन करने वाला सिद्ध किया जा सकता है । फलतः अर्थ करने में परम्परा पर ध्यान देना नितान्त आवश्यक होता है ।

विक्टोरियाकालीन भारत की दशा

रानी विक्टोरिया भारतवर्ष का शासनाधिकार अपने हाथों में लेकर जब यहाँ की महारानी पदवी से विभूषित की गईं, तब बालशास्त्रीजी ने उनकी प्रशंसा में बड़ी ही अभिराम वचनावली कही थी । वही यहाँ उद्धृत की जाती है—

भो सभ्याः किमपि भवतः प्रति निवेदयामि तत् स्वीयां विचारपदवीमधिरोपयितुं प्रसीदन्तु, अनुरूपोत्तरप्रदानेन च मामनुगृह्णन्तु । तथाहि—सर्वद्वीपावतंसभूतमपीदं भारतवर्षं बहुभिर्नायकैराक्रान्तत्वेन परस्परनाशप्रेप्सुभिस्तैः सर्वदा क्रियमाणया संग्राम-लुण्ठनादिचिन्तया क्षणमपि शर्माऽलभमानेष्वत्रत्येषु क्रमशः उपजायमाने विद्याशिल्पयोरुपचये परस्परविरोधशालिभिस्तैः क्रियमाणे परस्परधर्माभिभवे च सति दुःखोद्वेगसागरेऽत्यन्तं निमग्नमेतदुद्दिधीर्षुणेव सर्वजनदयावशंवदेन श्रीमती सम्राड् लोकोत्तरवर्णनीय-गुणगणशालिनी श्री ५ विजयिनी देवी सर्वेषामस्माकं सौभाग्यनिधिरिव मूर्तिमयीह जगन्नियमनशक्तिः स्वस्य सकललोकनायकेन परमेश्वरेणैतद्भारतवर्षाधिराज्ञी प्रादुरकारि । अथ तया प्रशमितोपद्रवा वयं स्वस्ववर्णाश्रमोचितधर्मान् सुखेनाचरितुं शक्नुमोऽपि च सर्वदा प्रजाहितचिन्तनैकदीक्षादीक्षितया तया साम्राज्ञ्या संस्थापितासु परस्सहस्रासु पाठशालास्वनायासेन शास्त्रेषु पूर्वपूर्वतरैरेतद्देशीयैः कदाप्यपरिदृष्टावितर्कितेषु शिल्पेषु वाष्पनौकारथादि-निर्मिति शिल्पेषु तारातन्त्राद्युपयोगिविद्युदादि विधासु च व्युत्पत्तिं सम्पादयितुं शक्नुमश्चेति क इत उत्तमोत्तमादस्मात् समयात् परः समयोऽस्माकमुन्नत्युद्रेकस्य संभाव्यताम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर बालशास्त्री के दो लेखों का कुछ अंश उद्धृत किया गया है उनके अनुशीलन से पता चलता है कि शास्त्रीजी की संस्कृत शैली बड़ी ही प्राञ्जल तथा प्रसन्न थी। इनकी पदशय्या बड़ी सुन्दर तथा शब्दों का चुनाव सार्थक होता था। प्रथम लेख में इन्होंने वैदिक मन्त्रों के अर्थ के विषय में प्रचलित आधुनिक प्रणाली की निन्दा की है। द्वितीय लेख में शास्त्रीजी ने महारानी विक्टोरिया की स्तुति करते हुए उनके राज्य भारत में व्याप्त शान्ति, व्यवस्था और सुशासन की चर्चा की है। इसके साथ ही अंग्रेजी राज्य में होनेवाले नये-नये आविष्कारों —जैसे रेल, तार, बिजली आदि की भूरिशः प्रशंसा की है।

संस्मरण

श्री बालशास्त्री जी संस्कृत भाषा, व्याकरण, दर्शन, वेद तथा कर्मकाण्ड आदि विषयों के उत्कृष्ट पारगामी विद्वान् थे। अपने जीवन के आरम्भिक काल में इन्होंने वेद तथा वैदिक कर्मकाण्ड का बड़ा ही प्रगाढ़ अनुशीलन तथा मनन किया था। इन्होंने अग्निनारायण की स्थापना अपने घर में की थी। ये आहिताग्नि अर्थात् अग्निहोत्री थे। एकबार इन्होंने अपने शिष्यों के संग अग्निनारायण की सेवा करते हुए पञ्चक्रोशी की यात्रा की थी। यह यात्रा भी एक अविस्मरणीय ऐतिहासिक घटना थी। इस यात्रा में पण्डितों तथा छात्रों का एक विशाल समूह ही सम्मिलित हुआ था। सबके आगे अग्निनारायण अपनी वेदी में बैठकर चल रहे थे। उन वेदी के चारों कोनों को शास्त्रीजी के लब्धवर्ण चारों शिष्य अपने कन्धों पर धारण कर चल रहे थे। ये चारों शिष्य अपने-अपने विषय के यशस्वी आचार्य थे जिनके नाम हैं - म० म० पण्डित शिवकुमार शास्त्री, म० म० पण्डित गङ्गाधर शास्त्री, म० म० पण्डित दामोदर शास्त्री तथा म० म० तात्याशास्त्री। इनके पीछे बालशास्त्री तथा उनके घनिष्ठ सुहृद्वर्य पण्डित यागेश्वर शास्त्री जी एक साथ चल रहे थे और इन दोनों के पीछे-पीछे चल रही थी काशी की महनीय विद्वन्मण्डली। इस दृश्य को देखने के लिए काशीवासी जनता की अपार भीड़ सड़क के दोनों किनारे खड़ी होकर एकटक इस अनुपम शोभा का निरीक्षण कर रही थी।

बालशास्त्री किसी समस्या के समाधान के निमित्त स्वयं एक प्रश्न की अवतारणा करते थे। चारों शिष्य क्रमशः उस प्रश्न का उत्तर देते तथा समस्या की ग्रन्थि सुलझा कर उसे बोधगम्य बनाते थे। चारों के मतों में बहुत कम ऐक्य होता था। तब बालशास्त्रीजी शिष्यों के उत्तरों में विद्यमान विसंगति दिखलाकर उसका स्वयं समाधान करते थे। कभी तो शिष्यों के उत्तरों में दोष दिखाते और कभी उनके आंशिक समाधान को लेकर शिष्यों के उत्तरों का सामञ्जस्य दिखलाते। रास्ते भर यही शास्त्रीय चर्चा चलती रहती। नयी टिकान आने पर मण्डली रुक जाती और शिष्यों का उत्तर-प्रत्युत्तर भी विराम तथा विश्राम पा लेता। पाँच दिनों की पञ्चक्रोशी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यात्रा में न जाने कितने प्रश्नों का उत्तर मिलता, विषम समस्याएँ अपना सुबोध समाधान पा जातीं तथा यात्रार्थी विद्वानों के ज्ञान की वृद्धि होती। इस प्रकार यह ऐतिहासिक पञ्चक्रोशी यात्रा समाप्त हुई। पाँच दिनों की यह शास्त्र चर्चा सामान्य जन के लिए एक दर्शनीय घटना थी—अभूतपूर्व, नवीन तथा चमत्कारी। इसकी स्मृति आज भी वृद्धजनों के हृदयों पर अंकित है।

बाल्येऽपि बालशास्त्री स्वाप्तोर्यामर्त्विगखिलविच्छास्त्री।
नृपसेव्य–सोमयाजी बालसरस्वत्ययं विदितः॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५

श्री यागेश्वर शास्त्री

(आस्पद—ओझा; उपाधि—वैयाकरण केसरी)

पण्डित यागेश्वर ओझा जी व्याकरण शास्त्र के अगाध पण्डित थे। गत शताब्दी में इनका प्रादुर्भाव हुआ था। ये प्रसिद्ध विद्वान् बालशास्त्री जी के सतीर्थ्य थे, परन्तु दोनों की अध्यापन शैली में पर्याप्त पार्थक्य था। बालशास्त्री जी ने अपने गुरुजन काशीनाथ शास्त्री एवं राजाराम शास्त्री से शिक्षा पाकर व्याकरण शास्त्र में **परिष्कार पद्धति** को अग्रसर किया, परन्तु यागेश्वर ओझा जी प्रक्रिया पद्धति को ही पाणिनीय व्याकरण के रहस्य प्रकाशन के निमित्त उपयुक्त समझते थे। तथ्य तो यह है कि **प्रक्रिया** तथा **परिष्कार** दोनों शैलियाँ परस्पर विरुद्ध न होकर एक दूसरे की पोषिका हैं। अलग-अलग शैली का उपयोग कर व्याकरण के मूल ग्रन्थ का अनुशीलन गम्भीरता से किया जा सकता है। प्रक्रिया पद्धति महाभाष्यकार पतञ्जलि की व्याख्या का पूर्णतः अनुगमन करना अपना ध्येय रखती है। परिष्कार पद्धति में नव्य न्याय की सूक्ष्म सम्बन्ध-निरूपक रीति का उपयोग होता है। मूल ग्रन्थ के तथ्यों का अनुशीलन दोनों का ही लक्ष्य है।

अध्ययन

पण्डित यागेश्वर ओझा का जन्म उत्तर प्रदेश के बलिया जनपद के चोल्हन चक (रुद्रपुर) गाँव में लगभग १८२८ ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री ओङ्कार ओझा था जो ब्राह्मण वृत्ति से अपने परिवार का भरणपोषण करते हुए जीवनयापन करते थे। उनके चार पुत्र थे जिनमें कनिष्ठ पुत्र हमारे चरितनायक यागेश्वर शास्त्री थे। ये अपनी बाल्यावस्था से ही प्रतिभासम्पन्न तथा स्वाध्यायप्रिय व्यक्ति थे। परन्तु अटूट गरीबी के कारण इनके पिताजी इन्हें काशी आदि विद्या के केन्द्र में अध्ययन करने के लिए नहीं भेज सके। जीवन के प्रारम्भिक कुछ वर्षों तक ये ग्रामीण पाठशाला में ही शिक्षा प्राप्त करते रहे। परन्तु इस अध्ययन से इनके मन को शान्ति नहीं मिली।

इनके मन में स्वाध्याय की उत्कट अभिलाषा थी। अतः ये इस अभिलाषा की पूर्ति के लिए अपने पिता और माता से बिना पूछे ही, घर और कुटुम्बियों से नाता तोड़कर घर से भाग निकले। इनके गाँव के पास ही काशी में निवास करने वाले महाराजा विजयानगरम् की लम्बी चौड़ी जमीन्दारी थी। इसके प्रबन्धक उस समय एक बंगाली सज्जन थे जो बड़े ही सहृदय एवं उदार थे। वे यागेश्वरजी को पढ़ने-लिखने के लिए विशेष प्रोत्साहन देते थे तथा समय-समय पर आर्थिक सहायता देकर अपनी उदारता का परिचय दिया करते थे। उन्हीं के प्रोत्साहन से यागेश्वरजी को अपने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्ययन को पूर्ण तथा सर्वाङ्गीण बनाने में सर्वथा अवलम्ब मिलता। वे इनके नैसर्गिक हितचिन्तक थे।

उन दिनों यातायात की कोई सुविधा नहीं थी। न तो रेलगाड़ी चलती थी और सड़कों के अभाव के कारण न आजकल की तरह बसों और मोटर गाड़ियों से यात्रा का प्रबन्ध था। अतः बालक यागेश्वर पैदल ही गोरखपुर के लिए चल पड़ा। रास्ते में अनेक विघ्नबाधाओं तथा संकटों को पार करते हुए ये गोरखपुर पहुँचे।

गोरखपुर जनपद में उन दिनों एक बहुत बड़े वैयाकरण रहते थे जो छात्रों को व्याकरण का अध्यापन कर किसी प्रकार अपनी जीविका चलाते थे। यागेश्वरजी ने उन्हीं वैयाकरण का आश्रय ग्रहण किया और उन्हीं से इस शास्त्र का अध्ययन करने लगे। अनेक वर्षों तक गोरखपुर जिले में अध्ययन करने के पश्चात् विद्या की नगरी काशी में आकर इनकी पढ़ने की इच्छा हुई।

गोरखपुर से वाराणसी की दूरी कम न थी और उन दिनों यातायात की सुविधा न होने से पैदल ही यात्रा करनी पड़ती थी। यागेश्वर जी अपनी यात्रा की कठिनाइयों का वर्णन करते समय कहा करते थे कि पास में पैसा न होने से यात्रा बड़ी दुःखद थी। प्यास लगने पर ये आम के गिरे हुए मीठे पत्तों को चाटकर पानी से अपनी प्यास शान्त किया करते। बहुत दिनों में ये काशी पहुँचे। तब योग्य गुरु की खोज में लग गये—ऐसे योग्य गुरु की जो व्याकरण शास्त्र का पारगामी पण्डित हो और जो इनकी शंकाओं का विधिवत् समाधान करने की योग्यता रखता हो।

उस समय के सबसे मूर्धन्य वैयाकरण थे **काशीनाथ शास्त्री कार्लेकर** जिनके पास व्याकरण के जिज्ञासु छात्रों की भीड़ लगी रहती थी। उन्हीं के चरणों की छाया में रहकर यागेश्वरजी ने व्याकरण के अवशिष्ट ग्रन्थों का अध्ययन आरम्भ किया। एक दिन एक विलक्षण घटना घटी। काशीनाथ शास्त्री जी बड़े आवेश में, पूरी तैयारी के साथ, व्याकरण पढ़ा रहे थे। यागेश्वरजी पाठ सुन रहे थे। इनकी व्याकरण-सम्बन्धी व्युत्पत्ति में कोई न्यूनता तो थी ही नहीं। सब कुछ पूर्व से ही तैयार था। फलतः इन्होंने शास्त्रीजी के पढ़ाने में कोई शंका उठाई। शास्त्रीजी ने उस शंका को सुनकर तुरन्त उत्तर नहीं दिया, दूसरे दिन के लिए उसे टाल दिया। दूसरे दिन उस शंका का समाधान विधिवत् किया गया, परन्तु प्रथम दिन शंका के असमाधान से छात्रों का ध्यान यागेश्वरजी की ओर आकृष्ट हो गया और उनकी विचक्षण बुद्धि पर सबको आश्चर्य हुआ। काशीनाथ शास्त्रीजी का भी इस सुयोग्य शिष्य की ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक ही था। उस कक्षा में बालशास्त्री जी भी अध्ययन कर रहे थे। उनकी दृष्टि में यागेश्वर पण्डित जी चढ़ गये और दोनों की मित्रता सम्पन्न हुई, जो जीवन भर अबाधित गति से निबह गई। काशीनाथ शास्त्री १८४४ ई० (=१९०१ विक्रमी सं०) में संस्कृत महाविद्यालय में अध्यापन करते थे। उनके समय में ही उनके पट्टशिष्य पण्डित राजाराम शास्त्रीजी विद्यालय के अध्यापक नियुक्त हो गये थे। फलतः काशीनाथ शास्त्री के विद्यालय से अवकाश ग्रहण करने पर बालशास्त्री के साथ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यागेश्वर पण्डित ने इन्हीं राजाराम शास्त्रीजी के पास थोड़े दिनों तक अध्ययन किया और यहीं अपनी छात्रावस्था समाप्त की।

सम्मान

बालशास्त्री के साथ इनकी सतीर्थता की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। शास्त्री जी अपने मित्र यागेश्वरजी को इतना अधिक मानते थे और इनकी इतनी प्रतिष्ठा करते थे कि जब भी किसी राजा-महाराजा के यहाँ से दरबार में आने का उन्हें निमंत्रण मिलता तो वे सदा यागेश्वर शास्त्री को भी अपने साथ ले जाया करते थे। इतना ही नहीं, बालशास्त्री जी ने काशी में एक अत्यन्त विशाल सोमयाग का अनुष्ठान किया था। उस महनीय यज्ञ में उन्होंने यागेश्वर शास्त्री को आचार्य के पद पर प्रतिष्ठापित किया था। उन दिनों काशी में दाक्षिणात्य पण्डितों का ही बोलबाला था। केवल यागेश्वर शास्त्री ही एकमात्र सरयूपारीण ब्राह्मण विद्वान् तथा प्रथम वैयाकरण थे जिन्होंने इस पाणिनीय-शास्त्र की कीर्तिपताका को सदा प्रतिष्ठापित रखा।

तपस्वी जीवन

पण्डित यागेश्वर जी का आचरण नितान्त पवित्र, विद्वत्ता के अनुकूल तथा अत्यन्त समुन्नत था। ये निःस्पृहता की मूर्ति तथा 'पाण्डित्य के जंगम अवतार' थे। शास्त्री जी वेतन को विना स्वीकार किये ही, प्राचीन आदर्शों के अनुसार छात्रों को व्याकरण शास्त्र का अध्यापन करते थे। भृतिमूलक अध्यापन—वेतन लेकर अध्यायन करना—इन्हें कथमपि स्वीकार नहीं था। पं० राजाराम शास्त्री संस्कृत कालेज के उस युग के मान्य अध्यापक थे। उनकी रुग्णावस्था में यागेश्वर शास्त्री को कालेज में अध्यापन कार्य दिया गया था। परन्तु उस अध्यापन काल में प्राप्त वेतन की समस्त धनराशि ये स्वयं स्वीकार न कर पं० राजाराम शास्त्री के पुत्रों को दे दिया करते थे। १८७५ ई० में गुरु के देहावसान हो जाने पर, कालेज के तत्कालीन अध्यक्ष डा० ग्रिफिथ साहब ने इनके घर पर आकर अध्यापन कार्य करने की प्रार्थना की परन्तु इन्होंने भृतिमूलक वृत्ति—वेतन वाली नौकरी—को कथमपि स्वीकार नहीं किया। संस्कृत तथा हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान् पंडित अम्बिकादत्त व्यास ने इनके त्याग की प्रशंसा करते हुए लिखा है :—

"इस समय (१८९६ ई०) भी विद्या की राजधानी काशी है। यहाँ के परम मान्य विद्वान् तपस्वी, महानुभाव पण्डित श्री यागेश जी (यागेश्वर शास्त्री) महाराज थे जो काशी में व्याकरण को राज्याभिषेक देने वाले पूज्यपाद पण्डित काशीनाथ जी के शिष्य थे। जिन्हें गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज ने स्वयं कई बार आवाहन किया, पर न गए और केवल भजन कर अपना शेष जीवन व्यतीत किया।"[1]

१. पं० अम्बिकादत्त व्यास द्वारा रचित एवं सम्पादित 'साहित्य नवनीत', पृ० ७८, काशी, १६१९ ई० का संस्करण।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यास जी ने यागेश्वर शास्त्री जी के तपस्वी जीवन का ऊपर जो उल्लेख किया है वह एक प्रसिद्ध घटना से भी स्पष्टतः प्रमाणित होता है। शास्त्री जी का एक द्रविड़ शिष्य विजयानगरम् महाराज के राज्य में मैनेजर के पद पर प्रतिष्ठित था। प्रत्युपकार बुद्धि से प्रेरित होकर उसने अपने गुरु जी के गाँव के पास ही बहुत सी जमीन दान-रूप में देने के लिए महाराजा को प्रेरित किया। महाराज बहुत ही उदार थे। उन्होंने शास्त्री जी को जमीन देना स्वीकार किया परन्तु शास्त्री जी ने अपनी त्याग बुद्धि के कारण उस जमीन को लेना अस्वीकार कर दिया क्योंकि उसकी रजिस्ट्री के लिए इन्हें कचहरी की शरण लेनी पड़ती ! यागेश्वर जी का यह निर्लोभ स्वभाव तथा भृतिहीन जीवन वृत्ति किसके लिए आश्चर्यजनक नहीं है ?

दिनचर्या

पं० यागेश्वर शास्त्री की दिनचर्या में स्नान— पूजन, अध्ययन-अध्यापन, आदि की प्रधानता थी। प्रतिदिन प्रातःकाल तीन बजे ये पंचगंगा घाट पर गंगा स्थान करने के लिए जाते थे। वहाँ से आने के बाद घर पर शालग्राम का पूजन-अर्चन तथा पाठादि सावधान मन से एकनिष्ठ होकर किया करते थे। पंचगंगा घाट के पास ही 'दूध विनायक' नामक मुहल्ले में मुंगेर के राजा का एक विशाल भवन था। वही पण्डित जी की पाठशाला तथा आवास स्थान दोनों था।

ये परम वैष्णव थे। यावत् जीवन इन्होंने जिस शालग्राम विग्रह की पूजा की वह भाग्यवशात् आज भी इस चरित-लेखक के पास है। पं० यागेश्वर शास्त्री जी का जन्म सं० १८८५ वि० (=१८२८ ई०) के आस-पास हुआ तथा सं० १९५६ वि० (=१८९९ ई०) में उन्होंने काशी में ही निर्वाण प्राप्त किया।

व्याकरण शास्त्र ही शास्त्री जी के अध्यापन का विषय था और उसमें भी सिद्धान्त-कौमुदी, परिभाषेन्दुशेखर तथा महाभाष्य इनके अध्यापन के प्रिय ग्रन्थ थे। प्रक्रिया विधि के समर्थक होने के कारण शास्त्री जी पाणिनीय व्याकरण में परिष्कार विधि को अनिवार्य नहीं मानते थे। इनका दृढ़ विश्वास था कि प्रक्रिया विधि ही महर्षि पाणिनि के समस्त सिद्धान्तों को सहज रीति से प्रकट करने में समर्थ है। अतएव परिष्कार विधि की अनिवार्यता को ये स्वीकार नहीं करते थे।

परिवार

पण्डित यागेश्वर शास्त्री जी का परिवार बहुत ही छोटा था, पहली पत्नी से इन्हें एक पुत्र हुआ। नाम था पण्डित देवकृष्ण ओझा। पहली पत्नी की मृत्यु के अनन्तर इन्होंने विवाह किया। द्वितीय पत्नी से इन्हें एक कन्या उत्पन्न हुई—नाम था गौरी जिसका विवाह देवरिया मण्डल के रुद्रपुर कसबा के एक प्रतिष्ठित धनाढ्य व्यक्ति से हुआ था। इस पुत्री को तो कोई सन्तान न थी, किन्तु देवकृष्ण जी को दो सन्तानें हुईं—एक पुत्र तथा एक पुत्री। पुत्र पं० रामनाथ ओझा काशी में ही रहते हैं और तपस्वी जीवन बिताते हैं। पुत्री शिवमुनी देवी ग्रन्थलेखक की धर्मपत्नी हैं। इस प्रकार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह लेखक यागेश्वर शास्त्री जी के ही परिवार का एक अंग है। शास्त्री जी लेखक के 'अजिया ससुर' (श्वशुर के पिता) थे। शास्त्री जी जिस शालग्राम विग्रह का नित्य पूजन किया करते थे वह आजकल लेखक के द्वारा पूजित तथा अर्चित किये जाते जाते हैं। शास्त्री जी के अलौकिक जीवन की विलक्षण घटनाएँ लेखक ने अपनी सास से सुन रखी हैं जो उनकी सेवा में निरन्तर रहती थीं और उन्हीं के साथ प्रातःकाल चार बजे नित्य गंगा स्नान करने को जाया करती थीं।

पण्डित ठाकुरप्रसाद ओझा

पण्डित यागेश्वर शास्त्री जी ने बड़े प्रेम तथा परिश्रम से अपने भ्रातुष्पुत्र पं० ठाकुरप्रसाद ओझा को व्याकरण शास्त्र के चूड़ान्त ग्रन्थों का अध्यापन कर एक परिनिष्ठित सुबुद्ध वैयाकरण बना दिया था। ठाकुरप्रसाद जी की प्रतिभा बड़ी विलक्षण थी। व्याकरण के विद्वान् होने का गौरव तो उन्हें अपने पितृव्य-चरण के अध्यापन के फलरूप प्राप्त हुआ, परन्तु वे अपनी प्रखर बुद्धि से साहित्य एवं ज्योतिष जैसे शास्त्रों का अनुशीलन कर इन विषयों के उत्कृष्ट पण्डित हो गये थे। यागेश्वर पण्डित के भ्रातुष्पुत्र होने के नाते बाल शास्त्री जी की भी कृपादृष्टि इनके ऊपर सदय बनी रहती थी। एक समय की बात है, संस्कृत विद्यालय में शलाका-परीक्षा चल रही थी। अनेक छात्र परीक्षा देने आये थे। उनमें ही ठाकुरप्रसाद को भी देखकर बाल शास्त्री को आश्चर्य हुआ। पूछा कि तुम्हारी तो शलाका परीक्षा हो चुकी है। आज तुम क्यों आये? ठाकुरप्रसाद जी ने कहा—"चाचाजी ने आज मुझे एक विशेष कार्य के लिए भेजा है। उनका कहना है कि तुम उन प्रश्नों का उत्तर देना जिनका उत्तर अन्य छात्रों के द्वारा न हो सके। उसी कार्य के लिए मैं आपकी सेवा में आया हूँ।" बालशास्त्री शलाकापरीक्षा लेते जाते थे और छात्रों द्वारा अनुत्तरित प्रश्नों का उत्तर ठाकुरप्रसाद जो से पूछते जाते थे। इनके उत्तर से वे बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे कि "इस समय मेरे पास तुम्हारे योग्य कोई वस्तु पारितोषिक देने लायक नहीं है। यह सिद्धान्तकौमुदी मेरे ही हाथों लिखी है। इसी पर मैंने अध्ययन किया था और आज भी इसी से अध्यापन करता हूँ। इसे तुम्हें प्रसन्न होकर देता हूँ। इसे निधि समझ कर अपने पास रखना।"

ठाकुरप्रसाद जी सिद्धान्तकौमुदी की पोथी लेकर घर आये और यागेश्वर पण्डित जी से शलाकापरीक्षा की सब घटना कह सुनाई और उन अनुत्तरित प्रश्नों का भी उत्तर कह सुनाया जो बाल शास्त्री जी के उल्लास का कारण बना था। कहना व्यर्थ है कि उस युग के सबसे बड़े महारथी बाल शास्त्री जी के द्वारा प्रदत्त उस बहुमूल्य पुरस्कार की घटना से यागेश्वर शास्त्री जी को कितना आनन्द आया होगा। उन्होंने अपने भतीजे को विशेष आशीर्वाद दिया। बाल शास्त्री जी ने पुरस्कार के साथ अपना प्रशंसा पत्र भी दिया था जो यहाँ उद्धृत किया जा रहा है। दुःख की बात इतनी ही ठहरी कि यागेश्वर शास्त्री जी के सामने ही यह होनहार विद्वान् अकाल में ही काल-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवलित हो गया। शास्त्री जी इतने विक्षिप्त तथा अन्यमनस्क हो गये जिसका वर्णन शब्दों के द्वारा नहीं हो सकता। क्यों न हो? शास्त्री जी के द्वारा रोपा तथा सींचा गया अमृत वृक्ष उनके जीवन काल में ही, अकाल में ही सूख गया। भवितव्यता ही तो ऐसी थी। यह घटना शास्त्री जी की विशेष विरक्ति का कारण बन गई। अब ये अपना समय भजन-पूजन में ही अधिकांश में लगाने लगे। विरक्त तो पहिले से ही थे, यह घटना प्रबल विरक्ति का हेतु बनी।

अध्यापन-चातुरी

पण्डित यागेश्वर ओझाजी अध्यापन कला में बड़े निपुण थे। प्रसिद्धि तो यह थी कि उनके समान कौमुदी का विज्ञ अध्यापक कोई दूसरा न था। इसीलिए टीका ग्रन्थ के अध्यापन से प्रथम ही शास्त्री लोगों का आग्रह था कि सिद्धान्तकौमुदी का अध्यापन यागेश्वर शास्त्रीजी के द्वारा विधिवत् करने के अनन्तर ही टीका ग्रन्थ पढ़ाये जायँ। तथ्य तो यह है कि परिष्कार पढ़ने से पहिले प्रक्रिया का ज्ञान तो सर्वाङ्गीण रूप से होना ही चाहिए और प्रक्रिया का अध्यापक ओझाजी से बढ़ कर दूसरा था ही नहीं। इनके द्वारा कौमुदी का अध्यापन इतना सटीक तथा गम्भीर होता था कि उस सूत्र की व्याख्या के निमित्त महाभाष्यकार से लेकर नागेश तक जिन मार्मिक तथ्यों का उद्घाटन किया गया था वे सब एक साथ ही यहाँ उपलब्ध हो जाते थे। थोड़े में ही पूरी की पूरी व्याकरण-परम्परा छात्रों के मानसपटल पर अंकित हो जाती थी। इसीलिए यागेश्वर पण्डितजी के पास छात्रों की संख्या बड़ी लम्बी होती थी।

ये बड़े अनुशासनप्रिय थे। विद्यार्थियों के ऊपर इनका अनुशासन बड़ी कड़ाई के साथ निबाहा जाता था। शास्त्रीजी दूधविनायक मुहल्ले में रहते थे। उनका आवास-स्थान बड़े विशाल मकान में था जिसमें छात्रों के अध्ययन के साथ ही साथ निवास की भी व्यवस्था थी। बिहार के मुँगेर के राजा की ओर से यह व्यवस्था चालू की गई थी। मकान तीन मञ्जिला था। ऊपर वाले खण्ड में शास्त्रीजी का आवास था। बीच में छात्रों के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था थी और निचले खण्ड में छात्रों के आवास का प्रबन्ध था। शास्त्रीजी ने नियम बना रखा था कि कोई भी छात्र रात में नौ बजे के बाद प्रवेश नहीं कर सकता। यदि विशेष कार्य हो, तो पण्डितजी से लिख कर आज्ञा ले लेना पड़ता था। कभी-कभी छात्रों को देर हो जाती, तो बड़ी विषम समस्या उपस्थित होती थी। उस मकान का दरवाजा खोलते समय बड़ा आवाज करता था जिससे शास्त्रीजी की नींद खुल जाती थी और वह असमय में दरवाजा खोलने का कारण पूछ बैठते थे। ऐसी विषम स्थिति में देर करनेवालों को गड़ारी की मोटी रस्सी से गली से खींचा जाता था और वे खिड़की के रास्ते निर्भय चले जाते थे। यागेश्वर शास्त्रीजी की आज्ञा इतनी कठोर थी कि देर करने वाले छात्रों के प्राणों की रक्षा किसी प्रकार से की जाती थी !!!

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्यपरम्परा

पण्डित यागेश्वर ओझाजी 'पण्डित' शब्द से अभिहित किये जाते थे। इनके छात्रों में एतद्देशीय काशी मण्डल एवं गोरखपुर मण्डल के छात्रों का बाहुल्य तो था ही, साथ ही साथ दाक्षिणात्य छात्रों—तमिल, तेलुगु तथा महाराष्ट्र प्रान्तीय छात्रों—की कमी नहीं थी। वे छात्र पढ़ते समय ही शास्त्रीजी की 'हैमवती' की प्रतिलिपि अपने हाथों से बनाकर अपने साथ देश ले जाते थे। यही कारण है कि शास्त्रीजी की टीका 'हैमवती' के हस्तलेख मद्रास के पुस्तकालय में विशेष रूप से प्राप्त होते हैं।

वीरेश्वर शास्त्री द्राविड़

(आस्पद - द्राविड़, उपाधि—सर्वविद्यानिधान)

इनके प्रधान शिष्यों में **वीरेश्वर शास्त्री द्राविड़** का नाम अग्रगण्य है। द्राविडजी यागेश्वर शास्त्रीजी के पट्टशिष्यों में अन्यतम थे। अध्ययन समाप्ति के अनन्तर वे जयपुर के महाराजा कॉलेज में व्याकरण तथा दर्शन के अध्यापक नियुक्त किये गए थे। वर्ष में वे एक बार गुरुजी के दर्शनों के निमित्त काशी अवश्य आते थे और वह तिथि होती थी गुरुपूर्णिमा की। वे गुरुपूर्णिमा से दो-चार दिनों पूर्व ही आते, पूर्णिमा के दिन गुरुपूजा का आयोजन करते और चार-पाँच दिनों के बाद जयपुर लौट जाते थे। उनका यह नियम अटूट था। आने में देर होती, तो यागेश्वर पण्डितजी उनके घर बार-बार जाते और पूछते—वीरेश्वर आया कि नहीं? बिना शिष्य को देखे गुरु को शान्ति नहीं मिलती। गुरुजी जिस प्रकार शिष्यभक्त थे, शिष्य भी वैसा ही गुरुभक्त था। वीरेश्वरजी की गाड़ी के देर हो जाने पर यागेश्वरजी की व्याकुलता शब्दों के द्वारा प्रकट नहीं की जा सकती थी। इतनी उनकी उत्सुकता होती। इतना उन्हें अपने पट्टशिष्य से मिलने के लिए आतुरता होती।

गुरु की अलौकिक कृपा

एक समय की घटना वीरेश्वर शास्त्रीजी ने लेखक को स्वयं सुनायी थी जो यागेश्वर शास्त्रीजी के आध्यात्मिक चमत्कार का एक महनीय निदर्शन था। एक बार वीरेश्वर शास्त्री गुरुपूजा समाप्त होने के बाद भी कई दिनों तक काशी में ही रुके रहे। लौटने के दिन ही पूर्वाह्न में वे अपने गुरुजी को अन्तिम प्रणाम करने एवं आशीर्वाद लेने के लिए उनके आवास पर पहुँचे। यागेश्वर शास्त्रीजी अपने आराधना कक्ष से निकलकर कुछ क्षण पूर्व ही अपने अध्यापन कक्ष में आकर आसन पर विराजमान हुए थे। शिष्य ने गुरु से अपना मन्तव्य कह सुनाया चरणों में प्रणाम निवेदन किया और आशीर्वाद के लिए प्रार्थना की। उस दिन एक अपूर्व घटना घटी। आशीर्वाद देने के अनन्तर यागेश्वर पण्डितजी ने शिष्य के मस्तक पर अपना करकमल रखकर आशीर्वाद दिया। साथ ही साथ इन्होंने अपने शिष्य के शरीर पर अपना हाथ कई बार फेर दिया। वीरेश्वर शास्त्रीजी का कहना था कि गुरुजी के इस स्पर्श से उनके शरीर में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक प्रकार की बिजली दौड़ गई। मालूम हुआ जैसे उनके शरीर का प्रत्येक कण उद्बुद्ध हो गया है। इस विलक्षण अनुभूति को लेकर वे अपने घर लौटे और जयपुर चले गये। विद्यालय में अध्यापन के समय किसी भी अपरिचित तथा अपठित शास्त्र का भी कोई ग्रन्थ वे पढ़ते, उसकी प्रत्येक पंक्ति कठिन से कठिन भी पंक्ति—अनायास लग जाती थी और ज्ञात होता था कि किसी अवसर पर वह आलोचित हो चुकी है। उसके समझने-बूझने में किसी प्रकार न क्लेश होता था; न कोई आयास। इस प्रकार मीमांसा तथा वेदान्त के चूडान्त ग्रन्थों के भी अभिप्राय और तात्पर्य पठन-मात्र से उनके मानसक्षितिज के ऊपर तैरने लगते थे। वीरेश्वर शास्त्री का गुरुजी से अधीत शास्त्र तो व्याकरण ही था, परन्तु गुरु की अलौकिक कृपा से वे सकल शास्त्र के पण्डित हो गये। हिन्दू विश्वविद्यालय में मीमांसा तथा वेदान्त की आचार्य परीक्षा में वाक्परीक्षा लेते मैंने स्वयं उन्हें देखा है। गुरुकृपा की यह अनहोनी कहानी सुनाते वे कभी अघाते नहीं थे।

ग्रन्थ रचना

श्री यागेश्वर पण्डितजी की एकमात्र रचना है—**हैमवती**, जो परिभाषेन्दुशेखर की विद्वत्तापूर्ण व्याख्या है। पण्डितजी ने इस ग्रन्थ की रचना में बड़ा परिश्रम एवं प्रयास किया था। यह ग्रन्थ तो शास्त्रीजी के जीवन काल में ही प्रकाशित हो गया होता, परन्तु दुर्दैव से ऐसा नहीं हो सका। इसकी पाण्डुलिपि पण्डित वीरेश्वर शास्त्री जी ने अपने हाथ से बनाई थी। उसी के आधार पर लेखक के प्रयत्न से अब यह ग्रन्थ संस्कृत विश्वविद्यालय की ग्रन्थमाला में मुद्रित तथा प्रकाशित हो गया है (१९७५ ई०)।

हैमवती के प्रारम्भ में ही यागेश्वर पण्डितजी ने अपने पूज्य गुरुदेव का स्मरण इस प्रकार किया है—

श्री विष्णुं विधिनारदप्रभृतिभिः संसेविताङ्घ्रिद्वयं
काशीनाथगुरुं समस्तविदुषां धुर्यं सुधीनां वरम्।
ध्यात्वा टिप्पणकृत्-प्रसारित-महामोहान्धकारं मया
सद्यः तर्कमयूखराजिभिरपाकर्तुं पराक्रम्यते॥

इस पद्य की आलोचना करने से तीन तथ्यों का परिचय मिलता है—(क) ये भगवान् विष्णु के उपासक थे; (ख) इनके गुरु काशीनाथजी उस युग के समस्त विद्वानों में मूर्धन्य थे; (ग) इस ग्रन्थ के निर्माण का उद्देश्य है—टिप्पण के द्वारा प्रसारित मोहान्धकार का तर्कों से निराकरण। परिभाषेन्दु के ऊपर इस **'टिप्पण'** का रचयिता कौन विद्वान् था। यह आज भी गवेषणीय है।

'परिभाषेन्दुशेखर' का अध्ययन-अध्यापन इसके रचना काल से ही व्याकरण के छात्रों में आरम्भ हो गया। नागेश अपने विषय के प्रौढ़ विद्वान् थे। दार्शनिक विषयों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में उनकी वैदुषी कम श्लाघनीय नहीं रही। इसीलिए 'परिभाषेन्दुशेखर' के ऊपर 'गदा' नाम्नी टीका के रचयिता वैद्यनाथ ने अनेक परिभाषाओं में पाठ का निर्देश किया है। यागेश्वर शास्त्री के द्वारा स्वीकृत पाठ उससे नितान्त भिन्न हैं। इतना ही नहीं, इन्होंने नागेश के ग्रन्थ के ऊपर अनेक स्थलों को अपनी प्रतिभा के द्वारा 'चिन्त्य' बतला कर अपने उत्कृष्ट पाण्डित्य का परिचय दिया है। 'व्यपदेशिवदेकस्मिन्' (परिभाषा ३०) के ऊपर नागेश के कथन को यागेश्वर ने 'वस्तुतश्चिन्त्यमिदम्' लिखकर अपनी अरुचि दिखलाई है। इसी प्रकार 'अन्तरानपि विधीन् बहिरङ्गो लुग् बाधते' (परिभाषा ५२) के व्याख्या प्रसंग में हैमवतीकार ने नागेश के कथन को 'चिन्त्य' ही माना है। इस प्रकार के हैमवती में विपुल प्रसंग हैं जिनसे यागेश्वर शास्त्री जी का व्याकरण आगम का विशिष्ट वैदुष्य उद्घाटित होता है।[1]

हैमवती—स्वरूप तथा प्रभाव

महामहोपाध्याय तात्याशास्त्री ने परिभाषेन्दुशेखर की अपनी व्याख्या 'भूति' में हैमवती का बहुत कुछ आश्रयण किया है, परन्तु दोनों में अन्तर है। 'भूति' में परिष्कार शैली का प्राधान्य है और 'हैमवती' में प्रक्रिया शैली का, परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि यागेश्वर जी 'परिष्कार पद्धति' का सर्वथा तिरस्कार करते थे। 'अन्तराङ्गादप्यपवादो बलीयान्' (५७ परिभाषा) की व्याख्या के अवसर पर नव्य परिष्कार पद्धति का अवलम्बन करने वाली उनकी भाषाछटा देखने ही योग्य है (द्रष्टव्य २३३ से २३७ पृष्ठ पर्यन्त)। इसी प्रकार की लेखनछटा पृष्ठ २४० पर भी अवलोकनीय है। तात्पर्य यह है कि यागेश्वर शास्त्रीजी परिष्कार पद्धति से पूर्ण परिचय रखते हुए भी अपनी व्याख्या में उसे उपयोगी नहीं मानते थे। हैमवती की महती विशिष्टता तो यह है कि वह नागेश के कथन का प्रत्यक्षर व्याख्यान कर उसके भीतर विद्यमान तात्पर्य की भी विशद व्याख्या करती है जिससे परिभाषेन्दुशेखर का तात्पर्य पण्डितों के हृदय में सद्यः स्फुरित हो। हैमवती सरल सुबोध शब्दों के द्वारा नागेश का आशय प्रकट कर जिज्ञासुजनों का महान् उपकार करती है—यह वैशिष्ट्य निरन्तर अविस्मरणीय रहेगा।

हैमवती का प्रभाव पिछली कोटि के व्याख्याकारों पर देखा जा सकता है। भूतिकार तात्याशास्त्री ने 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे' परिभाषा के व्याख्यान के अवसर पर 'केचित्तु' शब्द द्वारा हैमवतीकार का स्मरण किया है, भूति के टीकाकार गणपति शास्त्री ने स्पष्ट ही लिखा है – 'केचित्तु' इति 'हैमवतीकाराः' (भूति, पृ० १८०), कि यहाँ टीकाकार हैमवती के कर्ता के मत का उपन्यास कर रहा है।

फलतः 'परिभाषेन्दुशेखर' के व्याख्याकारों में यागेश्वर शास्त्री का नाम नवीन कल्पना, मूल ग्रन्थ के रहस्यों के आविष्करण तथा प्रक्रिया शैली के ही द्वारा मूल ग्रन्थ

---

१. ऐसे स्थलों के लिए द्रष्टव्य हैमवती का प्रास्ताविकम् (पृ० घ और ङ)। प्रकाशक निदेशक, अनुसन्धान संस्थान, संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी १९७५ ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की परिनिष्ठित व्याख्या करने के कारण सर्वदा अविस्मरणीय रहेगा। अपने गुरु का मत इन्होंने उद्धृत किया है (पृ० २६२; तदेव नेति गुरुचरणः), परन्तु गुरु का व्याख्यान देखा नहीं गया, इनके सतीर्थ्य बालशास्त्री जी की **सारासार विवेक** नाम्नी परिभाषेन्दु की टिप्पणी अवश्य ही दृष्टिगोचर होती है। पण्डित यागेश्वरजी ने अपनी नम्रता कितने सुन्दर शब्दों में अभिव्यक्त की है—

सभ्यान् प्रणम्य विहिताञ्जलिरस्मि भक्त्या
यागेश्वरोऽनधिगतार्थसुशब्दशास्त्रः।
सत्यं, तथापि पुरुषोत्तमपादपद्म
ध्यानेन लब्धसुमतिर्वितनोमि किञ्चित्॥

रामायण पर दृढ निष्ठा

श्री यागेश्वर शास्त्री जी परम भागवत थे—नैष्ठिक वैष्णव। फलतः उनकी वाल्मीकीय रामायण के ऊपर अगाध श्रद्धा एवं दृढ़ निष्ठा थी। इसके पाठ तथा उपासना द्वारा वे भौतिक आपदाओं के निरस्त करने का उपाय अपने छात्रों एवं जिज्ञासुओं को बतलाया करते थे। एक प्रामाणिक घटना इस विषय की बताई जाती है। "शास्त्री जी के काशिकेय छात्रों में गोपीवल्लभ पन्त नामक एक परम भक्त छात्र था, परन्तु अनपत्यता—सन्तानहीनता—के कारण वह बड़ा दुःखी रहा करता था। उसने अपनी विषम रामकहानी गुरु जी को सुनाई और उनसे इस संकट को दूर करने का उपाय पूछा। शास्त्री जी ने उसे वाल्मीकीय रामायण का २१ नवाह पारायण करने का उपदेश दिया एवं तत्सम्बद्ध विधि-विधान भी बतला दिया। पन्त जी श्रद्धालु शिष्य थे, गुरु के कथन पर उनकी अटूट श्रद्धा थी। उन्होंने बड़े प्रेम और परिश्रम से वाल्मीकि-रामायण का नवाह पारायण आरम्भ किया। पारायण बिना किसी त्रुटि या व्याघात के विधिवत् चलता रहा। जब २० वाँ पारायण समाप्त हुआ और तज्जन्य आकाङ्क्षित फल की सिद्धि का आरम्भिक रूप भी दृष्टिगोचर नहीं हुआ, तब गोपीवल्लभ जी ने हताश होकर गुरु जी के सामने अपने मनोरथ के वैफल्य की आशंका प्रकट की शास्त्री जी ने उनकी आशंका सुनी और विश्वासपूर्ण शब्दों में कहा—घबड़ाने की बात ही क्या? अभी तो अन्तिम पारायण अवशेष ही है। २१ वाँ नवाह विश्वासपूर्वक कर डालो। फल की सिद्धि निश्चित है। गुरुजी के इन वचनों ने शिष्य की डिगती हुई श्रद्धा को टिका दिया। २१ वें पारायण के विधिवत् समाप्त होने की देर थी कि फल सिद्धि के लक्षण सामने आ गये। अब क्या था? गोपीवल्लभ जी की कामना वेलि फलित हुई। उन्हें ठीक समय पर पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई जिसका शास्त्री जी ने राम के प्रसाद रूप होने से 'सीताराम' नाम रखा। वह पुत्र बड़ा ही तेजस्वी, विद्वान् तथा कर्मठ निकला और पुत्र-पौत्रों से सम्पन्न होकर उसने दीर्घ आयुष्य प्राप्त किया।"[१]

१. यह दिव्य संस्मरण शास्त्री जी के ही परिचारक तथा सेवक ज्योतिषाचार्य पण्डित रिसालदत्त पाण्डेय के अग्रज पण्डित रघुनन्दन जी ने लेखक को बताया था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार के कल्याणकारी उपदेश श्री यागेश्वर शास्त्री जी अपने शिष्यों को देकर उनका सार्वत्रिक मंगल किया करते थे, उनकी 'वाक्सिद्धि' चमत्कारजननी थी इसमें संशय का लेश भी न था।

शास्त्रीजी का अध्यात्म-चिन्तन

पण्डित यागेश्वर शास्त्री जी एक भजनानन्दी जीव थे। ये एक खूसट वैयाकरण न थे, प्रत्युत एक रसिक हृदय भगवद्भक्त थे। जब ये अपनी पुत्रवधू की अनुपस्थिति में स्वयं भोजन बनाते, तब इनके मुख से विष्णु सहस्र नाम का अजस्र पाठ चलता रहता। ये अपना एक क्षण भी व्यर्थ जाने नहीं देते। ये इस श्लोक को अपने जीवन का आदर्श वाक्य ही मानते थे। श्लोक इस प्रकार है—

आयुषः क्षण एकोऽपि न लभ्यः शतकोटिभिः।
स चेन्नु व्यर्थतां नीतः का नु हानिस्ततः परा॥

मनुष्य के आयुष्य का एकक्षण भी अरबों रुपयों से भी प्राप्त नहीं हो सकता। यदि वह व्यर्थ हो जाय, तो इससे बड़ी हानि क्या हो सकती है? फलतः ये अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को भगवद् भजन में ही लगाते थे। अध्ययन-अध्यापन, पाठ-पूजा के अतिरिक्त इनके जीवन का कोई ध्येय ही न था। इसीलिए भोजन बनाते समय भी ये या तो अपने छात्रों की शंकाओं का समाधान किया करते अथवा विष्णु सहस्र नाम का निरन्तर पाठ ही किया करते थे। उनके प्रिय शिष्य पण्डित वीरेश्वर शास्त्री का यह प्रतिदिन का अनुभव था। ये नरहरिया नामक एक महाराष्ट्र सन्त के पास इस भजन-पूजन के प्रसंग में जाया करते थे जो उनके प्रौढ़ छात्रों को अच्छा नहीं लगता था। छात्र नहीं चाहते थे कि उनके महनीय गुरुजी एक अल्पज्ञ सन्त के साथ बैठकर अपना समय भजन करते हुए भी बितावें। परन्तु यागेश्वर पण्डितजी की यह दृष्टि नहीं थी। ये तो साधु सन्त को चाहे वह कितना ही अल्पशिक्षित क्यों न हो, क्षुद्र दृष्टि से कभी नहीं देखते थे। काशी में महाराष्ट्र मण्डल के बीच निवास करने से ये मराठी के अच्छे जानकार थे। इसीलिए इनको मराठी सन्तों के पद बड़े ही अच्छे लगते थे जिन्हें गाकर ये उनका आनन्द लिया करते थे। इनके प्रिय भजनों में एक-दो उद्धृत किये जाते हैं। समर्थ स्वामी रामदास के भजन उन्हें बड़े प्रिय थे जिनका उपयोग ये अपने भजन प्रसंग में अवश्य करते थे। रामदास स्वामी के 'मनाचे श्लोक' को बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे।

१

सदा सर्वदा देव सन्निध आहे
कृपालूपणें अल्प धारिष्ट पाहे।
सुखानन्द आनन्द कैवल्यदानी
नुपेक्षी कदा राम दासाभिमानी॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२

मना पाहतां सत्य हे मृत्युभूमी
जितां बोलती सर्व ही जीव मी मी ।
चिरंजीव हे सर्वही मानिताती
अकस्मात साँडूनियां सर्वजाती ।।

३

सदा देवकाजी झिजे देह ज्वाला
सदा रामनामें वदे नित्य वाचा ।
स्वधर्मेचि चाले सदा उत्तमाचा
जगीं धन्य तो दास सर्वोत्तमा चा ।।

४

उभा कल्पवृक्षातलीं दुःख आहे
तया अंतरी सर्वदा तेचि आहे ।
जनीं सज्जनीं बाद हा बाढवावा
पुढें मागुता शोक जीवीं धरावा ।।

अन्तिम छन्द का आशय है कि यदि कल्पवृक्ष के तले जाकर कोई दुःख की ही कामना करता है, तो कल्पवृक्ष दाता ठहरा, वही दुःख वह देगा। सज्जनों के साथ रहकर वादविवाद करने वाले जीव को शोक ही मिलेगा, आनन्द नहीं।

संस्कृत की यह भक्तिमयी अष्टपदी यागेश्वर पण्डितजी को अत्यन्त प्रिय थी। ये इसका भजन बड़े भक्ति-विह्वल कण्ठ से किया करते थे। अष्टपदी बड़ी ही सरस तथा मधुर है।

जय जय राम जयासुरसूदन
जय माधव जय विष्णो ।
जय लक्ष्मीमुख - कमल - मधुव्रत
जय दशकन्धर – जिष्णो ।।१।।

हर मम नरकरिपो ! मधुसूदन
केशव कल्मषभारम् ।
मामनुकम्पय दीनमनाथं
कुरु भवसागर - पारम् ।।२।।

त्वं जननी जनकः प्रभुरच्युत
त्वं च सुहृत् कुलमित्रम् ।
त्वं शरणं शरणागत - वत्सल
त्वं भव - जलधि - वहित्रम् ।।३।।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपराधं मुरहर परिहर मे
कुरु ते चरणं शरणम् ।
संसाराणर्वतरणे करुणा—
वरुणालय ! भव शरणम् ॥४॥

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं
पुनरपि गर्भनिवासम् ।
सोढुमलं भवभीतिविभंजन !
मामुद्धर निजदासम् ॥५॥

पूर्वं सकलमहं नूहरे हे
कलयामीदमतत्त्वम् ।
सर्वं मुञ्चति मामिह सम्प्रति
पुत्रकलत्रममत्वम् ॥६॥

जय नारायण जय पुरुषोत्तम
जय वामन कंसारे ।
उद्धर मामसुरेशविनाशन !
पतितं हतसंसारे ॥७॥

जय दामोदर दुरितनिवारण
अपनय भवभयमोहम् ।
भक्तजनप्रिय पङ्कजलोचन
नारायण ! दासोऽहम् ॥८॥

जनकसुता पति – चरणपरायण-
नारदकृतमिति गीतम् ।
तारय नाथ ! परम ! पुरुषोत्तम
माधव ! जन्म सुनीतम् ॥

●

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६

श्री शिवकुमार शास्त्री

(आस्पद— मिश्र; उपाधि— महामहोपाध्याय एवं अत्रैव विद्यारसः')

सन् १९१४ के अक्टूबर की सन्ध्या। उत्तर-प्रदेश में बलिया का रेलवे स्टेशन। जनता की अपार भीड़। नगर के प्रमुख व्यक्ति, धनी-मानी जनों के बीच उपस्थित थे शिक्षा संस्थाओं से सम्बद्ध अधिकारी, संस्कृत पाठशालाओं के शिक्षक तथा शिक्षार्थी। पूछने पर पता चलता है कि काशी के किसी विद्वान् के अभिनन्दन के निमित्त यह समारोह जुटा है। इतने में ही रेलगाड़ी तेज सीटी के साथ स्टेशन के प्लेट फार्म पर आ पहुँचती है। स्वागत के लिए उपस्थित व्यक्तियों में पण्डित शिवानन्द मिश्र जी (जो आगे चलकर 'महामहोपाध्याय' की महनीय पदवी से अलंकृत किये गये) सबके आगे जा रहे हैं। गाड़ी का डब्बा खुलता है और उसमें से शिशिष्ट अतिथि उतरते हैं। उनका वेश देखने ही योग्य है—परम सुन्दर तथा आकर्षक। उनकी किञ्चित् स्थूल देह-यष्टि पर विराजमान है मलमल की सफेद बगलबन्दी तथा धवल दुपट्टा और माथे पर एक लम्बी-चौड़ी पगड़ी जो उनके व्यक्तित्व को आकर्षक बनाकर दर्शकों के नेत्रों को अपनी ओर बलात् खींच रही है। ये ही महानुभाव हैं काशी की विद्वन्मण्डली के अलंकार स्वरूप निखिल शास्त्रनिष्णात महामहोपाध्याय पण्डित शिवकुमार शास्त्री। यही है मेरा शास्त्री जी का दिव्य दर्शन।

बलिया में उस वर्ष सरयूपारीण ब्राह्मण सभा का अधिवेशन हो रहा था और उसी में अध्यक्ष के रूप में शास्त्री जी का आगमन हुआ था। मुझे अच्छी तरह याद है—शास्त्री जी ने अध्यक्षीय भाषण में छात्रों के लिए सन्ध्यावन्दन तथा वेदपाठ पर विशेष बल दिया था। उनका कहना था कि समग्र द्विजों के लिए—ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों के लिए—त्रिकाल नहीं तो द्विकाल सन्ध्या की उपासना करना नितान्त आवश्यक है। सन्ध्यावन्दन बुद्धि को सात्त्विक तथा सूक्ष्मग्राहिणी बना कर अध्यात्म ज्ञान का मार्ग उन्मुक्त करता है। सभा का अधिवेशन विशेष सफल रहा।

इस घटना से दो-तीन वर्ष पूर्व ही मुझे शास्त्री जी के दर्शन करने का सुयोग काशी में ही प्राप्त हुआ था। उस समय बाँस के फाटक मुहल्ले में काशी की प्रमुख नाटचशाला थी और इसी में पण्डित सभा का आयोजन हुआ था पण्डित शिवकुमार शास्त्री जी की अध्यक्षता में। सभा चल रही थी कि कहीं से महामना मालवीय जी भी आकर उपस्थित हो गये। मालवीय जी को बोलने के लिए आग्रह करते उन्होंने नैषध का यह सुन्दर श्लोक कह सुनाया—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुलं च शीलं च बलं च यूनां
जानासि नानाभुवनागतानाम् ।
एषामतस्त्वं भव वावदूका
मूकायितुं कः समयस्तवायम् ॥

(नैषध १०।७०)

दमयन्ती के स्वयंवर में भगवती सरस्वती के अकस्मात् उपस्थित होने पर विष्णु भगवान् ने इसी पद्य के द्वारा उनसे राजाओं के गुणों के वर्णन के लिए आग्रह किया कि तुम नाना भुवनों से आनेवाले राजाओं के कुल, शील तथा बल को यथार्थतः जानती हो। अतः तुम उनके वर्णन करने के लिये अग्रसर बनो। तुम्हारे मूक होने का यह अवसर नहीं है। मैं भी मालवीय जी से कहता हूँ - यह उनके मूक होने का अवसर नहीं, क्योंकि वे नाना शास्त्रों के तथ्यों के ज्ञाता हैं और उनके यथार्थ वर्णन करने में वे पूर्ण अधिकारी हैं।

मालवीय महाराज ने अपनी अमृत वाणी से श्रोताओं को तृप्त कर दिया तथा भाषण के अनन्तर वे सभा से चले गये। पण्डितों को शास्त्री जी के द्वारा नैषधीय श्लोक के उद्धरण देने पर महान् आश्चर्य हुआ। लेखक ने अपने पितृव्य पण्डित रामउदित उपाध्यायजी (प्रिन्सिपल, जुबिली संस्कृत कालेज, बलिया) को इन शब्दों में अपनी भावना प्रकट करते हुए सुना—"हम लोग तो यही जानते थे कि शिवकुमार पण्डित जी व्याकरण तथा वेदान्त के ही मर्मज्ञ विद्वान् हैं, परन्तु आज नैषध के इस उद्धरण को सुन कर हमें साश्चर्य आनन्द हो रहा है कि पण्डित जी साहित्य के भी गम्भीर विद्वान् हैं। सच है, पूज्यपाद शिवकुमार पण्डितजी का चतुरस्र पाण्डित्य है—क्या साहित्य और क्या व्याकरण ? सर्वत्र उनकी अबाध गति है।"

तीसरा तथा अन्तिम दर्शन लेखक ने १९१७-१८ ई० में किया था जब वे सेन्ट्रल हिन्दू कालेज के परिसर में विद्यमान शर्मा हाल में विद्वत्परिषत् (हिन्दू विश्वविद्यालय की कोर्ट की मीटिंग) में विशिष्ट सभासद के रूप में पधारे थे। पण्डित जी उस समय बहुत रुग्ण थे, परन्तु मालवीय महाराज का आग्रह था कि वे कोर्टमीटिंग में स्वयं उपस्थित होकर हमें आशीर्वाद दें। महामना शास्त्रीजी पर अपार श्रद्धा रखते थे और शास्त्री जी भी मालवीय के श्रद्धालु प्रशंसक थे। फलतः रुग्णावस्था में भी उन्हें मालवीय जी का आग्रह स्वीकारना पड़ा। उस समय शास्त्री जी पालकी पर आये थे और उनकी अगवानी के लिए मालवीय जी स्वयं पालकी के संग तेज कदमों से चल रहे थे। सभा में पहुँचने पर मालवीय जी ने विश्वविद्यालय के कल्याण के लिए आशीर्वाद के लिए शास्त्री जी से प्रार्थना की और शास्त्री जी ने बड़े ही मधुर तथा उदात्त वचनों से अपना आशीर्वाद कह सुनाया। उन्हें सुनकर पूरी सभा के साथ मालवीय जी ने अपने को धन्य तथा अहोभाग्य माना।

× × ×

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क) जीवनचरित

पण्डित शिवकुमार शास्त्री का जन्म वाराणसी जिले के उन्दी नामक ग्राम में हुआ। उस दिन विक्रमी संवत् १९०४ (= १८५७ ई०) की फाल्गुन मास की कृष्ण एकादशी की पवित्र तिथि थी। इनका जन्म मध्यम कोटि के एक सरयूपारीण ब्राह्मण कुल में हुआ था। पिता का नाम था पण्डित रामसेवक मिश्र और माता का श्रीमती मतिरानी देवी। रामसेवकजी सामान्य कोटि के कुछ पढ़े-लिखे ब्राह्मण थे; परन्तु अपत्य-वैधुर्य के कारण नितान्त दुःख तथा क्लेश में अपने दिन बिताते थे। बात यह थी कि उन्हें जीवित पुत्र के मुख देखने का सौभाग्य प्राप्त न था। पुत्र होता था, परन्तु वह मरा ही पैदा होता था। इसी दुःख के निवारण के लिए उन्होंने अपने पूज्य कुलगुरु के उपदेश की कामना की।

गुरुजी ने प्रसन्न होकर उन्हें एक विशिष्ट व्रत का उपदेश दिया। वह विशिष्ट इस प्रकार था—पहिले किसी कपिला गाय को गेहूँ खिलाया जाय और जब वह गोबर करे, तब उसमें से गेहूँ निकाल कर साफ कर दे और उसी के बने आटे का प्रयोग प्रत्येक प्रदोष व्रत के दिन करे। इसी का विधान गुरुजी ने उन्हें बताया।

रामसेवक मिश्र ने अपने गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य कर स्वयं शिव की आराधना तथा पूजा प्रारम्भ कर दी एवं अपनी पत्नी को गो-सेवा-व्रत करने का आदेश दिया। पति-पत्नी की एकान्त साधना एवं आराधना से भगवान् आशुतोष ने अपने नाम को सार्थक किया और शिव की कृपा से मिश्रजी को पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई। भगवान् शिव की पूजा से ही यह पुत्र प्राप्त हुआ था। अतः पिता ने पुत्र का नामकरण 'शिव-कुमार' कर दिया जो उचित और सार्थक था।

जब यह पुत्र-रत्न पैदा हुआ तब उसके शरीर पर भगवान् शिव के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे। उसके ललाट पर चन्द्रमा एवं त्रिपुण्ड, जिह्वा पर त्रिशूल और ग्रीवा में शिव के नीलकण्ठत्व की कालिमा विराजमान थी। ऐसे विचित्र लक्षणों से युक्त पुत्र को देखकर घर तथा परिवार के लोग कुछ आश्चर्य में पड़ गये और उसे त्यागने का विचार करने लगे। परन्तु पिता के यह आश्वासन देने पर कि गुरु के आशीर्वाद के अनुरूप ही यह पुत्र शिव के अंश से पैदा हुआ है, लोगों का कौतूहल शान्त हो गया और उन्होंने उसका यथाविधि स्वागत किया।

पण्डित रामसेवक मिश्र की यह बड़ी उत्कट अभिलाषा थी कि शिव की दीर्घ आराधना से प्राप्त यह पुत्र यशस्वी एवं विद्वान् बने। वास्तव में उनकी यह कामना फलवती सिद्ध हुई; परन्तु वे अपने पुत्र का यशोगान सुनने के लिए अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सके। जब बालक शिवकुमार केवल तीन वर्ष का था तभी उसके पिता का देहावसान हो गया। उसके सिर से पिता की छत्रच्छाया सदा के लिए उठ गयी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'। शिवकुमार ने पाँच वर्ष की अवस्था में ही अपनी विलक्षणता का परिचय देना प्रारम्भ कर दिया। इस अल्प अवस्था में ही वह घर से बाहर जाकर बालू को इकट्ठा कर उसकी पिण्डी बनाता और पार्थिव पूजा का प्रयास करता। इस प्रकार भगवान् शिव की पूजा के प्रति इसकी प्रवृत्ति बाल्यावस्था से ही दिखाई पड़ने लगी और यह बालक अपने बाल्यकालीन व्यवहारों तथा आचरणों से भी अपने 'शिवकुमार' नाम को सार्थक करने लगा।

अध्ययन

शिवकुमार जी के चाचाजी विहार प्रदेश में स्थित भूतपूर्व बेतिया राज में नौकरी करते थे। अतः ६ वर्ष की अवस्था में वे बालक शिवकुमार को अध्ययन के लिए अपने साथ बेतिया लिवा ले गये जहाँ ये पण्डित वाणीदत्त चतुर्वेदी नामक गुरु से विद्याध्ययन करने लगे। परन्तु अध्ययन का क्रम अधिक दिनों तक नहीं चल सका और किसी कारणवश शिवकुमार को पुनः अपने गाँव लौट आना पड़ा। ये घर लौट तो आये, परन्तु अपनी ज्ञान-पिपासा की तृप्ति के लिए इनका मन छटपटा रहा था। परन्तु इनके चाचा ने इन्हें भैंस चराने का काम सुपुर्द किया था। उनकी आज्ञा थी कि ये प्रतिदिन मैदान में जाकर भैंसों को चराया करें परन्तु इनका मन इस काम में लगता नहीं था। भैंसों को खेतों में चराने के लिए अवश्य ले जाते थे, परन्तु एकान्त में बैठकर स्वयं कुछ चिन्तन किया करते थे। इसी दुविधा की स्थिति में इनके दिन बीतने लगे।

शिवकुमार जी पण्डितों के घराने में पैदा हुए थे। अतः इनके गृह में संस्कृत की पुस्तकों का भाण्डार भरा हुआ था। इन्होंने अपनी इसी पिपठिषा की शान्ति के लिए पुस्तकों का अध्ययन शुरू कर दिया। इनका पठनशील मन दूसरे कामों में नहीं लगता था। स्वाध्याय ही इनका एकमात्र व्यसन था।

परन्तु शिवकुमार जी के जीवन के ग्यारहवें वर्ष में एक ऐसी घटना घटी जिससे इनके जीवन की धारा ही बदल गयी। ये अपने चाचाजी की आज्ञा के विरुद्ध घर में लुक-छिप कर अध्ययन किया करते थे। परन्तु एक दिन इनके चाचा ने, जिन्होंने इन्हें भैंस चराने का काम दिया था, इन्हें पकड़ ही तो लिया और इस "दुष्कर्म" के लिए इन्हें बहुत ही पीटा। चाचा ने व्यङ्ग्य करते हुए कहा कि क्या इन पुस्तकों को पढ़कर तुम बृहस्पति बनोगे अथवा वाचस्पति ? क्या पाणिनि बनने की कामना है अथवा पतञ्जलि बनना है ? इस प्रकार उन्होंने अपने वाग्बाणों से मर्मान्तिक प्रहार करने के साथ ही शारीरिक पीड़ा भी प्रदान की। बिचारे उस चाचा को क्या पता था कि यह बालक अपनी प्रखर प्रतिभा और प्रकाण्ड पांडित्य से एक दिन भारतवर्ष में अपनी कीर्ति-पताका को फहराएगा तथा अपने वंश के यश को प्रसारित करगा।

ऐसा कहा गया है कि बुराई में ही भलाई के बीज निहित रहते हैं। नीले आकाश में स्वच्छन्द विचरने वाले जो बादल अपने गर्जन-तर्जन एवं उपल की वृष्टि से घोर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कष्ट प्रदान करते हैं, वे ही अपनी पीयूष धारा से पृथ्वी को सींचकर उसे शस्य-श्यामला भी बना देते हैं। अभिभावकों का जो ताड़न छात्रों के लिए अध्ययन के प्रति विरक्ति का कारण बन जाता है वही शिवकुमार जी के लिए वरदान सिद्ध हो गया। इस ताड़न से विद्याध्ययन से विरक्ति के स्थान पर इनकी अनुरक्ति और भी अधिक बढ़ गई और इन्होंने यह भीष्म प्रतिज्ञा की कि जिस शुभ एवं उचित कार्य के लिए इतनी ताड़ना प्राप्त की है उसे अवश्य ही सम्पादित करूँगा।

जिस प्रकार भगवान् तथागत ने संसार की पीड़ा से व्यथित होकर जनता के "दुःख-त्रयाभिघात" लिए तथा ज्ञान की प्राप्ति के हेतु 'महाभिनिष्क्रमण" किया था, उसी प्रकार शिवकुमार जी ने अपने पितृव्य की ताड़ना के त्रास से त्राण पाने के लिए एवं विद्या अर्जित करने के लिए अपने घर से अभिनिष्क्रमण किया। घर को छोड़ते समय इनकी वृद्धा तथा विधवा माता ने इन्हें बहुत समझाया कि मुझे छोड़कर काशी मत जाओ परन्तु अपने अभिलषित पदार्थ की प्राप्ति के लिए जिसने अपना मन स्थिर कर लिया है भला उसे कौन विचलित कर सकता है? महाकवि कालिदास जी ने ठीक ही कहा है :—

क ईप्सितार्थस्थिर-निश्चयं मनः,
पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत्॥

कठोर अनुशासनप्रिय पितृव्य तथा पुत्रवत्सला माता के घर न छोड़ने के आग्रह की अवज्ञा करते हुए, दृढ़निश्चयी शिवकुमार जी विद्याध्ययन के लिए घर से सदा के लिए निकल पड़े और पुनः जीवन पर्यन्त घर लौटकर नहीं गये। सकल शास्त्रों का अध्ययन करने तथा अनन्त कीर्ति प्राप्त करने के पश्चात् भी ये पुनः अपने गाँव लौटकर कभी नहीं गये, यद्यपि बहुत से लोगों ने इसके लिए इनसे बार-बार आग्रह किया था।

पण्डित शिवकुमार मिश्र जी चौदह वर्ष के वय में काशी पढ़ने के लिए चले आये और काशीस्थ राजकीय संस्कृत महाविद्यालय में प्रविष्ट होकर व्याकरणाध्यापक सुल्तानपुर के निवासी **दुर्गादत्त पण्डित** से लघुकौमुदी पढ़ना आरम्भ किया। तिङन्त-प्रकरण के एध् वृद्धौ धातु से ही पाठ आरम्भ हुआ। एध् धातु का अर्थ है वृद्धि। शिवकुमार जी का दृढ़ विश्वास था कि वृद्ध्यर्थक धातु से पाठारम्भ होने से उसी समय से आरम्भ कर उनकी वृद्धि की सूत्रपात हुआ।

उस समय काशी से तीन कोस की दूरी पर किसी गाँव में ये रहते थे। वहीं से प्रतिदिन आते थे और गंगास्नान करते तथा भगवान् विश्वनाथ का उसी गंगाजल से अभिषेक करते। विद्यालय में अध्ययन कर सायंकाल घर लौटते थे। इस दिनचर्या में उस समय भी व्याघात नहीं होता था। साढ़े चार साल के लघु समय में ही इन्होंने परिष्कारान्त व्याकरण का अध्ययन विधिवत् कर लिया। अनन्तर उसी विद्यालय के न्यायाध्यापक **श्रीकालीप्रसाद शिरोमणि** नामक वंगदेशीय नैयायिक से हेत्वाभासान्त न्याय का अनुशीलन कर नव्य न्याय में अलौकिक व्युत्पत्ति प्राप्त कर ली। पण्डित-समाज

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में लब्धकीर्ति दार्शनिक प्रवर पण्डित **गणेश श्रौती** से इन्होंने 'खण्डनखण्डखाद्य' का तथा विशुद्धानन्द सरस्वती से 'अद्वैत सिद्धि' तथा पूर्वमीमांसा दर्शन का गम्भीर अध्ययन किया।

छात्रावस्था में ही इनकी शास्त्रव्युत्पत्तिजन्य प्रतिभा के प्रसाद की कीर्ति विद्यालय के अध्यापकगणों में व्याप्त हो गई थी। प्रसिद्ध बालशास्त्री जी की दृष्टि को शिवकुमारजी ने अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। प्रसन्न होकर बालशास्त्री ने इनसे कहा—"वत्स शिवकुमार, मैं तुम्हारी विलक्षण प्रतिभा को एवं शास्त्रों में गाढ अनुराग को देख रहा हूँ। यदि हमारे गुरु पण्डित **राजाराम शास्त्री** जी से भी तुम कुछ अध्ययन कर लेते, तो बड़ा कल्याण होता।" शिवकुमारजी ने तुरन्त उत्तर दिया–"गुरुजी तो बहुत वृद्ध हो चुके हैं। यदि आप ही मुझे अपने पास अध्ययन का सुअवसर देते, तो मैं अपने को धन्य समझता।" तदनन्तर बालशास्त्री ने इन्हें अपना अन्तेवासी बनाया। कुशाग्र बुद्धि से गम्य गम्भीर परिष्कारों का तथा शब्दखण्ड में व्युत्पत्तिवाद एवं शक्तिवाद विषयों का शिवकुमारजी ने बालशास्त्री से विधिवत् अध्ययन किया और इसके लिए वे उनका आभार सर्वदा मानते थे। शिवकुमार पण्डितजी की प्रतिभा इतनी अलौकिक थी एवं शास्त्रों के अन्तराल में प्रवेश करने की शेमुषी इतनी चमत्कारिणी थी कि गुरुमुख से अधीत पारम्परिक विद्या में इन्होंने एक नवीन उन्मेष उत्पन्न कर दिया। फलतः प्रतिभा तथा परिश्रम, त्याग तथा तपस्या के बल से इन्होंने चतुरस्र पाण्डित्य का अर्जन कर लिया।

अध्यापन

अध्ययन समाप्त होते ही शास्त्रीजी को अध्यापन का सुयोग प्राप्त हुआ। ये संस्कृत कालेज में व्याकरण शास्त्र के अध्यापक पद पर नियुक्त किये गये। ये केवल चार वर्षों तक इस पद पर विराजमान रहे (१८७५ ई० से लेकर १८७९ ई० तक)। इसी काल में इन्होंने सैकड़ों छात्रों को मुक्तहस्त से विद्यादान दिया और एतज्जन्य इनकी कीर्ति चारों ओर फैल गई। परन्तु सम्भवतः कतिपय विद्यालयीय अध्यापकों के कुचक्र से इन्हें अपनी नौकरी छोड़नी पड़ी। इन्हें आभास हो गया कि संस्कृत कालेज में रहते हुए इनकी विद्या के विशेष प्रसार का अवसर नहीं मिलेगा और न तो इन्हें अपनी प्रतिभा के प्रदर्शन का ही सुयोग प्राप्त होगा। उस समय पाठशाला के अध्यक्ष 'राइट्' नामक साहब थे। इन्हीं के समय में इन्होंने अपने पद से सदा के लिए छुट्टी पा ली और स्वतन्त्र हो गये।

शास्त्रीजी को अपनी जीविका के लिए चिन्ता करना स्वाभाविक था। काशी के ही किसी धनाढ्य सेठ की बारात में वरपक्ष की ओर से ये दरभंगा गये और वहीं तत्कालीन दरभंगानरेश श्री लक्ष्मीश्वर सिंह के दरबार में उपस्थित होकर नाना रमणीय पद्यों से उनकी स्तुति की तथा पण्डितों से शास्त्रार्थ करने में भी इन्होंने अपने लोकातीत वैदुष्य का परिचय दिया। गुणग्राही राजा लक्ष्मीश्वर सिंह बड़े ही प्रसन्न

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए और उन्होंने शास्त्रीजी को अपने राजकीय विद्यालय में अध्यापक नियुक्त किया जहाँ पण्डितजी परिवार के साथ कुछ दिन रहे भी थे, परन्तु उनका चित्त काशी विश्वनाथ के इस आकस्मिक वियोग से नितान्त दुःखित रहता था। एक नवीन घटना से शास्त्रीजी का उद्वेग शान्त हो गया।

दरभंगा पाठशाला की स्थापना

राजा लक्ष्मीश्वर सिंह जी ने उस युग के प्रकृष्ट विद्वान् श्री विशुद्धानन्द सरस्वती को पाँच सौ रुपया प्रतिमास खर्च के लिए देने का प्रस्ताव किया, परन्तु विरक्तों के सम्राट् स्वामीजी ने प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया और आदेश दिया कि उस द्रव्य का उपयोग काशी में ही संस्कृत विद्यालय खोलने में किया जाय जिससे अनेक पण्डितों को वृत्ति-लाभ होगा और छात्रों को विद्यालाभ का अवसर मिलेगा। फलतः दरभंगा-नरेश ने काशी में **'दरभंगा पाठशाला'** की स्थापना की और शिवकुमारजी की अभिलाषा को चरितार्थ करते हुए इन्हें ही इस पाठशाला का अध्यक्ष बनाया। शास्त्रीजी यावज्जीवन इसी पाठशाले में पचास रुपये का वेतन लेकर सैकड़ों छात्रों का नाना शास्त्रों का अध्यापन करते थे। उस समय, गत शताब्दी के अन्तिम चरण में—यह विद्यालय काशी का गौरव था जहाँ महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी, म० म० तात्या-शास्त्री तथा म० म० प्रमथनाथ तर्करत्न जैसे विद्वद्रत्न अध्यापन करते थे। यह पण्डितत्रयी तो आगे अन्यत्र भी चली गई, परन्तु **सीताराम शास्त्री** जैसे विचक्षण नैयायिक ने आजीवन इस पाठशाला की सेवा की। पं० सीताराम शास्त्री बड़े विद्वान् तार्किक एवं प्रौढ़ नैयायिक थे। सुनते हैं कि वे शक्ति के महनीय उपासक परम शाक्त थे। ऐसे प्रख्यात अध्यापकों के द्वारा अध्यापित छात्र वैदुषी-सम्पन्न होकर अपने प्रान्त में लौटते थे और विद्यालय की कीर्ति का विस्तार करते थे। मिथिला के उत्साही पण्डितों को शिवकुमारजी से अध्ययन करने का अवसर यहीं प्राप्त हुआ और शास्त्रीजी को छोड़कर मैथिल छात्रों ने न कहीं विद्या पढ़ी और न किसी को अपना गुरु माना। ऐसी निष्ठा थी मैथिल छात्रों की शिवकुमार पण्डितजी के प्रति।

लक्ष्मीश्वर सिंह के निधन के उपरान्त उनके अनुज श्री **रमेश्वर सिंह** दरभंगा की राजगद्दी पर बैठे। उन्होंने शास्त्रीजी का वेतन पचास से पचहत्तर रुपये कर दिया और सन्तुष्टचेता शिवकुमारजी इसी वृत्ति पर यावज्जीवन इस विद्यालय में अध्यापन करते रहे। लार्ड कर्जन के स्वागत के निमित्त शास्त्रीजी कलकत्ते बुलाये गये, वहाँ इनका बड़ा सत्कार हुआ और कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रख्यातनामा कुलपति श्री आशुतोष मुकर्जी ने उसी समय प्रथमनाथ तर्करत्न के द्वारा संस्कृत कालेज में पाँच सौ रुपया प्रतिमास वेतन पर अध्यापन करने का निमन्त्रण भी दिया, परन्तु त्यागवृत्ति शास्त्रीजी ने उसे अस्वीकार कर दिया। ऐसा था उनका त्याग और ऐसी थी उनकी काशी विश्वनाथ के चरणों में गाढ़ अनुरक्ति!!!

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिनचर्या

पण्डित शिवकुमार शास्त्रीजी की दिनचर्या अध्ययन-अध्यापन, जप-पूजा के सम्पादन की ही एक मनोरम कहानी है। शास्त्रीजी प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त में उठ जाते थे और सूर्योदय के पहले ही भगवती गंगा के किनारे पहुँचते थे। मणिकर्णिका घाट अथवा ललिता घाट—दोनों में से किसी एक घाट पर स्नान करते थे। स्नान-सन्ध्या करने के अनन्तर ये सीधे अपने विद्यालय–दरभंगा पाठशाला में पहुँच जाते थे। दाहिने हाथ में विराजता था गंगाजमुनी कमण्डलु और बायें कन्धे पर रहता था गंगा-जल से पूर्ण बड़ा ताम्रकलश। इन दोनों का उपयोग बाबा विश्वनाथ के स्नान कराने में किया जाता, परन्तु अभी तो प्रातःकाल में ही लगने वाली अपनी पाठशाला में इन दोनों को यथास्थान रखकर शास्त्रीजी छात्रों के अध्यापन में लग जाते थे। दस-साढ़े दस बजे पाठशाला बन्द हो जाती थी, तब शास्त्रीजी इन दोनों पात्रों को लेकर भूतभावन विश्वनाथजी के मन्दिर में जाकर मन्त्रोच्चारपूर्वक उन्हें स्नान कराते थे। तदनन्तर ये मध्याह्न स्नान तथा सन्ध्या के लिए दशाश्वमेध घाट पर उतरते थे। स्नानादिकृत्य से निवृत्त होकर दोनों जलपात्रों को पूर्ववत् धारण कर अपने आवास-स्थान रेशम कटरा में जाते थे। वहाँ अनेक विद्वान् शास्त्रचर्चा तथा विद्याभ्यास के निमित्त पहिले से ही उपस्थित रहते। शास्त्रीजी उसी गंगाजल से नर्मदेश्वर का अभिषेक करते थे। सौभाग्यवश भगवान् नर्मदेश्वर की वह मूर्ति उनके पौत्र के पास है जिसकी पूजा परिवार में आज भी विधिवत् होती है।

अभिषेक के अनन्तर दो-ढाई बजे के लगभग शास्त्रीजी भोजन करते थे और थोड़ा आराम-विश्राम करने के बाद उपस्थित विद्वानों के साथ शास्त्रचर्चा का प्रवाह चल पड़ता था। किसी को वेदान्त पढ़ाते, तो किसी से धर्मशास्त्र के गम्भीर विषयों का शास्त्रार्थ छिड़ जाता था। कहीं धार्मिक व्यवस्था देने का प्रसंग होता, तो वह भी इसी समय निपटाया जाता। शास्त्रीजी अपने हाथों व्यवस्था आदि कम लिखते थे। ये बोलकर ही बहुधा लिखवाया करते थे। सन्ध्या समय पूजन-पाठ, रात्रि में फिर शास्त्रचर्चा और अन्त में विश्राम और शयन। शिवकुमार पण्डितजी की यह दिनचर्या थी। इन नियमों में कभी परिवर्तन नहीं होता था। मुझे याद है, जब शास्त्रीजी शिवानन्द मिश्रजी के आग्रह पर बलिया पधारे थे, तब उन्हें भृगुजी के मन्दिर के पास ही टिकाया गया था और वहाँ भी उनका पूर्वोक्त अर्चन-पूजन का कार्यक्रम निर्बाध चलता था।

शास्त्रार्थपटुता

श्री शिवकुमार शास्त्रीजी दार्शनिक दृष्टि से अद्वैतवादी वेदान्ती थे। फलतः अपने पक्ष के मण्डन के निमित्त ये द्वैतवादियों पर गाढ़ प्रहार कर उन्हें परास्त करने की अद्भुत क्षमता रखते थे। म० म० कैलाशचन्द्र शिरोमणि की मध्यस्थता में इन्होंने पण्डित **रामधन पञ्चानन** के द्वैतमत का पुंखानुपुंख खण्डन कर उन्हें परास्त किया था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैंतीस वर्ष के वय में काश्मीर महाराज के आश्रित म० म० रासमोहन सार्वभौम को शास्त्रार्थ-विचार में इनसे पराजित होना पड़ा था। 'श्रीनाथ द्वारा' पीठाधिपति श्री गोवर्धनलाल महाराज के सामने भारतमार्तण्ड श्री गद्दूलाल के साथ शास्त्रीजी का तुमुल शास्त्रार्थ हुआ जिसमें प्रतिपक्षी के विशिष्टाद्वैत मत की इन्होंने धज्जियाँ उड़ाकर उन्हें परास्त किया था। इनके वैदुष्य का चमत्कार शास्त्रार्थ में देखकर पण्डित-मण्डली चमत्कृत हो जाती थी। म० म० पण्डित **राखालदास न्यायरत्न** पर पण्डितजी की बड़ी श्रद्धा थी और ये उन्हें गुरु के समान ही मानते थे। अद्वैतवादी वेदान्ती होने पर भी गंगेश के 'तत्त्वचिन्तामणि' के ऊपर शास्त्रीजी का बड़ा आदर भाव था।

सम्मान एवं सत्कार

कलकत्ता के प्रख्यात विद्वान् म० म० महेशचन्द्र न्यायरत्न ने म० म० यादवेश्वर तर्करत्न के साथ इनके आवास पर आकर शास्त्रीजी का दर्शन किया और इनकी विद्वत्ता से इतने प्रभावित हुए कि उनकी प्रकृष्ट संस्तुति पर शास्त्री जी को 'महामहोपाध्याय' की पदवी अंग्रेजी सरकार से प्राप्त हुई। शृंगेरी मठ के शंकराचार्य ने 'सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र पण्डितराज' की पदवी तथा उससे अंकित सुवर्णपदक को बहुमान के साथ इन्हें अर्पित किया था। बामरा के राजा ने 'अत्रैव विद्यारसः' की उपाधि तथा तदङ्कित सुवर्णपदक देकर शास्त्री जी के प्रति अपनी श्रद्धा अभिव्यक्त की थी। कलकत्ता की कान्यकुब्ज सभा ने 'विद्यामार्तण्ड' की उपाधि सम्मानपुरःसर प्रदान की थी। चतुरस्र पाण्डित्य से मण्डित होने के कारण म० म० शिवकुमार शास्त्री काशी में सबसे बड़े प्रकृष्टतम पण्डित माने जाते थे और इसलिए धर्म के विषय में इनकी व्यवस्था का सर्वत्र आदर होता था और इनका निर्णय अकाट्य माना जाता था।

सन् १९१२ ई० दिल्ली में सम्राट् पंचम जार्ज के राज्यभिषेक के लिए जो दरबार आयोजित किया गया था उसमें महामहोपाध्याय पण्डित शिवकुमार शास्त्री भी सम्मिलित हुए थे। तत्कालीन काशीनरेश महाराजा प्रभुनारायण सिंह जी इन्हें अपने साथ काशी के पण्डितों के प्रतिनिधि के रूप में दिल्ली ले गये थे। इसी से शास्त्री जी का महत्त्व समझा जा सकता है।

सन् १९१३ ई० में बलिया में आयोजित सनातन धर्म सभा ने इन्हें अपना अध्यक्ष निर्वाचित कर स्वयं अपने को ही गौरवान्वित किया था। शास्त्री जी हिन्दू विश्व विद्यालय, काशी की विद्वत्परिषत् (कोर्ट) के एक सन्माननीय सदस्य थे और महामना मालवीय जी महाराज इनका बड़ा ही सम्मान करते थे।

व्यवस्था का आदर

पण्डित शिवकुमार शास्त्री के प्रकाण्ड पाण्डित्य और विद्वत्ता की धाक, काशी ही नहीं; बल्कि तत्कालीन संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) में, किंवा समस्त भारत में बैठी हुई थी। सम्पूर्ण भारत के लोग इन्हें सम्मान तथा प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखते थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी स्थित हिन्दू इनकी व्यवस्था का आदर करते और सम्मानपूर्वक उसका पालन करते थे। यह बात प्रसिद्ध है कि सन् १९१४ ई० से १९१८ ई० तक होने वाले प्रथम विश्वयुद्ध में भारतीय सैनिक अंग्रेजों की ओर से जर्मनी से लड़ने के लिए विदेश (सम्भवतः मेसोपोटामिया) में गये हुए थे। वहाँ अन्न के अभाव के कारण तथा शीत की अधिकता से बचने के लिए अंग्रेजी सेना के अधिकारियों ने इन हिन्दू सैनिकों को मांस खाने का आदेश दिया जिसे इन्होंने स्पष्ट ही अस्वीकार कर दिया। अंग्रेज सैनिक-अधिकारियों के बहुत दुराग्रह करने पर हिन्दू सैनिकों ने कहा कि यदि काशी के विद्वान् तथा शास्त्र के ज्ञाता पं० शिवकुमार शास्त्री जी मांस खाने की व्यवस्था देंगे, तभी हम लोग उसे ग्रहण कर सकते हैं अन्यथा कदापि नहीं। अंग्रेज अधिकारियों ने शास्त्री के सामने इस समस्या को प्रस्तुत किया। शास्त्रीजी ने हिन्दू सैनिकों की प्राणरक्षा के लिए, आपद्धर्म समझकर मांस खाने की व्यवस्था दे दी। तभी सैनिकों ने अपने आहार में परिवर्तन स्वीकार किया। इस घटना से पता चलता है कि पण्डित शिवकुमारजी की शास्त्रीय व्यवस्था का क्या महत्त्व था ? और ये किस सम्मान और आदर की दृष्टि से भारतीय जनता के द्वारा देखे जाते थे।

१९११ साल की मनुष्य गणना के अवसर पर शास्त्रीजी ने हरिजनों को हिन्दुत्व से बहिष्कृत होने से बचाया था।

इस प्रकार अपनी विद्वत्ता से समग्र भारतवर्ष की पण्डितमण्डली को उपकृत तथा चमत्कृत कर महामहोपाध्याय पण्डित शिवकुमार शास्त्री ने १९७५ विक्रमी संवत् (= १९१८ ई०) में सौर भाद्रमास के द्वितीय दिन शनिवार के पूर्वार्ध साढ़े नौ बजे के समय अपनी ऐहिकलीला का संवरण किया और भगवान् विश्वनाथ से सायुज्य प्राप्त किया। मृत्यु से पूर्व तीन मास पहिले शास्त्रीजी को पक्षाघात हो गया था। केदारजी के मन्दिर के पास ही राजा ताहिरपुर की कोठी में भागवत तथा गीता के श्लोकों को पढ़ते तथा भावावेश में आँसुओं की वर्षा करते हुए ये भूतभावन में लीन हो गये। उस समय इनका पूरा परिवार उपस्थित था। तृतीय धर्मपत्नी, एकमात्र पुत्र श्री वाचस्पति मिश्र, तीन पौत्र जगन्नाथ, रघुनाथ तथा श्रीनाथ, अनेक दुहिताएँ एवं दौहित्रों के सान्निध्य में शास्त्रीजी ने कैलासधाम में प्रवेश किया—

वैदुष्यं विलयं गतं बुधसभा शून्यां दशां लम्भिता
शास्त्रार्थो विरसोऽभवन्नवनवा लीनास्तु ताः कल्पनाः।
शास्त्रं व्याकरणं तथाऽक्षचरणादिष्टं च सद्दर्शनं
यातं तत् सकलं गते शिवकुमाराख्ये बुधे तत्क्षणात्॥

(ख) शास्त्रीजी के ग्रन्थ

महामहोपाध्याय शिवकुमार शास्त्रीजी की रचनाओं में (१) यतीन्द्र जीवनचरितम् अत्यन्त स्पृहणीय एवं संग्रहणीय है। इसमें काशी में दुर्गाकुण्ड समीपस्थ आनन्द बाग में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवास करने वाले स्वामी भास्करानन्द सरस्वती का जीवनचरित वर्णित है। नाना छन्दों में निबद्ध १३१ पद्यों का यह मनोरम काव्य दार्शनिकता से ओतप्रोत है। स्वामी जी के जीवन की घटनाएँ तो निबद्ध हैं ही, साथ ही उनके वैराग्य, ज्ञाननिष्ठा, वेदान्तानुभूति आदि सद्गुणों का विशेष परिचय देकर पण्डित शिवकुमार शास्त्रीजी ने इस काव्य के कलेवर को परिपुष्ट किया है। इस ग्रन्थ के निर्माण के प्रेरक थे चौधरी महादेव प्रसादजी, जो बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के नन्दपुर परगना के स्वामी तथा धनाढ्य व्यक्ति थे। इनके पिता का नाम था चौधरी रुद्रप्रसाद जी। चौधरी महादेव प्रसादजी बड़े आस्तिक, सात्त्विक आचरण वाले व्यक्ति थे। वे स्वामीजी के श्रद्धालु शिष्यों में अन्यतम थे। और उन्होंने अपनी विशाल भूसम्पत्ति का दान कायस्थ-पाठशाला, इलाहाबाद को अन्त में कर दिया। इन्होंने **'यतीन्द्र स्तोत्र'** नामक स्वामीजी की स्तुति में एक स्तोत्र का भी प्रणयन किया है जिसमें १६ ललित पद्य हैं और इसी ग्रन्थ के अन्त में प्रकाशित किया गया है।

'यतीन्द्रजीवनचरितम्' में लम्बे-लम्बे वृत्तों का आधिक्य है जिनमें (१५ श्लोक–७५ श्लोक तक) विभिन्न दर्शनों के सिद्धान्तों का वर्णन सुबोध शैली में किया गया है। यह भाषानुवाद से संवलित है जिसकी सहायता से मूलग्रन्थ के कठिन स्थलों को भली भाँति समझा जा सकता है। उदाहरण के लिए कुछ पद्य यहाँ दिये जाते हैं।

यतीन्द्रजी वैराग्य साम्राज्य के सम्राट् हैं। इसका सुन्दर वर्णन देखिए—

पुण्या यस्य कुटुम्बिनी मतिरियं ध्यानं परं भोजनं,
भोगश्चापि तदेव यस्य विदितं यत्पट्टवस्त्रं दिशः।
भूपालावलिभाललग्नमुकुट–प्रोद्यल्ललामार्चिषा
यन्नीराजनमस्ति रागरहितं साम्राज्यमाप्तोऽद्य यः॥

(यतीन्द्रजीवनचरितम्, श्लोक ४)

स्वामी भास्करानन्दजी की इतनी मान्यता थी कि बड़े-बड़े राजा-महाराजा उनके चरणों पर अपना शीश नवाते थे। शास्त्रीजी का कहना है कि ऐसा सौभाग्य प्राप्त करना पूर्वजन्म में परमेश्वर के चरणारविन्द की निहित सेवा का ही तो परिणत फल है—

चिरकालमुपासनां विना
जगदीशस्य पदारविन्दयोः।
घटते च न जात्वधिक्षिति
क्षितिभृन्मण्डलमण्डिताङ्घ्रिता॥

(वही, श्लोक २५)

स्वामीजी के निर्मल सात्त्विक गुणों का यह बड़ा ही साहित्यिक चारुतापूर्ण वर्णन है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शशिरुक् शशिरुक् कमलं कमलं
कुमुदं कुमुदं वद कम्बुरयम् ।
कुरुतामतिवक्रचलो यतिनः
स्थिरराजितसत्त्वगुणानुकृतिम् ॥
(वही, पद्य १०६)

स्वामीजी के उज्ज्वल निर्मल सत्त्वगुण के समान कोई वस्तु नहीं है जिसकी उपमा दी जाय । चन्द्रमा की कान्ति उज्ज्वल तो है, परन्तु वह शशिरुक् है अर्थात् शशी = मृगधारी = पशुवाले की कान्ति है । सफेद रंग वाला कमल भी केवल कमल ही है (अर्थात् 'क' = जल का 'मल' = मैल है) । कुमुद को देखो वह कु (कुत्सित) मुद (हर्ष) को देता है । तो क्या टेढ़ा-मेढ़ा चंचल यह शंख यतीन्द्रजी के स्थिर विराजमान सत्त्वगुण के सदृश हो सकता है ? नहीं, कभी नहीं । फलतः ये चारों वस्तुएँ दोषयुक्त होने से सत्त्वगुणी यतीन्द्रजी के लिए कभी उपमान नहीं बन सकतीं । कारण ? उनका सत्त्वगुण उपमाविहीन जो ठहरा !

पदशय्या के लिए इस पद्य को पढ़िए । कितनी सुन्दर शब्द-योजना है—

कलधौत-सुशोभित-सौधततिः
कलहंसगतिः सुवती - सुततिः ।
कलनादि - रिरंसु - पतत्रिततिः
कलयेन्न वशं प्रतिपक्षततिः ॥
(वही, पद्य ११०)

इसी पदशैली में आत्मचिन्तन में निरत स्वामीजी का भी वर्णन पढ़िए—

वृतशास्त्रगतिः परमार्थमतिः
पदकञ्ज-नमद् - वसुधाधिपतिः ।
स्मिततोषित - सर्वमनुष्यततिः
यतिरात्मनि रज्यति पुण्यकृतिः ॥
(वही, पद्य १०८)

इस 'यतीन्द्रजीवनचरित' की रचना कर पण्डित शिवकुमार शास्त्रीजी ने न केवल एक महनीयकीर्ति पुण्यश्लोक यतीन्द्रजी के जीवनचरित को ही बोधगम्य बनाया, प्रत्युत अपनी पद्यरचनाचातुरी को भी प्रदर्शित कर अनुपम यश प्राप्त किया । तथास्तु ।

(२) **लक्ष्मीश्वर प्रताप**—शिवकुमार शास्त्रीजी की यह काव्यकृति इनके आश्रयदाता दरभंगानरेश महाराजा लक्ष्मीश्वर सिंहजी की कीर्तिकौमुदी को चतुर्दिक् विस्तारित करने वाली कमनीय रचना है । इसमें लक्ष्मीश्वर सिंहजी के प्रताप का विस्तृत साहित्यिक चमत्कृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है । बहुत खोजने पर भी काव्य की कोई प्रति उपलब्ध न हो सकी । केवल नमूने के तौर पर पण्डितपरम्परा से सुना गया यह उत्कृष्ट पद्य यहाँ दिया जाता है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्णा चान्द्री कला वा, दिशि दिशि लहरी क्षीरसिन्धूत्थिता वा
कुन्दालीमालिका वा शिवनिलयगिरेः कान्तिरेवोद्गता वा।
हंसानां संहतिर्वैत्यवनितलबुधैस्तर्क्यते यस्य कीर्तिः
सोऽयं लक्ष्मीश्वराख्यो जगति विजयते नायकस्तीरभुक्तेः ॥[1]

आशय है कि तिरहुत के राजा लक्ष्मीश्वर सिंह की विजयगाथा सर्वत्र प्रसिद्ध है। उनकी विमलकीर्ति को देखकर भूतल के विद्वान् लोग नाना प्रकार की कल्पना किया करते हैं—क्या वह चन्द्रमा की पूर्णकला है अथवा चारों दिशाओं में विराजमान क्षीरसागर की दुग्धधवल लहरी है अथवा कुन्दपुष्पों की नितान्त उज्ज्वल माला है अथवा कैलास पर्वत से उत्पन्न होने वाली कान्ति है अथवा हंसों का समूह एकत्र होकर विद्यमान है ? पद्य सन्देहालंकार का बहुत बड़ा ही अभिराम-मनोहर दृष्टान्त है। इस उदाहरण से ही हम इस काव्य की मधुरिमा, प्रतिभा तथा वर्णनरीति का कुछ अनुमान कर सकते हैं। शास्त्रीजी की काव्यप्रतिभा के साक्षात्कार के लिए इस काव्य का गम्भीर अनुशीलन नितान्त आवश्यक है।

पण्डित शिवकुमारजी की अध्यक्षता में संचालित काशीस्थ दरभंगा संस्कृत पाठशाला के ही प्राचीन छात्र पण्डित **रघुवीर मिश्र** काव्यतीर्थ (उपनाम द्विरेफ) के द्वारा प्रणीत '**लक्ष्मीश्वरोपायनम्**'[2] नामक प्रशस्ति-काव्य से परिचय पाना अप्रांसगिक न होगा। रघुवीर मिश्र इसी पाठशाला के सुयोग्य छात्र थे। काशी में ही उन्होंने साहित्य का अध्ययन किया तथा पद्य रचना में अद्भुत क्षमता प्राप्त की। इस प्रशस्ति काव्य में नाना वृत्तों में १११ (एक सौ ग्यारह) पद्य गुम्फित हैं। श्लेष, यमक, उपमादि अलंकारों का सौन्दर्य भी अवलोकनीय है। इसकी रचना १९५२ विक्रमी सं० (१८९५ ई०) में की गई थी (पद्य १०८) जब महाराजा जीवित थे। तीन वर्षों के अन्तर १९५५ वि० सं० (= १८८९ ई० में) उनके निधन पर लिखी गई 'शोकावली' नामक कविता इसमें सम्मिलित की गई है। पण्डित शिवकुमार शास्त्री के भी पाण्डित्य का संकेत इस पद्य में किया गया है -

भूमौ भारतमण्डलं प्रथमतो विद्यानिधानं मतं
तत्रापीयमनेकपण्डितवरैर्वाराणसी मण्डिता।
एतस्यामपि यः कुमारवपुषा ख्यातःशिवस्य स्वयं
सोऽपि त्वद्गुणगौरवेण परवान् पुष्णाति गोष्ठीश्रियम् ॥
(पद्य ५२)

---

१. यह पद्य शास्त्रीजी के ग्रन्थ 'यतीन्द्रजीवनचरितम्' में भी उपलब्ध होता है। यह ग्रन्थ के प्रायः अन्त में है तथा इसकी श्लोक संख्या १२९ है।

२. विद्याविलास प्रेस में मुद्रित सं० १९८२ (= १९२५ ई०), काशी। तथा महाराजा की जेठी रानी की आज्ञा से पण्डितों में वितरणहेतु प्रकाशित।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशीस्थ दरभंगा पाठशाला की प्रशस्ति भी यहाँ निबद्ध है—

संत्रस्तानां कलिमलभयात् सर्वविद्यावलीनां
प्राणत्राणप्रवणमनसामेकविश्रामभूमिः ।
अस्पृष्टायां कलियुगगुणैर्भूमिलोकेतरस्यां
वाराणस्यां जयति भवतः पाठशाला विशाला ॥

(पद्य ३८)

महाराजा की वाणी की प्रशंसात्मक मनोज्ञ रचना पर दृष्टिपात कीजिए—(पद्य ३३)—

कालिन्दीव समस्तगोपति-नुता गङ्गेव सर्वप्रिया
गूढा क्वापि सरस्वतीव न-जडा व्यक्तं रसोल्लासिनी ।
तीर्थाधीश्वरतां गतस्य कृतिनोऽमुष्य प्रयागस्य ता—
मेकैव त्रिगुणात्मिका कलयते वाणी त्रिवेणीश्रियम् ॥

सरस-प्रसन्न श्लेष की सुषमा इस प्रकृष्ट पद्य में देखिए। महाराजा तीर्थ (मन्त्र आदि राजनीति के १८ स्थान) के अधीश्वर होने से तथा प्रकृष्ट याग (यज्ञ) के सम्पादन के कारण 'तीर्थराज प्रयाग' की समता धारण करते हैं। उनकी त्रिगुणात्मिका वाणी त्रिवेणी की शोभा को प्राप्त कर रही है। वह वाणी समस्त गोपति (राजाओं के द्वारा, अन्यत्र गोपों) के द्वारा प्रशंसित होने से कालिन्दी (=यमुना) के समान प्रतीत होती है। गंगा के समान वह सबको प्यारी लगती है। सरस्वती के सदृश वह कहीं-कहीं गूढ़ है, जड़ नहीं है (अन्यत्र नजड़ा = जलविरहित) तथा रस (शृंगारादि साहित्य प्रसिद्ध रसों अन्यत्र जल) से उल्लसित आनन्दित होने वाली है। फलतः राजा की ऐसी वाणी त्रिवेणी की शोभा को पूरी मात्रा में धारण करती है। श्लेष की सुषमा से चर्चित यह पद्य आवर्जक तथा आकर्षक है !!!

कवि के द्वारा भगवान् नारायण के चरणों में अपनी कृति का यह समर्पण सरस तथा आनन्ददायक है—

सर्वासां सरितां सरित्पतिरिव स्वैरोच्छलद्ब्रह्मसाम्
एकोऽनेकगिरां विरामविषयो नानाध्वगानामपि ।
योऽयं स्थावरजङ्गमाकृतिकृती विश्वात्मना भासते
तत्पादार्पणमेव मेऽस्तु शिशुता-संकल्पितं जल्पितम् ॥

(पद्य १११)

(३) लिङ्गधारण-चन्द्रिका-व्याख्या

वीरशैवसम्प्रदाय में भगवान् शिव के लिङ्ग को धारण करने का विधान है। उस सम्प्रदाय का प्रत्येक अनुयायी गले में चाँदी की पेटिका में संपुटित शिवलिङ्ग सर्वदा धारण करता है। इस प्रथा के वैदिकत्व के समर्थन में 'लिङ्गधारणचन्द्रिका' नामक ग्रन्थ उपलब्ध होता है। इसका प्रणयन सम्प्रदाय के प्रवर्तक बसवेश्वर के पौत्र तथा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महेशाचार्य के पुत्र नन्दीश्वर ने किया था। काशीस्थ विश्वाराध्य जंगममठ के अध्यक्ष राजेश्वर शिवयोगी के विशेष आग्रह से शिवकुमार शास्त्रीजी ने इसके ऊपर 'शरत्' नाम्नी व्याख्या की रचना १९६० वि० सं० (=१९०३ ई०) में की। वेद तथा उपनिषद् से संगृहीत वैदिक उद्धरणों से संवलित होने से यह कठिन तथा दुरूह है। पण्डित शिवकुमारजी ने इस ग्रन्थ की अभिराम व्याख्या कर इन कठिन अंशों को सरल तथा सुबोध बनाया है। ग्रन्थ के आरम्भ में १६ पद्यों में आपने इसकी रचना का हेतु स्पष्ट शब्दों में निर्दिष्ट किया है। लोकैषणा सामान्यतः इस रचना की प्रवर्तिका अवश्य है, तथापि भगवान् शङ्कर की संतुष्टि तथा आराधना हो—इसी कारण इसका निर्माण किया गया है। शास्त्रीजी के शब्दों की सरलता ध्यातव्य है—

लोकैषणा भवत्येव यद्यप्यत्र प्रवर्तिका।
तथापि किञ्चिद् गौरीशस्तुष्येदिति मनोगतम्॥

ग्रन्थ के अन्त में पण्डितजी का कथन है—

अस्या विश्वेशपादाब्जपरत्वं वीक्ष्य हर्षतः।
व्याख्यां शिवकुमारोऽहमकार्षं तत् शुभास्त्वियम्॥

पण्डित शिवकुमार शास्त्रीजी भगवान् शंकर के अनन्य भक्त तथा उपासक थे। उसी उपासना की पोषिका होने से उन्होंने इस व्याख्या की रचना की है। उनकी नम्रता तथा सरलता नितरां दर्शनीय है। ग्रन्थ के अन्तिम पृष्ठ पर पण्डित जी का एक यौवनकालीन सुन्दर चित्र है जिसके परिचय में यह पद्य दिया गया है—

प्रस्तावे विदुषां यस्य प्रथमं नाम गृह्यते।
सोऽयं शिवकुमाराख्यः पण्डितः पण्डिताग्रणीः॥

इस प्रकार यह टीका शास्त्रीजी के वैदिक एवं दार्शनिक वैदुष्य की सद्यः प्रकाशिका है।[1] न्याय तथा मीमांसा का आश्रयण भी बड़ी मार्मिकता के साथ किया गया है।

शास्त्रीजी के पूर्वोक्त तीनों ग्रन्थ मुद्रित एवं प्रकाशित हैं, परन्तु परिभाषेन्दुशेखर पर शास्त्रीजी ने टिप्पणियाँ भी लिखी थीं जो अभी तक अप्रकाशित ही हैं। सफल अध्यापक को ग्रन्थ-रचना के लिए अवसर मिलना नितान्त कठिन है। शास्त्रीजी को ग्रन्थ लिखने का समय प्राप्त न हो सका। ये टिप्पणियाँ यदि प्रकाशित हो जायँ, तो व्याकरण के परिष्कारप्रेमी पण्डितों का महान् उपकार हो।

पण्डित पूर्णचन्द्र दे नामक प्रख्यात वंगीय विद्वान् के विशेष आग्रह पर शास्त्रीजी ने 'शिवमहिम्नः स्तोत्र' के ऊपर भी एक विद्वत्तापूर्ण टीका लिखी थी। पूरी टीका तो उपलब्ध नहीं होती, केवल कतिपय पद्यों की ही व्याख्या उपलब्ध होती है। पण्डित शिवकुमार शास्त्रीजी भूतभावन विश्वनाथ के नैष्ठिक उपासक थे। इसीलिए

---

१. इसका मुद्रण काशी के विख्यात मेडिकल हाल नामक मुद्रणालय में हुआ था। प्रकाशन संवत् १९०५ वि०। पृष्ठ संख्या ३१३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवोपासनापरक ग्रन्थों के ऊपर व्याख्या लिखने में उनका नैसर्गिक अनुराग था चाहे वह जंगमसम्प्रदाय का हो या वैदिक सम्प्रदाय से सम्बद्ध हो।

शिष्य-मण्डली

पण्डित शिवकुमार शास्त्री की शिष्यमण्डली बहुत विस्तृत थी। इनके पावन चरणों के निकट बैठकर शास्त्रों का अध्ययन करने वाले छात्रों ने प्रचुर कीर्ति अर्जित की है, जिनमें प्रधान शिष्यों के नाम नीचे दिये गये हैं :—

(१) म० म० डॉ० गंगानाथ झा, (२) विद्यावाचस्पति पण्डित मधुसूदन ओझा, (३) शास्त्रार्थ-महारथी पण्डित हाराणचन्द्र भट्टाचार्य और (४) वैयाकरण-केसरी म० म० जयदेव मिश्र। इन चारों विद्वानों का विस्तृत वर्णन स्वतन्त्र रूप में पृथक्-पृथक् इसी ग्रन्थ में अन्यत्र दिया गया है। इनके अतिरिक्त इनके शिष्य थे—(५) शिवशंकर झा—(दरभंगा के लोहना ग्राम में स्थित संस्कृत विद्यालय के प्रधानाचार्य), (६) पण्डित दीनबन्धु झा (दरभंगा के प्रसिद्ध सरिसव गाँव के महारानी संस्कृत पाठशाला के अध्यापक), (७) पण्डित अच्युताश्रम मुनि (गौरीशंकर गोयनका के गुरु प्रसिद्ध वेदान्ती विद्वान्), (८) राजाराम शास्त्री (लाहौर के डी० ए० वी० कालेज के संस्कृताध्यापक), (९) पं० महादेव शास्त्री वाक्रे (अनेक ग्रन्थों के सम्पादक), (१०) पं० रामावधि शर्मा, (११) पं० अच्युतानन्द त्रिपाठी (न्यायवेदान्त-निष्णात, संन्यासी पाठशाला, काशी के न्यायाध्यापक), (१२) पं० निरीक्षणपति तिवारी, (१३) पं० चुम्बे झा (मिथिला के लब्धकीर्ति वैयाकरण), (१४) यामिनीनाथ तर्कवागीश (गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, कलकत्ता के अध्यापक) (१५) पं० श्रीकर शास्त्री (उत्कल प्रदेश के प्रसिद्ध नैयायिक, रणवीर संस्कृत पाठशाला में अध्यापक)।

शास्त्रीजी का काशीस्थ स्मारक

श्री शिवकुमार शास्त्रीजी का काशी में एक अभिराम स्मारक विद्यमान है जो काशी के नगवा मुहल्ले में उन्हीं के नाम पर 'शिवकुमार शास्त्री सांगवेद विद्यालय' की आख्या से प्रसिद्ध है। यह विद्यालय स्मारक रूप में आने से पहले **नगवा पाठशाला** के नाम से बड़ा ही भव्य तथा लोकप्रख्यात शैक्षणिक संस्थान था। इसके संस्थापन का श्रेय **पण्डितप्रवर गोविन्द पाण्डेय** को प्राप्त था। पाण्डेयजी काशी निवासी सरयूपारीण ब्राह्मण थे। वे पाण्डित्य के साथ ही साथ सुचारु कार्यशीलता तथा अदम्य कर्मठता के जीते-जागते चलते-फिरते प्रतीक थे। इस शताब्दी के आरम्भ में ही इस पाठशाला की स्थापना की गई थी। इसमें तीन-चार सौ छात्रों के आवास तथा भोजन के साथ शिक्षण का सुचारु प्रबन्ध था। पण्डित गोविन्द पाण्डेय की कर्मठता तथा व्यवस्था से आकृष्ट होकर राजा-महाराजा तथा सेठ-साहूकार मुक्तहस्त से दान देते थे। विद्यालय के पास भूसम्पत्ति भी कम नहीं थी। पाण्डेयजी के पास घोड़ागाड़ी थी। उस युग में घोड़ागाड़ी का रखना लौकिक समृद्धि का एक उज्ज्वल प्रतीक था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशी में पाण्डित्य के द्वारा सम्पत्ति अर्जित करने वाले तथा घोड़ागाड़ी रखने के सौख्य से मण्डित दो ही ब्राह्मण परिवार थे। एक था पण्डित सुधाकर द्विवेदी का परिवार जो काशी की उत्तर दिशा में खजुरी मुहल्ले में विराजमान था और दूसरा था पण्डित गोविन्द पाण्डेय का परिवार जो काशी की दक्षिण दिशा में नगवा में अवस्थित था। दोनों ही परिवार समृद्ध माने जाते थे, जिन्होंने संस्कृत विद्या के बल पर ही इतनी भूसम्पत्ति अर्जित की थी।

आगे चलकर नगवा पाठशाला से– जिसका पूरा वास्तविक नाम साङ्गवेद विद्यालय था—फूटकर इसी मुहल्ले में एक दूसरी पाठशाला स्थिति में आई जो कलकत्ते के दानी मारवाड़ी रुइआ सेठ के नाम पर **रुइआ पाठशाला** की आख्या से प्रसिद्ध हुई। नगवा पाठशाला में छात्रों में भाषण की तथा लेखन की प्रतियोगिता कराई जाती थी और इसके लिए योग्य छात्रों को पुरस्कार भी दिये जाते थे। वसन्तपञ्चमी को विशाल आयोजन होता था—बड़ा ही भव्य तथा अभिराम, जिसमें पुरस्कार बाँटे जाते थे। इन समारोहों में पाण्डेयजी उच्च स्वर से घोषणा करते थे कि जिस प्रकार एक चने की दो दालें होती हैं, उसी प्रकार एक ही संस्कृत महाविद्यालय के ये दो अंग हैं जो पारस्परिक सहयोग से फूलेंगे-फलेंगे तथा संस्कृत विद्या के प्रदान करने में समान रूप से ख्याति लाभ करेंगे।

पण्डित गोविन्द पाण्डेयजी की यह घोषणा सार्थक रही। दोनों विद्यालय साथ ही साथ बढ़ते गये एवं संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में यशोभागी बनते गये। १९११ ई० के पहिले ही, जब यह लेखक काशी में संस्कृत पढ़ने के लिए आया था, रुइया पाठशाला स्वतन्त्र स्थिति प्राप्त कर चुकी थी। इस पाठशाला में विशिष्ट विद्वान् अध्यापन कार्य करते थे जिन्हें वेतन के साथ ही भोजन तथा आवास का भी सौख्य प्राप्त था। सच तो यह है कि यह पाठशाला नये पण्डितों के अध्यापनकला शिक्षण के लिए शिक्षा-स्थली थी। पण्डित जयदेव मिश्र (जो आगे चलकर महामहोपाध्याय की पदवी से मण्डित किये गये तथा हिन्दू विश्वविद्यालय के व्याकरण विभाग के अध्यक्ष बने) आरम्भ में इसी पाठशाला के अध्यापक थे। पण्डित रामप्रिय द्विवेदी यहाँ साहित्य पढ़ाते थे। अनेक मान्य पण्डितों की यह अध्यापन स्थली है। रुइया पाठशाला की धीरे-धीरे अवनति हो गई, परन्तु आज भी वह विद्यमान है जहाँ विद्यार्थी निवास करते हैं, यद्यपि उन्हें अपने अध्ययन के लिए अन्यत्र जाना पड़ता है। कुछ दिनों पहले **पण्डित रामरूप पाठक** यहाँ अध्यापक थे जो चित्रकाव्य की रचना में बड़े ही समर्थ कवि थे। उनकी चित्रकाव्यमयी कविता का एक संग्रह **'चित्रकाव्य कौतुकम्'** नाम से प्रकाशित हुआ है, जिस पर केन्द्रीय 'साहित्य अकादमी' की ओर से पाँच सहस्र रुपयों का संस्कृतविषयक पुरस्कार भी उन्हें मिला था।

यही प्राचीन नगवा पाठशाला पण्डित शिवकुमार शास्त्रीजी का स्मारक बन गयी है। पण्डित गोविन्द पाण्डेय ने अपनी पुत्री का विवाह शास्त्रीजी के पुत्र वाचस्पति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिश्र से किया था जिनके पुत्र श्रीनाथ मिश्र आज भी अपने पितामह शास्त्रीजी की अतुल कीर्ति को उजागर किये हुए हैं।

(ग) संस्मरण

(१) कर्त्तव्यनिष्ठा

पण्डित शिवकुमार शास्त्री जी सनातन धर्म के प्रति इतने निष्ठावान् थे कि द्रव्य का लोभ इन्हें उस मार्ग से तनिक भी विचलित नहीं कर सकता था। चाहे कोई व्यक्ति कितना भी द्रव्य देकर इन्हें धर्म के विरुद्ध व्यवस्था देने तथा कार्य करने का आग्रह करता, यह अपने स्वीकृत मार्ग से टस से मस नहीं होते थे। इस विषय में राय कृष्णदास जी ने मुझे दो संस्मरण सुनाये जो नितान्त उपदेशप्रद तथा रोचक हैं। एक घटना तो उनके ही परिवार से सम्बन्ध रखती है। कृष्णदास जी के पिता के देहावसान के अनन्तर उनकी माता ने अपनी दोनों कन्याओं के विवाह के लिए प्रयत्न किया। एक ही कन्या की शादी के विषय में वह उद्योग सफल हो सका और वह भी छोटी कन्या की ही शादी के विषय में। यह समाजविरुद्ध बात थी। माता जी ने पण्डित शिवकुमार जी को अपने घर बड़े आदर सत्कार से बुलाया, सोने की एक गिन्नी की पूजा उन्हें दी और उस धर्मसंकट से उद्धारार्थ उन्होंने शास्त्री जी से आग्रह किया कि वे छोटी कन्या के विवाह के विषय में अपनी सहमति दें जिससे नाना प्रयासों के फलरूप वह विवाह सिद्ध हो सके। शास्त्री जी ने प्रस्ताव सुनते ही तत्काल वह गिन्नी लौटा दी और कहा कि जेठे सन्तान से पूर्व कनिष्ठ सन्तान का विवाह सर्वथा धर्मविरुद्ध है। मैं इस विवाह के अनुष्ठान के लिए अपनी सम्मति नहीं दे सकता। रायसाहब की माता ने बहुत ही अनुनय-विनय की, परन्तु शास्त्री जी अपने सिद्धान्त पर हिमालय के समान अडिग बने रहे। फलतः उस विवाह सम्बन्ध को अस्वीकर कर दिया गया।

दूसरी घटना १९१३ ई० के आस-पास की है। लक्ष्मीचन्द नामक एक अग्रवाल युवक को बाबू भगवानदास के परिवार ने इंगलैण्ड में जाकर रसायन विद्या सीखने के लिए छात्रवृत्ति देकर भेजा। वह युवक लण्डन में अनेक वर्षों तक रह कर तेल, साबुन आदि अपूर्व वस्तुओं के निर्माण की कला सीखकर बनारस लौटा। इन वस्तुओं का निर्माण भारत में कभी होता नहीं था। फलतः इन नई चीजों के उत्पादन का प्रदर्शन तथा प्रचार लक्ष्मीचन्द जी स्वयं सभा स्थलों में किया करते थे। इस प्रदर्शन को लेखक ने १९१८-१९ ई० के आसपास स्वयं देखा है। परन्तु १९१३ ई० के आस-पास उनके विलायत से लौट आने पर 'काशी अग्रवाल समाज' में शास्त्रविरुद्ध समुद्र-यात्रा करने के कारण घनघोर संघर्ष मच गया। प्राचीन पंचायत के सरदार इसके विरोधी थे, उधर बाबू भगवानदास जी का परिवार तथा कतिपय नवीन सभ्यता में दीक्षित व्यक्ति समुद्र-यात्रा करने के पक्षधर थे। यह समाजिक विवाद कचहरी में मुकद्दमे के रूप में अनेक महीनों तक चलता रहता। इसीके सिलसिले में बाबू भगवानदास के अग्रज बाबू

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोविन्ददास ने अपनी दुर्गाकुण्डवाली कोठी में काशी के पण्डितों की सभा बुलाई जिसमें पण्डित शिवकुमार शास्त्री जी को भी निमन्त्रण था। सभा का समय तो सायंकाल था, परन्तु शास्त्री जी ने प्रातःकाल ही उपस्थित होकर बाबू गोविन्ददास जी से अपने असमंजस की बात कह सुनाई—"यह कैसे हो सकता है कि मैं आपका निमन्त्रण स्वीकार नहीं करता, परन्तु काशी की समस्त पण्डितमण्डली आपके प्रस्ताव के विरुद्ध है। ऐसी दशा में मैं सभा में उपस्थित होकर आपके प्रस्ताव के पक्ष में सम्मति नहीं दे सकता। फलतः आपके द्वारा भेजा गया यह दक्षिणा द्रव्य आपको लौटा रहा हूँ और सभा में अपनी अनुपस्थिति के लिए क्षमा याचना करता हूँ।" श्री शिवकुमार पण्डित जी का धार्मिक सिद्धान्तों के निर्वाह के लिए सातिशय आग्रह था, परन्तु अपने आचरण से अपने मित्रों का वैमनस्य भी उत्पन्न करना वे नहीं चाहते थे। उनका स्वभाव अत्यन्त कोमल एवं सदय जो था।

(२) उदाराशयता

पण्डित शिवकुमारजी बड़े ही उदार तथा गम्भीर चिन्तन के व्यक्ति थे। उनसे कोई दुर्व्यवहार करता था, तो भी वे उसके गुणों की अवहेलना कर कभी बुरा नहीं मानते थे। उनका स्वभाव क्षमाशील था। वे अपने प्रतिद्वन्द्वियों के द्वारा किये गये व्यवहारों के प्रति औदासीन्य ही रखते थे, क्षमा करते रहते थे, उनकी दुरभिसन्धियों पर कभी ध्यान नहीं देते थे, प्रत्युत उनमें विद्यमान गुणों का समादर कर अपनी गुणग्राहिता का ही परिचय देते थे। यही उनका स्वभाव था; यही उनका अभ्यास था।

विक्रम संवत् १९७० (= १९१३ ई०) ज्येष्ठ शुक्ल प्रतिपद् को महामहोपाध्याय पण्डित गङ्गाधर शास्त्रीजी का निधन हुआ। उनके अन्त्येष्टि संस्कार में काशी का प्रत्येक पण्डित तथा विद्यार्थी, गुरु तथा शिष्य सम्मिलित हुआ। पण्डित शिवकुमार शास्त्रीजी भी उसमें सम्मिलित हुए थे। मणिकर्णिकाघाट से जब वे अपने घर की ओर सायंकाल लौट रहे थे, तब काशी के विख्यात ज्योतिषी पण्डित हृषीकेश उपाध्याय भी उनके साथ चल रहे थे। उपाध्यायजी को उन्हें देखकर आश्चर्य हुआ। शिवकुमार पण्डितजी वृद्ध तो हो ही गये थे, उस समय रुग्ण भी थे। ऐसी दशा में इतना प्रयास उनके लिए कष्टकारक होगा। यही विचार कर उन्होंने शास्त्रीजी से वार्तालाप के प्रसंग में एक पुरानी बात छेड़ दी जब शिवकुमार पण्डितजी को काशिराजकीय पाठशाला में केवल पाँच वर्ष तक कार्य करने के अनन्तर वह पद छोड़ना पड़ा था। और उन्होंने पूछ ही डाला कि इस वार्धक्य में रोगाक्रान्त होने पर भी आपने इस अन्त्येष्टि कार्य में सम्मिलित होने का प्रयास ही क्यों स्वीकारा? शास्त्रीजी ने बड़े ही विनम्र शब्दों में अपना भाव प्रकट कर दिया कि इस समारोह में मैं सम्मिलित नहीं होता, तो मेरा चित्त कचोटता रहता। गंगाधर शास्त्रीजी से मेरा किसी प्रकार का वैमनस्य नहीं था। काशी में ऐसा वेद-वेदांग का मर्मज्ञ, व्याकरण तथा दर्शन का पारंगामी एवं साहित्य और अलंकार का सरस व्याख्याता न इस समय विद्यमान है, और न गत दो सौ वर्षों में इनकी योग्यता का कोई पण्डित ही उत्पन्न

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ और मेरी तो स्पष्ट सम्मति है कि न आगे दो सौ वर्षों में इनकी योग्यता का कोई पण्डित उत्पन्न ही होगा। जब देववाणी के उत्कर्ष के युग की यह दशा है, तब उसके अपकर्ष काल में जब ह्रास की परम्परा आरम्भ होगी भला उस कोटि के विद्वान् के आविर्भाव की बात कभी सोची जा सकती है ?

यह उत्तर सुनकर ज्योतिषीजी चुप हो गये और मन ही मन शिवकुमार पण्डितजी की उदाराशयता की प्रशंसा करने लगे। क्योंकि उन्होंने सुन रखा था कि इन दोनों महान् पण्डितों में किसी व्यवहार विषय को लेकर खींचातानी हुई थी और दोनों एक दूसरे से खिचे-खिचे रहते थे। सचमुच पण्डित शिवकुमार शास्त्रीजी वैमनस्य की किसी घटना को अपने हृदय के कोने में सँजोये नहीं रखते थे। वे उसे दूर फेंककर अपने दिल को हल्का किये रहते थे। सच्चे सात्त्विक पुरुष का स्वभाव ही ऐसा होता है।

(३) समाज सेवा

श्री शिवकुमार शास्त्री जी सामाजिक कार्यों में अभिरुचि ही नहीं रखते थे, प्रत्युत ये उनमें स्वयं सम्मिलित होते थे तथा उनकी सिद्धि में अपना पूरा सहयोग दिया करते थे। सुप्रसिद्ध समाजसेवी पण्डित रामनारायण मिश्र ने मुझसे यह बात कही थी कि १६११ ई० में मनुष्य-गणना के समय अंग्रेजी सरकार ने हरिजनों को हिन्दू समाज से पृथक् कर एक स्वतन्त्र इकाई के रूप में रखने का षड्यन्त्र रचा। जब काशी के गण्य-मान्य हिन्दुओं को इस घटना का संकेत मिला, तब टाउन हाल के मैदान में एक बड़ी सभा आयोजित की गई और शास्त्री जी से अध्यक्ष बनने के लिए प्रार्थना की गई। सभा के मन्त्री होने के नाते पण्डित रामनारायण मिश्र भी इस मण्डली के साथ शास्त्री जी की सेवा में उपस्थित हुए और उन्होंने इस आयोजन का अध्यक्ष बनने की उनसे प्रार्थना की। शास्त्री जी बिना किसी आपत्ति के सभास्थल पर टाउन हाल में उपस्थित हुए और अपनी गौरवमयी-वाणी में हरिजनों के प्रति रचे जाने वाले इस षड्यन्त्र की निन्दा की और उन्हें हिन्दू समाज का अविभाज्य अंग सिद्ध किया। सरकार शास्त्री जी की इस शास्त्रीय व्यवस्था से झुकी और अपनी रिपोर्ट में उसने हरिजनों को हिन्दू समाज के अन्तर्गत ही सन्निविष्ट रहने दिया। बहिष्कार की नीति समाप्त हो गई– यह शास्त्री जी की व्यवस्था का सुभग परिणाम था।

इतना ही नहीं, शिवकुमार पण्डित जी संगीत में अभिरुचि रखते थे और संगीत-सम्मेलनों में वे साग्रह बुलाये जाते थे जहाँ संगीत प्रतियोगिता में ये निर्णायक के पद पर प्रतिष्ठित किये जाते थे। इनके निर्णय सर्वदा निष्पक्ष होते थे और उनके गम्भीर संगीतालोचन के परिचायक होते थे। शास्त्री जी के इन निर्णयों के समाचार उस समय काशी से निकलने वाले सुप्रसिद्ध पत्र 'भारतजीवन' में बड़े सम्मान के साथ प्रकाशित होते थे और वे इस पत्र की पुरानी फाइलों में आज भी देखे जा सकते हैं। इस तथ्य की सूचना भारतजीवन की इन पुरानी फाइलों को देखकर काशी के विख्यात साहित्यिक पण्डित रुद्र काशिकेय ने लेखक को दी थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) साधना का चमत्कार

पण्डित शिवकुमार शास्त्रीजी जितने बड़े विद्वान् थे उतने ही बड़े साधक भी थे। भूतभावन विश्वनाथ एवं माता जगज्जननी अन्नपूर्णा उनके इष्टदेव थे। अध्यापन के अतिरिक्त इन देवों की पूजा-अर्चा उनकी दैनिकचर्या का प्रधान अंग था। अध्ययन-अध्यापन एवं पूजन-अर्चन—ये ही शास्त्रीजी के उपास्य कर्म थे। साधना के फलस्वरूप उनके जीवन में एक विचित्र चमत्कार देखने को मिलता था। जो कोई उनका अनिष्ट करना चाहता था उसे स्वयं उसका उलटा फल भोगना पड़ता था। इस विषय की एक विचित्र घटना से काशी का पण्डित समाज पूरी तरह परिचित है। श्री शिवकुमार शास्त्रीजी की लोकातीत वैदुषी से उत्पन्न लोकप्रियता तथा समादर-भावना अनेक विद्वानों के हृदय में काँटे की तरह चुभती थी। फलतः वे उनका अनिष्ट तथा अपमान करने के लिए सदैव उद्यत रहते थे, परन्तु शास्त्रीजी की सहनशीलता तथा उदारता के कारण उन लोगों के सब कुटिल कुचक्र सर्वदा विफल ही होते थे। एक बार उन लोगों ने दालमण्डी की एक वृद्ध गणिका को अपना माध्यम बनाकर शास्त्रीजी के घोर अपमान की योजना बनाई। उसने भरे चौक में पण्डितजी को कुशब्द कहा और अपनी युवती पुत्री के साथ उनके दुराचरण की उच्चैः घोषणा करती हुई रुपयों का तगादा करने लगी। शास्त्रीजी को इस पण्डिताऊ षड्यन्त्र के समझने में देर न लगी और अपने विद्यार्थी को, जो उनके ही साथ विद्यालय में जा रहा था, उतनी द्रव्यराशि घर से लाकर देने का आदेश देकर अविचलित भाव से अपने विद्यालय में अपने अध्यापनार्थ चले गये। बात यहीं समाप्त हो गई।

दूसरे दिन वही वृद्ध वेश्या पण्डितजी के आवास स्थान पर रोती-धोती पहुँची और बिलख कर कहने लगी—"शास्त्रीजी, मेरा अपराध क्षमा करें। मुझे अमुक-अमुक पण्डितों ने एक लम्बी धनराशि देकर आपके अपमान के लिए प्रेरित किया था। मेरे अपराध का दुःखद परिणाम मेरी जवान बेटी भोग रही है। आधी रात से ही उसके पेट में विषम शूल उत्पन्न हो गया है जो किसी भी दवा की बात सुनता ही नहीं। बेटी ही मेरी जीविका का साधन है। उसके बिना मैं अनाथ हो जाऊँगी। वह मृत्यु-शय्या पर पड़ी है। भगवन्! उसे बचाइए।" शास्त्रीजी ने नम्रता से कहा कि मैंने तो तुम्हारे अनिष्ट के लिए कुछ भी नहीं किया। भगवान् विश्वनाथ का स्मरण करो। यह जल उसे पिलाओ। सब कुशल होगा। इतना कहकर अभिमन्त्रित जल को उसे दिया। उसके पीने से वह वेश्या-पुत्री रोग से मुक्त हो गई। उस युग के सामान्यजन भी इस विचित्र घटना से पूरे परिचित थे और इसकी चर्चा उन दिनों घर-घर होती रही। यह उनकी दिव्यसाधना का चमत्कार ही तो था।

एक अन्य चमत्कार की कथा कम विस्मयप्रद नहीं है। किसी शास्त्रार्थ में पण्डित शिवकुमारजी ने अपने पक्ष के मण्डन के लिए पातञ्जल महाभाष्य की कतिपय पंक्तियों को धड़ल्ले के साथ सुना दिया। प्रतिपक्षी के द्वारा उन पंक्तियों के महाभाष्य में न

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने का आग्रह करने पर महाभाष्य की पोथी मँगाई गई और वहाँ उन पंक्तियों का सद्भाव देखकर विपक्षी पण्डित आश्चर्यचकित हो उठे। शास्त्रार्थ समाप्त हो गया। घर पर आकर उन्होंने महाभाष्य की अपनी पोथी देखी जिसमें वे पंक्तियाँ सचमुच नहीं थीं। शास्त्रीजी से जब इसका रहस्य पूछा गया, तब वे भी इस विषय में मौन ही रहे। पण्डितों का दृढ़ विश्वास था कि भूतभावन विश्वनाथ ने ही अपने भक्त की प्रतिष्ठा के रक्षणार्थ महाभाष्य में उन पंक्तियों को अंकित कर दिया था। प्राचीन पण्डितों के मुख से सुनी हुई यह तथ्यकथा व्याकरणाचार्य पण्डित निरीक्षणपति मिश्र ने इस लेखक को बतलाई थी और उसी आधार पर यह यहाँ उल्लिखित की गई है। यह भी गूढ़ साधना का ही परिणत फल नहीं तो और क्या है ?

(५) दरभंगा के राजदरबार में प्रवेश

सन् १८८० ई० के आसपास घटित यह ऐसी महनीय घटना है जिसको पंडित शिवकुमारजी के अलौकिक वैदुष्य, असाधारण शास्त्रानुशीलन तथा सात्त्विक साधना को उजागर करने के साथ-साथ ही शास्त्रीजी की जीवनधारा में एक नया मोड़ उपस्थित करने का श्रेय प्राप्त है। यह घटना शास्त्रीजी के दरभंगा के महाराजा लक्ष्मीश्वर सिंह की सभा में प्रथम प्रवेश के साथ सम्बन्ध रखती है। इससे पूर्व वे काशिराजकीय विद्यालय के प्रख्यात अध्यापक थे; परन्तु विद्यालय के ही कुछ कुचक्री अध्यापकों की दुर्दान्त कुटिलता के कारण उन्हें बाध्य होकर वह अध्यापक पद छोड़ देना पड़ा। उनके ऊपर किसी अध्यापक का ही ऋण था जिसे तुरन्त चुकाने की तीव्र इच्छा उनके मन में जागरित हुई। उन्हें अपने भक्त शिष्यों के साथ राजदरबारों में जाकर अपने लोकातीत वैदुष्य का चमत्कार दिखलाकर प्राप्त दक्षिणा से उसे शीघ्र चुका देने का विचार उत्पन्न हुआ। इस विचार को कार्यान्वित करने के लिए, वे महाराजा दरभंगा के दरबार में उपस्थित होने के लिए दरभंगा गये और महाराजा के विद्यालय में ही अपना डेरा डाला।

दरभंगा के तत्कालीन राजा लक्ष्मीश्वर सिंह बड़े ही गुणग्राही एवं विद्वानों के सत्कर्ता होने के अतिरिक्त स्वयं भी संस्कृत के विद्वान् थे। उनका नियम था कि उनके दरबारी पण्डितों के द्वारा विद्या बुद्धि के क्षेत्र में सम्मानित होने वाले स्थानीय तथा आगन्तुक विद्वानों को वे युगल धौतवस्त्र से सत्कृत करते थे और इसकी पात्रता के लिए परस्पर शास्त्रार्थ ही प्रबल माध्यम था।

पण्डित शिवकुमारजी इस विशिष्ट सत्कार के लिए उत्सुक थे ही। दरबार में शास्त्रार्थ का आयोजन किया गया। यह तथ्य है कि स्थानीय मैथिल पण्डित किसी आगन्तुक विद्वान् के सम्मान के लिए स्वभावतः अन्यमनस्क होते थे और उसे विजय से पराङ्मुख करने के लिए नये-नये उपायों—यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र—की रचना करते थे। इस शास्त्रार्थ में ऐसी ही घटना घटी। प्रश्नकर्ता तो केवल मध्यमा परीक्षा देने वाला एक नगण्य छात्र था परन्तु वह तंत्रविद्या से पूर्णतः परिचित था। उसके प्रश्न का उत्तर देने के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए ज्योंही शास्त्रीजी आगे बढ़े, उसने किसी मंत्रोच्चार के साथ अपनी ताली पीटी। फिर क्या था ? शास्त्रीजी को वाक्स्तम्भ हो गया—वाणी रुक गयी। जिह्वा से वे कुछ बोल ही न सके। शास्त्रार्थ समाप्त हो गया। शिवकुमारजी अप्रत्याशित ढंग से अपनी सम्भावित विजय से वञ्चित रह गये !!! परन्तु ये हिम्मत नहीं हारे। ये उसी स्थान पर रहकर अपने इष्टदेव भगवान् शंकर की पूजा-अर्चा में अपने दिन बिताने लगे।[1]

उस विद्यालय में छात्रों का अध्यापन भी नित्यप्रति होता ही था। शास्त्रीजी के निकट ही विद्यालय के प्रधान अध्यापक 'सामान्य निरुक्ति' का पाठ पढ़ाया करते थे। कई दिनों से एक ही पंक्ति पर पाठ रुक गया था। अध्यापक पढ़ाते तो थे प्रेम से, परिश्रम से, परन्तु पंक्ति में ऐसी एक गुत्थी थी जो उनके अनवरत परिश्रम से भी खुलती नहीं थी। छात्रों को वह पंक्ति लगती न थी। वे उन्हें आगे बढ़ने ही नहीं देते थे। अध्यापक बड़े हैरान थे। करें तो क्या करें ? उनकी परेशानी देखकर शिवकुमार जी ने वह ग्रन्थि सुलझाने के लिए अपना सहयोग देना चाहा। छात्र तो अन्यमनस्क थे कि मध्यमा कक्षा वाले छात्र के प्रश्नों का उत्तर न देने वाला व्यक्ति भला 'सामान्य-निरुक्ति' की पंक्ति क्या लगा सकता है ? परन्तु प्रधानाध्यापक ने शास्त्रीजी से पंक्ति लगाने का आग्रह किया। पण्डित शिवकुमारजी ने उस विषम पंक्ति की ग्रन्थि को इतनी मार्मिकता से, सहजभाव से सुलझा दिया कि आचार्यजी पानी-पानी हो गये। उन्होंने स्वयं राजा से जाकर कहा—"ये साधारण पण्डित नहीं हैं। ये सरस्वती के वरद पुत्र हैं। उस दिन इनकी छल से पराजय की गयी थी। ये साक्षात् शिवकुमार हैं—गणेश के अवतार हैं।"

राजा लक्ष्मीश्वर सिंह गुणग्राही तो प्रथम कोटि के थे। उन्होंने वहीं से रुपया भेजकर शास्त्री का ऋण चुकता कर दिया और वहीं अपने विद्यालय में इन्हें अध्यापक नियुक्त कर दिया। कुछ दिनों के बाद शास्त्रीजी ने काशी में ही अध्यापकी के लिए सुविधा प्रदान करने की प्रार्थना की। महाराजा लक्ष्मीश्वर सिंह ने स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती के आदेश से काशी में एक संस्कृत पाठशाला' की स्थापना की। उसी में प्रधान अध्यापक के पद पर नियुक्त होने पर पं० शिवकुमारजी काशी लौट आये और यावज्जीवन इसी विद्यालय 'दरभंगा संस्कृत पाठशाला के माध्यम द्वारा उन्होंने अपनी अलौकिक विद्या का वितरण छात्रों में किया और अनेक छात्रों को सुयोग्य विद्वान् बनाकर अपने वैदुष्य की परम्परा को सुप्रतिष्ठित रखा। ऐसा था वैदुष्य शास्त्रीजी का !

---

१. शास्त्रीजी की वाक् स्तम्भित होने की इस घटना का उल्लेख सुप्रसिद्ध मैथिल विद्वान् म० म० पं० बालकृष्ण मिश्र अपने छात्रों तथा सहयोगियों से बहुशः किया करते थे। उन्हीं के मुँह से सुनकर व्याकरणाचार्य पं० निरीक्षणपति मिश्र ने लेखक को यह बात बतलाई थी। इसी आधार पर यह घटना लिखी गई है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६) शास्त्रीजी का स्वाभिमान

पण्डित शिवकुमार शास्त्रीजी के स्वाभिमान एवं औदार्य से उस दिन पण्डित-समाज चकित हो गया था, जब उसने काश्मीर के ख्यातनामा महाराज श्री रणवीर सिंह को उनके आवासस्थल पर अपने दलबल के साथ पहुँच कर पण्डितजी का मनुहार करते देखा। इस घटना की अपनी एक रोचक रामकहानी है। काश्मीरनरेश रणवीर सिंहजी संस्कृत तथा अध्यात्म के बड़े ही निष्ठावान् प्रेमी थे। इन्होंने ही स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती के आदेश से काशी में संस्कृत की एक सुन्दर पाठशाला स्थापित की थी जो इन्हीं के नाम पर 'रणवीर संस्कृत पाठशाला' के नाम से आज भी प्रसिद्ध है और जो उन्नति करती हुई हिन्दू विश्वविद्यालय के अन्तर्गत 'संस्कृत महाविद्यालय' का एक अविभाज्य अंग है। महाराजा प्रायः काशी आया करते थे तथा पण्डितों का समादर-सत्कार करने के लिए पण्डित सभा का आयोजन किया करते थे। एक ऐसे ही प्रौढ़ आयोजन के अवसर पर पण्डित सभा में काशी के गण्यमान्य विद्वान् निमन्त्रित किये गये थे। श्री शिवकुमार शास्त्री उस सभा के लिए तामजाम (पालकी) पर चढ़कर गये थे। पण्डितजी अभी उतर ही रहे थे कि काश्मीरनरेश की दृष्टि उधर आकृष्ट हुई और उनके मुँह से यह वाक्य अनायास ही निकल गया—"मेरा यह सभा-मण्डप तो कुछ दूर नहीं था। शास्त्रीजी पैदल भी आ सकते थे। तामजान तो राजा-महाराजाओं को ही शोभा देता है जो उनकी सम्मानित अवसरों के लिए ही विशिष्ट सवारी है।" ये कटु शब्द शास्त्रीजी के कानों में पड़े और वे बिना उतरे ही तामजान से अपने आवास पर लौट आये। शास्त्रीजी को लौटते देखकर महाराजा को अपने चपल शब्दों के कहने का बड़ा दुःख हुआ। परन्तु करते ही क्या? शिवकुमार पण्डितजी के जाते ही पण्डित-मण्डली उठ खड़ी हुई और यह कहती चली गई कि शास्त्रीजी की अनुपस्थिति में विद्वत् सभा कैसी? सभा भंग हो गई। महाराजा इस अघटित घटना से बड़े ही धर्मसंकट में पड़ गये।

दूसरे ही दिन प्रातःकाल वे अपने दलबल के साथ शास्त्रीजी के रेशमकटरा वाले आवास पर पहुँचे और अपने कथन के लिए क्षमा माँगने लगे। परन्तु पण्डित शिवकुमार जी टस से मस नहीं हुए। बहुत आग्रह करने पर वे अन्त में पसीजे और इस शर्त पर सभा में जाना स्वीकार किया कि सभी पण्डितों को वही दक्षिणा दी जाय जो उन्हें देने के लिए महाराजा ने निश्चय किया हो। बात यह थी कि सभा में शिवकुमारजी के लिए ही विशेष दक्षिणा का आयोजन किया गया था जिसे वे जानते थे और इसीलिए उनका आग्रह था कि सब निमन्त्रित पण्डितों को वही विशिष्ट दक्षिणा मिले, तभी वे जाने को तैयार होंगे। महाराजा ने यह शर्त मान ली। दूसरे ही दिन वह सभा बड़े ठाटबाट के साथ, उल्लासमय वातावरण में सम्पन्न हुई। महाराजा ने विद्वानों का भरपूर सत्कार किया और शास्त्रीजी की कृपा से वह विशिष्ट दक्षिणा प्राप्त कर सभी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान् उनका जयजयकार करते हुए अपने घर लौटे। काशी की विद्वन्मण्डली उनके इस स्वाभिमान तथा औदार्य की चर्चा सर्वदा करती रही।

(७) शास्त्रीजी की अखिल भारतीय कीर्ति

दक्षिण भारत में कोचीन के महाराजा विद्वानों के बड़े ही गुणग्राही, अध्यात्म-परायण तथा आस्तिक-शिरोमणि थे। उन्हीं के राज्य में 'गुरुवायूर' का वह भारत-विख्यात दिव्य मन्दिर है जहाँ साधना कर केरल के विश्रुत महाकवि नारायण भट्ट ने अपनी वातव्याधि से मुक्ति पाई थी। उस देवता की स्तुति में उन्होंने अपने अनुपम स्तोत्रकाव्य **'नारायणीयम्'** की रचना की थी (रचना काल १५९० ई०)। महाराजा प्रतिवर्ष समस्त भारतवर्ष से विद्वानों को निमन्त्रण देकर अपने वहाँ बुलाते थे, कई दिनों तक गम्भीर शास्त्र-चिन्तन चलता था, शास्त्रार्थ होता था और अन्त में सर्वश्रेष्ठ विद्वान् को अग्रपूजा के रूप में विशिष्ट द्रव्य तथा मुद्रा के द्वारा सत्कृत और सम्मानित किया जाता था। प्रतिवर्ष की यही प्रथा थी। काशी के मान्य विद्वान् बालशास्त्री रानाडे प्रतिवर्ष निमन्त्रित होकर वहाँ जाते थे और अखिल भारतीय कीर्ति अर्जित कर सम्मानित होकर लौटते थे। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि वे लोकातीत वैदुष्य से सम्पन्न होने से 'बाल सरस्वती' की उपाधि द्वारा पेशवा विनायक राव से मण्डित किये गये थे। प्रतिवर्ष उन्हें ही अग्रपूजा पाने का गौरव प्राप्त होता था।

शिवकुमार पण्डितजी उन्हीं के शिष्यों में अन्यतम थे। एक बार बालशास्त्री ने शिवकुमारजी से वहाँ चलने के लिए आग्रह किया। 'गुरोराज्ञा गरीयसी'। गुरु-शिष्य दोनों ही साथ-साथ गये और कोचीन महाराजा के अतिथि बनकर सभा में उपस्थित हुए। नियम था कि दक्षिण भारत का कोई विद्वान् शास्त्रार्थ में पूर्वपक्ष उपस्थित करता और उत्तर भारत का विद्वान् उत्तर पक्ष ग्रहण करता। शिवकुमार पण्डित ने प्रथमतः शास्त्रार्थ आरम्भ किया। कोटि-प्रकोटि कई दिनों तक चलती रही। पण्डितजी ने समस्त पण्डित-मण्डली को परास्त होने के लिए बाध्य कर दिया। कोई भी इनके प्रश्नों का उत्तर देने वाला नहीं ठहरा। तब कोचीन महाराजा के आदेश से बालशास्त्री को ही द्वितीय पक्ष लेना पड़ा। गुरु-शिष्य में जमकर शास्त्रार्थ हुआ। गुणग्राही विद्वान् राजा को यह जानने में विलम्ब नहीं हुआ कि शिवकुमार शास्त्रीजी का ही पक्ष प्रबल है। फलतः उस वर्ष यह अनहोनी घटना घटी। गुरु को नियमतः दिया जाने वाला वह विशिष्ट सत्कार उस वर्ष शिष्य को ही प्राप्त हुआ। विजयोपरान्त पण्डित शिवकुमार जी की कीर्ति दक्षिण भारत की पण्डित मण्डली में व्याप्त हो गई और इन्हें अखिल भारत का सर्वश्रेष्ठ पण्डित होने का अभूतपूर्व गौरव प्राप्त हुआ।[1]

---

१. यह विवरण शास्त्रीजी के शिष्य महामहोपाध्याय जयदेव मिश्र के कथन पर आधारित है जिसे वे अपने शिष्यों को सुनाया करते थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८ आज तो यह बात एकदम नवीन और अपूर्व प्रतीत होती है, परन्तु है यह सोलहों आने सत्य। बात यह है कि शिवकुमार पण्डितजी अपने जीवितकाल में ही लोगों की दृष्टि में साक्षात् शिवस्वरूप माने जाने लगे थे। उनके रेशमकटरा वाले मकान के चबूतरे पर फूलमाला की दूकान लगाये एक माली बैठा करता था। जो भी व्यक्ति पण्डितजी से भेंट करने के लिए उस मकान में प्रवेश करता था, वह खाली हाथ नहीं जाता था, प्रत्युत शास्त्रीजी के पूजन के लिए उस माली से माला खरीद कर ही वह प्रविष्ट होता था और शास्त्रीजी को प्रथमतः माला चढ़ा कर ही वह अपना मन्तव्य कहना आरम्भ करता था ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार भक्तगण बाबा विश्वनाथ के दर्शन के लिए फूलमाला से उनका पूजन-अर्चन करते हैं।

पण्डित शिवकुमारजी के प्रति जनता की इतनी अगाध श्रद्धा तथा आदर भावना थी। शायद ही किसी विद्वान् के प्रति जनमानस में सम्मान तथा सत्कार का इतना अतिरेक दृष्टिगत होता होगा। जीवितकाल में ही इतनी श्रद्धा का भाजन बनना प्राक्तन पुण्यों का फल ही तो है। शास्त्रीजी के प्रति जनता के आदर-सत्कार का इससे बढ़कर कौन निदर्शन हो सकता है ?

विश्रुतनामा पण्डितकुलतिलकः शिवकुमारशास्त्रिवरः।
यद्दर्शनादमन्वत विश्वेश्वरदर्शनं लोकाः॥

(घ) शास्त्री जी के प्रतिपक्षी

स्वामी मनीष्यानन्द

पण्डित शिवकुमार शास्त्री का यह संक्षिप्त विवरण उनके प्रचण्ड प्रतिपक्षी के परिचय बिना अधूरा ही रहेगा। ये प्रतिपक्षी और कोई न होकर उनके ही सजातीय पण्डित **द्विवेद हरिनाथ मनीषी** के नाम से प्रख्यात थे। उन्होंने व्याकरण, धर्मशास्त्र आदि का अध्ययन बालशास्त्री से किया था और इन विषयों के मर्मज्ञ विद्वान् के रूप में सर्वत्र विश्रुत थे। उनकी शिवकुमार पण्डित से लाग डांट बड़ी तीव्र थी। उनका यह दुराग्रह था कि शिवकुमार शास्त्री उनका अभिनन्दन और अभ्युत्थान करें। परन्तु शास्त्री जी का कहना था कि आप पाण्डित्य में मुझसे बड़े नहीं हैं। अतः आप मेरे लिए प्रणम्य नहीं हैं। क्या ही थी यह विचित्र अनहोनी। दोनों थे काशीमण्डल के ही निवासी, सजातीय सरयूपारीण ब्राह्मण, काशीस्थ राजकीय पाठशाला के अध्यापक एवं शास्त्रों के मर्मज्ञ उच्चकोटि के समकक्ष विद्वान्। दोनों का विचित्र दुराग्रह अनर्थ का कारण बना। हरिनाथ पण्डित ने इस उद्देश्य से संन्यास ग्रहण कर लिया कि अब तो शिवकुमार जी को नीचा देखना ही पड़ेगा। संन्यासी के प्रणम्य होने से उन्हें अब तो मुझे प्रणाम करना ही पड़ेगा। **भावानन्द सरस्वती** नामक संन्यासी से दीक्षा लेकर हरिनाथ मनीषी अब **मनीष्यानन्द** के नाम से प्रसिद्ध हो गये। तब शिवकुमार जी ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। इस पर उल्लसित होकर मनीष्यानन्द जी ने उनसे कहा कि कहिए, मैंने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपसे प्रणाम करा ही तो लिया। आखिर मुझे आपने प्रणाम किया ही। इस पर शिव-कुमार जी ने बड़ी सरलता से कहा "मैं स्वामी मनीष्यानन्द जी को प्रणाम कर रहा हूँ। पं० हरिनाथ जी तो भूत के गर्भ कहीं विलीन हो गये। वे हमारे प्रणाम-योग्य नहीं थे। स्वामी मनीष्यानन्द जी तो साक्षात् नारायण-रूप हैं सबके प्रणम्य तथा अभिनन्दनीय। उन्हें मैं सहर्ष प्रणाम क्यों नहीं करूगाँ।"

स्वामी मनीष्यानन्द जी बड़े पाण्डित्य से सम्पन्न व्यक्ति थे, सदाचार से मण्डित तथा ब्रह्मवर्चस् से समन्वित। अपने गृहस्थ जीवन में वे संस्कृत कालेज में अध्यापक पद पर प्रतिष्ठित थे। उस समय उन्होंने **'अशौचनिर्णय-त्रिंशत्श्लोकी'** नामक प्राचीन ग्रन्थ का मिताक्षरा और निर्णयसिन्धु आदि धर्मशास्त्रीय निबन्ध ग्रन्थों की सहायता से एक विस्तृत भाष्य संस्कृत में लिखा जो सर्वथा उपादेय एवं संग्रहणीय है।[1] संन्यासी होकर उन्होंने अपने दीक्षागुरु का चरित **'भावानन्द-चरित महाकाव्य'** में लिखकर प्रकाशित कराया। इस महाकाव्य में १५ सर्ग हैं तथा नाना वृत्तों में निबद्ध यह ग्रन्थ काव्य की दृष्टि से बड़ा ही रोचक एवं सुबोध तथा आध्यात्मिक शिक्षण से समन्वित है। अपने आश्रम में ये प्रायः नग्न ही रहा करते थे। बाहर जाते समय वस्त्र धारण करते थे। व्याकरणसम्बन्धी शंकाओं के निरसन के लिए ये यागेश्वर शास्त्री जी के पास बहुशः जाया करते थे—ऐसा वृद्धजनों का कहना है। १९५६ सं० में प्रकाशित **'वेदनिर्णय'** नामक ग्रन्थ की भूमिका में राजपूताने के शाहपुर के नरेश श्री नाहरसिंह वर्मा के राजगुरु षट्शास्त्री पण्डित यमुनादत्त शर्मा ने अपने गुरु रामनाथ द्विवेद का उल्लेख किया है जो अगस्त्यकुण्ड मुहल्ले में रहते थे तथा जो भावानन्द तीर्थ के सेवक बतलाये गये हैं। मनीष्यानन्द स्वामी का नाम गृहस्थाश्रम में हरनाथ द्विवेद था और ये भावानन्द तीर्थ के द्वारा संन्यास आश्रम में दीक्षित किये गये थे। पण्डित द्विवेद रामनाथ जी, द्विवेद हरिनाथ जी के सम्बन्धी (सम्भवतः भाई) प्रतीत होते हैं। उन्होंने 'अशौच निर्णय त्रिंशत श्लोकी' के द्विवेद हरिनाथ जी द्वारा रचित भाष्य का हिन्दी अनुवाद स्वयं किया था तथा स्वयं प्रकाशित भी किया था[2]। **द्विवेद रामनाथ जी** बड़े विवक्षण विद्वान् प्रतीत होते हैं। इनके शिष्य **यमुनादत्त शर्मा** ने, जो वेद के विशेष मार्मिक पण्डित प्रतीत होते है, इनको इन शब्दों में प्रणाम किया है—

पुरुषा! प्रतिपद्यन्ते देवत्वं यदनुग्रहात्।
काशी-कुम्भज-वीथीस्थ-द्विवेदकुलसंभवान्॥

---

१. काशी के ही 'सिद्धविनायक' यन्त्रालय में मुद्रित तथा द्विवेद रामनाथ द्वारा प्रकाशित, १९७१ विक्रमी संवत् (= १९१४ ई०)।

२. हितचिन्तक प्रेस (काशी) में मुद्रित तथा यमुनादत्त शर्मा द्वारा प्रकाशित। समय १९५६ विक्रमी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमद् भावानन्द तीर्थ–श्रीपाद परिचारकान् ।
विद्वच्छ्री रामनाथाख्यान् तान् वन्देऽहं गुरुं सदा ।।

इन पद्यों से प्रतीत होता है कि द्विवेद रामनाथ जी अगस्त्यकुण्ड महल्ले में रहते थे तथा स्वामी भावानन्द तीर्थ के शिष्य थे। ऊपर का अनुमान यदि ठीक हो कि दोनों द्विवेद पण्डित भ्राता थे, तो स्पष्ट है कि द्विवेद हरिनाथ जी भी अगस्त्य कुण्ड महल्ले के ही निवासी थे। स्वामी भावानन्द तीर्थ के दोनों ही शिष्य थे। मनीष्यानन्द जी संन्यासी शिष्य थे तथा रामनाथ जी गृहस्थ शिष्य थे। दोनों उस काल के विशिष्ट विद्वान् थे। हरिनाथ द्विवेद के समान रामनाथ द्विवेद ने भी बालशास्त्री से शास्त्रों का अध्ययन किया था तथा उनके शिष्य थे।

'वेद निर्णय' भी एक विलक्षण ही ग्रन्थ है। करोली के राजा तथा शाहपुरा के नरेश—राजपूताने के इन दोनों राजाओं के वेद के विषय में विभिन्न मत थे। इन्होंने अपने राजपण्डितों के द्वारा वेद के स्वरूप के निर्णय के लिए पत्र-द्वारा शास्त्रार्थ कराया था। खण्डन-मण्डन संस्कृत में लिखित पत्रों द्वारा होता था। सामान्य विद्वानों की जानकारी के लिए ही इन पत्रों का संग्रह इस नाम से प्रकाशित कराया गया है।[1]

द्विवेद रामनाथ जो धर्मशास्त्र के परिनिष्ठित पण्डित प्रतीत होते हैं। उनके द्वारा अनूदित कर्मकाण्डीय ग्रन्थ का परिचय ऊपर दिया गया है। धर्मशास्त्रीय अनूदित ग्रन्थ **मिताक्षरा** के **दायभाग** का हिन्दी अनुवाद है। इसका प्रणयन सं० १९५० विक्रमी तथा प्रकाशन सं० १९६० विक्रमी में विक्टोरिया प्रेस काशी में मुद्रित होकर लेखक के द्वारा ही किया गया है। इस ग्रन्थ की भूमिका में लेखक ने अपने गुरुओं का परिचय दिया है। इस अनुवाद का नाम **आनन्दी** दिया गया है।

स्वामी मनीष्यानन्द जी का स्वभाव बड़ा विलक्षण था। उनके अध्यापन की प्रणाली बड़ी विलक्षण थी। वे किसी सामान्य छात्र को कभी नहीं पढ़ाते थे। गुरु-सेवा के द्वारा अपनी शिष्यता का पूर्ण परिचय देने पर ही वे किसी शिष्य को विद्यादान किया करते थे। डा० गंगानाथ झा ने अपनी आत्मजीवनी (अंग्रेजी) में स्वामीजी के संन्यास ग्रहण करने एवं विचित्र अध्यापन शैली का विवरण स्पष्ट शब्दों में दिया है। डा० भगवान् दास जी स्वामी जी के बड़े ही निष्ठावान् छात्र थे। फलतः वे स्वामी जी की विपुल प्रशंसा किया करते थे।

●

१. शाहपुराधीश नाहरसिंह वर्मा द्वारा प्रकाशित। हितचिन्तक प्रेस, काशी में मुद्रित, सं० १९५६ विक्रमी (= १८९९ ई०)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७

श्री गङ्गाधर शास्त्री तैलङ्ग

(आस्पद—मानवल्ली; उपाधि—महामहोपाध्याय एवं सी० आई० ई०)

काशी के विख्यात गोपाल मन्दिर का विशाल प्राङ्गण। समय अपराह्न का सुहावना समय। जनसंमर्द इतना अधिक कि प्रतीत होता था जनता की उद्दाम सरिता प्राङ्गण को आप्लावित कर रही है। उस भीड़ में वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायियों के संग में विद्यार्थी और पण्डितों का, शिक्षित और अशिक्षितों का, युवक तथा वृद्धों का विशाल जमघट उत्सुकता से किसी विशिष्ट व्यक्ति के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था। वे विशिष्ट व्यक्ति थे वल्लभ सम्प्रदाय के भारतविश्रुत मनीषी, 'भारतभूषण' की महनीय उपाधि से विभूषित, सर्वत्र लब्धकीर्ति विद्वान् प्रज्ञाचक्षु **श्री गट्टूलाल जी** जिन्होंने अपने शतावधान, शास्त्रार्थ तथा काव्य-निर्माण-कौतुक के द्वारा बम्बई तथा गुजरात प्रान्तों में अलौकिक यश का अर्जन किया था। वे ही आज विद्यानगरी काशी के पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिए चुनौती देकर स्वयं अखाड़े में उतर आये थे। उनकी विमल कीर्ति की कहानी लोगों के हृदय में आतंक फैला रही थी और सबकी जिह्वा पर एक ही बात मुखरित हो रही कि आज काशी का मान रहता है या वह अपमान के पंक में लिप्त हो जाती है। भला ऐसे शतावधानी के सामने काशी के किसी विद्वान् को सामना करने का एवं वाद-विवाद करने का साहस हो सकता है क्या? इतने में गट्टूलालजी अपने शिष्यों तथा स्तावकों के साथ सभा में पधारते हैं और अपने शतावधान के अपूर्व कौशल को प्रदर्शित कर जनता को चमत्कृत कर देते हैं। उपस्थित मण्डली ने आश्चर्य से देखा कि काशी का एक पण्डित उनसे सामना करने के लिए आगे बढ़ता है। इन पण्डितजी का शरीर दुबला-पतला है, रंग कुछ श्यामता लिए है, परन्तु मुखमण्डल प्रभापुञ्ज से प्रद्योतित हो रहा है। दोनों में दर्शन के किसी प्रौढ़ विषय पर शास्त्रार्थ छिड़ जाता है। दोनों ओर से उत्तर-प्रत्युत्तर होता है। गट्टूलाल जी घोषणा करते हैं कि यदि कोई विद्वान् मेरी समस्या का वर्णक्रमानुसार पूर्ति कर देगा, तो मैं अपने को पराजित मान लूंगा।

बात यह थी कि समस्या बड़ी ही कठिन थी और उसकी अक्षर के क्रम से पूर्ति करनी थी। अब तक किसी ने इसकी पूर्ति नहीं की थी। इसलिए इस विषम समस्या की पूर्ति किसी से न हो पावेगी, शतावधानीजी को इसका पूरा विश्वास था और इसी विश्वास से अनुप्राणित होकर गट्टूलाल जी अपनी आपाततः असमाधेय समस्या कह सुनाते हैं—

बभौ मयूरो लवशेषसिंहः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशी के पण्डितजी भारतमार्तण्ड के मुख से समस्या के निःसरण के उत्तर क्षण में इसकी पूर्ति कर डालते हैं—

अनेक – वर्णक्रमरीतियुक्तः
कखागघाङ्च्छजझोञटौठः।
अडंढणस्तोऽथ दधौ न पम्फुल्
"बभौ मयूरो लवशेषसिंहः॥"[1]

विस्मित जनता के मुख से महान् साधुवाद सुनाई देने लगता है। गुणग्राही भारतमार्तण्ड भी अपने मुख से शास्त्रीजी की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगते हैं। लोग आनन्द से उछलने लगते हैं। काशी की मर्यादा रह जाती है। काशी का मान बच जाता है। विजयोन्मत्त गट्टूलालजी को भी शास्त्रीजी की हठात् प्रशंसा करनी पड़ती है।

इस ऐतिहासिक शास्त्रार्थ में जिस शास्त्रीजी ने अपने कविकौशल का चारु चमत्कार दिखलाकर पण्डितमण्डली को मन्त्रमुग्ध कर दिया वे ही हैं हमारे चरितनायक **महामहोपाध्याय गंगाधर शास्त्री सी० आई० ई०।**

पूर्व पुरुष

काशी की विद्वन्मण्डली में श्री गंगाधर शास्त्रीजी का स्थान बड़ा ही उदात्त, उच्चतम तथा उन्नत पदासीन माना जाता है। वे प्रतिभा के जितने मानी थे, लेखनी के

---

१. **अन्वय**—अथ अनेकवर्णक्रमरीति-युक्तः कखागघाङ् अच्छजझः अटौठः अडण्ढणः लवलेषसिंहः मयूरः बभौ।

संस्कृत में व्याख्या—अथ ग्रीष्मकालान्तरं वर्षायां—अनेक वर्णानां क्रमरीत्यायुक्तः = विविधवर्णविभूषितः, कखागघाङ् = कखेन हासेन अकां वक्रगामिनां सर्पाणां अघं भक्षणम् अच्चति आद्रियते इति कखागघाङ्। अच्छजझः = अच्छं शोभनं जातः झः भूषणरूपो यस्य स, आनां पक्षिणां गायकानां वा टं ध्वनिं औठति तिरस्करोति इति अटौठः। अडण्ढणः अचपलः लवौ न्यूनौ शेषसिंहौ यस्मात् स लेवशेष सिंहः मयूरः तं खेदं न दधौ, किन्तु पम्फुल सन् प्रसन्नौभूत्वा बभौ।

हिन्दी भावार्थ—वर्षा ऋतु के आने पर अनेक वर्णवाला अनायास ही सर्पों को खा जाने वाला सुशोभित एवम् अपनी ध्वनि से अन्य ध्वनियों को तिरस्कृत करने वाला तथा शेषनाग और सिंह को अपनी शोभा से अनादृत कर देने वाला मयूर पक्षी खिन्न नहीं हुआ बल्कि प्रसन्न हुआ। अन्य पक्षियों और पशुओं को वर्षा में क्लेश होता है परन्तु मयूर हर्षित होता है।

इस कविता में क अक्षर से लेकर ह तक सभी अक्षर वर्णमाला के क्रम के अनुसार रखे गये हैं। इस समस्या की पूर्ति करना बड़ा ही कठिन है। परन्तु शास्त्रीजी ने अपनी लोकोत्तर प्रतिभा के बल से इस समस्या की पूर्ति बड़ी ही सुन्दर रीति से अनायास की है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उतने ही धनी थे और लोकव्यवहार के भी वे उतने ही कुशलवेत्ता थे। उनका जन्म तो काशी में हुआ था, परन्तु उनका मूल स्थान था मैसूर के प्रसिद्ध नगर बंगलोर का निकटस्थ 'यस्सरगट्टा' नामक गाँव। वहीं के अग्रहार में गौतम गोत्री श्रौतस्मार्त कर्मधुरन्धर सुब्रह्मण्य शास्त्री मानवल्ली नामक विज्ञ ब्राह्मण रहते थे। उन्हीं के पुत्र नृसिंह शास्त्री बाल्यकाल में ही माता-पिता की मृत्यु के कारण, अनाथ अवस्था में, बंगलोर में अपने मामा के आश्रय में आकर रहने लगे। वहीं रहकर उन्होंने अपने परम्परागत कृष्णयजुर्वेद की आपस्तम्ब शाखा का विधिवत् अध्ययन कर साहित्य-शास्त्र में अलौकिक पाण्डित्य सम्पादन किया। इसके पश्चात् वे पैदल ही काशी के लिए चल पड़े। वय उनका केवल अठारह वर्ष का था। न्याय, वेदान्त आदि शास्त्रों के गाढ़ अध्ययन की तीव्र लालसा उन्हें काशी खींच लाई थी। इन शास्त्रों का पाण्डित्य, पूर्व जन्म में अर्जित विद्या के समान प्राप्त कर, साहित्य में अलौकिक प्रतिभा-सम्पन्न विद्वान् के रूप में उनकी सर्वत्र प्रसिद्धि हो गई। काशी में ही उन्होंने विवाह किया और काशिराज ईश्वरीनारायण सिंह के सभा-पण्डित के पद पर प्रतिष्ठित हो गये। अपने प्रभुवर के आदेश से उन्होंने हिन्दी में **'साहित्य सागर'** की रचना की तथा संस्कृत में **'काव्यात्म संशोधन'** का तथा स्कन्द पुराण के अन्तर्गत किसी अंश पर **'शिवभक्तिविलास'** नामक टीका का प्रणयन किया।

जन्म

नृसिंह शास्त्री के इस ज्येष्ठ पुत्र का जन्म सं० १९१० विक्रमी (= १८५३ ई०) में गंगादशहरा के पवित्र अवसर पर हुआ था। अपनी कुल-परम्परा के अनुसार पिता ने पुत्र का जन्म-नाम 'सुब्रह्मण्य' रखा, परन्तु नानी ने गंगादशहरा के दिन जन्म लेने के कारण बालक का नाम **गंगाधर** रखा और यही नाम चारों ओर प्रसिद्ध हो गया। बालक इसी नाम से पुकारा जाने लगा। दैव का दुर्योग देखिए कि तीन साल के दुधमुँहे शिशु को छोड़कर माता कालकवलित हो गयीं। पिता ने बालक के बाल्य-संस्कार सम्पन्न कर स्वयं ही आरम्भिक शिक्षा देना आरम्भ किया। बालक की बुद्धि इतनी प्रखर थी कि आठ वर्ष के वय में उसे पञ्चकाव्यों में व्युत्पत्ति प्राप्त हो गई।

अध्ययन

उपनयन संस्कार होने के बाद उस युग के सबसे बड़े वैदिक पं० बालकृष्ण भट्ट की पाठशाला में प्रविष्ट होकर इन्होंने अपनी वैदिक शाखा—आपस्तम्ब शाखा—के कृष्णयजुर्वेद तथा उसके अंगों का विधिवत् अध्ययन किया। इस प्रकार सोलह वर्षों तक वेद, वेदाङ्ग, कर्मकाण्ड तथा काव्यशास्त्र का अध्ययन कर प्रतिदिन वर्धिष्णु प्रतिभा के साथ इन्होंने विद्या ग्रहण की। पिता की आज्ञा से 'बनारस संस्कृत कालेज' में अध्ययन के लिए इन्होंने प्रवेश प्राप्त किया और दस वर्षों तक यहीं निरन्तर स्वाध्याय करते रहे। वहाँ इनके गुरु थे पं० राजाराम शास्त्री जो व्याकरण शास्त्र में पतञ्जलि के नूतन अवतार माने जाते थे। शास्त्रीजी ने इस बालक में विशेष प्रतिभा का प्रकर्ष

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखकर परिष्कार के साथ सम्पूर्ण व्याकरण, धर्मशास्त्र, सांख्ययोग और वेदान्तदर्शन की विधिवत् शिक्षा दी। संवत् १९३२ वि० (१८७५ ईस्वी) में संन्यास ग्रहण के कुछ वर्षों बाद राजाराम शास्त्री कैलासवासी हो गये, तब गङ्गाधर शास्त्री को इस घटना से बड़ा धक्का लगा। बात यह थी कि ये उस समय पातञ्जल योगसूत्र के 'व्यासभाष्य' का अध्ययन अपने गुरुजी से कर रहे थे। पण्डित राजाराम शास्त्री अलौकिक विद्वान् होने के अतिरिक्त एक महनीय योगी भी थे। इसलिए व्यासभाष्य के रहस्यों का उद्घाटन वे जितनी सुगमता तथा विद्वत्ता से करते थे, उतनी क्षमता किसी अन्य पण्डित में नहीं थी। गङ्गाधर शास्त्री उतने योग्य अध्यापक के न मिलने से हताश हो गये थे। एक रात को वे रोते-रोते सो गये, स्वप्न में अपनी दीनहीन दशा गुरुजी से कह सुनाई। गुरुजी ने स्वप्न में दर्शन देकर व्यासभाष्य के अवशिष्ट अंश का अध्यापन करना स्वीकार किया। फलतः अपने दिवंगत गुरुजी से इस ग्रन्थ का विधिवत् अध्ययन कर इन्होंने अपनी अभिलाषा पूरी की।

स्वप्न में गुरु से शिष्य का अध्ययन

शिष्य की प्रगाढ़ गुरुभक्ति एवं तीव्र जिज्ञासा के अतिरेक द्वारा दिवंगत गुरु तथा अलौकिक महापुरुष स्वप्न में अपना दर्शन देते हैं तथा शिष्य की शास्त्रविषयक जिज्ञासा का पूर्णतः समाधान कर अन्तर्हित हो जाते हैं। ऐसी ही अपूर्व घटना शिवराम किंकर योगत्रयानन्द स्वामी के जीवन में घटी थी जिसे पण्डित गोपीनाथ कविराज ने लेखक को बतलाया था और अब तो यह घटना उनके जीवन-चरित में भी उल्लिखित उपलब्ध होती है।[1] ये योगत्रयानन्दजी गृहस्थ सन्त थे और कविराजजी के गुरुस्थानीय थे। इनका पूर्व नाम था शशिभूषण सान्याल जो विशेषतः 'सान्याल महाशय' के अभिधान से ही जनता में परिचित थे। उनकी तीव्र आकांक्षा थी पाणिनि व्याकरण के सर्वोच्च ग्रन्थ, महर्षि पतञ्जलि प्रणीत महाभाष्य के अध्ययन की। कलकत्ते में इस विषय के प्रख्यात विद्वान् थे—महामहोपाध्याय पण्डित गोविन्द शास्त्री जो वाराणसी संस्कृत कालेज में प्राध्यापक पण्डित दामोदर शास्त्री जी के भाई थे। सान्याल महाशय ने शास्त्रीजी से पढ़ने की अपनी अभिलाषा प्रकट की। शास्त्रीजी टालते जाते थे आज नहीं कल। कल नहीं परसों। एक दिन इन्होंने शास्त्रीजी का पैर पकड़कर अत्यन्त दीन भाव से निवेदन किया—'अवश्य थोड़ा भी समय दीजिए। कोई पढ़ाने वाला नहीं है।' शास्त्रीजी ने क्रुद्ध होकर पैर फटकार कर कहा—"चले जाओ यहाँ से। मुझे फुरसत नहीं है।" शिवराम किंकरजी बड़े मर्माहत हुए। उस रात को उन्होंने भोजन भी नहीं किया और जिज्ञासा की पूर्ति की तो बात अलग रही, अपनी अवमानना से वे विशेष दुःखित हुए। रात को नींद नहीं आई। बड़े ही दुःखा-

---

१. मनीषी की लोकयात्रा : लेखक भगवतीप्रसाद सिंह, द्वितीय सं०, पृ० १०५-१०६ (वाराणसी १९८० ई०)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिरेक में समय काटने लगे कि मेरे अज्ञान को दूर करने वाला कोई व्यक्ति नहीं दीखता। हा हन्त ! इतने में आँख लग गई। दो बजे रात को उन्होंने एक विचित्र अनुभव किया। उन्हें झटका लगा। देखा कमरे में प्रकाश हो रहा है।

सामने शून्य में एक महापुरुष खड़े दिखाई दिये—जटाधारी, वृद्ध शरीर, निलम्बित श्मश्रु, करुण नेत्र। महापुरुष ने पूछा—आज तुमने कुछ भी भोजन नहीं किया। सान्याल महाशय ने कहा—मुझे तीव्र वेदना हो रही है। महाभाष्य का कोई मुझे उपदेशक नहीं मिल रहा है जो उसकी पंक्तियों का रहस्य मुझे समझा दे। महापुरुष ने सान्त्वना देते हुए कहा—घबराओ नहीं। किसी ने तुमको महाभाष्य नहीं पढ़ाया, तो क्या हुआ। मैं पढ़ाऊँगा। मैंने ही उसको रचना की है, तो क्या उसे पढ़ा नहीं सकता ? यह सुनकर शिवराम किंकर महाशय गद्‌गद हो गये और महापुरुष से पढ़ने के लिए महाभाष्य की पोथी सामने रख दी। क्या पढ़ाया ? यह तो उन्हें याद नहीं, परन्तु पढ़ाने का आभास अवश्य रहा। जागने पर वे इस घटना का स्मरण कर आनन्द से विह्वल होकर रोने लगे। प्रातःकाल होने पर इस घटना का विचित्र प्रभाव पड़ा उनके ऊपर। महाभाष्य का जो भी स्थल वे निकालते थे, वह उनका पठित प्रतीत होता था। उसके समझने में किसी प्रकार का सन्देह उनके मन में होता ही न था। समग्र महाभाष्य एक भावेन ज्ञानगोचर हो गया। अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'आर्य-शास्त्र-प्रदीप' में उन्होंने पतञ्जलि के व्याख्यान का किसी-किसी स्थान पर उल्लेख किया है—विशेषकर पुल्लिग तथा स्त्रीलिंग का रहस्य समझाने के विषय में प्रवृत्ति-लक्षण और संस्थान-लक्षण का विश्लेषण बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

इसी प्रकार योगत्रयानन्दजी ने कविराजजी से एक दूसरी घटना भी बताई थी—जिसमें उन्होंने शिवरात्रि की रात्रि में गौतम ऋषि से न्यायशास्त्र का अध्ययन किया था। इन दोनों घटनाओं के विषय में गोपीनाथ कविराजजी का कहना था कि अब यह सब विषय साधारण मनुष्य की धारणा के अयोग्य है अवश्य, परन्तु सर्वथा सत्य है। असत्य कुछ नहीं है।

फलतः योगिराज राजाराम शास्त्रीजी का अपने एकनिष्ठ शिष्य गङ्गाधर शास्त्रीजी के सामने स्वप्न में उपस्थित होकर व्यासभाष्य के तत्तत् अंशों के पढ़ाने की घटना भी यथार्थतः सत्य है, भले ही वह साधारण मानव बुद्धि से अगम्य-अशक्य प्रतीत होती हो।

तदनन्तर इन्होंने बालशास्त्री जी से शब्द खण्ड तथा अवशिष्ट प्रौढ़ विषयों का भी गम्भीर अध्ययन किया। छब्बीस वर्ष के वय में काशिराजकीय संस्कृत कालेज में अध्ययन की समाप्ति पर कालेज के पण्डितों ने इनकी प्रतिभा तथा तलस्पर्शी विद्वत्ता के संबंध में जो प्रमाण-पत्र दिया था उसके देखने से पता चलता है कि इन्होंने संस्कृत

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रौढ़ दर्शनशास्त्र के ग्रन्थों का तथा साहित्य-शास्त्र का गम्भीर अध्ययन कर उनमें प्रौढ़ता प्राप्त की थी। यह प्रमाण-पत्र आगे दिया जा रहा है।

इनके गुरु पण्डित बालशास्त्री इनकी अद्भुत प्रतिभा तथा प्रकाण्ड पाण्डित्य से इतने प्रभावित थे कि वे कहा करते थे "यह मेरी ही मूर्ति है।" धर्मशास्त्र में व्यवस्था देने के अवसर पर वे अपने इस सुयोग्य शिष्य को ही यह व्यवस्था लिखकर देने के लिए कहते थे। इस प्रकार शिष्य के पाण्डित्य पर गुरु की दृढ़ आस्था थी।

सन् १८८७ ई० में महारानी विक्टोरिया के शासन काल में जुबिली के अवसर पर काशी की विद्वन्मण्डली ने एक ऐसे ग्रन्थ के निर्माण का निर्णय किया जो सनातन धर्म के विशुद्ध स्वरूप का परिचायक हो और आजकल के ढुलमुल विश्वास वाले लोगों के सामने धर्म का सच्चा स्वरूप प्रतिष्ठापित करे। यह दुरूह कार्य पण्डित गंगाधर शास्त्री जी को सौंपा गया। शास्त्री जी ने बड़े परिश्रम से महाभारत, रामायण तथा धर्मशास्त्र आदि ग्रन्थों का अनुशीलन कर "**शाश्वत धर्मदीपिका**" नामक ग्रन्थ का संकलन किया जो सभा की अनुमति से "काशी विद्या सुधानिधि (पण्डित पत्र)" में प्रकाशित हुआ। इसी समय इन्होंने अपने गुरु पण्डित राजाराम शास्त्री जी का जीवन-चरित गद्य-पद्यमयी देववाणी में लिखा जो इसी पत्र के दशम भाग में प्रकाशित हुआ था।

अध्यापन

सम्वत् १९३६ विक्रमी (सन् १८७६ ई०) में तत्कालीन संस्कृत कालेज के अध्यक्ष डा० थीबो ने साहित्य एवं दर्शन शास्त्र के अध्यापक के पद पर शास्त्री जी की नियुक्ति की। इसी समय इनका शास्त्रार्थ प्रसिद्ध विद्वान् पण्डित गट्टूलाल जी से हुआ था जिसमें इनकी विजय हुई थी। इस विजय से इनकी प्रसिद्धि समस्त भारतवर्ष में हो गई। इनकी इस प्रतिभा तथा प्रसिद्धि से आकृष्ट होकर गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज, कलकत्ता के प्रिन्सिपल म० म० **महेशचन्द्र न्यायरत्न** सी० आई० ई० ने पं० गंगाधर शास्त्री के घर स्वयं पधार कर इनसे प्रार्थना की कि आप कलकत्ता मेरे कालेज में चलकर अध्यापन करने की कृपा करें। इसके लिए वे पाँच सौ मुद्राएँ देने के लिए उद्यत थे; परन्तु शास्त्री जी ने प्रथमतः अपने पिता की आज्ञा से और द्वितीयतः काशीवास के लोभ से इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। इस प्रकार चालीस रूपये की वृत्ति को स्वीकार कर उससे बारह गुने अधिक वेतन का इन्होंने परित्याग कर दिया जिससे शास्त्री जी की त्याग-वृत्ति का पता भली भाँति चलता है।

"चत्वारिंशत्-मुद्रिका-मात्रवृत्तिः,
काले तस्मिन् शास्त्रिवर्यः कुटुम्बी।
काशीवासैकाग्रहस्त्यक्तवान् तां,
वृत्तिं चान्यामर्द्धसाहस्रमुद्राम्॥"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थ-रचना

संवत् १९३९ वि० (सन् १८८२ ई०) में बालशास्त्री के कैलासवासी हो जाने पर गंगाधर शास्त्री ने अपने इस द्वितीय गुरु का भी जीवनचरित गद्यपद्यमयी संस्कृत वाणी में लिखकर 'पण्डित' में प्रकाशित किया। इसके पश्चात् डॉ० थीबो के अनुरोध से इन्होंने (१) पदमञ्जरी, (२) रसगंगाधर, (३) वाक्यपदीय, (४) तन्त्र-वार्तिक आदि दुरूह ग्रन्थों को टिप्पणी तथा परिष्कार आदि से अलंकृत करके 'पण्डित पत्र' में तथा 'विजयानगरम् संस्कृत सीरीज' में प्रकाशित कराया। १९४४ विक्रमी संवत् में (=१८८७ ई० में) महारानी विक्टोरिया के प्रथम जुबिली महोत्सव के अवसर पर दिल्ली के केन्द्रीय अंग्रेजी शासकों ने इन्हें 'महामहोपाध्याय' की पदवी से विभूषित किया। यह स्मरणीय है 'महामहोपाध्याय' की महनीय उपाधि से इसी महोत्सव के स्मारक के रूप में संस्कृत के विद्वानों को प्रथम बार अलंकृत किया गया था। यह उपाधि शास्त्रीजी को केवल ३४ वर्ष के वय में ही प्राप्त हो गई थी। काशीनरेश ने भी अनेक क्षौम वस्त्र एवं परिधान प्रदान कर शास्त्रीजी का सम्मान एवं समादर किया था।

यज्ञ का अनुष्ठान

पं० गंगाधर शास्त्रीजी के जीवन कार्य की एक अन्य दिशा है और वह है श्रौत यज्ञों का विधिवत् परम्परया सम्पादन। सं० १९५३ वि० (=१८९६ ई०) में काशीवासी अग्निहोत्री पं० सदाशिव दीक्षित को ज्योतिष्टोम यज्ञ करने की महती अभिलाषा थी। परन्तु अकिंचन होने के कारण वे सर्वथा असमर्थ थे। अतः शास्त्रीजी से उन्होंने अपनी मनोभिलाषा प्रकट की। शास्त्रीजी स्वयं तो उनकी आर्थिक सहायता करने में समर्थ नहीं थे, परन्तु इस ब्राह्मण की यज्ञकर्म में दृढ़ निष्ठा को देखकर तथा इसी मार्ग से श्रौत विद्या की उन्नति की सम्भावना को परिलक्षित कर ये लुप्तप्राय इस यज्ञ के सम्पादन में जुट गये। इन्होंने केरल से सामवेदी विद्वानों को बुलाकर यज्ञ में प्रयुक्त होनेवाले यज्ञीय सामगायन को काशी के नवयुवक उदीयमान वैदिकों को सिखलाया। इस प्रकार इन्होंने इस यज्ञ का विधिवत् सम्पादन कर श्रौत यज्ञों के विधान का मार्ग प्रशस्त कर दिया। शास्त्रीजी के आचार्यत्व में यज्ञ के विधान, यज्ञ-सम्भार तथा समारोह को देखकर काशी की श्रद्धालु जनता पुलकित हो उठी। इस यज्ञ के सम्यक् सम्पादन से आकृष्ट होकर नेपाल के राजपण्डित आचार्य शिरोमणि शर्मा ने भी सोमाधान पुरस्सर त्रेताग्नि यज्ञ कराने के लिए शास्त्रीजी से प्रार्थना की। शास्त्रीजी ने इस यज्ञ को भी सम्पन्न कराया। इन्हीं राजपण्डित ने दूसरी बार 'अग्निष्टोम' तथा 'आप्तोर्याम यज्ञ' भी शास्त्रीजी के आचार्यत्व में सम्पादित किया। इस यज्ञ की परम्परा सैकड़ों वर्षों से लुप्तप्राय हो गई थी। अतः इस यज्ञ के सम्पादन में शास्त्रीजी को घोर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिश्रम करना पड़ा था। इस प्रकार शास्त्रीजी के द्वारा पुनः प्रवर्तित लुप्तप्राय श्रौत गंगा का प्रवाह कालक्रम से सूखता हुआ आज भी कथमपि जीवित है।

सम्मान

राजकीय संस्कृत कालेज के प्रिंसिपल डा० वेनिस शास्त्रीजी को बड़े आदर एवं श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। वे प्रिंसिपल होते हुए भी शास्त्रीजी को अपना गुरु मानकर इनका चरण-स्पर्श कर प्रणाम करते थे। सन् १९०३ ई० में लार्ड कर्जन ने वाराणसी पधारने की कृपा की थी। लाट महोदय के सम्मानार्थ यहाँ जो आयोजन किया गया था उससे प्रसन्न होकर कर्जन ने शास्त्रीजी की बड़ी प्रशंसा की थी। इसी अवसर पर इनको सी० आई० ई० की पदवी से सरकार ने विभूषित किया था। यह स्मरण रखना चाहिए कि सी० आई० ई० की यह विशेष सम्मानित उपाधि राजनेताओं, राज-कर्मचारियों को—संस्कृत के विद्वानों को नहीं—ही दी जाती थी। म० म० बापूदेव शास्त्री को छोड़कर शास्त्रीजी ही ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें ब्रिटिश सरकार ने यह उपाधि प्रदान की थी।

परिवार

श्रीगंगाधर शास्त्री के दो पुत्र थे–(१) पं० ढुण्ढिराज शास्त्री और (२) पं० मालचन्द्र शास्त्री। शास्त्री जी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र पण्डित ढुण्ढिराज शास्त्री का बड़े प्रेम से और परिश्रम से सकल शास्त्रों का अध्यापन किया था। ढुण्ढिराज शास्त्री ने अपने विद्वान् पिता के चरणों में बैठकर व्याकरण, दर्शन, काव्य आदि शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन कर प्रगाढ़ पाण्डित्य प्राप्त किया था। परन्तु दैव-दुर्विपाक से शास्त्री जी के इस सुयोग्य ज्येष्ठ पुत्र का असामयिक निधन सन् १९०४ ई० में हो गया जिससे शास्त्री जी पर वज्रपात हो गया। ज्येष्ठ पुत्र की मृत्यु से इनका हृदय टूट गया। तबसे ये बहुत उदास तथा खिन्न रहने लगे। इसी भीषण दुःख को विस्मृत करने के लिए शास्त्री जी ने समस्त भारत की तीर्थ यात्रा की थी। इस यात्रा से लौटने के बाद इन्होंने **'अलि-बिलासि संलाप'** जैसे महनीय दार्शनिक काव्य की रचना की थी।

इनके कनिष्ठ पुत्र पण्डित भालचन्द्र शास्त्री गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज, वाराणसी में साहित्य विभाग के प्रधान अध्यापक थे। इस प्रकार इन्होंने अपने पिता की परम्परा को जीवित रक्खा। शास्त्री जी प्रयाग विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी सभा के सदस्य चुने गये थे इसी समय ये सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० गंगानाथ झा जी की मीमांसा शास्त्र पर लिखी गई डी० लिट्० की थीसिस के परीक्षक थे। संवत् १९७० विक्रमी (=१९१३ ई०) में ज्येष्ठ शुक्ल प्रतिपद को इन्होंने अपने पांचभौतिक शरीर को छोड़ कर शिवत्व को प्राप्त किया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्यमण्डली

पं० गङ्गाधर शास्त्री के शिष्य वर्ग की परम्परा बड़ी लम्बी है जिनमें ये तीन विद्वान् अपने विषय के बड़े ही प्रतिभाशाली मनीषी थे। (१) म० म० पण्डित रामावतार शर्मा, (२) म० म० पण्डित नित्यानन्द पर्वतीय और (३) पण्डित दामोदरलाल गोस्वामी। इनमें से प्रथम दोनों विद्वानों का परिचय यथास्थान आगे दिया जायेगा। पण्डित **दामोदरलाल गोस्वामी** साहित्य और न्यायशास्त्र के विचक्षण विद्वान् थे। साहित्य शास्त्र का चूड़ान्त अध्ययन इन्होंने गङ्गाधर शास्त्रीजी के चरणों में ही बैठकर किया था। परन्तु नव्य-न्याय में प्रौढ़ि प्राप्त करने की दृष्टि से इन्होंने नदिया जाकर इस शास्त्र का विशेष अध्ययन किया। नव्य-न्याय के इस अध्ययन की छाया इनके साहित्य के अध्यापन पर भी पड़ी थी। ये वृन्दावन के किसी चैतन्यमठ के महन्थ थे, अतएव चैतन्य सम्प्रदाय के ग्रन्थों का अध्ययन-अध्यापन एवं सम्पादन किया करते थे। इनका स्वच्छन्द जीवन काशी में ही व्यतीत हुआ।

पं० दामोदर लाल गोस्वामी की विद्वत्ता की प्रशंसा में यह श्लोक ठीक ही चरितार्थ होता है --

नाना-कल्प-विकल्प-जाल-कलितां, प्रौढोक्ति गूढाशयां,
साहित्याध्व-विहारिणीमपि पुनस्तर्कैः सदैवोज्ज्वलाम्।
येषां वाचमकुण्ठितां प्रतिपद-प्राप्त-प्रकर्षां चिरं,
श्रण्वन् गीष्पतिरात्तविस्मयभर-व्यात्ताननो जायते॥

म० म० गङ्गाधर शास्त्री के अन्य शिष्यों के नाम निम्नांकित है :

(१) **पं० हेमराज शर्मा** (नेपाल महाराज के राजगुरु)।

(२) **पं० बालबोध मिश्र**—(गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, काशी के मीमांसा तथा वेदान्त के प्राध्यापक)।

(३) **पं० दिवाकर भट्ट**—(काशीस्थ भट्टकुल के प्रतिष्ठित विद्वान्)।

(४) **पं० नागेश्वर धर्माधिकारी**—(काशीस्थ प्रसिद्ध धर्माधिकारी उपनाम वाले महाराष्ट्र ब्राह्मण कुल में उत्पन्न संस्कृत कालेज के अध्यापक)।

(५) **पञ्चनदीय पण्डित सुदर्शनाचार्य**—ये संगीत, साहित्य, दर्शन शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे। ये रामानुजी वैष्णव थे। संगीत शास्त्र के ऊपर भी इन्होंने एक पुस्तक हिन्दी में लिखी है जिसका प्रकाशन इण्डियन प्रेस, प्रयाग से हुआ है। ये वीणावादन में अत्यन्त निपुण थे और वीणा को बहुत मधुर रूप में बजाते थे। अपनी मृत्यु के पहिले इन्होंने अपनी इस वीणा को गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज को अपनी ओर से रिक्थ के रूप में दे दिया।

सुदर्शनाचार्य ने वेदान्तविषयक दो ग्रन्थों का प्रणयन किया है--(१) **अद्वैत-चन्द्रिका**—इस ग्रन्थ में अद्वैतवेदान्त के सिद्धान्तों का बड़ी सुबोध भाषा में विवरण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत किया गया है। प्रमाणों के रूप में श्लोक उद्धृत किये गये हैं तथा उनका तात्पर्य भी समझाया गया है। (२) **विशिष्टाद्वैताधिकरणमाला**—इस प्रमेयबहुल ग्रन्थ में विशिष्टाद्वैतमतानुसारी ब्रह्मसूत्रों के समग्र अधिकरणों का शास्त्रीय पद्धति से निरूपण किया गया है। श्रीभाष्य में जिन तत्त्वों का विस्तृत विवेचन है उन्हीं का यहाँ सरलभाषा में संक्षेप में परिचय दिया गया है। इन दोनों ग्रन्थों की प्रशंसा में उस युग के महनीय पण्डितों - गंगाधर शास्त्री, कैलासचन्द्र शिरोमणि, राममिश्र शास्त्री आदि की प्रशस्ति दी गई है कि ये दोनों ग्रन्थ सिद्धान्तों का ठीक प्रतिपादन करते हैं।[1]

पण्डित सुदर्शनाचार्यजी पंजाब के निवासी थे। काशी में ब्रह्माघाट पर निवास करते थे। उदारचेता इतने थे कि श्रीवैष्णव होने पर भी भगवान् शंकर की भव्य स्तुति की है अपनी **शिवाष्टपदी** में। इससे इनकी काव्यरचना-चातुरी का सद्यः परिचय मिलता है—

भज विषमविलोचनवेशम्।
चन्द्रकिरण-समशुभ्रसुदर्शन-शैलनितम्बनिवेशम्॥
व्यालवलय-कमनीय-करम्बितभूषितहस्तसरोजम्।
शैलसुता - वदनेन्दुविलोचनचञ्चलहृदयमनोजम्॥

(६) **महाराजा प्रभुनारायण सिंह**—ये काशीनरेश थे तथा साहित्य के प्रेमी थे। बहुत संभव है कि महाराजा जो कविता लिखते थे उसकी प्रेरणा शास्त्री जी से प्राप्त करते हों। महाराजा की कविता शास्त्री जी द्वारा सम्पादित तथा प्रकाशित 'सूक्तिसुधा' नामक पत्रिका में प्रकाशित भी होती थी।

(७) **पं० रामचन्द्र शास्त्री काले** - ये बाबा साहब के नाम से प्रसिद्ध थे। इनकी कोई गृहस्थी नहीं थी। अतः अपने शिष्यों को आश्रय तथा भोजन देने के अतिरिक्त प्रेम से उनका अध्यापन भी करते थे।

श्रद्धाञ्जलि

अपने श्रद्धेय गुरु की स्तुति में पं० रामावतार शर्मा का यह श्लोक सदा श्लाघनीय रहेगा :

गताऽर्थोद्य जगन्नाथो, नापेक्ष्योऽप्ययदीक्षितः।
कटुवाग् वेङ्कटार्योऽपि, सति गंगाधरे गुरौ॥

इस प्रशस्ति की विशेषता यह है कि गंगाधर शास्त्री जी से तुलना के लिए उद्धृत तीनों ही विद्वान् द्रविड देश के निवासी थे। प्रशस्तिकार शर्मा जी का आशय यह है कि दक्षिण देश के इन तीन प्रख्यात तथा वरिष्ठ कवियों की तुलना में दक्षिणदेशीय तैलङ्ग गंगाधर शास्त्री जी अधिक प्रतिभाशाली थे।

---

१. हरिदास गुप्त, चौखम्भा संस्कृत पुस्तकालय, काशी से प्रकाशित, सन् १९०२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० नारायण शास्त्री खिस्ते ने अपने 'विद्वत्चरित पंचकम्' काव्य में इनकी शिष्य-मण्डली तथा परिवार के सदस्यों का उल्लेख एक ही श्लोक में इस प्रकार किया है :

"नित्यानन्दवपुः निरन्तरगलद्वात्सल्यपूरोत्तरो,
नागेश – प्रणय – प्रसाधित – महाहारप्रकारोद्धरः ।
रामे लक्ष्मणसंयुते कृतमना यो भालचन्द्रात्मकः,
श्रीदामोदरपाणिसेवितपदः, पायात् स गङ्गाधरः ॥

शास्त्री जी की प्रकाण्ड विद्वत्ता के संबंध में खिस्ते जी ने कितना सुन्दर वर्णन किया है :

"ग्रन्थग्रन्थिविभेदनेषु पटुता, व्याख्यानधाटी च सा;
मध्ये हास्यकथाप्रसङ्गकलनात् तत् शिष्यधीशोधनम् ।
शिष्येष्वात्मजनिर्विशेषमुदयत्स्नेहं च तद्वीक्षणं;
सर्वं केवलमेकले गुरुवरे गङ्गाधरे वीक्षितम् ॥ १ ॥

सा लोकव्यवहारधीरतिशिता, सा वस्तुमर्मज्ञता,
लोकाकर्षणकर्मठा द्युतिमयी, दृष्टिश्च शम्पानिभा ।
काये सा लघुता निसर्गजनिता, सा वाचि गम्भीरता,
सर्वं पण्डितपुंगवे गुरुवरे गङ्गाधरे संस्थितम् ॥ २ ॥

कहने की आवश्यकता नहीं कि खिस्ते जी का यह वर्णन शास्त्रीजी के संबंध में अक्षरशः सत्य है ।

काव्यरचना की आलोचना

महामहोपाध्याय पं० गङ्गाधर शास्त्री जी की अनुपम काव्यरचना **'अलिविलासि-संलाप'** नामक खण्डकाव्य के रूप में अपनी विलक्षणा काव्यप्रतिभा, पुङ्खानुपुङ्ख द्वादश-दर्शनी-निपुणता तथा विविध व्यवहारानुशीलन-क्षमता के प्रख्यापन में अप्रतिम काव्य-कृति है । इस काव्य के निर्माण की कथा ही व्यक्तिगत मानसिक क्लेश तथा विक्षेप की अनुपम कहानी है । लगभग १९०३ ई० में शास्त्री जी के ज्येष्ठ पुत्र ढुण्ढिराज शास्त्री, जो प्रतिभासम्पन्न छात्र थे और जिन्होंने स्वल्पकाल में ही संस्कृत साहित्य तथा दर्शन का गम्भीर अनुशीलन कर शास्त्रचिन्तन में प्रौढ़ता प्राप्त कर ली थी, भरी जवानी में ही काल-कवलित हो गये । इस आकस्मिक वज्रपात से श्री गंगाधर शास्त्री जी बड़े विचलित हो गये । १९०५ ई० में गुरुपूजा के अवसर पर इन्होंने स्वयं शिष्यों के द्वारा दी गई पूजा को स्वीकार नहीं किया प्रत्युत उस वर्ष अपनी धर्मपत्नी की ही पूजा करने का शिष्यों को आदेश दिया । इन्होंने अपने विद्यालय से कई महीनों का अवकाश ले लिया और अपनी धर्मपत्नी के संग भारत के तीर्थाटन के लिए निकल पड़े । उस समय इन्होंने समस्त भारतवर्ष के तीर्थों का विधिवत् भ्रमण तथा पूजन कर अपने मानसिक क्लेश को कुछ शान्त किया, परन्तु उतने से जब चित्त में शान्ति नहीं आई, तब इन्होंने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्यरचना द्वारा दुःखभार को ध्वस्त करने का विचार किया और उसी साहित्यिक सत्र की यह अनुपम परिणति है 'अलिविलासिसंलाप' नामक काव्य।

यह खण्डकाव्य ९ सर्गों में विभक्त है। ग्रन्थ के अन्त में शास्त्री जी ने इसके निर्माण का उद्देश्य कई श्लोकों में दिया है--

प्राज्ञैरिदं प्रतिपदध्वनिसावधानै-
रन्वीक्ष्यमाणमसकृन्नव-खण्डकाव्यम्।
धर्मार्थकामपरमुक्ति-समीक्षणेषु
दाक्ष्यं फलिष्यति सभासु सदादरार्हम्॥
(९।११८)

पण्डितगण सावधनतापूर्वक प्रतिपद में ध्वनि से मण्डित इस नूतन खण्डकाव्य का अवलोकन करें, तो उन्हें धर्म, अर्थ, काम तथा परामुक्ति की समीक्षा में दक्षता प्राप्त होगी जिससे वे सभा में आदर तथा सत्कार के निश्चयेन भाजन बनेंगे।

शास्त्री जी का आग्रह है कि जो विज्ञजन अलंकारों के गभीर चित्र तथा मधुर उपन्यास के शुश्रूषु हैं, भारत के नाना विख्यात तीर्थ स्थानों के दर्शन के इच्छुक हैं तथा 'द्वादशदर्शनी' (चार्वाक, जैन, चतुर्विध बौद्ध एवं षट्दर्शन) के वर्णित विषयों की व्युत्पत्ति में आदर धारण करते हैं, उन्हें इस 'अलिविलासिसंलाप' नामक काव्य की आलोचना आस्थापूर्वक करनी चाहिए—

येऽलङ्कारगभीरचित्रमधुरोपन्यासशुश्रूषवो
ज्ञातुं भारतविश्रुतामरपुरोतीर्थानि वाञ्छन्ति ये।
ये च द्वादशदर्शनीस्थविषयव्युत्पत्तिजातादराः
संलापोऽलिविलासिनोर्मुहुरयं तैरास्थयाऽऽलोच्यताम्॥
(अलिविलासिसंलाप ९।११९)

इस ग्रन्थ की पूर्ति १९६४ वि० सं० = १९०७ ई०) में सम्पन्न हुई[1] और उसी वर्ष की १ अक्टूबर, १९०७ ई० को प्रभाकरी कम्पनी (रामकटोरा, बनारस कैण्ट) से यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ था। इस काव्य के आदिम सर्ग तो शास्त्री जी के द्वारा प्रवर्तित 'सूक्तिसुधा' नाम्नी संस्कृत पत्रिका में क्रमशः प्रकाशित होते थे, परन्तु समग्र ग्रन्थ को पुस्तक रूप में प्रकाशित होने का श्रेय काव्य की पूर्ति के साथ ही साथ प्राप्त हुआ। 'सुक्तिसुधा' नामक पत्रिका का प्रकाशन पं० गंगाधर शास्त्री जी की तथा उनके अनुज रामशास्त्री तथा लक्ष्मण शास्त्री की रचनाओं के प्रकाशनार्थ ही किया गया था।

---

१. श्रीमत् तात नृसिंह-शास्त्रि चरण–स्ववृक्षसंसेविनो
राजाराम-यतीन्द्र-सद्गुरुकृपा-पीयूषपूतात्मनः।
काश्यां वेदरसाङ्कभूमितशके संपादिता वैक्रमे
स्याद् गङ्गाधरशर्मणः कृतिरियं विद्वज्जनानां मुदे॥
(वही ९।१२०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अलिविलासिसंलाप' नौ शतकों में विभक्त एक अभिनव खण्डकाव्य है। इन शतकों में वर्णित विषयों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

प्रथम शतक में विविध आवश्यक विषयों का उपक्रम है। द्वितीय शतक में लोकायत (चार्वाक) मत के सिद्धान्तों का निरूपण है। उनके ईश्वरविरोधी मत का वेदानुसार युक्तियों के द्वारा खण्डन कर कवि ने ईश्वरसिद्धि का प्रतिपादन किया है। तृतीय शतक में बौद्ध मत के चारों विभिन्न सम्प्रदायों का संक्षेप में विवरण है। तदनन्तर उनका खण्डन कर वैदिक सिद्धान्त का प्रतिष्ठापन है। जैन मत का प्रतिपादन तथा खण्डन चतुर्थ शतक का विषय है। पञ्चम शतक में भारतवर्ष के पावन तीर्थों का मञ्जुल विवरण है जिनमें कुवलयानन्द-स्थित अलंकारों का क्रमशः उदाहरण दिया गया है। कहीं-कहीं अलंकारों के तत्-तत्-विशेष भी संगृहीत किये गये हैं। कहना पर्याप्त होगा कि इस शतक में साहित्य का अभिनव चमत्कार प्रदर्शित किया गया है। षष्ठशतक के आरम्भ में कवि ने अपने श्रौत याग-सम्बन्धी प्रौढ़ अनुशीलन का परिचय देते हुए वाजपेय का विस्तृत विवरण दिया है। तदनन्तर कर्ममीमांसा के सिद्धान्त प्रदर्शित किये गये हैं। सप्तम शतक में तन्त्र, आगम, स्मृति तत्त्व का सूक्ष्म वर्णन कर उपासना विषय में विधि एवं अर्थवाद का निरूपण है तथा मुक्तिप्राप्ति के औपनिषद मार्ग का स्पष्ट-रूपेण विवेचन है। अष्टम शतक में न्यायमत के सिद्धान्तानुसार मोक्ष प्रक्रिया का प्रथमतः वर्णन है। तदनन्तर उपनिषत् की दृष्टि से उसका बहुशः निरसन है। नवम शतक काव्य का अन्तिम शतक है। इसमें सांख्य तथा योग की शास्त्रीय दृष्टि से क्लेश प्रहाण के उपाय, मोक्षप्राप्ति के साधन आदि विषयों का प्रतिपादन कर वेदान्त दृष्टि से परमतत्त्व का निरूपण किया गया है।

'आनन्दो ब्रह्म' जैसे सूक्ष्म तत्त्व के ज्ञान का प्रकार देखिए—

आदावेवाऽतिसूक्ष्मे प्रविशति न मतिर्ब्रह्मतत्त्वे, हि तस्मात्
अन्ने प्राणे मनस्यप्यवददुपनिषद् ब्रह्मतां लोकदृष्ट्या।
विज्ञाने तां विचारक्षमपुरुषवृशा प्रोच्य सिद्धान्तमाहा-
ऽऽनन्दो ब्रह्मेति तस्मात् परिचितविमतिर्नोचिताऽऽनन्दतायाम् ॥
(९।१०४)

जीवन्मुक्त के स्वरूप को देखिए—

ब्रह्मैकार्था यस्य वृत्तिः समाधौ
व्युत्थाने स्यान्नेह नानेतिरूपा।
शुद्धा साऽऽस्तां मिश्रिता वाऽन्यवृत्त्या
जीवन्मुक्तस्यैतदेव स्वरूपम् ॥
(९।१०७)

'अलिविलासिसंलाप' संस्कृत भाषा का एक नितान्त अभिराम खण्डकाव्य है जिसमें ९ सर्ग हैं। नाना वृत्तों में निबद्ध पूरे एक सहस्र पद्यों में इस काव्य का निर्माण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ है। यह शास्त्रकाव्य है जिसमें दर्शन के नानाविध सम्प्रदायों के सिद्धान्तों का निरूपण तथा खण्डन कर उपनिषदों के प्रतिपाद्य अद्वैत तत्त्व के द्वारा परमामुक्ति की उपलब्धि का राद्धान्त प्रतिपादित किया गया है। शास्त्रकाव्य की खण्डन-मण्डन विधा होने पर भी इसमें रुक्षता नहीं है—सरस, कोमल पदों के द्वारा दृष्टान्तों के माध्यम से वस्तुतत्त्व का निरूपण किया गया है। गूढ़ सिद्धान्तों के प्रतिपादन के निमित्त यहाँ लौकिक उदाहरणों का प्रचुर उपयोग है जिससे वे खुलकर सामने आ जायँ तथा श्रोताओं के मन में अनायास प्रवेश कर उसे वशीभूत कर लें।

श्री गंगाधर शास्त्रीजी के दो रूप इस काव्य के अनुशीलन से प्रकट होते हैं—एक तो है दार्शनिक रूप तथा दूसरा है कविरूप। दार्शनिक रूप में ये नाना दर्शन के सिद्धान्तों का निरूपण कर अद्वैत दृष्टि से उन्हें निरस्त करते हैं। कविरूप में ये प्रवीण अलंकारशास्त्री हैं—अलंकार में नितान्त व्युत्पन्न तथा अलंकार-चमत्कार से युक्त काव्य के अनायास रचयिता। इस रूप का दर्शन हमें पञ्चम सर्ग में विशेष होता है। इस सर्ग में भारतवर्ष के समस्त तीर्थों का प्राची, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर दिशाओं में विराजमान तीर्थस्थलों का बड़ा ही अभिराम, रसपेशल वर्णन है। साथ ही साथ यह सर्ग 'कुवलयानन्द' में वर्णित अलंकारों का क्रम से उदाहरण भी प्रस्तुत करता है। यह सर्ग शास्त्रीजी के आलंकारिक वैदुष्य का अप्रतिम रूप निर्दिष्ट करता है। विज्ञ आलोचकों से यह तिरोहित नहीं है कि ऐसी रचना का सम्पादन कितना दुष्कर कार्य होता है, परन्तु गंगाधर शास्त्रीजी ने उस दुष्कर कार्य को किया है और बड़ी सफलता से किया है। शास्त्रीजी कारयित्री प्रतिभा के धनीमानी कवि थे—ऐसे कवि, जिसका अनुसरण भवभूति के समान वश्यारूपिणी सरस्वती सर्वदा करती थीं।

इनकी कविता में श्लेष का चमत्कार बड़ी मनोज्ञता से पिरोया गया है। आनन्द की बात इसमें यही है कि सभंग श्लेषों में किसी प्रकार की कर्कशता तथा दुरूहता नहीं जनमती। थोड़े ही प्रयास से श्लेष बुद्धिगम्य हो जाते हैं। वे ऐसे कवि नहीं हैं जिनके विषय में 'कोशं पश्यन् पदे पदे' की दुरुक्ति चरितार्थ होती हो। उनके ही पट्ट-शिष्य महामहोपाध्याय पण्डित रामावतार शर्मा ने जो प्रशस्ति लिखी है, उससे इनके काव्योत्कर्ष का स्पष्टतः परिचय मिलता है। वह प्रशस्ति इस प्रकार है—

गतार्थोऽद्य जगन्नाथः नापेक्ष्योऽप्ययदीक्षितः।
कटुवाक् वेङ्कटार्योऽपि सति गङ्गाधरे गुरौ॥

इस पद्य के अन्तरंग की आलोचना से शास्त्रीजी की कविता में तीन तथ्यों का गूढ़ संकेत मिलता है – (क) अर्थ का विस्तार तथा असमाप्ति; (ख) दार्शनिक तत्त्वों की कोमल विस्तृति तथा (ग) कोमल मनोरम पदशय्या। कहना न होगा कि इस 'अलि-विलासिसंलाप' में इन तीनों तत्त्वों की सत्ता पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। कतिपय दृष्टान्तों द्वारा इनका स्वरूप उपलब्ध किया जा सकता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शारदा स्तुति

शारदाऽमृतकरावदातया हस्तिनां पिदधती दृशा रदान् ।
भक्तपालनविधौ विशारदा शारदा स्फुरतु मानसे मम ॥
(६।१)

'शारदा' शब्द के यमक का सौन्दर्य नितान्त भव्य है इस पद्य में ।

काशी का प्रसादमय वर्णन

इयं शमनयातना-विधिशतापवादो ध्रुवं
सहर्षमिह जाह्नवी धुरि च नृत्यतीवोर्मिभिः ।
इहाश्रयति भारती विधिधियेव शिष्टान् द्विजान्
इह ध्वजविधूननैरिव निवार्यते संसृतिः ॥
(५।१०)

(इस पद्य में उत्प्रेक्षा के नाना विशेषों का दृष्टान्त प्रस्तुत है)

पार्वती का भव्यरूप

कलिन्दतनयां शिरस्युरसि तुङ्गशैलद्वयं
वहन्त्युदरधारितोरगशिशुस्तपो दुश्चरम् ।
विधाय शरदम्बुदे स्थितिमनश्वरीं बिभ्रती
बिभर्ति भजतो जनान् इह हि कापि सौदामनी ॥
(५।१२)

श्लोक का आशय है कि कोई अपूर्व सौदामिनी (पार्वती) अपने सिर पर कालिन्दी (केशपाश) को, अपने वक्षःस्थल पर दो ऊँचे पर्वतों (दो कठोर कुचस्थल) को, अपने उदर पर सर्प शिशु (रोमावली) को धारण करती हुई, कठिन तपस्या के द्वारा शरत्कालीन मेघ में (शिव में) अनश्वर स्थिति को रखती हुई अपने भक्तजनों का निरन्तर पालन कर रही है । शिव के संग में सर्वदा विहार करने वाली दीप्तरूपा विद्युन्मयी भगवती पार्वती का कितना अभिराम वर्णन कवि ने यहाँ प्रस्तुत किया है । यह पद्य रूपकातिशयोक्ति का भव्य निदर्शन है, क्योंकि यहाँ कालिन्दी, गिरि, सर्पशिशु, शरन्मेघ तथा विद्युत् के द्वारा उपमेयभूत केशपाश, कुचद्वयी, रोमावलि, शिव तथा पार्वती का क्रमशः निगरण किया गया है ।

कावेरी नदी का श्लिष्ट वर्णन

इयं कुटिलगामिनी लसदनेकधाविभ्रमा
रुचिं विदधती नृणां बहुलसज्जवायौवने ।
निरुध्य रुचिरं मनोभुवमुपेत्य रत्नाकरं
रसादभिसरत्यहो रहसि सह्यशैलाङ्गजा ॥
(५।२८)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ कन्या तथा कावेरी की मञ्जुल समङ्ग श्लेष की छटा विराजती है। सह्य-पर्वत की पुत्री कावेरी नदी कुटिलगामिनी है तथा प्रकाशमान अनेक विलासों से मण्डित है (नदी पक्ष में लसत् + अनेकधावि + भ्रमा = प्रकाशमान अनेक दौड़ने वाले आवर्तों से युक्त)। बहुल शोभित वेग वाले यौवन में कन्या मनुष्यों में प्रीति धारण करती है। उधर नदी (बहुल + सज्जवायौ + वने) बहुत सुन्दर वायु वाले वन में रुचि धारण करने वाली है। मनुष्यों के मन को चिरकाल तक रोककर अर्थात् उनके मन को काम द्वारा वश में करके कन्या रत्नाकर (= रत्नों का खजाना रखने वाले धनिक) के पास प्रेम से अभिसरण करती है। नदी भी मनुष्यों के काम को वश में कर रत्नाकर(= समुद्र) के पास धीरे-धीरे जा रही है। यहाँ श्लिष्ट साधारणोभयविधविशेष-णोत्थापित समासोक्ति अलंकार है। कितनी सुन्दरता से कवि ने कावेरी नदी को कन्या के रूप में समासोक्ति द्वारा चित्रित किया है।

मीनाक्षी वर्णन

अहीन-वसनाऽऽकृतिर्वहति विग्रहे भूषणा-
न्यहर्निशमुपास्यते जगति योदयाकाङ्क्षिभिः।
सदा नवविभूतिभासितंतनुश्च मीनाक्ष्यसौ
स पाण्ड्यविषये मनो हरति सुन्दरेशश्च मे॥
(५।३१)

इस पद्य में मीनाक्षी तथा सुन्दरेश (शिव) दोनों का वर्णन श्लेष द्वारा बड़ी सुगमता से किया गया है।

मीनाक्षी— अहीन {= सुन्दर , वसन तथा आकृति वाली, शरीर में भूषण धारण करती है। जो उदय चाहने वालों से (या + उदयाकाङ्क्षिभिः) दिन रात उपासित होती है। सदा नव = नूतन, विभूति = ऐश्वर्य से शोभित तनु वाली है। ऐसी भगवती मीनाक्षी मेरे मन को हरण करती है।

सुन्दरेश— (अहीन् = सर्पान्) अवसनाकृति = दिगंबर शिव अपने शरीर पर सर्परूपी भूषणों को धारण करते हैं। ('योदयाकाङ्क्षिभिः = यः + दया') जो शिव दया के इच्छुक भक्तों द्वारा सर्वदा उपासित होते हैं। 'स दानवानां विभूत्याभासित-तनुः' दानवों की विभूति से भासित शरीर वाले वह शंकर मेरे मन को हरण कर रहे हैं।

प्रकृतानेकविषयक श्लेष का चमत्कार यहाँ सुशोभित है।

पुरुषोत्तम स्तुति

केरल देश के अनन्तशयन नामक स्थान में विद्यमान पुरुषोत्तम की स्तुति प्रस्तुत है। शब्दों की महिमा से पुरुषों में उत्तम व्यक्ति का भी यहाँ वर्णन अप्रस्तुत रूप से विद्यमान है। फलतः यह प्रकृताप्रकृतानेक-विषयक श्लेष का सुन्दर उदाहरण है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनन्तशय-नामितक्षितिधरोऽत्र पद्मार्पणैः
प्रमोदजनकैरलावनिशवृद्धये सोद्यमः ।
स्वविक्रमलवानमद् बलिशिरोनिविष्टांघ्रिको
विभाति पुरुषोत्तमः सततमेष संसेव्यताम् ॥
(५।३३)

पुरुषोत्तम भगवान्

प्रकृत का वर्णन देखिए। वे अनन्तशयन नामक नगर में विस्तृत (अमित) पृथ्वी को धारण करते हैं (क्योंकि केरल की इस राजधानी में उनका विशाल मन्दिर विद्यमान है)। लक्ष्मी के अर्पण करने से आनन्दित जन वाली केरल भूमि की कल्याण-वृद्धि में सदा उद्यमशील हैं। अपने विक्रम के लेश से नम्र होने वाले राजा बलि के शिर के ऊपर उन्होंने अपना पैर रखा है। ऐसे पुरुषोत्तम शोभित हो रहे हैं।

पुरुषों में उत्तम व्यक्ति

अप्रकृत का वर्णन। इस पुरुषोत्तम ने अपने हाथ (शय) से अनन्त राजाओं को नम्र वर दिया है। (प्रमोद जनकैः + अलौ + अनिशवृद्धये) = आनन्द देने वाले कमलों के अर्पण से भ्रमर की सन्तत वृद्धि के लिए यह भी प्रयत्नशील है। उसने अपने विक्रम के लेश से बलिष्ठ राजाओं के मस्तक को नम्र कर उस पर अपने पैर को रख दिया है। ऐसा सुशोभित हो रहा है यह पुरुषों में उत्तम व्यक्ति। यह अप्रकृत अर्थ श्लेष के द्वारा निकल रहा है। फलतः यहाँ प्रकृत तथा अप्रकृत में श्लेष का संचार है। इसके द्वितीय पाद में सभंगश्लेष कितना प्रसन्न है—

(१) प्रमोदजन + कैरलावनि + श + वृद्धये

(२) प्रमोदजनकैः + अलौ + अनिश + वृद्धये।

इस पद्य के चारों पादों में अभिराम श्लेष विराजमान है। यह कहना पुनरुक्ति-मात्र है कि गङ्गाधर शास्त्रीजी श्लेष के सम्राट् थे जिनका शब्दों के ऊपर अनुपम साम्राज्य विराजमान था और जो अपनी काव्यकला के सेवन के लिए उन्हें उँगली के संकेतमात्र से बुला लेते थे।

इन श्लेषमयी कविता के संग में स्वभावोक्ति का भी आनन्द लीजिए। कवि वृन्दावन में नलकूबर को उखाड़ने वाले बालकृष्ण का वर्णन प्रसादमयी वाणी में कर रहा है। अर्थ स्पष्ट है :

स्वजानुयुगरिङ्गणोच्चलदुलूखलैकाहति-
प्रभग्नयमलार्जुनोल्वणरवश्रुतिव्यग्रया ।
स्खलद्गति यशोदया स भयशङ्कमङ्के धृतो
हसन्मनसि मामके लसतु माथुरो बालकः ॥
(५।८३)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीर्थ स्थानों के वर्णन में कवि स्वभावोक्ति का बहुशः प्रयोग करता है। उत्तर भारत के तीर्थों की अपेक्षा दक्षिण भारत के तीर्थों का अधिक वर्णन आन्ध्र कवि की परिचिति का विशेष द्योतक है।

गङ्गाधर शास्त्रीजी शास्त्रों के समान वेद-वेदाङ्ग के भी परिनिष्ठित पण्डित थे—इसकी सूचना इस काव्य के वाजपेय वर्णन से सद्यः प्राप्त होती है। उपनिषदों के तो वे मर्मज्ञ विद्वान् थे ही, यही कारण है कि यह काव्य साहित्य की दृष्टि से जितना अभिराम एवं मञ्जुल बन गया है, दर्शन की दृष्टि से भी उतना ही प्रौढ़ एवं प्रामाणिक, तर्क तथा युक्ति से सम्पन्न एवं लोक-व्यवहार के उदाहरणों से विभूषित हो सका है। तथ्य तो यह है कि शास्त्रीजी ने अपनी अलोक-सामान्य प्रतिभा के बल पर ऐसे काव्यरत्न की रचना की है जिसकी अलौकिक प्रभा समय के प्रभाव से कथमपि न्यून न होकर दिन-प्रतिदिन प्रद्योतित होती ही जाती है। मैं इस 'अलिविलासि-संलाप' को इस शताब्दी में काशी में प्रणीत काव्यमाला का मुकुटमणि मानता हूँ।

मुक्ताभूषां भारभावं नयन्तीं
भास्वद्देहोद्भूतशुभ्रप्रभाभिः ।
भूयाद् भूयो भाविताभक्तसङ्घैः
सच्छास्त्रार्थस्फूर्तये भारती नः ॥

इस खण्डकाव्य के पूर्व ही श्री गङ्गाधर शास्त्रीजी ने 'हंसाष्टक' नामक एक अष्टक काव्य लिखा था जिसमें श्लेष की महिमा से हंसपक्षी तथा आत्मा का वर्णन बड़ी सुन्दरता के साथ वर्णित है। इसमें अनेक दर्शनों के तत्त्व बड़ी सुगमता से वर्णित हैं। इस स्तोत्रकाव्य पर कवि के अनुज महामहोपाध्याय रामशास्त्रीजी ने भावपूर्ण व्याख्या लिखी है। उदाहरण के लिए एक ही पद्य पर्याप्त होगा :

जातिं श्लाघ्यामनिच्छन् विग-
लितकुतुकः प्रांशुवंशेषु वस्तुम्,
पुन्नागेभ्यो विरक्तः कुरवक-
विरसधीर्निःस्पृहो बन्धुजीवे।
रम्भायां वीतलोभः कुवलय-
मभजन् मुक्तपद्मानुरागो,
हंसः सम्प्रत्यशोके विरचयति
पदं माधवस्य प्रसादात् ॥

इस पद्य में विरागपूर्वक परमसुख की प्राप्ति का तथ्य प्रतिपादित है।

हंसपक्ष मृदुपरिमल से श्लाघनीय परन्तु इस समय कुसुमोदय से हीन होने के कारण जातिलता को न चाहता हुआ हंस ऊँचे बाँसों के ऊपर बैठने में उत्सुकता नहीं रखता। पुन्नाग वृक्षों से विरक्त हंस कुरवक वृक्षों में निवृत्तकौतुक होकर बन्धुजीव वृक्षों में स्पृहा धारण नहीं करता। कदली में लोभहीन, कुवलय से विरक्त, कमल में अनुराग छोड़कर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समय माधव वसन्त मास के आगमन से नये पुष्पों के उद्गम वाले अशोक के वृक्ष के ऊपर अब हंस निवास कर रहा है।

आत्मा-पक्ष

श्लाघनीय ब्राह्मण आदि जाति का अनिच्छुक, श्रेष्ठ कुलों में निवास करने से विगत-कौतुक, श्रेष्ठ पुरुषों से विरक्त होकर, कुरव (कुत्सित शब्दवाले असत् शास्त्रों में अथवा अपने प्रभाव का वर्णन करनेवाले दुष्टों) में अपनी बुद्धि को विरस बनाकर, बन्धुजीव में (बन्धुओं के जीव में भी) निःस्पृह होकर, रम्भानाम्नी प्रसिद्ध असरा में भी निर्लोभ बनकर, वैराग्य की दृढ़ता के कारण समस्त पृथ्वीमण्डल (कुवलय) को भी नहीं चाहने वाला, पद्मा (लक्ष्मी) में अनुराग न करते हुए आत्मा माधव लक्ष्मीपति नारायण के प्रसाद से अशोक में - निरतिशय सौख्यरूपी स्व-स्वरूप में—अपना पद (स्थिति) धारण कर रहा है। वैराग्य धारण करने से परम पद की प्राप्ति सुतरां होती है।

प्रसन्न श्लेष का चमत्कार देखने योग्य है। इसमें किसी प्रकार का मानसिक व्यायाम करने की आवश्यकता नहीं है। शब्द-योजना पर प्रभुत्व रखने वाले कवि की वाणी में ऐसा ही हृदयंगम प्रभाव होता है। यह स्तोत्रकाव्य 'प्रभाकरी यन्त्रालय' में १९६१ वि० सं० (= १९०४ ई०) में मुद्रित हुआ था।

संस्मरण

रचना-चातुरी

गङ्गाधर शास्त्रीजी शास्त्रार्थ के रसिक थे और सभा में पक्ष तथा विपक्ष की ओर से भाग लिया करते थे, परन्तु ये कभी उग्रता का प्रदर्शन नहीं करते थे। ये स्वभाव से मृदुल थे और इसलिए शास्त्रार्थ के प्रसंग में भी ये तर्क तथा युक्ति का प्रयोग बड़ी मृदुता के साथ किया करते थे। कभी-कभी किसी शास्त्रार्थी के निर्बल पक्ष को प्रबल बनाने के लिए तथा उसकी मान-मर्यादा की रक्षा के निमित्त एक विलक्षण चमत्कार करते थे जो सभासदों को आश्चर्यचकित कर देता था। व्याकरण के शास्त्रार्थ में अन्तिम प्रमाण महर्षि पतञ्जलि का प्रमेयबहुल ग्रन्थ 'महाभाष्य' ही तो है। फलतः गद्य-रचना में निष्णात शास्त्रीजी महाभाष्य की शैली में, पतञ्जलि से तुक में तुक मिलाकर कभी-कभी ऐसे वाक्यों की रचना सद्यःस्फूर्तिवशात् कर दिया करते थे कि जिन्हें 'अपतञ्जलीय' होने का किसी को आभास भी नहीं होता था। इस विषय में एक घटना प्रसिद्ध है। गोरखपुर जनपद का कोई वैयाकरण शास्त्रार्थ कर रहा था और प्रतिपक्षी थे उस युग के महान् शास्त्रार्थनिष्णात वैयाकरण-केसरी दामोदर शास्त्रीजी। श्री गङ्गाधर शास्त्रीजी भी सभा में उपस्थित थे। इन्होंने देखा कि गोरखपुरिया वैयाकरण का पक्ष कुछ दुर्बल हो रहा है, तब उनकी रक्षा के लिए ये स्वयं बोल उठे—"भवदुक्तं महाभाष्यविरुद्धं वर्तते" और महाभाष्य की अनेक पंक्तियाँ धड़ाधड़ बोलते चले गये। दामोदर शास्त्री इन पंक्तियों को सुनकर आश्चर्यचकित हो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये और अपने कथन को महाभाष्य-विरुद्ध जानकर वे आगे बोलने से रुक गये। शास्त्रार्थ तो वहीं समाप्त हो गया, परन्तु दामोदर शास्त्री मर्माहत होकर घर आये, अपनी महाभाष्य की पोथी के सम्भाव्य स्थलों का निरीक्षण किया परन्तु गङ्गाधर शास्त्री के द्वारा उद्धृत वचन कहीं भी उपलब्ध नहीं हुए। उसी आवेश में वे दौड़े-दौड़े गङ्गाधर शास्त्री के आवास पर पहुँचे और गली में ही पुकार उठे – शास्त्रीजी, आपने जिन महाभाष्य वचनों को उद्धृत किया था, वे किस अध्याय के हैं और किस सूत्र की व्याख्या में हैं। इतने आवेश में वे थे कि उनकी वाणी लड़खड़ा रही थी।

गङ्गाधर शास्त्रीजी इस घटना की आशंका से पहले से ही सावधान होकर बैठे हुए थे। इन्होंने बड़ी मृदुता से कहा—"श्रीमान् शास्त्रीजी महाराज, मेरी वे पंक्तियाँ सभा के महाभाष्य की हैं, आपके ग्रन्थ की नहीं। आपको तो समग्र महाभाष्य कण्ठाग्र है, आप उसका नित्य पारायण किया करते हैं। आपको तो मुझे सभा में ही टोकना चाहिए था कि यह अपतञ्जलीय वाक्य आप कहाँ से बोल रहे हैं। बात यह है कि उस पण्डित के पक्ष की रक्षा करने के लिए ही मैंने सद्यः उसी समय उन वाक्यों की रचना कर आपको सुनाया था। मुझे आशा नहीं थी कि मेरे ये वाक्य पतञ्जलि की शैली में इतनी सुन्दरता से निबद्ध होंगे कि आप जैसे महाभाष्यरसिक को भी धोखे में डाल देंगे। क्षमा करें मेरी इस धृष्टता को।"

इन स्वभाव-कोमल वचनों के श्रवण मात्र से दामोदर शास्त्रीजी का क्रोध शान्त हो गया; आवेश दूर हो गया और वे गङ्गाधर शास्त्री के अद्भुत रचना-कौशल के साथ उनके मृदुल स्वभाव की प्रशंसा करते हुए घर लौट आये।

लोक-चातुरी

गंगाधर शास्त्री जी लोक-व्यवहार में भी बड़े चतुर थे। कोई उन्हें ठग नहीं सकता था। भविष्य में होने वाली आशंकित घटना के लिए भी वे सर्वथा जागरूक रहते थे। कचहरी में कोई मुकदमा चल रहा था जिसमें इन्हें गवाही देने के लिए बुलाया गया था। शास्त्रीजी ने कचहरी में जाना अस्वीकार कर दिया। तब इनके आवास पर ही इनकी गवाही लेने के लिए वकीलों का एक कमीशन आया। कमीशन के आने से पहिले ही शास्त्रीजी ने सम्भाव्य प्रश्नों के उत्तर पहिले से ही तैयार कर कागज पर लिखकर, अपने आसन के नीचे रख दिये थे। कमीशन के वकील लोग आये और वे प्रश्न करने लगे, और शास्त्री जी उसी क्रम से रखे गये अपने लिखित उत्तरों को देने लगे। जिस क्रम से प्रश्न होता, लिखित उत्तर भी उसी क्रम से अपने आसन के नीचे से उठाकर शास्त्री जी देते जाते थे। वकीलों ने बड़े आश्चर्य से पूछा—शास्त्री जी, आपने इन उत्तरों को कैसे तैयार कर लिया था? हम लोगों ने तो आपसे अपने प्रश्नों की चर्चा भी नहीं की। आप सटीक उत्तर ही नहीं देते, प्रत्युत प्रश्नों के क्रमानुसार उत्तर भी पूर्व से ही लिपिबद्ध हैं। यह तो बड़े ही आश्चर्य की बात प्रतीत होती है। शास्त्री जी का एक ही उत्तर था कि इस विषय में ये ही प्रश्न हो सकते हैं। मैंने इसी क्रम से सब

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्नों के उत्तर पूर्वतः लिख रखे थे। वकील लोग पण्डित जी के इस उत्तर से बड़े सन्तुष्ट हुए और उन्होंने स्वीकारा कि यदि शास्त्री जी वकालत पेशे में आये होते, तो वे निःसन्देह ही एक सफल वकील सिद्ध हुए होते। ऐसी थी गंगाधर शास्त्री जी की लौकिक विषयों में चातुरी।

अध्यापन-चातुरी

शास्त्री जी के शिक्षण में अध्यापन कला की अनेक विशिष्टताएँ विद्यमान थीं। ये कोई भी पाठ्य पुस्तक देखकर नहीं पढ़ाते थे। इन्हें समग्र ग्रन्थ कण्ठाग्र थे। एक बार के ही अवलोकन तथा अध्ययन से समस्त ग्रन्थ इनकी स्मृति के पटल पर विराजमान हो जाते थे। उसे पढ़ाते समय देखने की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती थी। इनके मेधावी पट्ट शिष्य पण्डित रामावतार शर्मा की भी यही शैली थी। नया से नया ग्रन्थ हो, वे बिना देखे ही छात्रों के द्वारा सुनाये गये अंशों की व्याख्या धड़ल्ले के साथ करने लगते थे। यह कला उन्होंने अपने पूज्य गुरुदेव से ही सीखी थी। एक समय की घटना है। पाठ्य ग्रन्थों का चयन करना था। सन्ध्याकाल होने से पुस्तकालय भी बन्द हो गया, परन्तु चयन करना नितान्त आवश्यक था। रामावतार जी ने अपने सहयोगी आनन्दशंकर ध्रुव जी से कहा कि बैठा जाय। अपनी स्मृति से ग्रन्थों के चयन करने का प्रयत्न करूँगा। ऐसा ही हुआ। रामावतार जी ने अपनी स्मृति के बल पर नाना विषयों के ग्रन्थों का खण्डशः यथातथ्य चयन कर डाला। उनकी विलक्षण मेधाशक्ति को देखकर ध्रुव जी ने आश्चर्य प्रकट किया, तब पण्डित जी ने अपने गुरु जी की अलौकिक मेधा-शक्ति का परिचय कराया था। और कहा था "विना अनुभव किये यह अनुमान करना भी असम्भव है कि एक मानव मस्तिष्क कितने ग्रन्थों को धारण कर सकता है और समय आने पर वह यथातथ्य उनको अक्षरशः प्रकट भी कर सकता है। मेरे गुरुवर गंगाधर शास्त्री जी की यह अनुपम शक्ति थी।"

शास्त्री जी व्याकरण ग्रन्थों का अध्यापन एक ही प्रकार से प्रतिवर्ष नहीं करते थे, प्रत्युत नवीन परिष्कारों की उद्भावना कर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया करते थे। एकबार जो परिष्कार करते थे, दूसरी बार उससे लघुतर परिष्कार की कल्पना कर अपने उर्वर मस्तिष्क का जौहर दिखाया करते थे। ये पिटी-पिटाई लकीर पर चलने वाले व्यक्ति नहीं थे, प्रत्युत नवीन से नवीनतम कल्पना करने में सर्वदा जागरूक रहते थे। ऐसी सुबोध शैली की उद्भावना इनके गम्भीर अध्ययन की उज्ज्वल परिणति थी। यह बात मुझे बाबा साहेब काले नामक वृद्ध पण्डित से अवगत हुई थी जो शास्त्री जी के शिष्य थे और प्रतिवर्ष व्याकरण शास्त्र के पाठ का श्रवण किया करते थे। उनका कहना था कि गुरु जी की प्रतिभा व्याकरण में भी उतनी ही चमकती थी जितनी अन्य शास्त्रों में।

उस दिन शास्त्रीजी के अधर पर स्मित-माधुरी बिखर उठी जब इन्होंने किसी नवागन्तुक छात्र को नागराक्षरों में प्रथम बार मुद्रित दर्शन के किसी ग्रन्थ की दो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतियाँ बाजार से लाकर प्रस्तुत करते देखा—एक तो अपने पढ़ने के निमित्त और दूसरी शास्त्रीजी के लिए पढ़ाने के निमित्त। शास्त्रीजी ने हँसते हुए कहा वत्स, तुम मेरी पाठशाला में नये आये हो। अतः मेरी पाठनशैली से परिचित नहीं हो। मैं कोई भी ग्रन्थ देखकर नहीं पढ़ाता। वह तो मेरी स्मृति में पहले से ही उपस्थित रहता है। इस ग्रन्थ को मैं आन्ध्र लिपि में पढ़ चुका हूँ। इतना कहकर वे ग्रन्थ को आरम्भ से ही सुनाने लगे। छात्र चमत्कृत हो उठा और अपनी अज्ञता के कारण लज्जित होकर गुरुचरणों पर नतमस्तक हो गया। शास्त्रीजी की धारणाशक्ति का उज्ज्वल प्रमाण जो सामने था। ऐसी शक्ति की जितनी प्रशंसा की जाय कम ही है।

पण्डित रामावतार शर्मा हिन्दू विश्वविद्यालय के अन्तर्गत संस्कृत महाविद्यालय के अध्यक्ष पद पर उस समय विराजते थे (१९२२–२३ ई० में)। वे अवसर आने पर प्रौढ़ मनोरमा के लम्बे-लम्बे अवतरण जब सुनाया करते, तब आश्चर्य से चकित होकर व्याकरण-विभाग के अध्यक्ष म० म० पण्डित जयदेव मिश्रजी उनसे पूछ बैठते थे कि साहित्य के पण्डित होकर भी आप व्याकरण के इस प्रौढ़ ग्रन्थ से इतने उद्धरण कैसे दे रहे हैं, तब रामावतारजी गङ्गाधर शास्त्रीजी की शिक्षण-प्रणाली की विशिष्टता बतलाते थे। वे कहते थे कि गुरुजी के यहाँ छात्रों की इतनी मण्डली पढ़ने आती थी कि बैठने की जगह नहीं होती थी; बहुत से छात्र गली में ही खड़े रहते थे। शास्त्रीजी ने विषयों का भी क्रम बना रखा था—व्याकरण के अनन्तर साहित्य का पाठ चलता था और साहित्य के बाद वेदान्त का। उद्देश्य यह था कि छात्र केवल एक विषय का ज्ञाता न होकर समानतन्त्र का भी ज्ञाता बनकर बहुज्ञ बन सके; पाण्डित्य एकाङ्गी न होकर विविधाङ्गी बन जाय। इस उद्देश्य की पूर्ति भी होती ही थी। साहित्य आरम्भ होने के पहले व्याकरण का पाठ चलता था। उसी पाठ के सुनने से व्याकरण के टीकाग्रन्थों में भी छात्रों की अभिरुचि तथा प्रवृत्ति जागरित होती थी। प्रौढ़ मनोरमा के ये उद्धरण गुरुजी की इस शिक्षण-पद्धति के फल हैं, नहीं तो मुझे समग्र ग्रन्थ पढ़ने का अवसर ही कहाँ मिला ?

रसिकता की मूर्ति

श्री गङ्गाधर शास्त्री रसिक व्यक्ति थे। संस्कृत में पद्य-रचना तो उनके बायें हाथ का खेल था, परन्तु हिन्दी में भी चलते-चलते वे पद्यों की रचना किया ही करते थे। उस दिन कालभैरव की चौमुहानी पर अद्भुत दृश्य था। सायंकाल उत्सुक लोगों का जमघट जमा होकर हिन्दी कविता सुन रहा था। शास्त्रीजी प्रति सायंकाल अपने एक मित्र के साथ टहलने के लिए उसी रास्ते से जाया करते थे। उस दिन भी उधर से निकले, तो चने के सुशिक्षित लटकों को अपनी सुरीली आवाज में सुनाता हुआ एक चना वाला खड़ा होकर चना बेच रहा था। लटके उसके बड़े ही टटके थे; बानी में मिश्री घुली थी। गला बड़ा ही लोचदार था। फलतः शास्त्रीजी का रसिक मन उधर आकृष्ट हो गया। शास्त्रीजी उसी चौरस्ते पर खड़े होकर उसके लटकों के साथ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना भी लटका सुनाने लगे। चना वाला पहिला अद्धा सुनाता था। शास्त्रीजी दूसरा अद्धा पूरा कर देते थे। लोगों के लिए यह बड़ा ही सुहावना, रोचक तथा अचरज भरा दृश्य था। कहाँ वह सामान्य चना वाला और कहाँ यह विद्वान् शास्त्रीजी। परन्तु शास्त्रीजी के लिए यह नयी बात न थी। यह वाग्युद्ध पन्द्रह-बीस मिनटों तक चलता रहा। चना वाला शास्त्रीजी के चरण पर गिर कर कहने लगा—"गुरुजी, हमसे आपका मुकाबला कैसा? इन्हीं मीठे लटकों की बदौलत तो मेरी रोजी-रोटी चलती है। आप आशीर्वाद दें। मैं अपने काम-काज में सफल होता रहूँ।" शास्त्रीजी हँसने लगे और उसके हाथ पर एक चवन्नी रखकर आशीर्वाद देकर आगे बढ़ गये। अपने संगी मित्र से मुसकुरा कर कहने लगे -"यदि यह गङ्गाधर संस्कृत का पण्डित नहीं होता, तो भी इस लटकेबाजी के सहारे ही चना बेचकर अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण कर लेता।" मित्र ने तुरन्त उत्तर दिया—"आपके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। आप माता शारदा के वरदपुत्र ठहरे। क्या संस्कृत और क्या हिन्दी—सर्वत्र आपकी अबाधित गति है !!!"

अध्ययन की कुशलता

संस्कृत कालेज से प्राप्त प्रमाण-पत्र की प्रतिलिपि नीचे दी जाती है।

(१) उसके देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि गङ्गाधर शास्त्री इसी कालेज के दस वर्षों तक छात्र रहे। यहीं पर नाना शास्त्रों में प्रौढ़ि प्राप्त कर १८७९ ई० में आज से ठीक सौ वर्ष पूर्व विद्यालय की सर्वोत्तम परीक्षा उत्तीर्ण की थी और इसीलिए यह प्रमाण पत्र उन्हें दिया गया था। ये १६ वर्ष के वय में १८६९ ई० में विद्यालय में प्रविष्ट हुए तथा दस वर्षों तक यहाँ अध्ययन किया। १९७२ ई० में अपने २६ वें वर्ष में इन्हें साहित्याध्यापक के पद पर नियुक्त किया गया था। (२) इसके अतिरिक्त उस समय के अध्यक्ष तथा अध्यापकों के नाम भी इस प्रमाण-पत्र में दिये गये हैं। इस प्रशंसा-पत्र के ऊपर हस्ताक्षर करने वाले अध्यापकों में बालशास्त्री का नाम सबसे ऊपर है जिससे उनकी प्रसिद्धि तथा प्राथमिकता का परिचय मिलता है। शिवकुमार शर्मा नाम से पण्डित शिवकुमार शास्त्री का ही हस्ताक्षर है, क्योंकि विद्यालय में १९७५ ई० में नियुक्त होने से वे उस समय विद्यालय के अध्यापक थे। इस प्रमाण-पत्र के ऊपर हस्ताक्षर करने के कुछ ही महीनों बाद किसी कारणवश उन्हें इस विद्यालय की नौकरी छोड़नी पड़ी। कैलासचन्द्र शर्मा नाम से कैलासचन्द्र शिरोमणि का ही हस्ताक्षर है। उस समय जान नेस्फील्ड साहब कालेज के अध्यक्ष (प्रिन्सिपल) थे। इन हस्ताक्षरों से विदित होता है कि उस समय एकादश (११) अध्यापक अध्यापन कार्य में नियुक्त थे। उस समय इसका नाम 'काशिराजकीय पाठशाला' था तथा अंग्रेजी में 'बनारस संस्कृत कालेज' कहलाता था।

तीसरी बात ध्यातव्य है कि परीक्षा-पूर्व युग में, जब आधुनिक शैली से परीक्षा का प्रचलन आरम्भ नहीं हुआ था, छात्रों की व्युत्पत्ति अनेक शास्त्रों में होती थी,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि अनेक शास्त्रों का शिक्षण उस समय उन्हें दिया जाता था और प्रत्येक शास्त्र में उत्तीर्ण होना आवश्यक होता था। चौथी बात ध्यान देने की यह है कि केवल २६ वर्ष के वय में गंगाधर शास्त्री ने व्याकरण, साहित्य, धर्मशास्त्र, न्याय, वेदान्त, शब्द-खण्ड आदि शास्त्रों में अलौकिक योग्यता सम्पादित कर ली थी तथा काव्यरचना में लोकातीत योग्यता अर्जित की थी—यह प्रमाण-पत्र श्री गङ्गाधर शास्त्री की अलौकिक वैदुषी का स्पष्ट परिचायक है। इतनी कम उम्र में इतने कठिन शास्त्रों में पाण्डित्य प्राप्त करना तथा विद्वानों के द्वारा इसके लिए सुन्दर शब्दों में प्रशंसित किया जाना शास्त्रीजी के लिए बड़े ही गौरव की बात थी। पण्डित गङ्गाधर शास्त्रीजी की विद्वत्ता का सूचक यह प्रमाण-पत्र इस प्रकार है।

प्रमाण पत्र

गङ्गाधरशास्त्री मानवल्ल्युपनामक आन्ध्रः पण्डितवरनरसिंहशास्त्रीपुत्रो नगर एव रघुवंशप्रभृतीनि काव्यानि सिद्धान्तकौमुदीं चाधीत्यैकोनसप्तत्यधिकाष्टादश शततमे खीष्टवर्षे काशिकराजकीयपाठशालायां प्रविष्टो मनोरमा—शेखरादिमहाभाष्यान्तान् व्याकरणग्रन्थान्, मनुस्मृति-मिताक्षरा-वीरमित्रोदय-दायभागदत्तकमीमांसा धर्मशास्त्रे, साहित्ये च कुवलयानन्दसाहित्यदर्पण-काव्यप्रकाशादिकं, न्यायप्रकरणग्रन्थान् मुक्तावल्यादीन्, व्युत्पत्तिवाद शक्तिवादौ शब्दखण्डे, सांख्ये तत्त्वकौमुदी-सांख्यप्रवचनभाष्यादि, परिभाषापञ्चदश्यादीन् वेदान्तप्रकरणग्रन्थांश्चाधीत्याधीतशास्त्रेषु प्रतिवर्षं दत्तोत्तमपरीक्षो लब्ध-बृहन्मासिकविविधोत्तमपारितोषिकः साम्प्रतमधीतानाधीतग्रन्थाध्यापनाद्यशेष-पाण्डित्यकार्यनिर्वाहक्षमः, सम्पन्नो वर्णनीया चास्य काव्यादिनिबन्धरचना प्रागल्भ्योद्रेकश्च व्याकरणधर्मशास्त्रशब्दखण्डेषु-प्रशंसनीयतम इत्येतदर्थ-बोधकमिदं पत्रं सुशीलाय कुलीनाय मेधाविनेऽस्मै वितरन्ति।

बालशास्त्री	बापूदेव शास्त्री
पण्डित वस्तीराम शर्मा	वामनाचार्याः
वेङ्कटेश शर्मा	देवकृष्ण शर्मा
शीतलाप्रसाद शर्मा	शिवकुमार शर्मा
कालीप्रसाद शर्मा	कैलासचन्द्र शर्मा
राममिश्र शास्त्री	

John C. Nesfield, Principal
Benares College
The 15th January 1879

लार्ड कर्जन से शास्त्रीजी का चमत्कारी वार्तालाप

श्री गङ्गाधर शास्त्री परपक्ष का खण्डन कर स्वमत के मण्डन व्यापार में नितान्त दक्ष थे और इस विषय में इनकी तर्कचातुरी विद्वानों के लिए भी चमत्कारिणी थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तथ्य को सिद्ध करने वाला प्रसङ्ग बड़ा ही रोचक तथा आवर्जक है। राजस्थान के शाहपुरा रियासत के राजा नाहर सिंहजी ने अपने राजपुरोहित को पण्डित गङ्गाधर शास्त्रीजी के प्रौढ़ पाण्डित्य की चर्चा सुनकर पढ़ने के लिए भेजा। उनकी हार्दिक अभिलाषा शास्त्रीजी से वेदों के अध्ययन की थी, परन्तु इसकी पूर्ति में उनका आर्य-समाजी होना बाधक था। वे जानते थे कि शास्त्रीजी जैसा काशी का विद्वान् आर्य-समाजी को वेदों का शिक्षण देने के लिए कदापि उद्यत नहीं हो सकता। राजा साहब ने उनकी इच्छापूर्ति में पूर्ण सहायता देने की बात कही। वे सामान्य राजा न होकर तत्कालीन वाइसराय लार्ड कर्जन के कृपापात्रों में से थे। उन्होंने राजपण्डित को अध्ययन के लिए काशी भेजा; परन्तु गङ्गाधर शास्त्रीजी टस से मस नहीं हुए; आर्य-समाजी को वेदाध्ययन न कराने की अपनी प्रतिज्ञा पर हिमालय के समान अडिग बने रहे। पण्डित हतोत्साह होकर लौट गया और अपने आश्रयदाता नरेश से काशीयात्रा की निष्फलता की कथा कह सुनायी। नरेश ने लाट साहब से राजकीय विद्यालय में अपने पण्डित को न पढ़ाने की शिकायत की।

लार्ड कर्जन बड़ा ही तेजतर्रार वायसराय था। इस पाठशाला के नाम के साथ 'राजकीय' शब्द के प्रयोग से उसने समझ लिया कि यह पाठशाला ब्रिटिश शासन के आश्रित है और उसे अत्यधिक अचरज हुआ कि उसके अधीन किसी पाठशाला के अध्यापक ने किसी छात्र को (जो किसी माननीय, देशीराज के अधिपति द्वारा आग्रह-पूर्वक भेजा गया हो) अध्यापन न कर अपने कर्तव्य के उल्लङ्घन करने का साहस किया है। फलतः उसने अपनी भावी काशीयात्रा के अवसर पर इस प्रसङ्ग का विश्लेषण एवं निराकरण करने का आदेश समुचित अधिकारियों को दिया। तदनुसार उनके यात्राक्रम में काशी के स्थानीय अधिकारियों को सूचना दी गई कि विद्यालय के अध्यापक पण्डित गङ्गाधर शास्त्री से भेंट करने का वायसराय का कार्यक्रम रखा जाय। कार्यक्रम नियत किया गया और प्रिंसिपल डा० वेनिस द्वारा शास्त्रीजी को सूचना भी दिलाई गई। पहले तो पण्डितजी ने इसे अपने लिए कोई महत्त्व नहीं दिया और स्पष्ट शब्दों में प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया—"विद्यार्थियों को विद्यादान देना ही मेरा ध्येय है। भारतवर्ष के सर्वोच्च शासनाधिकारी से भेंट करने की मुझे आवश्यकता ही कौन-सी है ?" डा० वेनिस साहब ने पण्डितजी को बहुत समझा-बुझाकर अनुकूल किया। तब शास्त्रीजी दो शर्तों पर वायसराय से भेंट करने को राजी हुए। पहली शर्त थी कि वे अपनी स्वाभाविक वेशभूषा में ही भेंट करेंगे तथा दूसरी शर्त यह थी कि काशिराज महाराज प्रभुनारायण सिंह तथा कालेज के प्रथम अध्यापक महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदीजी के सान्निध्य में ही वे वायसराय से साक्षात्कार करेंगे। इसका भी समुचित प्रबन्ध कर दिया गया। कुशाग्रबुद्धि शास्त्रीजी को यह समझने में देर न लगी कि यह सब वितण्डा उक्त शाहपुराधीश के पण्डितजी को न पढ़ाने का ही परिणाम है।

× × ×

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९०३ ई० के किसी दिन अपराह्न का समय। साक्षात्कार का स्थान काशी नरेश की नदेसरकोठी जहाँ लार्डकर्जन अपने दलबल के साथ ब्रिटिश शासन के परमोच्च पद पर विराजमान होकर अपनी राजकीय अभ्यर्थना का आनन्द उठा रहा था। वायसराय के संरक्षण के लिए उद्दण्ड गोरे 'सार्जेन्टों' का कड़ा पहरा पड़ रहा था। ऐसे समय पण्डित गंगाधर शास्त्रीजी अपनी पण्डिताऊ वेशभूषा में साक्षात्कार के लिए निर्णीत समय पर उपस्थित हुए। पण्डितजी का यह वेश अंग्रेज सार्जेन्टों के लिए कौतूहल का विषय था। उन्होंने पण्डितजी को प्रवेश करने से रोक दिया, तब शास्त्रीजी उलटे पाँव लौट ही पड़े। डा० वेनिस तो शास्त्रीजी के आने की प्रतीक्षा में बरामदे में घूम ही रहे थे। वे अनुनय-विनय कर इन्हें अपने साथ भीतर ले गये। काशिराज की उपस्थिति में वार्ता आरम्भ हुई। शास्त्रीजी संस्कृत में उत्तर दे रहे थे और वेनिस साहब दुभाषिया का काम कर रहे थे।

लार्ड कर्जन उच्च आसन पर बैठा हुआ शास्त्रीजी से प्रश्न पूछ रहा था। उसने कहा कि शास्त्रीजी से पूछा जाय कि शाहपुरा के पण्डितजी को इस पाठशाला में शिक्षा क्यों नहीं दी गई? शास्त्रीजी भी तैयार थे अपने माकूल जवाब से, इन्होंने तुरन्त उत्तर दिया—हमलोग वेदोक्त सनातन धर्मावलम्बी हैं और परमात्मा के सगुण अवतार को मानते हैं। तदनुसार हम शास्त्र और अवतारों का समर्थन और मण्डन करते हैं। इसके विपरीत आर्यसमाज वेदों का मनमानी अर्थ करता है और अवतारों को विशिष्ट मनुष्यमात्र ही मानता है। इस विषय को हम स्वयं ही नहीं जानते, तब हम उक्त पण्डित को क्या पढ़ाते?

हमारे शास्त्रों के अनुसार अधीति (गुरुमुख से श्रवण), बोध (मनन द्वारा ज्ञान सम्पादन) तथा आचरण (स्वयं उसके अनुसार व्यवहार) के अनन्तर विद्या का प्रचारण अर्थात् शिक्षण होता है। इसी नियम के अनुसार संस्कृत विद्या का शिक्षण किया जाता है। आर्यसमाजी पद्धति से वेद के अध्ययनशील गुरु से वेदों का अध्ययन करना परमावश्यक है, परन्तु मुझे तो आज तक ऐसा कोई भी गुरु ही नहीं प्राप्त हुआ जो मुझे आर्यसमाज की पद्धति से शास्त्र का अध्यापन करता। फलतः मैं 'अधीति' नामक प्रथम साधन से ही वञ्चित हूँ। तब प्रचारण अर्थात् शिक्षण की बात ही नहीं उठती, ज्ञान होने पर ही विद्या का दान किया जाता है। मुझे तो इस शास्त्र का ही ज्ञान नहीं है, तब मैं इसकी शिक्षा ही कैसे दे सकता हूँ? इसलिए मेरे ऊपर यह आरोप सिद्ध नहीं होता।

लार्ड कर्जन इस उचित उत्तर को सुनकर चुप हो गया और पण्डितजी को अप्रतिभ करने के उद्देश्य से उसने प्रश्न के रूप में एक दूसरा पासा फेंका। वायसराय ने पूछा कि पण्डितजी से पूछा जाय कि वे सनातन धर्म के विरोधी अनार्य शासन से पारिश्रमिक क्यों ग्रहण करते हैं? अंग्रेजी शासन से अध्यापन कार्य के लिए वेतन ग्रहण करना क्या सनातन धर्म से विरुद्ध नहीं है?

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रश्न का उत्तर भी शास्त्रीजी ने तुरन्त ही दे डाला। इनका उत्तर था—मेरे विद्यालय का नाम 'काशिराजकीय पाठशाला है —'काशी में राजकीय अर्थात् सरकारी पाठशाला'—यह इस नाम का अर्थ नहीं है, प्रत्युत काशिराजकीय अर्थात् 'काशि-राज की पाठशाला' यही अर्थ है। क्या ब्रिटिश शासन इतना अनभिज्ञ है—नहीं जानता कि इस पाठशाला के लिए भारतीय हिन्दू अपितु ब्राह्मण राजा ही ने (महाराज प्रभुनारायण सिंह की ओर संकेत करके) मिर्जापुर जिले में स्थित अपने राज्य का एक विशिष्ट 'सतासी' परगना ही दान में दे दिया और वह जमीन भी दे दी है जिस पर विद्यालय की इमारत खड़ी है। अंग्रेजी शासन तो इसकी केवल व्यवस्था करता है। यह उसके अधिकार में नहीं है। इसके स्वामी काशीनरेश हैं, न कि भारत सरकार। फलतः मैं सनातनधर्मी महाराजा से वेतन लेता हूँ, किसी विधर्मी शासक से नहीं। डा० वेनिस ने भी शास्त्रीजी के कथन को समर्थित किया। उत्तर बड़ा ही सटीक था और शास्त्रीजी ने इसे इतनी पटुता से कहा कि लार्ड कर्जन हतप्रभ हो गया।

लार्ड कर्जन जल्दी हार मानने वाला व्यक्ति नहीं था। उसने तीसरा और आखिरी दाँव फिर फेंका इस प्रश्न के रूप में—पण्डितजी ने कौन-कौन सी परीक्षाएँ उत्तीर्ण की हैं? इस पर पण्डितजी ने तत्काल उत्तर दिया, "हम लार्ड महोदय के बड़े ही अनुगृहीत होंगे यदि वे हमारी परीक्षा लेने के लिए समस्त भूमण्डल में से कोई भी परीक्षक नियत कर दें। मुझे तो अपनी विद्या उपलब्धि की स्वयं ही थाह नहीं लग रही है तब मैं प्रश्न का क्या उत्तर दूँ? इसकी पुष्टि डा० वेनिस ने भी स्वयं इन शब्दों में की कि शास्त्री जी सकल शास्त्रों के अगाध पण्डित हैं। संस्कृत का कोई भी विषय इनसे अछूता नहीं है। प्रश्न का समुचित उत्तर सुनते ही लार्ड कर्जन एकदम चुप हो गया। यह महत्त्वपूर्ण वार्तालाप यहीं समाप्त हो गया। लार्ड कर्जन शास्त्रीजी के उत्तरों से प्रसन्न था। बड़ी प्रसन्नता के वातावरण में यह ऐतिहासिक भेंट समाप्त हो गई।[1]

शास्त्रीजी के इन उत्तरों से लार्ड कर्जन बड़ा प्रभावित हुआ। डा० वेनिस ने भी गङ्गाधर शास्त्रीजी के उत्तर को उचित ठहराया और अपनी ओर से भी इन्हें निर्दोष बतलाया। शास्त्रीजी निर्दोष सिद्ध किये गये और ये प्रसन्नवदन सानन्द घर लौट आये। इष्ट-मित्रों को इस सुखद समाचार से बड़ी प्रसन्नता हुई। शास्त्रीजी की

---

१. इस महत्त्वपूर्ण संस्मरण के ज्ञाता तथा इस घटना के दर्शक एवं कालेज के अध्यापक पण्डित हरिनाथ शास्त्री (मनीष्यानन्दजी) थे जिनके अन्यतम शिष्य पण्डित देवकीनन्दन मिश्र से जमींदार होने के नाते श्री कुमुदचन्द्रजी (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पौत्र तथा भूतपूर्व एवं वर्तमान महाराज के अवैतनिक अंगरक्षक तथा प्रथम श्रेणी के सरदार) का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। मिश्रजी ने कुमुदचन्द्रजी से इस तथ्यपूर्ण घटना का वर्णन किया था। देखिए, कुमुदचन्द्रजी का एतद् विषयक लेख 'विद्यामन्दिर पत्रिका' (रामनगर दुर्ग, १९७५ ई० का अंक)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्भीकता तथा निर्दोषता का यह समाचार काशी की विद्वन्मण्डली में सातिशय आश्चर्य तथा सन्तत-चर्चा का विषय बना रहा।

अवसरज्ञ डा० वेनिस ने इसी उचित अवसर पर गङ्गाधर शास्त्रीजी के अलौकिक पाण्डित्य तथा लोकातीत वैदुष्य की चर्चा लाटसाहब से की और उन्हें किसी उचित उपाधि से सम्मानित किये जाने की संस्तुति भी की। इसी सस्तुति का परिणाम था कि शास्त्रीजी को सी० आई० ई० की उपाधि मिली जो म० म० बापूदेव शास्त्री को छोड़कर किसी संस्कृत के पण्डित को पहली बार प्रदान की गई थी। दिल्ली दरबार के अवसर पर रुग्ण होने के कारण शास्त्रीजी उपाधि लेने के लिए स्वयं उपस्थित न हो सके। तब काशी में ही जिलाधीश के द्वारा इन्हें यह उपाधि विशिष्ट समारोह में दी गई।

शास्त्रीजी तथा डा० वेनिस

इसी प्रसङ्ग में श्री गङ्गाधर शास्त्रीजी के प्रति विद्यालय के अध्यक्षों (प्रिंसिपल्स) की आदरभावना तथा सत्कारनिष्ठा का परिचय देना अवसरप्राप्त है। शास्त्रीजी नाना-शास्त्रों के विलक्षण विद्वान् थे। चाहे न्याय हो या योग, मीमांसा हो या वेदान्त, व्याकरण हो या साहित्य—इन सब में उनका वैदुष्य श्लाघनीय था और इसीलिए डा० थिबो को उनसे अनेक ग्रन्थों की रचना में सहायता लेनी पड़ती थी। श्रीभाष्य का अनुवाद करने में शास्त्रीजी ने डा० थिबो को पर्याप्त सहायता दी और अनेक विषम स्थलों पर उत्पन्न विप्रतिपत्तियों का निराकरण कर अनुवाद को सफल तथा विश्वसनीय बनाया। डा० वेनिस तो अपने को शास्त्रीजी का शिष्य उद्घोषित करने में अपना गौरव मानते थे। वे 'गुरुजी' कहकर उनका सङ्केत करते थे तथा पण्डितों की भरी सभा में उनका पैर छूकर प्रणाम करते थे।

ऐसे ही प्रसङ्ग का वर्णन मेरे ही ग्राम-निवासी स्वर्गीय पण्डित हरनाथ द्विवेदी (टाउन हाईस्कूल, आरा के संस्कृताध्यापक) ने अपने गुरु पं० रामावतार शर्मा के संस्मरण[1] वर्णन के अवसर पर किया है। द्विवेदीजी शर्माजी के छात्र थे और उन्हीं के साथ सभा में उपस्थित हुए थे। उन्हीं के शब्दों में यह पावन प्रसंग यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है :—

"अंग्रेज होते हुए भी वेनिस साहब की गुरुभक्ति भारतीय संस्कृत छात्रों की सी मैंने अपनी आँखों देखी है। एक बार की घटना है। १९०५ ई० में आस्ट्रेलिया के किसी संस्कृतानुरागी व्यक्ति ने बहुत-सा द्रव्य व्यय करके फोनोग्राफ (अनुस्वान—लेखन यन्त्र) के रेकार्ड के साथ कई अंग्रेजों को भारत भेजा था। उन्होंने पहले-पहल काशी पहुँचकर वेनिस साहब के द्वारा मुंशी माधोलाल की प्रख्यात कोठी में काशी

---

१. यह संस्मरण बिहार सरकार द्वारा पटना से प्रकाशित मासिक पत्रिका के दो अंकों में छपा था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रसिद्ध विद्वानों को आमन्त्रित किया। वहाँ कई बड़े-बड़े विद्वान् उपस्थित थे। महाराजजी (पं० रामावतार शर्मा) भी वहाँ पहुँचे। महाराजजी और वेनिस साहब में धाराप्रवाह संस्कृत में कुछ शास्त्रीय विवाद छिड़ गया। बहुत देर के बाद म० म० गङ्गाधर शास्त्रीजी पहुँचे। सब विद्वानों ने खड़े होकर शास्त्रीजी को प्रणाम किया, किन्तु वेनिस साहब और महाराजजी ने आगे बढ़कर पैर छूकर अभिवादन किया। एक अंग्रेज का भारतीय विद्वान् को पैर छूकर प्रणाम करना – यह घटना मेरे लिए अपूर्व थी। भारतीय विद्वान् संस्कृत का उच्चारण कैसा करता है—यह जानने के लिए आस्ट्रेलियन अंग्रेजों ने सभी पण्डितों के एक-एक श्लोक की ध्वनि रेकार्ड में भरी। यहाँ से लौटकर महाराजजी ने पण्डित चन्द्रशेखर ओझा से कहा—'वेनिस साहब ने किसी से कहा था कि रामावतार पाश्चात्यदर्शन नहीं जानते। आज मैंने पाश्चात्यदर्शन की ही चर्चा छेड़कर उन्हें दिखा दिया कि यह भी मैं आपसे कम नहीं जानता'।"

पूर्वोक्त उद्धरण सभा के प्रत्यक्षदर्शी विद्वान् का तथ्यपूर्ण विवरण है। इससे स्पष्ट है कि संस्कृत कालेज के प्रिंसिपल अंग्रेज डा० वेनिस शास्त्रीजी के प्रति कितनी श्रद्धा तथा भक्ति रखते थे। भरी सभा में अनेक पण्डितों के समक्ष शास्त्रीजी के चरण छूकर प्रणाम करने में उन्हें तनिक भी संकोच नहीं हुआ— शास्त्रीजी का व्यक्तित्व ही इतना अलौकिक था कि उनके विद्यावैभव के समक्ष सब किसी को नतमस्तक होना ही पड़ता था।

पं० रामावतारजी जब छपरा से काशी विद्याध्ययन के निमित्त आये, तब उन्होंने संस्कृत कालेज के प्रत्येक पण्डित की कक्षा में नियमपूर्वक बैठकर तत्तत् ग्रन्थों का पाठ सुना, परन्तु उन्हें कोई भी पण्डित नहीं जँचा। शास्त्रीजी से पाठ सुनने पर ही उन्हें पूर्ण सन्तोष हुआ और उन्हीं से सब विद्या पढ़ने का उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया और सकल शास्त्र केवल उन्हीं से ही पढ़ा। इस प्रगाढ़ परिचय के आधार पर वे शास्त्री के समान उद्भट पण्डित एवं सकल-शास्त्र-निष्णात विद्वान् किसी को भी नहीं मानते थे। आपका कहना था—"मेरे गुरुजी के बराबर संस्कृत का विद्वान् संसार में कोई है ही नहीं। आज यदि कोई राजसूय आदि यज्ञ कराना चाहे, तो गुरुजी के सिवा दूसरा कोई आचार्य होने का साहस नहीं कर सकता।" यह मन्तव्य यथार्थ है, क्योंकि श्रौत यज्ञों की सम्पादनकला के भी ये प्रकृष्ट प्रतिभाशाली मर्मज्ञ विद्वान् जो थे।

श्रीगङ्गाधरशास्त्री कविरेकः सकलगुरुबुधेष्वभवत्।
कृतयो यस्याद्यापि प्रमोदयन्त्येव हृदयानि॥

●

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८

श्री दामोदर शास्त्री

(आस्पद--भारद्वाज; उपाधि—महामहोपाध्याय)

स्थान भगवती संकटा देवी का मन्दिर। समय प्रातःकाल आठ बजे। संकटा देवी के मन्दिर में दर्शनार्थी भक्तजनों की भीड़ तो प्रायः नित्य ही रहती है, परन्तु आज देवी का विशिष्ट राजशृंगार किया गया है। मन्दिर में नाना प्रकार की देवता और देवियों की मूर्तियाँ सजाई गई हैं। भक्तजनों की अपार भीड़ है। पूछने पर पता चलता है कि आज एक विशिष्ट पूजा का समारोह उपस्थित है। पूजा करने वाले सज्जन सात्त्विक वेष धारण कर भगवती संकटा की पूजा के लिए आते हैं। नाना विमल द्रव्यों से पूजा करके अन्त में वे सुवर्ण-निर्मित बिल्वपत्र से पूजा का समापन करते हैं। सोने का बिल्वपत्र ? हाँ, विशुद्ध चमकते हुए सुवर्ण का बिल्वपत्र उसे चढ़ाकर वे अपनी भक्ति-भावना के उद्रेक का सद्यः परिचय देते हैं। ये ही सज्जन हैं महामहोपाध्याय पण्डित दामोदर शास्त्री भारद्वाज। इन्होंने मान्यता मानी थी कि प्रकाण्ड मैथिल विद्वान् **बच्चा झा** के साथ शास्त्रार्थ में यदि विजयश्री इन्हें वरण करेगी, तो ये अपनी इष्ट देवी संकटा माता के ऊपर सोने का बिल्वपत्र चढ़ावेंगे। आज इनकी मनोरथवल्ली पुष्पित हुई है। फलतः अपनी प्रतिश्रुत पूजा कर, माता के श्रीचरणों में अपना मस्तक नवाकर अपनी भक्तिभावना प्रकट करके ये आनन्दविभोर हो रहे हैं।

शास्त्रार्थ के महारथी पण्डितों में 'राजपुरुषः' के शाब्दबोध का विषय बड़ा ही महत्त्वपूर्ण, विचारोत्तेजक तथा वैदुष्यपरिचायक माना जाता है। इस शास्त्रार्थ में साधारण पण्डितों की—नैयायिकों तथा वैयाकरणों की—आरम्भ से ही अगति है। वे इस विशाल शास्त्रार्थदुर्ग के द्वार के भीतर प्रवेश के भी अधिकारी नहीं माने जाते। इसमें तो वादिपुंगवों का ही साधिकार प्रवेश माना जाता है जो शास्त्रार्थ की कला से पूर्ण परिचय रखते हैं, स्थूल कोटियों से सूक्ष्म कोटियों में तत्त्वों के आलोडन तथा मन्थन के वैदुष्य से सर्वथा मण्डित माने जाते हैं। शास्त्रार्थ जब विचार के सूक्ष्म स्तरों में पहुँच जाता है, तब ऐसा भी अवसर उपस्थित होता है जब न्याय तथा व्याकरण के सिद्धान्त झिलमिलाने लगते हैं, लड़खड़ाने लगते हैं और आपस में टकराने लगते हैं। तब मध्यस्थ उस वाद को वहीं समाप्त कर देने का आग्रह कर देता है, क्योंकि वह जानता है कि यह प्रश्न ही ऐसा है जिसका उत्तर नहीं—समस्या ही ऐसी आती है जिसका समाधान नहीं। निम्न कोटियों के आगे बढ़ने का साहस करना स्वयं पाण्डित्य के वैभव का द्योतक होता है। उदात्त कोटियों में प्रवेश कर तर्कों का प्रस्तुतीकरण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं ही वैदुष्य का निकषग्रावा माना जाता है। वह विशिष्ट तार्किक शास्त्रार्थ शास्त्रार्थ-रसिकों की ही क्रीड़ा-स्थली है। साधारण विद्वानों के लिए दुरूह, अगम्य तथा कल्पनातीत है। ऐसा ही है विज्ञ पण्डितों की दृष्टि में यह प्रखर शास्त्रार्थ।

मिथिला के तार्किकशिरोमणि बच्चा झा और काशी के शास्त्रार्थ-महारथी, वैयाकरण केसरी, पं० दामोदर शास्त्री भारद्वाज का एतद्विषयक शास्त्रार्थ ऐतिहासिक घटना थी जिसकी स्मृति आज भी पण्डितों के मानस को आन्दोलित करती है। जानकार पण्डितों का तो कहना है कि यह शास्त्रार्थ तो 'न भूतो न भविष्यति' की लोकोक्ति को चरितार्थ कर रहा है। मैथिल विद्वन्मण्डली के मुकुटमणि पण्डित बच्चा झा व्याकरण तथा न्याय के उच्चकोटि के जटिल शाब्दबोध के चिन्तन में अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं रखते थे—ऐसी सार्वत्रिक ख्याति थी। वे जंजाल से अलग हटकर शास्त्र के चिन्तन में इतने आसक्त रहते थे कि अवधानयोग्य विषयों के भीतर नये-नये विचारस्तरों के आविष्कार करने में उनकी शेमुषी नितान्त प्रखर थी। पं० शिवकुमार शास्त्री मैथिल पण्डितमात्र के गुरुस्थानीय माने जाते थे। अतएव वे एक मध्यस्थ बने और दूसरे मध्यस्थ बने उस युग के प्रकाण्ड नैयायिक कैलासचन्द्र शिरोमणिजी। ये दोनों विद्वान् मध्यस्थ के उच्चासन पर आसीन किये गये। बच्चा झा के प्रश्नों का उत्तर देने का भार पूर्णतया पड़ा वैयाकरण-केसरी पण्डित दामोदर शास्त्री पर, जो काशीस्थ पण्डितों में आदरणीय 'वादिवृषभ' की उपाधि से मण्डित किये जाते थे। यह ऐतिहासिक शास्त्रार्थ कई दिनों तक चलता रहा; इसे देखने-सुनने के लिए काशी के पण्डितों का जमघट लग गया। उत्तर-प्रत्युत्तर में कोई भी शास्त्रार्थी दूसरे से घट कर नहीं था। जब मध्यस्थों ने देखा कि शास्त्रार्थ की कोटि आगे नहीं बढ़ रही है तब उन लोगों ने वादी और प्रतिवादी—दोनों के स्वतन्त्र चिन्तन, प्रगाढ़ मनन तथा नूतन तर्कों के विशद आविष्करण की शतशः प्रशंसा की और शास्त्रार्थ वहीं रोक दिया गया। शिरोमणि जी की दृष्टि में वादी का पक्ष न्यायशास्त्र की दृष्टि से समुचित था, तो अन्य मध्यस्थ शिवकुमार पण्डित जी की सम्मति में प्रतिवादी का पक्ष व्याकरण के मन्तव्यानुसार औचित्य-सम्पन्न था। फलतः दोनों पण्डितों की शास्त्रार्थ कला की बहुशः संस्तुति की गई थी और दोनों को अपने सिद्धान्तों के उत्कृष्ट व्यवस्थापन के कारण विजयी माना गया था।

पं० दामोदर शास्त्री जी के लिए यह महती उपलब्धि थी उनके जीवन की। ऐसा प्रचण्ड शास्त्रार्थ तो उन्होंने शायद ही अपने जीवन में किया हो। यह काशी के लिए गौरव की बात थी कि यहाँ के एक मान्य पण्डित ने दिग्विजयी बच्चा झा के प्रश्नों का विधिवत् समाधान किया। दामोदर शास्त्री जी ने इस विजय को अपनी इष्ट देवी भगवती संकटा जी का विशेष अनुग्रह माना और इसीलिए अपनी हार्दिक भावना प्रकट करने के हेतु उन्होंने भगवती पर सुवर्ण-निर्मित बेलपत्र चढ़ाया था। विद्या-नगरी काशी का यह शास्त्रार्थ पण्डितों के अन्तःकरण को प्रफुल्लित करने वाली एक अनहोनी कहानी है जो 'न भूतो न भविष्यति' की उक्ति को चरितार्थ करती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रार्थ की ऐतिहासिकता

म० म० पं० दामोदर शास्त्री तथा पं० बच्चा झा के बीच में इस शास्त्रार्थ का वर्णन डा० गंगानाथ झा ने अपनी आत्मकथा में बड़े ही रोचक ढंग से दिया है जो अत्यन्त प्रामाणिक है। झा जी उन दिनों क्वीन्स कालेज में बी० ए० की कक्षा में अध्ययन कर रहे थे और इस शास्त्रार्थ के प्रत्यक्षदर्शी थे।

उन्हीं दिनों दरभंगा के राजा रमेश्वर सिंह—जो महाराजाधिराज लक्ष्मीश्वर सिंह के छोटे भाई थे—अपनी पत्नी की चिकित्सा कराने के लिए काशी आये थे और दुर्गाकुण्ड के पास उस स्थान पर ठहरे हुए थे जिसे आजकल 'गुरुधाम कालोनी' कहा जाता है। यह शास्त्रार्थ इन्हीं राजा के सान्निध्य में, गुरुधाम में ही हुआ था। पं० बच्चा झा, राजा रमेश्वर सिंह के प्रधान पण्डित थे, अतः इसी स्थान पर इनका दामोदर शास्त्रीजी से वाद-विवाद हुआ। पं० बच्चा झा की अवस्था उस समय केवल २६ वर्ष की थी परन्तु उसी काल में उन्होंने न्याय शास्त्र में प्रकाण्ड पाण्डित्य प्राप्त कर लिया था। वे स्वभाव से कुछ उद्दण्ड और अभिमानी पुरुष थे। अतः वे प्रायः कहा करते थे कि काशी के वैयाकरणों को शब्दखण्ड का कुछ भी ज्ञान नहीं है। उनका यह आक्षेप उस समय के शास्त्रार्थ शूर-महाराष्ट्र पण्डित म० म० दामोदर शास्त्री को लक्ष्य करके था। बात ऐसी थी कि सन् १८८८ ई० में किसी पुष्करिणी के उद्घाटन के उत्सव में दामोदर शास्त्रीजी मिथिला गये हुए थे वहाँ परम्परानुसार इनका शास्त्रार्थ बच्चा झा के विद्यागुरु पंडित **ऋद्धि झा** से हुआ। उस शास्त्रार्थ में पं० ऋद्धि झा परास्त हो गये थे। अतः वावदूक बच्चा झा अपने गुरु के पराभव का प्रतिशोध लेने के लिए ही सन् १८८९ ई० में काशी आये और उन्होंने यहाँ समस्त पण्डितों को शास्त्रार्थ करने के लिए ललकारा। काशी में उस समय वैयाकरणकेसरी म० म० दामोदर शास्त्री की तूती बोलती थी। भला ये बच्चा झा की यह उद्दण्ड चुनौती कैसे न स्वीकारते? अतः इन दोनों उद्भट विद्वानों ने शास्त्रार्थ करने का निश्चय किया।

यह शास्त्रार्थ राजा रमेश्वर सिंह के सान्निध्य में हुआ था जिसमें हथुआ के राजा भी उपस्थित थे। इस ऐतिहासिक शास्त्रार्थ को देखने के लिए सात सौ (७००) केवल मैथिल विद्वान् उपस्थित थे। स्थानीय पण्डितों की तो संख्या अनगिनत थी। इस शास्त्रार्थ में मध्यस्थ थे प्रखर तर्कनिष्णात नैयायिक म० म० कैलासचन्द्र शिरोमणि तथा प्रकाण्ड वैयाकरण म० म० शिवकुमार शास्त्री। यह ऐतिहासिक शास्त्रार्थ लगातार तीन दिनों तक होता रहा। यह सन्ध्या काल से प्रारम्भ होता था और मध्य रात्रि तक चलता रहता था। शास्त्रार्थ के तीसरे दिन अन्त में शास्त्रार्थ की अन्तिम कोटि में दामोदर शास्त्री ने तर्क करना बन्द कर दिया और केवल श्रोता के रूप में बच्चा झा जी के तर्कों को सुनते रहे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैलासचन्द्र शिरोमणि झा जी के गम्भीर तर्कों को बड़े ही ध्यान से सुन रहे थे जिससे ज्ञात होता था कि वे उनके तर्कों को ठीक तथा उचित मान रहे हैं। परन्तु अन्त में किसी पक्ष की विजय या पराजय नहीं हुई और मध्यस्थों ने दोनों विद्वानों की गम्भीर विद्वत्ता की भूरि-भूरि प्रशंसा की। तीसरे दिन आधी रात होने पर यह महान् शास्त्रार्थ दोनों पक्षों को समान मान कर अपनी परिणति पर पहुँचा और बन्द कर दिया गया। आजकल के शब्दों में यह शास्त्रार्थ 'ड्रान मैच' के रूप में परिणत हो गया जिसमें न किसी की हार होती है, न जीत। डा० गंगानाथ झा ने इस शास्त्रार्थ के विवरणोपरान्त इसके परिणाम के विषय में अपने विचारों को यथातथ्य रूप से प्रकट किया है।[1]

पूर्व पुरुष

लगभग तीन-चार सौ वर्ष पूर्व ही भारद्वाजवंशी महाराष्ट्र ब्राह्मणों का कुल काशी में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था। उसकी प्रतिष्ठा की परिचिति इसी घटना से की जा सकती है कि काशीस्थ महाराष्ट्रवंशी ब्राह्मणों में अग्रपूजा के अधिकारी विश्रुत 'भट्टभट्ट'

---

1. The discussion of the details was admitted. But after a few steps it became so intricate that not only Pt. Damodar shastri but all others also failed to follow it; with the exception, of course, of the two umpires, who centinued to listen to Pt Bachcha Jha and try to understand his point of view. Bhattacharya (Pt. Kailas Chandra Shiromami) appeared to us to be specially interested and appreciative of Bachcha Jha's point of view. Pt. Damodar shastri sat a silent listener. This went on till midmight when by common consent the gathering was dissolved and the houours of the discussion remained uncertain. The partisan of each disputant claimed the victory for his own champion, but to my mind the umpires appeared to be inclined to assign superiority to Bachcha Jha. I have given an ungarbled account of this, because attempts have been made by the partisans of both sides to misrepresent the facts.

— Auto-biographical Notes of M. M. Dr. Sir Ganganath Jha (Publeshed by Ganganath Jha Kendriya Sanskrit Vidyapith, Allahabad. Journal Vol. XXX Parts 1–4, 1976, Page 57.

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुल के साथ भारद्वाजों का वैवाहिक सम्बन्ध सम्पन्न हो चुका था। भट्टभट्ट वंश के विख्यात वंशज धर्मशास्त्र-प्रवीण 'मयूखकार' **नीलकण्ठ भट्ट** ने अपनी पुत्री का विवाह भरद्वाज कुल के महादेवभट्ट के साथ उस युग (१७ वीं शताब्दी) में किया था। नीलकण्ठभट्ट धर्मशास्त्र के सर्वतोमान्य मनीषी माने जाते थे। उन्होंने **मयूख** नामधारी १२ ग्रन्थों का निर्माण कर धर्मशास्त्र के इतिहास में अपनी प्रखर प्रतिभा तथा अपने अनुपम वैदुष्य का परिचय दिया था जिनमें **व्यवहारमयूख** तथा **नीतिमयूख** अखिल भारतवर्ष में मान्य ग्रन्थरत्न हैं। **महादेव भट्ट** के दो पुत्र हुए—(१) **दिनकर भट्ट**—जिन्होंने **न्यायमुक्तावली** की प्रमेयबहुला प्रौढ़ व्याख्या लिखकर (जो इन्हीं के नाम पर **'दिनकरी'** की आख्या से प्रसिद्ध है) न्यायशास्त्र के इतिहास में अपना नाम उजागर किया था। (२) द्वितीय पुत्र **दिवाकर भट्ट** की वंशपरम्परा आज भी चल रही है जिसका क्रम इस प्रकार है—दिवाकर→वैद्यनाथ·····→सीताराम→हरिराम→ बालकृष्ण भट्ट। इन्हीं बालकृष्ण भट्ट के चार पुत्रों में से दामोदर शास्त्री तृतीय पुत्र थे। भारद्वाज कुल भौतिक दृष्टि से भी सम्पन्न था, क्योंकि सीताराम भट्ट को किसी राजदरबार से 'जासी' नामक गाँव ग्वालियर रियासत में मिला था जो आज भी इस वंश के पास है। यह गाँव सीताराम भट्ट को १८२१ शक सं० (= १७४३ ई०) में उपहार में मिला था।

जन्म तथा शिक्षा

दामोदर शास्त्री भारद्वाज का जन्म १६०४ विक्रमी (= १८४७ ई०) में हुआ था। पहिले तो इनकी शिक्षा घर पर ही होती थी, परन्तु अनन्तर इनके अग्रज रामशास्त्री अपने भाइयों को विशेष विद्याध्ययन के लिए काशी ले आये और उन्होंने दामोदर जी को १८ साल के वय में बालशास्त्री की विख्यात पाठशाला में प्रविष्ट करा दिया। यहीं पर इनकी प्रतिभा चमक उठी। बालशास्त्री जैसे प्रतिभाशाली गुरु से अध्ययन का परिणाम सुयोग्य शिष्य के ऊपर सद्यः प्रतिफलित होने लगा। इन्होंने अनेक शास्त्रों का अध्यापन अपने शिष्य को कराया जिससे दामोदर शास्त्री नाना शास्त्रों में निष्णात तथा वावदूक बन गये। दिन तो गरीबी में ही बीत रहे थे, परन्तु इनके अग्रज रामशास्त्री ने किसी प्रकार से योगक्षेम की व्यवस्था करके इन्हें अध्ययन में आर्थिक कठिनाई का अनुभव नहीं होने दिया। शास्त्री जी चतुर तथा परिश्रमी इतने अधिक थे कि पूर्वाह्न में तो बालशास्त्री से पाठ पढ़ते थे और अपराह्न में अपने घर पर मैथिल छात्रों को विशेषकर पढ़ाते थे। फलतः अध्ययन काल में ही इनकी विद्या चमक उठी और अध्यापन कला में इनकी कीर्ति प्रसृत होने लगी।

इधर आर्थिक संघर्ष तथा पारिवारिक संकट बढ़ता ही जा रहा था। पूज्य पिता जी जो जासी गाँव में रहते थे वृद्ध हो गये थे। उनकी रुग्णावस्था का समाचार जानकर रामशास्त्री अपने भाइयों के साथ उनका दर्शन तथा सेवा करने जासी गाँव चले गये। रास्ते में ही ग्वालियर पड़ता था। यहीं पर महाराजा जयाजिराव के दरबार में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थानीय पण्डितों से दामोदर शास्त्री का जमकर शास्त्रार्थ हुआ जिसमें विजयश्री ने दामोदर जी का ही वरण किया। इस प्रकार ये पण्डितों को अपने वैदुष्य के बल पर पराजित कर विजयी हुए। महाराजा ने इनका प्रचुर सत्कार किया—इनको शिविका पर चढ़ाकर बहुमूल्य दुशाला तथा पाँच सौ रुप्यकों से सम्मानित कर इन्हें घर पर पहुँचाया। घर पर पहुँचने के बाद इनके पिताजी पुत्र के राजकीय सम्मान से बड़े ही प्रसन्न हुए और कुछ ही दिनों में ये काशी आये और यहीं उनका कैलासवास हुआ।

अध्यापन

दामोदर शास्त्री की उन्नति का अब उत्कर्ष काल आ पहुँचा। सन् १८७६ ई० में गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस के अध्यक्ष प्रिन्सिपल नेसफील्ड साहब ने इन्हें व्याकरण शास्त्र के अध्यापक पद पर नियुक्त किया। तब से ये जीवनपर्यन्त वहीं अध्यापन करते रहे और अपनी शिक्षण-निपुणता के कारण इन्होंने भारत भर में विख्याति प्राप्त की। फलतः सन् १७९९ ई० में ये 'महामहोपाध्याय' की विशिष्ट पदवी से मण्डित किये गये। यह भूलना न चाहिए कि १९ वीं शती के उत्तरार्ध में अंग्रेज शासकों द्वारा पण्डितों की यह महनीय उपाधि विद्वत्ता के उत्कर्ष, प्रतिभा की अलौकिकता तथा अध्यापन की चातुरी के कारण प्रदान की जाने वाली सबसे श्रेष्ठ उपाधि थी। इसकी प्राप्ति पाण्डित्य की चरम उपलब्धि मानी जाती थी। १९०६ ई० में शृंगेरीमठ के शंकराचार्य ने इनके पाण्डित्य पर प्रसन्न होकर इन्हें सुवर्ण पदक प्रदान किया तथा इनकी विद्वत्ता की द्योतिकाएँ **'अशेष वाङ्मय पारग'** और **'वैयाकरण केसरी'** उपाधियों से भी मण्डित किया। इन्होंने सभा में शास्त्रार्थ की कला में अद्भुत प्रवीणता दिखलाकर विद्वानों को चमत्कृत कर दिया था। राघोपुर में पं० ऋद्धि झा तथा काशी में ही प्रसिद्ध मैथिल विद्वान् बच्चा झा के साथ शास्त्रार्थ किया जिसकी एक झलक आरम्भ में ही ऊपर दी गई है। १९०९ ई० में इनका कैलासवास ६२ वर्ष की आयु में यहीं काशी में सम्पन्न हुआ।

शास्त्रार्थ में निपुणता

श्री दामोदर शास्त्रीजी की सर्वमान्य विशिष्टता यह थी कि ये शास्त्रार्थ की कला के अनुपम कलावन्त थे। गहन से गहन विषय के भीतर प्रवेश करना तथा वादी की युक्तियों का सप्रमाण खण्डन करना इनके बायें हाथ का खेल था। अनेक शास्त्रों के पण्डित होने पर भी इनका सार्वभौम प्रभुत्व पाणिनीय व्याकरण पर ही था। महाभाष्य का अनुशीलन इनका अलौकिक था। महाभाष्य इनके लिए सर्वतः प्रामाण्य-सम्पन्न ग्रन्थरत्न था जिसका प्रतिदिन अनुशीलन इनके दैनिक जीवन का मुख्य अङ्ग था। महाभाष्य इन्हें आदि से अन्त तक कण्ठस्थ था तथा इनकी जिह्वा पर नाचता था। इसका प्रतिदिन पारायण इस निष्ठा तथा आदर के साथ ये करते थे जैसे कोई साधक श्रीमद्भागवत का तथा उपनिषदों का पारायण करता है। इसी का परिणत फल था

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि शायद ही कोई पण्डित भाष्य-विरुद्ध सिद्धान्त का प्रतिपादन कर इनके हाथ से निकल जाय। ये सदा जागरूक रहते थे और शास्त्रार्थ के बीच में जैसे ही कोई प्रतिपक्षी भाष्य का तनिक भी विरोध करता, वैसे ही ये उसे अपनी युक्तियों और तर्कों से दबोच देते थे। महाभाष्य का इतना पुङ्खानुपुङ्ख अध्येता तथा मननकर्ता उस समय के वैयाकरणों में शायद ही कोई दूसरा हो। शास्त्रार्थ कला के पारखी तथा परमप्रवीण होने के ही कारण ये 'वैयाकरणकेसरी' तथा 'वादिपुङ्गव' की उपाधियों से मण्डित किये गये थे।

स्वभाव की ऋजुता

इनका स्वभाव बड़ा कोमल तथा मृदुल था। अपने छात्रों पर इनकी करुणाधारा अनवरत बरसती रहती थी। पढ़ाने की शैली बडी ही रोचक तथा आकर्षक थी। व्याकरण सामान्यतः रुक्ष विषय माना जाता है, परन्तु इनके मुख से व्याख्यात व्याकरण अपनी रुक्षता खो बैठता था। उसमें अपूर्व रोचकता तथा आवर्जकता विराजने लगती थी। ये साक्षात् ऋजुता की मूर्ति थे—व्यवहार में नितान्त सीधे-सादे थे।

इस प्रसंग में उन्हीं के अन्यतम शिष्य पण्डित **अम्बिकाप्रसाद उपाध्याय** व्याकरणाचार्य (प्राध्यापक संस्कृत महाविद्यालय, हिन्दू विश्वविद्यालय) द्वारा कही गई एक घटना का उल्लेख यहाँ करना अनुचित न होगा। संस्कृत कालेज में परीक्षाएँ चल रही थीं। शास्त्रीजी निरीक्षण के निमित्त उसमें जाते थे। एक दिन परीक्षा की समाप्ति पर उन्होंने उत्तरपुस्तकों का एक बण्डल अम्बिकाप्रसादजी को दिया और कहा कि इसे मेरे घर पर पहुँचा देना। रात हो जाने से उस दिन उत्तरपुस्तकों का बण्डल उनके घर नहीं पहुँचा, परन्तु इससे शास्त्रीजी को कोई उद्विग्नता नहीं हुई। सोचते छात्र दे ही जायगा; परन्तु छात्र दो दिनों बाद जब उस बण्डल को देने गया, तब उसे शास्त्रीजी से ही मालूम पड़ा कि मध्यमा परीक्षा के किसी विशेष खण्ड की वे उत्तरपुस्तिकाएँ थीं, जिसमें वह छात्र भी सम्मिलित था। उस युग की विशेषता तो देखिए न तो छात्र के मन में उस बण्डल के भीतर की वस्तुओं को जानने की कोई इच्छा रही और न शास्त्रीजी को ही उसके आचरण पर किसी प्रकार का सन्देह हुआ। यह शास्त्रीजी का आर्जव ही था कि परीक्षा की उत्तरपुस्तकें परीक्ष्य छात्र के हाथों में देना उन्हें किसी प्रकार नहीं अखरा।

भक्ति की भावना

दामोदर शास्त्रीजी भगवती सङ्कटाजी के बड़े ही भक्त थे। गङ्गास्नान कर मन्दिर में सङ्कटाजी के सामने सप्तशती का पाठ करना उनकी दैनिक दिनचर्या का माङ्गलिक अङ्ग था। सङ्कटाजी की आरती भी वह अपने हाथों करते थे। उनके देहावसान के बाद यह अधिकार उनके पुत्रों को प्राप्त हुआ और वे लोग यथाक्रम सङ्कटाजी की सेवा-आराधना करते थे तथा भगवती की नित्य आरती उतारने का महनीय कार्य वे ही लोग सम्पादन करते थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवार

सन्तान के विषय में वे बड़े भाग्यवान् थे। उनके तीन पुत्र थे और तीनों ही संस्कृत के विद्वान् थे। ज्येष्ठ पुत्र पण्डित गङ्गाधर शास्त्री भारद्वाज संस्कृत कालेज के अनेक वर्षों (१९२२ ई०–१९४० ई०) तक प्राध्यापक रहे। वे पढ़ाने-लिखाने में दक्ष थे। वे अल्पायु हो गये। इनके तृतीय पुत्र जगन्नाथ शास्त्री भारद्वाज अच्छे चलते-पुर्जे वकील थे, परन्तु वे भी अकाल में ही कालकवलित हो गये। मध्यम पुत्र पण्डित विश्वनाथ शास्त्री भारद्वाज हिन्दू विश्वविद्यालय के अन्तर्गत संस्कृत महाविद्यालयमें प्राध्यापक थे और ये अन्य भाइयों की अपेक्षा दीर्घजीवी हैं। 'विक्रमाङ्कदेवचरित' की संस्कृत व्याख्या और हिन्दी अनुवाद इनके बहुत ही उपयोगी ग्रन्थ हैं।

शिष्यों के विषय में शास्त्रीजी बड़े भाग्यशाली थे। इनके द्वारा शिक्षित शिष्यों की संख्या पर्याप्तरूपेण बड़ी है। ये सब शिष्य व्याकरणशास्त्र के पारगामी पण्डित थे और इनकी शिष्य-परम्परा आज भी चल रही है।

शिष्यमण्डली

(१) श्री रामभवन उपाध्याय

(आस्पद—उपाध्याय; उपाधि—वैयाकरण मूर्धन्य)

श्री दामोदर शास्त्री की विशाल शिष्यमण्डली में अग्रगण्य स्थान के अधिकारी पण्डित रामभवन उपाध्याय व्याकरण शास्त्र के अद्वितीय मर्मज्ञ विद्वान् थे। उत्तर-प्रदेश के पूर्वी मण्डल में बलिया जनपद के 'सुखपूरा' नामक गाँव में इनका जन्म एक मध्यवर्गी सरयूपारीण ब्राह्मण परिवार में आश्विन शुक्ल षष्ठी विक्रम संवत् १९२२ (=१८६५ ई०) में हुआ। उस गाँव में इनके जन्म से पहिले इनके अनेक भाइयों की मृत्यु हो चुकी थी। अतः पिता तथा पितामह ने इनको नाना के घर में दे दिया। वहीं ये पले तथा बड़े हुए। अपने विद्वान् पितामह से इन्होंने सारस्वत चन्द्रिका, अमरकोश आदि प्रारम्भिक संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन किया। तदनन्तर वि० सं० १९३९ (=१८८२ ई०) में सत्तरह साल की उम्र में इन्होंने सिद्धान्त कौमुदी का अध्ययन आरम्भ किया और तीन सालों के बाद १९४२ वि० स० (=१८८५ ई०) में व्याकरण की उच्च शिक्षा की प्राप्ति के निमित्त ये काशी चले आये। संस्कृत कालेज के तत्कालीन अध्यापक पण्डित **शीतलाप्रसाद त्रिपाठी** तथा **पण्डित बेचन शर्मा त्रिपाठी** से व्याकरण, साहित्य, न्याय आदि का अध्ययन किया। व्याकरण के 'शब्दखण्ड' का गम्भीर अनुशीलन इन्होंने दामोदर शास्त्री जी के चरणों में बैठ कर किया। १९४५ वि० सं० (=१८८८ ई०) में एक ही वर्ष में सम्पन्न होने वाली आचार्य परीक्षा व्याकरण शास्त्र में उत्तीर्ण की। उस समय इनका वय केवल २३ वर्ष का था।

तदनन्तर पण्डित रामभवन जी बलिया की यमुना पाठशाला में कुछ दिनों तक अध्यापक रहे। पीछे काशी में रणवीर संस्कृत पाठशाला में भी अध्यापन का कार्य किया। गुरुवर दामोदर शास्त्री के निधन के अनन्तर उनके रिक्त स्थान पर इनकी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियुक्ति संस्कृत कालेज में १९०८ ई० में हुई। तब से १९३३ ई० तक पचीस वर्षों तक इन्होंने कालेज में बड़ी निष्ठा एवं अध्यवसाय के साथ अध्यापन का सम्पादन किया। अनन्तर कालेज से अवकाश होने पर सेवानिर्मुक्त होकर पण्डित जी अपने गाँव में रहते थे और यथासाध्य शिष्यों को पढ़ाते थे। ये भगवती अपराजिता के दृढ़ निष्ठावान् अनुरागी उपासक थे। इनकी यह दैनिकचर्या थी कि सन्ध्याकाल में भगवती अन्नपूर्णा के दर्शनार्थ जाते थे और बाजार से बढ़िया इत्र तथा बढ़िया माला खरीद कर बड़े प्रेम से अन्नपूर्णा जी को चढ़ाते थे। भगवती के चरणों में इनका यह अनुराग अविच्छिन्न गति से चलता रहा जब तक ये काशी में विराजमान थे। इनके सुयोग्य पुत्र पण्डित त्रिभुवनप्रसाद उपाध्याय एम० ए०, व्याकरणाचार्य उत्तर-प्रदेशीय संस्कृत पाठशालाओं के अनेक वर्षों तक निरीक्षक रहे। पण्डित जी के अनेक शिष्यों में से दो शिष्यों ने बड़ी कीर्ति अपने त्याग तथा विद्यादान से अर्जित की जिनमें से एक हैं पण्डित **कालीप्रसाद मिश्र** (अध्यक्ष, संस्कृत महाविद्यालय, हिन्दू विश्व-विद्यालय) तथा दूसरे हैं स्वामी **अखण्डानन्दजी महाराज** जो शन्तनुविहारी द्विवेदी नाम से इनके बड़े भक्त शिष्य थे और जिनके ऊपर पंडितजी की उपासना तथा आराधना कार्य का विशेष प्रभाव लक्षित होता है। पंडित कालीप्रसाद मिश्र जी ने 'पाणिनि शिक्षा' की एक पाण्डित्यपूर्ण 'शिक्षाप्रकाशिका' व्याख्या लिखी है जो सं० १९९० वि० (= १९३३ ई०) में प्रकाशित हुई थी। इसकी प्रशंसा गुरुवर रामभवन जी ने इस पद्य में की है—

विद्वत्कृतसाहाय्यं वाञ्छन्ती खिद्यमानेयम्।
सम्प्रति विद्व्याख्याता शिक्षा जातोपकाराय॥

(२) **पं० चन्द्रधर शर्मा**—शर्माजी न्याय, व्याकरण, साहित्य आदि शास्त्रों के बड़े ही गम्भीर विद्वान् माने जाते थे। काशी में दामोदर शास्त्री से अध्ययन करने के पश्चात् ये अयोध्या में 'राजगोपाल पाठशाला' में अध्यापक का कार्य करते थे। एक बार मालवीय जी महाराज रामनवमी के अवसर पर अयोध्या गये थे। वहाँ उन्होंने पंडितजी की अध्यापनपद्धति को निकट से देखा जिससे वे बहुत ही प्रभावित हुए और इन्हें अपने विश्वविद्यालय में साहित्याध्यापक के पद पर नियुक्त कर दिया। ये पुष्टगात्र थे, प्रतिदिन व्यायाम करते थे और सितारवादन में भी अत्यन्त कुशल थे। अतः मालवीय जी इन्हें बहुत मानते थे।

(३) **पं० ठाकुरप्रसाद द्विवेदी**—ये व्याकरण शास्त्र के अगाध विद्वान् थे। अध्ययन करने के पश्चात् ये गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, कलकत्ता में अध्यापन कार्य करते थे। वहाँ से आने पर काशी में बहुत दिनों तक संस्कृत पाठशालाओं के निरीक्षक (इन्स-पेक्टर) रहे। डा० वेनिस के अवकाश प्राप्त करने पर इन्होंने गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस में प्रिन्सिपल के पद पर भी कुछ दिनों तक काम किया था।

(४) **पं० देवनारायण त्रिपाठी**—ये तिवारी जी के नाम से अधिक प्रसिद्ध थे। इनका जीवन चरित इसी ग्रन्थ में अन्यत्र विस्तार से दिया गया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) **पं० गणपति शास्त्री मोकाटे**—ये भी संस्कृत कालेज में व्याकरण शास्त्र के अनेक वर्षों तक प्रधान अध्यापक थे। अनेक छात्रों को सुबुद्ध वैयाकरण बनाया। तात्याशास्त्री की 'भूति' पर इन्होंने सुबोध टीका लिखकर उसे छात्रोपयोगी बनाया।

(६) **पं० पूर्णचन्द्राचार्य**—ये बलिया जिला के निवासी और व्याकरण के गंभीर विद्वान् थे। शास्त्रार्थ में अत्यन्त कुशल तार्किक थे तथा काशी के टीकमणि कालेज के अध्यापक थे। राजा बलदेवदास के मान्य पंडित थे। काशी में इनकी प्रसिद्धि प्रचण्ड शास्त्रार्थी पंडित के रूप में लोक-विस्तृत थी।

(७) **पं० चन्द्रभूषण जी** - ये व्याकरण और साहित्य के उत्कृष्ट विद्वान् थे तथा काशी की रणवीर संस्कृत पाठशाला के प्रधानाध्यापक थे।

(८) **पं० गयादत्त पाण्डेय**—ये छपरा (बिहार) में स्थित मारवाड़ी संस्कृत महाविद्यालय के प्रधानाध्यापक थे। छपरा में इनकी विद्वत्ता की बड़ी प्रशंसा थी और इन्होंने अनेक योग्य शिष्यों को उत्पन्न किया।

शास्त्रीजी के इन प्रधान शिष्यों के अतिरिक्त इनकी शिष्यमण्डली में निम्नांकित विद्वानों को गणना की जाती है। **पं० चिदानन्दघन स्वामी** - ये एटामण्डल के अन्तर्गत सोरों नगर में स्थित वाराह मन्दिर के महन्त थे। ये वेदान्त और व्याकरण में निष्णात विद्वान् संन्यासी थे। **पं० गणेशदत्त झा** – (बेतिया, बिहार राज्य के पुरोहित)। **पं० भुवनेश्वरप्रसाद शर्मा**—(नेपालराज के राजपुरोहित)। **पं० सूर्यप्रसाद मिश्र**। **पं० रामेश्वर शास्त्री, पं० परमेश्वर, पं० रामदत्त पन्त** (बरेली के अंग्रेजी कालेज में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष)।

पं० दामोदर शास्त्री स्वयं प्रकाण्ड विद्वान् तो थे ही इसके अतिरिक्त इन्होंने विद्वान् शिष्यों को पैदा किया था। अतः इनके सम्बन्ध में निम्नांकित प्रशंसा अत्यन्त उपयुक्त तथा समीचीन ज्ञात होती है :—

"विद्वत्संसदि वादिदन्तिनिवहे पारीन्द्रता साऽद्भुता;
प्रावृट्कालपयोदविस्मयकरी, सा गर्जनाऽप्युच्चकैः।
उद्यत्-बालपतङ्गदीप्तिनिवहन्यक्कारि तेजोऽपि तत्;
श्री दामोदरशास्त्रिणैव सह तत् यातं समस्तं किल॥"

× × ×

विद्यातपस्तीव्रतेजोनामिताशेषपण्डितः।
दामोदरो विजयते, हरिगम्भीर-निस्वनः॥

(ख) शास्त्रीजी के प्रतिस्पर्धी

पं० बच्चा झा

(आस्पद—झा; उपाधि – सर्वतन्त्रस्वतन्त्र)

शास्त्रीजी के प्रख्यात प्रतिद्वन्द्वी **पण्डित धर्मदत्त झा** थे जो अपने उपनाम **बच्चा झा** के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध थे। इन्हीं बच्चा झा से म० म० पं० दामोदर शास्त्री

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रसिद्ध तथा ऐतिहासिक शास्त्रार्थ हुआ था जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। यहाँ पर पं० बच्चा झा का संक्षिप्त जीवन-परिचय प्रस्तुत किया जाता है।

पं० बच्चा झा का जन्म मिथिला में विक्रमी सं० १९१७ (१८६० ई०) में हुआ था तथा इनका निधन भी वहीं सं० १९७८ वि० (१९२१ ई०) में हुआ।

जन्म

नव्य न्यायशास्त्र का अध्ययनाध्यापन मिथिला में विशेषज्ञता के रूप में बहुत दिनों से होता आ रहा है। प्राचीन काल के ऋषिप्रवर गौतम, कणाद तो विश्वविश्रुत हैं ही, महामनीषी उदयनाचार्य, न्यायमार्तण्ड गङ्गेशोपाध्याय आदि के नाम भी अत्यन्त आदर से न्याय जगत् में लिये जाते हैं—इसी परम्परा में इस शताब्दी के प्रमुख नैयायिक हैं—स्वनामधन्य चरितनायक पण्डितप्रवर धर्मदत्त झा। इन्हें मिथिला में अपर गङ्गेश उपाध्याय कहते हैं। मिथिला-स्थित दरभंगा जिले के 'नवानी' ग्राम में महर्षिकल्प पं० रत्नपाणि झा के एकमात्र पुत्र पं० दुर्गादत्त झा हुए। इसी धर्म और विद्या के कुल में संवत् १९१७ की चैत्र शुक्ल नवमी को धर्म-विद्यावतार पं० धर्मदत्त झा का जन्म हुआ। माता-पिता के अत्यन्त स्नेह के कारण बाल्यावस्था में 'बच्चा' नाम से सम्बोधित होने के कारण इनका अपर नाम ही 'बच्चा झा' हो गया।

अध्ययन काल

चरितनायक का प्रारम्भिक अध्ययन घर पर ही सम्पन्न हुआ। पश्चात् ये पण्डित-शिरोमणि विश्वनाथ झा से अध्ययन-हेतु 'ठाढ़ी' ग्राम गये। पण्डित विश्वनाथ झा तत्कालीन मिथिला के पण्डितों में अग्रगण्य विद्वान् थे। अतः बच्चा झा की उभय प्रतिभाएँ प्रस्फुटित होने में देर नहीं लगी—इनमें शास्त्रों के सूक्ष्म विवेचन का यहीं सूत्रपात हुआ।

पश्चात् ये नैयायिक-प्रवर पं० बबुजन झा, पण्डित प्रवर ऋद्धि झा जो दर्शनशास्त्रों के अध्यापन में ख्यातनामा थे, से न्यायदर्शन का विधिवत् अध्ययन किया। अनन्तर दर्शनशास्त्रों के विशेष अध्ययन के लिए ये काशी आये और यहाँ स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती से मीमांसा, वेदान्त आदि दर्शनशास्त्रों का अध्ययन किया।

अध्ययन समाप्ति के पश्चात् नैयायिकजी स्वदेश मिथिला आये और मैथिल परम्परा के अनुसार घर पर ही विद्यालय स्थापित कर छात्रों को विद्यादान देना प्रारम्भ किया। आपके तलस्पर्शी ज्ञान तथा अध्यापनकौशल की प्रशंसा पूरे भारतवर्ष में व्याप्त हो गई। फलस्वरूप विभिन्न प्रान्तों के मेधावी छात्र न्यायविद्या की शिक्षा ग्रहण करने आने लगे। सुदूर गुर्जर प्रान्त के भी शतशः छात्र मिथिला आये। वह 'नवानी' ग्राम धन्य हो गया। मिथिला के अधिकांश ग्रामों में 'अनुमान खण्ड' जन-जन में व्याप्त हो गया। न्याय-प्रणेता गौतम ऋषि के आश्रम गौतमकुण्ड के सन्निधान में स्थित नैयायिकों तथा मीमांसकों से मण्डित चकौती ग्राम के पं० दुलार झा (जो नवद्वीप से न्यायशास्त्र का गहन अध्ययन करके आये थे और टीकमगढ़ के राजपण्डित थे), पं० गङ्गाधर झा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नैयायिक (नाथद्वारा के राजपण्डित) तथा अनुमानखण्ड के विशेषज्ञ पं० सहदेव झा नैयायिक आदि नवानी गये तथा इनके सम्पर्क से क्रोडपत्र प्रस्तुत किये ।

विशेष रूप से पण्डित सहदेव झा ने इनसे (पं० बच्चा झा जी से) अनुमानखण्ड का गहन अध्ययन तथा मनन किया । पण्डित सहदेव झा इतने प्रखर निकले कि एक बार दरभंगा-नरेश की पण्डित-सभा में समस्त दिग्गज विद्वानों को अनुमानखण्ड में परास्त कर लब्धधौत-प्रतिष्ठ हो गये ।

इस विपुल ख्याति को सुनकर शारदापीठाधीश्वर (द्वारका) जगद्गुरु शङ्कराचार्य महाराज ने पं० बच्चा झाजी को सादर आमन्त्रित किया और इनसे दर्शनशास्त्रों की शिक्षा ग्रहण की । इस प्रकार ये जगद्गुरु का भी गुरुत्व प्राप्त कर अत्यन्त गौरवान्वित हुए । सूरत में सम्पन्न अखिल भारतीय पण्डित-सभा के आप ही अध्यक्ष बनाये गये ।

नौकरी

महाकवि कालिदास ने वृत्त्यर्थ अध्यापन कार्य को गर्हित माना है और कहा है कि—'यस्यागमः केवलजीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति' अर्थात् जिनका शास्त्र-ज्ञान केवल जीविका (वृत्त्यर्थ) के लिए होता है वे ज्ञान को बेचने वाले 'वणिक्' की संज्ञा प्राप्त करते हैं—इसी नियमानुसार विवेकी पण्डित अपने घर पर ही पाठशाला स्थापित कर अध्यापन करते थे ।

नैयायिक श्री झा भी यद्यपि वेतन लेकर अध्यापन नहीं करना चाहते थे तथापि महाराजाधिराज दरभंगानरेश श्रीमान् रमेश्वर सिंहजी के अकाट्य आग्रह से इन्होंने कुछ दिनों के लिए मुजफ्फरपुरस्थ धर्मसमाज संस्कृत कालेज के प्रधानाचार्य (प्रिंसिपल) का पद स्वीकार किया । किन्तु अधिक दिनों तक ये वहाँ नहीं रह सके, एक वर्ष में ही इन्होंने अपने पाञ्चभौतिक शरीर को त्याग दिया ।

अध्यापन तथा शास्त्रार्थ के साथ-साथ आप लिखने में भी सिद्धहस्त थे । अनेक मौलिक ग्रन्थों की रचना की, दार्शनिक ग्रन्थों पर टिप्पणियाँ कीं, क्रोडपत्र लिखे जिनका अर्थ लगाना भी अब कठिन हो गया है । काव्यजगत् को चमत्कृत करने वाला इनका चम्पूकाव्य 'सुलोचनामाधव चम्पू' बावन सर्गों में निबद्ध २०वीं शती का अलौकिक महाकाव्य माना जाता है । इनके चम्पूकाव्य का एक रूपक प्रस्तुत किया जाता है—

श्यामेयं सुषमेन्धनं सुरभिणा सन्धुक्षितं वायुना
कुर्वन्तं जगदुज्जलं प्रसृतया सज्ज्योत्स्नया धूम्यया ।
सम्पाद्यातनुमग्निमुज्ज्वलविधुभ्राष्ट्राङ्कपालेऽध्वग-
प्राणान् भर्जत ऋक्षलाजनिकरो यद् दृश्यते खेङ्गने ॥

ग्रन्थ-रचना

उपर्युक्त चम्पू के अतिरिक्त इनकी न्याय-वेदान्त शास्त्र-सम्बन्धी अनेक रचनाएं प्रख्यात हैं—जिनका मूल्यांकन करना कठिन है । ये रचनाएँ हैं—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) व्याप्तिपञ्चक की टीका
(२) सिद्धान्तलक्षण विवेचन
(३) अवच्छेदकत्वनिरुक्ति विवेचन
(४) व्याप्त्यनुगम विवेचन
(५) व्युत्पत्तिवाद गूढार्थ तत्त्वालोक
(६) शक्तिवाद टिप्पण
(७) सव्यभिचार टिप्पण
(८) सत्प्रतिपक्ष सटिप्पण
(९) खण्डनखण्डखाद्य टिप्पण
(१०) कुसुमाञ्जलि वर्धमान टिप्पण
(११) न्यायभाष्य टीका
(१२) अद्वैतसिद्धिचन्द्रिका टिप्पण
(१३) सामान्यनिरुक्ति
(१४) श्रीमद्भगवद्गीता की टीका

आपकी शिष्य-मण्डली

(१) महामहोपाध्याय पं० बालकृष्ण मिश्र (प्रिंसिपल, संस्कृत महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)।
(२) पण्डित शशिनाथ झा (मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा)।
(३) पं० लक्ष्मीनाथ झा (दर्शन विभागाध्यक्ष, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)।
(४) स्वामी पूर्णानन्द
(५) स्वामी परमानन्द
(६) पं० हरिनाथ शास्त्री
(७) पं० षष्टिनाथ मिश्र
(८) पं० गोप्तृनाथ मिश्र, आदि।

अगाध विद्वत्ता

पं० बच्चा झा अलौकिक प्रतिभासम्पन्न विद्वान् थे। इनकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण और तर्कप्रणाली बड़ी पैनी थी। इनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य संस्कृत साहित्य और भारतीय संस्कृति का प्रचार और प्रसार था। इसलिए इन्होंने अपने जीवन को सुरभारती की सेवा में अर्पित कर दिया था। जीवन में भौतिक सुखों के प्रति ये बड़े उदासीन रहते थे। इन्होंने सुखपूर्वक जीवन यापन के लिए कभी नौकरी नहीं की। मुजफ्फरपुर के संस्कृत कालेज में प्रिन्सिपल के पद को अवश्य सुशोभित किया, परन्तु एक वर्ष के बाद उसका भी परित्याग कर दिया।

इनका जीवन एक वीतराग महात्मा के समान था। पारिवारिक जंजाल में घिरे रहने पर भी इन्होंने कभी उससे प्रेम नहीं किया। उसके मोह में नहीं पड़े। ऐसा सुना जाता है कि इन्होंने अपने निवास में जमीन के भीतर एक कन्दरा बना रखी थी और वहीं ये एकान्त में बैठकर शास्त्रों का चिन्तन, मनन किया करते थे। इन्होंने स्वाध्याय, विद्वत्ता तथा काव्यप्रतिभा के द्वारा एक ऐसे महाकाव्य की रचना की है जो ५२ सर्गों में समाप्त हुआ है। अपनी युवावस्था में ही इन्होंने वैयाकरण-केसरी म० म० पं० दामोदर शास्त्री को शास्त्रार्थ के लिए चुनौती दी थी। इससे इनके अलौकिक पाण्डित्य तथा तल-स्पर्शिनी विद्वत्ता का पता चलता है।

पं० बच्चा झा की विद्वत्ता तथा शोध का प्रधान क्षेत्र न्यायशास्त्र था। इन्होंने न्यायशास्त्र के तथ्यों की कोटि पर कोटि, परिष्कारों के नये-नये स्वरूप तथा आयामों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अपनी प्रखर बुद्धि से आविष्कार किया। इन्होंने न्यायशास्त्र के गंभीर तथा अथाह समुद्र का इतना अधिक आलोडन कर लिया था कि इनको "मननतरीतीर्णविद्यार्णवः" की उपाधि से विभूषित किया जाना चाहिए था। न्याय शास्त्र के विभिन्न चूड़ान्त ग्रन्थों पर इन्होंने जो टीका तथा भाष्य लिखे हैं उनसे इनकी स्वतन्त्र कल्पना तथा मौलिकता का पता चलता है। इनके उर्वर मस्तिष्क से न्याय की नवीन कोटियाँ उत्पन्न होती थीं। न्यायशास्त्र तथा वेदान्त के तो ये प्रकाण्ड विद्वान् थे, यह कहना केवल पिष्टपेषण मात्र होगा।

दुःख है कि ऐसे तेजस्वी, प्रतिभाशाली तथा प्रखर बुद्धि वाले विद्वान् की मृत्यु असमय में ही हो गई।

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र - श्रीधर्मदत्त - बुधाग्रणीः।
यत्क्रोडपत्रिका न्याये, भान्ति सर्वबुधादृताः॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६

श्री तात्या शास्त्री (रामकृष्ण शास्त्री)

(आस्पद—पटवर्धन; उपाधि ·महामहोपाध्याय)

भारतवर्ष के मानचित्र में कोंकण प्रदेश अपनी भौगोलिक स्थिति के लिए विशेष महत्त्व रखता है। महाराष्ट्र स्टेट में सह्याद्रि पर्वत (वेस्टर्न घाट्स) तथा समुद्र के मध्य में जो भूमि है वही कोंकण प्रदेश है। यह पुराणों में 'परशुराम-क्षेत्र' के नाम से प्रसिद्ध है क्योंकि परशुराम जी ने यह भूमि समुद्र से छीन ली थी। यहाँ के निवासी बड़े ही व्यवहारकुशल, कूटनीतिज्ञ तथा चालाक होते हैं। यहाँ की भूमि जितनी पथ-रीली और अनुर्वरा है यहाँ के लोगों का मस्तिष्क उतना ही उर्वर और उपजाऊ है। महाराष्ट्र साम्राज्य के संचालन का श्रेय जिन पेशवाओं को दिया जाता है वे यहीं के निवासी कोंकणस्थ ब्राह्मण थे।

पूर्व पुरुष

पं० रामकृष्ण शास्त्री—जो तात्या शास्त्री के नाम से प्रसिद्ध थे—महाराष्ट्रीय कोंकणस्थ ब्राह्मण थे। इनके पूर्वजों का मूल स्थान यही कोंकण प्रदेश था। कोंकण के ही पटवर्धन वंशावंतस पं० कृष्ण शास्त्री हमारे चरितनायक पं० तात्या शास्त्री के पूर्वज थे जिन्होंने अपने भाग्य की परीक्षा के लिए स्वदेश को त्याग कर सतारा (महाराष्ट्र) नगर को अपना कर्मक्षेत्र बनाया। वहीं पर उन्होंने अपने मनोरथ की सिद्धि के लिए स्थानीय पर्वत के शिखर पर विराजमान भगवती पार्वती की पूजा और आराधना प्रारम्भ की। कठिन तपस्या के अनन्तर भगवती इन पर प्रसन्न हो गईं। उनकी कृपा से महाराष्ट्र साम्राज्य के संस्थापक शिवाजी के दरबार में ये उनसे मिलने के लिए गये। शिवाजी ने इनकी विद्वत्ता और बुद्धि को तीक्ष्णता से प्रभावित होकर इन्हें अपने दरबार का राजपण्डित नियुक्त किया। उसी समय शिवाजी के सामन्त रघो जी भोंसले नामक सरदार शिवाजी के पास उनके दर्शन के लिए आये थे। गुणग्राही शिवाजी ने कृष्ण शास्त्री को उनके साथ नागपुर जाकर राज-काज सँभालने का आदेश दिया। रघो जी भोंसले ने उन्हें राजकीय कोश के अध्यक्ष पद पर नियुक्त किया। यह घटना १७ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध की है। पं० कृष्ण शास्त्री ने राज्य के कार्यों में समुचित योगदान किया। परन्तु कुछ ही दिनों में इनकी मृत्यु हो गई। इसके पश्चात् इनकी विधवा पत्नी ने अपने पति के स्मारक रूप में 'कृष्णेश्वर' नामक मंदिर की स्थापना की जो आज भी नागपुर में शास्त्री जी की कीर्ति को अजर अमर बनाये हुए स्थित है। शास्त्री जी की मृत्यु के कुछ वर्षों के पश्चात् उनके भाई की पुत्रवधू (पतोहू) जिसका नाम 'बहिणा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाई' था - अपनी वृद्धावस्था में काशीवास की इच्छा से अपनी अपार सम्पत्ति को साथ लेकर काशी चली आयीं। उन्होंने दुर्गाघाट पर गंगा के किनारे एक विशाल भवन का निर्माण किया जो आज भी वहाँ स्थित है। इसी भवन में उन्होंने बालकृष्णेश्वर की मूर्ति की स्थापना भी की। इस प्रकार इनके पूर्वज नागपुर से काशी चले आये।

इस बहिणा बाई के देवर का नाम पं० बालकृष्ण भट्ट था जो पं० तात्या शास्त्री के प्रपितामह थे। इनके पुत्र पं० भट्टनारायण शास्त्री जी के पितामह थे। पं० भट्ट नारायण के दो पुत्र हुए—(१) पं० महादेव भट्ट—अपर नाम बालम् भट्ट और (२) पं० नागेश्वर भट्ट। इनमें पं० महादेव भट्ट तात्या शास्त्री के पिता थे। परन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात् इनके पितृव्य पं० नागेश्वर भट्ट ने ही इनका लालन-पालन किया। पं० महादेव भट्ट नागपुर में ही रहते थे और अपने पूर्वजों के द्वारा उपभुक्त राजकीय कोषागार के अध्यक्ष के पद पर काम करते रहे। पं० तात्या शास्त्री का जन्म वहीं नागपुर नगर में हुआ। इस परिवार की उपाधि 'पटवर्धन' थी परन्तु तात्या शास्त्री कभी इसका उपयोग नहीं करते थे।

जन्म तथा शिक्षा

तात्या शास्त्री अपने पिता के दूसरे पुत्र थे। सं० १९०२ वि० (१८४५ ई०) में आषाढ़ शुक्ल त्रयोदशी को नागपुर में तात्या शास्त्री का जन्म हुआ था। परन्तु दैव-दुर्विपाक से इनके केवल ढाई वर्ष के वय में ही इनके माता और पिता अकाल में ही काल-कवलित हो गये। ये पाँच वर्ष के वय तक नागपुर में ही अपनी मातृभाषा मराठी का अध्ययन करते रहे। इसके पश्चात् इनके चाचा नागेश्वर भट्ट इन्हें अपने परिवार के साथ काशी ले आये और इनका पालन-पोषण करने लगे। आठ वर्ष के वय में इनका यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न किया गया। किसी कार्यवश इनके चाचा नागपुर गये तो पुनः इन्हें अपने साथ वहाँ लेते गये। इसके बाद छह वर्षों तक इन्होंने खरे उपनामक किसी विद्वान् से काव्य-कोशादि का विधिवत् अध्ययन किया। चौदह वर्ष की अवस्था में ये पुनः काशी आ गये। यहाँ पर दो वर्षों तक इन्होंने कर्मकाण्ड और वेदों का गहन अध्ययन किया। विभिन्न शास्त्रों के विशेष अध्ययन की इच्छा से इन्होंने बालशास्त्री का शिष्यत्व स्वीकार किया। गुरु के आशीर्वाद तथा अपने बुद्धि-वैभव से जिस शास्त्र का अध्ययन बारह वर्षों में समाप्त होता था उसे इन्होंने केवल छह वर्षों में ही पूरा कर लिया। सम्पूर्ण परिष्कार के साथ व्याकरण शास्त्र का अध्ययन इतने स्वल्प काल में परिपूर्ण करके इन्होंने अपने गुरु को भी आश्चर्य में डाल दिया। इसके बाद इन्हीं गुरु ने इन्हें वेदान्त और धर्मशास्त्र की भी शिक्षा दी।

अध्यापन

सकल शास्त्रों के अध्ययन के पश्चात् इनकी नियुक्ति महाराजा दरभंगा की पाठ-शाला वाराणसी में हुई जहाँ रहकर इन्होंने मैथिल छात्रों का अध्यापन कर अतुल कीर्ति प्राप्त की। इसके अनन्तर गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज के तत्कालीन प्रिंसिपल डा०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थीबो ने सन् १८८० ई० में इन्हें अपने कालेज में व्याकरण की गद्दी पर प्रतिष्ठापित किया। इस पद पर रहकर इन्होंने अनेक छात्रों को व्याकरण शास्त्र में दीक्षित कर उन्हें प्रकाण्ड वैयाकरण बनाया। संस्कृत कालेज में इन्होंने लगातार ३६ वर्षों तक (१८८० ई० से लेकर १९१९ ई० तक) अध्यापन कार्य किया। ये यावत्-जीवन शिक्षा के दान में निरत रहे। अपनी वृद्धावस्था में चलने-फिरने में असमर्थ होने के कारण ये पालकी पर चढ़कर संस्कृत कालेज में अध्यापन करने के लिए जाया करते थे। संवत् १९७६ वि० (१९१९ ई०) में फाल्गुन शुक्ल तृतीया के दिन प्रातःकाल इन्होंने अपने पाञ्चभौतिक शरीर का परित्याग किया। उस समय इनकी आयु ७४ वर्ष की थी।

उभय चातुरी

तात्या शास्त्रीजी शास्त्र और लोक दोनों में अत्यन्त निष्णात थे। म० म० पं० बाल शास्त्रीजी इनके व्याकरण शास्त्र के गुरु थे। उनसे इन्होंने व्याकरण शास्त्र का तो विधिवत् अध्ययन किया ही, साथ ही साथ वेदान्त, धर्मशास्त्र, सांख्य तथा योग का भी इन्होंने समधिक गम्भीर अध्ययन कर अलौकिक पाण्डित्य प्राप्त किया था। शास्त्रीय ज्ञान के अतिरिक्त व्यवहार में भी ये बड़े ही कुशल थे। उस युग में जब प्रेस का अभाव था, संस्कृत साहित्य के प्रचार और प्रसार के लिए इन्होंने अपने ही घर में 'राजराजेश्वरी' नामक प्रेस की स्थापना की। इस प्रेस से संस्कृत के अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ था। पं० बाल शास्त्री के द्वारा रचित व्याकरण-सम्बन्धी टीका ग्रन्थों के अतिरिक्त इन्होंने स्वरचित ग्रन्थों का भी प्रकाशन किया।

ग्रन्थ—पं० तात्या शास्त्री की रचनाओं में सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ **'भूति'** है जो नागेश भट्ट-निर्मित **परिभाषेन्दुशेखर** की टीका है। इसमें मूल ग्रन्थ के भावों का विवेचन बड़ी ही मार्मिक रीति से, सरल शब्दों में किया गया है जिससे परिष्कार-पद्धति का स्वरूप भी उजागर होता है। यह ग्रन्थ अध्यापकों तथा छात्रों—दोनों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इसलिए 'भूति' के सम्बन्ध में निम्नांकित संस्तुति उचित ही जान पड़ती है :

"शम्भोर्नागेशनाम्नो गहनतरगिरां मर्म सम्यक् प्रकाश्य;
प्रौढचा सत्सम्प्रदायागतमखिलमलं ख्यापयत्यर्थजातम्।
विद्यार्थिन्नातमाता कठिनतमपरीक्षाऽब्धिपोतायमाना;
तात्या शास्त्रीन्द्रकीर्तिः जगति विजयतां भासते यावदर्कः॥"

नागेश भट्ट के दूसरे महनीय ग्रन्थ **शब्देन्दुशेखर** की भी टीका इन्होंने लिखी थी, ऐसा सुना जाता है। परन्तु अभी तक यह मुद्रित नहीं हो सकी है। अतः इसके विषय में कुछ विशेष ज्ञात नहीं है। इन ग्रन्थों की रचना से इनकी विद्वत्ता की प्रसिद्धि इतनी हुई कि गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस के प्रिंसिपल की संस्तुति पर ब्रिटिश

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकार ने सन् १९०९ ई० में महामहोपाध्याय की महनीय उपाधि से इन्हें अलंकृत किया। इस उपाधि की प्राप्ति का उल्लेख इस श्लोक में किया गया है :

"सम्राट् प्रदत्तदुरवाप - महामहोपा-
ध्यायेति मान्यपदवीं समवाप्य धीमान्।
विद्योतते स्म विदुषां सदसि प्रसिद्धः
तात्यापराख्य - पटवर्धनरामकृष्णः॥"

परिवार—पं० तात्या शास्त्रीजी के परिवार में लक्ष्मी और सरस्वती दोनों का निवास था। इनके चार पुत्र थे। इनके ज्येष्ठ पुत्र पं० नारायण शास्त्री पटवर्धन ने, व्याकरण, साहित्य और वेदान्त शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन कर वैदुष्य प्राप्त किया था। व्याकरण शास्त्र में तो वे अपने पिता के समान ही विद्वान् थे। उन्होंने गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज में अनेक वर्षों तक अध्यापन भी किया था। पटवर्धनजी ने "बाल शास्त्री का जीवन वृत्तान्त" नामक ग्रन्थ भी लिखा था जिसमें शास्त्रीजी का अत्यन्त प्रामाणिक जीवनचरित उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा रचित ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है[1]—(१) इंग्लिश गाइड (दो खण्डों में), (२) संस्कृत सोपान, (३) भाषा चन्द्रिका—यह हिन्दी भाषा का अत्युत्तम तथा सरल व्याकरण है। (४) ऋजु व्याकरण दीपिका—(तीन भागों में)। अकस्मात् इनका देहावसान सन् १९०३ ई० में हो गया। शास्त्री जी के दूसरे पुत्र पं० बाल शास्त्री पटवर्धन अपने राजराजेश्वरी प्रेस के मैनेजर थे। इनकी मृत्यु सन् १९१६ ई० में हो गई। इस प्रकार पं० तात्या शास्त्रीजी के प्रथम दोनों पुत्र इनकी जीवितावस्था में ही परलोक सिधार गये।

इनके तीसरे और चौथे पुत्र के नाम क्रमशः ढुण्ढिराज शास्त्री और वीरेश्वर शास्त्री थे। इन दोनों की मृत्यु शास्त्रीजी के निधन के बाद हुई। शास्त्रीजी के अनेक पौत्र विद्यमान हैं जो उनकी कीर्ति को उजागर किये हुए हैं। ये लोग सरकारी नौकरी में अनेक ऊँचे पदों पर प्रतिष्ठित हैं।

पं० तात्या शास्त्री ने प्रेस की स्थापना के अतिरिक्त, दुर्गा घाट पर काशी में गंगा के किनारे एक विशाल भवन का निर्माण किया था। यह भवन इतना ऊँचा और विशाल था कि लोग इसे 'पटवर्धन दुर्ग' कहा करते थे। यह भवन आज भी उसी दशा में अवस्थित है।

शास्त्रीजी अपने प्रथम दोनों पुत्रों के निधन से अत्यन्त दुःखी तथा शोकाक्रान्त थे। परन्तु कर्तव्यनिष्ठा की भावना से ये अपने जीवन के अन्तिम दिनों तक संस्कृत कालेज की सेवा करते रहे। पहले ये पैदल ही कालेज जाया करते थे परन्तु जीवन

---

१. ये सभी ग्रन्थ मैनेजर, राजराजेश्वरी प्रेस, दुर्गाघाट, काशी से प्रकाशित हुए हैं। (सन् १८९८ ई०)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की गोधूलि में अत्यन्त शिथिलकाय होने के कारण ये पालकी में बैठकर कालेज जाने लगे थे। इस प्रकार ७५ वर्ष की परिपक्व आयु में फाल्गुन शुक्ल तृतीया सं० १९७६ वि० (सन् १९१९ ई०) को इन्होंने शिव-सायुज्य प्राप्त किया।

"विद्वांसो निरुपाश्रयाः समभवन् तेषां धुरीणे गते,
विद्या शोकमलीमसा न रुरुचे प्रावृट् शशाङ्के यथा।
छात्रौघो विललाप, दीनवदना काशी चकाशे न सा,
तात्याशास्त्र्यपराभिधे बुधवरे श्रीरामकृष्णे गते॥"

शिष्यमण्डली

शास्त्री जी के अनेक सुयोग्य शिष्य थे। इन शिष्यों को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—(१) मैथिल, (२) महाराष्ट्रीय तथा (३) एतद् देशीय छात्र।

शास्त्री जी ने काशी में दरभंगा संस्कृत विद्यालय में अध्यापन का कार्य करते समय मिथिला से आये हुए अनेक छात्रों को अपना शिष्य बनाया। इनके मैथिल छात्रों में सर्वप्रधान शिष्य थे महामहोपाध्याय पं० शशिनाथ झा जो बाद में मुजफ्फरपुर (बिहार) के राजकीय संस्कृत महाविद्यालय के प्रधानाध्यापक हुए। वे व्याकरण-शास्त्र सम्बन्धी अपनी विद्वत्ता के कारण मिथिला भर के पण्डित समाज में प्रसिद्ध थे। उनकी संस्तुति में निम्नांकित श्लोक कहा गया है जो नितान्त समुचित प्रतीत होता है :—

"विद्वत्संसदि वागधीशसदृशाः प्रौढप्रतिष्ठाजुषो;
नानाशास्त्रविचारकर्मकुशला अध्यापकेषूत्तमाः।
शास्त्रे व्याकरणे परिष्कृतियुते, लोकोत्तरश्रीयुताः;
श्रीमन्तः शशिनाथ झाऽऽख्यविबुधाः राजन्ति विद्वद्गणे॥"

इनके अतिरिक्त शास्त्री जी के अन्य मैथिल शिष्यों के नाम हैं :—पं० द्रव्येश झा, श्रीधर झा, महावीर झा, कालिका झा, नन्दन झा, किशोरी झा, जयकिशोर झा, गुनोर झा, आदि, आदि।

महाराष्ट्रीय शिष्यों में पं० रामशास्त्री परांजपे, दामोदर शास्त्री सहस्रबुद्धे, रामशास्त्री कोटिमास्कर आदि प्रसिद्ध थे। एतद् देशीय शिष्यों में इनके सबसे प्रधान छात्र थे पं० रामयश त्रिपाठी जो 'महाशय' जी के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध थे। इनका विस्तृत वर्णन इसी पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है। इनके अतिरिक्त—

प० विद्याविलास शुक्ल (काशीस्थ कान्यकुब्ज पाठशाला के प्रधानाध्यापक), पं० रामदेव द्विवेदी (काशीस्थ रणवीर संस्कृत पाठशाला के अध्यापक), पं० राजनीति पाण्डेय (रायपुर मध्यप्रदेश के चर्चमिशन स्कूल के संस्कृताध्यापक), पं० मोतीराम पाण्डेय (काशीस्थ लन्दन मिशन इण्टर कालेज के संस्कृताध्यापक), पं० रामउदित उपाध्याय (प्रिन्सिपल, जुबिली संस्कृत कालेज, बलिया) आदि, आदि थे। इस प्रकार तात्या शास्त्री जी पुत्रों तथा छात्रों दोनों के विषय में बड़े ही भाग्यवान् थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्री जी का संपादन कार्य

(१) श्री तात्या शास्त्री जी व्याकरण शास्त्र के पारगामी विद्वान् तो थे ही, साथ ही वे दर्शन के, विशेषतः सांख्य योग के, भी बड़े प्रौढ़ विद्वान् थे। संस्कृत कालेज में इनकी नियुक्ति सांख्य-योग की गद्दी पर हुई और ये इन दर्शनों का विधिवत् अध्यापन करते थे। इस समय तक भर्तृहरि के **वाक्यपदीय** के हस्तलेख तो प्राप्त हो गये थे, परन्तु उसका संशोधन तथा मुद्रण नहीं हुआ था। बनारस संस्कृत सीरीज में इसका प्रथम प्रकाशन तात्या शास्त्री जी के ही सम्पादकत्व में आरम्भ हुआ। इसके प्रथम तथा द्वितीय काण्ड का सम्पादन आपने ही किया (१८८४ ई० में), परन्तु किसी कारणवश इसके तृतीय काण्ड के संशोधन का कार्य आपने छोड़ दिया। तब म० म० गङ्गाधर शास्त्रीजी की ही देखरेख में इसके अवशिष्ट भागों का प्रकाशन साध्य हो सका। इस घटना का उल्लेख शास्त्रीजी ने ग्रन्थ के तृतीय काण्ड की भूमिका में स्वयं किया है। इसका प्रकाशन बनारस संस्कृत सीरीज में ही १८८७ ई० में हुआ था।

(२) तात्या शास्त्री का संपादित अन्य ग्रन्थ विज्ञानभिक्षु रचित **योगवार्तिक** है। यह योगसूत्र के ऊपर व्यास द्वारा निर्मित सुप्रसिद्ध व्यास-भाष्य का व्याख्यान रूप है। इस ग्रन्थ के संपादन में तात्या शास्त्री को अपने ही विद्यालय के वरिष्ठ अध्यापक महामहोपाध्याय केशव शास्त्री मराठे का बहुमूल्य सहयोग प्राप्त था। दोनों विद्वानों ने मिलकर अनेक हस्तलेखों के आधार पर इसका प्रथम प्रकाशन संस्कृत कालेज से प्रकाश्यमान 'पण्डित' पत्र में किया था। तदनन्तर छात्रों के उपयोगी होने के कारण इसका एक सस्ता संस्करण भी प्रकाशित किया गया जिसे डा० लाजरस साहब ने अपने प्रसिद्ध मेडिकल हाल नामक यंत्रालय में मुद्रित किया (१८८४ ई०, वाराणसी)। इसकी भूमिका में तात्या शास्त्री जी ने लिखा है कि यह ग्रन्थ काशिराजकीय प्रधान पाठशाला के अध्यक्ष डा० थीबो साहब के द्वारा सांख्याचार्य परीक्षा में पाठ्य ग्रन्थ निर्धारित किया गया था। छात्रों के लिए पुस्तक सुलभ हो सके; इसके लिए यह संस्करण निकाला गया। ग्रन्थ पहली बार निकाला गया था। यह पर्याप्त रूप से दुरूह है तथापि शास्त्रीजी ने बड़े परिश्रम से इसका संपादन कर इसे सुलभ बनाया--इससे इनकी दार्शनिक विद्वत्ता तथा व्यावहारिक कर्मठता का पूरा परिचय मिलता है।

संस्मरण

श्री तात्या शास्त्री की शिष्यपरम्परा पर्याप्तरूपेण दीर्घ थी जिसमें विभिन्न प्रान्तों के छात्र सम्मिलित थे। लेखक के पूज्य पितृव्य **पण्डित रामउदित उपाध्याय** (वि० सं० १९३९–२०१० जो आगे चलकर जुबिली संस्कृत कालेज, बलिया के प्रिन्सिपल नियुक्त किये गये) शास्त्री जी के प्रतिष्ठित शिष्यों में अन्यतम थे। उनके ऊपर गुरु की शास्त्र-निपुणता तथा लोक-कुशलता दोनों का गम्भीर प्रभाव पड़ा था। व्याकरण तथा साहित्य के अध्यापन में वे नितान्त कुशल तथा सफल अध्यापक थे। लोक-व्यवहार में भी वे अत्यन्त निपुण तथा समर्थ व्यवस्थापक थे। अपनी कार्यकारिणी बुद्धि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बल पर ही उन्होंने एक सामान्य पाठशाला को उन्नत बनाकर एक महाविद्यालय के रूप में परिणत कर दिया और बिना किसी सहायता के उन्होंने अपनी सूझ-बूझ के कारण विद्यालय के लिए एक भव्य भवन का निर्माण किया जो बलिया के लिए एक गौरव की वस्तु है।

काशी में भारतधर्म महामण्डल के द्वारा स्थापित ब्रह्मचर्याश्रम के वे सफल अध्यक्ष थे। उसी समय एक दिन सन् १९१२ ई० के आसपास अपने ब्रह्मचारियों को लेकर वे गुरुजी की सेवा में उपस्थित हुए। उस छात्र-मण्डली में लेखक भी उपस्थित था और उसी समय तात्या शास्त्रीजी के दिव्य दर्शन करने में कृतकार्य हुआ था। शास्त्री जी ब्रह्मचारियों को देखकर बड़े प्रसन्न हुए और सन्ध्या की नियमतः उपासना तथा संस्कृत का निष्ठापूर्वक अध्ययन करने के लिए उन्होंने बड़ा आग्रह किया। मेरे पितृव्य ने उसी समय कहा था कि शास्त्री जी केवल व्याकरण के ही पण्डित नहीं हैं, अपितु व्यवहार में भी पूरे निष्णात हैं। इनका आवास दुर्गाघाट के ऊपर ही गंगातट पर था। आवास से सटी हुई भूमि के लिए औंध के राजा के साथ कुछ झगड़ा न्यायालय में चल रहा था। शास्त्री जी स्वयं अपने मुकद्दमे में वकील का काम देखते थे। मराठी में निबद्ध कानून की पुस्तक मँगाकर इन्होंने उसका विधिवत् अध्ययन किया, तगड़ी पैरवी की और कानूनी दावपेंच से पूर्ण परिचित होने के कारण ये मुकद्दमा जीत गये। ऐसी थी गुरुजी की कर्मठता जिसका प्रभाव शिष्य पर विशेष रूप से पड़ा।

तात्याशास्त्री का लेख भी बड़ा समर्थ तथा पाण्डित्य-मण्डित होता था। व्याकरण पढ़ाने में इनकी बड़ी ख्याति थी। इन्होंने नागेशभट्ट के परिभान्दुशेखर जैसे प्रमेय-बहुल ग्रन्थ पर **'भूति'** नामक पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या लिखी थी। पण्डित यागेश्वर शास्त्री की 'हैमवती' से बहुशः प्रभावित होने पर भी यह व्याख्या मौलिक है तथा ग्रन्थ की गुत्थियों को सुलझाने में सर्वथा समर्थ है। इसकी लोकप्रियता का यही कारण है। आप अन्त समय तक संस्कृत कालेज में अध्यापन करने जाते थे जहाँ इनकी नियुक्ति वर्षों पूर्व हुई थी। शरीर रुग्ण था, तथापि अपने कार्य-भार को पूरा करने के लिए ये पालकी में चढ़कर जाया करते थे। इनके कई पुत्र थे। कुछ पौत्र तो पूना में ही रहते हैं तथा ऊँचे पदों पर काम करते हैं और कुछ यहीं काशी में अपने पैतृक गृह में निवास कर सात्त्विक वृत्ति से जीवनयापन करते हैं। महामहोपाध्याय तात्या शास्त्रीजी की कीर्ति 'भूति' के द्वारा अमर है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। तथास्तु। इनकी प्रशंसा में पं० नारायण शास्त्री ने जो यह प्रशस्ति लिखी है वह सर्वथा उचित ही है।

विद्वत्कुलस्यालंकारो, वैयाकरणधूर्धरः।
तात्याशास्त्री विजयते, रामकृष्णापराभिधः॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रीजी के सहयोगी

श्रीकेशव शास्त्री मराठे

(आस्पद—मराठे, उपाधि -- महामहोपाध्याय)

पं० केशव शास्त्री के नाम के साथ जो 'मराठे' उपाधि लगी हुई है वह अपनी व्याख्या चाहती है। महाराष्ट्र में ब्राह्मण से इतर जातियों की 'मराठा' एक सामान्य उपाधि है। परन्तु इस 'मराठे' शब्द का उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। यहाँ मराठे शब्द का अर्थ वह व्यक्ति जो मर्त्यलोक में देवता के समान स्थित रहने वाला हो (मरेऽपि = मृत्युलोकेऽपि देववत् स्थिता ये ते मराठे इति)। इस प्रकार यह उपाधि ब्राह्मण के लिए है। ये मराठे ब्राह्मण कोंकणस्थ ब्राह्मण माने जाते हैं। कोंकण में कपिगोत्री तपस्वी चित्तपावन ब्राह्मण मराठे उपाधि से युक्त थे। इसलिए वहीं के मूल निवासी होने के कारण केशव शास्त्री भी इसी उपाधि को धारण करते थे।

वहीं से कुछ कोंकणस्थ मराठे ब्राह्मण महाराष्ट्र से काशी आये और यहाँ स्थायी रूप से निवास करने लगे। इसी कुल में सकल वेदवेदाङ्ग के ज्ञाता, अत्यन्त प्रतिभाशाली पं० बालंभट्ट नामक ब्राह्मण उत्पन्न हुए जो हमारे चरितनायक के पिता थे। इन्हीं के घर पं० केशव शास्त्री का जन्म सं० १९०२ वि० (सन् १८४५ ई०) में हुआ। पिता ने ही बालक को वेद और काव्य आदि की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही दी। इसके अनन्तर इतर शास्त्रों में विशेष व्युत्पत्ति प्राप्त करने के लिये बालंभट्ट ने अपने पुत्र को गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज में उस युग के प्रधान विद्वान् म० म० पं० राजाराम शास्त्री के चरणों में बैठकर अध्ययन के लिए भेजा। वहीं पर इन्होंने व्याकरण आदि अशेष शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन किया। जब इनके गुरु पं० राजाराम शास्त्री ने संन्यास ग्रहण कर परलोक प्राप्त कर लिया तब इन्होंने पं० बालशास्त्री के पास जाकर व्याकरण के उच्चकोटि के अवशिष्ट ग्रन्थों का अध्ययन करना प्रारम्भ किया। वेदान्त, न्याय आदि दर्शनशास्त्रों का भी इन्होंने विधिवत् अध्ययन कर दुरूह दार्शनिक समस्याओं के सुलझाने में प्रवीणता प्राप्त की। वेदान्तशास्त्र में इनकी प्रौढ़ि तथा निष्ठा इतनी अधिक थी कि उस युग के काशी के पण्डितों ने इन्हें 'शान्त ब्रह्म' की उपाधि प्रदान कर गौरवान्वित किया।

इन्होंने अंग्रेजी साहित्य का भी सम्यक् अध्ययन कर इङ्गलैण्ड के चोटी के दार्शनिक बर्कले आदि के दार्शनिक सिद्धान्तों का मन्थन किया। इसके फलस्वरूप पाश्चात्य दर्शन में इनको इतनी प्रौढ़ि प्राप्त हो गई थी कि इन्होंने "बर्कलेज फिलासफी" नामक दुरूह अंग्रेजी के दार्शनिक ग्रन्थ का संस्कृत भाषा में अनुवाद किया।

इनकी नियुक्ति सर्वप्रथम संस्कृत कालेज के ऐङ्ग्लो संस्कृत विभाग में छात्रों को अंग्रेजी पढ़ाने के लिए सं० १९३२ वि० (१८७५ ई०) में तीस वर्ष के वय में हुई थी। इसके अनन्तर इनकी बदली संस्कृत कालेज में दर्शन के अध्यापक के रूप में हो गई। इन्होंने आजीवन इसी कालेज में अध्यापन करते हुए अवकाश प्राप्त किया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस समय इस कालेज के तत्कालीन प्रिंसिपल डा० थीबो (कार्यकाल १८७९ ई० से '८८ ई०) थे। उस समय इङ्गलैंड में प्रोफेसर मैक्समूलर ऋग्वेद का प्रथम संस्करण निकाल रहे थे। उन्होंने डा० थीबो को इस विषय में कुछ कार्य सौंपा था जिसे थीबो ने पं० केशव शास्त्री की सक्रिय सहायता से ही सम्पादित किया था। इतना ही नहीं, डा० थीबो ने भारत में रहते हुए **शुल्वसूत्र**, वेदान्त सूत्र पर रामानुज-प्रणीत **श्रीभाष्य** तथा **पञ्चसिद्धान्तिका** आदि ग्रन्थों के संस्करण तथा अनुवाद का जो कार्य किया था उसमें भी केशव शास्त्री का सतत सहयोग उन्हें प्राप्त था। डा० थीबो ने अपने सम्पादित ग्रन्थों की भूमिका में इस सहायता-कार्य के लिए केशव शास्त्री के आभार को स्पष्टतः स्वीकार किया है।

इनकी अगाध विद्वत्ता से प्रसन्न होकर अंग्रेजी सरकार ने सन् १९१२ ई० में इन्हें 'महामहोपाध्याय' की पदवी से विभूषित किया। इस उपाधि के प्राप्त होने से ही यह समझा जा सकता है कि अधिकारियों में इनकी कितनी प्रतिष्ठा थी। सं० १९६२ वि० (१९०५ ई०) में इन्होंने साठ वर्ष के वय में कालेज की नौकरी से अवकाश ग्रहण किया। इसके पश्चात् अपने घर पर ही रहकर ये शिष्यों को पढ़ाया करते थे। अन्त में वि० सं० १९७७ (१९२० ई०) में इन्होंने कैलासलोक को प्राप्त किया। उस समय इनकी आयु ७५ वर्ष की थी।

ग्रन्थ-रचना

पं० केशव शास्त्री लेखनी के धनी थे। अतः ये ग्रन्थों की रचना करने में अत्यन्त निष्णात थे। अध्यापन-कार्य करने के साथ ही साथ इनका लेखन-कार्य भी अबाध गति से चलता रहा। फलतः अवकाश ग्रहण करने के पूर्व ही अनेक ग्रन्थों की रचना की थी जिनमें से निम्नांकित प्रकाशित ग्रन्थ हैं—

(१) **आत्मसोपान**— वेदान्तविषयक यह ग्रन्थ केशव शास्त्री के अध्यात्मशास्त्रीय चिन्तन की महती उपलब्धि है। यह इनका मौलिक ग्रन्थ है जिसमें इन्होंने आत्मतत्त्व की उपलब्धि के साधनों का विशद एवं गम्भीर वर्णन किया है।

(२) **स्नेहपूर्ति परीक्षा**—इस ग्रन्थ के नाम से ही प्रतीत हो रहा है कि यह महामहोपाध्याय पं० राम मिश्र शास्त्री के मौलिक ग्रन्थ 'स्नेहपूर्ति' के सिद्धान्तों की आलोचना में लिखा गया है। राम मिश्र शास्त्री विशिष्टाद्वैत मतानुयायी मान्य विद्वान् थे। उन्होंने अपने ग्रन्थ में विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का प्रतिपादन नयी युक्तियों तथा नवीन तर्कों के सहारे किया। इसी ग्रन्थ की आलोचना म० म० केशव शास्त्री ने अद्वैतवेदान्त की दृष्टि से की है।

(३) **बर्कले : दर्शनशास्त्रम्**— यह ग्रन्थ सुप्रसिद्ध अंग्रेज दार्शनिक बर्कले की सिद्धान्त-मण्डित पुस्तक 'बर्कलेज फिलासफी' का संस्कृत भाषा में अनुवाद है। यह ग्रन्थ शास्त्रीजी के पाश्चात्यदर्शन साहित्य में गम्भीर वैदुष्य का प्रमाण है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) **शनि माहात्म्य**—संस्कृत में निबद्ध यह छोटा-सा ग्रन्थ है जिसमें शनि के माहात्म्य का प्रतिपादन किया गया है।

इन्होंने अनेक अन्य ग्रन्थों की रचना की है जो अभी तक प्रकाशित नहीं हो सके हैं। ये काशी में ब्रह्मा घाट मुहल्ले में रहा करते थे जो पंचगंगा घाट के पूरब में स्थित है।

(५) **योगवार्तिक**[१]—केशव शास्त्री ने तात्या शास्त्री के साथ मिलकर सम्मिलित रूप से **योगवार्तिक**' का सम्पादन किया। इसके आरम्भ में इन्होंने 'योगवार्तिकोपसंहार' नामक प्रस्तावना में पूरे ग्रन्थ की सुबोध संस्कृत में गम्भीर आलोचना की है। वार्तिक के लेखक विज्ञानभिक्षु ने इस ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर शंकराचार्य के मत का खण्डन किया है। केशव शास्त्री अद्वैत वेदान्ती थे। शंकराचार्य के दृढ़ अनुयायी थे। इन्होंने विज्ञानभिक्षु के मत का खण्डन बड़े ऊहापोह के साथ किया है। फलतः योगवार्तिक का संस्करण निकालने में इनका वैदुष्य भलीभाँति प्रकट होता है तथा शंकर के सिद्धान्तो के मण्डन में भी इनकी बुद्धि का वैभव दृष्टिगोचर होता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि केशव शास्त्री भी अपने समय के एक उद्भट दार्शनिक विद्वान् थे, जो भारतीय दर्शन से पूर्ण परिचित होने के साथ ही साथ पाश्चात्य दर्शन से भी गाढ़ परिचय रखते थे। पाश्चात्य दर्शन के दुरूह अंग्रेजी में निबद्ध ग्रन्थों का सुबोध संस्कृत में अनुवाद करना इनके प्रकृष्ट पाण्डित्य तथा संस्कृत और अंग्रेजी उभय भाषाओं के गम्भीर ज्ञान का निःसन्देह परिचायक है।

---

१. प्रकाशन मेडिकल हाल काशी से ही हुआ है आज से लगभग एक सौ वर्ष पूर्व १८८४ ई० में।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०

श्री सुधाकर द्विवेदी

(आस्पद—द्विवेदी; उपाधि—महामहोपाध्याय)

आधुनिक ज्योतिष शास्त्र के इतिहास में महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी का नाम सिद्धान्त ज्योतिष के उन्नायक के रूप में सदा अमर रहेगा। इन्होंने ज्योतिष शास्त्र के लुप्तप्राय प्राचीन ग्रन्थों को प्रकाश में लाने में तथा अपनी व्याख्या, भाष्य एवं उपपत्तियों से सुबोध बनाने में अपनी प्रतिभा का जो चमत्कार दिखलाया है वह विद्वानों को आश्चर्य में डाल देता है। हिन्दी साहित्य के उदय एवं अभ्युदय के लिए भी जो कार्य इन्होंने किया वह नितान्त आदरणीय एवं उपादेय है।

(क) जीवनी

जन्म

पण्डित सुधाकर द्विवेदी का जन्म वाराणसी के खजुरी नामक गाँव में हुआ था। यह गाँव आजकल वाराणसी कचहरी के पूर्व में स्थित एक मुहल्ला है। इनका जन्म सं० १९१७ वि० (सन् १८६० ई०) में हुआ था। इनके पूर्वजों का मूल निवास गोरखपुर जनपद में था। इनके वृद्ध प्रपितामह काशी में आकर अपने नाना के यहाँ दत्तक के रूप में रहने लगे थे। इनके नाना के पास स्थायी प्रचुर भूसम्पत्ति थी। काशी में कलक्टरी के लिए तथा कचहरी के भवन के निर्माण के लिए सरकार ने इनके नाना की जमीन का अधिग्रहण किया था। आजकल जहाँ काशी में रिजर्व पुलिस लाइन स्थित है वह जमीन भी इनके नाना की सम्पत्ति थी।

इनके नामकरण के सम्बन्ध में यह बात प्रसिद्ध है। उन दिनों काशी में 'सुधाकर' नामक पत्र प्रकाशित होता था। जिस समय इनका जन्म हुआ उस समय इनके पिता जी अनुपस्थित थे। इनके जेठे चाचा श्री रामेश्वरदत्त को डाकिये ने 'सुधाकर' पत्र की प्रति ज्यों ही दी, त्यों ही घर की नौकरानी ने इनके जन्म की प्रथम सूचना चाचा जी को दी। इस शुभ समाचार से अत्यन्त आह्लादित होकर इनके चाचा ने इसी समय कहा "सुधाकर पत्र की प्रति मिलने के साथ ही मुझे शिशु के जन्म की शुभ सूचना मिली है। अतएव इस बालक का नाम 'सुधाकर' होगा और यह हमारे वंश को सुधाकर के समान उजागर करेगा।" भविष्य की घटनाओं ने यह प्रमाणित कर दिया कि इनके चाचा की भविष्यवाणी इनके सम्बन्ध में अक्षरशः चरितार्थ हुई। सुधाकर जी का परिवार भरा-पूरा था। पिता तथा पितामह के साथ ही चार चाचा भी जीवित थे। इतने समृद्ध परिवार में जन्म लेने पर भी दुर्भाग्यवश इन्हें मातृ-सुख नहीं मिल सका, क्योंकि नौ मास की अवस्था में ही इनकी माता का स्वर्गवास हो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। अतः इनके पालन-पोषण का भार इनके दादा-दादी पर आ पड़ा। घर का लाडला पुत्र होने के कारण इनका अक्षरारम्भ सात वर्षों तक नहीं हो सका था। अतः जन्म के आठवें वर्ष में इनका अक्षरारम्भ संस्कार फाल्गुन शुक्ल पंचमी संवत् १९२५ वि० (१८६८ ई०) को हुआ।

शिक्षा

इनके पिता की जीविका यजमानी वृत्ति से चलती थी। अतः इनके पिता जी का उद्देश्य केवल यही था कि उनका पुत्र कुछ ज्योतिष और व्याकरण का अध्ययन कर अपनी यजमानी वृत्ति को ठीक-ठीक चालू रखे और जन्मकुण्डली बनाकर तथा लग्न-मुहूर्त देखकर अपनी जीविका चलाता रहे। अतः तत्कालीन संस्कृत कालेज में नाम लिखाकर ये **दुर्गादत्त शास्त्री** से व्याकरण शास्त्र का अध्ययन करने लगे। एक दिन इनके पिता जी इन्हें अध्ययन करने के लिए अपने साथ संस्कृत कालेज ले गये और उस कक्ष में जाकर अध्ययन करने का संकेत किया जिस कक्ष में म० म० बापूदेव शास्त्री तथा उनके सहायक पं० देवकृष्ण मिश्र दोनों ज्योतिर्विद् एक साथ आमने-सामने बैठकर ज्योतिष का अध्यापन करते थे। सुधाकर जी ने गलती से अथवा अनजान में पं० बापूदेव शास्त्री के पास न जाकर उनके सहायक **पण्डित देवकृष्ण मिश्र** के यहाँ अध्ययन करना प्रारम्भ किया। पिता के पूछने पर इन्होंने अपने गुरु का नाम बता-लाया। इस पर इनके पिता जी इन्हें डाँटने लगे और उन्होंने बापूदेव शास्त्री से अध्ययन करने का आग्रह किया। परन्तु इन्होंने कहा कि मैंने अब जिस गुरु के सामने पोथी खोल दी अब उसी को गुरु मानूँगा। इस प्रकार इन्होंने समस्त ज्योतिष का अध्ययन देवकृष्ण पंडित से ही किया।

एक अविस्मरणीय घटना

उस समय की एक घटना नितान्त प्रसिद्ध है जिससे बालक सुधाकर जी की गणि-तीय प्रतिभा का पूर्ण परिचय मिलता है। म० म० बापूदेव शास्त्री ने अपने ग्रन्थ 'बीजगणित प्रथम भाग' की एक प्रति अपने सहायक पं० देवकृष्ण मिश्र को भेंट में दी थी। सुधाकर जी ने ग्रन्थ की अपूर्वता का विचार कर उसे अध्ययन के लिए गुरु से माँगा और अपने घर ले आये। रातों-रात ही उन्होंने उस समस्त ग्रन्थ का नितान्त मनोयोग से अध्ययन कर लिया और उसमें गणित-संबंधी अनेक अशुद्धियाँ निकालीं। दूसरे दिन उस ग्रन्थ का सम्पूर्ण संशोधन लाल स्याही से कर उसे गुरु जी को ले जाकर दिखलाया और सरल भाव से कहा 'गुरु जी! इस ग्रन्थ में तो बहुत सी अशुद्धियाँ हैं।" अपने छात्र से 'छोटे मुँह बड़ी बात' सुनकर गुरु काँपने लगे और अपने छात्र को संकेत से तथा मौखिक रूप से कहा कि "चुप रहो, चुप रहो। शास्त्री जी के विषय में ऐसी अपमानजनक बातें मत कहो।"

उसी कमरे के एक दूसरे छोर पर बैठे हुए बापूदेव शास्त्री जी के कानों में इस फुसफुसाहट की आवाज सुनाई पड़ी और उन्होंने अपने सहायक पण्डित जी से पूछा कि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या बात है ? पण्डित देवकृष्ण मिश्र ने अपने छात्र की 'प्रातिभ उद्दण्डता' की कथा उन्हें कह सुनाई। शास्त्री जी ने जब उस संशोधन को देखा, तब उसे नितान्त सत्य पाया और अप्रसन्न होने के स्थान पर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने उस कालेज के तत्कालीन प्रिन्सिपल ग्रिफिथ साहब के पास सुधाकर जी की प्रशंसा करते हुए लिखा कि "**अयं सुधाकर शर्मा गणिते बृहस्पतिसमः**" अर्थात् यह सुधाकर गणित में बृहस्पति के समान है। इतना ही नहीं, उन्होंने सुधाकर जी को पुरस्कार देने के लिए अपनी संस्तुति भी लिख भेजी। सुधाकर जी ने इस संस्तुति के फलस्वरूप अनेक पारितोषिक प्राप्त किये।

सुधाकर द्विवेदी जी अपनी छात्रावस्था की इस महनीय घटना की चर्चा जब अपने छात्रों की मण्डली में करते थे, तब प्रायः यह कहा करते थे कि कालेज के प्रिन्सिपल के हाथों से जिस समय मुझे यह पुरस्कार प्राप्त हुआ था, वह समय मेरे जीवन का सबसे अमूल्य और अविस्मरणीय क्षण था। जब मैं ग्रिफिथ साहब तथा ज्योतिष विभागाध्यक्ष के कर-कमलों से प्राप्त पुरस्कार लेकर अपने गुरु जी के पास आ रहा था तब आनन्दातिरेक के कारण मुझे यह ज्ञात नहीं हो रहा था कि मेरे चरण इस ठोस पृथ्वी पर पड़ रहे हैं अथवा आकाश में। आनन्दातिरेक का ऐसा अनुभव होना स्वाभाविक क्यों न हो, सुधाकर जी उस समय केवल सोलह वर्ष के बालक थे। उनकी विलक्षण मेधा की तथा उस युग के सर्वश्रेष्ठ ज्योतिषी एवं संस्कृत कालेज के सबसे बड़े अंग्रेज अधिकारी ग्रिफिथ साहब के द्वारा दी गई इनकी अलौकिक प्रतिभा की प्रथम मान्यता (रिकाग्-निशन) जो थी।

अध्यापन

विद्याध्ययन के पश्चात् सुधाकर जी को जीविका की चिन्ता हुई, परन्तु यह समस्या भी सरलता से सुलझ गई। अपनी छात्रावस्था में ही ये कुछ मैथिल छात्रों का अध्यापन किया करते थे। इन्हीं गुरुभक्त शिष्यों ने मिथिलाधिपति महाराजाधिराज दरभंगा नरेश से सुधाकर जी के अलौकिक पाण्डित्य की कथा कह सुनाई। इनकी विद्वत्ता से प्रसन्न होकर महाराजा ने काशी में स्थापित अपने 'दरभंगा संस्कृत विद्यालय' में इन्हें ज्योतिष शास्त्र का प्रधानाध्यापक नियुक्त किया। वहाँ द्विवेदी जी ने केवल दो-तीन वर्ष ही अध्यापन कार्य किया। इसी बीच में गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज के प्रिन्सिपल के पद से डा० ग्रिफिथ के अवकाश लेने पर डा० थीबो की नियुक्ति हो गई। डा० थीबो गणित के स्वयं प्रकाण्ड विद्वान् थे। अतः उन्होंने पण्डित सुधाकर जी की कीर्ति सुनकर इन्हें 'सरस्वती भवन' पुस्तकालय का अध्यक्ष नियुक्त कर इन्हें समुचित पद पर प्रतिष्ठापित कर दिया। इस पद पर इन्होंने लगातार छह वर्षों तक कार्य किया। इस काल में इन्होंने सरस्वती-भवन की हस्तलिखित पुस्तकों का गम्भीर अध्ययन किया जिसका फल इन्हें अपनी **'गणक-तरंगिणी'** आदि अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थों के लिखने में मिला।

सन् १८८९ ई० में म० म० बापूदेव शास्त्री ने कालेज की नौकरी से अवकाश ग्रहण किया। इसी रिक्त स्थान पर डा० थीबो ने इनकी नियुक्ति कर दी। इस प्रकार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल उन्तीस वर्ष के वय में द्विवेदी जी राजकीय संस्कृत कालेज के ज्योतिष-विभाग के प्रधानाध्यापक के आदरणीय पद पर प्रतिष्ठित हो गये। इस पद को द्विवेदी जी ने इक्कीस वर्षों तक आजीवन सुशोभित किया। सच तो यह है कि यही काल द्विवेदी जी के जीवन में चरमोत्कर्ष होने के कारण स्वर्णिमकाल माना जाता है।

इस नियुक्ति के पहले ही सुधावर द्विवेदी की यशःचन्द्रिका पूर्ण रूप से प्रकाशित हो गई थी और भारत सरकार ने सन् १८८७ ई० में महारानी विक्टोरिया के जुबिली उत्सव के अवसर पर इन्हें 'महामहोपाध्याय' की महनीय उपाधि से विभूषित किया था। उस समय इनकी अवस्था केवल सत्ताईस वर्ष की थी।

(ख) ग्रन्थ रचना

म० म० सुधाकर द्विवेदी ने संस्कृत तथा हिन्दी में अनेक पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थों की रचना की है। इन्होंने सिद्धान्त ज्योतिष के सम्बन्ध में अनेक मौलिक ग्रन्थों का निर्माण किया है, जो अपनी दुरूहता और अबोधगम्यता के लिए प्रख्यात हैं। इसके पश्चात् इन्होंने ज्योतिष शास्त्र के अनेक प्रख्यात प्राचीन ग्रन्थों की व्याख्या लिखी तथा उनका संशोधन कर प्रकाशित किया। इनके द्वारा रचित टीकाएँ केवल व्याख्या न होकर मौलिक ग्रन्थ के समान हैं जिनमें इन्होंने अपने नवीन मत का प्रतिपादन भी किया है। इनके मौलिक ग्रन्थों का विवरण प्रस्तुत किया जाता है :—

(क) मौलिक ग्रन्थ

(१) **दीर्घवृत्त लक्षणम्**—केवल २१ वर्ष की अवस्था में प्रणीत यह ग्रन्थ एक अत्यन्त दुरूह विषय का प्रतिपादन करने वाला है। यह प्रथम रचना ही इनके गंभीर अध्ययन तथा सुबोध व्याख्या प्रणाली का विशद निर्देशक है। (२) **वास्तव चन्द्र-शृंगोन्नतिः साधनम्**, (३) **भूभ्रमरेखा निरूपणम्**, (४) **ग्रहणे छादकनिर्णयः**, (५) **यन्त्रराजः**, (६) **प्रतिमाबोधकः**, (७) **धराभ्रमे प्राचीननवीनयोर्विचारः**, (८) **पिण्डप्रभाकरः**, (९) **गणकतरंगिणी**—इस ग्रन्थ में ज्योतिष शास्त्र का काल क्रम के अनुसार विशिष्ट इतिहास प्रस्तुत किया गया है। इसमें अनेक लुप्तप्राय ज्योतिष के पण्डितों का प्रथम बार परिचय देकर इन्होंने अपनी शोध-प्रवृत्ति को प्रदर्शित किया है। यह ग्रन्थ इनके अनुशीलन के गाम्भीर्य का द्योतक है। इसमें ५०० ई० से लेकर १८०० ई० तक होने वाले ज्योतिषियों का जीवन-चरित उनके ग्रन्थ एवं सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। (१०) **ध्रुवचरचारः**, (११) **समीकरण मीमांसा** और (१२) **दिङ्मीमांसा**।

इन ग्रन्थों में प्रथम ग्रन्थ का प्रथम प्रकाशन सन् १८८१ ई० में ठीक आज से सौ वर्ष पूर्व द्विवेदी जी ने बनारस चौक में स्थित ब्रजभूषणदास एण्ड कम्पनी के द्वारा कराया था। इसका द्वितीय संस्करण सरस्वती भवन पुस्तकालय से सम्बद्ध पण्डित बलदेव मिश्र ने टिप्पणी आदि के द्वारा भूषित कर १९४३ ई० में मास्टर खेलाड़ी लाल एण्ड सन्स (वाराणसी) द्वारा प्रकाशित किया था। छात्रों तथा अध्यापकों के लिए अत्यन्त उपयोगी तथा नाना परीक्षाओं में निर्धारित पाठ्य होने से इस ग्रन्थ की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुपलब्धि अत्यन्त कष्टकारिणी थी। फलतः इसका तृतीय संस्करण अत्यन्त सुन्दर रूप में अभी १९८१ ई० में संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित हुआ है।[1]

(ख) सम्पादित ग्रन्थ

द्विवेदी जी के द्वारा सम्पादित ग्रन्थों की विशेषता यह है कि इन्होंने प्राचीन ग्रन्थों की अनेक हस्तलिखित प्रतियों को एकत्र कर, उनके पाठों का मिलान कर उन्हें वैज्ञानिक पद्धति से सम्पादित किया है। इसके अतिरिक्त इन्होंने उन ग्रन्थों पर अपनी टीका, व्याख्या अथवा उपपत्ति लिखकर उन्हें सरल, सुबोध तथा बोधगम्य बनाने का प्रयास किया है जिससे उन दुरूह ग्रन्थों का मर्म साधारण पाठक भी आसानी से समझ सकें। इनके द्वारा सुसम्पादित ग्रन्थों का वर्णन नीचे दिया जाता है :—

(१) **पञ्चसिद्धान्तिका,** (२) **सिद्धान्ततत्त्वविवेक,** (३) **शिष्यधीवृद्धितंत्रम्,** (४) **करण-कुतूहलवासना,** (५) **लीलावती**—इस ग्रन्थ पर सुधाकर जी ने अपनी टीका लिखी है। (६) **बृहत्संहिता**—भट्टोत्पलभाष्य के साथ। बारह सौ (१२००) पृष्ठों के इस महनीय ग्रन्थ का सम्पादन सात विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर बड़े परिश्रम से किया गया है। भट्टोत्पल की टीका इतनी अस्तव्यस्त तथा अशुद्ध थी कि द्विवेदीजी ने अपनी भूमिका में लिखा है कि "इस ग्रन्थ के सम्पादन में जितना परिश्रम मुझे करना पड़ा उसके दशमांश परिश्रम से एक नयी नूतन टीका का मैं प्रणयन कर सकता था।" इस कथन से ही सम्पादक की लगन, अध्यवसाय तथा कठोर परिश्रम का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।[2] (७) **ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त**—इस ग्रन्थ का सम्पादन द्विवेदी जी ने इण्डिया आफिस लाइब्रेरी से इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ मँगाकर किया था। **चतुर्वेदाचार्य** नामक किसी प्राचीन दैवज्ञ के भाष्य पर आधारित द्विवेदी जी ने अपनी **'तिलक'** नामक व्याख्या से इस ग्रन्थ को विभूषित किया। (८) **ग्रहलाघव**—इस ग्रन्थ पर द्विवेदी जी ने एक नवीन टीका लिखी है। इसके साथ ही इन्होंने दो प्राचीन टीकाओं को भी प्रकाशित किया है जिसके कारण पाठकों को इसे समझने में बड़ी सुविधा होती है। (९) **त्रिंशिका**—स्वरचित नयी टीका के साथ प्रकाशित, (१०) **करण-प्रकाश**—स्वकीय उपपत्ति के साथ। (११) **बीजगणित**—इस पर भी इन्होंने टिप्पणी लिखी है। (१२) **सिद्धान्त शिरोमणि**– भास्कराचार्य के इस सुप्रसिद्ध ग्रन्थ पर इन्होंने विशद व्याख्या लिखी है। (१३) **सूर्य सिद्धान्त**—इस ग्रन्थ पर द्विवेदी जी ने **'सुधावर्षिणी'** नामक नवीन टीका का निर्माण किया था जो इनका सम्भवतः अन्तिम ग्रन्थ है। इसमें इन्होंने कमलाकर भट्ट की 'सौरवासना' टीका की तथा उन्हीं के पिता नृसिंह भट्ट के 'सौरभाष्य' की स्थास-स्थान पर आलोचना की है। सुधाकर जी

१. द्रष्टव्यः 'सारस्वती सुषमा' (वर्ष ३४, अंक १–२; १९७९ ई०) में लघुग्रन्थमाला में ३३ वें ग्रन्थ रूप में प्रकाशित।

२. इस ग्रन्थ का द्वितीय संस्करण संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से आचार्य बलदेव उपाध्याय के सम्पादन में सन् १९६८ ई० में दो भागों में प्रकाशित हुआ है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की यह टीका बड़ी ही मार्मिक तथा तलस्पर्शिनी मानी जाती है। (१४-१५) पाश्चात्य गणित में डिफरेन्शियल कैलकुलस[1] एवं इन्टेग्रल कैलकुलस[2] नामक सिद्धान्त अत्यन्त गहन तथा दुर्बोध माने जाते हैं। द्विवेदी जी ने इन सिद्धान्तों को हिन्दी भाषा-भाषियों की जानकारी के लिए दो स्वतन्त्र तथा मौलिक ग्रन्थों की रचना की जिनमें प्रथम का नाम "**चलन-कलन**" तथा द्वितीय का "**चलराशि कलन**" है। (१६) **अंकगणित का इतिहास**—इस ग्रन्थ में पाश्चात्य तथा पौरस्त्य देशों में अंक, लिपि, दशमलव, गुणा-भाग, वर्गमूल, घनमूल की उत्पत्ति तथा विकास का इतिहास बड़ी ही प्रामाणिक पद्धति से प्रस्तुत किया गया है।

(१७) 'वेदाङ्ग ज्योतिष' पर भाष्य

वेदाङ्ग ज्योतिष दो वाचनाओं (रिशेन्शन्स) में उपलब्ध होता है एक है यजुर्वेदीय और दूसरा है ऋग्वेदीय। इन दोनों वाचनाओं के पाठों और संख्या में बहुत भेद है। फलतः वे पृथक्-पृथक् दो ग्रन्थ माने जाते हैं। यजुर्वेदीय याजुष ज्योतिष पर सोमाकर शेष का लिखा भाष्य पहले से ही विद्यमान था। इस भाष्य की आलोचना करते हुए श्री छोटेलाल नामक संस्कृतज्ञ इंजीनियर ने 'बृहस्पति' के उपनाम से 'हिन्दुस्तान रिव्यु' में सन् १९०६ में अनेक लेखों का प्रकाशन किया। परन्तु छोटेलाल के इन लेखों में अनेक अशुद्धियाँ भरी पड़ी थीं। इन्हीं अशुद्धियों के निराकरण के लिए पं० सुधाकर द्विवेदी ने याजुष ज्योतिष पर भाष्य की रचना की। आर्य ज्योतिष पर अब तक कोई टीका नहीं थी। इस अभाव की पूर्ति के लिए इन्होंने इसका नवीन भाष्य लिखा। सुधाकरजी के इस भाष्य को अधिक स्पष्ट करने के लिए, उनके प्रसिद्ध शिष्य ज्योतिष के विद्वान् पं० मुरलीधर झा ने **'लघु विवरण'** नामक अपनी टीका की रचना की। इस टीका का अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित हो चुका है।[3]

हिन्दी में ग्रन्थ रचना

पं० सुधाकर द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य की भी प्रचुर सेवा की है। इन्होंने जायसी-कृत पद्मावत महाकाव्य का सर्वप्रथम उद्धार किया। इन्होंने अनेक हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर इस महाकाव्य का संशोधित संस्करण डा० ग्रियर्सन के साथ में अपनी 'सुधाकर चन्द्रिका' नामक टीका के साथ सम्पादित किया जो बिब्लोथिका इण्डिका, कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था। इनका दूसरा ग्रन्थ **'तुलसी सुधाकर'** है जिसमें 'तुलसी सतसई' पर सुधाकरजी द्वारा निर्मित कुण्डलियाँ लगाई गई हैं। इन्होंने गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस के बालकाण्ड का संस्कृत में अनुवाद भी किया था।

---

1. Differential Calculus.
2. Integral Calculus.
३. ये तीनों ग्रन्थ काशी के मेडिकल हाल प्रेस से सन् १९०८ ई० में प्रकाशित हुए थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके साथ ही विनय-पत्रिका का भी अंशतः संस्कृत में अनुवाद प्रकाशित कर संस्कृत-प्रेमियों का बड़ा उपकार किया है।

इतने विविध ग्रन्थों के प्रणेता होने से द्विवेदीजी के अध्यवसाय, मनन, अनुशीलन तथा विद्वत्ता का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

ऊपर निर्दिष्ट ग्रन्थों के अनुशीलन से यह स्पष्टतः ज्ञात होता है कि द्विवेदीजी की दृष्टि में सिद्धान्त ज्योतिष ही ज्योतिष शास्त्र का शीर्षस्थानीय है। इस ज्योतिष की गरिमा तथा प्रतिष्ठा की स्थापना के लिए ही इन्होंने इन सिद्धान्त ग्रन्थों का सम्पादन किया तथा स्वयं उनकी टीका एवं भाष्य लिखकर इन्हें महिमा के सिंहासन पर प्रतिष्ठापित किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने अपने शिष्यों के ऊपर भी इस तथ्य की छाप दृढ़ता से डाली। फलित ज्योतिष के ऊपर द्विवेदीजी की आस्था नहीं थी और ये उसे जीवनयापन का केवल साधन समझते थे। अपने इस सिद्धान्त का प्रकाशन इन्होंने अपनी एक हिन्दी कविता में भी किया है जिसकी अन्तिम पंक्ति निम्नांकित है—

"छायो है कराल कलिकाल जगती पै आज
तीसी के ही भाव सारे ज्योतिषी बिकायेंगे॥"

परिवार

पं० सुधाकर द्विवेदी का परिवार भरा-पूरा था। ईश्वर की कृपा से इन्हें तीन पुत्ररत्न प्राप्त हुए—(१) अच्युताकर द्विवेदी, (२) कमलाकर द्विवेदी और (३) पद्माकर द्विवेदी। इनमें से ज्येष्ठ पुत्र अच्युताकर द्विवेदी तहसीलदार थे। कमलाकर द्विवेदी डिप्टी कलक्टर के पद को अनेक वर्षों तक सुशोभित करते रहे। अन्त में बलिया जिले के कलक्टर के पद से इन्होंने अवकाश ग्रहण किया। कनिष्ठ पुत्र पद्माकरजी गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, वाराणसी में ज्योतिष विभाग के अध्यक्ष थे। इस प्रकार इन्होंने 'योग्य पिता का योग्य पुत्र' इस लोकोक्ति को चरितार्थ करते हुए अपने पिताजी की गद्दी को अलंकृत किया।

शिष्य-मण्डली

म० म० पं० सुधाकर द्विवेदीजी बड़े ही सफल अध्यापक थे। गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस में ज्योतिष के अध्यापक नियुक्त होने के पूर्व ये सरस्वती भवन पुस्तकालय के पुस्तकालयाध्यक्ष नियुक्त किये गये थे। उस समय से ही इन्होंने अध्यापन कार्य करना प्रारम्भ कर दिया था। अतः इनकी शिष्य मण्डली अत्यधिक है। इनके शिष्य प्रधान रूप से मिथिला और काशी मण्डल में पाये जाते हैं। वैसे तो इनके शिष्यों की संख्या विशाल है परन्तु इनके प्रधान चार शिष्यों का वर्णन यहाँ प्रस्तुत किया जाता है। ये शिष्य हैं—

(१) म० म० पं० मुरलीधर झा।

(२) पं० बलदेव मिश्र।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) पं० रामयत्न ओझा।

(४) पं० बलदेवदत्त पाठक।

इन शिष्यों में से प्रथम दो मैथिल और अन्तिम दो सरयूपारीण ब्राह्मण थे। (१) म० म० पं० मुरलीधर झा तथा (२) श्री बलदेव मिश्र का विस्तृत वर्णन अन्यत्र उपस्थित किया गया है।

(३) पण्डित रामयत्न ओझा

(आस्पद—ओझा; उपाधि ज्योतिष-महार्णव)

पण्डित रामयत्न ओझा अपने समय के ज्योतिषियों में प्रखर शास्त्रीय ज्ञान तथा व्यापक व्यवहार-परिचय के कारण महनीय स्थान धारण करते थे। इनका जन्म बिहार प्रान्त के छपरा जनपद के अन्तर्गत 'माझी गाँव' में हुआ था। स्थानीय पाठशाला में संस्कृत के व्याकरण, साहित्य शास्त्रों का परिचय प्राप्त करने के अनन्तर ये काशी में ज्योतिष विद्या पढ़ने आये। सुधाकर द्विवेदी से इन्होंने ज्योतिष के सिद्धान्त और गणित का विधिवत् अध्ययन किया तथा फलित ज्योतिष का अध्ययन इन्होंने काशी के नई-बस्ती निवासी प्रख्यात ज्योतिषी पं० अयोध्यानाथ शर्मा से किया। इन सुयोग्य गुरुओं के द्वारा सुशिक्षित किये जाने पर इनकी गणितीय प्रतिभा चमक उठी। महामना मालवीय जी को दृष्टि इनके ऊपर पड़ी। उन्होंने इन्हें बुलाकर विश्वविद्यालय के अन्तर्गत संस्कृत महाविद्यालय के ज्योतिष विभाग का अध्यक्ष बनाया। ये सिद्धान्त गणित तथा फलित ज्योतिष दोनों के असाधारण विद्वान् थे। अध्यापन में भी बहुत कुशल तथा निष्णात थे। यहाँ रहकर इन्होंने अनेक छात्रों को ज्योतिष का व्युत्पन्न विद्वान् बनाया, जिनमें ज्योतिष-मार्तण्ड **पं० रामव्यास पाण्डेय** मुख्य थे। इन्होंने पहली बार मालवीय जी की सम्मति से 'पंचाग' का निर्माण किया, जो 'विश्व पञ्चाङ्ग' के नाम से प्रसिद्ध है। अन्य पञ्चागों से इसमें अनेक विशिष्टताएँ हैं। इसमें धर्मशास्त्र-विषय के ज्ञातव्य सिद्धान्त तथा पौराणिक कथाएँ समुचित स्थानों पर दी गयी हैं। इस विश्व पञ्चाङ्ग के आद्य संपादक ये ही दो व्यक्ति थे—महामना मालवीय जी तथा रामयत्न ओझा जी।

फलित ज्योतिष में भी गणित के समान ही इनकी प्रतिभा का प्रसार विशेष लक्षित होता है। इनके द्वारा विरचित फलित के दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं :—(१) **जैमिनि सूत्र की टीका**—इसमें फलित ज्योतिष की अनेक उपयोगी गवेषणाएँ उपस्थित की गई हैं। (२) **फलित-विकाश**—यह बड़ा ही उपादेय मौलिक ग्रन्थ है। इसमें फलादेश के नियमों के लिए सम्यग् आधार प्रस्तुत किये गये हैं। इसमें अनेक महापुरुषों तथा प्रसिद्ध व्यक्तियों की कुण्डलियों के अध्ययन तथा उनके ज्ञात चरित्र के साथ उनका सम्यक् संतुलन निर्धारित किया गया है। इसमें इनकी प्रतिभात नई-नई सूझें भी हैं। इन्हीं गुणों के कारण मालवीय जी इनका विशेष आदर करते थे। १९३८ ई० में इनका निधन काशी में ही हुआ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) श्री बलदेवदत्त पाठक

(आस्पद-पाठक, उपाधि-ज्योतिषरत्न)

द्विवेदी जी के चतुर्थ शिष्य पं० बलदेवदत्त पाठक थे। इनके पूर्व पुरुष गोरखपुर जनपद के निवासी थे जहाँ से आकर इनके पितामह काशी में बस गये थे। इनके पिता का नाम पं० रामदीहल पाठक था। पं० बलदेव पाठक का जन्म सं० १९३० विक्रमी (सन् १८७३ ई०) में गोरखपुर जनपद के देवापार नामक गाँव में हुआ था। केवल आठ वर्ष के वय में ये काशी आये और अपने पिता की छत्रच्छाया में अध्ययन करने लगे। इनके पिता भी अच्छे ज्योतिषी थे और सुधाकर द्विवेदी के मित्र थे। अतः इन्होंने अपने पुत्र को पढ़ाने के लिए द्विवेदी जी से प्रार्थना की और इस प्रकार पाठक जी द्विवेदी जी से अध्ययन करने लगे तथा ज्योतिषाचार्य की उपाधि प्राप्त की।

खगोल विद्या के विशेष ज्ञान के लिए ज्योतिष शास्त्र में उल्लिखित यंत्रों के निर्माण में इनकी बड़ी रुचि थी। इन्होंने ही **'नाड़ी वलय यंत्र'** का निर्माण किया था जो हिन्दू विश्वविद्यालय में ज्योतिष शास्त्र की जानकारी के लिए प्रयोग में लाया जाता है। इन्होंने धूप घड़ी (सन डायल) के निर्माण के लिए एक संस्था भी स्थापित की थी जिसके द्वारा निर्मित धूपघड़ियाँ काशी तथा इस नगर के बाहर भी स्थापित की गई हैं। इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। परन्तु इनका केवल एक ही ग्रन्थ **'मण्डप कुण्ड सिद्धि'** आज-कल प्रकाशित हो सका है। इनके सुयोग्य पुत्र पण्डित **गणेशदत्त पाठक** उभयविध ज्योतिष के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। उन्होंने 'गोयनका संस्कृत महाविद्यालय में ज्योतिष विभाग के अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित होकर अनेक सुयोग्य छात्रों को तैयार किया है। पं० बलदेव पाठक जी के ही अन्यतम शिष्य हैं--पण्डित **केदारदत्त जोशी** जिन्होंने मुनीश्वर द्वारा प्रणीत भास्कराचार्य के 'सिद्धान्त शिरोमणि' की 'मरीचि' व्याख्या का सुसम्पादित संस्करण प्रकाशित किया है दो खण्डों में (हिन्दू विश्वविद्यालय काशी, १९६४ ई०)।

द्विवेदी जी की काव्य-रचना

पं० सुधाकर द्विवेदी शुष्क गणितज्ञ नहीं थे, प्रत्युत अत्यन्त सरस साहित्यिक भी थे। इस दिशा में ये भास्कराचार्य के प्रतिनिधि-स्वरूप थे। जिस प्रकार भास्कराचार्य ने एक ओर ज्योतिष शास्त्र के कठिन तथा सूक्ष्म तत्त्वों का प्रतिपादन किया है और दूसरी ओर अपने ग्रन्थों में सरस काव्य की सरस्वती बहाई है, उसी प्रकार द्विवेदी जी ने भी सिद्धान्त ज्योतिष के ग्रन्थों की व्याख्या तथा भाष्य लिखकर उन्हें सुलभ एवं सुबोध बनाया एवं दूसरी ओर अपनी रसमयी कविता के द्वारा पाठकों का मनोरंजन भी किया है। भास्कराचार्य ही इनके आदर्श थे। अतः उनकी कृतियों का इन पर प्रचुर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी कविता

द्विवेदीजी का हिन्दी तथा संस्कृत दोनों ही भाषाओं पर समान अधिकार था। अतः दोनों में ही इन्होंने काव्य रचना की है। एक बार ये भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के साथ राजघाट का पुल—जो उन दिनों निर्माणाधीन था—देखने के लिए गये। लौटते समय भारतेन्दु ने इस पुल का वर्णन करने के लिए द्विवेदीजी से कहा। तब द्विवेदीजी ने झट से यह दोहा तत्काल सुना दिया—

"राजघाट पर बनत पुल, जँह कुलीन की ढेरि।
आज गये कल देखिके, आजहि लौटे फेरि॥"

कहने की आवश्यकता नहीं कि इस छोटे से दोहे में श्लेष और विरोधाभास अलंकारों की छटा दर्शनीय है। भारतेन्दु ने इस कविता से प्रसन्न होकर द्विवेदीजी को प्रचुर पुरस्कार दिया।

द्विवेदीजी ज्योतिष शास्त्र के प्राचीन आचार्यों की भाँति इस शास्त्र के कठिन सिद्धान्तों को भी हिन्दी काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त करने में पटु थे। सम्भवतः समीकरण के सम्बन्ध में उनका यह दोहा आज भी एक समस्या बना हुआ है:

"जर जोरत जरिगे चतुर, डार पात छितिराय।
राय निकारत हारगे, पार न भे छितिराय॥"

पं० सुधाकर द्विवेदी बड़े सरस हृदय तथा भक्त व्यक्ति थे। इनके उपास्यदेव भगवान् राम थे। ये रामचरित मानस का नित्य पारायण किया करते थे जिसे पढ़ते-पढ़ते इनकी आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती थी। इन्होंने अपने ग्रन्थों के आदि और अन्त में भगवान् राम की ही स्तुति की है। यथा—'चल राशिकलन' के प्रारम्भ में ये रामचन्द्र की स्तुति में लिखते हैं—

"यल्लीला विमला विलोक्य विपुलप्रालेयबालालये,
भूपालेन्द्रललाट—लालनकलालेपाङ्कितक्ष्मातले।
उल्लङ्घ्य स्वकुलालिकूलकलितां लज्जानदीं मैथिली,
यल्लोकाऽऽकुलिता चचाल चलवद्रामाय तस्मै नमः॥"

सूर्य सिद्धान्त के अन्त में इन्होंने लिखा है—

"सरलया किल देवगिरा मया,
विलिखितां निखिलार्क—कलाकृतिम्।
बहुविधां परिचिन्त्य मतान्तरैः
निज—कृतिर्गतिविद्भिरिहादृता॥"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रह लाघव के अन्त का यह श्लोक सुनिए—

"इति सुधाकर निर्मित-वासना,
सकलया कलया कलयासना।
खचर-मध्य-गतौ परया गता,
भवलयाऽऽवलया वलयाऽऽसना॥

बृहत्संहिता की स्वकीय टीका के प्रारम्भ भगवान् राम की यह स्तुति कितनी भव्य है।

"जयति सहितशेषोऽशेषलीला-विशेषो,
जनक-वचन-धीरः सत्य-संकल्प-वीरः।
सकल-निज-जनानां शर्मदः सज्जनानां,
दशरथ नृपबालः कोशलेन्द्रो नृपालः॥"

इन कतिपय श्लोकों की आलोचना से द्विवेदीजी की काव्य-प्रतिभा का कुछ अनुमान किया जा सकता है।

उपसंहार

पं० सुधाकर द्विवेदी की प्रतिभा, पाण्डित्य एवं ज्योतिषशास्त्र के सम्बन्ध में आजकल के एक महान् ज्योतिर्विद् पद्मभूषण पं० सूर्यनारायण व्यास ने जो लिखा है वह अक्षरशः सत्य है—

"अवश्य ही ज्योतिर्विज्ञान के सम्बन्ध में सुधाकरजी ने जो कार्य किया है वह असाधारण है। गणेश दैवज्ञ के पश्चात् सम्भवतः ३०० वर्षों में सुधाकरजी को छोड़कर ऐसा कोई कृतीशूर-मनीषी नहीं पैदा हुआ जिसने इस शास्त्र को सुधाकरजी की तरह देन दी हो। सुधाकरजी ने उपेक्षित ज्योतिर्विज्ञान को सप्राण और सुसमृद्ध बनाया। यद्यपि म० म० बापूदेव शास्त्री ने इस दिशा में मोड़ दिया था और जीवन की प्रेरणा दी थी, परन्तु सुधाकरजी ने इसे पल्लवित, प्रथित और सुरक्षित बनाया। सुधाकरजी इस देश की विद्वद्-विभूति थे। ये बहुमुखी प्रतिभा और पाण्डित्य के धनी थे। इन्होंने ज्योतिषशास्त्र के प्रति पण्डितों की प्रज्ञा को प्रेरित और प्रभावित भी किया। इनके पश्चात् अभी तक ऐसा प्रवीण पुरुष उत्पन्न नहीं हुआ। निःसन्देह यह भारत का सौभाग्य है कि उसमें ऐसे महापुरुष जन्म लेते रहे हैं।"[1]

विज्ञानवीथी-पथिकैरुपास्यः,
सिद्धान्त-सिंहासन-सार्वभौमः।
प्राचीप्रतीचीगणितज्ञवन्द्यः,
सुधाकरोऽयं महनीयकीर्तिः॥

---

१. पं० केदारदत्त जोशी प्रणीत "पं० सुधाकर द्विवेदी का जीवन एवं कृतियाँ" नामक ग्रन्थ की प्रस्तावना से।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ग) संस्मरण

(१) पं० सुधाकर द्विवेदी बड़े ही कर्मठ व्यक्ति थे। अपने समय का एक भी क्षण यह व्यर्थ जाने नहीं देते थे। ग्रन्थों का अवलोकन, नये ग्रन्थ का प्रणयन, अध्ययन और अध्यापन— यही इनकी दैनिक दिनचर्या थी। इनका लक्ष्य था जीवितकाल में ही अपनी लोकप्रसिद्धि की प्राप्ति और यह लक्ष्य पूर्ण रूप में इन्हें सिद्ध हुआ। इनके इस परिश्रम तथा अध्यवसाय के प्रत्यक्षदर्शी थे बाबू कृष्णदासजी जो 'बनारस संस्कृत सीरीज' नामक ग्रन्थमाला के मालिक थे। वह कहते थे कि "द्विवेदीजी की पुस्तकें इसी सीरीज में प्रकाशित होती थीं। प्रूफ लेकर मैं उनके घर जब जाता था, तब एक अपूर्व दृश्य नेत्रों के सामने झलक उठता था। द्विवेदीजी चटाई पर बैठकर छोटी चौकी पर कुछ लिखते थे अथवा प्रूफ देखते थे। चारों ओर से उनके छोटे-छोटे पोता तथा नाती उन्हें घेरे रहते थे। कोई पीठ पर चढ़ता था, तो कोई पैर पर। नाना प्रकार के उत्पात मचाते थे ये बच्चे, परन्तु द्विवेदीजी को इससे तनिक भी व्याघात नहीं होता था। वे दत्तचित्त होकर अपने कार्य में मनोयोगपूर्वक जुटे रहते थे और कृष्णदासजी को सम्बोधन कर कहने लगते कि अधिकांश बड़े लोगों की प्रसिद्धि मरणोपरान्त होती है जिसे वे अपनी आँखों देख नहीं सकते। परन्तु मैं तो अपने जीवितकाल में ही अपनी प्रसिद्धि देखने में समर्थ होऊँगा। मेरे समग्र व्यापार इसी प्रयोजन को लक्ष्य कर अग्रसर होते हैं।" द्विवेदी का यह कथन सोलहों आने सच्चा निकला और उन्होंने जीते ही जीते अपनी अलोक-सामान्य प्रसिद्धि देखी और अपनी अभिलाषा की पूर्ति में वे सर्वथा कृतकार्य रहे।

(२) अपने कथ्य को आग्रहपूर्वक युक्तियुक्त रूप से रखने और बड़े से बड़े व्यक्ति को अपने कथनों से प्रभावित कर अपना कार्य सिद्ध करने की कला में ये अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं रखते थे। गणितज्ञ होने से इनकी युक्तियों के प्रतिपादन की शैली अनुपम थी। वाक्चातुरी इतनी अलौकिक थी कि ये शासन के उच्चाधिकारी को सद्यः प्रभावित कर देते थे। इस विषय की एक घटना बड़ी मार्मिक है। विद्यालय में प्रथम प्राध्यापक (फर्स्ट प्रोफेसर) का पद रिक्त हुआ। उसके लिए किसी सीनियर पण्डित की नियुक्ति की जाती थी, जो विद्यालय की सेवा में वरिष्ठ, प्रसिद्ध तथा वावदूक होता था। डा० वेनिस साहब म० म० गङ्गाधर शास्त्री को स्वीय गुरु होने के नाते विशेष मानते थे और उन्होंने उनके नाम की संस्तुति कर शिक्षा-विभाग के निदेशक (डाइरेक्टर) को अपना शासकीय पत्र भी भेज दिया। इस बात की खबर मिलते ही सुधाकरजी यू० पी० के सर्वोच्च शासक (जो उस समय छोटा लाट कहलाता था) से मिलने के लिए नैनीताल चले गये। गरमी की छुट्टियों में छोटे लाट नैनीताल में ही विराजते थे। वहाँ पहुँचकर पण्डितजी ने अपनी वरिष्ठता युक्तियों से सिद्ध कर दी। बात यह थी कि ज्योतिष के प्राध्यापक पद पर नियुक्ति होने से पूर्व द्विवेदीजी कई वर्षों तक सरस्वतीभवन के पुस्तकालयाध्यक्ष थे। दोनों पदों पर इनके कार्यकाल को मिला

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देने पर इनकी वरिष्ठता गङ्गाधर शास्त्री जी से सिद्ध हो जाती थी। अधिकारी के मन में इनकी बात जम गई और नये गजट में इनका नाम वरिष्ठ प्राध्यापक के रूप में प्रकाशित हो गया। इस अनहोनी अप्रत्याशित घटना से वेनिस साहब आश्चर्यचकित हो गये। उनको विश्वास ही नहीं होता था कि शिक्षा-विभाग का डाइरेक्टर उनकी संस्तुति की अवहेलना कर किसी दूसरे की नियुक्ति उस उच्च पद पर कर देगा। प्रिंसिपल महोदय के साथ पूरी अध्यापक-मण्डली सुधाकरजी के इस अध्यवसाय तथा कार्य से नितान्त चमत्कृत हो गई। घटना का पूरा विवरण उनके लिए चमत्कार का विशिष्ट विषय ही बन गया। सुधाकरजी की कार्यक्षमता की द्योतिका यह घटना सचमुच आश्चर्यजनक है !!! बड़े से बड़े अधिकारी पर अपना प्रभाव जमा डालना उनके बायें हाथ का खेल जो था।[1]

(३) पण्डित सुधाकर द्विवेदी गणित विद्या के जितने प्रौढ़ विद्वान् थे, उतने ही ये उसके सफल अध्यापक भी थे। गणित ज्योतिष तथा सिद्धान्त ज्योतिष में इनकी अध्यापन कला बड़ी ही तलस्पर्शिनी थी। इनके समझाने का ढंग, कठिन से कठिन समस्याओं के समाधान करने की इनकी अलौकिक क्षमता अपूर्व थी। भारतीय गणित के संग उन्होंने पाश्चात्य गणित का भी अध्ययन, बिना किसी गुरु के शिक्षण के, स्वयं ही गणितीय प्रतिभा के बल पर किया था। सिद्धान्त ज्योतिष के विषय का अध्यापक द्वारा उन्होंने पचीसों मान्य तथा लोकपूजित ज्योतिषियों को तैयार किया जिनकी शिष्य-परम्परा आज भी चलती है। इस तथ्य में किसी आश्चर्य का लेशमात्र भी स्थान नहीं है, क्योंकि यह तो उनकी परम्परागत पाण्डित्य की एक सर्वमान्य दिशा थी। आश्चर्य तो होता है आलोचकों को उनके पाश्चात्य गणित के अध्यापन का कौशल देखकर।

अंग्रेजी तथा संस्कृत कालेज की कक्षाएँ उस समय एक ही विद्यालय में चलाई जाती थीं। अतएव बी० एस-सी० कक्षा के छात्रों को गणित पढ़ाने का अवसर इन्हें प्रायः मिला ही करता था, जब उनके अध्यापक अवकाश पर रहते थे। दोनों कालेजों के अध्यक्ष (प्रिन्सिपल) भी एक ही व्यक्ति डाक्टर वेनिस ही थे। अतएव अंग्रेजी कक्षाओं के अध्यापकों के अवकाश ग्रहण के अवसर पर वे पण्डित सुधाकर जी को गणित पढ़ाने का कार्य दिया करते थे। पण्डित जी कुछ काम चलाऊ अंग्रेजी जानते थे। गणित के विषय में उन्हीं के छात्र कालीप्रसन्न चक्रवर्ती जी (जो गणित के साथ संस्कृत के भी परिनिष्ठित विद्वान् थे तथा हिन्दू विश्वविद्यालय के अन्तर्गत सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल के हेडमास्टर थे) अपना अनुभव कहा करते थे कि "सुधाकर जी कक्षा में आकर जब ट्रिग्नोमेट्री के प्रमेयों को पढ़कर सुनाते थे, तब मालूम पड़ता था कि कोई थर्ड

---

१. इस घटना के प्रत्यक्षदर्शी व्याकरणाचार्य पं० अम्बिकाप्रसाद उपाध्यायजी—जो उस समय उस कालेज में आचार्य के विद्यार्थी थे—ने इस घटना का लेखक से वर्णन किया था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्लास का छात्र अंग्रेजी शब्दों को टो-टो कर पढ़ रहा है। परन्तु जब वे श्यामपट्ट पर सवाल समझाने लगते तब जान पड़ता कि भास्कराचार्य स्वयं आकर प्रश्नों को समझा रहे हैं। विषम समस्याओं का समाधान वे इतनी सरलता, सहज भाव से करते थे कि साधारण से साधारण छात्र के लिए वह आसान बन जाता था। अंग्रेजी अध्यापकों के द्वारा अव्याख्यात प्रश्न का रहस्य छात्रों के सामने स्वतः उद्घाटित हो जाता था। विलक्षण थी उस विचक्षण गणितज्ञ की अध्यापन शैली।

(४) पण्डित सुधाकर जी ने अपने ज्येष्ठ आत्मज कमलाकर द्विवेदी को प्रयाग के म्योरसेन्ट्रल कालेज में गणित में एम० ए० कक्षा में भर्ती किया था। वहाँ के गणित के विभागाध्यक्ष प्रो० नाक्स अपने विषय के माने-जाने प्राध्यापक थे। पण्डित जी का उद्देश्य यही था कि उनके द्वारा पढ़ाये गये पाश्चात्य गणित में उनका आत्मज परिनिष्ठित विद्वान् बन जाय। प्रो० नाक्स के अध्यापन का बड़ा ही सुखद प्रभाव कमलाकर जी के ऊपर पड़ा और अपने अंग्रेज गुरु के सुयोग्य भारतीय शिष्य के रूप में वे प्रतिष्ठित हुए। उन्ही के द्वारा नाक्स साहब सुधाकर द्विवेदी से परिचित हुए। उनकी विशद कीर्ति से परिचित होने के कारण वे असमाधेय तथा विषम गणितीय प्रश्न तथा समस्या सुधाकर जी के पास समाधानार्थ भेजा करते थे। कमलाकर जी के लौटने की नाक्स साहब बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा किया करते थे और छुट्टी के बाद लौटने पर पिता जी के द्वारा व्याख्यात प्रश्नों का उत्तर अपने गुरु को सुनाकर शिष्य अपने कर्तव्य-भार से मुक्त हो जाता था। नाक्स साहब अभिलषित उत्तर तथा समस्याओं का उचित समाधान सुधाकर जी से पाकर बड़े आनन्दित होते थे और सुधाकर जी की भूरि-भूरि प्रशंसा किया करते थे। पाश्चात्य गणित का मार्मिक ज्ञान सुधाकर द्विवेदी जी की गणितीय प्रतिभा की एक विस्मयकारी दिशा थी—ज्योतिषियों को आश्चर्य में डालने वाली परन्तु पूर्णतया यथार्थ और आकर्षक दिशा। वेत्ता प्रत्येक विद्वान् सुधाकर द्विवेदी जी के गणित ज्ञान के चमत्कार पर बिना मुग्ध हुए नहीं रहता था। सम्पूर्णानन्द जी ने अपने आत्मजीवन विषयक ग्रन्थ में लिखा है कि १९१० ई० में सुधाकर जी के निधन का प्रथम समाचार जब उन्होंने अपने भारत-प्रसिद्ध गुरु डा० गणेशप्रसाद जी से कह सुनाया तब उन्होंने तुरन्त अपनी प्रतिक्रिया स्पष्टतः अभिव्यक्त करते हुए कहा कि—"पण्डित सुधाकर जी मुझसे भी कहीं बड़े गणितज्ञ थे। वैसा गणितज्ञ मिलना बड़ा ही दुर्लभ है।" डा० गणेशप्रसाद जी बड़े ही स्पष्टवादी थे। उनकी जो भी सम्मति किसी विषय में बन जाती थी, उसे कहने में उन्हें तनिक भी संकोच नहीं होता था। पाश्चात्य गणित के तो वे महामान्य धुरन्धर विद्वान् थे ही। उनकी सम्मति का बड़ा ही मूल्य है। उनकी सम्मति से स्पष्ट प्रतीत हो जाता है कि पाश्चात्य गणित के पारंगत विद्वान् भी प्राचीन परम्परा से सिद्धान्त गणित के अनुशीलनकर्ता सुधाकर द्विवेदी के वैदुष्य पर कितनी आस्था तथा कितना आदर रखते थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) आजकल तो यह भ्रान्त धारणा सर्वत्र व्याप्त हो गई है कि संस्कृत का पण्डित भारतीय समाज से बिल्कुल अलग हटा हुआ एक विचित्र जीव होता है जो शास्त्रीय चिन्तन की कारा में अपने आपको बन्द किये रहता है। न सामान्य जन-जीवन में उसकी आस्था और न नागरिक जीवन के साथ उसका कोई सम्पर्क। परन्तु यह विचारधारा मान्य नहीं है। आज की तो बात जाने दीजिए जब राजनीति सबके सिर पर चढ़कर बोलती है चाहे वह अंग्रेजी का विद्वान् हो चाहे संस्कृत का पण्डित। आज से पचास वर्ष पूर्व भी संस्कृत का पण्डित भारतीय समाज के साथ घुलमिल कर ही अपना जीवन बिताता था, वह नागरिक जीवन के उत्थान और पतन में विशेष रूप से साझीदार होता था। वह समाज का एक अविभाज्य अंग होता था। समाज के दुःख में दुःखी और सुख में सुखी होता था। समाज में एक प्रतिष्ठित व्यक्ति होने के नाते वह अपना उत्तरदायित्व भलीभाँति समझता था और उसके निर्वाह के लिए वह सदा सचेष्ट रहा करता था। पण्डित सुधाकर द्विवेदी इस तथ्य के एक प्रोज्ज्वल प्रतीक थे।

१९०३ ई० में भारतवर्ष के अंग्रेजी शासन का सर्वातिशायी उच्चाधिकारी वाइसराय लार्ड कर्जन काशी में आने वाला था। जिले के अधिकारियों ने इस शुभ अवसर पर जनता की ओर से प्रतिनिधि के रूप में दो व्यक्तियों को चुनने की राय दी। एक तो हो हिन्दुओं का प्रतिनिधि और दूसरा हो मुसलमानों का प्रतिनिधि। लार्ड कर्जन बड़ा ही सुयोग्य अधिकारी माना जाता था, परन्तु वह था बड़ा तेज-तर्रार वाइसराय। मुसलमानों की ओर से कोई खाँ साहब चुने गये, परन्तु हिन्दुओं की ओर किसे प्रतिनिधि चुना जाय — यही विषम समस्या थी। वकीलों, अंग्रेजीदाँ व्यक्तियों, राजमान्य नेताओं की हिन्दुओं में कमी नहीं थी, परन्तु इन सबको एक ओर छोड़कर सर्वसम्मति से महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी को जनता ने अपना प्रतिनिधि चुना। सुधाकरजी की वक्तृत्वशक्ति पर, हिन्दुओं की अभिलाषाओं को पूर्णरूपेण अधिकारी के सामने अभिव्यक्त करने की क्षमता पर तथा उसे प्रभावित करने की योग्यता पर जनता का दृढ़ विश्वास था। तभी तो उसने बहस-मुबाहसा करने वाले सुयोग्य राजनीति-निपुण वकीलों को छोड़कर एक पण्डित को और तिस पर भी एक ज्योतिषी को सर्वसम्मति से अपना प्रतिनिधि चुना।

लार्ड कर्जन वाराणसी आया। बड़ा ही विशाल समारोह उसकी अभ्यर्थना में उस समय मनाया गया। एक दिन निर्धारित समय पर जिलाधीश ने हिन्दुओं की ओर से सुधाकर द्विवेदी को और मुसलमानों की ओर से एक विशिष्ट पदवीधारी मुस्लिम व्यक्ति को वाइसराय से भेंट करने के लिए प्रस्तुत किया। दोनों सज्जन बारी-बारी से गये और अपनी जमात के दुःखदर्द की कहानी उच्चाधिकारी से कह सुनायी। उन्होंने क्या कहा? इसका तो ब्यौरा बाहरी जनता को नहीं मिल सका, परन्तु लाट साहब ने दूसरे दिन यू० पी० के उच्च शासक लेफ्टिनेन्ट गवर्नर (अर्थात् छोटे लाट) लाट्श

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहब से जो अपनी सम्मति कह सुनाई, उससे प्रतिनिधियों के कार्यकलाप का पता लोगों को चल ही गया। कर्जन ने लाटूश साहब से हँसते हुए कहा – Your Hindu Representative put his case very brilliantly; but the Moslem Representative only fumbled. अर्थात् तुम्हारे हिन्दू प्रतिनिधि ने अपने केस की पैरवी बड़े ही सुयोग्य शब्दों में की, परन्तु मुसलमान प्रतिनिधि तो केवल टटोलता ही रह गया। लार्ड कर्जन की यह सम्मति सुधाकर द्विवेदी की उच्च व्यवहार-कुशलता तथा प्रतिपादन योग्यता का समुज्ज्वल प्रमाण है। यह मार्मिक संस्मरण रायकृष्णदास जी ने लेखक को सुनाया था जो इस घटना के प्रत्यक्ष साक्षी थे। इस घटना की सूचना लेखक को डा० रायकृष्णदास ने दी थी। अतः इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता।

(६) श्री सुधाकर जी ने हिन्दी की अमूल्य सेवा की है—अप्रत्याशित तथा अनुपम। इन्होंने हिन्दी के प्राचीन अप्रकाशित ग्रन्थों का विमर्शात्मक संस्करण प्राचीन हस्तलेखों के आधार पर स्वयं प्रकाशित किया। ये काशी नागरी प्रचारिणी सभा के उन्नायकों में अन्यतम थे। अपनी विद्या, बुद्धि तथा व्यावहारिक ज्ञान के बल पर सभा के प्रारम्भिक काल में उन्होंने उसके विकास तथा परिवर्धन में जो कार्य किया वह अत्यन्त महनीय तथा माननीय था। वे सभा के सभापति पद पर भी प्रतिष्ठित किये गये थे (सन् १९०१–१९०२)। सभा की ग्रन्थावली-माला में उनके द्वारा सम्पादित 'दादूदयाल की बानी' आदरणीय ग्रन्थ माना जाता है। उन्होंने भाषाविज्ञान के माननीय विद्वान् डा० ग्रियर्सन को हिन्दी साहित्य की संवर्धना में महत्त्वपूर्ण सहायता दी थी। ग्रियर्सन तो ब्रिटिशराज के उच्च शासनाधिकारी होने के साथ ही साथ भोजपुरी, मैथिली तथा हिन्दी भाषा के प्रवीण विद्वान् माने जाते थे। उन्होंने जायसी तथा बिहारी के ग्रन्थों का प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित कर वैज्ञानिक रीति से सम्पादनकला को अग्रसर किया। जायसी के 'पद्मावत' का संस्करण उनके अनुवाद तथा सुधाकरजी की 'सुधाकरचन्द्रिका' नाम्नी टीका से विभूषित होकर (१८६०–१९०० ई०) कलकत्ते के एशियाटिक सोसाइटी के द्वारा प्रकाशित हुआ था। बिहारी सतसई की विख्यात टीका 'लालचन्द्रिका' (लल्लूलालजी द्वारा प्रणीत) का भी सम्पादन डा० ग्रियर्सन ने १८९६ ई० में किया। इन दोनों प्रकाशनों में सुधाकरजी का विद्वत्तापूर्ण सहयोग था। डा० ग्रियर्सन का प्रख्यात मौलिक निबन्ध Notes on Tulasidasa अपने विषय का गम्भीर विवेचक निबन्ध माना जाता है। यह लेख प्रसिद्ध शोध-पत्रिका 'इण्डियन ऐण्टिक्वेरी' (१८९३ ई०) में क्रमशः प्रकाशित हुआ था और विदेशों में तुलसीदास की ख्याति तथा परिचिति का यह प्रथम महत्त्वशाली निबन्ध माना जाता है (इन अनुवादों के कतिपय अंश प्रकाशित भी हुए हैं)। इसके लिए प्रचुर सामग्री एकत्र करने का उत्तरदायित्व सुधाकर द्विवेदी के ऊपर था। द्विवेदीजी तुलसीदास के अनन्य भक्त तथा विज्ञ समालोचक थे। इन्होंने मानस के बालकाण्ड का तथा विनय-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रिका के कतिपय अंशों का बड़ा ही मधुर, आवर्जक तथा रुचिर अनुवाद संस्कृत में प्रस्तुत कर उभय भाषाओं के परिज्ञान में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। गोस्वामीजी के चरित, ग्रन्थ तथा साहित्यिक वैशिष्ट्य से डा० ग्रियर्सन को परिचय देकर इन्होंने उनके कार्य पर प्रामाणिकता की छाप लगा दी जिसके लिए ग्रियर्सन ने भी सुधाकर द्विवेदी के सहयोग तथा वैदुष्य की प्रचुर प्रशंसा की है।

(७) बहुमुखी प्रतिभा के धनी द्विवेदी जी की शास्त्रीय चक्षुष्मत्ता विलक्षण थी। ज्योतिष के समान हिन्दी में भी उनकी अनोखी सूझ थी। संस्कृत के महान् पण्डित होते हुए भी वे हिन्दी में संस्कृत शब्दों के, विशुद्ध तत्सम शब्दों के, प्रयोग के पक्षधर नहीं थे। आज से बहुत पहिले, लगभग पचास-साठ साल पूर्व ही, उन्होंने बोलचाल की मुहावरेदार हिन्दी के लिए बड़ा प्रबल अभियान चलाया था। हिन्दी की चलती शैली में संस्कृत के बोझिल शब्दों का छौंक लगाना उन्हें बिल्कुल पसन्द न था। उन्होंने इस शैली में—जनता की बोली में—'राम कहानी' लिखकर अपने सिद्धान्त का व्यवहारपक्ष भी प्रस्तुत किया, परन्तु वह युग इस शैली के ग्रहण करने के लिए उपयुक्त नहीं था। फलतः यह आन्दोलन आगे विकसित न हो सका। 'राम कहानी' की भूमिका में सुधाकरजी ने हिन्दी के दावे को ऊँचा उठाते हुए लिखा था कि "न जाने क्यों कलम पकड़ते ही हमारे ऊपर संस्कृत का नशा छा जाता है।" यह कथन अक्षरशः सही है और आज के युग में भी यह अधिकांश में सच्चा है। बोलचाल की हिन्दी के हिमायती के रूप में द्विवेदी जी का नाम बहुत दिनों तक लिया जाता रहेगा। यह उनकी सूझ-बूझ का एक उजागर पहलू है।

(८) द्विवेदी जी ने हिन्दी के प्रचार में एक और बड़ी सेवा की है जो चिरस्मरणीय रहेगी। गत शताब्दी के अन्तिम वर्षों में १८९८-९९ के आसपास कचहरी में नागरी लिपि के प्रचलन को लेकर एक बड़ा ही जोशीला आन्दोलन शुरू हुआ था। इसके प्रधान व्यक्ति तो पण्डित मदनमोहन मालवीय जी थे, परन्तु सुधाकर जी का भी योगदान नगण्य नहीं था।

उर्दू वालों का यह दावा था—और जबरदस्त दावा था—कि हिन्दी में कचहरी का मजमून न तो उतना शीघ्र लिखा जा सकता है और न उतना शुद्ध ही लिखा जा सकता है जितना वह उर्दू में लिखा जा सकता है। इस चुनौती को हिन्दी वालों की ओर से सुधाकर द्विवेदी ने स्वीकारा और अपनी लौहलेखनी के द्वारा सिद्ध कर दिखाया कि उर्दू वालों के ये दोनों दावे एकदम झूठे हैं। इस चुनौती को सिद्ध करने के दिन चौक में स्थित कारमाइकेल लाइब्रेरी में काशी के शिक्षित नागरिकों का बड़ा जमाव था। जिलाधिकारी ने यह निश्चित किया कि नागरी तथा उर्दू दोनों लिपियों में दो व्यक्तियों से अदालती मजमून के एक अंश का शीघ्र लेखन (डिक्टेशन) लिखाया जाय जिसे वे दोनों व्यक्ति डिक्टेशन के खतम होने पर तुरन्त पढ़कर सुनावें। जिस व्यक्ति का लेखन तथा पठन शुद्ध होगा, वह विजयी माना जाएगा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्दू के लिए एक खाँ साहिब हाजिर हुए और नागरी के लिए सुधाकर जी उपस्थित हुए। दोनों ने वह डिक्टेशन जिलाधिकारी की उपस्थिति में लिखा जो उनकी सम्मति से चुनकर लिखाया गया था। डिक्टेशन समाप्त होते ही द्विवेदी ने उस मजमून को पढ़कर सुनाया जो बिल्कुल शुद्ध था और जिसमें लेखन की या वर्तनी की एक भी अशुद्धि नहीं थी। उर्दू वाले सज्जन ने भी अपना लेख पढ़ सुनाया। एक तो उसमें अनेक स्थानों पर छूट थी। दूसरे उसमें अनेक अशुद्धियाँ थीं—वर्तनी की तथा शब्द-रूपों की। फलतः जिलाधिकारी ने उपस्थित शिक्षित मण्डली के सामने यह घोषित किया कि सुधाकर द्विवेदी जी का डिक्टेशन नियमित समय के भीतर समाप्त हुआ है तथा वह सर्वथा शुद्ध है। बनारस के जिलाधीश ने इस प्रतियोगिता की सूचना प्रदेश के सर्वोच्च अधिकारी के पास भेजी और उसी समय से शासन की ओर से यह घोषणा प्रचारित की गई कि नागरी लिपि में भी अदालती मजमून शीघ्रता तथा शुद्धता के साथ उर्दू के समान ही लिखे जा सकते हैं। शासनाधिकारियों के हृदय में नागरी के शीघ्र लेखन के विषय में छिपा हुआ सन्देह सदा-सर्वदा के लिए निरस्त हो गया और इस प्रदेश के शासक सर एण्टनी मैकडानेल के समय में नागरी का प्रवेश अदालती लिपि के रूप में सन् १९०० ई० में सर्वत्र मान्य हो गया।

नागरी के इस विजय का श्रेय पण्डित सुधाकर द्विवेदी जी को है। वे शीघ्र लेखन तथा सुडौल लेखन दोनों के लिए नितान्त प्रख्यात थे।

(९) लार्ड कर्जन में हजार दोष हों, परन्तु उनमें दो गुण बड़े ही मार्के के थे। एक तो वे विद्वानों का आदर-सत्कार करते थे, उनसे मिलना पसन्द करते थे तथा उनके मनोगत भावों को जानने की चेष्टा किया करते थे। दूसरा गुण था प्राचीन वस्तुओं के प्रति उनका अत्यधिक आदर तथा उनके संरक्षण के प्रति सातिशय प्रयास। महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी से प्रथम साक्षात्कार में ही लार्ड कर्जन इनसे इतना प्रसन्न हो गया कि उसने बड़े प्रेम से पूछा—Panditji, What are your ambitions (पण्डित जी, आपकी महत्त्वाकाङ्क्षाएँ कौन सी हैं) ? सुधाकर जी काम चलाऊ अंग्रेजी जानते ही नहीं थे, प्रत्युत प्रौढ़ता से बोल भी लेते थे। उन्होंने तपाक से कहा –"लाट साहब, मैं ग्रेनिच जाना चाहता हूँ और वहाँ होने वाले गणित की अशुद्धियों को बतलाकर उन्हें दूर करना चाहता हूँ। यही मेरी अभिलाषा है।" लार्ड कर्जन इस उत्तर से बहुत प्रसन्न हुआ और उसने आने-जाने के पूरे खर्च को सरकार की ओर से देने का भी वचन दिया, परन्तु १९०५ ई० में भारतीय समाज के सुदृढ़-बन्धन को तोड़कर समुद्र यात्रा करने का साहस कौन कर सकता था ? सुधाकर जी इस विदेश यात्रा पर न जा सके और पश्चिमी गणितज्ञों को इस भारतीय गणितज्ञ की अलौकिक प्रतिभा से परिचय पाने का दुर्लभ अवसर मिल न सका। हा हन्त !!!

(१० संस्कृत विद्वानों में ज्योतिषी लोगों की व्यवहार-निपुणता नितान्त विश्रुत है। पण्डित सुधाकर द्विवेदी जी ठहरे ज्योतिषियों के सरदार। फलतः उनका लोक-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नैपुण्य यदि उत्कट कोटि में पहुँचा हुआ था, तो इसमें आश्चर्य करने की लेशमात्र भी गुञ्जाइश नहीं है। उनकी लोकचातुरी की अनेक कहानियों में से एक यहाँ दी जाती है। वे कहीं से रेलगाड़ी से घर लौट रहे थे। गाड़ी में ही एक सज्जन से उनकी भेंट हुई। पूछने पर पता चला कि वे गणित के अच्छे विद्वान् हैं, परन्तु तीन ऐसे गणितीय विषम प्रश्न उपस्थित हो गये हैं जिनका समाधान नहीं हो रहा है। सुधाकर जी की गणितविषयिकी ख्याति सुनकर वे उन्हीं से भेंट कर प्रश्नों के उत्तर के निमित्त काशी जा रहे थे। सुधाकरजी ने अपना बिना परिचय दिये ही उनसे उन प्रश्नों को पूछा। उस व्यक्ति ने कहा—महाशय, उन प्रश्नों को सुनकर आप क्या करेंगे? वे विषम हैं तथा वस्तुतः असमाधेय हैं। सुधाकरजी के विशेष आग्रह करने पर उन्होंने तीनों प्रश्नों को एक-एक करके सुना दिया। द्विवेदीजी ने दो प्रश्नों को तो वहीं तुरन्त हल कर दिया और तीसरे के लिए सुधाकरजी से पूछने के लिए कहकर वे स्टेशन आने पर उतर कर घर चले गये। दूसरे दिन जिज्ञासु व्यक्ति सुधाकरजी को खोजते हुये जब उनके घर पहुँचे और कल वाले व्यक्ति को ही गद्दी पर बैठे देखा तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्होंने तीसरा सवाल द्विवेदीजी से पूछा जिसे उन्होंने तुरन्त हल कर दिया। आगन्तुक व्यक्ति बड़े प्रसन्न हुए, प्रश्नों के उत्तर के निमित्त उन्होंने द्विवेदीजी को दक्षिणा भी भेंट की, परन्तु बड़े आग्रह से पूछा कि आप ही तो कल रेल के डिब्बे में मिलने वाले व्यक्ति हैं? आपने कल दो ही सवालों के उत्तर मुझे बताये। तीसरे सवाल का उत्तर तो आप दे ही सकते थे। उसका उत्तर आपने कल ही क्यों नहीं बता दिया? प्रश्न को सुनकर सुधाकरजी हँसने लगे और उन्होंने बड़े तपाक से जवाब दिया—आप तो सुधाकर द्विवेदी से ही प्रश्नों का हल चाहते थे। यदि मैं अपने स्वरूप को प्रकट भी करता, तो भी आपको अनजाने व्यक्ति के सुधाकर द्विवेदी होने में सन्देह बना ही रहता। इसीलिए मैंने केवल दो ही प्रश्नों का हल बतला कर अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति किञ्चित् मात्र तो की, परन्तु आपके सन्देह को पूरी तौर पर हटाने के लिए मेरे पास कोई साधन न था। इसीलिए तीसरे सवाल के हल के लिए मैंने आपको सुधाकर द्विवेदी से भेंट करने के लिए उनके आवास पर भेजा। यहाँ आकर गद्दी पर आसीन उनका साक्षात्कार करने तथा प्रश्न के समुचित उत्तर पाने से आपको जो मानसिक सन्तोष हुआ, वह क्या रेल के डिब्बे में हो सकता? नहीं कभी नहीं।

आगन्तुक सज्जन ने इस पर द्विवेदीजी के गणित के ज्ञान की ही प्रशंसा नहीं की, प्रत्युत उनके लोक-व्यवहार की चातुरी की भी भूरि-भूरि प्रशंसा कर अपने आपको कृतार्थ माना। सद्यः स्फुरणशील चतुरता का द्योतक यह प्रसंग सुधाकरजी की व्यवहार-निपुणता का परम रोचक निदर्शन है।

●

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११

श्री कैलासचन्द्र शिरोमणि

(आस्पद—भट्टाचार्य, उपाधि–महामहोपाध्याय)

म० म० पं० कैलासचन्द्र शिरोमणि गत शताब्दी के उत्तरार्ध में वर्तमान, काशीस्थ विद्वानों में अपनी तर्क-निपुणता, नव्यन्याय में अलौकिक वैदुष्य के कारण तथा अपने निर्मल सदाचारी जीवन के हेतु अत्यन्त प्रसिद्ध थे। **'शिरोमणि'** शब्द इनके नाम का अंश न होकर नवद्वीप के तार्किक विद्वानों के द्वारा प्रदत्त एक महनीय उपाधि थी जो इनके लोकातीत गुण तथा प्रसिद्धि की द्योतिका मानी जा सकती है। इनका जन्म तो हुआ बंगाल में, नव्यन्याय की शिक्षा-दीक्षा हुई नवद्वीप में, परन्तु इनकी विद्वत्ता के प्रसार तथा प्रचार का क्षेत्र मिला काशी में। काशिराजकीय संस्कृत महाविद्यालय में अविच्छिन्न रूप से ये चालीस वर्षों तक अध्यापन का कार्य करते रहे। वार्धक्य के कारण अवकाश लेने के लिए ये सतत प्रयत्नशील थे परन्तु उच्चतम अधिकारियों ने इनकी स्थिति से कालेज को गौरवान्वित मानकर इन्हें अवकाश ग्रहण करने का कभी अवसर नहीं प्रदान किया। संस्कृत कालेज में नव्य न्याय की महनीय गद्दी को सुशोभित करने वाले ये ऐसे विद्वान् थे जिनकी गणना नवद्वीप के नैयायिकों में भी श्रेष्ठ मानी जाती थी।

पूर्व पुरुष तथा जन्म

संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् पं० कैलासचन्द्र शिरोमणि का जन्म बंगाल राज्य के वर्धमान जिले के धात्री नामक गाँव में सं० १७५२ शकाब्द (तदनुसार सन् १८३० ई०) में हुआ था। आपके पितामह का नाम भवनाथ तर्कपंचानन था। इनके पुत्र घनश्याम सार्वभौम संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् थे। यही हमारे चरित नायक **कैलासचन्द्र शिरोमणि** के पिता थे। इनकी माता का नाम आदरमणि देवी था जो सती, साध्वी तथा पतिपरायणा स्त्री थीं। **घनश्याम सार्वभौम** भगवान् शिव के परम उपासक थे। उन्हीं की कृपा उन्हें कैलासचन्द्र शिरोमणि जैसे पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई।

शिक्षा

जब कैलासचन्द्रजी पाँच वर्ष के थे तब ये अपने गाँव की पाठशाला में पढ़ने के लिए बैठाये गये। थोड़े ही समय में ये अपनी मातृभाषा बंगला की शिक्षा पाकर व्युत्पन्न हो गये। आठवें वर्ष में इनके पिता ने इनका यज्ञोपवीत संस्कार किया और ब्रह्मचारी के लिए शास्त्र में विहित समस्त क्रिया-कलापों की शिक्षा दी। इन क्रियाओं के आचरण से इनमें अलौकिक प्रतिभा का स्फुरण हुआ। इन्होंने अपने पितृव्य पं०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनार्दन तर्कवागीश के पास रहकर संस्कृत व्याकरण, कोश तथा काव्य में गम्भीर व्युत्पत्ति प्राप्त की। जब कैलासचन्द्रजी ने अठारहवें वर्ष में पदार्पण किया तब इनका ध्यान न्यायशास्त्र के अध्ययन की ओर आकृष्ट हुआ। इसके लिए इन्होंने अपना घर छोड़कर देवीपुर गाँव में रहना प्रारम्भ किया।

उस गाँव में एक अत्यन्त प्रसिद्ध विद्वान् पं० **हरचन्द्र न्यायवागीश** नामक पण्डित रहते थे जो न्यायविषयक अच्छे वैदुष्य के कारण कणाद के ही नवीन अवतार माने जाते थे। उस समय वे अत्यन्त वृद्ध हो गये थे और उनका वय ८० वर्ष के लगभग था। उन्हीं गुरुवर के चरणों में बैठकर इन्होंने न्यायशास्त्र का गम्भीर अध्ययन किया। न्यायशास्त्र की 'सामान्य निरुक्ति' तक अध्ययन कर ये अपने गाँव लौट आये।

पिता ने अब इनका विवाह करने का निश्चय किया और श्रीमती तरंगिणी देवी के साथ इनका विवाह कर दिया। अब ये सुखपूर्वक गार्हस्थ्य जीवन बिताने लगे। पिताजी की आज्ञा से इन्होंने अपनी गृहस्थी तो बसा ली परन्तु न्यायशास्त्र के गम्भीर अध्ययन के प्रति इनकी ललक समाप्त नहीं हुई। इस पिपासा की शान्ति के लिए इन्होंने न्यायशास्त्र की शिक्षा के केन्द्र नवद्वीप की यात्रा की। बंगाल में नवद्वीप को ही न्यायशास्त्र का केन्द्र होने का गौरव प्राप्त है। यह वही नवद्वीप है जहाँ महाप्रभु चैतन्य ने न्यायशास्त्र की दीक्षा प्राप्त की थी और यहीं पर इन्होंने अपने 'टोल' की स्थापना कर अध्यापन का कार्य प्रारम्भ किया था। यह वही विद्या की स्थली है जहाँ पं० रघुनाथ शिरोमणि ने मिथिला में न्यायशास्त्र का अध्ययन कर लौटने के पश्चात् यहाँ संस्कृत पाठशाला (टोल) की स्थापना की तथा नवद्वीप को नव्यन्याय का विद्या-पीठ बनाया।

पं० रघुनाथ शिरोमणि के विषय में ऐसी प्रसिद्धि है कि ये एकाक्ष (काना) थे। जब ये मिथिला में पक्षधर मिश्र के पास न्याय का अध्ययन करने के लिए गये तब वहाँ पण्डितों ने इनकी खिल्ली उड़ाते हुए यह श्लोक कहा—

"आखण्डलः सदस्राक्षो, विरूपाक्षः त्रिलोचनः।
अन्ये द्विलोचनाः सर्वे, को भवान् एकलोचनः॥"

इस उपहास का उत्तर उन्होंने अपने अदम्य उत्साह से न्याय शास्त्र की लोकातीत वैदुषी के सम्पादन द्वारा दिया था।

रघुनाथ शिरोमणि महाप्रभु चैतन्य के समकालीन थे। इसलिए इनका काल १५ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध तथा १६ वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध मानना उचित है। शिरोमणि जी ने गंगेश उपाध्याय के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'तत्त्वचिन्तामणि' पर 'दीधिति' नामक पाण्डित्यपूर्ण टीका का निर्माण किया था जो बंगीय विद्वानों के द्वारा निर्मित तत्त्व-चिन्तामणि की सर्वप्रथम विद्वत्तापूर्ण टीका मानी जाती है। इसके अतिरिक्त इन्होंने निम्नांकित ग्रन्थों की भी रचना की थी :—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) पदार्थ-तत्त्वनिरूपण, (२) बौद्धधिकार-शिरोमणि, (३) खण्डनखण्डखाद्य दीधिति, (४) आख्यातवाद, (५) किरणावलीप्रकाश-दीधिति।

इनके अगाध वैदुष्य के कारण इनको शिरोमणि' की उपाधि प्राप्त हुई थी और इन्होंने स्वयं 'तत्त्वचिन्तामणि' की दीधिति नामक टीका में अपने को 'तार्किक शिरोमणि' कहा है। यशोविजय नामक जैनाचार्य ने इनकी तार्किक प्रतिभा की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि :—

"न्यायाम्बुधिर्दीधितिकारयुक्ति—
कल्लोल-कोलाहल-दुर्विगाहः ।
तस्यापि पातुं न पयः समर्थः
किं नाम धीमत्प्रतिभाम्बुवाहैः ॥"
(अष्टसाहस्री-विवरण)

श्लोक का आशय यह है कि दीधित टीका के लेखक (रघुनाथ शिरोमणि) की युक्तियों के कल्लोल (भयंकर लहरियों) से उत्थित कोलाहल के कारण न्याय-समुद्र में अवगाहन करना बड़ा ही कठिन है, तथापि विद्वानों के प्रतिभा रूपी मेघों के द्वारा ऊपर ही ऊपर उस न्याय समुद्र के जल का क्या आस्वादन नहीं किया जा सकता? खण्डनखण्डखाद्यकार महाकवि श्रीहर्ष के समान रघुनाथ शिरोमणि तार्किक होने के साथ ही एक सहृदय कवि भी थे। इनकी साहित्यिक कृति तो अभी प्रकाश में नहीं आई है परन्तु इनकी ये दो गर्वोक्तियाँ विद्वानों में सुप्रसिद्ध हैं। इनमें पहिली इनकी तर्क-निपुणता के विषय में है और दूसरी इनकी अलौकिक काव्य-प्रतिभा से सम्बन्धित है। ये गर्वोक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

"विदुषां निवहैरिहैकमत्यात्
यद्यदुष्टं निरटंकि यच्च दुष्टम् ।
मयि जल्पति कल्पनाधिनाथे,
रघुनाथे मनुतां तदन्यथैव ॥"

× × ×

अनासाद्य गौडीमनाराध्य गौरीं,
विना तंत्रमंत्रैर्विना शब्द-चौर्यात् ।
प्रसिद्धप्रवृद्धप्रबन्धप्रवक्ता,
मदन्यः कविः को विरिञ्चिप्रपञ्चे ॥

अन्तिम श्लोक का भाव यह है कि कवियों की प्रायः चार श्रेणियाँ दिखाई पड़ती हैं। कुछ कवि तो मद्य पान करके, मन्द बुद्धि होने पर भी उन्माद के आवेश में कविता करते हैं, दूसरे कवि त्रिपुर सुन्दरी की उपासना से काव्य-प्रतिभा के अभाव में भी काव्य की रचना करते हैं, तंत्र-मंत्र की सहायता से कविता का प्रणयन करने वाले कवियों की संख्या भी कुछ कम नहीं है और कम नहीं उनकी संख्या भी जो शब्द की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चोरी करके काव्य को लिखने में दक्ष होते हैं। परन्तु ईश्वर ने मुझे छोड़कर क्या किसी ऐसे व्यक्ति को उत्पन्न किया है जो इन चारों प्रकार की सहायता के बिना ही प्रसिद्ध प्रौढ़काव्य-प्रबन्धों का प्रणेता हो ? नहीं। कभी नहीं।

जिस नवद्वीप में रघुनाथ शिरोमणि नव्यन्याय का अध्यापन करते थे उसी शिक्षा-केन्द्र में पण्डित कैलासचन्द्र जी ने न्यायशास्त्र का चूडान्त अध्ययन कर 'शिरोमणि' की उपाधि प्राप्त की थी। ये दोनों ही 'शिरोमणि' उसी प्रसिद्ध विद्यापीठ के प्रकाण्ड विद्वान् थे। केवल अन्तर यही था कि प्रथम ने १६ वीं शताब्दी में वहाँ अध्ययन किया था और दूसरे ने १९ वीं शताब्दी में। दोनों ही नव्य न्याय के अलौकिक प्रतिभा-सम्पन्न, तलस्पर्शी विद्वान् थे।

शिक्षा

न्याय शास्त्र में प्रगाढ़ पाण्डित्य प्राप्त करने के उद्देश्य से जब पं० कैलासचन्द्र जी नवद्वीप पहुँचे तब वहाँ प्रधान नैयायिक **पं० गोलोकनाथ न्यायरत्न** महाशय की तूती बोलती थी। न्यायशास्त्र में उनकी विद्वत्ता विश्वविख्यात थी। अनेक ग्रन्थों का निर्माण करने के कारण उनके यश का सौरभ समस्त भारतवर्ष में व्याप्त हो रहा था। उस समय गोलोकनाथ न्यायरत्न नितान्त वृद्ध थे। अतः उनके चरणों में बैठकर शिरोमणि जी ने अभी केवल चार महीने तक ही अध्ययन किया था कि उनका गोलोकवास हो गया। गुरु की मृत्यु के पश्चात् उदास तथा खिन्न होकर शिरोमणि जी घर लौट आये परन्तु न्याय शास्त्र के समधिक अध्ययन की लालसा इनकी अभी पूरी नहीं हुई थी। अतः अपनी अधूरी विद्या को पूर्ण करने के लिए ये पुनः नवद्वीप गये और अब पण्डित **प्रसन्नचन्द्र तर्करत्न** से अवशिष्ट न्यायशास्त्र के चूडान्त ग्रन्थों का अध्ययन किया। पण्डितों ने वहाँ इनकी परीक्षा ली और इनकी विद्वत्ता से प्रसन्न होकर इन्हें "शिरोमणि" की उपाधि से विभूषित किया।

नवद्वीप में अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् ये अपने गाँव पुनः लौट गये और वहाँ अपनी ओर से एक पाठशाला खोलकर न्याय का अध्यापन करने लगे। परन्तु अपने गाँव में केवल तीन वर्षों तक इन्होंने अध्यापन किया था कि इनके जीवन में दोहरी दुर्घटना घटित हो गई। इनके बड़े भाई— जो अंग्रेजी और फारसी के विद्वान् थे और जो मुन्सिफ की परीक्षा उत्तीर्ण कर अपने पद का कार्य भार ग्रहण करने ही वाले थे—का आकस्मिक तथा असामयिक निधन हो गया। इस भीषण वज्रपात से मर्माहत होकर इनकी माता जी ने गंगा नदी में डूबकर अपने प्राणों का अन्त कर दिया। इस दोहरी दुर्घटना के कारण शिरोमणि जी का मन संसार से उचट गया। ये अत्यन्त उदासीन तथा खिन्न होकर अपने दो शिष्यों के साथ घर से निकल पड़े। ये अपने गाँव के पास ही के गाँव देवीपुर के निवासी राजकृष्ण सिंह—जो अत्यन्त सम्पन्न व्यक्ति थे और पटना में रहते थे—के पास पटना आये परन्तु उनको वहाँ न पाकर उन्हीं की खोज में मुंगेर चले गये। परन्तु वहाँ भी उनसे भेंट न होने पर ये

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्यन्त खिन्न और दुःखी हो गये और अन्त में कहीं ठिकाना न मिलने पर काशी के लिए चल पड़े। जिन अपने दो शिष्यों के साथ शिरोमणि जी काशी पहुँचे उनके नाम थे (१) तारणीचरण न्यायरत्न और (२) वरदाकान्त न्यायरत्न। मुंगेर से काशी तक की यात्रा बड़ी ही कष्टदायक थी। कुछ दूर तक इन्होंने रेल से यात्रा की, फिर नाव से और फिर बाद में बहुत दूर तक तो पैदल ही यात्रा करनी पड़ी। इस प्रकार मार्ग में अनेक कष्टों को झेलते हुए ये अनेक महीनों के पश्चात् काशी पहुँचे।

परन्तु काशी में भी शिरोमणिजी का कोई परिचित व्यक्ति नहीं था। स्थान नया और आदमी सब अपरिचित। जायँ तो कहाँ जायँ? और क्या करें? यही समस्या थी। उसी समय काशी में दशाश्वमेध घाट के पास स्थित चौसट्टी घाट पर स्वामी विशुद्धानन्दजी रहा करते थे जिनका काशी में बड़ा नाम था। शिरोमणिजी ने अपने शिष्यों के साथ सबसे पहले उन्हीं के आश्रम में अपना डेरा डाला। किसी आवश्यक सामान को खरीदने के हेतु जब उनके दोनों शिष्य बाजार की ओर निकले तब उनकी भेंट **पं० वैकुण्ठनाथ न्यायरत्न** से हुई। उन लोगों के काशी आगमन का कारण जानने पर वैकुण्ठनाथजी—जो शिरोमणिजो के सतीर्थ्य थे—आश्रम में गये और उन्होंने शिरोमणिजी से पं० रामदास भट्टाचार्य—जो अगस्तकुण्ड में रहते थे—के घर चलने का आग्रह किया जो उनके पिता के विद्यार्थी थे। कैलाशचन्द्रजी ने वहाँ कुछ दिनों तक निवास किया। परन्तु दूसरे के घर में अधिक समय तक रहना उचित न समझ कर उन्होंने एक किराये का मकान ले लिया और उसी घर में एक पाठशाला खोलकर विद्यार्थियों को न्यायशास्त्र का अध्यापन करने लगे। इनके अध्यापन की शैली बड़ी सुन्दर थी। ये शुष्क विषय को भी अत्यन्त सरस बनाकर पढ़ाते थे। अतः धीरे-धीरे इनकी कीर्ति फैलने लगी और कुछ ही वर्षों में विद्वान् के रूप में इनकी कीर्तिपताका फहराने लगी।

अध्यापन-कार्य करते समय इनका परिचय पं० अच्युतानन्द परिव्राजक से हुआ जो वेदान्तशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे। इन वेदान्तीजी ने शिरोमणिजी से न्यायशास्त्र का अध्ययन प्रारम्भ किया और वे इनसे वेदान्त पढ़ने लगे। इस प्रकार शिरोमणिजी ने न्यायशास्त्र के अतिरिक्त वेदान्त में भी अलौकिक विद्वता प्राप्त की।

इस पाठशाला में पढ़ाते समय ही इनकी विद्वत्ता की कीर्ति चतुर्दिक् फैलने लगी थी। उस समय गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस में म० म० पं० बापूदेव शास्त्री ज्योतिष-विभाग के अध्यक्ष थे। परन्तु इसके अतिरिक्त वे बहुत बड़े गुणग्राही विद्वान् भी थे। कालेज के प्रिंसिपल भी उनका बड़ा आदर-सम्मान करते थे। अतः पं० बापूदेव शास्त्री ने शिरोमणिजी की अगाध विद्वत्ता से प्रभावित होकर तत्कालीन प्रिंसिपल से इनकी प्रशंसा कर शिरोमणिजी को गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज में न्यायशास्त्र के एक रिक्त पद पर प्रतिष्ठापित करा दिया। इस पद पर स्थित पूर्व अध्यापक को केवल पैंतीस (रु० ३५-००) रुपये वेतन के रूप में मिलते थे। परन्तु शिरोमणिजी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की विद्वत्ता के कारण कालेज के तत्कालीन प्रिंसिपल डा० ग्रिफिथ ने सन् १८६८ ई० में रु० ४०) चालीस रुपये मासिक वेतन पर इनकी नियुक्ति कर दी। पहले तो ये केवल तीन महीनों के लिए ही नियुक्त किये गये थे परन्तु इनकी अध्यापन शैली से प्रसन्न होकर इन्हें उस पद स्थायी कर दिया गया।

अध्यापन-कार्य

इस कालेज में कैलासचन्द्र शिरोमणिजी ने लगातार ३९ वर्षों (सन् १८६८ ई० से लेकर १९०७ ई०) तक अध्यापन-कार्य किया। यही समय इनके जीवन का सुवर्णकाल माना जा सकता है। इस कालेज में अध्यापन करते समय इन्होंने अनन्त कीर्ति प्राप्त की। आपकी यशःसुगन्धि चारों ओर पुष्प की भाँति फैल गयी। आपकी विद्वत्ता के फल स्वरूप ब्रिटिश सरकार ने सन् १८९६ ई० में आपको 'महामहोपाध्याय' की उपाधि से विभूषित किया।

साधारणतया सरकारी कर्मचारी उन दिनों ५५ वर्ष की आयु में अवकाश प्राप्त किया करते थे परन्तु डा० वेनिस जो इनके विद्यार्थी भी थे—इन्हें अवकाश ग्रहण करने की अवधि बीत जाने पर भी इन्हें अवकाश प्रदान नहीं किया। अतः ये ७७ वर्ष के वय तक कालेज में अध्यापन का कार्य करते रहे। जब ये कालेज तक पैदल चल कर जाने में असमर्थ हो गये, तब इन्होंने पालकी में बैठकर कालेज जाना प्रारम्भ किया था। सच तो यह है कि डा० वेनिस शिरोमणि जी की विद्वता से अत्यन्त प्रभावित थे। अतः वे किसी भी शर्त पर संस्कृत कालेज से इन्हें मुक्त करना नहीं चाहते थे। वे यह जानते थे कि शिरोमणि जी के कारण ही इस कालेज का इतना गौरव है। अतः इनके बार-बार निवेदन करने पर भी इन्होंने इन्हें अवकाश ग्रहण नहीं करने दिया।

सन् १९०४ ई० की घटना है जब शिरोमणि जी की आयु उस समय ७५ वर्ष की थी और ये उस समय भी इस कालेज में अध्यापक थे। इन्हीं दिनों भारत का सुप्रसिद्ध वाइसराय लार्ड कर्जन काशी आया था और उसने गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज में भी पधारने की कृपा की थी। कालेज में शिरोमणि जी जैसे वृद्ध-शिरोमणि अध्यापक को देखकर उसे बड़ा ही आश्चर्य हुआ और उसने तत्कालीन लेफ्टिनेण्ट गवर्नर लाटूश साहब से पूछा कि यह पण्डित अभी तक 'रिटायर' क्यों नहीं हुआ। लाटूश साहब ने तत्कालीन प्रिन्सिपल डा० वेनिस से इस विषय में जानकारी चाही। डा० वेनिस—जो संस्कृत के विद्वानों का बड़ा सन्मान करते थे—ने उन्हें बतलाया कि "ये पण्डित जी अगाध विद्वान् हैं। इनसे हमारे कालेज की शोभा है। इसीलिए मेरी प्रार्थना करने पर ही ये आज तक अध्यापन-कार्य कर रहे हैं।" लाटूश साहब इस उत्तर से अत्यन्त प्रसन्न हुए। और समुचित उत्तर देकर इन्होंने लार्ड कर्जन को संतुष्ट किया।

इस प्रकार लगभग ४० वर्षों तक अध्यापन करते हुए शिरोमणि जी ने अनेक सुयोग्य शिष्यों को पैदा किया। अन्त में सन् १९०७ ई० में इन्होंने ७७ वर्ष के वय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में अवकाश प्राप्त किया और इसके एक ही वर्ष बाद सन् १९०८ ई० में ७८ वर्ष की परिपक्व अवस्था में इनका काशीवास हो गया।

परिवार— पं० कैलाशचन्द्र शिरोमणि परिवार के विषय में बड़े सुखी थे। इनके पाँच पुत्र तथा एक लड़की थी। पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) पं० राजवल्लभ भट्टाचार्य, (२) मुकुन्द वल्लभ भट्टाचार्य, (३) आशुतोष भट्टाचार्य, (४) सदानन्द भट्टाचार्य और (५) नित्यानन्द भट्टाचार्य। इनमें से प्रथम पुत्र – राजवल्लभ भट्टाचार्य तो शिरोमणिजी के जीवन काल में ही काल-कवलित हो गये थे परन्तु शेष चार पुत्र इनकी मृत्यु के समय विराजमान थे। आजकल इनके तीन पौत्र जीवित हैं। इन लोगों ने काशी में जंगमबाड़ी मुहल्ले में 'जागेश्वर' नामक प्रेस खोल रखा है। ये लोग इसी प्रेस का संचालन कर अपनी जीविका का अर्जन तथा विद्या का प्रचार-प्रसार करते हैं।

शिष्य मण्डली—शिरोमणिजी के शिष्यों में चार प्रमुख शिष्य हुए जिनके नाम ये हैं- (१) म० म० प्रमथनाथ तर्कभूषण (२) म० म० आदित्यराम भट्टाचार्य (३) म० म० पण्डित वामाचरण भट्टाचार्य और (४) म० म० लक्ष्मण शास्त्री द्राविड़। इनमें प्रथम दो विद्वानों का कार्यक्षेत्र काशी से बाहर रहा। प्रमथनाथ तर्कभूषणजो कलकत्ता संस्कृत कालेज के प्रतिष्ठित अध्यापक रहे और म० म० आदित्यराम भट्टाचार्य इलाहाबाद के म्योर सेण्ट्रल कालेज में संस्कृत के प्रोफेसर थे। परन्तु अन्तिम दोनों विद्वानों का कार्यक्षेत्र काशी ही था। इन चारो विद्वानों का विस्तृत विवरण अन्यत्र दिया जायेगा।

इन चार प्रधान शिष्यों के अतिरिक्त शिरोमणिजी के अन्य निम्नांकित शिष्य थे—(१) स्वामी मनीष्यानन्द, (२) म० म० गुरुचरण तर्कदर्शन तीर्थ, (३) वीर शैव मठ के अधिपति पं० शिवलिङ्ग स्वामी, (४) यादवेश्वर तर्करत्न (५) सुरेन्द्र लाल गोस्वामी, (६) म० म० विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी, (७) पं० रामशास्त्री भगवताचार्य और (८) म० म० डा० सतीशचन्द्र विद्याभूषण, जो आगे चलकर संस्कृत कालेज, कलकत्ता के प्रिंसिपल हुए और जिनका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लाजिक' अपनी विद्वत्ता में अद्वितीय माना जाता है।

ग्रन्थ रचना—पं० कैलासचन्द्र शिरोमणि के द्वारा ग्रन्थ रचना का कुछ विशेष पता नहीं चलता। ऐसा सुना जाता है कि इन्होंने न्यायभाष्य पर एक टीका लिखी थी जो दुर्भाग्यवश आज अप्राप्त है। इन्होंने देवी और देवताओं के विषय में कुछ स्तोत्र भी लिखा था। डा० वेनिस जब इनसे न्याय शास्त्र का अध्ययन कर रहे थे तब उनकी सुविधा के लिए इन्होंने न्याय शास्त्र के जटिल विषयों का सरल संस्कृत वाणी में प्रकाशित करने वाले एक प्रबन्ध की भी रचना की थी जिससे इनके वैदुष्य का पता चलता है। किसी कठिन विषय को सरल रीति से प्रतिपादित करने में इन्हें पटुता प्राप्त थी। यह भी इस निबन्ध के अवलोकन करने से ज्ञात होता है। आलोचकों की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि में यह प्रबन्ध शिरोमणि जी की सफल रचना मानी जाती हैं इसके विषय में यह प्रशंसा उचित ही है।

"दुर्बोधान्बहुलप्रकारजटिलान् नैयायिकानां वचो-
विन्यासान् गमयत्यलं झटिति तद्बोधं च सम्पादयन्।
प्रौढिं कामपि दर्शयत्यनुपमां शास्त्रे श्रमं निस्तुले,
श्रीमत् तार्किकपुंगवस्य सततं कैलासचन्द्रात्मनः॥

संस्मरण—पं० कैलासचन्द्र शिरोमणि बड़े ही आस्तिक तथा धर्मभीरु पुरुष थे। ऐसा सुना जाता है कि एक बार डा० एनीबेसेण्ट ने अपने पति के श्राद्ध दिवस पर शिरोमणि जी को कुछ अन्न तथा द्रव्य दान रूप में भेजा था। परन्तु शिरोमणि जी इतने धर्मभीरु थे कि इन्होंने उस सामग्री का स्पर्श तक नहीं किया और इस बात की तनिक भी चिन्ता न करके कि इस कार्य से डा० बेसेण्ट क्रुद्ध होंगी—इन्होंने उसे वापस लौटा दिया। परन्तु एक अंग्रेज महिला ने मुझे दान देने का संकल्प किया था इस बात की कल्पना कर संकल्प दोष से बचने के लिए इन्होंने गंगा-स्नान, जप आदि अनेक प्रायश्चित्त किये। इसके पश्चात् ही इन्होंने अपने को पाप या दोष से मुक्त समझा। ऐसी थी उनकी विकट धार्मिकता तथा धर्मभीरुता।

विद्वत्ता—पं० कैलासचन्द्र अलौकिक प्रतिभासम्पन्न विद्वान् थे। इनके वैदुष्य की ख्याति इतनी अधिक थी कि काशी में जहाँ भी शास्त्रार्थ होता था उसमें ये मध्यस्थ के आसन को सुशोभित करते थे। काशी में म० म० पं० दामोदर शास्त्री का मैथिल विद्वान् पं० बच्चा झा से जो अलौकिक तथा ऐतिहासिक शास्त्रार्थ हुआ उसमें पं० शिवकुमार शास्त्री के साथ शिरोमणि जी भी मध्यस्थ थे। जब यह शास्त्रार्थ अन्तिम तथा उच्चकोटि में पहुँच गया था तब भी शिरोमणि जी अन्त तक बच्चा झा के तर्कों को बड़ी शान्तिपूर्वक सुनते रहे। व्याकरण और न्याय शास्त्र यही शास्त्रार्थ के दो प्रधान विषय हैं। अतः तर्कशास्त्र में जहाँ भी काशी में शास्त्रार्थ होता था वहाँ ये मध्यस्थता के लिए बड़े आदर से आमंत्रित किये जाते थे। काशी में इनके द्वारा न्याय के अध्ययन-अध्यापन का बड़ा प्रचार किया गया। सच तो यह है कि इस नगरी में न्याय की प्रतिष्ठा का श्रेय शिरोमणि जी को प्राप्त है। इन्होंने लगभग ४० वर्षों तक न्याय शास्त्र का अध्यापन किया और इन दीर्घ वर्षों में सैकड़ों सुयोग्य शिष्यों को पैदा किया जिनकी चर्चा पिछले पृष्ठों में की जा चुकी है। शिरोमणि जी अपने समय के अलौकिक विद्वान् थे।

इनकी मृत्यु के बाद काशी की जो दशा हुई उसका वर्णन सुनिये—

विद्वत्कोककुलं सशोकमभवत्; दुःखान्धकारोच्चयः
सर्वत्रैव कृतास्पदः, परपदं कैलासचन्द्रे गते।
तर्कव्याकृतिकौशलं निरुपमं तत्प्राति भोट्टङ्कनं।
धर्मे सा दृढ़ता च सर्वमगमत्, तेनैव साकं किमु॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके व्यक्तित्व का परिचायक यह श्लोक प्रस्तुत किया जाता है।

"वङ्गेषु लब्धजन्मा; शिवपुरि सम्प्राप्तभूरितरशर्मा।
कैलासचन्द्रशर्मा; जयति शिवात्मा स सत्कर्मा॥"

(ख) शिरोमणि जी के सहयोगी

श्री राखालदास न्यायरत्न

(आस्पद—भट्टाचार्य; उपाधि—महामहोपाध्याय)

पण्डित राखालदास न्यायरत्न गत शताब्दी के बंगाली नैयायिकों में अग्रगण्य स्थान रखते थे। विद्यादान की दृष्टि से तथा तार्किक ग्रन्थों के निर्माण के कारण इनकी विपुल कीर्ति बंगाल की चहारदीवारी को पार करके समस्त उत्तरी भारत को अपने में समेटे हुई थीं। अधिकांश जीवन इन्होंने अपने ही नगर में स्थापित अपनी चतुष्पाठी में ही अध्ययन अध्यापन में बिताया। परन्तु अपने जीवन के अन्तिम चरण में ये भूत-भावन विश्वनाथ की नगरी काशी में ही अध्ययन अध्यापन कर काशी के छात्रों को भी न्यायशास्त्र के उच्चस्तरीय ग्रन्थों का अध्यापन कर अपनी निर्मल कीर्ति को और भी विस्तारित किया। फलतः अध्ययन काल में राखालदासजी का काशी से सम्पर्क नहीं था परन्तु अध्यापन काल के अन्तिम चरण में यह सम्पर्क हुआ और धीरे-धीरे गाढ़तर होता गया। इसीलिये हम इनको काशी की पाण्डित्यपरम्परा का प्रसारक तथा प्रचारक विद्वान् मानते हैं और इसीलिये उनका संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

बंगाल के चौबीस परगना जिला के अन्तर्गत प्रसिद्ध नगर भट्टपल्ली में १२३६ बंगाब्द के (= १८२९ ई०) भाद्रपद में राखालदास महाशय ने जन्म ग्रहण किया था। ये पाश्चात्य वैदिक श्रेणी के ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम पं० सीतानाथ विद्याभूषण तथा माता का नाम 'निर्मल' देवी था। इनके पिता स्मृतिशास्त्र के प्रकाण्ड पंडित थे और इस शास्त्र का विधिवत् अध्यापन करते थे। इनका कुटुम्ब विद्या के लिये जितना प्रसिद्ध था, उतना ही प्रसिद्ध आध्यात्मिक साधना के लिये भी था। इनके नवम पूर्व पुरुष **'नारायण ठाकुर'** नाम से प्रसिद्ध साधक थे। इस प्रकार साधना और विद्या दोनों का मणिकांचन योग राखालदास के जीवन में भी परिस्फुरित हुआ। विद्या उपार्जन कर जितनी कीर्ति इन्होंने प्राप्त की, उतनी ही इन्होंने साधना के क्षेत्र में भी उपलब्ध की।

पाँच वर्ष के वय में इनका अक्षरारम्भ कराया गया। अक्षरारम्भ इन्होंने श्री दुर्गा के नाम से किया तथा जीवनपर्यन्त इस नाम को भूल नहीं सके। उस समय भट्टपल्ली में सबसे प्रधान वैयाकरण तथा आलंकारिक थे—**जयराम सार्वभौम** नामक पण्डित। उन्हीं के निकट इन्होंने सुपद्म व्याकरण, काव्य तथा अलंकार ग्रन्थ का विधिवत् अध्ययन आरम्भ किया। उन्नीस वर्ष में इन्होंने न्यायशास्त्र का अध्ययन आरम्भ किया। इनके

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरु थे भट्टपल्ली के ही प्रसिद्ध नैयायिक पं० **'यदुनाथ सार्वभौम'** महाशय। थोड़े ही दिनों में इनकी प्रतिभा न्यायशास्त्र के अध्ययन में चमक उठी और सुयोग्य नैयायिक छात्र होने की कीर्ति उसी समय भट्टपल्ली में चारो तरफ फैल गई। उस समय भट्टपल्ली में सर्वश्रेष्ठ नैयायिक थे—पं० **हलधरचक्र चूडामणि**। वे वृद्ध हो चले थे और उनके अनन्तर भट्टपल्ली में सबसे श्रेष्ठ नैयायिक कौन होगा? इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने राखालदास का ही नाम लिया, यद्यपि उस समय ये विशेष 'व्याप्ति' का ही अध्ययन कर रहे थे। वे छात्र ही थे। उसी अवस्था में उन्होंने अपनी नैयायिक पटुता का ऐसा उज्ज्वल दृष्टान्त प्रस्तुत किया कि तर्क चूडामणिजी को हठात् कहना पड़ा कि मेरे अनन्तर यदि कोई पल्ली की कीर्ति को स्थायी बनायेगा, तो यह छात्र ही बनायेगा।

न्याय के अध्ययन में इनकी प्रवृत्ति, अनुरक्ति इतनी गाढ़ थी कि चतुष्पाठी में ये दस-ग्यारह बजे रात तक अध्ययन करके अपने निवास स्थान पर लौटते थे—इतना था इनका अनुराग, इतनी थी इनकी निष्ठा न्यायशास्त्र के पढ़ने में। छात्रावस्था में ही न्यायशास्त्र के अध्यापकों के साथ न्याय के गम्भीर तत्त्वों के ऊपर ये विमर्श तथा विचार किया करते थे। नवद्वीप के **'गोकुलनाथ न्यायरत्न'** के साथ 'पक्षता' के विषय में विचार करके इन्होंने प्रचुर प्रशंसा प्राप्त की थी। उसी समय इन्होंने अपने पिता से स्मृतिशास्त्र का अध्ययन किया। उन्तीस वर्ष के वय में उन्होंने न्यायशास्त्र का अध्ययन समाप्त किया और अध्यापक से 'न्यायरत्न' की उपाधि प्राप्त की जो इनके वैदुष्य के कारण गुरुजी ने इन्हें प्रसन्न होकर दिया।

अध्यापन

अध्यापन के लिये इन्हें बाहर नहीं जाना पड़ा। इन्होंने घर पर ही स्वतन्त्र रूप से एक चतुष्पाठी (पाठशाला) की स्थापना की। इनकी कीर्ति सुनकर दूर-दूर के छात्र न्यायशास्त्र पढ़ने के लिये आने लगे। न्यायरत्न महाशय की कीर्ति इस विषय में इतनी बढ़ी कि नदिया (नवद्वीप) के यदुनाथ सार्वभौम महाशय के अनेक छात्र समय-समय पर आकर इनसे शिक्षा ग्रहण करने लगे। इस ख्याति का फल था कि उस युग के अद्वितीय नैयायिक, कलकत्ता संस्कृत कालेज के अध्यापक 'जयनारायण तर्कपंचानन' तथा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे उत्कृष्ट विद्वान इनके चतुष्पाठी के पोषक बन गये जिससे छात्रों की संख्या विशेष बढ़ी और न्यायरत्न महाशय की कीर्ति उत्तर प्रदेश में भी विशेष फैल गई।

काशी आगमन

बिहार में हथुवा के महाराजा कृष्णप्रताप साही पण्डितों के बड़े अनुरागी तथा प्रशंसक थे। वे लक्ष्मीपति होने के साथ ही साथ सरस्वती के सेवकों के विशेष भक्त भी थे। काशी के अनेक मान्य विद्वानों को वह मासिक वृत्ति देकर अपनी गुणग्राहिता का परिचय देते थे। उन्होंने ही राखालदासजी को निमन्त्रण देकर बुलाया, उनके

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदुष्य का अभिनन्दन किया और उनसे पूछा क्या आपको काशी में रहने की अभिलाषा है ? न्यायरत्नजी ने उत्तर दिया—अभिलाषा तो बड़ी है, काशी में आने की मेरी प्रबल इच्छा है परन्तु आर्थिक संकट के कारण यह इच्छा अब तक पूर्ण नहीं हुई है। महाराजा ने उत्तर सुनते ही कहा कि मैं आपकी आर्थिक समस्या का समाधान कर दूंगा। आप प्रेम से आइए काशीवास कीजिये। न्यायरत्नजी ने इसे स्वीकार किया। वृद्ध हो गये थे। उस समय उनका वय चौसठ वर्ष हो गया था। तो भी उन्होंने काशीवास स्वीकार किया। ये १३६० बंगाब्द (१८९३ ई०) के फाल्गुन मास में काशी आये और जीवन के अन्तिम २१ वर्षों को काशी में ही अध्ययन, अध्यापन, पूजन, अर्चन, मनन तथा निविध्यासन में व्यतीत किया। काशी में इनके अनेक शिष्य हुए जिन्होंने न्यायशास्त्र में प्रौढि प्राप्त कर विशेष ख्याति उपलब्ध की। ऐसे शिष्यों में अग्रगण्य थे - पण्डित **दामोदरलाल गोस्वामी** जो उत्कृष्ट साहित्यिक होने के साथ प्रकृष्ट नैयायिक भी थे। साहित्य का अध्ययन उन्होंने महामहोपाध्याय गंगाधर शास्त्री से किया और न्यायशास्त्र का अध्ययन इन्हीं न्यायरत्नजी से किया। उन्होंने स्वयं लिखा है कि अभी 'अनुमान खण्ड' का कुछ अंश शेष ही था कि एक दुर्घटना ने अध्ययन की समाप्ति ही कर दी। न्यायरत्नजी का सुयोग्य पुत्र उसी समय दिवंगत हो गया। इस घटना से राखालदासजी इतने दुःखी हुए, इतने मर्माहत हुए कि वे कुछ दिनों के लिए काशी छोड़कर घर लौट गये। फिर ये लौटकर आये और काशी में रहकर भजन-पूजन में समय बिताने लगे। १३३१ बंगाब्द (= १९१४ ई०) के अगहन मास में काशी में ही इन्होंने परलोक गमन किया था। उस समय वे काफी वृद्ध थे और आयु थी ८५ वर्ष की।

ग्रन्थ रचना

१८८७ ई० में राखालदास न्यायरत्न से महामहोपाध्याय की उपाधि प्राप्त हुई थी। ये धुरधन्धर पण्डित होने के साथ ही साथ सुकवि थे। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं :-

(१) तत्त्वसार, (२) अद्वैतवाद–खण्डन, (३) गदाधर न्यूनतावाद, (४) शक्तिवाद-रहस्य, (५) दीधीतिकृत्–न्यूनतावाद, (६) मायावाद–निरास, (७) विविध विचार, (८) कवितावली और (९) विधवोद्वाह-खण्डनम्।

इन ग्रन्थों के अनुशीलन से लेखक की न्यायशास्त्र में चातुरी तथा वैदुषी का पर्याप्त परिचय मिलता है। न्यायरत्न जी बड़े ही प्रौढ़ तार्किक तथा काल्पनिक थे। वे शास्त्रार्थ में कल्पना करने में अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं रखते थे। 'कल्पना' से तात्पर्य है प्रतिभा के बल पर नई युक्तियों की अवतारणा करना। इस विषय में उनकी प्रतिभा बड़ी ही विलक्षण मानी जाती थी। इसी के बल पर उन्होंने गदाधर तथा रघुनाथ शिरोमणि के सिद्धान्तों में न्यूनता तथा त्रुटि दिखलाने का साहसिक प्रयास किया है। शिरोमणि तथा गदाधर दोनों ही नव्यन्याय के उज्ज्वल प्रतिभासम्पन्न विद्वान् ठहरे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके ग्रन्थों का अनुशीलन कर, उनके मर्म का समझना ही टेढ़ी खीर है परन्तु राखालदास जी ने अपनी तार्किक बुद्धि से ऐसा ही चमत्कार इन ग्रन्थों द्वारा दिखलाया है। फलतः इन ग्रन्थों में इनकी विलक्षण कल्पना शक्ति का, विशाल युक्तियों के विन्यास का तथा प्रखर तर्क का साक्षात्कार पदे-पदे प्राप्त होता है। ग्रन्थों में मौलिकता का साम्राज्य विद्यमान है। और इनमें प्राचीन आचार्यों के उक्तिविन्यास का परिचय पूर्ण रूप से प्राप्त होता है।

एक विमल संस्मरण

राखालदास जी का परिवार बड़ा ही विद्वत्ता-सम्पन्न परिवार था। इनके अनुज **पं० ताराचरण तर्करत्न** काशिराज ईश्वरीनारायण सिंह के प्रधान पण्डित थे। उन्होंने दयानन्द सरस्वती से भी वेद विषय में शास्त्रार्थ किया था। उनके द्वारा निर्मित ग्रन्थों का परिचय पहले ही दिया जा चुका है। महामहोपाध्याय पं० प्रमथनाथ तर्कभूषण ताराचरण जी के पुत्र होने के कारण इनके छात्र भी थे। दोनों भ्राताओं में खूब पटती थी और वे आपस में शास्त्रविषयक हास और परिहास करने में कभी भी नहीं चूकते थे। सुना जाता है कि ताराचरण जी अपने अग्रज से कहा करते थे—"दादा, आपने अपनी प्रज्ञाभूमि को तर्क के कुदाल से परिष्कृत कर खूब उर्वर बना दिया है, परन्तु आपने उसमें वेदान्तरूपी बीज को अभी तक नहीं डाला। इसलिए वह भूमि आज भी वन्ध्या पड़ी हुई है"। राखालदास जी अपने अनुज के इन वचनों को सुनकर बुरा नहीं मानते थे। प्रत्युत मुस्करा कर कहा करते थे "भैया, वह दिन भी आने वाला है जब इस प्रज्ञाभूमि में बीजारोपण का महोत्सव होगा। परन्तु मेरी दृष्टि में वह दिन अभी कुछ दूर है"।

आखिर वह दिन आ ही गया जब न्यायरत्न जी के शास्त्रीय जीवन ने एक विशेष मोड़ ले ली। यह घटना इस प्रकार बतलाई जाती है :—

पं० राखालदास जी केदार घाट के पास ही निवास करते थे और उसी महल्ले के पास ही एक दूसरे विद्वान् पं० **सुब्रह्मण्य शास्त्री** भी रहते थे। न्यायरत्न जी ठनाठन नैयायिक थे। उधर शास्त्री जी प्रगाढ़ अद्वैत वेदान्ती थे। दोनों की एक शास्त्रार्थ में ठन गई। सुब्रह्मण्य शास्त्री ने (जो काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० राजेश्वर शास्त्री द्राविड़ के मातामह थे) अद्वैत विषय पर अपना पूर्वपक्ष बड़े ऊहापोह के साथ रखा। राखालदास जी अलौकिक 'कल्पक' तो थे ही। उन्होंने उसके खण्डन में नवीन युक्तियों का व्यूह ही खड़ा कर दिया। शास्त्रार्थ बहुत देर तक चलता रहा। बहुत देर के बाद सुब्रह्मण्य शास्त्री निरुत्तर होकर चुप हो गये। इनके फीके चेहरे को ही देखकर किसी के समझने में देर नहीं लगी कि शास्त्री जी इस घटना से मर्माहत हैं और हृदय में बड़े ही पीड़ित हैं। सभा का विसर्जन हुआ। दोनों पण्डित अपने-अपने घर चले। रास्ते में राखालदास जी ने सुब्रह्मण्य शास्त्री से कहा—शास्त्री जी, मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ। मुझे इस बात का बड़ा दुःख है कि मैंने आपको इस सभा में अपमानित किया। आप इसे क्षमा करें। सुब्रह्मण्य शास्त्री ने उत्तर दिया—"आपने मेरा क्या अपमान किया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं तो कोई चीज नहीं हूँ। आपने तो उन आचार्यों का तथा शास्त्रों का अपमान किया जिनके सिद्धान्त का मैं प्रतिपादन कर रहा था। आपने वेद का, उपनिषदों का तथा शंकराचार्य का अपमान किया जिनके प्रबल मत का प्रतिपादन मैं अपनी फीकी वाणी से कर रहा था। मुझे इस बात का सचमुच कष्ट है कि आपने इन शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन नहीं किया है। यदि किये होते, एवं उनके मर्म समझने का प्रयास करते तो यह प्रसंग ही नहीं आता। आप अधिक नहीं केवल वेदान्त के चतुःसूत्री के अध्ययन करके देखें कि आपका कथन कितना निःसार तथा प्रमाणहीन है।"

पं० राखालदास जी ने बात स्वीकार कर ली। शास्त्री जी ने शांकरभाष्य की पोथी उन्हें स्वयं लाकर दी और उनसे आग्रह किया कि आप इसका अध्ययन कुछ अवश्य करें तथा इसकी प्रतिक्रिया बतावें। न्यायरत्न जी रात भर ब्रह्मसूत्र का अध्ययन करते रहे। प्रतिभा-सम्पन्न विद्वान तो वे थे ही। कल्पना के आलोक में विचरण करने वाले वे जीव तो थे ही। शांकरभाष्य के अध्ययन करने से उनमें बड़ा परिवर्तन हुआ। प्रातःकाल होते ही वे सुब्रह्मण्यम शास्त्री की यज्ञशाला में पहुँचे जहाँ वे अग्निहोत्र कर रहे थे। उन्होंने शास्त्री जी को साष्टांग प्रणाम किया। वेदान्त की पुस्तक लौटा दी और विनीत भावों से अपनी प्रतिक्रिया प्रकट की—सचमुच मैं गलती पर था। उपनिषद् तथा वेदान्त का परिनिष्ठित मत अद्वैतवाद ही है। आज से मैं इसी सिद्धान्त का समर्थक हुआ। राखालदासजी अब अधिक दिन तक नहीं जीए, परन्तु जितने दिनों तक जीते रहे अद्वैत तत्त्व का चिन्तन तथा मनन किया करते थे।

सचमुच राखालदासजी ने अपनी उर्वर प्रज्ञा-भूमि में वेदान्त के बीज का वपन किया और अद्वैत तत्त्व के मनन करते हुए उन्होंने काशी में ही शिव-सायुज्य प्राप्त किया।[1]

कैलासचन्द्र शिरोमणिजी तथा राखालदासजी काशी में दोनों समसामयिक अध्यापक थे। दोनों घनिष्ठ मित्र थे। क्यों न हो? दोनों ही तो नवद्वीप विद्यापीठ के विद्यागरिष्ठ स्नातक थे—नव्यन्याय के पारगामी पण्डित तथा शास्त्रार्थ में वाक्दूक विद्वान्। काशीनरेश ईश्वरीनारायण सिंह की सभा में कभी-कभी दोनों एक साथ उपस्थित होते थे तो काशीनरेश के लिए प्रथम माल्यार्पण किसे करें? यह समस्या का विषय बन जाता था। काशी में अनेक वर्षों तक अध्यापन करने की दृष्टि से वे शिरोमणिजी को जब माला पहिनाते, तो वे इसका प्रतिवाद करते कि हमारे अग्रजतुल्य राखालदासजी प्रथम पूजनीय एवं वन्दनीय हैं। परन्तु राखालदासजी इस सत्कार को स्वीकारने से पराङ्मुख होते। दोनों का शास्त्रीय हास-परिहास देर तक चलता था। इन दोनों आचार्यों की महनीय विशिष्टता थी कि दोनों ने काशी में नव्यन्याय की शिक्षा का प्रचुर प्रचार किया और गण्यमान्य शिष्यों को तैयार कर न्याय विद्या की प्रगति में योगदान दिया।

●

१. यह संस्मरण लेखक को हिन्दू विश्वविद्यालय में मीमांसा के अध्यापक पंडित सुब्रह्मण्य शास्त्री से प्राप्त हुआ जिसके लिए वह उनका विशेष आभारी है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२

पण्डित राममिश्र शास्त्री

(आस्पद—मिश्र, उपाधि—महामहोपाध्याय)

विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के प्रवीण पारखी, भारतीय दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान् तथा संस्कृत गद्यरचना के अलौकिक रचयिता महामहोपाध्याय पण्डित राममिश्र शास्त्री अपने युग के काशी के दार्शनिक विद्वानों में मूर्धन्य थे। ये राजपूताने के अन्तर्गत अलवर राज्य के निवासी थे। पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ने अपने एक लेख में इनके लोकातीत वैदुष्य का निर्देश करते हुए इनके अलवर के दोसौत ग्राम में उत्पन्न होने का निर्देश किया है। इनका जन्म सन् १८५१ ई० में हुआ था। ये गौड़ ब्राह्मण थे। आपकी शिक्षा-दीक्षा का विशेष परिचय नहीं मिलता। न तो कोई स्थविर पण्डित ही मुझे मिल सका जो इनके आरम्भिक जीवन की घटनाओं का यथेष्ट जानकार हो, और न मुझे कोई लिखित प्रमाण ही मिल सका जिससे इनके भविष्य, व्यक्तित्व तथा वैदुष्य का कुछ आभास ही मिल जाता। अनुमान यही होता है कि अलवर राज के किसी विशिष्ट पण्डित से इन्होंने भारतीय दर्शन का विधिवत् अध्ययन किया था। इनके शिक्षण की परिणति काशी के पण्डितों से विद्याध्ययन करने के बाद उत्कृष्ट पाण्डित्य से मण्डित होने में हुई। ये संस्कृत के षड्दर्शनों के मर्मज्ञ विद्वान् थे, विशेषकर रामानुज सम्प्रदाय के चूडान्त ग्रन्थों के ये परम मेधावी तथा तलस्पर्शी विचक्षण थे। संस्कृत के अतिरिक्त इन्होंने अंग्रेजी भाषा का भी अध्ययन किया और उसमें अच्छी प्रवीणता प्राप्त की थी। ये कहा करते थे कि मैंने केवल सत्तर दिनों में अंग्रजी का पूरा ज्ञान प्राप्त कर लिया। इस विदेशी भाषा का ज्ञान इनके लिए विशेष लाभकारी सिद्ध हुआ—इसका वर्णन आगे किया जाएगा।

काशिराजकीय पाठशाला में नियुक्ति से पूर्व ये यहाँ किस पाठशाला में अध्यापन कार्य करते थे—इस विषय का भी संकेत नहीं मिलता। गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज में इनकी नियुक्ति १८८० ई० में हुई जहाँ ये एक सामान्य अध्यापक से बढ़ते-बढ़ते उस महाविद्यालय के प्रथम अध्यापक (फर्स्ट प्रोफेसर) के पद पर प्रतिष्ठित हो गये। वहाँ अध्यापन कार्य करते हुए इन्होंने पूरे २२ वर्ष का सुदीर्घ काल व्यतीत किया और सन् १८८० ई० से १९०२ ई० तक यावज्जीवन उसी पद पर बने रहे। इनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर केन्द्रीय सरकार ने इन्हें 'महामहोपाध्याय' की महनीय उपाधि से मण्डित किया। संस्कृत कालेज के अध्यापन काल में ये कालेज के अध्यक्ष डा० थीबो साहब के घनिष्ठ सम्पर्क में आये। उन दिनों थीबो साहब डा० मैक्समूलर द्वारा सम्पादित प्रसिद्ध ग्रन्थमाला 'सैक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट' के लिए रामानुज द्वारा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रणीत श्रीभाष्य का अंग्रेजी अनुवाद कर रहे थे। श्रीभाष्य सामान्य भाष्य न होकर विद्वानों द्वारा गम्य एक दुरूह भाष्य है—कठिन तथा दुर्बोध, जिसकी दुर्भेद्य ग्रन्थियों को सुलझाने के लिए उपनिषदों तथा तर्कशास्त्र के गम्भीर अध्ययन की अपेक्षा होती है। सुनते हैं डा० थीबो ने राममिश्र शास्त्री से इस भाष्य का पुङ्खानुपुङ्ख अध्ययन किया था और इसीलिए वे इस दुर्बोध्य भाष्य के मर्म के उद्घाटन में इतने कृतकार्य हुए। डा० थीबो का यह अंग्रेजी अनुवाद आज भी सर्वत्र प्रशंसित महनीय कृति माना जाता है।

पण्डित राममिश्र जी के अलौकिक पाण्डित्य तथा प्रत्युत्पन्नमतित्व के विषय में एक मनोरंजक संस्मरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। काशी में वायसराय—बड़े लाट (सम्भवतः लार्ड रिपन) एक बार पधारे थे। उसी यात्रा में संस्कृत कालेज के पण्डितों से उनकी भेंट का भी कार्यक्रम नियत किया गया था। वे कालेज के प्रिन्सिपल डाक्टर थीबो के साथ पण्डितों की कक्षा में स्वयं पधारे और उनसे बात-चीत की। उस समय रामशास्त्री जी कालेज के मूर्धन्य अध्यापक थे—प्रथमाध्यापक फर्स्ट प्रोफेसर। लार्ड रिपन अन्य पण्डितों से भेंट करता हुआ एकदम अन्त में इनकी कक्षा में जब पहुँचा तब वहाँ केवल एक ही छात्र को देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने शास्त्री जी से इसका कारण पूछा। शास्त्री जी ने तपाक से अंग्रेजी में उत्तर दिया—मेरी कक्षा सबसे ऊँची कक्षा है। यहाँ आने से पूर्व नीचे की सब कक्षाओं में उत्तीर्ण होना नितान्त आवश्यक होता है। जब छात्र उन सब कक्षाओं में उत्तीर्ण होकर अपने वैदुष्य का परिचय देता है, तभी वह मेरी कक्षा में आ सकता है। इसीलिए आप केवल एक ही छात्र को मेरी कक्षा में देख रहे हैं। यह इस पूरे कालेज में सबसे श्रेष्ठ छात्र है।" लाट साहब को यह उत्तर बहुत पसन्द आया। उसने अपनी प्रसन्नता शब्दों में प्रकट करने के अतिरिक्त कार्यतः भी प्रकट की। उसने पण्डितजी को काशीनरेश के नदेसर पैलेस में बुलाया तथा उनसे भारतीयदर्शन की उपयोगिता के विषय में प्रश्न किया। पण्डित जी का विवेचन उसे बहुत ही पसन्द आया और उसी दिन कलकत्ता लौटते समय इन्हें अपनी कार पर मुगलसराय तक लेता गया और गाड़ी आने पर उन्हें सम्मान के साथ बिदा किया। कलकत्ता जाकर उसने अपना आभार प्रदर्शन करते हुए पण्डितजी को 'माई डीयर पण्डितजी' शब्द से सम्बोधित किया था। शास्त्रीजी ने इसे अपना बड़ा सम्मान माना और इस घटना के विषय में अन्य पण्डितों से समय-समय पर ये जोर देकर कहा करते थे कि देखा आप लोगों ने, लाट साहब ने मुझे 'माई डीयर पण्डितजी' इस सम्मानसूचक सम्बोधन से सम्बोधित किया है। क्या यह कम गौरव की बात है कि देश का सबसे बड़ा सरकारी शासक कालेज के एक पण्डित के लिए इन महनीय शब्दों का प्रयोग करे। श्रीराम मिश्र शास्त्रीजी अपने अलौकिक वैदुष्य तथा असामान्य लोक-चातुरी के कारण वास्तव में एक महासम्मानीय व्यक्ति थे।[1]

---

१. यह संस्मरण मुझे राम मिश्र शास्त्रीजी के प्रधान शिष्य श्रीराम शास्त्री भागवता-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० राम मिश्र के पुत्र पं० केशव मिश्र भी पुराण, धर्मशास्त्र आदि विषयों के अच्छे ज्ञाता थे। रामपुर के नवाब ने जब अपने दरबार के लिए एक सुयोग्य पण्डित को कालेज के प्रिंसिपल से माँगा तब शास्त्रीजी ने अपने सुयोग्य पुत्र को इस पद के लिए उपयुक्त पात्र समझकर वहाँ भेज दिया। केशवजी काशी आने पर अपने दरबारी जीवन के प्रसंग में प्रायः कहा करते थे कि मेरे नवाब साहब का विचित्र हाल है। उनका दरबार रात के समय में ही लगता है और संस्कृत ग्रन्थों में लिखित किसी विषय की जानकारी पाने के लिए वे इनसे पूछते हैं। कभी रामायण का विषय सुनाना पड़ता है, तो कभी महाभारत का। कभी भारतीय अध्यात्मज्ञान के विषय में जिज्ञासा होती है, तो कभी धर्मशास्त्रों के विषय की। तात्पर्य यह है कि नवाब साहब की जिस विषय में अभिरुचि रहती, उसी का विवरण देना पड़ता, तत्तत् प्रश्नों का समुचित उत्तर देकर उनकी जिज्ञासा शान्त करनी पड़ती। पण्डितजी से वह नवाब बहुत प्रसन्न था और उनका विशेष आदर-सत्कार किया करता था। केशवजी अपने जीवनभर नवाब के दरबार के पण्डित बने रहे। उसकी मृत्यु के बाद ही इन्हें रामपुर दरबार से सदा के लिए बिदाई लेनी पड़ी। पिता की मृत्यु के अनन्तर केशवजी अपनी माता को कई बार अपने साथ ही रामपुर ले गये, परन्तु माता को वह स्थान बिल्कुल ही पसन्द न था। फलतः वे काशी में ही रहती थीं अपने पतिदेव के पट्टशिष्य डॉ० बाबू भगवानदासजी के घर में। डाक्टर साहब एक सुयोग्य शिष्य का कर्तव्य निभाते थे और अपने गुरु की सहधर्मिणी को बड़े आदर तथा सम्मान के साथ अपने घर में रखते तथा सेवा करते थे।

श्रीराम मिश्र शास्त्रीजी अगस्त्यकुण्ड नामक मुहल्ले में रहते थे जहाँ दशाश्वमेध घाट पर भगवती भागीरथी में प्रातःस्नान करने का इनका अभ्यास यावज्जीवन बना रहा। ये रामानुज सम्प्रदाय के उच्चकोटि के मनीषी विद्वान् ही नहीं थे, प्रत्युत अनेक सभाओं की स्थापना कर उसके सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार में भी विशेष जागरूकता दिखलाते थे। सुना जाता है कि इन्होंने 'ब्रह्मामृतवर्षिणी' नामक सभा स्थापित की थी जिसके द्वारा काशी के पण्डितों में दार्शनिक विचारधारा का प्रचुर प्रवर्तन होता था। षड्दर्शनों में पारंगत होनेवाले शास्त्रीजी काशी के विशिष्ट दार्शनिक विद्वानों में अग्रगण्य गिने जाते थे। दर्शनों का अध्ययन-अध्यापन ही इनके जीवन का परम लक्ष्य था और उनमें भी विशिष्टाद्वैतदर्शन का अध्यापन तो इनका जीवातु ही था। इस दर्शन के उच्चकोटि के ग्रन्थों का इन्होंने पहली बार सुसंस्कृत संस्करण तैयार कर उन्हें मुद्रित एवं प्रकाशित किया तथा उन्हें विषमपद टिप्पणियों से विभूषित कर गम्भीर अर्थ को सुबोध बनाने का पूरा प्रयत्न किया और इस प्रयत्न में ये सर्वथा सफल रहे।

चार्य के सुयोग्य पुत्र श्रीदेवाचार्य ने सुनाया था जिसे उन्होंने अपने पूज्य पिताजी से सुन रखा था। इन पं० देवाचार्य की आयु ८५ वर्ष की थी जो अभी गतवर्ष दिवंगत हुए।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थ

इनके द्वारा सम्पादित तथा निर्मित ग्रन्थों के नाम यहाँ दिये जाते हैं—

(१) **श्रीभाष्य** (टिप्पण के साथ)
(२) **आगम-प्रामाण्य** ,,
(३) **वेदार्थ-संग्रह** ,,
(४) **न्याय-सिद्धाञ्जन** (विशिष्ट भूमिका के साथ)
(५) **तत्त्वमुक्ताकलाप** (सटिप्पण)

(६) **स्नेहपूर्ति** (प्रथम बिन्दु)—यह नवीन ग्रन्थ पण्डितजी की मौलिक रचना है। इसकी भूमिका के अवलोकन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये राजपुरुषों--सरकारी शासकों—के विशेष विश्वासपात्र एवं कृपाभाजन थे।

(७) **ब्रह्मसूत्रवृत्ति**—शास्त्रीजी की यह स्वतन्त्र रचना है जिसका उल्लेख 'वेदार्थ-संग्रह' की भूमिका में इन्होंने स्वयं किया है।

(८) **शुद्धिसर्वस्व**—'आशौच व्यवस्था' के विषय में पं० राम मिश्रजी का यह प्रमेयबहुल प्रमाण-परिपुष्ट विद्वत्तापूर्ण धर्मशास्त्रीय निबन्ध है। इस ग्रन्थ का ऐतिहासिक महत्त्व है। आज से लगभग एक सौ वर्ष पूर्व काशी की वैश्यमण्डली आशौच के विषय में विषम मतभेद के कारण उद्विग्न हो गई थी। इस मतभेद को दूर करने के लिए वैश्यसभा के वरिष्ठ अधिकारी बाबू कृष्णशरण गुप्त ने प्रख्यात पण्डित नित्यानन्द मीमांसक तथा वैश्यशिरोमणि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की सम्मति से ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा के प्रधान अधिकारी पं० राममिश्र शास्त्री से 'सब वर्णों का आशौच समान रूप से दस दिनों तक ही रहता है' इस विषय की मीमांसा के लिए प्रार्थना की। यह कोई वैयक्तिक प्रार्थना न होकर काशी-निवासी अग्रवाल समाज की सामूहिक प्रार्थना थी। प्रार्थनापत्र वैशाख शुक्ल प्रतिपदा शनिवार सं० १९४१ (= १८८४ ई०) को दिया गया था और शास्त्रीजी ने एक सप्ताह के भीतर ही यह प्रामाणिक व्यवस्था लिख डाली जिससे उनके धर्मशास्त्रीय वैदुष्य का तथा रचनाकौशल का उज्ज्वल उदाहरण उपस्थित होता है। इस व्यवस्था के अन्त में नागरिकों का यह हृदयोद्गार है—"धन्य हैं श्रीराम मिश्र शास्त्रीजी जिनका यह केवल सात ही दिन का अनायास सिद्ध कार्य है। यदि ये महाशय मास दो मास लिखें, तो महाभारत से भी अधिक ग्रन्थ हो जाय।"[1] इससे शास्त्रीजी के प्रौढ़ पाण्डित्य का परिचय मिलता है। यह ग्रन्थ आज से सौ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था।

इन ग्रन्थों की रचना तथा विमर्शात्मक संशोधन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि राम मिश्रजी दर्शनशास्त्र के शेमुषीसम्पन्न विचक्षण मूर्धन्य विद्वान् थे। श्रीवैष्णवदर्शन के

---

१. शुद्धिसर्वस्वम्—बुधवर श्रीनित्यानन्द मीमांसकानामाज्ञया भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र श्रेष्ठिनामनुमत्या च राम मिश्र शास्त्रिणा प्रणीतम्। अमर प्रेस, काशी में मुद्रित, ईस्वी १८८४, पृ० ८६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्ययन का प्रवेश तो, ऐसा प्रतीत होता है कि, संस्कृत कालेज में इन्हीं के द्वारा हुआ। श्रीभाष्य का प्रथम विमर्शात्मक संस्करण इन्होंने ही प्रस्तुत तथा प्रकाशित किया था जिसे पाण्डित्यपूर्ण टिप्पणियों तथा आलोचनात्मक भूमिका से विभूषित होने का गौरव प्राप्त है। काशी में 'संस्कृत समाज' नामक एक विद्वत्सभा आयोजित की गई थी जिसमें पण्डितों में वाद-विवाद होता था। ईस्वी सन् १८७५–७६ ई० के बीच यह सभा स्थापित हुई थी। इस सभा के विवरण भी प्रकाशित होते थे। इन विवरणों के पढ़ने से शास्त्रीजी के वाद-विवाद की पटुता का सद्यः दर्शन होता है।

शास्त्री जी स्वसम्पादित ग्रन्थों की भूमिका में अपने को 'सत्सम्प्रदायचार्य पण्डित स्वामी श्री राममिश्र शास्त्री' लिखते थे जिससे इनकी श्रीवैष्णवसम्प्रदाय के प्रति गम्भीर आस्था, प्रकृष्ट समादृति तथा गाढ़ परिचिति सद्यः प्रतीत होती है। इनको संस्कृत लेखन में बड़ी प्रौढ़ि प्राप्त थी। उपर्युक्त ग्रन्थों की भूमिका के अवलोकन से यह प्रौढ़ता सद्यः स्फुरित होती है।

'वेदार्थ संग्रह' की भूमिका से एक अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है जिसमें श्री वैष्णव मत का तात्पर्य बड़े ही सुन्दर शब्दों में उपन्यस्त है[1]—"**सगुणविद्यैव विद्या। देशविशेषावच्छिन्नः श्रीपतिरेव प्राप्यः प्रापकश्च। तत्प्रपत्तिरेव परमोपायः। सा च ज्ञानसाध्या। तच्च ज्ञानं भक्त्युपासनाविपदव्यपदेश्यं सगुणविद्यास्वरूपमेव। सर्वास्वप्युपनिषत्सु विदिनोपक्रम्योपासिनोपसंहारदर्शनादुपासिनोपक्रम्य विदिनो चोपसंहरणात्। न च विध्यनुरोधादुपासिरेव विद्यर्थं इति वाच्यम् उपासनाया विशेषज्ञानरूपतया तदनुरोधेन सामान्यार्थकस्य विदेरेव तदर्थकतायाः समुचितत्वात्।**"

शिष्य मण्डली

पण्डित राममिश्र शास्त्री जी की शिष्यमण्डली पर्याप्त रूपेण विस्तृत थी, परन्तु इतने दिनों के बाद जब इन्हें वैकुण्ठवासी हुए ८० वर्ष हो गये हैं, उनका परिचय पाना दुःसाध्य है। इनके शिष्यों में तीन विशिष्ट शिष्यों का संक्षिप्त परिचय देना ही यहाँ पर्याप्त होगा। ये शिष्य हैं—

(१) डाक्टर बाबू भगवानदास
(२) महामहोपाध्याय हरिहरकृपालु द्विवेदी
(३) महोमहापोध्याय पण्डित रामशास्त्री भागवताचार्य

डाक्टर भगवानदास जी अपने वैदुष्य तथा ग्रन्थ-निर्माण के कारण इन तीनों में नितान्त प्रख्यात हैं। वे संस्कृत भाषा तथा साहित्य के अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने राममिश्र शास्त्री जी से भारतीय दर्शनों का विधिवत् अध्ययन किया था। उनका भारतीय दर्शनों का तथा पुराणों का अध्ययन बड़ा गम्भीर था। 'कर्मणा जातिः' के

१. यह भूमिका १९५० विक्रमी सं० पौष शुक्ल एकादशी को लिखी गई थी। इसका प्रथम संस्करण इसी समय प्रकाशित हुआ था १८९३ ई० में तथा दूसरा संस्करण १९२४ ई० में (लाजरेस कम्पनी द्वारा)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे बड़े ही आस्थावान् प्रचारक थे। उनके समस्त मतों को भले ही हम नहीं मानें, परन्तु उनके संस्कृत के गाढ़ अनुशीलन के विषय में वैमत्य नहीं है। उन्होंने 'मानवधर्म-सारः' नामक संस्कृत में पद्यबद्ध ग्रन्थ का प्रणयन किया था जिसमें प्राचीन भारतीय मानव मूल्यों की इस परिवर्तित नवीन युग में उपयोगिता का विशेष वर्णन किया गया है। अंग्रेजी तथा हिन्दी में उनकी रचनाओं का गाम्भीर्य तथा वैविध्य नितान्त प्रख्यात है—विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं। अन्य दोनों शिष्यों का परिचय आगे दिया जायेगा।

एक गर्वोक्ति

अपने मौलिक ग्रन्थ--स्नेह पूर्ति— के अन्त में शास्त्री जी की यह गर्वोक्ति सर्वथा सच्ची प्रतीत होती है—

देवेश्वरे कुलिशमम्बुपतौ च पाशं
भीमे गदां विशदवाजिनि गाण्डिवं च।
चक्रं च बिभ्रति समित्यथ वासुदेवे
युक्तिक्रमं मयि च कुत्र विपक्षशेषः॥

इस श्लोक का आशय है— देवताओं के राजा इन्द्र जब अपने हाथ में वज्र धारण करते हैं, तब क्या कमी उनके शत्रुओं में कोई बच सकता है? इसी प्रकार वरुण को पाश, भीमसेन को गदा, सफेद घोड़ों वाले रथ पर आरूढ़ अर्जुन को गाण्डीव तथा युद्ध स्थल में श्रीकृष्ण को चक्र धारण करने पर क्या कोई विपक्ष में बच सकता है? नहीं, कभी नहीं। वैसी ही दशा मेरी भी है। जब मैं वाक्युद्ध में युक्तियों के समूह को धारण कर शास्त्रार्थ के लिए अवतीर्ण होता हूँ, तब मेरे प्रतिपक्षियों में मेरे सामने क्या कोई टिक सकता है? सबकी धज्जियाँ उड़ा देता हूँ। कोई भी प्रतिपक्षी बच ही नहीं जाता।

यह गर्वोक्ति पण्डित राममिश्र शास्त्री जी का मिथ्याप्रलाप न होकर तथ्यकथन ही मानी जानी चाहिए। तथ्य तो यह है कि शास्त्रार्थ करने की कला में ये इतने निपुण थे, कर्कश तर्क युक्तियों के ऐसे प्रयोक्ता थे कि इनके सामने कोई प्रतिद्वन्द्वी टिक नहीं सकता था। इसीलिए काशी के पण्डित समाज में इनकी विशेष ख्याति थी।

अम्बिकादत्त व्यास जी ने आपके विषय में लिखा है 'स्वामी राममिश्र शास्त्री जी गवर्नमेण्ट कालेज के भूषण, स्नेहपूर्त्यादि नाना आकर ग्रन्थों के रचयिता तथा श्री-सम्प्रदाय के प्रधान अवलम्ब' थे। इस कथन से उनके प्रति व्यास जी का आदर-भाव सद्यः स्फुटित होता है। स्वामी जी अपने युग में काशीस्थ विद्वन्मण्डली के शिरोमणि थे – इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

पं० रामशास्त्रीजी केवल शास्त्रों के ज्ञाता ही नहीं थे, बल्कि एक कर्मठ व्यक्ति थे। इन्होंने संस्कृत विद्या के प्रचार-प्रसार में अलौकिक योगदान दिया। सभा की स्थापना कर इन्होंने आपस में विद्या के आदान-प्रदान का सुअवसर उपस्थित किया तथा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामानुज सम्प्रदाय के ग्रन्थों का संस्करण निकाल कर इस धर्म की भी विपुल सेवा की।

शास्त्रीजी का व्यक्तित्व

स्वामी राममिश्र शास्त्रीजी का व्यक्तित्व बड़ा ही प्रभावशाली था। इनमें एक विचित्र आकर्षण था। जो कोई भी इन्हें देखता, वह आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकता। ये बड़े ही दमंग पण्डित थे। अपने सामने किसी को भी नहीं समझते थे और इनकी यह वृत्ति सर्वत्र चरितार्थ होती थी—लेखन में तथा शास्त्रार्थ में, व्याख्यान में तथा वार्त्तालाप में। ऐसा विशिष्ट वैदुष्यसम्पन्न पण्डित होना नितान्त दुर्लभ है। इनके चित्र के अवलोकन से भी इनके आकर्षक व्यक्तित्व तथा परिपुष्ट देहयष्टि का किञ्चित् आभास दर्शकों को बलात् हो जाता है। ये विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के धनीमानी पण्डित थे। फलतः इनके कतिपय ग्रन्थ अद्वैतवेदान्त के खण्डन के निमित्त निर्मित हैं। इनका मौलिक प्रौढ़ दार्शनिक ग्रन्थ **स्नेहप्रपूर्ति** अद्वैतसिद्धि के खण्डन रूप में अपना वैशिष्ट्य जमाये हुए हैं।

धर्मशास्त्र में भी राम मिश्रजी को गम्भीर प्रवीणता प्राप्त थी। इन्होंने धर्मशास्त्र विषयक अनेक उपादेय निबन्धों का निर्माण कर एतद्विषयक अपने पाण्डित्य का स्पष्टतः परिचय दिया है। ये ग्रन्थ हैं—**व्रात्य संस्कार मीमांसा, उद्वाह समय मीमांसा, तुरीय-मीमांसा, मन्त्र-मीमांसा** एवं **दत्तक विजय वैजयन्ती**। १९११ ईस्वी के आसपास उन्हें काशी में वैकुण्ठवास प्राप्त हुआ। उस समय इनकी आयु लगभग ६० साल की थी। फलतः इनका जन्म १८५१ ईस्वी में हुआ था। राजपूताने में अलवर रियासत के एक गाँव में जन्म लेने वाले स्वामी राम मिश्रजी इस विद्यानगरी काशी में निर्मल कीर्ति का विस्तार कर पद्मनाभ स्वामी के धाम के वासी बन गये—यह प्राक्तन पुण्य का ही तो परिणत फल है।

●

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१३

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास

(आस्पद—गौड़; उपाधि—सुकवि, व्यास)

साहित्याचार्य पं० अम्बिकादत्त व्यास संस्कृत तथा हिन्दी दोनों भाषाओं में ललित तथा रुचिर काव्य के स्रष्टा, सनातन धर्म के उत्कृष्ट वक्ता तथा व्याख्याता के रूप में नितान्त प्रसिद्ध थे। इतनी कम आयु में इतने विभिन्न विषयों पर उपादेय तथा आवर्जक ग्रन्थों के प्रणयन में, ये सम्भवतः अपना प्रतिस्पर्धी नहीं रखते। अध्ययन करके इन्होंने केवल 'साहित्याचार्य' की उपाधि प्राप्त की थी; परन्तु अपनी अलौकिक काव्य-रचना तथा पाण्डित्य के कारण इन्हें विहार-भूषण, भारतभूषण, भारत-रत्न, घटिका-शतक, शतावधान तथा सुकवि जैसी महनीय उपाधियों से विभूषित होने का भी श्रेय प्राप्त था। इनकी शिक्षा-स्थली तो काशी थी परन्तु कर्मक्षेत्र बिहार प्रान्त था। इन दोनों प्रान्तों में इन्होंने संस्कृत, हिन्दी, सनातन धर्म आदि के प्रचार एवं प्रसार में जो योगदान दिया, वह भारतीय साहित्य की एक अविस्मरणीय निधि है। हर्ष का विषय है कि इन्होंने अपने व्यक्तित्व तथा कृतित्व का वर्णन स्वयं किया है। अतः अब व्यासजी की कहानी उन्हीं की जबानी सुनिये।

जीवनी

"जयपुर (राजस्थान) का धूला नामक ग्राम हमारे पूर्वजों का निवासस्थान था। पं० राजारामजी जिनका पराशर गोत्र, यजुर्वेद, तीन प्रवर और यहाँ का परम प्रतिष्ठित मीणा कुल था, धूला से सम्बन्ध छोड़कर सकुटुम्ब काशी में आ बसे। इनकी अनेक सन्तानों में चिरजीवी दो ही पुत्र हुए। ज्येष्ठ पुत्र का नाम दुर्गादत्त और कनिष्ठ पुत्र का नाम देवीदत्त था। पं० दुर्गादत्त के ही द्वितीय पुत्र का जन्म जयपुर में ही सिलावटों के महल्ले में संवत् १९१५ वि० (सन् १८५८ ई०) चैत्र शुक्ल अष्टमी को हुआ। वही मैं (अम्बिकादत्त) हूं। सं० १९१६ वि० में मेरे पिता जयपुर से सकुटुम्ब काशी आये। पंचम वर्ष में मेरा अक्षरारम्भ हुआ। अमरकोष और रूपावली घुखाना भी साथ ही आरम्भ किया गया। मेरी माता, दादी और बहिनें सभी पढ़ी-लिखी थीं और मेरे पिता भी संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् थे। अतः मेरी शिक्षा चतुरस्र होने लगी। अर्थात् संस्कृत में कुछ-कुछ काव्य, कोष और भाषा में अनेक कवित्त, सवैये कण्ठस्थ हो गये। पिताजी ने व्यावहारिक पदार्थों का नाम मुझे सिखला दिया। मैं संस्कृत की बातचीत समझने लगा। मेरा खेल यही था कि पिताजी के साथ मेला-तमाशा देख लेना अथवा पिता ही जी के साथ शतरञ्ज खेलना अथवा भाँति-भाँति के इन्द्रजाल के तमाशे करके अपनी माता आदि को प्रसन्न करना। मेरे पिताजी ने स्वाभाविक प्रवृत्ति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोक कर मुझे बुद्धिमत्ता के खेल में लगाया। इन्होंने मुझे कौतुक और शतरञ्ज आदि भी सिखलाये।

"पं० घनश्यामजी गौड़ ने मेरा उपनयन कराया। दस वर्ष की वय में की गई हुई मेरी कविता को सुनकर लोग पिताजी से बनवायी गई का सन्देह करते थे। इस सन्देह पर जब मैं उदास होता था तब पिताजी कहते थे—

"कमलिनि ! मलिनी करोषि चेतः,
किमिति बकैरवहेलिताऽनभिज्ञैः।
परिणतमकरन्द-मार्मिकास्ते,
जगति जवन्तु चिरायुषो मिलिन्दाः॥"

इन दिनों हनुमान कवि, द्विजकवि मन्नालाल, गोस्वामी दम्पतिकिशोर, पञ्जाब के बाबा निहाल सिंह आदि मेरे पिताजी से काव्य पढ़ते थे। मैं भी उन लोगों का पाठ सुनता था और कविता करता था, जिसको सुनकर सब मेरा उत्साह बढ़ाते थे। इसी दस वर्ष की वय में मैं प्रस्तार, नष्टोदिष्ट आदि में कुशल हो गया था।

संवत् १९२६ वि० (सन् १८६९ ई०) जोधपुर के राजगुरु ओझा तुलसीदत्तजी काशी आये। इन दिनों इनके यहाँ यह समस्या उड़ रही थी। वही मुझे भी दी गई। समस्या थी—

"जनि तोड़हु नेह को काच तगा।"

इस पर मैं यह पूर्ति कर लाया।

"मत जोरहु प्रीति चहूं दिसि में,
तुम कोऊ दिना लला खैहो दगा।
कवि अम्बिकादत्त परै बलके,
परिहै पुनि पेचहु कोऊ जगा॥
सुरझावहु गाँठ हिये की हहा,
मन के सब भर्मन देहु भगा।
जिय की अरुझावनि ऐंचनि सो,
जनि तोरहु नेह को काँचो तगा॥"

इन्होंने भी मेरी कविता सुनकर यही आशंका की। सन्देह-निवृत्ति के लिए इन्होंने दूसरी समस्या दी :—

"मूँदि गई आखैं; तब लाखैं कौन काम की।"

सेवक कवि, नारायण कवि, हनुमान कवि, द्विजकवि मन्नालाल तथा मेरे पिता जी की उपस्थिति में मैंने तत्क्षण यह कवित्त बनाया :—

"चमकि चमाचम रहे हैं मनिगन चारु,
सोहत चहूंधाँ धूम-धाम, धन, धाम की।
फूल फुलवारी फल फैलि कै फबै हैं तऊ;
छबि चटकीली यह नाहिन अराम की॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काया हाड़-चाम की लै, रामकी बिसारि सुधि;
जाम की को जानै, बात करत हराम की।
अम्बादत्त भाखैं अभिलाषैं क्यों करत झूठ;
मूँदि गई आँखैं तब लाखैं कौन काम की॥"

सभा में यह मेरी प्रथम कविता हुई। ओझा जी ने पारितोषिक तथा प्रशंसा-पत्र देकर गुणग्राहिता प्रकट की। इसी समय से मेरा नाम फैल गया।

एगारह वर्ष की वय में मैं अमरकोष, रूपावली और कुछ काव्य समाप्त कर पण्डित कृष्णदत्त जी से लघुकौमुदी और पिता जी से श्रीमद्भागवत पढ़ने लगा। सं० १९२६ वि० (सन् १८६९ ई०) खड्ग कवि काशी आये। अनेक कवि जनों के सामने भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने यह समस्या दी :—"सूरज देखि सके नहिं घुग्घू।" भारतेन्दु जी ने कहा कि उत्तम कविता इस पर नहीं बन सकती। इस पर खड्ग कवि कुछ मुसकुराये। तब मेरे पिता जी ने कहा कि यदि आपको इसी समस्या से आग्रह हो तो यह इस लड़के को दीजिये। तब पिता जी ने मेरी ओर संकेत किया। मैंने तत्क्षण कविता रची जो यह है :—

"गोद लिये हरि को नँदराय जू,
सुग्गा कहायो कह्यो उन सुग्घू।
तोतरे बैन सुनो चित चैन भो;
काग कहायो कह्यो तब कुग्घू॥
अम्बिकादत्त अनन्दित ह्वै पुनि;
बाघ कहायो कह्यो उन बुग्घू;
देखि सकैं नहि पातकी सों;
जिमि सूरज देखि सकै नहिं घुग्घू॥"

इस सुन्दर तथा मधुर पद्य-रचना को सुनकर साधुवाद से मंदिर गूँज उठा और बाबू हरिश्चन्द्र का स्नेह उसी क्षण से मेरे ऊपर बढ़ने लगा और घर आने पर पिता जी ने बहुत आशीर्वाद दिया। सं० १९२७ वि० (सन् १८७० ई०) में बाबू हरिश्चन्द्र जी ने 'कविता वर्धिनी सभा' का स्थापन किया। प्रथम बार यही समस्या थी—"चिरजीवी रहो बिकटोरिया रानी।" यह भी आज्ञा थी कि इसकी पूर्ति में प्रातःकाल का वर्णन हो। इस पर मैंने भी विलक्षण पूर्ति की :—

"आनँद से परजा विकसी, सब कौल से कोससिरी हरषानी;
सेवकिनी चिरियाँ सम चारहुँ, ओर ते बोल रही मृदु बानी।
भोर प्रताप सो जाको प्रताप, लखे इमि अम्बिकादत्त बखानी;
पूरी अमी की कटोरिया सी, चिरजीवो रहो विकटोरिया रानी॥"

'कविवचन सुधा' में जब यह समस्या पूर्ति प्रकाशित हुई थी तब बाबू हरिश्चन्द्र जी ने यों लिखा था :—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इस विलक्षण बालक कवि की बुद्धि भी विलक्षण ही है और अवस्था इसकी केवल बारह वर्ष की है। हम इसके और समाचार भी लिखेंगे।"

ईश्वर की कृपा से कविता की तरह क्रमशः कथा कहने में भी मेरी प्रसिद्धि हो चली। मेरी सितार की ओर भी रुचि इसी समय हुई और सितारी आ गई।"

अपनी आशुकवित्व शक्ति के संबंध में व्यास जी ने स्वयं लिखा है कि :—

"काशीराज की धर्मसभा में मैंने साहित्य में परीक्षा दी। पारितोषिक के दिन महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह बहादुर ने मुझे अल्प वय में पारितोषिकाधिकारी देख मुझसे कुछ पूछा जिसका श्लोकबद्ध उत्तर सुनकर महाराजा बहुत ही प्रसन्न हुए। **पं० ताराचरण 'तर्करत्न' भट्टाचार्य** के प्रश्न का उत्तर भी मैंने श्लोक ही में दिया। महाराजा ने भट्टाचार्य से प्रसन्न होकर कहा कि आप भी इन्हें पढ़ाया कीजिए और यहाँ भी लाया कीजिए। इसी समय काशी में तैलंग वृद्ध अष्टावधान ने आकर अष्टावधान कौशल दिखलाया। इसके अनन्तर बाबू हरिश्चन्द्र जी ने कहा कि इस समय काशीवासी भी कोई चमत्कार दिखलाते तो काशी का नाम रह जाता। यह सुन मेरे पिता ने कहा कि इस बालक की एक **सरस्वती यंत्र** कविता देखिए। मैंने एक पत्र (कागज) पर आठ आठ कोष्ठ की चार पंक्ति वाला आयत यंत्र बनाकर पूछा कि किस पदार्थ का वर्णन हो। तब बाबू गोकुलचन्द ने कौतुकपूर्वक कहा कि इस घड़ी का वर्णन कीजिये। वे जिस कोष्ठ में बताते जाते वहाँ वहाँ मैं अक्षर लिखता गया। अन्त में यह श्लोक प्रस्तुत हुआ :—

"घटी सुवृत्ता, सुगतिर्द्वादशाङ्कसमन्विता।
उन्निद्रा सततं भाति, वैष्णवीव विचक्षणा॥"

साधुवाद ध्वनि के बाद शतावधान के अनुरोध से दूसरा श्लोक यह बनाया—

"घटी खटखटाशब्द–व्याजेन कथयत्युत।
रामं रट, रट, प्राज्ञ ! किमन्यैर्विफलैः श्रमैः॥"

फिर मैंने स्वरचित काव्य पढ़े और कई एक का तात्पर्य उन शतावधान से कहा गया। उसने कहा "सुकविरेषः"। बाबू हरिश्चन्द्र ने 'इससे बढ़कर हम आपको क्या दें' कहकर एक प्रशंसापत्र लिख दिया और उसमें 'काशी कवितावर्धिनी सभा' से 'सुकवि' की उपाधि मिली इसकी भी सूचना दी।"

अध्ययन

संवत् १९६१ वि० से १९६४ वि० (सन् १८७४ ई० से १८७७ ई०) तक एङ्ग्लो संस्कृत विभाग में व्यास जी ने अंग्रेजी का अध्ययन किया। इसके पश्चात् कश्मीरनरेश द्वारा काशी में स्थापित संस्कृत विद्यालय में अध्ययन कर व्यास जी ने परीक्षा दी। इसी अवसर पर जगत्प्रसिद्ध विशुद्धानन्द सरस्वती ने इन्हें 'व्यास' की महनीय पदवी से विभूषित किया। सं० १९३७ वि० (सन् १८८० ई०) में गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज काशी में संस्कृत की परीक्षा देकर इन्होंने 'साहित्याचार्य' की उपाधि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त की। दुःख की बात यह थी कि इसी वर्ष इनके पिता जी का देहावसान हो गया। इनकी माता जी का देहान्त तो छह वर्ष पहिले ही हो गया था। अतः गृहस्थी का सारा बोझ इनके दुर्बल कन्धों पर आ पड़ा।

अध्यापन

अब जीविका की चिन्ता से व्यास जी दुःखी रहने लगे। अतः सं० १९४० वि० (सन् १८८३ ई०) में बिहार प्रान्त के मधुवनी नामक स्थान में एक स्कूल में ये संस्कृत में अध्यापन का कार्य करने लगे। सरकारी नौकरी में होने के कारण इनका स्थानान्तरण भागलपुर और छपरा में हो गया जहाँ कई वर्षों तक ये अध्यापन करते रहे। छपरा से पटना कालेज में इनकी नियुक्ति हो गई, जहाँ ये संस्कृत के प्रवक्ता रहे। वहाँ केवल दो वर्षों तक कालेज में अध्यापन करने के पश्चात् ये रोगाक्रान्त हो गये। वहाँ से अपनी चिकित्सा कराने ये काशी आये जहाँ इनका देहावसान सं० १९५७ वि० (सन् १९०० ई०) मार्गशीर्ष कृष्ण त्रयोदशी को हो गया। इनकी मृत्यु के साथ ही संस्कृत विद्या के आकाश का एक जाज्वल्यमान नक्षत्र सदा के लिए अस्त हो गया।

संस्कृत में ग्रन्थ रचना

व्यास जी के द्वारा संस्कृत में रचित प्रधान ग्रन्थों की संख्या १४ है जो निम्न-लिखित हैं—(१) अवतार-मीमांसा-कारिका, (२) कथाकुसुम, (३) गुप्त-अशुद्धि-प्रदर्शनम्, (४) दुःखद्रुमकुठार (५) धर्माधर्मकलकलम्, (६) पातंजल-प्रतिविम्ब, (७) प्राकृत-विचित्र-शब्दार्थकोष, (८) बालव्याकरण, (९) मित्रालापः, (१०) शिवराज-विजय, (११) संस्कृत-अभ्यास-पुस्तकम्, (१२) सहस्रनाम-रामायणम्, (१३) सांख्य-सागर-सुधा, (१४) सामवतम्।

इन ग्रन्थों में तीन ग्रन्थ प्रमुख हैं—

(१) **दुःखद्रुमकुठार**—इस ग्रन्थ में संसार के विविध दुःखों के निवारणार्थ उसके उच्छेद के साधनरूप ज्ञानकाण्ड एवं भक्तिकाण्ड का निरूपण किया गया है। नाम सुनने से तो यह वेदान्तपरक ग्रन्थ प्रतीत होता है, परन्तु इसकी गद्यशैली की मधुरता तथा शान्तरस के प्रचुर आधिक्य के कारण नितान्त सरस, हृदयावर्जक तथा चेतश्चमत्कृति-जनक है। फलतः यह सरस काव्यात्मक है, शुष्कवेदान्तपरक नहीं। यह पटना के खड्गविलास प्रेस के द्वारा विक्रमी सं० १९४४ (१८८७ ई०) में प्रकाशित हुआ था। (२) **सामवत**—एक रमणीय नाटक है तथा (३) **शिवराज विजय** -ऐतिहासिक उपन्यास है जिसका विशिष्ट विवरण आगे दिया जायेगा।

हिन्दी ग्रन्थ-रचना

व्यासजी ने हिन्दी में भी अनेक ग्रन्थों की रचना की है। बिहारी के दोहों पर इन्होंने कुण्डलियाँ लिखी हैं जो 'बिहारी विहार' के नाम से प्रसिद्ध है। हिन्दी में इनकी छोटी तथा बड़ी रचनाएँ सब मिलाकर संख्या में ६४ (चौसठ) हैं जिनमें प्रधान रचनाओं के नाम नीचे दिये जा रहे हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) अबोध निवारण, (२) अवतार मीमांसा, (३) आश्चर्य वृत्तान्त, (४) ईश्वरेच्छा, (५) कथाकुसुम कलिका, (६) कलियुग और घी, (७) क्षेत्र कौशल, (८) गद्य-काव्य-मीमांसा, (९) गोसंकट नाटक, (१०) बिहारी-विहार, (११) भारत सौभाग्य, (१२) मूर्ति-पूजा, (१३) ललिता-नाटिका, (१४) संस्कृत संजीवन, (१५) साहित्य-नवनीत, (१६) सुकवि-सतसई, १७) स्वर्ग सभा, (१८) निज-वृत्तान्त, (१९) तास-कौतुक पचासा, (२०) विमक्ति विलास।

संस्कृत के प्रचारक रूप में योगदान

पं० अम्बिकादत्त व्यास संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान् ही नहीं बल्कि प्रचारक भी थे। व्यासजी ने इस सम्बन्ध में स्वयं लिखा है कि "संवत् १९४० वि० में मैं मधुबनी संस्कृत स्कूल का अध्यक्ष बनाया गया। थोड़े समय में ही यहाँ मैंने अनेक समाओं का स्थापन किया और तिरहुत भाषा का अभ्यास किया तथा संस्कृत शिक्षा की व्युत्पादक अभिनव प्रणाली निकाली। आज उसी उद्योग के फलस्वरूप "**विहार संस्कृत-संजीवन समाज**" स्थापित है जिसके द्वारा विहार में संस्कृत का प्रचार हो रहा है।"

व्यासजी ने इन दिनों सभाओं में अनेक व्याख्यान दिये थे। इन व्याख्यानों का संग्रह 'संस्कृत संजीवन समाज' नाम से प्रकाशित हुआ है। इसी काल में संस्कृत के छात्रों को शुद्धि तथा अशुद्धि का सम्यक् ज्ञान कराने के लिए व्यासजी ने "**गुस-अशुद्धि प्रदर्शनम्**" नामक एक पुस्तक लिखी थी जो '**पण्डित-पछाड़**' के नाम से ही प्रसिद्ध है। संस्कृत व्याकरण के ज्ञाता, पण्डित तथा छात्र भी अष्टाध्यायी के सूची के ऊपर घण्टों शास्त्रार्थ करने की क्षमता रखते हैं परन्तु उन्हीं सूत्रों से निष्पन्न शब्दों के प्रयोग करने में वे असफल हो जाते हैं। ऐसी ही अशुद्धियों को बतलाने के लिए इस पुस्तक की रचना की गई है। इन अशुद्धियों का एक ही उदाहरण यहाँ पर्याप्त होगा।

श्रुतिः माता समा पूज्या तथा प्राणादपि प्रिया।
एकादेव गुरोरत्र षड्भिश्छात्रैरधीयते॥

इस श्लोक में तीन अशुद्धियाँ हैं जो प्रत्यक्ष रूप से तो नहीं दिखाई पड़ती परन्तु ध्यानपूर्वक देखने से ज्ञात हो जाती हैं। यहाँ माता समा के स्थान में मातृसमा, प्राणादपि के स्थान पर प्राणेभ्योऽपि तथा एकादेव की जगह एकस्मादेव होना चाहिए।

धर्मप्रचारक के रूप में योगदान

पं० अम्बिकादत्त व्यास के पिता **पं० दुर्गादत्त गौड़** संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान् थे। वे भागवत के मर्मज्ञ होने के साथ ही एक सुन्दर कथावाचक भी थे। पिताजी का यह गुण बाल्यावस्था में ही अम्बिकादत्त जी में संक्रमित हो गया था। कविता की रचना के साथ ही साथ इन्होंने कथा बाँचना भी प्रारम्भ कर दिया था। इसके लिए इन्होंने अपने पिताजी से श्रीमद्भागवत का विधिवत् अध्ययन किया। इन्हें सनातन धर्म की समाओं में भाषण देने का बड़ा अभ्यास था जिसे इन्होंने धीरे-धीरे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अधिक बढ़ाया। इनकी 'व्यास' पदवी का कारण भी यही था। वल्लभाचार्य के सम्प्रदाय के किसी धर्माचार्य ने इनकी कथा को सुनकर इन्हें 'व्यास' की पदवी प्रदान की थी।

नागरी प्रचारिणी सभा काशी के संस्थापक पं० रामनारायण मिश्र[1] ने व्यासजी के विषय में जो लिखा है वह अक्षरशः सत्य है। वे लिखते हैं कि—"व्यासजी जैसे अच्छे वक्ता थे वैसे ही अच्छे लेखक भी थे। जैसे कवि थे वैसे ही गद्य लेखक भी थे। नित्यक्रिया के अतिरिक्त प्रायः उनका सभी समय साहित्य चर्चा में ही जाता था। कभी पुस्तकावलोकन करते, कभी कोई नयी पुस्तक लिखते, कभी समस्यापूर्ति करते, कभी व्याख्यान देते, कभी शास्त्रार्थ करते और कभी शतावधान दिखला कर अपनी अद्भुत स्मृतिशक्ति का परिचय देते थे।"

शिवराज विजय

'शिवराज विजय' पं० अम्बिकादत्त व्यास की सर्वश्रेष्ठ तथा अत्यन्त प्रौढ़ रचना हैं। महाराष्ट्र साम्राज्य के संस्थापक छत्रपति शिवाजी के जीवनचरित को लेकर रचा गया यह ग्रन्थ संस्कृत का अभिनव उपन्यास है। इस ग्रन्थ में कवि की राष्ट्रीय भावना, देशभक्ति, प्राचीन आचार-विचार के प्रति समादर, प्राचीन भारतीय संस्कृति में गाढ़-निष्ठा, सनातन धर्म के सिद्धान्तों में प्रगाढ़ अनुराग—इन गुणों का परिचय पद-पद पर मिलता है। यह ग्रन्थ ऐतिहासिक दृष्टि से भी अत्यन्त प्रामाणिक है। कहीं-कहीं पर इन्होंने मुसलमानों के नाम का संस्कृतीकरण कर दिया है। इस ग्रन्थ में शाइस्ता खाँ के स्थान पर 'शास्तिखानः' लिखा है।

इस ग्रन्थ का निर्माण व्यास जी ने केवल पैंतीस वर्ष के वय में किया था। यह इनके द्वारा रचित ग्रन्थों में शीर्षस्थान का अधिकारी है। विषय के अनुरूप व्यास जी ने इसमें शैली का निरूपण किया है। शृंगार और करुण रस के विन्यास में वैदर्भीरीति का सौन्दर्य दिखाई पड़ता है; तो वीर रस तथा रौद्ररस के वर्णन में गौड़ी रीति का उत्कृष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। सूर्य के वर्णन में रूपकालंकार की निराली छटा देखते ही बनती है।[2]

"अरुण एष प्रकाशः पूर्वस्यां भगवतो मरीचिमालिनः। एष भगवान् मणिराकाश-मण्डलस्य, चक्रवर्ती खेचरचक्रस्य, कुण्डलमाखण्डलदिशः, दीपको ब्रह्माण्डभाण्डस्य, प्रेयान् पुण्डरीकपटलस्य, शोकविमोकः कोकलोकस्य, अवलम्बो रोलम्बकदम्बस्य, सूत्रधारः सर्वव्यवहारस्य इनश्च दिनस्य।"

संस्कृत भाषा के ऊपर व्यासजी का पूर्ण अधिकार था। एक ही वस्तु के वर्णन में इन्होंने भिन्न-भिन्न शब्दावली का प्रयोग किया है तथा उसमें कहीं भी पुनरुक्ति नहीं

---

१. साहित्य-नवनीत की भूमिका, पृ० १२।

१. शिवराज विजय, पृष्ठ २–३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आने पाई है। करुस रस का यह वर्णन देखिये जिसमें भारतवर्ष और हिन्दू जाति की दुर्दशा का बड़ा ही सजीव चित्रण किया गया है[1]:--

"वीरविक्रमस्य तु भारतभुवं विरहय्य गतस्य वर्षाणां सप्तदशशतकानि व्यतीतानि। क्वाधुना मंदिरे, मंदिरे जयजयध्वनिः। क्व सम्प्रति तीर्थे घण्टानादः। क्वाद्यापि मठे, मठे वेदघोषः। अद्य हि वेदा विच्छिद्य वीथिषु विक्षिप्यन्ते, पुराणानि पिष्ट्वा पानीयेषु पात्यन्ते। भाष्यणि भ्रंशयित्वा भाष्ट्रेषु भज्ज्यन्ते। क्वचित् तुलसीवनानि छिद्यन्ते। क्वचित् दाराः अपह्रियन्ते। क्वचित् धनानि लुण्ठ्यन्ते। क्वचित् रुधिरधाराः, क्वचित् अग्निदाहः, क्वचित् गृहनिपातः। इत्येव श्रूयतेऽवलोक्यते च परितः।"

व्यास जी की गौड़ी शैली तथा संश्लिष्ट पदावली का यह सुन्दर उदाहरण देखिये जिसमें राजस्थान के वर्णन में वीररस की अभिव्यक्ति कितने प्रभावोत्पादक शैली में हुई है[2]—

"अस्ति कश्चन धैर्यधारिधुरन्धरैः धर्मोद्धारधौरेयैः, सोत्साहासाहसचंचच्चन्द्रहासैः, सुशक्तिसुशक्तिभिः, सद्यश्छिन्न परिपन्थि गलगलच्छोणितच्छुरितच्छन्नच्छुरिकैः, घनविघून विघट्टकघर्घराघोषघोर-शतघ्नीकैः, प्रत्यर्थिशुण्डिशुण्डाखणुनोद्दण्ड भुशुण्डीकैः, प्रचण्ड-दोर्दण्ड वैदाध्यभाण्ड प्रकाण्डकाण्डैः क्षत्रियवर्यैरार्यवर्यैश्च व्याप्तो राजपुत्रदेशीः॥"

सामवत नाटक

पं० अम्बिकादत्त व्यास ने सामवत नाटक की रचना केवल बाईस वर्ष के वय में की थी। इस नाटक की कथावस्तु का स्रोत स्कन्दपुराण के ब्रह्मोत्तर खण्ड की एक कथा है। इस पुराण में सोमवार व्रत के वर्णन में सीमन्तिनी कथा का वर्णन किया गया है। उसी के आधार पर यह नाटक लिखा गया है। यह नाटक अभिनेय है और दरभङ्गानरेश महाराजा लक्ष्मीश्वरनारायण सिंह की आज्ञा से इसका मञ्चन भी किया गया था। यह नाटक छह अंकों में विभक्त है। इस नाटक की रचना मञ्चन की दृष्टि से की गई है। इसलिए इसमें सर्वत्र वैदर्भी शैली का प्रयोग पाया जाता है। अभिलाषा की अभिव्यक्ति नीचे लिखे पद्य में कितनी सुन्दर हुई है[3]—

"कदाहं कान्तायाः नलिननयनायाः करतलं,
गृहीत्वा सानन्दं निजकरतलेनातिरुचिरम्।
सुधापारावाराप्लुतमिव मनः स्वं विरचयन्,
शचीयुक्तं जिष्णुं चिरमुपहसिष्यामि मुदितः॥"

इस नाटक में अलंकारों की भी छटा देखने योग्य है। यमकालंकार का यह उदाहरण देखिए[4]—

१. शिवराज विजय, पृ० १३–१४।
२. शिवराज विजय, पृ० ८२–८३।
३. सामवत नाटक, अंक ६, श्लोक ७।
४. सामवत नाटक, अंक १, श्लोक १०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"विकसित विमला कमला,
कमलावलिकलितललिततटा।
कमलेव द्रवरूपा,
विलोडयन्ती यदीयरेणुकान् ॥"

रचना-चातुरी

पं० अम्बिकादत्त व्यास जन्मसिद्ध कवि थे। बाह्य उपकरणों से इनकी कविता का उद्भव नहीं हुआ था। इसीलिए तो केवल आठ वर्ष के अल्प वय में इनके मुख से रुचिर कविता आविर्भूत हुई थी और अपनी नैसर्गिक प्रतिभा के बल पर ये दुरूह प्रतीत होने वाली तथा सामान्यतः विरोधामासमयी समस्याओं की पूर्ति देखते ही देखते कर डालते थे। जिस प्रकार वसन्त के आगमन पर मलयानिल स्वतः प्रवाहित होने लगता है तथा वर्षा में जल की कोमल बूँदें अपने आप मेघ से झरने लगती हैं, उसी प्रकार व्यासजी की बाललेखनी से भी मधुरिमापगी कोमल कविता स्वयं उद्भूत होती थी। तभी तो 'सूरज देखि सकै नहि घुग्घू' वाली दुरूह समस्या--जो भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की दृष्टि में भी सरलतया अपना समाधान नहीं पा रही थी— व्यासजी के द्वारा बड़े ही सुन्दर ढंग से तथा समय के व्याघात के बिना पूर्ण कर दी गई थी। संस्कृत कविता की रचना में भी व्यासजी नितान्त दक्ष थे। ये एक घटिका अर्थात् २४ मिनट के भीतर ही एक सौ श्लोकों की रचना अनायास कर डालते थे। इसी विलक्षण शक्ति के बल पर ये 'घटिकाशतक' की महनीय पदवी से विभूषित किये गये थे। श्लोकों में ही उत्तर देने की कला में भी ये निष्णात थे। तभी तो काशीनरेश महाराजा ईश्वरीनारायण सिंह को इन्होंने उनके प्रश्नों का उत्तर श्लोकों में देकर चमत्कृत कर दिया था। इन्हें कविता रचने में आयास नहीं करना पड़ता था, प्रत्युत नैसर्गिक रूप में ही कविता का उदय बिना प्रयास के सम्पन्न हो जाता था। ये हिन्दी के अपने छन्दों जैसे दोहा, सवैया, घनाक्षरी तथा रोला में संस्कृतमयी पद्यरचना के यशस्वी अभ्यासी थे। निम्नलिखित कमनीय दोहा इनके इस वैशिष्ट्य के परिचायक रूप से उपस्थित किया जा सकता है—

"गर्जित-बधिरीकृतजगता किमपि कृतं न घनेन।
ईयती चातक चञ्चुपुटी साऽपि भृता न जलेन ॥"

गद्यकाव्य के तो ये सम्राट् ही थे। इनकी गद्यरचना को पढ़कर बाणभट्ट की कमनीय गद्य की स्मृति आलोचकों के हृदय में स्वयं आविर्भूत हो उठती है। नये-नये पदों का विन्यास, जोड़तोड़ के पदों की रसमयी रचना, वाक्यों का रसानुकूल गुम्फन, अलंकारों का हृदयावर्जक प्रदर्शन—ये गुण व्यासजी के गद्य को गद्यकाव्य के इतिहास में महती प्रतिष्ठा देने के लिए पर्याप्त माने जा सकते हैं। आधुनिक शैली में नवीन पद्धति से संस्कृत में उपन्यास की सफल रचना पण्डित अम्बिकादत्त व्यास की लेखनी का चारु चमत्कार है। उनका 'शिवराजविजय' शिवाजी के उदात्त वीर चरित्र के ऐतिहासिक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णन से सर्वथा मण्डित है। भाषा सरल-सुबोध है। ओजस्विनी, अर्थपूर्ण तथा सुबोध होने के अतिरिक्त यह यथावसर उद्दाम भी है एवं कोमल भी।

हिन्दी काव्य

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास छन्दःशास्त्र के विशेष पण्डित थे। इन्होंने अपने जीवन-चरित में इस बात का उल्लेख किया है कि आठ-दस साल की अवस्था में ही प्रस्तार, नष्टोद्दिष्टादि छन्दःशास्त्रीय सूक्ष्म विषयों से इनको पूर्ण परिचय प्राप्त हो गया था। ये हिन्दी छन्दों में संस्कृत कविता की तथा संस्कृत छन्दों में हिन्दी कविता की रचना बिना परिश्रम के कर लिया करते थे। हिन्दी छन्दों के प्रयोग के कुछ नमूने ऊपर दिये गये हैं। अब संस्कृत छन्दों में हिन्दी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं—

(क) अनुष्टुप् छन्द में ग्रीष्म वर्णन –

घाम मानों अग्नि वर्षा करती है भयावनी।
कच्चे पक्के घर सभी भाड़ से हैं भभक् रहे॥
पेड़ छोटे सूख गये बचे जो हैं कहीं खड़े।
उपट् रही है वहाँ भी लूह् की वह लपट् कड़ी॥

(ख) आर्या छन्द में सन्ध्या वर्णन—

किरणें सभी समेटीं वरुण दिशा ओर सूर्य हैं आये।
अरुण प्रभा है छाई रंग बिरंगे भए हैं घन नभ में॥
कुहुक मचातीं चिड़ियाँ अपने अपने चली हैं खोंते में।
खेल छोड़ के बच्चे सभी मचलने लगे हैं सोने को॥

(ग) उपजाति छन्द में 'कमल' का वर्णन—

सरोज कैसा जल में खिला है परा॰ से पीत हुआ है देखो।
लगे हैं झटके ज्यों ज्यों हवा के, मरन्द बिन्दू बरसे हैं त्यों त्यों॥
लिया है कोई दृढ़ नेम इसने, कड़ी तपस्या हठ से है ठानी।
एकी चरन से जल में खड़ा है, पराग टीका सिर में लगाये॥

(घ) भुजंगप्रयात छन्द में 'कमल' का वर्णन—

ले हाथों में इसको कोई सूँघता है।
कोई रख कै कानों पै चलता ऊकड़ के॥
लगा आँखों पै सिर पै रखता है कोई।
कोई गूँथ करके बनाता है माला॥

व्यास जी ने हिन्दी पद्यों की रचना अनेक विषयों पर की है और सीधी-सादी भाषा होने से वह श्रोताओं के हृदय में बरबस प्रवेश कर जाती है। इनकी उपदेशमयी कविता सामान्यजन पर भी अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहती। एक उदाहरण देखिए—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐंठ ऐंठ बाहें बड़ा ऐंठा ऐंठा चलता है,
चार ही दिनों का यह जोर है जवानी का।
करके कुलेल क्या फुलेल मलता है मूढ,
मालिक से करता है काम बेईमानी का॥
'सुकवि' अचेत अब भी तो कुछ चेत यार,
राम को सुमिर जो है प्रान मुनि ज्ञानी का।
लगेगा न पता कुछ, कहाँ से किधर गया,
जायगा बिलाय हाय बुल्ला जैसे पानी का॥

संकीर्ण विषयों पर—जैसे मोर, कोकिल, शुक, मैना, कबूतर, मत्स्य आदि पर—भी इनकी कविता बड़ी ही रुचिर तथा आवर्जक है। छोटी होने पर भी ये बड़ी ही सुभग-सुन्दर हैं। उर्दू शैली के ढंग पर भी ये पद्य-रचना बड़ी अच्छी करते थे। इस तर्ज की कृष्णविषयक यह कविता पढ़िए। कितनी रसभरी तथा सहज-सरस है—

जुलुफ समेटे और टेढ़ी सी लपेटे पाग,
छोटे गोप बेटे संग लिए गीत गायेगा।
करके रहम हम 'सुकवि' सुजानों पर,
टेढ़ी सूधी तान कुछ बंसी में बजायेगा॥
रोली सी लगाये सिर मीठी मीठी बोली बोल,
मन्द मन्द भोली भोली सूरत दिखायेगा।
हाय वो मरद दिलदारों में फरद,
कब जरद दुपट्टा वाला दरद मिटायेगा॥

व्यास जी ने काशी का वर्णन ३४ रोला पद्यों में बड़े सौष्ठव के साथ किया है। इसमें गंगा का पावन रूप, मन्दिर में दिव्य पूजा, यात्रियों का जमघट, सुहावने प्रातः काल की छटा आदि का वर्णन पढ़कर किस व्यक्ति के हृदय में भक्ति रस का उद्रेक नहीं हो जाता—

"धीमी धीमी धार सुरधुनी ता ढिग सोहत,
पुलकि पसीजत मुनिजन हूँ जाकी छबि जोहत।
जाकी सोभा देखि चिदानँद हिय आरोहत,
देव देव के सहस नयन हूं इहि लखि मोहत॥

बिहारी सतसई के सरस तथा गूढ़ दोहों पर कुण्डलियाँ बनाने की अभिलाषा बहुत से हिन्दी के कवियों में रही। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी बिहारी के दोहों पर कुण्डलियाँ बनाने का प्रयास किया था। परन्तु उनका यह कार्य अधूरा ही रह गया। सरदार कवि रचित इन दोहों पर कुण्डलियाँ सुनी जाती हैं। परन्तु सुकवि व्यासजी के द्वारा रचित कुण्डलियाँ इनके जीवनकाल में ही प्रकाशित होकर प्रसिद्ध हो गई

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थीं। व्यासजी ने बिहारी के दोहों पर जो कुण्डलियाँ बनाई हैं वे 'बिहारी-बिहार' के नाम से प्रसिद्ध हैं। दोहों के संकुचित तथा संकीर्ण क्षेत्र में उनमें निहित भावों को विस्तार पाने का अवकाश नहीं है। अतः यह भावराशि सिमिट कर रह जाती है। परन्तु कुण्डलियों में इन भावों को विस्तृत करने का अवकाश मिलता है। व्यासजी ने कहीं-कहीं पर बिहारी के एक दोहे पर ही दो-दो कुण्डलियों की रचना की है। इस प्रकार इन्होंने उनके भावों को प्रकाशित करने में सफलता प्राप्त की है। बिहारी के इस नीतिपरक दोहे पर व्यासजी की यह कुण्डलिया कितनी सुन्दर तथा सटीक बन पड़ी है। बिहारी का दोहा है—

"मीत न नीत गलीत ह्वै, जो धन धरिये जोरि।
खाये खरचे जो बचै, तो जोरिये करोरि॥
ये करोरि धिक्कार ताहि, जो धन धरि गाड़ै।
फूटी हाँडिहि राँधि, आपु नित पोवत माँड़ै॥
बालन भूखन हनै, फटे पट राखै ती तन।
सुकवि देव करि दूरि नाँहि समुझावै मीतन॥

पण्डित व्यासजी संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों के सम्पादक रूप में विख्यात थे। इनके द्वारा संस्कृत देववाणी का 'शृंगारविलासिनी' नामक एक रसमय अलंकारग्रन्थ खड्ग-विलास प्रेस, पटना से १९४४ वि० सं० (१८८७ ई०) में प्रकाशित हुआ था। इसके रचयिता 'इष्टिकापुर' निवासी देवदत्त कवि हैं। विषय है-- नायिका-नायक भेद। इसमें हिन्दी के दो लोकप्रिय छन्दों—दोहा तथा सवैया--का प्रयोग संस्कृत कविता में बड़ी मधुरता से किया गया है। लक्षण दोहे में दिये गये हैं और उदाहरण सवैया छन्द में। देवदत्त कवि ने इतनी सुन्दरता से उदाहरणों का विन्यास किया है कि उनमें किसी प्रकार की कृत्रिमता का संकेत नहीं मिलता। प्रसादमयी शैली में अविराम प्रवाह है, सुन्दर पदशय्या है, भावों का मधुमय विन्यास है। एक-दो संस्कृत में निबद्ध सवैयों का रसास्वादन कीजिये --

स्वीया नायिका का यह रूपविन्यास कितना मनोरम है -

शोभित शील गुणाचरणाचल साधुतया न तया सममन्या
कोमलवागतिमन्दतरा गतिरालपितस्मित साधुशरण्या।
नाथ! कथं कथयामि तपस्तव यस्य गृहेऽस्ति पतिव्रतगण्या
योषिदियं परमा परमावधि-पुण्यलता धरणीतलधन्या॥
(श्लोक ६)

खण्डिता नायिका का वर्णन कवि इस प्रकार करता है—

कृत जागर एव वने न्यवसः प्रजपन् निशि कामदमन्त्रमलम्।
सततं समता मदनेन तथा समपादि मनोभवदेवबलम्॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जननाथ ! जनश्रवणे श्रवणेन पुनाति तवाद्य यशो विमलम् ।
कृतमद्य विभो भवताऽखिलसिद्धसमृद्धि-सुखैकगणं सुफलम् ॥
(पद्य ७३)

कृष्णाभिसारिका का यह वर्णन भी अत्यन्त सुन्दर पदावली में निबद्ध तथा नितान्त मनोरंजक है --

सायमसौ रतिकुञ्जगृहे सखि गच्छति शंभुरिपोरबलेव ।
नीलरुचाम्बरकेण वृता कलधौत - कलद्युतिरिन्दुकलेव ॥
कीदृगशोभि तमालतलोपविशन्त्युपमा तु तदा सकलेव ।
श्यामघनैः सुघनैर्मिलिता तमसा गिलिता चलिता चपलेव ॥
(पद्य ७७)

इस सुन्दर सवैये में उपमा की निराली योजना नितान्त दर्शनीय है । ग्रन्थ छोटा ही है, परन्तु अपने में पूरा है और हिन्दी छन्दों का देववाणी में प्रयोग करने का एक सफल अभिराम प्रयास है । व्यासजी ने इसकी भूमिका में लिखा है कि इस ग्रन्थ के संग्राहक हैं उन्हीं के पितृव्य श्री राधावल्लभ पण्डित जो महाराजा डुमराँव (जिला भोजपुर, बिहार) के आश्रित रसिक कवि थे । व्यासजी भी हिन्दी वृत्तों के संस्कृत में प्रयोग के प्रबल समर्थक थे और इसीलिए उनकी दृष्टि ऐसे सुन्दर अभिनव प्रयास की ओर स्वतः आकृष्ट हुई ।

काशी की व्यास परम्परा के सुमेरु

पण्डित रमानाथ व्यास

(आस्पद-व्यास, उपाधि भारताचार्य)

काशी की पौराणिक परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है । इसी परम्परा के अन्तर्गत गत शताब्दी में जन्म लेने वाले पं० रमानाथ जी व्यास अपनी अलौकिक भाषण शक्ति के कारण काशीस्थ पौराणिकों में अग्रगण्य माने जाते हैं ।

जिन राजाओं ने काशी में शिवालयों तथा मन्दिरों की स्थापना की उन्होंने उनमें पुराण के प्रवचन की भी सुन्दर व्यवस्था की है । प्रत्येक प्रतिष्ठित मन्दिर में इस कार्य के लिए विद्वान् पौराणिक की नियुक्ति की जाती है । पौराणिक जी पूर्वाह्न या अपराह्न में किसी विशिष्ट पुराण का प्रवचन नियमित रूप से करते हैं । इसके लिए उनको नियमित वृत्ति राजा की ओर से दी जाती है । यह व्यवस्था पहले थी और आज भी किसी न किसी रूप में यह परम्परा चल रही हैं । कुछ पौराणिक काशी में ऐसे है जो अपने घर पर मन्दिर की स्थापना कर पुराण का प्रवचन नियमित रूप से करते हैं । पं० रमानाथ व्यास भी ऐसे ही पौराणिकों में अग्रगण्य थे ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० रमानाथ व्यास का जन्म गत शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ था। ये गुजरातियों में प्रसिद्ध मोढ़ ब्राह्मण जाति के उच्चकुल में पैदा हुए थे। मोढ़ जाति के विषय में पुराणों में ऐसा वर्णन पाया जाता है कि भगवान् रामचन्द्र ने इन्हें धर्मारण्य में आश्रय दिया था। धर्मारण्य में यह परम्परा आज भी चली आती है। काशी के विद्वानों से इन्होंने शास्त्रों का अध्ययन किया था। महाभारत, रामायण तथा पुराणों का अनुशीलन इन्होंने स्वयं अपनी प्रतिभा तथा परिश्रम से किया था। भागवत तथा रामायण के प्रवचन करने वाले व्यासों का टोटा नहीं है। परन्तु महाभारत का व्याख्याता पौराणिक तो नितान्त दुर्लभ ही है। व्यास जी की यही विशिष्टता रही कि ये महाभारत की कथा बड़े नियम, प्रेम तथा निष्ठा के साथ प्रतिदिन कहते थे। इनका आवास-स्थान काशी में भगवती संकटाजी के मन्दिर के पास ही था जिसमें इन्होंने भगवती पीताम्बराजी (बगलामुखी) की स्वर्ण मूर्ति की स्थापना की थी। इसी मन्दिर में ये महाभारत की कथा बड़े उत्साह तथा निष्ठा के साथ कहते थे। सैकड़ों आवृत्ति हो जाने के कारण जान पड़ता था कि महाभारत इनके सामने मानों नृत्य कर रहा हो। महाभारत जैसे लक्षश्लोकात्मक विशाल ग्रन्थ का अनुशीलन करना तथा उसका मर्मज्ञ होना अपने में ही एक विशेष उपलब्धि है और यह पण्डित रमानाथजी व्यास में अपनी पूर्ण मात्रा में थी—इस कथन में किसी प्रकार की अत्युक्ति नहीं है।

कथाशैली

पं० रमानाथ व्यास जी की कथाशैली पण्डितों के निमित्त जितनी पाण्डित्यपूर्ण होती थी, साधारणजनों के लिए वह उतनी ही व्यावहारिक एवं आवर्जक होती थी। व्यास गद्दी पर बैठकर जब आप मनोयोग-पूर्वक कथा कहने लगते थे उस समय मालूम पड़ता था कि कोई सिंह गर्जन कर रहा है। आपकी बातचीत प्रतिपद में चमत्कारी श्लेषों से भरी हुई होती थी। ये व्यक्तिवाचक नामों का भी पदच्छेद कर विशेष चमत्कार दिखलाते थे। 'श्यामलाल' नामक सेठ से कोई अप्रिय घटना सुनाने से पहिले पूछ लेते थे कि कहिए 'श्याम' जी, यदि आप 'लाल' (क्रुद्ध) न हों तो कुछ बातें आपको सुनाऊँ। व्यास जी के इस आलंकारिक चमत्कार से श्रोतागण विशेष परिचित थे। फलतः कोई कटुवचन सुनकर भी अप्रसन्न नहीं होता था। इनकी वाग्धारा गङ्गाजल के समान निर्मल एवं पवित्र होती थी। सचमुच ऐसा अध्यात्मतत्त्व का वेत्ता, व्यवहार का सर्वांगीण ज्ञाता, शाब्दिक चमत्कारों से श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर देने वाला व्यास मिलना काशी में भी दुर्लभ था, अन्यत्र की बात ही क्या कही जाय ?

आपका केवल महाभारत ही में इतना प्रचण्ड पाण्डित्य था सो नहीं, व्याकरण, साहित्य आदि विषयों में भी ये अच्छे व्युत्पन्न थे। आपकी कथा सुनने के लिए काशी के पण्डित तथा छात्र जाकर बैठते थे। कथा के बीच-बीच में ही ये किसी-किसी पद की साधनिका पण्डितों से पूछ बैठते थे, तब उसका उत्तर देना कठिन हो जाता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। ये अपने स्थान को छोड़कर किसी के मकान में कथा कहने के लिए कभी नहीं जाते थे। निःस्पृहता के साथ अपना सात्त्विक जीवन बिताते थे। भगवती पीताम्बरा की इनके ऊपर अकृत्रिम अनुकम्पा जो थी। ये मन्त्रशास्त्र में भी विशेष दक्षता रखते थे। अपने ही आवास पर भगवती पीताम्बरा की सुवर्णमयी मूर्ति इन्होंने स्थापित की थी जिसकी पूजा-अर्चा ये बड़ी तल्लीनता से करते थे। पुराण विद्या एवं तन्त्र विद्या—इन दोनों विद्याओं के परिनिष्ठित ज्ञाता एवं मार्मिक अनुसन्धाता थे। तभी तो घर बैठे इन पर महालक्ष्मी की कृपाधारा की सन्तत वर्षा होती थी।

पण्डित रमानाथ जी चित्रकला के विशेष प्रेमी तथा पारखी थे। काशी के ही प्रसिद्ध चित्रकार रामप्रसाद से इन्होंने श्रीमद्भागवत में वर्णित कृष्णलीलाओं के तथा दुर्गा सप्तशती में उल्लिखित भगवती दुर्गा की चरितसम्बन्धी लीलाओं के बड़े ही मनोरम, आवर्जक तथा प्रभावशाली चित्र तैयार कराये थे। इस कार्य में इन्होंने धन और मन, दिल और दिमाग दोनों को लगाकर जो चित्रावली तैयार कराई थी वह काशी की सांस्कृतिक विभूति है। उसका प्रदर्शन उत्सव के अवसरों पर व्यास जी के वंशजों द्वारा आज भी पीताम्बरा जी के मन्दिर में किया जाता है। यह चित्रावली नितान्त सुन्दर, आवर्जक तथा मूलानुसारी है। प्रत्येक चित्र के नीचे भागवत तथा दुर्गासप्तशती का वह विशिष्ट श्लोक उद्धृत किया गया है जिसके आधार पर उस चित्र की रचना की गई है। यह पूरी चित्रावली पण्डित रमानाथ व्यास जी की सहृदयता तथा इनके कलाप्रेम की सद्यः परिचायिका है।

एक विशिष्ट संस्मरण

महामना पं० मदनमोहन मालवीय जी भी श्रीमद्भागवत के रसिक श्रोता तथा विद्वान् प्रवक्ता थे। एक बार उन्होंने पण्डित रमानाथ जी व्यास को विश्वविद्यालय में पधार कर अपनी मनोरम दिव्य कथा सुनाने के लिए विशेष आग्रह से बुलाया। व्यास जी अपने दलबल के साथ उस दिन पधारे। कथा का स्थान था आर्ट्स कालेज का विशाल 'हाल' जहाँ एकादशी को महामना जी स्वयं कथा बाँचकर छात्रों तथा अध्यापकों को अपनी मधुर वाणी में उपदेश दिया करते थे। भागवत की रासपञ्चाध्यायी के प्रथम श्लोक की ही विशद व्याख्या व्यास जी ने कह सुनाई। इनकी दृष्टि जब श्रोताओं पर पड़ी तब उसमें महिलाओं के जमघट को लक्ष्यकर कथा के प्रारम्भ में ही इन्होंने कहा—श्रोतागण, काशी की जनता मुझे 'साहबान वाले' व्यास जी के नाम से पुकारती है। मेरे नाम से पहिले दिये गये इस विशेषण के दो अर्थ हैं—एक अर्थ तो यह है कि मेरे घर के ऊपर 'साहबान' है जहाँ श्रोता लोग बैठकर मेरी कथा सुनते हैं। इसका एक दूसरा अर्थ भी है कि मैं 'साहबों' का (बाबू लोगों का) व्यास हूँ, मेमों का (औरतों का) नहीं। कथा-प्रसंग में मैं नाना प्रकार की छींटाकशी किया करता हूँ पुरुषों के चरित्र पर तथा स्त्रियों के चरित्र पर भी। काशी-वासी इसे अच्छी तरह जानते हैं और वे सह लेते हैं। परन्तु यह ठहरा नया स्थान, मेरी कथा शैली से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपरिचित प्रदेश। फलतः यदि कथा के बीच में मेरे मुँह से स्त्रियों के लिए कोई सच्ची, परन्तु कड़वी, बात निकल पड़े, तो आप उद्विग्न न हों। मुझे क्षमा कर दें।

"यह विश्वविद्यालय सर्वथा धन्य तथा श्लाघनीय है जहाँ के अध्यक्ष ही 'मदन मोहन' हैं, जिनमें मद नहीं है, मोह नहीं है, परन्तु जो अपनी वेशभूषा से, अपनी मंजुल-मधुर वाणी से मदन का भी मोहन कर देते हैं। यहाँ की प्रशंसा क्या की जाय? जहाँ का संचालन स्वयं 'आनन्दशंकर ध्रुव' करते हैं, जहाँ चारों ओर से 'गोविन्द' 'गोविन्द' (महामना के कनिष्ठ आत्मज गोविन्द मालवीय) के नाम उच्चरित हो रहे हैं। यहाँ के प्रतिष्ठा देने वाले हैं—'श्यामाचरण' (प्रो० श्यामाचरण डे साहब) जो भगवती श्यामा के चरणसेवक हैं।" ऐसी ही सुन्दर पदावली में व्यासजी ने अपनी कथा का आरम्भ किया। श्रीमद्भागवत की बड़ी रसभरी पाण्डित्यमण्डित कथा कह सुनाई। रासपञ्चाध्यायी के तृतीय श्लोक में ही 'जगौ कलं वामदृशां मनोहरम्' की व्याख्या में 'कलं' पद से कामबीज 'क्लीं' की ध्वनि की ओर उन्होंने संकेत किया।

घण्टों कथा चली। श्रोतागण मन्त्रमुग्ध के समान कथा सुनते रहे। क्यों न हो? महामना जैसा श्रोता तथा व्यासजी ऐसा कथावाचक। यह जोड़ी भी अद्भुत जो ठहरी। लेखक इस विशिष्ट कथा के अवसर पर स्वयं उपस्थित था।

व्यासजी के अनुज

पण्डित विद्यानाथ व्यास

(आस्पद—व्यास; उपाधि—पौराणिक-वाचस्पति)

पण्डित विद्यानाथजी रमानाथजी के अनुज थे। इनका जन्म विक्रमी संवत् १९१२ (= १८५५ ई०) में हुआ था। इनकी शिक्षा-दीक्षा अपने अग्रज की देखरेख में हुई थी। ये वाल्मीकिरामायण के मर्मज्ञ कथावाचक व्यास थे। भगवान् रामचन्द्र के प्रति इनकी अविरल भक्ति थी। इन्होंने काशी में 'रतनफाटक' नामक मुहल्ले के अपने विशाल भवन में रामचन्द्र की प्रतिष्ठा की थी। ये जितने बड़े पौराणिक थे, उतने ही बड़े साधक भी थे। फलतः इनके तपस्याप्रसूत अनेक चमत्कारों की प्रसिद्धि काशी की जनता में आज भी विद्यमान है।

कहा जाता है कि सिद्धमाता की गली में बच्चा साव नामक एक साहूकार रहते थे जो श्वेत कुष्ठ से पीड़ित थे। उन्होंने इस रोग की बहुत सी दवा कराई, परन्तु रोग ज्यों का त्यों बना ही हुआ था—छूटने का नाम भी नहीं लेता था। साहु ने व्यासजी से प्रार्थना की। इन्होंने दयार्द्र होकर अपनी तपस्या के बल से उसे नीरोग कर दिया। वह भला-चंगा होकर जीवन बिताने लगा।

एक दूसरी आश्चर्यभरी घटना का भी बहुशः उल्लेख आस्तिक जनता करती है। विद्यानाथ जी व्यास सांगवेद विद्यालय (रामघाट, काशी) में कथावाचन के लिए

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिदिन आया करते थे। एक दिन एक विचित्र घटना घटी। जब विद्यालय में कथावाचन के लिए व्यासजी सायंकाल जा रहे थे, तब रास्ते में पड़ने वाले 'आनन्द भैरव' के मन्दिर के सामने ही इन्होंने खराबदास नामक दर्जी को रावण की प्रशंसा करते सुना। साथ में वह भगवान् रामचन्द्र के जीवन की कटु आलोचना करता हुआ घनघोर निन्दा भी कर रहा था। व्यासजी के कानों में निन्दा के ये कठोर शब्द ज्यों ही घुसे, ये उद्विग्न हो गए और उस दर्जी को मरण का अभिशाप दे दिया। दर्जी अपने घर लौटकर ज्यों ही आया, त्यों ही वह मकान शोर करता हुआ धड़ाम से बैठ गया। विद्यालय के लोग चकित होकर उस आवाज का कारण खोज ही रहे थे कि व्यासजी ने झट से कह दिया कि यह और कुछ नहीं है, उस निन्दक दर्जी के घर गिर जाने की आवाज है। दर्जी ने भगवान् रामचन्द्र की जो निन्दा की, उसी का यह बुरा परिणाम है। यह उसी के घर गिरने की आवाज है। लोगों ने जाकर देखा तो बात सच्ची निकली। उनका दिया हुआ शाप तुरन्त फलीभूत हो गया। यह उनकी निग्रह शक्ति का सद्यः प्रभाव था।

ऐसे ही चमत्कारी रामायण कथा के मर्मज्ञ व्याख्याता, तपस्वी विद्यानाथ जी व्यास महाराज थे। अन्त में आपने संन्यास ग्रहण कर लिया। १९८८ विक्रमी सं० (= १९३१ ई०) में इनका निर्वाण सम्पन्न हो गया। फलतः पं० रमानाथ जी तथा पं० विद्यानाथ जी दोनों ही काशी की पौराणिक परम्परा को अग्रसर करने वाले माननीय विद्वान् थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४

पण्डित रामशास्त्री तैलंग

(आस्पद मानवल्ली, उपाधि—महामहोपाध्याय)

पं० रामशास्त्री म० म० पं० गंगाधर शास्त्री के छोटे भाई थे। नृसिंह शास्त्री की प्रथम पत्नी से पं० गंगाधर शास्त्री का जन्म हुआ। परन्तु प्रथम पत्नी के देहावसान के पश्चात् नृसिंह शास्त्री ने दूसरा विवाह किया। इसी विवाह से रामशास्त्री तथा लक्ष्मण शास्त्री की उत्पत्ति हुई। रामशास्त्री बालकपन से ही प्रतिभा-सम्पन्न थे। उपनयन संस्कार होने के बाद इन्होंने कृष्णयजुर्वेद का विधिवत् अध्ययन किया। अपने पिता से ही इन्होंने काव्य-शास्त्र का अनुशीलन किया। इसके पश्चात् उस युग के महावैयाकरण और 'परिभाषेन्दु शेखर' की हैमवती टीका के यशस्वी लेखक पं० यागेश्वरओझा से व्याकरण में सिद्धान्त कौमुदी का अध्ययन किया। इसके अनन्तर पं० बालशास्त्री से व्याकरण के टीकाग्रन्थ, महाभाष्य, धर्मशास्त्र, मीमांसा तथा वेदान्त का सम्यक् अनुशीलन किया। अपने पिता की अनुकम्पा से इन्होंने साहित्य शास्त्र का गम्भीर तथा तलस्पर्शी स्वाध्याय किया।

साहित्य और शास्त्र में आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण करके इन्होने अंग्रेजी भाषा का भी सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया। अनेक वर्षों तक अपने घर पर ही ये छात्रों को पढ़ाया करते थे। प्राचीन ग्रन्थों के संशोधन एवं प्रकाशन के कार्य में ये बड़ी निपुणता के साथ व्यस्त रहते थे। सन् १८८८ ई० में काशिराजकीय संस्कृत महाविद्यालय में साहित्य तथा दर्शन के अध्यापक के रूप में इनकी नियुक्ति हुई। लगातार ३४ (चौंतीस) वर्षों तक इस पद को सुशोभित करते हुए इन्होंने सन् १९२२ ई० में स्वयं इस पद का परित्याग कर अवकाश ग्रहण कर लिया। इसके पश्चात् तीन वर्षों तक ये जीवित रहे। सन् १९२५ ई० में ६५ वर्ष की आयु में काशी में ही इनका देहावसान हुआ।

कालेज में ये विशेषतः साहित्य का अध्यापन करते थे। साहित्य शास्त्र की इनकी व्युत्पत्ति गम्भीर एवं बहुमुखी तो थी ही, अध्यापन की कला में भी ये सफल सिद्ध हुए। इनके द्वारा पढ़ाये गये छात्रों की संख्या काफी लम्बी है। ग्रन्थों के अध्यापन के साथ ही साथ ये काव्यरचना का भी विशेष शिक्षण दिया करते थे। ये स्वयं ही प्रतिभा-सम्पन्न, कमनीय काव्य कला के उपासक, सुकवि थे। फलतः इनकी शिक्षा का प्रभाव छात्रों के ऊपर विशेषरूप से पड़ता था। काव्यकला में निपुणता प्राप्त कर सुन्दर कविता के प्रणयन में चतुर इनके शिष्यों की संख्या अत्यधिक है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थ रचना

पं० रामशास्त्री ने अनेक काव्य-ग्रन्थों की रचना की है जिनसे इनकी वैदर्भी शैली का स्पष्ट पता चलता है। इन ग्रन्थों में से बहुत से स्तोत्र हैं जिनका प्रकाशन 'सूक्ति-सुधा' नामक संस्कृत पत्रिका में हुआ है। इनके प्रकाशित ग्रन्थों में 'षड्ऋतुविलास,' शिवाश्व घाटी, श्री गीतिरत्न—ये तीन काव्य अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इन काव्यों की मधुर रचना, वैदर्भी रीति तथा कल्पना पटुता को देखकर कौन ऐसा विद्वान् होगा जो रामशास्त्री को अपने समय का एक कमनीय महाकवि मानने के लिए उद्यत न होगा। इनके द्वारा सम्पादित तथा टिप्पणी एवं भूमिका से विभूषित अनेक ग्रन्थ विजयनगर ग्रन्थमाला, चौखम्भा संस्कृत सीरीज तथा बनारस संस्कृत सीरीज ग्रन्थ-माला में प्रकाशित हुए हैं। इनका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ "**लक्ष्मी सहस्र**" नामक काव्य की 'अवतरणिका' निःश्रेणिका टीका है जो चौखम्भा संस्कृत सीरीज में प्रकाशित हुई है (१९६३ विक्रमी = १९०६ ई०)। वेंकटाध्वरि द्वारा रचित यह स्तोत्ररत्न श्लेष तथा यमक अलंकारों से संवलित होने के कारण अत्यन्त कठिन माना जाता है। इसके भीतर प्राचीन टीका के सहारे भी छात्रों का प्रवेश पाना नितान्त दुष्कर था। अतः इस दुर्बोध ग्रन्थ को सुबोध बनाने के लिए शास्त्री जी की सुबोधिनी टीका नितान्त उपयोगी है। यही इनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्याख्या-रचना है।

पं० रामशास्त्री को सरकार ने 'महामहोपाध्याय' की पदवी से विभूषित किया था। काशी की भारतधर्ममहामंडल संस्था ने इन्हें "साहित्य-सुधाकर" की पदवी प्रदान की थी।

चरित्र

युवावस्था में ही अपनी धर्मपत्नी और पुत्र के देहावसान हो जाने के कारण ये संसार से विरक्त तथा उदासीन होकर ऋषियों के समान जीवन व्यतीत करने लगे थे। इनके जीवन में कथनी-करनी में कोई अन्तर नहीं था। शास्त्रों में तपस्वी लोगों के लिए जिन नियमों तथा आचरणों का विधान बतलाया गया है उनका ये बड़ी आस्था के साथ पालन करते थे। सदाचार के पालन में इनकी निष्ठा, नियम के पालन में दृढ़ता, तपस्वी जीवन का निर्वाह—ये ऐसे गुण हैं जो मनुष्यों में दुर्लभ तथा विरल होते हैं। ये गुण इनमें युवावस्था से ही विद्यमान थे परन्तु धर्मपत्नी की मृत्यु के बाद इनकी निष्ठा और अधिक बढ़ गई। इनकी सबसे बड़ी विशिष्टता समय की पाबन्दी थी जो संस्कृत के पण्डितों में बहुत कम पाई जाती है। इन्हें समाचार पत्र पढ़ने का बड़ा शौक था। अतः ये नित्य प्रति अपने घर से पैदल ही कारमाइकेल लाइब्रेरी में प्रतिदिन ठीक समय से जाया करते थे। इनकी समय की पाबन्दी देखकर लोग चकित हो जाते थे। पं० रामशास्त्री को 'मर्यादा पण्डित' कहना कुछ अनुचित नहीं होगा क्योंकि इन्होंने अपने जीवन-काल में स्पष्टतः दिखला दिया कि शास्त्रों की मर्यादा की रक्षा कैसे की जाती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य-रचना

पं० राम शास्त्रीजी बड़े ही सहृदय व्यक्ति थे तथा काव्य के निर्माण में अलौकिक प्रतिभा के धनी थे। इनकी कविता में सौन्दर्य तथा चारुता के साथ शब्द-सौष्ठव का अनुपम मेल है। दुःख के साथ कहना पड़ता है कि इनकी कविताओं के 'सूक्ति सुधा' के भीतर निबद्ध होने के कारण उनका उतना प्रचार नहीं है जितना होना चाहिए। सुक्ति सुधा' के अंक भी आजकल दुष्प्राप्य हैं। अतएव राम शास्त्रीजी की कविता के उदाहरण प्रस्तुत करने में लेखक को विशेष अन्वेषण करना पड़ा है।

संस्कृत के काव्योचित शब्दों के ऊपर इनका बड़ा महनीय प्रभुत्व था। उचित शब्दों का चयन ये बड़ी मार्मिकता से किया करते थे। ये काव्य कला के शिक्षणार्थी अपने छात्रों से कहा करते थे—"कविता करते समय एक भाव के प्रकट करने के लिए अनेक शब्द हाथ जोड़कर हमारे सामने खड़े होते हैं। तब उनमें से समुचित शब्द का चयन कर अन्य शब्दों को हठात् आ जाने से हम लौटा दिया करते हैं। तुम लोगों को एक-दो शब्दों से सन्तोष न करना चाहिए, प्रत्युत अनेक शब्दों को उपस्थित कर प्रसंगानुसार उचित शब्द को ही ग्रहण करना चाहिए। अन्य शब्दों को लौटाते समय उन्हें तिरस्कृत न कर आश्वासन देना चाहिए कि आप लोग धैर्य रखें। जब प्रसंग अनुकूल होगा तब आप लोगों को बैठने के लिए स्थान मिलेगा।" इनके छात्र इन उपदेशों का कितना पालन करते थे, यह तो ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता, परन्तु शास्त्रीजी तो इसका सर्वांशतः पालन करते थे और इसीलिए इनकी कविता में शाब्दी चारुता अपने पूर्ण वैभव के साथ विराजती है।

'सुक्ति सुधा' के विभिन्न अंकों में इनकी कविता प्रकाशित होती रही है जिनमें अधिकांश का विषय ऋतु वर्णन है। वर्षाविलासः (३९ पद्य), ग्रीष्मविलासः (४९ पद्य), वसन्तविलासः (५५ पद्य) तथा शरद्विलासः (३९ पद्य)—ये विलासचतुष्टय महाकवि कालिदास के 'ऋतुसंहार' की स्मृति बलात् दिलाते हैं। शब्द-सौष्ठव के साथ अलंकार की मनोरम योजना रसिकजनों का हृदय हठात् आकृष्ट करती है।

कतिपय दृष्टान्त प्रस्तुत किये जा रहे हैं—मेघ के गर्जन पर कवि की कल्पना है कि वह अपने गर्जन के द्वारा प्रभा से चमचमाती प्रियतमा विद्युत् को डाँट रहा है कि सुवर्ण कान्तिमयी ललना का अनुकरण कर अपने को उपहास का पात्र मत बनाओ—

सौवर्ण-वर्णमद-चूर्णन-दक्ष-कान्ति
बाले! मुधैव भवतीं प्रविडम्बयन्तीम्।
शम्पां प्रकम्प्रवपुषं वनितां स्वकीयां
गर्जन् नु तर्जयति वारिधरोऽयमद्य॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्षाकालीन भूमि वासकसज्जा नायिका के समान शोभनीय रम्यता धारण कर रही है। देखिए—

जाती-लता-गलित-पुष्पमयं सिताभं
तल्पं प्रसार्य, मणिकीटमयान् प्रदीपान्।
सन्दीप्य, नीरद-समागम-काङ्क्षिणी भू-
राभाति रम्यतनु! वासकसज्जितेव॥

जेठ की चिलचिलाती दुपहरी में छायादार पेड़ों के नीचे बैठकर, सातू पीने वाले सन्तुष्ट पान्थजन, कल्पवृक्ष के तले बैठकर अमृत पीने वाले देवताओं का अनुकरण नहीं कर रहे क्या? अवश्य कर रहे हैं—

मूले तरोर्गलितभूमितले निविष्टाः
सक्तून् निपीय सरसांस्तरसा यथेच्छम्।
सत्कल्पवृक्षतलगान् अमृतस्य तृप्तान्
पान्थाश्चिरं सुरवरान्नु विडम्बयन्ति॥

वसन्त में पंचम में कूकने वाली कोकिल को कवि वैदिक पुरोहित के रूप में देख रहा है जो मधु (चैत्र) तथा माधवी (लता) के स्वयंवर के उत्सव में सस्वर वैदिक मन्त्रों का पाठ कर रहा है। भाव बहुत ही सुन्दर तथा सामयिक है—

श्रेयान् वरो मधुरयं नवमाधवीयं
रम्या स्वयंवरवधूरनयोः किमद्य।
मन्त्रान् पठन् स्वरमयांश्च पिकद्विजोऽसौ
वैवाहिकं विधिभरं कुरुते पुरोधाः॥

वसन्त में खिले हुए फूलों के द्वारा सम्पन्न रमणीय वेष को धारण करने वाली वनी (वनभूमि) वनिता के प्रभूत सौन्दर्य को धारण कर रही है। फूलों के रंगों पर ध्यान दीजिए

शाटीं सुपाटलमयीं परिधाय चारु-
माच्छाद्य किंशुकसुमप्रकरं निचोलम्।
चोलं तमालमतिनीलमियं दधाना
भूयो विराजति वनी वनिता नताङ्गी॥

श्री रामशास्त्रीजी का कोमल हृदय देवी-देवताओं की भव्य स्तुति के समय भक्ति से नितान्त आर्द्र हो जाता था और इनकी लेखनी कोमल कान्त पदावली के सर्जन में कथमपि हतप्रभ नहीं होती थी। 'सूक्ति सुधा' में देवस्तुति के प्रसंग में इनकी तीन कविताएँ प्रकाशित हैं—(१) **सूर्ययाचना,** (२) **गौरीस्तवः** तथा (३) **शिवाश्वधाटी**। इन स्तुतियों के पठनमात्र से कवि की ललित लेखनी का लावण्यमय चमत्कार पाठकों के हृदय में सद्यः स्फुरित हो जाता है। सूर्य की स्तुति में कवि कहता है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार-घोरसागर-तरणिः
कल्याण तेजसामरणिः ।
निःश्रेयस्य सरणिर्विवर्तरतु
करुणामयीं दृशं तरणिः ॥

शब्द-शय्या की पेशलता तो यहाँ अकथनीय है । 'तरणि' शब्द का द्वयर्थक प्रयोग तथा अरणि एवं सरणि के मंजुल सामरस्य का संयोग सच्चे कवि का सद्यः परिचायक है ।

'गौरीस्तव' का भगवती मीनाक्षी की प्रशंसा में उपन्यस्त यह पद्य कितना मधुर एवं आवर्जक है—

नानादीनानाथ जनानां दयमानां
दूनानां नो मानस-शान्ति विदधानाम् ।
कीनाशीयं मानमनार्यं विधुनानां
मेनाकन्यां मीनसमाक्षीमहमीडे ॥

इसी स्तव के एक अन्य मञ्जुल पदावली से अन्वित पद्य की छटा देखिए

कुन्दामन्दाऽहंकृति – निन्दाकरदन्तीं;
वन्दारुणान्दारुणामन्ध्यन्दमयन्तीम् ।
आनन्दान्दाम नितान्तं प्रथमन्तीं;
स्कन्दाऽम्बां तान्दारितपीडामहमीडे ॥

यहाँ रमणीय शब्दयोजना के संग में प्रसाद गुण का विन्यास सातिशय मधुरिमा से सिक्त है ।

श्री रामशास्त्री जी की 'शिवाऽश्वधाटी' तो अपनी शैली में निबद्ध स्तुतिकाव्य का नितान्त कोमल निदर्शन है । भगवान् शङ्कर की यह श्रोतव्य स्तुति 'अश्वधाटी' में है जिसके प्रत्येक चरण में २२ वर्ण होते हैं और सात-सात वर्णों पर दो यतियाँ रहती हैं और अन्त में आठ वर्ण होते हैं । आदि के तथा यति के अनन्तर वाले शब्दों के द्वितीय अक्षर पर नियमतः अनुप्रास रहता है । इसी नियन्त्रण के कारण अश्वधाटी की रचना शब्दवैदुषी की प्रतिभा मानी जाती है । अब शास्त्री जी की इस विशिष्ट शब्दयोजना से समन्वित ३६ पद्यों वाली रचना का आनन्द लीजिए ।

आरम्भिक पद्य शिवजी के स्वरूप का परिचायक है—

वन्दामहे कमपि वन्दारुलोकमनु मन्दारपादपवरं
वृन्दारकेन्द्र सुखकन्दायितं विनतनन्दात्मज स्तुतपदम् ।
कुन्दावदातमहिवृन्दाञ्चितं विमलसन्दाकिनीभृतजटं
तन्दारितान्धकमनिन्दास्पदं शिरसिसन्दानितेन्दुमनघम् ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इस पद्य के प्रत्येक चरण में 'न्द' की आवृत्ति ऊपर लिखित नियम के अनुसार तीन-तीन बार है। इस प्रकार पूरे पद्य में 'न्द' की आवृत्ति १२ बार हुई है)।

त्वं जात भूरिगुण पुञ्जायितोऽपि
किमु गञ्जारतो भवसि भोः।
कञ्जाभिराममुख ! किं जायसे युवति-
शिञ्जारवेषु चपलः ?
गुञ्जारवानुगतकुञ्जासु भूमिषु च
किञ्जारतां चरसि वा ?
खञ्जायितस्य तव सञ्जायतामशुभ-
सञ्जारणाय स शिवः ॥

इस रमणीय पद्य का आशय यही है कि तुम उत्पन्न होने वाले अनेक गुणों के पुञ्ज होने पर भी मदिरागृह (गञ्जा, शराबखाना,) का सेवन क्यों करते हो ? कमल के समान सुन्दर मुख वाले सज्जन, युवतियों के नूपुर की झंकार सुनकर चपल क्यों हो जाते हो ? गुञ्जारव से अनुगत कुञ्ज वाली भूमि पर तुम जार का आचरण क्यों कर रहे हो ? तुमने अपने आचरण से परलोक को खञ्ज बना दिया है—तुम्हारे लिए परलोक की गति कुण्ठित हो गई है। भगवान् शिव तुम्हारे अशुभ को दूर करने के लिए उद्यत हो जायँ। यही कवि की प्रार्थना है। इस पद्य में 'ञ्जा' की प्रतिचरण तीन-तीन बार आवृत्ति है।

वाचाटमुख्यमतिनीचाशयं व्रजसि
काचाशया कुनृपतिं
मोचाभया सरसवाचा स्तुवन् भवसि
वाचाल ! तं लघुतमः।
आचारहीन ! किमनूचानता भवति
ते चाटुभिः फलवती ?
त्वं चापलं जहिहि याचाभयं शिवम-
थाऽऽचान्तकामयशसम् ॥

कवि किसी आचरणहीन व्यक्ति के आचरण की निन्दा करता हुआ शिव की उपासना करने के लिए उसे उपदेश दे रहा है—तुम्हारा आचरण कितना निन्दनीय है। तुम काँच (तुच्छ वस्तु) के पाने की इच्छा से बकवादी, अत्यन्त नीच भावना वाले, बुरे राजा के पास जाते हो ? वाचाल ! अपनी केला के समान मधुर सरस वाणी से उस राजा की स्तुति करते हुए तुम क्या नीचतम नहीं बन जाते ? तुम्हारा शास्त्रों का अध्ययन क्या उस राजा की चाटुकारिता करने से फलवान् बनता है ? नहीं, कभी नहीं। तुम चपलता का परित्याग कर दो और कामदेव के यश को आचमन कर जाने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले (काम को जला देने से), निर्भय विहार करने वाले, शिवजी की शरण में शीघ्र ही चले जाओ, तभी तुम्हारा कल्याण है।

महामहोपाध्याय राम शास्त्रीजी इतने मितभाषी थे कि इनकी गम्भीर मुद्रा के दर्शक को ऐसी ललित कविता के स्रष्टा होने की बात कभी ध्यान में ही नहीं आ सकती थी। तथ्य तो यह है कि इनकी प्रतिभा दोनों प्रकार की थी—कारयित्री तथा भावयित्री। कारयित्री प्रतिभा का उदाहरण पूर्वोक्त काव्यरचना है और भावयित्री प्रतिभा का दृष्टान्त 'लक्ष्मीसहस्र' की लघु व्याख्या है। काव्य की रचना में जैसे ये चतुर कवयिता थे, उसकी अध्यापना तथा आलोचना में ये वैसे ही प्रवीण आलोचक थे।

रामशास्त्री के पटशिष्य

पण्डित नारायण शास्त्री खिस्ते

(आस्पद— खिस्ते; उपाधि—महामहोपाध्याय)

पण्डित नारायण शास्त्री खिस्ते का जन्म काशी में ही एक प्रतिष्ठित महाराष्ट्रीय देशस्थ ब्राह्मण कुल में १८८३ ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम श्रीभैरव नायक खिस्ते था। सम्भवतः पिता की छत्रच्छाया इनके ऊपर अधिक दिनों तक न रह सकी। काशी के ही एक महाराष्ट्र विद्वान् बाबा शास्त्री इन्हें अपनी छत्रच्छाया में रखकर आरम्भिक शास्त्रों का अध्ययन कराने लगे। बाबा शास्त्रीजी गंगाधर शास्त्री के शिष्यों में अन्यतम थे। बड़े सुबुद्ध वैयाकरण थे। उनकी देखरेख में खिस्तेजी ने संस्कृत विद्या के अध्ययन में विशेष उन्नति की।

संस्कृत कालेज में महामहोपाध्याय राम शास्त्रीजी तैलंग उस समय साहित्यशास्त्र की गद्दी को सुशोभित कर रहे थे। श्रीखिस्तेजी ने उन्हीं से साहित्यशास्त्र का गम्भीर अध्ययन किया था तथा काव्यरचना में कुशलता उन्हीं के प्रसाद से इन्हें प्राप्त की थी। राम शास्त्रीजी बड़े ही योग्य अध्यापक थे। साथ ही साथ काव्यरचना में बड़े ही निष्णात थे। इन दोनों गुणों को खिस्तेजी ने उन्हीं से प्राप्त किया। महामहोपाध्याय गंगाधर शास्त्रीजी के सम्पर्क में आने का भी इन्हें अवसर प्राप्त हुआ था। इन गुरुजनों के प्रसाद से इनकी साहित्य विद्या चमक उठी। साहित्य के अध्यापन में ये जितने कुशल थे, उतने या उससे अधिक ये कुशल थे संस्कृत कविता की रचना में। इनका निधन काशी में ही १३ अप्रैल १९६१ ई० में हुआ।

अध्ययन

पण्डित नारायण शास्त्री खिस्ते ने इस प्रकार महामहोपाध्याय राम शास्त्रीजी से साहित्यशास्त्र का विधिवत् अध्ययन कर संस्कृत कालेज से 'साहित्याचार्य' की पदवी प्राप्त की। नवीन विषयों की भी अभिज्ञता प्राप्त करने की स्पृहा से इन्होंने अनेक प्राचीन शास्त्रों एवं नवीन विषयों का भी अध्ययन गुरुपरम्परा से किया। युवक पण्डितों में प्राचीन शास्त्रीय प्रौढ़ि के सम्पादन की कामना से, संस्कृत कालेज के अध्यक्ष

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० वेनिस साहब अपनी ओर से एक विशेष कक्षा ही चलाया करते थे जिसमें आचार्य परीक्षोत्तीर्ण जिज्ञासु छात्रों को वे प्राचीन शास्त्रों में न्याय वैशेषिक की तथा नवीन विषयों में प्राचीन इतिहास की शिक्षा दिया करते थे। इस कक्षा में व्याकरणाचार्य पं० रामाज्ञा पाण्डेय तथा व्याकरणाचार्य पं० अम्बिकाप्रसाद उपाध्याय के साथ नारायण शास्त्री भी पढ़ते थे तथा शास्त्रीय चिन्तन एवं अनुशीलन किया करते थे। संस्कृत तथा अंग्रेजी कालेज के प्रिंसिपल होने के कारण वेनिस साहब पर कार्याधिक्य कम न था, परन्तु विद्या की अभिरुचि उन्हें इतनी तीव्र थी कि वे इन पण्डितों के शिक्षण पर विशेष आग्रह रखते थे और समय निकाल कर पढ़ाया भी करते थे। वे सिखाते थे कि प्राचीन शास्त्रों में वर्णित सिद्धान्तों को गम्भीरता से समझने की आवश्यकता है। यदि कोई तथ्य अपनी समझ में नहीं आ रहा है, तो उसे जानकार व्यक्तियों से जानने-समझने की जरूरत होती है। यों ही उसे अनपेक्षित समझ कर उपेक्षित तथा तिरस्कृत करना सर्वथा अनुचित है- अन्याय है।

नारायण शास्त्री-सम्बन्धी एक समय की घटना का परिचय ही उनके सतीर्थ्य पं० अम्बिाप्रसाद उपाध्यायजी ने लेखक को इस प्रकार दिया था। कक्षा में न्याय का प्रसंग चल रहा था। डॉ० वेनिस साहब के तर्क का, उन्हीं के ये विद्वान् शिष्य अपनी युक्तियों से, खण्डन कर रहे थे। उसी समय डॉ० वेनिस ने न्याय की गद्दी पर विराजमान महान् नैयायिक पं० जीवनाथ मिश्र को इस कक्षा में बुलाया और अपना सन्देह निराकरण के लिए उनके सामने रखा। मिश्रजी ने उत्तर दिया, शास्त्र की बातें समझायीं, परन्तु बात जमी नहीं, सन्देह का निवारण हो नहीं सका। उनके चले जाने पर डॉ० वेनिस ने कहा कि मिश्रजी की पद्धति से हम लोगों को विषय समझने का उद्योग करना चाहिए। समझने एवं समझाने की अपनी पद्धति को कुछ समय के लिए दूर रखना चाहिए। तभी शंका का निवारण हो सकता है, अन्यथा नहीं। दूसरे दिन भी नैयायिकजी बुलाये गये और पूर्वदिन के समान ही उनका प्रतिपादन तथा विषयविन्यास रहा, परन्तु आज उनका उत्तर हृदयंगम हो सका और उत्थापित शंका का समाधान बड़ी शीघ्रता से हो गया। कारण यह था कि पण्डित—छात्रों ने उनकी पद्धति से विषय को आज हृदयंगम किया। इतना ही नहीं, डॉ० नार्मन साहब भी प्राकृत, पालि एवं भाषाविज्ञान की कक्षा लिया करते थे। इन कक्षाओं के फलस्वरूप इन आचार्य परीक्षोत्तीर्ण छात्रों के मानसक्षितिज का विस्तार, ज्ञातव्य विषयों के क्षेत्र का एवं पाश्चात्य दार्शनिकों द्वारा निर्णीत तथ्यों का ज्ञान सरलता से सम्पन्न हो जाता था। इन कक्षाओं में शिक्षा प्राप्त करने से नारायण शास्त्रीजी प्राचीन शास्त्री होने के अतिरिक्त एक सामयिक तथा व्यवहारकुशल पण्डित हो गये।

अध्यापन

अध्ययन समाप्त करने के बाद ये सरस्वती भवन के हस्तलिखित विभाग के अध्यक्ष बनाये गये और उस पद पर इन्होंने बड़ी योग्यता के साथ अनेक वर्षों तक कार्य किया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस समय पं० गोपीनाथ कविराज कालेज के प्रिंसिपल थे। उन्हीं की देखरेख में इन्होंने प्राचीन दुर्लभ ग्रन्थों का सम्पादन कर उन्हें प्रकाशित किया। सन् १९४६ ई० में महामहोपाध्याय की उपाधि से ये सम्मानित किये गये। तन्त्रशास्त्र के ये देश-प्रसिद्ध विशेषज्ञ माने जाते थे। ये भगवती त्रिपुरा सुन्दरी के गम्भीर आराधक तथा उपासक थे। सुनते हैं कि ताडकेश्वर मन्दिर के मुकदमे में तन्त्रसम्बन्धी मान्यता एवं सम्मति के लिए जो न्यायिक आयोग कलकत्ता से काशी आया था उसमें इन्होंने ४० दिनों तक अपनी साक्षी दी थी। आपका डॉ० वेनिस के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था ही। विदेश से जो पाश्चात्य विद्वान् संस्कृत के अध्ययन के लिए काशी आते थे उनमें से अनेक विद्वानों को इन्होंने पढ़ाया था। विदेश में आपके शिष्यों में अमेरिका के प्रोफेसर ब्राउन (पिनसेलवानिया विश्वविद्यालय) तथा भाषाशास्त्र के ज्ञाता डा० एकगरटन (येल विश्वविद्यालय) उल्लेख्य हैं। आपने सरल संस्कृत में मार्मिक कहानियाँ भी लिखी हैं। संस्कृत में आप द्वारा लिखित अनेक ग्रन्थ हैं तथा कालिदास के अभिज्ञानशकुन्तल की नवीन टीका आपने लिखी है। काव्यमीमांसा की भी आपने एक प्रामाणिक टीका लिखकर प्रकाशित करायी थी। हिन्दी में भी आपके अनेक शोधमय लेख प्रकाशित हैं।

सरस्वती भवन का संक्षिप्त परिचय

गत शताब्दी के अन्तिम चरण में ही संस्कृत के दुर्लभ ग्रन्थों के हस्तलेखों की खोज का काम सरकार के आदेश से किया जाने लगा। काशिराजकीय विद्यालय (संस्कृत कालेज) में अनेक दुर्लभ हस्तलेखों का संग्रह धीरे-धीरे होने लगा। परन्तु उनके संग्रह की सुव्यवस्था का नितान्त अभाव था। १२ जनवरी १९०६ ई० को बनारस के कमिश्नर श्री डंकन बेली के निवास स्थान पर आयोजित सभा में निश्चय किया गया कि ऐसे पुस्तकालय का निर्माण किया जाय जिसमें राजकीय संस्कृत महाविद्यालय द्वारा संगृहीत बहुमूल्य हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह किया जाय और जहाँ इन ग्रन्थों को जिज्ञासु जन सुगमतापूर्वक देख सकें। इस ग्रन्थागार को प्रिन्स आफ वेल्स के काशी आगमन का स्मारक बनाने का भी निश्चय किया गया। तदनुसार १६ नवम्बर १९०७ ई० को प्रान्त के सर्वोच्च अधिकारी सर जान हिबेट के द्वारा वर्तमान सरस्वती भवन का शिलान्यास किया गया तथा निर्माण पूरा हो जाने पर डाक्टर वेनिस के शासन-काल में ही ६ फरवरी १९१४ ई. को इसका विधिवत् उद्घाटन किया गया। उसके पूर्व ही प्रथम पुस्तकालयाध्यक्ष पं० सुधाकर द्विवेदी के अध्यापक पद पर नियुक्त होने के बाद यह रिक्त पद पं० विन्ध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी को दिया गया। सरस्वती भवन में हस्तलेखों के विशाल संग्रह करने में द्विवेदीजी का कार्य सदा आदर के साथ स्मरण किया जायेगा।

पं० विन्ध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी का जन्म १८५० ई० के नवम्बर मास में (मार्गशीर्ष कृष्ण त्रयोदशी) काशी के गोवर्द्धन सराय मुहल्ले में हुआ था। पिता का नाम था श्री 'देवेन्द्रदत्त द्विवेदी'। द्विवेदीजी ने श्री कैलासचन्द्र शिरोमणि से न्यायशास्त्र

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का विधिवत् अध्ययन कर बड़ी दक्षता प्राप्त की। दुर्लभ हस्तलेखों के संग्रह करने में इनकी बुद्धि बड़ी विलक्षण थी। डाक्टर वेनिस इनका बहुत आदर-सत्कार करते थे और पुस्तक संग्रह करने का कार्य इनके अधीन कर दिया था। द्विवेदीजी ग्रन्थ का संग्रह ही नहीं करते थे प्रत्युत प्रौढ़ ग्रन्थों का, (जो सर्वथा अलभ्य थे) सुन्दर संस्करण भी काशी से ही प्रकाशित कराते थे। इनके परिश्रम का परिणाम था कि चौखम्भा संस्कृत सीरीज में इनके द्वारा सम्पादित **तार्किक रक्षा** (**वरदराज**); **न्याय लीलावती** (**वल्लभ**), **प्रशस्तपादभाष्य** (**प्रशस्तपाद**), **ब्रह्ममीमांसा-भाष्य** (**निम्बार्काचार्य**), **सांख्य-संग्रह** (**क्षेमेन्द्र**); आदि दुर्लभ ग्रन्थ बड़ी विशुद्धता के साथ पहली बार प्रकाशित हो सके थे। ये ताम्रपत्रों के लेख भी बड़ी सुगमता से पढ़ने में चतुर थे। न्यायवार्तिक की विस्तृत भूमिका द्विवेदीजी के ऐतिहासिक अनुसंधान तथा नैयायिक तर्क-वितर्क की जानकारी देने में सर्वथा समर्थ है। इसी विद्वत्ता के कारण सरकार ने आपको महामहोपाध्याय की उपाधि से सम्मानित किया था।

अनेक संस्थाओं के द्वारा आप सम्मानित किये गये थे। रायल एशिआटिक सोसाइटी ने इनको अपना फेलो बनाकर विशेष सम्मान दिया था। ७१ वर्ष की आयु में २५ सितम्बर १९२१ ई० में इन्होंने इसी काशी नगरी में महाप्रयाण किया। पं० गोपीनाथ कविराजजी द्विवेदीजी के अवकाश ग्रहण करने पर सरस्वती भवन के पूर्णरूपेण अध्यक्ष हुए और इनके अनन्तर पं० नारायण शास्त्री खिस्ते ने यह पद ग्रहण किया।

ग्रन्थ—पण्डित नारायण शास्त्री खिस्ते ने सरस्वती भवन पुस्तकालय में हस्तलेख विभाग के अध्यक्ष पद को सुशोभित करते हुए अनेक नवीन ग्रन्थों को सम्पादित किया। ये ग्रन्थ विशेषकर संस्कृत काव्य से सम्बन्धित हैं जो सरस्वती भवन सीरीज तथा चौखम्भा विद्या-भवन, वाराणसी से प्रकाशित हैं। परन्तु सम्पादक की अपेक्षा ये कवि ही अधिक थे। ये कोमल-कान्त-पदावली के रचयिता के रूप में अधिक विख्यात हैं। वास्तव में ये कवि थे और अपने मन्तव्यों को पद्य के माध्यम से ढालने की कला में निपुण अभ्यासी थे। इनका सबसे उत्कृष्ट मौलिक काव्य ग्रन्थ '**विद्वत्-चरित-पंचकम्**' है जो सरस्वती भवन टेक्स्ट सीरीज नं० २७ में काशी से प्रकाशित हुआ है (१९२८ ई०)। यह काव्य चम्पू शैली में लिखा गया है। इसमें संस्कृत के निम्नांकित पाँच विद्वानों के जीवनचरित अत्यन्त सरस तथा काव्यमय भाषा में विरचित हैं—

(१) गंगाधर शास्त्री, (२) कैलासचन्द्र शिरोमणि, (३) दामोदर शास्त्री, (४) शिवकुमार शास्त्री और (५) रामकृष्ण शास्त्री (तात्या शास्त्री)। इन्होंने इस ग्रन्थ में इन पाँच विद्वानों के जीवन चरित लिखने के साथ ही साथ इनके द्वारा रचित ग्रन्थों का भी संक्षिप्त विवरण दिया है। इसके अतिरिक्त इन पण्डितों के प्रधान-प्रधान शिष्यों का भी विवरण प्रस्तुत किया है। संस्कृत के विद्वानों के जीवनचरित के सम्बन्ध में देववाणी में काव्य शैली में लिखित एवं प्रकाशित सम्भवतः यह प्रथम पुस्तक है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० नारायण शास्त्री भगवती त्रिपुर सुन्दरी के उपासक थे। देवी की इनकी उपासना बड़ी निष्ठापूर्ण होती थी। शारदा की कृपा से इनकी कविता में चारुता, विचारों को विशद रूप में प्रकट करने की क्षमता तथा नाना रसों से पेशल वाग्धारा की सम्पन्नता नितान्त आवर्जक है। इनकी शैली अधिकांशतः वैदर्भी है परन्तु वर्ण्य विषय की विशिष्टता के कारण गौड़ी शैली के भी दर्शन होते हैं, जिसकी छटा निम्नांकित पद्य में स्फुटित हो रही है :

भक्तौघप्रतिपालनाय कलिताकारा चिदेषा परा,
तारानायकशावकाङ्क-विलसद्-भाला विशालाकृतिः।
काश्यां राजति काऽपि निस्तुलदयामूर्त्तेव शम्भोरियं,
चेतस्तुङ्गतुरङ्गबन्धनकुटी देवी परा संकटा॥

इस श्लोक में संकटाजी की स्तुति की गई है। इसमें समस्त पदावली और गाढ़-बन्धता देखने योग्य है। एक और उदाहरण लीजिए—

"वर्षन्ती करुणारसं जलगताम्भोजोपमाभ्यां पुन-
र्नेत्राभ्यां प्रलयानलद्युतिमलीकस्थेन तेनोज्ज्वलाम्।
सिन्दूर-प्रकरारुणीकृतशिरः-शीतांशु-पोतस्फुट-
ल्लक्ष्मीः काप्यधिकाशि राजति दयाम्भोधिः शिवा संकटा॥"

परन्तु वास्तव में शास्त्रीजी वैदर्भी रीति के ही प्रवीण कवि थे। इस शैली का जैसा निखार इनकी कविता में पाया जाता है वैसा अन्य किसी शैली का नहीं। सरस्वती की सेवा में परायण पण्डितों का यह वर्णन देखिए—

गंगातीरतरंगसंगमवशात् पूतान्तरैर्गौरवं,
प्राप्तैः फुल्लसरोजसौरभवहैः वातैः सदा पावितम्।
वैरिञ्चं भवनं विहाय सरसामत्रैव वाग्देवता-
मन्वक् यद्भिरिवर्षिभिर्बुधवरैः आपूरितं सर्वतः॥

कविता के ऊपर लता का रूपक कितनी सुन्दरता तथा भव्यता के साथ यहाँ आरोपित किया गया है :

"कामेश कल्पपादपमारूढा, पुण्ड्रदण्डमवलम्ब्य।
काचन कवितालतिका, ललिताकृतिरन्तरुल्लसतु॥"

अपने गुरु गंगाधर शास्त्रीजी की गुण-गरिमा का वर्णन करते हुए खिस्तेजी ने लिखा है :

"सा लोकव्यवहारधीरतिशिता, सा वस्तुमर्मज्ञता,
लोकाकर्षणकर्मठा द्युतिमयी दृष्टिश्च शम्पानिभा।
काये सा लघुता निसर्गजनिता सा वाचि गम्भीरता,
सर्वं पण्डितपुंगवे गुरुवरे गंगाधरे संस्थितम्॥"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके अनुज **पं० मुकुन्दशास्त्री खिस्ते** भी साहित्य के विशेष जानकार पण्डित थे। ये बड़े ही कुशल अध्यापक थे। अनेक वर्षों तक इन्होंने स्याद्वाद विद्यालय (भदैनी, काशी) में साहित्य का अध्यापन किया। तदनन्तर ये संस्कृत कालेज में साहित्य शास्त्र के प्रधान पण्डित के रूप में प्रतिष्ठित रहे। नारायण शास्त्रीजी के एक-मात्र पुत्र श्री पं० बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते भी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान हैं। ये बहुत दिनों तक संस्कृत कालेज में साहित्य की गद्दी पर विराजमान रहे। अभी हाल ही में ये वहाँ से सेवा-निवृत्त हुए हैं। इनकी भी काव्यरचना बड़ी प्रौढ़, अभिराम तथा आवर्जक होती है। इन्होंने भी कतिपय प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों का सुबोध संस्करण निकाला है। इनके मौलिक काव्यग्रन्थ पर हाल ही में उत्तर प्रदेश शासन से पारि-तोषिक प्राप्त हुआ है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५

पण्डित उमापति द्विवेदी

(प्रसिद्ध नाम - पं० नकछेदराम दूबे)

(आस्पद—द्विवेदी, उपाधि—विद्यामहार्णव)

पण्डितप्रवर उमापति द्विवेदी बालशास्त्री-युग के एक अलौकिक शेमुषी-सम्पन्न विलक्षण विद्वान् थे। संस्कृत शास्त्रों के गम्भीर अनुशीलन में तथा छात्रों में अपनी विद्या के निरन्तर संक्रमण में ये अपना प्रतिस्पर्धी नहीं रखते थे। भगवान् की दया से ये शारीरिक सम्पत्ति के भी धनी व्यक्ति थे जिनकी बलिष्ठ देहयष्टि देखकर पहलवानों को भी ईर्ष्या उत्पन्न होती थी। लोक-व्यवहार में इनकी निपुणता दर्शकों को आश्चर्य-चकित करने वाली थी। ऐसे चतुरस्र पाण्डित्य से मण्डित विचक्षण के जीवन की संक्षिप्त रूपरेखा पाठकों के सामने रखने में लेखक अपने को गौरवान्वित मानता है।

पूर्व पुरुष—पण्डित नकछेद राम द्विवेदीजी का आदि स्थान सरयूपार में गोरखपुर जिले के अन्तर्गत बाँसगाँव तहसील के 'सहुआपार' गाँव में था। वहाँ से इनका परिवार गोरखपुर शहर के अलीनगर (आजकल के आर्यनगर) मुहल्ले में चला आया था। इनका कुल गोरखपुर के प्रतिष्ठित परिवार गौतम गोत्री कांचनी गुरुदुबान सरयूपारीण ब्राह्मण था। इस नामकरण का एक कारण बताया जाता है। सहुआपार गाँव के पास ही गोपालपुर स्टेट में राजा के गुरु एक द्विवेदीजी थे। गुरु 'दूबेजी' कहलाते थे। गुरु की मृत्यु के उपरान्त उनके वंशजों में उस महनीय पद के लिए कोई योग्य व्यक्ति नहीं रहा। इस कारण इस वंश के पूर्वज को राजा साहब ने अपना गुरु बनाया। तभी से पूर्व गुरु का उपनाम 'दूबेजी' भी इस परिवार के साथ जुड़ गया। अतः मूलतः 'मिश्र' होते हुए भी यह वंश 'दूबे' के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

जन्म

गोरखपुर में ही उमापति द्विवेदी जी का जन्म चैत्र शुक्ल द्वितीया वि० सं० १९१० (= १८५३ ई०) को हुआ था। तथा इनके निर्वाण की तिथि आषाढ़ शुक्ल अष्टमी वि० सं० १९६८ (= १९११ ई०) है। फलतः ५८ वर्ष की आयु में इन्होंने काशी में अपना भौतिक शरीर छोड़ा।

इनका कुल बहुत दिनों से अपने पाण्डित्य के लिए उस क्षेत्र में नितान्त विश्रुत था। इनके पूज्य पिता का नाम हरिदत्त द्विवेदी था जो व्याकरण, न्याय एवं वेदान्त में उस युग के मूर्धाभिषिक्त विद्वान् माने जाते थे। उनके उत्कृष्ट पाण्डित्य की अनेक कहानियाँ आज भी उस क्षेत्र के वृद्धजनों में प्रख्यात बताई जाती हैं। उनके प्रपौत्र

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्योतिषाचार्य पण्डित जगदीश द्विवेदी ने लेखक को उनके पाण्डित्य की महनीय कथा सुनाई थी जो नितान्त विस्मयकारिणी एवं रोचक है।

एक बार पण्डित हरिदत्त द्विवेदीजी दल-बल के साथ भगवती विन्ध्यवासिनी के दर्शन के निमित्त अपने गाँव से पैदल ही चल निकले। कई दिनों के बाद चुनार के आसपास के एक गाँव में सन्ध्या समय टिकान ली। इसकी खबर पास के ही किसी प्रतिष्ठित जमींदार महाशय को मिली जिनके यहाँ कन्या की शादी में एक बड़ी बारात आनेवाली थी। उन्होंने द्विवेदीजी को तब तक रोक रखा और इनसे प्रार्थना की कि ये उनकी बारात में अवश्य सम्मिलित हों। बारात काशी के पास से आ रही थी जिसमें काशी के विद्वानों के पधारने की आशा थी। उस युग में बारात में शास्त्रार्थ करने की विशेष चाल थी। बारात नियत दिन पर आई जिसमें काशी के अनेक गण्य मान्य विद्वान् वरपक्ष की ओर से पधारे थे। कन्यापक्ष की ओर से पण्डित हरिदत्त द्विवेदी जी थे। शास्त्रार्थ का प्रसंग चला। काशी के वरपक्षीय पण्डितों का आग्रह था कि वे कमी प्रश्न नहीं करते, प्रत्युत उत्तर देने में ही वे अपना गौरव समझते हैं। फलतः हरिदत्त जी को पूर्वपक्ष प्रस्तुत करने का कार्य सौंपा गया। इस कार्य का सम्पादन इन्होंने इतने घटाटोप के साथ किया कि पण्डित लोग चकित हो गये। उन्होंने आधे घंटे तक नव्यन्याय की अवच्छेदकावच्छिन्न शैली का आश्रय लेकर अपने पूर्वपक्ष का समापन किया, तब वरपक्षीय पण्डितों के मुखिया ने अपने साथियों से कहा कि देखा आप लोगों ने पूर्वपक्ष की बारीकियों को। इस प्रश्न में कौन ऐसा महनीय शास्त्र है जिसका सम्यक् स्पर्श नहीं किया गया है और जिसकी गम्भीर फक्किकाओं के समाधान के लिए इसमें आग्रह नहीं है। इस पूर्वपक्ष से ही पण्डित लोग ऐसे प्रभावित हुए कि उन्होंने बिना शास्त्रार्थ किये ही हरिदत्तजी का लोहा मान लिया और उन्हें विजयश्री प्रदान की। बारात के लौट जाने पर जमींदार ने पण्डितजी का विशेष आदर-सत्कार किया। इन्हें राह खर्च के लिए पाँच सौ रुपयों की एक विशिष्ट राशि अर्पित की। पण्डित जी ने विन्ध्यवासिनी की विधिवत् पूजा की और उस द्रव्यराशि को वहीं दान-दक्षिणा में खर्च कर दिया। लौटती बार पण्डित जी इस ग्राम में पुनः पधारे जहाँ उस प्रतिष्ठित रईस ने उतनी ही राशि इन्हें पुनः अर्पित की और बड़े सत्कार के साथ अपने सेवकों की संरक्षकता में इन्हें सकुशल इनके घर पहुँचा दिया।

शिक्षा

ऐसा था अलौकिक पाण्डित्य पण्डित हरिदत्त द्विवेदी जी का। ऐसे ही सुयोग्य पिता के सुयोग्य पुत्र थे उमापति जी। उन्हीं से इन्होंने सकल शास्त्रों का अध्ययन कर उनका तलस्पर्शी वैदुष्य प्राप्त किया। आरम्भ में इन्होंने गोरखपुरी पाठशालाओं में ही अध्यापन कार्य किया, परन्तु इनके वैदुष्य की कीर्ति तब फैली, जब ये अयोध्याजी की विशिष्ट पाठशाला में अध्यापन कार्य में नियुक्त होकर उच्च श्रेणी के छात्रों का अध्यापन करने लगे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उमापति द्विवेदीजी की कीर्ति अखिल प्रान्तीय थी। इनके वैदुष्य की कीर्ति समस्त पूर्वाञ्चल में व्याप्त थी। ये चतुरस्र पाण्डित्य के धनी-मानी विद्वान् थे, परन्तु न्याय शास्त्र के उभय तन्त्रों में—प्राचीन न्याय एवं नव्य न्याय में—इनका वैदुष्य अलौकिक था। इनके विलक्षण आचार-विचार की गाथा कहानी की तरह विद्वानों के घरों में सुनी जाती थी। मैंने अपने पूज्य पितृचरण पण्डित रामसुचित उपाध्यायजी से (जो अयोध्याजी में ही अधीतशास्त्र पण्डित थे) लड़कपन में ही इनकी कहानी सुन रखी थी कि ये अपने को मुनि वसिष्ठ का अवतार मानते थे, उसी वशिष्ठ का जिन्होंने महाराजा दशरथ का पौरोहित्य किया था और पुत्रेष्टि यज्ञ कराकर राम, लक्ष्मण आदि चारों पुत्रों के जन्म के कारण बने थे। अतः ये अपने को पुरोहित और रामचन्द्र को अपना यजमान मानते थे। इनके प्रबुद्ध मानस में यही भावना सन्तत जागरूक रहती थी। दोपहर के समय अयोध्या के कनकभवन में जब ये राम-मन्दिर में पधारते थे, तब पुरोहित होने के नाते अपनी माला गले से निकाल कर श्रीराम के विग्रह को पहनाते थे और उन्हें दीर्घायु तथा मंगल-सम्पन्न होने के लिए शुभ आशीर्वाद देते थे। इस भावना की इतनी प्रबलता थी कि इन्होंने राम के प्रति देवत्व-बुद्धि कभी रखी ही नहीं।

पण्डित नकछेदराम द्विवेदी के नाम से ही इनकी अधिक प्रख्याति थी। महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी आपके सरल स्वभाव, निश्छल आचरण तथा उदात्त वैदुष्य के कारण आपके बड़े ही श्रद्धालु भक्त थे। पण्डित नकछेद रामजी ने 'सनातन धर्मोद्धार' नामक वेद-शास्त्र के स्वरूप तथा सनातन धर्म के मौलिक सिद्धान्तों का प्रतिपादक प्रामाणिक ग्रन्थ लिखा था। इसे ये अपने जीवन काल में प्रकाशित नहीं करा सके। मालवीयजी ने अपने ऊपर इसके प्रकाशन का भार ले लिया और इसे चार खण्डों में भाषानुवाद के द्वारा साधारण जन के लिए भी बोधगम्य बनाकर विश्वविद्यालय से प्रकाशित कराया है। इस महनीय ग्रन्थ का प्रकाशन मालवीयजी अपने जीवन की महती उपलब्धि बताते थे। ये केवल नैयायिक विद्वान् होने के अतिरिक्त बलिष्ठ, मल्लयुद्ध विद्या में निष्णात, एक मल्ल थे जिसका परिचय इन्होंने महाराजा नेपाल के दरबार में दिया था। प्रथमतः तो इन्होंने महाराजा के सभा-पण्डितों को परास्त किया। तदनन्तर ये खम ठोंककर अखाड़े में आ डटे। इनकी भुजाओं में भीम के समान बल था। फलतः इन्होंने नेपाल के समस्त पहलवानों को हराकर दोहरी ख्याति अर्जित की--संस्कृत-विद्या-विशारद की और मल्लविद्या-विचक्षण की। इनके वैदुष्य की यह प्रशस्ति यथार्थ ही है--

"न्यायाम्भोरुह-मध्यगग्रहपतिर्योगे यतीनां पतिः
वेदान्तार्णवकर्णधारनृपतिः साहित्यवाचस्पतिः।
चाणक्योऽखिलकूटनीतिनृपतिः सांख्याम्बराहर्पतिः
शब्दे कश्चिदुमापतिर्विजयते मल्लेषु सेनापतिः॥"
(हरिहरचरित २।३०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशी में आगमन

द्विवेदीजी के जीवन ने एक नया मोड़ लिया जब ये अपने वृद्ध पिता पण्डित हरिदत्त द्विवेदीजी को काशीवास कराने के उद्देश्य से अपने पूरे परिवार के साथ आकर काशी में रहने लगे। यह घटना १९५४ सं० (= १८९७ ई०) की है। ये मिश्र पोखरा मुहल्ले में किराये पर मकान लेकर रहने लगे। इसी वर्ष इनके अनुज रुद्रदत्त द्विवेदी को प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ जो काशी में पैदा होने के कारण काशीनाथ के नाम से अभिहित किया गया। द्विवेदीजी का मन काशी के वैदुष्यपूर्ण आध्यात्मिक वातावरण में इतना रम गया कि इन्होंने काशी छोड़कर अन्यत्र जाने का विचार ही छोड़ दिया। ये भगवान् भूतभावन विश्वनाथ के अनन्य उपासक, एकनिष्ठ भक्त तथा ऐकान्तिक सेवक थे। फलतः ये काशी की पण्डित-मण्डली में घुलमिल गये। अध्ययन-अध्यापन, जप-तप, पूजा-पाठ ही इनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था। ये अपने घर पर ही छात्रों का अध्यापन करते तथा शेष समय शङ्करजी की पूजा-अर्चा में लगाते। ये 'मिश्र पोखरा वाले पण्डितजी' की आख्या से काशीस्थ पण्डितों में नितान्त प्रख्यात हो गये। ये भारतीय दर्शन के उच्च ग्रन्थों का अध्यापन करते तथा छात्रों की शास्त्रीय प्रौढ़ि की समुन्नति के लिए नाना तर्क-वितर्कों का शिक्षण दिया करते। इसी प्रकार इन्होंने अपना शेष जीवन अध्यापन तथा ग्रन्थ लेखन में बड़ी लगन तथा अध्यवसाय के साथ व्यतीत किया।

एक घटना से इनकी वैदुषी की एक झाँकी हमें मिलती है। पण्डित शिवकुमार शास्त्रीजी के यहाँ नव्यन्याय के प्रख्यात ग्रन्थ—गादाधरी—का पाठ चल रहा था। शास्त्रीजी के छात्र कोई सामान्य कोटि के नहीं होते थे, अनेक शास्त्रों के ज्ञाता होकर वे ग्रन्थग्रन्थि के उन्मोचन के लिए ही उनकी सेवा में उपस्थित होते थे तथा शास्त्रीजी के पाण्डित्यपूर्ण तर्कों का अनुशीलन कर ग्रन्थ की सन्दिग्ध पंक्तियों के रहस्य समझने में कृतकार्य होते थे। गादाधरी का ऐसा ही एक विषम सन्दर्भ उपस्थित था जिसकी व्याख्या शिवकुमार पण्डितजी नानाप्रकार से समझा रहे थे, परन्तु उस सुबुद्ध पण्डित छात्र के गले के नीचे वह उतर नहीं रहा था। वह सन्तुष्ट ही नहीं होता था और उस नव्यन्याय की पंक्ति के रहस्य को हृदयंगम नहीं कर पा रहा था। पाठ सुनने वालों में एक ऐसा भी छात्र था जो पण्डित उमापति द्विवेदीजी का प्रिय विद्यार्थी था। इस अवसर पर वह बोल उठा, मेरे गुरुजी ने इस विषय में मेरी पुस्तक में कुछ नोट करा दिया है। पूछने पर उसने अपने गुरु का नाम जब बतलाया, तब शास्त्रीजी बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने इनकी टिप्पणी देखने का आग्रह किया और कहा—देखें भाई साहब ने इस विषय के क्या टिप्पणी करायी है। शिवकुमार पण्डितजी द्विवेदीजी का बड़ा आदर करते थे और इन्हें 'भाई साहब' के नाम से पुकारते थे। टिप्पणी को देखकर शास्त्रीजी कुछ देर तक सोचते रहे और तब सहसा बोल उठे—भाई साहब ने तो यहाँ बड़ा चमत्कार किया है। इन्होंने तो यहाँ नैयायिक गदाधर की गलती पकड़ी है और वह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रुटि मार्जित की है जिसके कारण इस सन्दर्भ का ठीक-ठीक अर्थ नहीं लगता था। फलतः पण्डित उमापति द्विवेदीजी के द्वारा किये गये संशोधन के द्वारा ही इस कठिन तथा विषम प्रसंग का पूरा-पूरा रहस्य उद्घाटित हो सका !

व्यवहार-पटुता

शास्त्रीय पाण्डित्य के साथ व्यावहारिक पटुता का संगम मणि-काञ्चनयोग के समान ही आश्चर्यकारी तथा आवर्जक था। पण्डित नकछेद रामजी शास्त्र के जितने प्रतिभाशाली विद्वान् थे, उतने ही वे लोक-व्यवहार के भी चमत्कारी पण्डित थे। घर में विशाल भूसम्पत्ति होने से कचहरी में अनेक मुकदमे चला ही करते थे और सबका विधिवत् संचालन करना नकछेदरामजी का ही काम था। ये मुकदमाबाज थे—मुकदमों के बड़े ही जानकार थे और किसी मुकदमे में मसौदा बनाने में इनकी इतनी चतुराई थी जिसे देखकर बड़े-बड़े वकील भी दंग रह जाते और आश्चर्य करते कि किस प्रकार संस्कृत का यह कोरा पण्डित मुकदमों की पेचीदगी को समझने में इतना चतुर तथा बुद्धिमान् है।

दूसरे लोग भी अपने मुकदमों में इनकी राय लिया करते थे और इनकी सम्मति का विशेष आदर करते थे। इस विषय की द्विवेदीजी की चतुराई की यह कहानी नितान्त प्रसिद्ध है। इनके ही एक गोरखपुरिया मित्र ने अपने मुकदमे का एक मसौदा इन्हें दिखलाया जिसे एक अनुभवी वकील ने तैयार किया था। उसे पण्डितजी बहुत देर तक देखते रहे और अन्त में इन्होंने कहा कि इसमें कोई विशेष त्रुटि नहीं है, परन्तु यदि अमुक शब्द में 'की' शब्द जोड़ दिया जाय तो मुकदमे में सफलता पाने की निश्चय ही आशा होगी। मित्र के कहने पर इन्होंने उस वाक्य को ठीक कर दिया और वह मसौदा जब उसके बनाने वाले वकील को दिखाया गया तो वे भी बहुत चमत्कृत हुए और उन्होंने पण्डितजी के संशोधन को स्वीकार कर लिया। सुनते हैं कि द्विवेदीजी के इस संशोधन के कारण ही मुकदमे में जीत हो गई। तथ्य तो यह है कि उमापति द्विवेदीजी शास्त्र और लोक दोनों के चमत्कारी विद्वान् थे। ये पूरे मुकदमेबाज थे और वकीलों को भी मुकदमे की बारीकियाँ समझाते थे तथा अपने निश्चित तथ्य पर बहस करने के लिए विशेष आग्रह करते थे। द्विवेदीजी ऐसे चतुरस्र पाण्डित्य के धनी थे और इसीलिए इनकी कीर्ति सर्वत्र व्याप्त रही।

ग्रन्थ-रचना

द्विवेदी उमापतिजी के अनेक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। ये मुख्यतया व्याकरण के उत्कृष्ट विद्वान् थे। फलतः इन्होंने नागेशभट्ट के दोनों महनीय ग्रन्थ—शब्देन्दुशेखर एवं परिभाषेन्दुशेखर के ऊपर **जटा** नामक टीका का प्रणयन किया। तीसरा ग्रन्थ **नारायण काव्य** है। इन ग्रन्थों का मुद्रित रूप अभी तक देखने में नहीं आया है। इनका अन्तिम एवं सर्वोत्तम ग्रन्थ है—**'सनातन-धर्मोद्धार'** जो इनकी कीर्ति को स्थायी रखने में सर्वथा कृतकार्य है। चार खण्डों में विभक्त यह एक विपुलकाय विशाल ग्रन्थ है। इसके दोनों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तिम खण्डों को महामना मालवीजी ने हिन्दू विश्वविद्यालय से प्रकाशित किया है। सनातनधर्म के स्वरूप, सामान्य तथा विशिष्ट धर्मों का यहाँ बड़ा ही विशद विवेचन है। मूल ग्रन्थ संस्कृत में है। उसे सुबोध बनाने के लिए द्विवेदीजी ने इसका सरल-सुबोध अनुवाद स्वयं किया है। यह ग्रन्थ इनकी विपुल ख्याति का मेरुदण्ड है। इस ग्रन्थ का विवरण पाठकों के सुभीता के लिए यहाँ दिया जा रहा है।

पण्डित उमापति द्विवेदी की सर्वोत्तम रचना है—**सनातनधर्मोद्धार** जिसमें सनातन धर्म के स्वरूप का यथावत् निर्णय किया गया है। ग्रन्थ की भूमिका लिखी है स्वयं महामना पं० मदनमोहन मालवीयजी ने जिसमें इस ग्रन्थ के उद्भव की कथा विस्तार से दी गई है। जनवरी १६०६ में त्रिवेणी के कुम्भ मेले में सनातनधर्मियों के लिए ऐसे ग्रन्थ की आवश्यकता प्रतीत हुई जिसमें धर्म का रहस्य तथा स्वरूप संक्षेप में अभिव्यक्त किया गया हो। मालवीयजी की सलाह पर पण्डित उमापति द्विवेदी ने इस ग्रन्थ के निर्माण का भार अपने ऊपर लिया और बड़ी योग्यता से इसका प्रणयन किया। पूरा ग्रन्थ प्रौढ़ संस्कृत भाषा में लिखा गया है और ग्रन्थकार ने सम्पूर्ण ग्रन्थ का स्वयं हिन्दी अनुवाद भी सरल और स्वच्छ भाषा में कर दिया है। लेखन की शैली धार्मिक निबन्ध ग्रन्थों के समान है। इसमें पूर्वापर में साक्षात् सम्बन्ध है तथा सनातन धर्म के जटिल प्रश्नों का समाधान किया गया है। प्रथमतः सनातनधर्म के तत्त्वों की परिभाषा प्राचीन ग्रन्थों से दी गई है। तदनन्तर इसके कठिन शब्दों की व्याख्या है तथा श्रुति एवं पुराणों के तत्पोषक वचनों का प्रमाण दिया गया है। तत्पश्चात् उस विषय में कोई विस्तृत प्राचीन आख्यान-कथानक, रामायण, महाभारत अथवा पुराणों से उद्धृत किया गया है। धर्म के जटिल प्रश्नों का समाधान ग्रन्थकार ने युक्ति तथा तर्क के द्वारा बड़े ऊहापोह के साथ किया है। देशी तथा विदेशी विद्वानों ने प्रचलित भाष्य और टीका से जहाँ अपना मतभेद प्रकट किया है तथा उस पर आरोप लगाया है, उसका बड़ा पाण्डित्यपूर्ण उत्तर दिया है। मालवीयजी ने ग्रन्थ के अध्ययन का फल भूमिका में इन शब्दों में दिया है—"महाभारत में कुण्डधार ने अपने भक्तों के लिए उपदेश दिया है कि रत्न से भरी पृथ्वी अथवा बड़ा रत्नों का ढेर मैं अपने भक्त के लिए नहीं चाहता। मैं यही चाहता हूँ कि वह धार्मिक हो—

पृथ्वीं रत्नपूर्णां वा महद् वा रत्नसंचयम्।
भक्ताय नाहनिच्छामि भवेदेष तु धार्मिकः॥

इस ग्रन्थ के अध्ययन से लोगों के हृदय में इस वचन की भी सत्यता का विश्वास जड़ पकड़ेगा—

विद्या रूपं धनं शौर्यं कुलीनत्वमरोगता।
राज्यं स्वर्गश्च मोक्षश्च सर्वं धर्मादवाप्यते॥

धर्म के आचरण से विद्या, रूप, धन, शूरता, कुलीनता एवं नीरोगता, राज्य, स्वर्ग

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा मोक्ष की सद्यः प्राप्ति होती है। इसीलिए महाभारत एवं पुराण पुकार-पुकार कर यह कहते हैं कि "यतो धर्मस्ततो जयः।" जहाँ धर्म है, वहाँ जय है। (मालवीयजी की भूमिका का अन्त)। यह भूमिका महामना ने १९४२ ई० में लिखी थी। तभी इस ग्रन्थ के अन्तिम दो भाग हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रेस से मुद्रित हुए थे। इससे पहले इसके आरम्भिक दो भाग प्रकाश में आ चुके थे।

सनातनधर्मोद्धार

चार खण्डों में विभक्त है। पूर्वार्ध में दो खण्ड हैं तथा उत्तरार्ध में दो खण्ड। पूर्वार्ध के दोनों खण्डों में धर्म के मूल पर विचार किया गया है तथा उत्तरार्ध में सामान्य धर्म के स्वरूप तथा विभिन्न तथ्यों का ऊहापोह किया गया है।

प्रथमखण्ड के आरम्भ में प्रथमतः पूरे ग्रन्थ की योजना का रूप दिखाया गया है तथा ग्रन्थ की लेखन शैली तथा विषय-विन्यास का संक्षिप्त विवेचन है। तदनन्तर 'धर्मराज सज्जन' (अर्थात् धर्मरूपी राजा की सजावट) नामक प्रथम प्रकरण में धर्म और धर्म का स्वरूप तथा लक्षण, अपूर्व और अदृष्ट धर्म की महिमा आदि विषयों का विवेचन है। 'वेददुर्ग सज्जन' (धर्मराज के वेदरूपी किले की सजावट) नामक द्वितीय प्रकरण में धर्म के प्रमाणरूप वेद के स्वरूप तथा माहात्म्य का विस्तार से प्रतिपादन है। वेद के अनादि और अनन्त होने के विषय में द्विवेदीजी ने बड़ा ही युक्तियुक्त विवरण प्रस्तुत किया है (पृ० १२६–१६७ तक)। वेद के विधिवाक्य और अर्थवाद दोनों के स्वरूप के निर्देशानन्तर धर्म में इन दोनों की उपयोगिता मीमांसकों की शैली पर दिखलाई गई है (पृ० १८५–२१३)। पश्चात् मन्त्र तथा ब्राह्मण के स्वरूप तथा प्रकार की आलोचना के साथ यह खण्ड समाप्त होता है। द्वितीय खण्ड में वेद की स्वतः प्रमाणता के विषय में विरोध करने वाले विद्वानों के मत की पूरी समालोचना है। इस प्रकरण का नाम 'क्षुद्रोपद्रवविद्रावण' ही विषय की ओर संकेत कर रहा है। प्रथमतः जर्मनी के वैदिक विद्वान् वेबर तथा मैक्समूलर के वेदविषयक सिद्धान्तों की बड़ी गम्भीर मीमांसा द्विवेदीजी ने की है (पृष्ठ ४११–४८४) तदनन्तर स्वामी दयानन्द सरस्वती के मत—'ब्राह्मणमात्र वेद नहीं है'—का खण्डन विस्तार तथा विवेचन से किया गया है। ब्राह्मण भाग वेद का अनिवार्य अंग है—इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए सहस्र से ऊपर युक्तियाँ तथा तर्क उपस्थित किये गये हैं। इस प्रकरण की सिद्धि में द्वितीय खण्ड का अधिकांश भाग निर्मित हुआ है (पृ० ४८५-६११)। श्रुति के प्रामाण्य के अनन्तर स्मृतियों की; पुराण, इतिहास की तथा सदाचार एवं आत्मतुष्टि की प्रमाणता दिखलाकर सनातन-धर्म के आधार ग्रन्थों की मीमांसा का उपसंहार किया गया है (पृ० ६१२–६७८)। धर्म के साक्षात् लक्षण के प्रसंग में यह पद्य प्रसिद्ध ही है—

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम्॥

इस पद्यानुसार धर्म के साक्षात् लक्षणात्मक चारों तथ्यों का विस्तृत निरूपण द्विवेदीजी के वैदिक तथा धर्मशास्त्रीय वैदुष्य का परिचायक है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस ग्रन्थ के उत्तरार्ध में दो खण्ड हैं – तृतीय तथा चतुर्थ खण्ड। तृतीय खण्ड में सामान्यधर्म का निरूपण है और चतुर्थ खण्ड में विशेष धर्म का निरूपण। प्रथमतः ३७ सामान्यधर्मों के नाम दिये गये हैं, तत्पश्चात् उनका पूर्व निर्दिष्ट शैली में सोदाहारण विवेचन है। सामान्यधर्मों के अन्तर्गत सत्य, धृति, क्षमा, दम, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अलोभ, शौच, इन्द्रियनिग्रह, तपस्या, दया आदि का निरूपण ग्रन्थकार ने बड़ी सुन्दरता से किया है। ३२वें सामान्य धर्म **देवपूजन** का बड़ा ही विस्तृत, पाण्डित्यपूर्ण तथा प्रमेयबहुल निरूपण उमापतिजी ने किया है जो लगभग दो सौ पृष्ठों में पूर्ण हुआ है (पृ० १००५ से लेकर ११९५ तक)। इसके भीतर पाँच विषयों का विवेचन है—देव संख्या, देवविग्रह, देवावतार, देवप्रतिमा तथा कण्टकोद्धार। इन के विवेचन में द्विवेदीजी की अपूर्व प्रतिभा, वैदिक वैदुष्य, तर्क-कुशलता तथा युक्ति-सन्निवेश का नितान्त चमत्कारी निदर्शन पाठकों के सामने सद्यः उपस्थित हो जाता है। इन तथ्यों की सिद्धि में इन्होंने संहिता, शतपथब्राह्मण तथा कात्यायन श्रौतसूत्र से प्रचुर प्रमाण देकर अपने कथन की पुष्टि की है। 'कण्टकोद्धार' में स्वामी दयानन्दजी के प्रतिमा-विषयक मत का बड़ा ही तर्कयुक्त खण्डन उपस्थित किया गया है। उपासना के विषयभूत देवता की संख्या का विवेचन उपनिषदों के आधार पर बड़ी मार्मिकता से किया गया है। देवविग्रह के विषय में जैमिनि तथा शबर स्वामी के मतों का उपन्यास ग्रन्थकार के मीमांसाशास्त्र-विषयक ज्ञान का पर्याप्त परिचायक है। देवावतार के विषय में तत्तत् अवतारों के लिए वेदों का प्रचुर प्रमाण उपन्यस्त है। निष्कर्ष यह है कि देवपूजन वाला यह अंश स्वतः एक प्रमेयसम्पन्न निबन्ध का स्वरूप उपस्थित करता है। तृतीय खण्ड का यह अंश मौलिक विवेचन से परिपूर्ण है। खण्डन के अवसर पर उमापतिजी ने **वेदवैनाशिक** की बड़ी मीठी चुटकी ली है। एक प्रसंग देखिए—यजुर्वेद के मन्त्र का विश्रुत अंश है—"न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद् यशः।" इस मन्त्र में 'प्रतिमा' शब्द का अर्थ मूर्ति मानकर वेद में मूर्तिपूजा का निषेध 'सत्यार्थ-प्रकाश' में बतलाया गया है। द्विवेदीजी ने अनेक युक्तियों से इसका खण्डन कर उसका वास्तविक तात्पर्य 'तुल्यता' या 'समता' बतलाया है। इस विषय में उनकी यह युक्ति बड़ी चुटीली है—

पाणिनीयां नदीं श्रुत्वा श्रुत्वा न प्रतिमेति च।
मरुस्थलीं श्रुतिं चैनां फलैक्यमभिधावतोः॥

तात्पर्य है कि पाणिनि व्याकरण के अनुसार देवी, दासी आदि के समान 'मरुस्थली' शब्द नदीसंज्ञक है। इस पारिभाषिक अर्थ से अपरिचित व्यक्ति 'मरुस्थली' को 'नदी' समझ कर अपनी पिपासा की शान्ति के लिए यदि रेगिस्तान में दौड़ लगावेगा तो जो फल उसे मिलेगा, वही फल मिलेगा उस व्यक्ति को, जो 'न प्रतिमा' मन्त्रांश में 'प्रतिमा' के वास्तव अर्थ (समता) से अपरिचित पुरुष मूर्ति अर्थ के लिए श्रुति की दौड़ लगावेगा। अर्थात् दोनों के उद्योग असफल रहेंगे। (देखिये पृ० ११७८)। बड़ी सुन्दर उक्ति है पण्डित उमापतिजी की यह।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थ का चतुर्थ खण्ड उसका अन्तिम खण्ड है (पृष्ठ ११९५–१५३० तक)। इसमें सामान्य धर्म के निरूपण का उत्तरार्द्ध है। इसमें सनातन धर्म की दृष्टि से महिमाशाली चार विषयों का विस्तार से निरूपण किया गया है—(१) **ब्राह्मणपूजन**—जिसमें ब्राह्मण वर्ण के महत्त्व के विषय में श्रुति तथा स्मृति के वचन प्रमाण रूप से उद्धृत हैं। इस विषय के पोषक प्रमाण महाभारत तथा पुराणों से भी यहाँ निर्दिष्ट किये गये हैं। (२) **श्राद्ध**—श्राद्ध के विषय में वेद, मनुस्मृति, रामायण एवं महाभारत के वचनों से मनुष्यमात्र के लिए यह कर्तव्य कर्म सिद्ध किया गया है। इसी प्रसंग में स्वामी दयानन्दजी के एतद्विषयक अनेक मन्तव्यों तथा तथ्यों का प्रमाण-पुरःसर खण्डन कर उन्हें वेदविरुद्ध घोषित किया गया है। (३) **तीर्थ का अनुसरण** – (पृ० १२७८–१३८३) इस विस्तृत खण्ड में तीर्थों के स्वरूप, महत्त्व तथा उपभोग के विषय में पर्याप्त शास्त्रीय विवेचना है। काशी के तीर्थों का भी निरूपण द्विवेदीजी ने बड़ी गम्भीरता से किया है—विशेषतः 'काश्यां मरणान्मुक्तिः' पर शास्त्रीय चिन्तन का मर्म उद्घाटित किया गया है। (४) **भगवद्भक्ति**—(पृ० १४१०–१५३०) के भीतर आने वाली विविध समस्याओं का यहाँ समाधान प्रस्तुत कर ग्रन्थकार ने अपने शास्त्रचिन्तन, तर्कानुशीलन तथा विचारमीमांसा का पर्याप्त परिचय दिया है। इससे पूर्व धर्मयुद्ध में प्राण त्यागने वाले वीर सैनिकों की गतिविधि के ऊपर सुन्दर विवेचन है। भक्ति का विवेचन शाण्डिल्य सूत्रों के आधार पर बड़े वैशद्य से किया गया है तथा भक्ति के वैदिक मूल का भी निरूपण कर उसे वेदप्रतिपाद्य तत्त्व घोषित किया गया है।

द्विवेदीजी की लेखनशैली बड़ी प्रौढ़, उदात्त तथा विषयानुसारिणी है। गद्य-रचना में कहीं शैथिल्य दृष्टिगोचर नहीं होता। एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा—

रागस्तावदयमन्तःकरणस्य वृत्तिविशेषो, भजामि रज्यामि प्रपद्य इत्याद्यनुव्यवसाय सार्क्षिक आकीटपतङ्गमाहिरण्यगर्भञ्च यावत्स्वेव प्राणिषु ओतप्रोतायमानत्वान्नापह्नोतुं शक्यते। अयमेवाऽऽसाद्याऽऽलम्बनविशेषांस्तदनुसारेण विहितान् प्रतिषिद्धाननुभयविधाँश्च व्यवहारानविरतमाहरन् रत्यनुरक्ति मायामोहादि शब्दैरपि लोके व्यवह्रियमाणोऽर्थधर्मादीन् कामक्रोधादीन् सुखान् दुःखाँश्च वर्गाननुबध्नन् विराजते। यथा च कुल्यादि सलिलप्रवाहः केदारपट्टिकामाप्लाव्य तदायामविस्तर-त्रिचतुर-कोणत्वाद्यकारीभूयात्मानं तामिव भावयति तथा रागोऽपि·····॥

(पृ० १४१६–१७)

फलतः ग्रन्थकार का अन्तिम सिद्धान्त इस पद्य में सुचारुरूपेण निर्दिष्ट है—

कल्याणनगरं मोक्षदेवस्य प्रविविक्षताम्।
अकपाटार्गलद्वाःस्थं गोपुरं भगवद्रतिः॥

आशय है कि मोक्ष महाराज के कल्याणनगर में प्रवेश करने वाले व्यक्ति के लिए भगवद्भक्ति ही ऐसा पुरद्वार है जिसमें न कोई किवाड़ा है, न कोई अर्गला (सिटकिनी) है और न कोई द्वारपाल है जिससे वारण की कुछ शंका हो सके। फलतः मोक्षनगरी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में प्रवेश का राजमार्ग भगवान् की भक्ति ही विराजमान है। जो कोई चाहे उस मार्ग से प्रवेश कर सकता है—रुकावट का कहीं नामोनिशान नहीं है।

'सनातनधर्मोद्धार' तो उमापति द्विवेदीजी का सर्वमान्य लोकातीत वैदुषी से मण्डित अन्तिम ग्रन्थ है जिसका आरम्भ सं० १९६३ वि० (१९०६ ई०) में तथा समाप्ति सं० १९६९ वि० (१९१२ ई०) में की गयी थी। ग्रन्थ का प्रथम खण्ड १९१२ ई० में ग्रन्थकार के जीवनकाल में ही प्रकाशित हुआ था। प्रसिद्धि है कि वे प्रकाशित ग्रन्थ की एक प्रति काशीनरेश प्रभुनारायण सिंह को उपहार में देने की तैयारी ही कर रहे थे कि उनकी हृदयगति अवरुद्ध हो गयी। ग्रन्थ के अन्तिम दोनों खण्ड मालवीयजी महाराज की कृपा से मुद्रित तथा प्रकाशित हो सके हैं। 'सनातनधर्मोद्धार' ही द्विवेदीजी की कीर्ति को स्थायी रखने में सर्वथा समर्थ है। तथास्तु।

पण्डित काशीनाथ द्विवेदी

पण्डित उमापति द्विवेदी का वंश आज भी संस्कृत विद्या में निष्णात विद्वानों की सत्ता से उद्भासित हो रहा है। द्विवेदीजी के पूज्य पिताजी संस्कृत के नाना शास्त्रों के दिग्गज विद्वानों में थे जिनका आदर-सत्कार सुधीसमाज में विशेष रूप से होता था। उनका नाम हरिदत्त द्विवेदी था और उनके विषय में आज भी अनेक चमत्कारपूर्ण कथाएँ सुनी जाती हैं। उनके दो पुत्र थे—उमापतिजी तथा रुद्रदत्तजी। उमापतिजी का परिचय ऊपर दिया गया है। उनके वंशजों में संस्कृत विद्या का उतना प्रचार नहीं है, परन्तु उनके अनुज रुद्रदत्त द्विवेदीजी के वंश में तो देववाणी का विलास निश्चयेन परिलक्षित होता है।

पण्डित रुद्रदत्त द्विवेदीजी के आत्मज **पण्डित काशीनाथजी** का जन्म माघ की मौनी अमावास्या विक्रमी संवत् १९५४ (२१ जनवरी, १८६८ ईस्वी) को काशी में हुआ था और इसीलिए इनका यह नामकरण किया गया। उस समय इनके चाचा उमापति द्विवेदी अपने पूज्य पिता हरिदत्त द्विवेदी के काशीलाभ के निमित्त काशी के मिसिर-पोखरा मुहल्ले में रहते थे। इनके पिता का नाम था—रुद्रदत्त द्विवेदी तथा माता का कौशल्यादेवी। इनके जन्म के प्रातःकाल पूर्ण सूर्यग्रहण लगा था—इतना पूर्ण, कि आकाश में तारे निकल आये थे। प्रतीत होता है कि यह दैवी घटना बालक के भविष्य में होने वाले जीवन संघर्ष की पूर्णतः परिचायिका थी। चाचा की देखरेख में इनकी आरम्भिक शिक्षा-दीक्षा हुई, परन्तु अकस्मात् १९१२ ई० में इनके चौदह साल के वय में ही चाचा के देहान्त होने से वह सुखद छत्रच्छाया सदा के लिए हट गयी। तदनन्तर **पण्डित रामभवन उपाध्याय** से इन्होंने पाणिनीय व्याकरण का अध्ययन किया। १९२१ ई० के सहयोग आन्दोलन में व्याकरणाचार्य के अन्तिम खण्ड की परीक्षा ही नहीं छोड़ी, प्रत्युत सर्वदा के लिए परीक्षा व्यापार से ही विरत हो गये। इसके बाद **स्वामी मनीष्यानन्दजी** से दर्शन, उपनिषद् आदि उदात्त ग्रन्थों का विधिवत् अध्ययन किया। वि० सं० १९८७ (= १९३० ई०) में स्वामीजी ने इन्हें वैदुष्य का प्रमाण-पत्र तथा 'साहित्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुधानिधि' की विशिष्ट पदवी प्रदान की। गुरुमुख से अध्ययन की प्रक्रिया सदा के लिए समाप्त हो गयी।

अध्ययन

पण्डित काशीनाथ द्विवेदीजी को काशी से इतना प्रेम तथा अनुराग था कि अन्यत्र सादर आमन्त्रण तथा आह्वान को यह ठुकरा देते थे, परन्तु काशी का छोड़ना इनके लिए असह्य हो जाता था। काशी से प्रेम, अयाचितोपनत (बिना माँगी स्वयं आई) वृत्ति अपनाने की तीव्र आकांक्षा, विद्या न बेचने का दृढ़ संकल्प, अपने आराध्यदेव भगवान् शंकर की एकनिष्ठ आराधना के कारण समयाभाव, सारस्वत साधना की निरन्तर अभिरुचि—इन सबने मिलकर पण्डितजी को अनेक कष्टों को सहने के लिए विवश किया। अपनी जीविका तथा जीवन से संघर्ष करते हुए भी ये अपने स्वीकृत निश्चय से तनिक भी विचलित नहीं हुए। साहित्य तथा अध्यात्म की सेवा में द्विवेदीजी ने अपने को सर्वात्मना समर्पित कर दिया था। भगवान् शंकर इनके उपास्यदेव थे। उनकी आराधना में, सुनते हैं ये पन्द्रह-सोलह घण्टे नित्य प्रति बिताया करते थे। इसके कारण इनके जीवन में अनेक अलौकिक घटनाएं घटी थीं और शंकर भगवान् ने अपना दुर्लभ दर्शन देकर इन्हें कृतकृत्य भी किया था। पण्डित नकछेदरामजी का प्रभाव काशीनाथजी के ऊपर इनके उभयविध विकास में पूर्णतः पड़ा था—मन के ऊपर तथा शरीर के ऊपर। मानसिक विकास की चर्चा ऊपर की गई है। शारीरिक विकास भी इनका अवलोकनीय था। एक हजार दण्ड और दो हजार बैठक करने के संग साथ में ये तुलसी घाट पर महन्थ स्वामीनाथजी के यहाँ जाकर कुश्ती लड़ते थे। फलतः इनके स्वभाव में फक्कड़पन का प्रवेश जीवन के आरम्भ से हो गया था। तभी तो अपने हितेच्छु सुहृद् पण्डित उमापतिजी के पास अपनी मनःस्थिति का परिचायक यह पद भेजने में उन्हें तनिक भी संकोच नहीं हुआ —

"मैंने पियो प्रेम को प्याला।
सब जगजाल काल सम तज कर, सेवों अफसर आला।
यह मद छकि जकि थकित भयो मन, धिक् पियूष धिक् हाला।
एकै सम सब रँगे एक रँग, क्या उज्ज्वल क्या काला।
अहंकार भरि अतुल मूढ़मति, बादि बजावत गाला।
यह अंकुर गुनि उयो उचित थल, भरे हृदय के थाला।
को संन्यास लेइ को त्यागै राग बिराग कसाला।
पुहुप माल सम गले लिये हम, यह सब जग जंजाला॥"

'न श्ववृत्तिः कदाचन' के आदर्श पर गरीबी में जीवन बिताया, परन्तु किसी विद्यालय में या राजदरबार में अनेक सुन्दर सुयोग मिलने पर भी नौकरी नहीं की। इनके जीवन का आदर्श इस प्रसिद्ध पद्य में अंकित किया गया है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अनायासेन मरणं, विना दैन्येन जीवनम् ।
देहि मे कृपया शम्भो त्वयि भक्तिमचञ्चलाम् ॥"

लड़कपन से ही इन्हें हिन्दी कविता से प्रेम था । इनके ऊपर बिहारी का विशेष प्रभाव पड़ा और उन्हीं की शैली में शृंगार रस से पगे मनोरम दोहों की रचना कर इन्होंने अपनी प्रतिभा की सद्यः अभिव्यक्ति की ।

साहित्य के प्रति इनका अनुराग गम्भीर एवं नैसर्गिक था । ये स्वभाव से ही कोमलकान्त पदावली से समन्वित ललित कविता के निर्माण के अभ्यासी कवि थे । साहित्य की उभयविध प्रतिभा इनमें विराजती थी । भावयित्री प्रतिभा के साथ ही साथ ये कारयित्री प्रतिभा से मण्डित अलौकिक कवि थे । स्वभाव से ये त्याग तथा तपस्या से मण्डित मनीषी थे । किसी के सामने दैन्य का प्रदर्शन करना तो इन्होंने कभी जाना ही नहीं । भूखों मर जाना इन्हें मंजूर था, परन्तु किसी के सामने, चाहे वह कितना भी बड़ा धनी-मानी क्यों न हो इन्होंने अपना हाथ फैलाना कभी उचित नहीं समझा । इसलिए निर्धनता में इन्होंने अपने दिन काट दिये, परन्तु स्वीकृत व्रत से कथमपि टस से मस नहीं हुए । ऐसा विलक्षण विद्वान् होना असाधारण तपस्या का ही परिणत फल था ।

पण्डित काशीनाथजी के कमनीय दोहों को प्रथमतः परखिये –

परत जितै तितही रहत, इक इक अंग अनूप ।
इन नैनन हरि को अजौं नख शिख लख्यौ न रूप ॥

आशय––श्रीकृष्ण चन्द्र का एक-एक अंग इतना अनुपम है कि जहाँ निगाह पड़ती है, वहीं धँसकर रह जाती है । इसी कारण इन नयनों से आज तक श्रीकृष्ण का एक साथ नखशिख रूप नहीं देख सका ।

बादिहि बिष बिरवा बढ्यौ, ए हो सोधि सयानु ।
लाइ सनेह मिलाइ मधु, अमिय बनायतु मानु ॥

कवि का कहना है कि जैसे कुचिला, संखिया आदि विष शोधन के उपरान्त घी और मधु मिलाने पर अमृत का काम देते हैं, उसी प्रकार सखी सलाह दे रही है कि मान विष का काम कर रहा है, इसे चतुरतापूर्वक शोध कर इसमें प्रेम और व्यवहार की मधुरता को मिलाकर अमृत क्यों नहीं बना देती ?

मान को लेकर कवियों की अनोखी सूझें हैं । अधिकतर वे लोग मान छोड़ने का आग्रह करते हैं, परन्तु काशीनाथजी उसे बनाये रखने का आग्रह दिखाते हैं । सो क्यों ? सुनिये—

अब अलि अलिनु बकी करै तू मति भानै मान ।
दबै नाह खिन देखिहौं, दबी ओठ मुसुकान ॥

हे सखि, तू मान मत छोड़ । एक तमाशा देखना जो चाहती हूँ । नायक को थोड़ा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दवा देखना चाहती हूँ। फिर तुम्हारे ओठों में दबी मुस्कान देखना चाहती हूँ। बहुत ठीक !

चन्द्रोपालम्भ के कतिपय प्रशंसनीय पद्यों को देखिए--

तवोदये संतपनं तनूनां मृगाङ्क ! मन्ये गरलस्य दोषः।
स्वल्पं पपौ येन स नीलकण्ठो नीलोदरः सर्वमधः पुनस्त्वम् ॥

हे चन्द्रमा ! यह तुम्हारे विष का ही दोष है कि तुम्हारे उदय होने पर जीवों के शरीर में जलन पैदा हो जाती है। विष का थोड़ा ही भाग पीने पर शिव नीलकण्ठ हो गये। तुमने तो सबका सब पी लिया है जिससे तुम नीलोदर हो गये हो !

जनिः पयोधौ स्थितिरन्तरिक्षे
पादाः समस्ता भुवने प्रवृत्ताः।
भोगः सुरैः किं च कलाः कपर्दे
वियोगिनी मर्मणि ते विपाकः ॥

द्विवेदीजी की सम्मति में मुक्ति का स्वरूप देखिये

तां गौतमः परममाह स दुःखहानं
द्वैपायनोऽपि निजबोधमुदाजहार।
स्पर्शात् प्रियस्य पदयोः सुखमात्मनोऽपि
या विस्मृतिर्मम तु सैव मता विमुक्तिः ॥

महर्षि गौतम ने मुक्ति को परम दुःखहानि कहा है। व्यास ने उसे आत्मबोध कहा है। मेरे मत में प्रिय के चरणों के स्पर्श से अपने आपको भूल जाना ही विमुक्ति है।

सुनते हैं कि जब महामना मालवीयजी अपने जेठे पुत्र पं० रमाकान्त मालवीय की मृत्यु पर नितान्त शोक सन्तप्त हुए थे, तब द्विवेदीजी ने सान्त्वना का यह श्लोक भेजा था जिससे उनका उद्वेग न्यून हुआ था। श्लोक इस प्रकार है--

अतीताः स्वप्नाभा यदि किमु विशेषः स्थितिजुषां
निसर्गादेवैते प्रलयपरिणामा हि विषयाः।
ह्रसिष्ठो द्राघीयःनिति भवतु कामं विषमता
मृषात्वे भोगानां विदुषि न विषादा न च मुदः ॥

आशय है कि संसार के भोग सर्वदा मृषा हैं—उनका अन्त नाश में ही होता है। तब विद्वानों को न विषाद करना चाहिए और न हर्ष। चित्त में समता रखनी चाहिए।

खड़ी बोली की उनकी अनेक रचनाएँ बची हैं परन्तु उर्दू का केवल यह एक ही शेर सहृदयों के मनोरंजन के लिए पर्याप्त होगा —

दिल के पर्दे में छिपा मजनूँ मेरा।
आँखें रहते भी मुकद्दम सूर हूँ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्यसमीक्षा

श्री काशीनाथ द्विवेदीजी वस्तुतः प्रतिभासम्पन्न कोमल-कान्त-पदावली के निर्माता महाकवि थे। उनका हृदय बड़ा ही सरस था। फलतः उनकी कविता बड़ी ही रसमयी कोमल पदशय्यामयी तथा उल्लासमयी है। बड़ी विचित्रता तो यह लक्षित होती है कि कविता के सर्जन के लिए जिस समृद्ध वातावरण की आवश्यकता होती है उसका उनके पास सर्वथा अभाव था, तथापि बाहरी शुष्क वातावरण से अपने को नितान्त अस्पृष्ट रखकर इस महाकवि ने जिस रसपेशल काव्य की रचना की है, वह आलोचना की दृष्टि से इन्हें **'सुधीसुधानिधि'** की उपाधि से मण्डित करने में सर्वथा समर्थ है। लेखक इस अभिराम काव्य के प्रचुर प्रचार की कामना रखता है। तथास्तु।

पं० काशीनाथ द्विवेदी का 'रुक्मिणीहरण' महाकाव्य संस्कृत के महनीय काव्यों की परम्परा में उन्नत स्थान पाने का अधिकारी है। पूरा महाकाव्य २१ लम्बे-लम्बे सर्गों में समाप्त हुआ है। कथानक तो वही भागवत में वर्णित तथा पुराणों में बहुशः चर्चित रुक्मिणी का श्रीकृष्ण के द्वारा हरण तथा अपनी पट्टमहिषी बनना है। परन्तु कवि ने उसे आवश्यक साज-सज्जा से भरपूर सुसज्जित कर एक महनीय महाकाव्य का रूप दिया है। इसका प्रारम्भ १९५१ में हुआ और प्रकाशन १९६६ ई० में। षड्-ऋतुओं का वर्णन चतुर्थ सर्ग में, रजनी वर्णन एवं चन्द्रोपालम्भ पञ्चम सर्ग में तथा कामोपालम्भ का वर्णन षष्ठ सर्ग में किया गया है। प्रभात के वर्णन में एक पूरा सर्ग ही (सर्ग १३) एक सौ एक सुन्दर पद्यों में समाप्त किया गया है। श्रीकृष्णचन्द्र की आह्निकचर्या के अनन्तर भगवान् भूतभावन शिवजी की पूजा तथा स्तुति का बड़ा सुन्दर आयोजन १४वें सर्ग में किया गया है। शंकर की स्तुतियों में कवि ने अपने दार्शनिक विषयों के ज्ञान की छटा का अनुपम रूप प्रदर्शित किया है। इस शंकर-स्तुति से सादृश्य धारण कर रही है २०वें सर्ग की पार्वती-स्तुति जो अपनी उदात्तता एवं मधुरता में पूर्व स्तुति से कथमपि घट कर नहीं है। यह पार्वती-स्तुति लगभग तीस पद्यों में निबद्ध है (२०वें सर्ग, पद्य ५५ से लेकर ८४ पद्य तक)। अन्य प्रसिद्ध वस्तुओं के वर्णन में भी विशेष चमत्कार है।

कवि की शैली वैदर्भी है। प्रसाद गुण का विशेष चमत्कार दृष्टिगोचर होता है। पद्यों की रचना में स्वाभाविक सरसता है, काव्य-निर्माण में कवि का विशेष परिश्रम परिलक्षित नहीं होता। इस प्रकार यह मनोरम काव्य साहित्य को दृष्टि से कारयित्री प्रतिभा का एक मञ्जुल रूप प्रस्तुत करता है। यह अनेक वर्षों के प्रयास का मधुर फल है। काशी में इधर निर्मित काव्यों में यह महत्त्वपूर्ण स्थान का अधिकारी है। इसकी रचना २०२२ विक्रम संवत् (=१९६५ ई०) में सम्पन्न हुई और प्रकाशन अगले वर्ष २०२६ वि० (=२४ दिस० १९६९ में) हुआ था। प्रकाशन के चार वर्षों बाद अगहन पूर्णिमा को काशीनाथ जी का वाराणसी में ही स्वर्गवास हो गया।
कतिपय पद्यों की सुषमा देखिए—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उचितैव बभूव सुभ्रुवः कलकण्ठे किल कम्बुराजता।
यविमं कचगुच्छकच्छलान् मुहुरभ्यर्चयतः स्म चामरे॥
(रु० ह० १।९९)

आशय है कि रुक्मिणी जी का कलकण्ठ शंखराजता धारण कर रहा था यह तो सर्वथा उचित ही था। इसीलिए बालों के गुच्छक के व्याज से दो चामर उनकी अभ्यर्चना कर रहे हैं। राजा की ही तो चाकरों के द्वारा अभ्यर्चना की जाती है।

द्विवेदी जी के सामने नैषधचरित आदर्श के रूप में विद्यमान था। फलतः अपनी उक्तियों से उसके भी आगे बढ़ जाने का श्लाघासमन्वित प्रयास कवि में दृष्टिगोचर होता है। प्रथम सर्ग में रुक्मिणी जी के रूप सौन्दर्य का वर्णन बड़ा ही अभिराम तथा आवर्जक बन पाया है। ऊपर उद्धृत पद्य इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

प्रभात वेला की यह वायु चन्द्रमा से गिरे हुए अमृत के कणों को अपने में धारण कर मनुष्यों के अंगों में जीवन को विकसित करती हुई प्रतीत हो रही है—[1]

तारावलीतनुरयं गलितः सुधांशो–
र्वाष्पीभवन्नमृतबिन्दुचयो निलीनः।
अङ्गेषु जीवनविकासमिवाऽऽतनोति
सङ्गेन तन्मयतयैव विभातवायुः॥
(रु० ह० १३।१३)

भगवान् शङ्कर के स्तुतिपरक अनेक दार्शनिक पद्यों में से एक पद्य देखिए—

इयमपि! गुणसङ्गस्वीकृतिर्निर्गुणस्य
प्रभुवर करुणैवानादिबद्धेषु ते यत्।
तदुदितपरिभोगक्षीणकर्माशयाना–
मविकलनिजबोधात् प्राणिनां स्याद् विमुक्तिः॥
(रु० ह० १४।४३)

इस पद्य में भगवान् भूतभावन की करुणा से प्रारब्ध कर्म के भोगों के क्षीण होने पर पूर्ण आत्मज्ञान द्वारा विमुक्ति के सिद्धान्त का प्रतिपादन है।

एकादश सर्ग में रुक्मिणी द्वारा भेजा गया ब्राह्मण बड़े ही कोमल शब्दों में भगवान् श्रीकृष्ण से प्रार्थना स्वीकारने की बात कह रहा है। इस प्रसंग के दो पद्य देखिए :—

अलब्धपुष्पप्रसवा दवानलादकालदग्धेव लता विपद्य सा।
अपारकारुण्यपयोद! निष्ठुरे त्वयि प्रपद्येत न शोचनीयताम्॥
(रु० ह० ११।३७)

---

१. रुक्मिणीहरणं महाकाव्यम् श्री काशीनाथ शर्मणा द्विवेदिना विरचितम्। संशोधक: पं० जगदीश शर्मा द्विवेदी, प्रकाशकः श्रीकण्ठ शर्मा द्विवेदी। प्राप्तिस्थान बी० १/२२ अस्सी, वाराणसी–५।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे अपार करुणा के मेघ कृष्ण ! वह रुक्मिणी अभी पुष्प के उद्गम से वञ्चित लता है जो अकाल में ही दावानल के द्वारा दग्ध हो गई है। प्रार्थना है कि ऐसा न हो कि आपके निष्ठुर हो जाने से वह शोचनीयता को प्राप्त हो। आप करुणा के मेघ ठहरे। करुणा की वृष्टि से उस अकाल दग्ध लता को जीवित कर दें।

दयस्व मा माधव तां विमानयेरधः पतन्तीमपरां विधोः कलाम्।
कपालिनो या प्रथमेव निर्मलाऽखिलस्यचूडानिलयत्वमर्हति॥

(वही ११।३८)

हे माधव, उस पर दया कीजिए। चन्द्रलोक से नीचे गिरने वाली वह चन्द्रमा की अपरा कला है। उसका तिरस्कार न करें। जिस प्रकार निर्मल प्रथम कला शिवजी के मस्तक पर विराजमान है, उसी प्रकार वह समस्त जगत् की चूड़ामणि होने की योग्यता रखती है।

काशीनाथ द्विवेदीजी के पुत्र पण्डित जगदीश शर्मा द्विवेदी ज्योतिष विद्या के महान् पण्डित हैं। वे ज्योतिष के सिद्धान्त, गणित एवं फलित तीन विषयों के आचार्य हैं जिन्हें प्रथम श्रेणी में प्रथम होने के कारण सुवर्णपदक के द्वारा समादृत किया गया है। इन्हीं के सहयोग से इनके पिताजी का ग्रन्थ प्रकाशित होने का गौरव प्राप्त कर सका है।

पण्डित रामबालक शास्त्री

श्री काशीनाथजी नियमित रूप से छात्रों के अध्यापन के प्रेमी नहीं थे। स्वास्थ्य ठीक न रहने से यह कार्य ठीक ढंग से चलना सम्भव भी नहीं था, तथापि गाण्डीवं जैसे साप्ताहिक संस्कृत पत्र के सम्पादक **पण्डित रामबालक शास्त्री** आपके ही सुयोग्य शिष्य थे। बड़ी ही निष्ठा से रामबालकजी ने द्विवेदीजी से साहित्य विद्या का अनुशीलन कर संस्कृत के प्रचार-प्रसार में अपना जीवन ही लगा दिया था। अपने गुरु के समान ये भी बड़े ही तपस्वी, त्यागी एवं मनस्वी पण्डित थे। ये बलिया मण्डल के ही श्रीनगर नामक गाँव के निवासी थे। आरम्भ में बलिया जुबिली संस्कृत महाविद्यालय के आचार्य पं० रामउदित उपाध्यायजी से इन्होंने संस्कृत भाषा की आरम्भिक शिक्षा पायी थी। काशी में आकर इन्होंने एक सच्चे त्यागी, मानी ब्राह्मण के रूप में अपना जीवन बिताया और स्वसम्पादित संस्कृत 'गाण्डीवम्' के द्वारा संस्कृत के विपुल प्रचार में अपने शरीर तथा धन का व्यय कर देववाणी की भूयसी सेवा की।

उमापति शर्मा द्विवेद

पं० काशीनाथ शर्मा द्विवेदी के एक विशिष्ट सम्बन्धी के परिचय के बिना यह वर्णन अधूरा ही रह जाएगा। ये सम्बन्धी थे उन्हीं के आत्मज जगदीश शर्मा द्विवेदी के श्वशुर कविपति पण्डित **उमापति शर्मा द्विवेद**। पण्डित उमापति शर्मा का जन्म वि० सं० १९५५ (= १८९८ ई०) में देवरिया मण्डलान्तर्गत पकड़ी ग्राम में हुआ था। पिता का नाम था पण्डित कान्ताराम शर्मा द्विवेद और माता का मर्यादादेवी। उमा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पतिजी काशीनाथजी के सतीर्थ्य थे। प्रथमतः प्रसिद्ध विद्वान् पं० नकछेदराम शर्मा (पं० उमापति शर्मा द्विवेदी) के दोनों जन शिष्य थे। काशी में आकर इन्होंने पं० राममवन उपाध्याय की अन्तेवासिता स्वीकार की। १९२१ ई० के असहयोग आन्दोलन के युग में परीक्षा का दोनों जनों ने साथ ही बहिष्कार किया। कई विद्यालयों में अध्यापन का कार्य किया। कविता-रचना की ओर स्वाभाविक रुचि थी। फलतः अनेक वर्षों की साहित्यिक साधना के फलस्वरूप इन्होंने 'पारिजातहरण' नामक महाकाव्य का प्रणयन किया जिसका प्रकाशन वि० सं० २०१४ (=१९५७ ई०) में देवरिया से किया गया है।[1] अन्त में काशी आकर गंगा और विश्वनाथ के अर्चन-पूजन में पण्डितजी अपना दिन बिताते थे। इस महाकाव्य की प्रस्तावना स्वयं काशीनाथ शर्मा द्विवेदीजी ने लिखी है जिसमें उमापति शर्माजी की काव्य-रचना के गुणों का संक्षेप में वर्णन किया गया है। कतिपय उपदेशमयी सूक्तियों का निरीक्षण कीजिए—

यत्तु सन्तोऽनुगृह्णन्ति यच्च गृह्णाति सत्तमान्।
तद् गृहं तद् गृहं मेऽद्य न गृहं स्वाश्रयास्पदम्॥
भिक्षूणां कोषमक्षीणमाश्रमं रक्षतां हि नः।
महात्मनां शुभा दृष्टिर्दैवदत्ता पुरस्क्रिया॥
—४।११२, ११३

कविता की यह स्तुति कितनी अभिराम एवं मञ्जुल है—

आमोदिनी सरसभावविकासरम्या
सन्दर्भशुद्धिपरिपुष्ट-गुण-प्रसादा।
संभूषिता स्रगिव संस्कृतिशालिनी गी-
र्हृद्याधिता श्रियमियं न कमानयेत॥ —१०।५७

नैवौचिती परिहृताऽस्त्यनया कदाचिन्-
निर्व्याजभाव-रमणीय-पदक्रमा च।
आरोपशून्य-सरसाभिहितिः समर्था
मान्या न कस्य तव वाक् कुलजाङ्गनेव॥ —१०।५८

शुद्धाभिधेयनिरता विरतप्रपञ्चा
सञ्चारिताऽमलतरान्तरबोधभूतिः।
निःसंशयाधिगत-सिद्धिशुभग्रहा ते
वाक् तापसीव सुकृतादनुकम्पते नः॥ —१०।५९

●

१. प्रकाशक—व्यवस्थापक, गोस्वामी तुलसीदास विद्यालय, पड़रौना (देवरिया) वि० सं० २०१४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६

श्रीराम शास्त्री भागवताचार्य

(आस्पद—अवस्थी; उपाधि—महामहोपाध्याय)

पण्डित रामशास्त्री काशी की विद्वन्मण्डली में अपने वाग्वैदुष्य, वादविवादपाटव तथा कोमल काव्य-विलास के कारण अद्वितीय प्रतिष्ठा से विभूषित एक महनीय मनीषी थे। श्रीवैष्णवी दीक्षा से दीक्षित होने के हेतु ये 'भागवताचार्य' उपाधि धारण करते थे। इनका पाण्डित्य चतुरस्र था। क्या साहित्य, क्या व्याकरण, क्या न्याय और क्या वेदान्त—सर्वत्र इनकी अप्रतिहत गति थी। काशी गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज की लिखित वार्षिक सर्वश्रेष्ठ आचार्य परीक्षा को उत्तीर्ण करना वैदुष्य का प्रतिमान है, परन्तु चार विषयों में आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण करना और वह भी अव्यवधानेन प्रतिवर्ष उत्तीर्ण करना अपने आप में स्वतः एक रेकार्ड है जिसको किसी पण्डित ने अभी तक नहीं तोड़ा है। पण्डित भागवताचार्य जी ऐसे ही वावदूक, मेधावी विद्वान् थे जिन्होंने साहित्य, सांख्ययोग, न्यायवैशेषिक तथा वेदान्त में एक ही वर्ष में क्रमशः आचार्य परीक्षा में उत्तीर्ण होकर विपुल कीर्ति अर्जित की है। इन्हीं अलौकिक प्रतिभासम्पन्न, अनेक शास्त्र-विशारद प्रकाण्ड विद्वान् के बहुमुखी व्यक्तित्व की एक झांकी यहाँ प्रस्तुत की जाती है।

पूर्व पुरुष

पण्डित भागवताचार्यजी कान्यकुब्जमण्डल के निवासी थे। यह मण्डल प्राचीनकाल से आचारवान्, सच्चरित्र ब्राह्मणों का निवास-स्थल होने से नितान्त प्रख्यात था। यहाँ बहुत प्राचीनकाल से तिरवा-ठठिया-विष्णुगढ़ आदि सामन्तनरेशों के द्वारा समादृत, कश्यपगोत्री, सिउर उपाधि सम्पन्न, अवस्थी कुलोत्पन्न, कान्यकुब्ज ब्राह्मण रहते थे। इन्हीं ब्राह्मणों में अन्यतम भगवन्त नामक पण्डित को ठठिया के बघेल वंशोत्पन्न राजा ने अत्यन्त सम्मान के साथ इक्षुमती नदी के दक्षिण तट पर विद्यमान 'भदौसी' ग्राम में जीविका देकर बसाया था। इसी वंश में श्रीवन्द्य नामक पण्डितप्रवर का जन्म हुआ। ये ही भागवताचार्यजी के पूज्य पितामह थे। ये विद्वान् होने के साथ ही साथ प्रख्यात-नामा बड़े साधक भी थे। इनके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हुआ और इन्होंने अपने गाँव से करीब एक योजन (चार कोस) दूर पर स्थित आंकिन गाँव के समीप भगवती भागीरथी के दक्षिण तीर पर आमार्य स्वामी नामक गुफा में भगवान् के ध्यान में अपने दिन बिताये। ऐसे नैष्ठिक साधक थे ये महापुरुष।

शिक्षा

इनके चार पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र का नाम था बालकृष्ण अवस्थी। ये भागवताचार्यजी के पूज्य पिता थे। बालकृष्णजी विद्याध्ययन में विशेष व्यसन रखते थे। प्रथमतः इन्होंने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने पिताजी से ही आरम्भिक शिक्षा प्राप्त की। अनन्तर ठठिया-निवासी श्रीसहाय चतुर्वेदी के पास बैठ कर व्याकरण शास्त्र का पूरा अध्ययन किया। इतने से इनका चित्त संतुष्ट नहीं हुआ। इनका मन दर्शनशास्त्र के ज्ञान के लिए तीव्र लालसा लिये हुए था। फलतः फतेहपुर के चौरासी ग्राम के निवासी पण्डित जनार्दनाचार्य के अन्तेवासी (शिष्य) बन कर इन्होंने दर्शन का, विशेषतः न्यायशास्त्र का, तलस्पर्शी अध्ययन किया। पण्डित जनार्दनाचार्यजी ने नवद्वीप में दर्शनों का गम्भीर अनुशीलन किया था। अपने शिष्य की गुरुसेवा से वे इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने शिष्य के समक्ष दर्शनशास्त्र के रहस्यों का उद्घाटन ही नहीं किया, प्रत्युत वैष्णवी दीक्षा से मण्डित कर श्रीनारायण के चरणारविन्द का मधुप भी इन्हें बना डाला। अपने पाण्डित्य के अनुरूप इन्हें अध्यापक का पद भी मिल गया और आगरा में किसी धनाढ्य चतुर्वेदी के द्वारा स्थापित किसी संस्कृत विद्यालय में ये अध्यापन करने लगे। अपने पिता से इन्होंने आयुर्वेद का भी विशेष अध्ययन किया था और इसी वैद्यक वृत्ति से घर पर ही रहकर इन्होंने चिकित्सा द्वारा जीविका और ख्याति दोनों ही प्राप्त की।

जन्म

इन्हीं बालकृष्णाचार्य के मध्यम पुत्र थे श्रीराम शास्त्री भागवताचार्यजी। इनका जन्म फर्रूखाबाद मण्डल के भदौसी ग्राम में ज्येष्ठ शुक्ल तृतीया को वि० सं० १९१६ में (= १८५९ ई० में) हुआ था। बालपन से ही इनकी प्रतिभा के शुभ लक्षण दीखने लगे थे। पिता से ही इन्होंने विद्या का प्रारम्भिक अध्ययन किया। पण्डित बालकृष्णाचार्य रीवाँ नरेश प्रसिद्ध कवि महाराजा रघुराजसिंह जी के द्वारा समादर तथा सम्मान प्राप्त कर रीवाँ में ही निवास करते थे। पिताजी के साथ ये वहाँ कुछ दिनों तक रहे। रीवाँ नरेश की राजकीय पाठशाला में उन दिनों एक दाक्षिणात्य पण्डित महादेवशास्त्री जी प्रधान अध्यापक थे। उन्होंने बालक की प्रतिभा तथा सेवा से प्रसन्न होकर इन्हें समस्त शास्त्रों का मर्मज्ञ बना दिया। ये केवल सात वर्ष के वय में रीवाँ आये थे और १३ वर्षों तक निरन्तर अध्ययन कर व्याकरण तथा दर्शन शास्त्रों में अलौकिक पाण्डित्य अर्जित कर लिया। १६ वर्ष के वय में पिताजी ने इनका विवाह भी कर दिया जिससे ये पूरे गृहस्थ बन गये।

काशी में अध्ययन

१८७९ ई० में बीस वर्ष के वय में ये अपनी शास्त्रीय विद्या को परिमार्जित तथा परिष्कृत करने के लिए काशी आये। अब तक ये श्री रङ्गाचार्य के द्वारा श्री वैष्णवी दीक्षा से दीक्षित होकर पं० भगवानदीन अवस्थी से श्रीराम भागवताचार्य के रूप में परिनिष्ठित हो चुके थे। काशी में आते ही इनका ध्यान संस्कृत विद्यालय के दर्शनाध्यापक, वैष्णवाग्रणी विद्वान्, सर्वतन्त्र स्वतन्त्र, **पण्डित राममिश्र शास्त्री** की ओर उनके वैदुष्य की कीर्ति से स्वतः आकृष्ट हो गया और उनके चरणों का सान्निध्य इन्हें अनायास ही प्राप्त हो गया। संस्कृत कालेज की परीक्षा देने की ओर इनकी प्रवृत्ति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई। नाना विद्याओं तथा शास्त्रों के ज्ञान के ऊपर प्रामाणिक पाण्डित्य की मुहर की आवश्यकता उस युग के गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज में हो गई थी और मौखिक के स्थान पर लिखित परीक्षा का प्रचलन तब आरम्भ हो चुका था। राममिश्रजी की दृष्टि शास्त्रीय अध्ययन के कारण गुरु की ओर आकृष्ट हुई फलत. गुरुजी ने एक ही वर्ष में आचार्य परीक्षा देने के लिए इन्हें उद्‌बुद्ध किया। फलस्वरूप भागवताचार्य ने वर्ष पञ्चक के चार विषयों में आचार्य की परीक्षा प्रतिवर्ष सम्मान के साथ उत्तीर्ण की और सर्वाधिक अंक प्राप्त करने के लिए दीयमान पदकों की द्रव्य राशि को ही अपने पारिवारिक व्यय के लिए स्वीकृत किया। इन्होंने १८८२ ई० में साहित्य शास्त्र में, १८८३ ई० में सांख्ययोग शास्त्र में, १८८५ ई० वेदान्त शास्त्र में तथा १८८६ ई० में धर्मशास्त्र में परीक्षा दी तथा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने के कारण 'आचार्य' पदवी से मण्डित किये गये। अगले वर्ष १८८७ ई० में इनकी प्रतिभा के मत्सरी अधिकारियों ने एक वर्ष के स्थान पर छह खण्डों में विभक्त कर छह वर्षों में आचार्य परीक्षा देने का नियम बना दिया। फलत: इस नियम के अनुसार अधिक काल व्यतीत होने की आशंका से इन्होंने अभिलषित व्याकरणाचार्य की परीक्षा देने की अभिलाषा को सदा के लिए ही त्याग दिया। भागवताचार्यजी ने अपने बुद्धि-वैभव, अपूर्व योग्यता तथा विशिष्ट परीक्षा चातुर्य का जो प्रतिमान उपस्थित किया, वह संस्कृत कालेज के इतिहास में एक महनीय घटना बन गई और किसी छात्र ने उसका अतिक्रमण करने की क्षमता आज तक नहीं दिखलाई। परिश्रम तथा प्रतिभा, शास्त्रीय ज्ञान तथा लेखन चातुरी के ये सचमुच एक प्रतीक रूप में समादृत हुए।

नौकरी

काशी आने पर जीविका का इन्हें बड़ा सुयोग प्राप्त हो गया। इंगलैण्ड में उत्पन्न मिस्टर जानसन नामक पादरी उस समय काशी के खिष्ट्रीय (ईसाई) गिरिजाघरों के धार्मिक अधिकारी थे। उन्हें संस्कृत सीखने की तीव्र लालसा थी। भागवताचार्यजी के पाण्डित्य से आकृष्ट होकर उन्होंने इन्हें ही अपना शिक्षक (ट्यूटर) नियुक्त किया और दस रुपया मासिक वेतन लेकर पण्डितजी उन्हें पढ़ाने लगे। कई वर्षों तक यह प्रशिक्षण चलता रहा। परन्तु रामशास्त्री ने संस्कृत कालेज काशी में अपनी नियुक्ति होने पर इसे बन्द कर दिया। इसी बीच इस अंग्रेज पादरी ने पण्डितजी के द्वारा विधिवत् शिक्षित होकर संस्कृत भाषा में अच्छी व्युत्पत्ति प्राप्त कर ली। वह काशी के विद्वत्समाज में 'पण्डित जानसन' के नाम से यथार्थत: प्रख्यात हो गया। उसने बाइबिल का संस्कृत में प्रथम बार अनुवाद किया। इससे पूर्व बाइबिल का देववाणी में अनुवाद करने की किसी पादरी में क्षमता नहीं थी। इस अपूर्व महनीय कार्य को उसने भागवताचार्य की सहायता से सम्पन्न कर अपने धार्मिक जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि प्राप्त की। श्रीभाष्य आदि वैष्णव ग्रन्थों का भी उसने अध्ययन किया था तथा उसमें अच्छी योग्यता प्राप्त की थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थ रचना

संस्कृत कालेज के दर्शनाध्यापक पण्डित बेचनराम त्रिपाठी के स्वर्गवास हो जाने पर उनके रिक्त स्थान पर भागवताचार्य की नियुक्ति सन् १८८९ ई० में हुई और ये बड़े प्रेम तथा परिश्रम से छात्रों का अध्यापन करने लगे। ग्रन्थ लेखन की ओर इनकी प्रवृत्ति छात्रावस्था से ही थी और अनेक ग्रन्थों का संशोधन तथा प्रणयन ये करते रहे। इन्होंने 'खण्डनखण्डखाद्य' का सम्पादन अपने सतीर्थ्य कुलय शास्त्री के नाम से कर उसकी भूमिका अपने नाम से प्रकाशित की थी। अपने दूसरे मित्र तथा सहाध्यायी पण्डित मोहनराम उदासीन का जीवन चरित्र तथा अन्य ग्रन्थों का प्रणयन किया (नामावली आगे दी गई है)। इन्होंने श्रीभाष्य का विशिष्ट संस्करण प्रस्तुत किया था और वह काशी के ही संस्कृत ग्रन्थों के प्रख्यात मुद्रणालय लाजरस कम्पनी द्वारा प्रचारित 'मेडिकल हाल' प्रेस में मुद्रित हो ही रहा था कि ये १९७० विक्रमी सं० (=१९१३ ई०) में केवल ५४ वर्ष की आयु में वैकुण्ठवासी हो गये। इनके अंग्रेज शिष्य जानसन ने गुरु के अपूर्ण कार्य को पूरा किया और अपने ही नाम से श्रीभाष्य के उस संस्करण को प्रकाशित कराया। गुरु-शिष्य का यह समवेत प्रयास देखने ही योग्य है। अपनी मृत्यु से पाँच वर्ष पूर्व ही इन्हें १९०८ ई० में महामहोपाध्याय की महनीय उपाधि प्राप्त हो चुकी थी।

दिनचर्या

भागवताचार्य जी अपने गुरु के समान ही लेखन कला में नितान्त निष्णात थे। इनकी दिनचर्या देखकर इनकी अध्यापन पटुता तथा अध्यापन व्यसनिता का पूरा परिचय मिलता है। उन दिनों संस्कृत कालेज में अध्यापन प्रातःकाल ही होता था—६ बजे से १० बजे तक। फलतः ये प्रातःकाल स्नानादि कार्य निष्पन्न कर कालेज चले जाते थे। घर लौटने पर उपासना-पूजा के अवशिष्ट अंशों का सम्पादन कर भोजन करते। कुछ विश्राम के अनन्तर छात्रों को पढ़ाते। सन्ध्या होने से पूर्व ही ये छोटी गैबी तक भ्रमण के लिए निकल जाते। रात में सन्ध्या वन्दन के बाद १० बजे तक छात्रों का अध्यापन करते। इस प्रकार रात्रिदिव अध्ययन-अध्यापन के अतिरिक्त इन्हें कोई दूसरा कार्य नहीं था। यदि कहीं से सभा का निमन्त्रण होता, तो ये वहाँ शास्त्रार्थ चर्चा के लिए अवश्य जाते। शास्त्रार्थ करने में ये बड़े पटु थे। न्यायशास्त्र में प्रवीणता प्राप्त करने के कारण ये बड़े तार्किक थे। शास्त्रार्थ में ये युक्तियों का व्यूह खड़ा कर देते थे। अधिकांश सभाएँ पण्डित शिवकुमार शास्त्री के द्वारा ही आयोजित होती थीं। फलतः वे उनमें नियम से उपस्थित रहते थे और उसका संचालन करते थे। ये कोतवाल (सभा का निमन्त्रण देने वाला व्यक्ति) से शिवकुमार शास्त्री जी की उपस्थिति के बारे में सर्वदा पूछ लिया करते थे। यदि उनकी उपस्थिति संभावित होती, तो ये निश्चयेन सभा में पधारते। यदि वह कहता कि आज शास्त्री जी के आने की सम्भावना नहीं है, तब ये इतना कहकर जाने की अनिच्छा प्रकट कर देते—यदि शास्त्री जी ही उपस्थित

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं रहेंगे, तो मेरी सरस्वती की तीक्ष्ण धारा कौन सह सकेगा ? ऐसा था इनका स्वाभिमान और आत्मविश्वास ।

व्यक्तित्व

पण्डित भागवताचार्य जी का व्यक्तित्व बड़ा ही आकर्षक था । माथे पर सफेद बड़ी पगड़ी, शरीर पर बगलबन्दी, गले में उज्ज्वल दुपट्टा, स्वच्छ सुन्दर धोती, तथा ललाट पर रामानुजी तिलक— ऐसे सुन्दर वेष में शास्त्री जी का व्यक्तित्व इतना रोचक तथा आवर्जक था कि जो कोई भी इन्हें देखता, बलात् आकृष्ट हुए बिना नहीं रहता था । अवकाश में भी अध्यापनशील, रात के दस वादन तक विद्यार्थी-समूह के पाठन में संलग्न समस्त शास्त्रों के पाठन में दक्ष, शास्त्रार्थ के समय साधुवाद के सत्कार से मण्डित, आचार्य जी स्वभाव से निर्मत्सर, सदाचारनिरत, सत्यवादी तथा न्यायप्रिय थे । श्रीवैष्णव सदाचार के जीवन्त प्रतीक शास्त्री जी के आचार तथा व्यवहार में तनिक भी अन्तर न था । तेईस वर्षों के सुदीर्घकाल में इन्होंने काशिराजकीय विद्यालय में विद्यादान मुक्तहस्त से दिया, अपनी संचित तथा उपार्जित विद्या को दोनों हाथों से लुटाया । रास्ते में दर्शकों के मुख से अनायास ही निकल पड़ता—पद्भ्यां व्रजति पाण्डित्यम्—यह देखो पाण्डित्य की प्रतिमा पैदल चल रही है । शास्त्रीजी थे ही एक असामान्य विचक्षण ।

ग्रन्थों की रचना

भागवताचार्य जी प्रामाणिक और मौलिक ग्रन्थों तथा व्याख्या ग्रन्थों का निर्माण कर अपने जीवनकाल में ही लब्धकीर्ति थे । परन्तु दुःख इसी घटना पर है कि केवल दो सामान्य काव्य ग्रन्थों (संख्या ११ तथा १२) के अतिरिक्त इनके अन्य ग्रन्थ आज भी हस्तलेख के रूप में ही अपनी सत्ता बनाये हुए हैं—अभी तक प्रकाश में नहीं आये । इनके प्रणीत ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है—

(१) **नयकमलाकरः** (तेरह सौ श्लोकों में निबद्ध नीतिग्रन्थ)

(२) **कादम्बरी वरीयस्ता** (उत्तरार्ध कादम्बरी की विशद व्याख्या; पूर्वार्ध के विषम स्थलों पर विस्तृत टिप्पणी से मण्डित)

(३) **हरविजय काव्य टिप्पणी** (सुविस्तृत टिप्पणी)

(४) **कुमारचरित चारुता** (दशकुमारचरित की टीका)

(५) **काव्यप्रकाशस्य** दोषोद्धारः ।

(६) **भारत चम्पू** टिप्पणी ।

(७) **सुवृत्त रत्नावली** (प्राचीन संस्कृत कवियों के स्वरूप वर्णन से संबद्ध काव्य)

(८) **श्रीतात चरणालोकः** (स्व-कौटुम्बिक जीवन-वृत्तान्तमय काव्य)

(९) **भवभेषजम्** (वेदान्त-विषयक श्लोकमय ग्रन्थ)

(१०) **हिन्दी कवि-कीर्ति-कौमुदी** (हिन्दी के दोहा नामक छन्द में निबद्ध)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(११) **समस्या** समज्या (समस्यापूर्ति का नवीन मौलिक ग्रन्थ) प्रकाशित
(१२) **अन्योक्ति मुक्तावली** (अन्योक्ति-विषयक काव्य) प्रकाशित

काव्य-प्रतिभा

अन्तिम दोनों काव्यग्रन्थ हैं। इनके अनुशीलन से भागवताचार्य जी की काव्य-रचना चातुरी का पदे-पदे साक्षात्कार होता है। **समस्या समज्या**—यह १७२ समस्याओं का मंजुल संग्रह है। कवि का उद्देश्य है नवीन छात्रों को समस्यापूर्ति की शिक्षा देना। संस्कृत कालेज के साहित्याचार्य के अन्तिम पत्र में समस्यापूर्ति का प्रश्न आता है उसी का समाधान करने लिए इस ग्रन्थ का प्रणयन हुआ है। किन्हीं-किन्ही समस्याओं की तो दस-बारह प्रकार से पूर्ति की गई है। एक दो उदाहरण पर्याप्त होंगे—

(१) **मशक गलक रन्ध्रे हस्तियूथं प्रविष्टम् ॥**

सुतनुनिटिलमध्ये धर्मजं स्वेदबिन्दुं
गजनिकर-सुबिम्बैः पूरितं वीक्ष्य कान्तः।
तृषित-मशक-पीतं सस्मितं संबभाषे
मशक-गलक-रन्ध्रे हस्तियूथं प्रविष्टम् ॥[1]

आशय – सुन्दरी के ललाट के बीच धूप के कारण पसीने की बूँदों में हाथियों के झुण्ड का प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर हुआ। उसे प्यासा मशक पी गया। इस घटना को देखकर प्रियतम मुस्कुराते हुए कहने लगा—मशक (मच्छड़) के गले के छेद में हाथियों का झुण्ड घुस गया है।

इस समस्या की पूर्ति पाँच प्रकार से की गई है।

(२) **पिपीलिका चुम्बति चन्द्रबिम्बम् ॥**

अङ्कं च पङ्कं च कलङ्कमङ्के
चन्द्रस्य केचित् ब्रुवते ब्रुवन्तु।
ब्रूमः सुधास्वाद-परैकसक्ता
पिपीलिका चुम्बति चन्द्रबिम्बम् ॥[2]

चन्द्रमा के मध्य में विद्यमान काली वस्तु को कोई अंक (चिह्न) कहता है, कोई पंक मानता है, तो कोई कलंक बतलाता है। वे लोग कहते रहें। परन्तु हम लोग कहते हैं—अमृत के स्वाद चखने में आसक्त यह चींटी है जो चन्द्रबिम्ब का चुम्बन कर रही है। अच्छी कल्पना है!

इस समस्या की विभिन्न आठ प्रकारों से पूर्ति है।

---

१. समस्या समज्या, प्रकाशक श्रीदेवाचार्य, काशी सं० २०१०, पृ० ३४।
२. वही, पृ० २२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) श्यामलो जयति यामिनीपतिः ॥

इन्द्रनील-घटितोपनेत्रतो
वीक्ष्यमाणमखिलं तु नीलति ।
श्वेतमानमपि वस्तु तत्परं
श्यामलो जयति यामिनीपतिः ॥[1]

इन्द्रनीलमणि के द्वारा बनाये गये चश्मे (उपनेत्र) से देखने पर सब वस्तुएँ नीले रंग की ही दीखती हैं। उजली वस्तु भी नीले रंग की मालूम पड़ती है। यही कारण है कि धवल चन्द्रमा काला दिखाई दे रहा है। जय हो काले चन्द्रमा की !

(४) 'विप्रतिषेधे परं कार्यम् ॥'

"गृह-जालमेतदास्ते वेणु-
रवेणाथ शंसति च कृष्णः ।
भज सखि ! पाणिनिसूत्रं
विप्रतिषेधे परं कार्यम् ॥"

कर्तव्यविमूढ़ राधा से उसकी सखी ललिता कह रही है : यह घर का जंजाल पहिले है और उधर कृष्ण अपनी बंशी बजाकर बुला रहा है। तब इस धर्मसंकट में क्या करूँ ? क्यों पाणिनि महाराज का तो सूत्र है कि तुल्य बल विरोध होने पर परकार्य करना चाहिए। कृष्ण का अनुसरण करो। गृह-कार्य को छोड़ो। इस समस्या की पूर्ति नौ प्रकार से की गई हैं (पृ० ४९–५०)।

अन्योक्ति मुक्तावली—बड़ी अभिराम अन्योक्तियों का प्रणयन शास्त्रीजी की कमनीय काव्य-रचना का चमत्कार है। कविता ऊँचे दर्जे की है तथा सूझबूझ भी निराली ही है। वृक्षों के सम्बन्ध की ३६ अन्योक्तियाँ हैं जिनमें कल्पवृक्ष, चन्दन, आम्र, अशोक, कदली आदि ३६ वृक्षों को लक्ष्य कर अन्योक्तियाँ निबद्ध की गई हैं। प्रतिभा का चमत्कार अवलोकनीय है—

(१) यदपि न वनपाल एष रक्षा-
मनुरूपां भवतश्चकार चारो ।
सुरभयसि वनं तथापि यत्
तद् बकुल ! कुलव्रतमेव पालनीयम् ॥

(२) काक पर अन्योक्ति देखिए। अनुप्रास का मनोरम साम्राज्य है—

काकोल कोकिल कलां कलमाऽनुकालं
माकन्द-कुञ्ज-कुहरे विहर, प्रकामम् ।
काये च कज्जन किलाऽऽवह कालिमानं
स्यात् काकली कलकृतौ कतमोऽभ्युपायः ॥

---

१. वही, पृ० ३६ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बगुले पर एक सुन्दर अन्योक्ति इस प्रकार है—

स्वच्छन्दं सरसीषु सञ्चरतरां स्वच्छश्च बोभूहि भो
मुक्ताशुक्तिषु च प्रपञ्चमतरां चञ्चूसमुच्चञ्चनाम् ।
एकं मा कुरु मा कुरु प्रिय सखे ! प्रह्वं तु कह्व ब्रुवे
नीरक्षीर-विवेचनैकचतुरैर्हंसैस्तु यत् स्पर्धसे ॥

हे बगुला (कह्व), तुमसे हमारी एक प्रार्थना है। तुम तालाबों में स्वच्छन्द रूप से विचरण किया करो। मोतियों के चुनने में अपनी चोंच लगाकर अपनी कला प्रदर्शित करो। तुम्हारे इस आचरण से मुझे कोई शिकायत नहीं है। परन्तु एक बात जिसके लिए मैं आग्रह कर रहा हूँ वह यह है कि नीर, क्षीर विवेक करने वाले हंसों के साथ तुम स्पर्धा न किया करो। उनके साथ स्पर्धा करना तुम्हारे लिए बहुत ही अनुचित है।

कीदृशोऽस्त्युभयतो धृतपुच्छः कस्य कर्षकपतेर्महिषोऽयम् ।
मोप कर्षति कथं च हलैवेत्यत्र काः करिसदः प्रतिवाचः ॥

गाँव का रहने वाला था—अटट गँवई। उसने कभी हाथी नहीं देखा था। पहली बार उसने हाथी देखा तो वह उसके महावत से पूछने लगा—कहो भाई, दोनों ओर से पूँछ धारण करने वाला यह कौन जानवर है ? मैं तो इसे भैंसा समझ रहा हूँ। बताओ यह किस किसान का भैंसा है ? आखिर वह इसे कैसे जोतता होगा ? इन प्रश्नों को सुनकर महावत चुप हो गया। क्या जवाब दे गाँव के अटट गँवई का। यह चित्रण कितना स्वाभाविक तथा रोचक है। ऐसी सुन्दर अन्योक्तियों की रचना में भागवताचार्यजी अपना प्रतिस्पर्धी नहीं रखते थे।

विद्वत्ता

स्वामी भागवताचार्य जी साहित्य के साथ ही साथ दार्शनिक विषयों के विशेषतः श्रीवैष्णव सिद्धान्तों के पारङ्गत विद्वान् थे। दक्षिण भारत में श्रीवैष्णव मतावलम्बी विद्वानों ने अपने मत के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का संस्करण प्रकाशित किया था, परन्तु ग्रन्थ तमिल लिपि में होने के कारण उत्तर भारतीय विद्वानों के लिए उनका अध्ययन असाध्य नहीं, तो दुःसाध्य अवश्य था। इस त्रुटि को दूर करने के लिए स्वामी भागवताचार्य जी तथा उनके पूज्य गुरु स्वामी राममिश्र शास्त्रीजी ने समभावेन इन ग्रन्थों का देवनागरी लिपि में संस्करण प्रस्तुत किया और काशी के मेडिकल हाल प्रेस तथा चौखम्भा कार्यालय ने प्रकाशित कर बड़ा ही शोभन कार्य किया। गुरु-शिष्य दोनों ही श्रीवैष्णव मतावलम्बी थे। अत एव इसके सिद्धान्तों से पूर्ण परिचित होने के कारण उनके द्वारा सम्पादित ग्रन्थ नितान्त प्रामाणिक तथा उपयोगी है। इन दोनों विद्वानों के समुद्योग से श्रीवैष्णव ग्रन्थों का प्रथम प्रकाशन नागराक्षर में सम्भव तथा सुलभ हो सका।

भागवताचार्यजी के द्वारा सम्पादित, संशोधित तथा चौखम्भा संस्कृत ग्रन्थमाला में वि० सं० १९५७ (= १९०० इ०) में प्रकाशित लोकाचार्य द्वारा प्रणीत 'तत्त्वत्रय'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामक ग्रन्थ (वरवर मुनि प्रातिभाष्य से उपबृंहित) इसी कोटि में आता है। मूल ग्रन्थ तथा भाष्य दोनों ही मूलतः तमिल भाषा में ही निबद्ध थे। इन्हीं का संस्कृत में अनुवाद किया वृन्दावनवासी श्री रङ्गाचार्य स्वामी ने और उन्हीं की कृपा से यह महनीय ग्रन्थ उत्तर भारतीय विद्वानों को अध्ययन-मनन के लिए सुलभ हो सका। भागवताचार्यजी का यह संस्करण भाष्यसहित इस ग्रन्थ का नागराक्षरों में आद्य संस्करण है। भागवताचार्यजी की काव्यकला का परिचय ऊपर दिया गया है। यहाँ उनके संस्कृत गद्य का नमूना इसी ग्रन्थ की भूमिका से दिया जा रहा है—

संस्कृत की गद्य शैली

"विशिष्टाद्वैतराद्धान्ते श्रीभाष्यश्रुतप्रकाशिकाप्रभृतिषु महानिबन्धेषु निवेशमर्थयमानां कृते पुरस्तात् तदीय पदार्थावबोधो भवति सर्वथा प्रार्थनीयः। तत्-सिद्धये च सन्त्येव वेदार्थसंग्रहाः तत्त्वमुक्ताकलापप्रमुखाः प्रबन्धाः, तथापि न तेषु सर्वविद्वज्जनस्यापि सहसावबोधसम्भवो, दूरायेतः साधारणजनस्येति प्रथमभूमिकायामभिनवाधिकारिणां कृते तत्त्वत्रयं भाष्यसनाथमुपयोगितां भजेत, अधिकमनधिजिगांसूनां च पर्याप्नुयात् तावत् प्रबोधाय।"

भागवताचार्य की लेखन शैली बड़ी सरस और सुबोध है। फलतः संस्कृत पद्य के समान संस्कृत गद्य की रचना में भी ये सर्वथा कृतकार्य एवं श्लाघनीय थे। अपने जीवन के अन्तिम समय में ये अपने शिष्य जानसन साहब के सहयोग से श्रीभाष्य का भी एक विमर्शात्मक संस्करण मुद्रित करा रहे थे, परन्तु उसकी समाप्ति के पूर्व ही आपका स्वर्गवास हो गया। हा हन्त !!!

भागवताचार्य जी के एकमात्र पुत्र का नाम—**देवाचार्य अवस्थी** था। पिताजी के अल्पायु में निधन हो जाने के कारण ये उनकी छत्रच्छाया से सर्वदा के लिए वञ्चित हो गये। फलतः संस्कृत का विशेष अध्ययन करने का अवसर तथा अवकाश इन्हें प्राप्त न हो सका। परन्तु भागवताचार्य का कवित्वमय हृदय इन्हें मानों रिक्थ में मिला था। ब्रजभाषा में बड़ी ही सुहावनी सरस कविता करते थे। हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् लाला भगवानदीन के सम्पर्क में आने से इन्होंने काव्यरचना में अच्छी प्रौढ़ि प्राप्त कर ली। लालाजी की इन पर बड़ी दया थी। कविसमाज में कविता पढ़ने के लिए साथ ले जाते तथा पढ़ने के लिए प्रेरित करते। लालाजी के द्वारा स्थापित हिन्दी दीनविद्यालय में आप अध्यापन का कार्य करते थे। विद्यालय की सम्पूर्ण व्यवस्था आपही के द्वारा होती थी। विद्यालय की उन्नति के लिए आपका प्रयास स्तुत्य है। हाल में ८५ वर्षों की आयु में आप दिवंगत हुए हैं।

(२) भागवताचार्यजी के सतीर्थ्य

पण्डित मोहनलाल वेदान्ताचार्य

(उदासीन साधु)

मोहनलाल उदासीन, वेदान्ताचार्य आदि उपाधियों से मण्डित विद्वान् काशी में निवास करते थे। इनका आविर्भाव गत शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ था। इन्होंने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्जाब प्रान्त के गुरुदासपुर जिले के अन्तर्गत 'डेहरा' नामक गाँव में जन्म पाया था। ये सिक्खों के प्रथम गुरु नानक के वंश की तेरहवीं पीढ़ी में पैदा हुए थे। ये जन्म से ही गायन आदि अनेक विद्याओं में निपुण थे। परन्तु स्वभाव से ही विरक्त होने के कारण ये गाँव-गाँव में भजन-कीर्तन करते हुए काशी आ पहुँचे। यहीं पर इन्होंने शास्त्रों के अध्ययन का उचित अवसर पाकर अपने को विद्या के अध्ययन में लगाया। उस समय के संस्कृत कालेज के दर्शनशास्त्र के सबसे प्रकाण्ड पण्डित महामहोपाध्याय पण्डित राममिश्र शास्त्री थे। उन्हीं के चरणों में बैठकर इन्होंने वेदान्त आदि शास्त्रों का अध्ययन किया। इनकी बुद्धि इतनी निर्मल एवं प्रखर थी कि थोड़े ही दिनों में इन्होंने वेदान्त आदि के उच्चतम ग्रन्थों का अध्ययन कर गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज की 'वेदान्ताचार्य' परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् इन्होंने अनेक शास्त्रों का मनन कर उनमें विद्वत्ता प्राप्त की। इसी कालेज के एङ्ग्लो संस्कृत विभाग में इन्होंने भौतिक शास्त्र का भी अध्ययन किया।

इन्होंने जीविका के लिए कोई वृत्ति स्वीकार नहीं की। अपने गुरु पण्डित राममिश्र शास्त्री की प्रेरणा से इन्होंने लेखन-कार्य में अपने चित्त को लगाया और इस प्रकार अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया जो अपने विषय की बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथा प्रामाणिक रचनाएँ हैं। इन दार्शनिक ग्रन्थों का प्रणयन ही इनके जीवन की परम उपलब्धि है। इन्होंने महर्षि दयानन्द स्वामी के साथ अनेक बार शास्त्रार्थ किया था। इनके ग्रन्थों के नाम निम्नांकित हैं—

(१) दोषदूषकतामूलनिर्णयः।
(२) महामोहविद्रावणम्।
(३) वेदान्तसिद्धान्तादर्शः।
(४) खण्डनगर्तप्रदेशिनी।
(५) वृत्तिप्रभाकर—अनुवादः (पद्यों में)।
(६) स्वानुभवोद्रेकः।
(७) शिल्पचमत्कारचिन्तामणिः (हिन्दी)।
(८) प्रतिबिम्बचित्रचिन्तामणिः (हिन्दी)।

इनमें से अन्तिम दो ग्रन्थ हिन्दी में लिखे गये हैं। शेष सब संस्कृत में निबद्ध हैं। इनके ग्रन्थों में **खण्डनगर्तप्रदेशिनी** महाकवि श्रीहर्ष के **खण्डनखण्डखाद्य** ग्रन्थ की नूतन मौलिक टीका है। इस टीका को लिखने के लिए कालेज के प्रिन्सिपल डॉ० थीबो की प्रेरणा तथा महामहोपाध्याय पण्डित राममिश्र शास्त्री का आदेश इन्हें प्राप्त हुआ था। तभी उदासीनजी ने इसकी रचना की थी। इस ग्रन्थ के नाम से ही प्रतीत होता है कि इसमें श्रीहर्ष के प्रसिद्ध ग्रन्थ "**खण्डनखण्डखाद्य**" की आलोचनात्मक टीका की गयी है। यह ग्रन्थ मोहनलालजी के मौलिक चिन्तन का परिणाम ज्ञात होता है। **वृत्तिप्रभाकर** का संस्कृत पद्यानुवाद भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचना है। स्वामी निश्चलदास

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदासीन की हिन्दी रचना 'वृत्तिप्रभाकर' हिन्दी में निबद्ध वेदान्त ग्रन्थों में अत्यन्त महनीय माना जाता है। इस ग्रन्थ में लेखक की विद्वत्ता के साथ ही साथ इनकी स्वानुभूति भी प्रदर्शित है। इसीलिए इसका इतना महत्त्व है। स्वामी विवेकानन्द ने इस ग्रन्थ की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। संस्कृत से अनभिज्ञ व्यक्तियों के लिए, वेदान्त के सिद्धान्तों को समझने के लिए यह ग्रन्थ अचूक माध्यम है। वेदान्त के सिद्धान्तों को संस्कृत में पद्यबद्ध करके इन्होंने पण्डितों के लिए भी इसे सुलभ बना दिया है। इस प्रकार इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना कर अनन्त कीर्ति प्राप्त की थी।

वेदान्ताचार्य मोहनलालजी उदासीन सम्प्रदाय के एक विरक्त साधु थे। इन्होंने अपने जीवन को अध्यात्म विद्या के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित कर दिया था। शास्त्रार्थ की कला में ये नितान्त कुशल थे। अपने वादियों का खण्डन करने में ये शास्त्र प्रमाण के साथ ही साथ प्रौढ़ युक्तियों का भी पूर्णतया उपयोग करते थे।

महामोहविद्रावण की समीक्षा

वेदान्ताचार्य मोहनलाल के ग्रन्थों में **'महामोहविद्रावण'** वैदिक धर्म तथा दर्शन के खण्डनकर्ताओं के सिद्धान्तों का खण्डन कर वैदिक धर्म के मन्तव्यों का शास्त्र तथा युक्तियों के द्वारा पूर्णतया मण्डन करता है। यह ग्रन्थ १९४० वि० सं० (=१८८३ ई०) में काशी से ही प्रकाशित हुआ था। इसके प्रथम प्रबोध (परिच्छेद) में स्वामी दयानन्द के इस मत का प्रमाणपुरःसर खण्डन किया गया है कि "'ब्राह्मण' ग्रन्थ श्रुति के अन्तर्गत नहीं हैं। अतः मान्य नहीं हैं। जहाँ वेद संहिताएँ अपौरुषेय हैं, वहीं ब्राह्मण ग्रन्थ पौरुषेय हैं, आदि।" वेदान्ताचार्य ने व्याकरण के त्रिमुनि (पाणिनि, कात्यायन तथा पतञ्जलि) तथा षड्दर्शनों के रचयिता कपिल, कणाद आदि महर्षियों के ग्रन्थों से प्रचुर प्रमाण इस मत के खण्डन में उपन्यस्त किया है। इनकी भाषा बड़ी प्रौढ़ है तथा लेखनशैली पूर्णतया शास्त्रीय है। स्वामी दयानन्दजी का काशीस्थ पण्डितों के साथ शास्त्रार्थ १८२६ वि० सं० कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी मंगलवार को दुर्गाकुण्ड के समीपस्थ आनन्दबाग में हुआ था। इस घटना के १६ वर्ष के भीतर ही इतने प्रमेयबहुल प्रौढ़ ग्रन्थ की रचना कर पण्डित मोहनलालजी ने अपने गम्भीर शास्त्रानुचिन्तन, प्रकृष्ट शास्त्रीय पाण्डित्य तथा उत्कृष्ट लेखनशैली का जो परिचय दिया है वह नितान्त श्लाघनीय है। इसके अनुशीलन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इनका वेद तथा दर्शन का पाण्डित्य कितने ऊँचे स्तर का था। इनकी लेखनशैली की प्रगल्भता के दो नमूने यहाँ दिये जाते हैं—

(क) प्रतारयत्वेष पाञ्चनदाननभिज्ञान् यवनविद्यामात्राभ्यासिनः कायस्थानपरान् वा तथाविधान्, परमस्य वेदप्रतारणं खेदयत्यस्मदीयं चेत इत्येतस्य कतिपयप्रधान-विडम्बना निराकरणायायमुद्यमोऽस्मदीयो माऽभूद् गर्हणाविषयः। नहि पञ्चास्यो मशके महिषे शशकेऽवगत्य बलतारतम्यं प्रवर्तते, परन्तु तस्य सा निजा वृत्तिर्यदसावनधिगत-विपक्ष बलतारतम्य एव न संसहते विपक्षमात्रम्।

(ग्रन्थ की भूमिका से)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ऋषिभिरुक्तत्वात् इति कपटभिक्षोस्तृतीयो महामोहः। अत्र ब्राह्मणानि न वेदा ऋषिभिरुक्तत्वादिति न्यायकारः। अत्रायमसाधको हेतुः ऋष्युक्तत्वस्य ऋगादिसाधारणत्वात्। ऋचोऽप्यपाठिषुरेवर्षयः न तावता तेषां वेदत्वव्याहतिः। यदि ऋष्युक्तत्वेन ऋषिप्रणीतत्वमभिप्रैषि, तदा ब्राह्मणान्यपि न ऋषिप्रणीतानीति 'ऋषिप्रणीतत्वात्' इति स्वरूपासिद्धो हेतुः।

(ग्रन्थ के प्रथम प्रबोध से उद्धृत)

इससे स्पष्ट द्योतित होता है कि वेदान्ताचार्य मोहनलालजी काशी के प्रथम कोटि के पण्डितों में अन्यतम थे। अध्यापन के साथ ही ग्रन्थों के निर्माण में भी इनकी लोकातीत प्रतिभा विराजती थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री नित्यानन्द पन्त पर्वतीय

(आस्पद–पन्त, उपाधि–महामहोपाध्याय)

महामहोपाध्याय पण्डित नित्यानन्द पर्वतीयजी का जन्म कूर्माचल के एक विशिष्ट ब्राह्मण कुल में हुआ था। पण्डिजजी के प्रपितामह श्री नीलाम्बर पन्त अलमोड़ा जिले के तिलाडी गाँव से काशी में त्याग-तपस्यामय जीवन बिताने की इच्छा तथा भूत-भावन विश्वनाथ के पादार्चन की अभिलाषा से आये। ये बड़े तपस्वी, दार्शनिक एवं योगी थे। गंगा और वरुणा के संगम पर स्थित आदिकेशव के मन्दिर के समीप ही रहते थे। विद्वान् होने के साथ ये योगी भी थे तथा मार्कण्डेयेश्वर में गंगा-गोमती के पावन संगम पर जाकर इन्होंने योगबल से जल-समाधि ग्रहण की।

इनके विषय में यह जनश्रुति बहुत ही प्रख्यात है, काशी का ही कोई ब्राह्मण गाय की हत्या करने के प्रायश्चित्त के निमित्त पन्त जी के पास आया। इसके पूर्व ही वह काशी के धर्मशास्त्रियों के द्वारा निर्दिष्ट प्रायश्चित्त का विधान कर चुका था और अपने को उस घोर पाप से मुक्त मान बैठा था। उसने पन्त जी से आग्रह किया कि आप भी मुझे गोहत्या के पाप से शुद्ध स्वीकार कर लें। पण्डित नीलाम्बर पन्त ने उसके आकार-प्रकार को देखकर कहा कि अभी तक तुमने उचित प्रायश्चित्त नहीं किया है फलतः तुम शुद्ध नहीं हुए हो। यदि तुम अपने हाथों से दूब गायों के सामने रखो और वे उसे खाने लगें, तो मैं तुमको शुद्ध मान लूँगा। उस ब्राह्मण ने हरी-हरी दूब की मुट्ठी गायों के सामने रख दी, परन्तु गायों ने उसे छूया तक नहीं। ब्राह्मण के आग्रह से उन्होंने गो-वध का उचित प्रायश्चित्त बताया, जिसके आचरण से वह उस घोर पाप से सर्वथा मुक्त हो गया। सुनते हैं कि अब उसके हाथ की दूब विश्वनाथ जी के नन्दी ने स्वयं खा कर उसकी विशुद्धि पर मोहर लगा दी थी।

जन्म

पर्वतीय जी के पिता एवं पितामह का जन्म काशी में हुआ था। इसी समय काशी में एक दूसरा पर्वतीय ब्राह्मण परिवार भी अलमोड़े जिले के ज्योली गाँव से आकर यहाँ निवास करने लगा था। यह परिवार **पण्डित गंगाराम त्रिपाठी** शास्त्री का था। ऊपर कहा जा चुका है कि ये ही गंगाराम जी काशी की नव्य व्याकरण परम्परा के उद्भावक रहे हैं। नागेशभट्ट की शेखरद्वयी के अध्ययन-अध्यापन की परिष्कार शैली का सर्जन कर आपने व्याकरण शास्त्र की एक नई परम्परा चलाई जो अबाध गति से आज भी चल रही है। पण्डित नित्यानन्द जी इन्हीं पण्डित गंगाराम जी के दौहित्र-पुत्र थे। इस प्रकार पर्वतीयजी में पितृपरम्परा से प्राप्त त्याग-तपस्या का एवं मातृपरम्परा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से प्राप्त पाण्डित्य-वैदुष्य का अपूर्व समन्वय था। ऐसे तपस्वी विद्वान् की धर्मशास्त्र के आचरण तथा व्यवस्थापन के प्रति अभिरुचि होना पैतृक रिक्थ माना जा सकता है।

पं० नित्यानन्द पर्वतीय के पिता का नाम नामदेव पन्त था। नित्यानन्द जी का जन्म काशी में सं० १९३४ वि० तदनुसार सन् १८६७ ई० में हुआ था।

अध्ययन

यज्ञोपवीत संस्कार हो जाने के पश्चात् इन्होने अपने पिता से ही अपनी वाजसनेयी शाखा की संहिता का विधिवत् अध्ययन किया। वेद, शास्त्रादि का अभ्यास होने के कारण कर्मकाण्ड और धर्मशास्त्र पर इनका सम्यक् अधिकार हो गया। इसके अनन्तर इन्होंने महामहोपाध्याय पण्डित गंगाधर शास्त्री के चरणों में बैठकर व्याकरण आदि अनेक शास्त्रों का अध्ययन, मनन और आलोडन कर प्रकृष्ट प्रौढ़ि प्राप्त की। इनका ज्ञान नाना शास्त्रों के विषय में गुरु की कृपा से अत्यन्त गम्भीर था। इन्होंने न्याय, मीमांसा, वेदान्त और धर्मशास्त्र का इतने मनोयोग से आलोडन तथा चिन्तन किया कि यावज्जीवन ये शास्त्र इनकी जिह्वा पर विराजमान रहे। जब ये केवल उन्नीस वर्ष के थे तभी (सं० १९४३ वि० = १८८६ ई० में) बड़े गौरव तथा सम्मान के साथ इन्होंने व्याकरणाचार्य की उपाधि प्राप्त की। गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, काशी में जब मौखिक के स्थान पर लिखित परीक्षा होने लगी तब ये सर्वप्रथम छात्र थे जिनको यह उपाधि मिली थी। उस समय परीक्षाओं में प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी का विभाजन प्रारम्भ नहीं हुआ था। जो छात्र प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होता था उसे आचार्य और द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण छात्र को उपाध्याय की पदवी दी जाती थी। पं० नित्यानन्दजी ने प्रथम श्रेणी में परीक्षा उत्तीर्ण कर व्याकरणाचार्य की उपाधि अर्जित की थी।

अध्यापन

सन् १८९८ ई० में सेन्ट्रल हिन्दू कालेज की स्थापना की गई थी जिसका प्रधान उद्देश्य हिन्दू धर्म तथा संस्कृति की प्रतिष्ठा तथा प्रचार करना था। पं० नित्यानन्दजी ने इसी सात्विक भावना से प्रेरित होकर इस कालेज की स्थापना में सक्रिय योगदान दिया। इन्होंने डा० भगवानदास तथा डा० एनी बेसेन्ट के साथ इस कालेज को मूर्तरूप प्रदान किया। इस कालेज की स्थापना करने के पश्चात् इन्होंने इस महाविद्यालय में अध्यापन का कार्य करना प्रारम्भ किया। ये लगातार यहाँ सन् १९०६ ई० तक प्राध्यापक पद पर प्रतिष्ठित रहे। इसी काल में दैवदुर्विपाक से इनकी पत्नी का देहान्त हो गया। अभी इस विषम दुःख को शास्त्रीजी विस्मृत भी नहीं कर पाये थे कि कुछ दिनों के पश्चात् इनके एकमात्र पुत्र की मृत्यु के रूप में इनपर भीषण वज्रपात हुआ। इस वज्राघात से शास्त्रीजी का हृदय नितान्त भग्न हो गया और ये जीवन से उदास रहने लगे। फलस्वरूप इन्होंने सन् १९०६ ई० में कालेज की नौकरी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से त्यागपत्र दे दिया। यद्यपि इन्होंने वैतनिक अध्यापन सेवा से निवृत्ति प्राप्त कर ली थी तथापि ये आजीवन अपने घर पर छात्रों को विद्या दान देते रहे। इनका समस्त जीवन इसी सात्त्विक विद्यादान के कार्य में व्यतीत हुआ। सन् १९२१ ई० में सरकार ने इन्हें महामहोपाध्याय की पदवी से विभूषित किया था। इसके पश्चात् इन्होंने अपना जीवन निःशुल्क अध्यापन में बिताया और सं० १९८८ वि० (१९३१ ई०) में आतुर संन्यास लेकर गोलोक प्राप्त किया।

स्वाभाविक विरक्ति

पण्डित नित्यानन्दजी स्वभाव से ही विरक्त थे। वेदान्त के अध्ययन से तथा धर्म-शास्त्रों के चिन्तन से इनके हृदय में वैराग्य की भावना दृढ़ होती गयी। इनकी तीव्र अभिलाषा थी संन्यास की दीक्षा ले लेने की, क्योंकि गृहस्थाश्रम के दृढ़ बन्धनों से मुक्त होने का सौभाग्य इन्हें प्राप्त था। संन्यास लेने का सुन्दर अवसर इनके सामने तब उप-स्थित हुआ जब काशी के बाहर के किसी विरक्त तथा विद्वान् संन्यासी से इनका सम्पर्क हुआ। उस संन्यासी ने संन्यास की दीक्षा लेने का इनसे बड़ा आग्रह किया। अतः ये अपने गुरु महामहोपाध्याय पण्डित गंगाधर शास्त्री के पास गये और अपना धर्म-संकट उन्हें कह सुनाया। सांसारिक कार्यों में चतुर शास्त्रीजी ने व्यंग्यपूर्वक अपने शिष्य से कहा कि काशी में सभी गुरु होते हैं, चेला कोई नहीं बनता। अतः तुम्हारे जैसे विद्वान् व्यक्ति के लिए संन्यास में दीक्षित होने की कोई आवश्यकता नहीं है। परन्तु यदि तुम्हारी उत्कट अभिलाषा संन्यास ग्रहण करने की ही है तो तुम मेरे सामने ऐसे दो शिष्यों को उपस्थित करो जिन्हें शास्त्रों का सम्यक् अध्यापन कर तुमने वैदुष्य से सम्पन्न बनाया है। तुम्हें विद्वान् बनाने में मैंने जो अश्रान्त परिश्रम किया है उसकी गुरुदक्षिणा मेरे लिए यही होगी। इन वचनों को सुनकर पन्तजी मौन हो गये और संन्यासी बनने का इनका हौसला सदा के लिए पस्त हो गया परन्तु अपने गुरु के आदेशानुसार संन्यासी बनने की जो शर्त थी उसे पूरा कर लेने के बाद ही संन्यास लेना इन्होंने उचित समझा। अनेक शिष्यों को इन्होंने अपनी शिक्षा-दीक्षा से वैदुष्यसम्पन्न बनाया। इनके दो छात्र इनके समान ही 'महामहोपाध्याय' की पदवी पाने में कृतकार्य हुए थे। तब जीवन के अन्तिम क्षणों में इन्होंने आतुर संन्यास लिया और इस प्रकार अपने हृदय की इस सुप्त अभिलाषा की भी पूर्ति की थी।

काशी के कालभैरव मुहल्ले में स्थित पर्वतीय धर्मशाला आपके ही उद्योग का परिणत फल है। यह नित्यानन्द धर्मशाला उन पर्वतीय तीर्थयात्रियों के लिए बड़ा ही सुखद तथा सुलभ विश्राम-स्थान है जो काशी में तीर्थयात्रा के निमित्त आकर धार्मिक अनुष्ठानों का विधिवत् निष्पादन करना चाहते हैं।

सात्त्विक स्वभाव

पण्डित नित्यानन्दजी शास्त्रों के मर्मज्ञ विद्वान् थे। गुरुमुख से पढ़ी हुई विद्या को इन्होंने अपने गम्भीर मनन के द्वारा उदात्त तथा विद्योतमान बनाया। व्याकरण के तो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये गम्भीर चिन्तक तथा मननशील विद्वान् थे। पण्डित गङ्गाराम त्रिपाठीजी की परम्परा में होने के कारण ये परिष्कार की उद्भावना में बड़े ही जागरूक एवं कल्पक विद्वान् थे। धर्मशास्त्र के तत्त्वों को इन्होंने अपने मनन के द्वारा अन्तःप्रविष्ट होकर ऐसा सुलझाया कि धार्मिक व्यवस्था के लिए भारत के दूर-दूर प्रान्तों के लोग आते थे और इनकी दी हुई व्यवस्था की प्रामाणिकता से अभिभूत हो जाते थे। वेद के प्रति आपकी अगाध श्रद्धा थी और काशी में अनेक वैदिक विद्वानों को आहिताग्नि (अग्निहोत्री) होने में इन्होंने पूर्णतया सहयोग दिया—केवल शास्त्रीय ही नहीं, आर्थिक भी। इनकी एकान्त कामना थी कि अग्निहोत्र का प्रचार काशी की पवित्र नगरी में सदा जागरूक रहे और रामचन्द्र रटाटे वैदिक को आग्रहपूर्वक इन्होंने अग्निहोत्र दिलवाया और अपने एक नेपाली छात्र के द्वारा उनके आवास की भी व्यवस्था कर दी। ऐसी परोपकार वृत्ति का परिचय देना बिरले ही विद्वानों में दीख पड़ता है।

इनकी गुरुभक्ति अनुपम थी। इनकी गुरुभक्ति के उच्च आदर्श को देखकर आश्चर्य से चकित हो जाना पड़ता है। अपने गुरुवर गङ्गाधर शास्त्रीजी की आज्ञा के बिना ये किसी कार्य में अग्रसर नहीं होते थे। संस्कृत कालेज में उच्च अध्यापक पद पर नियुक्ति के अनेक अवसर इन्हें प्राप्त हुए, परन्तु गुरु का आदेश न होने से इन्होंने उसके लिए आवेदनपत्र नहीं दिया। अवैतनिक अध्यापक के व्रत का इन्होंने बड़ी निष्ठा, बड़े उत्साह एवं बड़े मनोयोग के साथ पालन किया। अपने शिष्यों पर भी इनकी अनुकम्पा श्लाघनीय थी। इनकी हार्दिक अभिलाषा थी कि इनके छात्र सुयोग्य विद्वान् बनें। यदि उनके अध्ययन में किसी प्रकार की त्रुटि इन्हें लक्षित होती थी, तो ये उसका मार्जन शिष्य को पुनः अध्यापन द्वारा करते थे। उनकी सांसारिक उन्नति में सहयोग देना तो इनके लिए साधारण बात थी। सत्यनिष्ठा, अयाचित सात्त्विक वृत्ति, निरन्तर शास्त्रीय चिन्तन-मनन तथा शास्त्रोन्नति की ऐकान्तिक भावना—इन महनीय गुणों के कारण पण्डित नित्यानन्दजी महाराज निःसन्देह एक महनीय महर्षि थे—इस तथ्य के विषय में लेशमात्र भी सन्देह नहीं है।

ग्रन्थ-रचना

मीमांसा ग्रन्थ

१. **जैमिनि-सूत्रवृत्ति**—प्रकृत ग्रन्थ का सम्पादन इन्होंने सर्वप्रथम आरम्भ किया। १८९९ ई० (संवत् १९५६) में यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। उस समय पर्वतीयजी 'सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल' में अध्यापन कर रहे थे। राजकीय संस्कृत महाविद्यालय के प्रिन्सिपल डा० वेनिस ने इन्हें यह कार्य करने के लिए प्रेरित किया। यह मीमांसा का ग्रन्थ है। मूल-सूत्र जैमिनि द्वारा रचित हैं तथा वृत्ति श्रीवामेश्वर सुरि की है। पन्तजी ने दुरूह स्थलों पर टिप्पणी लिख कर विषय का प्रतिपादन किया है। इसके अतिरिक्त मीमांसा के अधिकरणों का सूत्रों के साथ सामञ्जस्य दिखाने के लिए उन-उन सूत्रों के पहले अधिकरणों का निर्देशन करते हुए पूर्वापर सङ्गति का भी संकेत कर दिया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. **मीमांसा परिभाषा**—(सम्पादित) १९१५ ई० में इस लघु ग्रन्थ में भी पन्तजी ने विषम स्थलों पर टिप्पणी लिखी है। मीमांसाशास्त्र में प्रविष्ट होने वाले अध्येताओं के लिए यह छोटा सा ग्रन्थ बड़ा उपयोगी है। स्थान-स्थान पर मीमांसाशास्त्र में प्रतिपादित पारिभाषिक शब्दों की स्पष्टता को न्यायशास्त्र का अनुगमन करते हुए लक्षण-समन्वय की पद्धति से प्रतिपादित किया गया है। जिन स्थलों पर शास्त्रान्तर के विवेचन के बिना स्पष्टीकरण सम्भव नहीं था, ऐसे ही स्थलों पर पर्वतीयजी ने टिप्पणी लिख कर उन स्थलों की दुरूहता दूर की है।

३. **कात्यायनश्रौत सूत्र**—कर्क भाष्यसहित (प्रथम ग्यारह अध्याय) (सन् १९२८)। याज्ञिक-प्रक्रिया का प्रामाणिक ग्रन्थ होने के कारण मीमांसा-शास्त्र की अपेक्षा रखता है। तदनुसार इसके सम्पादन मे पर्वतीयजी ने प्रत्येक सूत्र के सन्दर्भ में मीमांसा-सूत्रों के अधिकरणों के साथ सामञ्जस्य स्थापित करते हुए एकवाक्यतानिर्देशक वाक्ययोजना द्वारा विषय का स्पष्टीकरण सूत्रारम्भ होने के पहले ही अपेक्षित स्थलों पर कर दिया है। प्रस्तुत भाग में दर्श, पूर्णमास, पिण्डपितृयाग, आग्रयणेष्टि, चातुर्मास्य, निरूढ पशु तथा सोमयाग वर्णित हैं।

कर्मकाण्ड ग्रन्थ

१-२. **संस्कार दीपक**—(दो भाग) (सन् १९१७)। हिन्दू द्विजाति में सोलह संस्कारों का बड़ा महत्त्व है। उनमें भी इस जीवन में १० संस्कार प्रमुख हैं। इसी कारण प्राचीन पद्धतिकारों ने 'दशकर्मपद्धति' संकलित की थी। वे पद्धतियाँ प्रायोगिक दृष्टि से बड़ी उपयोगी रहीं और उनका प्रचलन अब भी है। उन पद्धतियों में वर्णित विधान-सम्बन्धी शास्त्रीय विवेचन का अभाव होने के कारण पन्तजी को कर्मकाण्ड के ग्रन्थ लिखने की प्रेरणा हुई। तदनुसार इनके द्वारा विरचित कर्मकाण्ड-ग्रन्थों में प्रत्येक ग्रन्थ के स्थूल रूप से दो भाग हैं—१. प्रारम्भिक भाग में शास्त्रीय विवेचन तथा २. दूसरे में विधान या विधि का यथावत् रूप। प्रारम्भिक भाग पाठक को शास्त्रीय पक्ष का बोध कराता है तथा द्वितीय भाग कर्म की विधि का। इस दृष्टि से 'संस्कार दीपक' में सर्वप्रथम प्रमुख संस्कारों का विवेचन पारस्करगृह्यसूत्र के अनुसार करते हुए अनन्तर विधान (पद्धति) का प्रायोगिक रूप दिखाया गया है। विधान के पूर्व आवश्यक अङ्ग (पञ्चाङ्ग) गणेशपूजादि ग्रहयागान्त प्रयोग वर्णित हैं। विधान में उपयुक्त वैदिक मन्त्रों की व्याख्या करते हुए उस प्रसङ्ग में प्रयुक्त ऋचाओं की उपयोगिता भी बतलाई गई है।

३. **परिशिष्ट दीपक** (सन् १९२२)—'संस्कार दीपक' का तृतीय भाग इस नाम से विख्यात है। इस भाग में दान एवं प्रमुख शान्ति-विधान वर्णित है। क्रम उसी प्रकार है, पहले दान एवं शान्तियों के विषय में प्रामाणिक विवेचन तथा इसके अनन्तर उनकी प्रयोगविधि दी गई है। दानों में प्रमुख दश दान एवं तुलादानादि हैं, शान्तियों में प्रमुख मूल, आश्लेषा, त्रिकप्रसव आदि हैं। अन्त में प्रसङ्गवश जलाशयोत्सर्ग सदृश महत्त्वपूर्ण सामाजिक कार्यों का विधान भी वर्णित है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. कर्मकाण्ड ग्रन्थों में 'अन्त्यकर्म दीपक'– (सन् १९२८) की विशेषता उसके प्रतिपाद्य-विषय से विदित होती है। इस ग्रन्थ में मुमूर्षु के प्राणान्त होने के पहले अपेक्षित दश दानादि के वर्णन से आरम्भ होकर सपिण्डीकरणान्त-विधान का शास्त्रीय विवेचन तथा प्रयोग समाकलित हैं। इसके साथ ही 'आशौचनिर्णय' भी निरूपित है। केवल गृहस्थाश्रमी तक ही इसकी उपयोगिता सीमित नहीं है, अपितु संन्यासाश्रम की विधि एवं यति (संन्यासी) के दिवंगत होने के पश्चात् देहत्यागानन्तर कृत्य के भी सविस्तर विवेचन एवं विधान की व्यवस्था की गई है।

५. वर्षकृत्य दीपक—में वर्ष भर के व्रतों एवं अनुष्ठानों का काल तथा स्वरूप-निर्णय आरम्भ में देकर अनन्तर पूजा तथा उद्यापन की प्रयोग-विधि प्रदर्शित की गई है। सन् १९३१ में यह विरचित हुआ। जीवन की अन्तिम पूर्वसन्ध्या तक इसके प्रकाशन को देखते रहे। वर्ष में होने वाले पर्व तथा व्रतों की उपयोगिता तथा उनके समुचित अनुष्ठान की व्यवस्था को दृष्टिपथ में रखते हुए गृहस्थधर्म के परिपालन में इनके महत्त्व को सरलता से वर्णित कर जन-साधारण की प्रबुद्ध किया है।

६ कातीयेष्टि दीपक (१९२४ ई०) – कात्यायनश्रौतसूत्र-सम्मत इष्टि-निरूपणात्मक ग्रन्थ है। 'इष्टि' शब्द से ऐसे यज्ञ का बोध होता है, जो यजमान (याज्ञिक) एवं उसकी पत्नी द्वारा चार पुरोहितों की सहायता से किया जाय। आहिताग्नि ही इष्टि (दर्शपूर्णमास) सम्पादित कर सकता है। अग्न्याधेय में दो दिन लगते हैं। प्रथम दिन को उपवसथ (याग से पहला दिन) कहा जाता है। अग्न्याधेय का तात्पर्य है गार्हपत्य एवं अन्य अग्नियों को स्थापित करने के लिए प्रज्वलित अंगारों को विशिष्ट मन्त्रों के साथ किसी विशिष्ट व्यक्ति द्वारा किसी विशिष्ट काल एवं स्थल में रखना। अरणियों (लकड़ी के दो कुन्दों) को लाने से लेकर पूर्णाहुति तक के अनेक कृत्य अग्न्याधेय में सम्मिलित हैं। पूर्णाहुति के उपरान्त कृत्य करने वाला व्यक्ति आहिताग्नि की कोटि में आता है। इस प्रकार दर्शपूर्ण मासेष्टि का उपक्रम है। आहिताग्नि आगे की प्रथम पूर्णमासी को 'दर्शपूर्णमास' का सम्पादन कर सकता है। पूर्णमासी के दिन की इष्टि दो दिन हो सकती है, किन्तु सब कृत्य संक्षिप्त कर एक दिन में भी किये जा सकते हैं। यदि दो दिनों तक कृत्य किये जायँ, तो वे प्रथम दिन (पूर्णमासी के दिन) तथा प्रतिपदा (पूर्णमासी के दूसरे दिन = कृष्णपक्ष की प्रतिपदा) तक समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार दर्शपौर्णमासेष्टि का माध्यन्दिन शाखा (शुक्ल यजुर्वेद) के अनुसार विधान वर्णित है। विधान में आए हुए मन्त्रों की व्याख्या दी गई है, जिससे उसका महत्त्व विदित हो सके।

७. सापिण्ड्य दीपक—(१९१३ ई०) विवाह में सपिण्ड कन्या प्रतिबन्धक है। याज्ञवल्क्य ने इस सम्बन्ध में एक सीमा का निर्धारण कर दिया है। वह यह कि पाँचवीं पीढ़ी में माता के कुल में तथा सातवीं पीढ़ी में पिता के कुल में सपिण्डता की अन्तिम सीमा मानी जानी चाहिए। इस आधार पर सापिण्ड्य पर आधारित प्रतिबन्धों के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम बने हैं। इन नियमों के सम्बन्ध में निर्णय करते हुए पन्तजी ने २८६ कन्याओं को इस सिद्धान्त के अनुसार 'वर्ज्य' संज्ञा दी है। इन 'वर्ज्य' कन्याओं का विस्तृत विवरण इस लघु-पुस्तक के अन्त में १४ पृष्ठों में वर्गीकरण कर स्पष्ट कर दिया गया है, जिसकी सहायता से प्रतिषिद्ध कन्याओं (सपिण्ड कन्याओं) का बोध हो जाता है।

८. **लघुशब्देन्दुशेखर** (आरम्भ से अव्ययीभाव पर्यन्त) (सन् १९१८ ई०)—नव्यव्याकरण के सुप्रसिद्ध इस ग्रन्थ की 'दीपक' नामक टीका लिखी। इस टीका की दो प्रकार से विशेषता है—एक अर्थपरक और दूसरी परिष्कारपरक। पं० गङ्गाराम शास्त्री द्वारा प्रवर्तित परिष्कार-शैली का परिवर्धन शिष्यप्रशिष्यपरम्परा में चला आ रहा था। उसका निश्चित स्वरूप क्रोडपत्र के रूप में निहित था। वे क्रोडपत्र व्यक्ति-विशेष के पास अब तक रहस्यात्मक जाने जाते रहे हैं। इनके प्रकाशन से उनके समय तक की कोटि-प्रकोटियों का पल्लवित स्वरूप सामने आया। परिष्कारों के अलावा अनेक स्थलों पर विचारों की सूक्ष्मता के फलस्वरूप नागेश के मत की समीक्षा भी की गई है। नागेश ने अधिकतर कैयट के मत का खण्डन किया है। उस खण्डन की युक्ता-युक्तता पर पारम्परिक विचार-पद्धति का सैद्धान्तिक स्वरूप प्रकट करना इस टीका की प्रमुख विशेषता है। अध्येता और अध्यापकों के लिए यह एक मात्र सर्वमान्य टीका सिद्ध हुई है।

९. **परमलघुमञ्जूषा**—(टिप्पणी) (सन् १९१८) व्याकरण के शास्त्रीय पदार्थों के विवेचनार्थ नागेश ने इस संक्षिप्त ग्रन्थ की रचना की। उन शास्त्रीय पदार्थों (वैयाकरण-सिद्धान्तों) का नैयायिकों तथा मीमांसकों के साथ मतभेद होने पर उसके स्वरूप तथा लक्षणसमन्वय आदि को टिप्पणी द्वारा पर्वतीयजी ने स्पष्ट कर दिया है। इसके अतिरिक्त संक्षिप्त होने के कारण जहाँ जहाँ नागेश ने अपने मत की पुष्टि महाभाष्य को मान कर केवल संकेत मात्र देकर की है वहाँ पर पन्तजी ने भाष्यादि ग्रन्थों के उद्धरणों द्वारा ग्रन्थकार के आशय को स्पष्ट किया है। कहीं-कहीं नागेश के द्वारा प्रयुक्त दीर्घ एवं अस्पष्ट शब्दों का स्पष्टीकरण सरल शब्दों द्वारा किया है (अभिधानस्यापर्यव-सानम् = अपूर्णतेत्यर्थः)।

म० म० पं० नित्यानन्द पन्त पर्वतीय की शिष्य-परम्परा में प्रमुख शिष्यों का परिचय—

(१) **म० म० पं० सीताराम शास्त्री शेंडे**—दक्षिण भारत के ब्रिटिश राज्यकालीन भोर (राज्य) के निवासी थे। अपने घर से समग्र ऋग्वेद संहिता एवं ऐतरेय ब्राह्मण कण्ठस्थ कर वाराणसी अध्ययनार्थ आये। पर्वतीय जी के चरणों पर बैठ कर परिश्रम-पूर्वक व्याकरणशास्त्र का अध्ययन कर व्याकरणाचार्य की उपाधि राजकीय संस्कृत महाविद्यालय से प्राप्त की। इसके अतिरिक्त कलकत्ता से काव्यतीर्थ की परीक्षा उत्तीर्ण की। वेद में निष्णात होने के कारण मीमांसा शास्त्र एवं धर्मशास्त्र के ग्रन्थों का अध्ययन भी पर्वतीय जी से किया। व्याकरण, वेद, मीमांसा एवं धर्मशास्त्र के अतिरिक्त

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'खगोल'-विज्ञान के आप बहुत अच्छे ज्ञाता थे। आकाशीय तारे एवं नक्षत्रों का आपको बड़ा अच्छा ज्ञान था।

आपकी विद्वत्ता से परिचित होने के कारण वङ्गदेशीय विद्वानों ने बड़े आग्रह से आपकी कलकत्ता विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग में प्रवक्ता के पद पर सर्वप्रथम नियुक्ति की। 'वेद' का अध्यापन आपको प्रमुख विषय दिया गया। सेवा काल के अन्त में 'रीडर' पद पर आप प्रोन्नत किए गए।

आपकी प्रसिद्ध कृति "वेदार्थविचार" है। प्रस्तुत ग्रन्थ में 'खगोल' की दृष्टि से ऋग्वेदीय ऋचाओं की व्याख्या की गई है। 'वसन्त-सम्पात' के सिद्धान्त को अभिलक्षित कर तदुपयोगी मन्त्रों की व्याख्या द्वारा निर्वचन करने की मौलिकता (नक्षत्र विद्या) इस ग्रन्थ की विशेषता है। निर्वचन करने की शैली यास्क के निरुक्त का अनुगमन करती है। वैदिक शब्दों की निरुक्ति में पाणिनि-व्याकरण के अतिरिक्त यास्क के निरुक्त का आश्रय लेकर शेण्डेजी ने वसन्त-सम्पात के सिद्धान्त को ऋग्वेदीय ऋचाओं में अनुस्यूत किया है। प्रस्तुत पुस्तक की रचना शेण्डेजी ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से अवकाश-ग्रहण करने के अनन्तर की और वह भी पं० डॉ० गौरीनाथ शास्त्री (कुलपति संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी) के विशेष आग्रह से प्रेरित होकर ही। अवकाश-ग्रहण करने के उपरान्त ये अपने पुत्र के पास पुणें (=पूना) रहने लगे थे। इनके पुत्र वहाँ के प्रसिद्ध डाक्टर (चिकित्सक) हैं। डॉ० शास्त्री ने इन्हें वहाँ जाकर स्मरण दिलाया कि आपने अध्यापन करते समय जो ऋग्वेद का वैशिष्ट्य (नक्षत्र विद्यापरक) प्रतिपादन किया था, उसे आप संग्रथित कर भेज दें। इन्होंने वैसा ही किया और उसका प्रकाशन भी कलकत्ता से ही हुआ। व्याकरण और वेद के विशिष्ट विद्वान् होने के कारण इनका 'वेदार्थविचारः' ग्रन्थ व्याकरण और नैरुक्त-प्रक्रिया की कड़ी को जोड़ने का कार्य करता है। शेण्डे जी बहुत सुबुद्ध थे। इनके गुरु पर्वतीय जी इनकी बुद्धि की प्रशंसा करते हुए प्रायः कहा करते थे कि "मेरे छात्रों में यदि कोई मेरे पाठन करते समय विषय को ग्रहण करने में समर्थ था तो वह शेण्डे जी रहे।"

(२) **म० म० पं० माधवशास्त्री भाण्डारी**—आपका मूल निवास-स्थान 'नेर' ग्राम था। यह स्थान तत्कालीन पश्चिम-खानदेश जनपदस्थ तालुका धुलिया के अन्तर्गत रहा। वाराणसी आने के पूर्व आपने भी माध्यन्दिन शाखा की वाजसनेयि संहिता का अध्ययन अपने निवास-स्थान पर किया था। आपके पिता का नाम श्री हरिशास्त्री था। वाराणसी में इनके साथ ही इनके छोटे भाई श्री श्रीराम भाण्डारी भी अध्ययनार्थ आए। दोनों में से एक तो व्याकरण के अध्येता बने और दूसरे न्यायशास्त्र के। अतः माधवशास्त्री ने पर्वतीय जी का आश्रय लिया तथा श्रीराम भाण्डारी ने म० म० पं० वामाचरण भट्टाचार्य का शिष्यत्व स्वीकार किया। पं० माधव शास्त्री भाण्डारी ने वाराणसी से व्याकरणाचार्य परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त साहित्य एवं मीमांसा में कलकत्ता से 'तीर्थ' परीक्षा उत्तीर्ण की तथा बिहार से वेदान्ताचार्य की परीक्षा भी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तीर्ण की। ज्योतिष-शास्त्र का भी गहन अध्ययन करने के फलस्वरूप आपकी गणित एवं फलित दोनों में ही समान गति थी। आपने सर्वप्रथम काशीस्थ 'मारवाड़ी संस्कृत महाविद्यालय' में व्याकरण शास्त्र का अध्यापन कर अच्छी ख्याति प्राप्त की। शास्त्रार्थ करने में भी आपने अपनी गुरु-परम्परा का यश बढ़ाया। काशी में रह कर अनेक ग्रन्थों का सम्पादन किया, जिनमें 'व्याकरण-सिद्धान्त सुधानिधि' (तीन अध्याय) और 'प्रौढ़-मनोरमा' (अव्ययीभावान्त) प्रमुख हैं। 'प्रौढमनोरमा' में 'प्रभा' नामक टिप्पणी भी विषम स्थलों पर लिखी। प्रस्तुत टिप्पणी केवल परिष्कारों की दृष्टि से उपयोगी नहीं है अपितु प्राचीन वैयाकरण (कैयट) और नागेश के मतभेद होने पर वस्तुस्थिति की संक्षेप में समीक्षा प्रस्तुत करने की दृष्टि से भी उपादेय है, जिसे पं० गंगाराम शास्त्री द्वारा प्रवर्तित वैयाकरण-सिद्धान्तों के आधार पर गुरु-परम्परा से प्राप्त अर्थोन्मेष का निदर्शन समझा जा सकता है।[1]

म० म० पं० शिवदत्त दाधिमथ के अवकाश ग्रहण करने पर लाहौर के प्राच्य-महाविद्यालय में डॉ० ए० सी० वूल्सर ने आपके वैदुष्य का लाभ उठाने हेतु प्रधानाध्यापक के पद पर आपको नियुक्त किया। वहाँ रहते हुए आपने व्याकरण-महाभाष्य के प्रारम्भिक दो आह्निकों पर 'स्फोटविमर्शिनी व्याख्या' लिखी (१९२६ ई०)। इस व्याख्या में व्याकरण सिद्धान्त के अनुसार स्फोट की आवश्यकता, स्फोटस्वरूप, अपभ्रंशों में शक्ति-विचार, माहेश्वर-सूत्रों की अद्वैतब्रह्मप्रतिपादकता आदि विषयों पर अच्छा विचार किया गया है। स्वयम् भाण्डारी जी ने टीका के अन्त में पुष्पिका द्वारा इसकी अभिव्यञ्जना की है—

"सच्चिन्नित्यानन्दरूप - नित्यानन्दाख्य-सद्गुरोः।
पर्वतीयस्य चरणद्वन्द्वासज्जितचेतसा॥
लवपुर्यां प्राच्य-महाविद्यालय-विराजितम्।
प्रधानाध्यापकपदमध्यासीनेन धीमता॥
मीमांसा-युगले शब्दशास्त्रे तर्केष्वधीतिना।
भाण्डारिणा माधवेन शास्त्रिणाऽरचिता स्फुटा॥

---

१. 'अकथितं चे' ति सूत्रे अकथितशब्दः असंकीर्तितपर्यायः, न अप्रधानपर्यायः। एवं च पूर्वविधिविषयप्रसक्तिपूर्वकं तदविवक्षायां, सर्वथा पूर्वविधेः अप्रसक्तौ च एतत्प्रवृत्तिरिति सर्वसम्मतम्। तत्राद्योदाहरणं गां दोग्धि पय इत्यादि। द्वितीयोदाहरणं याचि-पृच्छि-मिक्षियोगे बलिं याचते वसुधामित्यादि। तत्र प्रथमस्योदाहरणेषु गोर्दोग्धि पयः, गां पयो दोग्धि-इत्यादिप्रयोगद्वैविध्यसम्भवेऽपि द्वितीयप्रकारोदाहरणेषु बलिं याचते वसुधाम् इत्यादिषु न तादृशप्रयोगद्वैविध्यमिति। अत एवात्र कैयटेनोक्तम्—"असंकीर्तितपर्यायाकथितग्रहणे 'गां दोग्धि' 'गोर्दोग्धि' इति च। याचि-पृच्छि-मिक्षियोगे कर्मसंज्ञैव इत्येषा व्यवस्थेति।" प्रभा टिप्पणी—"अकथितं च" (पा० सू० १-४-५७)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पातञ्जले महाभाष्ये व्याख्या स्फोटविमर्शिनी।
भूरि भद्राय भवताच्छब्दब्रह्मविचारिणाम् ॥''

भाण्डारीजी की ख्याति तत्कालीन पञ्जाब प्रदेश में भी व्यापक रही। वहीं अध्यापन करते हुए आपको 'महामहोपाध्याय' की उपाधि से अलंकृत किया गया। विद्यार्थी अवस्था से ही आप बहुत परिश्रमी रहे। शरीर दुर्बल था। अध्यापन में भी बड़ा परिश्रम करते रहे। अवकाश ग्रहण करने के पूर्व ही आपका लाहौर में देहान्त हुआ।

(३) **पं० गोपाल शास्त्री नेने**—१८९२ ई० में जन्म। आपके पूर्वज अनेक वर्षों से वाराणसी में ही निवास कर रहे थे। यह विदित हुआ है कि इनके पितामह अपनी इष्टदेवी योगेश्वरी की मूर्ति लेकर काशी आए। इनके पिता का नाम श्री बाबू भट्ट नेने था। ये वैदिक एवं कर्मकाण्डी थे। कृष्ण यजुर्वेदीय आपस्तम्ब शाखा के वैदिकों में आपकी गणना की जाती है। इनके पुत्र पं० गोपाल शास्त्री नेने ने व्याकरण, धर्मशास्त्र तथा वेदान्तादि शास्त्रों का अध्ययन पर्वतीयजी के चरणों पर बैठ कर किया। व्याकरणाचार्य परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त कुछ दिनों तक ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम हरिद्वार में अध्यापन कार्य किया। तदनन्तर राजकीय सेवा में चयन होने के फलस्वरूप राजकीय हाईस्कूल उरई (जालौन) में संस्कृताध्यापक के रूप में आपकी नियुक्ति हुई। इसके पश्चात् राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, काशी में (सन् १९२८) आपको व्याकरण तथा धर्मशास्त्र का अध्यापक नियुक्त किया गया। सेवा-निवृत्त होने तक (१९५७ ई०) वहीं अध्यापन करते रहे। राजकीय संस्कृत महा-विद्यालय से सम्बद्ध सरस्वती भवन पुस्तकालय से प्रकाशित होने वाली अनेक पुस्तकों का आपने वहाँ अध्यापन करते हुए सम्पादन भी किया।

(१) '**वैयाकरण भूषणसार**' पर आपने 'सरला' नामक व्याख्या लिखी है। इस व्याख्या में शाब्दबोध-प्रक्रिया के स्वरूप को सरलता के साथ समझाया गया है। नैया-यिकों और वैयाकरणों के शाब्दबोध के स्वरूप का अन्तर एवं उनकी सूक्ष्मता का विवेचन नेनेजी ने पारम्परिक रीति से किया है। इस व्याख्या लिखने के पूर्व (२) भैरवी टीका सहित ' लघुशब्देन्दुशेखर'' का 'तत्पुरुष-समास' से आरम्भ कर 'स्वर प्रक्रियान्त' भाग का सम्पादन किया। (३) धर्मशास्त्र के सुप्रसिद्ध निबन्ध-ग्रन्थ 'निर्णय-सिन्धु' (कृष्णम्भट्टी टीका सहित) का आद्योपान्त सम्पादन कर उसे चौखम्बा संस्कृत सीरीज से प्रकाशित करवाया। यह महान् कार्य इन्होंने अपने गुरु पर्वतीयजी के निर्देशन में किया। (४) इन ग्रन्थों के अतिरिक्त नेनेजी ने मूल 'सिद्धान्त कौमुदी' पर टिप्पणी भी लिखी, जो खण्डशः मुद्रित हुई। अन्तिम वर्षों में आपको ज्योतिष से विशेष अनुराग हो गया था। विशेषतया पञ्चाङ्ग-निर्माण-प्रक्रिया की सूक्ष्मता तथा शुद्धता के सम्बन्ध में प्रायोगिक संकलन करने में आप बराबर तत्पर रहते थे। धर्मशास्त्र-सम्बन्धी निर्णय एवं व्यवस्था देने में आपकी तत्परता अपने गुरु पर्वतीयजी के सदृश देखी गयी है। ७५ वर्ष की आयु में आपका निधन २ मार्च सन् १९६७ को काशी में हुआ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) **पं० अनन्त शास्त्री फड़के**—स्वयं काशी में अध्ययन हेतु आये। सर्वप्रथम व्याकरण का अध्ययन पं० गणपति शास्त्री मोकाटे से किया। व्याकरणाचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके साथ ही शास्त्रान्तरों का अध्ययन करने के लिए पर्वतीयजी के चरणों पर बैठकर मीमांसा, वेदान्त तथा पुराणों का अध्ययन किया। कलकत्ता से मीमांसा-तीर्थ परीक्षा उत्तीर्ण की। काशीस्थ विद्वानों की संस्तुति के आधार पर कुछ दिनों तक लाहौर के सुप्रसिद्ध डाक्टर श्रीयुत बालकृष्ण कौल के पौत्रों का संस्कृत अध्यापन किया। तदनन्तर काशीस्थ 'स्याद्वाद दिगम्बर जैन विद्यालय' में व्याकरणाध्यापक के रूप में आपकी नियुक्ति हुई। कुछ वर्षों बाद आपका अध्यापन-क्षेत्र बदल गया। काशीस्थ राजकीय संस्कृत महाविद्यालय में 'पुराणेतिहास' का अध्यापक पद सर्जित किया गया। उस समय पुराणेतिहास विषय के आचार्य उपलब्ध नहीं थे। योग्यता के आधार पर चयन होना था। अतः म० म० पं० नित्यानन्द पन्तजी ने आपके आवेदन पत्र पर सबल संस्तुति की। जिसके आधार पर म० म० पं० गोपीनाथ कविराज ने शिक्षा-विभाग द्वारा अनुमोदित करवा कर इन्हें 'पुराणेतिहास' का अध्यापक नियुक्त करवाया। बड़ी संलग्नता तथा योग्यता से आपने इस विषय का अध्यापन किया। वहाँ से सेवा-निवृत्त होने पर 'विश्व संस्कृत-परिषद्' की ओर से सम्मानित आचार्य' के रूप में अनेक स्थानों पर जाकर संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार में योगदान दिया। लगभग ७५ वर्ष की अवस्था में आपका काशी में ही निधन हुआ।

आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आपने 'काशिका' तथा 'वैयाकरण भूषणसार' ('दर्पण' टीका सहित) ग्रन्थों का सम्पादन किया।

(५) **गोपालदत्त पाण्डेय**—ये पर्वतीयजी के दौहित्र हैं। पण्डित नित्यानन्दजी ने इन्हें सिद्धान्त कौमुदी एवं कतिपय टीका ग्रन्थों का अध्यापन किया। अनन्तर इन्होंने व्याकरणाचार्य तथा एम० ए० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। उत्तर प्रदेश के अनेक गवर्नमेन्ट कालेजों में अनेक वर्षों तक प्रोफेसर के पद को योग्यतापूर्वक निभाया। शिक्षा-विभाग के डिप्टी-डाइरेक्टर पद से सेवानिवृत्त हुए। काशी में ही निवास करते हैं। सिद्धान्तकौमुदी के पूर्वार्द्ध पर बड़ी प्रामाणिक हिन्दी व्याख्या लिखकर प्रकाशित की है जो तत्तत् सूत्रों की गम्भीर शास्त्रीय विवेचना को भी सरलतया प्रकट करती है (प्रकाशक चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९७८ ई०)। महामहोपाध्याय पं० नित्यानन्द पर्वतीयजी की स्तुति में प्रयुक्त यह श्लोक नितान्त तथ्यपूर्ण है—

श्री राजारामशास्त्रिप्रभृतिगुरुवरैर्वैदुषी शब्दशास्त्रे,
याऽपूर्वाऽविष्कृताऽसीदथ च निपुणता धर्मशास्त्रे च यादृक्।
सा नित्यानन्द विद्वन्निकषमुपगता सम्प्रदायक्रमेण,
सम्प्रत्यग्रे न पश्यत्यपरमभिमतं संश्रयं कञ्चिदेषा॥

—विद्वच्चरित पञ्चक ७९

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८

श्री मुरलीधर झा

(आस्पद—झा, उपाधि—महामहोपाध्याय)

पं० मुरलीधर झा सिद्धान्त ज्योतिष के बहुत बड़े विद्वान् थे। सुप्रसिद्ध गणितज्ञ पं० सुधाकर द्विवेदी के पश्चात् इन्होंने ही उनकी गद्दी को सुशोभित किया। अनेक सिद्धान्त ग्रन्थों की टीका लिखकर इन्होंने उनके गूढ़ रहस्यों को समझाने का प्रयास किया है। झा जी ने अपने गुरु के ग्रन्थों पर टीका-टिप्पणी लिखी है जिसका उल्लेख इनके गुरु ने आदरपूर्वक किया है।

जन्म—पं० मुरलीधर झा के पिता का नाम चानन झा था जो दरभंगा जिले के 'मराम' गाँव के निवासी थे। इनका विवाह मिथिला की एक सुप्रसिद्ध नगरी 'श्याम सिद्धव' में हुआ था। चानन झा की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। अतः इनके सम्पन्न तथा धनी ससुर ने झा जी को प्रचुर सम्पत्ति देकर अपनी कन्या 'लीला देवी' से इनका विवाह कर दिया तथा अपने गाँव में ही इन्हें निवास करने के लिए बुला लिया। वहीं पर अपने मातृकुल (मामा के घर) में मुरलीधरजी का जन्म सन् १८६६ ई० में हुआ। इनके मातामह पं० फकिरन झा एक योग्य मैथिल ब्राह्मण थे। इनका विवाह 'चपाही' राज्य के राजा रसिकनारायण सिंह की कन्या से हुआ था। इस प्रकार मातृपक्ष की ओर से झा जी का सम्बन्ध राजकुल से था।

शिक्षा—पं० मुरलीधर झा की प्रारम्भिक शिक्षा अपने मामा के घर हुई। ये अपने छोटे भाइयों और मामा के पुत्रों के साथ गाँव की पाठशाला में पढ़ने लगे। वहीं पर सर्वप्रथम इन्होंने देवनागरी, कैथी तथा मैथिली लिपिमाला से परिचय प्राप्त किया। इसके पश्चात् दशकर्म-पद्धति की इन्हें शिक्षा दी गई। प्रारम्भिक शिक्षा के पश्चात् अपने पैतृक गाँव 'मराम' के सुप्रसिद्ध ज्योतिषी पं० विद्या झा से इन्होंने ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन प्रारम्भ किया। गुरु की इनके ऊपर अटूट कृपा थी। अतः उन्होंने इनके अध्ययन के लिए सम्पूर्ण सुविधा प्रदान की। झा जी ने अनेक ग्रन्थों का यहाँ अध्ययन किया।

ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्त ग्रन्थों के अध्ययन की इच्छा से ये केवल सोलह वर्ष के वय में ही सन् १८८५ ई० में काशी चले आये। यहाँ आकर इन्होंने उस काल के सुप्रसिद्ध ज्योतिषी स्वनामधन्य पं० सुधाकर द्विवेदी से इस शास्त्र को पढ़ना प्रारम्भ किया। द्विवेदीजी के चरणों में बैठकर अध्ययन करते हुए इन्होंने गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस से ज्योतिषाचार्य की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। इस परीक्षा में आपको सर्वप्रथम स्थान मिला था। ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन करते समय ही

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपने पं० मधुसूदन झा से मुग्धबोध व्याकरण, न्यायशास्त्र तथा साहित्यशास्त्र में अपूर्व विद्वत्ता प्राप्त की। ज्योतिष शास्त्र के तो अपार विद्वान् थे ही।

विद्वत्ता

पण्डित मुरलीधर झा ज्योतिषशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे। सिद्धान्त ज्योतिष के कठिन ग्रन्थों पर आपने जो टीका-टिप्पणी लिखी है उससे आपकी तल-स्पर्शिनी विद्वत्ता का पता चलता है। वराहमिहिर रचित बृहत्संहिता का संशोधन तथा सम्पादन कर आपने उसका संस्करण निकाला है, जिससे आपकी प्रतिभा का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। इस बृहत् ग्रन्थ की जो हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई थी वह अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण थी और कीट-दंश के कारण उसके अक्षर नष्ट हो गये थे। परन्तु झाजी ने अपनी विद्वत्ता से उन नष्ट अक्षरों के मूल रूप का परिचय प्राप्त कर लिया और इस ग्रन्थ को सुसम्पादित किया। आपके इस विलक्षण वैदुष्य को देखकर पण्डित-समाज आश्चर्यान्वित हो गया। इस ग्रन्थ के सम्पादन से आपको प्रचुर ख्याति प्राप्त हुई और आपकी विद्वत्ता की भूरिभूरि प्रशंसा सर्वत्र होने लगी। आपकी अपूर्व योग्यता से प्रसन्न होकर गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस के तत्कालीन प्रिन्सिपल डॉ० थीबो ने आपको सादर आमन्त्रित कर ज्योतिषशास्त्र की गद्दी पर प्रतिष्ठापित किया। इस प्रकार अपने योग्य गुरु पण्डित सुधाकर द्विवेदी के आप योग्य उत्तराधिकारी सिद्ध हुए। पण्डित दीनानाथ मिश्र के स्थान पर इस कालेज में आपकी नियुक्ति सन् १६०६ ई० में हुई। यहाँ अध्यापन करते हुए आपकी कीर्ति चारों ओर फैलने लगी। आपने अनेक योग्य शिष्यों को तैयार किया। ब्रिटिश सरकार ने आपकी विद्वत्ता के फलस्वरूप सन् १९२२ ई० में आपको 'महामहोपाध्याय' की पदवी से विभूषित किया।

सन् १६०६ ई० से लेकर सन् १९२७ ई० तक, लगातार २१ वर्षों तक इन्होंने इस कालेज में ज्योतिषशास्त्र का अध्यापन किया। सन् १९२७ ई० में आपने इस नौकरी से अवकाश ग्रहण किया परन्तु दैव-दुर्विपाक से इसके केवल दो वर्ष पश्चात् ही सन् १६२६ ई० में आपका निधन हो गया।

शिष्य-मण्डली

गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज में लगातार इक्कीस वर्षों तक के अध्यापन काल में आपने सुयोग्य शिष्यों को उत्पन्न किया जिन्होंने अपने जीवन में अनेक उच्च पदों को सुशोभित किया। इन शिष्यों में से कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियों के नाम नीचे दिये जाते हैं—

(१) **पण्डित बबुआ मिश्र**—ये कलकत्ता विश्वविद्यालय में मैथिली साहित्य के प्राध्यापक थे। इन्होंने डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी के साथ 'वर्णरत्नाकर' का सुप्रसिद्ध संस्करण प्रकाशित किया है।

(२) **पण्डित चन्द्रशेखर झा**—ये हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के ज्योतिष विभाग में प्राध्यापक थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) **पण्डित गङ्गाधर मिश्र**—ज्योतिषाचार्य, काव्यतीर्थ। आप वैद्यनाथधाम (बिहार) में ज्योतिष के अध्यापक थे।

(४) **पण्डित मुरलीधर ठाकुर**—ये भारतीय और पाश्चात्य गणितशास्त्र के अधिकारी हैं।

(५) **पण्डित सीताराम झा**—ज्योतिषाचार्य, आप काशी के संन्यासी संस्कृत कालेज में प्रधानाध्यापक थे।

(६) **पण्डित मधुकान्त झा**—श्री रानी चन्द्रावती श्यामा संस्कृत महाविद्यालय, काशी में अनेक वर्षों तक ज्योतिष के अध्यापक थे।

(७) **पण्डित अजबलाल ठाकुर**—अध्यापक, संस्कृत विद्यालय, मटिहानी।

(८) **पण्डित अनूप मिश्र**—ये गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, काशी में ज्योतिष के प्राध्यापक थे।

(९) **पण्डित उमाकान्त झा**—आप ज्योतिष के अच्छे विद्वान् थे।

इसके अतिरिक्त इनकी शिष्यमण्डली में पण्डित सुधाकर झा, पण्डित सरयूरमण झा, पण्डित पूर्णचन्द्र त्रिपाठी आदि विद्वानों की भी गणना की जाती है।

ग्रन्थ-रचना—पं० मुरलीधर झा ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। इनके गुरु पं० सुधाकर द्विवेदी ने '**वेदाङ्गज्योतिष**' के ऊपर '**सुधाकर भाष्य**' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ के संबंध में श्री छोटेलाल बार्हस्पत्य नामक किसी सज्जन ने अनेक आपत्तियाँ उठायीं तथा अनेक आक्षेप किये। पं० मुरलीधर झा ने अपने गुरु के भाष्य के संबंध में किये गये इन आक्षेपों का बड़ी ही विद्वत्ता से विधिवत् निरास करके सुधाकर जी के मत का मण्डन किया। इतना ही नहीं, इन्होंने 'सुधाकरभाष्य' के ऊपर 'लघु-विवरण' नामक टीका भी लिखी जिसके आरम्भ में इन्होंने अपना परिचय इस प्रकार दिया :—

श्रीमद् द्विवेदि-गुरुवर्य-पदारविन्द-
सच्चिन्तन-स्फुरितबोधलवः करोति।
झोपाख्यचाननसुतो मुरलीधरोऽस्य,
भाष्यस्य तद् विवरणं लघु संशयघ्नम्॥

इस श्लोक से अपने गुरु के प्रति इनकी गुरु-भक्ति तथा विनम्रता का पता चलता है।

(२) **सिद्धान्ततत्त्वविवेक**—इस ग्रन्थ में जो अशुद्धियाँ थीं उनका संशोधन कर इसे सम्पादित किया है।

(३) **लीलावती तथा बीजगणित**—इन ग्रन्थों की उपपत्ति और टिप्पणी इन्होंने लिखी है।

(४) **शिवस्वरोदय** इस ग्रन्थ की टीका इन्होंने हिन्दी भाषा में लिखी है।

(५) **त्रिकोणमिति**—म० म० पं० बापूदेव शास्त्री-विरचित त्रिकोणमिति नामक ग्रन्थ का अवतरण निर्माण कर आधुनिक गणित की युक्ति से इसका सम्पादन इन्होंने किया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० मुरलीधर झा यद्यपि ज्योतिषशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे तथापि मौलिक ग्रन्थों की रचना करने के लिए इन्हें अवकाश ही नहीं प्राप्त हो सका। अतः ज्योतिषशास्त्र के कठिन तथा दुरूह ग्रन्थों पर टीका-टिप्पणी लिखकर उसे सरल तथा सुबोध बनाने से ही सन्तोषलाभ करना पड़ा।

इसमें सन्देह नहीं कि ये अपने समय के ज्योतिषशास्त्र के अद्वितीय विद्वान् थे। यदि इन्हें समय का अभाव न होता तो इनकी मौलिक प्रतिभा का प्रसाद हमें प्रचुर परिमाण में प्राप्त होता। इनके उदात्त तथा गंभीर व्यक्तित्व का परिचय निम्नलिखित श्लोक से प्रकाशित होता है :--

"विद्यया भास्करः साक्षात्, क्षमया करुणाकरः।
कलाधरः समुन्नत्या, संज्ञया मुरलीधरः॥"

पं० बलदेव मिश्र

(आस्पद— झा; उपाधि— ज्योतिषरत्नाकर)

जन्म तथा शिक्षा—पं० बलदेव मिश्र ज्योतिषाचार्य ज्योतिषशास्त्र के एक निष्णात विद्वान् थे। इनका जन्म १ नवम्बर सन् १८६९ में बिहार राज्य के सहरसा जिले के वनगाँव नामक सुप्रसिद्ध ग्राम में हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने गाँव तथा मिथिला में हुई। परन्तु बंगाल के दिनाजपुर जिला के तत्कालीन मालदोआर रियासत के राजा श्री टंकनाथ चौधरी ने इन्हें आर्थिक सहायता प्रदान की, जिसके फलस्वरूप ये काशी में आकर विद्याध्ययन करने लगे। सन् १९१० ई० में इन्होंने गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस के ज्योतिष विभाग के अध्यक्ष सुप्रसिद्ध गणितज्ञ तथा प्रख्यात विद्वान् महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी के चरणों में बैठकर ज्योतिष शास्त्र का सम्यक् अध्ययन किया। इन्होंने सम्पूर्ण मध्यमा परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया था। सन् १९११ ई० में कलकत्ता की ज्योतिष-तीर्थ परीक्षा में भी ये प्रथम स्थान के अधिकारी रहे। सन् १९२० ई० में इन्होंने बनारस से ज्योतिषाचार्य की उपाधि प्राप्त की।

ये अपने अध्ययन काल में उपर्युक्त कालेज के छात्रावास में ही निवास करते थे। इनके साथियों में पं० गोपीनाथ कविराज भी थे जो उसी छात्रावास में आपके पास के कक्ष में ही रहते थे। इन्होंने 'कविराज अभिनन्दन ग्रन्थ' में उनके छात्रजीवन के संबंध में अपना बड़ा रोचक संस्करण लिखा है।

अध्यापन कार्य—पं० बलदेव मिश्र ने अनेक स्थानों पर अध्यापन तथा अनुसन्धान का कार्य किया। सन् १९२२ ई० से लेकर सन् १९३० ई० तक ये काशी विद्यापीठ में गणित के अध्यापक रहे। सन् १९३६ ई० से १९३९ ई० तक इन्होंने गया जिले के खुरसुरा संस्कृत महाविद्यालय में अधीक्षक का कार्य किया। सन् १९४० ई० से १९५१ ई० तक सरस्वती भवन पुस्तकालय, वाराणसी में 'हस्तलिखित' पुस्तकों के सूची-निर्माणकर्ता (कैटेलागर) थे। सन् १९५२ ई० से अनेक वर्षों—संभवतः अवकाश ग्रहण करने—तक ये पटना के काशीप्रसाद जायसवाल रिसर्च इन्स्टीट्यूट में दुर्बोध हस्तलिखित ग्रन्थों के वाचन का काम किया करते थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थ—इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। इन्होंने संस्कृत में त्रिकोणमिति लिखी और भास्करीय बीजगणित पर टिप्पणी की रचना की। इन्होंने म० म० पं० सुधाकर द्विवेदी लिखित अनेक ग्रन्थों का सम्पादन किया है-- जैसे दीर्घवृत्त, चलन-कलन, चलन-राशि-कलन इत्यादि। इन्होंने आर्यभट की 'आर्यभटीयम्' नामक ग्रन्थ की संस्कृत में टीका लिखकर हिन्दी में अनुवाद भी किया है।

आर्यभटीय पाटलिपुत्र के प्राचीन ज्योतिषी आर्यभट के द्वारा प्रणीत ज्योतिर्विज्ञान का एक प्रमेयबहुल महनीय ग्रन्थ है। आर्यभट का जन्म कुसुमपुर (पटना) में ४७६ ई० में हुआ था और इन्होंने २३ वर्ष के वय में ४९९ ई० में अपना यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा जो उन्हीं के नाम पर 'आर्यभटीय' कहलाता है। आर्यभट बड़े ही प्रतिभाशाली दैवज्ञ थे जिनमें विचार-स्वातन्त्र्य की प्रमुखता थी। उनका मान्य सिद्धान्त था कि पृथ्वी दर्पण की तरह चपटी नहीं है (जैसा अन्य दैवज्ञ मानते हैं) परन्तु गोल है। पुराण पृथ्वी को दर्पण के उदर के समान चपटी मानता है —

'आदर्शोदरसन्निभा भगवती विश्वम्भरा कीर्त्यते।'

परन्तु आर्यभट उसे कदम्ब पुष्प के समान गोल मानते हैं :

यद्वत् कदम्बपुष्पग्रन्थिः प्रचितः समन्ततः कुसुमैः।
तद्वद्धि सर्वसत्त्वैर्जलजैः स्थलजैश्च भूगोलः॥ (आर्यभटीय)

आर्यभट का मूल सिद्धान्त पृथ्वी के दैनिक भ्रमण के विषय में है अर्थात् नाव के चलने के समान पृथ्वी भी सदा चला करती है तथा सूर्य स्वयं स्थिर है (गोलपाद, ९ श्लोक)। इन्हीं सिद्धान्तों के कारण वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त आदि ज्योतिषियों ने इनकी निन्दा की है, परन्तु इनके ये स्वतन्त्र विचार आधुनिक पाश्चात्य ज्योतिष के परिप्रेक्ष्य में नितान्त उपादेय तथा आवर्जक हैं।

ऐसे ही अन्य नवीन तथा स्वतन्त्र विचारों से सम्पन्न आर्यभटीय ग्रन्थ कठिन है और उसकी टीका करना बुद्धिसाध्य है। पण्डित बलदेव मिश्रजी ने इस दुरूह कार्य को अपनी विद्वत्तापूर्ण टीका के द्वारा सरल-सुबोध बनाया है। इन्होंने अपनी संस्कृत टीका में मूल के गूढ़ भावों को बड़े विस्तार से प्रकट किया है और हिन्दी अनुवाद में अपेक्षाकृत सरलता से हिन्दी में भावों की अभिव्यक्ति की है। विद्वानों की दृष्टि में इस कठिन कार्य में ये सर्वथा सफल हुए हैं। इसका प्रकाशन बिहार रिसर्च सोसाइटी, पटना के द्वारा १९६६ ई० में किया गया है।

सम्मान--सन् १९३३ ई० में इन्दौर के ज्योतिष-सम्मेलन में सिद्धान्त पक्ष का आपने प्रतिनिधित्व किया था। सन् १९४८ ई० में विजयवाड़ा (मद्रास) में, पञ्चांग सम्मेलन में तथा सन् १९५० के दरभङ्गा के प्राच्य विद्या सम्मेलन के ज्योतिष विभाग के आप अध्यक्ष रहे। सन् १९५१ ई० में जगन्नाथपुरी में पञ्चांग सम्मेलन तथा सन् १९६० ई० में उज्जैन के कालिदास सम्मेलन में आपने भाग लिया तथा एक दिन सभापतित्व भी किया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६

श्री वामाचरण भट्टाचार्य

(आस्पद--भट्टाचार्य, उपाधि--महामहोपाध्याय)

महामहोपाध्याय पं० वामाचरण भट्टाचार्य अद्वितीय तर्ककुशल नैयायिक थे। जो स्थान नैयानिक विद्वानों में कैलासचन्द्र शिरोमणि को प्राप्त था उनके निधन के बाद वही स्थान इनको प्राप्त हुआ। तथ्य यह है कि वामाचरण भट्टाचार्य शिरोमणि जी के मूर्धन्य शिष्यों में से थे। नव्यन्याय का वैदुष्य वामाचरण जी में इतना था कि इनकी समता करने वाला विद्वान् नव्यन्याय-केन्द्र माने जाने वाले नवद्वीप में भी नहीं था।

इनका व्यक्तित्व अत्यन्त भव्य था। उन्नत ललाट अष्टमी के चन्द्रमा के समान शोभायमान था। ये केवल 'अधोवस्त्र तथा ऊर्ध्ववस्त्र (चादर)' ही धारण करते थे और इसी तपस्वी वेश में गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज में अध्यापन करने के लिए जाया करते थे। इन्होंने अपने जीवन में कभी सिला हुआ वस्त्र धारण नहीं किया। इनका बाहरी व्यक्तित्व जितना सीधा-सादा था भीतरी व्यक्तित्व भी उतना सरल एवं ऋजु था।

इन्होंने सच्चे त्यागी की भाँति कभी द्रव्य को अपने हाथों से स्पर्श नहीं किया। यह नियम इनका इतना दृढ़ था कि कालेज में अपने वेतन के रुपये भी ये अपने हाथों से नहीं छूते थे; बल्कि इस कार्य के लिए मध्यम भ्राता पण्डित ताराचरण भट्टाचार्य को अपने साथ ले जाया करते थे। अध्ययन तथा अध्यापन के अतिरिक्त इनकी कोई अन्य वृत्ति नहीं थी। घर के प्रबन्ध की सारी झंझट ये अपने अनुज को सौंपकर सदा स्वाध्याय में निरत रहते थे।

प्राचीन ग्रन्थों में विद्वानों का निम्नलिखित लक्षण दिया गया है :

"नानाशास्त्रार्थनिष्पन्नाः, मतिः स्यात् श्रुतधारिणी।
संशयोच्छदनैः शिष्यहिताधानार्थदर्शनैः।
वर्ण्यंते चित्तसन्तोषात् विदग्धव्यवहारतः॥"

पण्डितों के उपर्युक्त समस्त लक्षण वामाचरणजी के जीवन में घटित होते थे। साङ्गवेद विद्यालय, रामघाट में गणेशोत्सव के अवसर पर शास्त्रार्थ के लिए जो सभा होती थी, उस सभा में ये उपस्थित होकर न्यायशास्त्र-संबंधी समस्याएँ तथा प्रश्न उपस्थित करते थे जिनका उत्तर देना किसी विद्वान् के वश की बात नहीं थी। विद्वानों से उत्तर न प्राप्त होने पर ये स्वयं उस समस्या का समाधान करते थे। इस प्रकार तर्कशास्त्र की गम्भीर समस्याओं तथा ग्रन्थियों को सुलझा कर ये न्यायशास्त्र के अध्ययन को प्रगति देते थे। महाकवि भारवि ने अपने महाकाव्य किरातार्जुनीय में व्यासजी का निम्नांकित शब्दों में वर्णन किया है--

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मधुरैरवशानि लम्भयन्,
अपि तिर्यञ्चि शमं निरीक्षितैः ।
परितः पटु विभ्रदेनसा,
दहनं धाम विलोकनक्षमम् ॥"

इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि व्यासजी अपने मधुर निरीक्षण से मनुष्य को कौन कहे चंचल पशु-पक्षियों को भी शान्ति प्रदान करते थे। अपने चारों ओर प्रभामण्डल को धारण कर रहे थे जो पापों के लिए ज्वलनशील होते हुए नेत्रों के लिए नितान्त अभिराम था। म० म० वामाचरण भट्टाचार्य के विषय में यह श्लोक नितान्त चरितार्थ होता था।

ये अत्यन्त शान्त स्वभाव के व्यक्ति थे। क्रोध तथा लोभ तो इन्हें छू तक नहीं गया था। इनके प्रिय शिष्यों का यह कहना नितान्त सत्य है कि "हम लोगों ने गुरुजी के मुख को स्वप्न में भी कभी क्रोध से लाल नहीं देखा था।" इनका जीवन ऋषि-महर्षियों के समान त्यागमय एवं तपस्यामय था। ये अजातशत्रु थे। शास्त्रार्थ के अवसर पर भी ये पक्ष एवं विपक्ष के सिद्धान्तों का न्याय के साथ निर्णय करते थे।

वामाचरणजी अग्निहोत्री थे और इस कारण नित्यप्रति अग्नि की परिचर्या करते थे। योगाभ्यास के भी ये प्रेमी थे। भक्ति रस से इनका हृदय आप्लावित रहता था। इसलिए बंगला और हिन्दी भाषा के सन्त कवियों के प्रति इनके हृदय में सन्मान तथा आदर का भाव था। देश-हित के कार्यों में भी ये संलग्न रहते थे। इसीलिए 'वर्णाश्रम स्वराज्य संघ' के प्रायः प्रत्येक अधिवेशन में ये सम्मिलित हुआ करते थे। 'संघ' के सिद्धान्तों में इनकी आस्था थी और ये 'संघ' के कार्यों में सक्रिय योगदान किया करते थे। देश, समाज तथा धर्म के कार्यों में पण्डितों की प्रायः उपेक्षा बुद्धि रहती है, ऐसा कुछ लोगों का कहना है। परन्तु वामाचरणजी के विषय में यह आरोप नहीं लगाया जा सकता।

यदि संक्षेप में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि शुभ्रवस्त्रावृत इनका व्यक्तित्व साधारणजन से अत्यन्त ऊँचे स्तर का था और ये ऋषि मुनियों की साक्षात् प्रतिमूर्ति ज्ञात होते थे।

जन्म तथा शिक्षा

पं० वामाचरण भट्टाचार्यजी का जन्म पवित्र नगरी काशी में आश्विन शुक्ल चतुर्दशी शकाब्द १८०१ (सन् १८८० ई०) में हुआ था। इनके पूज्य पिता का नाम पं० काशी-प्रसाद भट्टाचार्य था और माता शारदा सुन्दरी देवी के नाम से प्रसिद्ध थीं। ये अपने माता-पिता के ज्येष्ठ पुत्र थे। इनके तीन भाई और दो बहिनें थीं। इनका विवाह बंगाब्द १३०२ (सन् १८९५ ई०) सौर फाल्गुन २३ बृहस्पतिवार को हुआ था।

भट्टाचार्यजी तीन बंगीय गुरुओं से शिक्षा प्राप्तकर सुयोग्य नैयायिक के रूप में पण्डित-समाज में प्रतिष्ठित हुए। इन्होंने स्वर्गीय पं० गदाधर शिरोमणि से व्याकरणादि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रों की प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। इसी प्रकार न्यायशास्त्र का प्रारम्भिक अध्ययन इन्होंने अपने द्वितीय गुरु पं० सुरेन्द्रमोहन तर्कतीर्थ से किया। ये तर्कतीर्थ महाशय गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज, बनारस में न्यायशास्त्र के अध्यापक थे तथा कैलासचन्द्र शिरोमणि के शिष्य थे। इन्होंने 'तर्कभाषा' का सम्पादन विद्वत्तापूर्ण भूमिका के साथ किया था जो काशी के 'मेडिकल हाल' नामक प्रेस से प्रकाशित हुई थी। पं० वामाचरणजी ने न्यायशास्त्र की उच्चतम शिक्षा, संस्कृत कालेज में न्यायशास्त्र के तत्कालीन विभागाध्यक्ष कैलासचन्द्र शिरोमणि से प्राप्त की। शिरोमणिजी ने स्वयं न्यायशास्त्र का अध्ययन नवद्वीप के प्रधान विद्वान् न्यायाचार्य पं० गोलोकनाथ शिरोमणि से किया था। पं० वामाचरणजी पं० कैलासचन्द्र शिरोमणि के प्रधान शिष्य थे और उन्हीं की कृपा से इन्होंने न्यायशास्त्र के चूडान्त ग्रन्थों का सम्यक् अनुशीलन किया था। इन्होंने गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज से 'न्यायवैशेषिकाचार्य' की उपाधि प्राप्त की थी।

अध्ययन के पश्चात् पं० वामाचरणजी की नियुक्ति काशी के नगवा मुहल्ले में स्थित रुइया पाठशाला में हुई। वहाँ अनेक वर्षों तक इन्होंने अध्यापन किया। इसके बाद सन् १९०५ ई० में पं० कैलासचन्द्र शिरोमणि के अध्यक्ष काल में ही ये संस्कृत कालेज में न्यायशास्त्र के अध्यापक पद पर नियुक्त हुए। वहीं पर सन् १९०७ ई० में शिरोमणिजी के अवकाश ग्रहण करने पर इन्होंने न्यायशास्त्र के अध्यक्ष पद को सुशोभित किया। इस पद को अलंकृत करते समय इनकी अवस्था केवल २७ (सत्ताईस) वर्ष की थी। अध्यक्ष पद पर इन्होंने लगातार २४ (चौबीस) वर्षों तक सफलतापूर्वक कार्य किया।

इन्हीं दिनों इस कालेज में पं० जीवनाथ मिश्र न्यायशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे। तत्कालीन प्रिन्सिपल वेनिस साहब उनका बड़ा आदर करते थे और न्यायशास्त्र के किसी विषम स्थल की दुरूहता के विषय में उनकी व्याख्या को ही स्वीकार करते थे।

अद्वितीय शास्त्रार्थकर्ता—पं० वामाचरण चट्टाचार्यजी की शास्त्रार्थ की शैली अपूर्व थी। बंगदेश की शास्त्रार्थ-पद्धति में पूर्वपक्ष की स्थापना में ही किसी दोष की उद्भावना करके पूर्वपक्ष के कर्त्ता को निरुत्तर करने की प्रणाली प्रचलित है। परन्तु पं० वामाचरणजी इस प्रणाली का आश्रय नहीं लेते थे। बल्कि पूर्वपक्ष के स्थापक के प्रश्नों का प्रत्यक्ष उत्तर देकर उसे निरुत्तर करने का सफल प्रयास करते थे। इसी प्रणाली के द्वारा इन्होंने अनेक शास्त्रार्थी पण्डितों के अभिमान को चूर्ण किया था। आपने सत्तरह या अठारह वर्ष के वय मे पूर्व वंग के प्रसिद्ध नैयायिक महामहोपाध्याय पं० रासमोहन सार्वभौम को शास्त्रार्थ में परास्त कर दिया था। तत्कालीन समाचार-पत्रों ने इस घटना को लक्षित करके यह मार्मिक टिप्पणी की थी :

"एक दुग्धपोष्य (दुधमुँहा) शिशु के साथ शास्त्रार्थ में म० म० रासमोहन सार्वभौम निरुत्तर हो गये।"

भट्टाचार्यजी का दूसरा शास्त्रार्थ पं० बच्चा झा के साथ दरभंगा में हुआ था। झा ने लगातार तीस मिनटों तक अपने पूर्वपक्ष की स्थापना की थी। किन्तु पं० वामा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणजी ने केवल पाँच मिनटों में उनके प्रश्न का सटीक उत्तर देकर उन्हें परास्त कर दिया था। पं० बच्चा झा मैथिल पण्डितों के सम्राट् माने जाते थे। ऐसे महान् तथा प्रकाण्ड विद्वान् को निरुत्तर करना कोई साधारण बात नहीं थी। परन्तु वामाचरणजी ने अपनी अलौकिक प्रतिभा तथा तर्क-चातुरी के बल से पं० बच्चा झा को भी निरुत्तर कर दिया था। इनकी इसी तलस्पर्शी विद्वत्ता तथा शास्त्रार्थ-पटुता से प्रभावित होकर ब्रिटिश सरकार ने इन्हें सन् १९२५ ई० में 'महामहोपाध्याय' की महनीय उपाधि से अलंकृत किया।

परिवार—पं० वामाचरणजी के दो पुत्र थे। इनके ज्येष्ठ पुत्र का नाम गोपालचन्द्र न्यायाचार्य था जो अब दिवंगत हो गये हैं। ये काशी में ही किसी पाठशाला में अध्यापन करते थे। इनके दूसरे पुत्र का नाम पं० शिवचन्द्र न्यायाचार्य है जो राँची (बिहार) के गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज में दर्शन शास्त्र के अध्यापक हैं।

शिष्य-मण्डली—पं० वामाचरण भट्टाचार्यजी की शिष्य-मण्डली प्रचुर है। इन्होंने ऐसे विद्वान् शिष्यों को उत्पन्न किया जिन्होंने अपने जीवन में बड़ी ख्याति प्राप्त की और अपने गुरु की परम्परा को प्रगति प्रदान की। इन शिष्यों में प्रधान रूप से निम्नांकित हैं—(१) पण्डितराज राजेश्वर शास्त्री द्राविड़ (इनका परिचय इसी ग्रन्थ में अन्यत्र दिया गया है)। (२) पं० शिवदत्त मिश्र। (३) पं० वामाचरण तर्कतीर्थ जो छोटे वामाचरण के नाम से प्रसिद्ध थे। (४) पं० सूर्यनारायण शुक्ल (जो गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज में व्याकरण के अध्यापक थे)। (५) नेपाल के राजगुरु खगेन्द्रनाथ पाण्डेय। (६) महामहोपाध्याय कुञ्जविहारी तर्कतीर्थ। (७) महामहोपाध्याय डा० सतीशचन्द्र विद्याभूषण (इन्होंने 'हिस्ट्री आफ इण्डियन लाजिक' नामक एक महाग्रन्थ की रचना की है)। (८) महामहोपाध्याय पं० रमेशचन्द्र तर्कतीर्थ आदि। इन शिष्यों की नामावली से इनके गुरु की विद्वत्ता का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

ग्रन्थ-रचना

म० म० पं० वामाचरण भट्टाचार्य को अध्ययन तथा अध्यापन से तनिक भी अवकाश नहीं मिलता था। इन्होंने अपना समस्त जीवन योग्य शिष्यों के अध्यापन में ही व्यतीत किया। अतः स्वयं ग्रन्थरचना के लिए इन्हें समय नहीं मिला। अवच्छेदकत्व-निरुक्तिः जागदीशी : जगदीश तर्कालंकार-विरचित—इस ग्रन्थ पर पं० वामाचरण जी रचित **मनोरमा** टीका का उल्लेख मिलता है। इनकी एकमात्र कृति तत्कालीन काशी-नरेश महाराजा प्रभुनारायण सिंह द्वारा रचित 'पार्थपाथेयम्' नामक उल्लाघ्य की भूमिका है जिसे वामाचरण जी ने लिखा था। काशीनरेश भट्टाचार्य जी को बहुत मानते थे और इनकी विद्वत्ता का बड़ा आदर करते थे। अतः उन्होंने अपनी कृति **'पार्थपाथेयम्'** की भूमिका लिखने के लिए इनसे निवेदन किया था। इस भूमिका में वामाचरण जी ने नाटक के गुण-दोषों का सम्यक् विवेचन किया है। महाराजा की स्तुति में विरचित इनके दो श्लोक यहाँ उद्धृत किये जाते हैं जिनसे इनकी साहित्य-शास्त्र-संबंधी विद्वत्ता का पता चलता है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यः साहित्यकलाविलास-विपिने मञ्जुध्वनिः कोकिलो,
वेदान्तादि गभीरतत्त्वजलधौ मग्नो महाग्राहकः ।
विद्वद्भिर्विविधागमाटविमुहुः सञ्चार-पंचाननैः,
यत्संसद् गुरुभूषणामपि सुधर्माणं हसत्यन्तरा ॥ १ ॥

× × ×

योऽसौ सत्तपसां निधिः प्रतिनिधिर्विष्णोर्धरारक्षणे;
श्रौताचारपथप्रचारण-विधावुद्यद् विवस्वानिव ।
यत्कारुण्य-कणा-विलास-सुभगां पुष्टिं दधानाचिरम्;
विद्या-कल्पलता सतां नयनयोरानन्दमासिञ्चति ॥

इस प्रकार न्यायशास्त्र में लोकातीत वैदुष्य तथा विशाल कीर्ति अर्जित कर म० म० वामाचरण भट्टाचार्य ने बङ्गाब्द १३३७ सौर चैत्र ७, शनिवार तदनुसार चैत्र शुक्ल तृतीया, (मार्च २१ सन् १९३१ ई०) को शिवत्व प्राप्त किया।

निम्नांकित श्लोक में इनके व्यक्तित्व की सच्ची झाँकी प्रस्तुत की गई है :—

"विद्वन्मान्यवरा गृहीतवपुषो नूनं कणादर्षयः,
शान्तस्वान्तजुषः स्मिताञ्चितमुखाम्भोजाः प्रसादोत्तराः,
शिष्यौघैः परिवारिताः शिवपुरी-भूषायमाणाः सदा,
श्री वामाचरणाख्यया सुविदिता राजन्ति विद्वत्तमाः ॥

ख

पण्डित ताराचरण भट्टाचार्य

(आस्पद—भट्टाचार्य; उपाधि—साहित्य-वाचस्पति)

जन्म तथा शिक्षा

पं० ताराचरण भट्टाचार्य जी म० म० पं० वामाचरण भट्टाचार्य के मध्यम भ्राता थे। इनका जन्म काशी में ही सन् १८८५ ई० में हुआ था। इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा स्वर्गीय पं० गदाधर शिरोमणि से प्राप्त की। इसके पश्चात् न्यायशास्त्र का अध्ययन इन्होंने पं० सुरेन्द्रमोहन तर्कतीर्थ तथा अपने अग्रज पं० वामाचरण भट्टाचार्य जी से किया। ये साहित्य के ही प्रधान विद्वान् थे। इस शास्त्र का अध्ययन इन्होंने उस युग के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् म० म० पं० गंगाधर शास्त्री के चरणों में बैठकर किया था। ये अंग्रेजी तथा नवीन विषयों के भी ज्ञाता थे जिनका अध्ययन इन्होंने डॉ० वेनिस तथा नार्मन साहब से किया था। इस प्रकार ताराचरण जी ने न्यायशास्त्र, साहित्यशास्त्र तथा अंग्रेजी में भी दक्षता प्राप्त की थी। इन्होंने गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस से साहित्योपाध्याय तथा बंगाल से काव्यतीर्थ की परीक्षा उत्तीर्ण की थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यापन

पं० ताराचरण भट्टाचार्य ने साहित्य शास्त्र में सर्वोच्च उपाधि प्राप्तकर सर्व-प्रथम बंगाली टोला हाईस्कूल में अध्यापन का कार्य प्रारम्भ किया। ये कुछ वर्षों तक वहाँ छात्रों को संस्कृत पढ़ाते रहे। परन्तु वहाँ का कार्य इनकी योग्यता के अनुकूल नहीं था। अतः उसे छोड़कर इन्होंने काशी के **टीकमणि कालेज** में अध्यापक के रूप में पढ़ाना प्रारम्भ किया। इसके कुछ वर्षों के पश्चात् इनकी नियुक्ति काशी के ही गोयनका संस्कृत कालेज में हो गई। उस कालेज में इन्होंने अनेक वर्षों तक साहित्यशास्त्र का अध्यापन किया। यही इनके जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण काल था। ये अपने जीवन के अन्तिम दिनों तक साहित्य की सेवा में तल्लीन रहे।

परिवार

पं० ताराचरण भट्टाचार्य ने दो विवाह किये थे। इनका पहला विवाह बंगाब्द १३०६ में हुआ था तथा दूसरा विवाह बंगाब्द १३२१ सन् में सम्पन्न हुआ। इनकी प्रथम पत्नी से दो पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। इनके प्रथम पुत्र का नाम हेमेन्द्रनाथ भट्टाचार्य था तथा दूसरे का नाम **विभूतिभूषण न्यायाचार्य** था। इनके दूसरे पुत्र ने न्यायशास्त्र का गम्भीर अध्ययन किया था और वे संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी में सरस्वती भवन पुस्तकालय के पुस्तकालयाध्यक्ष थे। इस पद से अवकाश प्राप्त कर वे काशी में ही अपना शेष समय आजकल बिता रहे हैं।

भट्टाचार्य जी के दूसरे विवाह से एक पुत्र और चार कन्याएँ हुईं। इनकी द्वितीय पत्नी से उत्पन्न पुत्र डॉ० विश्वनाथ भट्टाचार्य आजकल हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष पद को सुशोभित कर रहे हैं।

इनके अग्रज **पण्डित विभूतिभूषण भट्टाचार्य** न्यायशास्त्र के प्रौढ़ विद्वान् हैं। इनकी प्रतिभा बड़ी विलक्षण है। आधुनिक विज्ञान की तुलना में नैयायिक सिद्धान्तों का वैशिष्ट्य एवं गाम्भीर्य दिखलाने में इनकी शेमुषी विशेष समर्थ है। ज्योतिष तथा गणित में भी इन्हें प्रौढ़ता प्राप्त है। इन्होंने **हयत** तथा **उकरा** नामक अरबी ज्योतिष के प्रतिपादक संस्कृत ग्रन्थों का सम्पादन बड़ी अभिज्ञता तथा विशदता से किया है। इन अल्पज्ञात विषयों के प्रतिपादन करने वाले संस्कृत ग्रन्थों का यह सम्पादन सम्पादक के विशद पाण्डित्य एवं अश्रान्त परिश्रम का द्योतक है। ये दोनों ग्रन्थ संस्कृत विश्व-विद्यालय, वाराणसी के अनुसन्धान विभाग द्वारा प्रकाशित हैं (१९६७, १९६८ ई०)। **'पारसीकप्रकाश'** फारसी शब्दों का संस्कृत कोश है। इसका भी सम्पादन विभूति बाबू ने बड़े वैशद्य से किया है। इन तीनों ही ग्रन्थों के आधार सरस्वती भवन में सुरक्षित प्राचीन हस्तलेख हैं (१९६५ ई०, काशी)।

ग्रन्थ रचना

पं० ताराचरण भट्टाचार्य ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है जिनका विवरण नीचे दिया जाता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) दशकुमारचरित की संस्कृत टीका, जिसका प्रकाशन चौखम्भा विद्याभवन काशी से हुआ है।

(२) भारतगीतिका—इस ग्रन्थ में भारतवर्ष का राजनैतिक इतिहास संस्कृत के गीतों में लिखा गया है।

(३) संस्कृत नाटकों में स्वरचित गीतिका—संस्कृत नाटकों का अभिनय करते हुए ये गाने के लिए कुछ गीतों का भी निर्माण करते थे।

पं० ताराचरण भट्टाचार्य के जीवन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि ये सफल अध्यापक होने के साथ ही सफल अभिनेता भी थे। इन्होंने संस्कृत के अनेक नाटकों में सफलतापूर्वक अभिनय किया था। इन्होंने अभिज्ञानशाकुन्तल के दुष्यन्त की, वेणी-संहार नाटक में भीम और दुर्योधन की और चण्डकौशिक में राजा हरिश्चन्द्र की भूमिका का बड़ी ही सफलता के साथ सम्पादन किया था। इनकी अभिनेयता बड़ी सफल होती थी जिसकी प्रशंसा दर्शकगण मुक्तकण्ठ से किया करते थे। इन्होंने संस्कृत नाटकों के अभिनय के लिए 'भारती समिति' नामक एक संस्था की स्थापना की थी जिसका संचालन ये स्वयं करते थे। इन्होंने 'मित्रगोष्ठी' नामक पत्रिका की व्यवस्था में भी योग दिया था। इस पत्रिका के सम्पादक पं० विधुशेखर भट्टाचार्य थे जो अपनी छात्रावस्था में काशी में अध्ययन करते थे और बाद में शान्तिनिकेतन, विश्वभारती के प्राचार्य पद को उन्होंने सुशोभित किया। इस पत्रिका में म० म० पं० रामावतार शर्मा भी लेख लिखा करते थे। इस प्रकार 'मित्रगोष्ठी' उस समय की प्रसिद्ध पत्रिका थी जिसके सम्पादन तथा व्यवस्थापन में भट्टाचार्य जी का प्रमुख हाथ था।

विद्वत्ता तथा साहित्यिक कार्यों के अतिरिक्ति इन्होंने अनेक सामाजिक कार्य भी किये, जिससे इनकी बड़ी प्रतिष्ठा हुई। लार्ड कर्जन द्वारा बंगभंग के समय सन् १९०५ ई० में इन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन में भी भाग लिया था। 'सेवक समिति' नाम से एक संस्था की इन्होंने स्थापना की थी जो विदेशी वस्त्रों के बायकाट को सफल बनाने के लिए स्वदेशी वस्त्रों को बेचने का कार्य करती थी। इस 'सेवक समिति' के कुछ सदस्यों ने 'बनारस षड्यंत्र केस' में भी भाग लिया था।

इस प्रकार ताराचरण भट्टाचार्य जी न्यायशास्त्र तथा साहित्यशास्त्र के विद्वान् होने के अतिरिक्त सफल अभिनेता भी थे। इन्होंने बंगभंग आन्दोलन में भाग लेकर राष्ट्र की सेवा भी की थी, जिसमें साधारणतया संस्कृत के विद्वानों ने बहुत कम योगदान किया है।

●

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२०

पण्डित चण्डीप्रसाद शुक्ल

(आस्पद—शुक्ल; उपाधि—वेदान्तसार्वभौम)

पण्डित उमापति द्विवेदीजी के अन्यतम शिष्यों में पण्डित चण्डीप्रसाद शुक्ल अग्रगण्य थे। महामहोपाध्याय हरिहरकृपालुजी तथा पण्डित चण्डीप्रसादजी द्विवेदीजी के समकालीन शिष्य होने के कारण सतीर्थ्य थे। इनका कार्यकाल भी प्रायः समसामयिक था। गोयनका संस्कृत महाविद्यालय की उन्नति करने में इन दोनों विद्वानों का हाथ था। चण्डीप्रसादजी विद्यालय के प्रथम अध्यक्ष थे। इनके अवकाश ग्रहण करने के अनन्तर हरिहरकृपालुजी उस स्थान पर अध्यक्ष बनाये गये।

गोयनका विद्यालय की स्थापना

खुरजा के उद्योगपति सेठ गौरीशंकर गोयनका बड़े ही विद्याप्रेमी तथा संस्कृत भाषा का प्रचार एवं प्रसार कर कीर्ति अर्जित करने वाले व्यक्ति थे। वे संस्कृत का विधिवत् अध्ययन संस्कृत के मान्य पण्डितों से किया करते थे। पण्डित चण्डीप्रसाद शुक्लजी उनके गुरु-स्थानीय थे जिनसे वे उपनिषद् तथा वेदान्त का अध्ययन किया करते थे। इन्हीं के उपदेश तथा आग्रह से सेठजी ने अपने पितामह तथा पिता के नाम से संवलित विद्यालय की स्थापना १९२६ ई० के जून मास में की। इस विद्यालय का पूरा नाम 'जोखीराम मटरूमल गोयनका विद्यालय' है। यह विद्यालय काशी में एक महनीय तथा माननीय विद्यालय के रूप में प्रतिष्ठित है। इसका अपना भवन है। विशाल पुस्तकालय है तथा संस्कृत विद्या के प्रमुख विभागों के लिए नियुक्त सुयोग्य अध्यापक हैं। पण्डित चण्डीप्रसाद शुक्लजी ही इसकी प्रेरणा के स्रोत थे। फलतः विद्यालय की स्थापना होने पर वे ही इसके प्रथम अध्यक्ष—प्राचार्य—प्रिन्सिपल बनाये गये। इनके अवकाश ग्रहण करने पर महामहोपाध्याय हरिहरकृपालु द्विवेदी अध्यक्ष-पद पर नियुक्त हुए। उनके अवकाश ग्रहण करने पर पण्डित कमलाकान्त मिश्रजी भी यहाँ के अध्यक्ष नियुक्त हुए जिन्होंने इस पद पर २२ वर्ष तक कार्य किया।

अच्युत मुनि

गोयनका संस्कृत विद्यालय के संस्थापक सेठ गौरीशंकर गोयनका ने 'अच्युत ग्रन्थमाला' नामक एक नवीन ग्रन्थमाला का प्रकाशन अपने विद्यालय के द्वारा ही किया। इस ग्रन्थमाला में वेदान्त के प्रसिद्ध तथा दुरूह ग्रन्थों का सरल सुबोध हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। कुछ नवीन अप्रकाशित ग्रन्थों (जैसे प्रत्यक् तत्त्वचिन्तामणि, कात्यायनश्रौतसूत्र—सरलावृत्ति, शुल्वसूत्रवृत्ति आदि) का भी प्रकाशन इस माला में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया गया है। वृहदारण्यक वार्तिकसार (दो खण्ड), ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य (तीन खण्ड), योगवाशिष्ठ जैसे वेदान्त के उच्चस्तरीय तथा दुरूह ग्रन्थों का सुबोध अनुवाद हिन्दी में प्रकाशित कर इस विद्यालय ने हिन्दी में दार्शनिक साहित्य की विशेष उपलब्धि की है।

अच्युत ग्रन्थमाला के प्रेरणा-स्रोत थे अच्युत मुनि, जो वेदान्त के बड़े ही मर्मज्ञ विद्वान् तथा अध्यात्म के गम्भीर चिन्तक थे। ये सेठजी के गुरु थे। इन्हीं से उन्होंने वेदान्त की शिक्षा तथा उपदेश ग्रहण किया था। इसीलिए सेठजी ने अपने गुरु 'अच्युत मुनि' के नाम पर इस ग्रन्थमाला का नाम ही रखा। स्वामी अच्युत मुनि के पूर्व आश्रम का नाम पण्डित दौलतराम शास्त्री था। इन्होंने काशी में ही महामहोपाध्याय श्रीशिवकुमार शास्त्रीजी से व्याकरण तथा वेदान्त का गम्भीर अध्ययन किया था। लाहौर में ये डी० ए० वी० कालेज में संस्कृत के अध्यापक थे। उसी समय से इनका मन गृहस्थी से हटकर निवृत्ति मार्ग में रमता था। सेवा-निवृत्त होने के अनन्तर तो ये बिलकुल विरक्त होकर गढ़मुक्तेश्वर से लेकर फतेहगढ़ तक पैदल ही विचरण किया करते थे। एक बार बहुत अधिक बीमार पड़ जाने पर इन्होंने आतुर संन्यास ले लिया तब नाम पड़ा 'अच्युत मुनि'। अनूप शहर में सेठ गौरीशंकर गोयनकाजी जो संस्कृत-सेवी तथा सन्त महापुरुषों के सेवक थे, स्वामीजी की सात्त्विक वृत्ति से बड़े ही आकृष्ट हुए और इनसे वेदान्त के ग्रन्थों का अध्ययन करने लगे। इसी समय पण्डित रामशंकर मेहता और पण्डित गङ्गाप्रसाद मेहता (तत्कालीन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार) भी उस अध्ययन में सम्मिलित हुए। सेठजी ने इनके लिए नाव पर जीवन बिताने की व्यवस्था कर दी थी और साथ में सेवक और पाचक का भी प्रबन्ध कर दिया था।

अन्त समय में ये काशी आये। यहाँ पर भी सेठजी ही इनके प्रधान सेवक थे। काशी में रहते हुए इनका हिन्दू विश्वविद्यालय के कतिपय विद्वानों एवं छात्रों के साथ सम्पर्क हो गया। अध्यापन-अध्ययन के अतिरिक्त ये वेदान्त एवं भागवत के मर्मज्ञ व्याख्याता भी थे। अन्त समय ज्ञानवापी के पास गोयनकाजी की कोठी में रहते हुए आपने योगियों की भाँति १२ दिसम्बर १९३५ को अपनी इहलोक-लीला का संवरण किया। अच्युत-ग्रन्थमाला के नाम से प्रकाशित शास्त्रों का भण्डार मुनिजी के पूर्व जीवनवृत्त का मूक साक्ष्य देता हुआ प्रतीत होता है। भगवान् और भगवत्तत्त्व ऐसे ही पवित्रचेता मनीषियों के हृदय-देश में आविर्भूत हुआ करते हैं।

श्री शुक्लजी का जन्म छपरा जिले के 'एकना' स्टेशन के समीपस्थ 'पण्डितपुर' नामक ग्राम में हुआ था। उस गाँव के प्रतिष्ठित एवं सम्पन्न पण्डित श्रीकान्त पाण्डेय और यमुनाकान्त पाण्डेय के दरवाजे पर ही एक संस्कृत पाठशाला चलती थी जिसमें मिथिला के पण्डित दुलार झा नैयायिक (जो लेखक के छात्र, श्यामा संस्कृत विद्यालय, काशी के प्राचार्य डॉ० नरेश झा के पूज्य पितामह थे) संस्कृत पढ़ाया करते

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। इन्हीं से चण्डीप्रसादजी ने संस्कृत की आरम्भिक शिक्षा ग्रहण की थी। सिद्धान्त-कौमुदी एवं तर्कसंग्रह आदि ग्रन्थों में व्युत्पत्ति प्राप्त करने के अनन्तर ये टीका ग्रन्थों के अध्ययन के निमित्त अयोध्याजी गये। इनकी शिक्षा-दीक्षा, अध्ययन-अध्यापन का कार्य उत्तर प्रदेश में ही सम्पन्न हुआ था। ये अयोध्या में पण्डितप्रवर नकछेदराम (उमापति) द्विवेदीजी के अन्तेवासी बने और इस प्रकार ये पण्डित हरिहरकृपालुजी के सतीर्थ्य थे। दोनों अपने विषयों के दिग्गज विद्वान् थे और दोनों ने ही इस गोयनका महाविद्यालय के अध्यक्ष पद को सुशोभित कर संन्यासियों तथा इतर छात्रों को व्याकरण, न्याय तथा वेदान्त जैसे गम्भीर शास्त्रों का विधिवत् शिक्षण दिया। पण्डित चण्डीप्रसादजी इस संस्कृत महाविद्यालय के प्रथम अध्यक्ष (प्रिन्सिपल) थे और इनके अवकाश ग्रहण करने पर महामहोपाध्याय पण्डित हरिहरकृपालु द्विवेदी उसी पद पर १९४३-४४ ई० में नियुक्त किये गये।

शुक्लजी द्विवेदीजी के साथ अयोध्या में पण्डित उमापति द्विवेदीजी के पास न्याय, वेदान्त आदि दर्शनों का अध्ययन करते थे, परन्तु अध्ययन की समाप्ति पर दोनों का कार्यक्षेत्र भिन्न हो गया। पण्डित चण्डीप्रसादजी प्रथमतः खुर्जा की पाठशाला में अध्यापन करते थे। तदनन्तर काशी में सेठ गौरीशंकर गोयनका ने जब अपने पूर्वजों की स्मृति में "जोखीराम मटरूमल गोयनका संस्कृत महाविद्यालय" की स्थापना की तब इन्हें अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठापित करके खुर्जा से काशी बुला लिया। इस पद पर रहते हुए शुक्लजी ने विद्यालय की शासन-व्यवस्था अत्यन्त सुन्दर रीति से की। इसके साथ ही इन्होंने विद्यालय में पठन-पाठन की सम्यक् परिपाटी प्रवर्तित की।

ग्रन्थ-रचना

पण्डित चण्डीप्रसाद शुक्लजी ने सेठ गौरीशंकर गोयनका के गुरु श्री अच्युतमुनि की प्रेरणा से महादार्शनिक श्रीहर्ष के 'खण्डनखण्डखाद्य' का राष्ट्रभाषा हिन्दी में अनुवाद १९१४ ई० में किया था, परन्तु इसे प्रकाशित होने का सुअवसर १९८५ वि० सं० अर्थात् १९२८ ई० में 'अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय' काशी से हुआ। शुक्लजी ने इस तर्कबहुल दुरूह ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद करने में बड़ा परिश्रम किया है। इस ग्रन्थ के नाम का अर्थ है—खण्डन रूपी खाँड (चीनी) से बनी हुई मिठाई। परन्तु इस मिठाई के आस्वादन का अवसर केवल न्यायवेदान्त के तत्त्वों के ज्ञाता विद्वानों को ही उपलब्ध होता है। यह ग्रन्थ अद्वैत वेदान्त के चूडान्त ग्रन्थों में शीर्षस्थानीय माना जाता है। वेदान्त-शास्त्र कहता है कि प्रमाण, प्रमेय आदि निखिल पदार्थ अनिर्वचनीय हैं अर्थात् उनका निर्वचन-लक्षण न होने से वे स्वप्नवत् मिथ्या हैं। इसीसे वेदान्त को 'अनिर्वचनीयवाद' भी कहते हैं। परन्तु प्रमाण, प्रमेय आदि के लक्षणों का खण्डन प्राधान्येन किसी वेदान्त ग्रन्थ में नहीं किया गया है। यह 'खण्डनखण्डखाद्य' ही ऐसा पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ है जिसमें एक-एक कर सब लक्षणों का अकाट्य युक्तियों से खण्डन कर 'अनिर्वचनीयता-वाद' नाम की रक्षा की गई है। इसीलिए इस ग्रन्थ का अपर नाम 'अनिर्वचनीयता-सर्वस्व' भी है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस ग्रन्थ में न्याय के तथा बौद्धों के सिद्धान्तों का खण्डन पुङ्खानुपुङ्ख रूप से किया गया है। यह 'खण्डन' एक प्रकार से दार्शनिक ज्ञान का निकषग्रावा माना जाता है, जिसे भलीभाँति समझना तथा छात्रों को समझाना पाण्डित्य का चरम उत्कर्ष समझा जाता है। इस ग्रन्थ में चार परिच्छेद हैं—प्रथम परिच्छेद समग्र ग्रन्थ के आधे से भी ऊपर है। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण परिच्छेद है। नाम है—प्रमाण-तदाभास खण्डन। द्वितीय परिच्छेद का नाम है निग्रहानिरुक्ति (निग्रहस्थानों का खण्डन)। तृतीय परिच्छेद बहुत ही छोटा है जिसका नाम है – सर्वनामार्थानिरुक्ति। चतुर्थ परिच्छेद विषय का समापन करने वाला है जिसमें विषयों के वेदान्तसम्मत अनिर्वचनीय स्वरूप का प्रतिपादन है। पण्डित चण्डीप्रसादजी ने प्रश्न और उत्तर रूप से विभाजन कर सिद्धान्तों की सुबोध व्याख्या करने का प्रयास किया है। भारतीय दर्शन के सिद्धान्तों से परिचित व्यक्ति इस अनुवाद की सहायता से अद्वैत के सिद्धान्तों से समझने में सामान्यतः कृतकार्य हो सकता है। विशेष जानकारी के लिए गुरुमुख से ग्रन्थ का अध्ययन नितान्त आवश्यक है। शुक्लजी का यह प्रयास नितान्त श्लाघनीय है और हिन्दी के माध्यम से दर्शन के ज्ञान के इच्छुक व्यक्तियों के लिए यह सर्वथा उपयोगी ग्रन्थ है।

पण्डित चण्डीप्रसादजी ने अपने भाषानुवाद के आरम्भ में मंगलाचरण के अनन्तर अपने पूज्य गुरु उमापति द्विवेदी को इन शब्दों में नमस्कार किया है—

अनुमापतये तस्मायप्युमापतये सदा।
नमोऽस्तु गुरवे सर्ववेदिनेऽपि द्विवेदिने॥

जिससे इनके गुरु के सर्वशास्त्र-मर्मज्ञ होने का पता चलता है। ऊपर कहा ही गया है कि शुक्लजी के साथ पं० हरिहरकृपालुजी भी इन्हीं गुरु के यहाँ अध्ययन करते थे। फलतः दोनों सतीर्थ्य थे।

मूल लेखक श्रीहर्ष मिश्र के अलौकिक दार्शनिक पाण्डित्य की चर्चा करना यहाँ अनुपयुक्त नहीं है। खण्डनखण्ड के आरम्भ में ही उन्होंने अपने ग्रन्थ के माहात्म्य के विषय में जो गवोक्ति लिखी है, उसे तथ्योक्ति ही समझना चाहिए। उनका कथन है—

शब्दार्थ-निर्वचन-खण्डनया नयन्तः
सर्वत्र निर्वचनभावमखर्वगर्वान्।
धीरा यथोक्तमपि कीरवदेतदुक्त्वा
लोकेषु दिग्विजयकौतुकमातनुध्वम्॥

आशय है कि विना विशेष ऊहापोह किये ही पण्डित जन शुक की तरह भी यदि इस शास्त्र को तैयार करें तो वे शब्द तथा अर्थ के निर्वचन से अखर्व गर्व से मण्डित पण्डितों को मौन बना डालें और लोक में दिग्विजय रूपी क्रीडा का विस्तार करें। श्रीहर्ष का यह उपदेश आज भी मानने योग्य है।

खण्डनकार ने अपने ग्रन्थ (पृ० ६०) में अद्वैत भावना की बड़ी प्रशंसा की है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वरानुग्रहादेषा पुंसामद्वैतवासना ।
महाभयकृतत्राणा द्वित्राणां यदि जायते ।।

यहाँ पर इन्होंने साहित्यिक भाषा में अपने कथन का संक्षिप्त निरूपण किया है कि किस प्रकार उपनिषदों के अद्वैतपरक सिद्धान्तों के परिशीलन से साधक को अद्वैत रूप परमार्थ का स्वयं साक्षात्कार हो जाता है। इसी प्रसंग में श्रीहर्ष ने इन शब्दों में अपने 'नैषधचरित' का स्मरण किया है—

यथा च परिहृतचापलम् आत्मतत्त्वामृतसरसि निमज्य रज्यति निरायासमेव मानसं, तथाऽहम् अकथयं नैषधचरितस्य परमपुरुषस्तुतौ सर्गे इत्येषा दिक् (नैषधचरित के २१वें सर्ग का यहाँ स्पष्ट निर्देश है)। इस वाक्य का 'अकथयम्' (मैंने कहा है) सूचित करता है कि खण्डन से पहले ही नैषधचरित की रचना हो चुकी थी। उधर नैषधचरित के षष्ठ सर्ग के अन्तिम पद्य (६।११३) में 'खण्डनखण्ड' का नाम निर्देश किया गया है। इस विरोध का समाधान किया जा सकता है। नैषधचरित की रचना के समय 'खण्डन' का निर्देश बुद्धिस्थ ग्रन्थ का ही सूचक है अर्थात् भविष्य में निर्मीयमाण ग्रन्थ की ओर ही ग्रन्थकार का निर्देश है। खण्डन के अनुवाद पृ० ३०९ पर 'ईश्वराभिसन्धि' नामक ग्रन्थ का स्पष्ट निर्देश है। उधर नैषधचरित में इसका संकेत नहीं मिलता। फलतः यह श्रीहर्ष मिश्र की नूतन रचना है जो अभी तक प्रकाश में नहीं आयी है। खण्डनकार ने अनौचित्य के विषय में 'महिमा' (महिमभट्ट) का मत उद्धृत किया है कि इन्होंने 'व्यक्तिविवेक' नामक अपने ग्रन्थ में इस दोष को आदरपूर्वक स्वीकार किया है—

दोषं व्यक्तिविवेकेऽमुं कविलोकविलोचने ।
काव्यमीमांसिषु प्राप्तमहिमा महिमाऽऽदृत ।।
(खण्डन, पृ० ४१४)

इस पद्य में श्रीहर्ष ने 'महिमा' (महिमभट्ट) को काव्य की मीमांसा करने वाले आचार्यों में महिमा प्राप्त करने वाला तथा उनके ग्रन्थ व्यक्तिविवेक को 'कविलोक-विलोचन' बतलाकर उनके प्रति अपनी सातिशय आदरभावना का प्रदर्शन किया है। 'व्यक्तिविवेक' ग्रन्थ भी वास्तव में साहित्य-मीमांसा का उदात्त एवं पाण्डित्यपूर्ण प्रामाणिक ग्रन्थ जो ठहरा। यह निर्देश नैषधचरितकार की भावयित्री प्रतिभा का स्पष्ट संकेत दे रहा है।[1]

१. डॉ० गङ्गानाथ झा और लक्ष्मण शास्त्री द्राविड ने खण्डनखण्डखाद्य का एक विशिष्ट संस्करण चौखम्भा संस्कृत सीरीज में प्रकाशित किया है (१९१४ ई० में) जिसमें आनन्दपूर्ण की खण्डन फक्किका विभंजन नाम्नी (विद्यासागरी) व्याख्या के साथ चित्सुख, शंकर मिश्र एवं रघुनाथ की टीकाओं से भी उद्धरण दिये गये हैं। खण्डन का अंग्रेजी में डॉ० गङ्गानाथ झा तथा डॉ० थीबो ने मिल कर अनुवाद किया है जो 'इण्डियन थाट' नामक पत्रिका के विभिन्न अंकों में प्रकाशित है (१९०७-१९१४)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुक्लजी के सतीर्थ्य

पण्डित रामेश्वरदत्त शुक्ल

(आस्पद-शुक्ल, उपाधि-ज्योतिषरत्नाकर)

ये भी उमापति द्विवेदी जी के अन्यतम शिष्यों में थे। पण्डित रामेश्वरदत्त शुक्ल का जन्म फैजाबाद जिले की अकबरपुर तहसील के निकट सुकुलपट्टी गाँव में १८५९ ई० में हुआ था। अयोध्या में विद्याध्ययन करने से पूर्व इन्होंने काशी में आकर उस युग के प्रसिद्ध ज्योतिषी पं० गणेशदत्त ज्योतिषी से ज्योतिषशास्त्र का गंभीर अध्ययन किया था। ज्योतिष में ये बड़े ही निपुण विद्वान् माने जाते थे। इसके अनन्तर अयोध्या में जाकर इन्होंने उमापति द्विवेदी जी से व्याकरण तथा दर्शन की उच्च शिक्षा प्राप्त की। शुक्ल जी बड़े ही आचारवान् तथा सन्त प्रकृति के व्यक्ति थे। फलित ज्योतिष की इनकी गणना बड़ी सटीक तथा मार्मिक होती थी। इनकी कृपा से राजा रुद्रप्रसाद शाही को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई थी। राजा ने भूसम्पत्ति देकर अपने राज्य में ही इन्हें बड़े आदर तथा सत्कार के साथ रखा था। ये विद्वान् होने के अतिरिक्त बड़े ही आचारवान् व्यक्ति थे। इनके आचार-विचार से प्रभावित होकर स्थानीय जनता इन्हें 'बड़का पंडित' के नाम से पुकारती थी। अपने वैदुष्य तथा सदाचार के कारण पं० रामेश्वरदत्त शुक्ल जी अयोध्या-मण्डल में विशेष रूप से प्रतिष्ठित तथा समादृत किये जाते थे।

इनके एकमात्र पुत्र पं० सूर्यनारायण शुक्ल अपनी प्रखर विद्वत्ता, शास्त्रीय अनुशीलन तथा प्राचीन ग्रन्थों के विमर्शात्मक संस्करणों के द्वारा काशी के विद्वत्समाज में आदर के पात्र थे। इनका जन्म संवत् १९५२ (१८९५ ई०) में हुआ था। अपने पिताजी से ही इन्होंने आरम्भिक शिक्षा प्राप्त की तथा सिद्धान्तकौमुदी का अध्ययन किया। अनन्तर अयोध्याजी में 'राजगोपाल पाठशाला' में पं० चन्द्रधर पाण्डेय से व्याकरण तथा साहित्य का, तथा श्री श्रीदत्तजी से दर्शन का विशेष अध्ययन किया। हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत महाविद्यालय में श्री चन्द्रधरजी की नियुक्ति हो जाने से उनके रिक्त स्थान पर ये नियुक्त किये गये। तदनन्तर काशी के प्रसिद्ध 'गोयनका संस्कृत महाविद्यालय' में व्याकरण के अध्यापक नियुक्त हुए। काशी में ही वामाचरण भट्टाचार्य से इन्होंने न्याय का विशिष्ट अध्ययन किया। १९२९ ई० में भट्टाचार्यजी के निधन के अनन्तर उन्हीं के रिक्त स्थान पर १९३० दिसम्बर में इनकी नियुक्ति संस्कृत कालेज में हुई, जहाँ ये १४ वर्षों तक अध्यापन करते रहे। सन् १९४४ अप्रैल में ४८ वर्ष की आयु में इनका काशीवास हुआ।

श्रीसूर्यनारायणजी जितने सफल अध्यापक थे, उतने ही बड़े प्राचीन ग्रन्थों के संशोधक, व्याख्याकार तथा सम्पादक थे। इन्होंने बड़े सुयोग्य शिष्यों को तैयार किया जिनमें निम्नलिखित विद्वान् उल्लेखनीय हैं—

सर्वश्री पण्डित रुद्रप्रसाद अवस्थी, अयोध्या, राहुल सांकृत्यायन, चन्द्रशेखर शास्त्री (अब स्वामी निरंजन देवतीर्थ शंकराचार्य पुरी), महामण्डलेश्वर रामेश्वरानन्दजी,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशी, रामानुज ओझा (प्रधानाचार्य बिरला संस्कृत महाविद्यालय) तथा स्वामी शंकरचैतन्य भारती ।

इनके द्वारा रचित तथा सम्पादित ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं—

रचना

१. **वादरत्नम्** २ भाग व्याकरण में न्यास और परिष्कार भाग शास्त्रार्थ ग्रन्थ

२. **माध्वभ्रान्तिनिरासः**
३. **माध्वमुखभङ्गः**
४. **निर्विकल्पतावादः**
५. **आशौचशङ्करव्यवस्था**
६. **वसन्तोत्सवनिर्णयः**

इन दोनों लघुकाय ग्रन्थों में सत्यधाम तीर्थ द्वारा प्रदर्शित अद्वैतविषयक भ्रान्तियों का निराकरण तथा माध्वमत के भेदवाद की तीव्र आलोचना तथा अवैदिकत्व का प्रदर्शन है। युक्ति तथा तर्क संवलित शास्त्रार्थ ग्रन्थ ।

टीकाएँ

१. मुक्तावलीमयूख,
२. तत्त्वचिन्तामणिमिताक्षरा,
३. तर्कसंग्रहदीपिकामयूख,
४. न्यायमतरक्षणम्,
५. वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड,
६. लघुमञ्जूषा आकाशादि प्रकरण,
७. भाट्टचिन्तामणिमयूख,
८. खण्डनरत्नमालिका ।

इनके ज्येष्ठ पुत्र व्याकरणाचार्य पण्डित रामगोविन्द शुक्ल संस्कृत विश्वविद्यालय के अनुसन्धान विभाग में अध्यापक के पद पर नियुक्त हैं ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२१

श्रीलक्ष्मण शास्त्री तैलङ्ग

(आस्पद—मानवल्ली, उपाधि—महामहोपाध्याय)

पण्डित लक्ष्मण शास्त्री तैलङ्ग काशी के कवियों में महनीय स्थान धारण करते थे। ये काशी के एक प्रतिष्ठित तैलंग कविकुल में उत्पन्न हुए थे। कविताकिक नरसिंह शास्त्री तैलंग के ये कनिष्ठ पुत्र थे। इनका जन्म विक्रम संवत् १९३७ (१८८० ई०) मार्गशीर्ष कृष्ण चतुर्थी को काशी में हुआ। इनके अनुज महामहोपाध्याय पं० गंगाधर शास्त्री तथा महामहोपाध्याय रामशास्त्री तैलंग थे। यह विद्वानों का कुल था जहाँ शारदा देवी के मधुर गायन की झंकार प्रतिदिन सुनाई पड़ती थी। इनके अनुज, जिनका विवरण पहले दिया जा चुका है काशी के मूर्धन्य कवियों में परिगणित किये जाते थे। छात्रावस्था में इन्होंने काशी के व्याकरणकेशरी पण्डित यागेश्वर शास्त्रीजी से वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी का विधिवत् अध्ययन किया। साहित्य का अध्ययन इन्होंने घर पर ही अपने पिता नरसिंह शास्त्री से तथा अनुज पं० गंगाधर शास्त्रीजी से किया। परिणामस्वरूप ये काव्यतत्त्व के मर्मज्ञ विद्वान् बन गये। साथ ही साथ इनमें कारयित्री प्रतिभा का विमल विलास भी स्वतः उद्बुद्ध हो गया। इनके घर से ही 'सूक्तिसुधा' नाम्नी कविता-पत्रिका प्रकाशित होती थी जिसमें इनकी रचित कमनीय कविताएँ समय-समय पर प्रकाशित होती रहीं।

इनका अध्ययन संस्कृत भाषा तक ही सीमित नहीं रहा प्रत्युत अंग्रेजी, इतिहास, पश्चिमी दर्शन आदि नवीन विषयों का भी ज्ञान इन्होंने विधिवत् प्राप्त किया। ये काशी के गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज के 'ऐंग्लो विभाग' में भी अध्ययन करते थे जहाँ इन्होंने डॉ० वेनिस से पुरातत्त्व, इतिहास, शिलालेख शास्त्र आदि विषयों का भी गम्भीर ज्ञान प्राप्त किया।

अध्यापन

संस्कृत कालेज के अंग्रेजी विभाग में संस्कृत के प्राध्यापक के पद पर इनकी नियुक्ति हुई, यावत् जीवन ये इसी कालेज में संस्कृत का अध्यापन करते रहे। काशी से इनका इतना प्रेम था कि सरकारी सेवक होने पर भी ये अन्य स्थानों पर कभी नहीं गये। अंग्रेजी कालेज अवनति पाकर जब इन्टर कालेज के रूप में रह गया तब भी इन्होंने उसी कालेज में पढ़ाना स्वीकार किया, परन्तु अन्यत्र किसी डिग्री कालेज या यूनिवर्सिटी में जाना इन्होंने सर्वथा अस्वीकार कर दिया। काशी का प्रेम इतना अधिक पण्डितजी को था।

कालेज के अध्यापन के अतिरिक्त लक्ष्मण शास्त्रीजी अपने घर पर भी साहित्य के आचार्य के छात्रों का साहित्यशास्त्र का अध्यापन करते थे। इनके अध्यापन का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रिय ग्रन्थ श्रीहर्ष का नैषधचरित ही था। नैषध पढ़ाने में इनकी रुचि बड़ी बलवती थी। ये प्रतिदिन अध्ययन में एक घण्टा नियमित रूप से नैषध पढ़ाया करते थे। नैषध पढ़ाने की इनकी विशेषता यह थी कि ये एक मिनट में एक श्लोक विधिवत् पढ़ा देते थे जिसमें श्लोक का अर्थ, उसकी विशद व्याख्या तथा उसकी काव्यगत विशिष्टता का विवेचन बड़े ही सुन्दर ढंग से किया जाता था। इस प्रकार एक घंटे में ६० श्लोकों का अध्यापन करना कोई हँसी खेल की बात नहीं होती।

इनका व्यक्तित्व बड़ा ही भव्य तथा आकर्षक था। सिर पर लाल मराठी पगड़ी, शरीर पर लम्बा पारसी कोट, श्वेत रेशमी दुपट्टा, ललाट पर लाल तिलक और धवल धोती इस विशिष्ट वेश में शास्त्री जी को देखकर दर्शक आकृष्ट हुए बिना नहीं रहता था। दर्शनमात्र से इनके गम्भीर वैदुष्य तथा प्रतिभा की एक विशिष्ट आभा दर्शकों के नेत्रों में छा जाती थी।

म० म० लक्ष्मण शास्त्री सुन्दर तथा ललित कविता की रचना में निपुण थे। विशेषतया शेक्सपियर के नाटकों के आधार पर संस्कृत पद्यों में इन्होंने स्वतंत्र कमनीय रचना की है। इसका उद्देश्य था कि संस्कृत के छात्रों तथा पण्डितों का ज्ञान एकाङ्गी न हो। संस्कृत के साथ ही साथ वे विदेशी कवियों की रचनाओं से भी परिचित हों।

डॉ० वेनिस के सम्पर्क में आने से शास्त्री जी की अभिरुचि पालिभाषा के अध्ययन के प्रति विशेष थी। उस समय संस्कृत कालेज के विख्यात भाषाविद् अध्यापक डॉ० नार्मन साहब लण्डन की पालि टेक्स्ट्स सोसाइटी के लिए धम्मपद की अट्ठकथा का एक विशिष्ट संस्करण सिंहली हस्तलेखों के आधार पर बड़े परिश्रम से तैयार कर रहे थे। पण्डित लक्ष्मण शास्त्री के वैदुष्य से आकृष्ट होकर नार्मन साहब ने इन्हें अपना सहायक नियुक्त कर रखा था। एक दुर्घटना में नार्मन साहब की अकाल में ही मृत्यु हो जाने के कारण ग्रन्थ के अवशिष्ट अन्तिम खण्ड का सम्पादन लक्ष्मण शास्त्री जी ने स्वयं विना किसी सहायक के ही किया। एक बार लेखक को शास्त्रीजी ने अपने सिंहली लिपि के ज्ञान के विषय में पूछने पर बतलाया था, "नार्मन साहब स्वयं सिंहली लिपि को पढ़ नहीं सकते थे। वे मेरे ही ऊपर इसके लिए निर्भर रहते थे। सिंहली लिपि मेरी मातृलिपि तेलुगु से विशेष मिलती-जुलती है। इसीलिए उसका पढ़ना मेरे लिए विशेष कष्टप्रद नहीं था। इस रहस्य को वे जानते नहीं थे। फलतः वह पूरी अट्ठकथा मेरे ही द्वारा निर्धारित पाठ से संवलित होकर मुद्रित हुई थी।"

इस उत्तर से पण्डित जी के लिपि-ज्ञान एवं पालिभाषा के गाढ़ परिचय के रहस्य का उद्घाटन भलीभाँति हो जाता है।

पण्डित लक्ष्मण शास्त्री का अध्ययन-अध्यापन काशी में ही हुआ। फलतः ये हिन्दी से ही पूरे परिचित नहीं थे, काशी की ठेठ बोली बनारसी का भी इन्हें परिज्ञान था। इनका परिवार मराठीभाषी परिवारों से गाढरूप से संपृक्त था। इसलिए ये मराठी की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छी जानकारी रखते थे। अंग्रेजी पढ़ने-लिखने का भी इन्हें पूरा अभ्यास था। अंग्रेजी अखबार तथा ग्रन्थों के पढ़ने का इन्हें विशेष शौक था। इन्हें ये अपने सुयोग्य छात्र पण्डित बटुकनाथ शर्मा से मँगाकर पढ़ा करते थे।

सद्गुणों की सत्ता

पण्डित लक्ष्मणशास्त्रीजी बड़े ही अनुशासनप्रिय थे। ठीक समय पर पढ़ाना आरम्भ करते थे और ठीक समय से ही उसे समाप्त करते थे। गुरु के इस गुण के कारण शास्त्रीजी के छात्रों में भी अनुशासनप्रियता विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती थी। ये भगवती शारदा के उपासक थे और पूजन-अर्चन में बड़ी नैतिकता का पालन करते थे। उस समय 'कल्याण' का शक्ति विशेषांक प्रकाशित हो गया था। उस पर अपनी स्पष्ट सम्मति देते हुए इन्होंने लेखक से कहा था—"इस अंक के प्रकाशन से लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक दीखती है। शक्ति की पूजा-अर्चा का सफल विधान गुरुमुखैकगम्य है—गुरु की व्याख्या के द्वारा ही उसके रहस्य का ज्ञान योग्य शिष्य को हो सकता है। केवल लेख पढ़ कर तत्प्रतिपादित क्रियाओं का अनुष्ठान करना नितान्त हानिकारक ही सिद्ध होगा।" उनका यह कथन बड़ा ही सटीक तथा उपयुक्त था।

शास्त्री जी स्वाभिमान तथा स्वतंत्र विचार के व्यक्ति थे। किसी बड़े से बड़े व्यक्ति के अनुचित दबाव को मान कर कार्य करना इनके स्वभाव के नितान्त विरुद्ध था। तभी तो कालेज का अंग्रेज प्रिन्सिपल भी इनसे सदा सशंक रहता था, और इनसे किसी अनुचित कार्य करने के लिए कभी आग्रह नहीं करता था। उस समय क्वीन्स कालेज के अध्यक्ष श्री संजीवा राव थे जो शिक्षाक्षेत्र में ख्यातनामा थे, परन्तु वे भी शास्त्री जी के व्यक्तित्व का आदर करते थे और इन्हें बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते थे।

कारयित्री प्रतिमा

पण्डित लक्ष्मण शास्त्रीजी की बुद्धि बड़ी तीव्र थी। ये केवल संस्कृत के पण्डित न होकर अंग्रेजी में निबद्ध आधुनिक विषयों के भी ज्ञाता थे। इनका व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली था। जो कोई इन्हें देखता वह इनके व्यक्तित्व से अभिभूत हुए बिना नहीं रहता था। ये नियम के बड़े पक्के थे। सबसे विशेष बात यह थी कि ये सरस सुबोध कविता के प्रणेता के रूप में सर्वत्र लब्धकीर्ति थे। इनका कवि-हृदय अंग्रेजी साहित्य के नवीन सुन्दर नाटकों तथा काव्यों से प्रभावित होकर उन्हें संस्कृत के मनोरम विग्रह में निबद्ध करने का अभ्यासी था। इन्हें शेक्सपीयर के नाटकों में बड़ी अभिरुचि थी। इसलिए उनके नाटकों की कथाओं का रोचक वर्णन इन्होंने अपनी प्रसादमयी शैली में किया है। ये नाट्य कथाएँ रोचक होने के अतिरिक्त छात्रों के लिए भी विशेष उपयोगी हैं—संस्कृत भाषा में सुचारु प्रवेश करने के लिए। इन कथाओं का संग्रह पुस्तक के रूप में यदि उपलब्ध हो, तो काव्यरसिकों का तथा छात्रों का विशेष उपकार होगा। 'मर्चेण्ट आफ वेनिस' (वेनिस का सौदागर) नामक प्रख्यात शेक्सपीयर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की नाट्यकथा शास्त्रीजी द्वारा 'वेतस्वती सार्थवाहः'[1] के नाम से प्रकाशित हुई है।

इसी प्रकार 'हेमन्तकुमारः' नाम से शेक्सपीयर के दूसरे प्रख्यात रूपक 'हैमलेट' का कथासार बड़ी रोचक भाषा में शास्त्रीजी ने प्रस्तुत किया है जो संस्कृत की प्रख्यात पत्रिका 'अमरभारती' में प्रकाशित हुआ था। इन दोनों कथासारों के लिए लक्ष्मण शास्त्रीजी ने जयन्तभट्ट के 'कादम्बरी कथासार' को अपना आदर्श माना है। 'कादम्बरी कथासार' अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध है जिसके सौन्दर्य तथा रुचिरता की प्रशंसा क्षेमेन्द्र ने अपने विश्रुत छन्दोग्रन्थ 'सुवृत्ततिलक' में की है। एक-दो उदाहरणों के द्वारा कथानक की स्पष्टता तथा प्रवाहशीलता का परिचय प्राप्त किया जा सकता है—

अगलद्बिन्दुमात्रासृगर्धशाटकमात्रकम् ।
अन्यूनानतिरिक्तं भोस्त्वया मांसं विकृत्यताम् ॥१३५॥
प्रमाणपत्र एतस्मिन्नुपन्यस्तं न लोहितम् ।
मांसस्य केवलमतोऽधिकारस्तेऽवकर्तने ॥१३६॥
असृजो बिन्दुमात्रं चेत् पातयिष्यसि, तत् स्मर
सकला तव सम्पत्तिः सद्यो राजस्वतामियात् ॥१३७॥
(वेतस्वती सार्थवाहः)
मद्बन्धुरेव पापात्मा मां राज्येन प्रियासुभिः ।
भार्यया, प्रीतिपात्रेण त्वया चासौ व्ययोजयत् ॥४०॥
यदि हेमन्त ! सत्यं त्वमात्मजोऽसि ममाश्रवः ।
वैरनिर्यातनविधौ मा स्म भूः शिथिलोद्यमः ॥४१॥
धिक् तां त्वन्मातरं या हि विस्मृत्य प्रणयं मम ।
पापात्मनि पितृव्ये ते समासक्ता न लज्जते ॥४२॥ (हेमन्तकुमारः)

प्रकृति के दृश्यों के निरीक्षण में शास्त्रीजी की दृष्टि बड़ी पैनी है। 'उपशल्य-शंसनम्' नामक १५ पद्यात्मक कविता में नगर के परिसर में विद्यमान ग्रामीण जनों का जीवन बड़ी स्वाभाविकता तथा सरसता से चित्रित किया गया है। इनकी सहानुभूति उन निर्धन किसानों के साथ उमड़ पड़ती है जब वे दीन-हीन दशा में, बिना आवरण तथा वसन के, रात में ठिठुरते हुए तथा ग्रीष्म ऋतु की धूप में जलते हुए अपना जीवन बिताते हैं—

दिनेषु तरुणारुणानणुमयूखपातस्रव-
ज्जलाविलकलेवरान् कृषिकरान् विलीनानिव ।
विलोक्य निशि शैशिरानिलहतीद्धकम्पाकुलान्
न कस्य खलु मानसं भुवि सचेतसो दूयते ? ॥

किसानों के लगुडधारी, भेड़-बकरी चराने वाले बालकों के स्वभाव का यह चित्रण कितना भावावर्जक है—

१. वल्लरी पत्रिका के प्रथम वर्ष की चतुर्थ तथा पंचम संख्या में प्रकाशित हुआ है (१९९२ वि० सं० में)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इमे कृषकदारकाः परिगृहीतपाथेयकाः
करात्तलगुडा मुहुर्मधुरगीतगाने रताः ।
अजाविपरिचारणे प्रतिदिनं समायोजिताः
कमप्यतिशयं मुदामनुभवन्त्यचिन्तालवम् ॥

पानी में धान की रोपनी करने वाली किसान की स्त्रियों का यह वर्णन कितना मनोहारी है—

अमूः कृषकयोषितः कलमरोपणाऽनारत-
प्रसङ्गसलिलान्तरस्थितिविकारि-पादद्वयाः ।
स्तनन्धयशिशून् क्वचित् परिनिपीतनेमस्तनान्
विधाय निजकर्मणि प्रसितविग्रहा लोकय ॥

गरीबी मिटाने के लिए भगवान् से प्रार्थना करने वाले कवि के हृदय में सहानुभूति का कितना पीयूष प्रवाहित हो रहा है; यह देखने ही योग्य है—

कियच्चिरमियं प्रभो ! भुवि कृषीवलानां दशा
दयामय ! भयाविला वद मुकुन्द ! सह्या त्वया ।
इमाननितराश्रितान् सकलकामसंपूरणै-
र्विलोकय कृतक्षणैरकृपणैर्दृशां वीक्षणैः ॥

'मर्त्येषु भेदः कियान्[1] ?' शीर्षक कविता में यमराज के द्वारा उच्च धनाढ्य तथा नीच निर्धन जनों की अन्तकाल में समता कर दिये जाने पर मानवों में कितना भेद माना जाय । इस विषय के पोषक दश पद्यों की रचना नितान्त आवर्जक है । एक-दो पद्यों की भावना देखिए—

केचित् काव्यकलाविलासविलसत्-सद्गद्यपद्यावली-
सारोल्लासि-रसप्रसारविलसत्-स्वात्मैकरामान्तराः ।
जानन्तीह परान् हि नीरसतया काष्ठाश्मकुड्यायितान्
नीतेष्वन्तकसात्कृतेषु समतां मर्त्येषु भेदः कियान् ॥

अतएव मानवों का यह कर्तव्य होता है कि वे पारस्परिक राग-विद्वेष को भुला कर तथा अभिमान से शून्य होकर भगवान् श्रीपति के चरणों में अपने जीवन को समर्पित कर दें :—

सम्पच्छक्ति-मनोज्ञताऽऽगमकला-स्वास्थ्याधिकारोन्नति-
प्राग्भारायितविक्रमादि-सुलभं हित्वाऽवलेपं जनाः ।
श्रीमच्छ्रीपतिपादपङ्कजयुगं संश्रीयतां श्रेयसे
नीतेष्वन्तकसात्-कृतेषु समतां मर्त्येषु भेदः कियान् ॥

---

१. ये दोनों कविताएँ काशी से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका वल्लरी के प्रथम गुच्छक (१९९२ वि० सं०) के प्रसून षष्ठ तथा तृतीय में क्रमशः प्रकाशित हुई हैं ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित लक्ष्मण शास्त्रीजी सरस गद्य की रचना में भी नितान्त चतुर थे। इनका प्रतिभा-सम्पन्न कविहृदय गद्य-पद्य उभय विधाओं की रचना में समभावेन अभिरुचि रखता था और दोनों में चमत्कारक निर्माण की क्षमता उनमें आलोचकों को आकृष्ट करती थी। इन्होंने सपरिवार जगन्नाथपुरी की यात्रा की थी। उसका सरस वर्णन इन्होंने 'श्रीजगदीश यात्रा'[1] में किया है। यह वर्णन भी नितान्त रुचिर, आह्लादक तथा प्रतिभामण्डित है। इस विवरण के अन्त में इन्होंने जगदीश से जो गीतिमयी प्रार्थना की है उसकी रुचिरता सहृदय-संवेद्य है—

जगदीश ! विगतसारे संसारेऽस्मिन्नसीमविस्तारे।
सारो निस्तारसूतिस्तव पदमहिमा गिरां पारे॥
अयि देव ! दीनबन्धो ! करुणासिन्धो ! शरण्य जगदीश।
शरणीकरोमि मसृणौ तव चरणौ दुरित-राशि-नाशचणौ॥
अनुदिनमवनीतलगत-मानस-शारीर-कष्टतति-जुष्टम्।
संसारसागरतरे ! तारय मां तावकाङ्घ्रिशरणमितम्॥

इस प्रकार अपने पूज्य पितृचरण नरसिंह शास्त्रीजी तथा भ्रातृचरण गङ्गाधर शास्त्रीजी के द्वारा प्रवर्तित सूक्तिमार्ग का अनुसरण कर महामहोपाध्याय लक्ष्मण शास्त्रीजी ने जिस काव्यामृत को प्रवाहित किया, वह रसिकजनों के चित्त का सद्यः आवर्जक तथा जीवन-रसदायक है।

इस प्रकार अध्ययन और अध्यापन, पठन और पाठन, पूजा तथा अर्चा में अपना दिन बिताते हुए महामहोपाध्याय लक्ष्मण शास्त्री तैलंगजी विक्रम सं० २००६ (१९४९ ई०) में चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के दिन (अर्थात् वर्ष के आरम्भ के दिन ही) दिवंगत हुए। उस समय इनकी आयु ६६ वर्ष की थी। इन्होंने अनेक शिष्यों को तैयार किया था। अध्यापन में कोई भेदभाव नहीं रखते थे, विद्यार्थी के लिए विद्याभ्यास की निष्ठा ही इनके शिष्य होने की योग्यता थी। महाराष्ट्र तथा सरयूपारीण ब्राह्मण कुल के विद्यार्थी इनके छात्र हैं। इन छात्रों में जगन्नाथ शास्त्री होशिंग अनन्तराम शास्त्री वेताल आदि महाराष्ट्रीय शिष्यों के संग सरयूपारीण पण्डित बटुकनाथ शर्मा भी समभावेन इनके अनन्य भक्त शिष्य थे। इनके निधन के अनन्तर अनन्तराम शास्त्री की लिखी कविता में इनके प्रति महती श्रद्धा प्रदर्शित की गई है। इस पुष्पाञ्जलि के कुछ पद्य इस प्रकार हैं—

यदुपघ्नतरोर्विनाशतो दुरदृष्टेन पुनः प्रकल्पितात्।
कवितालतिका निराश्रया कमुपेयादधुना समाश्रयम्॥
सदुपाधि'महामहादिताभूदुपाध्याय'पदं प्रपेदिवान्।
अहहाऽऽन्ध्रकवीन्द्रपुङ्गवः क्व गतो हन्त ! हता कवीन्द्रता॥

---

१. 'अमरभारती' कार्यालय से पुस्तिका रूप में प्रकाशित, १९३५ ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलिकाल ! खलोऽसि दुष्टधीर्यदिदानीं मृदुमिष्टभाषिणम् ।
कवितार्किकचक्रवर्तिनं कवलीकृत्य न नाम लज्जसे ॥
गुरुदैवतजीवितान्तकृत् 'शुभकृद्'वर्षगमादिमं दिनम् ।
बत जातमहो ! विधिर्बली'त्यवशत्वादिह जोषमास्यते ॥

तैलंगजी के पट्ट शिष्य

पण्डित बटुकनाथ शर्मा

(आस्पद—मिश्र; उपाधि—रसिकसुधानिधि)

पं० बटुकनाथ शर्मा संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इनका समस्त जीवन ही साहित्यमय था। उठते-बैठते, सोते-जागते आपका जीवन साहित्य के चिन्तन में ही सदा व्यतीत होता था। सन्ध्या के समय आपके 'कालभैरव' के पास वाले निवास-स्थान पर सहृदय रसिकों की जो मधुर गोष्ठी जुटती थी, उसके संबंध में कुछ लिखना व्यर्थ है। इस गोष्ठी में साहित्य के विभिन्न रसों—विशेषकर शृङ्गार और हास्य—के जो फौवारे छूटते थे उनसे सभी श्रोतागण रससिक्त हो जाते थे। यह सुहृद्गोष्ठी वास्तव में साहित्यगोष्ठी होती थी जिसमें संस्कृत तथा हिन्दी के मर्मज्ञ कवियों के सरस काव्यों का पाठ होता तथा अन्तरंग विवेचन किया जाता था। शर्माजी एकान्त सरस जीव थे जिनका समस्त जीवन संस्कृत साहित्य की सेवा तथा सुरभारती की साधना में समर्पित था।

पं० बटुकनाथ शर्माजी का जन्म काशी में सन् १८९५ ई० में हुआ और इनका निधन काशी में ही सन् १९४४ ई० में हुआ। इस प्रकार इन्होंने केवल ४९ वर्ष की अल्प आयु में ही अपनी ऐहिक लीला समाप्त कर दी। इनकी इस अल्पकालिक तथा असामयिक मृत्यु से संस्कृत साहित्य की जो अपूरणीय क्षति हुई उसका वर्णन करना कठिन है।

शर्माजी के पूर्वपुरुष गोरखपुर मण्डल से कभी मध्यप्रदेश के नागोद रियासत में गये और अपनी आध्यात्मिक साधना तथा पाण्डित्य के बल पर रियासत के राजासाहब के गुरु हो गये। देवता तथा राजा की स्तुति में कविता की सद्यः रचना कर देना इनके बायें हाथ का खेल था। इनके पितामह काशी आये और यहीं निवास करने लगे। उनके चार पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र का नाम था **ईश्वरीप्रसाद मिश्र** जो बटुकनाथजी के पूज्य पिता थे। ईश्वरीप्रसादजी विद्वान् होने की अपेक्षा साधक अधिक थे। वे भगवती त्रिपुरासुन्दरी के उपासक थे। अपने बंगाली गुरु से उन्होंने तान्त्रिक दीक्षा ली थी और उनके ही साथ भगवती कामाख्या की पूजा-अर्चा के लिए कामरूप आसाम में भी अनेक वर्षों तक निवास किया था। इनके पिता के अनेक तान्त्रिक चमत्कारों की कहानी सुनी जाती है। वे काशी से नागोद रियासत के राजा के पास अपने पूर्वजों की भू-सम्पत्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से गये। राजासाहब तो अनुकूल थे, परन्तु उनके दीवान साहब (जो सम्बन्ध में उन्हीं के चाचा लगते थे) ने अपनी प्रतिकूल सम्मति देकर वह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भू-सम्पत्ति देने से इनकार कर दिया। सुनते हैं, उसी रात में उन्हें अकस्मात् हैजे का प्रकोप हुआ और सुबह होते-होते वे परलोक सिधार गये। तदनन्तर राजा ने इनकी सद्यः फलदायिका साधना के आतंक से आतंकित होकर पुरानी सम्पत्ति लौटा दी और इन्हें अपना राजगुरु बना लिया। फलतः इनके पिताजी नागोद (मध्य प्रदेश) में रहते थे। परन्तु बटुकनाथजी की विदुषी माता अपने बालक की शिक्षा-दीक्षा के लिए उस जंगली रियासत का वातावरण नितान्त प्रतिकूल जान कर काशी छोड़ कर कभी वहाँ गयीं ही नहीं।

पण्डित बटुकनाथ शर्मा का अध्ययन-अध्यापन काशी में ही हुआ। हिन्दू स्कूल के ये पुराने छात्र थे और हिन्दू विश्वविद्यालय के एम० ए० विषय के प्रथम स्नातक थे। हिन्दू कालेज में संस्कृत महाविद्यालय के तत्कालीन प्राचार्य महामहोपाध्याय पण्डित रामावतार शर्माजी के ये अनन्य भक्त तथा निश्छल छात्र थे जिसके ऊपर गुरु की नैसर्गिक कृपा की वर्षा सदा होती रही। इसी से वे पहिले संस्कृत महाविद्यालय के और अनन्तर आर्ट्स कालेज के संस्कृत विभाग के अध्यापक बन गये। उन्नति के अनेक अवसर आये, परन्तु अध्यापनशील बटुकनाथजी ने कभी भी प्रशासनिक प्रिंसिपल के पद को नहीं स्वीकारा। ये संस्कृत विभाग के अध्यक्ष का कार्य भी करते रहे, परन्तु इनके मनस्वी जीवन का सर्वोदात्त कार्य था—संस्कृत साहित्य का अध्यापन।

"श्लिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था,
संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां,
धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव॥

(मा०, अ० १।१६)

कालिदास के इस पद्य में चित्रित सफल अध्यापक की ये जीवन्त मूर्ति थे, क्योंकि इनमें दोनों बातें थीं—आत्मनिष्ठ वैदुष्य एवं छात्रों में विशिष्ट ज्ञान की संक्रान्ति।

महाकवि भवभूति पं० बटुकनाथजी के परमप्रिय कवि थे। ये प्रतिवर्ष बी० ए० अथवा एम० ए० की कक्षाओं में भवभूति के उत्तररामचरित को ही पढ़ाया करते थे। ये कहा करते थे कि जितनी बार मैं इसे पढ़ाता हूँ उतनी ही बार मुझे इसमें नवीन अर्थ की स्फूर्ति होती है। ये भवभूति के निम्नलिखित श्लोक की व्याख्या बड़े ही प्रेम तथा तन्मयता से किया करते थे :—

"अकिंचिदपि कुर्वाणः, सौख्यैर्दुःखान्यपोहति।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं, यो हि यस्य प्रियो जनः॥"

इस श्लोक में 'किमपि द्रव्यं' शब्दों की ये विशेष रूप से व्याख्या करते थे। इसी प्रकार राम की इस उक्ति की—

"स्नेहं, दयां च, सौख्यं च, यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य, मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्त श्लोक में 'जानकीमपि' में 'अपि' शब्द पर कवि का जो बल है, जो अभिप्राय है, उसे वह बहुत मार्मिक रीति से स्पष्ट करते थे। ये संस्कृतज्ञों के विषय में यह कहा करते थे कि संस्कृत तो बहुतों ने पढ़ी होगी परन्तु उसके मर्म को कोई-कोई ही जान सकता है। इस सम्बन्ध में ये महाकवि मुरारि का यह श्लोक उद्धृत किया करते थे कि राम की वानरी सेना ने नल-नील के द्वारा बाँधे गये पुल से समुद्र को तो अवश्य पार कर लिया, परन्तु उस सागर की गहराई को वही मन्दराचल जानता है जो उसमें 'आपातालनिमग्न' है। मुरारि का प्रसिद्ध श्लोक है :

अब्धिर्लङ्घित एव वानरभटैः किन्त्वस्य गम्भीरताम्,
आपातालनिमग्नपीवरतनुः जानाति मन्थाचलः ॥

निष्कर्ष यह है कि संस्कृत पढ़ना तो आसान है परन्तु साहित्य के मर्म को जानना अत्यन्त कठिन तथा दुष्कर व्यापार है। पण्डित बटुकनाथ शर्मा साहित्य के ऐसे ही गम्भीर मर्मज्ञ थे।

ग्रन्थ-रचना

पण्डित बटुकनाथ शर्मा अपने जीवन के अन्तिम अनेक वर्षों में साहित्य साधना की अपेक्षा यौगिक-क्रियाओं की सिद्धि के सम्पादन में अधिक तल्लीन हो गये थे। प्रतिदिन घंटों पूजा-पाठ तथा यौगिक साधना—ध्यान, धारणा और समाधि—में निरत रहना इनकी दैनिक चर्या का एक अंग हो गया था। इसी कारण संस्कृत के गम्भीर तथा तल-स्पर्शी विद्वान् होते हुए भी इन्होंने ग्रन्थ रचना की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। यदि ये चाहते तो अनेक मौलिक ग्रन्थों का निर्माण कर सकते थे लेकिन आध्यात्मिक साधना में निमग्न होने के कारण ये यदा उसकी उपेक्षा करते रहे। अत एव किसी मौलिक ग्रन्थ के रूप में हमें इनकी प्रतिभा का प्रसाद प्राप्त नहीं है। इन्होंने अपने अभिन्न मित्र आचार्य बलदेव उपाध्याय के साथ कुछ ग्रन्थों का सम्पादन अवश्य किया है जिनका उल्लेख नीचे किया जा रहा है :—

(१) **पालि जातकावलि**—इसमें कतिपय प्रसिद्ध जातकों का संग्रह कर उनका संस्कृत तथा हिन्दी मे अनुवाद भी किया गया है।

(२) **भामह काव्यालंकार**—(आचार्य बलदेव उपाध्याय के साथ अंग्रेजी भूमिका सहित सम्पादित)।

(३) **वररुचिकृत प्राकृतप्रकाश**—आचार्य बलदेव उपाध्याय के साथ दो अलभ्य तथा अप्रकाशित टीकाओं के साथ सम्पादित।

(४) **रसिक गोविन्द और उनकी कविता**—उपाध्यायजी के साथ सम्पादित ग्रन्थ।

(५) **भरतनाट्यशास्त्र**—विमर्शात्मक सुलभ संस्करण।

पण्डित बटुकनाथ शर्मा बालब्रह्मचारी थे। बाल्यकाल से अत्यन्त निर्धनता तथा घोर अभाव में अपने दिनों को बिताने वाले शर्मा जी विवाह की बात सोच ही नहीं सकते थे। आगे चलकर हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राध्यापक पद पर नियुक्त होने पर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनकी आर्थिक दशा सुधर गई, परन्तु इन्होंने एक बार अविवाहित रहने का जो निर्णय कर लिया था, उससे ये टस से मस नहीं हुए। अपनी पूजनीया माता जी को इन्होंने अपने जीवन के लक्ष्य तथा उद्देश्य की बात विधिवत् समझाई, तब उन्होंने भी कोई आग्रह नहीं किया और ये अपने अध्ययन-अध्यापन में, पूजा-पाठ में, अध्यात्म के चिन्तन तथा परिशीलन में बड़ी निष्ठा से लगे रहे। ये साहित्य शास्त्र के आचार्य ही न थे, प्रत्युत सरस-सुपेशल कविता के रचयिता प्रतिभाशाली कवि भी थे। ये अपने को द्विकर्मा ब्राह्मण मानते थे जिसका पूरा कार्य अध्ययन और अध्यापन में ही सीमित रहता है। काव्य कला की उपासना को ये आध्यात्मिक दृष्टि से देखते थे। ये उसे साधना की सिद्धि के लिए एक समुचित माध्यम मानते थे जिससे साधक का चित्त इधर-उधर के जटिल प्रपंचों तथा संघर्षों से हटकर अपने इष्ट देवता के चिन्तन में अनायास ही एकाग्र हो जाता है तथा अलौकिक आनन्द की सद्यः अनुभूति करने लगता है। ये काव्यसाधना को भौतिक जगत् से ऊपर उठाकर आध्यात्मिक जगत् में प्रतिष्ठित करने के पक्षधर थे। इसीलिए ये प्रतिदिन कार्यारम्भ करने से पहले आठ-दस सुन्दर स्तुतिमय पद्यों की रचना अवश्य कर लेते थे। यह इनका दैनिक नियम था। संगीत के ये बड़े प्रेमी थे। सितार बजाने की कला स्वयं अपने अभ्यास से ही बिना किसी गुरु के, इन्होंने अर्जित की थी। भगवान् को रिझाने के लिए तथा अपने मनोविनोद के लिए ये सितार बजाया करते थे। गीतिकाव्य के प्रणयन में इनकी स्वाभाविक रुचि थी। रूपक-विशेषकर प्रहसन तथा व्यङ्ग्य-की रचना में इनकी अभिरुचि नैसर्गिक थी। इन्होंने अनेक लघु काव्यों की रचना की है जो समय-समय पर संस्कृत की मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते थे।

'वल्लरी' नामक मासिक संस्कृत पत्रिका में इनका 'पाण्डित्य ताण्डवितम्' नामक तीन अंकों में समाप्त प्रहसन प्रकाशित हुआ था। उसी से इनकी कविता के कतिपय पद्य तथा गायन यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं[1]—

कविर्नाहं कश्चित् परिचितचिदानन्दनिचयो
न चाहं वा वाचां पतिरमृतभाजां रसमुचाम्।
तथापि स्वान्तं मे प्रभवति न हातुं पदयुगं
सरस्वत्याः स्वैरोल्लसदमलचन्द्रद्युतिभृतः॥

दम्भ की साक्षात् मूर्ति दण्डधर नामक पण्डित का यह स्वरूप-वर्णन कितना सुन्दर तथा आकर्षक है—

धूमोद्गारोदरदरलसज्ज्वालनीलानलाभं
रक्तोष्णीषं दधदतिबृहत् लोललम्बाम्बरोऽयम्।
हस्तन्यस्तं पृथुललगुडं चालयन्नैति दर्पात्
दम्भारम्भः सकपटबटुः कूटकोटौ पटीयान्॥

---

१. काशी से प्रकाशित संस्कृत मासिक पत्रिका, सं० १९९२ प्रथम गुच्छक, तृतीय प्रसून, पृ० ६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैरागी वैष्णवों का यह सामूहिक गायन कितना सरल-सरस है—

याति याति याति रे वृथैव जीवनम् । (ध्रुवपद)
रामयाऽभिरामया निकाम-काम-कामया
विपोषितं विशोषितं विनाशि यौवनम् ॥
गतिर्गता मतिर्गताऽऽगता न ते विरागिता
जनेन येन वञ्चितोऽसि यासि तं जनम् ॥
मनोऽपि नो तनोति ते प्रशान्ति-शान्तरागिते
तथापि मूढ ! मोहतो न यासि निर्जनं वनम् ॥
हरे ! हरे ! हरे ! हरे ! हरिर्न चेन्मुखेऽपि ते
किमर्थमागतोऽसि रे जगद्वनं सुभीषणम् ॥ याति याति.....

वर्तमान दशा का निदर्शन छात्रों के इस समवेत गायन में कितनी सुन्दरता से किया गया है—

सन्तीह नाथ ! के ते ये ते पदं विशन्ति
सर्वे तमोविमोहात् तामिन्दिरामुशन्ति ॥ १ ॥
वेदान्ततत्त्वमुच्चैः केचिद् वदन्ति ये ते
तेऽपि स्मरन्ति न त्वा तामिन्दिरामुशन्ति ॥ २ ॥
युञ्जन्ति येऽपि योगं भोगं च भुञ्जते ये
भेदः क्व एषु सर्वे तामिन्दिरामुशन्ति ॥ ३ ॥
हे नाथ ! हे दयालो ! रक्षाधुना तथा नः
हृद्वृत्तयो यथा नो तामिन्दिरामुशन्ति ॥ ४ ॥

'साहित्यसैरिभ' नामक पात्र एक विशुद्ध वैयाकरण का उपहास कितने व्यंग्य शब्दों कर रहा है। वह उस 'कैयट कैरव' नामक वैयाकरण को उलूक पक्षी की समता देकर कितनी कटु आलोचना कर रहा है—

सखे अपूर्वोऽयं पक्षी ।
काकैर्मा कलहायतामिति स्वान्तं न तान्तं भवेत्
सत्साहित्यजुषां खरैः कटुरवैरस्येति तूर्णं सखे ।
गेहं स्वं नय तत्र पञ्जरगतस्त्वद्गेहिनी-स्नेहभाक्
सौख्यं तण्डुलचूर्णभक्षणकृतं दीर्घायुरभ्यस्यतु ॥

धन के लोभी पण्डितों को यह उपदेश कितना समयोचित है—

अयि पण्डित ! कुरु शान्तं स्वं स्वान्तम् । (ध्रु०)
उपदिशसि परं दिशि दिशि
शेषे स्वयमपि निशि निशि
लभसे किमपि न कान्तम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोलाहलमपि कुरुषे
वितरसि निजमतिममितरुषे
भजसे किमपि न शान्तम्।
अयि पण्डित कुरु शान्तं स्वं स्वान्तम् ॥

समीक्षक रूप

यह तो है पण्डित बटुकनाथ जी की कारयित्री प्रतिभा का कतिपय निदर्शन। अब उनकी भावयित्री प्रतिभा के भव्य रूप का दर्शन करें। ये बड़े ही सफल अध्यापक थे। अपनी स्वाभाविक सरसता के कारण ये किसी भी कवि के अन्तस्तल तक पहुँच कर उसकी भावभंगी समझने में जितने दक्ष थे, उतने ही दक्ष थे उसके गुणों का विश्लेषण कर छात्रों तक अपनी भावना को संक्रान्त करने में। वैसे तो संस्कृत साहित्य के मान्य कवियों की कविता से इन्हें प्रेम था ही, परन्तु महाकवि भवभूति की काव्यकला पर तो ये अपने आपको न्यौछावर कर बैठे थे—विशेषकर उनकी नाट्यकृति 'उत्तर-रामचरित' पर। ये कहा करते थे कि जितनी बार मैं उत्तर रामचरित पढ़ता-पढ़ाता हूँ, उतनी ही बार मुझे उसमें नवीन अर्थ की स्फूर्ति होती है, नये-नये भावों का स्फुरण होता है और नूतन चमत्कार की झलक दीख पड़ती है। उत्तरचरित बी. ए. के संस्कृत का पाठ्यग्रन्थ था और प्रतिवर्ष ये ही उसे पढ़ाते थे। इस पर इनका इतना आग्रह था कि ये एम. ए. कक्षा का अध्यापन बन्द कर देने के लिए राजी थे, परन्तु 'उत्तररामचरित' छोड़ने के लिए कथमपि तैयार न थे। ये इतनी तन्मयता से इसका अध्यापन करते थे कि पढ़ाते-पढ़ाते अपने को ही भूल जाया करते थे, घड़ी-घण्टा भूलने की तो बात ही न्यारी है।

पं० बटुकनाथजी भवभूति को एक ऐसा अलौकिक दार्शनिक कवि मानते थे जो विषम परिस्थिति के आघात से प्रताड़ित होने पर भी अपने आध्यात्मिक उद्देश्य से कथमपि विचलित नहीं होता था, जिसकी प्रेमकल्पना भौतिकता की चहारदीवारी से बाहर निकल कर आध्यात्मिकता के स्वर्ग तक पहुँच गई थी और जो अपने समसामयिक दरबारी कवियों तथा विलासी नरपतियों के द्वारा तिरस्कृत होने पर भी अपनी कविता की गम्भीरता के परीक्षण के लिए किसी 'समानधर्मा' कवि के उत्पन्न होने की बाट जोहता था—

उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा,
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥

शर्मा जी अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य के भी विशेष ज्ञाता तथा गाढ़ अनुरागी थे। वर्ड्सवर्थ तथा शेली की अपेक्षा ये टेनिसन की आध्यात्मिक कविता के बड़े ही पारखी तथा प्रशंसक थे। 'इन मेमोरियम' को ये टेनिसन की सुन्दरतम काव्यकृति मानते थे और बड़े ही मधुर स्वर में ये इसके इस पद्य का पाठ करते थे—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Our little systems have their day,
They have their day and cease to be;
They are but broken lights of Thee
And Thou, O Lord, art more than they.

रसिक रूप

ब्रजभाषा तथा उर्दू कविता के भी ये रसिक थे और नाना भाषाओं के महनीय काव्य एवं दार्शनिक ग्रन्थों से परिपूर्ण इनका निजी पुस्तकालय भी नितान्त दर्शनीय था। भारतेन्दु जी की कविता के ये मार्मिक पाठक थे। 'रसा' उपनाम से रचित हरिश्चन्द्र की उर्दू कविता की ओर इस साहित्यिक व्यक्ति का रुझान होना स्वाभाविक ही था—

"न होते जल्वागर तुम तो
य गिरिजा कब का गिर जाता।
नसारा को भी तो आखिर
तुम्हारा ही सहारा है॥

बंगला कविता के भी ये मञ्जुल प्रेमी थे। बंगला भाषा से इनका परिचय बाल्यकाल से ही था, क्योंकि इनके तान्त्रिक पिता के दीक्षा-गुरु एक बंगीय कामाख्या-निवासी तान्त्रिक ही थे और इस प्रकार इनके घर में बंगला का प्रवेश इनके बाल्य-काल से ही था। रवीन्द्र तथा डी. एल. राय इनकी रुचि के बंगला कवि थे। रवि बाबू की 'गीताञ्जलि' को ये स्तोत्र ग्रन्थ की श्रेणी में मानते थे।

बंगभाषा के लोकप्रिय नाटककार डी० एल० राय (द्विजेन्द्रलाल राय) अपने देश-प्रेम से स्निग्ध नाटकों के लिए नितान्त प्रख्यात हैं, परन्तु व्यंग्य कविता लिखने में भी वे समर्थ तथा सफल कवि थे। शर्माजी इनकी व्यंग्य कविता के बड़े रसिक प्रशंसक थे। डी० एल० राय स्वयं विलायत पढ़ने गये थे, परन्तु वहाँ से लौटने पर देशसेवा या समाज सेवा के लिए केवल बकवास करने वाले अर्ध-नास्तिक बंगाली विद्वानों की वे खिल्ली खूब उड़ाया करते थे। उनकी एक विख्यात कविता है—'बिलात फेरता भाई' = 'बिलायत से फिरने वाला भाई"। इन बंगाली भाइयों की 'खिचड़ी संस्कृति', आधा हिन्दुस्तानी और आधा विलायती आचार-विचार, का बड़ा ही सुन्दर चित्रण इस कविता में किया गया है जिसमें बंगला तथा अँग्रेजी का विचित्र मिश्रण है। शर्माजी इस कविता के बड़े ही प्रेमी थे। इसके दो पद्यों को बानगी के तौर पर प्रस्तुत किया जा रहा है—

एबाउट फीमेल एजूकेशन ऐण्ड वीमेन्स इमैनसिपेशन
आमादेर खूब इनलाइटेन्ड व्यूज़।
किन्तु व्यूज़ मते काज करि इफ यू थिंक
तो होलो तुमि ऐन आफुल गूज़॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशय है – स्त्री शिक्षा तथा महिला स्वतंत्रता के विषय में हैं हमारे खूब नई रोशनी से उजागर विचार। किन्तु विचारों के समान हम लोग काज करते हैं, अगर तुम ऐसा सोचते हो, तो तुम एक डरावने उल्लू के पट्ठे हो !!!

दूसरा पद्य देखिए विलायत फिरता भाई अपनी विद्या का परिचय दे रहा है—

मोटा तकिया दिया ठेस
आमरा स्वाधीन करी देश।
आमरा ए क्यूरियस एमलगम
आफ शशधर हक्स्ले ऐण्ड गूज़ ॥[1]

भाई हो हमारा परिचय सुनिए। मोटे तकिया का सहारा लेकर हम आराम कुर्सी पर बैठते हैं तथा स्वदेश स्वाधीन बनाते हैं (केवल लम्बी-चौड़ी बातचीत करना ही हमारा धर्म है; हम कुछ करते नहीं सिवाय बकवास के)। हम लोग हैं एक विलक्षण मिश्रण शशधर के (शशधर तर्कचूडामणि नामक प्रख्यात बंगाली पण्डित के जो सनातन धर्म की वैज्ञानिक व्याख्या किया करते थे और जिन्हें नये बंगाली बाबू बड़े प्रेम से सुनते थे); हक्सले (प्रसिद्ध विलायती नास्तिक) के तथा उल्लू के पट्ठे के।

कैसा सुन्दर चित्रण है भव्य नव्य बंगाली बाबुओं का। ऐसी मनोरम व्यंग्यात्मक कविता के रसिक पण्डित बटुकनाथजी रविबाबू के भी निष्ठावान् उपासक थे। गीताञ्जलि के पद्यों को ये गंगाजी की धारा में बहने वाली नाव पर बैठकर सुन्दर स्वर में गाते नहीं अघाते थे। उन्हीं में यह स्फूर्तिदायिनी अभिराम कविता भी है जो इस प्रकार है—

जीवन जखन सुखाये जाय
करुणा धाराय एशो।
सकल माधुरी हाराये जाय
गीत सुधा रसे एशो।
आपनारे जब करिया कृपण
कोने पड़े थाके दीन-हीन मन।

---

१. प्रथम कविता का अंग्रेजी रूप—

About female education and women's emancipation
आमादेर खूब enlightened views;
किन्तु views मते काज करी if you think
ता होलो तुमी an awful goose.

द्वितीय कविता का अंग्रेजी रूप अन्तिम दो चरणों का—

आमरा a curious amalgam
of शशधर, Huxley and Goose.

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुआर खुलिया हे उदार नाथ
राज समारोहे एशो।
ओहे अनिद्र ओहे पवित्र
रुद्र आलोके एशो।

ऐसे उदारचेता साहित्यिक के अन्तस्तल में प्रेम और करुणा की, शान्ति तथा दया की कितनी मधुर धारा बहती थी--इसका अनुमान ही लगाया जा सकता है। ऐसा ही मधुर स्निग्ध जीवन था गीतगोविन्द के रसिक, बालब्रह्मचारी पण्डित बटुकनाथ शर्माजी का। निष्कर्ष यह है कि पं० बटुकनाथ शर्मा साहित्य रस में आकण्ठ-मग्न रसिक साहित्यिक थे। ये पं० रामावतारजी के प्रतिनिधि शिष्य थे जिनमें सरसता के साथ निर्भीकता, सुजनता के साथ आडम्बरहीनता तथा उदात्तता के साथ दम्भराहित्य अपने पूर्ण वैभव के साथ विराजमान थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२२

पण्डित दामोदरलाल गोस्वामी

(आस्पद– गोस्वामी, उपाधि—न्यायरत्न)

पं० दामोदर लाल गोस्वामी काशी की विद्वन्मण्डली में नितान्त लब्धवर्ण व्यक्ति थे। इनका व्यक्तित्व इतना मोहक था कि जो इन्हें देखता था वह इनके प्रति आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकता था। इनका शरीर बहुत ही भव्य, पुष्ट था तथा दर्शक के नेत्रों को बलात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेता था। रेशमी धोती, शरीर पर चमचमाता रेशमी कुर्ता, उसके ऊपर रेशमी दुपट्टा, ललाट पर माध्व सम्प्रदायानुसार केसर का काला तिलक—इन उपकरणों से सम्पन्न गौरवर्णाकृति गोस्वामीजी के भव्य व्यक्तित्व की सद्यः परिचायिका थी। इनके दर्शनमात्र से दर्शकों का सद्यः आकर्षण होता था। मुख से निकलने वाली कोमल कान्त पदावली के श्रवणमात्र से श्रोताओं का हृदय आप्यायित हो जाता था। गोस्वामीजी के व्यक्तित्व में एक विचित्र मोहकता थी—एक विचित्र आकर्षण शक्ति थी, इस विषय में दर्शकों के दो मत हो ही नहीं सकते।

ये वृन्दावन के निवासी थे। इनका कुटुम्ब अपनी अलौकिक विद्वत्ता तथा नैष्ठिक भक्तिमय आचरण के लिए नितान्त प्रख्यात था। इन्होंने स्वयं लिखा है कि इनके पूर्वपुरुष **गोपालभट्ट गोस्वामी** थे जिन्होंने भागवत सन्दर्भ जैसे विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ की रचना कर वृन्दावन की साधक-मण्डली में अपने गम्भीर वैदुष्य को प्रकटित किया था। गत शताब्दी में भी वह पाण्डित्य परम्परा इनके कुल में विद्यमान थी। इनके पारिवारिक पुस्तकालय का नाम 'मदन गोपाल पुस्तकालय' है जिसमें संस्कृत साहित्य के नाना विषयों के प्राचीन हस्तलेखों का अपूर्व संग्रह है। यह गोस्वामी वंश वृन्दावन में विद्वत्ता और साधना के बल पर बड़ी प्रतिष्ठा का अधिकारी है। उसी गोस्वामी वंश में इनका जन्म वृन्दावन में हुआ। पिता का नाम था– **गोस्वामी गोपीलाल महाराज** तथा पितृव्य का नाम था 'विद्याभूषण वनमाली लाल महाराज' जो माध्व सम्प्रदाय के विद्वान् आचार्य थे तथा संगीत विद्या के भी बड़े मर्मज्ञ तथा पारगामी माने जाते थे। वृन्दावन में ही रहकर दामोदरलालजी ने अपने पिता तथा चाचा से व्याकरण, साहित्य, संगीत तथा साम्प्रदायिक वैष्णव ग्रन्थों का विशेषकर अध्ययन किया तथा सुबुद्ध विद्वान् हो गये। गोस्वामीजी का जीवनकाल १८७५ ई० से १९४८ ई० तक था।

संस्कृत शास्त्रों की उच्च शिक्षा प्राप्त करने की अभिलाषा इन्हें काशीपुरी में खींच लाई। विद्वान् तो थे ही। इन्होंने अपने गुरु होने योग्य विद्वान् को खोजना प्रारम्भ किया। ये उस युग के प्रत्येक लब्धकीर्ति विद्वान् के पास जाकर उनकी अध्यापन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शैली का निरीक्षण करते, उनके शिष्यों की योग्यता को परखते और उनकी शास्त्रीय गम्भीरता तथा शास्त्रानुशीलन का सम्मिश्रण करते। इस समीक्षण-परीक्षण के अनन्तर इन्होंने महामहोपाध्याय पं० गंगाधर शास्त्री का अपने गुरु के रूप में वरण किया तथा उन्हीं से साहित्य तथा दर्शन के उच्चकोटि के ग्रन्थों का अध्ययन किया। उन्हें छोड़कर इन्हें किसी दूसरे गुरु के पास जाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। इनकी तीव्र अभिलाषा थी कि किसी नैयायिक गुरु से नव्यन्याय के अनुमान खण्ड का गम्भीर अध्ययन करूँ।

संयोगवश उन्हीं दिनों नवद्वीप के प्रसिद्ध नैयायिक राखालदास न्यायरत्न काशी में पधारे और उन्होंने सुयोग्य छात्रों को अनुमान खण्ड की शिक्षा देना आरम्भ किया। काशी आने के पूर्व ही वे नव्यन्याय के पूर्ण विद्वान् के रूप में अखिल भारतीय कीर्ति अर्जित कर चुके थे। उन्हें काशी में ही प्राप्त कर गोस्वामीजी ने उनसे अनुमान खण्ड का विधिवत् अध्ययन प्रारम्भ किया। राखालदास की शिक्षा से गोस्वामीजी पूर्णतया सन्तुष्ट तथा आप्यायित थे। परन्तु एक दुर्दैव के कारण इनका अध्ययन कार्य बन्द हो गया। इसी समय राखालदास जी का सुयोग्य ज्येष्ठ पुत्र अकस्मात् मर गया, जिससे वे इतने खिन्न हुए कि काशी का अध्यापन छोड़कर वे स्वदेश लौट गये। इस विघ्न से दुःखित होने पर भी गोस्वामीजी ने अपनी अभिलाषा नहीं छोड़ी। ये अनुमान खण्ड के अवशिष्ट अंशों को पढ़ने के लिए नवद्वीप पहुँचे। उस समय वहाँ के सबसे बड़े नैयायिक थे—**यदुनाथ न्याय-सार्वभौम**—उन्हीं से इन्होंने अनुमान खण्ड का गम्भीर अध्ययन किया तथा सफलतापूर्वक अध्ययन किया। ये ६ वर्ष तक लगातार अध्ययन करते ही रहे। नव्यन्याय में अलौकिक पाण्डित्य का सम्पादन कर ये काशी लौट आये। काशी के पण्डितों ने इनका बड़ा स्वागत किया। इस अध्ययन से नव्यन्याय गोस्वामीजी पर इतना छा गया कि ये साहित्यिक होने की अपेक्षा विद्वानों की दृष्टि में नैयायिक होने की प्रतिष्ठा से मण्डित हो गये। काशी में ही उस समय पण्डित उदितनारायण मिश्र नामक एक बड़े विद्वान् ज्योतिषी रहते थे। ज्योतिष में इतनी उनकी पैठ थी और फलित तथा गणित दोनों में उनका पाण्डित्य इतना अधिक था कि वे ज्योतिष के प्राचीन आचार्यों के समकक्ष माने जाते थे। उन्हीं से इन्होंने ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन किया और गम्भीर विद्वत्ता प्राप्त की। इस प्रकार दामोदर लालजी व्याकरण तथा साहित्य, ज्योतिष तथा नव्यन्याय, दर्शन तथा वैष्णव भक्तिशास्त्र में अपूर्व पाण्डित्य प्राप्त कर काशी की विद्वन्मण्डली में चमत्कारिणी प्रतिभा के धनी होने के हेतु सर्वतंत्र-स्वतंत्र माने जाने लगे।

अध्यापन

घर के धनी होने के कारण गोस्वामी जी को किसी भी विद्यालय में नौकरी करने की कोई आवश्यकता ही नहीं रही। ये अपने निवास स्थान पर ही नाना विषयों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के छात्रों को विद्या दान करते थे और उनके भरण-पोषण के लिए भी अपनी ओर से उदारतापूर्वक आर्थिक सहायता किया करते थे। अध्यापन के ये रसिक थे। नये-नये शास्त्रों के पढ़ने तथा पढ़ाने में इनकी अभिरुचि प्रशंसनीय थी। यह अध्यापन कार्य ये अपनी विद्यार्थी अवस्था से ही करते थे। इनके छात्रों में सबसे प्रसिद्ध व्यक्ति महा-महोपाध्याय पं० देवीप्रसाद शुक्ल जी थे जो १२ वर्ष तक इनके चरणों में बैठकर संस्कृत के साहित्य तथा दर्शन का गम्भीर ज्ञान प्राप्त कर काशी के पण्डितों में 'कवि-चक्रवर्ती' के नाम से प्रख्यात हुए।

ग्रन्थ-रचना

गोस्वामी जी ने संस्कृत के अनेक प्राचीन ग्रन्थों का विमर्शात्मक संस्करण तथा संपादन किया है। अधिकांश ग्रन्थ भक्तिशास्त्र से सम्बन्ध रखते हैं। ये माध्व सम्प्रदाय के अन्तर्गत चैतन्य मत के प्रतिष्ठित विद्वान् थे और इसलिए भक्तिशास्त्रीय गंभीर ग्रन्थों का सम्पादन कर इन्होंने साहित्य के इस विभाग को अपने ग्रन्थों द्वारा सुसम्पन्न बनाया। प्रत्येक ग्रन्थ की प्रस्तावना प्रमेयबहुल है। उस विषय से सम्बन्ध रखने वाले सिद्धान्तों का अनुशीलन तथा आलोड़न नितान्त प्रशंसनीय है। इनके द्वारा सम्पादित ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है :—

(१) **भगवन्नाम कौमुदी**—पण्डित लक्ष्मीधर के द्वारा निर्मित यह ग्रन्थ भगवान् के नाम की महिमा का परम प्रशंसक है। इसके तीन परिच्छेद हैं जिनमें अन्तिम परिच्छेद नाम-कीर्तन से ही परम पुरुषार्थ सिद्ध करने के लिए लिखा गया है। आपदेव के पुत्र अनन्तदेव ने प्रकाश नाम से इसकी व्याख्या लिखी है। यह ग्रन्थ अच्युत ग्रन्थमाला में प्रकाशित है (१९८३ वि०)।

(२) **भक्ति रसायन** - मधुसूदन सरस्वती का यह प्रख्यात ग्रन्थ भक्ति-रस को सर्वश्रेष्ठ रस सिद्ध करने वाला प्रमेयबहुल शास्त्रीय ग्रन्थ माना जाता है। सरस्वतीजी ने केवल प्रथम परिच्छेद के ऊपर ही टीका लिखी थी और गोस्वामी जी ने अन्य दो परिच्छेदों पर लघु व्याख्या लिखकर अपना संस्करण निकाला।

(३) **हरिभक्ति-रसामृत-सिन्धु**—श्रीरूप गोस्वामी का यह ग्रन्थ भक्तिशास्त्र का बड़ा ही उदात्त ग्रन्थ माना जाता है। इसके ऊपर श्रीजीव गोस्वामी की 'दुर्गम संगमनी' नामक टीका उपलब्ध होती है। गोस्वामी जी ने इन दोनों को एक साथ प्रकाशित कर भक्तिरस के जिज्ञासुजनों के लिए अमूल्य निधि ही प्रस्तुत कर दी है। (अच्युत ग्रन्थमाला, काशी में प्रकाशित १९८८ विक्रमी)।

(४) **वाक्यपदीय**—इस वृहत् ग्रन्थ के अन्तिम खण्डों को गोस्वामीजी ने सम्पादित किया है जिसका प्रकाशन बनारस संस्कृत सीरीज में हुआ है।

(५) **षड्दर्शनसमुच्चय** प्रख्यात 'जैन ग्रन्थ' का सम्पादन श्रीगोस्वामीजी ने बहुत पहले किया जो चौखम्भा संस्कृत माला में १९०६ ई० में छपा है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६) **वाग्वल्लभ की भूमिका**—वाग्वल्लभ छन्दशास्त्र का बड़ा ही विस्तृत तथा विशाल ग्रन्थ है जिसकी रचना दुःखभंजन कवि ने की और टीका लिखी उन्हीं के सुपुत्र श्री देवीप्रसाद कविचक्रवर्ती ने। परन्तु टीकाकार की मृत्यु हो जाने के कारण गोस्वामी जी ने इसकी बड़ी ही पाण्डित्यपूर्ण भूमिका लिखकर इसे प्रकाशित कराया। इस भूमिका के देखने से उनके छन्दविषयक ज्ञान का पूरा परिचय मिलता है।

गोस्वामी दामोदर लाल जी ब्रजनन्दन कृष्णचन्द्र के नैष्ठिक उपासक थे। विद्या के धनी होने के साथ ही साथ ये भक्तिरस से स्निग्ध सरस हृदय से मण्डित भक्त भी थे। अनेक बातों में इनकी विलक्षणता दृष्टिगोचर होती है। ये बड़ी उदार प्रकृति के थे। माध्व संप्रदाय के व्यक्तियों का अद्वैत संप्रदाय के साथ विरोध कुछ स्वाभाविक सा है। परन्तु गोस्वामी जी में इस विरोध का तनिक भी दर्शन नहीं होता था। लेखक को १६२२ ई० की एक घटना इस प्रसंग में स्मृतिपथ पर आ रही है। उसी वर्ष काशी में ब्राह्मण महासंमेलन का आयोजन बड़े उत्साह तथा समारोह के साथ सम्पन्न हुआ था। उसमें अनेक शंकराचार्य भी उपस्थित थे। उसी सभा में आये हुए संकेश्वर मठ के शंकराचार्य का अभिनन्दन काशी में प्रतिष्ठित पण्डितों के द्वारा हुआ था। गोस्वामी जी ने अपने आवास पर बड़ा ही भव्य आयोजन कर उनका विधिवत् पूजन तथा अर्चन किया था। उसमें किसी प्रकार दम्भ तथा दिखावटीपन नहीं था। ऐसा था उनका निर्मल स्वभाव तथा भक्तिपूर्ण हृदय।

एक विलक्षण घटना उनके बारे में सुनी जाती है। काशीनरेश प्रभुनारायण सिंह के पास दक्षिण भारत का कोई विद्वान् काशी के पण्डितों से शास्त्रार्थ करने के लिए आया। परन्तु उसकी एक शर्त थी कि शास्त्रार्थ पद्यबद्ध ही होगा। महाराजा से उसने अपनी अभिलाषा कह सुनाई। प्रभुनारायण सिंह ने पण्डित गंगाधर शास्त्री को इसके लिए बुलाया और उनसे प्रार्थना कि वे इस चुनौती को स्वीकार करें तथा पद्यबद्ध शास्त्रार्थ करने के लिए तत्पर हो जायँ। शास्त्री जी उन दिनों रुग्ण थे। अतएव उन्होंने इस प्रस्ताव को स्वीकार तो नहीं किया परन्तु इसके लिए व्यवस्था करने के लिए वचन दिया। शास्त्री जी अपने सुयोग्य शिष्य दामोदर लाल जी की दार्शनिक विद्वत्ता तथा आशु काव्यरचना से पूर्ण परिचित थे। गोस्वामी जी उन दिनों नवद्वीप में न्यायशास्त्र पढ़ रहे थे। गुरु जी ने अपने सुयोग्य शिष्य को बुलाया और उन्हीं के आदेश पर गोस्वामीजी आये। महाराजा रायनगर की सभा में ये पद्यबद्ध शास्त्रार्थ करने के लिए जुट गये और उस दक्षिण के विद्वान् को इन्होंने निरुत्तर कर दिया। महाराजा ने काशी की इस प्रतिष्ठा को रखने के लिए गोस्वामी जी को बहुत सा सोना-चाँदी, आभूषण दिये, गोस्वामी जी ने स्वयं नहीं लिया और उसे लाकर गुरु के चरणों पर रख दिया और विनम्र शब्दों में कहा कि गुरुजी महाराज आपही की शिक्षा का यह अमृतमय फल है। मेरी क्या हस्ती कि मैं ऐसी विकट परिस्थिति में विजय प्राप्त करता। आपही के अनुग्रह का यह फल है। आपही इसे स्वीकार करें। यह कहकर इन्होंने गुरु के चरणों पर सब सम्पत्ति रख दी। ऐसी थी वावदूकता और गुरु-भक्ति गोस्वामी जी की।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दूसरी घटना इससे भी विलक्षण है। नवद्वीप में ये ६ वर्ष तक अध्ययन करते रहे। उन्हीं दिनों की यह घटना है। ये रात के समय बाहर से घूम कर आने के बाद मलाई मिश्रित दुग्ध का पान कर सो जाते थे। एक दिन जब ये आये तो देखा कि दूध की थाली के ऊपर कुछ सफेद चूर्ण का अंश दिखाई पड़ रहा है। समझा सफेद राख होगी, उसे झाड़कर ठीक करते ही थे कि मकान के कोने से आवाज आई "पण्डित! सावधान हो जाओ। मैं भी तुम्हारे समान ही व्युत्पन्न छात्र था। नवद्वीप में नव्यन्याय पढ़ने आया था। परन्तु ईर्ष्यावश, मेरी विद्वत्ता से डाह करने वाले यहाँ के पण्डितों ने मुझे विष देकर मार डाला। मैं आज भी पिशाच योनि से मुक्त नहीं हुआ हूँ। दूध के ऊपर जो सफेद देख रहे हो वह विष है जो तुम्हें मारने के लिए दूध में डाला गया है। तुम्हें देखकर मुझे दया आई। होशियार होकर ही इस दूध का पान करो और आगे के लिए भी सावधान हो जाओ।" गोस्वामीजी ने तुरन्त अपने हाथ से दूध का प्याला नीचे रख दिया और पण्डित पिशाच को नमस्कार किया और उन्हें धन्यवाद दिया कि उन्होंने इन्हें बचा लिया। भगवान् की दया से ये बाल-बाल बच गये। ठीक ही कहा है--

जाको राखे साइयाँ मारि न सक्कै कोय।
बाल न बाँका करि सकै जो जग बैरी होय॥

चैतन्य महाप्रभु की रमणीय स्तुति किस सहृदय को आनन्दित नहीं करती—

सौन्दर्ये कामकोटिः सकलजनसमाह्लादने चन्द्रकोटिः
वात्सल्ये मातृकोटिस्त्रिदशविटपितोऽप्यद्भुतौदार्यकोटिः।
गाम्भीर्येऽम्भोधिकोटिर्मधुरिमणि माध्वीककोटिः
गौरो देवः स जीयात् प्रणयरसपदे दर्शिताश्चर्यकोटिः॥

(भक्तिरसामृतसिन्धु)

श्री हरिभक्तिरसामृतसिन्धु की विस्तृत प्रस्तावना में रस का बड़ा विस्तृत विश्लेषण किया गया है।

गोस्वामी दामोदरलाल जी का गुणौघ-प्रकाशक यह पद्य बड़ा ही ललित एवं सटीक है—

नाना-कल्पविकल्पजालकलितां प्रौढोक्तिगूढाशयां
साहित्याध्वविहारिणीमपि पुनस्तर्कैः सदैवोज्ज्वलाम्।
येषां वाचमकुण्ठितां प्रतिपदप्रासप्रकर्षां चिरं
शृण्वन् गोष्पतिरात्तविस्मयभरव्यात्ताननो जायते॥

(नारायण शास्त्री खिस्ते)

काव्यरचना

किसी विशिष्ट काव्यग्रन्थ का इन्होंने निर्माण किया था—इसका तो परिचय नहीं मिलता। सम्पादित ग्रन्थों की प्रमेयबहुल भूमिकाएँ गोस्वामीजी के पाण्डित्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सूचिका हैं। गद्य में गाढबन्धता विराजमान है जिसमें विषय का सुचारु पल्लवन किया गया है। आरम्भ में मंगलश्लोक हैं। उन्हीं में से दो-तीन पद्य नमूने के तौर पर यहाँ उद्धृत किये जाते हैं। वाग्वल्लभ की भूमिका का मंगलश्लोक मुद्रालंकार से मण्डित होकर छन्दःशास्त्रीय ग्रन्थ के नितान्त अनुरूप है—

आर्या पथ्या स्वराट् श्री कमलपटुधरा स्रग्विणी पुष्पिताग्रा
दोलाक्रीडाकलान्दरद्युपरवनिता शालिनी मौलिमाला।
मत्ताली भारतीला प्रमुदितवदना भासिनी फल्गुमध्या
लीलाचित्रा विचित्रा शशधर सुमुखी राधिका कीर्तिगारी॥

पद्य में राधाजी की स्तुति है। प्रयुक्त विशेषण राधा के सौन्दर्य एवं गुणगण के प्रकाशक हैं। साथ ही मुद्रालंकार के द्वारा वे छन्दों के विभिन्न नाम भी हैं। यही इसकी विशिष्टता है।

भगवान् के हरिनाम की स्तुति देखिए—

निखिल - श्रुतिमौलि - रत्नमाला-
द्युति - नीराजित - पादपङ्कजान्त।
अपि मुक्तकुलैरुपास्यमानं
परितस्त्वां हरिनाम संश्रयामि॥

(भगवन्नाम कौमुदी)

गोस्वामीजी के पट्टशिष्य

पं० देवीप्रसाद कविचक्रवर्ती

(आस्पद—सुकुल; उपाधि—महामहोपाध्याय)

महामहोपाध्याय श्री देवीप्रसाद कविचक्रवर्ती काशी के मान्य कवियों में अपनी कारयित्री प्रतिभा, चमत्कारी काव्यरचना एवं प्रौढ शास्त्रीय वैदुषी के कारण नितान्त प्रख्यात थे। अल्पायु होने के कारण संस्कृत-समाज उनकी ललित तथा परिनिष्ठित काव्यरचना से अवश्य ही वञ्चित रह गया, परन्तु इन्होंने अपने जीवन में प्रतिभा का जो अद्भुत प्रसाद विद्वानों के आस्वादन के लिए प्रस्तुत किया, वह नितान्त कमनीय, रमणीय एवं अभिनन्दनीय था।

ये काशी के एक वैदुष्य-सम्पन्न कान्यकुब्ज ब्राह्मण वंश में पैदा हुए थे। यह वंश सरस्वती की नानाविध सेवा एवं आराधना के कारण काशी के विद्वत्समाज में महनीय आदर का भाजन था। इनके प्रपितामह का नाम था प्रताप सुकुल, पितामह का चूडामणि शर्मा तथा पिता का पण्डित दुःखभंजन कवीन्द्र। कवीन्द्रजी ने 'वाग्वल्लभ' नामक स्वीय ग्रन्थ के अन्त में अपने वंश का वर्णन पाँच पद्यों में दिया है। श्री प्रताप सुकुलजी के विषय में वे कहते हैं—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसीत् सूरितरः स्वभूरिजन - निर्वाराय वाराणसी-
वास्तव्यो वरवस्तुनः स्तुततरस्य स्मर्तुर्मतिच्छिदः ।
सारोद्धार परायणातुरमना मान्यामनाङ्मानितो
निर्णीताशयनीति रातिरमणीरामः प्रतापाभिधः ॥

पितामह पण्डित चूडामणि सुकुल ज्योतिःशास्त्र के अगाध विद्वान् थे जिनकी प्रतिष्ठा उस युग के काशीस्थ विद्वत्समाज में बड़ी महनीय तथा माननीय थी। दुःख-भंजनजी ने इनके विषय में लिखा है—

आसीत् काशीनिवासी दलितकलिमलालीकविद्याविलासी
स्वाशी राशिप्रकाशीकृत परविभवस्तत् सुतः सावकाशी ।
आसीददीननाशीकृतदुरितचयः कर्मणः सत्फलाशी
दासीभूतः सुनासीरसहजचरणाब्जस्य पुण्याभिलाषी ॥

इस पद्य की ललित रचना से दुःखभंजनजी की काव्यकला का भी परिचय हमें प्राप्त होता है।

(ख) दुःखभंजन कवीन्द्र

पण्डित दुःखभंजनजी साहित्य, संगीत, ज्योतिष, निगमागम के महान् ज्ञाता तथा जगदम्बा के अनन्य आराधक एवं सिद्ध कवि थे। ये दर्शन शास्त्र के भी प्रवीण पण्डित थे। व्याकरण शास्त्र का आपका पाण्डित्य अगाध एवं अद्भुत था और इसी के बल पर ये एक श्लोक के अनेक अर्थ कर श्रोताओं को मुग्ध एवं चमत्कृत कर देते थे। ये त्रिपुरा के परम भक्त एवं एकनिष्ठ उपासक थे। उनकी साधना के अलौकिक चमत्कार की कहानियाँ आज भी पण्डितों के मुँह से सुनी जा सकती हैं। ये श्लेष के बड़े भारी चमत्कारी कवि माने जाते थे। इनका कहना था कि रघुवंश काव्य तो राजा रघु की कथा न होकर किसी चोर का ही वर्णनपरक काव्य है। रघुवंश के द्वितीय सर्ग के कतिपय पद्यों का चौरपरक अर्थ काशी के 'सुप्रभातम्' संस्कृत पत्र में कभी प्रकाशित भी हुआ था। सुनते हैं ये नैषधचरित महाकाव्य के बड़े प्रशंसक थे। इनकी दृष्टि में यहाँ चार विशिष्ट चरितों का समभावेन श्लिष्ट पदों के द्वारा निरूपण किया गया है। नैषध के चरित के अतिरिक्त ये इस महाकाव्य में रामायण, महाभारत तथा भागवत की कथा का वर्णन मानते थे और प्रसंग आने पर ये नैषध के पद्यों का चार प्रकार का अर्थ भी किया करते थे।

सुनते हैं कि ये एक बार मकर स्नान के अवसर पर प्रयाग गये। वहाँ पण्डितों के समाज में किसी ने इनसे पूछा कि 'मुहूर्त चिन्तामणि' (ज्योतिष ग्रन्थ) से त्रिवेणी माहात्म्य सुनाइए। कविजी बिना किसी ननुनच के उस ज्योतिष ग्रन्थ के पद्यों से त्रिवेणी का माहात्म्य सुनाने लगे। कुछ विशेष चमत्कार था उनमें जो अनायास, बिना किसी परिश्रम के शब्दों के नये-नये अर्थों की सूझ देता था उन्हें और जिसके बल पर उनका पाण्डित्य सर्वत्र जम जाता था। काशी की विद्वन्मण्डली उनके इस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चमत्कारी वैदुष्य को भगवती जगदम्बा की आराधना का परिणत प्रसाद मानती थी। उनकी कीर्ति काशी में आज भी अक्षुण्ण है।

चमत्कारों की कहानी आज भी साधक-मण्डली में प्रसिद्ध है। श्लेष कवि के रूप में उनकी बड़ी प्रख्याति थी। व्रजभाषा में भी इनकी मुग्धकारिणी कविता रसिकों का आवर्जन करती थी। इन्होंने राजा चन्द्रशेखर त्रिपाठी के विषय में एक प्रशस्ति काव्य—**'चन्द्रशेखरचरित महाकाव्य'** का प्रणयन संस्कृत में किया जिसमें अलंकारों की छटा तथा शाब्दिक चमत्कारों की सुषमा नितरां श्लाघनीय है। लेखक ने अपने विद्यागुरु पण्डित रामावतार शर्माजी से पण्डित दुःखभंजनजी के काव्य-चमत्कार एवं विलक्षण शब्द-योजना के विषय में अनेक बातें सुनी हैं।

इनका **वाग्वल्लभ**[1] नामक प्रकाशित ग्रन्थ छन्दःशास्त्र के गम्भीर तलस्पर्शी ज्ञान का सद्यः परिचायक एवं प्रबोधक है। इस ग्रन्थ की प्रबोधकारिणी टीका इन्हीं के सुपुत्र पण्डित देवीप्रसाद कविचक्रवर्ती ने **वरवर्णिनी** नाम से प्रकाशित की है।[1] पिता तथा पुत्र के पाण्डित्य का यह सम्मिलित परिणत प्रयास नितान्त उपादेय एवं आदरणीय है। पिता तथा पुत्र दोनों ही व्रजभाषा के भी बड़े ही आदरणीय कवि थे। इनकी हिन्दी कविता के कतिपय नमूने स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती की प्रशस्ति के रूप में आगे दिये जाएँगे जिनमें इनकी कमनीय प्रतिभा, सुभग पदशय्या तथा मनोरम भाव की छटा देखते ही बनती है।

(ग) जन्म तथा अध्यापन

ऐसे ही शाक्त उपासना के द्वारा परिपूत ब्राह्मणवंश में पण्डित दुःखभंजन कवीन्द्र के पुत्र रूप में देवीप्रसादजी का जन्म काशी में ही १९४० विक्रम संवत् (१८८३ ई०) में हुआ। सुनते हैं कि शिशु के उत्पन्न होते ही शाक्त पिता ने भगवती शारदा के दिव्य बीजमन्त्र को उसकी जिह्वा पर स्वयं लिख दिया। प्रारम्भिक अध्ययन का कार्य बालक ने अपने पूज्य पिता के सम्पर्क से ही किया। आठ वर्ष के होने पर पिता ने पुत्र का उपनयन संस्कार किया तथा 'सिद्धान्तकौमुदी' का विधिवत् अध्यापन किया जिससे बालक की अभिरुचि संस्कृत विद्या के अध्ययन की ओर स्वतः उत्पन्न हुई। परन्तु दुर्भाग्यवशात् पिता की छत्रच्छाया बालक के सिर से सदा के लिए तिरोहित हो गई। क्योंकि दुःखभंजन जी साधारण ज्वर से आक्रान्त होकर पञ्चत्व को प्राप्त हो गये। उसी रोगावस्था में उन्होंने बालक को बुलाकर अपनी मनोभावना का परिचय इन शब्दों में[2] दिया—

"वत्स, मेरा जीवन अब दो-तीन दिनों के भीतर ही समाप्त होनेवाला है। मुझे

---

१. काशी संस्कृत सीरीज के चौखम्भा कार्यालय द्वारा टीका के साथ प्रकाशित, काशी, १९३३ ई०।

२. द्रष्टव्य, श्री दामोदरलाल गोस्वामी रचित 'वाग्वल्लभ' की भूमिका, पृ० १०-११ (काशी)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बात का बड़ा ही क्लेश है कि मैं तुम्हें कुछ पढ़ा नहीं सका। मेरा आदेश है कि यदि अन्यत्र गुरु न मिलें, तो तुम मूर्ख बनकर निरक्षर भट्टाचार्य बने रहो, परन्तु काशी के किसी भी विद्वान् से एक अक्षर भी नहीं पढ़ना। यदि तुम मेरी आज्ञा का पालन न करोगे, तो कर्मवशात् मैं किसी भी योनि में जाऊँगा मुझे अपार कष्ट होगा। फलतः मेरे आदेश का पालन तुम स्वस्थ मन से तथा एकनिष्ठ श्रद्धा के साथ अवश्य करना।" इतना ही नहीं, कवीन्द्र जी ने अपनी धर्मपत्नी को भी आदेश दिया कि ध्यान रखना, बालक मेरे आदेश का सावधानी से पालन करे।

देवीप्रसाद जी ने पिता की अन्तिम आज्ञा का यथावत् पालन किया। पिता की मृत्यु के अनन्तर दो वर्ष बीत गये। बालक में पढ़ने की तीव्र लालसा थी। उधर माता की प्रेरणा कम नहीं थी। फलतः वह अपने पिता के समान ही किसी व्यक्ति को अपना विद्यागुरु बनाने के लिए उपयुक्त गुरु की खोज में इधर-उधर भटकता फिरता था।

आखिर उसकी खोज ने जीवन में एक नया मोड़ उपस्थित कर दिया। 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' की उक्ति उसके जीवन में सद्यः चरितार्थ हो गई। उन्हीं दिनों पण्डित दामोदरलाल गोस्वामी वृन्दावन में काव्य, व्याकरण का अध्ययन कर संस्कृत विद्या की सामान्य अवगति प्राप्त होने के अनन्तर काशी में आये और पण्डित गंगाधर शास्त्री जी के चरणों में बैठकर साहित्य एवं दर्शन का गम्भीर अध्ययन करने लगे। इसी समय देवीप्रसाद जी दामोदरलाल गोस्वामी के सम्पर्क में आकर विद्याभ्यास करने लगे। सिद्धान्तकौमुदी का विधिवत् अध्ययन किया और अधीत विषयों में संस्कृत कालेज की परीक्षा दी जिससे उनके जीवन में प्रतिभा का विशिष्ट विकास हुआ।

पण्डित दामोदरलाल गोस्वामी जी का पाण्डित्य अपूर्व था। वे नाना शास्त्रों के—विशेषतः साहित्य तथा नव्यन्याय के—उत्कृष्ट पाण्डित्य से मण्डित विद्वान् थे। उनके चरणों में ग्यारह वर्षों तक अनवरत अध्ययन कर देवीप्रसादजी ने व्याकरण, प्राचीन न्याय, सांख्ययोग, मीमांसा, वेदान्त, धर्मशास्त्र तथा साहित्यशास्त्र में प्रकृष्ट पाण्डित्य प्राप्त कर लिया तथा काशी की विद्वन्मण्डली में इनकी विमलकीर्ति चारों ओर व्याप्त हो गई। गुरु और शिष्य दोनों ही अपूर्व मेधावी थे। फलतः देवीप्रसाद जी की विमल प्रतिभा का प्रसाद पण्डितमण्डली में मधुर काव्य-रचना के रूप में सद्यः परिस्फुटित होने लगा। यह नितान्त सत्य है कि इन्होंने गोस्वामी जी को छोड़कर किसी अन्य विद्वान् से एक अक्षर भी नहीं पढ़ा। गोस्वामीजी इस तथ्य को सर्वदा दोहराया करते थे। उन्होंने इन्हें नव्यन्याय एवं ज्योतिष का भी अध्यापन करना चाहा, परन्तु इनकी अभिरुचि इन विषयों की ओर न होने से यह अध्यापन न हो सका। इस प्रकार वृन्दावन के पण्डित गोस्वामी जी से सकल शास्त्रों का अध्ययन कर पं० देवीप्रसाद जी ने काशीस्थ पण्डित से अध्ययन-निषेध की अपने पिता जी की वाणी को पूर्णतः चरितार्थ कर दिखाया। पिता की आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं किया।

अध्यापन

ये अध्यापन कला में अत्यन्त निपुण थे। आरम्भिक जीवन में इन्होंने काशी की अनेक पाठशालाओं में अध्यापन का कार्य किया। अनेक शास्त्रों की वैदुषी से सम्पन्न

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने पर भी ये साहित्यशास्त्र का ही अध्यापन करते थे। इनकी काव्यनिपुणता तथा साहित्यानुशीलन से प्रसन्न होकर काशी की विद्वत्सभा ने इन्हें 'कविचक्रवर्ती' की उपाधि से विभूषित किया। लेखक ने कवि जी को दशाश्वमेध घाट पर स्थित कान्य-कुब्ज पाठशाला में अध्यापन करते देखा है। ये उस समय नैषध पढ़ा रहे थे। इतने आत्मविश्वास से पढ़ाते थे कि जान पड़ता था पूरे का पूरा नैषध इन्हें कण्ठस्थ है। ये श्लोक पढ़ने की आवश्यकता भी नहीं समझते थे। श्लोक सामने आया नहीं कि ये उसका अर्थ बतलाने में लग जाते थे तथा उसकी बारीकियों को समझाने लगते। धीरे-धीरे इनकी कीर्ति इतनी बढ़ी कि महामना मालवीय जी ने इन्हें संस्कृत महाविद्यालय में साहित्य के प्राध्यापक पद पर नियुक्त किया। हिन्दू विश्वविद्यालय में नियुक्त होने पर इनके जीवन में विशेष सुव्यवस्था का उद्गम हुआ, परन्तु दुःख इतना ही है कि ये इस शान्त जीवन का विशेष लाभ उठा नहीं सके। अल्पायु में ही ये १९७८ वि० सं० (=१९३१ ईस्वी) में फाल्गुन शुक्ल एकादशी को अतीसार रोग से पीड़ित होकर परलोक गमन कर गये। उस समय इनकी आयु केवल ४८ वर्ष की थी।

श्री देवीप्रसाद कवि जी विश्वविद्यालय में आने से पूर्व ही 'महामहोपाध्याय' की पदवी से विभूषित किये जा चुके थे। ये काशिकेय पण्डितों के सर्वतोभावेन प्रतिनिधि थे। ये मस्तमौला थे—हास्य-रस के जीते-जागते प्रतीक थे। चेहरा इनका हर्षोल्लास से सर्वदा खिला दृष्टिगोचर होता था। उदासीनता इनके मुखमण्डल पर कभी भूलकर भी नहीं आती थी। काशी के बाँसफाटक मुहल्ले में इनके अभिन्नहृदय सुहृद् पण्डित रघुवीर वैद्य की सड़क के ऊपर ही दूकान थी। वहीं इनके जमने का, बैठने का, चुहलबाजी करने का अखाड़ा था जहाँ ये अपने दूसरे मित्र ज्योतिषाचार्य पण्डित हृषीकेश उपाध्याय के साथ बैठकर आनन्द से सन्ध्या बिताया करते थे। इन तीनों मित्रों को जमकर हँसी-मजाक करते हुए लेखक काशी विश्वविद्यालय से अध्यापन कर लौटते समय सायंकाल प्रायः प्रतिदिन देखा करता था। संस्कृत शब्दों के अर्थ-परमार्थ करने में इतनी अलौकिक क्षमता थी कविचक्रवर्तीजी में कि ये हिन्दी की फूहड़ गालियों को संस्कृतमयी बतला कर विलक्षण अर्थ से श्रोताओं को चमत्कृत कर दिया करते थे। तभी तो बनारसी की 'धीचोद' गाली इनके हाथों (धियं चोदयतीति धीचोदः बुद्धिमानित्यर्थः—इस व्युत्पत्ति से) बुद्धिमान् पण्डित का अर्थ देने लगती थी। फलतः इनके मुँह से जो भी अनाप-शनाप हँसी में निकल जाता, उसे ये देववाणी का शुद्ध शब्द मान उसका उदात्त अर्थ बतला कर अपनी प्रतिभा की छाप लगा देते थे।

कविचक्रवर्ती जी की कविता सरल, सुषमामयी तथा शास्त्रीय चमत्कृति से मण्डित होती थी। ये अपनी कविता उच्च स्वर में पढ़ते भी थे। लेखक को हिन्दू विश्वविद्यालय के आर्ट्स कालेज के केन्द्रीय हाल में विलायत जाने के समय महामना मालवीय जी का वह अभिनन्दन अच्छी तरह आज भी याद है जिसमें पण्डित देवीप्रसाद जी ने गम्भीर स्वर में स्वनिर्मित पद्यों का पाठ कर उपस्थित श्रोतामण्डली को

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चमत्कृत कर दिया था। उन पद्यों में भगवती जगदम्बा से मालवीय जी की विदेश में सुरक्षा करने की प्रार्थना की गई थी। उसमें इन्होंने बड़े तपाक से अपना वह पद्य पढ़ा था जिसमें 'भगवती कौक्षेयकं बिभ्रती' का समुचित प्रयोग किया गया था। इन्होंने स्फुट कविताएँ बहुत सी लिखी हैं जो काशी के प्रसिद्ध पत्र 'सुप्रभातम्' में प्रकाशित होती थीं। दुःख है कि आज तक उनका एकत्र संकलन प्रकाशित नहीं हो सका। ये ब्रजभाषा की भी बड़ी सरस कविता लिखते थे। ऐसे पद्यों के संग्रह **शारदापचीसी** (कवित्त) तथा **कवित्तसुधानिधि** (संस्कृत-हिन्दी छन्द में) नाम से प्रकाशित भी हुए हैं। संस्कृत में इनके तथा दुःखभंजन कवीन्द्र जी के एक-दो पद्यों की चाशनी चखिए—

कवीन्द्र जी ने अपने ग्रन्थ 'वाग्वल्लभ' का मंगलाचरण इस मनोरम पद्य से किया है—

सर्वज्ञप्रीतिपात्रं प्रणयपरिणतप्राणिविश्राणितश्रि,
स्वात्मारामाभिरामं किल निखिलजगन्मोहनं नोहनीयम्।
चञ्चच्चैतन्य-चिद्रूपमनुपममुपज्ञापरिज्ञाततत्त्वं,
नित्यं निश्छद्म हृत्सद्मनि किमपि महो मेचकं मे चकास्ति॥

चक्रवर्ती जी की कविता का आस्वाद लीजिए। ये अधोलिखित दोनों पद्य उनकी 'वरवर्णिनी' टीका के आरम्भ में मंगलश्लोक हैं—

या जननी विबुधानां गिरीशनारायणादीनाम्।
मञ्जुल-मङ्गल-मूले तस्या देव्याः प्रसादोऽस्तु॥
चञ्चच्चञ्चल-रश्मिकाञ्चनमहामञ्चस्थितामञ्चितां
काञ्चीकञ्चुकरोचितामतिलसन्नेत्राञ्चलां चिन्मयीम्।
देवीं वञ्चनजाऽघसञ्चयहरां पञ्चद्विपञ्चीधरां
पञ्चास्यप्रणुतामकिञ्चनधनं काञ्चित्परां चिन्तये॥

यहाँ पिता तथा पुत्र दोनों की कविता नितान्त अभिराम, सद्यः आकर्षक एवं रमणीय पदशय्या से सम्पन्न है। अनुप्रास की अद्भुत छटा निराली ही है।

(घ) पण्डित केदारनाथ सारस्वत

पण्डित देवीप्रसाद जी ने संस्कृत समाज का संघटन करने तथा संस्कृत साहित्य के उन्नयन की प्रेरणा दी। वे काशी के नवयुवक विद्वानों एवं कविजनों को अग्रसर होकर संस्कृत साहित्य की उन्नति करने के प्रेरक अग्रदूत थे। उन्हीं के आदेश से 'सुप्रभातम्' नामक बड़ा ही रोचक एवं आकर्षक संस्कृत पत्र काशी से प्रकाशित होता था। इसके सम्पादक थे पण्डित **केदारनाथ सारस्वत जी**। ये कविचक्रवर्ती जी के बड़े ही निष्ठावान् अनुयायी पण्डित थे। सारस्वत जी का परिवार काशी में अपनी विद्वत्ता के लिए बहुत दिनों से प्रतिष्ठित एवं समादृत माना जाता था। इनके पितामह पण्डित **नित्यानन्द मीमांसक** भारतेन्दु के समकालीन एक प्रौढ़ धर्मशास्त्री के रूप में लोकविश्रुत थें। हिन्दू समाज की नये युग में उत्पन्न होने वाली धार्मिक समस्याओं का समाधान वे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी शास्त्रीय बुद्धि से झटपट कर दिया करते थे। केदारनाथ जी के पिता पण्डित **पद्मनाभ शास्त्री** भी धर्मशास्त्र एवं मीमांसा के प्रौढ़ विद्वान् माने जाते थे। हिन्दू-विश्वविद्यालय के अन्तर्गत 'संस्कृत महाविद्यालय' के वे लोकप्रिय प्राध्यापक थे। पण्डित केदारनाथ जी भी अच्छे साहित्यिक थे। ये काशी के रंगीन वातावरण में इतनी तन्मयता से घुलमिल गये थे कि दर्शकों को इन्हें देखकर चकित हो जाना पड़ता था। इनके ऊपर पण्डित रामावतार शर्मा जी की प्रतिभा का प्रभाव भरपूर पड़ा था। ये हिन्दी से भी भलीभाँति परिचित थे। 'सुप्रभातम्' के अस्तङ्गत हो जाने के बाद ये दिल्ली गये और वहीं से **संस्कृतरत्नाकर** का सम्पादन करते थे। इनके द्वारा हिन्दी में अनूदित दो महनीय एवं उपयोगी ग्रन्थ बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् (पटना) के द्वारा प्रकाशित किये गये हैं--जिनमें एक है--काव्यमीमांसा तथा दूसरा है--कथासरित्सागर (तीन खण्डों में प्रकाशित)। कविचक्रवर्ती तथा सारस्वत जी के अस्तंगत हो जाने से संस्कृत-संघटन का यह कार्य कुछ धीमा एवं फीका पड़ गया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२३

पण्डित लक्ष्मण शास्त्री द्राविड

(आस्पद—द्राविड; उपाधि—महामहोपाध्याय)

महामहोपाध्याय पं० लक्ष्मण शास्त्री द्राविड एक अलौकिक विद्वान्, कर्मठ पण्डित और गतिशील व्यक्तित्व के पुरुष थे। संस्कृत के पण्डितों में विद्वत्ता तो अवश्य उपलब्ध होती है परन्तु उनमें प्रायः कर्मठता का नितान्त अभाव पाया जाता है। पं० लक्ष्मण शास्त्री द्राविड के व्यक्तित्व की विशेषता यह थी कि यह एक कर्मठ व्यक्ति थे। भारतीय धर्म एवं संस्कृति को अपने पूर्ण वैभव के साथ, विशुद्ध रूप में प्रतिष्ठापित करने के लिए, इनका विशेष आग्रह था। सामान्य रूप से इन्हें अपरिवर्तनवादी पक्ष का पक्षधर मान सकते हैं। ये प्राचीन शास्त्रीय अतएव उपादेय पद्धति से रंचक मात्र भी हटकर आगे चलने के लिए तैयार नहीं थे। इसीलिए इन्होंने शारदा ऐक्ट का अपने प्राणपण से विरोध किया था। यह विरोध केवल शब्दतः ही नहीं था, बल्कि अपनी 'महामहोपाध्याय' की पदवी का परित्याग कर इन्होंने व्यवहारतः भी विरोध-प्रदर्शन किया था। यह तो हुआ इनके जीवन का नकारात्मक पक्ष। परन्तु इसका सकारात्मक पक्ष तो और भी प्रबल था। मनु के द्वारा प्रतिपादित धर्म वर्णाश्रमधर्म पर आश्रित है। इसी वर्णाश्रम का प्रचार करने के लिए इन्होंने एक नवीन संस्था की स्थापना की थी जिसका नाम 'वर्णाश्रम स्वराज्यसंघ' रखा था। इसके प्रचार के लिए इन्होंने हिन्दी तथा संस्कृत दोनों भाषाओं में पत्रों का प्रकाशन कर अपने मन्तव्य का प्रचार किया। वर्णाश्रम धर्म के पालन के द्वारा ही भारतवर्ष में स्वराज्य की प्राप्ति हो सकती है—इस मौलिक सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए इन्होंने 'वर्णाश्रम स्वराज्य संघ' की स्थापना की थी। इस संघ का कार्यक्षेत्र केवल उत्तर भारत तक ही सीमित नहीं था, प्रत्युत दक्षिण भारत में भी इसका प्रचार था। संघ ने वर्णाश्रम की रक्षा के लिए बड़ा ही महनीय कार्य किया जो सदा के लिए स्मरणीय रहेगा।

जन्म

पं० लक्ष्मण शास्त्री द्राविड का जन्म तो इसी काशी नगरी में हुआ था परन्तु इनके पूर्वजों का मूल स्थान मद्रास प्रान्त (आजकल तमिलनाडु) के प्रसिद्ध नगर कुम्भकोणम् के समीप ही 'त्रिसिनील्लुर' नामक गाँव था जहाँ वे निवास करते थे। वहाँ पर इनके पूर्वज 'घनपाठी' नाम से प्रसिद्ध थे क्योंकि उन्होंने कृष्ण यजुर्वेद के कठिनतम विकृति घन के पाठ करने में अत्यन्त ख्याति प्राप्त की थी। इनके पिता अपनी समस्त सम्पत्ति छोड़कर काशीवास की तीव्र अभिलाषा के कारण यहाँ आये और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अयाचित वृत्ति से अपना निर्वाह करते थे। ऐसे परम भक्त पिता के ये पुत्र-रूप में उत्पन्न हुए। इनका जन्म सं० १९३१ वि० (१८७४ ईस्वी) में हुआ था।

शिक्षा

चौदह वर्षों तक लक्ष्मण शास्त्री ने अपने पिता से कृष्ण यजुर्वेद तथा गुरुनाथ भट्ट नामक विद्वान् से ऋग्वेद का अध्ययन कर पं० कृष्ण शास्त्री से साहित्य शास्त्र का विधिवत् अध्ययन किया। इसके अनन्तर दरभंगा-नरेश के गुरु महामहोपाध्याय पं० सुब्रह्मण्य शास्त्री की कन्या से इनका विवाह हुआ। अपने श्वशुर की कृपा से इन्होंने वेदान्त, सांख्य आदि शास्त्रों का अध्ययन किया। उस समय गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, काशी में न्यायशास्त्र की गद्दी पर म० म० पं० कैलासचन्द्र शिरोमणि विद्यमान थे। इन्हीं उद्भट विद्वान् से इन्होंने न्यायशास्त्र का पाठ पढ़ा। काशी के संस्कृत कालेज तथा कलकत्ता के भी संस्कृत कालेज की सर्वश्रेष्ठ परीक्षाएँ इन्होंने उत्तीर्ण कीं। उस समय श्रीमान् काशीनरेश प्रतिभावान् संस्कृत के छात्रों को एक छात्रवृत्ति दिया करते थे जिसकी कल्पना भी इस युग में नहीं की जा सकती। यह छात्रवृत्ति एक रुपया से प्रारम्भ होती थी और एक साल के बाद एक रुपये की इसमें वृद्धि होती थी। इस वृत्ति की अधिकतम सीमा ग्यारह रुपये थी। इसी अल्पवृत्ति को प्राप्त कर लक्ष्मण शास्त्री अपना तथा अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण करते हुए संस्कृत का अध्ययन करने लगे। बीस वर्ष के वय तक ये दर्शन शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् हो गये थे।

अध्यापन

सन् १९०२ ई० में अपने जीवन के अट्ठाइसवें वर्ष में इनकी नियुक्ति काशी की रणवीर संस्कृत पाठशाला में एक साधारण संस्कृत अध्यापक के रूप में हुई, जहाँ ये लगातार ग्यारह वर्षों तक अध्यापन कार्य करते रहे। इसके पश्चात् कलकत्ता विश्व-विद्यालय के सुप्रसिद्ध वाइस चान्सलर, विख्यात गुणग्राही, सर आशुतोष मुकर्जी ने इनकी विद्वत्ता से प्रसन्न होकर इन्हें कलकत्ता विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्राध्यापक के पद पर नियुक्त किया। वहीं रहकर लगातार चौदह वर्षों तक इन्होंने दर्शन शास्त्र का अध्यापन किया। सन् १९२६ ई० में इन्होंने इस पद से अवकाश प्राप्त कर लिया, यद्यपि अधिकारी इनसे और अधिक समय तक कार्य करने का आग्रह कर रहे थे। इसी काल में सरकार ने इन्हें महामहोपाध्याय की उपाधि प्रदान की थी। अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् ये काशी चले आये। यहाँ आकर इन्होंने संस्कृत विद्या के अध्ययन-अध्यापन का प्रचार तथा प्रसार करना प्रारम्भ कर दिया।

सनातन धर्म के संरक्षण का इनका कार्य भी बड़ा ही महत्त्वपूर्ण था। सन् १९२७–२८ के आस-पास शारदा ऐक्ट के पास होने पर इन्होंने उसे धर्मविरोधी ऐक्ट या कानून उद्घोषित किया और इस कानून के प्रति अपना विरोध प्रदर्शन करने के लिए अपनी महामहोपाध्याय की पदवी का भी परित्याग कर दिया। सं० १९८७ वि० (१९३० ई०) में काशी में ही इन्हें कैलासवास की प्राप्ति हुई।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्त्वपूर्ण कार्य

पं० लक्ष्मण शास्त्री बड़े ही कर्मठ और क्रियाशील विद्वान् थे। इन्होंने सनातन धर्म तथा संस्कृत विद्या के प्रचार और प्रसार में अपना समस्त जीवन ही खपा दिया था। इनके द्वारा स्थापित की गई संस्थाओं तथा परिषदों का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है :—

(१) **शिवकुमार-भवन की स्थापना**—कलकत्ता में शास्त्री जी ने म० म० पं० शिवकुमार शास्त्री की स्मृति में 'शिवकुमार भवन' की स्थापना की थी। पचासों हजार रूपयों को जनता से एकत्रित कर इस भवन का निर्माण इन्होंने किया था। यहाँ प्रति-दिन (१५०) डेढ़ सौ छात्रों के निवास, भोजन तथा अध्ययन की सम्यक् व्यवस्था की गई थी। यह भवन आज भी अवस्थित है तथा संस्कृत भाषा के प्रचार का अद्वितीय साधन तथा माध्यम है।

(२) **साङ्गवेद विद्यालय**—यह काशी के रामघाट पर स्थित प्रसिद्ध विद्यालय है। इसका प्रधान उद्देश्य प्राचीन पद्धति से वेद और वेदाङ्गों का अध्यापन करना है। इसकी स्थापना कलकत्ता के श्रेष्ठिप्रवर पण्डित श्री वल्लभराम जी मेहता के उदार दान के फल-स्वरूप हुई है। इस विद्यालय में परीक्षित विशिष्ट विद्वानों को यावज्जीवन एक सौ रुपया प्रतिवर्ष दक्षिणा के रूप में दिया जाता है। यह इनका वेतन नहीं है, बल्कि आदरपूर्वक प्रदान की गई दक्षिणा-मात्र है।

इस विद्यालय में छात्रों की योग्यता का मापदण्ड लिखित परीक्षा न होकर मौखिक शास्त्रार्थ है। शास्त्रार्थ के लिए प्रशिक्षण देने के हेतु मासिक शास्त्रार्थ का आयोजन किया जाता है। परन्तु वर्ष में एक बार विशिष्ट शास्त्रार्थ-प्रतियोगिता के द्वारा ही कक्षा में उन्नति प्रदान की जाती है। इस विद्यालय के स्थायी सभापति महाराजाधि-राज काशीनरेश डा० विभूतिनारायण सिंह हैं। इस विद्यालय में प्राचीन संस्कृत विद्वानों के वृहदाकार तैलचित्र स्थापित किये गये हैं। इसके साथ ही प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर विभिन्न शास्त्रों में वेदों तथा वेदाङ्गों के जो स्वरूप वर्णित किये गए हैं उनके भी तैल-चित्र बना कर वहाँ प्रतिष्ठित हैं। विभिन्न शास्त्रों की मूर्ति के तैलचित्र का निर्माण इस विद्यालय की एक विशिष्ट वस्तु है जो संभवतः अन्यत्र दिखलाई नहीं पड़ती। इसका विस्तृत परिचय आगे दिया गया है।

ब्राह्मण महासम्मेलन

आजकल प्राचीन धर्म का जो ह्रास हो रहा है तथा अपने धर्म एवं संस्कृति के प्रति जो अश्रद्धा बढ़ती जा रही है उसके निराकरण के लिए शास्त्रीजी ने काशी में एक महान् सम्मेलन का आयोजन सन् १९२५ ई० के आसपास किया था जिसमें चारों पीठों के चारों शंकराचार्य, रामानुज तथा वल्लभ सम्प्रदाय के पीठाध्यक्ष, अनेक विद्वान् तथा पण्डित आमंत्रित किये गये थे। यह महान् सम्मेलन **'ब्राह्मण सम्मेलन'** के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस सम्मेलन में आधुनिक सुधार-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वादी विषयों—जैसे विधवा विवाह, अछूतोद्धार, रजस्वला कन्याओं का विवाह, स्पर्शा-स्पर्श आदि विषयों पर धर्मशास्त्रों की क्या व्यवस्था है, इसके पूर्वपक्ष तथा उत्तरपक्ष दोनों का शास्त्रीय विधान खोजकर निकाला गया था। यह सम्मेलन अनेक अंशों में सफल भी हुआ। कम से कम इतना तो शास्त्रीजी ने अवश्य ही किया कि चारों शंकराचार्यों, रामानुज, वल्लभ, माध्व और निम्बार्क सम्प्रदाय के पीठाधीश्वरों को एक मंच पर ले आकर एकत्रित कर दिया और सामान्य जनता को धर्म के क्षेत्र में इन आचार्यों से प्रकाश तथा पथ-प्रदर्शन प्राप्त करने का एक शुभ अवसर प्रदान किया।[1]

इस 'ब्राह्मण महासम्मेलन' के फलस्वरूप शास्त्रीजी ने सनातनधर्म के प्रचार के लिए हिन्दी में 'ब्राह्मण महासम्मेलन' नामक साप्ताहिक पत्र तथा संस्कृत में एक मासिक पत्रिका का भी प्रकाशन प्रारम्भ किया था। कुछ दिनों के पश्चात् 'ब्राह्मण महासम्मेलन' पत्र का नाम बदल कर 'पण्डितपत्र' रख दिया गया। परन्तु राष्ट्रविरोधी नीति के कारण यह पत्र अकाल में ही काल-कवलित हो गया।

वर्णाश्रम स्वराज्य संघ

सनातन धर्म के प्रचार तथा संस्कृत विद्या के प्रसार के लिए पं० लक्ष्मणशास्त्री ने 'वर्णाश्रम स्वराज्य संघ' नामक एक संस्था भी स्थापित की थी जिसका उद्देश्य वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करते हुए स्वराज्य की प्राप्ति करना था। सन् १९२९ ई० में लाहौर में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर, इस संघ के तत्वावधान में, शास्त्री महोदय ने लाहौर में अपने विरोध का प्रदर्शन भी किया था। परन्तु दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि सन् १९३० ई० में शास्त्रीजी के निधन के कारण इनके द्वारा स्थापित 'वर्णाश्रमस्वराज्य संघ' तथा 'पण्डितपत्र' दोनों ही कराल काल के गाल में विलीन हो गये।

अखिल भारतीय ब्राह्मण महासम्मेलन

यह ब्राह्मण महासम्मेलन म० म० पं० लक्ष्मणशास्त्री द्राविड़ के कर्मठ जीवन की महनीय उपलब्धि है। इसकी स्थापना करके इन्होंने सनातन धर्म के प्रति अपनी गाढ़ अनुरक्ति का, आधुनिक युग में उत्पन्न होनेवाली नाना प्रकार की धार्मिक विसंगतियों के प्रति अपनी विरक्ति का, तथा नवीन युगोपयोगी धार्मिक प्रचार एवं प्रसार के प्रति अपनी आसक्ति का जो उदात्त परिचय दिया है वह पण्डित-समाज के लिए—काशी की विद्वन्मण्डली के लिए भी—एक सुखद और चिरस्मरणीय घटना रहेगी। यह पं० लक्ष्मण शास्त्रीजी का ही काम था कि काशी के धार्मिक मंच के ऊपर इन्होंने समग्र भारतवर्ष के आचार्यों आद्य शंकराचार्य के द्वारा प्रतिष्ठापित विभिन्न शंकराचार्यों का, रामानुजाचार्य के द्वारा स्थापित मठों के अध्यक्ष विशिष्टाद्वैती आचार्यों का और वल्लभाचार्यजी के द्वारा प्रतिष्ठित प्रख्यात गद्दियों के अधिपति वल्लभ सम्प्रदायीय

---

१. इस सम्मेलन का विस्तृत वर्णन अगले पृष्ठों में देखिए।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्यों का जैसा उल्लासमय जमघट जमा दिया था वैसा फिर देखने को प्राप्त नहीं हो सका। वह दृश्य आज भी हमारे नेत्रों के सामने नाच रहा है जब वल्लभाचार्य की पालकी को अपने कन्धों पर ढोने के लिए काशी के सेठों में होड़ लग गयी थी। इसी प्रकार से चारों पीठों के शंकराचार्य अपने पूर्ण वैभव और साज-सज्जा के साथ उपस्थित थे। सोने के सिंहासन पर शंकराचार्यजी विराजमान थे। उनकी स्वर्णजटित पालकी के दोनों ओर मशाल लिये हुए दो मशालची चल रहे थे। सुवर्ण और रजत से मण्डित गंगा-जमुनी राजच्छत्र उनके सिर पर विराजमान थे। अनेक चामरग्राही पुरुष उन्हें चँवर डुलाते हुए चल रहे थे। सचमुच ही वह दृश्य अलौकिक और देवताओं के लिए भी ईर्ष्या का विषय था।

यह ब्राह्मण महासम्मेलन काशी के मिसिर पोखरा नामक स्थान में सं० १९८५ वि० तदनुसार सन् १९२८ ई० की ५ नवम्बर से ७ नवम्बर तक हुआ था। महाराजाधिराज तत्कालीन दरभंगानरेश श्री रमेश्वर सिंहजी इस सम्मेलन के सभापति थे। सम्मेलन की प्रबन्ध समिति में म० म० पं० पंचानन तर्करत्न, वामाचरण भट्टाचार्य तथा म० म० लक्ष्मण शास्त्री द्राविड़ थे। पण्डितराज राजेश्वर शास्त्री द्राविड़, म० म० अनन्तकृष्ण शास्त्री, म० म० हाराणचन्द्र भट्टाचार्य आदि इसके प्रमुख कार्यकर्ता थे। महाराजाधिराज काशीनरेश श्री प्रभुनारायण सिंहजी ने स्वागत समिति के अध्यक्ष पद से ने जो सारगर्भित भाषण दिया था वह आज भी—अर्धशताब्दी के व्यतीत हो जाने पर भी—उतना ही रोचक, संग्रहणीय तथा उपादेय है। उन्होंने अपने भाषण में कहा था[1] कि "भारतीय समाज का नेतृत्व ब्राह्मणों के ही अधिकार में है। ब्राह्मण ही इस देश का स्वभावसिद्ध नेता है। उसी के जागरूक रहने पर ही देश में शिक्षा की उन्नति, राष्ट्र का संरक्षण, नाना व्यवसायों की उन्नति तथा सामाजिक न्याय हो सकता है। साधारण जनता में दीख पड़ने वाला यह धार्मिक ह्रास ब्राह्मणों के द्वारा की गई उपेक्षा का फल है। इसलिए जब तक ब्राह्मण संगठित होकर अपने दायित्व का वहन नहीं करेंगे तब तक देश का कल्याण नहीं हो सकता। आजकल धार्मिक जगत् में जो विच्छृंखलता दिखलाई पड़ रही है उसका निवारण किया जा सकता है। परन्तु जनता में शुद्ध सनातन धर्म के प्रचार तथा प्रसार का उत्तरदायित्व ब्राह्मणों के ही ऊपर है। यही ब्राह्मण महासम्मेलन का प्रधान उद्देश्य है।" आपने अपने भाषण की समाप्ति धर्म तथा ब्राह्मण के महत्त्व के प्रतिपादक निम्नांकित श्लोकों से की है :

"सत्यः सनातनो यश्च, धर्मो देवर्षिसत्कृतः।
स कथं विप्लवेभ्यश्च नात्मानमुद्धरिष्यति॥

---

१. द्रष्टव्य, विद्यामन्दिर पत्रिका—वर्ष १३ अंक १३ (१९७९ ई०), पृ० सं० १०-१९, रामनगर (वाराणसी)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत्पादपद्ममधरत् पद्मनाभो हृदा स्वयम् ।
तेभ्यो जगत्पुनीतेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नुमः सदा ॥"

यह सम्मेलन बड़ा ही सफल रहा। इसमें अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए जन-जागरण की आवश्यकता पर बल दिया गया। इसी के फलस्वरूप 'ब्राह्मण सम्मेलन' नामक पत्र का प्रकाशन हुआ जो कुछ दिनों के बाद 'पण्डित पत्र' के रूप में परिवर्तित हो गया।

इस सम्मेलन के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पं० लक्ष्मण शास्त्री द्राविड़ ने काशी में 'वर्णाश्रम स्वराज्य संघ' नामक एक संस्था की स्थापना की थी। यह संस्था अनेक वर्षों तक जीवित रही। संघ के अनेक अधिवेशन भारत के विभिन्न प्रदेशों में प्रतिवर्ष होते थे। सनातन धर्म के प्रचार में इस संघ का बड़ा ही अधिक योगदान रहा। अनेक वर्षों तक धर्म की रक्षा तथा प्रचार का इस संघ ने अच्छा कार्य किया था। परन्तु काल की गति के साथ ही इस संघ का ह्रास होने लगा और धीरे-धीरे यह काल के विकराल गाल में चला गया। परन्तु इस संघ ने अल्पावधि में ही धर्म-प्रचार का जो उपयोगी कार्य किया था उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इस ब्राह्मण महा-सम्मेलन तथा वर्णाश्रम स्वराज्य संघ की स्थापना शास्त्रीजी के कर्मठ जीवन तथा अध्यवसाय का ही फल था।

(ख पं० राजेश्वर शास्त्री द्राविड

(आस्पद—द्राविड, उपाधि—पण्डितराज)

पं० लक्ष्मण शास्त्री द्राविड के द्वारा प्रवर्तित साङ्गवेद विद्यालय तथा वर्णाश्रम-स्वराज्य संघ आदि कार्यों में शास्त्री जी के असामयिक निधन के कारण जो रिक्तता आ गई थी उसकी पर्याप्त पूर्ति उनके सुयोग्य पुत्र पं० राजेश्वर शास्त्री द्राविड के द्वारा की गई। राजेश्वर शास्त्री जी के अध्ययन तथा अध्यापन का प्रधान विषय नव्यन्याय था। इस विषय का सम्यक् परिशीलन इन्होंने अपने गुरुवर म० म० वामाचरण भट्टाचार्य के चरणों में बैठकर किया था। इस विषय के ये निष्णात प्रतिभाशाली तथा तर्क-कुशल विद्वान् माने जाते थे। फलतः शास्त्र के गहन विषयों के विश्लेषण के अवसर पर पं० राजेश्वर शास्त्री अपनी सूक्ष्म विषयग्राहिणी बुद्धि का परिचय देते हुए विद्वानों को चमत्कृत कर देते थे। आरम्भ से ही इन्होंने वेतनभोगी बनकर नौकरी करने अथवा अध्यापकी जीवन बिताने का विचार छोड़ दिया था। फलतः अपने पिता पं० लक्ष्मण शास्त्री के द्वारा स्थापित साङ्गवेद विद्यालय की व्यवस्था करने तथा उसके अध्यक्ष पद को स्वीकार करने के लिए आग्रह करने पर ही इन्होंने इस पद को सुशोभित किया। यहीं पर रहकर ये भारतीय दर्शन की विभिन्न शाखाओं के चूड़ान्त ग्रन्थों का अध्यापन करते रहे। इस विद्यालय में अध्यापन का कार्य करते समय इन्होंने न्याय-शास्त्र के अनेक ग्रन्थों की टीका-टिप्पणी लिखी और उन्हें प्रकाशित किया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९४८ ई० में इनके जीवन में एक नया मोड़ आया। इसी वर्ष बिहार के राज्यपाल लोकनायक एम० एस० अणे इस विद्यालय की अध्यक्षता करने के लिए काशी आये हुए थे। उन्होंने अपने भाषण में प्राचीन राजनीति के अध्ययन-अध्यापन पर विशेष बल दिया और इस विद्यालय में राजनीति विभाग का उद्घाटन भी किया। तभी से राजेश्वर शास्त्री ने न्यायशास्त्र का अध्यापन छोड़कर प्राचीन राजनीति के अध्ययन-अध्यापन में अपना जीवन लगा दिया। वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना होने पर राज्यपाल जी की प्रेरणा से जब प्राचीन राजनीति शास्त्र का विभाग प्रारम्भ हुआ तब विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति पं० सुरति नारायणमणि त्रिपाठी ने इन्हें राजनीतिशास्त्र विभाग के अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित किया। यहाँ रहकर शास्त्री जी ने प्राचीन राजनीति का गम्भीर अध्ययन किया, जिसके फलस्वरूप इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना कर अपनी प्रतिभा का प्रसाद संस्कृत के पण्डितों को दिया। इसके साथ ही ये वर्तमान महाराजा काशीनरेश डा० विभूतिनारायण सिंह के राजगुरु भी रहे। महाराजा के द्वारा स्थापित 'काशीराज न्यास' के ये एक प्रधान सदस्य थे। इस ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित 'पुराण' नामक अर्धवार्षिक पत्रिका के सम्पादकीय मण्डल में भी रहे और विभिन्न अवसरों पर इन्होंने इस पत्रिका में प्राचीन राजनीति के सम्बन्ध में अनेक विद्वत्तापूर्ण निबन्धों का प्रकाशन भी किया।

शास्त्री जी महाराजा काशीनरेश के धार्मिक कार्यों के परामर्शदाता थे। महाराजा जिन धार्मिक कृत्यों का अनुष्ठान किया करते थे उनमें शास्त्री जी का सहयोग तथा परामर्श रहता था। ये काशीनरेश के महाराज कुमार के 'ट्यूटर' भी थे। इन्होंने तर्क-शास्त्र के साथ ही राजकुमार को वेद और वेदाङ्गों की विधिवत् शिक्षा दी थी।

शास्त्री जी समय-समय पर विचार गोष्ठी (सेमिनार) का भी आयोजन काशीनरेश की अध्यक्षता में किया करते थे जिसमें ये प्राचीन राजनीति शास्त्र के पण्डितों तथा आधुनिक राजनीति के विद्वानों को आमन्त्रित कर विचार-विनिमय करते थे। इसके साथ ही ये आधुनिक राजनीति के पण्डितों को प्राचीन भारतीय राजनीति के तत्त्वों से परिचित कराने का भी प्रयास करते थे।

यह अत्यन्त दुःख का विषय है कि अभी हाल ही में (सन् १९७९ ई०) में इनका असामयिक देहावसान हो गया है।

वेद का महत्त्व

धर्म की महत्ता, उसके प्रतिपादक वेद का महत्त्व तथा उसके प्रकाशन की क्षमता रखने वाले ब्राह्मणों की उपादेयता के विषय में यह प्राचीन श्लोक तीनों में परस्पर सामञ्जस्य स्थापित करते हुए एक बड़े महत्त्व की बात कह रहा है :

'उच्चैर्गतिर्जगति सिध्यति धर्मतश्चेत्
तस्य प्रमा च वचनैः कृतकेतरैश्चेत्।
तेषां प्रकाशनदशा च महीसुरैश्चेत्
तानन्तरेण निपतेत् क्व नु मत्प्रणामः॥"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्लोक का आशय है कि धर्म के ही द्वारा संसार में मानवों की उच्चतम गति अर्थात् मुक्ति सिद्ध होती है और उस धर्म का ज्ञान अकृत्रिम, अपौरुषेय तथा नित्य विचारों के द्वारा अर्थात् वेदों के द्वारा सम्पन्न होता है और उन अकृत्रिम वचनों—वेदों—का प्रकाशन तपस्वी ब्राह्मणों के ही द्वारा सिद्ध होता है। ऐसी स्थिति में ऐसे ब्राह्मणों को छोड़कर प्रणाम कहाँ गिरे? अर्थात् तद्व्यतिरिक्त किन्हें अपना मस्तक झुकाया जाय? इन तीनों उच्चगति—धर्म-वेद-ब्राह्मण का मञ्जुल समन्वय ही—जगत् के प्राणियों के उद्धार करने का एकमात्र साधन है। फलतः वेद के द्वारा व्यवस्थित समाज ही विश्व के कल्याण का सर्वोपरि साधन है—इस विषय में भारतीय विद्वानों में ऐकमत्य है। देखिए, अर्थशास्त्र के प्रणेता कौटिल्य त्रयी द्वारा व्यवस्थित समाज की महिमा के के विषय में उद्घोष कर रहे हैं—

व्यवस्थितार्यमर्यादः कृतवर्णाश्रमस्थितिः।
त्रय्या हि रक्षितो लोकः प्रसीदति न सीदति॥

वेद ही आर्यों के आचरण की मर्यादा को व्यवस्थित करता है; चार वर्ण तथा चार आश्रमों की स्थिति निर्धारित करता है। फलतः वेदत्रयी के द्वारा लोक की संसार की; रक्षा होती है। वेद के द्वारा रक्षित लोक ही प्रसन्न रहता है—उन्नति प्राप्त करता है। वह कभी विपन्न नहीं होता—कष्ट नहीं पाता। इसी तथ्य के आधार पर ही तो धर्मशास्त्रों की रचना हुई है। श्रुति ने जो संक्षिप्त शब्दों में कहा है स्मृति उन्हीं का अनुवर्तन करती है। इसीलिए महाकवि कालिदास ने रघुवंश में कहा है—श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्'' अर्थात् श्रुति का अनुगमन स्मृतियाँ करती हैं। स्मृतियों की वेदानुगामिता सुप्रसिद्ध है। मनुस्मृति ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि जो कुछ यहाँ धर्मचर्चा की गई है वह सब वेदानुगामी है। वह धर्म वेद में कहा गया है, क्योंकि वेद ही सब ज्ञानों का आगार है—

''यः कश्चित् कस्यचिद् धर्मो मनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः॥''

मनुस्मृति २।७

यही वैदिक दृष्टि है राजेश्वर शास्त्री जी की भारतीय राजनीति के विषय में।

ग्रन्थ

पण्डितराज राजेश्वर शास्त्री द्राविड़ ने हिन्दी में दो नवीन ग्रन्थों का प्रणयन कर प्राचीन भारतीय राजनीति के स्वरूप का स्पष्ट परिचय दिया है। प्रथम ग्रन्थ का नाम है—(१) **शान्ति का अग्रदूत** तथा दूसरे का नाम है **वेदों का अपौरुषेयत्व**—जो प्रथम ग्रन्थ का ही द्वितीय भाग बतलाया गया है। 'शान्ति का अग्रदूत' नामक ग्रन्थ भारतीय राजनीति के नाना विषयों से सम्बन्ध रखता है, यथा—भारतीय राजनीति तथा धर्म का सम्बन्ध, पश्चिमी तथा पूर्वी नीति की तुलना के अनन्तर सन्धि का स्वरूप तथा भेद दिखलाया गया है। वर्णाश्रम धर्म के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर्गत क्षात्रधर्म का रूप विवेचन किया गया है। भारतवर्ष में निर्वाचन की शैली दिखाई गई है। उम्मीदवारों के गुणों की परीक्षा दिखाकर वास्तविक जनमत के रूप का निरूपण है। नीति तथा धर्म का सामञ्जस्य दिखलाकर सत्त्व गुण को राजनीति का प्राणरूप बताया गया है। तदनन्तर साम, दाम, दण्ड, भेद के स्वरूप का विवेचन किया गया है तथा इनके प्रयोग के काल का संकेत दिया गया है। दान के विषय में राजनीति की दृष्टि क्या होनी चाहिए--आदि विषयों का शास्त्रप्रमाण से संवलित सरगर्भित विवेचन कर प्राचीन भारत की राजनीति के सिद्धान्त व्याख्यात हैं।

भारतीय राजनीति के विवेचन के अनन्तर उसकी आधारशिला की विवेचना आवश्यक है। वह आधारशिला वेद ही है। नीति का लक्षण शास्त्री जी ने इस प्रकार किया है--"प्रत्यक्ष-परोक्ष-अनुमानलक्षणप्रमाणत्रयनिर्णीतायां फलसिद्धौ देशकालानुकूल्ये सति यथासाध्यं उपायानुष्ठानलक्षणा क्रिया नीतिः नयः।"

अर्थात् प्रत्यक्ष, परोक्ष, अनुमान आदि तीनों प्रमाणों की कसौटी पर कसकर फल-निष्पत्ति के लिए जिन उपायों का निर्णय किया जाता है, उनका देश, काल और सामर्थ्य की संगति में प्रयोग करने की विधि नीति अथवा नय है।

(२) इस नीति के परिज्ञान के लिए वेद का ज्ञान आवश्यक है। राजेश्वर शास्त्री ने 'वेदों का [1]अपौरुषेयत्व' नामक अपने ग्रन्थ में वेद के स्वरूप का, नित्यत्व का एवं अपौरुषेयत्व का विमर्श बड़े तर्क तथा युक्ति के सहारे इस लघुकाय, परन्तु महत्त्वशाली ग्रन्थ में किया है। वेद को स्थायी संघटन का मुख्य आधार बता कर संघटन और सुमति, स्थायी संघटन का स्वरूप एवं साधन का निरूपण प्रमाणों द्वारा किया गया है। वैदिक मन्त्र शब्दमय नहीं हैं जिससे इनकी रचना का प्रसंग उपस्थित होता हो। वे तो परमात्मा के निःश्वासरूप अलौकिक शब्दराशि हैं जिनका दर्शन ऋषियों ने अपने प्रातिभ चक्षु के द्वारा किया--इतना ही कहा जा सकता है। वेद के कालनिर्णय के प्रयास को ग्रन्थकार पल्लवग्राही मानता है। वेद सर्वथा अपौरुषेय है--इसका प्रतिष्ठापन राजेश्वर शास्त्री जी ने बड़े ही मार्मिक तर्कों के द्वारा किया है। ग्रन्थ के अन्त में वे वेदों के महत्त्व का प्रतिपादन बड़े ही स्पष्ट शब्दों में करते हैं--

"वेदों की विचारधारा अविच्छिन्न गति से भारतीय जन-जीवन को प्रभावित करती रही है। इतिहास इसका साक्षी है कि विषम परिस्थितियों में वेदों का आश्रय लेने से भारतीय संस्कृति का अस्तित्व बना रहा। वेदों की ओजस्विनी शक्ति हमें प्रभावित करती रही है। वेद ही भारतीय संस्कृति का एकमात्र माध्यम एवं प्रतीक है। वेद ही भारतीय राष्ट्र की आत्मा है और इसीलिए वेदों को धर्म का मूल बताया जाता रहा है—

'वेदोऽखिलं धर्ममूलं सर्वज्ञानमयो हि सः।'

---

१. प्रकाशक—सांगवेद विद्यालय स्थित गीर्वाणवाग्वर्धिनी सभा, रामघाट, वाराणसी, सं० २०२८ विक्रमी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार वेद सबके हितकारक मार्ग का उपदेशक तथा परम् सुहृद् होने से भारतीयों द्वारा परम आदरपूर्वक सेवनीय है।[1]

(३) पं० राजेश्वर शास्त्रीजी की सबसे महत्त्वपूर्ण कृति कौटिलीय अर्थशास्त्र की **'वैदिक सिद्धान्तरक्षिणी'** नामक टीका है। यह टीका कामन्दकीय नीतिसार तथा अर्थशास्त्र की जयमंगला टीका को आधार मानकर लिखी गयी है। इन्होंने साङ्गवेद-विद्यालय की राजनीति कक्षा में समय-समय पर कौटिलीय अर्थशास्त्र के सम्बन्ध में जो भाषण दिया था उन्हीं व्याख्यानों को संकलित कर इस ग्रन्थ का प्रकाशन किया गया है। इन्होंने अर्थशास्त्र के १५ अधिकरणों में से प्रथम अधिकरण के समग्र १७ अध्यायों पर अपनी मौलिक टीका लिखी है। परन्तु यहाँ आदि के केवल पहले और दूसरे अध्याय की ही टीका प्रकाशित है। इसके साथ ही साथ इन्होंने अर्थशास्त्र की प्राचीन जयमंगला नामक टीका की भी विस्तृत टीका की है जिसका नाम इन्होंने "क्रोड़पत्र" रखा है।[2] इस टीका के अनुशीलन करने से पता चलता है कि राजनीति तथा तत्सम्बद्ध विषयों के रहस्य समझने और समझाने में—उसके तथ्यों के उद्घाटन में—इनकी प्रतिभा कितनी अन्तर्निविष्ट थी। इस ग्रन्थ में इतने प्रमेयों का अन्तर्निवेश किया गया है कि यह सामान्य टीकाग्रन्थ न होकर पाण्डित्यपूर्ण भाष्य हो गया है।

इस मौलिक व्याख्या में नाना प्रकार के शास्त्रीय विषयों की अवतारणा की गई है तथा विरोधों का परिहार भी दिखाया गया है। राजा की देवत्व भावना के विषय में बड़ी सुन्दर व्याख्या शास्त्रीजी ने की है। उसका सारांश इस प्रकार है— मनु ने राजा को नररूपेण देवता माना है (महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति)। उधर शाण्डिल्यसूत्र राजा में देवत्व का प्रतिषेध करता है। इस वैषम्य की संगति कैसे बैठेगी? जब तक राजा ईश्वर की आज्ञा का अनुसरण करता है, मर्यादा से विचलित नहीं होता, तब तक मानव होने पर भी सात्त्विक होने के कारण वह ईश्वरत्वेन उपास्य ही माना गया है। मर्यादा से विचलित होने पर उसकी सात्त्विकता नष्ट हो जाती है और जीवभाव ही रह जाता है। ऐसी स्थिति में वह उपास्य नहीं रह जाता (पृ० ३२)।

शक्ति का निर्वचन बड़े पाण्डित्यपूर्ण प्रकार से किया गया है (पृ० १०८–११६ तक)। भावप्रकाशन के द्वारा शक्ति का लक्षण है—सर्वान्तर्यामि-परमात्मसमवेत-ज्ञानानन्दक्रिया-प्रमात्रयमिश्रणस्य शक्तिरूपत्वम्' अर्थात् परमात्म-समवेत ज्ञान, आनन्द तथा क्रिया की तीनों प्रमाओं का जीव में सम्मिश्रण होना शक्ति पदार्थ है।

---

१. वेदों का अपौरुषेयत्व, पृ० ७२।

२. कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम् (अध्याय द्वयात्मकम्) वैदिक सिद्धान्तरक्षिणी टीकया पत्रिकया च सहितम्।

हनुमान मंदिर न्यास (हनुमानजी लेन, कलकत्ता–७) तथा गीर्वाण-वाग्वर्धिनी सभा रामघाट, वाराणसी के द्वारा प्रकाशित, वि० सं० २०३१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाना ग्रन्थकारों के मतों का उल्लेख कर इस शब्द की विस्तृत व्याख्या शास्त्रीजी ने की है। विविध विद्याओं की निन्दा तथा स्तुतिबोधक वाक्य शास्त्रों में उपलब्ध होते हैं। इसका समन्वय बड़ी सुन्दर रीति से दिखाया गया है (पृ० १४३–१४६)।

श्री राजेश्वर शास्त्रीजी का नव्य न्याय के अध्ययन पर विशेष आग्रह था। बिना इसकी सहायता के विद्या आदि के यथार्थ स्वरूप का बोध नहीं होता। इसीलिए पृ० १४७ पर उन्होंने आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता तथा दण्डनीति के लक्षण का रूप नव्य-न्याय की शैली में किया है। इसी प्रकार शास्त्रकारों के विभिन्न मतों के समन्वय में भी शास्त्रीजी की बुद्धि बड़ा चमत्कार दिखलाती है। विद्याओं के प्रधानाप्रधानत्व के विषय में चाणक्य और मनु में पार्थक्य है। इस पार्थक्य का निवारण कर दोनों का मत-समन्वय बड़े कौशल से दिखाया गया है (पृ० १६३) इसी प्रकार राजनीति के विषय में बृहस्पति के अपूर्व मत की बड़े विस्तार से मीमांसा की गई है, (पृ० १६४-१६७)।

इसी प्रकार पण्डितराज राजेश्वर शास्त्री ने राजनीति को व्यावहारिक शास्त्र होने पर भी उसके अन्तरंग में विद्यमान वेदानुप्राणित आध्यात्मिकता की सत्ता मान कर उसके ऊहापोह करने में अपने अलौकिक पाण्डित्य का उत्कर्ष दिखलाया है। फलतः 'कौटिलीयमर्थशास्त्रम्' की शास्त्रीजी की 'वैदिक सिद्धान्तरक्षिणी' टीका नितान्त प्रौढ़, प्रामाणिक तथा प्रमेयबहुल है—इसमें किसी प्रकार भी दो मत नहीं हो सकते। यही अच्छा होता कि शास्त्रीजी के द्वारा प्रणीत शेष टीका भी प्रकाशित हो जाती और प्राचीन राजनीति के स्वरूप का विवेचन कर अनेक भ्रान्तियों को दूर करने में समर्थ होती। ऐसी आशा रखना समुचित ही है।

शिष्य-मण्डली

पं० श्री राजेश्वर शास्त्रीजी के शिष्यों की एक लम्बी परम्परा है। उन्हें प्राचीन राजनीति और नव्यन्याय—इन दोनों शास्त्रों के अध्यापन के ऊपर विशेष आग्रह था। नव्यन्याय तो उनका गुरु के चरणों में बैठकर परिश्रमपूर्वक अभ्यस्त शास्त्र है। अतः इसके प्रति उनका आग्रह रखना सर्वथा स्वाभाविक है। प्राचीन राजनीति के प्रति उनका अनुराग उनके जीवन में कुछ विलम्ब से उत्पन्न हुआ। इसका अनु-शीलन उन्होंने स्वतः अपनी प्रतिभा के बल पर किया। फलतः नव्यन्याय तथा प्राचीन राजनीति में उनसे शिक्षा प्राप्त करने वाले अनेक सुयोग्य विद्वान् तैयार हुए जिनमें पं० **हरिराम शुक्ल** तथा पं० **रामचन्द्र खनंग** नितान्त प्रसिद्ध हैं। इन दोनों विद्वानों की गति नव्यन्याय में बहुत ही गम्भीर थी। शास्त्रार्थ करने में ये दोनों पण्डित बड़े ही प्रतिभाशाली तथा ओजस्वी थे। खनंगजी ने तो कुछ दिन तक हिन्दू विश्वविद्यालय में दर्शन का अध्यापन किया था। इसके अनन्तर संस्कृत विश्वविद्यालय में उनकी नियुक्ति हो गई थी। श्री हरिराम शुक्ल तर्कशास्त्र के बड़े ही निपुण तथा मर्मज्ञ विद्वान् माने जाते थे। राजनीति तथा धर्मशास्त्र विषयों में भी इनकी गति बड़ी सूक्ष्म

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा प्रशंसनीय थी। वे अनेक वर्षों तक संस्कृत विश्वविद्यालय में न्यायशास्त्र का अध्यापन करते थे। कुछ दिन पूर्व इन दोनों विद्वानों का देहान्त हो गया।

वल्लभराम शालिगराम साङ्गवेद विद्यालय

यह प्रसिद्ध महाविद्यालय काशी में गंगा के तट पर रामघाट मुहल्ले में स्थित है। इसकी स्थापना तथा उन्नति में पं० लक्ष्मण शास्त्री द्राविड तथा नागरवंशोद्भव वल्लभराम मेहता के सुशिक्षित परिवार का मणिकांचन योग है। काशी का यह मेहता-परिवार धर्मनिष्ठा, वेद-संरक्षण, सनातन धर्म की संतत उन्नति तथा संस्कृत विद्या के प्रचार एवं प्रसार के लिए हृदय से कृतसंकल्प है। इस परिवार का विस्तृत व्यापार कलकत्ता में स्थित है। लक्ष्मण शास्त्री उन दिनों कलकत्ता विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्राध्यापक थे। वेद संरक्षण के निमित्त उन्होंने इस वंश के धुरन्धर कार्यकर्ता मेहता पं० बिहारीलालजी को प्रेरित किया। ये वल्लभरामजी के भागिनेय तथा संस्थान के कार्यसंचालक नितान्त धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। इस विद्यालय की स्थापना १९७७ (सं० १९२० ई०) में माघ शुक्ल १३ रविवार के दिन काशी में काशी नरेश महाराजा प्रभुनारायण सिंह के द्वारा की गई। उसी समय से काशीनरेश इसके स्थायी समापति हैं। आज भी इस विद्यालय के समापति होने का गौरव काशिराज डा० विभूतिनारायण सिंह को प्राप्त है।

विद्यालय का उद्देश्य केवल छात्रों को परीक्षा में उत्तीर्ण कर नौकरी दिलाना ही नहीं है, प्रत्युत शास्त्रोक्त विधान के अनुसार वेदरक्षा, धर्मरक्षा और देशरक्षा के उद्देश्य से यहाँ अध्ययन तथा अध्यापन होता है। विद्यालय में वैदिक संस्कृति को हर प्रकार से प्रोत्साहन देने का विधान यथासम्भव रखा गया है। इतना ही नहीं, धर्म की विषम समस्याओं का, जो काशी में तथा बाहर समय-समय पर उत्पन्न हुआ करती हैं, समाधान शास्त्र रीति से देना भी लक्ष्यों में अन्यतम है। विद्यालय में प्राचीन आदर्शों पर पूर्ण ध्यान रखा जाता है। विशेषतः न्याय की ओर छात्रों की अभिरुचि विशेष रूप से यहाँ जागरित की जाती है। साधारण पण्डित भी न्याय को केवल वाग्-विलास ही मानते हैं परन्तु यह बात तथ्य नहीं है। तथ्य तो यह है कि तर्कविद्या में किया गया परिश्रम मोह को दूर करता है, बुद्धि को विमल बनाता है, संस्कृत के प्रयोग में व्यवहार शक्ति को उत्पन्न करता है तथा अन्य शास्त्रों के अभ्यास की योग्यता छात्रों में पैदा करता है। फलतः यह बड़ा उपकारी शास्त्र है। इसका वर्णन इस प्राचीन श्लोक में किया गया है—

मोहं रुणद्धि विमलीकुरुते च बुद्धिं
सूते च संस्कृतपदव्यवहारशक्तिम्।
शास्त्रान्तराभ्यसन-योग्यतया युनक्ति
तर्कश्रमो न कुरुते कमिहोपकारम्॥

विद्यालय को आरम्भ काल से ११ वर्ष तक पण्डित लक्ष्मण शास्त्रीजी की कर्मठता तथा विद्यावैभव के द्वारा लाभान्वित होने का गौरव प्राप्त है। १९८८ वि०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१९३१ ई०) में शास्त्रीजी के देहावसान होने के अनन्तर इस विद्यालय के शिक्षण-संचालन का सूत्र उनके ही सुयोग्य पुत्र पं० राजेश्वर शास्त्री द्राविड़ के हाथों में आया और उनके प्रयत्न से इस विद्यालय की शिक्षा-दीक्षा में सर्वत्र उन्नति हुई। इसी वर्ष के आसपास पं० बिहारीलाल मेहता के देहावसान होने पर विद्यालय के संचालन का भार वर्तमान संचालक मेहता पं० मुरारीलालजी को सौंपा गया। वे और उनके चारों अनुज बड़ी निष्ठा तथा लगन से विद्यालय का आर्थिक पक्ष सदा वृद्धिगत होता रहा। फल यह है कि सुव्यवस्था, सुन्दर संचालन, निष्ठापूर्वक अध्ययन एवं अध्यापन की दृष्टि में यह सांगवेद विद्यालय वाराणसी में मूर्धन्य विद्यालयों में अन्यतम है।

इस विद्यालय में नाम के अनुसार ही चारों वेदों तथा ६ अंगों की पढ़ाई विधिवत् होती है। वेद की उपलब्ध शाखाओं के अध्यापन की यहाँ सुन्दर व्यवाया है। गंगा-तट पर विद्यालय का भव्य भवन है जिसके साथ छात्रों के निवास की व्यवस्था है। १९२८ ई० में सम्पन्न पण्डित-महासम्मेलन में विशुद्ध संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना का जो प्रस्ताव पास किया था उसका यह विद्यालय पूर्णतया अनुगमन करता है। सर्व-सम्मति से इस वेदवेदाङ्ग विद्यालय को विशुद्ध संस्कृत विश्वविद्यालय का रूप प्रदान किया गया है। इसकी अलग परीक्षाएँ १९४० ई० से हुआ करती हैं। इनमें उत्तीर्ण होने वाले छात्रों को विशेष पुरस्कार दिया जाता है। यहाँ वर्ष के प्रधान उत्सव तथा धर्माचार्यों की जयन्तियाँ भी बड़े नियम से मनाई जाती हैं। शंकराचार्य जयन्ती प्रति-वर्ष वैशाख शुक्ल पंचमी को समारोह के साथ सम्पन्न की जाती है। प्रतिवर्ष भाद्र-शुक्ल पक्ष में गणेश उत्सव महाराष्ट्र पद्धति से मनाया जाता है। यह आयोजन कई दिनों तक चलता है जिसमें विद्वानों के भाषण नाना शास्त्रीय विषयों पर किये जाते हैं। प्राचीन राजनीति की शिक्षा यहाँ बड़े उत्साह के साथ छात्रों को दी जाती हैं। विद्यालय के अन्तर्गत ही गीर्वाणावाग्वर्धिनी सभा स्थापित है जिसमें धर्मशास्त्र के जटिल प्रश्नों के उत्पन्न होने पर उनका उत्तर शास्त्र के अनुशीलन से विधिवत् दिया जाता है। निःस्वार्थ भाव से यह सभा धर्मशास्त्रीय प्रश्नों पर अपने शास्त्रीय मत का अविच्छिन्न दान करती है। इसका सम्मान पूरे भारतवर्ष में है। छात्रों के भोजन-छाजन का प्रबन्ध यहाँ समुचित रीति से किया जाता है। इस विद्यालय में विक्रम वर्षाशासन की भी व्यवस्था है जिसके अनुसार उत्तम कक्षा की वार्षिक परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले विद्यालय के प्रत्येक छात्र को १०० रुपये और मध्यम कक्षा में पचास रुपये प्राप्त होते हैं। विद्यालय के अन्तर्गत एक सुसम्पन्न पुस्तकालय भी है जो लक्ष्मण शास्त्री के नाम पर 'लक्ष्मण पुस्तकालय' कहलाता है। इसमें बहुत-से दुष्प्राप्य हस्तलेखों का संग्रह है। उत्सवों के अवसर पर वेदान्त, मीमांसा और ईश्वर-भक्ति के सम्बन्ध में छात्रों की संस्कृत तथा हिन्दी में वाद-प्रतियोगिता भी होती है। इतना ही नहीं, इसका एक प्रकाशन विभाग भी है जिसके द्वारा संस्कृत के ग्रन्थों का प्रकाशन किया जाता है।

इस विद्यालय की स्थापना मेहता पण्डित बिहारीलाल ने की और इसका नाम-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करण अपने मामा वल्लभराम तथा शालिग्राम के नाम पर किया। वल्लभरामजी इस मेहता परिवार के वरिष्ठ पुरुष थे जिन्होंने अन्त में संन्यास लेकर अपना जीवनयापन किया था। उनका जन्म १८९३ वि० सं० (१८३६ ई०) में तथा निधन १९७५ वि० सं० (१९१८ ई०) में हुआ था।

इस संक्षिप्त विवरण से इस विद्यालय की विशेषता का परिचय पाठकों को भली-भाँति मिल सकता है। ६० वर्ष से यह विद्यालय अपने पूर्वोक्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अश्रान्त परिश्रम कर रहा है और उसमें इसको पूरी सफलता प्राप्त हो रही है। काशी का यह एकमात्र विद्यालय है जिसमें विस्तृत 'हाल' भी प्राचीन पण्डितों के अभिराम चित्रों से सुसज्जित किया गया है। इसे देखकर यह महनीय पण्डितों की स्मृति जाग्रत हो जाती है और दर्शकों के हृदय में विद्या तथा धर्म के प्रति अनुराग की भावना सद्यः प्रस्फुटित हो जाती है—

प्राचो सन्ध्या काचिदन्तर्निशायाः,
प्रज्ञादृष्टेरञ्जनश्रीरपूर्वा।
वक्त्री वेदान् पातु वो वाजिवक्त्रा,
वागीशाख्या वासुदेवस्य मूर्तिः॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२४

पण्डित पञ्चानन तर्करत्न

(आस्पद—भट्टाचार्य, उपाधि—महामहोपाध्याय)

पञ्चानन तर्करत्न भारतीय दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान् थे। संस्कृत के पण्डित अध्यापन प्रतिभा के धनी होते हुए भी लेखनी के विषय में प्रायः बद्धमुष्टिता का आश्रय करते हैं। परन्तु तर्करत्न जी इन दोनों के धनी थे। यद्यपि ये शास्त्रार्थी विद्वान् नहीं थे, तथापि इनकी वाणी में ओज था तथा लेखनी में शक्ति विराजमान थी। इन्होंने संस्कृत और बंगला दोनों भाषाओं को अपनी प्रतिभा का प्रसाद प्रदान किया है। ये सिद्धान्त-वादी मनीषी थे। अपने सिद्धान्तों से समझौता करना ये कथमपि नहीं जानते थे। इसके लिए बड़ा से बड़ा त्याग करने के लिए ये सदा तैयार रहते थे। इन्होंने सन् १९२९ ई० में शारदा एक्ट के पास होने के विरोध में 'महामहोपाध्याय' की अपनी महनीय उपाधि का परित्याग देखते-देखते कर दिया था। इसी घटना से इनको सिद्धान्तवादिता का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

जन्म की घटना

पं० पञ्चानन तर्करत्न का जन्म बाबा तारकेश्वर—जो बंगाल के प्रसिद्ध जाग्रत देवता माने जाते हैं—के प्रसाद से हुआ था। इनके जन्म की कथा तर्करत्न जी के ही शब्दों में इस प्रकार है।[1] "मेरे पूज्यपाद पितृदेव स्वर्गीय नन्दलाल विद्यारत्न भट्टाचार्य महाशय परम धार्मिक, सुकवि और पण्डित थे। मेरी पूज्यचरणा जननी उनकी अत्यन्त अनुगता, आदर्श सती सहधर्मिणी थीं। हमारा वंश पाण्डित्य में उज्ज्वल था। हमारे वृद्ध प्रपितामह का बहुपण्डित-मण्डित विशाल वंश क्रमशः क्षय को प्राप्त हो गया। केवल एकमात्र मेरे पितृदेव ही बचे थे। परन्तु पितृदेव निःसन्तान थे। माता जी की अवस्था २४ वर्ष की थी। किन्तु इसी उम्र में उनका मासिक स्त्रीधर्म बन्द हो गया। वंशलोप की आशंका प्रबल हो उठी। तब बन्धु-बान्धवों ने पिता जी को दूसरा विवाह करने के लिए आग्रह किया किन्तु पितृदेव ने दैवकृत्य में मन लगा दिया, उनकी बात नहीं मानी।

उस समय बाबा तारकेश्वर के मन्दिर तक पहुँचना अत्यन्त दुर्गम था। रेल का रास्ता नहीं था। मार्ग में लुटेरों का डर था। इसी अवस्था में मेरी परमाराध्या जननी कुछ रक्षकों को साथ लेकर बाबा के चरणों में शरणागत होने के लिए चलीं और वहाँ

---

१. पण्डित पञ्चाननजी भट्टाचार्य तर्करत्न—तारकेश्वर के शिव—प्रत्यक्ष घटना 'कल्याण'—शिवाङ्क विशेषांक, वर्ष ८, अंक १, पूर्ण संख्या ८५, अगस्त, सन् १९६६ ई०, पृष्ठ ४५०–५१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँच कर पाँच दिनों तक केवल चरणामृत पान कर मन्दिर के सामने मण्डप में पड़ी रहीं। इसके बाद उन्हें स्वप्नादेश हुआ और उसके अनुरूप आचरण करने पर मासिक धर्म पुनः होने लगा। एक ही वर्ष के अन्दर जननी के गर्भ से मेरे ज्येष्ठ भ्राता ने जन्म लिया। जननी का वन्ध्यादोष दूर हो गया।

माताजी के मन में यह भाव छिपा हुआ था कि किसी तरह मेरा वन्ध्या नाम दूर हो जाय, इसका कारण वही पिताजी के दूसरे विवाह करने की चर्चा थी। परन्तु दो वर्ष छह महीने के बाद ही मेरे भाई की मृत्यु हो गयी। दीर्घजीवी पुत्र की कामना से आशा लगाकर मेरी पूजनीया जननी पुनः बाबा तारकेश्वर के शरणापन्न हुईं। इस बार भी स्वप्नादेश प्राप्त हुआ और उसके अनुरूप कार्य करते कुछ समय बीता। पश्चात् तीसवें वर्ष की उम्र में मैं माता के गर्भ में आया।"

इस प्रकार पं० पञ्चानन तर्करत्न का जन्म कलकत्ता के समीप भाटपाड़ा नामक स्थान में सं० १९२६ वि० (सन् १८६६ ई०) में हुआ था। इनके पिता का नाम पं० नन्दलाल विद्यारत्न था जो बहुत बड़े विद्वान् तथा कवि थे।

शिक्षा

बाल्यकाल में पञ्चाननजी ने अपने पिता से व्याकरणशास्त्र का अध्ययन किया था। इनका घोर दुर्भाग्य ही था जब नौ वर्ष के वय में इनके माता और पिता एक दिन के व्यवधान से कालकवलित हो गये। पिता की छाया इनके सिर से सदा के लिए हट गयी। इन्होंने रघुमणि विद्याभूषण एवं जयराम न्यायभूषण महाशयों के निकट व्याकरण एवं काव्यशास्त्र का अध्ययन किया। इस समय कविता लिखने की प्रतिभा जाग उठी। १३ वर्ष के वय में काव्य की उपाधि परीक्षा प्राप्त कर ली। इसके अनन्तर इन्होंने सांख्य, स्मृति एवं वेदान्त का अध्ययन किया। तत्पश्चात् इन्होंने भट्टपल्ली के प्रसिद्ध विद्वान् महामहोपाध्याय **शिवचन्द्र सार्वभौम** महाशय से न्यायशास्त्र का अध्ययन कर तर्करत्न की उपाधि प्राप्त की।

उन्नीस वर्ष के वय में ये इन्दौर राजा के दरबार में गये और समस्यापूर्ति तथा द्रुत कविता की रचना कर प्रशंसा तथा पुरस्कार दोनों प्राप्त किया। १२७३ बंगाब्द में बंगवासी पत्रिका के प्रतिष्ठाता योगेन्द्रचन्द्र बसु ने शास्त्र-प्रकाश विभाग की प्रतिष्ठा की। उसमें इन्होंने अनेक संस्कृत ग्रन्थों का सम्पादन तथा बंगला में अनुवाद प्रकाशित किया। इतना ही नहीं, ये उन दिनों बंगवासी कालेज में अवैतनिक रूप में संस्कृत का अध्यापन भी करते थे।

तर्करत्नजी जब तीस वर्ष के वय के थे तभी इनकी धर्मपत्नी का असामयिक देहान्त हो गया। अतः इसके बाद इन्होंने वैद्यनाथधाम में निवास करने वाले ब्रह्मचारी बालानन्दजी से योग की शिक्षा ग्रहण की और योग-सम्बन्धी क्रियाओं की साधना में अपना जीवन बिताने लगे। तर्करत्नजी का कर्मक्षेत्र प्रायः बंगाल ही रहा परन्तु ये पचास वर्ष के वय में काशीवास करने के लिए बनारस आये थे। यहाँ निवास करते समय इन्होंने सहस्रों छात्रों को न्याय और वेदान्तशास्त्रों का अध्यापन किया। इससे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशी में इनकी बड़ी ख्याति हुई। इनकी असामान्य विद्वत्ता, असाधारण धर्मनिष्ठा, आदर्श चरित्रपालन और सिद्धान्तवादिता के कारण काशी के विद्वत्समाज में इनका बड़ा आदर और सम्मान था। इनके त्याग और तपस्या की सभी लोग मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते थे। इन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में लगभग दस वर्षों तक अवैतनिक रूप में अध्यापन का कार्य किया। इससे इनके आर्थिक त्याग का पता चलता है। ये उपाधि की व्याधि से सर्वथा मुक्त थे और उसे तृणवत् परित्याग करने में तनिक भी संकोच नहीं करते थे। सन् १९२९ ई० में ब्रिटिश सरकार ने एक बाल-विवाह-निरोधक बिल को कानून का रूप प्रदान किया जो 'शारदा एक्ट' के नाम से प्रसिद्ध है। इस बिल के अनुसार १४ वर्ष से कम वय वाली बालिकाओं तथा १८ वर्ष से कम अवस्था वाले बालकों के विवाह को कानून के द्वारा दण्डनीय अपराध घोषित किया गया था। काशी के कट्टर तथा पुराणपन्थी पण्डितों ने इस कानून को अशास्त्रीय तथा धर्मविरोधी कहकर इसका घोर विरोध किया था। परन्तु इन पण्डितों के विरोध के बावजूद भी यह बिल पास हो गया। अतः सनातनी पण्डितों ने इस कानून के प्रति अपनी असहमति और विरोध प्रकट करने के लिए ब्रिटिश सरकार के द्वारा प्रदत्त अपनी 'महामहोपाध्याय' की पदवी का परित्याग कर दिया। पण्डित पञ्चानन तर्करत्न भी प्राचीन परम्परा के विद्वान् थे। अतः इन्होंने भी इस कानून को धर्मविरोधी समझ इसके विरोध में महामहोपाध्याय की अपनी उपाधि को ब्रिटिश सरकार को लौटा दिया था। इस उपाधि को धारण करने वाले व्यक्ति को सरकार से कुछ आर्थिक सहायता भी मिलती थी, परन्तु अपनी आर्थिक स्थिति अच्छी न होने पर भी जीवन में अर्थ को विशेष महत्त्व न देने वाले पञ्चरत्नजी ने अपनी इस पदवी को तिलाञ्जलि दे दी।

ये बड़े ही कट्टर सिद्धान्तवादी पुरुष थे। अपने सिद्धान्तों का परित्याग इन्हें कथमपि सह्य नहीं था। इसके लिए व्यक्तिगत पारिवारिक सम्बन्धों को परित्याग करने में भी तनिक नहीं हिचकते थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत महाविद्यालय के भूतपूर्व अध्यक्ष (प्रिंसिपल) महामहोपाध्याय पं० प्रमथनाथ तर्कभूषण तर्करत्नजी के बहनोई लगते थे। इनकी छोटी बहिन का विवाह तर्कभूषणजी के साथ हुआ था। अतः ये दोनों विद्वान् आपस में घनिष्ठ सम्बन्धी थे। पण्डित तर्कभूषणजी समाज और समय के अनुसार चलने वाले सुधारवादी विद्वान् थे। अतः शारदा ऐक्ट के सम्बन्ध में कट्टर सनातनी तर्करत्नजी से इनका विरोध हो गया। बाल्यावस्था से ये दोनों व्यक्ति परस्पर सम्बन्धी होने के साथ ही मित्र भी थे। परस्पर दोनों में बड़ा सौहार्द था। परन्तु शारदा ऐक्ट को लेकर, सिद्धान्तों की बलिवेदी पर इनका पारस्परिक सौहार्द सदा के लिए नष्ट हो गया। सन् १९२८ ई० में जब महामना मदनमोहन मालवीय ने शूद्रों को भी मन्त्रदीक्षा देना प्रारम्भ किया तब प्रमथनाथजी ने अनेक शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर मालवीयजी के इस कार्य का समर्थन किया परन्तु पञ्चरत्नजी ने इसका घोर विरोध किया। इस प्रकार पुनः दोनों में सैद्धान्तिक मतभेद होने के कारण पारस्परिक विरोध बढ़ता गया। यह विरोध इतने उग्र रूप में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणत हो गया कि ऐसा सुनने में आता है कि इन दोनों सम्बन्धियों ने—विशेषकर तर्करत्नजी ने प्रमथनाथजी से भाषण करना भी बन्द कर दिया। इस प्रकार इस सैद्धान्तिक मतभेद ने पारिवारिक औदासीन्य का रूप धारण कर लिया। परन्तु इस उदासीनता में मनोमालिन्य का अंश रंचकमात्र भी नहीं था। अपने जीवन की गोधूलि में, अपना अन्तिम समय निकट जानकर पं० तर्करत्नजी ने अपने बहनोई प्रमथनाथजी को उनके ज्येष्ठ पुत्र के द्वारा बुलवाया और उनसे स्पष्ट निवेदन किया कि "तर्कभूषणजी, आप ऋषिकल्प और आदर्श ब्राह्मण हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आपने अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए नहीं, किन्तु जन-हित का ध्यान रखकर जो सैद्धान्तिक दृढ़ता और तत्परता प्रदर्शित की वह सचमुच ही प्रशंसनीय है। आप पारस्परिक मतभेद के लिए मुझे क्षमा करेंगे।" इस प्रकार जीवन के अन्तिम दिन में प्रमथनाथजी से क्षमा की याचना कर इन्होने मानों अपने मतभेद के लिए प्रायश्चित्त कर लिया।

आचार-विचार

पण्डित पञ्चानन तर्करत्न आचार-विचार के पालन करने में बड़े ही कट्टर तथा कष्ट-सहिष्णु व्यक्ति थे। ये अपने परिवार से भिन्न व्यक्तियों के हाथ से बनाया गया भोजन नहीं करते थे। जीवन के मध्याह्न के में ही पत्नी की असामयिक मृत्यु हो जाने के कारण ये केवल अपने पुत्रों के द्वारा ही पकाया गया भोजन ग्रहण करते थे। ये स्वयंपाकी थे। अतः परिवार के घनिष्ठ सदस्यों को छोड़कर अन्य के द्वारा पाचित अन्न ग्रहण इनके द्वारा परित्याज्य ही था। रेलगाड़ी में यात्रा करते समय ये कई दिनों तक निराहार ही रह जाते थे। सन् १९०७ ई० के बंग-भंग आन्दोलन के समय तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने केवल झूठे सन्देह के कारण इन्हें बन्दी बनाकर तीन दिनों तक बन्दीगृह (जेल) में रखा था। उसी जेल में श्रीअरविन्द और उनके अनुज वारीन्द्रनाथ घोष आदि उनके अनेक अनुयायी भी राज्यद्रोह के अभियोग में जेल-जीवन बिता रहे थे। परन्तु किसी प्रमाण के अभाव में इन्हें जेल से मुक्त कर दिया गया। बन्दीगृह में निवास के इन तीन दिनों तक इन्होंने अन्न-जल कुछ भी ग्रहण नहीं किया। इस प्रकार इतने घोर कष्ट को सहकर इन्होंने अपनी धर्मप्राणता का परिचय दिया था। एक बार ये पशुपतिनाथजी का दर्शन करने के लिए नेपाल गए हुए थे। वहाँ भयंकर शीत पड़ रहा था। परन्तु इस कठोर शीत का तनिक भी ध्यान न देकर ये स्नानादिक कृत्य से कभी विरत नहीं हुए। कुछ दिनों तक इन्होंने अग्निहोत्र का व्रत भी ले रखा था और प्रतिदिन प्रातः एवं सायंकाल नियमित रूप से अग्निहोत्र किया करते थे। इस प्रकार प्राचीन पद्धति के प्रति घोर निष्ठा तथा धर्मप्राणता ही इनके जीवन की विशेषतायें थीं।

परम्परावादी स्वरूप

पंडित पंचानन तर्करत्न ने शारदा ऐक्ट का घोर विरोध किया था जिसकी चर्चा पहिले की जा चुकी है। हरिजनों के मन्दिर प्रवेश के भी ये प्रबल विरोधी थे। माल-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीयजी द्वारा शूद्रों को मंत्रदीक्षा देने के आन्दोलन का भी इन्होंने कदापि समर्थन नहीं किया। इन कारणों से कोई इन्हें प्रतिगामी (रिऐक्शनरी) व्यक्ति भले ही कहे परन्तु ये प्रतिगामी नहीं, प्रत्युत परम्परावादी पुरुष थे। ये जिस वातावरण में उत्पन्न हुए थे, जिन परिस्थितियों में इनका पालन-पोषण तथा शिक्षा-दीक्षा हुई थी वे सभी प्राचीन परम्परा-पद्धति की पोषक थीं। ऐसी परिस्थिति में इनका परम्परावादी होना स्वाभाविक ही था। प्राचीन संस्कृति की रक्षा करना ही इनके परम्परावादी होने का एकमात्र कारण था।

कर्मठ जीवन

पं० पंचानन तर्करत्न बड़े ही कर्मठ व्यक्ति थे। यद्यपि ये प्राचीन परम्परा के पक्षपाती थे तथापि समाज में वर्तमान किसी अन्याय अथवा सामाजिक बुराई को सहन नहीं कर सकते थे। इनके कर्मठ जीवन एक उदाहरण बाबा तारकेश्वर मंदिर के महन्त का निष्कासन है। बंगाल के इस प्रसिद्ध तीर्थस्थान में एक ऐसा व्यक्ति तारकेश्वर का महन्त बन गया था जो चरित्र से नितान्त हीन था। वह मंदिर में पूजा करने के लिए आई हुई महिलाओं के साथ अनाचार करता था। इस प्रसिद्ध मंदिर के महन्त के ऐसे अपवित्र आचरण को पंचानन तर्करत्न सहन नहीं कर सकते थे। इन्होंने उस चरित्रभ्रष्ट महन्त को निकालने के बड़ा भारी आन्दोलन खड़ा किया। कलकत्ता की पण्डित सभा — जिसके ये स्वयं अध्यक्ष थे – के द्वारा प्रस्ताव पारित कर इन्होंने महन्त के विरुद्ध भ्रष्टाचार तथा दुराचार का मुकदमा चलाया। इसके साथ ही महन्त के विरुद्ध प्रचण्ड आन्दोलन प्रारम्भ कर जनमत को अपने पक्ष में किया। ये इस आन्दोलन के स्वयं प्रवर्तक तथा नेता थे। अन्त में कोर्ट से महन्त की हार हो गई। वह महन्ती की गद्दी से बुरी तरह से निकाला गया। इस प्रकार पंचानन जी का प्रयास सफलीभूत हो गया। जनता के कार्य को लेकर आन्दोलन करने, मुकदमा लड़ने तथा उसमें विजय प्राप्त करने के कारण बंगाल में इनका बड़ा नाम हुआ और इनकी कीर्ति चारों ओर फैल गयी।

इन्होंने काशी के वर्णाश्रम स्वराज्य संघ की स्थापना तथा उसकी प्रगति में भी विशेष योगदान किया था। इस संघ की स्थापना वर्णाश्रम के आधार स्वराज्य की प्राप्ति करना था। परन्तु इसका प्रधान लक्ष्य शारदा ऐक्ट का विरोध करना ही था। प्राचीन परम्परा के पक्षपाती होने के कारण इन्होंने भी इस ऐक्ट का विरोध किया। परन्तु इनका यह विरोध केवल मौखिक ही नहीं था। बल्कि इन्होंने अपनी 'महामहोपाध्याय' की महनीय पदवी का भी परित्याग कर दिया था जो इन्हें १९२८ ई० में अंग्रेजी सरकार द्वारा सम्मान के रूप में दी गई थी। इस घटना से इनकी परम्परा-प्रियता तथा त्याग का पता चलता है।

ग्रन्थ-रचना

पं० तर्करत्नजी ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है जिन्हें दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क) संस्कृत में ग्रन्थ रचना

(ख, बँगला में ग्रन्थ रचना।

विषय की दृष्टि से विचार करने पर इन्हें अनुवादित तथा टीका ग्रन्थ एवं मौलिक ग्रन्थों की कोटि में रखा जा सकता है। तर्करत्नजी ने तर्कशास्त्र में ही प्रगल्भता तो प्राप्त की ही थी, काव्यरचना में भी इनकी कवित्व शक्ति अद्भुत थी। इन्होंने अनेक काव्यों की रचना करके इसे प्रमाणित कर दिखाया है।

(क) **संस्कृत में रचना** (काव्यसंबंधी)

(१) तर्करत्नजी ने **प्राणदूत** तथा **इन्द्रियानुशासन** नामक दो खण्डकाव्यों की रचना की है। इनका प्राणदूत हंसदूत की ही भाँति खण्डकाव्य ज्ञात होता है जिसमें इनके दार्शनिक विचारों का काव्यमयी भाषा में प्रकाशन हुआ है।

(२) **सर्वमंगलोदय**—यह इनका श्लिष्ट काव्य है जिसमें श्लेष के चमत्कार दिखावट कर इन्होंने अपनी काव्यचातुरी का परिचय दिया है।

(३) **पार्थाश्वमेध**—तर्करत्नजी के द्वारा रचित यह एक महाकाव्य है जो अर्जुन को लेकर लिखा गया है।

(४) **अमरमंगल**—यह एक सुन्दर नाटक है जो काव्य की उपाधि परीक्षा में पाठ्य ग्रन्थ के रूप में निर्धारित किया गया था।

(५) **द्वैतोक्ति रत्नमाला**—(दार्शनिक)

(६) शोकम् (काव्य-ग्रन्थ)

(७) विशुद्ध नित्यकर्म

(८) प्रायश्चित्तविधिः

(९) ग्रहणकृत्य व्यवस्था

तर्करत्नजी सनातनधर्म के नैष्ठिक आचरणकर्ता ही न थे, प्रत्युत उनका यह महान् उद्देश्य था कि भारत की हिन्दू जनता वैदिक धर्म के रहस्य को समझे और उसे अपने जीवन में ठीक-ठीक उतार कर पूर्ण रूप से धार्मिक बने। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्हें उचित अवसर भी प्राप्त हो गया। बंगवासी नामक प्रसिद्ध पत्रिका के प्रतिष्ठाता योगेशचन्द्र वसु का भी इन्हें पूर्ण सहयोग प्राप्त हो गया। वसुजी ने 'शास्त्र प्रकाश विभाग' नामक जो शास्त्रीय ग्रन्थमाला का प्रवर्तन किया, उसके अध्यक्ष पद पर पंचानन जी को प्रतिष्ठित किया। फलस्वरूप इन्होंने पुराण, स्मृति, धर्मशास्त्र आदि विषयों के प्रौढ़ तथा लोकप्रिय ग्रन्थों का बंगला में अनुवाद कर बंगाल के घर-घर में पहुँचा दिया। इससे इनकी कीर्ति तथा धार्मिक निष्ठा समस्त बंगाल में फैल गई। संस्कृत में इन्होंने दर्शनशास्त्र संबंधी अनेक ग्रन्थों की विद्वत्तापूर्ण टीका और विवृति लिखी है। ये टीकाएँ इनके दर्शन-संबंधी पण्डित्य का पूर्णतया परिचय देती हैं।

सांख्य दर्शन पर इन्होंने पूर्णिमा नामक टीका लिखी है जो अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण है। वैशेषिक दर्शन पर परिष्कार नामक टीका की रचना इन्होंने की है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायशास्त्र के अनुमानखण्ड पर 'अनुमिति-विवृति' नामक बड़ी ही गंभीर टीका की रचना इन्होंने की है। इस प्रकार पंचरत्नजी ने न्याय, वैशेषिक तथा सांख्य शास्त्रों पर अपनी शोधपरक एवं सरल टीकाएँ लिखकर अपनी गंभीर और अलौकिक विद्वत्ता को प्रकाशित किया है। भारतीय दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में इनकी ये अमूल्य कृतियाँ अनुपम देन है।

(ख) बंगला के रचित ग्रन्थ

संस्कृत के अतिरिक्त इन्होने अपनी मातृभाषा की भी अलौकिक सेवा की है। इन्होंने (१) श्रीमद्भागवत और (२) अध्यात्मरामायण का सरल बंगला में अनुवाद किया है। इसके अतिरिक्त इन्होंने (३) महाकवि भवभूति रचित मालती-माधव नाटक, (४) श्रीहर्षवर्धन द्वारा रचित रत्नावली नाटिका तथा (५) दण्डी के दशकुमारचरित का बंगला भाषा में अनुवाद प्रस्तुत कर संस्कृत के नाटकों की माधुरी का आनन्द अपने बंगीय बंधुओं को प्रदान किया है। इन्होंने शंकराचार्य के भक्तिमूलक ग्रन्थों का भी दो खण्डों में प्रकाशन किया है। इस प्रकार तर्करत्न जी काव्यरचना में जितने निपुण थे, उतने ही कुशल दर्शनशास्त्र के ग्रन्थों की टीका लिखने में थे। साहित्य तथा दर्शन दोनों शास्त्रों में इनकी प्रतिभा समानरूप से प्रकाशित हुई है। हिन्दू रमणी बंगभाषा में लिखा रोचक उपन्यास है जिसमें भारतीय ललना का उज्ज्वल चरित्र चित्रण किया गया है।

देवी भाष्य

पं० तर्करत्न ने ब्रह्मसूत्र के ऊपर 'देवी भाष्य' की संस्कृत में रचना की है जो प्राचीन आचार्यों के भाष्यों से टक्कर लेता है। यह ग्रन्थ इनके वेद तथा तन्त्र के प्रकाण्ड पाण्डित्य का सूचक है। इससे इनकी गहन शाक्त दृष्टि का तथा शाक्त धर्म के प्रति अभिनिवेश का पता चलता है। इनका कहना है कि वेदान्ती लोग जिसे 'ब्रह्म तत्व' के नाम से अभिहित करते हैं, वही 'ब्रह्म' शक्ति पद-वाच्य है। ब्रह्म शक्ति से भिन्न कोई पदार्थ नहीं है। अपने इसी सिद्धान्त को पुष्ट करने के लिए इन्होंने सम्पूर्ण 'ब्रह्मसूत्र' के ऊपर नाना तर्कों तथा युक्तियों से संवलित, वैदिक तथा तांत्रिक प्रमाणों से पुरिपुष्ट महनीय भाष्य का निर्माण किया है जो इनके जीवन की महती उपलब्धि है।

'ब्रह्मसूत्र' के द्वितीय सूत्र की इन्होंने जो शक्तिपरक व्याख्या की है वह इस प्रकार है :—

'जन्माद्यस्य यतः' १।१।२ (ब्रह्मसूत्र) इस सूत्र के प्रथम पद का पदच्छेद समस्त आचार्यों के अनुसार यह है—जन्मादि·अस्य यतः। अर्थात् इस जगत का जन्म, स्थिति तथा लय जिसके द्वारा सम्पन्न होता है वही ब्रह्म है। परन्तु पं० पंचानन तर्करत्न ने इस सूत्र का पदच्छेद इस प्रकार किया है :—जन्म आद्यस्य यतः। अर्थात् जिनसे आद्य अर्थात् प्रथम उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा जी का जन्म हुआ वही ब्रह्म है। अब प्रश्न

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह है कि ब्रह्मा का जन्म किससे हुआ ? इस प्रश्न के उत्तर में पंचरत्न जी ने ऋग्वेद के देवी सूक्त (१०।१२५।५) का यह प्रमाण दिया है :—

'यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणम्' अर्थात् मैं (देवी) जैसा चाहती हूँ वैसा ही रुद्र तथा ब्रह्मा जी की सृष्टि करती हूँ। इतना ही नहीं, दुर्गा सप्तशती में ब्रह्माजी के द्वारा आद्या शक्ति की स्तुति में भी यही बात कही गई है :—

"विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च। कारितास्ते.....॥" अर्थात् हे देवि विष्णु जी, मेरा (ब्रह्मा जी) तथा शिव जी का शरीर ग्रहण आपके ही द्वारा हुआ है। श्वेताश्वतर उपनिषद् के आरम्भ और मध्य में भी शक्ति-स्वरूप ब्रह्म का निर्देश किया गया है। इस उपनिषद् के अन्त में शक्ति शब्द का स्पष्ट निर्देश न होने पर भी शक्ति के स्वरूप का संकेत प्राप्त होता है। यथा—

"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं,
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तं ह देवमात्मबुद्धि प्रकाशं
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥
(श्वे० उ० ६।१८)

इस मंत्र का तात्पर्य यह है कि जगत् के मूल कारण का निश्चय करने के लिए ऋषिगण समाधि में लीन हो गये। उन्हें योगदृष्टि से यह प्रत्यक्ष हुआ कि काल, स्वभाव, अदृष्ट आदि अनेक कारणों का मूल कारण स्वगुणों से निगूढ़ा एक देवात्म-शक्ति है। देव शब्द का अर्थ है द्योतमान, जिसका तात्पर्य है स्वप्रकाश। आत्मशक्ति का अर्थ है चित् शक्ति। जो स्वगुणों से अर्थात् अपने से संबंधित होने वाले सत्त्व, रज और गुण से (अचित् शक्ति से) छिपी हुई रहती है। अतः चित् शक्ति अकेले न होकर अचित् शक्ति से संवलित है। इस प्रकार चित् और अचित् शक्ति का सम्मिलन का ही नाम ब्रह्म है।

इसी प्रकार तर्करत्न जी ने ब्रह्मसूत्र के सभी सूत्रों की शक्तिपरक व्याख्या बड़ी योग्यता से की है। इन्होंने अर्थों की पुष्टि में वेद-शास्त्रों से समुचित प्रमाण भी दिया है। इस प्रकार इनकी अलौकिक विद्वत्ता तथा अगाध पाण्डित्य का पता चलता है। आजतक किसी भी आचार्य ने ब्रह्मसूत्र का शक्तिपरक अर्थ नहीं किया है। सर्वप्रथम तर्करत्न जी ने ही इस महाकठिन ग्रन्थ की शक्तिपरक मौलिक व्याख्या की है। अतः इनका शक्तिभाष्य अनेक दृष्टियों से नितान्त मौलिक रचना है जो इनकी अलौकिक प्रतिभा तथा प्रकाण्ड वैदुष्य का प्रतिपादक है। इनके अन्य ग्रन्थों के नाम भले नष्ट हो जायँ, परन्तु केवल इस शक्तिभाष्य के कारण इनकी कीर्ति सदा अजर अमर रहेगी और ब्रह्मसूत्र के व्याख्याकार महान् आचार्यों में इनकी गणना सदा होती रहेगी।[1]

---

१. कल्याण—शक्ति अंक, सन् १९३४, गीता प्रेस, गोरखपुर।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायशास्त्र तो तर्करत्न जी का अपना विषय ही ठहरा। इस विषय में इनकी विद्वत्ता का क्या कहना है। यहाँ इनके दो लेखों की ही चर्चा की जायेगी जिनसे इनके न्यायशास्त्र के अतिरिक्त अन्य शास्त्रों में भी प्रकाण्ड पाण्डित्य का पता चलता है। 'कल्याण' पत्रिका के 'ईश्वरांक' में तर्करत्न जी ने 'न्यायदर्शन में ईश्वर' शीर्षक एक लेख लिखा था।[1] इस लेख में न्यायदर्शन के सूत्रों का विशिष्ट तथा मौलिक अर्थ करके इन्होंने ईश्वर की सिद्धि की है। न्यायसूत्रों के कुछ सूत्रों का अर्थ इतना नवीन तथा मौलिक है कि वह विद्वानों को भी आश्चर्य में डाल देता है। इनका दूसरा लेख 'कल्याण' के 'कृष्णांक' में कृष्ण तत्व के नाम से प्रकाशित हुआ था।[2] पुराणों, महाभारत और भागवत में कृष्ण का तीन रूपों में वर्णन उपलब्ध होता है :—

(१) योगसिद्ध पुरुष के रूप में, (२) अंशावतार और (३) पूर्णावतार के रूप में। इन तीन रूपों में सामञ्जस्य कैसे स्थापित किया जाय यह एक महान् समस्या है। तर्करत्न जी ने अपने उपर्युक्त लेख में न्याय, सांख्य, वेदान्त आदि दर्शनों का प्रमाण देकर एवं वैष्णव मत की दृष्टि से इन तीनों में अविरोध दिखलाने का सफल प्रयास किया है। इस समन्वय को स्थापित करने में युक्ति, तर्क तथा शास्त्र वचनों का बड़ा सुन्दर ऊहापोह किया गया है। इससे लेखक के विस्तृत ज्ञान, अगाध पाण्डित्य तथा विवेचनाशक्ति का पूर्ण परिचय मिलता है।

तर्करत्न जी में काव्यप्रतिभा भी विशेष चमत्कारिणी थी। जीवन के आरम्भकाल में, अपनी छात्रावस्था में ही ये कविता तथा कहानी लिखा करते थे। इन्होंने आगे चल कर बंगाल की प्रसिद्ध पत्रपत्रिकाओं में, जिनमें वंगवासी, विद्योदय, नवजीवन, प्रतिभा तथा जन्मभूमि मुख्य हैं, अनेक शास्त्रीय प्रबन्ध तथा साहित्यिक कथा कहानियों को भी प्रकाशित कराया था। ऐसे धुरन्धर विद्वान् का निधन काशीधाम में ही १३४६ बंगाब्द के आश्विन मास में हुआ।

तर्करत्न जी के सुयोग्य पुत्र श्री जीव भट्टाचार्य अपने पिता के समान ही संस्कृत के प्रख्यात कवि हैं। उनका संक्षिप्त यहाँ दिया जा रहा है—

श्री श्रीजीव भट्टाचार्य का जन्म पश्चिम बंगाल के जिला २४ परगना में भाटपाड़ा में सन् १८९३ में हुआ। बंगाल संस्कृत समिति के काव्यतीर्थ, व्याकरणतीर्थ तथा न्यायतीर्थ की प्राच्य उपाधि प्राप्त करने के उपरान्त आपने कलकत्ता विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम० ए० परीक्षा विशिष्टता के साथ पास की। बंगाल सरकार द्वारा आपको अनुसन्धान छात्रवृत्ति की प्रदान की गई और तत्पश्चात् कलकत्ता व जादवपुर विश्वविद्यालयों में २५ वर्ष से अधिक समय तक संस्कृत के प्राध्यापक रहे। इस समय (१९६९ ई०) आप भाटपाड़ा संस्कृत कालेज के अवैतनिक प्रधानाचार्य हैं।

---

१. कल्याण—ईश्वरांक—१९३० ई० गीता प्रेस गोरखपुर।
२. 'कल्याण,' कृष्णांक वर्ष ९, अंक १ अगस्त १९३१ ई० गोरखपुर।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री श्रीजीव भट्टाचार्य संस्कृत के एक विशिष्ट विद्वान् हैं और आपने लगभग २५ संस्कृत नाटकों तथा कुछ कविताओं की रचना की है। आपका प्रथम सुखान्त नाटक "भट्टसंकटम्" सन् १९२५ में प्रकाशित हुआ। इसके उपरान्त इस क्षेत्र में आपने अनेकों रचनाएँ कीं, जैसे सात अंकों का एक नाटक निगमानन्द कृतम् (१९५२), दो अंकों का एक सुखान्त नाटक चौरा कतुरियम् (१९६१), तीन अंकों का नाटक विवेकानन्द कृतम् (१९६२), पांच अंकों का एक नाटक महाकवि कालिदासम् (१९६२), तथा "कुमारसम्भवम्" का (सन् १९६५) नाटकीकरण किया गया। अंग्रेजी, बंगला व संस्कृत में आपके भाष्य व प्रस्तावना के साथ एकसौ कविताओं का एक संग्रह "सारस्वतशतकम्" सन् १९६५ में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने प्रकाशित किया। "पाण्डवविक्रमम्" नामक एक दरबारी महाकाव्य सन् १९६७ में जादवपुर विश्वविद्यालय की संस्कृत पत्रिका में प्रकाशित किया।

विशिष्ट अध्यापक तथा लेखक के रूप में श्री श्रीजीव भट्टाचार्य ने संस्कृत पाण्डित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योग दिया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२५

पण्डित देवनारायण त्रिपाठी (तिवारी जी)

(आस्पद—तिवारी, उपाधि—व्याकरणसार्वभौम)

पंडित देवनारायण त्रिपाठी पण्डितमण्डली में 'तिवारी जी' के नाम से विख्यात थे। ये भाष्यान्त व्याकरण के प्रौढ़ तथा प्रवीण पण्डित थे। अध्यापक रूप में इनकी ख्याति इतनी विपुल तथा विस्तृत थी कि इनके यहाँ पढ़ने वाले विद्यार्थियों का ताँता लगा रहता था। इनके अध्यापन की शैली बड़ी ही विचित्र थी। इन्होंने व्याकरण-शास्त्र के मूर्धन्य ग्रन्थों का इतना गम्भीर मनन किया था कि समस्त शास्त्र इनकी जिह्वा पर विद्यमान थे। इनकी अध्यापनपद्धति की विशेषता यह थी कि पाणिनि के किसी सूत्र की व्याख्या करते समय इस सूत्र के सम्बन्ध में जो कुछ व्याख्यान अनेक टीकाग्रन्थों में—यहाँ तक कि महाभाष्य में भी किया गया है, उसे ये एक साथ छात्रों को पढ़ा दिया करते थे। इससे इनके शिष्यों को विभिन्न टीकाग्रन्थों में लिखित विवेचन का सारांश एक साथ ही सुगमता से प्राप्त हो जाता था।

तिवारी जी का आचरण बड़ा ही सात्त्विक था। अध्ययन तथा अध्यापन, पूजन और पाठ छोड़कर इन्हें जीवन में दूसरा कोई काम नहीं था। सन्तति के अभाव के कारण ये एक विरक्त पुरुष का जीवन व्यतीत करते थे। काशी की पण्डितमण्डली में एवं शिष्यों में तिवारी जी अपने सरल स्वभाव, साधु जीवन एवं निर्मल आचरण के लिए प्रसिद्ध थे।

जन्म एवं अध्ययन

विहार में श्राद्ध के लिए प्रधान तीर्थ स्थान होने के कारण गया की प्रसिद्धि चिर-काल से चली आ रही है। इसलिए धर्मशास्त्र का कहना है कि मनुष्य को अनेक पुत्रों की कामना करनी चाहिए क्योंकि उनमें से कोई एक भी सुयोग्य निकल जाय तब गया में जाकर अपने पितरों का श्राद्ध तो करेगा जिससे सब पितृगण तर जायेंगे। गया क्षेत्र के समीपस्थ पुनपुन नदी के किनारे स्थित एक गाँव में तिवारी जी का जन्म वि० सं० १९२३ (१८६६ ई०) में हुआ था। इनके पिता का नाम रामचरण त्रिपाठी था। ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे। पिता ने नियमतः जन्म के बारहवें दिन इनका नाम 'देव-नारायण' रखा। कुछ लोग इनको हरिनारायण के नाम से भी जानते हैं। ये बालकपन से ही बड़े प्रतिभासम्पन्न तथा विनयी थे। अपने सच्चरित्र के कारण ही इस बालक ने शाकद्वीपी विद्वान् पं० विश्वेश्वर दत्त जी का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। विश्वेश्वर दत्त जी एक साधारण विद्वान् न होकर टेकारी में राजगुरु थे। इन्हीं विद्वान् से तिवारी जी ने व्याकरण शास्त्र का विधिवत् अध्ययन किया। यहाँ ही इन्होंने भाष्यान्त व्याकरण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में व्युत्पत्ति प्राप्त की। इसके पश्चात् इनका ध्यान काशी चलकर अपनी विद्या में पूर्णता प्राप्त करने की हुई। अतएव इन्होंने काशी आकर म० म० पं० शिवकुमार शास्त्री और पं० दामोदर शास्त्री के चरणों में बैठकर व्याकरण का प्रगाढ़ अध्ययन किया। इन दोनों दिग्गज वैयाकरणों के सम्पर्क में आकर इन्होंने अपनी विमल प्रतिभा के द्वारा नये-नये परिष्कारों का आविष्कार करके काशी की विद्वन्मण्डली को आश्चर्यचकित कर दिया। इन्होंने अनेक पण्डितों के आग्रह करने पर 'व्याकरणाचार्य' की परीक्षा **पण्डित भवानीदत्त दीक्षित** के नाम से दी और उपाधि प्राप्त की। और व्याकरण शास्त्र में सर्वश्रेष्ठ उपाधि आचार्य प्राप्त की। ये उस वर्ष के उत्तीर्ण वैयाकरण छात्रों में सर्वप्रथम हुए थे। तिवारी जी का अध्यापन कार्य इसी काशी में प्रारम्भ हुआ।

श्रीचन्द्र पाठशाला की स्थापना

श्रीचन्द्र जी गुरु नानक के ही पुत्र थे। गुरु नानक ने अपना एक अलग ही सिख सम्प्रदाय स्थापित किया। श्रीचन्द्र जी ने उससे हट कर एक अलग ही संप्रदाय चलाया जो **उदासीन संप्रदाय** के नाम से प्रसिद्ध है। इस संप्रदाय में वेदान्त तथा मीमांसा, न्याय आदि शास्त्रों में निपुण अनेक विद्वान् उत्पन्न हुए। काशी में उनके अनेक मठ हैं जो **'उदासीन मठ'** के नाम से प्रसिद्ध हैं। सिन्ध में कभी नितान्त प्रसिद्धि पाने वाला 'साधु-बेला मठ' भी काशी में विराजमान है और उदासी संप्रदाय में विद्वानों को तैयार करने के लिए अपना अलग महाविद्यालय स्थापित कर शिक्षादान में प्रवृत्त है। श्रीचन्द्र पाठशाला के संस्थापक **स्वामी गोविन्दानन्द जी** महाराज थे। कालान्तर में उन्हीं के शिष्य और बड़े ही कर्मठ साधु, वेदान्तकेशरी **स्वामी दर्शनानन्द जी** ने अपनी व्यवहार-निपुणता से इस कालेज की विशेष उन्नति की। वे इस कालेज के प्रिन्सिपल थे और इस कालेज के अभ्युदय के लिये सदा प्रयत्नशील थे। इस पाठशाला के स्थापन का उद्देश्य यही था कि उदासीन संप्रदाय में दीक्षित नवीन साधुओं को वेदान्त तथा भारतीय दर्शन की विधिवत् शिक्षा दी जाय जिससे वे समाज तथा संम्प्रदाय की उन्नति में महत्त्वशाली कार्य करने के सुयोग्य अधिकारी बने।

पं० देवनारायण त्रिपाठी ने इसी श्रीचन्द्र पाठशाला में आरम्भ में अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया। अध्ययन में ये जितने विद्वान् थे, उतने ही कुशल ये अध्यापन में भी सिद्ध हुए। इनके अध्यापन की कीर्ति काशी में खूब प्रसिद्ध हुई, नये पण्डितों में ये इस विषय में प्रथम कोटि के गिने जाते थे। हिन्दू विश्वविद्यालय के अन्तर्गत संस्कृत महा-विद्यालय के स्थापना के अनन्तर व्याकरण के पद के लिए एक सुबोध तथा लब्धकीर्ति विद्वान् की आवश्यकता प्रतीत हुई। महामना पं मालवीय जी की दृष्टि इन पर पड़ी और उन्होंने अपने महाविद्यालय में व्याकरण के पद पर इनकी नियुक्ति १९१९ ई० में कर दी। ६ महीना नहीं बीतने पाये कि संस्कृत कालेज के अध्यक्ष डा० गंगानाथ झा ने इन्हें अपने कालेज में व्याकरण के पद पर नियुक्त किया। अपनी मातृसंस्था के प्रति गाढ़ अनुराग होने के कारण इन्होंने विश्वविद्यालय कालेज की नौकरी छोड़ दी तथा संस्कृत कालेज की नियुक्ति को ग्रहण कर लिया। इन्होंने १९२० ई० से लेकर १९३८

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ई० तक लगातार १८ वर्षों तक इस कालेज की सेवा की। यहाँ अध्यापन कार्य से उनकी अनिन्दित कीर्ति का और भी प्रसार हुआ। और ये व्याकरणशास्त्र के मूर्धन्य अध्यापक होने की सार्वभौम कीर्ति से मण्डित हो गये। इनका काशीवास सन् १९४१ में हुआ।

सात्त्विक व्यक्तित्व

तिवारी जी का सात्त्विक जीवन पण्डितों के लिए भी अनुकरणीय एवं समादरणीय था। ये अत्यन्त दयालु, धर्मानुष्ठान में तत्पर तथा अत्यन्त संयमी थे। आप परोपकारी, उदाराशय तथा दीन-दुःखियों के सच्चे सहायक थे। इस विषय में इनका चरित्र बड़ा ही निर्मल तथा उदात्त था। एक निर्धन ब्राह्मण को कन्या के विवाह आदि मांगलिक कार्यों में इन्होंने स्वार्जित द्रव्य में से सात सौ रुपयों की सहायता दी थी। इनकी दयालुता की वह कहानी नितान्त प्रसिद्ध है जिसमें कहा जाता है कि इनसे उधार लेने वाले व्यक्ति की आकस्मिक मृत्यु हो जाने पर इन्होंने उसकी पत्नी को गहना बेंच कर रुपया चुकाने से ही नहीं रोका, प्रत्युत एक सौ रुपया अलग से देकर उसके और्ध्वदैहिक कार्य में सहायता पहुँचाई। कर्जे का रुपया बिल्कुल छोड़ दिया। ऐसे उदारचेता भगवत्परायण तथा छात्रों को विद्यावितरणशील पण्डित जी की जितनी प्रशंसा की जाय, वह सब थोड़ी ही है।

तिवारी जी आचारवान् पुरुष थे। इनका नित्य का यह नियम था ब्राह्ममुहूर्त में उठकर गंगास्नान करना और विश्वनाथ तथा अन्नपूर्णा का दर्शन करना। एक दिन ये मणिकर्णिका घाट पर स्नान करने के लिए गये। वहाँ स्नान करके किसी काष्ठफलक पर बैठकर ये पूजा कर ही रहे थे कि अचानक गंगा में गिर गये और वहीं इन्होंने गंगामाता की गोद में ही पञ्चत्व को प्राप्त कर लिया। इनको कोई सन्तान नहीं थी जो इनकी अन्त्येष्टि क्रिया सम्पादित करती। अतः इनके प्रिय शिष्य पण्डित सभापति उपाध्याय ने इनका दाहसंस्कार तथा श्राद्ध आदि संस्कारों को बड़े अनुराग तथा निष्ठा से सम्पन्न किया।

तिवारी जी की शिष्य परम्परा बड़ी लम्बी है। इनके पढ़ाये हुए अनेक विद्वान् शिष्य हैं जिन्होंने तिवारी जी की गुरु-शिष्य-परम्परा को आज भी अक्षुण्ण बनाये रखा है। इनमें से प्रसिद्ध तथा प्रधान केवल तीन शिष्यों का वर्णन यहाँ दिया जाता है।

(१) पण्डित रामाज्ञा पाण्डेय

(आस्पद पाण्डेय, उपाधि-वैयाकरणविचक्षण)

पण्डित रामाज्ञा पाण्डेय तिवारी जी की शिष्यमण्डली में लब्धकीर्ति विद्वान् थे। उत्तर प्रदेश के सबसे पूर्वी मण्डल बलिया जनपद के 'रतसड़' गाँव में इनका जन्म एक सदाचारी श्रीवैष्णव मतानुयायी ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आज से अस्सी-पचासी वर्ष पूर्व तिवारी जी से व्याकरण अध्ययन करने के अतिरिक्त इन्होंने पण्डित दामोदर शास्त्री, गंगाधर शास्त्री तथा शिवकुमार शास्त्री से भी शब्दखण्ड के उच्चस्तरीय ग्रन्थों का विधिवत् अध्ययन किया। आचार्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षा उत्तीर्ण होने के बाद अनेक वर्षों तक 'साधोलाल स्कालर' के रूप में इन्होंने डा० वेनिस से भी उपयोगी अनेक नवीन विषयों का भी श्रवण तथा मनन किया जिससे इनकी प्रतिभा का विमल प्रसार तथा परिष्कार सम्पन्न हुआ। व्याकरण शास्त्र में दार्शनिक तत्त्वों के अन्वेषण तथा शोध करने की इनकी प्रवृत्ति का उदय तभी से हुआ। इस विषय की मीमांसा में ये जीवन भर लगे रहे और सुदीर्घचिन्तन के परिणामस्वरूप इन्होंने **व्याकरण दर्शन** के तत्त्वों का विस्तृत विवेचन तीन भागों में किया, जिनमें तीसरा भाग (प्रतिमा) उनके निधन के अनन्तर अभी (१९७८ ई०) प्रकाशित हुआ है। इनके जीवनकाल में ग्रन्थ के दो भाग (भूमिका तथा पीठिका) संस्कृत विश्वविद्यालय से क्रमशः १९५४ ई० तथा १९६५ ई० में प्रकाशित हो चुके थे। और अन्तिम खण्ड भी वहीं से प्रकाशित हुआ है।

पण्डित जी ने अध्ययन तो काशी में ही जमकर किया, परन्तु इनकी प्रतिभा का प्रसाद काशीस्थ छात्रों को न मिलकर उत्कल के संस्कृत छात्रों को प्राप्त हुआ और बहुत दिनों तक प्राप्त हुआ। काशी में इन्होंने अध्यापन भी किया था, परन्तु लगभग १९२१-२२ ई० में इनकी नियुक्ति पुरी (जगन्नाथपुरी) के सरकारी संस्कृत कालेज में व्याकरण की गद्दी पर हो गई। वहाँ रहकर इन्होंने अनेक उत्कलीय छात्रों को पाणिनि व्याकरण की शिक्षा देकर सुबोध वैयाकरण बनाया। तथ्य तो यह है कि उत्कल देश में पाणिनीय व्याकरण के प्रथम प्रचारक के रूप में रामाज्ञा पाण्डेय को प्रत्येक उत्कलीय विद्वान् अवश्य सम्मान देगा और याद करेगा, क्योंकि इनसे पूर्व वहाँ पाणिनि-व्याकरण की शिक्षा का नितान्त अभाव था। इन्होंने ही वहाँ के छात्रों में इस दार्शनिक व्याकरण की ओर अभिरुचि जाग्रत की। कुछ दिनों तक बिहार में मुजफ्फरपुर में स्थित सरकारी संस्कृत कालेज में भी इन्होंने व्याकरण पढ़ाया तथा यहाँ से सेवानिर्मुक्त हुए। तदनन्तर संस्कृत कालेज काशी में इन्हीं के प्रशंसक सहृदय सुहृद् बाबू सम्पूर्णानन्द जी ने इन्हें व्याकरण-सम्बन्धी शोध कार्य को पूर्ण करने के लिए छात्रवृत्ति नियत कर दी जिससे इन्होंने अपनी चिर अभिलषित तथा परिश्रम-साध्य शोध ग्रन्थ को पूर्णता पर पहुँचा दिया। हाल ही में इनका निधन अपने ही गाँव में हुआ। नारायण की कृपा से इनका भरा-पूरा परिवार है जिसमें इनके आधे दर्जन पुत्र सुशिक्षित होकर विशिष्ट पदों पर कार्य करते हैं।

व्याकरणदर्शन

इन्होंने व्याकरण के दार्शनिक रूप को परिष्कृत करने में अथवा पूरा समय लगाया। व्याकरण एक प्रौढ़ दर्शन है जिसमें दार्शनिक सम्प्रदाय होने की पूर्ण-क्षमता है। प्रातिशाख्य (समस्त वैदिक संहिताओं से सम्बद्ध अनेक ग्रन्थ), निरुक्त, पातञ्जल महाभाष्य, भर्तृहरि के वाक्यपदीय, तथा नागेशभट्ट की सिद्धान्तमञ्जूषा में व्याकरण का दार्शनिक रूप, उसके वर्ण्य सिद्धान्त, पदार्थ चिन्तन आदि विषयों का गम्भीर विवेचन किया ही गया है। पण्डित रामाज्ञाजी ने अपनी प्रखर बुद्धि से इनका ऊहापोह बड़ी गम्भीरता तथा छानबीन के साथ किया है। फलतः इनका व्याकरण-दर्शन नामक ग्रन्थ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन खण्डों में विभक्त है—(१) भूमिका, (२) पीठिका तथा (३) प्रतिमा। और इनमें विषय के विवेचन में उनकी गम्भीर गवेषणाबुद्धि का पदे-पदे परिचय पण्डितों को मिलता है। प्रथम खण्ड की प्रस्तावना में पाण्डेयजी ने अपनी गुरुचतुष्टयी का उल्लेख किया है और लिखा है कि अन्तिम गुरु पण्डित शिवकुमार शास्त्रीजी उनका विवेचन सुनकर नितान्त प्रफुल्लित तथा आनन्दगद्गद हो जाते थे। इनकी विचक्षण बुद्धि के विषय में इनके सहयोगी सतीर्थ्य नारायणशास्त्रीजी ने इनका मूल्यांकन इन शब्दों में ठीक ही अंकित किया है—

नास्त्येकोऽपि तथाविधोऽत्र विषयो यस्मिन्न तेषां मति-
व्यापारं विदधाति सर्वविषयोदञ्चद्धियो ये सदा।
पाश्चात्येषु गवेषणाविषयेष्वप्युच्छलत्-कौशला
रामाज्ञेति यथार्थ-नामकलिता राजन्त्यमी पण्डिताः॥

(२) पण्डित नृसिंह त्रिपाठी

(आस्पद-त्रिपाठी; उपाधि-व्याकरणवाचस्पति)

इनका प्रसिद्ध नाम नृसिंह त्रिपाठी था। ये गाजीपुर मंडल के अन्तर्गत 'खढिया' गाँव के निवासी थे। बाल्यकाल से ही बड़े प्रतिभा-सम्पन्न छात्र थे। आरम्भिक अध्ययन अपने गाँव की पाठशाला में किया। तदनन्तर विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिए ये काशी आये और यहाँ पर ये तिवारीजी के चरणों में बैठकर व्याकरणशास्त्र के दुरूह ग्रन्थों का विधिवत अध्ययन किया। ये तिवारीजी के नितान्त अनुगत छात्र थे। यदि इन्हें उनका पट्टशिष्य कहा जाय जिसने व्याकरण शास्त्र के अध्ययन के लिए किसी दूसरे गुरु का मुँह नहीं देखा, तो यह कथन कथमपि अत्युक्ति नहीं कहा जायेगा। व्याकरणशास्त्र की आचार्य परीक्षा में सर्वश्रेष्ठ होने के कारण इनको विशेष परितोषिक मिला था। कई वर्षों तक पोस्ट-आचार्य कक्षा में इतर शास्त्रों के भी पढ़ने का इन्हें सुयोग प्राप्त हुआ था। न्यायशास्त्र में भी इनका अच्छा प्रवेश था। साहित्य में भी इनकी व्युत्पत्ति बहुत अच्छी थी। यहीं काशी में ही रहकर इन्होंने अध्यापन कार्य आरम्भ किया।

अध्यापन

ये पहले श्रीचन्द्र महाविद्यालय (कालेज) में व्याकरण शास्त्र का अध्यापन तिवारी जी के साथ करते थे। तिवारी जी की संस्कृत कालेज में नियुक्ति हो जाने पर उस कालेज के प्रधानाध्यापक पद पर ये प्रतिष्ठित हुए। आगे चलकर मारवाड़ी कालेज में भी इनकी नियुक्ति प्रधानाध्यापक के पद पर हुई।

व्याकरण ग्रन्थों के पढ़ाने में इनकी कीर्ति अपने गुरु के समान ही सातिशय थी। अध्यापक के साथ-साथ इन्होंने ग्रन्थ लेखन का भी कार्य किया। इनके दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—(१) मुक्तावली-प्रकाश (२) वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड-टीका। मुक्तावली प्रकाश[1] लघुरूप ग्रन्थ है। इसमें न्याय मुक्तावली के शब्द खण्ड का व्याख्यान प्रश्नोत्तर रूप में

१. प्रकाशक—गिरिजाप्रसाद शर्मा, गाजीपुर सं० १९८६।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया गया है। इस ग्रन्थ की प्रशंसा काशीनाथ पण्डितजी ने बड़े ही उदार शब्दों में की है। ग्रन्थकार का लक्ष्य न्याय के कठिन तत्वों को छात्रों के लिए सरल सुबोध बनाना है और इस लक्ष्य में वे सर्वथा सफल हैं।

वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड टीका[1]—इस टीका का नाम 'प्रकाश' टीका है। यह वाक्यपदीय के प्रथम काण्ड के ऊपर बड़ी ही प्रामाणिक व्याख्या है। इस टीका के विषय में पं० काशीनाथ शर्मा का यह मत श्लाघनीय है कि इस टीका में व्याख्यात शास्त्र के सब पदार्थ नितान्त स्फुट तथा उसी प्रकार अभिव्यक्त है जिस प्रकार सूर्य के आलोक में जगत् के पदार्थ नितान्त प्रकट होते हैं। यह टीका बड़े ही महत्त्व की है। इसमें नरसिंह त्रिपाठीजी का वैदुष्य तथा रचना कौशल नितान्त प्रामाणिक ठहरता है।

(३) पण्डित रामप्रसाद त्रिपाठी

पण्डित रामप्रसाद त्रिपाठीजी तिवारीजी के अन्तिम दिनों में व्याकरणागम में सुशिक्षित होने वाले प्रतिभाशाली विद्वान् हैं। व्याकरण के दोनों अंशों—प्रक्रिया तथा परिष्कार—में इनका वैदुष्य प्रशंसनीय है। अनेक शस्त्रार्थों में विजय पाकर अपनी वैजयन्ती फहराने का गौरव इन्हें प्राप्त है। कुछ वर्षों तक ये हिन्दू विश्वविद्यालय के अन्तर्गत संस्कृत महाविद्यालय में व्याकरण के प्राध्यापक थे। तदनन्तर वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय में प्राचीन व्याकरण के अध्यक्ष पद पर नियुक्त होकर इन्होंने प्रौढ़ अध्यापन तथा सुव्यवस्थित ग्रन्थलेखन द्वारा विशेष कीर्ति अर्जित की है। ये जैसे प्रकृष्ट विद्वान् हैं, वैसे ही सफल अध्यापक भी हैं। ये जौनपुर मण्डल के सरयूपारीण ब्राह्मण कुल में उत्पन्न सच्चरित्र, साधु-स्वभाव तथा निश्छल व्यवहार-सम्पन्न विद्वान् हैं। इनका मौलिक गवेषणामूलक शोध प्रबन्ध है—**पाणिनीयव्याकरणे प्रमाणसमीक्षा** जिसके कारण इन्हें संस्कृत विश्वविद्यालय से 'वाचस्पति' की श्रेष्ठ उपाधि प्राप्त हुई है।

व्याकरण शास्त्र एक परिपूर्ण दर्शन है। फलतः उसमें प्रमेय तथा प्रमाण दोनों का विवेचन पुङ्खानुपुङ्ख किया गया है। महर्षि पतञ्जलि से लेकर महावैयाकरण नागेशभट्ट तक आचार्यों ने अपने मौलिक ग्रन्थों में इन दोनों की विवेचना स्थान-स्थान पर अवश्यमेव की है, परन्तु उन सिद्धान्तों को एकत्र सुसम्बद्ध तथा व्यवस्थित स्वरूप देने का प्रयास बहुत कम किया गया था। इस अभाव की पूर्ति इस शोध-प्रबन्ध के द्वारा बड़ी योग्यता के साथ की गई है। अध्ययन एकांगी न होकर तुलनात्मक है। तत्तत् प्रमाणों के व्याकरणदिशा स्वरूप तथा वैशिष्ट्य निरूपण करने के पूर्व ही उनका न्यायादि दर्शनों में बहुशः विवेचित रूप का प्रमाणपुरःसर स्पष्ट प्रतिपादन कर ग्रन्थकार ने अपने विवेचन को तुलनात्मक तथा व्यापक बनाने का श्लाघनीय प्रयत्न किया है।[2]

●

१. प्रकाशक—वेदान्त-केसरी स्वामी दर्शनानन्द, प्रिंसिपल श्री चन्द्र कालेज, काशी। सं० १९९४।

२. वाराणसेय संस्कृत विद्यालय, काशी के अनुसन्धान विभाग द्वारा प्रकाशित, १९७२ ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२६

पण्डित काशीनाथ शास्त्री

(आस्पद--पाण्डेय, उपाधि--वैयाकरण वाचस्पति)

पण्डित काशीनाथ शास्त्री त्याग और तपस्या की मूर्ति थे। ये अन्तर्मुख सन्त और बहिर्मुख पण्डित थे। इनका जन्म बलिया जिला के छाता नामक गाँव में हुआ था। वहीं पर पाराशर गोत्री ब्राह्मणों के वंश में चित्रधर नामक एक विद्वान् हुए। इनके छह पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र का नाम था रामटहल पण्डित, जो व्याकरण शास्त्र में अत्यन्त निपुण थे। वृद्धावस्था में रामटहलजी को एक ही सन्तान हुई जिसका नाम काशीनाथ रखा गया।

बालकपन में ही पिता की मृत्यु हो जाने पर घर-गृहस्थी का भार इनकी माता पर पड़ा जिन्होंने इन्हें पाल-पोसकर बड़ा किया। आठ वर्ष के वय में यज्ञोपवीत संस्कार-सम्पन्न होने के पश्चात् ये अपने गाँव से थोड़ी दूरी पर स्थित सँहतवार नामक गाँव की पाठशाला में जाकर एक गुरु से सारस्वत व्याकरण पढ़ने लगे। छाता गाँव से पश्चिम की ओर दो कोस की दूरी पर सुरहा नामक ताल है। वहीं पर एक मन्दिर में रहने वाले **परमेश्वरदत्त मिश्र** नामक विद्वान् से इन्होंने सिद्धान्तकौमुदी, मनोरमा और परिभाषेन्दुशेखर का अध्ययन किया। इसके पश्चात् गुरु के आदेश से उच्च ग्रन्थों की शिक्षा प्राप्त करने के लिए ये काशी आये और अस्सी मुहल्ले में गूदड़-दास के अखाड़ा में रहने लगे। इसी अस्सी घाट पर द्वारिकाधीश मंदिर के निवासी पं० माधवाचार्य से व्याकरण के समस्त ग्रन्थों का अध्ययन किया। काशी के ही हनुमान घाट पर रहने वाले पं० सीताराम शास्त्री द्राविड़ से नव्यन्याय का तथा ब्रह्मानन्द स्वामी से वेदान्त शास्त्र का एवं पं० नित्यानन्द शास्त्री से पूर्वमीमांसा का विधिवत् अध्ययन किया। इस प्रकार व्याकरण तथा दर्शन शास्त्र में इन्होंने उत्कट कोटि का ज्ञान प्राप्त किया।

काशी के ही जगतगंज नामक मुहल्ले में स्थित दर्शनानन्द स्वामी के द्वारा स्थापित एक पाठशाला में इन्होंने अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया। इसके अनन्तर दुर्गाकुण्ड के पास ही स्थित एक विद्यालय में इन्होंने कुछ दिनों तक पढ़ाया। काशीनाथजी के छात्रों में एक बहुत ही योग्य विद्यार्थी थे जिनका नाम था गंगादत्त उपाध्याय। इसी शिष्य के विशेष आग्रह पर हरिद्वार के पास स्थित गुरुकुल कांगड़ी विद्यालय में ये संस्कृत पढ़ाने के लिए गये। वहाँ पर ये लगभग बारह वर्षों तक आर्यसमाजी छात्रों का अध्यापन करते रहे। एक बार जब ये कांगड़ी से रुड़की जा रहे थे तब रास्ते में पं० नरदेव शास्त्री मिले और उन्होंने इनसे ज्वालापुर महाविद्यालय में अध्यापन करने की प्रार्थना की। शास्त्रीजी ने इनकी प्रार्थना स्वीकार कर लगातार दस वर्षों तक उस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाविद्यालय में भी विद्यादान किया। इसके पश्चात् पं० कृष्णानन्द स्वामी के आग्रह पर ये काशी आये और 'उदासीन विद्यालय' में पढ़ाने लगे। यहाँ पर दो-तीन वर्षों तक अध्यापन करने के पश्चात् इन्होंने नौकरी से अवकाश ले लिया और काशी में ही निवास कर भगवान् के भजन में दिन बिताने लगे।

काशी में ही भगवानदास सेठ ने इनको यावज्-जीवन सौ रुपये मासिक वृत्ति देना प्रारम्भ किया और विश्वनाथ मंदिर के पास ही कालिका गली के मकान में इनके निवास की भी व्यवस्था कर दी। महामना मालवीय महाराज इन्हें बड़े ही आदर तथा सम्मान की दृष्टि से देखते थे। उन्होंने अपने विश्वविद्यालय के संस्कृत महाविद्यालय में अध्यक्ष पद को स्वीकार करने की प्रार्थना की परन्तु शास्त्री जी ने वृद्धावस्था के कारण इस सम्मान को स्वीकार नहीं किया। मालवीयजी महाराज की इन पर इतनी आस्था थी कि सन् १९३१ ई० में गोलमेज सम्मेलन के लिए इंगलैण्ड जाते समय, उन्होंने शास्त्रीजी से परामर्श किया था और इनका आशीर्वाद प्राप्त करने के पश्चात् ही वे विदेश के लिए प्रस्थान कर सके। विलायत से लौटने के पश्चात् मालवीयजी ने विदेश-यात्रा के लिए शास्त्रीजी की आज्ञा से कुछ प्रायश्चित्त भी किया।

शास्त्रीजी की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इन्हें अपनी मातृभाषा भोजपुरी से अटूट अनुराग था। ये आपस के वार्तालाप में तो भोजपुरी भाषा का व्यवहार करते ही थे; अपने छात्रों को भी दर्शन तथा व्याकरण की शिक्षा भोजपुरी के माध्यम से ही दिया करते थे। दर्शन शास्त्र के सूक्ष्म तत्त्वों का भोजपुरी भाषा में उद्घाटन करना कितना कठिन है—यह तो भुक्तभोगी ही समझ सकते हैं। इस प्रकार पचासी वर्ष की आयु में १९३८ ई० में काशीनाथ जी ने काशीनाथ की सन्निधि में ही काशीवास प्राप्त किया।

शास्त्रीजी की शिष्य-परम्परा बहुत ही लम्बी है। इनके शिष्य काशी, कांगड़ी (हरिद्वार) और ज्वालापुर महाविद्यालय में सर्वत्र व्याप्त हैं। काशी में इनके प्रधान शिष्यों में हैं—राधाप्रसाद शास्त्री, (हिन्दू विश्वविद्यालय में धर्मशास्त्र के अध्यापक), पं० रमापति मिश्र (बम्बई के प्रधान विद्यालय के प्रिंसिपल), वामदेव पण्डित (हिन्दू विश्वविद्यालय में साहित्य के अध्यापक), पं० नरसिंह त्रिपाठी (मारवाड़ी संस्कृत महाविद्यालय में प्रिंसिपल) आदि। गुरुकुल कांगड़ी के छात्रों में प्रधान निम्नलिखित थे—पं० शालिग्राम शास्त्री साहित्याचार्य। उन्होंने साहित्यदर्पण की 'विमला' नामक टीका का हिन्दी में निर्माण किया है। हरिश्चन्द्र, इन्द्रचन्द्र तथा जयचन्द्र (चन्द्रत्रयी)—ये भी शास्त्रीजी के प्रधान शिष्य थे। ज्वालापुर महाविद्यालय में रहते समय इन्होंने अनेक शिष्यों को तैयार किया जिन्होंने बड़ी विद्वत्ता प्राप्त की। इनमें कुछ के नाम ये हैं—पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ—इन्होंने वेद के ऊपर अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है। पं० पद्मसिंह शर्मा—ये हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् तथा बिहारी की सतसई के व्याख्याकार हैं। इन्होंने 'सतसई संहार' नामक एक विश्रुत ग्रन्थ लिखा है। बाबा राघवदास—इनका पूर्व नाम पं० राघवेन्द्र था परन्तु बाद में ये बाबा राघवदास के नाम

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से प्रसिद्ध हुए। ये सन्त होने के साथ ही एक राजनैतिक कार्यकर्त्ता भी थे। इन्होंने देवरिया जिले के बरहज नामक स्थान में अपने गुरु के नाम पर परहंस आश्रम की स्थापना की। गोरखपुर तथा देवरिया जिलों में अनेक हाईस्कूल तथा विद्यालयों की स्थापना कर इन्होंने इस जनपद में शिक्षा का प्रचुर प्रचार किया। डा० सूर्यकान्त शास्त्री—ये भी शास्त्रीजी के शिष्य थे जो आगे चलकर हिन्दू विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष हुए।

इन विद्वान् शिष्यों की मण्डली को देखकर ही शास्त्री जी की विद्वत्ता तथा इनके अध्यापन की प्रणाली का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। शास्त्रीजी केवल अध्यापन ही नहीं करते थे, बल्कि इसके साथ ग्रन्थ-रचना में सदा निरत रहते थे। इनके द्वारा विरचित ग्रन्थों के नाम निम्नांकित हैं :—

(१) **अनुभूतिप्रकाश व्याख्या**—विद्यारण्य स्वामी के द्वारा उपनिषदों के सार-भूत सिद्धान्तों का संग्रह अद्वैत वेदान्त के विद्वानों में अत्यन्त माननीय माना जाता है। उसी "अनुभूतिप्रकाश" की व्याख्या शास्त्रीजी ने इस ग्रन्थ में की है। (२) **महावाक्य-रत्नावली व्याख्या**—तैलङ्ग स्वामी द्वारा रचित मूलग्रन्थ की यह व्याख्या है।

(३) चित्सुखी—इस वेदान्त ग्रन्थ का इन्होंने संपादन कर सुन्दर संस्करण निकाला है जिसमें विषम स्थलों पर शास्त्री जी ने टिप्पणी भी दी है।

(४, **पञ्चदशी व्याख्या**—यह ग्रन्थ पञ्चदशी की व्याख्या है जो अभी तक अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिखित पाण्डुलिपि काशी की सरस्वतीभवन लाइब्रेरी में सुरक्षित रूप से रखी हुई है।

पं० काशीनाथ शास्त्री के दो पुत्र हुए (१) पं० हरिनाथ शर्मा और (२) पं० रघुनाथ शर्मा। पण्डित हरिनाथ शर्मा दर्शन और व्याकरण के विद्वान् थे तथा काशी के एक विद्यालय में व्याकरण का अध्यापन करते थे। ये हिन्दी के भी अच्छे ज्ञाता थे। अभी कुछ वर्ष हुए इनका देहान्त हो गया। शास्त्री जी के दूसरे पुत्र पं० रघुनाथ शर्मा हैं जो गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज में प्राध्यापक थे और वहाँ से सेवा निवृत्त होकर अब अपने गाँव छाता (बलिया मण्डल) में ही स्थायी रूप से रहते हैं।

पण्डित रघुनाथ शर्मा

व्याकरण तथा वेदान्त के विशिष्ट विद्वान् होने के अतिरिक्त विचक्षण बुद्धि से सम्पन्न एक नितान्त मेधावी शास्त्रज्ञ एवं व्यावहारिक बुद्धि से मण्डित अत्यन्त लोक-व्यवहारकुशल व्यक्ति हैं। व्याकरण के प्रक्रिया तथा परिष्कार उभय अंशों में इनकी प्रचुर प्रतिभा का विलास दृष्टिगत होता है। भर्तृहरि के **वाक्यपदीय** जैसे दुरूह तथा दार्शनिक ग्रन्थ की विशद तथा विशाल व्याख्या का प्रणयन कर इन्होंने अपने गम्भीर वैदुष्य का प्रसाद व्याकरणतत्त्व के जिज्ञासुजनों में मुक्तहस्त से वितरित किया है—यह निःसंकोच कहा जा सकता है। इस व्याख्या का नाम हैं—**अम्बाकर्त्री व्याख्या**।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाक्यपदीय की प्राचीन व्याख्याओं का निर्माण काश्मीर के ही प्रत्यभिज्ञादर्शन के मार्मिक विद्वानों ने किया है। शर्मा जी ने अपनी व्याख्या में उन टीकाओं में अव्याख्यात अथवा अल्पव्याख्यात अंशों की भी व्याख्या कर मूल ग्रन्थ को सुबोध, सरल तथा बोधगम्य बनाया है। यह व्याख्या पाँच खण्डों में प्रकाशित है तथा वाक्यपदीय के पाठ भेदों की भी मीमांसा विस्तार से दो खण्डों में की गई है।[1] इस टीका के निर्माण के लिए पण्डित-समाज पं० रघुनाथ शर्मा जी का चिरऋणी रहेगा। आजकल आर्यसमाज में जो संस्कृत के तलस्पर्शी विद्वान् पाये जाते हैं उनमें से अधिकांश शास्त्री जी के शिष्य रह चुके हैं तथा उन्हीं की शिक्षादीक्षा से मण्डित होने से इतने मान्य पद पर प्रतिष्ठित हैं।

शास्त्री जी का चरित्र बहुत ही निर्मल था। त्याग और तपस्या की ये मूर्ति थे। गृहस्थ होते हुए भी ये एषणा के पाश से मुक्त थे। अत्यन्त मेधावी में जिन चार दोषों की सत्ता पाई जाती है उनका इनमें अभाव था—

"नरो ह्यत्यन्तमेधावी चतुर्णामिह भाजनम्।
अल्पायुरनपत्यो वा, दरिद्रो वा रुजान्वितः॥"

संसार में यह बहुशः अनुभूत तथ्य है कि अत्यन्त मेधावी व्यक्ति में चार दोषों का गर्हणीय अस्तित्व उनके व्यक्तित्व को कलुषित बनाने के लिए सर्वथा उद्यत रहता है। वे हैं—अल्पायुता, अनपत्यता (सन्तान-राहित्य), दरिद्रता तथा रुग्णता। परन्तु पचासी वर्षों की दीर्घ आयु से मण्डित, विद्वान् पुत्रद्वयी से सम्पन्न, सौख्य तथा वैभव से समादृत तथा नीरोग देहयष्टि से विभूषित पण्डित काशीनाथ शास्त्री जी अत्यन्त मेधावी होते हुए भी इन दोषों से सर्वथा मुक्त थे जो मेधावी जनों में ऊपर बतलाये गये हैं। क्यों न हो ? भूतभावन बाबा विश्वनाथ जी की अगाध अनुकम्पा जो उन पर विराजमान थी।

●

१. इन खण्डों का प्रकाशन वाराणसेय संस्कृतविश्वविद्यालय काशी के द्वारा सम्पन्न हुआ है (१९६२-८० ई०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२७

पण्डित सभापति उपाध्याय

(आस्पद—उपाध्याय; उपाधि—व्याकरणबृहस्पति)

पं० सभापति उपाध्याय अपनी नैष्ठिक साहित्यसेवा, त्याग-तपस्यामय जीवन तथा सात्विक प्रवृत्ति के कारण आधुनिक युग के पण्डितों में विशेष सम्मान तथा आदर के पात्र थे। इन्होंने इसी विद्यानगरी काशी में अपना अध्ययन पूरा किया और यहीं रहकर इन्होंने अपने अध्यापन-कौशल से अपनी प्रतिभा का प्रसाद विद्या के जिज्ञासुओं में पूर्णतया बाँटा। इस प्रकार इन्होंने काशी के पण्डित समाज में ६० वर्ष से ऊपर घुल मिलकर विद्या के वितरण में ऐसा आदर्श उपस्थित किया जो नितान्त श्लाघनीय तथा सर्वथा अनुकरणीय है।

इनका जन्म बलिया मण्डल के पूर्वीय भाग के गंगातीरवर्ती 'उदयी-छपरा' गाँव में हुआ था। उनके जन्म की तिथि है—संवत् १९३७ विक्रमी भाद्रपद शुल्क द्वितीया (१८८२ ई०)। इनके पिताजी का नाम था—पं० रामपलट उपाध्याय तथा माता का नाम सखीदेवी। पिता के तीन पुत्रों में ये कनिष्ठ थे। अपने गाँव के ही पं० बाबूराम उपाध्याय से इन्होंने किसी साधु के द्वारा बताये गये मुहूर्त में सारस्वत व्याकरण पढ़ना प्रारम्भ किया। अनन्तर बड़की सेरिया ग्राम के पंडित राम इयादी पाठक से ज्योतिष शास्त्र पढ़ा। तत्पश्चात् ये काशी आये और यहीं पर व्याकरण के उच्चस्तरीय ग्रन्थों का अध्ययन किया। पं० देवनारायण तिवारी (तिवारी जी) काशी में इनके आदिम गुरु रहे। तिवारी जी की विद्या, बुद्धि, त्याग, तपस्या तथा अध्यापन-कला की कीर्ति सुनकर प्रान्त के दूर-दूर के छात्र उनके पास आते थे और अपनी अभिलाषा की विधिवत् पूर्तिकर घर लौट जाते थे। सभापति जी ऐसे छात्रों में अन्यतम थे। उन्हीं के नाम से ये परीक्षा भी देते थे। कुछ दिनों तक ये दामोदरशास्त्री के भी बड़े अनुगत छात्र थे। और इन्हीं की देख-रेख में इन्होंने संस्कृत कालेज से व्याकरण शास्त्र की आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की। अनन्तर ये पं० शिवकुमार शास्त्री से भी 'शब्दखण्ड' तथा वेदान्त का अध्ययन करते थे। इन गुरुओं की इनके ऊपर असीम कृपा थी। इसका परिणाम यह हुआ कि इनकी विद्या चमक उठी और अपने सहयोगी पण्डितों में इन्होंने विशेष कीर्ति अर्जित की।

अध्यापन

आरम्भ में सभापति जी ने अंग्रेजी स्कूलों में संस्कृत के अध्यापन का कार्य किया। ये कुछ दिनों तक सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल वाराणसी के संस्कृताध्यापक थे। अनन्तर काशी मिशन स्कूल—लण्डन मिशन हाई स्कूल—में भी ये छात्रों को संस्कृत पढ़ाते थे। यह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके अध्यापन का आरम्भिक काल था। लालघाट पर स्थित राजा बलदेवदास बिरला संस्कृत पाठशाला में इन्होंने प्रधान पण्डित के रूप में प्रतिष्ठित होकर संस्कृत छात्रों का अध्यापन कार्य आरम्भ किया। यह सन् १९१४ की घटना है। इसके बाद जीवन भर ये इस विद्यालय की सेवा करते रहे। इस विद्यालय की उन्नति में सभापति जी की कार्यनिष्ठा नितान्त जागरूक रही।

बिरला संस्कृत महाविद्यालय का परिचय

आजकल लालघाट वाराणसी पर स्थित विरला संस्कृत महाविद्यालय अपनी योग्यता, छात्र-संम्पत्ति तथा शैक्षणिक सुव्यवस्था के कारण अपने उत्कर्ष पर है। इसकी स्थापना १९१३ ई० में हुई जब यह अपने संस्थापक राजा बलदेवदास बिरला के नाम पर 'बलदेव दास संस्कृत पाठशाला' के नाम से विख्यात था। उस समय बिरला परिवार का विशेष नाम नहीं था। उद्योगपति राजा बलदेवदास बिरला और उनके ज्येष्ठ पुत्र जुगुलकिशोर विरला ही उस समय व्यापार की देख-रेख करते थे। प्रथम विश्वयुद्ध बिरला परिवार के अभ्युदय का सूत्रपात है। उस लड़ाई में बिरला परिवार का व्यापार से विशेष अभ्युदय हुआ। और इसी अभ्युदय के साथ इस संस्कृत पाठशाला की भी दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होने लगी। इसकी उन्नति में बिरला-बन्धुओं की अर्थशक्ति तथा अध्यक्ष पण्डित सभापति जी की विद्याशक्ति दोनों का मंजुल समन्वय प्रधान कारण रहा। राजा बलदेवदास बिरला जितने धर्मात्मा, संस्कृतप्रेमी तथा भारतीय संस्कृति के उपासक थे, उतनी ही अनुरक्ति संस्कृत भाषा के प्रचार एवं प्रसार में तथा भारतीय संस्कृति के उन्नयन में उनके सुयोग्य पुत्रों की भी थी। सभापति जी का कर्मठ व्यक्तित्व, छात्रों के ऊपर नैसर्गिक दया-भाव तथा अध्यापन की कुशलता, इस विद्यालय के उन्नति में जितना कारण था, उतना ही राजा बलदेव दास जी की उदारता तथा संस्कृत शिक्षा के प्रसार की अभिरुचि भी थी। इस मणि-कांचन योग के फलस्वरूप इस पाठशाला की उन्नति होती गई और आज तो यह महाविद्यालय अपनी शिक्षा, दीक्षा, आर्थिक सुव्यवस्था, छात्रों की अनुशासनशीलता के विषय में अपना प्रति-द्वन्दी नहीं रखता। पं० सभापति जी ने इस विद्यालय के लिए अपना जीवन ही लगा दिया। दोनों के साथ इतना साम्य हो गया था कि बिरला विद्यालय तथा सभापति उपाध्याय दोनों एक दूसरे के साथ अन्योन्याश्रित हो गए। आज कल जो इसका स्वरूप है उसमें बिरला-बन्धुओं का जितना योगदान है, पं० सभापति जी का भी योगदान उससे कम नहीं माना जा सकता है। इसी विद्यालय के अध्यक्ष पद पर जीवन बिताते हुए सभापति जी का निधन विक्रमी सं० २०२१ आषाढ कृष्ण ४ सोमवार को हुआ। इन्होंने चौरासी वर्ष की लम्बी आयु पाई थी और इसका अधिकांश समय इन्होंने इस महाविद्यालय की सेवा में ही बिताया।

ग्रन्थ

उपाध्याय जी बड़े विद्याव्यसनी थे। व्याकरण-शास्त्र के उच्चतम परिष्कारों की जानकारी के लिए इन्होंने न्यायशास्त्र का भी गंभीर अध्ययन किया। इस विषय में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके सहायक थे—पं० राधाकृष्ण झा नैयायिक, जो गोयनका महाविद्यालय में न्याय-शास्त्र के प्रधानाध्यापक थे। अपने अनुशीलन की प्रवृत्ति के कारण ही सभापति जी ने न्याय तथा वेदान्त का भी गंभीर ज्ञान अर्जित कर लिया था। अध्यापन कार्य से समय बचा कर ये व्याकरण ग्रन्थों के ऊपर व्याख्या लिखने में भी प्रवीण तथा कुशल थे। उनके द्वारा रचित चार ग्रन्थों का परिचय प्राप्त होता है :—

१. **लघुमंजूषा की रत्नप्रभा टीका**—नागेश भट्ट का यह अनुपम ग्रन्थ वैयाकरण सिद्धांत मंजूषा के नाम से प्रख्यात है, जो अपनी दुरूहता, तुलनात्मक अध्ययन तथा शास्त्रीय गंभीरता में अपना प्रतिद्वन्दी नहीं रखता। इसके ऊपर अनेक टीकाएँ हो चुकी हैं परन्तु उनके अध्ययन से भी ग्रन्थ की गुत्थी नहीं खुलती। सभापति जी ने अपनी व्याख्या में उन गुत्थियों के खोलने का श्लाघनीय प्रयत्न किया है। इनकी कृपा से छात्रगण मंजूषा के तत्त्व को समझने में सर्वथा कृतकार्य तथा सफल मनोरथ होते हैं। यह व्याख्या पूरे ग्रन्थ के ऊपर न होकर केवल परीक्षा में निर्धारित कतिपय अंशों के ऊपर ही है। यह ऐसा पाण्डित्य-पूर्ण है तथा छात्रों के लिए उपयोगी है।

२. **शब्दरत्न सहित प्रौढ़ मनोरमा की प्रभा टीका**—व्याकरण शास्त्र के इस दार्शनिक ग्रन्थ के ऊपर भी पं० सभापति जी ने बड़ी सुबोध टीका का प्रणयन किया है जिसकी सहायता से मूल ग्रन्थ के दुरूह तथा विषम स्थलों के समझने में सरलता होती है।

३. **सिद्धान्त कौमुदी पर लक्ष्मी व्याख्या**—सिद्धान्त कौमुदी के कतिपय आरम्भिक अंशों पर सभापति जी ने बड़ी ही अच्छी तथा उपयोगी टीका का निर्माण किया। इसमें व्याकरणशास्त्र के भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में उस सूत्र के विषय में जो सिद्धान्त स्थापित किये गये हैं उन सब का एकत्र अनुशीलन इस ग्रन्थ को महत्वपूर्ण बना रहा है।

४. **वैदिक धर्मरहस्य**—जिसमें सनातन धर्म के विरोधी आक्षेपों का निराकरण है।

शिष्यों के ऊपर उनकी इतनी उदारता एवं कृपादृष्टि थी कि उन्होंने अपने प्रमुख छात्र पं० बालकृष्ण पंचोली के नाम से दूसरे एवं तीसरे ग्रन्थों को प्रकाशित कराया। अधिकांश तो इन्हीं का लिखा हुआ है, परन्तु इन्होंने अपने शिष्य को ही लेखक होने का गौरव प्रदान किया।

स्वभाव

पं० सभापति जी का स्वभाव बड़ा ही सात्त्विक तथा सहानुभूति से युक्त था। ये दयालु तथा परोपकारी थे। राजा साहब से पैरवी कर अनेक गरीब छात्रों को आर्थिक सहायता दिलाया करते थे। राजा साहब भी इनके उपकारी स्वभाव से इन्हें बहुत ही आदर तथा सत्कार देते थे। इन्हें अधिक वृत्ति पर संस्कृत कालेज में भी जाने का अवसर आया परन्तु बलदेव दास बिरला जी ने इन्हें अन्यत्र जाने नहीं दिया। वेतन-वृद्धि के साथ ही साथ उन्हें विद्यालय का अध्यक्ष बनाये ही रखा। सभापति जी के द्वारा विद्वानों का आदर सर्वदा हुआ करता था। और राजा साहब के द्वारा इन्हीं की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देख-रेख में समय-समय पर अनेक धार्मिक कृत्यों का भी अनुष्ठान होता रहा। इन्हीं के उपदेश से बिरला जी ने विद्यालय का क्षेत्र भी बढ़ा दिया। यह केवल अध्यापन का ही संस्थान न रहा, प्रत्युत उसके द्वारा भारतीय धर्म तथा भारतीय संस्कृति के अनुष्ठान के निमित्त भी अनेक योजनाएँ कार्यान्वित की जाती थीं। फलतः इस विद्यालय का क्षेत्र बड़ा ही विशाल तथा बहुमुखी है। और इसके लिए पं० सभापति जी का उपदेश सर्वथा जागरूक रहता था। इसमें कोई दो मत नहीं हो सकता।

सभापति जी की गुरुभक्ति भी आदर्श उपस्थित करती थी। अपने गुरुजनों के प्रति इनका सत्कार-भाव सदा रहता था। एक विचित्र घटना से इस तथ्य की पर्याप्तरूपेण पुष्टि होती है। १९४१ ई० की यह घटना है कि तिवारी जी मणिकर्णिका घाट के ऊपर तख्ता पर बैठ कर संध्योपासन कर रहे थे कि अकस्मात् उनके हृदय की गति रुक गई और वे गंगा जी में गिर गए। उन्हें बाहर निकाला गया। उनके दाह-संस्कार की विकट समस्या थी। उन्हें कोई सन्तान न थी। फलतः उनका दाह-संस्कार कौन करे? इसी के ऊपर संकट उपस्थित हुआ। सर्वसम्मति से प्रधान शिष्य होने के नाते सभापति जी के ऊपर ही इस कार्य का भार सौंपा गया। और इन्होंने बड़े ही प्रेम तथा लगन के साथ अपने गुरु जी की अन्तेष्टि तथा श्राद्ध आदि कार्यों का शास्त्रीय रीति से विधिवत् अनुष्ठान किया। ऐसी ही थी उनकी आदर्श गुरुभक्ति। इन्हीं गुणों के कारण वे काशी के पण्डितों में चिरस्मरणीय बने रहेंगे।

शिष्यमण्डली

पण्डित सभापति जी की शिष्यमण्डली पर्याप्त रूप से बड़ी थी जिसमें उत्तर प्रदेशीय छात्रों के अतिरिक्त गुर्जर तथा महाराष्ट्रीय छात्रों का भी समावेश था। विभिन्न प्रान्तों में अध्यापन करने वाले विद्वान् शिष्यों का नामाङ्कन न कर केवल दो ही शिष्यों का यहाँ निर्देश किया जाता है। ये शिष्य वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के व्याकरण-विभाग से सम्बन्ध रखते हैं। व्याकरण के पारगामी अध्यापकों से मण्डित होने के कारण यह व्याकरण-विभाग विशेष विश्रुत तथा सम्मानित था। इधर के अध्यापकों में पण्डित **गणपति शास्त्री मोकाटे** जी का नाम विशेष रूपेण उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने गुरुवर्य श्री तात्याशास्त्री जी की भूति पर नवीन व्याख्या का प्रणयन कर उसे छात्रों के लिए सरल-सुबोध बनाने का प्रशंसनीय कार्य किया। इन्हीं के शिष्य **पण्डित मुरलीधर मिश्र** ने (जो इस विभाग के अध्यक्ष पद पर अनेक वर्षों तक विराजमान थे) रामचन्द्राचार्य-रचित प्रक्रियाकौमुदी की शेष श्रीकृष्णप्रणीत **प्रकाश**-नाम्नी व्याख्या का सम्पादन बड़ी योग्यता से किया है।[1] इन्होंने स्वयं **रश्मि** नामक टिप्पणी से भी इसे विभूषित कर गूढ़ स्थलों को सुबोध बनाने का श्लाघ्य प्रयास किया है। इसी नव्य व्याकरण-

१. इस ग्रन्थ के दो खण्डों का प्रकाशन हो चुका है काशीस्थ संपूर्णानन्द संस्कृत विश्व-विद्यालय के अनुसन्धान संस्थान के द्वारा १९७८ ई० में।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभाग में पण्डित समापति उपाध्याय जी के दो शिष्यों ने बड़ी योग्यता से अध्यापन का कार्य सम्पन्न किया है (१) पण्डित बालकृष्ण पञ्चोली तथा (२) पण्डित कालिका प्रसाद शुक्ल ने। पण्डित बालकृष्ण पञ्चोली गुजराती ब्राह्मण हैं। शास्त्र में जितने चतुर हैं, उससे कहीं अधिक चतुर हैं लोक-व्यवहार में। उनकी गुरुभक्ति विशेष रूप से प्रशंसनीय है। फलतः गुरु की कृपा से दो ग्रन्थों का प्रणयन भी उन्होंने किया है। पण्डित कालिकाप्रसाद जी गोरखपुर मण्डल के ही सरयूपारीण ब्राह्मणावतंस हैं। शास्त्र तथा लोक दोनों में उनकी चातुरी प्रशंसनीय है। व्याकरण शास्त्र की सूक्ष्म विवेचना में कृतकार्य होने के कारण इनके द्वारा सम्पादित पण्डित यागेश शास्त्री रचित **हैमवती**[1] तथा नागेश रचित **वैयाकरण-सिद्धान्त-मञ्जूषा**[2] दोनों ही नितान्त उपादेय एवं प्रामाणिक प्रस्तावना से मण्डित हैं जिससे इनका शास्त्रीय वैदुष्य स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। आजकल ये ही विभागाध्यक्ष हैं।

पण्डित समापति जी को राज्य-मान्यता तथा विद्वन्-मान्यता दोनों ही प्रचुर मात्रा में प्राप्त थी। उत्तरप्रदेश के शासन ने अपनी विधान परिषद् के लिए किसी संस्कृत विद्वान् को मनोनीत करने का निर्णय किया था। उस समय श्री सम्पूर्णानन्द जी उत्तर-प्रदेश के मुख्यमन्त्री के रूप में प्रतिष्ठित थे। उन्हीं के प्रयत्न से पं० समापति उपाध्याय उत्तरप्रदेश की विधान परिषद् में विशिष्ट विद्वान् के रूप में मनोनीत किए गये और यह सदस्यता उन्होंने ६ वर्षों तक बड़ी योग्यता के साथ निबाही। उस समय इन्होंने वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में अनेक प्रस्तावों के द्वारा संस्कृत विद्या की उन्नति तथा प्रचार में योगदान दिया। काशी के घाटों के जीर्णोद्धार करने के प्रस्ताव का भी आपने समर्थन किया। पं० जी के द्वारा रखे गये प्रस्तावों को श्री संपूर्णानन्द जी ने स्वीकार कर सफल बनाया। यह पहला ही अवसर था कि स्वतन्त्र भारत में संस्कृत के एक विद्वान् को प्रान्त की महनीय सभा में मनोनीत कर संस्कृत विद्या का गौरव बढ़ाया गया था।

विभिन्न प्रान्तों के विद्वानों के द्वारा पंडित जी का विशेष सन्मान तथा आदर किया गया था। इन्होंने चारो धामों की विधिवत् यात्रा सम्पन्न की थी। इस अवसर पर गुजरात प्रान्त के जिन बड़े-बड़े नगरों में तीर्थयात्रा के अवसर पर समापति जी गये थे वहाँ सर्वत्र इनका अभिनन्दन बड़े समारोह के साथ सम्पन्न किया गया था। इस कार्य में इनके पट्ट शिष्य व्याकरणाचार्य पं० बालकृष्ण पंचोली जी का भी विशेष हाथ था। इस यात्रा से लौटने के बाद पंडित जी ने बड़े समारोह के साथ भागवत के सप्ताह का श्रवण किया तथा काशी के मान्य विद्वानों की महती सभा करके उनकी पूजा-अर्चा आदर-भाव के साथ सम्पन्न की। इस प्रकार इनका संपूर्ण जीवन ही संस्कृत विद्या के प्रचार-प्रसार में, निर्धन छात्रों को आर्थिक सहायता देकर अध्यापन करने में तथा भगवान् की

१. संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित, १९७५ ई०।
२. संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित, १९७७ ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूजा, अर्चा में आस्थापूर्वक व्यतीत हुआ। भगवान् की कृपा से इन्हें लम्बी ८४ वर्ष की आयु प्राप्त थी जिसको उन्होंने पूर्ण रूप से धर्म तथा संस्कृत के उत्थान एवं अभ्युदय में लगाया। इन्हें अनेक संस्थाओं से सम्मान प्राप्त था। इन्होंने वाराणसेय संस्कृत विद्यालय में सम्मानित अध्यापक पद को अलंकृत किया था। भारतधर्म महामण्डल ने 'महामहाध्यापक' पदवी से तथा साङ्गवेद विद्यालय ने 'शाब्दिक रत्न' पदवी प्रदान कर आपको सम्मानित तथा समादृत किया था।

(ख) पं० अम्बिकाप्रसाद उपाध्याय

(आस्पद—उपाध्याय, उपाधि-व्याकरणशिरोमणि)

पं० अम्बिकाप्रसाद उपाध्याय सभापति जी के ज्येष्ठ भाई के पुत्र थे। फलतः उनके भतीजा थे। इनका अध्ययन सभापति जी के साथ ही रहकर हुआ। ये भी तिवारी जी के तथा दामोदर शास्त्री के अनुगत शिष्य थे। इन गुरुओं की कृपा से इन्होंने व्याकरण शास्त्र में अभिनन्दनीय प्रवीणता प्राप्त की थी। ये हिन्दू विश्वविद्यालय में संस्कृत महाविद्यालय के व्याकरण विभाग के प्राध्यापक थे। पाण्डित्य के साथ स्वभाव में बड़ी ही कोमलता तथा नम्रता थी। इन्हीं गुणों के कारण महामना मालवीय जी इन्हें विशेष मानते थे। आधुनिक व्याकरण के साथ न्यायशास्त्र का भी इन्होंने खूब जमकर अध्ययन किया था। ये बड़े सफल अध्यापक थे। हिन्दू विश्वविद्यालय की सेवा से मुक्त होने के बाद भी इनका अध्यापन कार्य चलता रहा। ये डा० वेनिस के विशेष सम्पर्क में आये थे और उनसे पाश्चात्य विद्या की अनेक बातें सीखी थीं। इनके द्वारा तैयार किये गये अनेक छात्र पाठशालाओं में अध्यापन का कार्य करते हुए इनकी पाण्डित्य की परम्परा को आज भी अग्रसर कर रहे हैं। महाभाष्य की तैयारी इन्होंने बड़े प्रेम और परिश्रम से की थी। इन्हें पूरा महाभाष्य आदि से अन्त तक कंठस्थ था। इनका निधन तीन-चार वर्ष पूर्व ८० वर्ष की आयु में काशी ही में हुआ।

उपाध्याय जी बड़े ही सात्त्विक प्रवृत्ति के विद्वान् थे। वागीश्वरी जी के ये निष्ठावान् श्रद्धालु उपासक थे। प्रति शुक्रवार को ये वागीश्वरी जी के (जैतपुरा में स्थित) मन्दिर में दर्शनार्थ जाते और जप-उपासना करते थे। इनका यह अटूट नियम तभी टूटा जब वे अशक्त हो गये। प्रातः सप्तशती का जप-पाठ इनकी दिनचर्या का अभिन्न अङ्ग था। फलतः इन्होंने बड़ी शान्ति और सन्तोष से जीवन बिताकर एक आदर्श उपस्थित किया।

पं० सभापति जी के सहयोगी

पण्डित रामयश त्रिपाठी 'महाशय जी'

(आस्पद—त्रिपाठी, उपाधि—व्याकरणरत्नाकर)

त्याग और तपस्या की मूर्ति, निःस्पृहता के नवीन विग्रह, अध्यात्म मार्ग के नैष्ठिक उपासक तथा पाणिनीय व्याकरण के पारगामी पण्डित रामयश त्रिपाठी की प्रतिष्ठा तथा प्रसिद्धि काशीस्थ विद्वन्मडली में आधुनिक पण्डितों में सबसे अधिक थी। ये प्रत्येक व्यक्ति को—यहाँ तक कि अपने शिष्यों को भी—'महाशय जी' के आदरणीय सम्बोधन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से सम्बोधित करते थे। अतः इस प्रवृत्ति के कारण ही ये पण्डित-मण्डली में 'महाशय जी' के नाम से विख्यात थे।

श्री त्रिपाठीजी का जन्मस्थान वाराणसी से १६ मील वायव्य कोण में वर्तमान ग्राम निमैचा है जो वर्तमान हवाई अड्डा बाबतपुर के ही निकट है। आपके पूर्वज सिद्ध महात्मा श्री कपिलेश्वर बाबा एक बार सरयूपार के प्रख्यात अपने धतुरा नामक ग्राम से चलकर तीर्थाटन करते हुए इसी निमैचा ग्राम में आये थे। इसी ग्राम में एक एरण्ड (रेड़) वृक्ष की छाया में बैठकर भगवत् स्मरण करने लगे। ग्रामवासियों ने सघन वृक्ष की छाया में चलने के लिए उनसे विशेष आग्रह किया। किन्तु आपने ग्रामवासियों को यह कहकर लौटा दिया कि आप लोग थोड़ी देर बाद पुनः आवें। जब गाँव के लोग कुछ देर बाद पुनः वहाँ आये तो वहाँ पर वह एरण्ड वृक्ष था ही नहीं, बल्कि उसकी जगह एक विशाल छायादार नीम का वृक्ष लहरा रहा था। इस चमत्कार से वहाँ के निवासी आश्चर्यचकित होकर आपसे उसी ग्राम में रहने की प्रार्थना करने लगे। आपने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके उस स्थान को अपना निवास स्थान बनाया। ऐसी किंवदन्ती है कि उसी नीम वृक्ष के नाम पर उस ग्राम का नाम भी निमैचा पड़ा। इसी कुल में काल-क्रमवशात् सरयूपारीणवंशावतंस विद्वत्कुल-भूषण श्री पं० रामयश त्रिपाठी का जन्म हुआ। यह घटना सं० १९४१ अर्थात् १८८४ ई० की है।

आपके पूर्वज श्री **कपिलेश्वर बाबा** के वंश में आपके पितामह श्री पं० शिवजगत त्रिपाठी के तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। १—श्री बालमुकुन्द त्रिपाठी, २—श्री बलभद्र त्रिपाठी और ३—श्री कामताप्रसाद त्रिपाठी। श्री बालमुकुन्दजी (मुकुन्दी तिवारी) के एकमात्र पुत्र श्री रामयश त्रिपाठी तथा ४ कन्याएँ थीं। श्री मुकुन्दी तिवारी अपने समय के समृद्ध सद्गृहस्थ थे। उनकी साधु-प्रकृति के कारण उन्हें लोग साधु कहते थे। श्री रामयश त्रिपाठीजी की माता का नाम अन्नपूर्णा देवी था। इनका विवाह बाल्यकाल में ही पास के ग्राम अनेई के प्रसिद्ध शुक्ल श्री पं० कवलेश्वरजी की पुत्री के साथ हुआ था। वह देवी साक्षात् लक्ष्मीस्वरूपा सती साध्वी पतिधर्मपरायण थीं। आजीवन पति की सेवा में रत थीं। विधि-विधान से कोई सन्तान नहीं हुई। श्री त्रिपाठीजी के सामने ही काशी में पार्थिव शरीर छोड़कर शिवसायुज्य को प्राप्त कर लिया।

श्री त्रिपाठीजी बच्चे से लेकर वृद्ध तक सभी लोगों को महाशयजी कहा करते थे। फलतः उन्हें भी लोग महाशयजी के नाम से जानने लगे। इनका यह नाम 'महाशय जी' वास्तविक नाम की अपेक्षा अधिक प्रचलित हो गया।

अध्ययन

श्री महाशयजी के पिताजी की हार्दिक इच्छा थी कि मेरा एकमात्र पुत्र श्री महाशय जी साधारण ज्योतिष, कर्मकाण्ड का अध्ययन करके घर पर ही रहकर गृहस्थी का कार्य करे। पिता के आदेशवश श्री महाशयजी ने ग्रामीण, स्थानीय पण्डितों से ज्योतिष

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अध्ययन प्रारम्भ किया। किन्तु मुहूर्त-चिन्तामणि के पढ़ने के बाद अन्तर्निहित सरस्वती ने व्याकरणादि शास्त्रों के अध्ययन के लिए भी इन्हें विशेष रूप से उत्कण्ठित किया। फल यह हुआ कि एक दिन रात्रि में घर छोड़कर काशी पहुँचे। कुछ ही दिनों के बाद जगज्जननी अन्नपूर्णा की अनुकम्पा से काशी के रईस जगतगंज निवासी श्री बाबू कवीन्द्र नारायण सिंहजी ने अपने शिवालय में आपको रहने के लिए निवास-स्थान दिया और हर प्रकार का सहयोग प्रदान करके आपको अध्ययन के लिए विशेष सहायता दी। शिवालय में निवास करते हुए महाशयजी ने गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज से सन् १९१४ में व्याकरण विषय में आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की। इनके प्रधान रूप से गुरुजन वैयाकरणकेशरी पूज्य श्री दामोदर शास्त्री तथा भूतिकार श्री तात्या शास्त्रीजी थे। उन्हीं गुरुजनों की कृपा से श्री महाशयजी को अभूतपूर्व व्याकरण-विषयक प्रौढ़ि प्राप्त हुई। यह लिखना अप्रासांगिक न होगा कि अध्ययन काल में ही प्रतिदिन शिवालय में छात्रों को आप पढ़ाते भी रहते थे। इनकी पाठन-प्रणाली अनुपम थी। व्याकरण शास्त्र के निगूढ़ तत्वों का विवेचन आप इस प्रकार करते थे कि बड़े-बड़े प्रतिभाशाली छात्र ही उनसे अध्ययन करके सन्तुष्ट ही नहीं हो जाते थे बल्कि बड़े-बड़े विद्वान् भी उनकी शैक्षणिक शैली के मुक्तकण्ठ से प्रशंसक थे।

अध्यापन

जुलाई सन् १९१८ ई० में उस समय के अतीव विख्यात **मारवाड़ी संस्कृत कालेज** मीरघाट, वाराणसी नामक विद्यालय के प्रधानाचार्य पद पर आप नियुक्त हुए। सन् १९२६ के जून मास तक उस विद्यालय में अध्यापन करते हुए सर्वाधिक छात्रों को सुयोग्य एवं प्रतिभाशाली बनाकर व्याकरणाचार्य परीक्षोत्तीर्ण कराया। उसके पश्चात् जुलाई सन् १९२६ ई० में श्री गौरीशंकर गोयनका द्वारा संस्थापित ललिता घाट पर स्थित **गोयनका संस्कृत महाविद्यालय** में विद्वज्जनानुरोधवश आप अध्यापन कार्य करने लगे। इस महाविद्यालय में सन् १९४१ तक आप विद्यादान देते रहे। इस महा-विद्यालय से कितने छात्र सुयोग्य होकर आचार्य परीक्षोत्तीर्ण हुए, उनकी गणना करना सम्भव नहीं है।

यह उल्लेखनीय है कि उस समय प्रायः काशी के सभी संस्कृत विद्यालय प्रातः-काल लगते थे। इसी कारण विद्यालयीय कार्य के पश्चात् श्री महाशयजी के मुख्य दो दैनिक कार्य थे। पहला कार्य यह था कि अपराह्न में विशिष्ट पाठों को पढ़ाना और दूसरा कार्य था कि व्याकरण शास्त्र से अतिरिक्त शास्त्रों में भी प्रौढ़ि प्राप्त करने के लिए उन विषयों को विशेष मर्मज्ञ एवं सुप्रसिद्ध विद्वानों से नियमतः अध्ययन करना। सर्वप्रथम इन्होंने महामहोपाध्याय पूज्य श्री वामाचरण भट्टाचार्य से नव्य न्याय का अध्ययन ११ वर्षों तक किया था। श्री भट्टाचार्यजी न्यायविषयक श्री महाशयजी की प्रौढ़ि से विशेष रूप से प्रभावित हुए थे। तदुपरान्त इन्होंने काशी के सुप्रसिद्ध विद्वन्मूर्धन्य महामहोपाध्याय श्री लक्ष्मण शास्त्रीजी से शांकर वेदान्त का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्ययन लगभग ८ वर्षों तक किया था तथा मीमांसा शास्त्र का अध्ययन प्रसिद्ध मीमांसक महामहोपाध्याय श्री चिन्न स्वामीजी से ६ वर्षों तक किया। संक्षेप में श्री महाशयजी ने सभी विषयों का अध्ययन गुरुपरम्परा से किया। यह भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि अध्ययन काल में श्री महाशयजी की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति थी कि ये अधीत विषयों को अपनी भाषा में लिपिबद्ध कर दिया करते थे। किन्तु इन्होंने अपने जीवनकाल में स्वहस्तलिखित लेखों को महत्व नहीं दिया जिससे आज के विद्वज्जन उनसे लाभान्वित नहीं हो रहे हैं। यह निश्चय है कि महाशयजी के व्याकरण, न्याय, वेदान्त तथा मीमांसा विषयक लेखों से उनका विशिष्ट वैदुष्य तो व्यक्त होता ही है, संस्कृत समाज का भी अत्युपकार होगा।

गोयनका संस्कृत महाविद्यालय छोड़ने के पश्चात् महाशय जी ने मीरघाट पर स्थित **धर्मसंघ विद्यालय** में निःशुल्क विद्यादान देने की स्वीकृति दे दी। यह क्रम कतिपय वर्षों तक चलता रहा। इसी बीच तपस्विनी पतिसेवारत धर्मपत्नी का सन् १९५८ ई० में शिवालय जगतगंज में देहावसान हो गया। इससे महाशय जी में विरक्ति का संचार सब लोगों को भी दिखाई देने लगा। उस समय तक अनन्त श्रीविभूषित धर्मप्राण श्री स्वामी करपात्री जी महाराज के असाधारण वैदुष्य एवं सर्वतोमुखी प्रतिभा से श्री महाशय जी विशेष प्रभावित हो चुके थे। श्रीस्वामी जी के निरन्तर सन्निधान के इच्छुक श्री महाशय जी शिवालय जगतगंज को (जहाँ पचास वर्षों तक निवास कर चुके थे) सहसा छोड़कर दुर्गाकुण्ड पर स्थित धर्मसंघ में आ गए और आजीवन धर्मसंघ शिक्षा-मण्डल के उपाध्यक्ष बने रहे।

महाशय जी का संन्यासग्रहण

श्री महाशय जी वातरोग से पीड़ित रहते थे और यह सबको ज्ञात है कि वे तैल मर्दन प्रतिदिन कराते थे। उनके नियमित संयम से वह रोग दबा सा रहा। अवस्थाकृत शैथिल्य के कारण ये पुनः उस रोग से विशेष ग्रस्त हो गये। यहाँ तक कि चलने-फिरने में भी असमर्थ हो गये। एकबार विशेष ज्वर से आक्रान्त होने पर इन्होंने तुरन्त आतुर संन्यास ग्रहण करने के लिए पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी से निवेदन किया और श्री स्वामी जी से संन्यासाश्रम में ये दीक्षित हो गये। इस आश्रम में इनका नाम श्री **स्वामी राघवानन्द सरस्वती** हुआ।

महाशय जी अपने प्राक्तन सिद्धान्त एवं नियमवश संन्यासाश्रम में भी विहित भिक्षावृति का परित्याग करते हुए केवल फलाहार तथा दुग्धपान पर आश्रित रह कर दिनांक २३ जनवरी सन् १९६६ को ब्रह्मलीन हो गये।

अध्यापन वैशिष्ट्य

जगतगंज शिवालय प्राचीन आश्रमों का द्योतक था। योग्यतम शास्त्री तथा आचार्य के सैकड़ों छात्र शिवालय में निवास करते थे। ब्राह्म मूहूर्त में जब पण्डितजी के साथ छात्र हरहरमहादेव शम्भो काशी विश्वनाथ गंगे कहते हुए गंगास्नान के लिए पैदल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाते थे, उस समय शिवालय की अपूर्व ही छटा होती थी। मध्याह्नोत्तर विशिष्ट पाठों में छात्रों की इतनी अधिक संख्या हो जाती थी कि अग्रिम पंक्ति में स्थान-प्राप्ति के लिए छात्रों में होड़ सी लग जाती थी। इसी शिवालय में रह कर जगद्गुरु रामानुजाचार्य, स्वर्गीय श्री देवनायकाचार्य प्रभृति अनेक प्रतिभासम्पन्न छात्र शास्त्री जी से शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं। पुरी के पीठाधीश्वर वर्तमान जगद्गुरु शंकराचार्य श्री निरंजनदेव तीर्थ जी महाराज (उस समय के चन्द्रशेखर शास्त्री) गुरुजी के प्रमुख शिष्यों में थे। शास्त्रीजी की अध्यापन शैली अनुपम थी। अति निगूढ़ शास्त्रीय तत्वों का प्रतिपादन गुरु जी के द्वारा किस प्रकार किया जाता था यह तो उनके सम्पर्क में आगत व्यक्ति ही समझ सकता है। अधीतविषयों पर छात्रों को गर्व होता था और आज भी वे ही उनके छात्र भारत वर्ष के कोने-कोने में महाशय जी की विभूति का विस्तार करते हुए प्रख्यात विद्वानों के रूप में विद्यमान हैं।

महाशयजी का आचरण

प्रतिदिन छात्रों के साथ मणिकर्णिका कुण्ड तथा गंगा जी में स्नान करके बाबा विश्वनाथ जी का दर्शन करना गुरु जी का नित्य का कार्य था। ये कट्टर शैव एवं शंकरभगवान् के परममक्त थे। विभूतिधारण के लिए, विश्वनाथ जी की उपासना के लिए तथा प्राचीन भारतीय सभ्यता में रहने के लिए इनका सदा उपदेश होता था। इनकी सनातनधर्म में सच्ची निष्ठा थी। सनातनधर्मानुसार ही सदाचरण करना, शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार ही सामाजिक विषयों पर व्यवस्था देना, विशिष्ट पुरुषों के प्रबल आग्रह पर भी स्वसिद्धान्त के अनुसार ही कार्य करना, विद्यादान को सर्वोत्कृष्ट मानना, धर्मपत्नी के निधन के बाद अपने ही हाथों से भोजन बनाना, बाजार की घी, चीनी आदि अविश्वसनीय वस्तुओं का परित्याग करना उनका प्राकृतिक सिद्धान्त था। संक्षेप में ये सनातनधर्म के मूर्तिमान् स्वरूप थे। यह विशेषतः उल्लेख्य है कि इन्होंने युवावस्था में ही अपने शिष्य श्री देवनायकाचार्य जी के साथ चारोधाम की सस्त्रीक तीर्थयात्रा विधिविधानपूर्वक सम्पन्न की थी।

अद्वितीय त्याग

बिरले ही महात्माओं में ऐसी त्याग भावना देखने में आएगी जैसी गुरु जी में थी। इन्हें गोयनका विद्यालय से १०० (सौ रुपये) मासिक मिलता था। इन्होंने यही निश्चय किया कि दुग्ध के लिए ३०-०० तीस रुपया पर्याप्त होगा। अवशिष्ट ७०-०० सत्तर रुपये के सदुपयोग के लिए वे अपने ग्राम निमैचा में एक संस्कृत पाठशाला स्थापित करके संस्था को प्रति मास ७०-०० रुपया देते रहे। आज भी वही विद्यालय **श्री कपिलेश्वर संस्कृत महाविद्यालय** के नाम से प्रचलित है जो आचार्य-पर्यन्त मान्यता प्राप्त तथा राज्य-सहायता-प्राप्त है। उनकी पैतृक सम्पत्ति में से लगभग आठ बीघा भूमि मिली थी, जिसका आधा भाग संस्कृत पाठशाला को और आधा भाग अपने वंशज को दे दिया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाशय जी की मनस्विता

ये घर पर अपने छात्रों का अध्यापन किया करते थे जिससे काशीस्थ विद्वानों में धीरे-धीरे इनकी ख्याति होने लगी। कुछ दिनों के पश्चात् इनकी नियुक्ति मारवाड़ी संस्कृत कालेज, काशी में व्याकरण की गद्दी पर हुई। इस विद्यालय के प्रधानाध्यापक का यह आदेश था कि जो कोई भी अध्यापक विलम्ब करके पाठशाला में आवे उसे नौकर द्वारा घड़ी दिखला दी जाय जिससे उसे अपने विलम्ब से आने का पता लग जाय। महाशय जी को यह आदेश बड़ा खलता था। ये बड़े ही मनस्वी और स्वाभिमानी-पुरुष थे। एक दिन ऐसी ही घटना घटी। ज्योंही महाशय जी गंगा स्नान तथा विश्वनाथ जी का दर्शन कर, अपना कमण्डलु लेकर विद्यालय पहुँचे वैसे ही विद्यालय के भृत्य ने विलम्ब से आने के कारण नियमानुसार इन्हें घड़ी दिखला दी। इससे इनके मानी मन को बड़ी ठेस लगी। अतः इन्होंने तुरन्त अपना कमण्डलु उठाकर पाठशाला से बाहर आकर अपने घर का रास्ता लिया। इस घटना से क्षुब्ध होकर विद्यालय के अधिकारियों ने इन्हें बहुत समुझाया-बुझाया परन्तु इन्होंने यावज्जीवन उस विद्यालय में पैर नहीं रखा। मनस्विता की मूर्ति जो थे।

त्याग तथा सारल्य

महाशय जी इतने त्यागी पुरुष थे कि ये समय-समय पर अपने विद्यार्थियों के भोजनादिक का खर्च भी स्वयं उठाते थे। जब ये मारवाड़ी संस्कृत कालेज का अध्यापन कार्य छोड़ कर घर लौट आये, तब इनके प्रिय तथा विशिष्ट शिष्यों ने भी उस विद्यालय का परित्याग कर दिया। फलस्वरूप विद्यालय के अधिकारियों ने इन विद्यार्थियों की तीन मास की छात्रवृत्ति रोक दी जिससे छात्रों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। परन्तु त्यागी महाशय जी अपने शिष्यों के कष्ट को देख नहीं सकते थे। इन्होंने कवीन्द्रनारायण सिंह से आर्थिक सहायता दिलवा कर तथा स्वयं देकर इन छात्रों की आर्थिक क्षति की पूर्ति की।

महाशय जी व्याकरण शास्त्र के अध्यापन में प्रवीण थे। परिभाषेन्दुशेखर आदि ग्रन्थों का अध्यापन करते समय ये व्याकरण के विषम स्थलों को बड़ी ही सुस्पष्टता से समझाते थे। जहाँ विषम 'पंक्तियाँ' थीं उनको सुलझाने में ये बड़े ही दक्ष थे। ये अपने अध्यापन कार्य में बड़े ही सच्चे थे। व्याकरण में जब ऐसे अनेक कठिन स्थल आते जिनका अर्थ इन्हें स्पष्ट नहीं होता था तब ये छात्रों को सहज भाव से कह दिया करते थे कि यह स्थल मुझे स्वयं स्पष्ट नहीं है। मैं इस पर विचार कर इसे भविष्य में पढ़ाऊँगा। आजकल के स्वयंभू एवं तथाकथित विद्वान् अध्यापकों की भाँति ये अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन नहीं करते थे, बल्कि अपनी त्रुटियों के प्रकाशन में कभी संकोच का अनुभव नहीं करते थे।

एक विशिष्ट घटना

महाशयजी की अध्यापन शैली की अत्यन्त ख्याति थी। काशी में सर्वत्र इनकी अध्यापन कला की प्रशंसा मुक्तकण्ठ से सुनाई पड़ती। एक बार की घटना है कि केन्द्रीय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकार के द्वारा नियुक्त "संस्कृत कमीशन" संस्कृत के अध्ययनाध्यापन में सुधार के लिए अपनी संस्तुति प्रस्तुत करने के निमित्त काशी आया हुआ था। कमीशन के सदस्यों ने विशुद्ध प्राचीन परिपाटी के अनुसार संस्कृत की अध्यापन शैली को देखने की इच्छा प्रकट की। उस समय रात्रि के आठ बजे थे और कमीशन को दूसरे ही दिन प्रातः काशी से प्रस्थान करना था। अतः समस्या यह थी कि रात्रि की इस अतिवेला में कौन ऐसा अध्यापक होगा जो अध्यापन का कार्य करता होगा। तब कुछ लोगों ने बतलाया कि महाशय जी अपने छात्रों को अधिक रात्रि तक पढ़ाते रहते हैं। अतः कमीशन के सदस्य संस्कृत विश्वविद्यालय के तत्कालीन रजिष्ट्रार पं० रामनरेश मिश्र के साथ बिना कोई सूचना दिये ही महाशय जी के घर जा पहुँचे। यह देखकर उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं था कि कुश के आसन पर आसीन महाशय जी जाड़े की उस रात में छात्रों को बड़े मनोयोग से अपने घर पर पढ़ा रहे हैं। कमीशन के सदस्य कुशासन पर वहीं थोड़ी देर तक बैठ कर इनके अध्यापन की परम्परागत पद्धति का निरीक्षण करते रहे। अन्त में वे अत्यन्त प्रसन्न होकर वापस आये और महाशय जी के पाठन तथा आचार की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

सत्यनिष्ठा

महाशय जी बड़े ही धर्मभीरु व्यक्ति थे। ये अपने सभी कार्यों को धर्म की तुला पर तौलकर ही किया करते थे। एक बार की घटना है कि महाशय जी किसी परीक्षा में परीक्षक थे जिसमें इनके भगिनीपति (बहनोई) ने भी परीक्षा दी थी। वह व्यक्ति लगातार चार वर्षों तक परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो रहा था। उसने प्रतिज्ञा की थी कि इस बार अनुत्तीर्ण होने पर गंगा में डूबकर अपना प्राण-त्याग कर दूँगा, संयोग ऐसा हुआ कि जिस प्रश्न-पत्र में महाशय जी परीक्षक थे उसमें वह आठ अङ्कों से अनुत्तीर्ण हो रहा था। अतः अबकी बार की अनुत्तीर्णता से उत्पन्न होने वाली भयानक परिस्थिति की आशंका कर इनके प्रिय शिष्यों तथा सम्बन्धियों ने उस छात्र को साग्रह उत्तीर्णाङ्क प्रदान करने की महाशय जी से प्रार्थना की। परन्तु धर्मभीरु महाशय जी अपने सिद्धान्त से टस से मस नहीं हुए। परन्तु जब इन लोगों ने इनकी इस धर्मभीरुता से अपने ही बहनोई की ब्रह्महत्या का कलंक लगने का एवं पापभागी होने का इन्हें भय दिखलाया तब इन्होंने ८ अंक कृपांक देकर उसे उत्तीर्ण करना स्वीकार किया। परन्तु इस कृपांक का उपयोग इन्होंने अपने सम्बन्धी ही के लिए नहीं किया, बल्कि समस्त छात्रों के अंकों में ८ अंक की वृद्धि कर दी जिससे बहुत से छात्र उस वर्ष प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हो गये। यह थी महाशय जी की सत्यनिष्ठा।

'महाशय जी' पण्डित होने के साथ ही साथ तपस्वी भी थे। इन्होंने केवल अध्ययन और अध्यापन द्वारा ही संस्कृत का प्रचार नहीं किया, प्रत्युत इन्होंने अपने ही गाँव पर एक संस्कृत पाठशाला की स्थापना भी कर रखी थी जिसके संचालन का समस्त व्यय ये अपने अल्प वेतन से कुछ धनराशि बचाकर दिया करते थे। जीवन के अन्तिम दिनों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में इन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया था। उन दिनों भी इन्होंने एक विद्वान् पण्डित को पुराण सुनाने के लिए नियुक्त कर रखा था। ये सदाचार के ऊपर विशेष बल देते थे। स्वयं इसका पालन करते हुए ये अपने छात्रों को भी आचार-विचार की रक्षा करने पर बड़ा जोर देते थे। यदि कोई छात्र आचार का भंग करता था तो उसे कठोर दण्ड भी देते थे। महाशयजी की विद्वत्ता तथा सदाचार के संबंध में जो संस्तुति की गई है वह अत्यन्त उचित प्रतीत होती है।—

"विख्याता विदुषां गणे सुयशसः छात्रैरनन्तैर्वृताः,
शान्ताः सत्यसमेधमानसुषमाः स्वाचारधूर्धारकाः।
विद्यागौरववैदुषीसुविनयैः लोकातिगाः पण्डिताः,
श्रीमत् रामयशस्त्रिपाठिपदभृद् वर्याः जयन्ति ध्रुवम्॥"

शिष्यमण्डली

महाशयजी के ऐसे छात्रों की संख्या बहुत ही अधिक है जिन्होंने इनके सम्पर्क में आकर संस्कृत व्याकरण के प्रौढ़ ग्रन्थों का गुरुमुख से श्रद्धापूर्वक अध्ययन कर अपनी प्रतिभा को प्रखर बनाया है। कतिपय शिष्यों का संक्षिप्त परिचय ही पर्याप्त होगा—

(१) पुरीपीठस्थ शंकराचार्य **श्री निरञ्जनदेव तीर्थजी**। आप राजपूताने के निवासी हैं। पूर्वाश्रम में चन्द्रशेखरशास्त्री के नाम से प्रख्यात थे। अनेक वर्षों तक महाराजा संस्कृत कालेज, जयपुर के अध्यक्ष थे। शास्त्रों के चिन्तन में जैसी आपकी वैदुषी है, वैसी ही अध्यात्म-साधना में आपकी शेमुषी है। सनातनधर्म के गम्भीर रहस्यों के उपदेष्टा के रूप में आपकी प्रचुर ख्याति है।

(२) काशीस्थ रामानुजाचार्य **श्री देवनायकाचार्य** महाशयजी के पट्टशिष्यों में अन्यतम थे। इनका जीवन विवरण आगे दिया गया है।

(३) श्री दण्डी स्वामी **रामानन्द सरस्वती**—पूर्वाश्रम का नाम था पं० रामनाथ शुक्ल। श्री पण्डित पत्रिका (वर्ष १, संख्या ९) में आपने महाशयजी की श्लोकबद्ध जीवनी प्रस्तुत की है।

(४) **मुरलीधर उपाध्याय** जो व्याकरणाचार्य होने के अतिरिक्त संस्कृत में एम०ए० भी थे। इन्होंने संस्कृत पाठशाला (उत्तरप्रदेश) के निरीक्षक का कार्य अनेक वर्षों तक किया। आजकल सेवानिवृत्त हैं।

(५) **डॉ० श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी**—व्याकरण के अतिरिक्त सांख्ययोग एवं पुराण का आपने विशेष मनन कर गम्भीर पाण्डित्य अर्जित किया है। संस्कृत विश्वविद्यालय (काशी) के पुराण विभाग के अध्यक्ष थे। पुराणविषयक अनेक ग्रन्थों का संस्कृत में प्रणयन किया है जिनमें मुख्य हैं—(१) पुराणेतिहासयोः सांख्ययोग-दर्शनविमर्शः (२) पुराणपर्यालोचनम् (दो खण्ड)।

(६) **पण्डित चण्डीप्रसाद पाठक**—आजमगढ़ मण्डल के जिन्दोपुर ग्राम के निवासी। जन्म सं० १९६० एवं निधन श्रावण कृष्ण त्रयोदशी सं० २०३७। व्याकरण के प्रौढ़ पण्डित होने के अतिरिक्त पुष्ट-शरीर से मण्डित मल्ल भी थे। अश्वारोहण की कला में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नितान्त निपुण थे। अपने घर पर ही श्री गिरीश धर्मसंघ संस्कृत महाविद्यालय के यावज्जीवन ४२ साल तक अध्यापक थे। आदर्श शिक्षक एवं धर्मोपदेष्टा के रूप में सदा स्मरण किये जायेंगे।

(७) **श्री लालबिहारी मिश्र**—व्याकरण के अध्ययन के अतिरिक्त इन्होंने आयुर्वेद का भी विशेष अनुशीलन किया है। इन्होंने आजकल चिकित्सा करने से विशेष ख्याति प्राप्त की है। ये सुबुद्ध लेखक हैं। इनका 'वैदिकी' नामक ग्रन्थ, जो सम्पूर्णानन्द जी के **'ब्राह्मण सावधान'** के खण्डन के रूप में लिखा गया था, पाण्डित्यपूर्ण तथा लोकप्रिय है।

(८) **पण्डित शुकदेव झा**—महाशय जी के शिष्यों में अग्रगण्य स्थान के अधिकारी सुयोग्य वैयाकरण थे। नित्यानन्द संस्कृत महाविद्यालय में यावज्जीवन व्याकरणशास्त्र का अध्यापन करते रहे। पूरा महाभाष्य तथा वाक्यपदीय इन्हें कण्ठाग्र थे, ऐसी प्रसिद्धि है। महाभाष्य का मर्मज्ञ होना बड़ी प्रशंसा अवश्य है, परन्तु उससे भी अधिक है वाक्यपदीय के रहस्यों का ज्ञाता होना। और इन दोनों की सत्ता पण्डित शुकदेव झा के व्याकरण-पाण्डित्य का मेरुदण्ड है। इनके अनेक विद्वान् शिष्य हैं :

पण्डित शुकदेव झा ने व्याकरणशास्त्र में अनेक छात्रों को निष्णात वैयाकरण तैयार किया है। इन सुयोग्य छात्रों की श्रेणी में डा० सत्यव्रत शास्त्री तथा डा० भागीरथ प्रसाद त्रिपाठी 'वागीश शास्त्री' विख्यात हैं। **सत्यव्रत शास्त्री** दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के प्राध्यापक हैं। इन्होंने व्याकरण सम्बन्धी महानिबन्ध (थीसिस) के अतिरिक्त 'गोविन्द सिंह चरितम्' तथा 'इन्दिरा गान्धी चरितम्' नामक महनीय काव्यग्रन्थों की रचना की है।

पं० वागीश शास्त्री व्याकरण तथा भाषाविज्ञान के गम्भीर अनुशीलनकर्ता विद्वान् हैं। आजकल सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में अनुसंधान संधान के निदेशक हैं। इनके संस्कृत में निबद्ध अनेक शोधलेख विश्वविद्यालय की मुखपत्रिका 'सारस्वती सुषमा' में प्रकाशित हैं। पाणिनि के धातुपाठ के विषय में इनका अनुशीलन गम्भीर एवं प्रशंसनीय है। इस विषय के इनके दोनों ग्रन्थ 'पाणिनीय धातुपाठ समीक्षा' (वाराणसी, १९६५ ई०) तथा 'धात्वर्थविज्ञानम्' (वही, १९८० ई०) बड़े ही प्रमेयबहुल, तथ्यपूर्ण तथा नवीन दिशा के द्योतक हैं।

इसी नित्यानन्द वेद-विद्यालय के अध्यक्ष पद पर अध्यापन कर कीर्तिलाभ करने वाले विद्वान् थे पण्डित **ढुण्ढिराज शास्त्री टोपले** (जन्म १८९० ई०, निधन सन् १९६७ ई०)। इनके प्रपितामह श्री बालकृष्ण शास्त्री पुराण के, पितामह श्री गदाधर शास्त्री साहित्य के एवं पिता श्री बटुकनाथ शास्त्री न्याय के प्रकाण्ड विद्वान् थे। दस वर्ष के वय में माता का और ग्यारहवें वर्ष में पिता की मृत्यु होने से बाल्यकाल में अत्यन्त कष्ट सहना पड़ा। इन्होंने वामाचरण जी तथा म० म० श्री अम्बादत्त शास्त्री से न्यायशास्त्र का गहन अध्ययन किया। सन् १९१२ में 'काव्यतीर्थ' तथा १९१५ में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायाचार्य की उपाधि अर्जित की। सन् १६१६ से लेकर १९५८ तक ४२ वर्ष तक नित्यानन्द वेद विद्यालय में प्रधान अध्यापक पद को अलंकृत करते हुए इन्होंने अध्यापन कार्य किया। न्याय तथा वेदान्त के प्रौढ़ तथा दुरूह ग्रन्थों का विमर्शात्मक संस्करण संपादित कर इन्होंने बड़ी कीर्ति अर्जित की। युक्तिवाद, वैशेषिक दर्शन, एवं भामती ग्रन्थों की टीका, न्यायसिद्धान्त मुक्तावली, आत्मतत्त्व विवेक, शब्दशक्ति प्रकाशिका, तथा श्रीसूत्रभाष्य ग्रन्थों पर विस्तृत टिप्पणी, सांख्यकारिका, श्लोकवार्तिक आदि ग्रन्थों का अनुवाद एवं तर्कभाषा-रहस्य ग्रन्थ की रचना भी की है। इसके अतिरिक्त गादाधरी, क्रोडपत्र संग्रह, न्याय लीलावती, न्यायमञ्जरी आदि ३८ ग्रन्थों की विषयानुक्रमणिका एवं भूमिका आपने लिखी तथा सम्पादित की है। अधिकांश ग्रन्थ चौखम्भा कार्यालय वाराणसी से प्रकाशित हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२८

पण्डित प्रमथनाथ तर्कभूषण

आस्पद—भट्टाचार्य, उपाधि—महामहोपाध्याय

महामहोपाध्याय पं० प्रमथनाथ तर्कभूषण भारतीय दर्शन–विशेषकर न्यायशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इन्होंने अपने गम्भीर पाण्डित्य से अमर कीर्ति प्राप्त की थी। व्याकरण, साहित्य तथा न्याय आदि अनेक शास्त्रों का इन्होंने विधिवत् अध्ययन किया था परन्तु इनकी समधिक ख्याति वेदान्तशास्त्र में प्रचुर पाण्डित्य प्राप्त करने के लिए ही थी। इनके नाम के साथ जुड़ी हुई तर्कभूषण की पदवी से स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि ये वास्तव में तर्कशास्त्र के भूषण थे। हिन्दू विश्वविद्यालय में संस्कृत महाविद्यालय के अध्यक्ष पद को बीस वर्षों तक अलंकृत कर इन्होंने प्रचुर ख्याति अर्जित की।

प्रमथनाथ तर्कभूषण की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि ये प्रतिगामी पण्डित न होकर एक प्रगतिशील विद्वान् थे। ये समाज और समय की गति को पहचानने वाले मनीषी थे। प्राचीन शास्त्रों के नियमों तथा विसंगतियों में सुधार करके उन शास्त्रीय वचनों को आधुनिक काल के अनुकूल तथा उपयोगी बनाने के ये परम पक्षपाती थे। मालवीय जी महाराज ने जब हरिजनों को मंत्रदीक्षा देने का आन्दोलन प्रारम्भ किया था तब उसका इन्होंने शास्त्रों का प्रमाण देकर समर्थन किया था। मालवीय जी के समस्त सुधारवादी कार्यों को इन्होंने शास्त्रानुमोदित बतलाकर उनका पक्ष लिया था। इस प्रकार कट्टर तथा पुराणपन्थी पण्डितों से इनकी श्रेणी सर्वथा पृथक् थी। ये प्रगतिशील, सुधारवादी विद्वानों की श्रेणी में प्रथम पंक्ति के अधिकारी थे।

वंशपरिचय—पं० प्रमथनाथ भट्टाचार्य के पिता का नाम पं० ताराचरण भट्टाचार्य था। ये अपने समय के बहुत बड़े विद्वान् तथा वावदूक पण्डित माने जाते थे। इनके अगाध पाण्डित्य से प्रभावित होकर काशीनरेश महाराज ईश्वरीनारायण सिंह ने इन्हें अपने दरबार का राजपंडित नियुक्त किया था और धर्म के कार्यों में इनकी सम्मति को सर्वाधिक प्रामाणिक मानकर वे उसी के अनुसार कार्य करते थे। पं० ताराचरण भट्टाचार्य के जीवन की सबसे प्रधान घटना स्वामी दयानन्द सरस्वती जी से शास्त्रार्थ करना था। सन् १८६९ ई० में स्वामी दयानन्द जी से काशी के पण्डितों का जो ऐतिहासिक शास्त्रार्थ हुआ था, उसमें ताराचरण जी भी विद्यमान थे। ये अपने आश्रयदाता महाराजा ईश्वरीनारायण जी सिंह के साथ—जो उस सभा के अध्यक्ष नियुक्त किये गये थे—इस शास्त्रार्थ में सम्मिलित हुए थे। सच तो यह है स्वामी जी से सबसे पहली भिड़न्त ताराचरण भट्टाचार्य जी की हुई थी। काशीनरेश की आज्ञा से इन्होंने ही स्वामी जी से सबसे पहले प्रश्न किया था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भट्टाचार्य जी नैयायिक होने के अतिरिक्त काव्यशास्त्र के भी अद्भुत विद्वान् थे। इन्होंने अलंकार शास्त्र के विषय में एक ग्रन्थ की रचना संस्कृत में की थी जिसमें रसों का भी विवेचन किया गया था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र महाराजा के दरबार में आते-जाते थे। अतः इनसे ताराचरण जी का पूरा परिचय था। भट्टाचार्य जी ने अपने इस ग्रन्थ में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के द्वारा उद्भावित चार नवीन रसों का उल्लेख 'हरिश्चन्द्रास्तु एवं वदन्ति' कह कर किया है। उन्होंने इन नवीन रसों का हिन्दी में उदाहरण देकर उसका संस्कृत में अनुवाद भी किया है। यह ग्रन्थ आज से ६० वर्ष पहले लीथो में छपा था। परन्तु आजकल इसका नवीन संस्करण देखने में नहीं आता।

जन्म तथा शिक्षा—पं० प्रमथनाथ तर्कभूषण का जन्म बङ्ग देश के भट्टपल्ली नामक स्थान में हुआ था जिसे संस्कृत विद्या की केन्द्रस्थली और अनेक विद्वानों की जन्मस्थली होने का गौरव प्राप्त है। ये इसी गाँव के एक कुलीन ब्राह्मण वंश में १९२३ वि० सं० (=सन् १८६५ ई०) में पैदा हुए थे। इनके पूर्वज प्रायः अपने जीवन के अन्तिम काल में प्रमथनाथ शंकर की नगरी काशी में आकर अपना शेष जीवन बिताया करते थे। इसी कारण इनके अभिभावकों ने इनका नामकरण 'प्रमथनाथ' कर दिया।

इनके पिता का नाम पं० ताराचरण भट्टाचार्य था। इनके पितृव्य पं० राखालदास न्यायरत्न अपने समय के प्रकाण्ड विद्वानों में गिने जाते थे। वे न्यायशास्त्र के प्रसिद्ध पण्डित थे। अतः अपने घर में ही इन्हें विद्या प्राप्त करने का अपूर्व संयोग प्राप्त हो गया। इनके पिता तथा पितृव्य दोनों ने ही बड़े प्रेम से इन्हें शास्त्रों का अध्यापन किया। इस प्रकार घर पर ही इन्होंने व्याकरण, साहित्य और न्यायशास्त्र का अध्ययन कर पाण्डित्य प्राप्त किया। प्रमथनाथ जी की बुद्धि बड़ी प्रखर और तत्त्व-ग्राहिणी थी। अतः विभिन्न शास्त्रों में समधिक विद्वत्ता प्राप्त करने की अभिलाषा से ये काशी आये। इन्होंने यहाँ परिव्राजकाचार्य परमहंस स्वामी विशुद्धानन्दजी से पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा (वेदान्त) का सम्यक् अध्ययन किया। इसके फलस्वरूप थोड़ी अवस्था में ही इन्होंने प्रकृष्ट पाण्डित्य प्राप्त कर लिया। इनकी ख्याति सर्वत्र फैलने लगी।

इन्होंने पण्डित वीरेश्वर स्मृतितीर्थ महाशय के निकट स्मृतिशास्त्र का अध्ययन किया। तदनन्तर महामहोपाध्याय शिवचन्द्र सार्वभौम महाशय के चरणों में बैठकर नव्यन्याय का अध्ययन किया। इसके बाद इन्होंने पं० हृषीकेश शास्त्री से सांख्य शास्त्र का अध्ययन किया। नाना कारणों से पढ़ने-लिखने में विघ्न उत्पन्न होने के कारण ये प्रसिद्ध बंगवासी के प्रतिष्ठाता श्री योगीन्द्रनाथ वसु महाशय के अनुरोध से उनके द्वारा आरम्भ किए गये शास्त्रों के बंगीय अनुवाद के कार्य में पण्डित पंचानन तर्करत्न जी के सहयोगी हुए। किन्तु इस कार्य में इनका मन नहीं लगा। इस लिए अपनी स्त्री और पुत्र के साथ काशी में अध्यापन कार्य के लिए चले आये।

उस समय दरभंगानरेश महाराजा लक्ष्मीश्वर सिंह ने स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती के आदेश तथा उपदेश से काशी में दरभंगा पाठशाला की स्थापना कर दी थी। इस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यालय में साहित्य के अध्यापक का पद रिक्त था। स्वामी महाराज के आदेश से इन्होंने इस पद को ग्रहण किया और दरभंगा पाठशाला में विधिवत् अध्यापन करने लगे। साथ ही साथ स्वामी जी के निकट रहकर मीमांसा तथा वेदान्त शास्त्र का भी अध्ययन बड़े प्रेम और परिश्रम से करते रहे। प्रमथनाथ जी विशुद्धानन्द जी के बड़े ही भक्त छात्र थे। काश्मीर महाराज के निमन्त्रण पर जब स्वामी जी काश्मीर यात्रा पर गये थे, तब प्रमथनाथ जी भी उनके सेवक के रूप में स्वामी जी के साथ गये थे। वहाँ से लौटने के बाद, इस यात्रा का विवरण 'जन्मभूमि' नामक बंगला पत्रिका में इन्होंने प्रकाशित किया था।

१८९८ ई० में महामहोपाध्याय ने कलकत्ता के संस्कृत कालेज से अवकाश ग्रहण किया। उस विद्यालय में वे स्मृतिशास्त्र के अध्यापक थे। उन्हीं के स्थान पर प्रमथनाथ जी की नियुक्ति कलकत्ता संस्कृत कालेज में हुई। उस समय ये उस कालेज में स्मृति-शास्त्र के अतिरिक्त अलंकार और मीमांसा का भी अध्यापन करते थे। कलकत्ता विश्व-विद्यालय के कुलपति आशुतोष मुखर्जी ने १९०६ ई० में संस्कृत कालेज का बड़ा विस्तार किया और विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग का भी विशेष परिवर्धन किया। उनकी दृष्टि प्रमथनाथ जी पर पड़ी और उन्होने इन्हें कलकत्ता विश्वविद्यालय के अन्तर्गत संस्कृत विभाग में प्राध्यापक नियुक्त कर दिया। इस पद पर इन्होंने सोलह वर्ष तक निरन्तर कार्य करते हुए विशेष कीर्ति का अर्जन किया। १९२२ ई० में ये इस पद से सेवा-निवृत्त हुए। अगले वर्ष महामना पं० मदनमोहन मालवीय जी ने—हिन्दू विश्वविद्यालय के अन्तर्गत संस्कृत महाविद्यालय के अध्यक्ष पद पर इन्हें प्रतिष्ठित किया। इस पद पर नियुक्त होकर प्रमथनाथ जी काशी आये और अपना शेष जीवन यहीं अध्ययन एवं अध्यापन में व्यतीत किया।

उपाधियाँ तथा सम्मान

प्रमथनाथजी बड़े ही समाचतुर तथा व्यवहारकुशल पण्डित थे। ये संस्कृत के अति-रिक्त बंगला भाषा के अभ्युत्थान में भी विशेष योगदान करते रहे। बंगाल की प्रसिद्ध मासिक पत्रिका वसुमती, उद्बोधन, बंगवासी आदि पत्रिकाओं में इन्होंने साहित्य तथा धर्मशास्त्र विषय में अनेक सुचिन्तित प्रबन्ध लिखे तथा प्रकाशित किये हैं। अनेक सभा समितियों के सदस्य, प्रबन्धक तथा सभापति होने का भी गौरव इन्हें प्राप्त होता रहा है। १३२३ बंगाब्द में तर्कभूषण जी बंगाल के यशोहर जिला में सम्पन्न बंगीय साहित्य सम्मेलन के नवम अधिवेशन में दर्शन विभाग के सभापति निर्वाचित किये गये थे। ये १३३१ से लेकर १३३३ बंगाब्द तक कलकत्ता की संस्कृत साहित्य परिषद के सभापति थे। १३३५ बंगाब्द में बंगाल के मैमनसिंह जिला के हिन्दू महासभा के अन्तर्गत जो हिन्दू सम्मेलन हुआ था, उसके ये सभापति थे। इतना ही नहीं, इनकी कीर्ति बंगाल के बाहर भी फैली हुई थी। १९४० ई० में भारतीय प्राच्य विद्या संमेलन का जो अधिवेशन मद्रास के प्रसिद्ध नगर तिरुपति में हुआ था उसकी वैशेषिक शाखा के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभापति निर्वाचित किये गये थे। इनकी वक्तृत्व-शक्ति बहुत ही अद्भुत थी। जिस विषय का ये विवेचन करते थे उसका स्वरूप ही अपने भाषणों द्वारा श्रोताओं के प्रत्यक्ष कर देते थे। यही कारण था कि अनेक संस्थाओं की सभाओं में व्याख्यान देने का गौरव इनको प्राप्त था। ऐसे प्रसिद्ध संस्थानों में डान सोसाइटी, महाबोधि सोसाइटी, थियोसोफिकल सोसाइटी तथा गीता सभा का नाम उल्लेखनीय है जहाँ नियमित रूप से ये भाषण किया करते थे।

१६११ ई० में प्रथमनाथ जी को अंग्रेजी सरकार से 'महामहोपाध्याय' की उपाधि प्राप्त हुई थी। १९४२ ई० में काशी के हिन्दू विश्वविद्यालय ने इन्हें डी० लिट्० की मानद उपाधि से अलंकृत कर, इनका गौरव वर्धन किया था। ये जनता तथा सरकार दोनों की दृष्टियों में प्रतिष्ठित तथा उत्कृष्ट विद्वान् के रूप में समादृत किये गये थे।

ग्रन्थरचना

प्रमथनाथ जी लेखनी के भी धनी थे। इन्होंने संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों का प्रकाशन बड़े परिश्रम के साथ किया। अनेक ग्रन्थों का अनुवाद बंग भाषा में करके उसे समृद्ध किया है। इनके द्वारा रचित तथा संपादित ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं :—

(१) कोकिलदूतम्, (२) रास रसोदयम् (१८९१ ई०), (३) विजयप्रकाशम् (१९४६ वि० सं०), (४) व्याप्तिपंचक माधुरी रहस्य विवृति (१६५४ वि० सं०), (५) पूर्व मीमांसा—अर्थसंग्रह टीका (१८६६), (६) भगवद्गीता टीका (१६०२ ई०), (७) अद्वैत सिद्धि (१६१६ ई०), (८) सिद्धान्तलेशः (१६१९ ई०), (९) शांकर-भाष्य—भामती रत्नप्रभा सहित ब्रह्मसूत्र (१९१७ ई०), (१०) कर्मयोग, (११) माया-वाद, (१२) सनातन हिन्दू, (१३) बाँगलार वैष्णव धर्म, (१४) शाक्य सिंह, (१५) मणिभद्र, (१६) काशीखण्ड का बंगला अनुवाद, (१७) श्रीचण्डी का बंगलानुवाद, (१८) मनुस्मृति का बंगलानुवाद, (१९) रत्नमाला, (२०) बौद्ध धर्म और दर्शन, (२१) विशुद्धानन्द चरित्र।

इन ग्रन्थों के नाम से ही प्रमथनाथ जी की नाना शास्त्रों की प्रगाढ़ पण्डिताई सद्यः परिस्फुटित होती है।

१६४१ ई० में २२ मई को सोमवार के दिन ऐसे धुरन्धर पण्डित का काशी में स्वर्ग-वास हुआ। इस समय इनकी आयु ७६ वर्ष थी। इनके भरा-पुरा परिवार एवं सुयोग्य पुत्र थे। विद्वान् छात्रों को तैयार करने का श्रेय प्रमथनाथजी को देना सर्वथा उचित है।

महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का परिचय

(१) **विजयप्रकाश**—यह विश्रुत स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती का पद्यबद्ध जीवन-चरित है। तर्करत्न जी स्वामी जी के प्रिय शिष्य थे। अनेक वर्षों तक आपने उनसे उपनिषद् तथा अद्वैतसिद्धि का विधिवत् अध्ययन कर अद्वैत वेदान्त का प्रकृष्ट पाण्डित्य प्राप्त किया था। शिष्य के द्वारा गुरु के चरित्र का यह चारु चित्रण तर्करत्न जी की पद्य-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचना चातुरी का भी पर्याप्त सूचक है। काशी में दरभंगा पाठशाला में अध्यापन करते समय इन्होंने इसकी रचना की थी।

(२) कोकिलदूतम्—इस दूतकाव्य में कलकत्ते की कोई बंगीय महिला काश्मीर में कार्यवश रहने वाले अपने प्रियतम के पास कोकिल को दूत बनाकर अपनी दयनीय दशा सुनाने के लिए भेज रही है। दूतकाव्य के समस्त गुणों से युक्त यह रचना प्रसादमयी देववाणी में निबद्ध की गई है और श्रोताओं के अन्तस्तल को अपनी मधुरता तथा प्रसन्नता के द्वारा हठात् आवर्जन करने में समर्थ है। यह काव्य १०६ पद्यों में निबद्ध है।[1] काशीश (सम्भवतः प्रभुनारायण सिंह) को यह कृति समर्पित की गई है। एक-दो उदाहरण देखिए—

हिमालय के वर्णन में कवि कहता है—

कुत्राप्युच्चैः सरलशिखरात् सान्द्रनीहारशुभ्रात्
वेगाधिक्यात् पतितमसमं वेष्टितप्रान्तभागम्।
गर्जद्भोगिध्वनितहरितः शूलिनः पाणिलक्ष्म्या
नृत्यारम्भेऽनुकृतिकुशलं निर्झरं धारयन्तम्॥

कोकिल विरहिणी की दयनीय दशा का सुन्दर वर्णन करता है :—

ताम्बूलोत्थो रदवसनयोर्दृश्यते नैव रागो
नो वा तुल्या वत चरणयोर्लक्ष्यतेऽलक्तकश्रीः
सूक्ष्मस्पर्शा कठिन-कठिना स्नेहसम्पर्कहीना
गाढोत्कण्ठां दिशति सुहृदामेकवेणी च तस्याः॥
(कोकिलदूत, ७६ श्लोक)

विरहिणी का कुसुम सदृश चित्त काम के बाणों से विद्ध होने से धैर्यहीन हो गया है। वह धैर्य के वृन्त (डंठल) से शिथिल हो रहा है—उसकी दीन दशा पर दृष्टिपात तो करो—

चेतोऽस्माकं कुसुमसदृशं कौसुमेषोर्निपातात्
तीव्रादेतत् प्रिय ! तदधुना भिन्नधैर्यैकवृन्तम्।
हन्ते दानं हृदयवसते ! त्वद्वियोगोष्णरश्मि-
गंच्छेदेवं दृढमुपचयं चिन्तयाऽस्मद्गतिः का॥
(तत्रैव, ६५ पद्य)

कोकिलदूत प्रमथनाथ जी के कविहृदय का पर्याप्त सूचक है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं।

(३) वैष्णवधर्म—बंगला में कलकत्ता विश्वविद्यालय में दिए गए इनके भाषणों का संग्रह है जिसे विश्वविद्यालय ने ही प्रकाशित किया है। प्रमथनाथ जी परमवैष्णव

---

१. काशी के अमर यन्त्रालय द्वारा प्रकाशित।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। राधामाधव की ललित लीलाओं के स्वयं आस्वादवेत्ता तथा श्रोताओं को आस्वादयिता। इसीलिए इनके गीता प्रवचन बड़े ही मधुर, आवर्जक तथा मर्मस्पर्शी होते थे। ये प्रधानतया वैष्णव कवि हैं और इसका परिचय इस ग्रन्थ से भली-भाँति लगता है।

(४) तर्करत्न जी धर्मशास्त्र तथा वेदान्त के भी पण्डित एवं व्याख्याता थे। इनके दो धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों के सम्पादन तथा बंगला में अनुवाद उपलब्ध होते हैं। **कालविवेक**—इन्होंने जीमूतवाहन के कालविवेक का विमर्शात्मक संस्करण निकाला जो कलकत्ता की एशियाटिक सोसाइटी की 'बिब्लिओथिका इंडिका' नामक प्रख्यात ग्रन्थमाला में प्रकाशित हुआ है (१८६७ ई० से १६०५ ई० तक ७ छोटे-छोटे खण्डों में)।

(५) **मनुस्मृति**--मेधातिथि तथा कुल्लूक भट्ट के क्रमशः भाष्य तथा व्याख्या के साथ बंगला में अनूदित होकर कलकत्ते के वंगवासी प्रेस से प्रकाशित हुई है। इस ग्रन्थ की विस्तृत तथा विशद भूमिका में तर्करत्न जी ने धर्मशास्त्रीय विषयों का तथा मनु के मन्तव्यों का विशेष अनुसन्धानपूर्वक निबन्ध प्रकाशित किया है जिससे इनके एतद्-विषयक वैदुष्य का पर्याप्त परिचय आलोचकों को प्राप्त होता है।

(६) **मायावाद**—तर्करत्न जी की व्याख्यान-शैली बहुत ही सरल-सरस थी। ये कठिन विषयों को बड़े ही सरल शब्दों में उदाहरण के साथ प्रस्तुत करने में प्रवीण थे। इसीलिए हिन्दूविश्वविद्यालय में इनके गीताप्रवचन बड़े ही लोकप्रिय, आवर्जक तथ आकर्षक होते थे। मायावाद का यह बड़ा ही अभिराम वर्णन बंगला में निबद्ध है। इसकी उपादेयता के ही कारण विश्वभारती ने इसे अपनी आर्यग्रन्थावली के अन्तर्गत पुनः प्रकाशित किया है। ये हिन्दी में भी लिखते थे। 'कल्याण' के विशेषांकों में इनके अनेक शास्त्रीय निबन्ध प्रकाशित हुए हैं जो ज्ञानवर्धक होने के साथ ही साथ नितान्त रोचक भी हैं।

महामहोपाध्याय प्रमथनाथजी बड़े ही सभाचतुर थे। भाषण करने की कला के पारगामी पण्डित थे। श्रोताओं के हृदय को आकृष्ट करने की इनकी क्षमता अद्भुत थी। इस विषय में इनका एक संस्मरण लेखक के हृदय में सदा के लिए अंकित है। घटना का क्रम इस प्रकार हुआ।

डा० आनन्दशंकर ध्रुवजी बड़े ही कुशल शासक तथा समन्वयवादी विद्वान् थे। वे एक साथ ही विश्वविद्यालय के अनेक पदों पर प्रतिष्ठित थे और उनका यथावत् निर्वाह करते थे। उनके शासनकाल में सर्वत्र शान्ति विराजती थी। वातावरण कभी क्षुब्ध नहीं होता था। अध्यापकों के पारस्परिक कलह को शान्तभाव से निपटा देना ध्रुवजी के बायें हाथ का खेल था। वे बड़े ही लोकप्रिय थे—अध्यापकों में जितने उससे अधिक छात्रों में। उस समय वैमनस्य का कहीं नाम-निशान न था। उनकी लोकप्रियता अपने चरम बिन्दु पर थी कि एक विचित्र घटना घटी। उनका कार्यकाल समाप्तप्राय था। पूरे विश्वविद्यालय को आशा थी कि उनका कार्यकाल आगे बढ़ेगा और उनका सहयोग पूरी मात्रा में प्राप्त होगा। परन्तु सब किसी की आशा एवं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकांक्षा के विरुद्ध उनका कार्यकाल नहीं बढ़ा और सेशन के बीच में उन्हें अपने उत्तरदायी पद को छोड़ना पड़ा। इसी अवसर पर उनकी बिदाई के लिए समारोह हुआ।

आर्ट्स कालेज का केन्द्रीय विशाल हाल। छात्रों एवं अध्यापकों की खचाखच भीड़। तिल रखने की जगह नहीं। मालवीयजी महाराज के साथ ध्रुवजी सभा में पधारे। महामना सभापति पद को सुशोभित करने लगे और प्रधान वक्ता का भार महामहोपाध्याय प्रमथनाथजी के कन्धों पर आकर पड़ा। लेखक उस विशाल समारोह में संस्कृत विभाग का वरिष्ठ अध्यापक होने के नाते उपस्थित था और उस सभा की कार्यावली को बड़ी निकटता से देख रहा था। अन्य वक्ताओं के अनन्तर प्रमथनाथजी की जब बारी आई तब सन्नाटा छा गया। बात यह थी कि ध्रुवजी तर्करत्नजी के घनिष्ठ सहयोगी थे। संस्कृत के विद्वान् होने के नाते आत्मीयता से दृढ़ता से निबद्ध थे तथा हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रो० वाइसचांसलर होने की दृष्टि में उनके अधिकारी कोटि में भी आते थे। फलतः समग्र दर्शकों की दृष्टि इस वृद्ध पण्डित की ओर स्वतः खिंच गई। सब लोग लालायित हो उठे कि प्रमथनाथजी अपने विकल चित्त की कथा आज किन शब्दों में सुनाएँगे।

तर्करत्नजी मितभाषी व्यक्ति थे। ये सार बातों को ही अपने भाषण में स्थान देते थे। इन्होंने पण्डितराज जगन्नाथ के एक मार्मिक पद्य को उद्धृत कर उसकी व्याख्या में अपने कातर हृदय के दुर्दमनीय भावों की विह्वलधारा को उड़ेल ही तो दिया। भामिनीविलास का वह प्रशंसनीय पद्य इस प्रकार है—

तृष्णालोलविलोचने कलयति प्राचीं चकोरीगणे
मौनं मुञ्चति किञ्च कैरवकुले, कामे धनुर्धुन्वति।
माने मानवती जनस्य सपदि प्रस्थातुकामेऽधुना
धातः किन्नु विधौ विधातुमुचितो धाराधराडम्बरः॥

विधाता से एक शिकायत है और जबरदस्त शिकायत है—एक अभियोग है और प्रबलतर अभियोग है। सन्ध्या वेला में पूर्ण चन्द्रमा का उदय आसन्न है। तृष्णा से चञ्चल विलोचन होने वाली चकोरियों का झुण्ड पूरब दिशा की ओर टकटकी बाँधे हुए ताक रहा है। कोई फूलों की पाँत अपनी चुप्पी तोड़ने के लिए तैयार बैठी है—दिन भर मौन मुद्रा धारण करने वाली कुमुदों की पंक्तियाँ उसे तोड़ने के लिए उत्सुकता मचा रही है। कामदेव अपने धनुष को हिला रहा है। कब दर्शन होवे चन्द्रमा का और कब वे कामिनीजनों पर अपने बाण छोड़कर उन्हें उत्सुकता की मूर्ति बना डालें। मानिनी ललनाओं का मन तुरन्त भाग जाने के लिए तैयार हो गया है—ऐसे समय हे विधाता, आपने यह क्या किया? चन्द्रमा के ऊपर मेघों का यह आडम्बर लगा देना क्या आपके लिए उचित है। यदि एक मेघ या मेघखण्ड होता, तो उसके झीने आवरण से चन्द्रमा का कुछ तो दर्शन उत्सुक व्यक्तियों को मिल ही

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता, परन्तु आपने तो काले-काले मेघों की यह ठोस दीवार ही खड़ी कर दी। भला सुधाकर के बिम्ब के किसी भी अंश का अब दर्शन मिल सकता है ? इतने दर्शनार्थियों की आशा पर आपने पानी फेर दिया। विधुमण्डल को देखने के लिए चंचलहृदय व्यक्तियों पर इस घटना से क्या बीतेगी—आपने इसका तनिक भी विचार नहीं किया। हा ! हन्त !!!

तर्करत्नजी ने अपनी थर्राती वाणी में इतनी कोमलता से इन भावों को प्रकट किया कि श्रोताओं की आँखें आँसुओं से छलछला उठीं। ऐसा मुग्धकारी भाषण सुन कर स्वयं महामना के भी लोचन अश्रुसिक्त हो गए। पूरी सभा में करुणा का वातावरण छा गया। ऐसी थी मुग्धकारिणी भाषा-शैली महामहोपाध्याय प्रमथनाथ तर्करत्नजी की।

●

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२६

पण्डित हरिहरकृपालु द्विवेदी

(आस्पद—द्विवेदी; उपाधि—महामहोपाध्याय)

महामहोपाध्याय पण्डित हरिहरकृपालु द्विवेदी व्याकरण, न्याय, मीमांसा शास्त्रों के प्रतिभासम्पन्न, संस्कृत भाषा की विचित्रतर प्रयोग रचना में चतुर तथा तर्कविद्या के स्वाद-रसिक विद्वान् थे। ये महाभाग गुरु की शिक्षा से उपलब्ध शास्त्रीय विद्या को अपने मनन के द्वारा तीक्ष्णतर बनाते हुए स्वतंत्र वृत्ति वाले अपूर्व विनय तथा औदार्य गुणों से सम्पन्न मनीषी थे। इन्होंने ग्रन्थ रचना के द्वारा केवल देववाणी के ही साहित्य की समृद्धि नहीं की, प्रत्युत संस्कृत की गम्भीर आध्यात्मिक रचनाओं का सरल सुबोध अनुवाद प्रस्तुत कर राष्ट्रभाषा हिन्दी के दार्शनिक साहित्य की अभिवृद्धि में विशेष योग दिया। इस विषय में कोई दो मत नहीं हो सकते। इनके द्वारा हिन्दी में अनूदित ग्रन्थ विषय की दृष्टि से ही सारगर्भित नहीं हैं, बल्कि परिमाण की दृष्टि से भी विशाल तथा विपुलकाय हैं। ऐसे अनुवाद ग्रन्थों का प्रणयन इनकी तार्किक बुद्धि का ही परिचायक नहीं है प्रत्युत इनके विपुल अध्यवसाय का भी पर्याप्त-रूपेण सूचक है।

पण्डित हरिहरकृपालु जी ने गीता मधुसूदनी व्याख्या के अनुवाद की समाप्ति पर अपने जीवन-चरित्र का बहुत ही संक्षेप में परिचय दिया है। ये त्रिवेणी मण्डल के एक मध्यवर्गीय सरयूपारीण ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हुए थे। इनके प्रपितामह का नाम था धाराधर द्विवेदी। उन्होंने त्रिवेणी संगम से चार कोस दक्षिण में अपनी अर्जित भूमि पर 'पण्डितपुर' नामक ग्राम बसाया था। इनके पूर्वज इसी गाँव में रहते आये और पण्डित हरिहरकृपालु जी का जन्म इसी पण्डितपुर गाँव में हुआ था। इनके पूज्य पितामह पण्डित विश्वम्भरदत्त द्विवेदी ने शुभ मुहूर्त में अपने पौत्र का विद्यारम्भ संस्कार कराया। इनके पूज्य पिता पण्डित बलभद्र द्विवेदी बराँव राज्य के प्रधान राजपण्डित थे। उन्हीं से इन्होंने आरम्भिक व्याकरण शास्त्र की शिक्षा पाई थी, परन्तु घर पर रहकर पढ़ने में नाना प्रकार के विघ्न उपस्थित हो गये जिनके कारण अध्ययन के कार्य में बाधाएँ उपस्थित होने लगीं। इसलिए इन्होंने प्रयाग जनपद के अपने घर को छोड़ कर काशी में विद्याध्ययन का विचार किया। परन्तु काशी में इनका मन नहीं लगा। तब ये अयोध्या जी अध्ययनार्थ चले गये।

अयोध्या उस समय अपने विद्यालयों के द्वारा छात्रों के आकर्षण का केन्द्र थी। वहीं हरिहरकृपालु जी अपने विद्याभ्यास के लिए पहुँचे। अयोध्या में दो विशिष्ट विद्वानों के सम्पर्क में आने का इन्हें सुयोग प्राप्त हुआ। उनमें से एक वैयाकरण केसरी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० रामाज्ञा जी और दूसरे थे सर्वतन्त्र स्वतन्त्र पण्डित उमापति द्विवेदी। पण्डित रामाज्ञा जी से कृपालु जी ने व्याकरण आगम का विधिवत् अध्ययन कर इसी शास्त्र में प्रौढ़ि प्राप्त की। दूसरे पण्डित थे वैदुष्यसम्पन्न चतुरस्र पाण्डित्य मण्डित उमापति जी। जब ये वहाँ अध्ययनार्थ पहुँचे, तब 'व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभाव' विषयक प्रसंग का अध्ययन चल रहा था। एक स्थान पर बैठकर इन्होंने पाठ का श्रवण कर बुद्धि-सात् कर लिया। पाठ समाप्त होने पर गुरुजी ने शिष्यों से पूछा कि विषय का यथार्थ बोध कितना हुआ ? प्राचीन छात्र एकान्ततः मौन थे, परन्तु हरिहरकृपालु जी ने अपनी मेधाशक्ति से समग्र विषय को यथार्थतः कह सुनाया। पण्डित उमापति द्विवेदी के हृदय में इस नवीन छात्र के आने से महान् हर्ष हुआ और उन्होंने इसे अपने शिष्यों में प्रमुख स्थान दिया।

इसी काल में सरस्वती के द्वारा स्वप्न में 'चिन्तामणि' मन्त्र के सानुष्ठान उपदेश की प्रामाणिक घटना बतायी जाती है। एक रात इन्होंने स्वप्न में देखा कि कोई बालिका इन्हें चिन्तामणि मन्त्र देकर उसकी उपासना करने का उपदेश देती है। प्रातः इन्हें बड़ा विस्मय हुआ। ये कार्यवश अपने गुरुजी के पुत्र के संग गोरखपुर गये और रास्ते में पड़े कागज के एक पन्ने को पाया जिसमें चिन्तामणि मन्त्र तथा उसके अनुष्ठान का विधान दिया गया था। गुरुजी की कृपा से इस मन्त्र के स्वरूप तथा अनुष्ठान की विधि का पूर्ण परिचय इन्हें मिल गया। इस मन्त्र का इन्होंने जप किया जिससे इनकी विद्या अत्यधिक द्युतिमती होकर फलवती हुई। पाँच-छह वर्षों के भीतर ही इन्होंने प्राचीन तथा नव्यन्याय का यथाविधि अध्ययन समाप्त किया। उस समय अयोध्या में पण्डित चण्डीप्रसाद शुक्ल (काशीस्थ गोयनका महाविद्यालय के भूतपूर्व अध्यक्ष), पं० रामेश्वर दत्त सुकुल तथा पं० रुद्रदत्त शास्त्री इनके सहपाठी थे। पं० उमापतिजी से न्यायशास्त्र का अध्ययन कर शास्त्र ज्ञान में पूर्णता प्राप्त की।

अनन्तर वेदान्त और मीमांसा के अध्ययनार्थ ये काशी आये। काशी में उस समय स्वामी राममिश्र शास्त्रीजी की तूती बोलती थी। वेदान्तादि शास्त्रों के वे मार्मिक वेत्ता के रूप में सर्वत्र विश्रुत थे। हरिहरकृपालुजी ने इनसे वेदान्त, मीमांसा आदि दर्शनों का पुङ्खानुपुङ्ख अध्ययन किया और अपने इन गुरुजी को उन्होंने 'निःशेषागम-मन्थ-मन्दरमति' कहा है अर्थात् समग्र शास्त्ररूपी सागर के मन्थन में उन्हें मन्दराचल के समान अडिग एवं निश्चल मति वाला मनीषी बतलाया है। वे थे भी ऐसे ही महापुरुष जिनका संक्षिप्त परिचय ऊपर दिया गया है। इस प्रकार अयोध्या तथा काशी में निवास कर हरिहरकृपालुजी ने समस्त व्याकरण एवं द्वादश-विध दर्शनों में नितान्त गाढ़ पाण्डित्य प्राप्त कर लिया और विद्याध्ययन कराने की योग्यता से सर्वथा सम्पन्न बन गये। पहले तो स्वामी राममिश्रजी के विद्यालय में इनके मलिन वस्त्रादिकों के कारण कुछ उपेक्षा हुई, परन्तु इनके गुणों से परिचित होने पर स्वामीजी ने अपने ही 'रामानुज कोट' में इन्हें आवास देकर खुलकर वेदान्त

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का शिक्षण कराया। उस समय वहीं विद्यालय में प्रसिद्ध नैयायिक वामाचरण भट्टाचार्य तथा वेदान्तशिरोमणि लक्ष्मण शास्त्री द्राविड़ इनके सहपाठी छात्र तथा मित्र थे।

पण्डित हरिहरकृपालु जी के लिए विद्याध्ययन का काल समाप्त हो गया। अब इन्होंने व्याकरण की विषम फक्किका के निराकरण में एवं न्याय-वेदान्त के गम्भीर रहस्यों के उद्घाटन में अलौकिक शेमुषी-सम्पन्न विद्वान् के रूप में लौकिक ख्याति के युग में पदार्पण किया। रीवाँ के महाराजा वेंकटेश नारायण सिंह के राज्याभिषेक के अवसर पर पण्डितों की महती सभा में द्विवेदी जी ने अपने वैदुष्य का परिचय दिया और उपस्थित विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित कर विजयश्री का वरण किया। रीवाँ में अपने पिताजी की आज्ञा से आप गये थे और प्रसंगवशात् उस शास्त्रार्थ में उपस्थित हुए थे। वहाँ से ये बिहार की राजधानी पटना चले गये। नितान्त अपरिचित स्थान होने के कारण इन्होंने पटना सिटी के जालान भवन धर्मशाला में ही अपना डेरा डाला और वहीं रहने लगे। समीप में रहने वाले पण्डित विहारीदास नामक ब्राह्मणदेवता के पुत्र का उपनयन होने वाला था जिसमें नगर के प्रमुख विद्वान् निमन्त्रित थे। वे आपस में किसी विषय पर शास्त्रार्थ कर रहे थे। उसी समय किसी ने धर्मशाला में टिकने वाले इस नये विद्वान् के आने की सूचना दी और इन्हें भी शास्त्रार्थ परिषद् में निमन्त्रित करने की सलाह दी। निमन्त्रण पाकर द्विवेदी जी सभा में पधारे और शास्त्रार्थ में भाग लेने के लिए प्रस्तुत हुए। स्थानीय पण्डितों में मुरारका विद्यालय के प्रधान आचार्य पण्डित रामसुरेश मिश्र प्रमुख तथा सर्वश्रेष्ठ थे। उन्होंने ही पाणिनि के 'प्रातिपदिकार्थ' सूत्र पर द्विवेदीजी से प्रश्न किया। प्रश्न का उत्तर हरिहरकृपालु जी बड़ी प्रौढ़ता के साथ इतनी मार्मिकता से देने लगे कि उपस्थित विद्वन्मण्डली चकित हो उठी। अनेक कोटियाँ चलीं। अन्त में पण्डित रामसुरेश मिश्र ने इनकी उत्कृष्ट विद्वत्ता के सामने अपनी पराजय स्वीकार की एवं उन्होंने अपने ही मुख से द्विवेदी जी के उत्कृष्ट पाण्डित्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की। पटना का यह शास्त्रार्थ पण्डित हरिहरकृपालु जी के जीवन में एक नवीन मोड़ लाने वाला ऐतिहासिक शास्त्रार्थ सिद्ध हुआ। 'पटनहिया' पण्डितों की पूर्ण पराजय की यह कहानी पटना ही की नहीं, प्रत्युत पूरे बिहार प्रान्त की पण्डित-मण्डली में आँख मींचते-मींचते फैल गई और पण्डित हरिहरकृपालु जी का नाम लोकातीत वैदुषी से मण्डित तार्किक के रूप में सर्वत्र व्याप्त हो गया।

मुरारका संस्कृत विद्यालय

पटना में 'मुरारका संस्कृत विद्यालय' एक गौरवशाली शिक्षा संस्थान है जिसकी स्थापना १ मार्च १८७६ ईस्वी में राजस्थान के 'नवलगढ़' के निवासी सेठ श्रीप्रसादी राम के ज्येष्ठ पौत्र मनसुख राम मुरारका के द्वारा की गई थी और जिसकी शताब्दी अभी हाल में ही मनाई गई है। आरम्भ में सेठ जी के व्यापार का केन्द्र पटना ही था, परन्तु व्यापार में अपूर्व उन्नति होने से इसका केन्द्र कलकत्ता हो गया। जिस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय पूर्वोल्लिखित घटना घटी थी, इस विद्यालय का नाम सेठ शिवरामदास जी के ज्येष्ठ पुत्र के नाम पर 'मनसुखराम विद्यालय' था, क्योंकि मनसुखराम ही इनके कर्त्ता, धर्त्ता एवं व्यवस्थापक थे। इस शास्त्रार्थ के कुछ ही दिनों के अनन्तर पं० रामसुरेश मिश्र ने विद्यालय छोड़ दिया और उनके रिक्त अध्यक्ष पद पर मनसुखराम ने आग्रह-पूर्वक द्विवेदी जी को उनके गाँव से बुलाकर प्रतिष्ठित कर दिया। द्विवेदी जी के अध्यापन के साथ ही स्थान-व्यवस्था करने की भी सुन्दर क्षमता थी। फलतः इनकी देख-रेख में विद्यालय की विशेष उन्नति होने लगी, दूर-दूर से छात्र पण्डित जी की अध्यापन ख्याति से आकृष्ट होकर आने लगे और यह साधारण-सा विद्यालय एक महनीय 'महा-विद्यालय' के रूप में सस्कृत विद्या के प्रचार-प्रसार का तथा अध्ययन-अध्यापन का महिमामय केन्द्र बन गया। इस परिवर्तन-परिवर्धन में द्विवेदी जी के साथ ही साथ नये व्यवस्थापक सेठ रामनिरंजन दास जी का भी विशेष योगदान था जिन्होंने अपने अग्रज मनसुखराम की मृत्यु के अनन्तर विद्यालय का सारा भार अपने ऊपर ले लिया और इसी कारण यह संस्थान अब 'सेठ रामनिरंजन दास मुरारका संस्कृत महाविद्यालय' के नाम से ख्यात हुआ।

मुरारका महाविद्यालय के अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित होने के कुछ ही समय बाद ऐसी घटनाएँ घटने लगीं जिनसे हरिहरकृपालु जी का नाम बिहार की पण्डित-मण्डली में विशेष पाण्डित्य तथा तार्किक मनीषा का प्रतीक बन गया। बिहारोत्कल संस्कृत समाज का प्रथम उपाधि वितरणोत्सव मुजफ्फरपुर में १९१५ ई० में मनाया गया जिसमें द्विवेदी जी आमन्त्रित किये गये थे। १९१६ में भी वहीं कानवोकेशन के समय पण्डितों की एक विशाल सभा जुटी थी जिसमें हरिहरकृपालु जी को 'वेदान्त प्रबन्ध' शीर्षक वेदान्त के प्रमेय प्रतिपादक महानिबन्ध की रचना के लिए प्रथम पुरस्कार की घोषणा की गई। यह प्रबन्ध सरल गद्य में निबद्ध न होकर स्रग्धरा जैसे दीर्घवृत्त में निबद्ध है। दार्शनिक विषयों के लिए तो गद्य का माध्यम ही पण्डितों के द्वारा समादृत किया जाता है, परन्तु यदि पद्य में लिखना हो तो अनुष्टुप् छन्द का प्रायः प्रयोग होता है। किन्तु इन दोनों माध्यमों को छोड़कर हरिहरकृपालु जी ने वेदान्त जैसे दुरूह विषय के प्रतिपादन के लिए स्रग्धरा जैसे लम्बे छन्द का अवलम्बन किया। यह घटना इनकी अद्भुत-कवित्व शक्ति की पर्याप्त परिचायक है।

जब पण्डित जी को प्रथम पुरस्कार की घोषणा की गई तब ईर्ष्यालु मैथिल पंडितों ने कहना प्रारम्भ कर दिया कि ग्रन्थ-रचना से क्या होता है, यह काम तो कोई भी कर सकता है। यदि मौखिक शास्त्रार्थ में पण्डित जी हम लोगों के सामने टिक सकें तब इन्हें जानें-मानें। तब दरभंगानरेश, जो उस सभा के सभापति थे, के आदेश से शास्त्रार्थ भी होना प्रारम्भ हो गया। पहले मैथिल पण्डितों ने कृपालु जी से व्याकरण शास्त्र में शास्त्रार्थ किया परन्तु जब इसमे वे पराजित हो गये तब न्यायशास्त्र, जिसे वे अपनी बपौती समझते थे—में शास्त्रार्थ होने लगा। परन्तु इस शास्त्र में भी शास्त्री जी ने उनके छक्के छुड़ा दिये। तब कहीं जाकर मैथिल पण्डितों के ऊपर इनके पाण्डित्य का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिक्का जम सका। व्याकरण के शास्त्रार्थ का विषय था 'शक्तिः समासे पृथगस्ति नो वा' अर्थात् समास में अलग शक्ति है या नहीं। इस शास्त्रार्थ में पूर्वपक्ष में वैयाकरण-केशरी म० म० पं० लालजी झा थे और उत्तरपक्ष में द्विवेदी जी थे। इसी प्रकार न्याय के शास्त्रार्थ का विषय था—सामान्यनिरुक्तिः। प्रश्नकर्त्ता थे नैयायिक पण्डित उमेश मिश्र। इन दोनों शास्त्रों में शास्त्रार्थ होने के पश्चात् द्विवेदी जी ने सांख्य, योग, मीमांसा तथा वेदान्त आदि शास्त्रों में भी शास्त्रार्थ करने के लिए मैथिल विद्वानों को ललकारा। परन्तु उन्होंने पहले ही इनकी विद्वत्ता का लोहा मान लिया था अतः अब वे पुनः शास्त्रार्थ करने के लिए उद्यत नहीं हुए। इस घटना के पश्चात् द्विवेदी जी को महाराजा दरभंगा ने दुशाला, धौत वस्त्र आदि अनेक वस्तुओं से पुरस्कृत किया। इस प्रकार द्विवेदीजी की कीर्ति-कौमुदी समस्त बिहार प्रान्त में प्रकाशित होने लगी।

इसके पश्चात् द्विवेदी जी की विद्वत्ता की तूती बोलने लगी। अनेक छात्र, पण्डित किम्बा संन्यासी इनसे विद्याध्ययन करने के लिए इनके पास आने लगे। द्विवेदीजी के कारण मुरारका पाठशाला संस्कृत महाविद्यालय के रूप में चमक उठी। फिर तो द्विवेदी जी और मुरारका महाविद्यालय में अटूट संबंध स्थापित हो गया। गुणग्राही सेठ रामनिरंजनदास मुरारका अपने विद्यालय की उन्नति करने वाले द्विवेदीजी के परम प्रशंसक तथा भक्त हो गये।

द्विवेदी की विद्वत्ता तथा ख्याति सुनकर महामना मालवीय जी ने इन्हें हिन्दूविश्व-विद्यालय के संस्कृत महाविद्यालय के प्रिन्सिपल के पद को सुशोभित करने के लिए आमंत्रित किया था। परन्तु सेठ मुरारका ने द्विवेदी जी को अपने विद्यालय की सेवा से मुक्त नहीं किया। अतः ये विश्वविद्यालय में नहीं आ सके। द्विवेदी जी मुरारका विद्या-लय में १९५४ वि० सं० (१८९७ ई०) में नियुक्त किए गए और इनका निवर्तमान काल १९३५ ई० था। फलतः इन्होंने इस महाविद्यालय की सेवा ३८ वर्षों तक एक निष्ठा से की। जब इनकी अवस्था सन् १९३४ ई० में ६४ वर्ष की हो गई तब इनके हृदय के कोने में सुषुप्त काशी-वास की लालसा जाग्रत हुई और ये सेठ मुरारका की अनुमति से अपने सुपुत्र आचार्य ब्रह्मदत्त द्विवेदी को विद्यालय के अध्यापन तथा व्यवस्थापन दोनों का भार सौंपकर काशी आ गये। काशी में अविरत निवास करने के पूर्व द्विवेदी जी ने समस्त भारतवर्ष की तीर्थयात्रा की थी। इन्होंने २९-१०-३४ ई० को अपनी तीर्थ यात्रा[1] प्रारम्भ की थी और समस्त तीर्थों का भ्रमण करके १८-१-३५ ई० को पटना लौट आये। इस प्रकार ढाई महीनों तक इन्होंने समस्त भारत का भ्रमण किया।

द्विवेदी जी केवल काशीवास करने के लिए ही वाराणसी आये थे परन्तु सेठ गौरी-शंकर गोयनका ने इनकी विद्वत्ता का लाभ उठाने के लिए इन्हें अपने 'गोयनका महा-

१. इनकी तीर्थयात्रा का वर्णन इनके शिष्य पं० रघुनन्दन त्रिपाठी ने विस्तार के साथ 'हरिहरचरितम्' नामक अपने संस्कृत चम्पू काव्य ग्रन्थ में पृष्ठ २१५-८५ तक किया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यालय' का आग्रहपूर्वक अध्यक्ष पद प्रदान किया। इस पद पर रहते हुए जो द्रव्य इन्होंने प्राप्त किया उसे शिव निर्माल्य समझ कर कभी अपने स्वार्थ के लिए ग्रहण नहीं किया और दशसहस्र मुद्रा खर्च करके इन्होंने अपनी जन्मभूमि इलाहाबाद जिले के पण्डितपुर गाँव में शिवजी का मन्दिर बनवाया। इससे पण्डित जी की महनीय निर्लोभता सिद्ध होती है। गोयनका महाविद्यालय में द्विवेदी जी ने १४ वर्षों तक अध्यक्ष पद पर कार्य किया। द्विवेदी जी स्वतन्त्र विचार के व्यक्ति थे। उसमें कहीं से क्षुत् क्षेम होने पर वे पद पर बने रहना पसन्द नहीं करते थे। इसी कारण अपनी मृत्यु से कुछ समय पूर्व ही इन्होंने विद्यालय से त्यागपत्र दे दिया था और स्वतन्त्र जीवन बिताते थे।

अन्त में चैत्र कृष्ण नवमी वि० सं० २००६ (तदनुसार २३ मार्च सन् ४९ ई०) में इन्होंने काशी के मणिकर्णिका घाट के पास राधाकृष्ण के मन्दिर में कैलासवास प्राप्त किया।

शास्त्रार्थ-पटुता—द्विवेदीजी अध्यापन कला में जितने पटु थे, शास्त्रार्थ की पद्धति में भी उतने ही प्रवीण थे। शास्त्रार्थ में जब शास्त्र के तत्वों के गूढ़ रहस्यों का प्रतिपादन करते थे तब पण्डित-मण्डली इनकी विद्वत्ता देखकर चकित रह जाती थी। मुजफ्फरपुर के ऐतिहासिक शास्त्रार्थ का उल्लेख पहले किया जा चुका है। इसी प्रकार इनके शास्त्रार्थ के अनेक स्मरणीय प्रसंग हैं परन्तु यहाँ केवल एक-दो प्रसंग देना ही पर्याप्त होगा।

दरभंगा में एक बार द्विवेदीजी को शास्त्रार्थ के लिए आमंत्रित किया गया था। वहाँ मैथिल विद्वानों ने इतना कोलाहल मचाया कि शास्त्रार्थ करना असंभव हो गया। द्विवेदीजी ने उसी समय एक श्लोक बनाकर उन विद्वानों को चकित कर दिया। यह श्लोक इस प्रकार है—

अयं मदीयो न परो मदीयो,
नायं विवेको निपुणः प्रभूणाम्।
अथापि भेदो यदि मादृशेषु,
वामो विधिः, किं करवै रवैः नः॥

इतना ही नहीं इन्होंने अपने मन की भावना को एक दूसरे पद्य के द्वारा अभिव्यक्त किया है। यह श्लोक भी काव्य की दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर तथा भावपूर्ण है—

नाऽयं कामयतेऽन्यतोऽर्थकणिकां,
न क्लीबकल्पां कृपाम्।
नापि क्वापि पदोन्नतिं न विजयख्यातिं,
न चान्यत् परम्॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामं कामयते परस्पर-
सम - प्रेमोपचाराञ्चितं ।
वाचां चारु - परिश्रमैः
सुचरितैः प्राचां प्रचारं चिरम् ।।

इस कमनीय पद्य से पण्डित हरिहर कृपालुजी की सात्विक वृत्ति का पूर्ण परिचय मिलता है । ये कहते हैं कि "मैं किसी से एक छटाक की भी भीख नहीं चाहता और न उस दया का ही भिखारी हूँ जो सामर्थ्यहीन व्यक्तियों के ऊपर समर्थ प्रभुओं के द्वारा प्रदर्शित की जाती है । न मैं अपने पद की उन्नति चाहता हूँ और न शास्त्रार्थ में विजय पाकर ख्याति अर्जित करने का अभिलाषुक हूँ । मैं केवल यही चाहता हूँ कि परस्पर प्रेम तथा सौहार्द्र के द्वारा अपने सुचरितों तथा चारु परिश्रमों से प्राचीनों के द्वारा निर्मित ग्रन्थों का प्रचुर प्रचार करूँ ।" इस कथन को उन्होंने अपने जीवन में यथार्थ करके दिखला दिया । चाहे वह पटने का मुरारका विद्यालय हो चाहे काशी गोयनका महाविद्यालय—दोनों संस्थानों में द्विवेदीजी ने अपने सुचरित तथा अध्यवसाय के द्वारा प्राचीन परम्परा की लीक को ही अग्रसर करने में योगदान दिया ।

पं० हरिहर कृपालु जी अत्यन्त ही उदार व्यक्ति थे । धनिकों के प्रति तो सभी अपनी उदारता दिखलाते हैं परन्तु निर्धन छात्रों के प्रति उदारता प्रदर्शित करना कृपालु जी का ही कार्य था । ये अपने नाम के अनुकूल ही अपने शिष्यों पर सदा कृपालु रहते थे । पं० रामबालक शास्त्री ने इनके सम्बन्ध में एक संस्मरण मुझे सुनाया था जिससे इनकी उदारता तथा शिष्यों के प्रति प्रेम का पता चलता है ।

बलिया जिले के 'रेवती' गाँव के दो छात्र द्विवेदी जी के पास पढ़ते थे जो अत्यन्त निर्धन होते हुए भी अध्ययन में अत्यन्त तीव्र थे । उनकी अध्ययन निष्ठा से प्रसन्न होने वाले द्विवेदी जी की कृपा दृष्टि उन छात्रों पर बनी रहती थी । एक बार इसमें से एक छात्र के राजयक्ष्मा रोग से पीड़ित होने का समाचार पाकर द्विवेदी जी स्टेशन से पैदल ही उसके गाँव तक गये । और उसकी औषधि का प्रबन्ध कर उसे आर्थिक सहायता भी प्रदान की । आधुनिक युग में ऐसे गुरुओं का दर्शन भी दुर्लभ है जो छात्रों की बीमारी का हाल-चाल जानने के लिए उसके घर तक की यात्रा पैदल करें और उसे अर्थसंकट से मुक्त करें ।

द्विवेदी जी एक कुशल अध्यापक थे । इनके अनेक शिष्यों ने इनकी पाठन विधि की भूरि-भूरि प्रशंसा की है । मीमांसा-रत्न पं० सुब्रह्मण्य शास्त्री ने अपने संस्मरण में लिखा है कि द्विवेदी जी की अध्यापन की विशेषता तुलनात्मक थी । एक ही शास्त्र के तत्त्व का विवेचन करके उनका अध्यापन समाप्त नहीं हो जाता था, बल्कि अन्य शास्त्रों में उस विषय का जो प्रतिपादन किया गया है उसके स्वरूप का भी वे प्रतिपादन करते थे जिसमें कि दोनों शास्त्रों के तुलनात्मक विवेचन से छात्रों को वह विषय हृदयंगम हो जाता था ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पटना में मुरारका विद्यालय में जब द्विवेदीजी अध्यापन कर रहे थे तब इनकी कीर्ति चारों ओर फैलने लगी और अनेक संस्थाओं ने उपाधि प्रदान कर अपने को गौरवान्वित किया। सन् १९१४ ई० में बिहार विद्वत् परिषद् ने इन्हें 'तर्कालंकार' की पदवी से विभूषित किया। सन् १९१४ ई० में भारत धर्म महामण्डल, काशी ने 'विद्यारत्नाकर' तथा १९१९ ई० में 'विद्यानिधि' की पदवी प्रदान की। भारत सरकार ने इनकी विद्वत्ता से प्रसन्न होकर सन् १९२२ ई० में महामहोपाध्याय की महनीय उपाधि से इन्हें अलंकृत किया। इस प्रकार विद्या-सम्पन्न पण्डितों की अखिल भारतीय कीर्ति का सम्पादन करने वाली विविध उपाधियों से मण्डित होने का गौरव द्विवेदीजी को सद्यः प्राप्त था। ये १९५४ वि० सं० (=१८९७ ई०) से कुछ वर्ष पूर्व ही मुरारका विद्यालय के अध्यक्ष पद पर नियुक्त किये गये और कम से कम ३८ वर्षों तक इस पद की प्रतिष्ठा बढ़ाते अध्यक्ष बने रहे। १९३५ ई० में इन्होंने स्वेच्छा से इस पद से अवकाश ग्रहण किया और काशीवास करना आरम्भ किया था।

(२) **ग्रन्थरचना**—द्विवेदीजी ने संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में ग्रन्थों की रचना की है। संस्कृत में इन्होंने तीन ग्रन्थों का निर्माण किया है—(१) कल्पकलिका, (२) न्यायकुसुमाञ्जलि टीका और (३) रामेश्वर कीर्ति कौमुदी। पहला ग्रन्थ मीमांसा शास्त्र से संबद्ध है और शाबर भाष्य के तर्कपादान्त की टीका है। शाबर भाष्य तो स्वयं कठिन तथा दुरूह ग्रन्थ है। अतः द्विवेदीजी ने उस पर टीका लिखकर उसे अत्यन्त सरल बना दिया है। दूसरा ग्रन्थ उदयनाचार्य के प्रख्यात न्यायग्रन्थ 'कुसुमाञ्जलि' की टीका है। द्विवेदीजी की प्रकाशित टीका पूर्ण नहीं है। संभवतः उन्होंने कठिन स्थलों की टीका लिखी हो। तृतीय ग्रन्थ "रामेश्वर कीर्ति कौमुदी" एक खण्डकाव्य है जिसमें दरभंगा के तत्कालीन महाराजा रमेश्वर सिंह के जीवन-चरित का काव्यात्मक वर्णन किया गया है।

कल्पकलिका—भारतीय दर्शनों में जैमिनि द्वारा विरचित मीमांसा सूत्रों की संख्या सबसे अधिक है। वैदिक धर्म की मीमांसा करना ही मीमांसा शास्त्र का परम ध्येय है। इन सूत्रों पर शाबर प्रणीत भाष्य प्रसिद्ध भाष्य है जो प्रौढ़ता तथा विषय-विवेचन की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है। उसके प्रथम अध्याय के प्रथम पाद तक शाबर भाष्य की यह टीका गम्भीर अर्थों के विवरण प्रस्तुत करने में नितान्त उपयोगी है। इस ग्रन्थ को लिखकर द्विवेदीजी ने न्याय और मीमांसा इन दोनों शास्त्रों में अपने प्रगाढ़ पाण्डित्य का परिचय दिया है।

यह मीमांसा के प्रमेयों का विस्तार से वर्णन करने वाली तथा बौद्धों के विज्ञानवाद, क्षणिकवाद आदि के मन्तव्यों को वैशद्य से खण्डन करने वाली एक प्रौढ़ रचना है। शाबर भाष्य की पंक्तियाँ स्वभाव से कठिन एवं दुरूह मानी जाती हैं। उनकी बड़े विस्तार एवं वैशद्य से द्विवेदीजी ने व्याख्या लिखकर अपने प्रौढ़ पाण्डित्य का प्रभूत परिचय दिया है। इसमें द्विवेदीजी ने अपनी उपाधियों में 'महामहोपाध्याय', 'पण्डित पञ्चानन' एवं 'न्यायाचार्य' का उल्लेख किया है। प्रतीत होता है कि हरिहर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपालुजी न्यायाचार्य पदवी को विशेष महत्त्व देते थे, क्योंकि यह पदवी न्याय विषय में आचार्य परीक्षा के उत्तीर्ण होने की द्योतिका जो ठहरी। यह सात सौ पृष्ठों से मण्डित एक विशाल ग्रन्थ है। 'कल्पकलिका' पं० हरिहर कृपालुजी के मीमांसा-शास्त्रीय प्रौढ़ अध्ययन का तथा कुसुमाञ्जलि टीका न्याय के गम्भीर अनुशीलन एवं यथार्थोद्घाटन की विचित्र क्षमता का परिचय देती है। 'रमेश्वर कीर्ति-कौमुदी'[1] की रचना सिद्ध कर रही है कि द्विवेदीजी एक कोरे तार्किक न होकर काव्यरस से आप्लुत हृदय वाले एक नितान्त कोमल सहृदय थे। इस प्रकार उनका तर्कपक्ष एवं काव्यपक्ष दोनों ही उज्ज्वल तथा उदात्त था।

द्विवेदीजी के द्वारा हिन्दी भाषा में प्रणीत दो ग्रन्थ हैं—(१) विद्यारण्य स्वामी विरचित बृहदारण्यक वार्तिकसार नामक ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद और (२) मधुसूदन सरस्वती विरचित गीता की 'गूढ़ार्थदीपिका' नामक व्याख्या का हिन्दी अनुवाद।

(१) बृहदारण्यक वार्तिकसार

उपनिषदों में बृहदारण्यक उपनिषद् सबसे बड़ी है। वह परिमाण में ही नहीं, प्रत्युत विषय की दृष्टि से भी बृहत् है। इसके ऊपर शंकराचार्य का भाष्य भी परिमाण तथा महत्त्व दोनों में महनीय है। इसी महत्ता को दृष्टि में रखकर शंकराचार्य के साक्षात् शिष्य सुरेश्वराचार्य ने इस भाष्य के ऊपर अपना वार्तिक लिखा। यह भी परिमाण में बृहत् है। अतः विद्यारण्य स्वामी ने उस वार्तिक के सार अंश को लेकर एक पृथक् ग्रन्थ की रचना की जिसका नाम **'बृहदारण्यक वार्तिकसार'** है। इसी महत्त्व-पूर्ण संस्कृत के वेदान्त ग्रन्थ का हिन्दी में अनुवाद द्विवेदीजी ने दो विशालकाय भागों में प्रस्तुत किया है। यह विशाल ग्रन्थ लम्बे-लम्बे ढाई हजार पृष्ठों (२४४० पृ०) में समाप्त हुआ है।[2] द्विवेदीजी ने इस अनुवाद को अत्यन्त सरल भाषा में लिखा है जिससे वेदान्त का जिज्ञासु व्यक्ति इसे अच्छी तरह से समझ सकता है। अनेक स्थलों पर इन्होंने शंका और उसका समाधान अलग-अलग करके प्रतिपादित किया है जिससे इस दुरूह विषय को समझने में सरलता होती है। यह बृहद् ग्रन्थ द्विवेदीजी की विद्वत्ता तथा अध्यवसाय का पूर्णतः परिचायक है।

(२) गीताभाष्य का हिन्दी अनुवाद

मधुसूदन सरस्वती अद्वैत वेदान्त को लोकातीत वैदुषी से मण्डित आचार्य थे। फलतः वे ज्ञान मार्ग के यशस्वी साधक थे। इसके अतिरिक्त वे परम श्रद्धासम्पन्न भक्त भी थे। 'भक्ति रसायन' में उन्होंने भक्ति रस के शास्त्रीय स्वरूप की जो मीमांसा की है वह अपूर्व है। श्री मद्भागवत के भी वे परम रसिक व्याख्याता थे। इसलिए उनकी भग-

१. विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय के प्राध्यापक पं० पलटू शर्मा द्वारा प्रकाशित (कलकत्ता)। ग्रन्थ में प्रकाशन की तिथि के निर्देश का अभाव है।

२. अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी से सन् १९४० ई० में प्रथम खण्ड तथा सन् १९४२ ई० में द्वितीय खण्ड प्रकाशित हुआ है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वद्गीता की 'गूढ़ार्थदीपिका' व्याख्या अद्वैत रस के साथ भक्तिरस का भी मञ्जुल समन्वय प्रस्तुत करती है। इस पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या का भाषान्तर करना टेढ़ी खीर है। गीता में स्वयं समस्त प्राचीन औपनिषदिक दर्शनों का सारांश समाविष्ट है। उसीकी मधुसूदनी टीका भी तदनुरूप ही समस्त शास्त्रों के रहस्यों का उद्भेदन करने वाली पाण्डित्य प्रकर्षमयी व्याख्या है। ऐसी टीका का अनुवाद वही महापण्डित महापुरुष ठीक-ठीक कर सकता है जो सर्वशास्त्र निष्णात हो, सर्वदर्शननदीष्ण हो। महामहोपाध्याय द्विवेदी जी एक ही महापण्डित तथा नानादर्शन-तत्त्वज्ञाता पुरुष थे। उनके द्वारा रचित यह अनुवाद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। जहाँ-जहाँ इनके मत से गूढार्थदीपिका की व्याख्या लोक और शास्त्रों से विरुद्ध है, वहाँ द्विवेदी जी ने विना किसी संकोच के मधुसूदनी व्याख्या के दुर्बल पक्ष का उद्घाटन किया है। यह ग्रन्थ वस्तुतः अनुवादमात्र नहीं है, अपितु इस टीका की विवेचना, व्याख्या, भाष्य और पर्यालोचन भी किया गया है। इस अनुवाद में गूढार्थदीपिका की व्याख्या करते हुए उसका मूल्यांकन भी किया गया है।

इस कार्य में अनुवादकर्ता ने विविध शास्त्रीय सिद्धान्तों का भी उपयोग किया है। मधुसूदन सरस्वती ने अपनी व्याख्या को सर्वांगीण बनाने की दृष्टि से दर्शन के मूलतत्त्वों का उन्मीलन बड़े विस्तार के साथ स्थान-स्थान पर किया है। उदाहरणार्थ गीता के षष्ठ अध्याय की व्याख्या में योगसूत्र तथा योगभाष्य का पर्याप्त उपयोग किया गया है। उन स्थलों की विस्तृत व्याख्या कर द्विवेदी जी ने हिन्दी के पाठकों का बड़ा उपकार किया है। क्यों न हो ? महामहोपाध्याय हरिहरकृपालु जी थे ही भारतीय संस्कृति एवं संस्कृतसाहित्य के मूर्तिमान स्वरूप, शास्त्रों के महान् निधि तथा त्याग-तपस्या के मञ्जुल समन्वय रूप महनीय विद्वान्। ऐसे प्रमेयबहुल ग्रन्थ का विशुद्ध अनुवाद करना उनके प्रगाढ़ वैदुष्य का पर्याप्त परिचायक है। इस अनुवाद कार्य में ये सर्वथा कृतकार्य तथा सफल मनोरथ हुए हैं—यह बिना संकोच कहा जा सकता है। इस अनुवाद[1] की समाप्ति पौष के शुक्लपक्ष में मकर संक्रान्ति गुरुवार वि० सं० २००५ में (१९४८ ई० में) हुई। अनुवाद का लक्ष्य आत्मबोध की प्राप्ति था।

द्विवेदी जी लम्बे-लम्बे वृत्तों में किसी वस्तु का वर्णन विशेष रूप से किया करते थे। लक्ष्मी और सरस्वती के एकत्र निवासभूत किसी सेठ का यह वर्णन कितना अच्छा है :

"अस्मिन् श्रीश्च सरस्वती च वसति, प्रेम्णाऽऽश्रयोत्कर्षतः,
त्यक्त्वा शाश्वतिकं विरोधमभितः, स्वाचारधर्मैः समम्।
दानौदार्यदयादरैक – शरण – व्यापार – पारीणधीः,
सोऽयं केन कथं गुणैकजलधिः कैरक्षरैः स्तूयताम्॥

---

१. गीता की मधुसूदनी 'गूढार्थदीपिका' का पण्डित हरिहरकृपालुजी द्वारा भाषानुवाद दो विपुल खण्डों में प्रकाशित हुआ है। प्रकाशक—सेठ श्री विनोदकुमार मुरारका, कलकत्ता, द्वितीय सं० १९७५ ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्रग्धरा वृत्त में काव्य रचना करने में द्विवेदी जी ने प्रौढ़ि प्राप्त की थी। ये गौड़ी शैली में बड़ी ही सुन्दर कविता किया करते थे। गाढबन्ध युक्त से यह वर्णन देखिए—

"पूर्वापूर्वप्रभावाद्भवसुखविमुख-स्वान्तगानन्तशान्त्यै,
काश्यामस्यां मुमुक्षोर्भवनभुवि मनोहारि निर्माणशोभम्।
स्निग्धग्रावोपकल्पं कनकजकलशीन्दसन्दीप्रवप्रं,
यस्याऽऽस्ते मेरुभृङ्गद्युतिहरशिखरं मन्दिरं चन्द्रमौलेः॥

जो वेदान्त जैसे प्रमेयबहुल दर्शन के तथ्यों का सम्यक् उद्घाटन स्रग्धरा वृत्त में करने का अभ्यासी है, उसके लिए लौकिक विषयों का उसी वृत्त में वर्णन करना क्या कभी आयासदायक हो सकता है? नहीं कभी नहीं। उनके लिए तो ऐसे विषयों की काव्यात्मक प्रस्तुति एक अनायाससाध्य लघु व्यापार ही है। कृपालु जी के विषय में किसी विवेचक विद्वान् का यह स्तुतिपद्य अर्थवाद न होकर यथार्थवाद है। वह पद्य इस प्रकार है—

कुमारो वादिविजयी, रामस्तीक्ष्णमतिस्तथा।
वाग्मी गङ्गाधरः ख्यातः कृपालौ तु त्रयोगुणाः॥

आशय है कि शिवकुमार शास्त्री जी की वादियों को पराजित करने की कला, रामावतार शर्माजी की बुद्धि की तीक्ष्णता तथा गङ्गाधर शास्त्री जी की प्रखर वाग्मिता ये तीनों गुण महामहोपाध्याय कृपालु जी में एक साथ ही विराजमान थे। ऐसा गुणी होना सचमुच सरस्वती की महती अनुकम्पा का निःसंशय परिणत फल है। तथास्तु।

शिष्यमण्डली

द्विवेदीजी के प्रधान शिष्यों में दो प्रकार के विद्वान् पाये जाते हैं (क) गृहस्थ और (ख) संन्यासी। गृहस्थ शिष्यों में—(१) पं० कमलाकान्त मिश्र, (२) पं० रामानुज ओझा, (३) पं० रघुनन्दन त्रिपाठी और (४) पं० ब्रह्मदत्त द्विवेदी प्रधान हैं। इनके संन्यासी शिष्यों में हैं (१) स्वामी कृष्णबोधाश्रम, (२) शंकरानन्द सरस्वती और (३) हनुमान् दास।

इनके संन्यासी शिष्यों में सबसे प्रसिद्ध स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी थे जो ज्योतिर्मठ के शंकराचार्य की गद्दी को सुशोभित करके अभी कुछ वर्ष पूर्व दिवंगत हुए हैं। ये विद्वान् तो थे ही परन्तु इसके अतिरिक्त अत्यन्त सरल हृदय और सहज स्वभाव के व्यक्ति थे। इनके जीवन में आडम्बर का नाम नहीं था। ये अपने शिष्यों को जो उपदेश देते थे वह अत्यन्त सरल भाषा में होने के कारण शिष्यों के हृदय को अत्यधिक प्रभावित करते थे।

पं० शंकरानन्द ब्रह्मचारी पहले हिन्दू विश्वविद्यालय में वेदान्त के 'रीडर' पद को सुशोभित करते थे। काशी में शंकराचार्य की गद्दी जब रिक्त हुई तब ये शंकरानन्द सरस्वती के नाम से शंकराचार्य के रूप में इस गद्दी पर अभिषिक्त किये गये। ये आज भी (१९८० ई० में) इस गद्दी को सुशोभित कर रहे हैं। आजकल काशी में इनका निवास धर्मसंघ के प्रांगण में दुर्गाकुण्ड के पास है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विवेदीजी के तीसरे विरक्त शिष्य हनुमान् दास जी हैं जो कबीरपन्थी साधु हैं। ये कबीरचौरा, काशी में स्थित कबीर मठ के महन्थ हैं। इन्होंने द्विवेदी जी से अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया और विद्वत्ता प्राप्त की। कबीरपन्थी साधुओं में ऐसे विशिष्ट विद्वान् व्यक्ति बिरले ही हैं।

द्विवेदी जी के गृहस्थ शिष्यों में सबसे प्रधान (१) पं० कमलाकान्त मिश्र थे। पहले ये इलाहाबाद (प्रयाग) में स्थित निरंजनी अखाड़ा द्वारा स्थापित संस्कृत पाठशाला के प्रधान अध्यापक थे। इसके पश्चात् द्विवेदी जी के अवकाश ग्रहण करने के बाद इन्होंने गोयनका महाविद्यालय के अध्यक्ष पद को सुशोभित किया। ये व्याकरण, न्याय और वेदान्त के प्रकाण्ड पण्डित थे। इनका स्वभाव पण्डितोचित था। अध्ययन और अध्यापन के अतिरिक्त इनका दूसरा कोई काम नहीं था। अभी दो-तीन वर्ष पूर्व इनका काशी में ही ८० वर्ष की आयु में देहान्त हुआ है।

(२) पं० रामानुज ओझा भी द्विवेदी के प्रिय शिष्यों में से थे। ये व्याकरण के अद्वितीय पण्डित थे। बिरला संस्कृत महाविद्यालय में इन्होंने अध्यापक का कार्य प्रारम्भ किया था और पं० सभापति उपाध्याय के अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् उस विद्यालय के अध्यक्ष पद को भी अलंकृत किया।

(३) पं० रघुनन्दन त्रिपाठी गया जनपद के निवासी थे। ये साहित्य और व्याकरण के उत्कृष्ट विद्वान् थे। काव्य-रचना में इन्होंने अद्भुत दक्षता प्राप्त की थी। ये आशुकवि भी थे। इन्होंने 'हरिहरचरित चम्पू' नामक चम्पू-काव्य की रचना कर म० म० हरिहर कृपालु जी की बहुमुखी प्रतिभा का प्रकाशन अपने काव्य में किया है। गया मण्डल के कल्याणपुर के वास्तव्य सरयूपारीण त्रिपाठीजी के ग्रन्थ का समाप्तिकाल १९९८ वि० सं० (१९४१ ई०) है। आधुनिक किसी संस्कृत विद्वान् का इतना बड़ा कविताबद्ध यह सम्भवतः प्रथम 'चरित-काव्य' है। इस काव्य की भाषा बड़ी सरस है। त्रिपाठी जी ने सरस पद्य तथा गद्य में इसकी रचना कर संस्कृत में चरित-काव्यों की परम्परा का आधुनिक काल में प्रवर्तन किया है।

(४) म० म० हरिहर कृपालु द्विवेदीजी के एकमात्र पुत्र विद्या-वाचस्पति पं० ब्रह्म-दत्त द्विवेदी हैं। जब द्विवेदी जी पटना के मुरारका संस्कृत विद्यालय से अवकाश ग्रहण करने लगे तब विद्यालय के संस्थापक सेठ जी के आग्रह से इन्होंने अपने सुयोग्य पुत्र पं० ब्रह्मदत्त द्विवेदी को अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। तब से ब्रह्मदत्त जी अध्यक्ष पद को सुशोभित कर रहे हैं। अभी कुछ वर्ष हुए इन्होंने उस पद से अवकाश ग्रहण किया है। ये अध्ययन-अध्यापन के साथ ही उस विद्यालय की सम्यक् व्यवस्था में भी सदा संलग्न रहे और उसकी सर्वाङ्गीण उन्नति की। अवकाश-ग्रहण के पश्चात् दर-भंगा कामेश्वर संस्कृत विश्वविद्यालय ने इन्हें 'विद्यावाचस्पति' की महनीय मानद उपाधि से भी सुशोभित किया। ये काशी के सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजिटिंग प्रोफेसर के पद को भी अलंकृत करते रहे हैं। ये वेदान्त, न्याय, व्याकरण तथा साहित्य आदि विषयों के प्रकाण्ड पण्डित हैं। इस प्रकार ये 'योग्य पिता के योग्य पुत्र' की सूक्ति को चरितार्थ कर रहे हैं।

श्री हरिहर कृपालु जी के व्यक्तित्व एवं वक्तृत्व दोनों के विषय की एक अमिट छाप अपनी पूरी दृढ़ता के साथ वर्तमान लेखक के हृदय पर पड़ी है जो कथमपि हटाई नहीं जा सकती, जो कथमपि भुलाई नहीं जा सकती। अपराह्न की वह सुहावनी वेला। बिरला महाविद्यालय वाराणसी के अध्यक्ष पण्डित सभापति उपाध्याय जी के नवनिर्मित प्रासाद का वह मुख्य 'हाल'। निमन्त्रित काशीस्थ विद्वानों का वह सुसज्जित जमघट। अवसर था पं० सभापति उपाध्याय की तीर्थयात्रा की सानन्द पूर्ति पर विद्वन्मण्डली का पूजन एवं सम्मान प्रदर्शन। पहले तो व्याकरण-विषयक किसी सिद्धान्त के ऊहापोह में विद्वान् लोग जुट गए, तर्कवितर्क होने लगा। उभयपक्ष के पण्डितों ने तर्कयुक्तियों का एक व्यूह ही खड़ा कर दिया। शास्त्रार्थ के सुखद विराम के अनन्तर यजमान को आशीर्वाद देने का सुन्दर सुयोग उपस्थित हुआ। इसी समय पण्डित हरिहर कृपालु जी ने अपनी अमृतवाणी से यजमान की शुभाशंसा करते हुए अपनी तीर्थयात्रा के महनीय प्रसंगों का भी वर्णन किया। उनके वेष तथा वाणी में अभूतपूर्व सामञ्जस्य झलक रहा था। मस्तक पर शोभायमान श्री महामहोपाध्याय की रेशमी, जरी किनारेवाली पगड़ी, शरीर पर लम्बा लटकता हुआ सफेद अचकन, शरीर का अंगरखा मालूम पड़ता था कि किसी बाक्स में करीने के साथ तह पर तह (तहिया कर) करके सँजोया हुआ था और आज बहुत दिनों के बाद बाक्स से निकाल कर शरीर को भूषित कर रहा था। उसकी नाना तहों की सूचना देखने से दर्शकों को सद्यः मिल जाती थी। द्विवेदी जी की देववाणी की भी यही दशा थी। न जाने कहाँ से पाणिनीय व्याकरण के द्वारा निष्पन्न, परन्तु अप्रचलित अथवा अल्पप्रचलित, यङन्त तथा यङ्लुगन्त प्रयोगों की बौछार विद्वान् श्रोताओं के ऊपर बिखेरी जा रही थी। प्रतीत होता था कि ये संस्कृत शब्द भी किसी स्थान पर 'तहिया' कर इसी शुभ अवसर के लिए रखे गये थे और आज बाहर निकाल कर उत्सुक श्रोताओं के कर्ण-कुहरों में बड़ी सजगता के साथ उपस्थित किये जा रहे हैं। पुराना होने पर उनमें ताजगी थी। अपरचित होने पर भी कानों के लिए चिक्कन तथा पेशल थे। श्रोता लोग द्विवेदी जी के इस विचित्र संस्कृत भाषण को सुनकर आनन्द से उल्लसित हो रहे थे। आज उन्हें मालूम हो रहा था कि धरोहर रखी हुई सुन्दर वस्तु किस प्रकार अवसर पर योग्य पात्रों में बाँट दी जाती है, जिसे पाकर वे अपने-आपको सर्वथा कृतार्थ मानने लगते हैं। महामहोपाध्याय हरिहर कृपालु जी का यह विचित्र प्रयोग से सम्पन्न एवं प्रबल वाग्धारा से मण्डित भाषण मेरे लिए अन्तिम था। उसकी मधुर स्मृति मेरे मानस-पटल पर उसी अभिरामता के साथ आज भी वैसी ही छाई हुई है, जैसी वह उस समय थी। ठीक ही कहा है— जादू वह जो सिर पर चढ़ कर बोले और व्याख्यान वह जो सालों बाद भी उसी आनन्दमय उल्लासमय सुर में कानों में गूँजता रहे। तथास्तु।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विवेदी जी के पट्टशिष्य

पण्डित कमलाकान्त मिश्र

(आस्पद—मिश्र, उपाधि—वैयाकरण सार्वभौम)

पण्डित हरिहरकृपालु द्विवेदी जी की शिष्यमण्डली में पण्डितप्रवर कमलाकान्त मिश्र का स्थान नितान्त महनीय था। ये अपने गुरु के समान ही व्याकरण तथा वेदान्त की प्रातिभ उपलब्धि में अप्रतिद्वन्द्वी विद्वान् थे। स्वभाव में नितान्त मधुर, विचार में एकान्त उदात्त तथा वाणी में प्रचुर धुरन्धर—ऐसा आवर्जक व्यक्तित्व था पण्डित कमलाकान्त जी का। इनका जन्म १९४९ विक्रमी संवत् (१८९२ ई०) में पुण्यमयी जन्माष्टमी को हुआ था। इलाहाबाद जिले के 'कोटवा' ग्राम में, इनकी शिक्षा राजकीय संस्कृत कालेज में ही प्रमुख रूप से सम्पन्न हुई जहाँ से इन्होंने व्याकरण तथा वेदान्त-दोनों विषयों में आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की। अध्यापन के लिए इन्हें कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं हुई। प्रयाग के दारागंज में अवस्थित तथा विख्यात 'निर्वाणवेद विद्यालय' में आपने अध्यापन कार्य आरम्भ किया और वहीं विद्यालय के अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित हो गये तथा छब्बीस वर्षों तक लगातार व्याकरण एवं वेदान्त का अध्यापन करते रहे (१९१७–१९४४ ई०)। तदन्तर काशीस्थ जो० म० गोयनका संस्कृत महाविद्यालय में अपने ही विद्यागुरु के रिक्त प्राचार्यपद पर नियुक्त होकर बाईस वर्षों तक विद्यालय की सेवा की (१९४४–१९६६ ई०)। अन्त में ये संस्कृत विश्वविद्यालय (वाराणसी) में सम्मानित प्राध्यापक के पद को भी सुशोभित करते रहे। काशी में ही इनका निधन १० अक्टूबर १९७४ ई० में ८२ वर्ष की आयु में हुआ। इस सुदीर्घ काल में मिश्र जी के लिए अध्ययन एवं अध्यापन के अतिरिक्त और भी कोई कार्य न था। संस्कृत विद्या के प्रचार-प्रसार में ही इनका जीवन समर्पित था।

इनकी शिष्यमण्डली पर्याप्त रूपेण विद्या से समृद्ध रही। व्याकरण तथा वेदान्त दोनों विषयों में परिनिष्ठित अनेक छात्रों ने पण्डित जी की कीर्ति-पताका को अनेकत्र फैलाया जिसमें **रामचन्द्र शास्त्री खनंग, रामनिवास गर्ग, शिवदत्त पाण्डेय, यमुनाप्रसाद शुक्ल, महानन्द द्विवेदी एवं कालिका त्रिपाठी** (रीवाँ) के नाम विशेषेण उल्लेखनीय हैं—ये तो हैं पण्डित जी के स्वदेशी शिष्य। पण्डित कमलाकान्त जी को दो जर्मन-देशीय छात्रों को पढ़ाकर प्रौढ़ विद्वान् बनाने का महनीय गौरव उपलब्ध है। इन दोनों विदेशी शिष्यों के नाम हैं—**डा० पालथीमे** तथा **डा० लुड्विग आल्सडोर्फ** जो जर्मनी के विख्यात विश्वविद्यालय टचूबिंगेन एवं हेम्बर्ग में क्रमशः संस्कृत के माननीय प्रोफेसर थे। डा० पाल थीमे वेद तथा व्याकरण के यूरोप भर में मूर्धन्य विद्वान् माने जाते हैं जिन्हें पञ्चम विश्व संस्कृत सम्मेलन के अवसर पर हाल में (१९८१ ई०) हिन्दू विश्वविद्यालय ने डाक्टर की सम्माननीय उपाधि प्रदान की है। डा० आल्सडोर्फ संस्कृत व्याकरण एवं साहित्य के अतिरिक्त प्राकृतभाषा तथा साहित्य के मूर्धन्य पाश्चात्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान् थे। इनका निधन दो वर्ष पूर्व १९७८ ई० में हो गया। दोनों जर्मन शिष्यों ने प्रयाग में पण्डित जी से १९३३ ई० में क्रमशः दो दो वर्षों तक व्याकरण तथा वेदान्त के ग्रन्थों का अध्ययन किया था। इस प्रकार काशी की पाण्डित्य परम्परा भारतवर्ष में ही नहीं, प्रत्युत विदेशों में विकसित तथा प्रसृत हुई।

पण्डित कमलाकान्त जी को अनेक सम्मान प्राप्त थे महामहाध्यापक (भारतधर्म महामण्डल, वाराणसी २००६ वि० सं० में), विद्वच्छिरोमणि (गीर्वाणवाग्वर्धिनी सभा, रामघाट, काशी), महामहिमोपाध्याय (भारतीपरिषद्, प्रयाग)। पण्डित जी हिन्दी जगत् में भी लब्धप्रतिष्ठ दार्शनिक माने जाते थे। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, हैदराबाद सत्र के दर्शनपरिषद् के सभापति मनोनीत थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३०

पण्डित जयदेव मिश्र

(आस्पद—मिश्र, उपाधि—महामहोपाध्याय)

प्राचीन काल में विद्याव्यसनी विद्वान् शास्त्रार्थ कला में निपुण होते थे। वैदिक एवं पौराणिक युग की विद्वत्समितियों में पण्डित-मण्डली शास्त्रार्थ करती हुई देखी जाती थी। इधर १९वीं तथा २०वीं शती में शास्त्रार्थ का विशेष जोर रहा। उसे यदि वादयुग कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। ऐसे ही समय में अन्वर्थनामा चरित-नायक पं० जयदेव मिश्र का मध्य मिथिला के अङ्क में स्थित 'गजहड़ा' नामक ग्राम में वि० सं० १९११ (१८४४ ई०) में पवित्र 'सोदरपुर' विद्वत्कुल में जन्म हुआ।

मिथिला की परम्परा के अनुसार मुण्डन (चूड़ाकर्म) तथा व्रतबन्ध (उपनयन) आदि संस्कार होने के पश्चात् ये वेद-वेदाङ्ग पढ़ने के अधिकारी हुए। फलस्वरूप तत्कालीन प्रतिष्ठित वैयाकरण पण्डितप्रवर हल्ली झा (हरिनगर निवासी) के सान्निध्य में पहुँच कर उनसे व्याकरण शास्त्र के प्रारम्भिक ग्रन्थों का विधिवत् अध्ययन किया। लगभग दो वर्षों तक उनके अन्तेवासित्व में रहकर आर्थिक परिस्थितिवश आप गन्धवारि ग्राम में अध्ययनार्थ चले आये।

वहाँ आपने महामहोपाध्याय पण्डित रज्जोमिश्र से व्याकरणशास्त्र के प्रसिद्ध टीकाग्रन्थों शब्देन्दुशेखर आदि का गहन अध्ययन किया। यहीं आपकी ख्याति पण्डित-मण्डली में पूर्ण रूप से हो गयी। शास्त्रार्थ में आपकी रुचि प्रारम्भ से ही रही।

इस प्रकार प्राचीन पद्धति के अनुसार व्याकरण के मौलिक ग्रन्थों का अध्ययन समाप्त कर विशेष अध्ययन के लिए विद्याराजधानी काशी चले आये। काशी संस्कृत-विद्या की खान ठहरी। यहाँ आपने वाग्देवावतार महामहोपाध्याय पण्डित श्री शिव-कुमार शास्त्री जी को अपना गुरु मनोनीत किया। विद्वच्चक्र-चूड़ामणि श्री शास्त्री जी के सान्निध्य में रहकर स्वल्प समय में ही ये अनेक शास्त्रों के मर्मज्ञ विद्वान् हो गये। विद्वान् होने के पश्चात् भी यदि कोई पण्डितों में पण्डित होता है तभी उसकी गणना होती है—केचिद् पण्डितपण्डिताः। आचार्य मिश्रजी की प्रतिभा तथा शास्त्रार्थ कला में निपुणता के कारण इनकी गणना गण्यमान्य पण्डितों में होने लगी।

यह ख्याति दरभङ्गानरेश महाराजाधिराज श्रीमान् लक्ष्मीश्वर सिंह बहादुर के कानों तक पहुँची। गुणग्राही महाराज ने इनके गुणों से प्रभावित होकर इन्हें काशीस्थ दरभङ्गा पाठशाला में अध्यापनार्थ नियुक्त किया। उन दिनों दरभङ्गा पाठशाला प्राच्य-विद्या के लिए लब्धप्रतिष्ठ (प्रतिष्ठान) संस्थान था। महामहोपाध्याय पण्डित शिव-कुमार शास्त्री जी के अतिरिक्त महामहोपाध्याय पण्डित श्री तात्या शास्त्री, महामहो-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी आदि चूड़ान्त मनीषी उक्त पाठशाला में अध्यापन करते थे।

श्री मिश्र जी की अध्यापन शैली बड़ी ही विलक्षण थी। आपका पाण्डित्य इतना उत्कृष्ट था कि अल्प समय में ही आपके सहस्रशः छात्र निष्णात विद्वान् हो गये। आप जब दरभङ्गा पाठशाला में अध्यापन कर रहे थे महामना मालवीय जी की दृष्टि आप पर पड़ी। संवत् १९७४ वि० के पश्चात् आपने महामना के आग्रह पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राच्यविद्याविभागाध्यक्ष पद को सुशोभित किया। तत्पश्चात् आपकी ख्याति बढ़ती ही गयी और आप भारतप्रसिद्ध विद्वान् हो गये। अध्यापन में आपका यश तो सुरभित था ही शास्त्रार्थ में भी आपकी गणना ख्यातनामा विद्वानों में की जाती थी। किं बहुना शास्त्रार्थ के तो आप मूर्ति ही थे, तभी तो महामहोपाध्याय डॉ० गङ्गानाथ झा जी ने ठीक ही कहा है—

जयः कुले जयोऽभ्यासे जयः पण्डितमण्डले।
जयो मृत्यौ जयो मोक्षे जयदेवे सदा जयः॥

पाण्डित्य किसी का छिपा नहीं रहता। इनकी ख्याति भारत सरकार के प्रतिनिधिभूत वायसराय के पास तक पहुँच गयी, तब सन् १९१९ में इन्हें 'महामहोपाध्याय' के सर्वोच्च सम्मान से सम्मानित किया गया।

सदाचार-सम्पन्नता

आचार्य मिश्र जी भारतीय संस्कृति की प्रतिमूर्ति ही थे। जिस प्रकार विद्याव्यसनी थे उसी प्रकार आप धार्मिक वृत्यों के संविधान सम्पादक थे। जीवन के दीर्घकाल तक नित्य ब्राह्ममुहूर्त में उठकर नित्यकृत्य समाप्त कर मणिकर्णिका घाट पर गंगा-स्नान कर विश्वनाथ-अन्नपूर्णा जी का दर्शन-पूजन करते थे। ये प्रतिदिन सहस्रगायत्री, षडङ्गशतरुद्री द्वारा शिवस्नपन, शालग्राम की पूजा, त्रिकाल सन्ध्या किया करते थे। इन सत्क्रियाओं के अतिरिक्त जो समय बचता वह विद्या के अध्ययन-अध्यापन में ही लगता।

सनातन धर्म की सुरक्षा में भी इनका प्रमुख योगदान रहा। कठिन से कठिन समय में भी आप विचलित नहीं होते थे। महामना मालवीय जी ने एक बार 'अस्पृश्यता-निवारण' के पक्ष में समर्थन के लिए विद्वानों की एक सभा बुलायी। उसमें मिश्र जी ने यह जानते हुए भी कि प्रस्ताव के पक्ष में समर्थन न देने से विश्वविद्यालय की क्षति होगी—निर्भीकतापूर्वक सनातनधर्मिता के विरुद्ध आये हुए प्रस्ताव का डटकर विरोध ही किया, समर्थन नहीं। मालवीय जी सनातन धर्म के प्रति इनकी दृढ़ आस्था को देखकर प्रसन्न ही हुए। उन्होंने अपने को गौरवान्वित माना कि ऐसा दृढ़निश्चयी हमारे विश्वविद्यालय में विद्वान् अध्यापक है।

परोपकार-परायणता

श्री मिश्रजी की केवल विद्याप्रचार एवं रचना के क्षेत्र में ही विजय नहीं थी, अपितु सामाजिक लोकोपकार में भी ये तत्पर रहते थे। निजी ग्राम 'गजहड़ा' के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वासियों के लाभ के लिए इन्होंने एक पुष्करिणी (जलाशय) खुदवाकर शाके १८४६ में महामहोपाध्याय पण्डित परमेश्वर झा जी के कर्मकाण्ड निरीक्षण में महायाग सम्पन्न कराया।

कृतियाँ

(१) परिभाषेन्दुशेखर की 'विजया' टीका—
(२) शास्त्रार्थ रत्नावली (शास्त्रार्थ कला का मननीय ग्रन्थ)
(३) व्युत्पत्तिवाद की 'जया' टीका
(४) महाविनायकस्थापनपद्धति (कर्मकाण्ड)
(५) वास्तु-पद्धति
(६) शतचण्डी पद्धति
(७) कुलदेवता स्थापन पद्धति
(८) नीलवृषोत्सर्ग पद्धति
(९) तुलादान पद्धति
(१०) अन्य अनेक निबन्ध

शिष्य परम्परा

यह पूर्वप्रतिपादित विषय है कि आचार्य मिश्र जी के हजारों प्रबुद्ध शिष्य भारत में व्याप्त हैं सबका परिचय देना यहाँ संभव नहीं है, कुछ थोड़े से उनके प्रमुख शिष्यों का दिङ्निर्देश किया जाता है—

(१) महामहोपाध्याय डॉ० गङ्गानाथ झा (प्रयाग विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति) तथा विश्वव्यापी विद्वान्।
(२) पण्डितराज राजनारायण शास्त्री (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के व्याकरण शास्त्र के प्रमुख वक्ता विद्वान्)।
(३) पण्डित मार्कण्डेय मिश्र—(दार्शनिक, वैयाकरण, भू० पू० प्रिंसिपल महाराणा संस्कृत कालेज, उदयपुर)।
(४) पण्डित दामोदर मिश्र – (अनेक विषयों के मर्मज्ञ विद्वान्)।

इतना ही नहीं विद्यावंश के साथ-साथ जन्मवंश भी बड़ा प्रखर है—पूरे परिवार पर सरस्वती की असीम कृपा है—आपके अनुज पण्डित मधुसूदन मिश्र तथा पुत्र महामहोपाध्याय पण्डित उमेश मिश्र युग-युगान्तर तक चिरस्मरणीय रहेंगे।

अधिक क्या कहा जाय—विद्वच्चरितपञ्चकम् के रचयिता महामहोपाध्याय पण्डित श्री नारायण शास्त्री जी महामहोपाध्याय पण्डितप्रवर शिवकुमार मिश्र जी के संस्मरण में—आचार्य मिश्र जी के लिए संक्षेप में ठीक ही कहा है—

नानाग्रन्थविधानजेन यशसा व्याप्याखिलं भारत-
मध्याप्य प्रचुरं विधाय बहुलान् विद्यार्थिनः पण्डितान्।
विद्वत्संसदि गीष्पतिप्रतिमतां सम्पाद्य लोकोत्तरां
सायुज्यं जयदेवमिश्रविबुधा विश्वेश्वरेणाप्नुवन्॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार लोकद्वयसाधनीभूत अध्ययन-अध्यापन, लेखन-सम्पादन, शास्त्रार्थ आदि विविध उल्लेखनीय कार्यों में उत्कृष्ट ख्याति अर्जित कर वै० सं० १८८२ (१९२५ ई०) में फाल्गुन शुक्ल सप्तमी को भगवती जाह्नवी-गंगा के मुक्तिदायक मणिकर्णिका घाट पर आपने पाञ्चभौतिक शरीर को परित्याग कर शिवसायुज्य प्राप्त किया।

मिश्रजी का वैदुष्य– पं० जयदेव मिश्र व्याकरणशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे। इन्होंने नव्यन्याय का भी विशेष परिश्रम से अध्ययन किया था। न्याय के वैदुष्य से मण्डित होने से इनकी बुद्धि व्याकरण आगम के दुरूह विषयों के उन्मीलन में बड़ी सफल थी। परिष्कार पद्धति के जाने-माने शीर्षस्थ विद्वान् थे। शास्त्रार्थ में इनकी विद्वत्ता तथा तर्क-कुशलता की सर्वत्र प्रशंसा की जाती थी। इनकी विद्वत्ता का परिचय इनके द्वारा प्रणीत ग्रन्थों के अनुशीलन से भली-भाँति होता है।

विजया टीका—परिभाषेन्दुशेखर के ऊपर 'विजया' नामक टीका का प्रणयन कर मिश्रजी ने नागेश भट्ट के मर्मों को समझाने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। पं० तात्या शास्त्री द्वारा रचित इसी ग्रन्थ की 'भूति' नामक टीका के रहते हुए 'विजया' को जो प्रसिद्धि और लोकप्रियता प्राप्त हुई यह इस बात का प्रमाण है कि मिश्रजी की टीका सरल, सुबोध तथा बोधगम्य है। इस टीका में मिश्रजी ने 'भूति' का नामोल्लेखपूर्वक खण्डन भी किया है। इस टीका से मिश्रजी की अगाध विद्वत्ता का परिचय प्राप्त होता है।

शास्त्रार्थ रत्नावली—जैसा कि इसके नाम से ही परिलक्षित होता है यह शास्त्रार्थ कला माननीय ग्रन्थ है जिसको पढ़कर छात्रगण सभा में शास्त्रार्थ करने की पद्धति को भलीभाँति सीख सकते हैं। इन्होंने पाणिनि के सूत्रों को लेकर जो शास्त्रार्थ कोटियाँ हैं उन सभी को लिपिबद्ध कर दिया है। इस प्रकार शास्त्रार्थ सीखने वाले विद्यार्थियों के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है।

(३) व्युत्पत्तिवाद की टीका

व्याकरण शास्त्र के प्रख्यात ग्रन्थ व्युत्पत्तिवाद पर भी मिश्रजी ने 'जया' नामक टीका लिखी है। मूलतः यह ग्रन्थ अत्यन्त कठिन है। अतः इस ग्रन्थ के कठिन स्थलों को सरल तथा सुबोध बनाने में यह टीका अत्यन्त सफल हुई है।

पं० जयदेव मिश्र धर्मशास्त्र तथा कर्मकाण्ड के भी विद्वान् थे। अतः इन्होंने अनेक पद्धतियों का भी निर्माण किया है जिनमें तत्तद् विषयों का वर्णन सरलता से किया गया है।

श्री हाराणचन्द्र भट्टाचार्य

(आस्पद—भट्टाचार्य, उपाधि—महामहोपाध्याय)

पण्डित हाराणचन्द्रजी पण्डित जयदेव मिश्र के समान ही एक ही गुरु म०म० पण्डित शिवकुमार शास्त्रीजी के शिष्य थे। दोनों में अनेक गुणों में समानता थी। दोनों शास्त्रार्थ की कला में नितान्त निपुण थे। दोनों ने व्याकरण-विषयक ग्रन्थों का निर्माण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर गौरव प्राप्त किया। दोनों ही भारत सरकार के द्वारा प्रदत्त महामहोपाध्याय की पदवी से मण्डित थे। इस दृष्टि से इन दोनों महनीय पण्डितों का एक साथ विवरण तुलनात्मक अध्ययन के लिए अत्यन्त उपयोगी होगा। अतः पं० जयदेव मिश्रजी के अनन्तर श्री हाराणचन्द्र भट्टाचार्य का जीवनवृत्त प्रस्तुत किया जाता है।

काशी के वैयाकरणों में पं० हाराणचन्द्र भट्टाचार्य का नाम बड़े आदर तथा सन्मान के साथ लिया जाता है। बंगाल में व्याकरण का अध्ययन-अध्यापन होता चला आ रहा है। परन्तु वहाँ के विद्वान् पाणिनीय व्याकरण का अध्ययन न करके वोपदेव के द्वारा निर्मित कातंत्र व्याकरण का ही अध्ययन किया करते हैं। पाणिनीय व्याकरण के अध्ययन तथा अध्यापन की परम्परा बंगाल में नहीं है। परन्तु पं० हाराणचन्द्र भट्टाचार्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये पाणिनीय व्याकरण के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इन्होंने काशी आकर व्याकरण शास्त्र का गंभीर अध्ययन किया। पाणिनीय व्याकरण का अध्यापन किया और जीवन की गोधूलि में बंगाल (कलकत्ता) जाकर इन्होंने पाणिनीय व्याकरण के अध्ययन अध्यापन की परम्परा प्रतिष्ठापित की। यही इनके जीवन की सबसे बड़ी विशेषता तथा उपलब्धि थी।

पं० हाराणचन्द्र भट्टाचार्य काशी के अद्वितीय वैयाकरण थे। इस क्षेत्र में उस समय इनका कोई सानी नहीं था। वैयाकरण-केसरी के रूप में काशी के कानन में स्वच्छन्द विचरा करते थे। अपने काल के अप्रतिम विद्वान् थे। इन्होंने शास्त्रार्थ में अनेक पण्डित-मानी विद्वानों को परास्त कर अपनी कीर्तिपताका को ऊँचा फहराया था।

बंगाल के राजशाही जिला के अन्तर्गत बालूमरां नामक ग्राम में १२९६ बंगाब्द की मार्गशीर्ष अमावस्या को (तदनुसार १५ दिसम्बर १८८९ ई० में) हाराणचन्द्र भट्टाचार्य का जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम था प्रसन्नकुमार चक्रवर्ती। अपने पिता के ये तृतीय पुत्र थे। इनका एक अनुज भी था जिसकी शिक्षा-दीक्षा इन्हीं के पास हुई थी। ये वारेन्द्र श्रेणी के ब्राह्मण थे।

बाल्यकाल से ही इनकी बुद्धि प्रखर थी। आठ वर्ष के वय में इनका उपनयन यथा-विधि संपन्न किया गया। जब ये उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने के लिए उत्साही थे, तभी इनके कुटुम्ब के ऊपर एक बड़ी भारी अप्रत्याशित आपत्ति आ गई। वह आपत्ति थी भीषण अग्निकाण्ड। दश वर्ष के वय में ही घर में आग लग गई। इतनी बड़ी आग कि इनकी माता, पिता, भाई एवं बहन सब भस्म हो गये। केवल दो आदमी ही इस संकट से बच गये—एक तो स्वयं हाराणचन्द्र जी तथा इनके अनुज कालीकिंकर। ये ही दो व्यक्ति किसी प्रकार उस भयंकर आग से भगवान् की कृपा से बच निकले। ग्रामवासियों की सहायता से माता-पिता आदि मृत व्यक्तियों की अन्त्य विधि तो कर दी गई परन्तु इनके पोषण की समस्या सामने आई। उस समय इनका वय दश वर्ष था तथा छोटा भाई आठ वर्ष का था।

इस घटना के अनन्तर ये अपने अनुज के साथ अपने मामा के घर चले आये। परन्तु वहाँ का व्यवहार इन्हें अच्छा नहीं लगा। अनेक असुविधाएं उत्पन्न हुईं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिन इन्होंने अपने मामा के घर को छोड़ने का निश्चय कर लिया। बिना किसी से कहे-सुने ये अपने भाई के साथ कुछ रात्रि शेष रहने पर चल पड़े। और बड़ी कठिनता से ३०-३२ कोस का रास्ता पार करके ये अपने पैतृक यजमान 'शरतचन्द्र खां' के निवास-स्थान पर पहुँच गये। यजमान ने इनकी बड़ी सेवा की और ये वहाँ आराम से रहे। वहीं किसी व्यक्ति के घर पर श्राद्ध में निमंत्रित होकर ये भी गये। अन्य ब्राह्मणों से इन्हें कम दक्षिणा मिली। इसका कारण पूछने पर उस व्यक्ति ने बतलाया—आप संस्कृत के विद्वान् नहीं हैं। इसलिए आपको कम दक्षिणा मिली है। संस्कृत विद्या का अर्जन कर जब आप पण्डित हो जाएँगे तो आपको भी पूरी दक्षिणा मिलने लगेगी। इस उत्तर से हाराणचन्द्र जी बहुत दुःखी हुए और अपने यजमान से आग्रह किया कि वे इन्हें संस्कृत की विशिष्ट शिक्षा देने की व्यवस्था करें। इनके यजमान साधारण व्यक्ति न होकर संपन्न न्यायाधीश थे। उन्होंने ही उस युग के तर्कश्रेष्ठ विद्वान् पं० शिवकुमार शास्त्री से संपर्क करके उन्हें ही इन दोनों बालकों को शिक्षा देने के लिए अध्यापक नियुक्त कर दिया। इस प्रकार हाराणचन्द्र जी काशी में आये और शिवकुमार शास्त्री जी के चरणों में बैठकर व्याकरण का अध्ययन करने लगे। छात्र के अदम्य उत्साह तथा अध्ययन की निष्ठा देखकर गुरु जी नितान्त प्रसन्न हुए और इनको पाणिनि व्याकरण का अध्यापन बड़े ही प्रेम तथा परिश्रम से कराया। फलतः इनका वैदुष्य चमक उठा। इसका फल यह हुआ कि बंग देश के पण्डितों में ये ही पाणिनि व्याकरण के अद्वितीय विद्वान् माने जाने लगे।

पण्डित शिवकुमारजी की इन पर विशेष अनुकम्पा रही। शास्त्रार्थ में शास्त्री जी इन्हें अपने संग ले जाते थे और पूर्व-पक्ष तथा उत्तर-पक्ष करने के लिए इन्हें उत्साहित करते थे। इस प्रेरणा का फल यह हुआ कि ये शास्त्रार्थ करने में बड़े ही निपुण, तीव्र बुद्धि, तथा नवीन परिष्कारों के प्रतिपादन में नितान्त दक्ष हो गए। ये असाधारण कल्पक थे। इनकी नवीन कल्पनाएँ तथा विद्वत्तापूर्ण पूर्वोत्तर पक्ष को देखकर बड़े-बड़े विद्वान् मुग्ध हो जाते थे। ये अपने गुरु के विशेष भक्त थे। क्यों न हो, गुरुजी ने केवल विद्यादान ही नहीं दिया प्रत्युत अपने आवास में रखकर इन्हें दिन-प्रतिदिन की व्यावहारिक चिन्ताओं से भी मुक्त करा दिया। छात्रावस्था में इनको एक बार शीतला का प्रकोप हुआ जिससे ये बड़े पीडित हुए। उस समय शरत्कामिनी देवी नामक एक वृद्धा ने, जो काशीवास कर रही थी, इनकी पुत्रवत् शुश्रूषा कर स्वास्थ्य दिलाया। उसी को माता मानकर ये काशी में उसी के साथ रहते थे। शिवकुमार शास्त्री जी के चरणों में बैठकर ही इन्होंने संस्कृत कालेज की व्याकरणाचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की थी। इसके अनन्तर इन्होने न्याय, वेदान्त तथा धर्मशास्त्र का भी बड़ी तत्परता के साथ अध्ययन किया और इन विषयों में भी पारंगत होकर कीर्तिलाभ करने में समर्थ हुए।

अध्यापन

हाराणचन्द्र जी ने काशी की ही नगवा पाठशाला में लगभग ६ मास तक अध्यापन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। तदनन्तर कलकत्ता के संस्कृत कालेज में पं० लक्ष्मण शास्त्री द्राविड के रिक्त स्थान पर वेदान्त के अध्यापक रहे। अनन्तर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में दो साल अध्यापन कर जयपुर के अन्तर्गत फतेहपुर में स्थित शेखावटी संस्कृत महाविद्यालय में अध्यक्ष पद पर नियुक्त किये गए। वहाँ से १९२५ ई० में काशी के मारवाड़ी संस्कृत महाविद्यालय के प्रधानाध्यापक नियुक्त होकर यहाँ आये। इस महाविद्यालय में ये साहित्य तथा व्याकरण का अध्यापन करते थे। लगभग नव वर्ष तक इस विद्यालय की इन्होंने सेवा की। तदनन्तर १९३४ ई० के जुलाई मास में इनकी नियुक्ति काशी राजकीय संस्कृत कालेज में प्राध्यापक के पद पर हो गई। वहाँ केवल दो-तीन वर्ष ही अध्यापन कार्य किया कि १९३७ ई० में कलकत्ता के संस्कृत कालेज में प्राध्यापक के पद पर नियुक्त होकर ये कलकत्ता चले गए। वहाँ ये वेदान्त, व्याकरण, धर्मशास्त्र आदि विषयों के उच्च ग्रन्थों का अध्यापन करते रहे। इसी कालेज में रहते हुए १९४२ ई० में भारत सम्राट् द्वारा इन्हें महामहोपाध्याय की पदवी से संमानित किया गया।

कलकत्ता में ही इनका निधन बंगाब्द १३५० आषाढ कृष्ण दशमी तदनुसार १९३४ ई० के २७ जून को हो गया। इनके अनेक शिष्य विभिन्न स्थानों पर कार्य कर रहे हैं।

शास्त्रार्थ-प्रवीणता

हाराणचन्द्रजी जब काशी में ही संस्कृत कालेज में अध्यापन कर रहे थे तो एक विशिष्ट घटना घटी थी जिसमें इन्होंने प्रमुख भाग लिया था। सन् १९३२ ई० की यह घटना है। माध्व संप्रदाय के आचार्य श्री १०८ सत्यध्यान तीर्थस्वामी काशी पधारे। वे द्वैतवादी सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य थे। फलतः उन्होंने 'अद्वैत मत विमर्श' नामक पुस्तक काशी के जनसमाज में तथा पण्डितों में वितरित की। इस ग्रन्थ में भस्म तथा रुद्राक्ष आदि के धारण को अवैध बतलाया गया था तथा शंकराचार्य के अद्वैतमत को बौद्धमत की एक शाखा बतला कर अद्वैतमत की घोर निन्दा की गई थी। स्वामीजी का उद्देश्य था कि काशी की शिवभक्त जनता शिव की उपासना से विरत हो तथा शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धान्त में श्रद्धा न रखते हुए द्वैतवादी विष्णु-भक्ति का अवलम्बन करे। इस ग्रन्थ के अपसिद्धान्तों का खण्डन पं० हाराणचन्द्र भट्टाचार्य ने 'अद्वैतसिद्धान्त विमर्श खण्डन' नामक पुस्तक को दो भागों में प्रकाशित कर लोगों में बिना मूल्य वितरित किया और यह गम्भीर घोषणा की कि यदि स्वामीजी अपने कथन को प्रमाणित कर दें तो उन्हें मैं एक सहस्र मुद्रा दूँगा और मैं भी माध्व सम्प्रदाय स्वीकार कर लूँगा। इस घोषणा से स्वामीजी तथा उनके मतानुयायी शिष्यों में बड़ा तहलका मच गया, बड़ी खलबली मच गई और किसी की इतनी हिम्मत नहीं हुई कि वह हाराणचन्द्रजी के ग्रन्थ का खण्डन करे तथा उनसे इस विषय में शास्त्रार्थ करे। इस घटना से काशी के पण्डितों ने इनकी दर्शन-विषयक प्रतिभा की बड़ी धाक जम गई और ये एक स्वर से बड़े ही प्रौढ़ शास्त्रार्थी पण्डित के रूप में अभिनन्दित किये गये।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचना

पं० हाराणचन्द्रजी बंगला, संस्कृत तथा हिन्दी भाषा के अच्छे जानकार थे और इन्होंने इन तीनों भाषाओं में दर्शन-विषयक लेखों तथा ग्रन्थों का प्रकाशन किया। कल्याण के शिव विशेषांक में भस्म धारण एवं निर्माल्य भक्षण के विषय में इनका एक अनुसंधानात्मक लेख है जिसमें पुराण तथा धर्मशास्त्र से इन विषयों की उपादेयता सिद्ध की गई है। यह गम्भीर लेख है जिसमें शिव-सम्बन्धी सिद्धान्तों का वर्णन बड़ी गम्भीरता से किया गया है। बंगला की पत्र-पत्रिकाओं में भी ये सनातन-धर्म के सम्बन्ध में अनेक लेख लिखा करते थे। अध्यापन कार्य से इन्हें बहुत ही कम अवकाश मिलता था। इसलिए इनकी ग्रन्थ-रचना बहुत ही स्वल्प है। ऊपर उल्लिखित "अद्वैतमत-विमर्श-खण्डन" नामक ग्रन्थ हिन्दी में निबद्ध किया गया है। इसमें अद्वैतमत की प्रामाणिकता वेद तथा शास्त्रों से बड़ी कुशलता से सिद्ध की गई है। बौद्धमत से अद्वैतमत की पृथक्ता तथा भिन्नता शास्त्रीजी ने बड़े प्रमाणों से दिखलायी है। सत्यज्ञान तीर्थस्वामी के मूल ग्रन्थ के खण्डन होने पर भी शास्त्रीजी ने इसमें बड़ी ही संयत भाषा का प्रयोग किया है। कलकत्ता के संस्कृत कालेज में अध्यापन करते हुए शास्त्रीजी ने "**कालसिद्धान्तदर्शिनी**" नामक ग्रन्थ का प्रणयन संस्कृत में किया तथा वहीं से प्रकाशित भी किया। यह ग्रन्थ नितान्त प्रौढ़ तथा प्रमेयबहुल है। भारतीय दर्शन के प्रत्येक विभाग में कोल तत्व के विषय में गम्भीरता से विचार किया गया है। शास्त्रीजी ने उन समस्त मतों का संकलन, समीक्षण तथा परीक्षण बड़े पाण्डित्य के साथ किया है। इसकी भूमिका पं० गोपीनाथ कविराज ने लिखी है तथा इनके परीक्षण की बड़ी प्रशंसा की है।

पण्डित हाराणचन्द्र शास्त्री अपने पूज्य गुरु श्री शिवकुमार शास्त्री के बड़े ही भक्त थे। गुरु-कृपा से ही व्याकरणशास्त्र में अलौकिक पाण्डित्य प्राप्त हुआ। अपने समय के वंगीय पण्डितों में पाणिनीय व्याकरण का इतना मर्मज्ञ, प्रौढ़ पाण्डित्य से सम्पन्न तथा परिष्कारों के विशेष परिज्ञान से विभूषित कोई दूसरा विद्वान् नहीं था। इनकी गुरु-भक्ति की अनेक विलक्षण घटनाएँ सुनी जाती हैं। इनके छात्रों के मुख से सुना है। जब वे लोग इनसे पढ़ने जाते थे तथा यदि कोई विलक्षण शास्त्रीय शंका कर बैठता था तो ये पाठ बन्द कर देते थे और मुझे थोड़ा विश्राम करने की आवश्यकता है, यह कह कर उसी गद्दी पर ही लेट जाते थे। और इतने मौन पड़ जाते थे कि मालूम होता था कि इन्हें गहरी नींद आ गई है। आठ-दस मिनट में ही उठ जाते थे और उस शंका का विधिवत् समाधान कर देते थे। अनेक बार शिष्यों ने इस विचित्र व्यवहार के विषय में पूछा कि गुरुजी इसका रहस्य क्या है? तब इन्होंने बतलाया कि जिस किसी विकट समस्या के समाधान की मुझे आवश्यकता प्रतीत होती है तो मैं अपने गुरु जी का स्मरण कर ध्यानस्थ हो जाता हूँ। मुझे गाढ़ निद्रा आ जाती है और तब मुझे मालूम पड़ता है कि गुरु जी स्वयं उपस्थित होकर उस शंका का समाधान कर रहे हैं। थोड़ी देर के बाद स्वयं मैं जाग्रत हो जाता हूँ और उस गम्भीर समस्या का पूरा समा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धान मिल जाता है। जीवित अवस्था में गुरु जी की ऐसी कृपा थी और आज उनके अभाव में भी उनका वरदहस्त मेरे मस्तक पर आशीर्वाद देते हुए तथा गम्भीर समस्या का समाधान करते हुए सद्यः अनुभूत होता है।

इसी गुरु-भक्ति के कारण पण्डित शिवकुमार शास्त्री जी की शिष्यपरम्परा में पण्डित हाराणचन्द्र भट्टाचार्य का नाम बड़े आदर तथा सत्कार का भाजन माना जाता है। म० म० पण्डित जयदेव मिश्र जी भी अपने समय में शास्त्री जी के बड़े ही विनम्र निष्ठावान् एवं शास्त्रसम्पन्न छात्र माने जाते थे। दोनों की विद्या, बुद्धि एवं प्रतिभा-विलास में पर्याप्त साम्य है। इसका परिचय दोनों के तुलनात्मक अध्ययन से भली-भाँति मिल सकता है। शास्त्रार्थ की कला में दोनों की वैदुषी, कल्पना शक्ति एवं प्रत्युत्पन्न-मतिता विद्वानों के लिए नितान्त चमत्कारिणी थी।

काशीस्थ-नव्यबुधमुख्यपदाधिरूढा
वादाहव-प्रथित-धी विभवा बुधेन्द्राः।
नाना विधागम-विचारविधि-प्रसिद्धा
हाराणचन्द्र इति नामजुषो लसन्ति॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३१

पण्डित यादवेश्वर तर्करत्न

(आस्पद—भट्टाचार्य, उपाधि— महामहोपाध्याय)

संस्कृत के विद्वान् अपने विद्याभ्यास में इतनी निष्ठा से संलग्न रहते हैं कि वे अपने क्षेत्र से बाहर न तो कभी जाते हैं और न कभी उन क्षेत्रों की घटनाओं को जानने की इच्छा ही रखते हैं। आजकल तो राजनीति का युग है। इस युग के पण्डितों को अगत्या राजनीति के विषय की जानकारी करनी ही पड़ती है। परन्तु आज से ५०-६० वर्ष पूर्व पण्डितगण राजनीति के क्षेत्र से सर्वदा अपने को बहिर्मुख ही रखते थे। परन्तु उस युग में भी महामहोपाध्याय यादवेश्वर तर्करत्न ऐसे कर्मठ पण्डित थे कि ये उस युग की राजनीति में अपने को आग्रहपूर्वक लगाने से विरत नहीं हुए। ऐसे कर्मठ तथा संस्कृत शास्त्रवेत्ता पण्डित की जीवनकथा बड़ी ही रोचक तथा बहिर्मुखी है।

उत्तरीय बंगाल के रंगपुर जिला के अन्तर्गत 'इटाकुमारी' गाँव में पण्डित रुद्रमंगल न्यायालंकार महाशय के वंश में १२५७ बंगाब्द में यादवेश्वर तर्करत्न जी का जन्म हुआ। इनके पिता का नाम आनन्देश्वर भट्टाचार्य था। ये राढ़ी श्रेणी के ब्राह्मण थे। दुर्दैव के प्रभाव से इनके पूज्य पिता का निधन इनके पाँचवें वर्ष में ही हो गया। उस समय इन्होंने बंगला शिक्षा अपने ग्राम में ही किसी पण्डित से ग्रहण की थी। उसके अनन्तर ये संस्कृत शिक्षा के ग्रहण करने में लग गये। उस प्रान्त के सुप्रसिद्ध वैयाकरण पण्डित हरगोविन्द सिद्धान्त से कलाप व्याकरण तथा ईश्वर विद्यालंकार से काव्यप्रकाश तथा अन्य काव्यग्रन्थों का विधिवत् अध्ययन किया। इनके सिर से पिता की छत्रच्छाया सदा के लिए हट गई थी, परन्तु इनके पिता के शिष्यों ने कभी इनको अनाथ तथा निराश्रित होने नहीं दिया। उन लोगों ने ही इन्हें काशी आकर विद्याध्ययन करने की पूरी व्यवस्था कर दी। उन्हीं लोगों की सुन्दर व्यवस्था तथा प्रेरणा के बल पर यादवेश्वरजी इस काशी विद्यानगरी में पढ़ने के लिए आये। उस समय संस्कृत कालेज में महामहोपाध्याय पं० कैलासचन्द्र शिरोमणि न्यायशास्त्र की गद्दी पर विराजमान थे। उनकी विमल कीर्ति से आकृष्ट होकर यादवेश्वर भी उन्हीं से न्यायशास्त्र पढ़ने लगे। कुछ ही वर्षों में न्यायशास्त्र तथा न्याय का तलस्पर्शी अध्ययन कर इन्होंने तर्करत्न की उपाधि प्राप्त की, उस समय स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती के निकट जाकर इन्होंने वेदान्त तथा योगदर्शन का भी गम्भीर अध्ययन किया। प्राच्यदर्शन में इनकी असाधारण प्रतिभा तथा व्युत्पत्ति से परिचित होकर संस्कृत कालेज के तत्कालीन प्रिंसिपल ग्रिफिथ साहब ने इन्हें पश्चिमी दर्शन के रहस्य को जानने के लिए अपने पास बुलाया और अपनी देखरेख में पाश्चात्य दर्शन की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा इन्हें दी। इस प्रकार इनको प्राच्य तथा प्रतीच्य दोनों दर्शनों की तुलनात्मक समालोचना करने का अवसर मिला और इससे दार्शनिक ज्ञान में विशेष वृद्धि हुई।

अध्यापन

काशी में रहकर इस प्रकार संस्कृत विद्या से अलंकृत होकर ये अपने घर लौट गये। रंगपुर में ही उस समय हाईस्कूल चलता था। उसी अंग्रेजी स्कूल में ये संस्कृत शिक्षक के रूप में नियुक्त हुए। इसके अनन्तर स्थानीय जमींदारों ने एक कालेज की स्थापना की। अब ये इसी कालेज में संस्कृत विभाग में अध्यापक के पद पर नियुक्त हो गये। परन्तु यह कालेज बहुत दिन तक नहीं चला। परन्तु यादवेश्वर तर्करत्न ने अन्य किसी स्थान पर जाकर नौकरी नहीं की और ये वहीं अपने घर पर छात्रों का अध्यापन करते थे। रंगपुर में ही सुप्रसिद्ध अरविन्द के पिता अ० कृष्णधन घोष उस समय सिविल सर्जन थे। उनकी प्रेरणा तथा अन्य जमींदारों की सहायता से रंगपुर में ही एक चतुष्पाठी (संस्कृत विद्यालय) की स्थापना हुई और इसी पाठशाला में यादवेश्वर तर्करत्नजी की नियुक्ति हो गई। इसी विद्यालय में ये प्रधानतया काव्य, व्याकरण आदि शास्त्रों का अध्यापन करते थे। इनकी पढ़ाने की शैली इतनी अधिक अच्छी और आकर्षक थी कि बंगाल प्रान्त के दूर के छात्र इनके यहाँ विद्याध्ययन के लिए आने लगे जिससे इनकी चतुष्पाठी की कीर्ति चारों ओर फैल गई।

सम्मान

पण्डित यादवेश्वरजी केवल अध्यापन कार्य ही नहीं करते थे प्रत्युत अपने नगर रंगपुर के जनहितैषी कार्यों में भी अपना पूरा सहयोग देते थे। रंगपुर कारमाइकल कालेज की कार्य निर्वाहक समिति के ये आजीवन सदस्य बने रहे। नवद्वीप की पण्डित सभा की ओर से इन्होंने 'पण्डितराज' की उपाधि प्राप्त की। काशी के भारत धर्म-महामण्डल ने इन्हें 'पण्डितकेशरी' की उपाधि से विभूषित किया। काशी की ही पण्डितमण्डली ने इनकी कमनीय पद्य रचना से प्रसन्न होकर इन्हें 'कविसम्राट्' की उपाधि से मण्डित किया और इनके सम्मान की परिणति उस समय हुई जब १९०५ ई० में अंग्रेजी सरकार से महामहोपाध्याय की महनीय उपाधि प्राप्त हुई।

ये बड़े कर्मठ पण्डित थे। संस्कृत के साथ बंगला भाषा भी भी बड़ी सेवा की। इन्हीं के उद्योग से रंगपुर में बंगीय साहित्य परिषद की एक शाखा स्थापित हुई जिसके सभापति ये अनेक वर्षों तक थे। प्रवासी बंग साहित्य सम्मेलन बंगाल के बाहर उत्तरप्रदेश, बिहार आदि प्रान्तों में हुआ करता था। जिसका उद्देश्य बंगाल के साहित्यिकों का सम्मेलन तथा गाढ़ परिचय प्राप्त करना था। इस सम्मेलन की दर्शन शाखा के सभापति के पद पर तर्करत्नजी नियुक्त किये गये थे।

पण्डित यादवेश्वर तर्करत्नजी अपने जिला की राजनीति में प्रविष्ट थे। ये राजनीति में सक्रिय भाग लिया करते थे। ये रंगपुर में आनरेरी मजिस्ट्रेट भी थे। १३०५ बंगाब्द में बंगभंग के प्रतिवाद के रूप में रंगपुर जिला समिति का जो अधिवेशन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ था उसके ये ही सभापति थे। इन्होंने बंगभंग के कार्य का कड़ा प्रतिवाद किया। इतना ही नहीं, इन्होंने अपने आनरेरी मजिस्ट्रेट के पद का भी त्याग कर दिया। इस प्रकार इन्होंने भारतीयता के प्रति गाढ़ प्रेम दिखाकर अनाचारी अंग्रेजों के कार्यों की बड़ी ही कड़ी आलोचना की थी। एक संस्कृत पण्डित के लिए ऐसा उग्र व्यवहार करना उस युग के लिए एक नितान्त अनहोनी घटना थी।

रचना

इन्होंने संस्कृत तथा बंगला दोनों भाषाओं में काव्य, उपन्यास आदि का प्रणयन किया है। संस्कृत भाषा में निबद्ध ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं—

१. **शोक तरंगिणी** (१३ वर्ष के वय में रची गई यह कविता इनकी काव्य प्रतिमा को उजागर करती है), २. वाणीविजयम्, ३. सुभद्राहरणम्, ४. चन्द्रदूतम्, ५. प्रशान्त कुसुमम्, ६. अश्रुबिन्दुम्, ७. अश्रुविसर्जनम्, ८. राज्याभिषेक काव्यम्, ९. रत्नकोष काव्यम्, १०. अन्नपूर्णा स्तोत्रम्, ११. शिवस्तोत्रम्, १२. गङ्गादर्शनकाव्यम्, १३ भारतगाथा।

बंगला में लिखित ग्रन्थ

१. द्रौपदी काव्य, २. अशोक (उपन्यास), ३. संशयनिरसन (प्रथम, द्वितीय भाग), ४ एकादशी तत्व, ५. त्रिसन्ध्या तत्त्व, ६. विलायती विचार, ७ आमी ऐकटी अवतार (मैं एक अवतार हूँ)। अन्तिम दोनों ग्रन्थ नये-नये विचारों के प्रकटन के माध्यम हैं। इनमें पश्चिमी जगत् के विचारों की खिल्ली उड़ाई गई है। इन ग्रन्थों के प्रणयन से इनकी साहित्यिक प्रतिमा का परिचय किसी भी आलोचक को मिल सकता है।

१३३१ बंगाब्द में महामहोपाध्याय यादवेश्वर तर्करत्न का निधन हुआ। इस प्रकार तर्करत्नजी ने इस काशी की विद्यानगरी में इन शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन कर अलौकिक वैदुष्य प्राप्त किया था। उसका मुक्तहस्त से वितरण कर इन्होंने समग्र बंगाल को, विशेषतः उत्तरीय बंगाल को अपनी प्रतिभा के प्रसाद से समृद्ध बनाया।

यादवेश्वर तर्करत्नजी के एकमात्र पुत्र पं० वृन्दावन भट्टाचार्यजी संस्कृत, भारतीय इतिहास, पुरातत्त्व तथा मूर्तिकला के विशेष विद्वान् थे। उन्होंने जैन इमेजेज (Jain Images) का प्रणयन अंग्रेजी में किया है जिसमें जैनधर्म के देवी-देवताओं की मूर्तियों का बड़ा ही साङ्गोपाङ्ग विवेचन है। बंगला में इन्होंने **'सारनाथ का इतिहास'** नामक ग्रन्थ की रचना की थी जिसमें सारनाथ के प्राचीन इतिहास का बड़ा ही प्रामाणिक विवरण है। ये हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राचीन इतिहास विभाग के अध्यापक थे। इस प्रकार लेखक को इन सहयोगी प्राध्यापक से परिचय पाने का अवसर प्राप्त हुआ था।

इन्हीं की शैली का आचरण कर एक अन्य बंगीय विद्वान ने भी काशी में अधीत विद्या के द्वारा विश्वभारती तथा कलकत्ते को समृद्ध बनाया था। उनका परिचय आगे दिया जा रहा है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० विधुशेखर शास्त्री

(आस्पद—भट्टाचार्य, उपाधि – महामहोपाध्याय)

महामहोपाध्याय पण्डित विधुशेखर शास्त्री केवल भारतवर्ष में ही नहीं, प्रत्युत-समस्त बौद्ध जगत् में अपने बौद्धधर्म-विषयक प्रमेयबहुल तथा प्रामाणिक ग्रन्थों के द्वारा लब्धकीर्ति विशिष्ट विद्वान् थे। काशी में इन्होंने संस्कृत भाषा के शास्त्रों में गम्भीर वैदुष्य प्राप्त किया, परन्तु अपने परिश्रम तथा उदात्त प्रतिभा के बल पर इन्होंने बौद्ध शास्त्रों में भी तलस्पर्शी ज्ञान उपलब्ध किया। तिब्बती भाषा का विशेष अनुशीलन कर इन्होंने उस भाषा के प्रामाणिक व्याकरण की ही रचना नहीं थी, प्रत्युत उस भाषा में निबद्ध परन्तु भारत में विस्मृतप्राय, बौद्धधर्म के सिद्धान्तों का भी कार्मिक अनुसन्धान कर अनेक नवीन तथ्यों का विश्लेषण बड़ी पण्डिताई के साथ किया। भाषा-विज्ञान में इनका प्रवेश कम नहीं था। ऐसा वैदुष्यसम्पन्न विद्वान् काशी की ही पाण्डित्य परम्परा को अग्रसर करने वाला एक महनीय मनीषी था। इनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का यह संक्षिप्त परिचय जिज्ञासुजनों को नितान्त उपादेय सिद्ध होगा—इसी आशा से उनके विषय में यह विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

पण्डित विधुशेखर भट्टाचार्य का जन्म बंगाल के मालदह जिला के हरिश्चन्द्रपुर ग्राम में १२८५ बंगाब्द में (तदनुसार १८७८ ई० के १० अक्टूबर को) हुआ था। इनके पिता का नाम त्रैलोक्यनाथ भट्टाचार्य था। ये राढी श्रेणी के ब्राह्मण थे। अपने जीवन के अन्तिम चरण में ये कलकत्ता विश्वविद्यालय में संस्कृत का अध्यापन कर रहे थे। तब गडिया हाटा रोड पर स्थित ब्रह्म विहार नामक भवन में रहते थे।

अध्ययन

विधुशेखर जी आरम्भ में अपने ग्राम में ही स्थित अंग्रेजी विद्यालय में प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण की। फलतः इन्होंने अंग्रेजी ही पहले प्रारम्भ किया। परन्तु पिता जी की इच्छा से इन्होंने चतुष्पाठी में जाकर संस्कृत गुरु के चरणों में बैठकर संस्कृत पढ़ना आरम्भ किया। १७ वर्ष के वय में विधुशेखर जी ने उस चतुष्पाठी से काव्य की सर्वोच्च उपाधि परीक्षा उत्तीर्ण की। उपाधि प्राप्त करने के बाद इन्होंने उसी वय में दो छोटे-छोटे काव्यग्रन्थों की भी रचना की। इससे स्पष्ट है कि काव्यरचना में इनकी प्रतिभा पूर्णरूप से विकसित होती गई। उतने से ही इन्हें संतोष नहीं हुआ। अन्य शास्त्रों में पाण्डित्य प्राप्त करने की दृष्टि से ये बंगाल छोड़कर काशी पधारे और यहाँ जम कर सुयोग्य गुरुओं से शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन किया।

१८९५-९६ ई० के लगभग की घटना है। उस समय काशी में नानाशास्त्रों के मूर्धन्य विद्वानों का जमघट था। उस समय सात पण्डित महामहोपाध्याय की महनीय उपाधि से विभूषित थे। जब वे किसी सभा मे एक साथ बैठते थे सभा चमक उठती थी। उस समय नाटकों का अभिनय भी विशेष हुआ करता था। ये सातो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामहोपाध्याय दर्शक बनकर जब बैठते थे तब रंगमंच पर अभिनय करने वाले बड़े-बड़े विद्वानों के छक्के छूट जाते थे। पण्डित उमाचरण भट्टाचार्य के अनुज पण्डित ताराचरण भट्टाचार्य ने उस युग का अपना संस्मरण सुनाते हुए लेखक से कहा था कि अभिज्ञान-शाकुन्तल के मंचन के समय दुष्यन्त की भूमिका में जब मैं रंगमंच पर अवतीर्ण हुआ तब अपने सामने सात महामहोपाध्यायों को दर्शकमण्डली में बैठा हुआ देखकर भय से मेरी संस्कृत वाणी लड़खड़ाने लगी। धीरे-धीरे मैंने धीरतापूर्वक अपने को सँभाला और तब कहीं जाकर आश्वस्त हुआ और अभिनय कार्य सुव्यवस्थित रूप से चलने लगा। ऐसे ही वातावरण में विधुशेखर भट्टाचार्य काशी में विद्याध्ययन करने के लिए आये। उस वातावरण में ये इतने घुल-मिल गये कि इनके भीतर सोने वाली प्रतिभा जाग उठी और इन्होंने भी अपने मित्रों के साथ विशेषकर रामावतार शर्मा जी के साथ मिलकर **'मित्रगोष्ठी'** पत्रिका का संपादन तथा प्रकाशन आरम्भ किया जिससे इनकी कीर्ति काशी के पण्डितों में बड़ी जल्दी फैल गई।

मित्रगोष्ठी पत्रिका का आरम्भ १८२६ शकसंवत् (१९०४ ई०) के वैशाखमास से हुआ था। इस पत्रिका का उद्देश्य प्राचीन कवि तथा काव्यों के परिचय के साथ ही साथ नवीन विषयों के विवरण को भी प्रकाशित करना था। इस प्रकाशन के मन्त्री थे पण्डित नीलकमल भट्टाचार्य (लेक्चरर सेन्ट्रल हिन्दूस्कूल, काशी) और सम्पादक थे--पण्डित रामावतार शर्मा और विधुशेखर शास्त्री। इसके लेख बड़ी योग्यता एवं अनुसन्धान से लिखे जाते थे। पण्डित रामावतार जी के नवीन पाश्चात्य विज्ञान विषयक लेख नूतनता-संवलित होते थे। विधुशेखर जी की कविताएँ भी इसमें प्रकाशित होती रहीं। संस्कृत की यह प्रख्यात मासिक पत्रिका काशी से ही प्रकाशित होती थी। वह तीन वर्षों तक (१९०४ ई०-१९०६ ई०) बड़े नियम से प्रकाशित होती रही, परन्तु विधुशेखर जी के शान्तिनिकेतन और रामावतार जी के पटना चले जाने पर यह पत्रिका अस्तंगत हो गई।

विधुशेखर भट्टाचार्य काशी आने से पूर्व ही कलकत्ते से काव्यतीर्थ परीक्षा पास कर चुके थे। अतएव साहित्य तथा अलंकार शास्त्र का ज्ञान इन्हें पर्याप्त मात्रा में था। काशी आने पर इन्होंने दर्शनशास्त्र का अभ्यास करना अपना उद्देश्य रखा। संस्कृत कालेज के प्रख्यात विद्वान्, न्याय विभाग के अध्यक्ष महामहोपाध्याय कैलाशचन्द्र शिरोमणि से इन्होंने न्यायशास्त्र का गंभीर अध्ययन किया। उस युग के प्रख्यात वेदान्त शास्त्र के मनीषी विद्वान् महामहोपाध्याय सुब्रह्मण्य शास्त्री से इन्होंने वेदान्त का अध्ययन कर उसमें तलस्पर्शी पाण्डित्य प्राप्त किया।

अध्यापन कार्य

इनके जीवन में उस समय एक नवीन मोड़ आया जब रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने शान्तिनिकेतन की स्थापना कर नवीन ब्रह्मचारियों के अध्यापन के लिए पण्डित विधुशेखर शास्त्री को अध्यापक पद पर प्रतिष्ठित किया। बंगाब्द १३०१ के माघ मास की यह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशिष्ट घटना है। विधुशेखर शास्त्री काशी की विद्याओं की परम्परा में परिनिष्ठित होकर तेजस्वी पण्डित के रूप में उभर रहे थे। इनका वय उस समय लगभग २६ वर्ष का था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने पुत्र रथीन्द्रनाथ को शान्तिनिकेतन का प्रथम ब्रह्मचारी बनाकर उन्हें प्राचीन पद्धति से संस्कृत भाषा तथा धर्म की शिक्षा देने के लिए शास्त्री जी को शान्तिनिकेतन में आमंत्रित किया। शास्त्री जी पूर्णतया सनातनी ब्राह्मण थे। उधर रवीन्द्रनाथ ब्रह्मसमाज के प्रतिष्ठापक महर्षि देवेन्द्रनाथ के विख्यात पुत्र ब्रह्मसमाज-सम्मत धर्म के प्रचारक थे। पहले तो शास्त्रीजी ने निमन्त्रण स्वीकार करने में बड़ी आनाकानी की परन्तु संस्कृत भाषा के प्रचार और प्रसार के उद्देश्य से इन्होंने निमंत्रण स्वीकार किया और इनकी यह स्वीकृति शान्तिनिकेतन के लिए वरदान सिद्ध हो गई। रवीन्द्रनाथ के परामर्श से शास्त्री जी ने ब्रह्मचारियों को प्राचीन शिक्षा-दीक्षा से मण्डित करना शुरू किया और स्वयं भी नये-नये शास्त्रों के अध्ययन में जुट गये। रवीन्द्रनाथ के परामर्श से विधुशेखर जी ने पालि भाषा तथा बौद्धधर्म का गंभीर अध्ययन करना प्रारम्भ किया। ये विद्यालय में पालि भाषा पढ़ाने लगे। उस समय कोई ग्रन्थ पालि-व्याकरण पर नहीं था। शास्त्री जी ने पालिप्रकाश नाम से पालि भाषा के एक सर्वांगपूर्ण उपादेय व्याकरण ग्रन्थ का निर्माण किया। इसकी भूमिका में इन्होंने पालि भाषा की उत्पत्ति तथा विकास का बहुत ही अनुसंधानपूर्ण विवेचन किया है। धीरे-धीरे ये इस विषय में बड़े पारगामी पंडित हो गये और इनकी कीर्ति चारों ओर फैलने लगी।

कविवर रवीन्द्रनाथ की एक बड़ी उपादेय योजना थी कि यूरोप के संस्कृत के प्रख्यात विद्वान् विज़िटिंग प्रोफेसर के रूप में शान्तनिकेतन में बुलाये जायँ। यहाँ कुछ दिन तक अध्यापन कार्य करें और उनसे लाभ उठाने के लिए भारतवर्ष के विभिन्न विश्वविद्यालयों के संस्कृताध्यापक शान्तिनिकेतन में आकर किसी विशिष्ट शास्त्र का अध्यापन करें तथा उस विषय में शोध कार्य करें। यह योजना खूब सफल रही। इसी योजना के अन्तर्गत फ्रांस के वरिष्ठ संस्कृत अध्यापक डॉ० सिलवां लेवी तथा जर्मनी के प्रख्यात संस्कृतज्ञ डॉ० विंटरनिट्स शान्तिनिकेतन में भिन्न-भिन्न वर्षों में अध्यापन कार्य के लिए आये। इन विदेशी संस्कृत पण्डितों के संपर्क में आने से विधुशेखर जी का ध्यान मूल बौद्धधर्म के स्वरूप को जानने के लिए आतुर हो गया। इन्होंने तिब्बती भाषा का इसी कार्य के लिए विशेष अध्ययन किया। इन्होंने तिब्बती भाषा का व्याकरण तथा प्रवेशिका की रचना कर तिब्बती भाषा को सरल सुबोध बनाया। यह तो प्रसिद्ध ही है कि बहुत से बौद्ध ग्रन्थ जो मूल संस्कृत रूप में उपलब्ध नहीं होते अपने तिब्बती अनुवाद में आज भी विद्यमान हैं। विधुशेखर जी ने स्वयं तथा अपने शिष्यों को मूल संस्कृत बौद्ध ग्रन्थों के पुनरुद्धार के लिए प्रेरित किया और उन्हीं के प्रयास से शान्तनिकेतन में अनेक लुप्तप्राय बौद्ध ग्रन्थों का तिब्बती भाषा से मूल संस्कृत रूप प्रकाशित हुआ है। इस प्रकार पं० विधुशेखर शास्त्री के अश्रान्त परिश्रम, गंभीर अनुशीलन तथा दृढ़ प्रेरणा से अनेक महायानी बौद्ध ग्रन्थों का उद्धार हो सका है,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनके अध्ययन से बौद्धधर्म के अनेक अज्ञात अथवा अल्पज्ञात तथ्य विशद रूप से प्रकाश में आये।

ग्रन्थ

शास्त्रीजी ने बंगला, संस्कृत तथा अंग्रेजी में जिन ग्रन्थों का प्रणयन किया है उनमें से उनकी रचित तथा संपादित ग्रन्थावली का निर्देश इस प्रकार है :—

१. चन्द्रप्रभा। २. हरिश्चन्द्र चरित्र। ३. न्यायप्रवेश।

४. **भोटप्रकाश**—यह तिब्बती भाषा का व्याकरण है जिसमें अंग्रेजी के द्वारा तिब्बती भाषा के नियमों का विश्लेषण तथा शिक्षण दिया गया है। साथ ही साथ मूल तिब्बती के कुछ उद्धरण तथा कथानक भी दिये गए हैं जिनके अनुशीलन से छात्रों का तिब्बती भाषा का ज्ञान परिनिष्ठित हो जाता है।

५. **शतपथ ब्राह्मण**—माध्यन्दिन शाखा के अनुसार प्रथम दो खण्ड का यह बंगला अनुवाद है। उस युग में पण्डित कामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी के प्रोत्साहन से शास्त्री जी ने शतपथ ब्राह्मण का बंगला अनुवाद करना स्वीकार किया था। इस अनुवाद का केवल प्रथम खण्ड ही प्रकाशित हो सका है। यह ग्रन्थ बहुत ही उपादेय है और विधुशेखर जी के वैदिक ज्ञान का प्रकृष्ट परिचायक है।

६. **आगम शास्त्र**—गौडपादाचार्य का यह वेदान्त का बड़ा ही दुरूह, उच्च ग्रन्थ है। इसका लोकप्रिय नाम माण्डूक्यकारिका है। इसका अंग्रेजी में अनुवाद करके शास्त्री जी ने अपने गंभीर अध्ययन का परिचय दिया है।

७. **पालिप्रकाश**—पालि भाषा का बंगला में व्याकरण है। यह पालि सीखने के लिए बहुत उपयोगी तथा उपादेय सिद्ध हुआ है।

८. मिलिन्द प्रश्न, ९. प्रातिमोक्ष, १०. महायान विवेक, ११. चतुःशतक, १२. मध्यान्त विभाग सूत्रभाष्य टीका (प्रथम खण्ड), १३. योगाचार भूमि—ये ग्रन्थ हीनयान एवं महायान बौद्धधर्म के बड़े ही प्रामाणिक तथा दुरूह ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों का सुन्दर संस्करण प्रकाशित कर शास्त्रीजी ने भारतवर्ष में बौद्धधर्म और दर्शन के जिज्ञासुओं के लिए बड़ी ही उपादेय सामग्री प्रस्तुत की है।

अंग्रेजी भाषा के द्वारा शास्त्री जी ने बौद्ध धर्म तथा उनके सिद्धान्तों का बड़ा ही प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत किया है। इन ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं :—

(a) The Historical Introduction to the Indian Schools of Buddhism. (b) History of Philosophy. (c) The Basic Conception of Buddhism.

इन ग्रन्थों के अनुशीलन से यह स्पष्ट है कि विधुशेखर भट्टाचार्य ने अपना समग्र

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन ही बौद्धधर्म और दर्शन के अध्ययन, विश्लेषण तथा मीमांसा के लिए समर्पित कर दिया था।

शान्तनिकेतन की इन्होंने तीस बरस के ऊपर एकनिष्ठ सेवा की। तदनन्तर वहीं से अवकाश ग्रहण किया। तब इन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के उच्च अध्यापक के रूप में अनेक वर्षों तक कार्य किया। कलकत्ता में ही इनका निधन हुआ।

विधुशेखर शास्त्री को अनेक विश्वविद्यालयों से मानद उपाधियाँ प्राप्त थीं। १९३६ ई० में इन्हें भारत सरकार द्वारा महामहोपाध्याय की उपाधि प्राप्त हुई थी। १९५७ ई० में विश्वभारती विश्वविद्यालय ने इनको डी० लिट्० की मानद उपाधि से विभूषित किया था।

इस प्रकार काशी में अर्जित अपनी प्रौढ़ संस्कृत भाषा के अध्ययन को शास्त्री जी ने विश्वभारती तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय में विशद अध्यापन के द्वारा चरितार्थ किया।

श्री क्षितिमोहन सेन

शान्ति निकेतन के शैक्षणिक विस्तार, शास्त्रीय अनुसंधान एवं विपुल साहित्यिक समृद्धि में महनीय योगदान देने के लिए काशी के ही एक वरिष्ठ सरस्वती-पुत्र का साहाय्य नितान्त उल्लेखनीय है। इनका नाम था—क्षितिमोहन सेन। क्षिति बाबू के पिता काशी में लब्धकीर्ति डाक्टर (अंग्रेजी चिकित्सक) थे। इसीलिए इनकी शिक्षा-दीक्षा काशी में ही हुई थी। इन्होंने काशी के तत्कालीन प्रख्यात पण्डितों के चरण तले बैठकर संस्कृत शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन किया था। इनके चिकित्सक पिता से अनेक पण्डितों का सम्पर्क था। फलतः क्षिति बाबू ने काशी के इन पण्डितों के आचार-विचार, रहन-सहन को बड़ी निकटता से देखा था। उनके बड़े विलक्षण, रोचक एवं सरस संस्मरण वे अपने परिचितों को सुनाया करते थे। पण्डित हजारीप्रसाद द्विवेदी उन्हीं परिचितों एवं सहाध्यापकों में अन्यतम थे। द्विवेदीजी का कहना था कि क्षिति बाबू के पास काशी के पण्डितों के पावन संस्मरणों का एक विशाल खजाना ही था। काशी में ही क्षिति बाबू हिन्दी में निबद्ध सन्त साहित्य से भली-भाँति परिचित हो गये। आध्यात्मिक प्रवृत्ति के धनी होने के कारण इनकी दृष्टि में सन्त साहित्य के गुह्य रहस्यों का समधिक महत्त्व था। कबीरविषयक बंगला में रचित उनके अनेक ग्रन्थ उनकी अनुसन्धानात्मक प्रवृत्ति के सद्यः निदर्शन हैं। विधुशेखर शास्त्रीजी तथा क्षितिमोहन सेन जी का शान्तिनिकेतन में आगमन लगभग एक ही काल में हुआ था। कबीर की आध्यात्मिक आलोचना एवं उनकी हिन्दी बानियों के अपने बंगला अनुवाद से क्षिति बाबू ने गुरुदेव रवि बाबू को अत्यन्त मुग्ध कर लिया। फलस्वरूप रवि बाबू ने क्षिति बाबू के बंगला अनुवाद के आधार पर कबीर विषयक अपना अनुपम ग्रन्थ अंग्रेजी में लिखा और मध्ययुग के एक गम्भीर मर्मी सन्त की बानी का आस्वादन वे पाश्चात्य साहित्यिकों को पूरे वैभव के साथ इस प्रकार कराने में समर्थ हुए। फलतः कबीर तथा अन्य मध्य-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युगीन सन्तों को हिन्दी की संकीर्ण चहारदीवारी से निकाल कर विश्व के अन्तर्राष्ट्रीय विशाल क्षितिज पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय काशी के इस सरस्वतीपुत्र को निश्चयेन प्राप्त है—इस विषय में आलोचकों के दो मत नहीं हो सकते। इन दोनों विद्वानों के माध्यम से शान्तिनिकेतन की साहित्य-संवर्धना में काशी का यह योगदान कभी भुलाया नहीं जा सकता। तथास्तु !

आचार्य क्षितिमोहन सेन का जन्म १८८० ई० में तथा निधन १९६० ई० में हुआ। आपकी शिक्षा काशी के क्वीन्स कालेज में हुई। वहीं से आपने 'शास्त्री' एवं एम० ए० उपाधियाँ प्राप्त कीं। ये विश्वभारती के अन्तर्गत 'विद्याभवन' के अध्यक्ष थे। मध्यकालीन सन्त साहित्य के महान् समीक्षक, मर्मज्ञ, विवेचक और प्रौढ़ व्याख्याता थे। हिन्दी, बंगला तथा अंग्रेजी-इन तीनों भाषाओं के ज्ञाता तथा विद्वान् होने के नाते इनकी रचनाएँ इन तीनों भाषाओं में उपलब्ध होती हैं। बंगला में—भारतीय मध्ययुगेर साधनार धारा (१९३०), दादू (१९३८), बांगलार बाउल (१९५४), साहित्यालोचना ग्रन्थ (१९५२)। हिन्दी भारत में जातिभेद (समाजशास्त्र)। अंग्रेजी मिडीवल मिस्टिसिज्म (१९३५)। इन समग्र ग्रन्थों का आधारपीठ है—मध्ययुगीन सन्त साहित्य, जिसके अध्ययन की योग्यता इन्हें काशी में प्राप्त हुई।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३२

पण्डित बालकृष्ण मिश्र

(आस्पद – मिश्र, उपाधि–महामहोपाध्याय)

पं० बालकृष्ण मिश्र संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् थे। यों तो इन्होंने सकल शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन किया था परन्तु इनकी प्रतिभा की प्रकर्षता साहित्य तथा दर्शन के क्षेत्र में ही उपलब्ध होती है। जिस प्रकार साहित्य जैसे कोमल शास्त्र में इनका पाण्डित्यपूर्ण प्रवेश था उसी प्रकार न्याय जैसे कर्कश शास्त्र में भी इनकी प्रतिभा प्रखर रूप में दिखाई पड़ती थी। साहित्य और दर्शन का मणिकांचन संयोग मिश्र जी के व्यक्तित्व की प्रधान विशेषता है।

ये कारयित्री तथा भावयित्री दोनों प्रकार की प्रतिभा के धनी थे। कारयित्री प्रतिभा इनके काव्य **'लक्ष्मीश्वरीचरित'** में दृष्टिगोचर होती है। इस ग्रन्थ में अलंकारों तथा रसों का सरस उपन्यास पाया जाता है। ये शब्दकवि ही नहीं थे, बल्कि नवीन कल्पना से संवलित नूतन अर्थ के अभिव्यञ्जक रसिक कवि थे। न्यायशास्त्र के विचक्षण विद्वान् थे। परन्तु यह तो इनका निजी विषय था। इनके अतिरिक्त वेदान्त शास्त्र का भी इन्होंने गहन अध्ययन किया था। इनकी शिष्यमण्डली अत्यन्त विस्तृत थी। विहार तथा उत्तरप्रदेश के अनेक विद्वानों ने इनके चरणों में बैठकर न्याय तथा वेदान्त शास्त्रों का पाठ पढ़ा था। परन्तु दुःख का विषय यह है कि अल्पायु होने के कारण इनके वैदुष्य तथा प्रतिभा का प्रसाद संस्कृत-संसार को अधिक वर्षों तक नहीं मिल सका।

पं० बालकृष्ण का जन्म मिथिला के प्राचीन प्रतिष्ठित विद्वानों के कुल में हुआ था। आपके पूर्वजों में सुप्रसिद्ध विद्वान् तथा मनीषी **शंकर मिश्र** तथा उनके पिता **भवदेव मिश्र** थे जिन्होंने मिथिला में अपनी लोकातीत विद्वत्ता का सिक्का जमा रखा था। इन्हीं विद्वान् पण्डितों की कुल-परम्परा में पं० बालकृष्ण का जन्म सन् १८८८ ई० में हुआ था। आपकी जन्मभूमि दरभंगा जिले का 'सरिसव' गाँव है। आपके पिता अत्यन्त धार्मिक और उदात्त भावना वाले श्रोत्रिय ब्राह्मण थे।

मिश्र जी के मामा पं० नीलाम्बर झा उच्चकोटि के नैयायिक थे। उन्हीं के यहाँ रहते हुए इन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। परन्तु मामा की छत्रच्छाया आपके ऊपर अधिक दिनों तक नहीं रह सकी। आपके पिता जी का देहान्त असमय में ही हो गया। अतः आप गृहस्थी का भीषण भार सँभालने के लिए घर लौट आये। स्वाध्यायी मिश्रजी ने घर पर आकर अपना स्वाध्याय पुनः प्रारम्भ किया और अपने गाँव के समीप में ही रहने वाले पं० **लोकनाथ झा** से नव्य-व्याकरण का साङ्गोपांग अध्ययन किया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यापन

सकल शास्त्रों का अध्ययन करने के पश्चात् आप अध्यापन कार्य में प्रवृत्त हुए। आपकी प्रतिभा के पारखी मिथिला के महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह ने अपने विद्यालय में आपको अध्यापक का पद प्रदान किया। आप दरभंगा संस्कृत विद्यालय में केवल २० वर्ष की अवस्था में अध्यापक नियुक्त हुए थे। उस समय आपसे अधिक वय के विद्यार्थी आपके चरणों में बैठ कर विद्या ग्रहण करते थे। परन्तु आपकी अध्यापन शैली इतनी वैज्ञानिक थी कि सभी छात्र उस पर मुग्ध हो जाते थे। आपको अपने विषय पर पूर्ण अधिकार था। समस्त ग्रन्थ ही कण्ठस्थ था। अतः प्राचीन विद्वानों की भाँति आपने ग्रन्थ को देखकर नहीं पढ़ाया। दरभंगा में रहते हुए आपने महामहोपाध्याय पं० **चित्रधर मिश्र** से न्याय तथा मीमांसा शास्त्र का विधिवत् अध्ययन किया तथा इनमें प्रौढ़ता प्राप्त की।

लगभग आठ वर्षों तक दरभंगा में अध्यापन करने के पश्चात् जब मुजफ्फरपुर में धर्मसमाज संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना हुई, तब आपने अधिकारियों के निमंत्रण को स्वीकार कर लिया। यहाँ पर अध्यापन का कार्य करते हुए आपको अनेक विद्वानों का सान्निध्य प्राप्त हुआ। यहीं पर आपने सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० **शशिनाथ झा** से व्याकरण शास्त्र का अध्ययन किया और दर्शन के प्रकाण्ड पण्डित पं० **बच्चा झा** से वेदान्त का पाठ पढ़ा। यहाँ अध्यापन करते हुए आपकी कीर्ति चारों ओर फैलने लगी और दूर-दूर के प्रदेशों के छात्र आपके चरणों में बैठकर अनेक शास्त्रों का अध्ययन करने लगे।

मुजफ्फरपुर में अध्यापन कार्य करने के काल में ही मुंगेर जिले के 'खगड़िया' नामक स्थान में एक 'बृहत् विष्णुयाग' का आयोजन हुआ था जिसमें भारत के सुदूर स्थानों के वैदिक भी निमन्त्रित किये गये थे। इस यज्ञ में पण्डित बालकृष्ण मिश्र ने भी भाग लिया। यज्ञ के अन्त में विद्वानों में शास्त्रार्थ हुआ और इस शास्त्रार्थ में मिश्रजी ने अपनी अलौकिक विद्वत्ता तथा भाषण-शक्ति एवं तार्किक युक्तियों से समस्त विद्वन्मण्डली को मुग्ध कर दिया। इसी यज्ञ में पण्डित विद्याधरजी गौड़ से आपका परिचय हुआ जो वहाँ यज्ञ में 'आचार्य' के पद को सुशोभित करने के लिए गये थे। उन दिनों गौड़जी हिन्दू विश्वविद्यालय में वेद-विभाग के अध्यक्ष पद को सुशोभित कर रहे थे और मालवीयजी महाराज के कृपापात्रों में से अन्यतम थे। पण्डित बालकृष्ण मिश्र की गम्भीर विद्वत्ता और मधुर शास्त्रार्थ पद्धति का प्रभाव गौड़जी के हृदय पर बहुत अधिक पड़ा। उन्होंने काशी लौटकर गुणग्राही मालवीयजी से मिश्रजी के अप्रतिम पाण्डित्य की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। मालवीयजी सदा उत्कृष्ट विद्वानों की खोज में रहा करते थे और चुनचुन कर वैदुष्यसम्पन्न मनीषियों को अपने विश्वविद्यालय में अध्यापन के लिए आदरपूर्वक बुलाया करते थे। अतः मालवीयजी ने मिश्रजी को अपने विश्वविद्यालय में अध्यापन के लिए सादर तथा साग्रह निमन्त्रण दिया और ये मालवीयजी का सन्देश पाकर शीघ्र ही काशी चले आये।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालवीयजी ने इन्हें संस्कृत महाविद्यालय में वेदान्तशास्त्र का प्राध्यापक नियुक्त किया। आपकी विद्वत्ता तथा वाग्मिता से प्रभावित होकर मालवीयजी ने कुछ ही वर्षों के पश्चात् इन्हें संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य का सम्मानित पद प्रदान किया। मिश्रजी बड़ी लगन तथा परिश्रम के साथ इस महान् पद के भार को सँभालते रहे और जीवन के अन्तिम दिनों तक प्रिन्सिपल के पद को सुशोभित करते रहे।

वास्तव में पण्डित बालकृष्ण मिश्रजी के जीवन का सुवर्णकाल इनका हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रिन्सिपल के पद पर कार्य करने का काल ही कहा जा सकता है। इस पद को अलंकृत करते हुए आपने सहस्रों छात्रों को विद्यादान दिया। इन छात्रों ने अपने जीवन में अनेक महत्त्वपूर्ण पदों को सुशोभित किया। इसी काल में ब्रिटिश सरकार ने इनकी अलौकिक विद्वत्ता के फलस्वरूप इन्हें 'महामहोपाध्याय' की महनीय उपाधि से अलंकृत किया था। इसी समय एक 'अखिल भारतीय महामहोपाध्याय सम्मेलन' हुआ था जिसमें सम्पूर्ण देश के महामहोपाध्यायों ने एकत्र होकर मिश्रजी के वैदुष्य और शास्त्रार्थ-प्रणाली की भूरिभूरि प्रशंसा की थी। राँची (बिहार) में सम्पन्न विद्वत्-सम्मेलन में बिहार के राज्यपाल ने आपकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी और आपको विशिष्ट पुरस्कार से सम्मानित किया था।

भाषण-शैली

पण्डित बालकृष्ण मिश्र की भाषण-शैली बहुत ही सुन्दर तथा मधुर थी। उसकी जितनी प्रशसा की जाय थोड़ी है। न्याय जैसे कर्कश शास्त्र के विषय में शास्त्रार्थ करते समय जब आप दुरूह से दुरूह विषयों का साहित्यिक माधुरी के साथ विवेचन करते थे, तब सामान्य व्यक्ति भी आपकी भाषा के माधुर्य से आकृष्ट होकर आपके शास्त्रार्थ को सुनने में आनन्द का अनुभव करता था। न्याय के शास्त्रार्थ की शैली तर्क-कर्कश होती है परन्तु आप इसे इतना सरस बना देते थे कि विद्वान् श्रोतागण आश्चर्य से चकित हो जाते थे। आपके भाषणों में सुन्दर शब्द-विन्यास और भाव-भंगिमा का मधुर सामञ्जस्य रहता था। आप चाहे संस्कृत में भाषण करें अथवा हिन्दी या मैथिली में, भाषा का माधुर्य आपकी वक्तृता में सर्वदा विराजमान रहता था। वाणी आपकी वश्या जो थी।

आपका स्वभाव बड़ा ही सीधा था। आप सबसे समान रूप से मिलते थे। आपका व्यवहार मृदु और आदर्शस्वरूप था। आप धर्म की साक्षात् मूर्ति थे। आपका व्यक्तित्व बड़ा ही सुन्दर तथा भव्य था। आपके मुखमण्डल पर अद्भुत दैवी तेज परिलक्षित होता था।

मिश्रजी के जीवन का अन्तिम समय बड़े ही कष्ट में बीता। आपके होनहार सुयोग्य पुत्र पण्डित लेखदत्त मिश्र राजयक्ष्मा से ग्रस्त हो गये और इसी रोग से युवावस्था में ही उनका देहान्त हो गया। पिता की वृद्धावस्था में युवक पुत्र की मृत्यु बड़ी ही

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कष्टकारक होती है। अतः पुत्रशोक के इस दुःख को मिश्रजी सहन नहीं कर सके और सन् १९४६ ई० में काशी में ही इनकी ऐहिक लीला समाप्त हो गयी।

शिष्यमण्डली—पं० बालकृष्ण मिश्र ने अनेक योग्य शिष्य तैयार किये थे जिन्होंने अपने जीवन में अत्यधिक कीर्ति प्राप्त की। आपके प्रधान शिष्यों के नाम नीचे दिये जाते हैं :—

(१) **पं० बदरीनाथ शुक्ल** श्री शुक्लजी भारतीय दर्शनों के, विशेषकर न्याय तथा वेदान्त के, बड़े ही मर्मज्ञ विद्वान् हैं। इनकी भाषण शक्ति बहुत ही आकर्षक तथा प्रभावशाली है। ये संस्कृत विश्वविद्यालय में न्याय-शास्त्र के अध्यक्ष थे। आगे चलकर ये संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति पद पर प्रतिष्ठित हुए। ये जितने सफल अध्यापक हैं उतने ही बड़े प्रशासक भी हैं। इन दोनों ही योग्यताओं का संपादनकर्त्ता बिरला ही दिखाई पड़ता है। श्री शुक्ल जी ने **तत्त्व चिन्तामणि** के मंगलवाद' अंश का मथुरानाथ कृत व्याख्या के साथ सुन्दर संस्करण संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित किया है। इन्होंने तर्कभाषा का हिन्दी अनुवाद बड़े विस्तार के साथ किया है। यह केवल अनुवाद नहीं है, प्रत्युत पाण्डित्यपूर्ण भाष्य है जिसमें न्याय के सिद्धान्तों की तुलना अन्य दर्शनों के तत्तत् सिद्धान्तों के साथ की गई है। लोकातीत वैदुष्य तथा पाण्डित्य से मण्डित श्री बदरीनाथ शुक्ल से पण्डित-समाज को अभी विशेष अपेक्षा है।

(२) **श्री केदारनाथ ओझा**—श्री ओझा जी न्याय तथा वेदान्त आदि दर्शन शास्त्रों के प्रौढ़ विद्वान् होने के साथ ही साथ शास्त्रार्थ महारथी हैं। ये शास्त्रार्थ करने में बड़े ही पटु, प्रवीण तथा प्रभावक हैं। जयपुर, लखनऊ, पटना के विविध महनीय विद्यालयों में सफल अध्यापक होने की कीर्ति से ये सर्वथा मण्डित हैं। न्याय में गम्भीर चिन्तन तथा मनन करने में इनकी अलौकिक प्रतिभा का विलास पदे-पदे दृष्टिगोचर होता है। इनकी प्रकाशित दोनों पुस्तकें विषय-विवेचन की दृष्टि से नितान्त प्रौढ़, प्रामाणिक तथा विचारोत्तेजक हैं। पहला ग्रन्थ है—**रस गंगाधर की नवीन व्याख्या** (प्रकाशक संस्कृत विश्वविद्यालय, काशी १९७८)। "**रस चन्द्रिका**" में पण्डितराज जगन्नाथ के मतों का विवेचन बड़े ही गम्भीरता के साथ किया गया है। दूसरा है **विद्या वैजयन्ती** निबन्ध माला (प्रथम भाग[1])—इस विशालकाय ग्रन्थ में श्री ओझा जी ने दर्शन के महनीय तत्त्वों का बड़े ही विस्तार के साथ विवेचन तथा प्रतिपादन किया है। संस्कृत लेखों का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत कर आपने पाठकों का बड़ा उपकार किया है। विवेचन गम्भीर तथा तुलनात्मक है। भाषा प्रौढ़ तथा प्राञ्जल है। आपके विचार बड़े ही उत्तेजक तथा प्रभावकारी हैं। इसमें श्री केदारनाथ जी की वैदुषी, चिन्तन-शक्ति तथा प्रतिपादन शैली बड़ी ही अपूर्व तथा आवर्जक है।

(३) **डा० वीरमणिप्रसाद उपाध्याय**—एम. ए., साहित्याचार्य। इन्होंने गोरखपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष पद से अवकाश प्राप्त किया।

---

१. प्रकाशक—केदारनाथ ओझा, मुमुक्षु भवन, काशी, १९७८ ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) पं० ईश्वरनाथ झा—प्रधानाचार्य (भू० पू०) संस्कृत विद्यालय, नवानी, दरभंगा।

(५ गोसूनाथ मिश्र—मुजफ्फरपुर के धर्म समाज संस्कृत कालेज में न्याय और दर्शन शास्त्र के प्राध्यापक रहे।

(६) पं० उमानन्द झा—आप न्याय और वेदान्त के प्रकाण्ड विद्वान् थे एवं रानी चन्द्रावती श्यामा विद्यालय काशी के प्रधानाध्यापक थे।

(७) महामहोपाध्याय पं० रघुवराचार्य वेदान्तकेशरी—मठाधीश, झींगड़ा मठ (सौराष्ट्र)।

(८) पं० राधाकृष्ण झा— न्याय-व्याकरणाचार्य, भू० पू० प्रधानाध्यापक, संस्कृत विद्यालय वाराही, मुजफ्फरपुर (बिहार)।

(९) पं० सदानन्द झा—भू० पू० प्रधानाध्यापक संस्कृत विद्यालय, वैद्यनाथ धाम, देवघर।

(१०) पं० वासुदेवाचार्य – महाराज। अयोध्या।

मिश्र जी के शिष्यों की इस तालिका से पता चलता है कि इनके शिष्यों ने कितनी विद्वत्ता प्राप्त की थी। इन लोगों ने मिश्र जी से अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया था। इससे मिश्र जी की बहुमुखी प्रतिभा तथा तलस्पर्शी विद्वत्ता का सहज में ही अनुमान लगाया जा सकता है।

ग्रन्थ रचना—पहले लिखा जा चुका है कि मिश्र जी साहित्य तथा दर्शन दोनों शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान् थे। अतः इन्होंने जहाँ सरस काव्य की रचना की है वहीं तर्कशास्त्र के अनेक ग्रन्थों की विद्वत्तापूर्ण टीका लिखी है।

(१) **लक्ष्मीश्वरी चरित**—यह काव्य महाराजाधिराज दरभङ्गानरेश लक्ष्मीश्वर सिंह जी की धर्मपत्नी लक्ष्मीश्वरी का जीवन-चरित है। इस ग्रन्थ से आपकी काव्यात्मक प्रतिभा का पूर्ण पता चलता है।[1]

(२) गौतम सूत्रवृत्ति के ऊपर तात्पर्य विवृति नामक टिप्पणी।

(३) उमयाभावादिवारक परिष्कार की 'प्रकाश' नाम से टीका लिखी है।

(४) विद्यापति पदावली के ऊपर टिप्पणी।

(५) राधानयन द्विशती की संस्कृत टीका।

संस्मरण

पण्डित बालकृष्ण मिश्र तर्कनिष्णात खूसट नैयायिक नहीं थे, प्रत्युत स्निग्ध हृदय रसिक साहित्यिक भी थे। इनकी रसिकता रसपेशल पद्यों की रचना में ही नहीं झलकती, प्रत्युत उनके प्रत्येक साहित्यिक कार्यों में उसकी छटा दिखलाई पड़ती है।

---

१. इस जीवन-चरित को लिखने में लेखक को पं० रामचन्द्र झा लिखित 'विद्वद्विभूति' से बड़ी सहायता मिली है। अतः लेखक उनका बड़ा आभारी है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दुबाबू हरिश्चन्द्र के सम्बन्ध में सुना जाता है कि सप्ताह के प्रत्येक दिन भिन्न-भिन्न प्रकार के कागजों पर पत्र लिखा करते थे। उनकी दृष्टि में उन-उन देवताओं के रंग के साथ उस दिन के प्रयुक्त पत्रों के कागजों का संबंध था। अतः वे गुरुवार को पीला और शनिवार को नीला, सोम को श्वेत तो मंगल को लाल कागज का प्रयोग करते थे। उसी प्रकार पं० बालकृष्ण मिश्र जी अपने भिन्न-भिन्न शास्त्रों की पुस्तकों का वेष्टन विभिन्न रंगों का रखते थे। इसका कारण पूछने पर उत्तर में उन्होंने यह बतलाया कि व्याकरणशास्त्र के लिए श्वेत, काव्यशास्त्र के लिए गुलाबी, मीमांसा कर्मकाण्ड के लिए पीला, वेदान्त के लिए गेरुआ और न्यायशास्त्र के लिए लाल रंग के वेष्टनों का मैं उपयोग किया करता हूँ। इसका अभिप्राय पूछने पर वे यह कहा करते थे कि व्याकरण अध्येता बालकों का हृदय बाल्यावस्था में स्वच्छ होता है। अतः उसका वेष्टन सफेद होना चाहिए। शृङ्गार रस का रंग गुलाबी होता है अतः इसके लिए इसी रंग का प्रयोग समुचित है। तर्कशास्त्र लड़ाकू (खूनी) शास्त्र है अतः इसका रंग लाल होना ही चाहिए। मीमांसा में यज्ञ की प्रधानता होती है। अग्नि का रंग पीला है। वेदान्त संन्यास का उपदेशक है। अतः वेदान्त की पुस्तकों का गेरुआ और मीमांसा का पीला रंग समीचीन है। इस व्यवस्था से इनकी साहित्य रसिकता का पता चलता है। पुस्तकालय में पुस्तकों के खोजने में इससे सरल उपाय और क्या हो सकता है ?

विनोदी स्वभाव

पं० बालकृष्ण मिश्र प्राचीन विद्वान् पण्डितों के संबंध में प्रचलित अनेक किम्वदन्तियों से परिचित थे जिसे वे अपने छात्रों को सुनाया करते थे। पं० मथुरानाथ तर्कवागीश बंगाल के प्रकाण्ड नैयायिक थे। उनको स्वाध्याय का कितना व्यसन था इसके विषय में वे अनेक कथाएँ कहते थे। एक घटना का उल्लेख उन्होंने इस प्रकार किया था।

एक दिन मथुरानाथ जी के यहाँ कोई मित्र अतिथि के रूप में दिन के मध्याह्न समय में आये। उन्होंने उनकी धर्मपत्नी से पूछा कि शास्त्री जी कहाँ हैं। उनकी पत्नी ने कहा—क्या बतलाऊँ ? अपराह्न हो गया। अभी तक उन्होंने भोजन भी नहीं किया है। जाइए न, उस कमरे में बैठे हुए न मालूम क्या कर रहे हैं। मित्र जब शास्त्री जी के कक्ष में गये तब शास्त्री जी स्वाध्याय में निमग्न थे। मित्र ने मनोविनोद करते हुए पूछा—

"तर्ककर्कश - विचार - चातुरी,
का - तुरीयवयसा विभाव्यते।
आतुरी भवति यत्र मानसम्"- –

इस पर शास्त्री जी ने झट उत्तर दिया कि "धातुरीप्सितमपाकरोति कः।"

मित्र के प्रश्न का भाव यह था कि इस वृद्धावस्था में तर्क से कर्कश तुम कौन सी विचारधारा में उद्विग्न हो ? वृद्धावस्था ऐसी बुरी अवस्था है जिसमें चित्त व्याकुल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता है। खाना, न पीना। तुम किस चिन्ता में पड़े हो ? इस पर शास्त्री जी ने उत्तर दिया कि क्या करूँ ! विधाता ने मेरे भाग्य में यही लिखा है।

दाक्षिणात्य तथा मैथिल पण्डितों के आपस में चारित्रिक दोषों पर तीव्र कटाक्ष करने की परम्परा बड़ी प्राचीन है। इसी प्रसंग में मिश्र जी ने एक दन्तकथा अपने शिष्यों को इस प्रकार सुनायी थी। किसी दाक्षिणात्य पण्डित ने किसी मैथिल विद्वान् पर आक्षेप करते हुए यह श्लोक कहा—

"असुव्ययो वाऽस्तु वसुव्ययो वा,
अमी न मीनव्यसनं त्यजन्ति।
अस्वामिनीभिर्वरकामिनीभिः,
मिश्रास्तमिस्रा अतिवाहयन्ति ॥"

तात्पर्य यह है कि प्राण भले ही जायँ, घर में दरिद्रता का अकाण्ड ताण्डव भले ही हो परन्तु मैथिल पण्डित मिश्र जी मछली खाने का व्यसन नहीं छोड़ सकते और वे पतिविहीन विधव सुन्दरियों के साथ कामकेलि में रातें बिताया करते हैं।

इसको सुनकर मिश्र जी ने भट्ट जी के ऊपर यह फबती सुनाई—

"मन्देषु कन्देषु रतिं दधानो,
धत्ते पिधत्ते पथि चर्वणानि।
भट्टोऽयमट्टोपरि वारवध्वा,
निपीय मध्वारभते विहारम् ॥"

श्लोक का आशय है कि भट्ट जी के चरित के बारे में क्या कहा जाय। ये सड़े गले प्याज (कन्द) को बड़ी रुचि से खाते हैं। ये रास्ते में चलते समय भी चबेना चबाते चलते हैं। धन्य हैं ये भट्टजी जो शराब पीकर और ऊँची अटारी पर चढ़कर वाराङ्गना से विहार किया करते हैं।

मैथिल पण्डित का यह आक्षेप बड़ा ही कड़ुवा था। शब्दों की चोट से भट्ट जी तिलमिला उठे और वे फिर मुँहतोड़ जबाब देते हुए बोले--

"शतशः कवयन्तु तैरभुक्ताः
रसरीतिः पुनरेव तैरभुक्ता।

तीरभुक्ति अर्थात् मिथिला के निवासी मैथिल पण्डित लोग सेकड़ों कविताओं को भले लिख डालें परन्तु साहित्यिक रस की प्रौढ़ि को भला क्या जान सकते हैं ? उनके पास तो यह फटक भी नहीं सकती। इस पद्य में 'तैरभुक्ता ? शब्द में भंग श्लेष है। इसका पहला अर्थ है तैरभुक्ता अर्थात् तीरभुक्ति (तिरहुत मिथिला) के निवासी और तैरभुक्ताः का दूसरा अर्थ है तैः अभुक्ताः अर्थात् उनके द्वारा नहीं खाया गया या रसपान नहीं किया गया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैथिल पण्डितों की काव्यसम्बन्धी अरसिकता के सम्बन्ध में जो आक्षेप किया गया इसपर मैथिल विद्वान् ने बड़ा कटु तथा कर्कश उत्तर दिया जिसमें दाक्षिणात्यों की एक प्रथा के ऊपर आक्रमण किया गया है :

"सहजा रसरीतिरतिश्रयं,
मिथिलाभूमिभुवां मनीषिणाम् ।
सहजामुपभुञ्जते न तेऽतो,
दक्षिणदिक् प्रभवा बुधा इव ॥"

श्लोक का तात्पर्य यह है कि मैथिलों के काव्यों में रस-रीति की स्थिति स्वाभाविक है । परन्तु वे लोग अपनी सहजा अर्थात् मामा की बेटी का उपभोग नहीं करते जैसा कि दक्षिणात्य पण्डित किया करते हैं । दाक्षिणात्य लोगों में यह परम्परा है कि वे अपने मामा की पुत्री से (जो बहन लगती है) विवाह कर लेते हैं । इस "मातुलकन्योद्वाह" का उल्लेख आपस्तम्ब धर्मसूत्र में भी पाया जाता है । दाक्षिणात्यों की इसी कुप्रथा की ओर संकेत किया गया है । यहाँ 'सहजा' शब्द में श्लेष है । जिसका पहला अर्थ 'स्वाभाविक' है और दूसरा अर्थ मामा की पुत्री है ।

इन दोनों उल्लेखों से पं० बालकृष्ण मिश्र जी की रसिकता तथा उनके विनोदी स्वभाव का पता लगता है । इससे उनकी मेधा तथा स्मरण-शक्ति का भी स्पष्ट ही अनुमान लगाया जा सकता है ।

सम्मान के प्रति उपेक्षा

हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत महाविद्यालय के अध्यक्ष पद पर जब मिश्र जी विराजमान थे तब भारत सरकार ने इनके शास्त्रीय वैदुष्य से प्रभावित होकर इन्हें महामहोपाध्याय की पदवी से अलंकृत किया । इस अवसर पर काशी के विद्वान् इनका अभिनन्दन करने के लिए इनके आवास स्थान पर पहुँचे और उन लोगों ने इनसे कहा कि पण्डितसमाज की सर्वश्रेष्ठ उपाधि से सुशोभित होने के उपलक्ष्य में हम लोग आपका अभिनन्दन करने के लिए आये हैं । इस पर मिश्रजी ने विरक्त भाव से कहा कि ब्रिटिश सरकार हमारी विद्वत्ता को क्या समझ सकती है ? अतः उसके द्वारा प्रदत्त उपाधि का मेरे लिए कोई महत्त्व नहीं है । परन्तु आप जैसे लोग मेरे विषय में जो इतनी आदर तथा सम्मान की बुद्धि रखते हैं, मेरे ऊपर आप लोगों की जो श्रद्धा है वही मेरे जीवन का सबसे बड़ा अलंकरण है । अपनी भावना की अभिव्यक्ति मिश्र जी ने इस सरस पद्य के द्वारा की :—

"पित्तलाभरण वित्तलाभतो, मानमावहति पामरी नरी ।
हारमारकतसारसंभवं, भारमेव मनुते वराङ्गना ॥"

श्लोक का भाव यह है कि कोई गँवारिन पीतल के बने हुए गहनों को पाकर गर्व का अनुभव करती है, घमंड करती है । परन्तु उच्च कुल की स्त्री मरकतमणि से बने हुए हार को भी भार ही समझती है । इतने कीमती गहने उसकी दृष्टि में केवल बोझा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही लगते हैं, किसी प्रकार का आनन्द नहीं देते। उपाधि तथा सम्मान के प्रति मिश्र जी सदा उपेक्षा रखते थे। इन्होंने किसी उपाधि को प्राप्त करने की कोई चेष्टा नहीं की, बल्कि उपाधियाँ स्वयं इनके पास आती थीं।

बाह्य उपकरणों के प्रति मिश्र जी की उपेक्षा केवल उपाधि तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि वेशभूषा के प्रति भी सर्वदा उदासीन रहते थे। एक बार कोचीन (वर्तमान केरल) के तत्कालीन महाराजा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को देखने के लिए आए और उन्होंने मालवीय जी से निवेदन किया कि मैं आपके विश्वविद्यालय के सबसे विद्वान् पण्डित का दर्शन करना चाहता हूँ। मालवीय जी महाराज ने पं० बालकृष्ण जी मिश्र को बुलाकर महाराजा को इनका दर्शन कराया। उस समय मिश्रजी अधोवस्त्र के साथ एक उत्तरीय (चादर) ओढ़े हुए थे। संयोगवश इस चादर में अनेक छिद्र थे जो स्पष्टतया दिखाई पड़ रहे थे। महाराजा की दृष्टि इस जीर्ण-शीर्ण चादर के छिद्रों पर पड़ी। मालवीय जी की तीक्ष्ण दृष्टि ने भी इस बात को भाँप लिया। तब उन्होंने महाराजा कोचीन से जो स्वयं भी संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान् थे—कहा कि :—

"अक्षराणि परीक्ष्यन्तां अम्बराडम्बरेण किम्।
शम्भुः अम्बरहीनोऽपि, सर्वज्ञत्वमुपेयिवान्॥"

इस श्लोक का भाव यह है कि किसी व्यक्ति की विद्वत्ता की परीक्षा करनी चाहिए। उसके अम्बर (वस्त्र) के आडम्बर (पाखण्ड) से क्या लेना—उसके वेश के चाकचिक्य से क्या प्रयोजन ? शिव जी सदा नग्न रहते हैं तथापि वे सर्वज्ञ की पदवी से विभूषित हैं।

कार्यकुशलता

पं० बालकृष्ण मिश्र बहुत बड़े व्यावहारिक व्यक्ति थे। वे अपने छात्रों के गुण-दोष जानते थे। अतः उचित व्यक्ति को ही उसके उपयुक्त काम करने के लिए आदेश देते थे। किसी छात्र को कोई आज्ञा प्रदान करते समय वे कहा करते थे कि भाई, तुम्हीं इस काम को अच्छी तरह से कर सकते हो इसलिए तुम्हें यह कार्य करने के लिए कह रहा हूँ। यह सुनकर छात्र प्रसन्न हो जाता था और बहुत मनोयोग से आनन्दपूर्वक उनकी आज्ञा का पालन करता था। इस प्रसंग में वे यह श्लोक प्रायः कहते थे :—

"अखिलेषु विहङ्गेषु, हन्त स्वच्छन्दचारिषु।
शुक ! पंजरबन्धस्ते, मधुराणां गिरां फलम्॥"

श्लोक का भाव है—जंगल में सब पक्षीगण स्वच्छन्दचारी होते हैं—जहाँ इच्छा होती है, वहाँ उड़ कर चले जाते हैं। परन्तु हे प्यारे सुग्गे, जानते हो तुमको पिंजड़े का यह कैदखाना क्योंकर मिला ? यह तो तुम्हारी मीठी बोली का ही फल है। इस अन्योक्ति से कार्यकुशल छात्रों की प्रशंसा ही होती थी। फलतः वे अपने कार्य-सम्पादन में विशेष दक्षता दिखलाने से नहीं चूकते थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गम्भीर आलोचना

सन् १९३१ ई० के वर्ष में मालवीय जी द्वितीय राउण्ड टेबुल कानफेरेन्स में लंदन जा रहे थे। उसी समारोह में पं० बालकृष्ण मिश्र भी आये हुए थे। वहीं पर इनका प्रथम दर्शन करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। सन् १९३० ई० में मेरे द्वारा सम्पादित भरत का नाट्यशास्त्र प्रकाशित हो चुका था और मिश्र जी ने उसे देखा था। अतः मिलते ही उन्होंने मेरी प्रशंसा करते हुए कहा कि आपके द्वारा सम्पादित नाट्यशास्त्र सुसम्पादित है। आपने उसकी जो विस्तृत विषय-सूची दी है वह दर्पण के समान उसके विषयों को प्रकाशित करती है। इसकी सहायता से नाट्यशास्त्र के जगड्वाल में किसी को भूलने-भटकने का अब डर नहीं रहा।

मिश्र जी में कारयित्री तथा भावयित्री दोनों प्रकार की प्रतिभाओं का मंजुल सामंजस्य था। कविता के अन्तस्तल में प्रवेश करके कवि के गम्भीर भावों को स्पष्ट करने का उन्हें अपूर्व कौशल प्राप्त था। इस भावयित्री प्रतिभा के प्रकाशन के लिए केवल एक ही श्लोक की मीसांसा देना पर्याप्त होगा।

मुजफ्फरपुर धर्मसमाज संस्कृत विद्यालय में पं० बच्चा झा अध्यक्ष के पद को सुशोभित कर रहे थे। पं० बालकृष्ण मिश्र वहाँ प्राध्यापक का कार्य करते थे। उन्हीं दिनों काशी के पण्डित-पत्र में पं० गंगाधर शास्त्री द्वारा निर्मित एक श्लोक प्रकाशित हुआ था जो इस प्रकार है—

"मृदुमृदङ्ग निनाद मनोहरे, ध्वनति वारिधरे चपला नटी।
वियति नृत्यति रङ्ग इवाम्बुदे, जवनिकामनुकुर्वति सम्प्रति॥"

इस श्लोक की आलोचना करते हुए कि बच्चा झा ने मिश्र जी से कहा—"इस श्लोक में एक ही पदार्थ वारिधर एक बार मृदंग बजाने वाले चेतन व्यक्ति के रूप में और दूसरी बार वही-वारिद—जवनिका रूपी अचेतन के रूप में वर्णित है। अतः यहाँ पर पदार्थाशुद्धि है।" इस पर मिश्र जी ने तुरन्त उन्हें टोक कर कहा "गुरु जी! इसमें कोई दोष नहीं दिखाई पड़ता, क्योंकि वारि को धारण करने वाले मेघ (वारिधर) की स्थिति आकाश में ऊपर होती है और वारि (जल) को देने वाले मेघ (वारिद) की स्थिति नीचे होती है। अतः दोनों में स्थान की भिन्नता है। इसके अतिरिक्त साहित्यशास्त्र की दृष्टि से शब्द और अर्थ में तादात्म्य संबंध होता है। अतः 'वारिधर' शब्द तथा 'वारिद' शब्द के द्वारा द्योतित मेघ दो भिन्न-भिन्न हैं। वे एक ही अर्थ को द्योतित नहीं करते। अतः यहाँ पदार्थ की अशुद्धि नहीं है।

इस आलोचना की तारतम्य विवेचना में लेखक की दृष्टि में पण्डित बालकृष्ण मिश्र जी का ही पक्ष विशेष रूपेण प्रबल प्रतीत होता है। इस विषय में यह प्राचीन पद्य उद्धृत करना समीचीन होगा—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्जित बधिरीकृत जगत्
किमपि कृतं न घनेन।
ईयती चातक-चञ्चुपुटी
साऽपि भृता न जलेन॥

आशय है कि अपने गर्जन से संसार को बहिरा बनाने वाले मेघ ने भला कुछ किया ? नहीं, कुछ नहीं किया। चातक की चोंच के भीतर का छेद कितना छोटा होता है, परन्तु उस छोटे स्थान को भी मेघ ने जल से नहीं भर दिया। थोड़ा पानी बरसा कर कम से कम उसे तो भर दिया होता, परन्तु गर्जन-तर्जनकारी मेघ से इतना भी नहीं हो सका। यह भी कैसे हो सके ? भला गर्जन तर्जन करने वाला मेघ कभी बरसता भी है ? नहीं, कभी नहीं। हिन्दी की इस कहावत—**जो गरजता, सो बरसता नहीं**—का यही तो गूढ़ तात्पर्य है, गरजने वाला मेघ क्या कभी बरसता है ? गरजने वाला मेघ बरसने वाले मेघ से भिन्न जो होता है। इस युक्ति-परम्परा पर दृष्टिपात करने से पण्डित बालकृष्ण जी की आलोचना ही युक्ततर प्रतीत होती है।

पं० बालकृष्ण मिश्र एक तर्ककर्कश शुष्क नैयायिक नहीं थे, प्रत्युत सरस तथा कोमलकान्त पदावली के रचयिता सहृदय कवि थे। मिश्र जी का यह कृष्ण स्तुति-परक श्लोक कितना सरस तथा रसपेशल है। पढ़ते ही पदशय्या का चमत्कार प्रकट होने लगता है।

"गुंजन् मिलिन्दमुदितं, चपलाश्लेषाति मंजुलं किमपि।
अधिकालिन्दीकुञ्जं, मरकतपुंजं चिरं जयति॥"

वेदान्त दर्शनपरक यह गीति कितनी सुन्दर तथा सरस है[1]—

यदि भववारिधिपारमुपैतुं वाञ्छसि तर्हि विचारय कोऽहम्
अविचारितरमणीयतया वसुसुतवनितादिषु सन्त्यजमोहम्।
उपनिषदनुसारेण समातनु सन्ततमात्मगतोहापोहम्
यो जनयति, पालयति, हरति, परमात्माकाशप्रभृति सन्दोहम्॥
बालकृष्णकविकथितमुरी कुरु, गुरुवचनेन विभावय सोऽहम्।

आदर्श-रानी-चन्द्रावती-श्यामा महाविद्यालय,

विद्या की राजधानी काशी में कचौड़ीगली स्थित आदर्श-रानी-चन्द्रावती-श्यामा-महाविद्यालय दार्शनिक शिक्षा के लिए सु-प्रसिद्ध है।

क्लिष्ट न्याय एवं वेदान्त के चूडान्त ग्रन्थों का यहाँ अध्ययनाध्यापन होता आ रहा है।

---

१. पं० बालकृष्ण मिश्र का यह संस्मरण उनके सुयोग्य शिष्य पं० बदरीनाथ शुक्ल (आजकल) कुलपति, संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के एक लेख के आधार पर लिखा गया है जिसके लिए लेखक उनका कृतज्ञ है। द्रष्टव्य "सारस्वती सुषमा" वर्ष ३३, अंक ३-४ सन् १९७८ ई० में प्रकाशित लेख।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह महाविद्यालय श्यामा-मन्दिर ट्रस्ट्र की ओर से संचालित है। सन् १९२४ ई० में बिहार प्रदेश के अन्तर्गत विख्यात गढ़ बनैली राज की यशस्विनी रानी श्रीमती चन्द्रावती साहिबा ने उक्त ट्रस्ट्र की स्थापना की।

इस ट्रस्ट्र के अन्तर्गत भगवती श्यामा एवं अन्य देवविग्रहों के संस्थापन, उनके पूजनादि की व्यवस्था, श्यामा-महाविद्यालय, श्यामा-पुस्तकालय, श्यामा-दातव्य औषधालय, श्यामा छात्रावास, छात्रभोजन, दीन-अनाथ विधवाओं का संरक्षण आदि अनेक लोकोपकारी कार्य संचालित होते हैं।

रानी साहिबा ने सकल शास्त्रों, विशेषतः दर्शनशास्त्र को, जीवित रखने के उद्देश्य से २२ अगस्त सन् १९२९ ई० को महाविद्यालय की स्थापना की।

स्थापना के समय कुछ दिनों तक नैयायिक-प्रवर कारणत्वविवेक के रचयिता पं० श्री श्रीनन्दन झा जी ही एक मात्र अध्यापक थे। पश्चात् नैयायिकचक्रचूडामणि पण्डितप्रवर उग्रानन्द झा जी प्रधानाध्यापक हुए।

अनेक दशक तक इन्होंने न्याय, वेदान्त, मीमांसा तथा सांख्ययोग आदि दार्शनिक ग्रन्थों का अध्यापन किया।

सन् १९३२ से १९३४ तक की अवधि में इस महाविद्यालय ने अपनी अध्यापन-ख्याति के आधार पर व्याकरण, न्याय, मीमांसा, सांख्य-योग, ज्यौतिष, वेद तथा वेदान्त आदि विषयों की राजकीय-संस्कृत-महाविद्यालय, काशी (सम्प्रति सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय) से आचार्यान्त मान्यता प्राप्त की।

विगत ५० वर्षों में सैकड़ों उदीयमान छात्र तत्तद् विषयों की शिक्षा प्राप्त कर सुदूर प्रदेशों में उच्च पद पर आसीन हैं। जिनमें डॉ० जयमन्त मिश्र जी (कुलपति-दरभंगा संस्कृत-विश्वविद्यालय), पण्डितप्रवर श्री महानन्द ठाकुर (भू० पू० प्राध्यापक, सं० कॉलेज कलकत्ता), पं० श्री विष्णुदेव झा (प्राचार्य सं० विद्यापीठ बौंसी), पं० श्री शोभित मिश्र जी (बरौदा), पं० श्री वेदानन्द झा (प्राचार्य-दिल्ली), पं० श्री रामचन्द्र झा -(सं० निरीक्षक सं० पाठशालाएँ) आदि उल्लेखनीय हैं।

एवमेव उदासीन-संस्कृत-महाविद्यालय के प्राचार्य पं० श्री पुरुषोत्तम त्रिपाठी जी, वेद-वेदाङ्ग महाविद्यालय मुमुक्षुभवन-अस्सी के प्राचार्य पं० श्री राधेश्याम मिश्र जी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राध्यापक पं० श्री शिवदत्त चतुर्वेदी प्रभृति यहीं के छात्र रहे हैं।

इनके अतिरिक्त अनेक साधु-संन्यासी, महात्मागण वेदान्त की शिक्षा प्राप्त कर मठों का सञ्चालन करते हुए ब्रह्मविद्या के प्रचार में संलग्न हैं।

किम्बहुना—शिवावतार षट्शास्त्री दार्शनिक सार्वभौम पण्डितप्रवर बालबोध मिश्रजी, अपर बाणभट्ट संस्कृतव्याख्यान दिवाकर पञ्चाचार्य पं० श्री भूपनारायण झा, ज्यौतिष-मार्तण्ड पं० श्री मधुकान्त झा, राष्ट्रपतिपुरस्कृत पण्डित गनेश झा, योगिराज साधकप्रवर पं० श्री गनेशदत्त झा, पं० श्री रामकृष्ण झा, पं० श्री रामसेवक झा (सम्प्रति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शन-विभागाध्यक्ष, का० सि० दरभंगा सं० वि० वि०), डॉ० नन्दकिशोर पाण्डेय, (सम्प्रति वेद-व्याख्याता दरभंगा सं० वि० वि०), आदि गण्यमान्य विद्वान् तत्तद् विषयों का अध्यापन कर यशस्वी हुए हैं।

इस महाविद्यालय का सञ्चालन १९३४ ई० में रानीसाहिबा के द्वारा स्थापित ट्रस्टडीड के अनुसार प्रान्तीय शासन के पूर्ण सहयोग से हो रहा है।

ट्रस्ट्री हैं—पं० श्री सतीशचन्द्र मिश्र (भू० पू० चीफ जस्टिस पटना हाईकोर्ट), पं० श्री रावणेश्वर मिश्र विधिवेत्ता (भू० पू० अध्यक्ष विधान परिषद् विहार पटना), पं० श्री जगदीश ठाकुर (सम्मानित जमीन्दार), पं० श्री वीरेन्द्रनाथ झा (शिक्षाविद्), एवं पं० श्री सच्चिदानन्द झा (सेक्रेटरी, सचिवालय पटना, भू० पू० अति० जिला जज)।

इस महाविद्यालय में अनेक वर्षों तक वार्षिकोत्सव के अवसर पर शास्त्रार्थ एवं सभा के आयोजन हुए जिनमें म० म० पं० गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी, पण्डितप्रवर देवनायकाचार्य, कविराज पं० सत्यनारायण शास्त्री, पं० श्री क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय (भू० पू० डाइरेक्टर सं० वि० वि०), पण्डित गौरीनाथ शास्त्री (कुलपति सम्पूर्णानन्द सं० वि० वि०), पण्डितराज राजेश्वर शास्त्री द्रविड, डॉ० श्री आदित्यनाथ झा (कुलपति सं०वि० वि०), पण्डितप्रवर दिवंगत कालीप्रसाद मिश्र जी (भू० पू० आचार्य सं० म० वि०, का० हि० वि० वि० , पण्डितप्रवर राजनारायण शास्त्री (भू० पू० प्राचार्य शास्त्रार्थ महाविद्यालय) आदि मूर्द्धन्य विद्वान् अध्यक्षता कर चुके हैं। सम्प्रति छात्रों की संख्या शताधिक है।

प्रधानाचार्य डा० नरेश झा के निर्देशन में वेदाध्यापक पं० श्री अभयचन्द्र झा, आधुनिक भाषाध्यापक श्री सत्यनारायण झा, व्याकरणाध्यापक पं० श्री बौआनन्द झा, ज्यौतिषाध्यापक पं० श्री उपेन्द्र झा तथा साहित्याध्यापक पं० श्री जीवनन्दन झा अध्यापन-कार्य में दत्तचित्त होकर संलग्न हैं।

भगवती जगज्जननी श्यामा की कृपा से उत्तरोत्तर विकासोन्मुख इस महाविद्यालय का कार्य सुचारुरूप से चल रहा है।

शुभम्भूयात्

मिश्र जी के सहयोगी

पण्डित बालबोध मिश्र

(आस्पद--मिश्र, उपाधि--वैयाकरण-शिरोमणि)

पं० बालबोध मिश्र का जन्म मुजफ्फरपुर (बिहार) जिले के कोकन नामक गाँव में सं० १९३४ वि० (सन् १८७७ ई०) में हुआ था। आपके पिता का नाम मुकुन्द मिश्र था। जब मिश्र जी केवल १२ वर्ष के थे तभी इनके पिता का देहावसान हो गया। अतः इनका लालन-पालन आपके चाचा ईश्वरीदत्त मिश्र ने किया। गाँव की पाठशाला में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् आपने पं० सिहेश्वर झा से व्याकरण शास्त्र का विधिवत् अध्ययन किया। परन्तु इस शास्त्र में प्रौढ़ पाण्डित्य प्राप्त करने के लिए आप काशी आये और पं० गंगाधर शास्त्री के चरणों में बैठकर विभिन्न

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रों का अध्ययन प्रारम्भ किया। आपने शास्त्री जी से व्याकरण, साहित्य और दर्शन शास्त्र का गम्भीर अध्ययन कर पाण्डित्य प्राप्त किया तथा गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, वाराणसी से व्याकरणाचार्य की उपाधि प्राप्त की। आपने म० म० पं० शिवकुमार शास्त्री के भी चरणों में बैठकर व्याकरण का पाठ पढ़ा। सुप्रसिद्ध नैयायिक पं० जीवनाथ मिश्र से न्यायशास्त्र का अध्ययन कर आपने इसी कालेज से न्यायाचार्य की सर्वप्रथम उपाधि प्राप्त की।

काशी में अपना अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् आप जैन साधुओं का अध्यापन करने लगे। आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर इन लोगों ने आपको 'पाटन' (जैनियों का एक प्रसिद्ध विद्या केन्द्र) आने को निमंत्रित किया। वहाँ कुछ दिनों तक अध्यापन करने के पश्चात् आप अलवर राज्य के तत्कालीन शिक्षाध्यक्ष पं० रामचन्द्र झा के विशेष आग्रह पर अलवर चले गये। पटना (बिहार) के सुप्रसिद्ध वैद्य पं० ब्रजविहारी चतुर्वेदी ने जब हाजीपुर (बिहार) में 'रत्नाकर विद्यालय' की स्थापना की तब इनके विशेष आग्रह पर आपने उस विद्यालय के प्रधानाध्यापक के पद को स्वीकार कर लिया। कुछ दिनों तक यहाँ प्रधानाध्यापक के पद पर कार्य करने पश्चात् जब मुजफ्फरपुर में धर्म समाज संस्कृत पाठशाला की स्थापना हुई तब आपकी वहाँ सांख्ययोग के अध्यापक-पद पर नियुक्ति हुई। आपने दो वर्षों तक इस स्थान पर अध्यापन कार्य किया। सन् १९१९ ई० में आप गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज बनारस में मीमांसा-वेदान्त की गद्दी पर आसीन हुए। यहाँ पर आपने मीमांसा और वेदान्त शास्त्र का विधिवत् अध्यापन किया। आपकी पाठन-पद्धति से आपके छात्र सर्वथा संतुष्ट थे। इस कालेज में लगातार २४ वर्षों तक अध्यापन करने के पश्चात् आपने सन् १९४६ ई० में अवकाश ग्रहण किया। सन् १९४८ ई० में काशी में ही आपका देहावसान हो गया।

पं० बालबोध मिश्र गंभीर विद्वान् होने के अतिरिक्त एक सफल अध्यापक भी थे। आपकी अध्यापन शैली निराली थी। आप मनोवैज्ञानिक पद्धति से छात्रों को पढ़ाया करते थे। आप इतने बड़े विद्या-व्यसनी थे कि रुग्णावस्था में भी आप स्वाध्याय से विरत नहीं हुए। आपकी शिष्य-परम्परा बहुत लम्बी है। आपके प्रधान शिष्यों के नाम निम्नलिखित है :—

(१) पं० रामचन्द्र झा एम० ए० जो बाद में अलवर के शिक्षाध्यक्ष के पद पर प्रतिष्ठित हुए।

(२) पं० भूपनारायण झा– इन्होंने गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस में अनेक वर्षों तक अध्यापन का कार्य किया।

(३) पं० ढुंढिराज शास्त्री, काशी।

(४) मुरलीधर झा –प्राध्यापक, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

(५) पं० रामचन्द्र झा––प्रधानाध्यापक राजकीय संस्कृत उच्च विद्यालय, गया (बिहार)। इन्होने 'विद्वत् विभूति' नामक एक ग्रन्थ लिखा है जिसमें संस्कृत के विद्वानों का वर्णन किया गया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६) पं० कृष्णेश्वर झा--मीमांसा शास्त्र के प्राध्यापक, धर्म समाज संस्कृत महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

झा जी संस्कृत में पद्य-रचना भी किया करते थे। संभवतः इन्होंने कोई काव्य नहीं लिखा है परन्तु पटना के वैद्यरत्न पं० ब्रजविहारी चतुर्वेदी के वंश और चरित के संबंध में जो सुललित पद्य लिखा है उसको यहाँ देने का लोभ मैं संवरण नहीं कर सकता :--

"अयं तेजोव्यूहः किमधिकसमूहः सुयशसां;
किमाधारः कान्तेः सहजनिजशान्तेरुत परः।
विचारस्यागारः किमुत भुवि सारः सुतपसां;
गुणानामाधारः किमु चिरमपारः सुखकरः॥"

इस प्रकार पं० बालबोध मिश्र व्याकरण, न्याय, मीमांसा आदि शास्त्रों के ज्ञाता होते हुए भी एक अच्छे कवि थे।

काशी में दोनों विद्वानों का बहुत दिनों तक सम्पर्क बना रहा। पण्डित बालकृष्ण मिश्र हिन्दूविश्वविद्यालय के अन्तर्गत संस्कृत महाविद्यालय के अध्यक्ष थे। उधर पण्डित बालबोध जी संस्कृत कालेज के प्राध्यापक थे। दोनों का स्वभाव बड़ा ही मधुर तथा सात्त्विक था। दोनों ही मिथिलाभिजन विद्वान् थे। तुलनात्मक अध्ययन से निश्चित रूपेण दोनों के वैशिष्ट्य का पूरा परिचय मिलता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० मधुसूदन झा

(आस्पद—झा, उपाधि- विद्यावाचस्पति)

भारतीय संस्कृति की मूलभित्ति है वेद-विज्ञान। प्राचीन काल के ऋषि-महर्षियों ने दिव्य ज्ञान से जिसे आलोकित किया था वह सुदीर्घ काल के गर्त में पड़कर दब गया था, विदेशीय समालोचकगण अज्ञानतावश वैदिक संस्कृति की विचिकित्सा करने लगे थे। ऐसे समय में एक ऐसे विद्वान् की आवश्यकता थी जो वैदिक साहित्य का विज्ञान-परक अर्थ कर सके। उस आवश्यकता की पूर्ति समीक्षा चक्रवर्ती पण्डितवरेण्य श्री मधुसूदन झा विद्यावाचस्पति ने की। जिस प्रकार 'विद्यापतिरिव विद्यापतिः' कहे जाते हैं वैसे ही पं० झा वस्तुतः विद्यावाचस्पति थे।

मुजफ्फरपुर (अब सीतामढ़ी) जिले में 'गाढ़ा' नामक ग्राम मिथिला में सुप्रसिद्ध है। यहाँ सत्कुलीन पं० वैद्यनाथ झा नामक एक सुप्रतिष्ठित विद्वान् व्यक्ति रहते थे। इन्हें वैक्रम सं० १९२३ (१८६६ ई०) की कृष्णाष्टमी तिथि को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। यही बालक कालान्तर में विद्यावाचस्पति हुआ—उन्हीं के शब्दों में उनका परिचय प्राप्त करें—

श्रीक्षेत्रादपि दक्षिणोऽधिमिथिलं यो भैरवादुत्तरः
पूर्वो यः खलु लक्ष्मणाख्यसरितो यो गौतमात् पश्चिमः।
तस्मिन् संवसथेऽग्रहीद् बहुविधे गाढाभिधे जन्म यः
सोऽयं श्रीमधुसूदनो व्यतनुताऽशौचे समीक्षामिमाम्॥

आपके पितृव्य पण्डित रामलोचन झा जयपुरनरेश स्व० रामसिंह जी के दरबार के आदरणीय सदस्य थे। दैवयोग से उन्हें कोई सन्तान नहीं थी, उन्होंने अपने भ्रातृव्य मधुसूदन को ही दत्तक पुत्र के रूप में स्वीकार किया। उपनयन आदि संस्कार कराने के पश्चात् बालक मधुसूदन को पं० रामलोचन जी अपने साथ जयपुर ले गये तथा तत्रत्य विद्वानों की देखरेख में पढ़ने की इनकी सारी व्यवस्था कर दी। कुशाग्र बुद्धि होने के कारण बालक मधुसूदन की प्रतिभा चमक उठी। ये अत्यन्त उत्साह के साथ विद्याध्ययन करने लगे। कभी-कभी जयपुरनरेन्द्र उस प्रतिभाशाली छात्र की परीक्षा भी लेते थे। महाराज उस छात्र से सर्वथा सन्तुष्ट थे। अध्ययन का क्रम अभी जारी ही था कि पं० रामलोचन जी का अकस्मात् देहान्त हो गया। अब तो बालक घबराया। किन्तु धैर्य धारण करके अपनी चाची के साथ १९३९ वि० सं० (१८८२ ई०) में स्वमातृभूमि 'गाढ़ा' वापस आ गया। वहाँ पर अध्ययन का कोई विशेष साधन न होने के कारण ये विद्याकेन्द्र काशी की ओर चल पड़े।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशी पहुँचकर आप दरभङ्गा संस्कृतविद्यालय में (जो उन दिनों प्रतिष्ठित विद्वानों से मण्डित था) महामहोपाध्याय शिवकुमार शास्त्री जी के निर्देशन में अध्ययन करने लगे। अनवरत परिश्रम तथा तीव्र ज्ञानपिपासा के कारण केवल आठ वर्षों के अध्ययन काल में ही न्याय, वेदान्त, मीमांसा आदि शास्त्रों के ऊपर असाधारण अधिकार कर लिया।

आपकी कीर्तिलता सर्वत्र प्रसृत होने लगी। आशुतोष भगवान् विश्वनाथ का भी इनके ऊपर वरदहस्त था, अतः इन्हें बढ़ते देर न लगी।

अध्ययनसम्पन्न होने के पश्चात् आप फिर अपनी जन्मभूमि मिथिला आये। संयोगवश १७ वर्ष की अल्प आयु में ही १९४० वि० (१८८३ ई०) में आपका विवाह अलवर के तत्कालीन राजगुरु पं० चञ्चल झा की स्वस्तिमती कन्या से हो गया।

अब तक इनकी ख्याति बहुत फैल चुकी थी। जयपुरनरेश ने आपकी विद्वत्ता का परिचय प्राप्त कर आपको आग्रहपूर्वक जयपुर बुलवाया और ख्यातिप्राप्त अपने 'महाराजा कालेज' में १९५१ सं० (१८९४ ई०) में प्राध्यापक नियुक्त किया। पश्चात् ये जयपुर के राजकीय पुस्तकालय (मौजमन्दिर के नाम से प्रख्यात) के प्रमुख प्रबन्धक तथा धर्म-सभा के प्रधान अधिकारी भी हुए। पूरे राज्य में इनका अत्यधिक प्रभाव था। राजा-प्रजा दोनों से ये समान रूप से समादृत थे। अब तक इनकी ख्याति समग्र भारतवर्ष में फैल चुकी थी। जयपुरनरेन्द्र प्रमुख राजकीय कार्यों में, चाहे वह धार्मिक हो अथवा राजनैतिक, इनकी राय अवश्य लिया करते थे। सारा राज-काज इनके ही परामर्श से चलता था। सन् १९०२ ई० में सम्राट् एडवर्ड सप्तम के राज्याभिषेक के अवसर पर जयपुरनरेश आमन्त्रित होकर जब विलायत गये तो विद्यावाचस्पति जी भी उनके साथ गये। वहाँ धुरन्धर विदेशी विद्वानों के बीच वेद-विज्ञान पर धारा-प्रवाह संस्कृत में इन्होंने व्याख्यान दिया जिसे सुनकर श्री मेकडोनेल्ड, वेण्डेल और टामस आदि विद्वान् अत्यधिक प्रभावित हुए। वहाँ सम्राट् की ओर से इन्हें एक स्वर्णपदक भी मिला।

विदेश यात्रा—सन् १९०२ ई० ब्रिटेन के राजा सप्तम एडवर्ड के राज्याभिषेक के अवसर पर भारतीय नरेशों को भी उसमें सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रण दिया गया था। इस उत्सव में जयपुर के महाराजा माधव सिंह भी सम्मिलित हुए थे। परन्तु राजा साहब इतने कट्टर धर्मभीरु तथा सनातनी थे कि स्पर्शास्पर्श के विचार के कारण लन्दन में किसी होटल में ठहरना उनके लिए सम्भव नहीं था। अतः उन्होंने अपनी इस ब्रिटेन-यात्रा के लिए एक पूरा निजी जहाज ही किराये पर ले लिया। इस जहाज में काशी से गंगाजल और गंगा की मिट्टी भी पवित्रता के लिए ले जायी गयी। इस यात्रा में इन्होंने अपने राजपण्डित पं० मधुसूदन झा को भी साथ ले लिया था। यह जहाज डोभर के बन्दरगाह में न ठहर कर समुद्र के तट से कुछ दूर जलमध्य में ही रुका था।

इस अवसर पर पण्डित मधुसूदन झा ने पाश्चात्य विद्वानों के समक्ष बड़ा ही सारगर्भित भाषण दिया था। उन दिनों आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में डा० मैकडानल,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में डा० वैण्डल संस्कृत के प्रोफेसर थे। डा० टामस उन दिनों इण्डिया आफिस लाइब्रेरी के डाइरेक्टर थे। इन प्रकाण्ड पाश्चात्य पण्डितों के समक्ष पं० मधुसूदनजी ने संस्कृत में जो भाषण दिया उसका शीर्षक था – 'अति नूतनं नहि नहि अति प्रत्नं रहस्यम्'।[1] इस व्याख्यान से वे विद्वान् अत्यन्त प्रभावित हुए थे। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में पश्चिमी विद्वानों द्वारा झा जी का जो सम्मान किया गया था इसका समाचार इङ्गलैण्ड के 'वेस्टर्न गजट' के २६ जुलाई सन् १६०२ ई० में तथा 'दि सन' (The Sun) नामक पत्र के २३ जुलाई १६०२ ई० के अंक में प्रकाशित हुआ था।

पं० मधुसूदन झा ने राज्याभिषेक के इस महोत्सव में सम्राट् सप्तम एडवर्ड की संस्तुति श्लोकबद्ध पद्यों में की थी जिससे प्रसन्न होकर सम्राट् ने एक स्वर्णपदक तथा प्रशस्ति (सर्टिफिकेट ऑफ ऑनर) प्रदान की थी।

इस प्रकार समग्र जीवन आप वेद-विज्ञान की व्याख्या करने में ही लगे रहे। आपने वेद के मन्त्रों द्वारा आधुनिक विज्ञान-पद्धति को प्रमाणित करके प्रयोग किया जो कि खरा उतरा। लगभग पाँच दशक तक अनवरत अनुसन्धान कार्य के फलस्वरूप सैकड़ों ग्रन्थों की रचना इन्होंने की। अनेक विद्वत्सभाओं में आपने वैदिक मन्त्रों की विज्ञानपरक व्याख्या कर विद्वानों को चमत्कृत कर दिया।

श्री भारतधर्म महामण्डल के समस्त प्रमुख आयोजनों में इनका योगदान रहता था। इनके विद्वत्तापूर्ण भाषण को सुनकर पण्डित भी विस्मित हो जाया करते थे। 'केचन पण्डितपण्डिता:'। सम्माननीय इन विद्वद्वर को श्रीभारतधर्ममहामण्डल ने 'विद्यावाचस्पति' तथा 'महामहोपदेश' की उपाधियाँ प्रदान कीं। इनकी वक्तृत्व शैली तथा भाषणपटुता अत्यन्त श्लाघनीय थी। किसी विषय की मीमांसा करने में ये सदा अग्रणी रहते थे। ओजस्विता क्षीण नहीं होती थी। वेद-विज्ञान एवं धर्मशास्त्र के तो ये विश्वकोश ही थे। आज भी इनके ग्रन्थ नित नूतन तथ्य प्रस्तुत कर रहे हैं। इनकी कृतियाँ ही विद्वत्ता की साक्षी दे रही हैं।

दुर्दैवयोगात् सं० १९६६ वै० (१९३९ ई०) की भाद्रकृष्ण पूर्णिमा को आपने अपने पाञ्चभौतिक शरीर का परित्याग कर इस धरातल को सूना कर दिया।

आपकी तेजस्वी शिष्यमण्डली

(१) महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, प्राप्तावकाश डायरेक्टर, संस्कृत स्टडीज, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, एवं संस्कृत कालेज, जयपुर के मान्य अध्यापकगण, (२) राजगुरु पण्डित चन्द्रदत्त चौधरी, व्याकरणाचार्य, (३) पण्डित सूर्यनारायण जी आचार्य, (४) पण्डित कन्हैयालाल जी न्यायाचार्य, (५) पण्डित मदनलाल जी व्याकरणाचार्य, (६) पण्डित जयचन्द्र झा वेदतीर्थ, (७) पण्डित मोतीलाल

१. यह व्याख्यान बाद में जयपुर की प्रसिद्ध पत्रिका 'संस्कृत रत्नाकर' में पूर्ण रूप से प्रकाशित हुआ था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्री—(शतपथ सम्पादक तथा गीताविज्ञानभाष्य के कर्ता)। (८) पण्डित आद्यादत्त ठाकुर एम. ए. (प्राक्षावकाश लखनऊ, विश्वविद्यालय)।

आपकी कृतियाँ

ऊपर निर्दिष्ट है कि आपने शताधिक मूल्यवान् ग्रन्थों की रचना, सम्पादन, परिष्करण-विवेचन, व्याख्यान किये हैं, उन सबका विवरण देना संभव नहीं है—फिर भी उनकी जो रचनाएँ अत्यन्त विख्यात हैं उनकी नामावलि मात्र प्रस्तुत की जा रही है—

(१) जगद्गुरुवैभव, (२) इन्द्रविजय, (३) सदसद्वाद, (४) व्योमवाद, (५) अपरवाद, (६) आवरणवाद, (७) अम्भोवाद, (८) अहोरात्रवाद, (९) संशयतदुच्छेदवाद, (१०) दशवादरहस्य, (११) गीताविज्ञान, (१२) शारीरक विमर्श, (१३) विज्ञानविद्युत्, (१४) ब्रह्मविज्ञान प्रवेशिका, (१५) ब्रह्मविज्ञान, (१६) ब्रह्मचतुष्पदी, (१७) ब्रह्मसमन्वय, (१८) देवतानिवित्। इनके अतिरिक्त १२ ग्रन्थ मुख्य रूप से और प्रकाशित हैं—अमुद्रित ग्रन्थों की सूची ४७ है, अनेक ग्रन्थ अब प्रकाशित हुए होंगे। कुछ अप्राप्त ग्रन्थों का अनुसन्धानक्रम चल रहा है।

विद्यावाचस्पति जो की धर्मशास्त्रीय रचना आशौचपञ्जिका से उनके जीवन से सम्बन्धित दो श्लोकों को यहाँ उद्धृत किया जाता है जिनमें उनके जीवन की महनीय घटनाओं का उल्लेख है।

तद्यथा—

(१)

आद्या दक्षिणकालिका भगवती श्यामा कुले देवता
स्वाम्नायोऽपि च दक्षिणः शिवपथः स्मार्तोऽस्ति यस्यान्वये।
दीक्षा यस्य शिवागमे शिवतमे धर्म्मे च निष्ठाधिका
सोऽयं श्री मधुसूदनो व्यतनुताशौचे समीक्षामिमाम्॥

(२)

राजद्वारमुपागतो जयपुरे वर्षे चतुर्विंशके
यः संमानमवाप्य राजभवने मत्स्यप्रदेशप्रभोः।
श्री मन्माधवसिंहभूपतिमणे धर्मोपदेष्टाऽभवत्
सोऽयं श्री मधुसूदनो व्यतनुताशौचे समीक्षामिमाम्॥

छन्दोनिरुक्ति— कतिपय ग्रन्थों का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत है। मधुसूदन झाजी ने छन्दःशास्त्र के विज्ञान के ऊपर बड़ा ही मार्मिक विवेचन किया है। **छन्दोनिरुक्ति** अथवा **छन्दसमीक्षा** के नाम से यह विवेचन निर्णय सागर प्रेस से प्रकाशित 'पिङ्गल छन्दःशास्त्र' नामक ग्रन्थ की भूमिका के रूप में प्रकाशित किया गया है (१९३८ ई० बम्बई)। झाजी ने ब्राह्मण ग्रन्थों में छन्द के स्वरूप, प्रकार, प्रतिष्ठा आदि का बड़े विस्तार से उदाहरणप्रचुर निरूपण किया है। छन्दोवाद, छन्दोविभक्ति-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाद, वैदिकान्यत्ववाद, छन्दोलक्षणवाद, समासवाद, छन्दःपदवाद, छन्दःपदसंहिता-वाद, यतिदोषवाद, पञ्चाङ्गतावाद, छन्दो-विज्ञानसार्थकतावाद आदि इस विवेचन के अवान्तर प्रकरण हैं जिनके नाम से विषय का किञ्चित् संकेत प्राप्त किया जा सकता है। पण्डित मधुसूदनजी ने छन्द का सामान्य शास्त्रीय विवेचन न करके उसे वैदिक अध्यात्मशास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित कर अपनी वैदिक विद्वत्ता तथा अध्यात्म-रहस्य-वादिता का पूर्ण संकेत इस ग्रन्थ में किया है। तथ्य तो यह है कि झाजी की प्रतिभा विषय के बाह्य की ओर अग्रसर न होकर उसके अन्तराल में प्रवेश करती है और ब्राह्मण ग्रन्थों की सहायता तथा प्रामाण्य पर नये-नये तत्त्वों का उन्मीलन करती है। **छन्दोनिरुक्ति** इस कथन का स्वारस्य प्रकट करती है। इसके कई स्थानों पर इन्होंने **वेदसमीक्षा** तथा **धर्मसमीक्षा** नामक अपनी रचनाओं का संकेत किया है जिसमें वेदसमीक्षा का निर्माण तो इत पूर्व हो चुका था और धर्मसमीक्षा का प्रणयन भविष्य में किये जाने का संकेत है। इन दोनों ग्रन्थों में तत्तत् विषयों का वैशद्येन निरूपण करने की बात कही गई है।

महर्षिकुल वैभव—वेद में ऋषितत्त्व तथा सृष्टितत्त्व की विवेचना के निमित्त झाजी का यह ग्रन्थ विषय की दृष्टि से नितान्त अपूर्व एवं श्लाघनीय है। इसके दो खण्ड हैं जिनमें प्रथम खण्ड की संस्कृत व्याख्या तथा सुबोध हिन्दी अनुवाद म० म० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने किया है।[1] व्याख्या के आरम्भ में चतुर्वेदीजी ने एक प्रमेय-बहुल लम्बी प्रस्तावना लिखी है जिसमें अपने गुरु मधुसूदन झाजी द्वारा उद्घाटित 'वेदविज्ञान' के तथ्यों का दृष्टान्तपुरःसर एक विशिष्ट विश्लेषण किया है। इसके अनुशीलन से वेदविज्ञान के नवीन स्वरूप का यथार्थ परिचय सरल सुबोध शैली में पाठकों को मिल जाता है। मूल ग्रन्थ सूत्रशैली में निबद्ध होने से व्याख्या सापेक्ष है और चतुर्वेदीजी की यह व्याख्या बड़ी ही परिष्कारक, मूलार्थ की प्रतिपादिका तथा दृष्टान्तसमन्वित होने से आवर्जिका है।

'ऋषि' के विषय में झाजी का मत है—वे प्राणरूप हैं तथा आकाश में रोच-मान नक्षत्र रूप हैं। इसीलिए ये नक्षत्र सप्तर्षि कहलाते हैं। 'ऋषि' को वे मन्त्रों का द्रष्टा तथा कर्ता दोनों मानते हैं। ईश्वरीय अनुग्रह के रूप में दिव्य ज्योतिर्मय वेद का ज्ञान ऋषियों को ईश्वर द्वारा ही प्राप्त अवश्य होता है, वही ऋषियों द्वारा उन ऋषियों के शब्दों में प्रकाशित होकर हम लोगों को प्राप्त होता है। अतः इस दृष्टि से वेद पौरुषेय ही सिद्ध होता है। ऋषि लोग मन्त्रों के द्रष्टा भी हैं तथा कर्ता भी।

द्वादश ग्रन्थ—झाजी ने ऋग्वेद के प्रसिद्ध 'नासदीय सूक्त' का गम्भीर अनु-शीलन कर उसमें प्रतिपादित दश वादों की सत्ता को स्वतन्त्र सिद्धान्त के रूप में ग्रहण किया है और प्रत्येक के ऊपर इन स्वतन्त्र ग्रन्थों का प्रणयन किया है—(१) सदसद्-

१. प्रकाशक – राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर, १९५६ ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वादः[1], (२) रजोवादः, (३) व्योमवादः, (४) अपरवादः, (५) आवरणवादः, (६) अम्भोवादः, (७) अमृतमृत्युवादः, (८) अहोरात्रवादः, (९) दैववादः तथा (१०) संशयोच्छेदवादः। प्राचीनकाल में जगत् के मूलतत्त्व के सम्बन्ध में ये दश मत प्रचलित थे। देववर्ग में कोई 'सत्' को जगत् का मूल तत्त्व मानता था, तो कोई 'असत्' को। कोई रज (अर्थात् सूक्ष्म कणों) को ही जगत् का मूल तत्त्व मानते थे, तो कोई 'व्योम' अर्थात् आकाश को ही। झाजी ने इन दश मतों के प्रतिपादन के लिए दस स्वतन्त्र छोटे-मोटे ग्रन्थों का निर्माण किया था। विषय के विस्तृत तथा प्रकीर्ण हो जाने के कारण इन्होंने **दशवाद रहस्य**' नामक एक अन्य ग्रन्थ ही बनाया जिसमें पूर्वोक्त दसों मतों का सारांश संक्षेप मे एकत्र प्रस्तुत किया गया है। पूर्वोक्त दस ग्रन्थों के आरम्भ में '**विज्ञानेतिवृत्तवाद**' ग्रन्थ की तथा अन्त में '**सिद्धान्त-वाद**' नामक मूल प्रमेयों के एकत्र संग्रहात्मक ग्रन्थ की रचना द्वादश ग्रन्थों के समुच्चय को पूर्ण करती है। संक्षेप में विद्यावाचस्पतिजी के विकीर्ण सिद्धान्तों को एकत्र प्रस्तुत करने के कारण आलोचकों की दृष्टि में 'सिद्धान्तवाद' उनका एक मौलिक महनीय ग्रन्थरत्न है।

'ब्रह्मसिद्धान्त' नाम से इसी ग्रन्थ का प्रकाशन गिरिधर शर्मा चतुर्वेदीजी की 'सिद्धान्त प्रकाशिका' व्याख्या के साथ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के सम्पादकत्व में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने १९६१ ई० में नेपाल राज्य संस्कृत ग्रन्थमाला' में किया है। ग्रन्थ पर्याप्तरूपेण विस्तृत है और झाजी के वेदविज्ञान-विषयक सब मन्तव्यों का एकत्र निचोड़ है—सारांश है। ग्रन्थकार ने आरम्भ में ही प्रतिज्ञा की है—

वैदिकविचारकानन-कान्तारेऽस्मिन् प्रवेष्टुकामानाम्।
सुखतः प्रवेशिकेयं सरला पद्या विरच्यते श्रमतः॥

वैदिक विचाररूपी कण्टकाकीर्ण कान्तार में प्रवेश चाहने वाले व्यक्तियों के लिए यह सुगम मार्ग है—सरल-सुखद मार्ग है और सचमुच यह ग्रन्थ ऐसी ही सरल पद्य का निदर्शक है।

झाजी का वैदिक विज्ञान

जब पण्डित मधुसूदन झा काशी में अध्ययन कर रहे थे तभी इनकी रुचि वेदार्थ के रहस्य को जानने की हुई। इनके गुरु पण्डित शिवकुमार शास्त्री ने अपने शिष्य की प्रतिभा को पहिचान कर इन्हें शतपथ ब्राह्मण की प्रथम कुण्डिका का अध्यापन किया और आशीर्वाद दिया कि "चूँकि तुमने गुरुमुख से वेद के थोड़े अंश को पढ़ लिया है और अब तुम्हारी साम्प्रदायिक विद्या फलवती होगी। अब तुम जाकर वैदिक विज्ञान में अनुसन्धान का कार्य करो।" इस प्रकार अपने गुरु का आशीर्वाद प्राप्त कर झाजी

१. इसका प्रकाशन पण्डित आद्यादत्त ठक्कुर ने लखनऊ से किया है, १९२६ ई०, लखनऊ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक विज्ञान के रहस्यों के उद्घाटन करने में जुट गये और लगातार चालीस वर्षों तक इस शोध को करते रहे।

ज्ञान और विज्ञान के स्वरूप के विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। झाजी की मान्यता इन दोनों के स्वरूप के विषय में इस प्रकार है। दृष्टि के सामने वाले विशिष्ट पदार्थों के समान रूप से मूलतः वर्तमान रहने वाले किसी एक तत्त्व का अनुभव ज्ञान कहलाता है। दूसरी ओर मूल में एक स्थायी नित्य तत्त्व मानकर उसी की अनन्त पदार्थों के रूप में परिणति का वर्णन विज्ञान कहा जाता है। वेद ज्ञान-विज्ञान दोनों का आधारभूत कोष है। वेद में ज्ञान की चर्चा बहुत है। परन्तु उसके भीतर विद्यमान विज्ञान की ओर प्राचीन विद्वानों की दृष्टि बहुत कम गयी है। वैदिक विज्ञान के जानने की कुञ्जी मीमांसकों के द्वारा उपेक्षित उपपत्ति या अर्थवाद है जो ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों तथा उपनिषदों में उपलब्ध होती है। शतपथ ब्राह्मण का अधिकांश भाग इन्हीं उपपत्तियों से परिपूर्ण है। झाजी ने इन्हीं उपपत्तियों के रहस्यों के समझने का स्तुत्य प्रयास किया है। इन्हीं उपपत्तियों के अनुशीलन करने से इनको वैदिक परिभाषाएँ प्राप्त हुईं जिनकी सहायता से वैदिक विज्ञान के रहस्य का उद्घाटन करने में ये समर्थ हो सके। झाजी ने अपने वैदिक विज्ञान के सिद्धान्त का अधोलिखित श्लोक में वर्णन किया है :

"यत्र प्रदर्श्याः विषयाः पुरातनाः
यत्र प्रकारोऽभिनवः प्रदर्शने।
यत्र प्रमाणं श्रुतयः सयुक्तयः,
तद् ब्रह्मविज्ञानमिदं विमृश्यताम्॥"

अर्थात् वेद में निर्दिष्ट पुराने विषयों का यहाँ निदर्शन किया गया है। परन्तु इस प्रदर्शन का प्रकार नया है—शैली नूतन है। यहाँ श्रुति एवं युक्ति दोनों को प्रमाण माना गया है। 'ब्रह्मविज्ञान' का यही स्वरूप है। यही इसका वैशिष्ट्य है।

झाजी बड़ी विनम्रता से वैदिक-विज्ञान के सम्बन्ध में कहा करते थे कि "मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह नवीन नहीं है। वेदों में विज्ञान के सभी रहस्य निहित हैं। मैंने तो केवल इन रहस्यों का उद्घाटन मात्र किया है।" यदि कोई इनकी प्रशंसा में वैदिक विज्ञान का नया सम्प्रदाय प्रवर्तित करने वाला कहता था तो ये बहुत क्रुद्ध होते थे और अपनी प्रशंसा सुनना नहीं चाहते थे।

झाजी का सिद्धान्त विवेचन

श्री झाजी ने अपने **ब्रह्मसिद्धान्त** नामक प्रमेयबहुल ग्रन्थ में अपने दार्शनिक विचारों का एक महत्त्वपूर्ण समन्वित विवेचन प्रस्तुत किया है। इन्होंने जगत् का मूल-तत्त्व ब्रह्म को माना है और एक त्रिगुणात्मिका शक्ति भी मानी है, किन्तु शक्ति की स्वतन्त्र सत्ता नहीं मानी गयी है। यह अनिर्वचनीय है—न सत् है और न असत्। इसलिए 'ब्रह्माद्वैतवाद' इन्होंने प्रतिष्ठित किया। झाजी ने 'रसो वै सः' इस श्रुति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के आधार पर ब्रह्म का नाम 'रस' और उसकी शक्ति का 'बल' रखा है। बल, शक्ति और क्रिया—ये तीनों ही शब्द अवस्थाभेद से एक ही तत्त्व के वाचक हैं। प्रसुप्त दशा में उसका नाम होता है 'बल', कार्योन्मुख होने पर 'शक्ति' और कार्यरूप में परिणत होने पर वह 'क्रिया' कहलाता है। इन विभिन्न नामों का स्वारस्य उनकी व्युत्पत्ति द्वारा दिखलाया गया है। जगत् के समस्त पदार्थों में स्थिरता और गति दोनों प्रतीत होती है। फलतः जगत् के मूलभूत तत्त्व को स्थिर और गतिमान् दोनों ही होना चाहिए। रस सदा एकरस होने से स्थिर है और बल प्रतिक्षण परिवर्तित होता रहता है। फलतः इन दोनों की समष्टि को जगत् का मूलतत्त्व मानना युक्तिसंगत प्रतीत होता है। रस तथा बल में पाँच प्रकार का सम्बन्ध माना गया है।

बल प्रकट होकर अपरिच्छिन्न रस को परिच्छिन्न बना देता है। परिच्छेद या सीमाबन्ध दिखा देने के कारण ही प्रधान बल का नाम 'माया' है। परिच्छिन्न रूप में दिखाई पड़ने पर भी एक-एक पृथक्-पृथक् रूप बन जाता है जिसे संस्था या छन्द नाम से भी वैदिक परिभाषा में कहा गया है। बलरूपा यह माया स्वतन्त्र नहीं है, प्रत्युत रस के आधार पर ही रहकर वह सब कुछ करती है। ऐश्वर्य, धर्म, यश, ज्ञान, वैराग्य तथा श्री—इस षट्क का नाम 'भग' है। ये सब धर्म निधर्मक रस में मायारूप बल के कारण उत्पन्न होते हैं। इसलिए वह रस भगवान् शब्द के द्वारा वाच्य होता है। माया के द्वारा परिच्छिन्न होने के कारण रस का नाम पुरुष हो जाता है। इसके ही क्षर, अक्षर, अव्यय नाम से भिन्न-भिन्न रूप होते हैं। अक्षर पुरुष तक ही मानव बुद्धि का कुछ व्यापार होता है। इसके आगे अव्यय, परात्पर या निर्विशेष पुरुष का स्पर्श बुद्धि नहीं कर सकती। उनका तो संकेतमात्र ही बुद्धि में आता है। "अस्तीत्येवोपलब्धव्यः" (श्रुति) 'वह है'—इतना ही शब्द प्रमाण या अनुमान के द्वारा बुद्धि जान सकती है। वहाँ बुद्धि द्वारा कोई विशेष विवेचन सम्भव नहीं है। इसीलिए अक्षर पुरुष को 'सेतु' कहा गया है जिस पर आरूढ़ होकर हम आगे के अज्ञेय तत्त्वों का आभास पाते हैं और इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि सबका मूलतत्त्व एक है और वह निधर्मक निर्विशेष है :

रहस्यं अक्षरज्ञानं स्याच्च यस्मात् प्रतिष्ठितम्।
तस्मात् तत्परविज्ञानमिहोपनिषदुच्यते॥
सेयमुक्ता परा विद्या तया विज्ञायतेऽक्षरम्।
निष्णातः परविद्यायामक्षरं ज्ञातुमर्हति॥

पण्डित मधुसूदन झा की अगाध विद्वत्ता की प्रशंसा में श्री खिस्तेजी ने निम्नांकित श्लोक लिखा है जो यथार्थ ज्ञात होता है :

विख्याताः बुधमण्डले सुरगुरुप्रख्यप्रतिष्ठाजुषः,
प्रौढाऽनेकनिबन्धनिर्मितिभवत्कीर्तिप्रकर्षोज्ज्वलाः।
वेदज्ञप्रवराः नृपाश्रयलसत्सौभाग्यसन्दीपिता,
ओझा श्रीमधुसूदनाख्यविबुधाः राजन्ति विद्वद्वराः॥"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित परमेश्वर झा

(आस्पद—झा. उपाधि—महामहोपाध्याय)

कारयित्री और भावयित्री उभय प्रतिभाओं के धनी वैयाकरणकेशरी महामहोपाध्याय पं० परमेश्वर झा का जन्म मिथिलामहीमण्डल के दरभंगा जिले के तरुवनी (तरौनी) ग्राम में वलियासय सकुरी मूलक काश्यप गोत्रीय वैयाकरण पं० पूर्णनाथ झा के घर वै० सं० १९१३ पौष शुक्ल प्रतिपद् (सन् १८५३ ई०) में हुआ था। इनके पितामह वैयाकरण पण्डित भोलानाथ झा तत्कालीन महाराज छत्रसिंह (दरभंगा) के सभापण्डित थे।

महर्षि पाणिनि के समान ये व्याकरण और काव्य के उभयविद्य थे। ये 'काव्यं विना व्याकरणं न राजते न काव्यमव्याकरणं विराजते' इसको भलीभाँति जानते थे। अतः ठीक ही कहा गया है कि--

आदौ व्याकरणं काव्यमनुयक्षसमागमम्।

श्री झा का अक्षरारम्भ संस्कार 'ब्रह्मवर्चसकामस्य कुर्याद्विप्रस्य पञ्चमे' इस लोकाचार और कुलाचार के अनुसार पाँच वर्ष में ही किया गया था। बाल्यावस्था से ही ये कुशाग्रबुद्धि थे। इन्होंने विद्यार्थी जीवन के उषःकाल में पं० चिरञ्जीव मिश्र से व्याकरण का अध्ययन किया था। आर्थिक दुःस्थिति के कारण आपकी प्रतिभा मन्द न पड़ जाय अतः छात्रवृत्ति की व्यवस्था हो गयी थी। फलस्वरूप अल्पकाल में ही आपने व्याकरण और काव्य का विधिवत् अध्ययन कर लिया था। इतने से ही ये सन्तुष्ट नहीं हुए, क्योंकि 'श्रेयसि केन तृप्यते' यह स्वाभाविक नियम है। उच्च अध्ययन के लिए मिथिला के निवासियों का प्राचीन काल से ही काशी के प्रति अतिशय अनुराग है। अतः श्री झा भी ज्ञानगंगा में अवगाहन करने के लिये काशी आये और काशीतलवाहिनी गंगा का समाश्रय लिया।

उन दिनों काशिक राजकीय संस्कृत पाठशाला (गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज) में विश्वविश्रुत विद्वान् पं० राजाराम शास्त्री तथा पं० बालशास्त्री अध्यापक थे। उन्हीं गण्यमान्य विद्वानों से आपने धर्मशास्त्र, मीमांसा, सांख्य, वेदान्त तथा व्याकरण के परिष्कार का विधिवत् अध्ययन किया। साथ ही विख्यात नैयायिक पं० ताराचरण भट्टाचार्य एवं पं० विश्वनाथ झा से समग्र न्याय विशेषतः अनुमान खण्ड का स्वाध्याय किया।

पण्डित श्री झा उन्नीस वर्ष की अवस्था में ही अव्याहत गति से संस्कृत भाषण करते थे जिसकी प्रशंसा संस्कृत विद्या के अनुरागी सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ० बूलर भी करते थे।

आपने अपनी मेधा शक्ति के कारण राजकीय संस्कृत पाठशाला की कठिन परीक्षा में उच्चतम स्थान प्राप्त कर तत्कालीन वाइसराय लार्ड बुक द्वारा सम्मान प्राप्त किया। अनन्तर इनका यश चतुर्दिक् प्रसृत हो गया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्ययन पूर्ण करने के पश्चात् आपने अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया। उस समय मैथिल पण्डितों को राजस्थान तथा गुजरात की देशी रियासतें मुख्य रूप से अध्यापन का केन्द्रबिन्दु थीं।

देशी राज्यों के राजपण्डित मुख्यतया मैथिल पण्डित होते थे। इसी क्रम में श्री झा झालरापाटन राज्य के संस्कृत शिक्षण के अध्यक्ष मनोनीत हुए। राज्य के समस्त अधिकारी और विद्वान् इनकी अप्रतिम विद्वत्ता से सन्तुष्ट थे। चार वर्षों तक सफलता के साथ उक्त कार्यभार सँभालकर सन् १८८० में बिहारस्थ साहित्यप्रेमी बनैली राज्य के अधिपति राजा पद्मानन्द सिंह बहादुर के आग्रह पर राजपण्डित पद को स्वीकार कर वे बनैली राज्य चले आये। वहाँ का जलवायु उन्हें अनुकूल नहीं पड़ा अतः वे उस स्थान को शीघ्र ही छोड़कर अपनी जन्मभूमि वापस आ गये।

तत्पश्चात् आप मिथिला में ही गन्धवारि डयौढ़ी की महारानी चन्द्रावती द्वारा संस्थापित संस्कृत पाठशाला के प्रधानाध्यापक नियुक्त हुए। यहाँ आपने बारह वर्षों तक सफलतापूर्वक अध्यापन कार्य किया। इनकी विद्वत्ता की ख्याति दिनानुदिन बढ़ती ही गयी--विद्वत्प्रेमी दरभंगा नरेश महाराजाधिराज श्री रमेश्वरसिंह बहादुर ने अपनी राज्य सभा का प्रधान पण्डित नियुक्त किया। इसी बीच कुछ दिनों के लिए काशिक राजकीय संस्कृत महाविद्यालय के अध्यापक रहकर, पुनः दरभंगा चले गये। मीमांसक शिरोमणि पं० चित्रधर मिश्र जी के दिवङ्गत होने पर श्री झा श्री रमेश्वरलता संस्कृत महाविद्यालय के प्रधानाचार्य पद पर आसीन हुए। इस प्रकार २५ वर्षों तक विभिन्न पदों पर कार्य करते हुए दरभंगा-वास किया।

अनेक वर्षों की तपःपूत साधनाओं में परिपक्व पण्डित झा को विभिन्न संस्थाओं ने अभिनन्दन-सम्मान प्रदान किया। काशीस्थ भारतधर्ममहामण्डल ने 'वैयाकरण केशरी', बिहार पण्डित सभा ने विद्यानिधि' और सर्वोच्च भारत सरकार ने 'महामहोपाध्याय' (सन् १९१४ ई० में) की उपाधि से अलंकृत किया।

आप संस्कृत शिक्षा एवं परीक्षा से सम्बन्ध रखने वाली अनेक संस्थाओं, समितियों के मान्य सदस्य थे। 'संस्कृत काउन्सिल', 'संस्कृत कन्वोकेशन' (बिहार संस्कृत समिति), पटना विश्वविद्यालय संस्कृत शिक्षा समिति, मुजफ्फरपुर संस्कृत कालेज प्रबन्ध समिति आदि के सम्मानित सदस्य थे।

विद्वत् शिरोमणि पं० झा की काव्य-प्रतिभा भी विलक्षण ही थी। उनकी रचनाओं में से एक नमूना यक्षसमागम काव्य का प्रस्तुत कर रहा हूँ --

विश्वासस्याप्यधिकखरतां योऽधरस्तेन सेहे-
धीरो दध्यात् कथमिव तुलां पल्लवस्तस्य बालः।
बिम्बं निम्बोपममथ रसे का सुधापातपीता
कान्ते स्वान्ते बहु कलयता तुल्यता क्वापि नाऽऽपि ॥

कवियों की कसौटी गद्य काव्य मानी जाती है--'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'--

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित झा पद्य की भाँति गद्य में भी प्राञ्जल रीतियों का समावेश करते थे--प्रस्तुत है गद्य काव्य की एक शैली--

वाद्यन्ते चाव्यक्तमधुराणि पदानि बालका इवाङ्गकाः कोमलाङ्गाः मृदङ्गाः, आलाप्यते चालिङ्ग्य नवोढा कृशाङ्गी तन्त्री शयनीय- शयनेश येन सारङ्गी,--

विशेष क्या कहा जाय--इनकी कविताओं तथा गद्यों से प्रभावित होकर महामहोपाध्याय विद्यावाचस्पति पं० मधुसूदन झा जी ने उचित ही कहा था कि--

अमृतं मृतकेन लभ्यते मधुनोऽप्येकरसत्वदूषणम् ।
अधरं मधुरन्न कर्णयोरतुलन्ते रचनं विभावये ॥

इसी प्रकार स्वरचित काव्य में जो सूक्तियाँ इन्होंने प्रयुक्त की हैं, वे भी सहृदय साहित्यिकों के लिए मननीय हैं--रसास्वाद करें--

(१) **स्वस्याचाराद् भजति हि जनो गर्हणामर्हणां वा ।**
(२) **मध्यस्थानां लघु समुचितं सन्धिकृत्यं हि तत्र ।**
(३) **अल्पादल्पो भवति विषमः कल्पकल्पो हि कालः ।**
(४) **संकल्पाप्तः समयसमयो ह्रस्यते द्राघितोऽपि ।**

आपकी कृतियाँ

(१) संस्कारदशकर्म पद्धति टीका,
(२) छन्दोगवृषोत्सर्ग
(३) श्राद्धरत्न सटिप्पण,
(४) आह्निकपद्धति सटीक
(५) सदाचार दर्पण,
(६) नक्षत्रनिर्णय
(७) तडाग गया पद्धति
(८) परमेश्वर कोष
(९) महिषासुरवध नाटक
(१०) मिथिलेशप्रशस्ति
(११) मिथिलातत्त्व विमर्श
(१२) ऋतुवर्णन
(१३) यक्षसमागम आदि ।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त अनेक ग्रन्थ तथा निबन्ध प्रकाशित हैं । उनका अनुसन्धान करने पर ही ठीक-ठीक संख्या कही जा सकती है । प्राप्त ग्रन्थों में 'मिथिला तत्त्व विमर्श' अत्यधिक उपादेय ग्रन्थ है, इसमें मिथिला का इतिहास सभी दृष्टियों से पूर्ण है । इसका भरपूर उपयोग सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् श्री काशीप्रसाद जायसवाल ने अपने 'तिरहुत का इतिहास' में किया है ।

आपके प्रमुख शिष्यगण

(१) पं० मार्कण्डेय मिश्र—भूतपूर्व प्रधानाचार्य, महाराणा कालेज उदयपुर ।
(२) पं० त्रिलोकनाथ मिश्र—मिथिला विद्यापीठ के प्राध्यापक ।
(३) श्री शिवनन्दन ठाकुर—एम० ए०, व्याकरणतीर्थ ।

इनका निधन वि० सं० १९८१ संवत् में (१८२४ ई०) में हुआ । श्री मधुसूदन झा के ये समकालीन मैथिल विद्वान् थे । दोनों विद्वानों ने मिथिला से बाहर राजपूताने में विशद कीर्ति प्राप्त की थी तथा अनेक छात्रों को तैयार कर विशिष्ट विद्वान् बनाया था । संस्कृत विद्या के प्रचार-प्रसार में दोनों का सहयोग प्राप्त था ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३४

पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी

(आस्पद—चतुर्वेदी, उपाधि—महामहोपाध्याय)

संस्कृत के विद्वान् प्रायः वाणी के धनी होते हैं परन्तु लेखनी के प्रयोग में वे बद्धमुष्टिता का आचरण करते पाये जाते हैं। परन्तु महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी संस्कृत के उन बिरले विद्वानों में से थे जिनकी वाणी का प्रवाह और लेखनी की गति अबाध रूप से चलती थी। शर्माजी संस्कृत तथा हिन्दी भाषण में जितने पटु थे, उतने ही लेखन-कर्म में भी प्रवीण थे। वाणी और लेखनी में पटुता का यह मणि-काञ्चन संयोग अत्यन्त दुर्लभ है। संसार में बहुत ही कम ऐसे लोग पाये जाते हैं जो लेखनी के धनी होने के साथ ही वाग्मिता से भी विभूषित हों। संस्कृत के विद्वानों में तो यह गुण बहुत ही कम उपलब्ध होता है।

पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी वक्ता ही नहीं, वाग्मी भी थे। इनकी वाणी में वह जादू था जिसका जनता पर अद्भुत प्रभाव पड़ता था। इसके साथ ही ये उच्चकोटि के विद्वान् भी थे। लेखनी के धनी होने के कारण इन्होंने अनेक ग्रन्थों का निर्माण भी किया है। इसीलिए विद्वत् समाज ने 'व्याख्यान वाचस्पति' के साथ ही इन्हें 'विद्या वाचस्पति' की पदवी से भी विभूषित किया। चतुर्वेदीजी का यही गुण इन्हें अन्य संस्कृत पण्डितों से पृथक् कर इन्हें उच्चासन पर प्रतिष्ठित करता है।

जन्म

चतुर्वेदीजी मूलतः माथुर चौबे थे। कई कारणों से इनके पूर्वज मथुरा छोड़कर जयपुर में जा बसे थे जहाँ इन लोगों को राजाश्रय प्राप्त था। इनके पूर्वजों में रामलाल जी थे जिनके पुत्र गोपालजी और पौत्र जीवनलालजी थे। यही जीवनलालजी चतुर्वेदी जी के पितामह थे। जीवनलालजी को कोई सन्तति नहीं थी। अतः इन्होंने अपने भागिनेय श्रीगोकुलचन्द्रजी को अपने दत्तक पुत्र के रूप में स्वीकार किया। यही गोकुलचन्द्रजी गिरिधर शर्माजी के पिता थे। इनकी माता का नाम लवङ्गी देवी था। गोकुलचन्द्रजी के सात पुत्र बाल्यावस्था में ही काल-कवलित हो गये थे। अतः इनके पितामह जीवनलालजी ने अनेक देवताओं की आराधना की जिसके फलस्वरूप इन्हें पौत्ररत्न की प्राप्ति हुई।

अध्ययन

गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी का जन्म सं० १९३८ वि० तदनुसार १८८१ ई० में पौष शुक्ल दशमी को जयपुर में हुआ था। ये अपने माता-पिता की इकलौती सन्तान थे। अतः इनका पालन-पोषण बड़े लाड़-प्यार के साथ किया गया था। तत्कालीन समाज

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में प्रचलित बाल-विवाह की प्रथा के कारण इनका विवाह केवल आठ वर्ष की अवस्था में जयपुर निवासी श्री छविनाथजी की कन्या विद्यादेवी के साथ सम्पन्न हुआ। इनकी शिक्षा-दीक्षा जयपुर की ही एक संस्कृत पाठशाला में हुई जिसकी स्थापना जयपुर के महाराजा श्रीरामसिंह ने सं० १९२२ वि० में की थी।

चतुर्वेदीजी की बुद्धि बड़ी प्रखर थी अतः जो भी पाठ पढ़ाया जाता था, उसे ये शीघ्र ही कण्ठस्थ कर लिया करते थे। इसी पाठशाला में अध्ययन करते हुए संवत् १९५२ वि० में इन्होंने प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण की। सं० १९५५ वि० में मध्यमा परीक्षा में सफलता प्राप्त की। यह परीक्षा 'उपाध्याय' के नाम से प्रसिद्ध थी। इसके तीन वर्ष के अनन्तर सं० १९५८ वि० में इन्होंने शास्त्री की उपाधि प्राप्त की। कुशाग्र बुद्धि चतुर्वेदीजी ने सभी परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं तथा अपने वर्ग में सदा प्रथम स्थान प्राप्त किया। इनके परीक्षकों में काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् म० म० पं० शिवकुमार शास्त्री, दामोदर शास्त्री तथा गंगाधर शास्त्री हुआ करते थे। इन लोगों ने परीक्षा में इनके शास्त्र-ज्ञान की भूरिभूरि प्रशंसा की थी। जयपुर राज्य की स्थानीय परीक्षाओं को उत्तीर्ण करने के पश्चात् चतुर्वेदीजी ने पंजाब विश्वविद्यालय की शास्त्री परीक्षा भी सं० १९६६ वि० में उत्तीर्ण की थी।

अपनी छात्रावस्था में ही चतुर्वेदीजी ने भाषण करने का अभ्यास किया। अनेक सभाओं में जाकर सनातन धर्म के सिद्धान्तों पर भाषण करने में और आर्यसमाजियों से शास्त्रार्थ कर उनके मत के खण्डन तथा स्वमत के मण्डन में दक्षता प्राप्त कर ली थी। इन्हीं दिनों ये **'संस्कृत रत्नाकर'** नामक मासिक पत्रिका भी निकालते थे जिसमें सम्पादक रूप में इन्हें लेख लिखने का सदा अवसर मिलता रहता था। इस प्रकार भाषण देने तथा लेख लिखने का पूर्ण अभ्यास इन्होंने अपनी छात्रावस्था में ही कर लिया था।

अध्यापन

शास्त्री की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् घर की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण चतुर्वेदीजी को 'लवण, तैल, तन्दुल' की चिन्ता ने आ घेरा। अतः जीविकोपार्जन के लिए इन्होंने सहारनपुर के अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महाविद्यालय में प्रधानाध्यापक के पद को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार सं० १९६६ वि० (१९०७ ई०) में २५ वर्ष की अवस्था में इन्होंने अध्यापन का कार्य प्रारम्भ कर दिया। परन्तु जैनियों का विद्यालय होने के कारण इनका मन वहाँ नहीं रम सका। अतः सन् १९०८ ई० में सहारनपुर की नौकरी छोड़कर इन्होंने हरिद्वार के **ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम** में प्रधानाध्यापक के पद को सुशोभित किया।

ये ऋषिकुल के जीवन के प्रारम्भिक वर्ष थे। अतः चतुर्वेदी ने इस संस्था के लिए धन संग्रह कर इसे पूर्णतया प्रतिष्ठित करने में अनन्त प्रयास किये। इसके साथ ही इस संस्था में अध्यापन की सम्यक् व्यवस्था भी की। यहीं रहकर इन्होंने हरिद्वार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ही स्थित आर्यसमाजियों की प्रसिद्ध संस्था **गुरुकुल कांगड़ी** में जाकर अनेक बार वहाँ के विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित किया जिससे इनकी विद्वत्ता तथा वक्तृता की धाक सर्वत्र स्थापित हो गई। इसी समय इन्होंने संस्कृत के प्रचार के लिए **'संस्कृत साहित्य सम्मेलन'** की भी स्थापना की। इस सम्मेलन के अधिवेशन के संबंध में इन्हें भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों की यात्रा करनी पड़ी जिससे इनका परिचय भारत के प्रसिद्ध विद्वानों से हो गया।

हरिद्वार के ऋषिकुल से त्यागपत्र देने के पश्चात् चतुर्वेदी जी ने कुछ दिनों तक लाहौर में भी अध्यापन का कार्य किया। वहाँ रहते हुए ये डा० बुलनर, डा० लक्ष्मण स्वरूप तथा म० म० शिवदत्त शास्त्री जैसे विद्वानों के सम्पर्क में आये। लाहौर में चतुर्वेदी जी का अधिकांश समय सनातन धर्म सभा एवं संस्कृत साहित्य सम्मेलन के आयोजन में ही व्यतीत होता रहा। परन्तु चतुर्वेदी जी के जीवन का स्वर्णिम काल जयपुर की नौकरी थी जहाँ इन्होंने लगातार बीस वर्षों (१९२४ ई० से १९४४ ई०) तक अध्यापन का कार्य किया। जयपुर के संस्कृत महाविद्यालय (महाराजा संस्कृत कालेज) में एक सामान्य प्राध्यापक के पद पर इनकी नियुक्ति हुई थी परन्तु अपनी अगाध विद्वत्ता और अलौकिक प्रतिभा के बल से इन्होंने इस महाविद्यालय के अध्यक्ष पद को अनेक वर्षों तक विभूषित किया। इस पद पर रहते हुए चतुर्वेदी जी ने इस महाविद्यालय की प्रचुर उन्नति की। आयुर्वेद के लिए नवीन विद्यालय स्थापित किया। वेद, पुराण एवं धर्मशास्त्र के अध्यापन के लिए समुचित व्यवस्था की। संस्कृत के पाठ्यक्रम में इतिहास, भूगोल आदि नवीन विषयों को प्रवेश मिला। स्थान की कमी के कारण नवीन भवनों का निर्माण कराया। इसके साथ ही संस्कृत छात्रों के लिए व्यायाम, खेल-कूद के लिए प्रशस्त मैदान, की व्यवस्था की। इसके साथ ही छात्र समिति, प्राध्यापक समिति, बालचर संघ (स्काउटिंग) आदि की स्थापना की गई। इस प्रकार चतुर्वेदी जी के अध्यक्ष काल में इस महाविद्यालय की सर्वाङ्गीण उन्नति हुई।

सन् १९४५ ई० जयपुर कालेज की अध्यक्षता से अवकाश ग्रहण कर चतुर्वेदी ने अब अपना समय सनातन धर्म के प्रचार तथा संस्कृत भाषा की उन्नति में लगाना प्रारम्भ कर दिया। एक न एक दिन इन्हें किसी न किसी स्थान से व्याख्यान देने के लिए निमंत्रण आता ही रहता था। इस प्रकार इन्होंने पंजाब, काश्मीर सिन्ध, बलूचिस्तान आदि प्रान्तों में भ्रमण कर अमर वाणी का तथा सनातन धर्म का सन्देश सबको सुनाया। इसी बीच इन्होंने अलवर राज्य में संस्कृत महाविद्यालय के अध्यक्ष पद को स्वीकार कर लिया जहाँ ये दो वर्षों तक कार्य करते रहे। सन् १९४७ ई० में देश में अशान्ति के कारण चतुर्वेदीजी का मन वहाँ से उचट गया। सन् १९५० ई० में इन्होंने तत्कालीन कुलपति पण्डित गोविन्द मालवीय के आग्रह पर हिन्दू विश्वविद्यालय में "संस्कृत शिक्षा-संचालक" के पद को सुशोभित किया तथा आजीवन इस स्थान को अलंकृत करते रहे। विश्वविद्यालय में कार्य करते समय चतुर्वेदी जी का प्रधान कर्तव्य प्रति रविवार को गीता पर व्याख्यान देना भी था जो कई भागों में बाद में प्रकाशित

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ। इन्होंने इसके साथ अनेक शोध छात्रों के अनुसन्धान में निर्देशक का कार्य किया, इस प्रकार काशी निवास करते हुए तथा जीवन के अन्त तक पठनपाठन में अपना समय व्यतीत करते हुए चतुर्वेदी जी ने सन् १९६७ ई० में ८६ वर्ष की आयु में पञ्चत्व को प्राप्त किया। इन्होंने अपने जीवन में प्रचुर यश तथा कीर्ति का अर्जन किया।

चतुर्वेदी जी के ग्रन्थ

पहले लिखा जा चुका है पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी संस्कृत के उन बिरले विद्वानों में से एक थे जो वाग्मिता से विभूषित होते हुए भी लेखनी के धनी थे। अतः इनकी लेखनी से अनेक ग्रन्थ प्रसूत हुए। इन्होंने देवभाषा संस्कृत तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी, दोनों में ग्रन्थों की रचना की है। जिनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

(क) संस्कृत ग्रन्थ

(१) पुराण पारिजात[1]—चतुर्वेदी जी पुराणों के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इस ग्रन्थ में इन्होंने पुराणों की सम्यक् मीमांसा प्रस्तुत की है। पुराणों में वर्णित धर्म और दर्शन की विस्तृत विवेचना इस ग्रन्थ मे की गई है।

(२) प्रमेय पारिजात[2]—यह ग्रन्थ लेखक की गंभीर विद्वत्ता को प्रकाशित करता है।

(३) **चतुर्वेदिसंस्कृत-निबन्धावली**[3]—इस ग्रन्थ में चतुर्वेदी जी द्वारा विभिन्न अवसरों पर पत्र पत्रिकाओं में लिखे गये लेखों का संग्रह किया गया है। विभिन्न विषयों पर लिखे गये इन लेखों से लेखक की तलस्पर्शिनी विद्वत्ता का परिचय प्राप्त होता है।

(४) चतुर्वेदी जी ने कुमारसम्भव, किरातार्जुनीय तथा शिशुपालवध आदि संस्कृत के महाकाव्यों के कतिपय सर्गों को व्याख्या लिखी है जो अभी कतिपय कारणों से प्रकाशित नहीं हो सकी है।

(ख) **सम्पादित ग्रन्थ**—चतुर्वेदी जी ने **सिद्धान्तकौमुदी की बालमनोरमा तथा तत्त्वबोधिनी** टीकाओं का सम्पादन किया है।[4] इसके अतिरिक्त इन्होंने डा० लक्ष्मण-स्वरूप द्वारा प्राप्त **"वरदाम्बिका-परिणय चम्पू"** का हिन्दी भाषा में अनुवाद प्रस्तुत किया है।

(ग) हिन्दी ग्रन्थ

(१) **वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति**[5]—यह विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ चतुर्वेदीजी की गहन अध्ययनशीलता तथा प्रचुर पाण्डित्य का परिचायक है। इस ग्रन्थ के नाम से

१. अखिल भारतीय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली से प्रकाशित।
२. प्रकाशक—वही।
३. चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी से प्रकाशित।
४. मोतीलाल बनारसीदास द्वारा चार भागों में प्रकाशित।
५. बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही विदित होता है कि इसमें लेखक ने वेदों में उपलब्ध विज्ञान का साङ्गोपाङ्ग विवेचन किया है। भारतीय संस्कृति में वेदों का क्या स्थान है? इस विषय का भी विशद विवेचन किया गया है। यह ग्रन्थ चतुर्वेदी जी की प्रधान रचनाओं में से है जिससे इनकी वैदुषी परिलक्षित होती है।

(२) **दर्शन अनुचिन्तन**[1]—इस ग्रन्थ में भारतीय दर्शन की मीमांसा प्रस्तुत की गई है। यह लेखक के दर्शन संबंधी अनुशीलन का फल है।

(३) **गीता प्रवचन व्याख्यानमाला**[2]—महामहोपाध्याय गिरिधर शर्माजी की रचनाओं में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रति रविवार को शर्माजी को भगवद्गीता के ऊपर व्याख्यान देने का महत्त्वपूर्ण कार्य सौंपा गया। इसका इन्होंने बड़ी योग्यता एवं परिश्रम से सम्पादन किया। यह व्याख्यान गीता के प्रति-श्लोक एवं प्रति-प्रकरण के ऊपर नियमित रूप से कई वर्षों तक चलता रहा। और अब तीन बड़े-बड़े खण्डों में प्रकाशित हुआ है। इसके लिए चतुर्वेदी जी ने बड़ा परिश्रम एवं अध्ययन किया जिसके फलस्वरूप ये तीनों खण्ड उनकी उत्कृष्ट रचना के रूप में गृहीत किये जाते हैं।

व्याख्यान होने के कारण ग्रन्थ में पुनरुक्तियाँ बहुत हैं, परन्तु उसके द्वारा ग्रन्थ की उपादेयता में कमी नहीं आती। इसमें महाभारत तथा पुराण की अनेक घटनाओं तथा तथ्यों का संकलन विषय के वैशद्य के लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ। गीता के ऊपर धार्मिक सम्प्रदायों के विभिन्न आचार्यों की टीकाएँ तथा व्याख्याएँ उपलब्ध हैं तथा प्रकाशित हैं—शंकर, रामानुज, निम्बार्क, मध्व, वल्लभ आदि आचार्यों की स्वयं तथा उनके अनुयायियों की टीका से विभूषित भगवद्गीता के अनेक उपयोगी संस्करण मुद्रित एवं प्रकाशित हैं। चतुर्वेदी जी ने इन सब व्याख्याओं का अनुशीलन कर उनके अर्थों का उल्लेख तत्तत् श्लोकों की विवेचना में किया है। इतना ही नहीं, गीता के नवीन टाकाकारों के मतों का भी उल्लेख इन्होंने बड़े वैशद्य के साथ किया है। जैसे लोकमान्य तिलक के गीतारहस्य तथा अरविन्द के गीताभाष्य का तो उपयोग किया ही गया है, शर्माजी ने अपने गुरु पण्डित मधुसूदन ओझा के मतों का भी निर्देश स्थान-स्थान पर बड़ी मार्मिकता से किया है। इसका परिणाम है कि चतुर्वेदीजी का यह गीताभाष्य गीता के तुलनात्मक अध्ययन के लिए बड़ा ही उपादेय एवं उपयोगी है। पण्डित मधुसूदन ओझा के विचित्र सिद्धान्तों को समझने के लिए भी यह ग्रन्थ बड़े काम तथा महत्त्व का है। इस प्रकार भगवद्गीता के अन्तरंग अनुशीलन के लिए नितान्त उपयोगी इस गीताभाष्य के प्रणयन के लिए जिज्ञासुजन गिरिधर शर्मा चतुर्वेदीजी के चिर ऋणी

---

१. भारतीय ज्ञानपीठ, कलकत्ता।

२. हिन्दू विश्वविद्यालय नेपाल राज्य ग्रन्थमाला (सं० ४) में तीन खण्डों में प्रकाशित, १९६२ ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहेंगे। यह मतों का संकलन मात्र नहीं है, प्रत्युत उनके तारतम्य का बोध कराने वाली एक मौलिक रचना है।

(४) **साहित्यिक निबन्ध**[१]—इस ग्रन्थ में चतुर्वेदीजी के साहित्यिक निबन्धों का संकलन किया गया है। लेखक ने संस्कृत के कवियों के सम्बन्ध में जो निबन्ध पत्रिकाओं में समय-समय पर लिखे थे उन्हीं का यह संग्रह है।

(५) **पुराण परिशीलन**[२]—इसमें पुराणों में उपलब्ध धर्म और दर्शन की सम्यक् मीमांसा की गई है। ग्रन्थ पाण्डित्यपूर्ण है एवं चतुर्वेदी जी की बहुज्ञता का विशद परिचायक है।

(६) **उपनिषत्-प्रवचन**[३]—चतुर्वेदी जी ने विभिन्न अवसरों पर उपनिषद् के तत्त्वज्ञान के सम्बन्ध में जो प्रवचन किया था उसी का सारभूत यह ग्रन्थ है।

(७) **पुराण पारिजात**[४]—इसमें भी पुराणों का सर्वाङ्गीण विवेचन किया गया है।

(८) **आत्मकथा और संस्मरण**[५]—संभवतः यह चतुर्वेदीजी का अन्तिम ग्रंथ है। संस्कृत के पण्डित अपनी जीवनी नहीं लिखा करते परन्तु यह चतुर्वेदीजी की विशेषता है कि इन्होंने अपना चरित स्वयं लिखा है। जब ये अपने जीवन की गोधूलि में पक्षाघात से पीड़ित थे तब इन्होंने अपनी जीवनी को बोल कर दूसरों से लिखवाया था। इस ग्रन्थ से चतुर्वेदीजी के कर्मठ जीवन पर तथा सनातन धर्म-सम्बन्धी सेवाओं पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है।

अप्रकाशित ग्रन्थ

चतुर्वेदीजी ने अनेक ग्रन्थों की रचना की थी जो अभी तक प्रकाशित नहीं हो सके हैं। इस वर्ष (१९८१ ई०) चतुर्वेदी जी की जन्मशती समारोह के साथ मनाई गई है और इस अवसर पर कुछ ग्रन्थ प्रकाशित भी किये गये हैं। उनके सुपुत्र पं० शिवदत्त चतुर्वेदी जी का यह पुण्य कार्य नितान्त श्लाघनीय एवं अभिनन्दनीय है। इनके अप्रकाशित ग्रन्थों की सूची निम्नांकित है—

(१) डायरी, पत्र और कविताएँ।
(२) उपनिषत् परिशीलन—भाग २
(३) दार्शनिक निबन्ध।
(४) धार्मिक निबन्ध।
(५) वैदिक निबन्ध।

---

१. मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।
२. बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।
३. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
४. अखिल भारतीय काशिराज ट्रस्ट, वाराणसी से प्रकाश्यमान।
५. शरद प्रकाशन, अस्सी, वाराणसी, १९६७ ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६) शास्त्रार्थ और समालोचनाएँ।
(७) ऋषि विवेचन।
(८) विद्या वाचस्पतिजी का जीवन तथा कृतियाँ।

चतुर्वेदीजी की प्रकाशित तथा अप्रकाशित रचनाओं से यह पता चलता है कि इन्होंने आत्मकथा, संस्मरण, डायरी और पत्र आदि हिन्दी की अभिनव विधाओं पर भी अपनी लेखनी चलायी है। संस्कृत का शायद ही ऐसा कोई पण्डित हो जिसने आत्मकथा और अपने संस्मरणों को लिपिबद्ध किया हो। परन्तु यह चतुर्वेदी जी जैसे उत्कृष्ट विद्वान् का ही कार्य था कि इन्होंने हिन्दी की इन नूतन विधाओं को भी अपनी लेखनी का प्रसाद प्रदान किया।

चतुर्वेदी जी का व्यक्तित्व

चतुर्वेदी का व्यक्तित्व महान् था। उसकी वेषभूषा से भारतीय संस्कृति के प्रति इनके प्रेम का परिचय मिलता था। गौर वर्ण, उन्नत ललाट, लम्बा-चौड़ा शरीर, विशाल भुजाएँ इनके महान् व्यक्तित्व को प्रकाशित करती थीं। इसके साथ ही इनका परिधान भी नेत्राकर्षक होता था। स्वच्छ अधोवस्त्र (धोती) के ऊपर पण्डिताऊ अंगरक्षा (अंगरखा), गले में लम्बा लटकता हुआ उत्तरीय (चादर या दुपट्टा) और सिर पर राजस्थानी उष्णीष (पगड़ी) इनके व्यक्तित्व में चार चाँद लगा देते थे। इनको देखते ही ज्ञात होता था कि यह कोई असाधारण प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति हैं। नैषधकार श्रीहर्ष ने नल के विषय में कहा है—

"त्वदुदाहरणाकृतौ गुणाः इति सा मुद्रक-सार-मुद्रणा।"

यह कथन चतुर्वेदी के विषय में अक्षरशः चरितार्थ होता है। व्यक्तित्व की विवेचना करने वाले विद्वानों ने इसका विश्लेषण करते हुए इसमें ५ वकारों का होना आवश्यक बतलाया है—

"विद्यया, वपुषा, वाचा, वस्त्रेण विभवेन च।
वकारैः पञ्चभिर्युक्तो, नरः प्राप्नोति गौरवम्॥"

व्यक्तित्व की इस निकषग्रावा पर कसने पर चतुर्वेदी जी का व्यक्तित्व अत्यन्त खरा उतरता है। **विद्यया**—वेद, पुराण, व्याकरण, साहित्य और दर्शनशास्त्र के प्रकांड विद्वान् होने के नाते ये विद्या के भाण्डार थे। **वपुषा**—अर्थात् शरीर। इनके गौर वर्ण और सुन्दर काञ्चन यष्टि की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। **वाचा**—अर्थात् वाणी के सम्बन्ध में यहाँ केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि चतुर्वेदी जी वक्ता ही नहीं वाग्मी भी थे। इनकी वक्तृत्व शक्ति की चर्चा अन्यत्र की जा चुकी है। किसी भी विशाल सभा में भाषण करते समय अपने श्रोताओं को प्रभावित करना इनके बायें हाथ का खेल था। **वस्त्रेण**—चतुर्वेदी सदा स्वच्छ तथा श्वेत वस्त्र धारण करते थे। मँहगे न होने पर भी ये वस्त्र नेत्रावर्जक थे। **विभवेन**—उनके विभव की चर्चा साधिकार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं की जा सकती। परन्तु जयपुर संस्कृत कालेज के प्रिन्सिपल तथा अलवर संस्कृत महाविद्यालय के अध्यक्ष के पद को अलंकृत करते समय इन्हें जीवन में वैभव का भी अभाव नहीं रहा होगा। अतः व्यक्तित्व निर्माण के जो पाँच अवयव-वकार कहे गये हैं वे पाँचों ही चतुर्वेदीजी के व्यक्तित्व में एकत्र समाहित हो गये थे। इस प्रकार इनका व्यक्तित्व बड़ा ही दिव्य तथा भव्य था।

चतुर्वेदीजी के एक असाधारण व्यक्तित्वसम्पन्न विद्वान् थे। संस्कृत के पण्डित प्रायः भ्रमणशील नहीं होते। परन्तु चतुर्वेदीजी की आत्मकथा से पता चलता है कि इन्होंने भारत के अनेक प्रान्तों का अनेक बार भ्रमण किया था। भाषण करने के प्रसंग में इन्होंने सुदूर दक्षिण के प्रान्तों में भी परिभ्रमण किया था जिसका सुन्दर विवरण इन्होंने अपनी आत्मकथा में दिया है। इस प्रकार विस्तृत भ्रमण करने से चतुर्वेदीजी को विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों तथा प्रदेशों में प्रचलित आचार-विचार का अनुभव था। इस कारण इनके व्यक्तित्व में विद्वत्ता, वावदूकता और अनुभव का अद्भुत सामञ्जस्य प्राप्त होना स्वाभाविक है।

धर्मोपदेशक

गत शताब्दी के मध्य भाग में महर्षि दयानन्द सरस्वती के द्वारा आर्यसमाज नामक नयी धार्मिक संस्था की स्थापना इतने उत्साह के साथ की गई कि अंग्रेजी शिक्षा में दीक्षित कुछ व्यक्ति इधर विशेष रूप से आकृष्ट हुए। वैदिक धर्म का मूल बड़ा गहन तथा गम्भीर है। उसे यथार्थ रूप से जानने के लिए मूल धार्मिक संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन आवश्यक होता है। इन ग्रन्थों की जानकारी के अभाव में साधारण शिक्षित व्यक्ति की धार्मिक धारणा नितान्त भ्रान्त तथा अधूरी रहती है। ऐसे लोगों की शंकाओं का विधिपूर्वक निराकरण करने के लिए शास्त्र तथा युक्ति दोनों की उपदेशक में नितान्त आवश्यकता होती है।

पं० गिरिधर शर्मा ने अपने को उपयुक्त उपदेशक बनाने के लिए अपना प्रशिक्षण स्वयं किया। इन्होंने प्राचीन शास्त्रों का अध्ययन किया। नवीन युक्तियों का ऊहापोह किया। गम्भीर अध्ययन तथा गहन तपस्या के बल पर चतुर्वेदीजी ने वैदिक धर्म के रहस्य का उद्घाटन करने में दक्षता प्राप्त की। इनके बहुश्रुत होने का स्वारस्य इनकी इसी साधना पर आधारित है। ये सनातन धर्म के पहले उपदेशक नहीं थे। इनके पहले व्याख्यानवाचस्पति पं० **दीनदयाल शर्मा** तथा पं० **ज्वालाप्रसाद मिश्र** इस कला के निष्णात विद्वान् तथा पारखी माने जाते थे।

इन दोनों विद्वानों का प्रभाव चतुर्वेदी जी पर प्रचुर परिमाण में पड़ा था। इस तथ्य को इन्होंने स्वयं अपनी आत्मकथा में स्वीकार किया है। सनातन धर्म के उपदेशक के रूप में इनको इतनी ख्याति प्राप्त हो गई कि आर्यसमाजियों तथा सनातनधर्मियों में जहाँ भी कहीं शास्त्रार्थ होता था वहाँ सनातन धर्म के पक्षपाती अपनी ओर से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना केवल एक ही प्रतिनिधि---पं० गिरिधर शर्मा के रूप में -- शास्त्रार्थ के लिए भेजते थे। पं० दीनदयालु शर्मा का चतुर्वेदी जी की विद्वत्ता तथा व्याख्यान-कुशलता एवं युक्तियों के प्रतिपादन पर इतना विश्वास था कि वे भरी सभा में यह घोषणा कर दिया करते थे कि "प्रतिपक्ष की ओर से शास्त्रार्थ करने के लिए कितने भी अधिक व्यक्ति आवें, परन्तु सनातन धर्म की ओर से केवल एक ही व्यक्ति शास्त्रार्थ करेगा और उसके हारने या जीतने पर सनातन धर्म का जय-पराजय स्वीकार किया जायेगा। और वह हमारे एकमात्र प्रतिनिधि व्यक्ति गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी होंगे।" शर्मा जी की इस घोषणा से ही पता चल सकता है कि चतुर्वेदी जी की योग्यता पर उन्हें कितना विश्वास था और गिरिधर शर्मा जी के शास्त्रार्थ में जीतने की कितनी दृढ़ आस्था थी।

हरिद्वार ऋषिकुल सनातनधर्मियों के द्वारा स्थापित शिक्षण संस्था थी। उसका मुख्य उद्देश्य बालकों को संस्कृत-शिक्षा प्रदान करना था। परन्तु उस शिक्षा में सनातन धर्म का ज्ञान आवश्यक अंग माना जाता था। इसी कार्य की सिद्धि के लिए चतुर्वेदी जी ने विद्यालय के अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित होते ही 'ब्रह्मचारी' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया जिसमें इस धर्म के सिद्धान्तों की विशद चर्चा की जाती थी। इस पत्रिका में सम्पादक के रूप में ये स्वयं लेख लिखते थे तथा सनातन धर्म के सिद्धांतों की विस्तृत समीक्षा प्रकाशित करते थे। इसके साथ ही आर्यसमाजियों के आक्षेप का ये उत्तर भी दिया करते थे।

चतुर्वेदी जी की एक बड़ी भारी विशेषता यह थी कि ये सनातनी मर्यादा के पोषक होते हुए भी अपने विचारों में स्वभावतः प्रगतिशील थे। इनकी अभिलाषा थी कि किसी प्रकार संस्कृत के छात्रों और विद्वानों में प्रगतिशीलता का उदय हो। इससे उनको राष्ट्र के पुनर्निर्माण में सदा की तरह पुनरपि नेतृत्व का पद प्राप्त हो सके। इस अभिप्राय की सिद्धि के लिए ये दूसरे समसामयिक संगठनों में भी सक्रिय सहयोग दिया करते थे। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए काशी गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज के पाठ्यक्रम में जो सुधार (१९३७ से १९३९ और १९४८-५० ई०) प्रान्तीय शासन ने किया था उसका काशी के ही पण्डितों ने प्रबल विरोध किया परन्तु चतुर्वेदी जी ने इसका पूर्णरूप से समर्थन किया था। इसी प्रकार महामना मालवीय जी द्वारा प्रवर्तित अछूतोद्धार तथा अछूतों को मंत्रदीक्षा आन्दोलन को भी इन्होंने अपना प्रबल समर्थन दिया था। इन दोनों उदाहरणों से इनकी प्रगतिशीलता का पता चलता है।

पुरस्कार तथा सम्मान प्राप्ति

गिरिधर शर्मा को इनकी अगाध विद्वत्ता के कारण विद्वत्-समाज तथा सरकार दोनों ने अनेक उपाधियों से विभूषित किया था। ब्रिटिश सरकार ने इनकी अलौकिक विद्वत्ता से प्रसन्न होकर इन्हें महामहोपाध्याय की महनीय पदवी से अलंकृत किया था। इसके पश्चात् स्वतंत्र भारत की राष्ट्रीय सरकार ने इन्हें 'विशिष्ट पण्डित' की उपाधि प्रदान की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इन्हें सम्मानित पेन्शन दी। साहित्य अकादमी, दिल्ली ने इनके वैदिक विज्ञान-सम्बन्धी ग्रन्थ पर विशिष्ट 'अकादमी पुरस्कार' प्रदान किया था।

ये उपाधियाँ तथा सम्मान इनके वैदुष्य के सद्यः परिचायक हैं जिससे पण्डित समाज में इनके समादर की भावना विशदरूप से परिस्फुरित होती है। इसके अतिरिक्त विद्वत्-समाज ने इनकी योग्यता के कारण इन्हें **विद्यावाचस्पति** तथा **व्याख्यानवाचस्पति** की पदवी प्रदान की थी। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय ने इन्हें विद्यावाचस्पति (डी० लिट्०) की उपाधि दी थी।

आपका शास्त्रज्ञान असीमित तथा अनुपम था और सबसे बड़ी विशेषता थी— आपकी शास्त्र-वचनों पर निष्ठा। आप उस वृद्धावस्था में भी मंगलवार को संकट मोचन, बुधवार को गणेश जी तथा दुर्गा जी का दर्शन अवश्य करते थे। पर्व तिथियों पर गंगा स्नान आपका नित्य कर्तव्य था। अन्त तक मध्यनिशा में महाविद्या की उपासना अनवरत करते थे और इन्द्रियों के शिथिल हो जाने पर भी दूसरे विद्वानों को सहायता से सर्वदा शास्त्र चिन्तन ही करते रहते थे।

संस्मरण

महामहोपाध्याय पंडित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदीजी की ख्याति तो मैंने बहुत दिनों से सुन रखी थी, परन्तु इनके साक्षात्कार का अवसर मुझे तब मिला, जब ये गोविन्द मालवीय के आग्रह पर काशी विश्वविद्यालय में स्थायी निवास बनाकर संस्कृत महाविद्यालय में संस्कृत-शिक्षा-संचालक के पद पर नियुक्त किये गये। बात बड़ी पुरानी थी। महामना मालवीयजी इन्हें हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्यक्ष पद पर नियुक्त करना चाहते थे, परन्तु चतुर्वेदीजी अवकाश न होने के कारण इस पद को सुशोभित नहीं कर सके थे। फलतः इस बार गोविन्द मालवीयजी के दृढ़ आग्रह को टाल न सके, परन्तु किसी विशेष उत्तरदायी पद पर वार्धक्य के कारण आने से हिचकते थे। फलतः 'संस्कृत-शिक्षा-संचालक' के रिक्त पद पर प्रतिष्ठित होकर ये हिन्दू विश्वविद्यालय में आये। यह १९५० ई० के मध्य की घटना है। उसी समय चतुर्वेदी से विशेष परिचय प्राप्त होने का सुयोग मुझे मिला। आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। श्री गिरिधर शर्माजी की दृढ़ आस्तिक्य बुद्धि, सनातन धर्म के सिद्धान्तों पर अश्रान्त निष्ठा तथा उनके प्रचार-प्रसार में अक्लान्त परिश्रम, संस्कृत भाषा में प्रौढ़ शास्त्रीय विषयों पर अबाधित गति से भाषण, विषय के प्रतिपादन में विशिष्ट क्षमता आदि गुणों को अत्यन्त समीप से अवलोकन करने पर इनके प्रति मेरे हृदय में स्वाभाविक आदर तथा सत्कार का भाव जागरित हुआ।

ये सनातन धर्म के वावदूक वक्ता एवं मार्मिक व्याख्याता थे। इस विषय में इनका नाम व्याख्यान वाचस्पति पण्डित दीनदयालु शर्मा तथा पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र के साथ श्रद्धा के साथ लिया जा सकता है। सत्य तो यह है ये तीनों मनीषी सनातन धर्म के संस्थापक, प्रचारक तथा प्रसारक के रूप में जनता के हृदय-मन्दिर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में देवता के रूप में विराजमान थे। सनातनी जनता हृदय से इनकी पूजा करती थी और इनके द्वारा व्याख्यात धार्मिक तत्त्वों के ग्रहण करने में अपना अहोभाग्य मानती थी। वह युग आर्यसमाज के अभ्युदय का था जब समाजी विद्वान् सनातन धर्म के ऊपर बड़ा कठोर प्रहार किया करते थे, बड़ी उद्दण्ड तथा उद्धत भाषा में बिना समझे हुए ही, सनातन धर्म के तत्त्व से अपरिचित होते हुए भी, उसके विरोध में अपनी आवाज बुलन्द किया करते थे। सनातनी जनता अपने धर्म के सिद्धान्तों के रहस्य समझाने के लिए जिन वरेण्य विद्वानों के भाषणों तथा वचनों में सातिशय श्रद्धा तथा विश्वास रखती थी, उनमें पण्डित गिरिधर शर्माजी का नाम अग्रगण्य था। मेरा तो विश्वास है कि आर्यसमाजी पण्डितों के अटपटे तथा अनगढ़ प्रश्नों का उत्तर देने के लिए चतुर्वेदीजी ने आर्षशास्त्रों का जितना मन्थन तथा आलोड़न किया उससे इनकी विद्या में परिष्कार आया, वाणी में स्फूर्ति आई तथा भाषण में प्रभावशालिता जनमी। ऐसे सैकड़ों धार्मिक शास्त्रार्थों के प्रधान सूत्रधार चतुर्वेदीजी ही थे। तभी तो इन एक विद्वान् के ऊपर ही जनता जय-पराजय का पूरा उत्तरदायित्व सौंपने के लिए उद्यत थी। आर्यसमाज के साथ शास्त्रार्थ में जनता इनके जय को अपना विजय तथा इनके पराजय को अपना पराजय मानती थी। गुरुकुल के पण्डितों के साथ इनका जो ऐतिहासिक शास्त्रार्थ हुआ था,[1] वह इस तथ्य का सूचक है कि सनातनी जनता के हृदय में चतुर्वेदीजी की धार्मिक वैदुषी पर कितना विश्वास था, कितनी आस्था थी।

संस्कृत के प्रचार-प्रसार के लिए चतुर्वेदीजी अपनी छात्रावस्था से ही उद्योगशील थे। उसी समय इन्होंने **'संस्कृत रत्नाकर'** नामक पत्र को जन्म दिया जो आगे चल कर उन्नति करता गया और संस्कृत भाषा के एक महनीय पत्र के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। इसके अनेक विशेषांक प्रकाशित हुए हैं जिनमें पण्डितों के लिए ज्ञातव्य अनेक विषयों का विवरण बड़ी योग्यता से दिया गया है। इस पत्र के आविर्भाव के अनन्तर अन्य प्रान्तों में संस्कृत के पत्रों तथा पत्रिकाओं का जन्म हुआ जिसका श्रेय इस रत्नाकर को देना चाहिए। चतुर्वेदीजी इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हुए, वरन् इन्होंने **'संस्कृत साहित्य सम्मेलन'** नामक एक विशिष्ट संस्था को ही जन्म दिया। इस सम्मेलन की स्थापना १९७० विक्रमी सं० (=१९१३ ई०) में की गई। प्रथम अधिवेशन हरिद्वार में महामहोपाध्याय पण्डित शिवकुमार शास्त्रीजी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ था। इस सम्मेलन में दूर-दूर के विद्वानों ने सम्मिलित होकर इसे सम्पन्न तथा सफल बनाया। महामहोपाध्याय पण्डित रामावतार शर्माजी भी इसमें सम्मिलित हुए थे तथा अपना ललित निबन्ध पढ़कर तथा प्रस्तावों पर ललित भाषा में भाषण कर श्रोताओं का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया था।

---

१. इस शास्त्रार्थ के लिए द्रष्टव्य पण्डित गिरिधर शर्मा रचित "आत्मकथा और संस्मरण", पृ० ७३-८२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित गिरिधर शर्माजी को **'मधुर दार्शनिक'** कहना नितान्त समुचित प्रतीत होता है। इनके दार्शनिक एवं धार्मिक भाषण करने की क्षमता से तो लेखक पूर्व से ही परिचित था, परन्तु इनकी मधुरता तथा रसिकता से परिचय पाने का अवसर उसे माघ स्नान के समय एक यात्रा में साथ ही साथ जाने के समय हुआ था। वर्तमान महाराजा काशीनरेश के निमन्त्रण पर उनके साथ ही हम कई व्यक्ति एक अलग मोटर कार में काशी से प्रयाग गये थे। उसी समय मुझे उनकी भावयित्री प्रतिभा के दर्शन का सुन्दर सुयोग मिला था। साहित्य की चर्चा छिड़ी थी और उस समय हम लोग प्राचीन संस्कृत तथा ब्रजभाषा के कवियों के काव्य सौन्दर्य की खुलकर मुक्तकण्ठ से प्रशंसा कर रहे थे। चतुर्वेदीजी ने बिहारी तथा देव, तुलसी तथा सूरदास के पद्यों को सुनाकर तथा उनकी साहित्यिक बारीकियों का बड़ा ही सुन्दर विवेचन कर हम सबों को मुग्ध कर दिया। क्यों न हो ? माथुर चौबे होने के नाते चतुर्वेदीजी का ब्रजमण्डल के साहित्यिक वातावरण से प्रभावित होना तथा कृष्ण काव्यों की ओर उनका नैसर्गिक आकर्षण होना सर्वथा बोधगम्य है। परन्तु वे अनुचित साहित्यिक पक्षपात को सहन नहीं करते थे। तभी तो 'ब्रह्मचारी' के अनेक लेखों में उन्होंने पण्डित पद्मसिंह शर्मा के द्वारा महाकवि बिहारी के काव्य गुणों को उछालने के लिए संस्कृत कवियों की अशोभन आलोचना की भरपूर निन्दा की है।

शिष्य-मण्डली

पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदीजी की शिष्य-परम्परा पर्याप्तरूपेण लम्बी है। सहारनपुर के जैन विद्यालय, हरिद्वार के ऋषिकुल, जयपुर के महाराजा संस्कृत कालेज तथा काशी के हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत महाविद्यालय में अध्यापन करने के कारण इन्हें अनेक प्रवीण विद्वानों को तैयार करने का गौरव प्राप्त है। इनमें से कतिपय विद्वानों का ही परिचय दिया जाता है—

(१) **पं० परमेश्वरानन्द शास्त्री** – ये चतुर्वेदीजी के प्रधान शिष्य हैं जिन्हें गुरु के जीवित काल में ही महामहोपाध्याय की महनीय पदवी से सत्कृत होने का गौरव प्राप्त है। ये अनेक वर्षों तक लाहौर के सनातन धर्म संस्कृत कालेज के प्रधानाध्यापक रह कर अध्यापन करते थे। ये श्री लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय विद्यापीठ दिल्ली के अनेक वर्षों तक प्राचार्य थे। इनके द्वारा अनूदित तैत्तिरीय संहिता का प्रथम भाग (प्रथम काण्ड के प्रथम प्रपाठक के पञ्चम अनुवाक का परिष्कृत हिन्दी अनुवाद) तथा इनका अभिनन्दन ग्रन्थ (परमेश्वरानन्द ग्रन्थ) विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित हैं।

(२) **पं० लीलाधर शास्त्री**—सनातन धर्म के प्रौढ़ व्याख्याता होने के कारण ये 'व्याख्यान भास्कर' की उपाधि से मण्डित थे। चूरू (बीकानेर) के ब्रह्मचर्याश्रम तथा लायलपुर (पंजाब) के ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम के अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित होकर इन्होंने संस्कृत तथा सनातन धर्म की महती सेवा की।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) **पं० श्री कृष्णानन्द पन्त**—(साहित्याचार्य, एम० ए०) मेरठ कालेज में संस्कृत तथा हिन्दी विभाग के अध्यक्ष रहकर संस्कृत की विधिवत् उपासना अनेक वर्षों तक की।

(४) **पं० विद्याधर शर्मा**—(एम० ए०, एम० ओ० एल०) बीकानेर राज्य के डूँगर कालेज में प्रधान संस्कृत प्रोफेसर, दार्शनिकमूर्धन्य तथा काव्यकला कुशल विद्वान् थे।

(५) **पं० तारादत्त पन्त**—(एम० ए०, साहित्याचार्य) जोधपुर राजकीय संस्कृत कालेज के प्रधानाध्यापक थे।

(६) **पं० मणिशंकर शर्मा विद्याभास्कर**—(बड़ौदा) चतुर्वेदीजी के मान्य शिष्य थे।

७) चतुर्वेदीजी के ज्येष्ठ पुत्र **पं० देवीदत्त शर्मा**।

(८) कनिष्ठ पुत्र **पं० शिवदत्त चतुर्वेदी** दोनों ही संस्कृत साहित्य के अच्छे विद्वान् हैं। कनिष्ठ पुत्र यहीं हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत महाविद्यालय में साहित्यशास्त्र के सफल अध्यापक हैं। कविता भी अच्छी करते हैं तथा नाटकों के अभिनय व्यापार में भी वे बड़े सफल तथा ओजस्वी अभिनेता हैं।

(९) **पण्डित चक्रवर्ती रामाधीन चतुर्वेदी** - ये गिरिधर शर्माजी के अन्तिम कोटि के शिष्य हैं। व्याकरण शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् हैं तथा इसके अध्यापन में भी लब्धवर्ण हैं। इनका शोधनिबन्ध संस्कृत ग्रन्थों में भाषाविज्ञान के रहस्यों का उद्घाटन करने वाला महनीय ग्रन्थ है। हिन्दू विश्वविद्यालय में व्याकरण विभाग के रीडर हैं।[1]

●

१. चतुर्वेदीजी के शिष्यों के विस्तृत विवरण के लिए द्रष्टव्य 'संस्कृत रत्नाकर' का चतुर्वेदी विशेषांक (पृ० ६२-६६)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३४

चतुर्वेदी जी के सहयोगी

पण्डित देवनायकाचार्य

(आस्पद—उपाध्याय; उपाधि—व्याख्यान रत्नाकर)

पण्डित देवनायकाचार्य संस्कृत के गम्भीर विद्वान् थे। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इनके जीवन में विद्वत्ता के साथ कर्मठता भी विद्यमान थी। ये संस्कृत के केवल तलस्पर्शी विद्वान् ही नहीं थे, बल्कि भारतीय संस्कृति तथा सनातनधर्म के प्रभावशाली व्याख्याता भी थे। इनका व्यक्तित्व बड़ा ही भव्य तथा दिव्य था। गौर वर्ण, उन्नत ललाट, आजानुबाहु, मांसल शरीर तथा सुन्दर मुखाकृति ने इनके व्यक्तित्व को दिव्यता प्रदान की थी। इसके साथ ही श्वेत धौत वस्त्र, चीनांशुक से निर्मित अंग-रक्षा तथा उत्तरीय समधिक शोभा प्रदान करते थे। आप रामानुजी सम्प्रदाय के अनुयायी वैष्णव थे। अतः आपके गौर तथा उन्नत ललाट पर 'श्री' युक्त रामानुजी तिलक अत्यन्त अधिक शोभायमान होता था।

अध्यापन

पं० देवनायकाचार्य ने काशी के प्रसिद्ध वैयाकरण महाशय जी से व्याकरण तथा दर्शन शास्त्रों का समयिक अध्ययन किया था। इसके पश्चात् ये काशी की ही एक प्रसिद्ध पाठशाला में अनेक वर्षों तक अध्यापन का कार्य करते रहे। ये एक सफल अध्यापक थे। आपकी अध्यापन-कला की सफलता की चर्चा अल्पकाल में ही सर्वत्र होने लगी थी। इस प्रकार अध्यापक रूप में आपका यश सब जगह फैल गया। अन्त में इन्होंने साङ्गवेद विद्यालय में अवैतनिक अध्यापक के रूप में कार्य किया।

कर्मठता

पं० देवनायकचार्य जैसे कर्मठ विद्वान् की प्रतिभा के विकास के लिए संस्कृत पाठशाला का क्षेत्र अत्यन्त संकुचित था। अतः आपने इस पद का परित्याग कर दिया। महामहोपाध्याय पं० लक्ष्मणशास्त्री द्राविड ने जब काशी में **'वर्णाश्रम स्वराज्य संघ'** की सन् १९२७ ई० के आसपास स्थापना की तब पं० देवनायकाचार्य जी इसके प्रधान मंत्री नियुक्त किये गये। इस पद को इन्होंने अनेक वर्षों तक सुशोभित किया और बड़ी योग्यता तथा तत्परता के साथ अपने उत्तरदायी पद का भार वहन किया। सन् १९२९ ई० में जब काँग्रेस का अधिवेशन लाहौर में हुआ था, तब सनातनियों ने इसी संस्था के तत्त्वावधान में 'शारदा एक्ट' के विरोध में काँग्रेस अधिवेशन में अपना उत्कट विरोध प्रदर्शित किया था। इस विरोधी प्रदर्शन के नेता देवनायकाचार्य जी ही थे। अनेक वर्षों तक इन सनातनियों ने इनके नेतृत्व में अपना विरोध उग्र रीति से किया था। परन्तु अन्त में शान्त हो गये।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रधानमन्त्री के रूप में वर्णाश्रम संघ के सिद्धान्तों का समस्त देश में घूम-घूम कर प्रचार करना इन्हीं का कार्य था जिसे इन्होंने समुचित रीति से सम्पन्न किया। देश के विभिन्न भागों में इस संघ के जो विभिन्न अधिवेशन हुए उन सबको संघटित तथा संयोजित करना भी इन्हीं का कार्य था। आप भाषण की कला में अत्यन्त पटु थे। अतः आपने समस्त भारत में घूम-घूम कर सनातन धर्म का प्रचार किया। इस संस्था ने अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिए 'ब्राह्मण महासम्मेलन' नामक एक पत्र—जिसका नाम बाद में परिवर्तित होकर 'पण्डितपत्र' हो गया था—भी प्रकाशित किया था। इसके सम्पादन तथा प्रकाशन में भी आपका सक्रिय सहयोग था। इस प्रकार आपने अनेक वर्षों तक वर्णाश्रम स्वराज्यसंघ के सिद्धान्तों का प्रचार तथा प्रसार किया। कुछ वर्षों के पश्चात् जब इस संस्था के कार्यों में शिथिलता आने लगी तथा इसमें ह्रास के लक्षण दिखाई पड़ने लगे तब आपने इससे अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया।

अपने जीवन की गोधूलि में आपने काशीस्थ रामानुजी सम्प्रदाय की गद्दी की महन्थी स्वीकार कर ली थी और अपने जीवन के अंतिम काल तक इस गद्दी को सुशोभित करते रहे। इस प्रकार आपने अपने कर्मठ जीवन की समाप्ति शान्तिपूर्वक की।

एक संस्मरण

पं० देवनाकाचार्य को भाषण की अद्भुतशक्ति प्राप्त थी। आप वावदूक ही नहीं, वाग्मी भी थे। आप जब जोश में आकर भाषण देने लगते थे, तब आपकी वाणी में अद्भुत बल और तेज परिलक्षित होता था। आपके भाषण का प्रभाव श्रोता पर पड़े बिना नहीं रह सकता था। ऐसे ही एक पुरजोश भाषण की चर्चा यहाँ करना अप्रासंगिक न होगा।

संभवतः सन् १९३४ ई० की बात है। महात्मा गाँधी जेल से छूट कर बाहर आ गये थे। उन्होंने एक वर्ष तक राजनीति को 'तिलाञ्जलि' देकर केवल हरिजनोद्धार का कार्य करने का संकल्प ले लिया था। इसी सिलसिले में वे देश के विभिन्न नगरों का तूफानी दौरा करते हुए काशी भी पधारे थे। काशी में उनकी सभा का आयोजन सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल, कमच्छा के विशाल प्रांगण में किया गया था। इस सभा के संयोजक थे श्री श्रीप्रकाशजी। उस दिन कमच्छा की इस विशाल सभा में लाखों लोगों की भीड़ थी। सारा मैदान खचाखच भरा हुआ था। महात्मा गाँधी उचित समय से सभा में पधारे और उन्होंने धीर, गम्भीर तथा मन्द स्वर में मानवता के आधार पर हरिजनों को भी मंदिर प्रवेश का अधिकार देने पर बल दिया। इसके पश्चात् श्रीप्रकाश जी ने यह घोषणा की कि यदि कोई विरोधी मत वाला अपना विचार प्रकट करना चाहे, तो वह मंच पर आ सकता है। इस घोषणा के शीघ्र ही बाद एक भव्य व्यक्तित्व वाला विद्वान् मंच की सीढ़ियों पर जल्दी से चढ़ता हुआ दिखाई पड़ा। ये देवनायकाचार्य जी थे जो विरोधियों द्वारा आयोजित इस महती सभा में अपना मत उपस्थित करने के लिए आये थे। आपको केवल १० मिनट का ही समय दिया गया। परन्तु इस अल्प काल में आपने अपनी प्रगल्भ वाणी तथा अद्भुत वक्तृता शक्ति के द्वारा जो भाषण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया वह अत्यन्त प्रभावोत्पादक था। आपकी वाणी में बल था, जोश था और भाषण-प्रणाली में तेजी थी। आपने अनेक शास्त्रीय मतों का उद्धरण देकर हरिजनों को मंदिर प्रवेश का अधिकार न देने के पक्ष में अभिमत व्यक्त किया। लाखों लोगों से भरी उस सभा में इस विपक्षी विद्वान् के भाषण को, जिसमें जोश के साथ होश भी था तथा शास्त्र-वचन के सहित लौकिक तर्क भी मौजूद था, बड़ी शान्ति के साथ सुना। उस दिन इनके तर्कों से भले ही कोई सहमत न हुआ हो परन्तु इनकी भाषण कला से, वाग्मिता शक्ति से प्रभावित हुए बिना कदाचित् ही कोई व्यक्ति रहा हो। संभवतः उस दिन पं० देवनायकाचार्य जी ने अपने जीवन का सर्वोत्तम तथा सुन्दरतम भाषण दिया था। इस भाषण को सुनने से ऐसा ज्ञात हुआ कि इनकी वाणी में कितनी शक्ति है। उस ऐतिहासिक सभा का दृश्य आज भी मेरे मानसपटल पर सजीव रूप से अंकित है।

दर्शन के तत्त्वों के सुचारु रूप से समझाने तथा प्रकट करने की उनकी शक्ति प्रशंसनीय तथा अद्भुत थी। १९४२ ई० में नागपुर विश्वविद्यालय के अन्तर्गत 'राव बहादुर बापूराव दादा साहेब किनखोडे व्याख्यान माला' के अन्तर्गत इन्होंने भारतीय न्याय-शास्त्र के ऊपर अनेक व्याख्यान दिये थे जिनमें न्याय के स्वरूप, न्याय का वैशिष्ट्य, पश्चिमी न्याय के साथ भारतीय न्यायशास्त्र की तुलना आदि विषयों पर अनेक प्रवचन देने का सुयोग इन्हें प्राप्त हुआ था। यह व्याख्यानमाला बड़ी ही सफल थी तथा सर्वत्र समादृत हुई थी। व्याख्यान के अन्त में नागपुर के तत्कालीन हाईकोर्ट के जज न्याय-मूर्ति श्री भवानीशंकर नियोगी ने इनके विषय में जो उद्गार प्रकट किया था वह नितान्त चमत्कारी तथा आकर्षक है। उनके शब्द इस प्रकार हैं—"न्यायशास्त्र जैसे विशाल तथा दुरूह सिद्धान्तों का अत्यन्त सूक्ष्म विचार उपस्थित कर व्याख्याता देवनायकाचार्य जी ने विद्वानों को आज स्तब्ध तथा चकित कर दिया है। इस विषय में पण्डित जी की बड़ी चातुरी है। विद्या एवं भारतीय ज्ञान भाण्डार का रूप देखना हो तो सच्ची बात यह है कि इन विद्वानों को ही देखना चाहिए, भारतीय शास्त्रों की महत्ता देखकर चित्त मुग्ध हो जाता है।"[1]

पण्डित का जन्म उत्तर प्रदेश के जौनपुर मण्डल में हुआ हुआ था। ये सरयू-पारीण ब्राह्मण थे। कलकत्ता में कार दुर्घटना में इनकी असामयिक मृत्यु हो गई थी।

इस प्रकार महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी तथा रामानुजाचार्य श्री देवनायकाचार्य—दोनों ही संस्कृत विद्या तथा भारतीय संस्कृति के स्वयं नैष्ठिक उपासक थे तथा अपने गम्भीर चिन्तन तथा मनन का परिणत फल इन दोनों ने अपने भाषणों के माध्यम से भारतीय जनता तक पहुँचाया और इस कार्य में ये दोनों विद्वान् पूर्णतया सफल रहे। सनातन धर्म के प्रचार तथा प्रसार में इन दोनों की तार्किक बुद्धि तथा शास्त्रीय मेधा की जितनी प्रशंसा की जाय, स्वल्प ही होगी।

---

१. इस व्याख्यानमाला के वर्णन के लिए देखिये—
साङ्गवेद विद्यालय रामघाट, काशी का २४वाँ कार्य विवरण, (पृष्ठ २६-३८)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३५

पं० अयोध्यानाथ शर्मा

(आस्पद—पाण्डेय, उपाधि—ज्योतिषसम्राट्)

पण्डित सुधाकर द्विवेदीजी के ही समय में काशी के ईसरगंगी मुहल्ले में सरयूपारीण ब्राह्मणों का एक प्रतिष्ठित कुल निवास कर रहा था जिसमें फलित ज्योतिष विद्या का अनुशीलन बड़े आग्रह से किया जा रहा था। इस कुल में फलित ज्योतिष की गद्दी चलती थी जो आज भी विद्यमान है और अच्छे ढंग से अपनी स्थिति बनाये हुए है। इस गद्दी के लोकविश्रुत विद्वान् थे पण्डित अयोध्यानाथजी जो बड़े ही सदाचारी, कर्मनिष्ठ एवं फलित ज्योतिष के मर्मज्ञ मनीषी माने जाते थे। इनके यहाँ कुण्डली एवं विवाहादि कृत्यों के परामर्श के निमित्त जिज्ञासु लोगों का तांता लगा रहता था जिसमें दूर दराज के धनी मानी लोग एवं राजा-महाराजा भी उपस्थित होते थे। पं० अयोध्यानाथजी फलित के मार्मिक विद्वान् तो थे ही, फलतः सदाचारी ब्राह्मण होने के कारण भी इनका फलादेश बड़ा ही सटीक जमता था और इनकी भविष्यवाणी अधिकांश में सफल होती थी।

एक विषय का एक ही प्रसंग यहाँ उपस्थित किया जा रहा है। प्रथम यूरोपीय महायुद्ध का भयंकर रूप लोगों के सामने आ गया था। अंग्रेजी शासन को सहायता देना भारतीय राजा-महाराजाओं का परम पवित्र कर्तव्य माना जाता था। वे धन से, जन से तथा मन से अंग्रेजों की सहायता करने के लिए वचनबद्ध थे। इतना ही नहीं, वे स्वयं अपने को अंग्रेजी शासन को समर्पित कर देते थे और यूरोप के युद्ध के मोर्चे पर स्वय उपस्थित होकर युद्ध के संचालन में भरपूर सहायता देते थे। ऐसे ही अवसर पर जोधपुर के महाराजा को फ्रांस के युद्ध मैदान में जाने का अवसर उपस्थित हुआ, तब उन्होंने पण्डित अयोध्यानाथजी से जाने का मुहूर्त पुछवाया। पण्डितजी ने बहुत ही छान-बीन कर उन्हें एक शुभ मुहूर्त प्रस्थान का बतलाया जिस अवसर पर वे स्वयं फ्रांस पहुँचे। जर्मन सैनिकों के तीव्र आक्रमण से अंग्रेजों तथा मित्र राष्ट्रों की सेना विचलित हो उठी थी। नये-नये आग्नेय अस्त्रों का प्रथम बार प्रयोग सैनिकों में भय तथा आतङ्क पैदा करने में नितान्त कृतकार्य था। ऐसे ही एक भयानक मोर्चे पर जोधपुर नरेश की ड्यूटी थी। वे अपना कर्तव्य भली-भाँति निभा रहे थे कि जर्मनों द्वारा फेंका गया एक भयानक बम महाराजा की ओर आया, परन्तु भगवान् की दया से वह उनसे कुछ दूर पर फूट कर स्वयं नष्ट हो गया। महाराजा इस प्रहार से बाल-बाल बच गये। युद्ध समाप्त होने पर वे कुशलपूर्वक अपनी राजधानी जोधपुर लौट आये और युद्ध सेवा के निमित्त तत्कालीन वाइसराय के द्वारा अनेक प्रकार से सत्कृत तथा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समादृत किये गये। उनका बड़ा नाम हुआ। अंग्रेजों में उनकी वीरता तथा प्रताप की तूती बोलने लगी।

जोधपुर नरेश ने सानन्द भारत आने पर पण्डित अयोध्यानाथजी को अपनी राजधानी में बुलाया और अपनी युद्ध-यात्रा से सकुशल लौट आने की तथा बमप्रहार से बाल-बाल बचने की घटना कह सुनाई। ज्योतिषीजी के शुभ प्रयाण मुहूर्त की प्रशंसा करते हुए उन्होंने इस अवसर पर कुछ माँगने का इनसे आग्रह किया। पण्डितजी ने इसे यों ही टाल दिया, परन्तु जब महाराजा ने विशेष आग्रह किया, तब पण्डित अयोध्यानाथजी ने जोर देकर कहा—"महाराज, आपका आग्रह उपेक्षणीय नहीं है। मेरी अभिलाषा अवश्य पूरी करें। मैं यही चाहता हूँ कि जिस बम के प्रहार से आप बचे हैं, उसी की आकृति का एक पार्थिव शिवलिंग बनाकर आप नित्य प्रेमपूर्वक पूजन किया करें—बस यही मेरी माँग है, यही मेरी याचना है।" महाराजा ज्योतिषीजी की इस अभिलाषा को सुनकर गद्गद हो गये। उनकी निःस्पृहता पर वे रीझ उठे। पण्डित अयोध्यानाथजी की बात उन्होंने मान ली, उनका विधिवत् सत्कार किया तथा उसी दिन से वे पार्थिव पूजन करने लगे।

फलित ज्योतिष के चमत्कार की यह कहानी घर-घर प्रसिद्ध हो गई। ऐसे विज्ञ ज्योतिषी थे पं० अयोध्यानाथजी।

पण्डित अयोध्यानाथजी एक रसिक कवि भी थे। ये संस्कृत एवं हिन्दी में बड़ी ही सरस कविता किया करते थे। वह समस्यापूर्ति का युग था। ये नाना प्रकार की समस्याओं की पूर्ति अनोखे ढंग से किया करते थे। उर्दू में भी ये कविता करते थे और अच्छी कविता करते थे। उस दिन राय कृष्णदासजी ने उनकी एक बड़ी ही चमत्कार-भरी सूक्ति कह सुनाई। इस मक़ते को पूरा करना था—

हैं वही काफिर कि जो
बन्दे नहीं 'इसलाम' के।

इसका अर्थ है कि जो व्यक्ति इसलाम अर्थात् मुसलमानी धर्म के सेवक नहीं हैं वे काफिर हैं—बेधर्मी हैं। यह पंक्ति तो हिन्दू धर्मानुयायियों के ऊपर एक गहरा प्रहार ही है। पण्डितजी ने इसकी पूर्ति इतनी कुशलता और मनोज्ञता से की कि वह पढ़ने ही लायक है—

लाम के मानिन्द हैं
गेसू मेरे घनश्याम के,
हैं वही काफिर कि जो
बन्दे नहीं इस 'लाम' के॥

आशय है—मेरे घनश्याम कृष्णचन्द्र के गेसू-घुँघराले बाल-उर्दू अक्षर 'लाम' के समान हैं। उर्दू का लाम अक्षर ऊपर से नीचे आकर मुड़ जाता है। हमारे कृष्णचन्द्र के बाल भी उसी प्रकार सिर से नीचे आकर गरदन के पास मुड़ गये हैं। जो व्यक्ति इस 'लाम' के बन्दे नहीं हैं वे ही यथार्थ में बेधर्मी हैं—काफिर हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ति का चमत्कार देखने ही योग्य है। मूल में इसलाम' एक ही शब्द था, परन्तु पण्डित अयोध्यानाथजी ने इस शब्द को दो शब्दों में तोड़कर एक बड़ा ही सुभग चमत्कार उत्पन्न कर दिया है तथा हिन्दू धर्मावलम्बियों को इसलाम के कठोर प्रहार से बड़ी खूबसूरती से बचा लिया है !!!

पं० अयोध्यानाथ जी का फलित ज्योतिष का ज्ञान बड़ा ही अपूर्व तथा विस्मयजनक था। कुण्डली के आधार पर किया गया इनका फलादेश बड़ा ही सटीक उतरता था। इसीलिए इनके यहाँ जिज्ञासुजनों की बड़ी भीड़ लगा करती थी। इसके साथ ही साथ ये एक बड़े साधक भी थे। ये गोमाता के बड़े निष्ठावान् भक्त थे। दैनिक कार्य आरम्भ करने के पूर्व ये गोमाता की षोडशोपचार पूजा करने के पश्चात् ही अपनी गद्दी पर बैठते थे और ज्योतिष के कार्य का श्रीगणेश करते थे। इन्होंने संस्कृत की एक पाठशाला भी खोल रखी थी जिसमें पढ़ने वाले छात्रों के भोजन-छाजन का प्रबन्ध ये स्वयं करते थे। इस प्रकार ये जो धन कमाते थे उसका सदुपयोग भी किया करते थे।

पं० अयोध्यानाथ जी के विद्यावैभव से प्रभावित होकर ब्रिटिश सरकार ने इनको महामहोपाध्याय की उपाधि से अलंकृत किया था। ये संस्कृत की सुन्दर कविता भी करते थे। इन्होंने भगवान् राम और जानकी की स्तुति में एक 'षट्पदी' की भी रचना की थी।

शर्माजी से प्राचीन

गुजराती ज्योतिषी

काशी में गुजराती ज्योतिषियों की प्रकृष्ट प्रभुता विराजती रही है। ज्योतिषशास्त्र-मार्तण्ड पण्डित **दुर्गाशंकरजी पाठक** का संक्षिप्त परिचय पहले दिया जा चुका है। उन्हीं के प्रधान शिष्य गणकाग्रणी **पण्डित रामनाथजी ज्योतिषी** का जीवनवृत्त संक्षेप में यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

विक्रम संवत् १८५६ (१८०२ ई०) की रामनवमी तिथि को **भट्ट श्री रामनाथ ज्योतिषी** का जन्म काशी नगरी में हुआ। इनके पिता का नाम भट्ट श्री रघुनाथजी था। इनके पूर्वपुरुष भट्ट **श्री पुरुषोत्तमजी** विक्रम संवत् १७२७ (१६७० ई०) में गुजरात से काशी में निवास करने की इच्छा से आये और यहीं वे जमकर रहने लगे। वे बड़े ही विज्ञ पौराणिक थे श्रीमद्भागवत के मर्मज्ञ विद्वान् तथा भागवती कथा के अलौकिक व्याख्याता व्यास। इनका वंश आज भी काशी में विद्यमान है। भट्ट श्री रामनाथजी गुर्जर ब्राह्मणान्तर्गत श्री गौड जाति के थे और स्वजातीय महनीय दैवज्ञ पण्डित दुर्गाशंकरजी पाठक के पट्टशिष्य थे। त्रिस्कन्ध ज्योतिःशास्त्र के पारंगत विद्वान् होने के अतिरिक्त ये श्रौत अनुष्ठानों में सदा तत्पर रहते थे। कोटा, झालरापाटन आदि रियासतों के राजा और स्थानीय गोपालमन्दिर के तत्कालीन अधिष्ठाता **गोस्वामी श्री गिरिधरजी महाराज** आपके प्रति अत्यन्त पूज्यभाव रखते थे। ये ज्योतिषशास्त्र में उल्लिखित यन्त्रों के निर्माण में अत्यन्त कुशल थे। सिद्धान्त ज्योतिष के अनुसार 'खगोल'-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्धी अनेक अनुपलब्ध यन्त्रों का निर्माण इन्होंने स्वयं अपनी बुद्धि से किया था, जिनमें **'ध्रुवभ्रमण'** नामक यन्त्र मुख्य है। सुनते हैं कि आकाश चक्र में भ्रमण करने वाली द्वादश राशियों के अद्भुत एवं अद्यावधि अप्रकाशित चित्र आपके पौत्र पण्डित श्री गौतमजी ज्योतिषी के पास विद्यमान हैं। आपने ज्योतिष शास्त्र के अनेक विद्वानों को तैयार किया था जिनमें **श्री अनन्तराम जी ज्योतिषी, श्री नारायणदेव** दैवज्ञ आदि मुख्य थे।

इनका निधन विक्रम संवत् १९२५ (१८६८ ई०) में काशी में हुआ। इनका चित्र सांगवेद विद्यालय (रामघाट, काशी) में स्थापित किया गया है।[1]

शर्माजी के पट्ट शिष्य

पण्डित हृषीकेश उपाध्याय

(आस्पद -- उपाध्याय, उपाधि—ज्योतिषरत्नाकर)

काशी में आधुनिककाल के ज्योतिर्विदों में सुव्यवस्थित 'पञ्चाङ्ग' के प्रणेता के रूप में पण्डित हृषीकेश उपाध्याय का नाम निश्चयेन शीर्षस्थान पर विराजमान है। इनका जन्म काशी के ही मदैनी मुहल्ले में हुआ। आपके पिता का नाम पण्डित **रामेश्वरदत्त उपाध्याय** था जो अपने समय के महनीय ज्योतिषियों में गिने जाते थे। ये साधारण कोटि के व्यक्ति न होकर बड़े कर्मठ धार्मिक एवं समाजसेवी पुरुष थे। काशी नगरी के इतिहास में गतशताब्दी के तृतीय चरण के आसपास सम्पन्न होने वाला धार्मिक संघर्ष रामहल्ला' के नाम से आज भी वृद्धजनों के स्मृतिपथ मे विराजमान है। बात यह हुई कि मदैनी मुहल्ले में भगवान् रामचन्द्रजी का एक बड़ा ही प्राचीन मन्दिर है जो काशीवासियों के द्वारा समादृत एवं पूजित है। मदैनी में गंगाजी से पानी खींचकर नगरवासियों को पानी पहुँचाने के लिए पानी की मशीन बैठाई जाने लगी। स्थान संकीर्ण था। उसे विस्तृत बनाने के उद्देश्य से इस प्राचीन राममन्दिर को एकदम ध्वस्त करने की योजना अंग्रेजी सरकार ने बना रखी थी। जब यह कार्यरूप में परिणत किया जाने लगा, तब काशी की धार्मिक जनता ने इसका कड़ा प्रतिवाद किया। पुलिस के साथ उसका बड़ा संघर्ष हुआ। विद्रोह की आग पूरे शहर में फैल गई। इसका नेतृत्व पण्डित रामेश्वरदत्त उपाध्याय ने बड़े उत्साह एवं ओजस्विता के साथ किया। इसके लिए वे पकड़े गए। जेल में भी उन्हे जाना पड़ा, परन्तु अपने निश्चय से वे बिल्कुल नहीं हटे। काशी के विद्वानो से इस मन्दिर को अन्यत्र ले जाने के लिए व्यवस्था माँगी गई। पण्डितों ने एक स्वर से इसे धार्मिक दृष्ट्या नितान्त अनुचित, अव्यावहारिक एवं अशास्त्रीय बतलाया। शिक्षित जनमत के सामने सरकार को झुकना पड़ा था। राम-

---

१. यह विवरण 'साङ्गवेद विद्यालय' के दशम वार्षिक विवरण (पृ० ७, संवत् १९८७ विक्रमी) के आधार पर तैयार किया गया है। इसके लिए लेखक विद्यालय का आभार मानता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्दिर वहाँ से नहीं हटा और इस संघर्ष में जेल में जाने वाले सब व्यक्तियों की रिहाई कर दी गई। पण्डित रामेश्वरदत्त जी ने इस संघर्ष में अपने को डाल कर बड़ा कष्ट उठाया। अन्त में उनके सिद्धान्त की विजय हो गई। यही संघर्ष 'रामहल्ला' के नाम से प्रसिद्ध है।

पण्डित रामेश्वरदत्तजी बड़े ही विज्ञ दैवज्ञ थे। ये अपने ही बल-बूते पर उस समय एक लघुकाय पंचांग निकाला करते थे जो छोटे आकार में बीस-पचीस पृष्ठों का हुआ करता था और दो-चार आने में बिका करता था। उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र हृषीकेशजी से आग्रहपूर्वक कहा था—"इस छोटे पंचांग की अवहेलना नहीं करना। यही पंचांग तुमको और तुम्हारे परिवार को कीर्तिशाली बनायेगा। इसे आस्थापूर्वक विशुद्ध रीति से निकालते जाना। यह तुम्हारी विद्या एवं लक्ष्मी दोनों का प्रसार करने वाला सिद्ध होगा।" उनकी वाणी अक्षरशः सिद्ध हुई। हृषीकेश जी ने अपने पूज्य पिता जी की आज्ञा का अक्षरशः पालन किया। आज यह आकार-प्रकार में विशाल तथा सुव्यवस्थित बन कर **'हृषीकेश पंचांग'** के नाम से भारत में विख्यात है। ज्योतिष के मर्मज्ञ विद्वान् होने के कारण हृषीकेशजी ने अपनी व्यावहारिक बुद्धि से इसके आकार को ही वृहद् रूप नहीं दिया, प्रत्युत इसे आवश्यक धार्मिक तथा ज्योतिष-सम्बन्धी सामग्री से भी सम्पन्न कर इसका कायाकल्प ही कर दिया। पण्डित हृषीकेश उपाध्याय के जीवन की यह महती उपलब्धि है। यह बड़े ही हर्ष का विषय है कि उनके सुयोग्य पौत्रों ने अपने प्रपितामह तथा पितामह की कीर्ति को अक्षुण्ण बनाये रखने में अपना पूरा सहयोग तथा अध्यवसाय लगा रखा है। ज्योतिष परम्परा का यही पूरा निर्वाह है—आदरणीय तथा माननीय।

पण्डित हृषीकेशजी ने गणित ज्योतिष का अध्ययन म० म० सुधाकर द्विवेदीजी से तथा फलित का अनुशीलन पण्डित अयोध्यानाथ शर्मा से किया। शर्माजी की फलित विद्या की जानकारी बड़ी ही गम्भीर थी। हम ऊपर देख चुके हैं कि उन्होंने अपनी ज्योतिषीय गणना से अलौकिक कीर्ति अर्जित की थी। इन दोनों गुरुओं के चरणों में बैठ कर पण्डित हृषीकेश जी त्रिस्कन्ध ज्योतिष का गम्भीर अनुशीलन कर प्रथम श्रेणी के ज्योतिषियों में गिने जाने लगे। इन्होंने ज्योतिष विषय में 'आचार्य परीक्षा' संस्कृत कालेज से उत्तीर्ण की। ज्योतिष के सूक्ष्म रहस्यों के उद्घाटन में ये सर्वथा कृतकार्य थे। आचार्य परीक्षा पास करने के अनन्तर ये प्रतापगढ़ के स्कूल में संस्कृत पढ़ाने लगे। उसी समय किसी महाराष्ट्री ज्योतिषी ने सुधाकर द्विवेदी की पंचांग-सम्बन्धी मान्यताओं में अनेक त्रुटियाँ दिखला कर उनकी विमल कीर्ति को धूमिल करने की दुष्ट चेष्टा की। इस पर हृषीकेशजी ने उस ज्योतिषी के लेख का खण्डन युक्तियों तथा तर्कों की सहायता से इतनी विद्वत्ता से किया कि इनके तर्कों के खण्डन करने का साहस उसे नहीं हुआ। इस लेख में इन्होंने अपना नाम नहीं दिया था, परन्तु सुधाकरजी को समझते देर न लगी कि ऐसा युक्तिपूर्ण लेख लिखने की क्षमता हृषीकेशजी को छोड़कर उनके किसी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य छात्र में नहीं है। गुरुजी ने अपनी प्रसन्नता का परिचय शिष्य को संस्कृत कालेज में समुचित पद पर नियुक्त करा कर ही दिया। तब से पण्डित हृषीकेश जी ने स्कूल की वह नौकरी छोड़ दी और संस्कृत कालेज में ज्योतिष के प्राध्यापक पद पर नियुक्त होकर काशी में रहने लगे। कालक्रम से उन्नति कर ये ज्योतिष विभाग के अध्यक्ष पद पर विराजमान रहे। अनेक सुयोग्य शिष्यों को तैयार करने का गौरव इन्हें प्राप्त है।

स्वभाव से ये बड़े ही हँसमुख, प्रसन्नवदन तथा निश्छल व्यक्ति थे। अपने अभिन्न-हृदय मित्र म० म० देवीप्रसाद कविचक्रवर्तीजी के साथ हास्य तथा विनोद करते हुए लेखक ने इन्हें अनेक बार देखा है। चौक के पास सत्यनारायण मन्दिर के सामने ही वैद्यराज रघुवीर जी के औषधालय में काशी के इन तीनों मस्त पण्डितों को हास्य-विनोद से लोट-पोट होकर अपनी सन्ध्या बिताते हुए देख कर कौन व्यक्ति इनके जीवन्त व्यक्तित्व से प्रभावित नहीं होता था? सरस्वती के साथ ही साथ भगवती लक्ष्मी की इनके ऊपर अटूट अनुकम्पा थी जिसे विशेष पुण्य का ही फल मानना चाहिए। इनके पुण्य तथा सुकृत का ही यह परिणाम है कि इनका परिवार लक्ष्मी और सरस्वती का कृपाभाजन बना हुआ पाण्डित्य की मर्यादा को आज भी बनाये हुए है। तथास्तु।

उपाध्यायजी के सहयोगी मैथिल दैवज्ञ

पण्डित सीताराम झा

(आस्पद—झा; उपाधि—ज्योतिषरत्नाकर)

पण्डित सीताराम झा त्रिस्कन्ध ज्योतिष (गणित, फलित तथा रमल) के आदरणीय आचार्य एवं श्रद्धेय विद्वान् थे। इनका जन्म मिथिला क्षेत्र के दरभङ्गा जिले के 'चौगमा' नामक ग्राम में विक्रम संवत् १९४७ (१८९० ई०) में हुआ था। काशी में आकर इन्होंने तत्कालीन माननीय ज्योतिर्विदों से ज्योतिषशास्त्र का विधिवत् अध्ययन कर इस शास्त्र में अद्भुत प्रवीणता अर्जित की। कलकत्ते से ज्योतिषतीर्थ एवं राजकीय संस्कृत कालेज से ज्योतिषाचार्य की पदवी प्राप्त की। विलक्षण प्रतिभा से सम्पन्न होने के कारण विभिन्न शास्त्रों में भी इनकी गति थी, परन्तु ज्योतिषशास्त्र में तो इनकी वैदुषी सर्वतोभावेन आकर्षक तथा विशाल थी। १९२१ ई० में ये 'संन्यासी पाठशाला' में ज्योतिष के अध्यापक नियुक्त हुए और ४१ वर्षों तक लगातार अध्यापन करते हुए १९६२ ई० में विद्यालय के अध्यक्ष पद से अवकाश ग्रहण किया। अन्यत्र जाने के प्रलोभन आये, परन्तु इन्होंने इस विद्यालय को छोड़ने का स्वप्न में भी विचार नहीं किया। पण्डित सीतारामजी स्वयं कहते थे—"विद्यालय के संस्थापक **स्वामी गोविन्दानन्दजी** ने मेरा हाथ पकड़कर अध्यापक की गद्दी पर बैठाया था और कहा था कि इसे छोड़कर तुम अन्यत्र नहीं जाना, यहीं से तुम फूलोगे-फलोगे। मैंने उनकी आज्ञा का अक्षरशः अनुसरण किया। उनकी वाणी निःसन्देह सत्य हुई। इस विद्यालय में अध्यापन करना मैंने अपना नैष्ठिक कर्त्तव्य समझा और बाबा विश्वनाथ की दया से ऐसा फूला-फला कि समस्त भारत में प्रसिद्ध विद्वान् हो गया।" फलतः पण्डित

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीताराम झा का संन्यासी कालेज से अविच्छिन्न सम्बन्ध स्थापित हो गया। सेवा-निर्मुक्त होने के बाद भी ये अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक इसकी सेवा में जुटे रहे। इनके लिए विद्यालय में एक स्वतन्त्र कमरा दे दिया गया था। वहाँ ये आते-जाते तथा लेखन कार्य करते थे। भोजन तथा शयन अन्यत्र करते थे। इस प्रकार सुरभारती की निश्छल सेवा करते हुए ये पन्द्रह जून, १९७५ ई० में काशी में ब्रह्मलीन हो गये। समस्त दीर्घ जीवन अध्ययन, अध्यापन एवं लेखन-कार्य में बिताकर इन्होंने विशद कीर्ति अर्जित की।

सम्मान

दरभङ्गानरेश सर रमेश्वर सिंह ने धौत वस्त्र के साथ प्रतिष्ठा-पत्र देकर आपको सम्मानित किया। उनके उत्तराधिकारी सर कामेश्वर सिंह ने भी इनके वैदुष्य एवं काव्यचातुरी से चमत्कृत होकर इन्हें सुवर्णपदक देकर इनका सम्मान किया। सन् १९५९ ई० में वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा दो सौ रुपयों की मासिक वृत्ति के साथ आपको सम्मानित प्राध्यापक के पद पर नियुक्त किया गया। सन् १९६१ ई० में बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने डेढ़ हजार रुपयों का वयोवृद्ध साहित्यिक पुरस्कार प्रदान कर आपका गौरव बढ़ाया। गीर्वाण वाग्वर्धिनी सभा (वाराणसी) ने 'ज्योतिष-रत्नाकर' सम्मानोपाधि से तथा काशीस्थ संन्यासिसंस्कृत कालेज ने 'ज्योतिष-सम्राट्' की उपाधि से आपकी प्रौढ़ प्रतिभा एवं विलक्षण विद्वत्ता को सम्मानित किया।

आप मैथिली भाषा के वर्तमान कवियों में मूर्धन्य माने जाते थे। आपकी मैथिली कविता बड़ी सुन्दर, हृदयावर्जक एवं प्रभावशाली होती है। इन्होंने **अम्बचरित** नामक महाकाव्य का निर्माण कर मैथिली के साहित्य को समृद्ध बनाया है।

ग्रन्थ-रचना

अध्यापन कार्य करते हुए भी ये ग्रन्थ-रचना में अपने को लगाये रहते थे। ज्योतिष के दर्जनों प्राचीन ग्रन्थों की व्याख्या तथा उपपत्ति लिखने के अतिरिक्त इन्होंने अनेक मौलिक ग्रन्थों का भी निर्माण किया। ये शुष्क गणित के अध्ययन-अध्यापन में अपना समय लगाने वाले केवल दैवज्ञ नहीं थे, प्रत्युत अपनी मातृभाषा मैथिली में कोमलकान्त पदावली से सम्पन्न ललित महाकाव्य के प्रणयन करने में लब्धकीर्ति आशुकवि थे। जिस प्रकार इनके ज्योतिष ग्रन्थ ज्योतिषाचार्य की परीक्षा में निर्धारित किये गये हैं, उसी प्रकार इनके मैथिली में निबद्ध काव्य बिहार के विश्वविद्यालयों में बी० ए० तथा एम० ए० कक्षाओं में पाठ्यग्रन्थ के रूप से पढ़ाये जाते हैं। इनके कतिपय संस्कृत ग्रन्थों के नाम हैं—**अहिबल चक्र, अबकहडा, ताजिक नीलकण्ठी व्याख्या, बृहज्जातक की टीका, सूर्यसिद्धान्त की व्याख्या, मुहूर्त्त मार्तण्ड** आदि। आपने मौलिक ज्योतिष ग्रन्थों के निर्माण से ज्योतिषीय साहित्य की निश्चयेन समृद्धि की है। ऐसे ग्रन्थों में कतिपय ग्रन्थों के नाम ये हैं—**गणित सोपान, गणितचन्द्रिका, गोल परिभाषा, गोलबोध, जन्मपत्रविधान, ज्योतिषशास्त्र प्रयोजन** आदि।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनका सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है—**बृहत्-पाराशर-होराशास्त्र**। इसकी हस्तलिखित प्रतियों को बड़े परिश्रम से एकत्र कर आपने इस ग्रन्थरत्न का एक विमर्शात्मक संस्करण सम्पादित किया है। इस ग्रन्थ के अनुशीलन से इनकी विस्तृत वैदुषी के आयाम से विद्वानों को सद्यः परिचय मिलता है।

इनकी रचित मैथिली कविता सुन लीजिए—

जौ नहिं विद्यापति लितथि
मिथिला में अवतार।
तौ की होइत कतहु पुनि
भाषा कवित प्रचार॥

मैथिली भाषा की पुस्तकें— **अम्बचरित** (महाकाव्य), **भूकम्प वर्णन, अलंकार-दर्पण तथा भगवद्गीता का पद्यात्मक अनुवाद, मैथिली काव्योपवन** आदि। **वर्ण-व्यवस्था का इतिहास तथा कालपञ्चाङ्गविवेक** की रचना हिन्दी में कर झाजी ने राष्ट्र-भाषा के प्रति भी अपनी आदरभावना प्रदर्शित की है। इनके मुद्रित ग्रन्थों की संख्या ६७ बतलाई जाती है।

स्वभाव

अपनी विलक्षण प्रतिभा के कारण ये '**मिथिला के सूर्य**' कहे जाते थे। दरभङ्गा-नरेश की सभा में आपको राजकीय सम्मान प्राप्त हुआ था और ज्योतिष सिद्धान्तों की मीमांसा के प्रसंग में इन्हें अनेक सम्मेलनों में सम्मानित किया गया था। इनका स्वभाव बड़ा ही सौम्य, निश्छल तथा आवर्जक था। विचार इनके प्रगतिवादी थे, तो स्वभाव उदार था। छात्रों को विद्या-वितरण करने में ये कभी भी कार्पण्य तथा संकुचित मनोवृत्ति का परिचय नहीं देते थे। इनका हृदय महान् था। जो भी व्यक्ति इनसे जिज्ञासु बनकर किसी विकट समस्या के समाधान के लिए आता, ये प्रसन्नतापूर्वक उसका समाधान करते थे। शास्त्र के तत्त्वों को अपनी मुट्ठी में दबाकर छात्रों का गुमराह करने वाली आधुनिक प्रवृत्ति से कोसों दूर थे। फलतः अपने मुख से एवं लेखन से विद्या को मुक्तहस्त होकर इन्होंने लुटाया और अलौकिक कीर्ति प्राप्त की।

यत् पुण्यं ज्योतिषं शास्त्रमनभिज्ञैः प्रदूषितम्।
संशोध्य सुधिया येन, तत् पवित्रीकृतं पुनः॥
त्रिस्कन्धज्योतिषाचार्यो मैथिलीकाव्य-कोकिलः।
श्री सीताराम झा विद्वद्-विदितोऽसौ विराजते॥

संन्यासी संस्कृत कालेज का संक्षिप्त परिचय

इनके विद्यालय का संक्षिप्त परिचय भी देना यहाँ अप्रासंगिक नहीं होगा—

संन्यासी पाठशाला के नाम से आज से ७१ वर्ष पूर्व विक्रम संवत् १९६२ वैशाख कृष्ण सप्तमी को (२१ अप्रैल, १९०६ ई०) एक संस्कृत विद्यालय की स्थापना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशी की इस पवित्र नगरी में संन्यासियों में गुरुस्थानीय विद्वद्वरेण्य **स्वामी गोविन्दानन्द जी** ने बड़े उत्साह तथा महनीय उपकार की दृष्टि से की। उनका उद्देश्य बड़ा ही पवित्र तथा महत्त्वपूर्ण था—साधु संन्यासियों को शिक्षा देना, जिससे वे अपना व्यक्तिगत कल्याण तथा देश का सार्वजनिक मंगल सिद्ध कर सकें। उन्हें शिक्षित करने की उस युग में कोई व्यवस्था नहीं थी। एक भी संस्कृत पाठशाला इस कार्य की सिद्धि के लिए स्थापित नहीं थी। संन्यासियों के प्रति विद्वान् गृहस्थ पण्डितों की दृष्टि कालुष्यपूर्ण थी। फलतः बड़े ही शुभ मुहूर्त में इस पाठशाला की स्थापना **अपारनाथ मठ** में (जो ढुण्ढिराज गणेश के समीप ही अवस्थित है) की गई। स्वामी गोविन्दानन्दजी ब्रह्मनिष्ठ महात्मा थे। वे साधक एवं विद्वान् दोनों थे। उन्होंने ब्रह्मसूत्र **शारीरक भाष्य** के प्रथम अध्याय का हिन्दी अनुवाद बड़ी ही सुबोध भाषा में किया था। इसका प्रकाशन संन्यासी पाठशाला की ओर से ही किया गया है। उनके अलौकिक पाण्डित्य से प्रभावित होकर संन्यासी पाठशाला के प्रधानाध्यापक महाकवि देवीप्रसाद शुक्ल कविचक्रवर्ती ने संस्कृत पद्यों में **'चित्रोपहारः'** नामक अद्भुत खण्डकाव्य की रचना की थी जिसमें स्वामीजी के वैदुष्य तथा लोकचातुर्य का बड़ा ही आकर्षक वर्णन किया गया है। इन्होंने अपनी विद्या तथा बुद्धि के बल पर बहुत सम्पत्ति अर्जित की। २७ मई, सन् १९२३ ई० में स्वामीजी काशी में ब्रह्मलीन हुए थे।

तदनन्तर उन्हीं के साधक शिष्य **स्वामी जयेन्द्रपुरी महाराज** संन्यासी पाठशाला के अध्यक्ष मनोनीत किये गये एवं गोविन्द मठ के (जिसके ट्रस्ट के अन्तर्गत संन्यासी पाठशाला का सुव्यवस्थित प्रचलन होता था) वे मण्डलेश्वर निर्वाचित किये गये। वे अलमोड़ा जिले के एक पर्वतीय ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हुए थे। वेदान्त से मण्डित होने पर उनका वैदुष्य चमक उठा था। वे वेदान्त के बड़े विद्वान्, त्यागी महात्मा एवं प्रभावशाली वक्ता थे। वे विपुल लोकचातुरी के धनी व्यक्ति थे। उन्हीं के कार्यकाल में पाठशाला के जीवन में एक नया मोड़ आया। पाठशाला की सुव्यवस्था तथा शिक्षा के नियन्त्रित प्रसार के लिए उन्होंने १९३९ ई० में 'संन्यासी संस्कृत कालेज एसोसिएशन' की स्थापना की तथा वे उसके आजीवन अध्यक्ष मनोनीत हुए। उनका कार्यक्षेत्र सीमित नहीं था। इन्होंने गुजरात में संस्कृत प्रचार एवं अध्यात्म के प्रसार के लिए नितान्त दत्तचित्त से अहमदाबाद में साबरमती नदी के तट पर विशाल **संन्यास-आश्रम** की स्थापना कर तदङ्गभूत 'काशी विश्वनाथ संस्कृत महाविद्यालय' एवं पञ्चदेवों के **भव्य मन्दिर** का निर्माण कर अपनी उभय लोकचातुरी का अद्भुत परिचय दिया। सन् १९४१ ई० में जयेन्द्रपुरी महाराज अहमदाबाद में ब्रह्मलीन हुए। वे कहा करते थे—

अहन्ताममतात्यागः कर्तुं यदि न शक्यते।
अहन्ताममताभावः सर्वत्रैव विधीयताम्॥

इनके बाद **संन्यासी संस्कृत कालेज** (संन्यासी पाठशाला का नया परिवर्तित अभिधान) की व्यवस्था का भार एसोसिएशन के नवीन सभापति स्वामी **कृष्णानन्दजी महा-**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज के ऊपर आ पड़ा जिसका निर्वाह उन्होंने अपनी व्यावहारिक बुद्धि के द्वारा बड़ी योग्यता से सम्पन्न किया। वे व्यावहारिक चातुरी के धनी सन्त थे। वे गोविन्द मठ के मण्डलेश्वर निर्वाचित किये गये। फलतः मठ के सब ट्रस्टों को, विशेष कर इस संन्यासी कालेज को, पूरी आर्थिक सहायता देकर इसके सुचारु सम्पादन तथा परिवर्धन में विशेष योगदान दिया। वे अद्भुत वक्ता थे जिनके भाषण को सुनने के लिए काशी एवं गुजरात का बुद्धिजीवी वर्ग सदा लालायित रहता था। उत्तर प्रदेश के सहारनपुर के आस-पास सारस्वत ब्राह्मण कुल में उत्पन्न स्वामीजी जयेन्द्रपुरीजी के साधक शिष्य थे। उन्होंने गुरु के कार्य को अबाधित गति से आगे बढ़ाया। गुरुजी के समान ही इनका निधन १९७८ ई० में अहमदाबाद नगर में हुआ और भरोच नगर के पास नर्मदाजी में इन्हें जलसमाधि दी इन्हीं के उत्तराधिकारी स्वामी अतुलानन्द पुरीजी ने, जो उक्त एसोसिएशन के वर्तमान आजीवन सभापति हैं।

यह तो संन्यासी कालेज की सुव्यवस्थित परिबृंहण की रामकहानी है। इसके विद्यादान की कथा भी अद्भुत है। यह नये पण्डितों की शिक्षणस्थली रही है जहाँ से वे अध्यापन कला में सुशिक्षित होकर भविष्य में उन्नति कर बड़े विद्यालयों एवं सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में अध्यापक की कीर्ति अर्जित कर रहे हैं। इस कालेज के अध्यक्षों में दो-तीन व्यक्ति बड़े आकर्षक अध्यापक रहे हैं—(१) महामहोपाध्याय देवीप्रसाद शुक्ल १६ सालों तक यहाँ प्रिन्सिपल रहे (सन् १९१०–१९२६ ई०)।

(२) **पण्डित शुभकरण मिश्र**—नौ वर्षों तक प्राचार्य थे (१९३२ ई० १९४१ ई० तक)।

(३) म० म० पण्डित हरिहरकृपालु द्विवेदी चार वर्षों तक प्राचार्य थे (१९४३ ई०–१९४७ ई० तक)।

(४) पण्डित सीताराम झा दो वर्षों तक प्राचार्य थे (१९६० ई० १९६२ ई० तक)।

संन्यासी संस्कृत कालेज ने अपनी संस्था से सम्बद्ध विद्वज्जनों एवं संन्यासियों के रचित नवीन ग्रन्थों का प्रकाशन भी किया है। इनमें स्वामी **शंकरचैतन्य भारती** जी द्वारा प्रणीत 'खण्डन खण्ड खाद्य' की **शारदा** नामक टीका, इस टीका की व्याख्या तथा टिप्पणी एवं **दर्शन सर्वस्वम्** (पूरे ग्रन्थ की प्रमेयबहुल भूमिका स्वतन्त्र रूप से अलग प्रकाशित की गई) मुख्य हैं। इस विद्यालय से सम्बद्ध दो अध्यापकों की भी रचनाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं—

(१) वेदाध्यापक पं० **दौलत राम** के ग्रन्थ—रुद्राष्टाध्यायी भाषा टीका, श्रीमद्भागवत की सरस्वती (हिन्दी) टीका, गरुड पुराण, निर्णयसिन्धु की भाषा टीका, सर्वदेव-प्रतिष्ठा मयूख, ग्रहशान्ति आदि।

(२) न्यायाध्यापक पं० **ज्वालाप्रसाद** गौड के ग्रन्थ—सत्प्रतिपक्ष प्रकरणम्, सव्यभिचार प्रकरणम् तथा अवयव प्रकरणम् की संस्कृत टीका, न्यायमुक्तावलि संस्कृत तथा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी टीका-टिप्पणी (५ भाग), मायावाद (हिन्दी में मौलिक ग्रन्थ आठ सौ पृष्ठों का), सांख्य तत्त्व कौमुदी (संस्कृत एवं हिन्दी टीका)।

इस प्रकाशन कार्य के द्वारा भी संन्यासी कालेज ने विद्या की अभिवृद्धि तथा संस्कृत का प्रसार किया है। ७५ वर्षों से अविच्छिन्न चलने वाला यह विद्यालय संस्थान सर्वथा स्तुत्य तथा श्लाघनीय है।[1]

शङ्करचैतन्य भारती

काशी के विद्वान् संन्यासियों में भारती जी बड़ी विमल एवं विपुल कीर्ति के भाजन माने जाते थे। ये काशी में ललिताघाट पर स्थित राजराजेश्वरी मठ में रहते थे तथा काशी के प्रमुख विद्या-संस्थान संन्यासिसंस्कृत कालेज के संचालक स्वामी जयेन्द्रपुरी जी महाराज मण्डलेश्वर के प्रियपात्र संन्यासियों में प्रमुख थे। जयेन्द्रपुरीजी हा ने भारतीजी के ग्रन्थ—खण्डनखण्डखाद्य की **शारदा व्याख्या** का प्रकाशन इसी संस्था की ओर से किया है। प्रथम खण्ड का प्रकाशन १९१८ ई० में तथा द्वितीय खण्ड का प्रकाशन १९४० ई में संन्यासिसंस्कृत कालेज की ओर से श्री बालानन्द स्वामीजी ने किया है।

भारतीजी वेदान्त तथा नव्यन्याय के उद्भट विद्वान् थे। श्रीहर्ष का खण्डनखण्ड-खाद्य' अद्वैतवेदान्त का मण्डन एवं द्वैतमत का खण्डन प्रस्तुत करने वाला नितान्त दुरूह ग्रन्थ माना जाता है। श्रीशंकर चैतन्यजी ने इसी दुरूह ग्रन्थ की दुर्घट ग्रन्थियों को सुलझाने का श्लाघनीय प्रयत्न किया है और इस प्रयत्न में ये सर्वथा कृतकार्य हुए हैं—यही सम्मति काशी के दार्शनिक विद्वानों की है। भारतीजी ने द्वितीय भाग के आरम्भ में एक महनीय भूमिका का भी निबन्धन किया है जिसका नाम है- **दर्शनसर्वस्वम्**, इसमें विज्ञानवाद, शून्यवाद, स्वातन्त्र्यवाद की दार्शनिक त्रुटियों को तर्क एवं युक्ति के सहारे दिखला कर **अनिर्वचनीयता** के अद्वैत सिद्धान्त की पूर्ण प्रतिष्ठा की गई है। यह भूमिका समग्र ग्रन्थ का सार प्रस्तुत करती है। भारतीजी का यह प्रमेयप्रचुर ग्रन्थ इनके पाण्डित्य का निःसन्देह निकषग्रावा है।

---

१. विशेष द्रष्टव्य—अपारनाथ मठ और संन्यासी विद्यालय, लेखक केशवपुरी, काशी, १९७९ ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३६

पं० फणिभूषण तर्कवागीश

(आस्पद भट्टाचार्य, उपाधि—महामहोपाध्याय)

महामहोपाध्याय पं० फणिभूषण तर्कवागीश न्यायशास्त्र के गम्भीर विद्वान् थे। इन्होंने तर्क विद्या का तलस्पर्शी अध्ययन किया था और अनेक ग्रन्थों की रचना कर इस शास्त्र के प्रचार तथा प्रसार में प्रचुर योगदान किया था।

फणिभूषणजी के पिता का नाम पं० सृष्टिधर भट्टाचार्य था। वे अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान् तथा आदर्श चरित्र वाले व्यक्ति थे। पिता के उदात्त गुण, निर्मल चरित्र तथा धर्मनिष्ठा का प्रचुर प्रभाव फणिभूषण के चरित्र पर पड़ा था। पिता के ये गुण इन्हें रिक्थ रूप में प्राप्त हुए थे।

जन्म तथा शिक्षा पं० फणिभूषण तर्कवागीश का जन्म बंगाल के यशोहर जिलान्तर्गत तालखड़ी नामक गाँव में माघ शुक्ल चतुर्दशी को सन् १८७६ ई० में हुआ था। बाल्यकाल से ही आप एक परिश्रमी तथा मेधावी छात्र थे। आपने पं० जानकीनाथ तर्करत्न से न्यायशास्त्र का तथा वेदान्तवागीशजी से काव्य, व्याकरण तथा वेदान्त आदि शास्त्रों का अध्ययन किया। अपनी तत्त्वभेदिनी प्रज्ञा से आपने शीघ्र ही व्याकरण, काव्य, वेदान्त तथा न्यायशास्त्र में प्रौढ़ि प्राप्त कर ली। वृद्धावस्था के कारण जब इनके गुरुजी छात्रों के अध्यापन में अपने को असमर्थ पाने लगे तब इन्हीं को उन्हें पढ़ाने का आदेश दे दिया करते थे। तर्कवागीशजी ने काव्यतीर्थ तथा सांख्यतीर्थ परीक्षाओं को प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया था।

अध्यापन—अनेक वर्षों तक बंगाल में अध्यापन के पश्चात् आप महामहोपाध्याय पं० लक्ष्मण शास्त्री द्राविड़ तथा महामहोपाध्याय पं० वामाचरण भट्टाचार्य के विशेष आग्रह करने पर काशी पधारे। यहाँ आपने टीकमणी संस्कृत कालेज, काशी में न्याय के अध्यापक के पद को स्वीकार कर लिया। आपने इस पद पर अनेक वर्षों तक कार्य किया। इसके पश्चात् सन् १९२६ ई० में संस्कृत कालेज, कलकत्ता के तत्कालीन प्रिन्सिपल महामहोपाध्याध्याय डा० हरप्रसाद शास्त्री ने अपने कालेज में न्याय के प्रधानाध्यापक के पद को स्वीकार करने के लिए आग्रहपूर्वक निवेदन किया। तर्कवागीशजी आग्रह को स्वीकार कर कलकत्ता चले गये। इस पद पर इन्होंने सन् १९२६ ई० से लेकर सन् १९३१ ई० तक लगातार पाँच वर्षों तक सफलतापूर्वक अध्यापन कार्य किया। परन्तु सन् १९३१ ई० में इन्होंने त्याग-पत्र दे दिया और पुनः काशी वापस लौट आये। कुछ दिनों तक काशी में निवास करने के अनन्तर सुप्रसिद्ध गुणग्राही राजनेता डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी—जो उन दिनों कलकत्ता विश्वविद्यालय के वाइसचांसलर थे—ने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनको अलौकिक विद्वत्ता से आकृष्ट होकर इन्हें अपने विश्वविद्यालय में न्याय विभाग में प्राध्यापक के पद पर नियुक्त कर दिया। इस प्रकार इन्हें पुनः कलकत्ता लौट जाना पड़ा। इस सम्मानित तथा प्रतिष्ठित पद पर इन्होंने अनेक वर्षों तक बड़ी कुशलता से छात्रों को पढ़ाया।

विद्वत्ता – तर्कवागीशजी ने संस्कृत वाङ्मय के विभिन्न शास्त्रों में वैदुष्य प्राप्त किया था। न्यायशास्त्र के आप प्रकाण्ड विद्वान् तो थे ही इसके अतिरिक्त आपने व्याकरण, काव्य तथा वेदान्त में भी पाण्डित्य प्राप्त किया था। आपकी लोकोत्तर विद्वत्ता के फल-स्वरूप तत्कालीन सरकार ने सन् १९१६ ई० में आपको 'महामहोपाध्याय' की उपाधि से विभूषित किया था।

अनेक संस्थाओं ने आपको अपना सम्मानित सदस्य चुनकर आपकी विद्वत्ता का सम्मान किया था। आप हरिनाम प्रदायिनी सभा, बंगीय साहित्य परिषद् तथा संस्कृत-साहित्य परिषद्, कलकत्ता के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष के पद पर कार्य करते रहे। आप 'शास्त्ररक्षा समिति' के संस्थापक पं० लक्ष्मण शास्त्री द्राविड़ तथा पं० वामाचरण भट्टाचार्य के अन्यतम सहयोगियों में से थे। विद्वन्मण्डली में आपकी प्रसिद्धि न्याय, वेदान्त और साहित्य के प्रधान विद्वान् के रूप में थी। तत्कालीन विद्वानों ने आपका जो अभिनन्दन किया उसका एक श्लोक निम्नांकित है—

"साहित्याम्भोधि - मन्थोत्थितरसरसनैरात्तगीर्वाणगर्वः,
नास्तिक्येभेन्द्र-कुम्भोद्दलनकृतमतिः दृप्तपञ्चाननस्त्वम्।
भाष्ये वात्स्यायनीये भृशमतिगहने व्याकृतिर्या त्वदीया,
सैवाकल्पं समन्तात् बुधवर भवतः कीर्तिगीर्ति विधात्री॥"

काशीनरेश महाराजा प्रभुनारायण सिंह ने आपकी निम्न प्रशंसा की है—

न्याये वैशेषिके च स्फुरति मतिरिति श्रेयसी तावकीना,
व्याख्यानं न्यायभाष्ये किमपि रचितवान् वङ्गभाषामयं च।
जानीषे जैनशास्त्रं मतमपि सुमते सौगतं वैष्णवं च,
प्रौढिं धत्से च मन्वादिभिरपि लपिते धर्मशास्त्रेऽपि वाढम्॥

ऐसी थी तर्कवागीशजी की अलौकिक विद्वत्ता जिसकी विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।

शिष्यमण्डली—पं० फणिभूषण तर्कवागीश ने काशी और कलकत्ता में अनेक वर्षों तक बड़ी विद्वत्ता के साथ शतशः छात्रों का अध्यापन किया तथा अनेक विद्वानों को पैदा किया। इनके शिष्यों की सूची से ही इनके वैदुष्य का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। इनके कुछ प्रधान शिष्यों के नाम तथा पद नीचे दिये जाते हैं—

(१) प्रोफेसर गोपीनाथ भट्टाचार्य–अध्यक्ष, दर्शनविभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय।

(२) डॉ सिद्धेश्वर भट्टाचार्य—भूतपूर्व अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, हिन्दू विश्व-विद्यालय, काशी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) डॉ० दिनेशचन्द्र गुह—प्राध्यापक, संस्कृत विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी।

(४) पं० पञ्चानन भट्टाचार्य—प्राध्यापक, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता।

(५) म० म० पं० उमेश मिश्र—भूतपूर्व उपकुलपति संस्कृत विश्वविद्यालय, मिथिला, दरभंगा।

(६) पं० बदरीनाथ शुक्ल—भूतपूर्व कुलपति, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

(७) डॉ० गौरीनाथ शास्त्री—वर्तमान कुलपति सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

(८) डॉ० गोविन्द गोपाल मुखोपाध्याय—अध्यक्ष संस्कृत विभाग, वर्धमान विश्व-विद्यालय (बंगाल)।

(९) पं० आनन्द झा—लखनऊ विश्वविद्यालय।

(१०) प्रोफेसर अनन्तलाल ठाकुर—मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा।

(११) डॉ० नथमल टाँटिया—भूतपूर्व डाइरेक्टर, जैन प्राकृत रिसर्च इन्स्टीट्यूट, वैशाली (बिहार)।

(१२) **पण्डित दुर्गाधर झा** दरभङ्गा जिले में आपका जन्म हुआ। शैशव अवस्था में ही माता के स्वर्गवास हो जाने से पिता की ही देखरेख में बढ़े तथा आरम्भिक विद्या प्राप्त की। काशी में आकर म० म० फणिभूषण तर्कवागीश तथा म० म० वामाचरण भट्टाचार्य के चरणों में बैठकर न्यायशास्त्र का गम्भीर अध्ययन किया। अनेक वर्षों तक सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के अनुसन्धान सहायक थे। भारतीयदर्शन के तीन दुरूह ग्रन्थों के सुबुद्ध हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत कर आपने बड़ा यश प्राप्त किया है। ये ग्रन्थ हैं—(१) प्रशस्तपादभाष्य की **'न्यायकन्दली'** (वैशेषिक), (२) उदयनाचार्य-रचित **न्यायकुसुमाञ्जलि** (गद्यपद्यात्मक प्रख्यात न्यायग्रन्थ), (३) कुमारिल भट्टकृत **श्लोकवार्तिक** (मीमांसा)। तीनों ही नितान्त दुरूह, तर्कयुक्ति संवलित, खण्डन-मण्डनात्मक बृहत्काय ग्रन्थ हैं। प्रथम तथा तृतीय का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित है, परन्तु द्वितीय ग्रन्थ का तो यही एकमात्र अनुवाद है। पण्डित दुर्गाधर झाजी ने इनकी प्रामाणिक संस्कृत टीकाओं के कतिपय अंशों का भी अनुवाद कर उसे सरल, सुबोध तथा आवर्जक बनाया है। इस परिश्रमसाध्य महनीय कार्य के लिए वे विद्वज्जनों के श्लाघा-पात्र हैं।

परिवार—पं० तर्कवागीशजी को पारिवारिक सुख प्राप्त था। इनके दो सुयोग्य तथा विद्वान् पुत्र हैं—

(१) अहिभूषण भट्टाचार्य—इन्होंने इतिहास तथा अंग्रेजी में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की है। इसके साथ ही ये साहित्य शास्त्री भी हैं। इन्होंने चिन्तामणि घोष एंग्लो बंगाली कालेज, काशी में—जो कमच्छा में स्थित है—में अनेक वर्षों तक प्रिंसिपल के पद को योग्यतापूर्वक सुशोभित किया था।

(२) श्रीसुधीभूषण भट्टाचार्य एम० ए०—आप एक भाषातत्त्ववेत्ता हैं। आप गवर्न

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेण्ट आफ इण्डिया के नृतत्त्व विभाग में (एन्थ्रोपोलाजी डिपार्टमेण्ट) में उच्च अधिकारी के पद पर कार्य कर रहे हैं। आप दोनों ही भाई अपने पिता की तरह आस्तिक, विनम्र तथा संस्कृतप्रेमी हैं तथा अपने पिता को कीर्ति को अक्षुण्ण बनाये हुए हैं। इस प्रकार पं० तर्कवागीशजी ने अपने भरे-पुरे परिवार के बीच माघ शुक्ल एकादशी के दिन सन् १९४२ ई० में काशी में ही शिवसायुज्य प्राप्त किया। सांगवेद विद्यालय, वाराणसी के अधिकारियों ने आपकी स्मृति में आपका अभिराम तैलचित्र अपने विद्यालय में स्थापित किया है जिसका अनावरण काशिराज डा० विभूतिनारायण सिंह ने सन् १९६४ में किया। उसके देखने से आपके सात्त्विक स्वरूप का भव्य परिचय दर्शकों को सद्यः प्राप्त हो जाता है।

ग्रन्थ-रचना—म० म० पं० फणिभूषण तर्कवागीश ने अनेक विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थों की रचना की है। इन्होंने अपनी मातृभाषा बंगला और देवभाषा संस्कृत इन दोनों की समान रूप से सेवा की है।

(१) तर्कवागीशजी की सर्वश्रेष्ठ रचना न्यायभाष्य का विस्तृत तथा विशाल बंगला भाषा में अनुवाद है जो वंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता से पाँच विशाल भागों में प्रकाशित हुआ है। इस ग्रंथ की विशेषता यह है कि गोतम के न्यायसूत्रों के ऊपर विरचित महर्षि वात्स्यायन के भाष्य का पुङ्खानुपुंख, तलस्पर्शी पाण्डित्यपूर्ण अनुवाद बंगला भाषा में किया गया है। **न्यायभाष्य** के ऊपर उद्योतकर का **वार्तिक**, वाचस्पति मिश्र की **तात्पर्यटीका** तथा उदयनाचार्य की **तात्पर्य परिशुद्धि**, इन सभी ग्रन्थों के तात्पर्य को लेकर इन आचार्यों के तत् तत् मतों की विधिवत् मीमांसा यहाँ की गई है। इतना ही नहीं, न्याय के विभिन्न मतों का यदि मीमांसा, सांख्य आदि वैदिक ग्रन्थों में तथा जैन एवं बौद्ध जैसे अवैदिक दर्शनों में जो खण्डन किया गया है उसकी भी समीक्षा तथा आलोचना करके इन्होंने न्याय के मत की परिपुष्टि की है। सच पूछा जाय तो यह ग्रन्थ न्यायदर्शन के सिद्धान्तों के लिए एक बृहद् विश्वकोश है। इस ग्रन्थ की प्रशंसा डा० वेनिस, इटालिएन विद्वान् डा० तुच्ची (रोम), प्रोफेसर एच० एच० इग्लस (हार्वर्ड विश्वविद्यालय), म० म० पं० गोपीनाथ कविराज, म० म० पञ्चानन तर्करत्न, पं० सुखलाल आदि देशी तथा विदेशी विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से की है। इसमें सन्देह नहीं कि यह ग्रन्थ तर्कवागीशजी के वैदिक, जैन तथा बौद्धदर्शनों के गाढ़ अनुशीलन, गम्भीर मनन और मार्मिक समीक्षण का उज्ज्वल प्रतीक है।

(२) **न्याय परिचय**[1]—पं० तर्कवागीशजी का यह दूसरा ग्रन्थ न्यायदर्शन के सिद्धान्तों का सरल, सुबोध भाषा में व्याख्या करने वाला मौलिक ग्रन्थ है। तर्कवागीशजी ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के निमन्त्रण पर जो वसुमल्लिक लेक्चर्स दिया था उसी का संग्रह इस ग्रन्थ में किया गया है। इसमें आत्मा, उसका स्वरूप तथा उसकी उपलब्धि के सिद्धान्तों का वर्णन न्यायशास्त्र की दृष्टि से किया गया है। इसके साथ ही अन्य दर्शनों

१. यह ग्रन्थ मूलरूप से बंगला में था परन्तु इसका हिन्दी अनुवाद डा० किशोरनाथ झा ने चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी से १९६८ में किया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में न्याय की जो चर्चा की गई है उस पर तर्कवागीशजी ने विचार किया है। न्यायशास्त्र का प्रयोजन, अपवर्ग (मोक्ष का स्वरूप तथा उसके विषय में मतभेद), मुक्ति का उपाय, जीवात्मा के श्रवण तथा मनन का प्रयोजन, जीवात्मा की नित्यता तथा युक्तियाँ आदि विषयों का इसमें तुलनात्मक विवेचन किया गया है। प्राचीन न्याय की विवेचना करने वाला यह ग्रन्थ अपने विषय का मार्मिक तथा गंभीर प्रतिपादक है।

इस ग्रन्थ की भूमिका में तर्कवागीशजी ने बंगदेशीय नैयायिकों के जीवन चरित, काल निर्णय, दार्शनिक विचार तथा उनके महत्त्व का ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत किया है जो प्रमाणपुरस्सर होने के कारण नितान्त प्रामाणिक तथा उपादेय है। यह भूमिका (५०) पचास पृष्ठों में मुद्रित है। इस भूमिका का नाम ही "न्यायशास्त्र में बंगालियों की विजय" है। इसीसे लेखक की प्रवृत्ति का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

विशेषताएँ– पं० फणिभूषण तर्कवागीश की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इन्हें अपनी मातृ-भाषा बंगला से प्रगाढ़ प्रेम था। संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी इन्होने अपने दोनों ग्रंथों की रचना संस्कृत में न करके बंगला भाषा में की है। यदि इन्होंने ये ग्रन्थ संस्कृत में निर्मित किये होते, तो निश्चय ही ये विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ क्लासिकल या क्लासिक्स की उपाधि से अलंकृत किये जाते। परन्तु इस बात की तनिक भी चिन्ता न करके इन्होंने अपनी कृतियों को अपनी मातृभाषा में ही निबद्ध किया है। संस्कृत के अद्भुत विद्वान् होने पर भी इनका मातृभाषा-प्रेम कुछ विचित्र-सा ज्ञात होता है। परन्तु बंगला भाषा में लिखे जाने के कारण उन ग्रन्थों का महत्त्व कुछ कम नहीं है।

संस्कृत के विद्वान् अपने जीवन वृत्तान्त की सूचना कहीं नहीं देते हैं। वे अपने रचित ग्रन्थों में भी अपने कुल, पूर्वज आदि की कोई चर्चा नहीं करते हैं। परन्तु तर्कवागीशजी की दूसरी विशेषता यह थी कि इन्होंने अपने ग्रन्थ न्यायपरिचय के अन्त में अपनी जन्मतिथि, माता, पिता, स्त्री, काशी तथा कलकत्ता आदि में निवास तथा वहाँ विश्वविद्यालय में न्यायदर्शन पढ़ाने का उल्लेख स्वतः किया है। पाठकों की जानकारी के लिए ये श्लोक यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

युग्माष्ट द्व्येक बंगाब्दे, माघस्यैकादशे दिने।
सोमवारे चतुर्दश्यां लग्ने च मिथुने शुभे॥
यशोहर प्रदेशे यो विद्वद्विप्रकुलान्विते।
ग्रामे 'तालखड़ी' नाम्नि भट्टाचार्यकुलेऽभवत्॥
पिता सृष्टिधरो नाम, यस्य विद्वान् महातपाः।
माता च मोक्षदा देवी, देवीव भुवि या स्थिता॥
सरोजवासिनी पत्नी, निजमुक्त्यर्थमेव हि।
यं काशीमनयत् बद्ध्वा, पूर्वं पूर्वतपोगुणैः॥
सोऽधुना कालिकातास्थो, बद्धः कर्मवशादहम्।
विश्वविद्यालये वृद्धः, पाठयामीश्वरेच्छया॥
अशक्तेनापि तेनाऽत्र, नियुक्तेन यथामति।
न्याय-दर्शन सिद्धान्त-व्याख्या संक्षेपतः कृता॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फणिभूषणजी स्वभाव से बड़े ही सात्त्विक व्यक्ति थे। अध्ययन और अध्यापन इनके जीवन के सर्वस्व थे। काशी से इन्हें बड़ा प्रेम था। बाबा विश्वनाथ में इनकी अगाध भक्ति थी। फलतः कलकत्ते में अध्यापन वृत्ति के समाप्त हो जाने पर ये वहाँ तनिक भी टिके नहीं, काशी में जीवनयापन करने की दृष्टि से यहाँ लौट आये। ये अप्रतिग्रही पण्डित थे। प्रतिग्रह लेकर जीविका चलाने के ये नितान्त विरोधी थे। इसीलिए ये प्राचीन आदर्श का पालन करते हुए जीवनयापन करते थे।

सायंकाल दशाश्वमेध घाट पर श्री गोपीनाथ कविराजजी के संग में लेखक ने इनका अनेक बार दर्शन किया है। इनका शरीर स्वभावतः दुबला-पतला था और वृद्धावस्था में तो ये और दुर्बल प्रतीत होते थे। परन्तु इनकी वाणी में बड़ा तेज था। कविराजजी उस समय क्वीन्स कालेज में सरस्वती भवन के अध्यक्ष थे और तर्कवागीशजी उस समय अपने वात्स्यायन भाष्य के बंगला अनुवाद में संलग्न थे। कविराज जी से उनकी बातचीत न्यायशास्त्र के ऐतिहासिक पक्ष एवं शास्त्रीय पक्ष के ऊपर विशेष रूप से होती थी। उस वार्तालाप के सुनने से उनके न्यायशास्त्र के तुलनात्मक अध्ययन के विषय में गम्भीर अनुशीलन का पता चलता था। जैनियों ने तथा बौद्धों ने न्यायशास्त्र के जिन सिद्धान्तों का अपने ग्रन्थों में खण्डन किया है उनके प्रति उनकी जागरूकता बहुत ही अधिक थी। कविराजजी का भी ज्ञान इस विषय में पर्याप्त रूप से विस्तृत तथा विशाल था। वे बौद्ध आचार्यों के द्वारा किये गये न्यायशास्त्रीय खण्डन की विशेष चर्चा करते थे। इस चर्चा को फणिभूषणजी बड़े ही मनोयोग से सुनते थे और प्रसंगवश किसी नवीन ग्रन्थ का निर्देश मिलने पर ये कविराजजी से उसे तुरन्त भेज देने के लिए आग्रह करते थे। यह जिज्ञासा देखने लायक ही होती थी।

तर्कवागीशजी न्यायशास्त्र के सिद्धान्तों के ही गम्भीर अध्येता तथा विमर्शकर्ता नहीं थे, प्रत्युत न्याय के आचार्यों के जीवन-चरित एवं इतिहास के प्रति भी इनकी बड़ी ही जागरूकता थी। संस्कृत के पण्डितों में ऐतिहासिक तथ्यों की अवगति के लिए विशेष अभिरुचि नहीं दृष्टिगोचर होती। परन्तु फणिभूषणजी इसके अपवाद थे। 'न्याय परिचय' ग्रन्थ के आरम्भ में इन्होंने पचास पृष्ठों की ऐतिहासिक भूमिका निबद्ध की है, वह इनके गम्भीर अध्ययन, शास्त्रीय निष्ठा तथा ऐतिहासिक दृष्टि को उजागर करने में नितान्त समर्थ है। इनमें ऐतिहासिक तथ्यों की छानबीन करने में अच्छी क्षमता दिखाई पड़ती थी। नवद्वीप के प्रख्यात नैयायिकों के जीवन-चरित, काल-निर्णय, ग्रन्थ-निर्माण तथा उनकी आलोचना प्रस्तुत कर तर्कवागीशजी ने जिज्ञासुओं का बड़ा ही उपकार किया। ये प्राचीन मत को बिना किसी ननु नच के मानने वाले पण्डित नहीं थे। ये इतिहास-सम्बन्धी सिद्धान्तों की परीक्षा बड़ी सजगता के साथ करने में प्रवीण थे। इनका यह गुण वास्तव में इनकी प्रतिभा को और भी अग्रसर करने में समर्थ है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री अन्यदाचरण तर्कचूडामणि

(आस्पद—ठाकुर, उपाधि—महामहोपाध्याय)

पं० अन्यदाचरणजी उन बंगीय पण्डितों में मुख्य थे जिन्होंने अध्ययन तो बंगाल में ही किया परन्तु काशी ही जिनके अध्यापन का क्षेत्र बनी। इस प्रकार ये महामहोपाध्याय फणिभूषण तर्कवागीशजी से अनेक तथ्यों में समानता रखते हैं। तर्कवागीशजी का भी अध्ययन बंगाल के नवद्वीप में हुआ परन्तु उनके समृद्ध अध्यापन का प्रसाद काशी के संस्कृत छात्रों को प्राप्त हुआ। इसलिए इन दोनों महनीय पण्डितों का विवरण एक ही साथ समवेत रूप में दिया जाता है।

पं० अन्यदाचरणजी का जन्म पूर्वीय बंगाल के सुदूर पूर्वीय जिले में हुआ था। नोवाखाली जिले के अन्तर्गत 'सोमपाड़ा' ग्राम में १२६८ बंगाब्द में इनका विख्यात ब्राह्मण वंश में जन्म हुआ था। इनके पिताजी का नाम कालीकिंकर ठाकुर तथा माता का नाम आनन्दमयी देवी था। ये राढ़ी श्रेणी के ब्राह्मण थे।

इन्होंने अपने ग्राम के निकटस्थ किसी अध्यापक से कलाप व्याकरण का विधिवत् अध्ययन कर संस्कृत भाषा में विशेष व्युत्पत्ति प्राप्त की। इसके बाद विभिन्न विद्याकेन्द्रों में जाकर इन्होंने संस्कृत के पुराण, धर्मशास्त्र और न्याय में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। तर्क में विशेष कुशल होने के कारण ही इन्हें अपने नैयायिक गुरु से 'तर्कचूडामणि' की उपाधि प्राप्त हुई।

अध्यापन

अध्ययन के द्वारा व्याकरण तथा काव्यशास्त्र में विशेष व्युत्पत्ति प्राप्त करने के अनन्तर इनकी प्रथम नियुक्ति अपने ही नगर के नोवाखाली जिला स्कूल में हेड पण्डित के पद पर हुई। इसी पद पर रहकर इन्होंने अनेक छात्रों को तैयार किया। अनन्तर ये उस विद्यालय को छोड़कर काशीधाम चले आये। यहीं पर केदार घाट के समीप स्थित 'ईश्वर पाठशाला' में अध्यापन कार्य में इनकी नियुक्ति हुई। इनकी अध्यापन-कुशलता की ख्याति धीरे-धीरे चारों ओर बढ़ने लगी। भारत-धर्म महामण्डल के संस्थापक स्वामी ज्ञानानन्दजी ने इनकी विद्वत्ता से मुग्ध होकर अपने 'उपदेशक महाविद्यालय' में इन्हें अध्यापक नियुक्त किया। इस विद्यालय में सनातन धर्म के व्याख्याता छात्र तैयार किये जाते थे जिन्हें वेद, वेदाङ्ग, पुराण तथा धर्मशास्त्र की अनिवार्य शिक्षा दी जाती थी। मुख्य अध्यापक तो थे स्वामी दयानन्दजी, जो ज्ञानानन्दजी के पट्टशिष्य थे और अंग्रेजी भाषा, पश्चिमी दर्शन, विज्ञान तथा इतिहास से पूरा परिचय रखते थे। इसी विद्यालय में अन्यदाचरणजी ने पुराण आदि की शिक्षा देकर सनातन धर्म की विशिष्ट व्याख्यान कला में निपुण विद्वानों के तैयार करने में अपना महनीय योगदान दिया। इतना ही नहीं, महामण्डल से जो धार्मिक साहित्य प्रस्तुत किया जाता था, उसकी रचना में भी तर्कचूडामणिजी सक्रिय योगदान देते थे।

पुराणरहस्यम्

पण्डित अन्यदाचरण तर्कचूडामणि द्वारा विरचित संस्कृत ग्रन्थों में 'पुराणरहस्यम्'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय प्रतिपादन की दृष्टि से एक अनुपम ग्रन्थ है। सामान्य जन के हृदय में पुराणों के प्रति बड़ी अनास्था फैली हुई है। इसका कारण यह है कि पुराणों की रचना-शैली एक विशिष्ट प्रकार की है। उससे बिना अवगत हुए पुराणों के गम्भीर सिद्धान्तों का परिचय प्राप्त नहीं हो सकता है। ग्रन्थकार ने इस ग्रन्थ के भीतर इसी शैली का विवेचन तथा पुराणों में वर्णित विषयों की सुसंगति का निदर्शन बड़े ही सरल संस्कृत शब्दों में किया है। एक प्रकार से यह ग्रन्थ पुराणों के प्रमेयों को जानने के लिए बहुमूल्य कुञ्जी है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन काशी के भारत-धर्म-महामण्डल द्वारा १९९० वि० सं० (१९३३ ई०) में किया गया था।

काशी में ही रहकर अन्यदाचरणजी ने रायबहादुर मुकुन्ददेव मुखोपाध्याय के उत्साह से **धर्मशास्त्र कोष** नामक एक विराट् ग्रन्थ के सम्पादन का भी कार्य किया। एजूकेशन गजेट (Education Gazette) नामक पत्रिका के बीच-बीच में इस ग्रन्थ का विवरण प्रकाशित होता रहा है। अन्यदाचरण तर्कचूडामणि तथा रायबहादुर यतीन्द्रमोहन सिंह की सम्मिलित चेष्टा से काशी में स्त्रियों की शिक्षा के लिए 'आर्य महिला विद्यालय' नामक एक सुन्दर विद्यालय की स्थापना की गई थी। इन साहित्यिक तथा शैक्षणिक प्रयासों के फलस्वरूप अन्यदाचरणजी की गणना काशी के विद्वान् पण्डितों में बड़ी श्रद्धा से की जाती थी। फलस्वरूप १९२२ ई० में अंग्रेजी सरकार ने इन्हें महामहोपाध्याय की पदवी से विभूषित किया।

इनकी सनातन हिन्दू धर्म में प्रगाढ़ आस्था थी। ये अग्निहोत्री थे और प्रतिदिन प्रातः एवं सायं अग्निनारायण की उपासना में दत्तचित्त होकर जप-पूजा किया करते थे। स्वभाव बड़ा कोमल था। अपने छात्रों पर इनकी अगाध कृपा रहती थी और उन्हें ये सब प्रकार से आर्थिक सहायता दिलवाने में सचेष्ट रहते थे। इनके पढ़ाये हुए अनेक छात्र काशी तथा काशी के बाहर भी अध्यापन कार्य में निरत हैं।

ग्रन्थ-रचना

इन्होंने अनेक काव्य ग्रन्थों की रचना की है, संस्कृत में तथा बंगला में भी। संस्कृत रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—

१. **रामाभ्युदयम्** (महाकाव्य), २. **महाप्रस्थानम्** (महाकाव्य), ३. सुमनोञ्जलिः, ४. धातु चित्रम्, ५. नमस्कार-विवेकः, ६. षट्कार्य-विवेकः, ७. न्याय-रहस्यम्, ८. कृद विमला।

बंगला की रचनाएँ ये हैं—१. षड्दर्शनेर रहस्य, २. षड्दर्शनेर चित्र, ३. अलंकार, ४ काव्यचन्द्रिका की सरल टीका, ५ शब्दखण्ड, ६. नाम-प्रत्यय-विवेक।

इन्होंने कलाप व्याकरण के अन्तर्गत **कातन्त्र परिशिष्ट** नामक ग्रन्थ के कठिन अंशों के ऊपर कौमुदी नामक टीका की स्वयं रचना की है। यह उस समय प्रकाशित थी तथा लोकप्रिय थी। इनसे भिन्न इन्होंने अनेक मासिक पत्रिकाओं में सारगर्भित प्रबन्धों का प्रकाशन किया है।

महामहोपाध्याय अन्यदाचरण तर्कचूडामणि का काशी में ही परलोकगमन हुआ।

●

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित चित्रधर मिश्र

(आस्पद—मिश्र, उपाधि—महोपाध्याय)

प्राचीन काल से ज्ञानमयी मिथिला दर्शनशास्त्रों की उद्गमभूमि रही है। सांख्य-योग के अतिरिक्त मीमांसा तथा प्राचीन एवं नव्यन्याय का प्रमुख केन्द्र रही है। बीसवीं शती के प्रारम्भ में मीमांसकों के विचारों से मिथिला सम्पूर्ण देश में सम्मानित थी।

ऐसे ही अवसर पर मीमांसक शिरोमणि पं० चित्रधर मिश्र का जन्म माघ कृष्ण चतुर्दशी बुधवार, संवत् १९०१ वै० (१८४४ ई०) को दरभंगा जिले में (अब समस्तीपुर) पूर्वोत्तर रेलवे के दलसिंगसराय स्टेशन के पूर्ववर्ती 'टमका' ग्राम में हुआ था। सत्कुलीन मैथिल ब्राह्मणों के निवास के लिए यह ग्राम अब भी प्रसिद्ध है। पवित्र 'सोदरपुरिये' मूलक प्रख्यात वंश में उत्पन्न आपके पिता पं० बुचाई मिश्र परम धार्मिक, सदाचारसम्पन्न, उदारप्रकृति के सरल ब्राह्मण थे। अतः मीमांसक श्री मिश्रजी में ये सारे गुण स्वयमेव संक्रान्त हो गये थे।

बाल्यावस्था में श्री मिश्रजी आखेटप्रिय थे, माता-पिता के द्वारा निषेध करने पर भी बाल-चपलतावश शिकार खेलने में अत्यन्त सिद्धहस्त थे। महाकवि बाणभट्ट के समान तरुणावस्था में ये भी भ्रमण-विचरण में संलग्न रहते थे। इस अवस्था का सजीव चित्रण इन्होंने स्वयमेव प्रस्तुत किया है

माता क्रुध्यति तर्जति प्रतिदिनं भ्रातेति किं मे भयं
ग्रामे मान्यजनोऽपि निन्दतितरामेतावता का क्षतिः।
शास्त्रं दैवतमुग्रकर्म सवया बन्धुश्च मे प्रीयता-
मित्येवं कलयन्नपेत-सकलत्रासोऽहमासं तदा॥

मनुष्य के जीवन में कभी-कभी एकाएक परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन अच्छा भी होता है और बुरा भी। गोस्वामी सन्त तुलसीदास एवं सन्तशिरोमणि सूरदास का उदाहरण सर्वविदित है। इसी प्रकार मिश्र जी के जीवन में भी एक परिवर्तन आया और वे विलक्षण प्रतिभासम्पन्न विद्वान् हो गये।

किसी भी शास्त्र के अध्ययन में व्याकरण का ज्ञान अपेक्षित होता है, अतः इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर मिथिला में ही व्याकरण का अध्ययन किया। आप ककरौड़ (मध्यमिथिला में न्याय का केन्द्र) के महापण्डित झिंगुर झा—गोपाल झा के शिष्य थे। तदनन्तर उच्च एवं गम्भीर शिक्षा के लिए काशी आये, क्योंकि काशी की शैक्षणिक गरिमा मिथिला में भी प्रसिद्ध थी। प्राच्यविद्या की सर्वोच्च संस्था (तदानीन्तन) राजकीय संस्कृत महाविद्यालय (अब सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय) में नामांकन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कराया। ये क्रमशः व्याकरण, धर्मशास्त्र तथा दर्शन की परीक्षाओं में समुत्तीर्ण हुए। तत्पश्चात् नेपाल के राजगुरु पं० नीलदेव पन्त से शिथिलता को प्राप्त मीमांसा शास्त्र का इन्होंने गहन अध्ययन किया। मिथिला के मीमांसकों की पूर्ण प्रतिष्ठा इस शताब्दी में इन्होंने ही कायम की। कुछ ही दिनों में इनकी ख्याति इने-गिने मीमांसकों में होने लगी। मीमांसा के तो आप अवतार ही कहे जाते थे। काशीस्थ श्री भारतधर्म महामण्डल ने आपको 'मीमांसक-शिरोमणि' की उपाधि से अलंकृत किया था।

अध्ययन के पश्चात् श्री मिश्र जी अध्यापन कार्य में भी यशस्वी हुए। सर्वप्रथम इन्होंने काशीस्थ जम्बू पाठशाला में ही अध्यापन कार्य प्रारंभ किया। किन्तु स्वास्थ्य अनुकूल न रहने के कारण अधिक दिनों तक यहाँ रह न सके और घर लौट गये।

अब तक इनकी ख्याति इतनी बढ़ चुकी थी कि अनेक राजे-महाराजे इन्हें अपनी राजधानी में आमंत्रित करने लगे। इसी क्रम में ये दरभंगानरेश महाराजा मिथिलेश लक्ष्मीश्वरसिंह तथा महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह के राजपण्डित एवं दानाध्यक्ष नियुक्त हुए। गुणग्राही महाराज ने राज्यारोहण के अवसर पर इन्हें धौतवस्त्र देकर पूर्ण सम्मानित किया। अनन्तर आपने श्री रमेश्वरलता संस्कृत महाविद्यालय के अध्यक्ष पद को सुशोभित किया। दर्शन शास्त्रों के तलस्पर्शी अध्यापन के कारण इनकी ख्याति सुदूर विद्या-केन्द्रों काशी, नदिया आदि स्थानों तक पहुँच गयी। विद्याव्यसनी छात्र अपनी ज्ञानपिपासा को शान्त करने के लिए दरभंगा विद्यापीठ आने लगे। इनकी प्रखर योग्यता सम्पूर्ण देश में फैल गयी। विद्वानों की तेजस्विता और पाण्डित्य उनकी शिष्य-परम्परा से ही ज्ञात होता है। सुप्रसिद्ध न्यायवेत्ता महामहोपाध्याय पं० सतीशचन्द्र विद्याभूषण, महामहोपाध्याय पं० मुकुन्द झा बक्शी, पं० बालबोध मिश्र, पं० जटेश्वर झा आदि आपके प्रमुख शिष्य हुए हैं।

इनके वैदुष्य से प्रभावित होकर गुणग्राही महामना मालवीय जी ने इन्हें काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्यापन के लिए आग्रह किया था किन्तु वार्धक्यजन्य असमर्थता के कारण उनकी अभिलाषा ये पूर्ण नहीं कर सके।

अनेक निबन्धों के रचयिता श्री मिश्रजी की तीन रचनाएँ सुप्रसिद्ध हैं—

(१) मीमांसासार संग्रह, (२) मैथिल संस्कृतकविनामावली, और (३) उपलक्षण-संग्रह।

इस प्रकार 'अधीतमध्यापितमर्जितं यशो न शोचनीयं किमपीह भूतले' को चरितार्थ करते हुए वि० सं० १९७७ (१९२० ई०) में इन्होंने अपने नश्वर पाञ्चभौतिक शरीर का त्याग किया। इनके दिवङ्गत हो जाने पर इनके शिष्य दीवान बाबू श्री कामेश्वर सिंहजी ने शास्त्रीय परम्परा से शिवमन्दिर की स्थापना की। आपके ग्राम में स्मारक-स्वरूप 'चित्रधर पुस्तकालय' द्वारा आज भी इनकी कीर्तिपताका फहरा रही है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संक्षेप में इनके जीवन का रहस्य निम्नांकित पद्य से ही स्फुटित होता है—

मैत्री साधर्मकारि सद्भिरफलं वैरं न केनापि च
च्छिद्रं कस्यचिदप्यसूचि नृपतौ नो किन्तु मिथ्या गुणाः।
एवं नीतिपुरस्सरं बहुतरं नीत्वोन्नतं स्वं वयो
वार्धक्ये शिवसेवनात् परतरं कार्यं न विज्ञायते॥

म० म० पं० चित्रधर झा दरभंगा महाराजा के दरबार के विशिष्ट विद्वान् थे। इनका वहाँ पर अत्यधिक सन्मान था। इनके अवकाश ग्रहण करने पर महाराजा ने इस अवसर पर अपनी जो भावना प्रकट की थी, उससे पता चलता है कि राजा इन्हें कितना मानते थे और इनका कितना सम्मान करते थे।

पं० चित्रधर मिश्र अजातशत्रु थे। इन्होंने किसी भी व्यक्ति की राजा से बुराई नहीं की बल्कि अन्य लोगों के झूठे-झूठे गुणों का राजा के सामने वर्णन किया। इतने सज्जन स्वभाव के उदारचेता व्यक्ति होने पर भी दरभंगानरेश के दरबार में इनका अत्यधिक सम्मान होने के कारण कुछ पण्डित इनसे द्वेष तथा डाह करने लगे थे। ऐसा सुना जाता है कि मिथिला के प्रसिद्ध नैयायिक पं० विश्वनाथ झा ने दरभंगानरेश के दरबार में अपनी घोर उपेक्षा तथा मिश्रजी का अत्यधिक सम्मान देखकर एक दिन मिश्रजी के प्रधान द्वार पर यह श्लोक लिख दिया था—

"अशनमाचर काञ्चनभाजने; त्वमपि कुक्कुर! मा कुरु विस्मयम्।
इह हि पामरनायकमंदिरे; न हि सतामसतां हि विवेचनम्॥

परन्तु चित्रधर झा के चित्त पर इस श्लोक की कुछ प्रतिक्रिया नहीं हुई और वह पूर्ववत् राज दरबार में सम्मान पाते रहे। प्राचीन काल के पण्डित लोग अन्योक्ति के द्वारा ही अपनी मनोवेदना प्रकट किया करते थे। यह श्लोक उसी का एक नमूना है।

श्री लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय विद्यापीठ (दिल्ली) ने इधर महामहोपाध्याय चित्रधर शर्मा के प्रमाणप्रमोदः' नामक न्यायशास्त्रीय ग्रन्थ का प्रकाशन किया है। इसमें उदयनाचार्य की 'न्यायकुसुमाञ्जलि' की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए नव्यन्याय की शैली में ईश्वरसिद्धि की विवेचना की गई है। म० म० श्री दुखमोचन झा की महत्त्वपूर्ण व्याख्या भी मूल ग्रन्थ के साथ प्रकाशित की गई है। ग्रन्थ के लेखक चित्रधर शर्मा प्रख्यात मीमांसक पण्डित चित्रधर झा से भिन्न हैं या अभिन्न? इसका समाधान ग्रन्थ की परीक्षा से किया जा सकता है।

मिश्रजी के सहयोगी द्राविड मीमांसक

पण्डित चिन्नस्वामी शास्त्री द्राविड

(मूल नाम—वेङ्कट सुब्रह्मण्य शास्त्री)

(आस्पद –द्राविड, उपाधि--महामहोपाध्याय)

पं० चिन्नस्वामी शास्त्री मीमांसाशास्त्र के मूर्धन्य विद्वान् थे। आपने इस शास्त्र का गहन अध्ययन किया था और आपने काशी, कलकत्ता और तिरुपति आदि विश्व-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यालयों में इस शास्त्र का आजीवन अध्यापन करके इस शास्त्र के प्रचार तथा प्रसार में प्रचुर परिमाण में योगदान दिया था। काशी में व्याकरण, न्याय और वेदान्त शास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन की ही विशेष प्रधानता रही है। मीमांसाशास्त्र प्रायः उपेक्षित-सा ही रहा है। परन्तु पं० चिन्नस्वामी शास्त्री की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इन्होंने काशी तथा उत्तरी भारत में मीमांसाशास्त्र के अध्ययन को प्रतिस्थापित किया। इस शास्त्र की प्रतिष्ठा ही आपके जीवन का सबसे बड़ा योगदान समझना चाहिए। काशी तथा अन्य स्थानों में मीमांसाशास्त्र का जो अब अध्ययन-अध्यापन दिखाई पड़ता है उसका अधिकांश श्रेय शास्त्रीजी को प्राप्त है। आपने स्वयं तो आजीवन इस शास्त्र का प्रचार किया ही, इसके अतिरिक्त आपने ऐसे सुयोग्य शिष्यों को तैयार किया जिन्होंने इस शास्त्र के अध्ययन-अध्यापन को प्रगति प्रदान की। इस प्रकार मीमांसा के इतिहास में शास्त्रीजी का नाम सदा सादर लिया जाएगा।

जन्म तथा शिक्षा

पं० चिन्नस्वामी शास्त्री का जन्म मद्रास प्रान्त (आधुनिक तमिलनाडु) के उत्तरी आरकाट जिले के 'मण्डकोन्नत्तूर' नामक स्थान में मई, सन् १८८६ ई० में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री अप्पा स्वामी शास्त्री और माता का नाम भागीरथी था। आपके पिताजी बहुत बड़े विद्वान् थे तथा वेद-विद्या में प्रमाण माने जाते थे।

चिन्नस्वामी की प्रारम्भिक शिक्षा अपने गाँव में ही हुई। तत्पश्चात् आपने अपने पिताजी से कृष्ण यजुर्वेद का अध्ययन किया। स्वर्गीय पं० वेङ्कटरमण शास्त्रीजी के चरणों में बैठकर आपने गुरुकुल प्रणाली से व्याकरणशास्त्र, काव्यशास्त्र, नाटक, अलङ्कार आदि का विधिवत् पाठ पढ़ा। इसके बाद मद्रास (मैलापुर में स्थित) के संस्कृत कालेज के प्रकाण्ड विद्वान् महामहोपाध्याय पं० कुप्पू स्वामी शास्त्री—जिन्होंने बाद में मद्रास विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग में अध्यक्ष पद को अनेक वर्षों तक सुशोभित किया था—से साहित्यशास्त्र का, महामहोपाध्याय पं० चन्द्रशेखर शास्त्री तथा महामहोपाध्याय पं० वेङ्कट सुब्बा शास्त्री से मीमांसाशास्त्र का सम्यक् अध्ययन किया।

दक्षिण भारत के महान् परोपकारी श्रीकृष्णस्वामी अय्यर द्वारा संचालित मद्रास (मैलापुर) संस्कृत कालेज के चिन्न स्वामीजी प्रथम 'बैच' के छात्रों में से थे। इस कालेज में अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् आपने अपने गुरु म० म० पं० वेङ्कट सुब्बा शास्त्री से मीमांसाशास्त्र के प्रधान तथा कठिन ग्रन्थों का उच्चस्तरीय अध्ययन किया। मीमांसाशास्त्र के गहन तथा गम्भीर अध्ययन के पश्चात् आपने वेद (कृष्ण यजुर्वेद), श्रौत ग्रन्थ तथा धर्मशास्त्र का भी सम्यक् अनुशीलन किया। वेद मन्त्रों के शुद्ध तथा स्वरयुक्त उच्चारण में आपने निपुणता प्राप्त की थी। पं० वेङ्कट सुब्बा शास्त्री के अन्तेवासी होने के समय आपके एकमात्र संहपाठी काञ्ची के कामकोटि पीठाधीश्वर जगत्गुरु शंकराचार्य थे जिन्होंने अपनी विद्वत्ता से बाद में बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यापन कार्य

पं० चिन्नस्वामी शास्त्री ने अनेक महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में अध्यापन का कार्य बड़ी सफलता से किया। यद्यपि शास्त्रीजी की जन्ममूमि मद्रास प्रान्त थी परन्तु आपकी कर्मभूमि काशी नगरी ही थी। आपने हिन्दू विश्वविद्यालय काशी में अनेक पदों पर लगभग तीस वर्षों तक अध्यापन का कार्य किया जो स्वयं में एक बहुत बड़ा योगदान है। आपने अध्यापकी जीवन का प्रारम्भ अपने प्रान्त से ही प्रारम्भ किया था। महाराजा संस्कृत कालेज, तिरुवयार में आपने सन् १९१४ ई० से लेकर सन् १९१८ ई० तक मीमांसा के प्राध्यापक पद पर कार्य किया। सन् १९१६ ई० में हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना होने के पश्चात् महामना मालवीयजी महाराज ने संस्कृत महाविद्यालय को स्थापित कर संस्कृत के सकल शास्त्रों के अध्यापन की व्यवस्था की। पं० चिन्न स्वामी शास्त्री की हिन्दू विश्वविद्यालय में नियुक्ति प्रथमतः मीमांसा शास्त्र के प्राध्यापक के पद पर हुई। कालान्तर में ये इस विभाग के अध्यक्ष नियुक्त किये गये। इन दोनों पदों पर इन्होंने सन् १९१८ ई० से १९३६ ई० तक बड़ी योग्यता से अध्यापन तथा विभाग के सञ्चालन का कार्य किया। इसके बाद आप मीमांसा तथा धर्मशास्त्र दोनों विभागों के अध्यक्ष हो गये। इन पदों को आपने सन् १९३६ से १९३८ ई० तक सुशोभित किया।

हिन्दू विश्वविद्यालय के धर्म-विज्ञान महाविद्यालय (कालेज आफ थिआलोजी) में आपने दो वर्षों—सन् १९३७ ई० से १९३९ ई०—तक वाइस प्रिन्सिपल के पद को भी अलंकृत किया था। इसके पश्चात् शास्त्रीजी तिरुपति (आन्ध्र प्रदेश) चले गये जहाँ बालाजी का भारत-प्रसिद्ध मन्दिर अवस्थित है। वहाँ श्री वेङ्कटेश्वर ओरियण्टल संस्कृत कालेज में आप वेदान्त तथा मीमांसा विभाग के प्रोफेसर नियुक्त हुए। इसके साथ ही आप इस कालेज के प्रिन्सिपल के पद पर भी प्रतिष्ठित रहे। परन्तु वहाँ केवल दो वर्षों—सन् १९३९–'४० ई०—तक कार्य करने के पश्चात् बाबा विश्वनाथ के मोह को ये संवरण नहीं कर सके और पुनः काशी (हिन्दू विश्वविद्यालय) चले आये। यहाँ पर आप वेद, मीमांसा, धर्मशास्त्र (कर्मकाण्ड, पौरोहित्य) आदि विभागों के प्रधानाध्यापक थे। परन्तु इसके अतिरिक्त आप धर्म विज्ञान महाविद्यालय के प्रिन्सिपल के पद को लगातार सात वर्षों—सन् १९४० ई० से '४७—तक सुशोभित करते रहे। चार वर्षों तक (१९४७ ई० से '५१ ई०) शास्त्रीजी ने कलकत्ता विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग में अध्यापन किया था। इसके पश्चात् सन् १९५१–५४ ई० तक आप गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज कलकत्ता में ही स्मृति तथा पुराण आदि विषयों पर शोध कार्य भी करते रहे। इस प्रकार अनेक पदों को विभूषित करते हुए सन् १९५६ ई० में कलकत्ता में ही आपका निधन हो गया।

अन्य विविध कार्य—मीमांसा शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् होने के कारण शास्त्रीजी को अनेक यज्ञों मे अध्यक्षता करने के लिए बुलाया जाता था। भारत के अनेक राजा-महाराजा यज्ञों के सम्यक् सम्पादन के लिए शास्त्रीजी को अपने यहाँ आमन्त्रित किया

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते थे। यज्ञों में अध्यक्षता करने के अतिरिक्त आप लखनऊ तथा आन्ध्र विश्वविद्यालयों के शिक्षा-बोर्ड के सदस्य थे। गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, काशी के पाठ्यक्रम के संशोधन के लिए उत्तर प्रदेश सरकार ने सन् १९३८ ई० में जो समिति बनाई थी उसके आप मनोनीत सदस्य थे। बंगाल सरकार के द्वारा जिस संस्कृत-शिक्षा बोर्ड का गठन किया गया था उसके भी आप सदस्य थे। आप देवभाषा परिषद् के सन् १९३६ से लेकर सन् ४८ ई० तक अध्यक्ष रहे। सन् १९४५ ई० में जो संस्कृत साहित्य सम्मेलन हुआ था उसके सभापति पद को आपने सुशोभित किया था। सन् १९४८ ई० मे आयोजित आल इण्डिया ओरियण्टल कानफरेन्स के मीमांसा विभाग के आप सभापति नियुक्त किये गये थे। इस प्रकार अनेक सभा-सम्मेलनों में आपने अध्यक्ष पद को अलंकृत किया था।

सम्मान

आपकी प्रकाण्ड विद्वत्ता की मान्यता के रूप में तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने आपको 'महामहोपाध्याय' की पदवी से अलंकृत किया था। काञ्ची कामकोटि के पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य ने सन् १९४२ ई० में आपको 'शास्त्ररत्नाकर' की उपाधि प्रदान की थी। आप भारत के उन उच्च कोटि के विद्वानों में से थे जिन्हें संस्कृत ऐसोसियेशन, बिहार की ओर से 'मिथिलेश महेश लेक्चर्स' देने के लिए निमंत्रित किया गया था। मीमांसा शास्त्र में गंभीर वैदुष्य के फलस्वरूप संस्कृत के विद्वानों ने आपको 'मीमांसा-केसरी' की महनीय पदवी प्रदान की थी।

ग्रन्थ रचना - पं० चिन्नस्वामी शास्त्री ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। आपने (१) **'न्यायप्रकाश'** की **'सारविवेचनी'** नामक टीका लिखकर मीमांसा शास्त्र की कठोरता को दूर कर इसे सरल बनाने का प्रयास किया है। आपका दूसरा ग्रन्थ **'तन्त्र सिद्धान्त-रत्नावलि'** है जो मीमांसा का अध्ययन करने वाले छात्रों के लिए अत्यन्त सरल तथा उपयोगी है। यह मीमांसा शास्त्र का प्रकरण ग्रन्थ है। इसमें मीमांसा के गम्भीर सिद्धान्तों का सरल-सुबोध भाषा में नाना उदाहरणों से संवलित विवेचन किया गया है। यह एक मौलिक ग्रन्थ है और शास्त्रीजी के गम्भीर अध्ययन का सद्य. परिचायक है। यह काशी से ही सम्वत् २००१ में प्रकाशित हुआ था।

पण्डित चिन्न स्वामीजी वैदिक कर्मकाण्ड तथा यज्ञविधान के भी मार्मिक ज्ञाता थे। दक्षिण भारत में सम्पन्न अनेक यज्ञों का इन्होंने सूक्ष्मतया निरीक्षण किया तथा स्वयं उनमें योगदान दिया था। इसके परिणामस्वरूप ये श्रौत भाग के बड़े ही अच्छे जानकार थे। इस दृष्टि से इनके एतद्विषयक दोनों ग्रन्थ (३) **वैदिक यज्ञमीमांसा** तथा (४) **यज्ञतत्त्व-प्रकाश** बड़ी ही मूल्यवान् तथा उपादेय कृतियाँ हैं, क्योंकि यज्ञ का पूरा रहस्य इनमें सुबोध रीति से समझाया गया है।

स्वामीजी ब्राह्मणों तथा कल्पसूत्रों के भी सुबोध अध्येता तथा प्रौढ़ विवेचक थे। काशी में रहते समय इन्होंने **ताण्डय ब्राह्मण** जैसे विशालकाय सामवेदीय ब्राह्मण का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ा ही विमर्शात्मक संस्करण चौखम्भा ग्रन्थमाला में प्रकाशित किया। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र का उनका संस्करण दो टीकाओं के साथ चौखम्भा से ही प्रकाशित है। उसकी भूमिका बड़ी उपादेय है, क्योंकि उसमें विषय के विस्तृत विवेचन के साथ ही ग्रन्थकार के देशकाल का भी निर्णय बड़ी छानबीन के साथ किया गया है। फलतः ये सम्पादित वैदिक तथा मीमांसा ग्रन्थ इनकी विस्तृत जानकारी, विषय में गाढ़ अनुप्रवेश तथा विस्तृत दृष्टिकोण का सद्यः परिचय देने वाले हैं। इनके द्वारा सम्पादित मुख्य ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

(१) मीमांसा कौस्तुभ, (२) बृहती, (३) ताण्ड्य ब्राह्मण, (४) आपस्तम्ब गृह्यसूत्र, (५) आपस्तम्ब श्रौत्रसूत्र, (६) बौधायन धर्मसूत्र, (७) विधितत्व संग्रह, (८) तौतातित-मततिलकम्।

इसके अतिरिक्त आपने अनेक संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं—यथा 'पीयूष पत्रिका', 'संस्कृत-रत्नाकर' और 'सूर्योदय' आदि में अनेक शोधपूर्ण निबन्धों को लिखकर अपनी अगाध विद्वत्ता का परिचय दिया है।

सन्तान—शास्त्रीजी का परिवार सुखी तथा समृद्ध था। आपके पाँच पुत्र तथा चार कन्याएँ थीं। ये सभी पुत्र सुखपूर्वक अपना जीवन-यापन कर रहे हैं। आपके ज्येष्ठ पुत्र का नाम पं० रघुनाथ शास्त्री है जो काशी में ही हनुमान घाट पर निवास करते हैं। आप भी अपने पिताजी के ही समान संस्कृत विद्या के प्रचार तथा प्रसार में सदा संलग्न रहते हैं।

शिष्यमण्डली—म० म० पं० चिन्नस्वामी शास्त्री ने काशी, कलकत्ता और तिरुपति में अनेक छात्रों को मीमांसा और धर्मशास्त्र का अध्यापन किया। इस प्रकार आपके सैकड़ों सुयोग्य शिष्य भारतवर्ष के विभिन्न भागों में फैले हुए हैं। ये शिष्यगण आज उच्च पदों को सुशोभित कर रहे हैं। इनमें से कुछ प्रधान शिष्यों के नामों का निर्देश यहाँ किया जा रहा है—

(१) स्वामी गङ्गेश्वरानन्दजी—महामण्डलेश्वर, अहमदाबाद (गुजरात)।
(२) स्वामी भागवतानन्दजी, अहमदाबाद।
(३) पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, मोतीझील, काशी।
(४) पं० पट्टाभिराम शास्त्री शास्त्ररत्नाकर, काशी।
(५) पण्डित सुब्रह्मण्य शास्त्री।
(६) पण्डित रामनाथ दीक्षित।
(७) पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक।

व्यक्तित्व—महामहोपाध्याय पण्डित चिन्नस्वामी शास्त्री का व्यक्तित्व बड़ा ही आकर्षक तथा प्रभावशाली था। अधोवस्त्र तथा ऊर्ध्व वस्त्र धारण करने के पश्चात् जब आप अपने सिर पर मद्रासी पगड़ी बाँधते थे तब आपका व्यक्तित्व चमक उठता था। आप संस्कृत में धारा-प्रवाह भाषण करने की अद्भुत क्षमता रखते थे। लेखक को आपके

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषणों को सुनने का अवसर अनेक बार प्राप्त हुआ है। और वह अपने अनुभव से कह सकता है कि आपकी वाणी में प्रवाह था और भाषा में ओजस्विता थी। तमिल भाषा-भाषी होते हुए भी आप हिन्दी में अच्छा भाषण देते थे।

शास्त्रीजी आधुनिक शब्दों में बड़े ही 'चलते-पुर्जे' विद्वान् थे। संस्कृत के पण्डितों में प्रायः कर्मठता का अभाव पाया जाता है। परन्तु शास्त्रीजी बड़े ही कर्मठ व्यक्ति थे। हिन्दू विश्वविद्यालय काशी में इन्होंने लगभग तीस वर्षों में प्राध्यापक से लेकर प्रिन्सिपल तक के पदों को सुशोभित किया। जीवन की गोधूलि में कलकत्ता विश्व-विद्यालय तथा वहाँ के गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज में इन्होंने क्रमशः अध्यापन तथा अनुसन्धान का कार्य किया। इन्होंने संस्कृत साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता की, ओरियण्टल कान्फेरेन्स के एक विभाग के सभापति थे। इसके अतिरिक्त अनेक सभा-सोसाइटियों के ये अध्यक्ष थे। किसी संस्कृत के विद्वान् में इससे अधिक कर्मठता क्या हो सकती है? परन्तु उत्तरी भारत में मीमांसाशास्त्र की प्रतिष्ठा करना इनका सबसे बड़ा योगदान है जिसके लिए संस्कृत जगत् इनका सर्वदा ऋणी रहेगा।

प्रधान शिष्य

(१) पण्डित पट्टाभिराम शास्त्री

जन्म ३०-११-१९०८ ई०। जन्म-स्थान—नार्थ आर्काड जिला, मद्रास प्रान्त। पिता का नाम—श्रीकृष्ण राव।

अध्ययन समय—६ वर्ष में उपनयन कराकर तैत्तिरीय शाखा का २ वर्ष जन्म-स्थान 'पैलासूर' में वेदाध्ययन हुआ। तदनन्तर तिरुवन्नामलय तेजोलिङ्ग क्षेत्र में ब्रह्मश्री गणपति शास्त्रीजी के अन्तेवासी रहकर काव्याध्ययन का समय २ वर्ष। तदनन्तर तिरुपति (बालाजी) क्षेत्र के वेङ्कटेश्वर संस्कृत महाविद्यालय में काव्य, नाटक, व्याकरण, अलङ्कार का ५ वर्षों में अध्ययन। तदनन्तर १९२४ में बनारस आकर ब्रह्मश्री गुरु चरण श्री चिन्नस्वामी शास्त्रीजी के अन्तेवासी रहकर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से मध्यमा, शास्त्री, आचार्य की परीक्षाएँ क्रमशः दी गयीं। सभी परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी के नम्बर मिले। इसके साथ-साथ पं० अम्बादास शास्त्रीजी तथा श्री शंकर तर्क-रत्नजी के पास न्याय का अध्ययन किया और पं० महादेव शास्त्रीजी से साहित्य के सभी अलंकार-ग्रन्थों का यथावत् अध्ययन कर क्रमशः, न्याय मध्यमा, न्यायशास्त्री, न्यायाचार्य तथा साहित्य शास्त्री, साहित्याचार्य परीक्षाओं में प्रविष्ट होकर साफल्य प्राप्त किया।

पूज्य चिन्नस्वामी शास्त्रीजी के अन्तेवासी रहकर मीमांसा शास्त्री के बाद उनके द्वारा सम्पादित 'ताण्ड्यमहाब्राह्मण', 'मीमांसाकौस्तुभ', 'बृहती' आदि उत्कृष्ट ग्रन्थों को सम्पादन करने की शिक्षा प्राप्त की और गुरुजी के निर्देश से तेलुगु, मलयालम, कन्नड आदि लिपियों को सीखकर तत्तद् लिपियों की मातृकाओं को पढ़ने की शिक्षा प्राप्त की और उनके प्रतिलिपि करने के आदेश को प्राप्त कर प्रतिलिपि की।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सं० १९२४ में महामहोपाध्याय प्रमथनाथ तर्कभूषण तथा मदनमोहन मालवीयजी के अनुग्रह से का० हि० वि० विद्यालय में मीमांसाध्यापक रूप से कार्य करने लगे और १९३९ में गुरुजी के तिरुपति जाने पर पूज्य मालवीयजी ने इन्हें मीमांसा विभागाध्यक्ष बनाया। इसी सन्दर्भ में इन्होंने प्रथम पुस्तक **'वेदप्रकाश'** का सम्पादन किया और डा० मङ्गलदेव शास्त्रीजी की प्रेरणा से **'तौतातिकमतप्रकरणम्'** नाम का अत्युत्तम ग्रन्थ सम्पादित किया। सं० १९९५ में पूज्य मालवीयजी की अनुकम्पा से जयपुर महाराज संस्कृत कालेज का अध्यक्ष पद प्राप्त हुआ। वहाँ रहते हुए **'जयवंशमहाकाव्य'** एवं **प्रमाण-मञ्जरी** का सम्पादन कार्य किया। १९४८ ई० में जयपुर महाराज के द्वारा 'विद्या-सागर' की उपाधि प्राप्त हुई। तदनन्तर १९५२ के फरवरी मास की ६ तारीख को कलकत्ता विश्वविद्यालय के अधिकारियों के द्वारा बुलाने पर वहाँ अध्यापक का स्थान ग्रहण किया। वहाँ ग्रन्थ सम्पादन का विशेष कार्य न होने पर भी अध्यापन कार्य का सुचारु रूप से संचालन करते हुए अनेक योग्य विद्यार्थियों को तैयार किया।

१९६७ के दिसम्बर मास में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के अधिकारियों द्वारा साहित्य विभागाध्यक्ष के रूप में आह्वान करने पर यहाँ का पद ग्रहण किया। इस अवसर पर **'अध्वरमीमांसाकुतूहलवृत्ति'** नाम के वृहद् ग्रन्थ का सम्पादन किया, जिसका प्रकाशन श्री लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय विद्यापीठ के द्वारा हुआ। यहाँ के पद से विश्रान्त होकर १९७३ ई० में प्रभा सहित **शास्त्रदीपिका** तथा **'व्यासशिक्षा'** का सम्पादन किया। इस समय कर्कभाष्य सहित कात्यायन श्रौतसूत्र का सम्पादन चल रहा है। कलकत्ते में रहते हुए श्री कामकाञ्चीकोटीश्वर के अधिपति शङ्कराचार्यजी ने **'शास्त्ररत्नाकर'** पदवी दी। काशी की विद्वत्परिषद् द्वारा **'पण्डितराज'** पदवी प्राप्त हुई और १९७३ में राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित हुए तथा उत्तर प्रदेश साहित्य अकादमी के द्वारा पुरस्कार और प्रमाणपत्र प्राप्त हुआ। इस प्रकार अध्ययन-अध्यापन तथा प्राचीन ग्रन्थों के सम्पादन के द्वारा शास्त्रीजी ने संस्कृत विद्या के प्रसार-प्रचार में विशेष योगदान दिया।

(२) पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक

पं० युधिष्ठिर मीमांसक संस्कृत के गम्भीर विद्वान् हैं। आपने व्याकरण शास्त्र तथा मीमांसा शास्त्रों का गुरुमुख से विधिवत् अध्ययन कर पाण्डित्य प्राप्त किया है। मीमांसा शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित होने के कारण ही सम्भवतः ये अपने नाम के साथ 'मीमांसक' की उपाधि धारण करते हैं।

पूर्वपुरुष

पं० युधिष्ठिर मीमांसक के पूर्व पुरुष राजस्थान राज्य के पुष्कर क्षेत्र के अन्तर्गत अजमेर मण्डल के विरकच्यावास में रहने वाले भारद्वाज गोत्रीय, यजुर्वेदीय माध्यन्दिन शाखा के अध्येता सारस्वत ब्राह्मण थे। आपके पितामह का नाम रघुनाथजी, पिता क नाम पं० गौरीलाल आचार्य और माता का नाम यमुनाबाई था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म

आपके पिताजी ने तत्कालीन बीकानेर तथा किशन राज्यों में अध्यापन कार्य किया था परन्तु सन् १६०८ ई० में वे इन्दौर राज्य में जीविका के लिए चले गये थे। अतः मीमांसकजी का जन्म इन्दौर राज्य के नीमाड़ जिले के मुहम्मदपुर गाँव में भाद्र सुदी नवमी सं० १६६६ वि० तदनुसार २२ सितम्बर सन् १६०६ ई० को हुआ।

शिक्षा

पं० युधिष्ठिर मीमांसक के पिता आर्यसमाज के अनुयायी थे। अतः उन्होंने अपने पुत्र को स्वामी दयानन्दजी द्वारा प्रदर्शित शिक्षण-पद्धति से शिक्षा देने का निश्चय किया। इसी हेतु उन्होंने अपने पुत्र को प्रथम गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार और बम्बई में स्थापित गुरुकुलों में पढ़ने के लिए भेजा परन्तु किन्हीं कारणों से इन दोनों स्थानों में इन्हें प्रवेश प्राप्त नहीं हो सका। तदनन्तर आप स्वामी सर्वदानन्दजी द्वारा स्थापित साधु आश्रम, अलीगढ़ में जाकर स्वाध्याय में निरत हो गये। वहाँ पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, पं० बुद्धदेव आदि विद्वानों से आपको अध्ययन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। कुछ वर्षों के पश्चात् आप अपने गुरु ब्रह्मदत्त जिज्ञासु के साथ काशी अध्ययन करने के लिए चले आये। यहाँ पर मीमांसकजी ने म० म० पं० चिन्न स्वामी शास्त्री तथा पं० पट्टाभिराम शास्त्री से मीमांसा शास्त्र का, पं० ढुण्ढिराज शास्त्री से न्याय-वैशेषिक का तथा पं० भगवत्प्रसाद मिश्र से कर्मकाण्ड, विशेषकर कात्यायन श्रौतसूत्र, का प्राचीन प्रणाली के अनुसार गुरुमुख से विधिवत् अध्ययन किया। सन् १९२१ ई० से १९३५ ई० तक आपको पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जैसे विद्वान् का सतत शिष्यत्व प्राप्त करने का अवसर मिला। अतः वेदों का भी आपने सम्यक् अनुशीलन किया। इस प्रकार आपने व्याकरण, मीमांसा, कर्मकाण्ड, वेद आदि विषयों में गम्भीर पाण्डित्य अर्जित किया।

अध्यापन कार्य

मीमांसकजी ने यद्यपि अनेक शास्त्रों का सम्यक् अध्ययन किया परन्तु कोई परीक्षा-सम्बन्धी डिग्री या उपाधि प्राप्त नहीं की। अतः जीविका के लिए इन्हें यत्र-तत्र भटकना पड़ा। इन्होंने सन् १९३६ ई० से ४२ ई० तक विरजानन्द साङ्गवेद विद्यालय, लाहौर में व्याकरण का अध्यापन किया। सन् १९४३ ई० से ४७ तक अजमेर में, इसके बाद सन् १६५० ई० से ५५ ई० तक पाणिनीय महाविद्यालय, मोतीझील, वाराणसी में छात्रों को पढ़ाते रहे। फिर स्वतन्त्र रूप से ये दिल्ली तथा अजमेर में सन् १६५५ ई० से ६६ ई० तक अध्यापन का कार्य करते रहे। सन् १६६७ ई० में भुवनेश्वर (उड़ीसा) में सान्ध्य संस्कृत महाविद्यालय के अध्यक्ष पद को सुशोभित किया। सन् १९६७ ई० से ही आप बहालगढ़, सोनीपत, हरियाणा मे 'पाणिनीय विद्यालय' में विद्यार्थियों को विद्या-दान कर रहे हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोध कार्य

पं० युधिष्ठिर मीमांसक की प्रवृत्ति अपनी छात्रावस्था से ही शोधकार्य की ओर रही है। फलस्वरूप आपने गत ४५ वर्षों (सन् १९३६ ई० से लेकर १९८१ ई०) में जो शोध कार्य किया उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है। आपने संस्कृत में ११ और हिन्दी में १६ शोधपूर्ण निबन्ध लिखे हैं। शिक्षा, निरुक्त, व्याकरण और वेद आदि विषयों से सम्बन्धित २० दुर्लभ तथा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का सम्पादन किया है। प्राचीन प्रौढ़ शास्त्रीय ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद के साथ व्याख्या भी की है जिनमें महाभाष्य के प्रथम दो अध्यायों तथा मीमांसा सूत्रों पर शबर स्वामी के भाष्य की हिन्दी व्याख्या प्रकाशित है। आपकी लेखन-प्रवृत्ति शोधपरक है। अतः आपने जिन ग्रन्थों की रचना की है उनमें अनुसन्धान की प्रवृत्ति विशेषरूपेण परिलक्षित होती है।

ग्रन्थ रचना

मीमांसकजी ने अनेक मौलिक तथा शोधपरक ग्रन्थों की रचना की है जिनकी सूची निम्नांकित है—

१. संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास (भाग १, २, ३)।
२. वैदिक स्वरमीमांसा।
३. वैदिक छन्दोमीमांसा।
४. काशकृत्स्न-धातु-व्याख्यानम्।
५. माध्यन्दिन पद-पाठ।
६. महाभाष्य की हिन्दी व्याख्या (तीन भागों में)।
७. ऋग्वेद भाष्य (स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत दो भागों में)।
८. ऋग्वेद की ऋक्संख्या।
९. निरुक्तसमुच्चयः।
१०. मीमांसा-शाबर भाष्य (हिन्दी अनुवाद तथा व्याख्या सहित)।

यों तो मीमांसकजी का प्रत्येक ग्रन्थ शोधपूर्ण है परन्तु उनमें तीन ग्रन्थों का उल्लेख अत्यन्त आवश्यक है—(१) **संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास**—यह ग्रन्थ तीन बृहद् भागों में प्रकाशित हुआ है। प्रथम भाग में २३ प्राचीन वैयाकरणों का इतिहास, पाणिनि के उत्तरवर्ती १५ प्रमुख व्याकरण के प्रवक्ताओं और ८० व्याख्याताओं का इतिवृत्त बड़ी विद्वत्ता के साथ निबद्ध किया गया है। इसी प्रकार द्वितीय तथा तृतीय भाग में भी व्याकरण-सम्बन्धी अनेक उपयोगी विवरण दिये गये हैं। इस ग्रन्थ के अनेक संस्करण हो चुके हैं। आपका (२) दूसरा ग्रन्थ भगवान् पतञ्जलि के व्याकरण **महाभाष्य** के कुछ अंशों का **हिन्दी में अनुवाद** है। महाभाष्य पाणिनि व्याकरण का चूडान्त ग्रन्थ माना जाता है जिसका हिन्दी में अनुवाद करना तो दूर की बात रही, उसके अर्थ को हृदयंगम करना भी दुष्कर कार्य है। परन्तु मीमांसकजी ने इसका हिन्दी में अनुवाद दो भागों में प्रस्तुत कर अपनी प्रकाण्ड विद्वत्ता का परिचय दिया

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। आपका तीसरा ग्रन्थ (३) मीमांसा-शाबर-भाष्य के प्रथम अध्याय के चारो पादों का हिन्दी में अनुवाद तथा विस्तृत व्याख्या है। शाबर-भाष्य, मीमांसा शास्त्र का अत्यन्त कठिन, दुरूह तथा चूडान्त ग्रन्थ प्रसिद्ध है जिसको समझना लोहे का चना चबाने के समान है। इस अत्यन्त कठिन ग्रन्थ के भावों का हिन्दी में अनुवाद के साथ ही व्याख्या करना अत्यन्त दुरूह व्यापार है। हिन्दी में तो क्या अंग्रेजी में भी, डा० गंगानाथ झा को छोड़कर, इस कार्य को अभी तक किसी ने नहीं किया है। इस व्याख्या से अनुवादक की गम्भीर विद्वत्ता का पता चलता है जिसके लिए यह विद्वान् संस्कृत साहित्य-संसार की बधाई का पात्र है।

सम्मान तथा उपाधि

पं० युधिष्ठिर मीमांसक को इनकी गम्भीर विद्वत्ता के लिए अनेक सम्मान तथा उपाधियाँ प्राप्त हुई हैं। भारत सरकार ने सन् १९७७ ई० में इन्हें राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित किया था जिससे संस्कृत के महान् विद्वानों को ही पुरस्कृत किया जाता है। राजस्थान राज्य के संस्कृत शिक्षा विभाग द्वारा वेद तथा संस्कृत व्याकरण-सम्बन्धी शोध कार्य के लिए आपको तीन सहस्र मुद्रा का अनुदान सन् १९६३ ई० में प्राप्त हुआ था। उत्तर प्रदेश की राज्य सरकार ने मीमांसकजी को प्रायः इनके प्रत्येक ग्रन्थ पर हजारों रुपयों का पुरस्कार प्रदान किया है। इस प्रकार अनेक सरकारों तथा संस्थाओं द्वारा आप अपनी विद्वत्ता के लिए पुरस्कृत किये जा चुके हैं। इसे संस्कृत साहित्य संसार का सौभाग्य ही समझना चाहिए कि यह मनीषी अपना त्याग-मय जीवन व्यतीत करता हुआ आज भी संस्कृत वाङ्मय की सेवा में कर्मणा, मनसा और वाचा सतत संलग्न है।

श्री चिन्नस्वामीजी के दो शिष्य हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत महाविद्यालय से कई वर्ष पूर्व सेवा-निर्मुक्त हुए हैं—(३) **पण्डित सुब्रह्मण्य शास्त्री** मीमांसाशास्त्र के विभागाध्यक्ष थे। ये मीमांसा, वेदान्त तथा वेद के उत्कृष्ट विद्वान् हैं। इन विषयों में अनेक ग्रन्थों का सुन्दर संस्करण प्रकाशित किया है। (४) **पण्डित रामनाथ दीक्षित** वेद विभाग के अध्यक्ष थे। वे सामवेद के उत्कृष्ट मर्मज्ञ विद्वान् हैं। **जैमिनि-गान** (संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित) की भूमिका में इन्होंने सामवेद-सम्बन्धी अनेक रहस्यों का उद्घाटन किया है। दोनों विद्वान् काशी में ही रहकर संस्कृतशास्त्रों का प्रचार कर रहे हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३८

पण्डित सत्यनारायण शास्त्री

(आस्पद — पाण्डेय, उपाधि — पद्मभूषण)

आयुर्वेद के प्रकृष्ट पाण्डित्य, सिद्धान्त-ग्रन्थों की तलस्पर्शी विद्वत्ता तथा चिकित्सा-विज्ञान के अलौकिक चमत्कार के कारण कविराज सत्यनारायण शास्त्री जी ने आधुनिक वैद्यों में मूर्धन्य स्थान प्राप्त किया था। इन्होंने महामहोपाध्याय पं० शिवकुमार शास्त्री से माष्यान्त व्याकरण शास्त्र का विधिवत् अध्ययन किया था तथा म० म० गंगाधर शास्त्री से साहित्य और न्यायशास्त्र की शिक्षा ग्रहण की थी। इतनी उत्कृष्ट शास्त्रीय विद्वत्ता के साथ ये आयुर्वेद के मूर्धन्य एवं प्रौढ़ ग्रन्थों का उसी निष्ठा तथा आग्रह के साथ अध्ययन कर आयुर्वेद शास्त्र के मर्मज्ञ और तत्त्ववेत्ता मनीषी के रूप में प्रसिद्ध थे। यही कारण था कि भारत के प्रथम राष्ट्रपति भारतरत्न डा० राजेन्द्र प्रसाद ने इन्हीं को अपना सरकारी चिकित्सक नियुक्त किया था। इन्होंने भी राष्ट्रपति के द्वारा अपने में स्थापित आस्था को अपने आयुर्वेदिक चमत्कारों के द्वारा सत्य प्रमाणित कर दिया था। इन्हीं महनीय आयुर्वेद के पारंगत विद्वान् का संक्षिप्त जीवन परिचय यहाँ दिया जाता है। परिचय देने के पूर्व काशी में विद्यमान आयुर्वेदीय परम्परा का अत्यन्त संक्षिप्त परिचय उपस्थित किया जा रहा है।

(१) मध्ययुग में आयुर्वेद-परम्परा

काशी बहुत प्राचीन काल से आयुर्वेद की शिक्षा का गढ़ रही है। काशीराज धन्वन्तरि शल्यचिकित्सा के प्रथम तथा महान् चिकित्सक थे। इस तथ्य का निर्देश पीछे किया गया है। मध्ययुग में भी काशी के आयुर्वेद के पण्डितों की परम्परा पूरी तरह से सक्रिय रही। काशी उसी प्रकार आयुर्वेदीय पण्डितों के लिए आकर्षण-स्थली रही, जिस प्रकार यह अन्य शास्त्रों के पण्डितों के लिए आकर्षण की केन्द्रस्थली थी। भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों से चिकित्सक लोग काशी आते थे तथा रोगियों की दवा किया करते थे। यहाँ आयुर्वेद की शिक्षा का भी प्रबन्ध था।

मध्ययुग में एक विशिष्ट परिवार ही काशी में आयुर्वेद के ग्रन्थों की रचना के कारण नितान्त प्रख्यात है। इस वंश का नाम **कर्पूरीय सारस्वत ब्राह्मण** वंश था। इस कुल के प्रधान पं० शिवदत्त मिश्र थे। इनके पिता का नाम चतुर्भुज मिश्र था जो स्वयं आयुर्वेद तथा अन्य शास्त्रों के पारंगत पण्डित थे। शिवदत्त मिश्र ने अपने पिता से ही आयुर्वेद की शिक्षा ग्रहण की थी। इस तथ्य का उल्लेख इन्होंने ग्रन्थों में किया है। इनकी तीन रचनाओं का पता चलता है—(१) **संज्ञा समुच्चय**— यह निदान,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिकित्सा तथा द्रव्यगुण-सम्बन्धी विषम स्थलों के स्पष्टीकरण के लिए लिखा गया है। (२) **शिवकोष**—यह आयुर्वेद का निघण्टु ग्रन्थ है जिसमें ५४० श्लोक मिलते हैं। इसमें औषध द्रव्यों के नामों का अक्षरानुक्रम से निर्देश है। उस युग के पूर्व लिखे गये अनेक प्रामाणिक कोशों के आधार पर इस ग्रन्थ का निर्माण शिवदत्त मिश्र ने किया था। इसका रचना काल १५९९ शक (१६७७ ई०) है। (३ **शिवप्रकाश**—यह शिवकोष की व्याख्या है। इसमें सैकड़ों कोषों, टीकाओं तथा ग्रन्थों से उदाहरण दिये गये हैं, जिससे लेखक के व्यापक पाण्डित्य का परिचय मिलता है। यह व्याख्या मूल ग्रन्थ में दिये गये द्रव्यों का विशेष परिचय देती है। कहीं-कहीं उस युग में प्रचलित होने वाले हिन्दी नामों का भी निर्देश दिया गया है।

इनके पुत्र का नाम **कृष्णदत्त मिश्र** था। इन्होंने त्रिमल्ल भट्ट रचित **द्रव्यगुणशत-श्लोकी या द्रव्यगुण-शतक** पर द्रव्यदीपिका नामक टीका लिखी है। ये त्रिमल्ल भट्ट काशी के निवासी तैलंग ब्राह्मण थे। अतएव काशीवासी वैद्य के द्वारा उसके ऊपर टीका लिखा जाना स्वाभाविक है। इनका समय १७वीं सदी प्रतीत होता है। कृष्णदत्त की इस व्याख्या में द्रव्यगुण के सम्बन्ध में सिद्धान्त पक्ष तथा व्यवहार पक्ष दोनों का प्रकटन विशेष रूप से किया गया है। अनेक प्राचीन ग्रन्थों के उद्धरण दिये गये है। द्रव्यों का वर्णन बड़ी सूक्ष्मता से किया गया है। यह कपूरिया वंश सारस्वत ब्राह्मणों का ही है जो मूलतः पंजाब के निवासी हैं। इस वंश के द्वारा ऊपर निर्दिष्ट आयुर्वेद की सेवा बड़े महत्त्व की सूचना दे रही है।

(२) अर्वाचीन आयुर्वेद परम्परा

मध्ययुग की आयुर्वेद परम्परा काशी में किसी न किसी रूप में चलती ही रही। और इस परम्परा को पुष्ट करने वाले वैद्यों ने भारत के विभिन्न प्रान्तों से आकर काशी को अपना आवासस्थल बनाया, आयुर्वेद की शिक्षा छात्रों को दी तथा आयुर्वेद चिकित्सा के द्वारा रोगियों के रोगों को दूर किया। स्थानाभाव के कारण गतशताब्दी के ही काशीस्थ वैद्यों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

(१) महाराष्ट्र से आये हुए वैद्यों के प्रतिनिधि रूप में हम श्री **त्र्यम्बक शास्त्री** को ग्रहण कर सकते हैं। महाराष्ट्र प्रान्त के वैद्यों की बड़ी आस्था अष्टांग-हृदय पर रही। इस ग्रन्थ को वे अपनी चिकित्सा का मूल ग्रन्थ मानकर इसके अक्षर-अक्षर का अभ्यास करते थे। महाराष्ट्रीय वैद्य आयुर्वेद के आठों अंगों के विशेष जानकार तथा उनके विषय में अनुसंधान करने वाले होते थे। इस विषय में वे बंगाल के वैद्यों से भिन्न होते थे। बंगाल में चरक का अध्ययन आयुर्वेद का मेरुदण्ड माना जाता था। बंगीय चिकित्सक चरक संहिता को वेदवत् प्रामाणिक तथा प्रमेयबहुल मानता था। उसके अध्ययन में वह अपना जीवन खपा देता था। ऐसे अनेक बंगाली कविराज मिलेंगे जिनकी चरक की चिकित्सा में इतनी आस्था थी कि प्रत्येक रोग की चिकित्सा के लिए वे 'चरक संहिता' का ही आश्रय लेते थे। यही कारण है कि बंगाल में आयुर्वेद-चिकित्सा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अनेक गंभीर ज्ञाता तथा प्रौढ़ व्यावहारिक चिकित्सक गत शताब्दी में परम्परा रूप से उपलब्ध होते हैं। इस परम्परा को आरम्भ करने का श्रेय श्री **गङ्गाधर कविराज** को प्राप्त है जिन्होंने चरकसंहिता के ऊपर अपनी विद्वत्तापूर्ण प्रकाण्ड व्याख्या 'जल्पकल्पतरु' की रचना कर आयुर्वेद-संसार में अच्युत कीर्ति का अर्जन किया है। इस प्रकार महाराष्ट्रीय परम्परा तथा बंगीय परम्परा में स्पष्ट अन्तर दीख पड़ता है।

पं० त्र्यम्बक शास्त्री महाराष्ट्रीय परम्परा के निर्वाहक प्रतिनिधि चिकित्सक थे। उन्होंने संस्कृत के इतर शास्त्रों का अध्ययन गुरुमुख से किया था। उन्होंने बालशास्त्री के चरणों मे बैठकर कुछ शास्त्रों का अध्ययन किया था। चिकित्सा जगत् में वे बड़े ही कीर्तिसम्पन्न तथा प्रभावशाली चिकित्सक माने जाते थे। उनके पिता का नाम था **अमृत शास्त्री**। श्रीशास्त्री का जन्म काशी में ही वि० सं० १९१८ (१८६१ ई०) तथा निधन सं० १९९९ (१९४२ ई०) में हुआ था।

उनके पूर्वजों का मूल निवास स्थान नासिक क्षेत्र के प्रदेश में चान्दोर (चान्दोक) नामक ग्राम में था। उनके पूज्य पिता पं० अमृत शास्त्रीजी ने काशी में आकर निवास किया। वे आयुर्वेद के असाधारण विद्वान् एव विख्यात यशस्वी वैद्य थे। चिकित्सा के कारण काशी में इनकी इतनी प्रतिष्ठा हुई कि सुदूर काश्मीर के महाराजा रणवीर सिंह ने अपनी चिकित्सा शास्त्रीजी के द्वारा ही करायी। चमत्कार की बात तो यह है कि महाराजा के चित्र को देखकर ही अमृत शास्त्रीजी ने उनके रोगों का स्वरूप एवं निदान यथावत् बता दिया और चिकित्सा करके उन्हें सर्वथा नीरोग बना दिया। ऐसे सुयोग्य विद्वान् चिकित्सक के पुत्र होने का गौरव त्र्यम्बक शास्त्रीजी को प्राप्त था। इस प्रकार इनकी असाधारण योग्यता आनुवंशिक विशुद्ध संस्कार से प्राप्त थी।

श्री त्र्यम्बक शास्त्रीजी केवल आयुर्वेद के ही मर्मज्ञ विद्वान् नहीं थे प्रत्युत व्याकरण, न्याय आदि शास्त्रों में भी इनको प्रवीणता प्राप्त थी। इन्होंने व्याकरण का अध्ययन विख्यात बाल शास्त्रीजी से, न्याय का अध्ययन दण्डी भट्ट पं० विश्वनाथ शास्त्री से तथा साहित्य का अध्ययन स्वामी पूर्णानन्दजी के पास रहकर किया था। इनमें पितृ-भक्ति तथा गुरुभक्ति असाधारण रूप से विद्यमान थी। फलतः इन्होंने अपने पिताजी की स्मृति में अपने विशाल भवन का नाम 'अमृतभवन' रखा तथा यज्ञशाला एवं छात्रावास की स्थापना कर इन्होंने अपने गुरु बालशास्त्रीजी की यज्ञशाला की स्मृति स्थायी बना दी। आपकी शिष्यपरम्परा पर्याप्त रूप से विस्तृत है। बम्बई के सुप्रसिद्ध वैद्य अप्पा शास्त्री साठे, पञ्जाब के मोतीलाल शास्त्री, उज्जैन के पं० विनायक शास्त्री आपके ही सुप्रसिद्ध शिष्य हैं। काशी के लिए कहना ही क्या है? वैद्य पं० श्रीनिवास शास्त्री, पं० रमाशंकर वैद्य, पं० शिवदत्त वैद्य, रस-विशारद श्री दुर्गादत्त प्रभृति आपके विद्या-वंश के रत्न हैं।

श्री त्र्यम्बक शास्त्री नाड़ी के विज्ञ परीक्षक माने जाते थे। यह नाड़ी देखकर ही रोगी से पूर्व की घटनाओं का विवरण देते थे जो अक्षरशः सत्य निकलता था। ये बड़ी युक्ति और सूझबूझ के व्यक्ति थे। इस विषय का इनका कौशल सुनकर आश्चर्यचकित

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होना पड़ता है। लेखक को उन्हीं के शिष्य **चुन्नीलाल वैद्यजी** ने बताया था कि हीरा-भस्म तैयार करने के लिए मेढक के मूत्र की आवश्यकता पड़ी। सब लोग चकित थे। यह कैसे प्राप्त होगा? शास्त्रीजी से कहा गया। शास्त्रीजी ने बड़े-बड़े मेढकों को मँगाकर एक थाल में रखा तथा दूसरे थाल से उसे ढक दिया और स्वयं छड़ी से ऊपर से पीटना शुरू किया। डर के मारे मेढकों की बुरी हालत थी और उन लोगों ने पेशाब करना प्रारम्भ किया जिससे थाली पूरी भर गयी। यह युक्ति देखकर सब लोग चकित हो गये। वे औषधों का निर्माण स्वयं करते थे और इसीलिए उनके औषधों का चमत्कारी गुण रोगियों को मुग्ध तथा आश्चर्यचकित कर देता था।

श्रीमांस्त्र्यम्बकशास्त्री भुव्यायुर्वेदमूर्तिधृक् साक्षात्।
तद्वैद्यरत्नपदमपि यस्मिन्नस्तीह मुख्यार्थम्॥

(२) **अर्जुन मिश्र**—काशी के दूसरे प्रख्यात चिकित्सक थे। इनका जन्म होशियारपुर, पञ्जाब में संवत् १९१० (१८५३ ई०) वैशाख शुक्ल पञ्चमी को हुआ था। काशी में ही इन्होंने चिकित्सा आरम्भ की और अपनी योग्यता के कारण ही शीघ्र प्रसिद्ध हो गये। आरम्भ से ही अध्यापन करते थे। १९१७ ई० में 'आयुर्वेद विद्या-प्रमोदिनी पाठशाला' की स्थापना की जिसके अभिवर्धन में ये यावज्जीवन लगे रहे। इनका स्वर्गवास सं० १९७९ (१९२१ ई०) में हुआ। आपने अपनी सारी सम्पत्ति इस विद्यालय को दे दी जो आप ही के स्मारक रूप में 'अर्जुन आयुर्वेद विद्यालय' के नाम से प्रसिद्ध है। इनके शिष्यों में **'श्यामसुन्दराचार्य'**, पं० नानकचन्द्र शर्मा लाहौर, पं० लालचन्द्र वैद्य (प्रधानाचार्य, अर्जुन आयुर्वेद विद्यालय, काशी) आदि प्रमुख हैं।

(३) **उमाचरण कविराज**—ये गत शताब्दी में काशी के प्रमुख बंगीय कविराज थे। गंगाधर कविराज के द्वारा प्रवर्तित कविराजीय परम्परा के पल्लवन तथा संवर्द्धन के लिए काशी प्रमुख स्थान रहा। काशी के कविराज गंगाधर कविराज की परम्परा में अन्तर्भुक्त हैं। उमाचरण कविराज वैद्य होने के साथ ही साथ बड़े भारी साधक थे। सुना जाता है कि वे दिन पर्यन्त पूजा-अर्चा में ही लगे रहते थे। रात्रि के समय ही रोगियों को देखते थे और अपनी चिकित्सा की सफलता के कारण ही लोगों में नितान्त विख्यात थे। अपनी सारी सम्पत्ति इन्होंने भगवान् शिव की सेवा में लगा दी है। अपने विशाल मकान के ऊपर इन्होंने यह श्लोक लिख रखा है—

उमाचरणचित्तेन उमाचरणशर्मणा।
यदुमाचरणात् प्राप्तं तद् उमाचरणेऽर्पितम्॥

(४) **कविराज धर्मदास**—इसका जन्म बंगाल के नवद्वीप के पास १८६२ ई० में 'चुपी' गाँव में हुआ था। पिता का नाम था—**कविराज काशीप्रसन्न सेन**। व्याकरण, साहित्य, दर्शन आदि का अध्ययन बंगाल में ही समाप्त कर वे काशी आये। इनके मामा **कविवर परेशनाथ सेन** काशी में आयुर्वेद का अध्यापन करते थे। यहीं आकर इन्होंने उनसे आयुर्वेद की शिक्षा ली। दर्शन के विद्वान् तो थे ही; फलतः चरकसंहिता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में इन्होंने विशिष्ट वैदुष्य प्राप्त किया। ये इसी कारण 'चरकाचार्य' कहे जाने लगे। आयुर्वेद का अध्यापन ये अपने घर पर ही करते थे। १९२० ई० में महामना मालवीयजी के अनुरोध पर प्राच्य-विद्या विभाग के अन्तर्गत ये आयुर्वेद विभाग के अध्यक्ष हुए। धर्मदासजी की विद्या-बुद्धि पर मालवीयजी की बड़ी आस्था थी। फलतः आयुर्वेदिक कालेज के स्वतन्त्र होने पर ये उसके प्राचार्य बनाये गये। इनके द्वारा शिक्षित सुयोग्य छात्रों की एक लम्बी परम्परा है। आपके शिष्यों में प्रमुख हैं : पं० सत्यनारायण शास्त्री, पं० राजेश्वरदत्त शास्त्री, पं० दुर्गादत्त शास्त्री, कविराज ब्रज-मोहन दीक्षित आदि। श्री धर्मदासजी का स्वर्गवास काशी में ही १९३५ ई० में हुआ। आयुर्वेद के अध्यापन की कला में इतना निपुण तथा विद्वान् वैद्य मिलना कठिन है।

कविराज धर्मदासजी बंगीय चिकित्सा पद्धति के मूर्तिमान प्रतीक रहे। इन्हीं से पं० सत्यनारायण शास्त्री आयुर्वेद का विधिवत् अध्ययन कर सुयोग्य चिकित्सक की ख्याति से मण्डित हुए। विश्वविद्यालय में इन्होंने इसी पद्धति का प्रचार किया। फलतः काशी विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण छात्र इसी कविराजी परम्परा को अग्रसर करने वाले विद्वान् चिकित्सक हैं।

पं० सत्यनारायण शास्त्री का जन्म काशी नगरी के समीपस्थ गाँव में वि० सं० १९४४ माघ कृष्ण चतुर्थी को (१८८७ ई० में) हुआ था। इनकी शिक्षा-दीक्षा काशी में ही हुई। तत्कालीन शिक्षा-पद्धति के अनुसार इन्होंने व्याकरण शास्त्र का अध्ययन प्रारम्भ किया और उस काल के व्याकरणकेशरी म० म० पं० शिवकुमार शास्त्री से व्याकरण का विधिवत् अध्ययन किया। भाष्यान्त व्याकरण पढ़ने के पश्चात् इन्होंने म० म० गंगाधर शास्त्री से साहित्य के उत्कृष्ट ग्रन्थों का मनन किया। इस प्रकार व्याकरण तथा साहित्य इन दोनों शास्त्रों में इन्होंने प्रकाण्ड पाण्डित्य प्राप्त किया।

उसी समय में इन्हें सागर जिले (मध्य प्रदेश) से किसी नौकरी का आमंत्रण अपने गुरु के द्वारा प्राप्त हुआ। परन्तु इन्होंने उस नौकरी के लिए सागर जैसे सुदूर स्थान में जाना स्वीकार नहीं किया। काशी विश्वनाथ और माता अन्नपूर्णा की पूजा से वंचित होने के कारण इस जीविका—जो इनके लिए अत्यन्त आवश्यक थी—को अंगीकार नहीं किया। परन्तु तत्कालीन पाठशालाओं में अध्यापकों के स्वल्प वेतन से भी ये बड़े चिन्तित थे। इसी समय इनके जीवन में एक नया मोड़ आया। इन्हीं का एक पुराना परिचित साथी व्याकरण के ही साथ-साथ आयुर्वेद का भी अध्ययन कर रहा था। उसी की सलाह से इन्होंने आयुर्वेद पढ़ने की ओर अपनी रुचि दिखलाई। इसके पश्चात् उस युग के प्रख्यात आयुर्वेद शास्त्र के विद्वान् धर्मदासजी के यहाँ आयुर्वेद का अध्ययन करने के लिए जाने लगे।

जब धर्मदास जी ने इनके पाण्डित्य का परिचय प्राप्त किया, तब उन्होंने शास्त्रीजी को आयुर्वेद के अध्ययन करने से मना किया। परन्तु ये अपने निश्चय पर दृढ़ रहे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब धर्मदास जी ने आयुर्वेद का चूडान्त ग्रन्थ चरक पढ़ाना प्रारम्भ किया। कुछ ही दिनों में शास्त्री जी ने इस शास्त्र में प्रकाण्ड पाण्डित्य प्राप्त कर लिया। इस प्रकार शास्त्री जी ने धर्मदास जी से इस शास्त्र के सिद्धान्त पक्ष का अध्ययन कर विद्वत्ता प्राप्त की। परन्तु इसके व्यवहार पक्ष को इन्होंने धर्मदास जी के चाचा पं० अन्नदाचरण कविराज से सीखा और आयुर्वेद की औषधों के निर्माण में भी इन्होंने सिद्धहस्तता प्राप्त कर ली। इस प्रकार शास्त्रीजी ने आयुर्वेद के सिद्धान्त तथा व्यवहार दोनों पक्षों में सिद्धि उपलब्ध की।

आचार्य सुश्रुत ने आदर्श वैद्य के लिए लिखा है कि उसे अनेक शास्त्रों का विद्वान् होना चाहिए। उसे बहुश्रुत होना अत्यन्त आवश्यक है—

"एकं शास्त्रमधीयानो, न विद्यात् शास्त्रनिश्चयम्।
तस्मात् बहुश्रुतं शास्त्रं, विजानीयात् चिकित्सकः॥

सुश्रुत की उपर्युक्त उक्ति शास्त्री जी के ऊपर अक्षरशः चरितार्थ होती है। इन्होंने व्याकरण के साथ ही साहित्य के पाथोधि का भी मंथन किया था। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद के कठिन ग्रन्थों का भी विधिवत् अध्ययन किया था। इस प्रकार ये शुष्क वैद्य नहीं थे बल्कि रसिक विद्वान् भी थे।

जीवनी

पं० सत्यनारायण शास्त्री के पितामह का नाम पं० शिवनन्दन पाण्डेय था तथा पिता का पं० बलभद्र पाण्डेय। इनके नाना वैद्यराज पं० शिवलोक शर्मा काशी के ही अगस्त-कुण्ड मुहल्ले में रहते थे। उनके पुत्र के अल्पायु हो जाने से शास्त्रीजी के पिता बलभद्र पाण्डेय उनके उत्तराधिकारी बनकर वहीं रहने लगे। बालक सत्यनारायण ने अल्प-काल में ही अनेक शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया। यथा ऊपर कहा गया है इन्होंने उस युग के प्रख्यात विद्वानों पं० शिवकुमार शास्त्री और पं० गंगाधर शास्त्री से क्रमशः व्याकरण तथा साहित्य शास्त्र का अध्ययन किया। आयुर्वेद के गुरुओं का भी उल्लेख ऊपर किया गया है।

सन् १९०९ ई० से ही ये चिकित्सक का कार्य बड़े प्रेम और दृढ़ निष्ठा से करने लगे। महामना मालवीयजी ने अपने विश्वविद्यालय के अन्तर्गत आयुर्वेद विभाग में इनको २० अगस्त १९३५ में प्राध्यापक नियुक्त किया। दो वर्ष के बाद आप अपने विभाग के प्रधान हुए, और १९३८ ई० में आयुर्वेद कालेज के प्रिन्सिपल (प्राचार्य) हो गये। १९५० ई० में इन्होंने विश्राम ग्रहण किया। उसी वर्ष जैसा उल्लिखित है ये डा० राजेन्द्रप्रसाद के वैयक्तिक चिकित्सक नियुक्त किये गये। १९५५ ई० में आप 'पद्मभूषण' की उपाधि से सम्मानित हुए। शास्त्रीजी इतने आत्मसम्मानी थे कि जब केन्द्रीय सरकार ने हिन्दी की उपेक्षा की तो इस अपमान से दुःखित होकर इन्होंने वह पदवी सरकार को लौटा दी। इनका देहावसान काशी में ही २३ सितम्बर १९६९ ई० को हुआ। उस समय इनकी आयु ८२ वर्ष की थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरक आयुर्वेद शास्त्र का दार्शनिक ग्रन्थ है। "चरकस्तु चिकित्सिते" इस लोकोक्ति के अनुसार चरक की प्रौढ़ता तथा मुख्यता चिकित्सा के विषय में स्वीकार की गई है। यह यथार्थ है। परन्तु 'चरक संहिता' का क्षेत्र सीमित नहीं है। इस ग्रन्थ में, आयुर्वेद की प्राचीन पुस्तकों में जो इस शास्त्र के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है, उनके रहस्य का उद्घाटन पाया जाता है। अतः इस पुस्तक में आयुर्वेद के बहिरंग तथा अन्तरङ्ग दोनों भागों का सामंजस्य प्राप्त होता है। पं० सत्यनारायण शास्त्री जीवन भर इसी ग्रंथ का अध्यापन करते रहे। इस शास्त्र में इन्होंने अनेक शिष्यों को पैदा किया।

आचार्य चरक ने अपने ग्रन्थ चरकसंहिता में लिखा है—

'यदिहास्ति तदन्यत्र, यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्' अर्थात् जो विषय चरक संहिता में वर्णित हैं वे अन्यत्र उपलब्ध हो सकते हैं परन्तु जो इस ग्रन्थ में प्राप्त नहीं है वह आयुर्वेद के किसी भी ग्रन्थ में प्राप्त नहीं हो सकता। चरक के इस वचन पर आयुर्वेद के चरक के आधुनिक प्रतिनिधि शास्त्रीजी की दृढ़ आस्था थी। ये डंके की चोट कहा करते थे कि पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति में ऐसा कोई नया से नया रोग नहीं है जिसका आयुर्वेद शास्त्र में नाम न हो, जिसका निदान न हो और जिसकी चिकित्सा न हो। शास्त्रीजी के इस आग्रह को बहुत से लोग केवल दुराग्रह मानते हैं परन्तु इन्होंने अपनी औषधि से यह प्रमाणित कर दिया था कि ये पाश्चात्य डाक्टरों द्वारा अचिकित्सनीय (अर्थात् जिनकी कोई दवा न हो सके) रोगों को भी दूर या नष्ट कर सकते हैं।

शास्त्रीजी की निर्भीकता

एक बार की अविस्मरणीय घटना यहाँ दी जा रही है। विगत १६ नवम्बर सन् १९५२ ई० को भारत के प्रथम राष्ट्रपति भारतरत्न डा० राजेन्द्रप्रसाद काशी आये हुए थे। उसी समय उन्होंने पं० सत्यनारायण शास्त्री के निवास स्थान पर भी पधारने की कृपा की थी। उस समय शास्त्रीजी के घर पर एक छोटी-सी सभा भी आयोजित की गयी थी जिसमें उत्तर प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल डा० के० एम० मुन्शी तथा मुख्यमंत्री डा० सम्पूर्णानन्द भी उपस्थित थे। उस सभा में डा० राजेन्द्रप्रसाद ने यह विचार प्रकट किया था कि आधुनिक वैद्यों को अपने दिमाग की खिड़की खुली रखनी चाहिए जिससे उसमें बाहर की हवा आती रहे। इस पर शास्त्रीजी ने अपने विशिष्ट अतिथि का सम्मान करते हुए सबके सम्मुख ही उनके कथन का खण्डन करते हुए कहा कि आयुर्वेद स्वयं पूर्ण शास्त्र है। उसमें किसी वस्तु की त्रुटि नहीं है। उसे किसी नवीन उपकरण की आवश्यकता नहीं है। संसार में ऐसा कोई रोग नहीं है जिसकी आयुर्वेद की पद्धति से चिकित्सा न की जा सके। शास्त्रीजी ने बड़ी निर्भीकता से अपने मत का प्रतिपादन किया और अपनी स्पष्टवादिता तथा निर्भीकता से उपस्थित महान् श्रोताओं को आश्चर्यचकित कर दिया। शास्त्रीजी की इस अपूर्व निर्भीकता को क्या कहा जाय ?

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाड़ी विज्ञान— पं० सत्यनारायण शास्त्री नाड़ी विज्ञान में अत्यन्त निष्णात थे। नाड़ी की परीक्षा के द्वारा ही रोगी की सारी परिस्थिति अपने व्यवस्था-पत्र (रिपोर्ट) में अंकित कर देते थे और बाद में रोगी से रोग के विषय में प्रश्न करके उन तथ्यों की स्वीकृति भी करा लेते थे। इस प्रकार निदान सरणि के ये युग-प्रवर्तक वैद्य माने जाते थे। आपकी यह अद्भुत शक्ति, उत्कृष्ट शास्त्रीय विवेचन तथा सद्यः लाभकारी औषध-परिकल्पना ही आयुर्वेद की धारा को अप्रतिहत गति से प्रवाहित होने में सहायक है। शास्त्रीजी ने अपने नाड़ी-परीक्षण-ज्ञान के द्वारा उस जर्मन डाक्टर को भी आश्चर्यचकित कर दिया था जो हिन्दू विश्वविद्यालय के तत्कालीन वाइसचांसलर गोविन्द मालवीय के साथ नाड़ी विज्ञान के आपके कौशल को देखने के लिए आया था।

अपने इन्हीं आयुर्वेदिक गुणों के कारण इन्होंने राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद को इतना प्रभावित कर लिया था कि उन्होंने इन्हें अपने सरकारी वैद्य के महनीय पद पर प्रतिष्ठित किया। इनके गुणों से मुग्ध होकर राष्ट्रपति ने इन्हें 'पद्मभूषण' की उपाधि से भी अलंकृत किया था।

दवा का चमत्कार

पं० सत्यनारायण शास्त्री की औषध के चमत्कार की यह घटना देना कुछ अप्रासंगिक न होगा। सन् १९५१ ई० की २६ जनवरी को राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू को दिल्ली में सैनिक सलामी (सेलूट) लेनी थी। परन्तु इसके कुछ दिन पहले वे बीमार पड़ गये और उन्हें सन्देह होने लगा कि मैं २६ जनवरी तक पूर्ण स्वस्थ नहीं हो पाऊँगा। अतः सलामी लेने के लिए उपस्थित नहीं रह सकूँगा। अतः अपनी दवा के लिए दिल्ली में सरकारी डाक्टरों के रहते हुए भी उन्होंने शास्त्रीजी को दिल्ली बुलाया। शास्त्रीजी जब काशी से राष्ट्रपति भवन दिल्ली पहुँचे तब राष्ट्रपति जी की बड़ी बहिन ने शास्त्रीजी से कहा कि "इनका कवनो उप्पर के हवा लागि गइल बाटे एह से मंत्र से इनकराके झारीं।" शास्त्रीजी ने चटपट बुआजी की आज्ञा मानकर राष्ट्रपति जी को मोरपंख से मंत्रों के द्वारा 'झारना' शुरू किया। यह दृश्य देखने ही योग्य था। फिर इन्होंने राष्ट्रपति जी को दो खुराक दवा दी। इस दवा ने अपना अलौकिक प्रभाव दिखलाया। प्रातःकाल राष्ट्रपति जी उठकर स्वयं शास्त्रीजी के कमरे में गये और कहा कि "राउर दवा गजब के चमत्कार देखलवलसि। अब हम बहुत अच्छा बानी अबरू सलामी लेवे लायक शक्ति आगइल बा।" बाद में राष्ट्रपति ने सलामी ली और पूर्णतः नीरोग हो गये। यह शास्त्रीजी की दवा का ही जादू था।

काव्य-कला

पं० सत्यनारायण शास्त्री एक अलौकिक कविराज (वैद्य) और नाड़ी विज्ञान के अद्भुत वेत्ता ही नहीं थे बल्कि संस्कृत साहित्य के भी उद्भट विद्वान् थे। पं०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्याधर गौड़ की प्रशंसा में इन्होंने जो 'हृद्यपद्याञ्जलिः' लिखी थी उसकी भाषा बड़ी सशक्त, मधुर तथा हृदयावर्जक है। गौड़जी के पिता के पाण्डित्य की स्तुति करते हुए शास्त्रीजी लिखते हैं—

"मीमांसा धर्मशास्त्राद्यधिगतसुबुधैर्याज्ञिकैर्वन्दितांघ्रिः
दृप्यत्सद्वैदिकानामवजयजनितोत्कृष्टस्वान्तोपलब्धिः ।
सम्राट्-सम्मानप्राप्तः क्षितितलमहितानेकग्रन्थप्रणेता,
तत्सूनुः चक्रवर्ती, धवलतरयशाः श्रीलविद्याधराख्यः ॥"

विद्याधर गौड़ के विषय में शास्त्रीजी की मधुर वाणी का पान कीजिए—

"आसीच्छ्रौताहिताग्निः शतपथगमकः पञ्चकुण्डस्य होता,
श्रौतज्ञेष्वद्वितीयोऽनुदिनमुभयोः सन्धयोर्होमकर्ता ।
गेहेऽभाध्यापनाद्यैः सुपथगतिविधौ दत्तचेताः समन्तात्,
आरम्भाच्चाप्यकार्षीदमलतरधियाऽध्यापकाध्यक्षतां यः ॥"

इस कविता में समस्त पदावली की मनोहरता, गौड़ी रीति के गाढ़बन्ध की कमनीयता देखते ही बनती है। शास्त्रीजी ने थोड़ी गद्य-रचना भी की है जिसको पढ़कर बाणभट्ट की कादम्बरी का अनायास ही स्मरण हो जाता है। एक ही उदाहरण पर्याप्त है—

"यथा हि शरीरमलापनयनाय चरकादयः आयुर्वेदग्रन्थाः, तथा वाङ्मलापहृतये शब्दशास्त्रीयमहाभाष्यादिग्रन्थाः, बौद्धमानसादिरजस्तमोरूपादिदोषापहरणाय सर्वाण्येव दर्शनानि इति दिशा यच्च किञ्चित् क्वचिदपि शास्त्राणि पुराणानि वा वर्तन्ते, प्रयोजनत्रैविध्यमुज्झित्य कानिचिदपि तन्त्राणि नोपलभ्यन्ते। यथाह भगवान् पतंजलिः 'तिस्रः एषणा पर्येष्टव्या भवन्ति प्राणैषणा, धनैषणा, परलोकैषणा च ॥"

शास्त्रीजी की शिष्यमण्डली

कविराज सत्यनारायण शास्त्रीजी की शिष्य-परम्परा काफी विस्तृत है। इनसे आयुर्वेद पढ़ने वाले चिकित्सा के मर्मज्ञ छात्रों में से कतिपय शिष्यों का यहाँ संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

(१) पण्डित यदुनन्दन उपाध्याय

श्री उपाध्याय जी आयुर्वेद चिकित्सा के प्रौढ़ तथा अनुभवशील विद्वान् हैं। आयुर्वेद के मूल ग्रन्थों का आपने बड़ी लगन तथा परिश्रम से गाढ़ अनुशीलन किया है। चरक संहिता के रहस्य समझने तथा समझाने में आपकी प्रतिभा अलौकिक मानी जाती है। इसीलिए आयुर्वेद विश्वविद्यालय के अन्तर्गत चरक पीठ (चरक चेवर) के ये मूर्धन्य अधिकारी थे। इस पद पर रहकर आपने आयुर्वेद के सिद्धान्तों का, विशेषकर चिकित्सा अंग का, बड़ा ही गम्भीर चिन्तन, मनन तथा अनुशीलन कर अनेक नवीन तथ्यों का आविष्कार किया है जो इनकी मौलिक प्रतिभा के सद्यः सूचक हैं। मिरजा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुर के मूल निवासी उपाध्यायजी विश्वविद्यालय से सेवा-मुक्त होने पर आजकल काशी में ही निवास करते हैं और अपने अनुभव का प्रसाद मुक्तहस्त से वितरण कर रोगियों का बड़ा उपकार करते हैं।

(२) पं० विश्वनाथ द्विवेदी

बलिया जनपद के ओझवलिया ग्राम में १९१० ई० में जनमे द्विवेदी जी की शिक्षा का प्रधान केन्द्र काशी विश्वविद्यालय रहा है, जहाँ इन्होंने आयुर्वेद शास्त्राचार्य की उपाधि प्राप्त की। उत्तर प्रदेश के पीलीभीत नगर में स्थित ललितहरि आयुर्वेद महाविद्यालय में बीस वर्ष तक ये प्रधानाचार्य के पद पर रहे। लखनऊ विश्वविद्यालय के अन्तर्गत आयुर्वेद कालेज बनने पर इन्होंने उपप्राचार्य तथा कायचिकित्सा के प्राध्यापक पद पर कार्य किया। ये जामनगर गुजरात के आयुर्वेद शिक्षण केन्द्र में अनेक वर्षों तक द्रव्य-गुण के प्राध्यापक पद पर नियुक्त रहे। बाद में ये निर्देशक भी रहे। १९६८ ई० में वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय में आयुर्वेद विभाग के अध्यक्ष बने। इन्होंने अनेक आयुर्वेदीय ग्रन्थों की रचना की है जिनसे इनकी सूक्ष्म प्रतिभा का परिचय मिलता है। कुछ ग्रन्थों के नाम ये हैं—

त्रिदोषालोक, तैल संग्रह, अभिनवनेत्ररोग विज्ञान, नाड़ी विज्ञान, प्रत्यक्ष-औषधि-निर्माण, आयुर्वेद की औषधियाँ और उनका वर्गीकरण, औषधि विज्ञान शास्त्र, रसायन शास्त्र।

इनके ये ग्रन्थ आयुर्वेद की विविध परीक्षाओं में पाठ्यग्रन्थ मनोनीत किये गये हैं।

(३) पं० रमानाथ द्विवेदी

इनका भी जन्म बलिया मण्डल के ओझवलिया ग्राम में हुआ था। इन्होंने काशी विश्वविद्यालय में आयुर्वेद का अध्ययन बड़े परिश्रम तथा मनोयोग के साथ किया। अंग्रेजी की भी जानकारी इनकी अच्छी है। इसलिए इनकी दृष्टि रोग-परीक्षण तथा चिकित्सा के सम्बन्ध में पर्याप्त रूप से विस्तृत तथा गम्भीर है। आयुर्वेद शास्त्राचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण कर काशी विश्वविद्यालय के अन्तर्गत आयुर्वेद संस्थान में आयुर्वेद की शिक्षा देते रहे। गतवर्ष ही वहाँ से सेवा निवृत्त हुए हैं। इन्होंने आयुर्वेद के आठो अंगों के ऊपर प्रामाणिक ग्रन्थों का निर्माण कर आयुर्वेदीय साहित्य को समृद्ध तथा सम्पन्न बनाया है। इनके कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं—

रोगिरोग विमर्श, सौश्रुती (सुश्रुत संहिता का विवेचनात्मक ग्रन्थ), अगद तन्त्र (चौखम्भा १९५३), भिषक्-कर्म-सिद्धि, प्रसूति विज्ञान, (प्रसूति तन्त्र पर स्वतन्त्र ग्रन्थ), शालाक्य तन्त्र (चौखम्भा, तृतीय संस्करण १३७१)।

श्री रमानाथ द्विवेदी ने प्राचीन सिद्धान्तों का नवीन दृष्टि से अनुशीलन कर उनके महत्त्व को प्रदर्शित करने में अपने वैदुष्य का अच्छा परिचय दिया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) श्री गंगासहाय पाण्डेय

इनकी भी शिक्षा-दीक्षा का केन्द्र हिन्दू विश्वविद्यालय का आयुर्वेद कालेज ही रहा है। यहीं से आयुर्वेद शास्त्राचार्य परीक्षा उत्तीर्ण कर इन्होंने चिकित्सा करना आरम्भ कर दिया। चिकित्सा करने में इनकी लोकप्रियता पर्याप्त है। परन्तु पाण्डेयजी अंग्रेजी दवाइयों का प्रयोग रोगियों की रोग-निवृत्ति के लिए खुलकर करते हैं। इन्होंने **काय-चिकित्सा** नामक एक विशद ग्रन्थ का प्रणयन किया है जिसमें चिकित्सा के विविध प्रकार तथा उसकी विविधता का विवरण बड़े प्रामाणिक रूप से दिया गया है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन चौखम्भा **संस्कृत सीरोज** द्वारा किया गया है (वर्ष १९६३)। यह ग्रन्थ प्रमेयबहुल तथा पर्याप्त रूपेण प्रामाणिक है।

(५) आचार्य प्रियव्रत शर्मा

इनका जन्म पटना मण्डल के एक गाँव में १९२० ई० में हुआ। आयुर्वेद का अध्ययन हिन्दू विश्वविद्यालय के आयुर्वेदिक कालेज में अनेक वर्षों तक बड़े मनोयोग से किया। इन्होंने वहीं से स्नातक उपाधि (ए० एम० एस०) प्राप्त की। पटना के राजकीय आयुर्वेद कालेज में प्राचार्य तथा बिहार प्रान्त के देशी चिकित्सा के अधीक्षक पदों पर कार्य किया (१९५६ ई०–१९६२ ई०)। हिन्दू विश्वविद्यालय में द्रव्यगुण विभाग के अध्यक्ष तथा तदनन्तर संस्थान के अध्यक्ष तथा निर्देशक के पदों पर कार्य किया। द्रव्यगुण विभाग के अध्यक्ष पद से अभी सेवा-निर्मुक्त हुए हैं।

आयुर्वेद के विशाल साहित्य के गम्भीर अध्येता तथा द्रव्यगुण विज्ञान के मार्मिक अनुशीलनकर्त्ता विद्वान् के रूप में आपकी पर्याप्त ख्याति है। आपने अनेक प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थों का विमर्शात्मक संस्करण प्रकाशित किया है। इनके शताधिक शोध-प्रबन्धों ने आयुर्वेद के अनेक तथ्यों को उजागर किया है। इनके ग्रन्थों में प्रधान हैं—द्रव्यगुणविज्ञान (४ भाग), अभिनव शरीर क्रियाविज्ञान, वाग्भट विवेचन, चरकचिन्तन, आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास (आयुर्वेद के विशाल साहित्य का महत्त्वपूर्ण विमर्शात्मक बृहत् ग्रन्थ, १९७५ ई०)। सम्पादित ग्रन्थों में मुख्य हैं—बोपदेव का हृदयदीपक, आचार्य वाहट का अष्टाङ्ग निघण्टु, माधव का द्रव्यगुण, कैयदेव निघण्टु। चरकसंहिता का अंग्रेजी अनुवाद भी आपने प्रस्तुत किया है।

कविराजजी के शिष्यों में पं० काशीनाथजी तथा पं० गोमतीप्रसाद मिश्र संस्कृत विश्वविद्यालय के आयुर्वेद विभाग से सम्बन्ध रखते हैं। पहले सज्जन तो सेवामुक्त हो चुके हैं। दूसरे सज्जन अभी अध्यापन करते हैं।

●

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३६

पण्डित प्रभुदत्त अग्निहोत्री

(आस्पद—मिश्र, उपाधि—महामहोपाध्याय)

जन्म तथा शिक्षा

पं० प्रभुदत्त गौड़ का जन्म हरियाणा प्रदेश के भूतपूर्व जिन्द रियासत के अन्तर्गत सिरसा खेड़ी गाँव में सं० १९८१ वि० (सन् १८६४ ई०) में हुआ था। तत्कालीन बाल विवाह की प्रथा के अनुसार इनका यज्ञोपवीत संस्कार तथा विवाह केवल सात वर्ष की अवस्था में श्रीमती नान्हीं देवी से हुआ था। अपने ज्येष्ठ भ्राता पं० हरिद्वारी मिश्र जी के साथ ये सन् १८७२ ई० के आस-पास विद्याध्ययन के लिए काशी आये।

इन्होंने काशी के तत्कालीन प्रसिद्ध वैदिक पं० चिन्तामणि गुर्जर से सांगोपांग शुक्ल यजुर्वेद का अध्ययन किया। इसके अनन्तर पं० मूलचन्द गुर्जर तथा पं० जगन्नाथ शर्मा से आपने शतपथ ब्राह्मण का पाठ पढ़ा। सुप्रसिद्ध वैयाकरण पं० अनन्तराम शास्त्री से व्याकरण तथा सांख्य-योग का अध्ययन किया एवं प्रसिद्ध कर्मकाण्डी पं० युगलकिशोर व्यास से कर्मकाण्ड की विधिपूर्वक दीक्षा ग्रहण की।

अध्यापन कार्य

पं० प्रभुदत्त अग्निहोत्री ने अनेक महाविद्यालयों तथा काशी विश्वविद्यालय में भी अध्यापन कार्य किया। सर्वप्रथम सं० १९४६ वि० (सन् १८८६ ई०) में काशी में सरस्वती फाटक के पास स्थित सत्यनारायण मंदिर की पाठशाला में पं० प्रभुदत्त जी वेद के अध्यापक नियुक्त हुए। ये वहाँ लगातार छः वर्षों तक अत्यन्त निष्ठा के साथ अध्यापन कार्य करते रहे। तदनन्तर सं० १९५२ वि० (सन् १८९५ ई०) में काशी के दक्षिण नगवा में स्थित रुइया संस्कृत पाठशाला में अध्यापन करने लगे जहाँ इन्होंने सन् १८९५ ई० से लेकर १८९८ ई० तक कार्य किया। इसके बाद सन् १८९८ ई० में काशी की भास्कर पाठशाला में कार्य करने के लिए निमन्त्रित किये गये। इसी समय 'रणवीर संस्कृत पाठशाला' में वेद तथा कर्मकाण्ड के प्राध्यापक के पद पर प्रतिष्ठित किये गये परन्तु सैद्धान्तिक मतभेद होने के कारण इन्होंने त्याग-पत्र दे दिया।

सन् १९१६ ई० में जब मालवीयजी ने हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की तब प्रभुदत्त गौड़ की विद्वत्ता से प्रभावित होकर उन्होंने इन्हें धर्मविज्ञान विभाग (थियोलाजी) का अध्यक्ष नियुक्त किया। इतना ही नहीं, ये अनेक वर्षों तक अवैतनिक आचार्य पद को भी सुशोभित करते रहे। ये सन् १९१६ से १९२८ ई० तक धर्म-विज्ञान संकाय (फेकल्टी) के अध्यक्ष (डीन) भी रहे। इसके पश्चात् ये विश्वविद्यालय की कौंसिल तथा सिनेट के मनोनीत सदस्य भी रहे। इनकी अगाध विद्वत्ता से प्रभावित होकर ब्रिटिश

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकार ने सं० १९८१ वि० (सन् १९२४ ई०) में इन्हें महामहोपाध्याय की पदवी से अलंकृत किया।

सम्मान

मालवीय जी महाराज तो इनका आदर करते ही थे। इसके साथ भारतवर्ष के अनेक राजा, महाराजा, सेठ और साहूकार इन्हें बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते थे। इस देश में ऐसा कोई विशाल यज्ञ नहीं होता था जिसके आचार्य पद को ये सुशोभित न करते हों। म० म० पं० शिवकुमार शास्त्री इनके अनन्य मित्र थे। शास्त्रीजी से जब कोई यज्ञ-यागादि के विषय में जानकारी प्राप्त करना चाहता था, तब वे प्रभुदत्तजी के पास उसे जाने की सलाह देते थे। तत्कालीन काशी के विद्वान् इनके मित्रों में से थे। सेठ लोग भी इन्हें सम्मान प्रदान करते थे।

काशी के दानी सेठ राजा बलदेवदास बिड़ला ने एक बार महारुद्र यज्ञ किया था जिसमें प्रभुदत्त गौड़ को ही आचार्य के पद पर प्रतिष्ठापित किया गया था। इतना ही नहीं, बिड़लाजी ने अपने पौत्रों का यज्ञोपवीत संस्कार भी इन्हीं से करवाया था। इस प्रकार ये बिड़ला परिवार के 'कुलगुरु' माने जाते थे। मुरारका और खेतान आदि सेठों के परिवार से भी इनका बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। इस प्रकार सेठों के गुरु होने के कारण इन्होंने प्रचुर धन अर्जित किया।

ग्रन्थ-रचना

योग्य वैदिकों के द्वारा शिक्षित होने के कारण पण्डित प्रभुदत्त गौड़ भी बड़े ही सुबुद्ध वैदिक थे जिन्होंने अपने गुरु की परम्परा का निर्वाह बड़ी योग्यता से किया। उनके द्वारा सम्पादित प्रथम ग्रन्थ है—कृष्ण मिश्र रचित कात्यायन श्राद्धसूत्र की 'श्राद्ध प्रकाशिका' नामक वृत्ति। इस वृत्ति का रचनाकाल १५०५ वि० सं० अर्थात् १४४८ ई० है। इस वृत्ति के आरम्भ के द्वितीय पद्य में इतः प्राचीन कर्काचार्य तथा हलायुध की वृत्ति का उल्लेख है। 'श्राद्ध प्रकाशिका' में स्थान-स्थान पर पण्डित प्रभुदत्त जी ने टिप्पणियाँ लिखकर मूल के अर्थ को समझाने का प्रयत्न किया है। इसकी रचना के समय ये काशी में सत्यनारायण मन्दिर में स्थापित वैदिक पाठशाला में वेद के अध्यापक थे। इसके आरम्भ में इन्होंने अपने पिता का नाम घनश्याम शर्मा तथा अपने ग्राम का नाम 'लिजवाड़ा' दिया है। इनका दूसरा सम्पादित ग्रन्थ 'ऋक् प्रतिशाख्य' है। सम्पादन तो इनके गुरु युगलकिशोर पाठक ने ही किया था, परन्तु उनके निधन के अनन्तर प्रभुदत्त जी ने इसे मुद्रित कराकर प्रकाशित किया था (१९०३ ई० में, वाराणसी से)। इस समय ये हिन्दू कालेज के अन्तर्गत रणवीर संस्कृत पाठशाला के वेदाध्यापक थे। इसकी भूमिका में इन्होंने अपने विद्यागुरु अनन्तराम शास्त्री का उल्लेख किया है जो उस समय उसी पाठशाला के व्याकरणाध्यापक थे और जो आगे चलकर इसके अध्यक्ष पद पर भी प्रतिष्ठित हुए थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभुदत्तजी के अन्य ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं--'श्रौतपदार्थ विवेचन', यज्ञ यागादि के समस्त पारिभाषिक शब्दों का यह अत्यन्त उपादेय कोश है। इनके द्वारा सम्पादित ग्रन्थों में खण्डदीक्षित कृत 'महारुद्र पद्धति' तथा 'मीमांसा परिभाषा' की बड़ी प्रसिद्धि है। स्वरचित ग्रन्थों में जीवित श्राद्ध पद्धति, वृषोत्सर्गनिर्णय, सापिण्ड्य-निर्णय एवं कुशकण्डिकाभाष्य उल्लेखनीय हैं।

इनके अनुशीलन से पता चलता है कि ये कर्मकाण्ड के गम्भीर विद्वान् होने के साथ ही साथ प्रातिशाख्य आदि वेद के शास्त्रीय विषयों के भी ज्ञाता थे।

पं० प्रभुदत्त गौड़ स्वयं आहिताग्नि थे अर्थात् बड़ी निष्ठा के साथ अग्निहोत्र और दर्शपौर्णमासेष्टि आदि वैदिक क्रियाओं को किया करते थे। देश-विदेश के अनेक विद्वान् इनके यहाँ यज्ञ भगवान् और अग्नि नारायण के दर्शन के निमित्त आया करते थे। काशी के अनेक कर्मकाण्डी और गृहस्थ इनके यहाँ से यज्ञ का भस्म लगाने के लिए ले जाया करते थे। आजकल के युग में अग्निहोत्र कर्म का व्रत लेना बहुत ही कठिन है परन्तु प्रभुदत्त जी ने इस दुष्कर कर्म का यावत्-जीवन निर्वाह किया। इसीलिए ये पं० प्रभुदत्त अग्निहोत्री के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध थे।

प्रभुदत्त जी अपने माता-पिता तथा ज्येष्ठ भ्राता के बड़े ही भक्त थे और बड़े भाई को पिता-तुल्य समझते थे। यह कहा करते थे कि 'नास्ति मातुः समं तीर्थम्' अर्थात् माता के समान कोई दूसरा तीर्थ नहीं है। ये अपनी माता जी को अपने साथ ही काशी में रखते और उनकी सेवा किया करते थे। अपने परिवार के अतिरिक्त इन्हें अपनी जन्मभूमि 'सिरसा खेड़ी' से भी अगाध प्रेम था। ग्रामीण लोगों के आग्रह पर उनके जल के कष्ट निवारण करने के लिए इन्होंने अपने गाँव में एक सरोवर का भी निर्माण कराया था जिससे इनकी उदारहृदयता तथा पर-दुःख-कातरता का पता चलता है।

पं० प्रभुदत्त गौड़ ने अपने परिश्रम तथा विद्वत्ता से कीर्ति और सम्पत्ति दोनों का ही प्रचुर परिमाण में अर्जन किया। आपका धैर्य अतुलनीय था। परिवार का समस्त भार आपके ही ऊपर था। फिर भी आपने कभी धैर्य का परित्याग नहीं किया।

आपने अनेक योग्य शिष्य उत्पन्न किये जिनमें पं० भीमसेन चतुर्वेदी, पं० विजयचन्द्र चतुर्वेदी वेदाचार्य, पं० धर्मदत्त वेदशास्त्री आदि प्रसिद्ध हैं। पं० प्रभुदत्त गौड़ बड़े ही भाग्यशाली पुरुष थे। आपके संबंध में निम्नांकित श्लोक पूर्णतया चरितार्थ होता है—

"यदि रामा, यदि च रमा, यदि तनयो विनयधी गुणोपेतः।
तनयात् तनयोत्पत्तिः, सुरवरनगरे किमाधिक्यम्॥"

रामा और रमा का तो इन्हें सान्निध्य प्राप्त ही था परन्तु महामहोपाध्याय पं० विद्याधर गौड़ के रूप में आपको अत्यन्त विद्वान्, विनयी और प्रतिभावान् पुत्र पाने का सौभाग्य प्राप्त था। पं० वेणीराम गौड़ वेदाचार्य के रूप में ये सुयोग्य पौत्र के अधिकारी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। ऐसी किम्वदन्ती है कि व्यासजी के शाप से काशी में त्रिपुरुषी विद्या नहीं होती अर्थात् तीन पीढ़ियों तक विद्वानों की परम्परा नहीं चलती। परन्तु प्रभुदत्त जी के विषय में यह नियम न होकर अपवाद रूप में ही समझना चाहिए। सन् १९२९ ई० में इन्होंने इस पांचभौतिक शरीर का त्याग किया। इस प्रकार इन्होंने ६५ वर्ष का दीर्घ आयुष्य तथा दीर्घतर कीर्ति प्राप्त की थी।

पण्डित युगलकिशोर पाठक

पण्डित प्रभुदत्त अग्निहोत्री के गुरु पण्डित युगलकिशोर पाठक अपने युग के काशी के मूर्धन्य विद्वानों में अग्रगण्य थे। गतशताब्दी में १८८४ ई० में आज से सौ वर्ष पहले प्रकाशित 'सिंहस्थ गुरुनिर्णयः' नामक ग्रन्थ में इनकी सम्मति बड़े आदर से उद्धृत की गई है। प्रभुदत्त जी ने इनके निधन का वर्ष १९०० ई० बताया है। यदि उस समय इनकी आयु ६० वर्ष मान ली जाय, तो इनका जन्म १८४० ई० के आसपास मानना समुचित होगा। ये काशी के ही सरयूपारीण ब्राह्मणकुल में उत्पन्न एक सुयोग्य वैदिक थे।

पण्डित युगलकिशोर पाठक उस युग के बड़े ही प्रवीण तथा वेदशास्त्र-सम्पन्न वैदिक थे। उनकी विशिष्ट तथा आदरणीय कृति है—**शुक्लयजुः प्रातिशाख्य** का उव्वट भाष्य के साथ विमर्शात्मक संस्करण। इस ग्रन्थ की भूमिका में उन्होंने अपना संक्षिप्त परिचय दिया है। वे काशी के छोटी पियरी नामक मुहल्ले में रहते थे। वे सरयूपारी ब्राह्मण थे। इनके प्रपितामह का नाम पं० नाथूराम पाठक था जो काशी में ही वेदवेदांग के अध्यापक थे। उनके पितामह पं० रामफल पाठक ज्योतिष शास्त्र के अध्यापक थे। इनके पिता विश्वेश्वर पाठक व्यास वाल्मीकि रामायण के विशेष मर्मज्ञ कथावाचक थे। इनके गुरु कोई रामानन्दजी थे। कृष्णानन्द स्वामी के द्वारा स्थापित धर्मनिकेतन के वेद-विद्यालय में ये पाठकजी वेद और स्मृति ग्रन्थों का अध्यापन करते थे। शुक्ल यजुर्वेद के पण्डित सारस्वत ब्राह्मण कुल में उत्पन्न बालब्रह्मचारी श्री रामानन्द स्वामी इनके गुरु थे। पुराणवाचन भी इनकी वृत्ति थी। ये काशी में बालूजी के फर्श नामक स्थान पर पुराणों का प्रवचन किया करते थे और इसीलिए ये व्यास उपाधि धारण करते थे। काशी की राजकीय पाठशाला में इन्होंने वेदशास्त्रों का अध्ययन किया था। अपनी विद्या बुद्धि के लिए महाराजा दरभंगा के पास इनकी विशेष प्रतिष्ठा की गई थी। शिक्षा-संग्रह नामक ग्रन्थ की भूमिका में पूर्वोक्त तथ्य इनके जीवनचरित के विषय में दिये गये हैं। इससे स्पष्ट है कि इनका वंश विद्या तथा आचार के लिए विशेष प्रसिद्ध रहा।

पाँच हस्तलेखों के आधार पर इस संस्करण का शोधन एवं प्रकाशन किया गया था। इन्होंने शुष्क वैदिकों को स्वर प्रक्रिया के ज्ञान कराने के उद्देश्य से इसका प्रकाशन सम्पन्न किया। **'प्रातिशाख्य कौतिप्रकाश'** नामक स्वीय विद्वत्तापूर्ण टिप्पण भी देकर मूल ग्रन्थ के भावों की चारु अभिव्यक्ति की थी। इस संस्करण में 'प्रतिज्ञा परिशिष्ट'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सभाष्य), भाषिक परिशिष्ट सूत्र (सभाष्य), जटादिविकृति लक्षण, अनुवाकाध्याय परिशिष्ट, तथा चरणव्यूह परिशिष्ट को संवलित कर अधिक उपयोगी बनाया गया है। बनारस संस्कृत सीरीज में १९४५ वि० सं० (१८८८ ई०) में प्रकाशित हुआ था। इसके अनुशीलन से पाठक जी की वेदविषयक उत्कृष्ट विद्वत्ता, गम्भीर अध्ययन एवं गम्भीर आलोचना का पूरा परिचय मिलता है।

पाठकजी के द्वारा सम्पादित दूसरा ग्रन्थ है–शिक्षासंग्रह[1], जिसका प्रकाशन 'बनारस संस्कृत सीरीज' नामक ग्रन्थमाला में १८९६ ई० में किया गया था। इसमें भिन्न-भिन्न वेदों से सम्बद्ध ३२ बत्तीस शिक्षाओं का संग्रह मिलता है जिनमें कुछ शिक्षाएँ छोटी हैं, परन्तु अन्य परिमाण में पर्याप्तरूपेण बड़ी हैं, यथा प्रातिशाख्य प्रदीपशिक्षा। इसके लेखक कोई सदाशिव के पुत्र बालकृष्ण नामक विद्वान् हैं। इस 'शिक्षासंग्रह' के संस्कर्ता होने से पण्डित युगलकिशोर पाठक की वैदिकी वैदुषी का पर्याप्त परिचय मिलता है। पाठक जी के द्वारा सम्पादित तीसरा वैदिक ग्रन्थ है--महर्षि शौनक-प्रणीत ऋक् प्रतिशाख्य जिसमें उव्वटभाष्य भी संवलित है। इसका प्रकाशन बनारस संस्कृत सीरीज में १९६० वि० (१९०३ ई०) में हुआ था। इसका सम्पादन पाठक जी ने अनेक दुर्लभ पाण्डुलिपियों के सहारे अनेक वर्षों के परिश्रम से किया था, परन्तु मुद्रण आरम्भ होते ही उनका निधन हो गया (सम्भवतः १९०० ई० के आस-पास)। फलतः इसे उन्हीं के शिष्य प्रभुदत्त जी गौड़ ने अपने नाम से प्रकाशित किया। इस तथ्य का परिचय ग्रन्थ की भूमिका से चलता है।

इन सम्पादित ग्रन्थों का उत्कृष्ट रूप देखकर आलोचक को यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि युगलकिशोर पाठक गत शताब्दी के उत्तरार्ध में काशी के पंच गौड़ वैदिकों में मूर्धन्य स्थान पर विराजमान थे।

श्री विद्याधर गौड़

(आस्पद—मिश्र, उपाधि—महामहोपाध्याय)

महामहोपाध्याय पं० विद्याधर जी गौड़ विद्वान् पिता के विद्वान् पुत्र थे। इनके विषय में यह अंग्रेजी लोकोक्ति—"योग्य पिता का योग्य पुत्र" पूर्णतः चरितार्थ होती है। संस्कृत के किसी कवि ने ठीक ही कहा है कि कोई विद्वान् पुत्र अपने अच्छे कर्मों तथा प्रकाण्ड पाण्डित्य से अपने पिता को भी अतिक्रमण कर जाता है—

"कुम्भः परिमितमम्भः पिबति,
पपौ कुम्भसम्भवोऽम्भोधिम्।
अतिरिच्यते सुजन्मा,
कश्चित् जनकं निजेन चरितेन॥"

---

१. इसके परिचय के लिए द्रष्टव्य बलदेव उपाध्याय रचित 'वैदिक साहित्य और संस्कृति', (पृष्ठ ३१०-३१३), प्रकाशक : शारदा संस्थान, १९८१, वाराणसी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सूक्ति के ज्वलन्त उदाहरण पण्डित विद्याधर जी गौड़ थे। इनके पिता पं० प्रभुदत्त जी वेद तथा कर्मकाण्ड के तलस्पर्शी विद्वान् थे। उन्होंने राजसम्मान, यश, कीर्ति तथा धन भी प्रचुर मात्रा में अर्जित किया था परन्तु उनके सुयोग्य पुत्र विद्याधर जी सभी क्षेत्रों में अपने पिता से आगे बढ़ गये। महाकवि कालिदास ने महाराजा रघु के विषय में लिखा है कि "मन्दोत्कण्ठाः कृतास्तेन गुणाधिकतया गुरौ" अर्थात् रघु ने अपने गुणोत्कर्ष से अपने पिता राजा दिलीप के सम्बन्ध में प्रजा की उत्कण्ठा मन्द कर दी। विद्याधर जी के सम्बन्ध में भी कुछ ऐसी ही बात कही जा सकती है। कहने का आशय यह है कि इन्होंने अपने पिता से भी अधिक यश, कीर्ति और राजसम्मान प्राप्त किया तथा प्रचुर परिमाण में धन का भी उपार्जन किया।

जन्म तथा शिक्षा

पं० विद्याधरजी गौड़ का जन्म अपने नाना के घर तत्कालीन पञ्जाब (आधुनिक हरियाणा) प्रान्त के रोहतक जिले के 'पूठी' नामक गाँव में सं० १९४३ वि० (सन् १८८६ ई०) में हुआ था। इनके पिता का नाम पं० प्रभुदत्त गौड़ था जिनकी चर्चा ऊपर इसी प्रसङ्ग में की गयी है। ये अपने पिता के ज्येष्ठ पुत्र थे। यज्ञोपवीत संस्कार होने के पश्चात् इन्होंने वेदाध्ययन प्रारम्भ किया।

पं० विद्याधर गौड़ की विद्या पूर्वजन्मार्जित थी। इनमें अद्भुत मेधा और अपार विद्वत्ता थी। इसी कारण आपने थोड़ी अवस्था में ही अतिशय तीव्र कुशाग्र बुद्धि के कारण वेद आदि शास्त्रों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया। इन्होंने अपने विद्वान् पिता से वेदविद्या और कर्मकाण्ड का अध्ययन किया था और कुछ ही वर्षों में प्रकाण्ड पाण्डित्य प्राप्त कर लिया।

गौड़जी की स्मरणशक्ति अद्भुत थी। ये जिस विषय को एक बार पढ़ लेते थे वह इन्हें कण्ठस्थ हो जाता था। इसीलिए कण्ठस्थ विद्या पर इन्हें बड़ी आस्था थी। ये बिना पुस्तक की सहायता से कण्ठस्थ रूप से कर्मकाण्ड कराते थे। वेद की संहिता अष्ट विकृतियों के साथ इन्हें पूर्णतः कण्ठस्थ थी। वेदों के इनके घनपाठ को सुनकर बड़े बड़े वेदपाठी आश्चर्य में पड़ जाते थे। वेद के साथ ही साथ वेदाङ्गों पर भी इनका पूर्ण प्रभुत्व था। धर्मशास्त्र का इन्होंने गम्भीर अध्ययन किया था। इसलिए जब कभी किसी सामाजिक समस्या पर इनकी व्यवस्था माँगी जाती थी तब ये जो व्यवस्था देते थे वह प्रामाणिक और अकाट्य होती थी। इतना ही नहीं, इन्होंने मीमांसा, साहित्य और व्याकरण का भी गम्भीर अध्ययन किया था। इन्होंने कर्मकाण्ड का शास्त्रीय अध्ययन तो किया ही था परन्तु उसके व्यावहारिक पक्ष का ज्ञान कराने के लिए इनके पिताजी १३ वर्ष की अवस्था से ही इन्हें अपने साथ यज्ञ-यागादि का परिचय देने के लिए भारत के विभिन्न नगरों में ले जाया करते थे। इस प्रकार कर्मकाण्ड के सिद्धान्त और व्यावहारिक पक्ष के भी ये पूर्ण ज्ञाता थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यापन कार्य

पं० विद्याधरजी गौड़ ने सर्वप्रथम कलकत्ता के 'विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय' में अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया था। परन्तु उस व्यवसायी नगर में इनका मन नहीं लगा और ये काशी लौट आये। कलकत्ता से लौटने के पश्चात् आपने काशी में ज्ञानवापी के निकट श्रीसत्यनारायण वेद विद्यालय में तथा सरस्वती फाटक के समीप स्थित एक वेद विद्यालय में अनेक वर्षों तक वेद का अध्यापन किया। बाद में त्रिपुरा भैरवी (मीरघाट) मुहल्ले में स्थित श्रीरामदयाल चुन्नीलाल काजड़िया संस्कृत पाठशाला में अष्ट विकृतियों के साथ वेद का अध्यापन किया करते थे। काशी में उस समय यही एकमात्र वेद का विद्यालय था जहाँ बिना वृत्ति के छात्र नियमित रूप से वेदाध्ययन किया करते थे।

पं० विद्याधर गौड़ ने अनेक वर्षों तक सेठ गौरीशंकरजी गोयनका द्वारा स्थापित 'श्रीजोखीराम मटरूमल गोयनका संस्कृत महाविद्यालय' में सर्वप्रथम वेद के 'प्रधानाध्यापक' के रूप में अध्यापन कार्य किया। वहाँ आप वाचस्पति, आचार्य, शास्त्री आदि उच्च श्रेणी के छात्रों को वेद का पाठ पढ़ाते थे। सन् १९३९ ई० में इन्होंने इस पद से त्यागपत्र दे दिया। परन्तु सेठ गोयनका गौड़जी का सम्बन्ध इस विद्यालय से सदा बनाये रखना चाहते थे। अतः उन्होंने वेदाध्ययन के कार्य से इन्हें मुक्त कर इसी विद्यालय के वेद-विभाग के 'निरीक्षक' के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया।

महामना मालवीयजी ने गौड़जी की प्रकाण्ड विद्वता से प्रभावित होकर आपको हिन्दू विश्वविद्यालय के अंग रणवीर संस्कृत पाठशाला में वेद विभाग के प्रधानाध्यापक के पद पर नियुक्त किया। इसके पश्चात् सन् १९१६ ई० में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में धर्म विज्ञान संकाय (थियोलोजी फैकल्टी) में सर्वप्रथम 'प्रधानाध्यापक' के पद पर प्रतिष्ठित किया गया। इसके बाद सन् १९२७ ई० में आपने धर्म विज्ञान विभाग के अध्यक्ष पद को अलंकृत किया। सन् १९३५ ई० में आपने धर्मविज्ञान संकाय के अध्यक्ष (डीन) के पद को सुशोभित किया। सन् १९४० ई० में आपने इस पद से त्यागपत्र दे दिया। इस प्रकार हिन्दू विश्वविद्यालय के स्थापनाकाल से लेकर सन् १९४० ई० तक आप इस विश्वविद्यालय से सम्बद्ध रहे और इस बीच आपने अध्यापक, प्रधानाध्यापक और संकाय-अध्यक्ष (डीन) आदि महत्त्वपूर्ण पदों को सुशोभित किया। यह कुछ कम महनीय तथा उल्लेखनीय बात नहीं है कि इनके पूज्य पिता—पं० प्रभुदत्त गौड़जी ने तथा आपने—दोनों पिता-पुत्र ने—हिन्दू विश्वविद्यालय के धर्म विज्ञान विभाग की अनेक वर्षों तक सेवा की। पिता और पुत्र दोनों ही एक ही महत्त्वपूर्ण पद को क्रमशः सुशोभित करें—ऐसा बहुत कम देखने में आता है।

पं० विद्याधर गौड़ का समस्त जीवन ही अध्ययन और अध्यापन में व्यतीत हुआ। अध्यापक के रूप में इनकी बड़ी ख्याति थी। ये बड़े सिद्ध अध्यापक थे। महाकवि कालिदास ने लिखा है कि—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"श्लिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था,
संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां,
धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव ॥"

अर्थात् कुछ विद्वान् तो ऐसे होते हैं जो स्वयं तो प्रकाण्ड पण्डित हैं परन्तु दूसरों को उस ज्ञान का दान नहीं देना जानते। कुछ ऐसे हैं जो स्वयं तो विशेष विद्वान् नहीं हैं परन्तु अध्यापन करने में दक्ष हैं। किन्तु श्रेष्ठ शिक्षक वही है जिसमें ये दोनों गुण पाये जाते हों। कहने की आवश्यकता नहीं गौड़जी में ये दोनों ही गुण प्रचुर परिमाण में उपलब्ध थे।

शिष्यगण

पं० विद्याधरजी गौड़ की शिष्यपरम्परा बड़ी लम्बी है। इन्होंने अनेक—शतशः—शिष्यों को विद्यादान दिया जिन्होंने आगे चलकर विद्या के क्षेत्र में बहुत अधिक नाम और दाम कमाया। आपके प्रमुख शिष्यों में कुछ के नाम इस प्रकार हैं—पं० विजयचन्द्र चतुर्वेदी, रामजीव द्विवेदी, मार्तण्ड शास्त्री। ये तीनों ही हिन्दू विश्वविद्यालय में वेद विभाग में प्राध्यापक थे। इसके अतिरिक्त पं० विश्वनाथ पाण्डेय, भगवतप्रसाद मिश्र, गोपालचन्द्र मिश्र, मङ्गलदत्त त्रिपाठी—आदि सभी वेदाचार्य थे तथा इन्होंने भी विश्वविद्यालय के वेद विभाग में अध्यापन किया। इनके शिष्यों में अनेक व्याकरण-शास्त्र के विद्वान् हो गये हैं जिनमें प्रमुख पं० गिरिजाप्रसाद पाण्डेय, श्यामसुन्दर द्विवेदी आदि प्रमुख हैं। पं० सीताराम चतुर्वेदी ने 'महामहोपाध्याय-स्मारक-ग्रन्थ' में इनके ७६ प्रधान शिष्यों का नाम तथा पता के साथ उल्लेख किया है। परन्तु यह संख्या इससे भी कहीं अधिक थी।

परिवार

पं० विद्याधर गौड़ का विवाह बीस वर्ष की अवस्था में रोहतक जिले के 'माना' नामक गाँव के निवासी पं० गोकुलचन्द्रजी की कन्या वासन्तीदेवी से हुआ था। आपकी धर्मपत्नी वासन्तीदेवी बहुत ही शौभाग्यशालिनी, सुशील, मृदुभाषिणी, उदार तथा चतुर गृहिणी थीं। इस प्रकार 'प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च' ऐसे गुण वाली पत्नी को प्राप्त कर गौड़जी अपने को सौभाग्यशाली समझते थे। इनके पाँच पुत्र और दो कन्याएँ उत्पन्न हुईं। विद्याधरजी के ज्येष्ठ पुत्र पं० बलदेवप्रसाद मिश्र बड़े प्रतिभाशाली विद्वान् और लेखक थे। इनके द्वितीय पुत्र पं० दौलतराम गौड़ ने वेदाचार्य की उपाधि प्राप्त कर संन्यासिसंस्कृत कालेज में प्राध्यापक के पद को सुशोभित किया। तृतीय पुत्र श्रीवेणीराम गौड़ ने सन् १९३९ ई० से अनेक वर्षों तक गोयनका संस्कृत महाविद्यालय में वेदाध्ययन का कार्य किया। चौथे पुत्र माधवप्रसाद मिश्र पत्रकार तथा लेखक हैं। पाँचवें पुत्र भी अनेक पत्रों के संवाददाता तथा लेखक हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९३७ ई० में इनकी पत्नी श्रीमती वासन्तीदेवी का स्वर्गवास हो गया। इसके पश्चात् गौड़जी बहुत उदासीन रहने लगे। सन् १९४१ ई० में केवल ५५ वर्ष की अल्प आयु में गौड़जी भी परमधाम को सिधार गये। इस प्रकार वेदों का प्रकाण्ड विद्वान्, कर्मकाण्ड का व्यावहारिक ज्ञाता और धर्मशास्त्र की व्यवस्था देने वाला तेजस्वी, अलौकिक विद्वान् इस धराधाम से सदा के लिए अस्त हो गया।

निधन

पं० विद्याधर गौड़ के निधन से उनके परिवार के लोग, उनकी शिष्यमण्डली तथा काशी का विद्वत्समाज अत्यन्त शोकाकुल हो उठा था। म० म० प्रमथनाथ तर्कभूषण, म० म० पं० बालकृष्ण मिश्र तथा म० म० हरिहरकृपालु द्विवेदी आदि विद्वानों ने अपने शोकाकुल हृदय के उद्‌गार को संस्कृत गद्य और श्लोकबद्ध पद्य में मर्मस्पर्शी रूप में प्रकट किया था। पं० हरिहरकृपालुजी ने लिखा था कि—

"वेदवल्ली विलूना सा, गता सौहार्दमाधुरी।
विधवा भारती भूता, गते विद्याधरे दिवम्॥"

गोस्वामी श्री दामोदरलाल ने तो विद्याधरजी की मृत्यु से विद्या का सिंहासन ही लुप्त हो जाने की चर्चा की थी—

"यस्मिन् प्रशस्तमति-शालिनिगौडधुर्ये,
विद्याधरे सुफलिताऽखिल—वेदविद्या।
तस्मिन् सुरेश्वरपदाङ्कमितेऽत्र तस्याः,
सिंहासनं मुषितरत्नमिवाद्य जातम्॥"

इन शोकोद्‌गारों से पता चलता है कि गौड़जी कितने बड़े विद्वान्, लोकप्रिय कर्मकाण्डी तथा वेद के ज्ञाता थे।

सम्मान

पं० विद्याधरजी गौड़ के प्रकाण्ड पाण्डित्य और अलौकिक विद्वत्ता से प्रभावित होकर ब्रिटिश सरकार ने सन् १९४० ई० में इन्हें महामहोपाध्याय की उपाधि से विभूषित किया था। आपकी विशिष्ट विद्वत्ता, तलस्पर्शी पाण्डित्य और प्रखर मेधा के कारण अनेक शिक्षा-संस्थाओं ने आपका सम्मान किया तथा आपको अभिनन्दन-पत्र प्रदान कर वैदिक सम्राट्, याज्ञिक सम्राट्, वैदिक चक्रवर्ती, विद्यावाचस्पति, विद्याभूषण, धर्मालंकार, महापण्डित आदि अनेक उपाधियों से अलंकृत किया था।

गौड़जी का सम्बन्ध अनेक शिक्षा संस्थाओं से था। आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज (अब संस्कृत विश्वविद्यालय) बनारस, बिहार संस्कृत एसोसियेशन, पटना की पाठ्य-निर्धारिणी समिति तथा परीक्षा बोर्ड के माननीय सदस्य रहा करते थे। कलकत्ता, जयपुर, लाहौर, नागपुर आदि विश्वविद्यालयों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से भी आप किसी न किसी रूप में सम्बद्ध थे। आपकी विद्वत्ता की धाक सुदूर विदेशों में भी फैल गयी थी। आपकी "कात्यायन-श्रौत्र-सूत्र" की टीका से प्रभावित होकर लन्दन और जर्मनी की विद्वत्परिषदों ने इन्हें अपने यहाँ आने का निमन्त्रण दिया था। परन्तु कट्टर सनातनी होने के कारण आप वहाँ नहीं गये। भारत के किसी प्रदेश में भी यज्ञ-यागादि का विधान होता था वहाँ विद्याधरजी आचार्य के रूप में अवश्य ही निमन्त्रित किये जाते थे। वैदिक विद्वान् के रूप में इनकी कीर्ति सर्वत्र फैली हुई थी।

पं० विद्याधर गौड़ कर्मकाण्ड के याज्ञिक विधान में जितने प्रवीण तथा चतुर थे उतने ही निपुण वे वेद-सम्बन्धी ग्रन्थों के प्रणयन में भी थे। उनके द्वारा रचित ग्रन्थों को दो विभाग में विभक्त किया जा सकता है। कुछ ग्रन्थ तो यज्ञयागादि के अनुष्ठान की पद्धतियों से सम्बन्ध रखते हैं और कुछ प्राचीन ग्रन्थों की व्याख्याएँ हैं। प्रथम कोटि में आने वाले ग्रन्थों के नाम निम्नांकित हैं—

(१) स्मार्त प्रभु, (२) प्रतिष्ठा प्रभु, (३) विवाह पद्धति, (४) उपनयन पद्धति, (५) वास्तुशान्ति पद्धति, (६) शिलान्यास पद्धति तथा (७) चूडाकरण पद्धति। ये तो सामान्य कोटि के ग्रन्थ हैं परन्तु इनके वैदिक पाण्डित्य का मेरुदण्ड-स्वरूप सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है—

कात्यायन श्रौतसूत्र की 'सरला' टीका[1]

कात्यायन श्रौतसूत्र के ऊपर कर्काचार्य का भाष्य नितान्त प्रसिद्ध है। परन्तु अत्यन्त कठिन तथा विस्तृत होने के कारण वह सामान्य छात्रों के लिए उपयोगी नहीं था। इसीलिए गौड़जी ने इस पर 'सरला' नाम की टीका लिखकर इस ग्रन्थ को सरल और सुबोध बना दिया है। इस ग्रन्थ के आरम्भ में गौड़जी ने जो ७५ पृष्ठों की भूमिका लिखी है वह अत्यन्त प्रामाणिक तथा विद्वत्तापूर्ण है। इस भूमिका में इन्होंने यज्ञयागादि की प्रक्रिया, उसकी सामग्री तथा प्रकार आदि विषयों को बड़ी ही सरल भाषा में समझाया है। यज्ञ की पद्धति बड़ी ही कठिन तथा विषम होती है। उसे ठीक तरह से समझने के अतिरिक्त दूसरों को समझाना एक टेढ़ी खीर है। परन्तु गौड़जी स्वयं कर्मकाण्डी तथा अग्निहोत्री थे। अतः उन्होंने इस विषय को अपनी टीका में बड़ी ही सुगम रीति से प्रतिपादित किया है।

कात्यायन ने वेदि-निर्माण के विषय में जिस 'शुल्व सूत्र' की रचना की है उसके ऊपर भी गौड़जी ने अपनी टीका लिखी है। इन ग्रन्थों के निर्माण से पता चलता है

---

१. अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी, सन् १९३० ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि पं० विद्याधरजी गौड़ कर्मकाण्ड के सिद्धान्त पक्ष (थ्यौरी) और व्यवहार पक्ष (प्रैक्टिस) दोनों के प्रकाण्ड पण्डित थे।

वेदोच्चारण तथा वेदों के अर्थ को सर्वसाधारण के सामने प्रतिपादित करने के विषय में उनका अपना विशेष मत था। वे सामान्य लोगों के बीच वेदार्थ का प्रतिपादन उचित नहीं समझते थे। उन्होंने अपने एक सुयोग्य शिष्य से इसका रहस्य बतलाते हुए एक बार कहा था कि—

"अपनी कर्मकाण्डपरक व्याख्या को सबके सामने सुनाने से लाभ नहीं बल्कि हानि होती है। उसका उद्देश्य वेद परम्परा की रक्षा, कर्मकाण्ड का विकास और श्रद्धा का संचार मात्र है। उसका वातावरण ही दूसरा है। अनुचित वातावरण में रखकर व्याख्या करने से ही कर्मकाण्डियों ने असफल वैद्यों के समान अपनी हँसी उड़ाई है और वेद की हानि की है। अतः सर्वसाधारण जनता के समक्ष वेदमंत्रों का उच्चारण अथवा वेदार्थ करना मुझे नापसन्द है।"[१]

पं० विद्याधरजी की विद्वत्ता अगाध थी। एक बार कोई संस्कृत भाषा का ज्ञाता अंग्रेज विद्वान् आपसे अपनी शंका के समाधान के लिए गया। उसने शुक्ल यजुर्वेद संहिता के एक मंत्र का अर्थ पूछा। इस पर विद्याधरजी ने इस मंत्र की विशद व्याख्या करते हुए उस मंत्र का अध्याय और संख्या भी बतला दी। इसके पश्चात् उक्त अंग्रेज ने दो-तीन अन्य मंत्रों का अर्थ पूछा। उन मंत्रों की विस्तृत व्याख्या करके यह मन्त्र किस अध्याय में है यह भी इन्होंने बतलाया। यह उल्लेख मिलाने पर ठीक निकला। इस पर वह अंग्रेज इनकी अलौकिक स्मरण शक्ति को देखकर अत्यन्त आश्चर्यित हुआ।

पं० विद्याधरजी गौड़ सच्चे अर्थ में वेदवित् थे। श्री जगदानन्द झा ने अपने संस्मरण में लिखा है कि सामवेद का 'पुष्प सूक्त' का अध्ययन करने के लिए मैं काशी के अनेक वैदिक विद्वानों के पास गया परन्तु सबने अपनी असमर्थता प्रकट की। अन्त में गौड़जी के पास गया। इन्होंने इस सूक्त को ऐसे सरल रीति से पढ़ाया कि मैं आश्चर्यचकित रह गया। ये वेदों के अतिरिक्त कर्मकाण्ड, धर्मशास्त्र और व्याकरण के भी उद्भट विद्वान् जो थे। अनेक पण्डितों ने इनकी गम्भीर विद्वत्ता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभा के बल से सकल शास्त्रों का आलोड़न किया था।

"पुराण-न्याय-मीमांसा,-धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाश्चत्वारि विद्यानां, धर्मस्य च चतुर्दश॥"

इस श्लोक के गौड़जी मूर्तिमान् स्वरूप थे।

---

१. वेणीराम गौड़ द्वारा सम्पादित "महामहोपाध्याय स्मारक ग्रन्थ", पृ० १३५ (प्र० सं०), सन् १९६३ ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौड़जी अत्यन्त विनयी व्यक्ति थे। ये विद्याव्यसनी विद्वान् थे। अलौकिक पाण्डित्य से पूर्ण होने पर इन्हें अभिमान छू तक नहीं गया था। इस प्रकार ये "विद्या ददाति विनयं" की साक्षात् प्रतिमा थे। महाकवि कालिदास ने किसी अंगदेशी राजा का वर्णन करते हुए लिखा है कि—

"नितान्तभिन्नास्पदमेकसंस्थम्
अस्मिन् द्वयं श्रीश्च सरस्वती च ॥"

रघु० ६।२६

विद्याधरजी गौड़ के विषय मे यह उक्ति अक्षरशः चरितार्थ होती है। इन्होंने अपने पूज्य पिताजी की भाँति सरस्वती और लक्ष्मी को प्रचुर मात्रा में अर्जित किया था। अन्त में इनके विषय में यही कहना उचित प्रतीत होता है—

"परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।
स जातो येन जातेन, याति वेदाः समुन्नतिम् ॥"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४०

श्रीरामचन्द्र शास्त्री रटाटे

(आस्पद—रटाटे; उपाधि—वैदिकमार्तण्ड)

श्रीरामचन्द्र शास्त्री रटाटे काशी के वैदिक विद्वानों में अपनी श्रुति-सम्बन्धी विद्वत्ता, यज्ञीय अनुष्ठान विधि की प्रवीणता एवं आचरण की सात्त्विकता के कारण मूर्धन्य स्थान पर निःसन्देह विराजमान थे। ये चारों वेदों के अनुशीलन में दक्षता रखते थे। उनका अपना वेद तो था ऋग्वेद ही जिसके पारायण में उनकी प्रौढ़ि नितान्त विश्रुत थी। कर्मकाण्ड के भी वे मर्मज्ञ विद्वान् थे। सामगायन के वे सुमधुर गायक थे और सबसे विलक्षण बात यह थी कि वे अथर्ववेद के विशिष्ट विद्वान् ही न थे, प्रत्युत काशी में अथर्ववेदीय परम्परा के जनक भी थे। इसीलिए हम उनको काशी के वैदिक विद्वानों के प्रतिनिधि के रूप में ग्रहण कर उनके व्यक्तित्व का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस परिचय देने से पहिले काशी की वैदिक परम्परा का संक्षिप्त विवरण विषय की पूर्णता के लिए दिया जा रहा है।

काशी की वैदिक परम्परा[1]

काशी में महाराष्ट्रीय वैदिकों की एक लम्बी परम्परा है। महाराष्ट्र देश में ब्राह्मणों में वेद की संहिता, ब्राह्मण एवं उपनिषद् तथा दशग्रन्थी के अध्ययन करने के प्रति गहरी निष्ठा थी। वे अपनी शाखा से सम्बद्ध समग्र ग्रन्थों का अध्ययन विधिवत् करना अपना परम पवित्र कर्तव्य मानते थे। वहाँ बाल्यकाल में ही स्वशाखीय वैदिक संहिता के कण्ठाग्र करने की बहुशः परिपाटी रही है। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि पेशवा शाही खजाने से प्रतिवर्ष तीन लाख रुपया वैदिक ब्राह्मणों में दक्षिणा के निमित्त

---

१. रामचन्द्र शास्त्री रटाटे के अभिनन्दन में प्रकाशित स्मृति ग्रन्थ में श्री कालविन्ट जी एम० ए० ने 'काशी की वैदिक एवं श्रौत्रिय परम्परा' शीर्षक (पृ० १४१ से १६०) बड़ा ही शोधपूर्ण एवं प्रामाणिक लेख लिखा है। उसी के आधार पर यह विवरण प्रस्तुत किया गया है। लेखक पं० कालविन्टजी का इसके लिए बहुत आभार मानता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाँटते थे। काशी में लगभग चार सौ वर्षों से महाराष्ट्रीय ब्राह्मण निवास कर रहे हैं, परन्तु पेशवाओं के समय में वैदिकों का चरमोत्कर्ष हुआ। काशी में वसन्तपूजा (विशिष्ट अवसर पर अनेक वैदिकों का समवेत वेदपारायण) की परम्परा पेशवाओं ने ही आरम्भ की तथा वेदाध्ययन के उत्कर्ष तथा अभ्युत्थान के लिए उन्होंने अनेक प्रकार के दान, वर्षाशन तथा जागीरें भी दी थीं। सुना जाता है कि काशी के मूर्धन्य वैदिकों को पेशवा ने पृथक्-पृथक् सोलह सहस्र स्वर्ण मुद्राओं से सम्मानित किया था। शत वर्ष पूर्व काशी में पाँच सौ वैदिकों का जमघट था। ब्रह्मावर्त (बिठूर, कानपुर) तथा चित्र-कूट में रहने वाले अन्तिम पेशवा के यहाँ इन काशीस्थ वैदिकों के विशिष्ट समारोहों में विशेष सम्मान तथा सत्कार पाने की घटना का उल्लेख पूर्व ही किया गया है। पेशवाओं के प्रश्रय के कारण काशी में अनेक वेदपाठशालाएँ नियमित रूप प्रचलित थीं जिनमें से प्रधान पाठशालाओं का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है।

ऋग्वेदीय पाठशाला

ऋग्वेद की ९ वैदिक पाठशालाओं का पता है जिनमें मुख्य ये हैं—(१) वेदमूर्ति मामा पेण्डशे की पाठशाला (रतन फाटक) इस पाठशाला में शिक्षित प्रमुख वैदिक गोपीनाथ भट आठवाले थे जो घनान्त दशग्रन्थी वैदिक थे।

(२) **वे० मू० दिनकर अण्णा जोशी पाठशाला** (भटकचेरी) यह पाठशाला अपनी शिष्य सम्पत्ति के कारण प्रमुख स्थान रखती थी। इसके संस्थापक **दिनकर बालकृष्ण जोशी** (१८१० ई० से १८७० ई०) अपने युग के ऋग्वेदीय वैदिकों में शीर्षस्थान के अधिकारी माने जाते थे। आपकी स्थापित यह पाठशाला चार पीढ़ियों तक लगातार अबाध गति से चलती रही। यहाँ के अधीती वैदिकों में, **बालदीक्षित काले** प्रामुख्य धारण करते हैं। इनका जन्म हुआ ब्रह्मावर्त (बिठूर) में १८३८ ई० में जहाँ इन्होंने ब्रह्मावर्त के ही धूपकर गुरुजी से पदान्त सदृश ग्रन्थों का अध्ययन किया। क्रम का अध्ययन इस पाठशाला में जोशी जी से किया। इनके अनेक शिष्य हुए जिनमें **रामशास्त्री रटाटे** प्रधान थे। इस विद्यालय में तैयार वैदिकों का नाम इस प्रकार है—**विनायक नारायण दीक्षित** (१८८९ ई० से १९४६ ई०), **रामकृष्ण दीक्षित फड़के** (बालदीक्षित के जामाता, पूना तथा ग्वालियर में जटापारायण से लब्धकीर्ति सम्मानित वैदिक), **कृष्णभट्ट पुराणिक** ('क्रम' के विशेष ज्ञाता), **सोभनाथजी सोलापुरकर** (दशग्रन्थी वैदिक, तैलंगस्वामी के मठ में उनकी पुण्यतिथि के अवसर पर एक बैठक में २१ घण्टों में सम्पूर्ण संहिता का पारायण किया था) **वामन गङ्गाधर देव** (१८८९ ई० से १९३८ ई०) दशग्रन्थी अच्छे वैदिक थे। इनके दो पुत्र वेदशास्त्र निष्णात हैं—(१) **डॉ० श्रीकृष्णदेव** (प्राध्यापक, संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी) तथा (२) **डॉ० विश्वनाथदेव** (प्राध्यापक संस्कृत महाविद्यालय, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी)। ये दोनों सज्जन ऋग्वेद की विकृतियों से पूर्ण परिचय रखते हैं और इनका पारायण कर काशी तथा बाहर भी सम्मान पा चुके है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) **डोंगरे जी की पाठशाला** (ब्रह्मघाट स्थित शेणवाई मठ) इस पाठशाला के संस्थापक वेदमूर्ति **विनायकभट्ट डोंगरे** (१८३० ई० से १९०४ ई०) ने ऋग्वेद का अध्ययन ब्रह्मावर्त में तत्सत् गुरु जी के पास किया जिनकी आज्ञा से काशी में यह पाठशाला इनके द्वारा स्थापित की गई। वेद के अध्यापक रूप में इनकी बड़ी ख्याति थी। अतः ये 'गुरुजी' के सम्मानित नाम से सम्बोधित किये जाते थे। इस पाठशाला के शिष्यों की एक लम्बी परम्परा है जिसमें वे भू० भिकंभट्ट **पटवर्धन, घनसम्राट् काशीनाथभट्ट हर्डीकर, बालकृष्ण महादेव सप्रे** तथा **गणपति रामकृष्ण हेब्बार** प्रमुख हैं। अन्तिम दोनों वैदिक भिकंभट्ट के ही शिष्य थे जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—इनका पूरा नाम **व्यंकटेश बलवन्त पटवर्धन** था (१८५५ ई० से १९२८ ई०) परन्तु भिकंभट्ट के लोकप्रिय नाम से प्रख्यात थे। इनके पिताजी महाराष्ट्र के 'पनवेल' ग्राम से काशीवास की इच्छा से आये थे। भिकंभट्ट का जन्म काशी में ही हुआ। विनायकभट्ट डोंगरेजी से समग्र ऋग्वेद का अध्ययन यथाविधि सम्पन्न किया। स्वतन्त्र रूप से अपने घर पर अध्यापन करते थे। म० म० लक्ष्मण शास्त्री द्राविड के आग्रह पर आप सांग-वेद विद्यालय, रामघाट में पढ़ाने लगे। जहाँ ७ वर्ष तक परिश्रमपूर्वक अध्यापन कार्य किया। तदनन्तर इनके ही सुयोग्य पुत्र **अनन्तराम पटवर्धन** ने पिता की गद्दी सँभाली और उनके रिक्त स्थान प्रर अध्यापन करते रहे।

(४) **विनायकभट्ट काले की पाठशाला** (भैरवनाथ स्थित चमरिया गली)। पाठशाला जल्दी ही बन्द हो गई। यहाँ से तैयार वैदिकों में **बाबू दीक्षित** जड़े प्रसिद्ध हैं। आपका घराना वेद, श्रौतस्मार्त तथा तन्त्र के लिए विशेष प्रख्यात था। इनके पूज्य पिता पण्डित **रामचन्द्र दीक्षित** जड़े ही वेद-शास्त्र-ज्ञाता माने जाते थे। इनके यहाँ वेद तथा तन्त्र विषय के हस्तलेखों का अपूर्व संग्रह था जो अब 'सरस्वती भवन' की शोभा बढ़ा रहा है। आप दरभंगा पाठशाला के अध्यापक थे।

यजुर्वेद

यजुर्वेद की दोनों शाखाओं के अध्यापनार्थ काशी में पाठशालाएँ चलती थीं। कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से सम्बद्ध लगभग १० पाठशालाएँ विभिन्न स्थानों पर विशिष्ट वैदिकों की संरक्षकता में चलती रहीं जहाँ अनेक वैदिक तैयार होकर देश के विभिन्न स्थानों में यज्ञ यागादि के सम्पादनार्थ जाते रहे।

(१) पण्डित राजाराम शास्त्री कार्लेकर (संवत् १८३३-१९१७) की वैदिक पाठशाला 'घासी टोला' मुहल्ले में थी। शास्त्री जी का परिचय पहिले ही दिया गया है।

(२) वे० मू० भिकं दीक्षित लेले की पाठशाला विशेष उल्लेखनीय है अपनी शिष्य-सम्पत्ति के कारण। लेलेजी का पूरा नाम था—**बेनीमाधव विद्याधर लेले** (शाके १७६०-१८४० शाके)। अपने समय के सुयोग्य श्रौतमर्मज्ञ वैदिक थे। कृष्णयजुर्वेद का क्रमान्त

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्ययन किया था। स्वयं अग्निहोत्री थे। इनके द्वारा शिक्षित शिष्यों की संख्या बहुत अधिक है।

(३) **सोमनाथ भट वापट की पाठशाला** (कान भट की खोली) यह पाठशाला आज भी वर्तमान है। सोमनाथ भट श्रौतस्मार्त परम्परा के अच्छे विद्वान् वैदिक हैं। सामगायन से भी परिचय रखते हैं। इनके अनेक शिष्य विद्यमान हैं।

शुक्ल यजुर्वेद की दोनों—माध्यन्दिनी तथा काण्व—शाखाओं से सम्बद्ध पाठशालाएँ आज भी काशी में चलती हैं और प्राचीन काल में भी चलती थीं। माध्यन्दिन शाखा का बड़े परिमाण पर प्रचार इस प्रदेश में है। फलतः इस शाखा के अध्यापन की व्यवस्था बड़े विस्तार से महाराष्ट्रीय पण्डितों तथा एतद्देशीय वैदिकों के द्वारा की गयी है। इस शाखा के अध्येता वैदिकों में **कृपाकृष्ण जानी, नरहरि भट सप्तर्षि, गणेश शास्त्री गोडसे** अच्छे विद्वान् तथा श्रौत के ज्ञाता हुए।

शुक्ल यजुर्वेद के अध्येता तथा अध्यापक वैदिकों में **पण्डित कृपाकृष्ण जानी** का नाम नितान्त प्रसिद्ध है। ये 'कात्यायन श्रौतसूत्र' के विशेष मर्मज्ञ होने के कारण वैदिकों में अत्यन्त आदर एवं सम्मान के भाजन थे। इनकी शिष्य-परम्परा आज भी चल रही है। इनके शिष्य-प्रशिष्यों की परम्परा इस प्रकार है। कृपाकृष्ण जानी—सखाराम पाठक धर्माधिकारी—चिन्तामणि दीक्षित नमस्कारे—नानाजी मेहेरकर—जगन्नाथ पाठक सप्तर्षी—गौरीनाथ दीक्षित—गणेश दीक्षित गौडजी भट्ट। इस उज्ज्वल शिष्य-परम्परा से ही आपके वैदुष्य का पता चलता है। वृद्धों से सुना गया है कि आप कर्मकाण्ड कराते समय जहाँ बैठते थे, उस समय आस-पास के २५ हाथ दूरी तक के मकानों में आपका शब्द गूँजता था। अपने निवासस्थान के पास ही श्रीगणेश भगवान् का मन्दिर आपने स्थापित किया था (१९१६ वि० सं० = १८६२ ई०)। इस स्थापना वर्ष का वहाँ उल्लेख है। इनके पिता का नाम था—**पण्डित सूर्यकृष्ण**। पण्डित कृपाकृष्णजी को बेतिया के महाराजा ने अपने यहाँ आचार्य बनाया था। श्रौतयाग के अनुष्ठान के मार्मिक ज्ञाता थे। ऐसे वैदिक विद्वान् सचमुच दुर्लभ हैं जो याग के सिद्धान्त ज्ञान के साथ उसके व्यवहार के भी ज्ञाता हों।[1] इनका निधन वि० सं० १९२० (= १८६३ ई०) में हुआ। जन्म समय अनुमानतः १८०३ ई०।

श्री नरहरि भट सप्तर्षि (पाठक) के विषय में कहा जाता है कि वे 'कात्यायन श्रौतसूत्र' के महान् ज्ञाता वैदिक तथा श्रौत यागों के विशिष्ट निष्णात कर्मकाण्डी थे। **'श्रौत नारसिंह'** तथा **'संस्कार भास्कर'** आपके द्वारा प्रणीत श्रौत ग्रन्थ हैं। एतद्देशीय वैदिकों का वर्णन आगे किया जायगा।

---

१. इनका चित्र साङ्गवेद विद्यालय (रामघाट) में स्थापित है। विद्यालय के २४वें वार्षिक विवरण (सं० २००१) के आधार पर यह विवरण प्रस्तुत किया गया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काण्व शाखा का प्रचार महाराष्ट्रीय ब्राह्मणों में है। फलतः तदनुसारी शुक्ल यजुर्वेद के अध्यापन की अनेक पाठशालाएँ काशी में चलती रहीं। **महादेव भट पेठकर** (घनपाठी) की पाठशाला में शिक्षित अनेक वैदिक वर्तमान हैं। **नारायण भट उत्तरेश्वरी** शतपथ के पारायण के लिए प्रसिद्ध हैं। इन्होंने तिरुपति तथा पण्ढरपुर में शतपथ का पारायण पर कीर्ति अर्जित की।

सामवेद

सामवेद की तीन प्रमुख शाखायें हैं जिनमें कौथुमीशाखा का अध्ययन-अध्यापन नागर ब्राह्मणों में विशेषरूपेण प्रचलित है। काशी में रामघाट मुहल्ले के निवासी नागर ब्राह्मणों ने बड़े परिश्रम एवं निष्ठा से इस शाखा को जीवित रखा है। इस वंश में दो प्रसिद्ध सामवेदी हुए—**गणेशराम तथा जनार्दनजी**। ये दोनों ही भ्राता सामवेद तथा तन्त्र के विशिष्ट विद्वान् थे। इनमें **गणेशराम सामवेदी** (१९०४ सं०–१९८८ सं० तदनुसार १८४७ ई० में जन्म, १९३१ ई० में निधन) अपनी विद्वत्ता तथा आचरण के कारण 'गुरु' के नाम से सम्बोधित किये जाते थे। सामसंहिता तथा सामगायन के धुरन्धर विद्वान् थे। वे० मू० **जनार्दनजी** का भी सामवेद में वैदुष्य प्रशंसनीय था। पण्डित गणेश राम गुरु के पुत्र पण्डित **रणवीरदत्त त्रिपाठी जी** अपने पूज्य पिता से सामवेद का विधिवत् अध्ययन कर एक विशिष्ट सामवेदी की ख्याति से मण्डित थे। आभ्यन्तर बडनगरा नागर ब्राह्मण ज्ञाति के ये महनीय वैदिक थे। इनके पूर्वज डूँगरपुर (राजपूताना) से आकर सात-आठ पीढ़ी पहले काशी में बसे थे। पूर्वजों में सभी सामवेद के परम विद्वान् थे। काश्मीरनरेश महाराजा रणवीर सिंहजी द्वारा प्रदत्त एक विशिष्ट सुपारी के सेवन से गणेशराम जी की धर्मपत्नी के गर्भ से इनका जन्म हुआ था और इसी विलक्षण घटना की स्मृति में इनका नाम रणवीरदत्त त्रिपाठी रखा गया। ये स्वभाव से बड़े ही निर्भीक तथा सत्यवादी थे। ये श्रौतयज्ञों के विशेष ज्ञाता थे। चातुर्मास्य, नक्षत्र-याग आदि यज्ञों में आपने होत्र कर्म का सम्पादन किया। आपने सांगवेद विद्यालय में सामवेद का अध्यापन एवं विभागीय अध्यक्ष का कार्य सम्पादन अनेक वर्षों तक किया। अन्त में इन्होंने संन्यास की दीक्षा ली। इनका जन्म विक्रम संवत् १९२७ (=१८७० ई०) में तथा निधन १९९५ वि० सं० (=१९३८ ई०) में हुआ। इनके ही ज्येष्ठ पुत्र थे—**दुर्गादत्तजी सामवेदी** जो 'सन्मार्ग' के सम्पादक तथा स्थानीय गोयनका संस्कृत विद्यालय के प्राध्यापक भी थे। ये शास्त्रों के भी विशेष प्रवीण विद्वान् थे। करपात्रीजी के विशेष भक्त तथा शास्त्रमर्मज्ञ होने के नाते वे 'सिद्धान्त' पत्र में वैदिक विषयों पर बड़े ही गम्भीर तथा प्रामाणिक लेख लिखा करते थे। लेखक से उनका विशेष परिचय था। सामवेद—संहिता तथा गायन—दोनों के विषय में उनका ज्ञान बड़ा ही परिनिष्ठित तथा गम्भीर था। उनके दोनों अनुज गौरीदत्त एवं शिवदत्त योग्य सामवेदी हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके अतिरिक्त **आदित्यराम त्रिपाठी** तथा **सूर्यरामजी सामवेदी** ने सामवेद की अच्छी सेवा की और आज भी अपने पुत्रों तथा पौत्रों द्वारा सामवेद की अनमोल सेवा कर रहे हैं। आदित्यराम त्रिपाठी के दोनों ही पुत्र-विनायक राम एवं सूरजराम – अपने वेद के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। जिन्होंने स्थानीय दरभंगा पाठशाला तथा गोयनका संस्कृत महाविद्यालय में क्रमशः अध्यापक का कार्य किया। स्वर्गीय सूर्यरामजी एक सुयोग्य विद्वान् थे जिनके दोनों पौत्र देवशंकर तथा हरिशंकर (पण्डित दलपतराम के पुत्र) सामवेद के अच्छे ज्ञाता थे और उसका अध्यापन भी करते थे। हरिशंकरजी के पुत्रों— **लक्ष्मीशंकर** तथा **ऋषिशंकर** में – अन्तिम व्यक्ति ने अनेक श्रौतयागों का अनुष्ठान किया है तथा सम्प्रति गोयनका संस्कृत महाविद्यालय में सामवेद के अध्यापक हैं।

सामवेद की राणायनीय शाखा के अध्यापन के लिए वे० मू० **बालशास्त्री वापट** की पाठशाला कभी बहुत ही जागरूक रही और उसने सैकड़ों शिष्यों को तैयार किया, वापटजी स्वयं बड़े सुयोग्य सामवेत्ता तथा गायन-निष्णात वैदिक थे। काशी के वर्त्तमान सामग इन्हीं की परम्परा के हैं।

अथर्ववेद की परम्परा

काशी में अथर्ववेद का भी अध्ययन-अध्यापन नागर ब्राह्मणों में विशेष रूप से प्रचलित रहा। पण्डित **जयदेवजी पंचोली** वैदिकों की दृष्टि में इस शताब्दी के सर्वश्रेष्ठ अथर्ववेदी माने जाते थे। ये सांगवेद विद्यालय के संस्थापक मेहता परिवार के पूजनीय पुरोहित थे और परिवार के द्वारा आदरपूर्वक सम्पादित यज्ञ-यागों के सम्पादन में आपका ही योगदान प्रशंसनीय था। अन्त में संन्यास लेकर काशी में ही निवास करते थे। नाम पड़ा **जयदेवाश्रम** स्वामी। आपका जन्म वि० सं० १९१४ (=१८५७ ई०) में तथा निधन वि०सं० १९९२ (=१९३५ ई०) में हुआ। इनका चित्र सांगवेद विद्यालय में स्थापित है।

पण्डित भगवानलाल अग्निहोत्री (नागर) अथर्ववेद के बड़े ही मर्मज्ञ वैदिक विद्वान् माने जाते थे। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

श्री वै० प्र० पं० **भगवानलाल अग्निहोत्री** का जन्म वैक्रमीय संवत् १९३० (१८७३ ई०) की कार्त्तिक शुक्ल पञ्चमी को हुआ था। आप प्रसिद्ध नागर ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। आपके पिताजी का नाम पं० हिम्मतलाल द्विवेदी एवं माता का नाम श्रीमती फूल कुँअर था। आपके पूर्वज बाँसवाडा स्टेट (राजस्थान) के रहने वाले थे। सात वर्ष की अवस्था में यज्ञोपवीत संस्कार होने के पश्चात् आपने अपने पूर्वजों की परम्परा के अनुसार वेदाध्ययन प्रारम्भ किया। आपके विद्यागुरु प्रसिद्ध अथर्ववेदी और प्रसिद्ध मल्लशास्त्री पं० लक्ष्मीशंकर द्विवेदी थे। अग्निहोत्रीजी की ऋग्वेदान्तर्गत शांखायन शाखा होने के कारण प्रारम्भ में आपने सम्पूर्ण ऋग्वेद का अध्ययन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया और तत्पश्चात् अथर्ववेद का अध्ययन प्रारम्भ किया था। आपके गुरुजी आपके घर के निकट ही रहते थे।

गुरुजी की कृपा तथा अनुशासन से इनकी प्रवृत्ति अथर्व के अध्ययन में बड़ी नैष्ठिक थी। गुरुजी मन्त्रशास्त्र के पण्डित थे। उनकी दया से ये आभिचारिक प्रयोग से भी बच गये थे। जीवन के अन्तिम चरण में इनके गुरुजी काशी आये। उन्हीं के साथ ये भी काशी आये। उस समय इनका वय केवल १४ वर्ष का था। काशी आने के कुछ ही समय पश्चात् वैदिक जगत् में आपकी अच्छी ख्याति हो गयी। भारत के अनेक स्थानों से अथर्ववेद के पारायण के निमित्त और यागों में आपके पास निमन्त्रण आने लगे। काशीनिवासी पं० राजेश्वर द्विवेदी की पुत्री से आपका पाणिग्रहण संस्कार सुसम्पन्न हुआ। आपकी धर्मपत्नी का नाम सौभाग्यवती जीवन कुँवर था। तत्पश्चात् आपने श्रौत्रस्मार्त्त अग्निहोत्र का परिग्रहण किया। वैक्रमीय संवत् १९७६ में श्री वल्लभ राम शालिग्राम सांगवेद विद्यालय की स्थापना हुई। इस विद्यालय ने आपको आमन्त्रित किया और अथर्ववेदाध्यापक पद पर आपकी सम्मानित नियुक्ति हुई।

गुरुजी की सेवा, अग्निनारायण की उपासना और विद्यालय में वेदाध्ययन कराना ये ही इनके तीन मुख्य कार्य थे। आपके पढ़ाये छात्र आज भी भारत में अनेक स्थानों पर विद्यमान हैं। जिनमें से कुछ प्रसिद्ध छात्रों के नाम इस प्रकार हैं—श्री गङ्गाधर तङ्गिराल (आन्ध्र प्रदेश), स्व० नाथूलाल पंचोली (बाँसवाड़ा), स्व० भगवानीलाल पंचोली (बाँसवाड़ा), नर्मदाशंकर पंचोली (बाँसवाडा), श्री स्व० नारायण धुले (काशी), स्व० परशुराम रामडोहकर (काशी), स्व० जगन्नाथ धुले (काशी), श्री रामचन्द्र आठवले (काशी)। डा० मनोहरलाल द्विवेदी (काशी) आपके ज्येष्ठ पुत्र हैं। आपने अथर्ववेद का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया है। साथ ही साहित्याचार्य, अथर्ववेदाचार्य, एम. ए. तथा विद्यावारिधि की उपाधि प्राप्त की है। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में अथर्ववेदाध्यापक पद से अवकाश ग्रहण कर काशी में ही रहते हैं।

कुछ समय बीतने पर गुरुजी ने संन्यास ग्रहण किया और कैलासवासी हो गये। तदनन्तर अग्निनारायण की उपासना और वेदाध्ययन कराते हुए अग्निहोत्रीजी काशी में पवित्रतम जीवन यापन करने लगे। वैक्रमीय संवत् २०१६ (१९५९ ई०) माघ कृष्ण अष्टमी को काशी में ही पण्डित भगवानलालजी को शिवसायुज्य की प्राप्ति हुई। आपका आस्पद द्विवेदी था, परन्तु अग्निहोत्र धारण के कारण 'अग्निहोत्री' नाम ही प्रसिद्ध था।

वंश परिचय

रामचन्द्र शास्त्री रटाटे के पितामह श्री विनायक नारायण रटाटे अपनी वृद्धावस्था में काशीवास के उद्देश्य से अपने परिवार के साथ अपने मूल स्थान कायगाँव (महाराष्ट्र) से ब्रह्मावर्त (बिठूर, जिला कानपुर) के रास्ते काशी आये। वे उच्च-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोटि के पौराणिक एवं पक्के सिद्धान्तवादी थे। काशी आने से पहिले काशीवास के लिए उन्होंने कतिपय नियम बना लिया था जिससे यहाँ पूर्ण सात्त्विक जीवन बिताने का सुयोग प्राप्त हो। अयाचित वृत्ति—बिना किसी से याचना किये अनायास प्राप्त वस्तु से जीवन निर्वाह का नियम—उनमें मुख्य थी। वे इन नियमों का विधिवत् पालन करके विश्वनाथ की अर्चा-पूजा में अपना दिन बिताने लगे।

पण्डित विनायक रटाटे के कनिष्ठ पुत्र श्रीकृष्ण विनायक रटाटे का जन्म १८५४ ई० में हुआ। इनका अध्ययन गंगाधर शास्त्री तैलंग के यहाँ हुआ था। पौराणिक वृत्ति से काशी में अपना जीवनयापन करते थे। इनका निधन १९१८ ई० में ६४ साल की अवस्था में हुआ।

श्रीकृष्ण रटाटे के चार पुत्रों में रामचन्द्र रटाटे ज्येष्ठ थे। इनका जन्म यहीं काशी में १८७४ ई० में माता आनन्दी बाई की कोख से हुआ। पाँच वर्ष के वय तक पितामह इन्हें पढ़ाया करते तथा श्लोकों को याद कराते। उनके निधन के पश्चात् ये अपने ताऊ गोपाल शास्त्री के संरक्षण में आये। आठवें वर्ष उपनयन संस्कार के बाद इन्होंने वेदाध्ययन आरम्भ किया। मेधाशक्ति विलक्षण थी, पढ़े हुए मन्त्रों का पारायण करते ही करते वे याद हो जाते। वेदमूर्ति **बालशास्त्री काले** से इन्होंने अपनी शाखा की संहिता, ऋक्संहिता विधिवत् तैयार कर ली। गुरुजी बड़े कड़े मिजाज के थे। वे असत्य बोलना सह नहीं सकते थे। एक बार इन्होंने कोई झूठ बात बोल दी थी जिसके कारण इन्हें कठोर शारीरिक दण्ड भोगना पड़ा था। इतनी कठोरता का फल यह हुआ कि ये ऋग्वेद का पारायण बिना किसी हिचक घंटों तक करते जाते थे और कोई त्रुटि कहीं भी लक्षित नहीं होती थी। ऋग्वेद के मर्मज्ञ अध्ययन के बाद आपने **बालशास्त्री बापटजी** से उनकी वैदिक पाठशाला में सामवेद का अध्ययन किया और उन्हीं से शाक्त दीक्षा भी ली।

दीक्षा से पूर्व ही आपका प्रथम विवाह भिवकू दीक्षित लेले की भतीजी से हुआ था। इनका श्यालक अयोध्यानरेश के यहाँ अथर्ववेद का अध्यापक था। उसकी अकस्मात् मृत्यु होने पर पत्नी के कहने पर इन्होंने अवशिष्ट अथर्ववेद की **गणेशभट्ट मार्तण्डजी** से ६ महीनों के भीतर ही तैयार कर अयोध्या जाकर उस पद को सँभाला और चार वर्ष तक अयोध्या में अध्यापन कार्य किया। प्रथम पत्नी के निधन के अनन्तर द्वितीय विवाह किया और गुरुवर्य पण्डित नित्यानन्द पर्वतीयजी के आदेश से अग्निहोत्र ले लिया तथा विधिवत् अग्निनारायण के सेवक बनकर पूरे आहिताग्नि हो गये।

अध्यापन

सर्वप्रथम काशी में साङ्गवेद विद्यालय (रामघाट) में अथर्ववेद का अध्यापन किया। तदनन्तर काशी की दरभंगा पाठशाला में ३२ वर्षों तक लगातार अध्यापन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य किया अथर्ववेद का। इसी अवधि के बीच में सात वर्षों तक ऋग्वेद का भी अध्यापन किया। यहाँ रहकर इन्होंने अनेक शिष्यों को अथर्व पढ़ाया। सच तो यह है कि इन्होंने काशी में अथर्वाध्यापन की एक स्वस्थ परम्परा ही चला दी। अथर्व में सर्वश्रेष्ठ अधिकारी विद्वान होने के नाते इनकी पूछ समग्र भारत में थी। जहाँ कहीं चतुर्वेद-पारायण होता, अथर्व के प्रतिनिधि वैदिक होने के कारण इनको सर्वत्र निमन्त्रण मिलता, प्रतिष्ठा होती तथा सम्मान मिलता। रटाटेजी बराबर कहा करते थे कि "अथर्ववेद की मुझ पर बड़ी कृपा है। वैसे तो इसके पढ़ने-पढ़ाने वाले कुछ एक हुए परन्तु वास्तविक फल मुझे ही मिला। इस वेद ने मुझे भारत के कोने-कोने विद्वान् एवं धनीमानी राजा-महाराजाओं से मिलाया है।" रटाटेजी ने बड़ी निष्ठा तथा लगन के साथ अथर्ववेद का अध्यापन कर वैदिकों में अपनी अक्षुण्ण कीर्ति का उपार्जन किया।

ऋग्वेद सम्पादन में साहाय्य

ऋग्वेद का अध्ययन तो इन्होंने सबसे पहिले ही किया था। पूरा ऋग्वेद इन्हें कण्ठाग्र था। प्रसिद्ध वैदिक पण्डित 'श्रीपाद दामोदर सातवलेकर' ने ऋग्वेद के सम्पादन में इनका बहुमूल्य साहाय्य लिया था। काशी से इन्हें अपने पास औंध में बुलाया और अपनी संस्था 'स्वाध्याय मण्डल' से प्रकाशमान ऋग्वेद के संशोधन में वह साहाय्य नितान्त उपयोगी सिद्ध हुआ। ऋग्वेद का हर एक मन्त्र मानों रटाटेजी के सामने साक्षात् विग्रह धारण कर उपस्थित हो जाता था। इनकी प्रतिभा से सातवलेकरजी उस समय विशेषरूपेण चमत्कृत हो गए जब इन्होंने मैक्समूलर के द्वारा संशोधित अथ च नितान्त विशुद्ध माने गये ऋग्वेद में छः स्थानों पर अशुद्धियों का निर्देश किया। ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में विशुद्ध पद हैं—स्पन्द्र जिसे मैक्समूलर ने 'स्यन्द्र' के रूप में स्वीकारा है। ऋग्० १।१८०।९ में 'प्र स्यन्द्रा माथो मनुषो न होता' पाठ अशुद्ध है (मैक्समूलर का), शुद्ध पाठ है 'प्र स्पन्द्रा माथो' (सातवलेकर का)। इसी तरह ऋग्० १।१८१।५ में मैक्समूलर का पाठ है—'मथ्ना रजांसि' जबकि शुद्ध वैदिक पाठ है—'मथ्रा रजांसि'। रामचन्द्र रटाटेजी की कृपा से ही ये विशुद्ध पाठ सातवलेकरजी के ऋग्वेदीय संस्करण में अपनी उपस्थिति से शोभा बढ़ा रहे हैं। वेदमूर्ति रटाटेजी का जीवन वस्तुतः वेदमय जीवन था। वेद ही उनके एकमात्र उपास्य थे तथा उनके ही संरक्षण एवं प्रचारण में उन्होंने अपना सुदीर्घ जीवन बिता दिया।

रटाटे जी की वैदिक वैदुषी का साक्षात् परिचय लेखक को उस समय मिला जब उन्हें अपने मित्र पं० बटुकनाथ शर्मा के निवास स्थान पर वसन्त पूजा का संचालन करते हुए देखा। पं० बटुकनाथजी प्रतिवर्ष अपने निवास स्थान कालभैरव) पर वसन्तपूजा की व्यवस्था करते थे। यह वसन्तपूजा नियमित रूप से समग्र वेदों का पारायण सम्पादन करती हुई अनेक दिनों तक चलती थी। इसका संचालन रटाटेजी के ही हाथ में था। रटाटेजी ने अपनी शाखा ऋग्वेद के पारायण में स्वयं उपस्थित होकर सबको चमत्कृत कर दिया था। सामगायन के भी वे मधुर गायक थे। पूछने पर उन्होंने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक को बतलाया था कि उन्होंने यह गायन केरल के सामवेदीय वैदिकों की कृपा से प्राप्त की है। घटना इस प्रकार वे बतलाते थे। पं० गङ्गाधर शास्त्री तैलंग ने जब श्रौत्र याग कराने का उपक्रम किया, तब काशी के गुजराती सामवेदियों ने उसमें सहयोग देने से अस्वीकार कर दिया। फलतः उन्होंने दक्षिण भारत से सुयोग्य सामवेदी बुलाकर काशी के नवयुवक वैदिकों को सामगायन की शिक्षा दिलाई। यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले जितने साम मन्त्र थे उन्हीं की शिक्षा अत्यावश्यक होने के कारण उस समय दिलाई गई थी। उस व्यवस्था का फल यह हुआ कि महाराष्ट्रीय वैदिकों में साम गायन का प्रचलन हो गया। रटाटे जी अपने सहयोगी महाराष्ट्रीय वैदिकों के साथ जब साम गायन करते थे तब वह इतना व्यवस्थित तथा मधुर होता था कि श्रोताओं के हृदय गदगद् हो जाते थे। लेखक ने उससे अधिक मधुर सामगायन कहीं नहीं सुना। इस प्रकार ऋग्, साम तथा अथर्व इन तीनों का विधिवत् ज्ञान सम्पादन करने वाले रामचन्द्र शास्त्री रटाटे की विद्या बुद्धि की तथा अद्भुत स्मरण-शक्ति की जितनी प्रशंसा की जाय वह न्याय्य ही प्रतीत होगी। यही कारण था कि संस्कृत विश्वविद्यालय के प्रथम कुलपति डा० आदित्यनाथ झा ने इनको अपने विश्वविद्यालय का संभानित प्राध्यापक बनाकर इन्हें यावज्जीवन २००) रुपये की वृत्ति प्रदान की थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशी की पाण्डित्य परम्परा

मूर्धन्य विद्वानों

के

चित्र

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

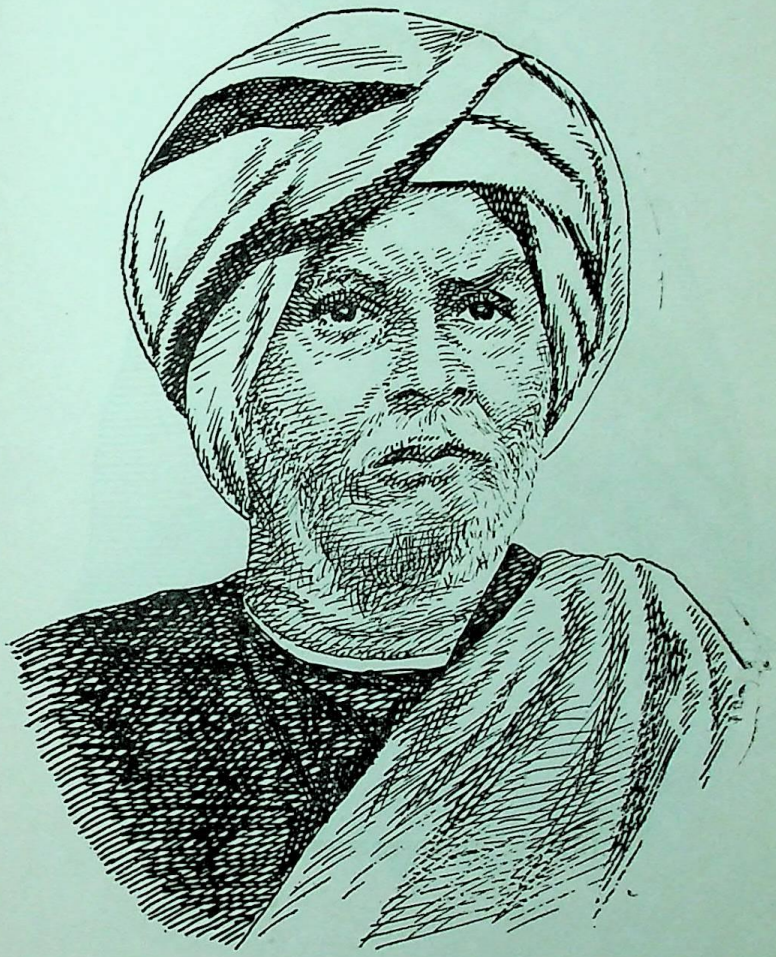

चित्र १: पं० राजाराम शास्त्री

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

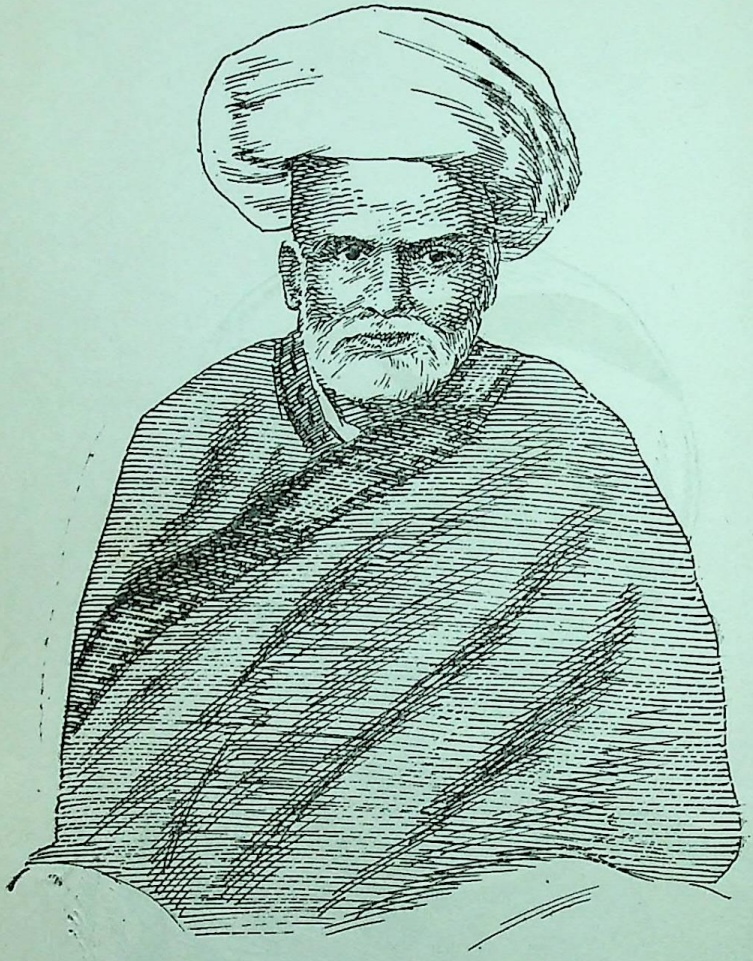

चित्र २ : पं० बापूदेव शास्त्री

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

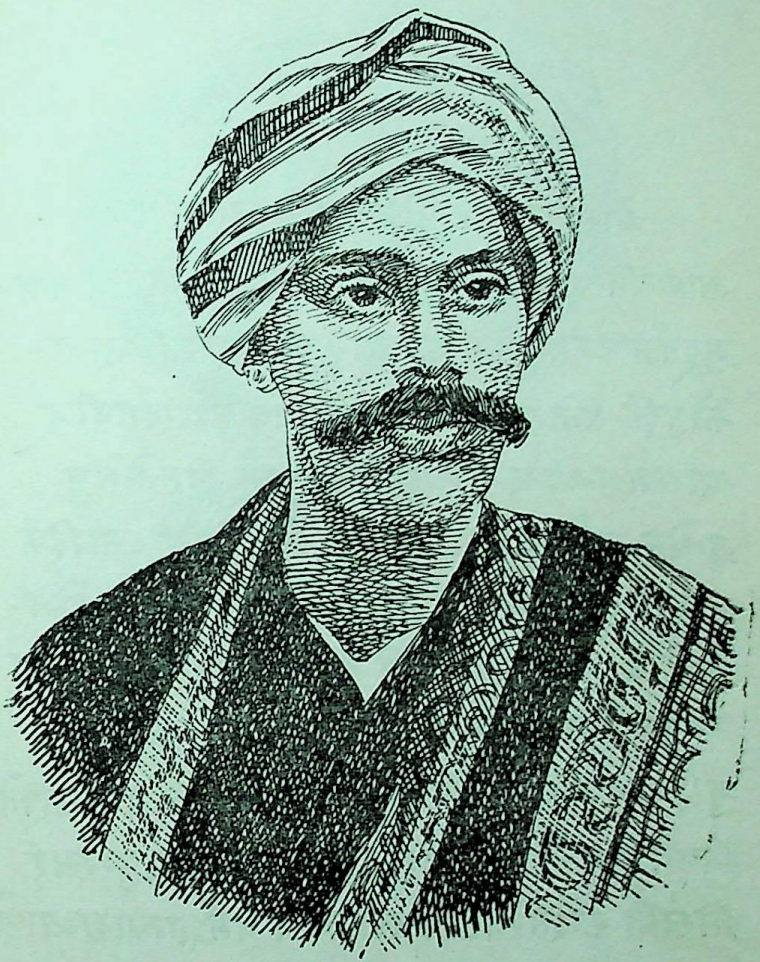

चित्र ३ : पं० बाल शास्त्री

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीः

ओ झोपाख्यः श्रीयुतठाकुरशर्मपण्डितः
काव्यानि रघुवंशमाघनैषधप्रभृतीनि ज्योतिषे प्रश्न-
मुहूर्तजातकादिसंबन्धिग्रन्थान् व्याकरणे सिद्धान्त-
कौमुदीं मनोरमाशब्दरत्नपरिभाषे दुशेखरादीन्
व्याख्याग्रन्थांश्च सम्यक् पठितवान् निरुक्तेष्वेषु
ग्रन्थेषु वर्णनीयतमाऽस्य व्युत्पत्तिर्यदेतत्पाठनादिकं
साध्वयं कर्तुं प्रभवति शक्नोति चापठितानपि योज-
यितुं श्रीमद्भागवतादीनि कठिनतराण्यपि पुराणा-
न्यनायासेन व्याख्यातुं क्रमते सुशीलः कुलीनो
बुद्धिमान् प्रामाणिकोयमित्येतस्मिन्सर्वस्मिन्निरूपिते
विषये मम दृढो विश्वास इत्यत्यन्तसन्तोषपुरस्सरं
लिखति काशीस्थसंस्कृतपाठालये धर्मशास्त्राद्यध्यापको

भाद्रपदसुदि ६ बुधे सं. १९३४ बालशास्त्री

चित्र ४। पं० बाल शास्त्री का हस्तलेख

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

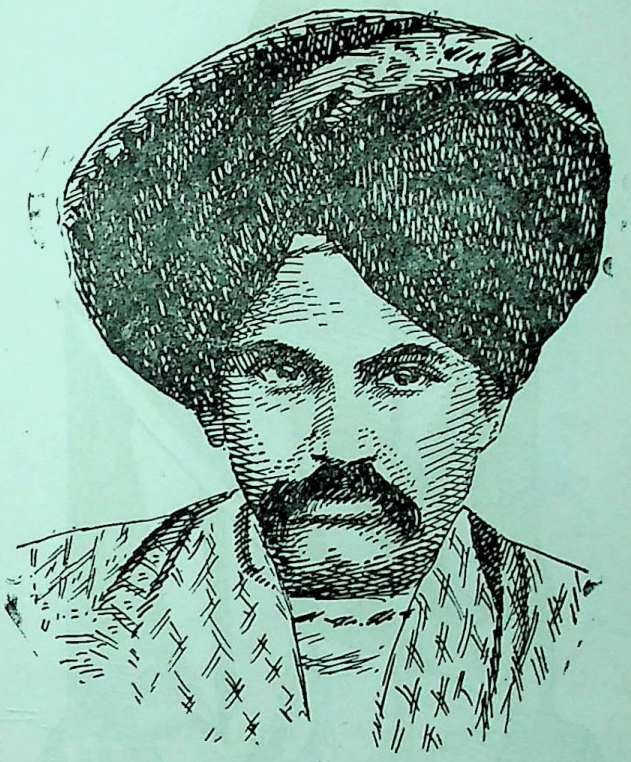

चित्र ५ : पं० शिवकुमार शास्त्री

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

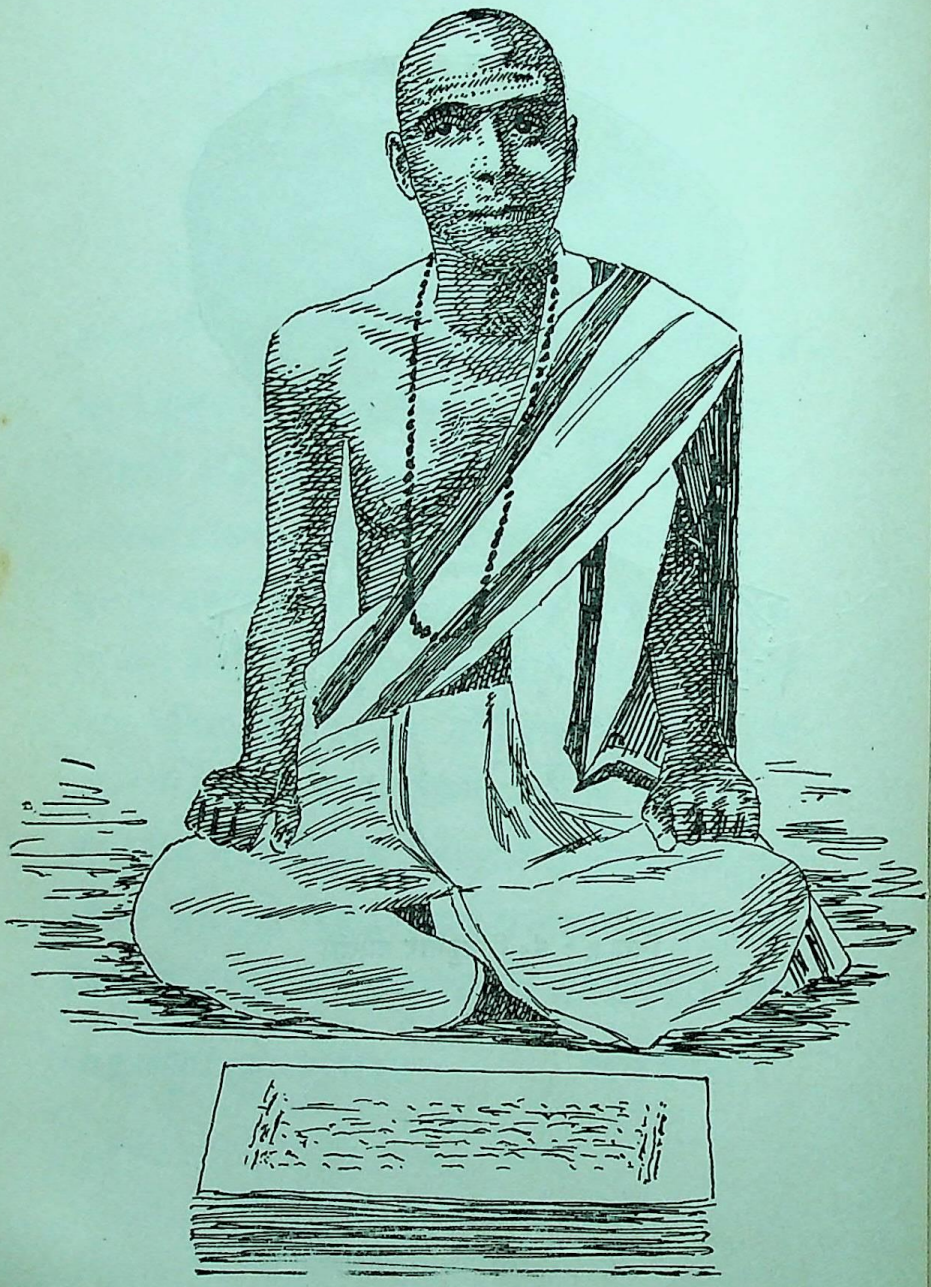

चित्र ६ : पं० गंगाधर शास्त्री

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र ७ : भारतमार्तण्ड पं० गट्टू लाल शास्त्री

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र ८ : पं० दामोदर शास्त्री

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

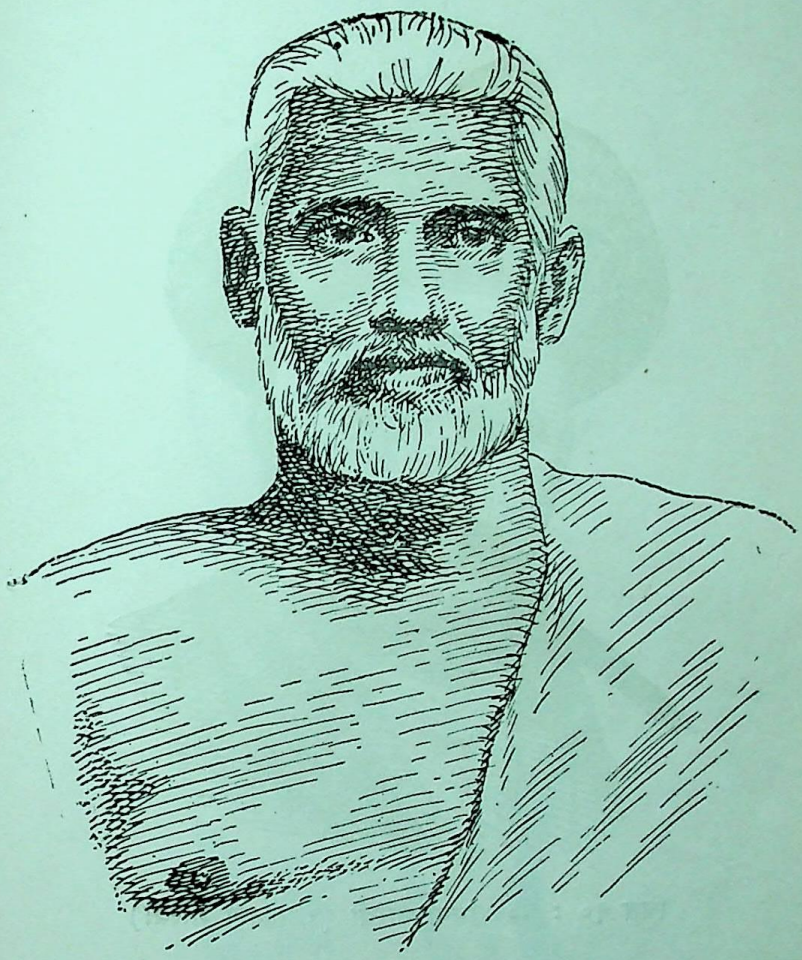

चित्र ६ : पं० बच्चा झा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र १० : पं० तात्या शास्त्री (रामकृष्ण शास्त्री)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र ११ : पं० केशव शास्त्री मराठे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र १२ : पं० सुधाकर द्विवेदी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र १३ : पं० कैलासचन्द्र शिरोमणि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

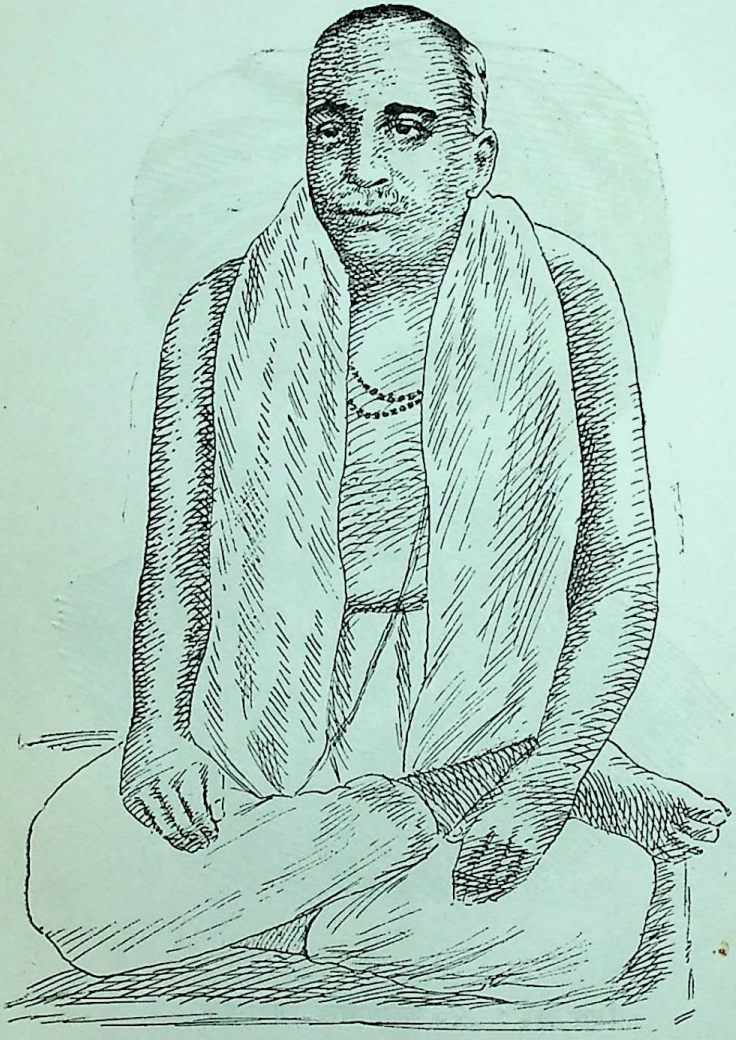

चित्र १४ : पं० राखालदास न्यायरत्न

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र १५ : पं० राममिश्र शास्त्री

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

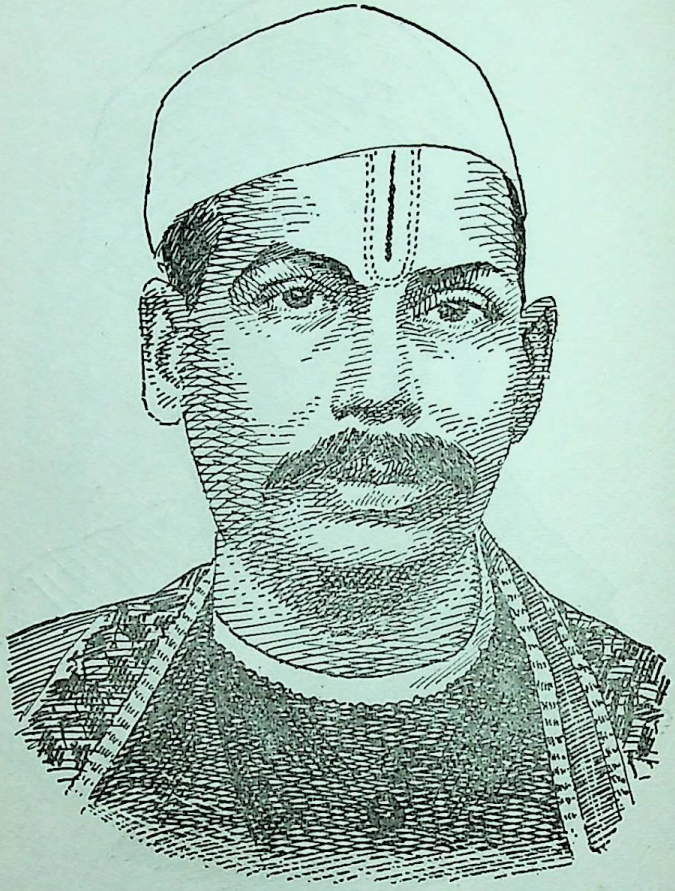

चित्र १६ : पं० अम्बिकादत्त व्यास

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

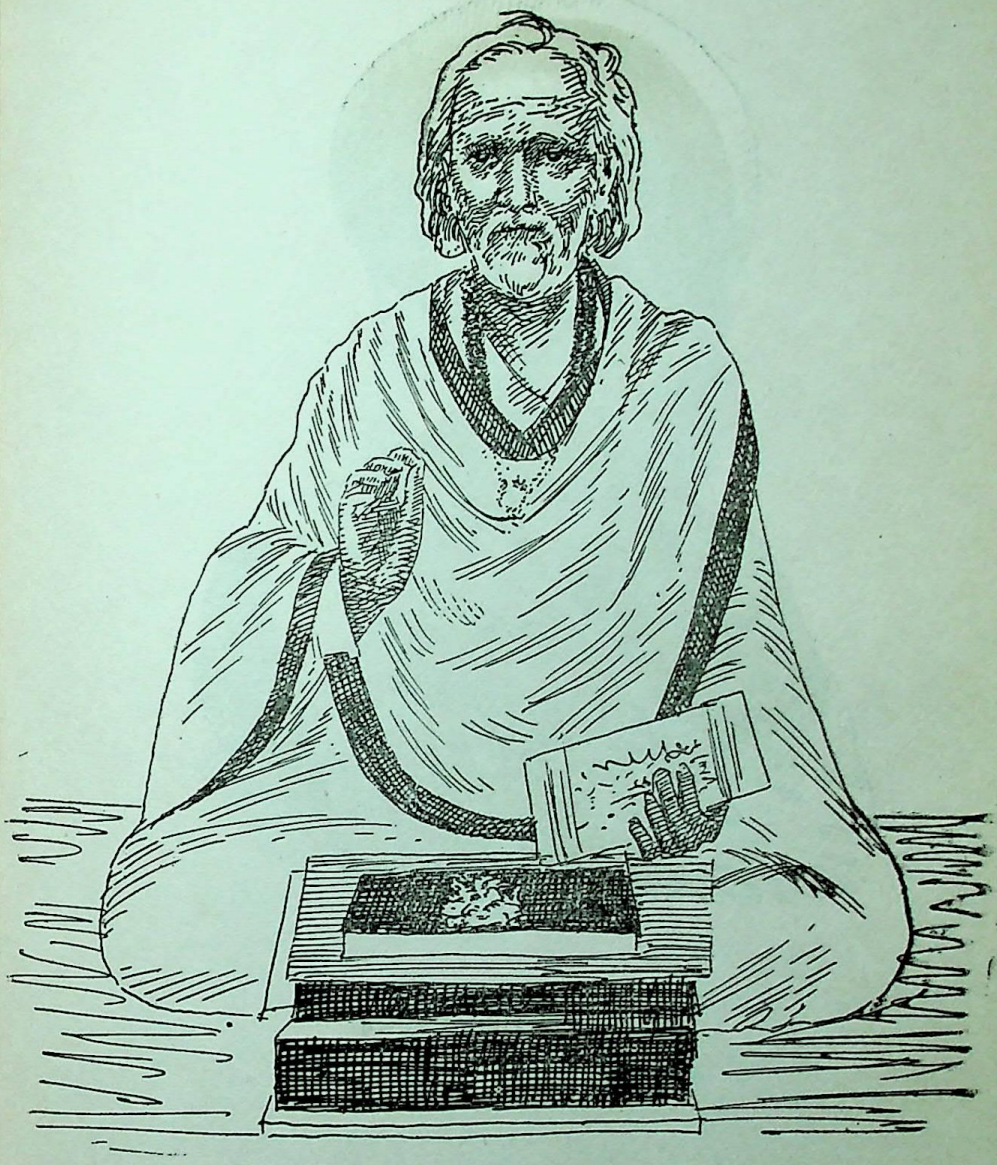

चित्र १७ : पं० रमानाथ व्यास

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र १८ : पं० रामशास्त्री तैलंग

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

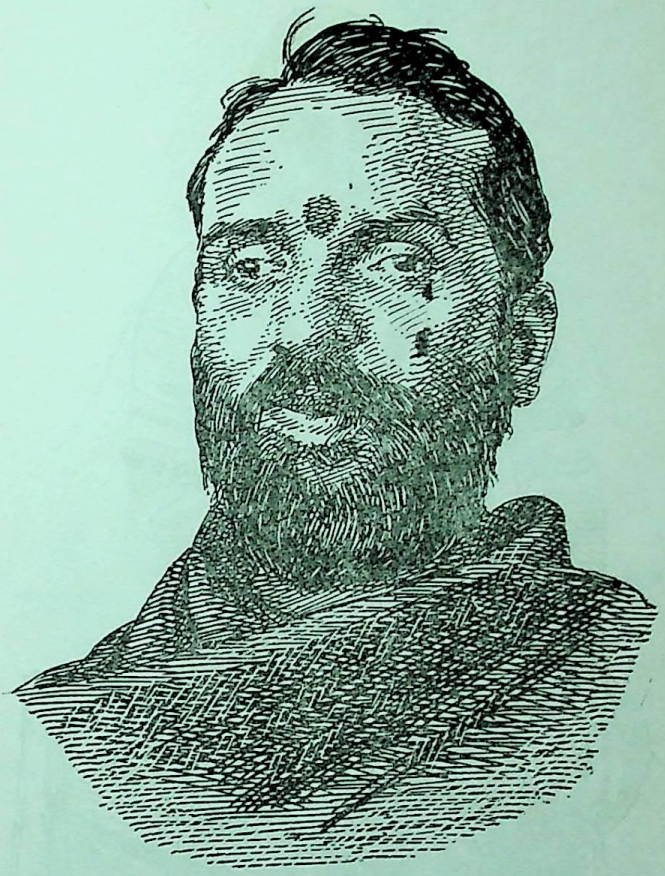

[चित्र १९ : पं० नारायण शास्त्री खिस्ते

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

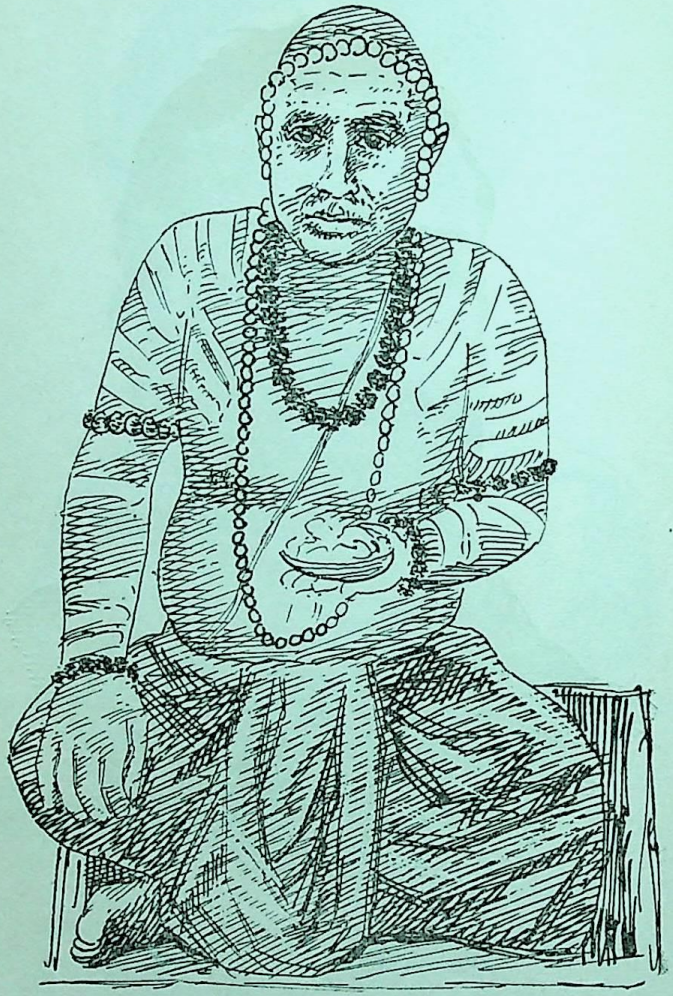

चित्र २० : पं० उमापति द्विवेदी (नकछेद दूबे)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

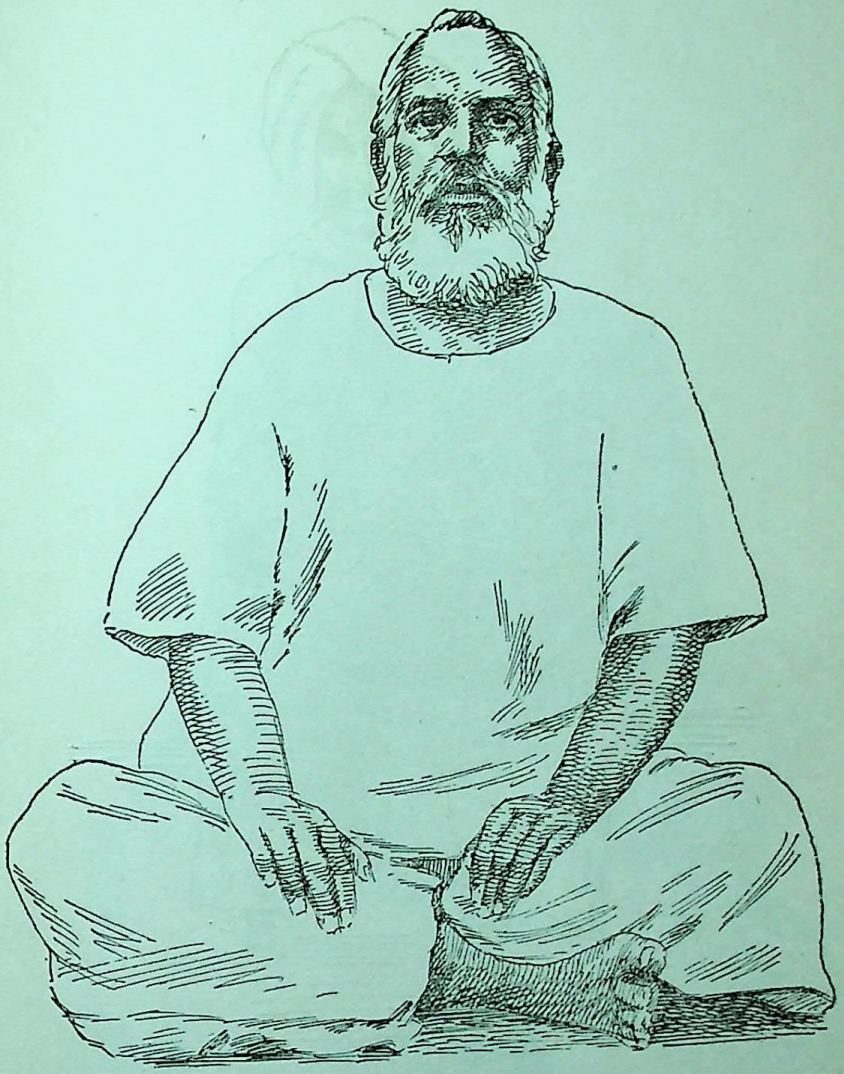

चित्र २१ : पं० काशीनाथ द्विवेदी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

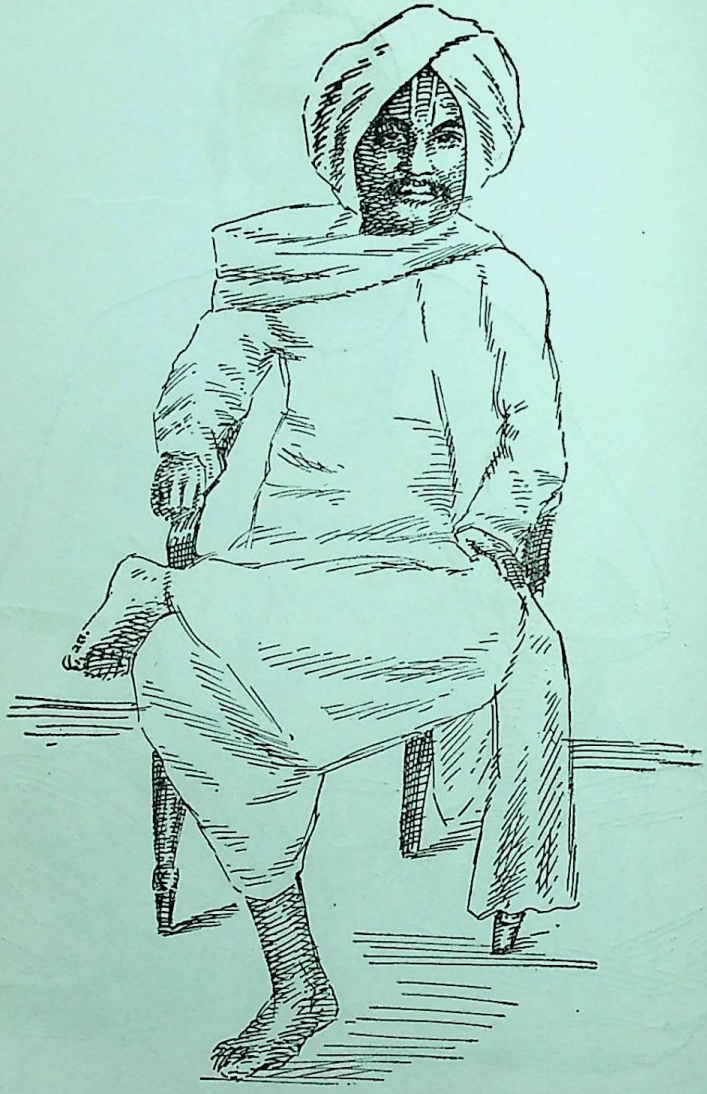

चित्र २२ : पं० रामशास्त्री भागवताचार्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

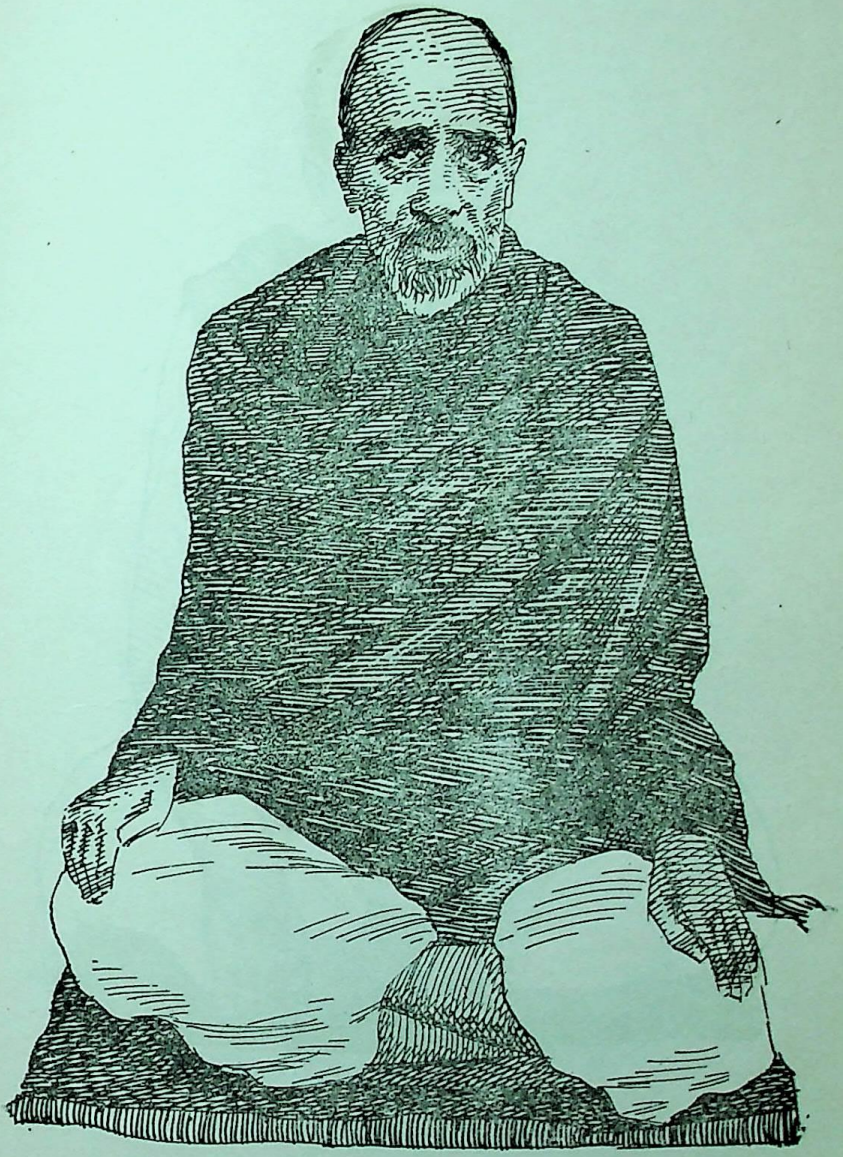

चित्र २३ : पं० नित्यानन्द पर्वतीय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

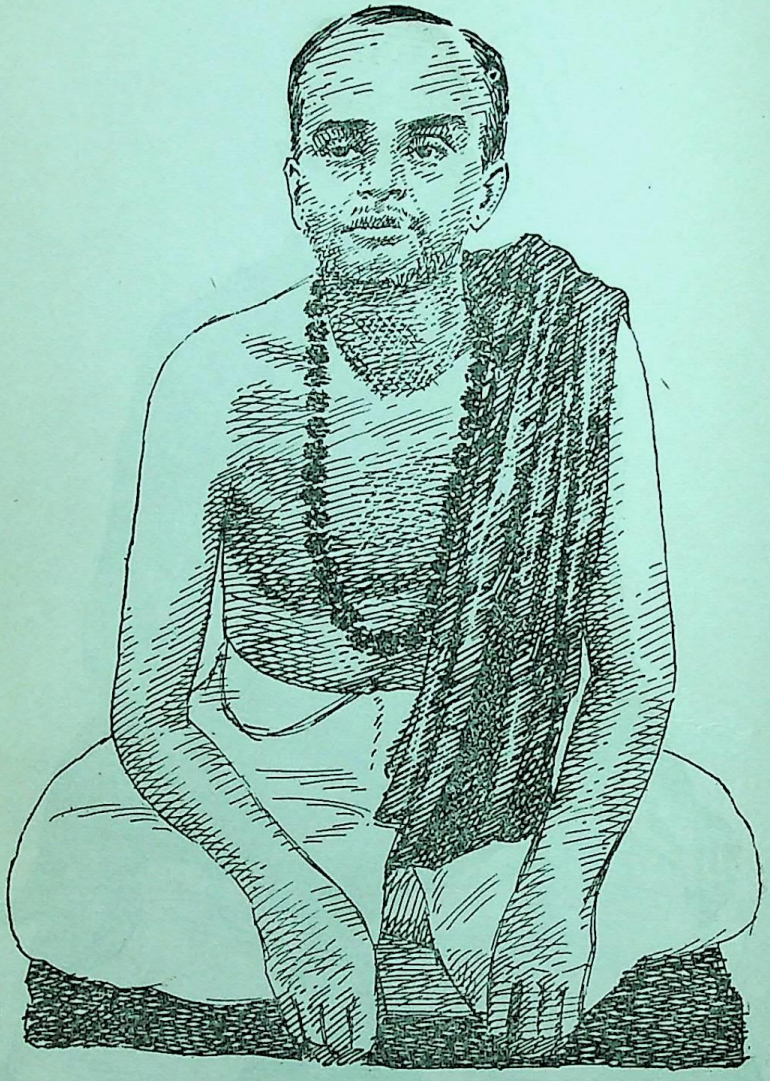

चित्र २४ : पं० वामाचरण भट्टाचार्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

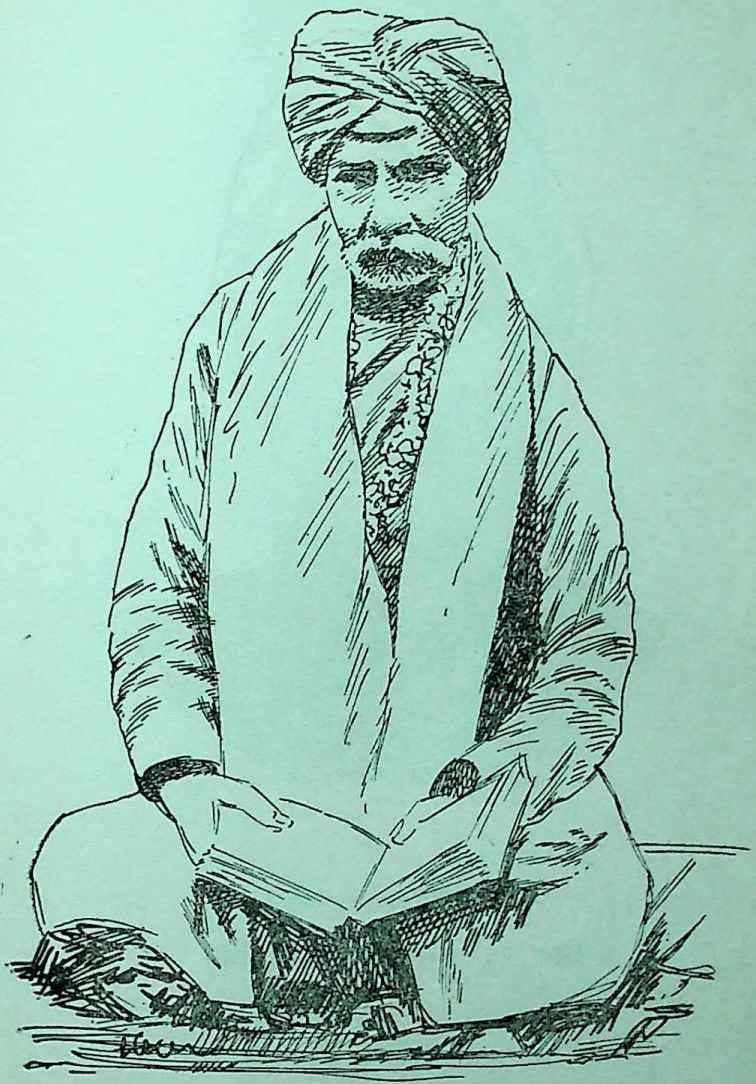

चित्र २५ : पं० चंडीप्रसाद शुक्ल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

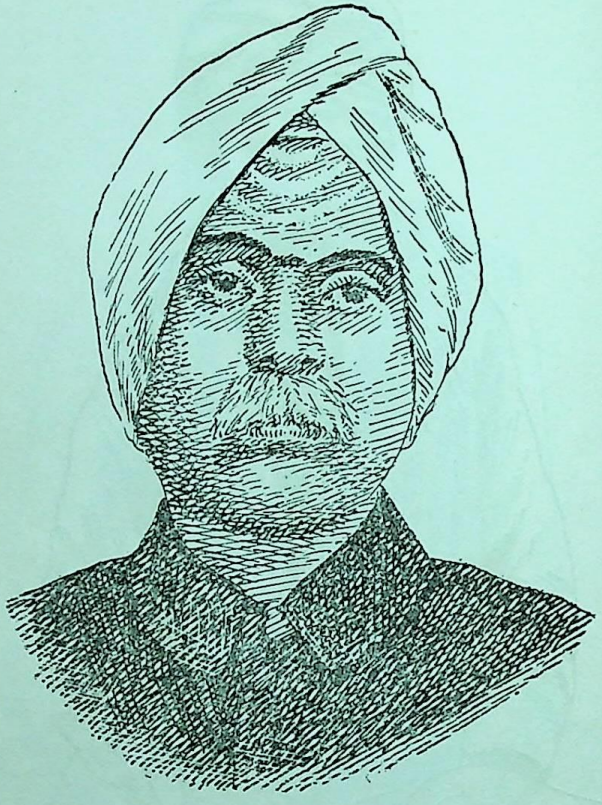

चित्र २६ : पं० लक्ष्मण शास्त्री तैलंग

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र २७ : पं० बटुकनाथ शर्मा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

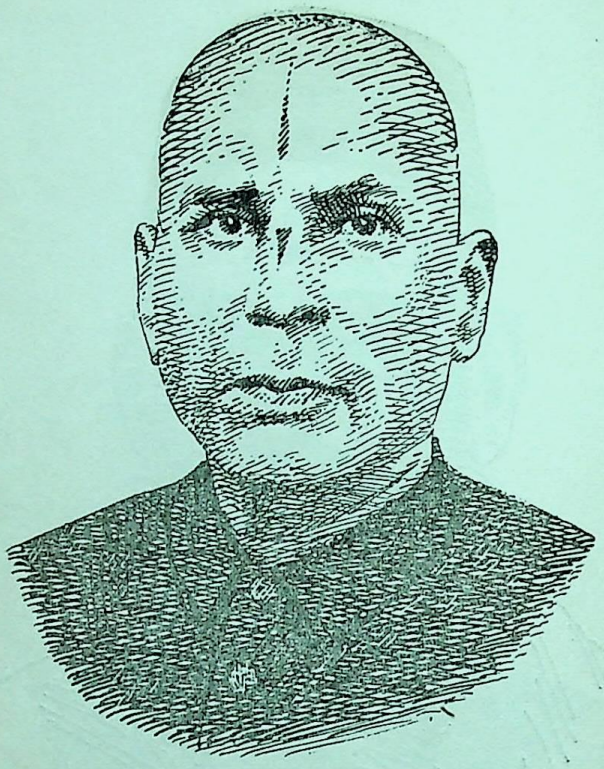

चित्र २८ : दामोदरलाल गोस्वामी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

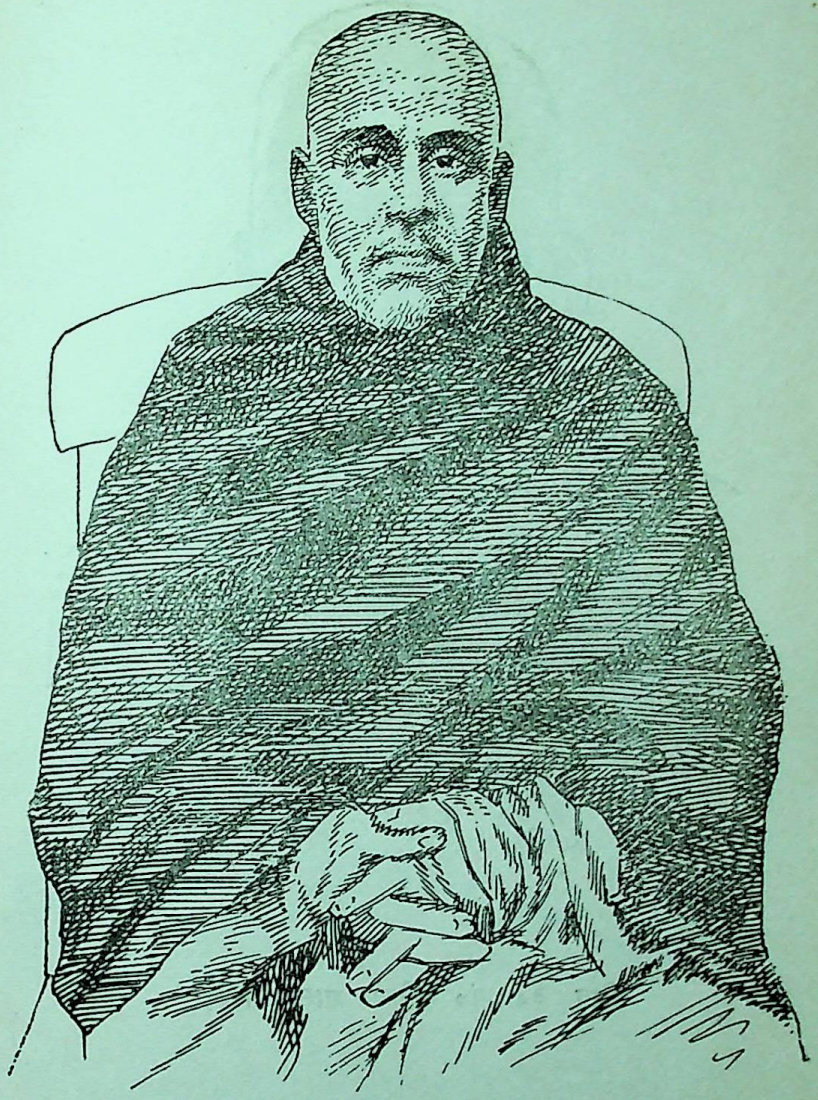

चित्र २९ : लक्ष्मण शास्त्री द्राविड़

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

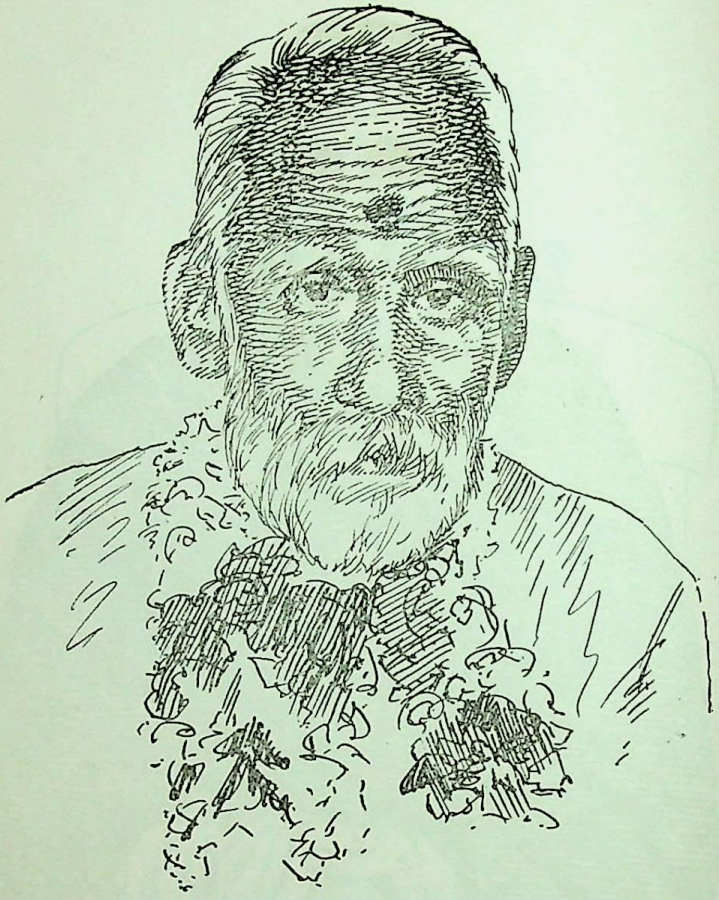

चित्र ३० : पं० राजेश्वर शास्त्री द्राविड़

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र ३१ : पञ्चानन तर्करत्न

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

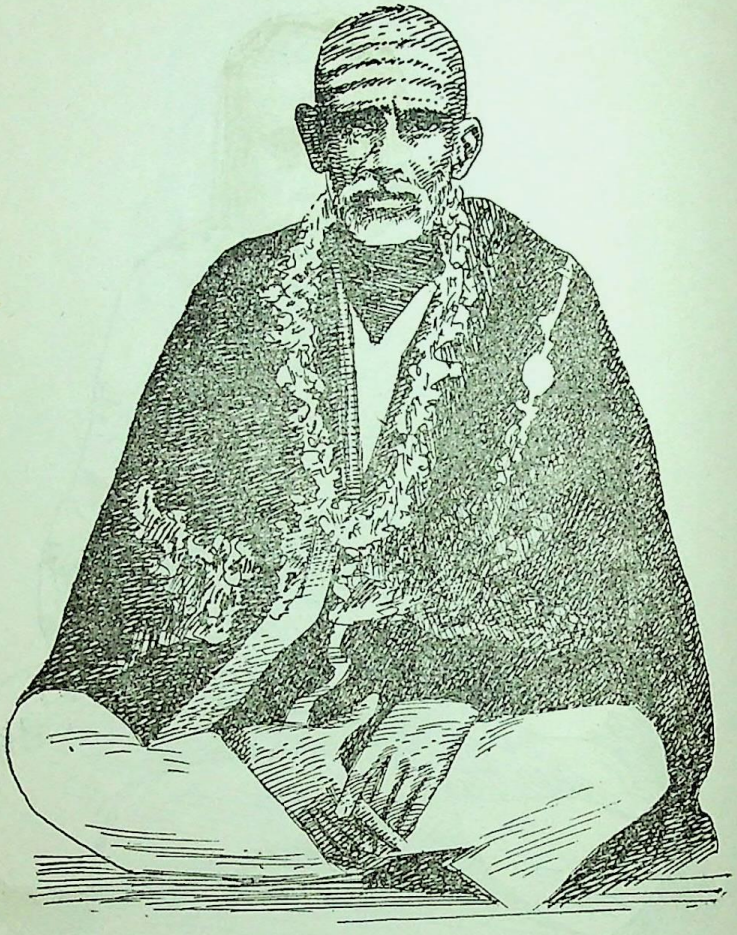

चित्र ३२ : पं० देवनारायण तिवारी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र ३३ : पं० काशीनाथ शास्त्री

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

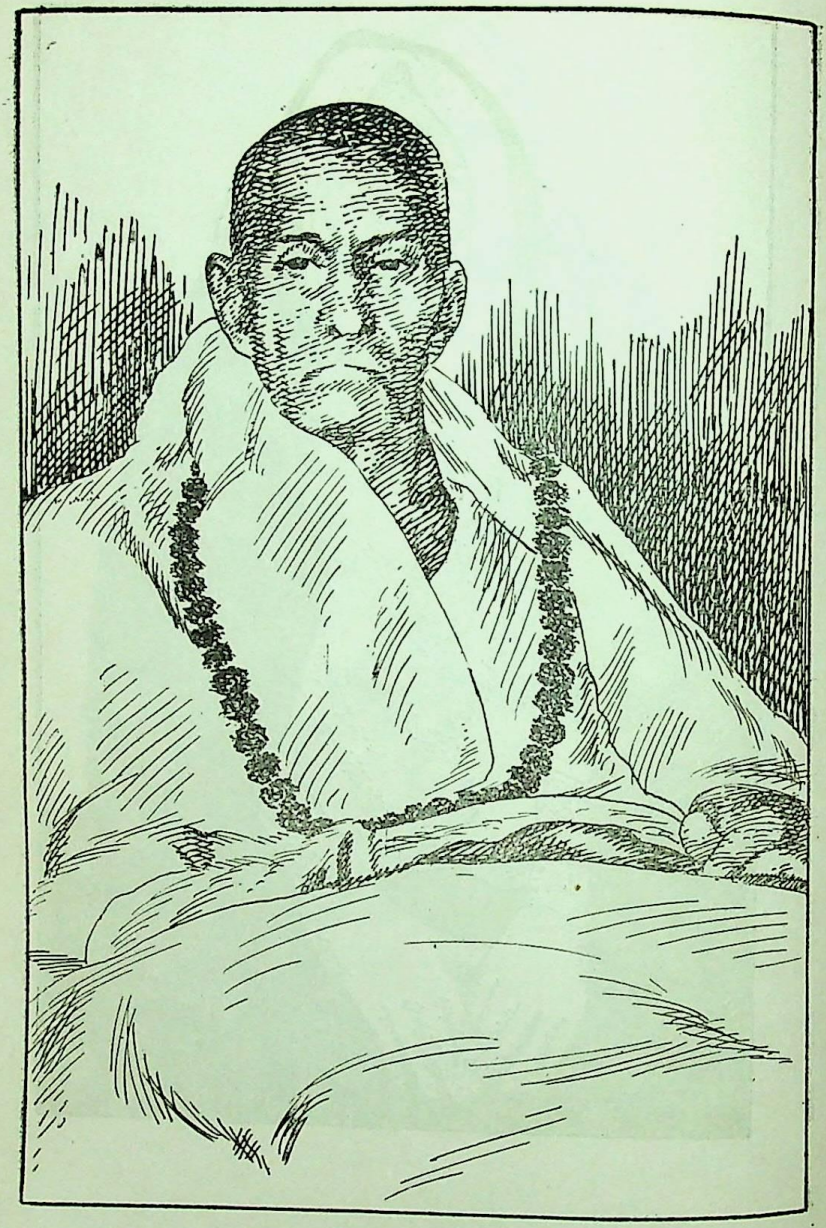

चित्र ३४ । पं० सभापति उपाध्याय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

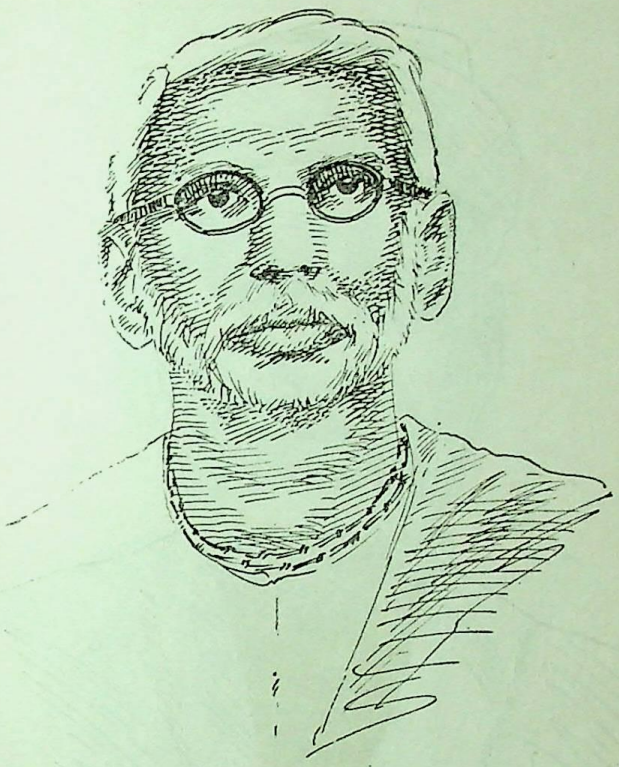

चित्र ३५ : पं० प्रमथनाथ तर्क रत्न

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र ३६ : पं० हरिहरकृपालु द्विवेदी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

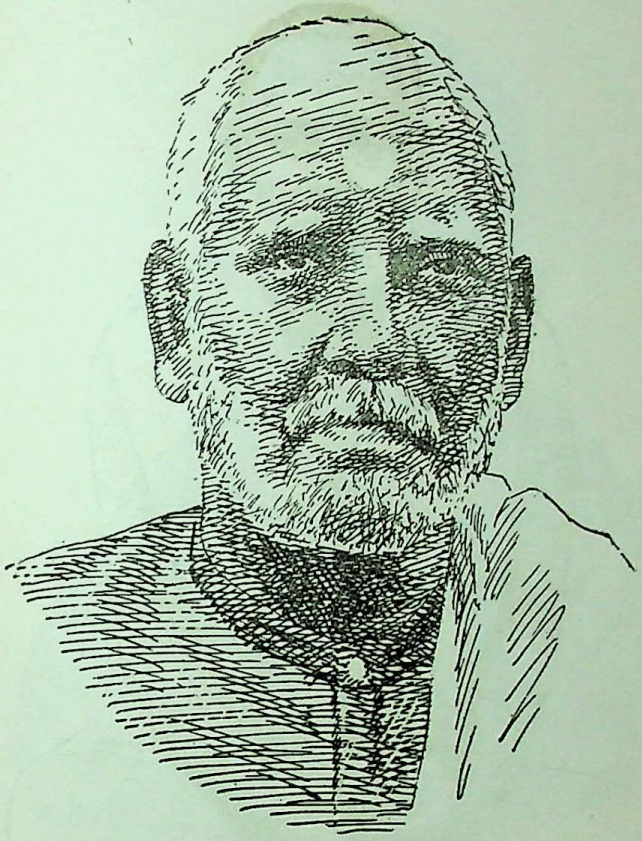

चित्र ३७ : पं० कमलाकान्त मिश्र

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

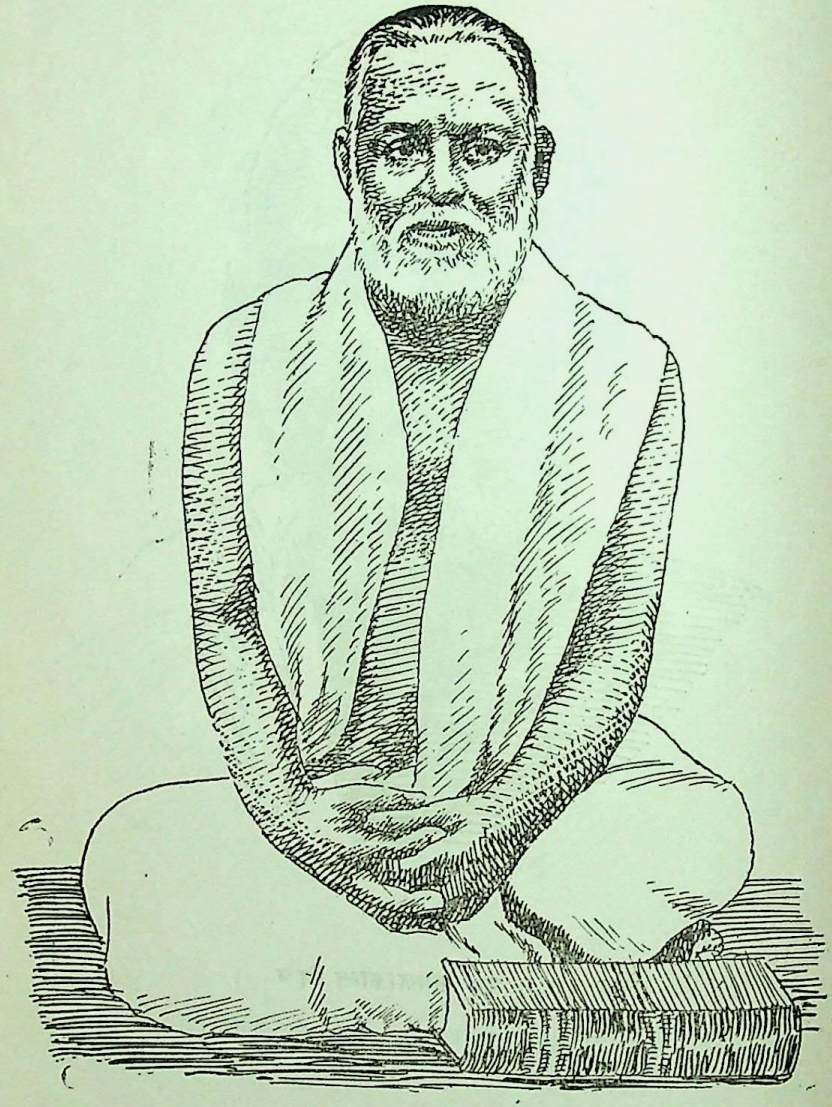

चित्र ३८ : पं० जगदेव मिश्र

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

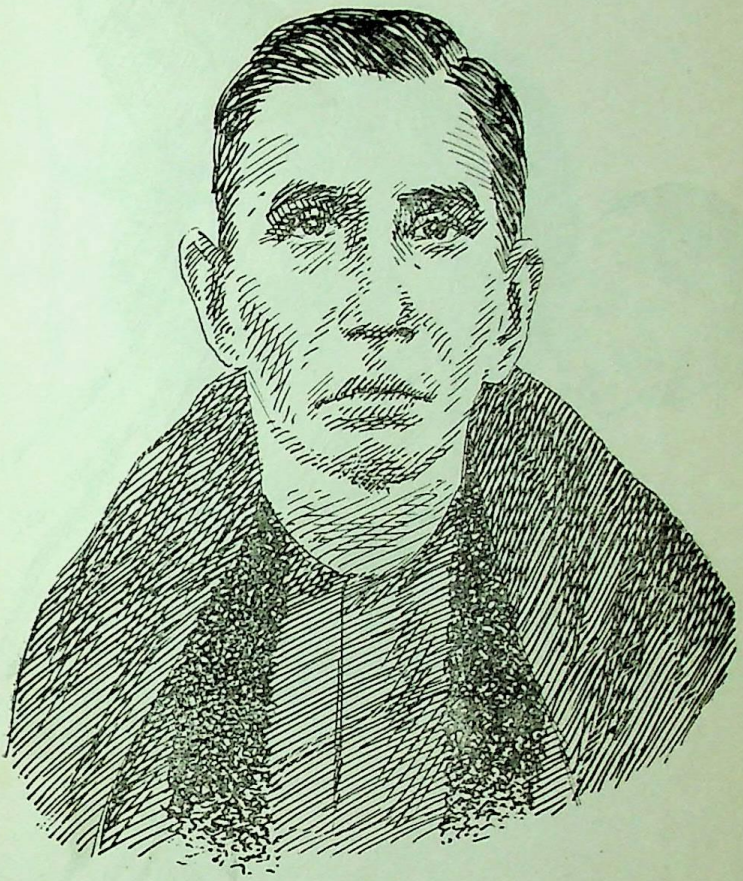

चित्र ३९ : पं० हाराणचन्द्र भट्टाचार्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र ४० :. पं० विधुशेखर शास्त्री

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र ४१ : श्री क्षितिमोहन सेन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

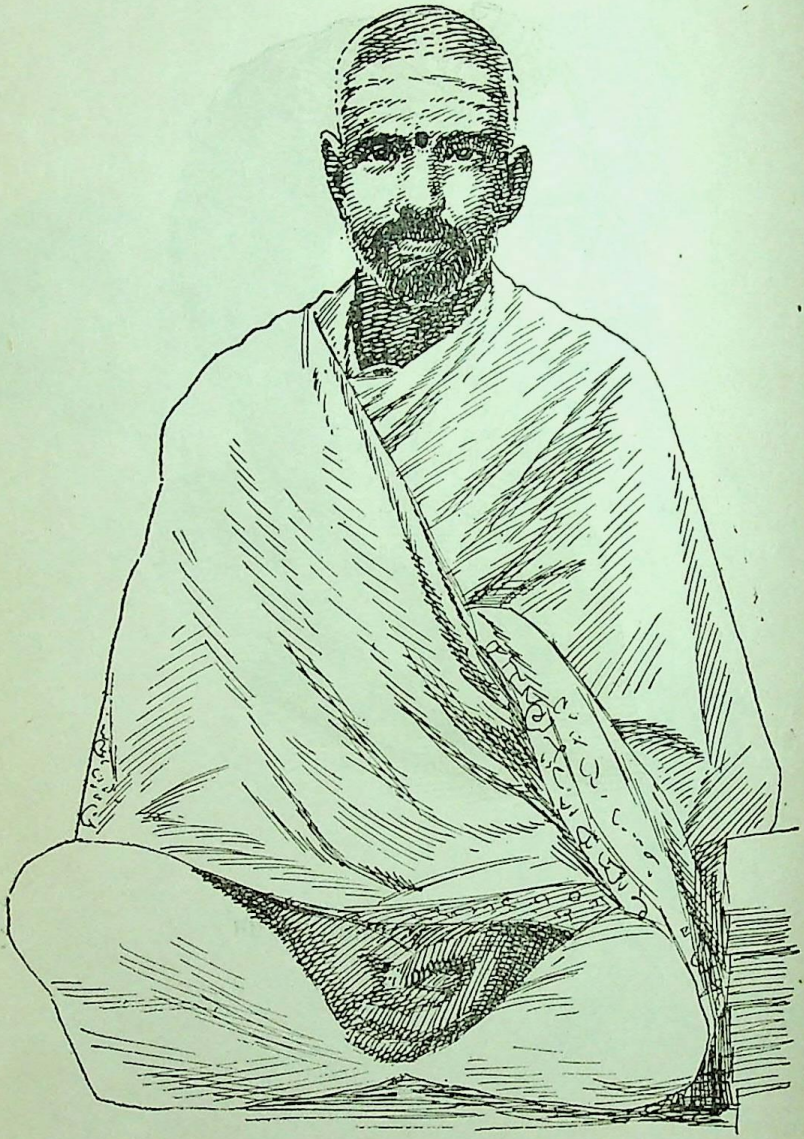

चित्र ४२ : पं० बालकृष्ण मिश्र

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र ४३ : पं० मधुसूदन ओझा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

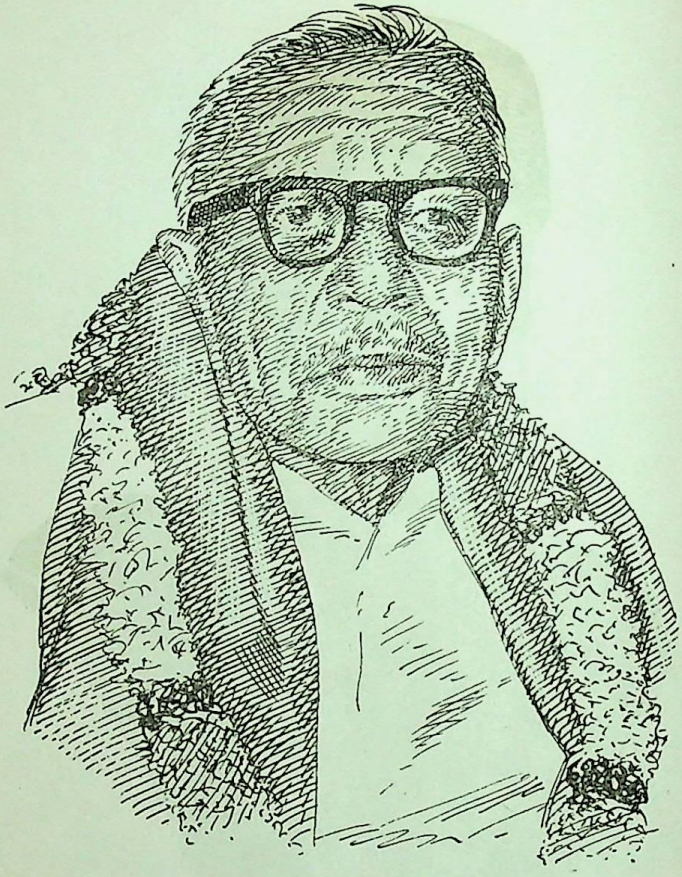

चित्र ४४ : पं० गिरधर शर्मा चतुर्वेदी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

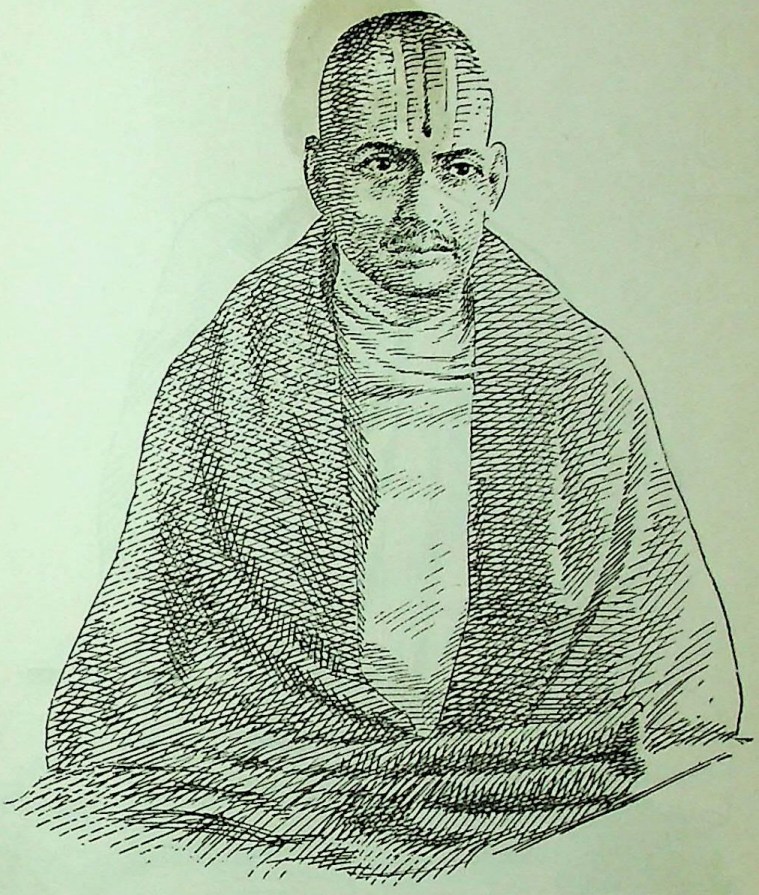

चित्र ४५ : पं० देवनायकाचार्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

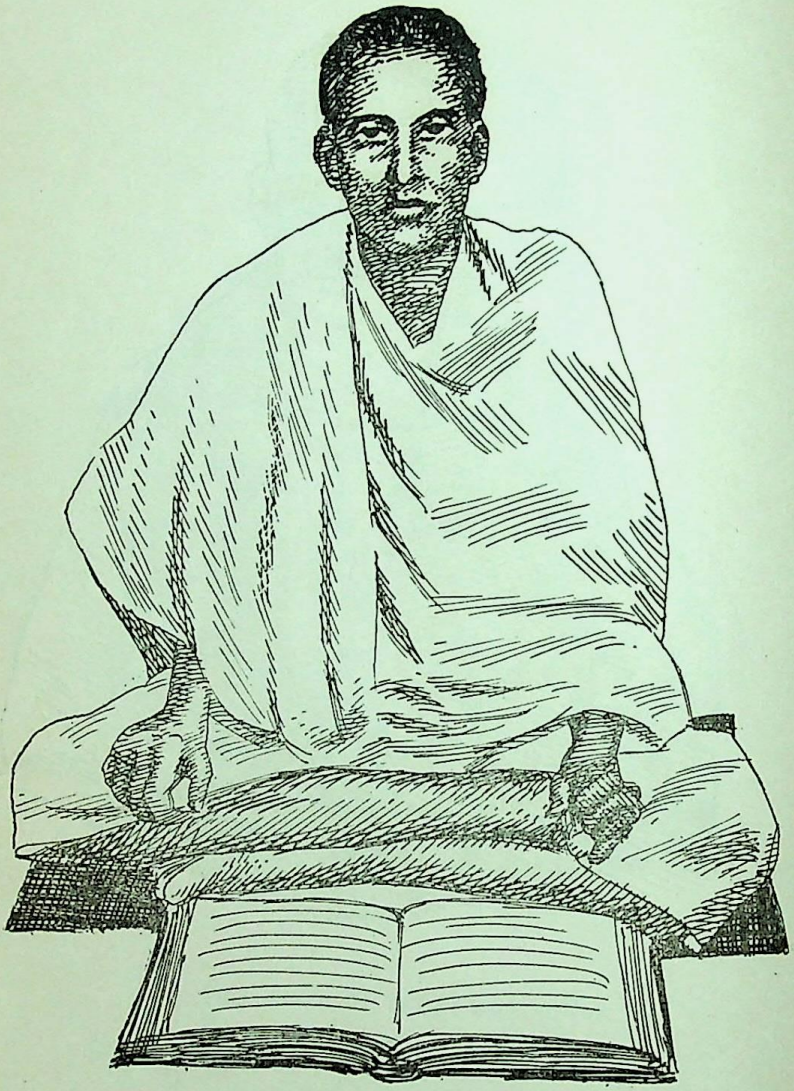

चित्र ४६ : पं० फणिभूषण तर्क वागीश

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

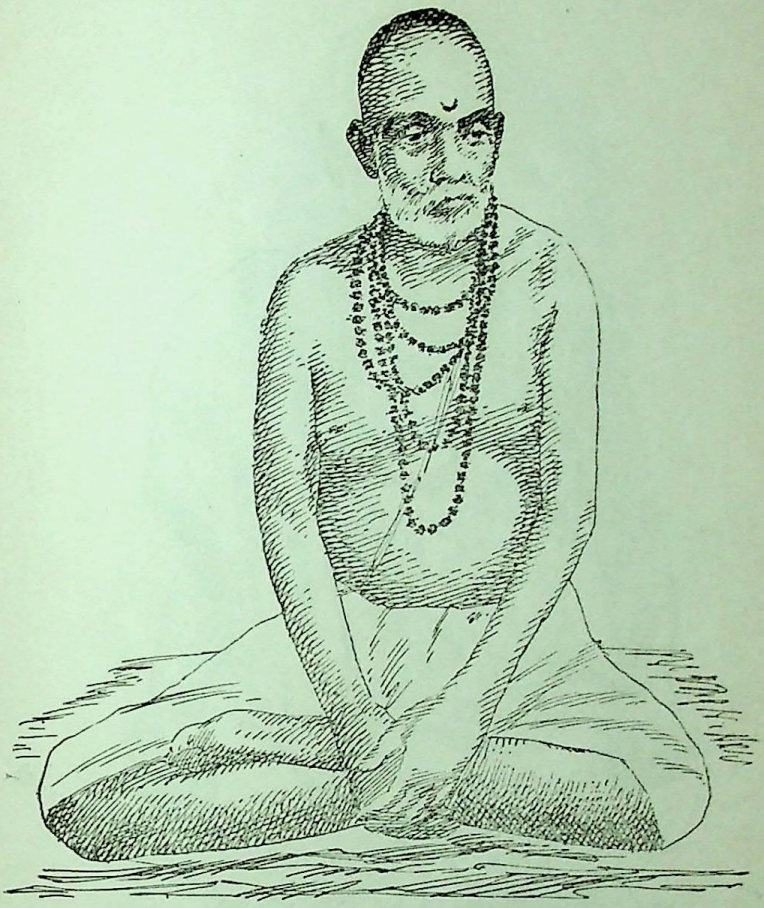

चित्र ४७ : पं० अन्यदाचरण तर्कचूड़ामणि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र ४८ : पं० चिन्नस्वामी शास्त्री

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

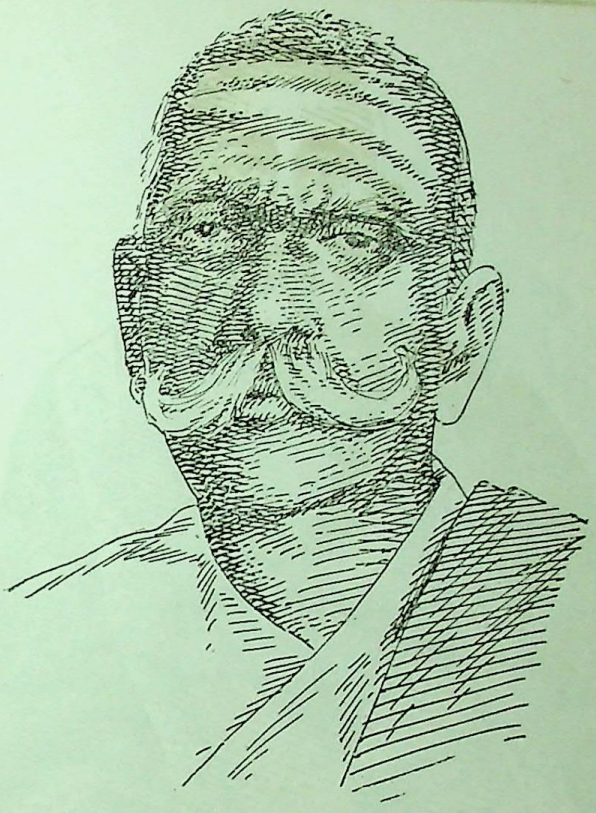

चित्र ४६ : पं० सत्यनारायण शास्त्री

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

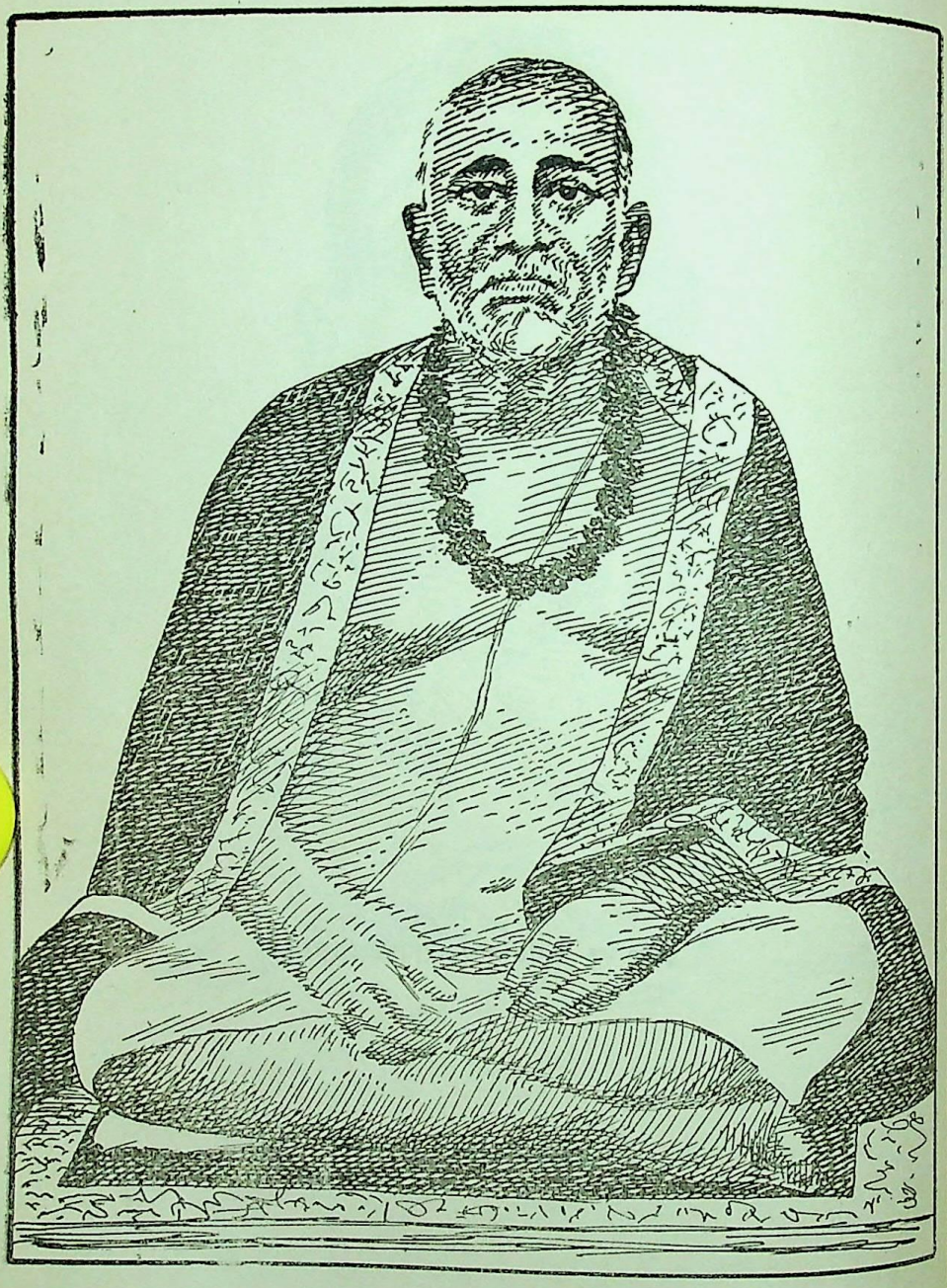

चित्र ५० : पं० त्र्यम्बक शास्त्री

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

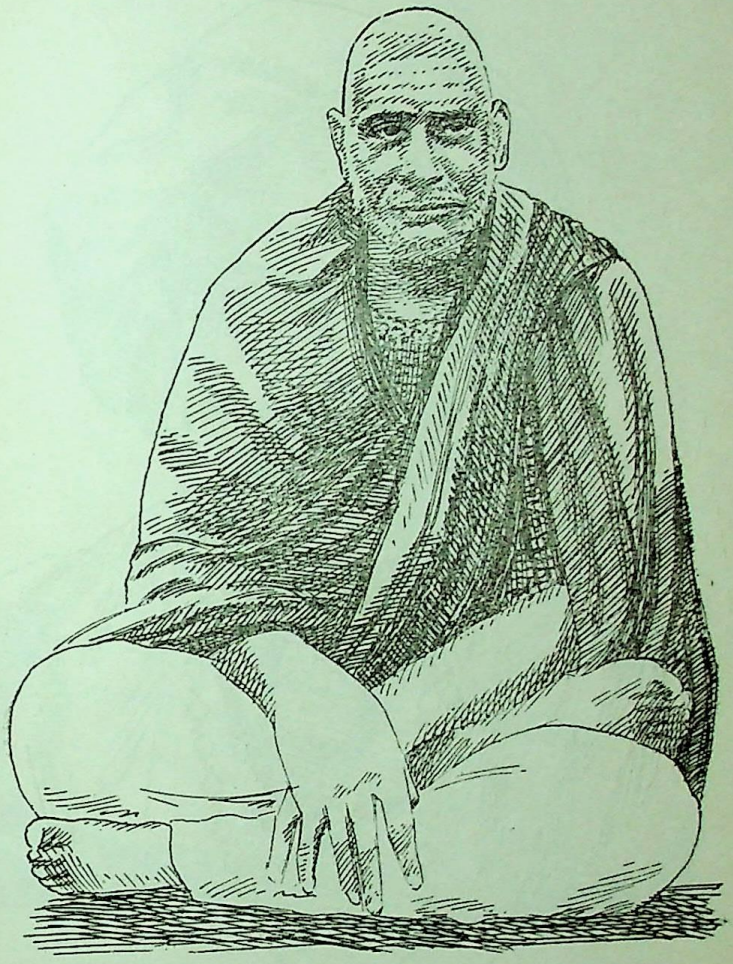

चित्र ५१ : पं० प्रभुदत्त अग्निहोत्री

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

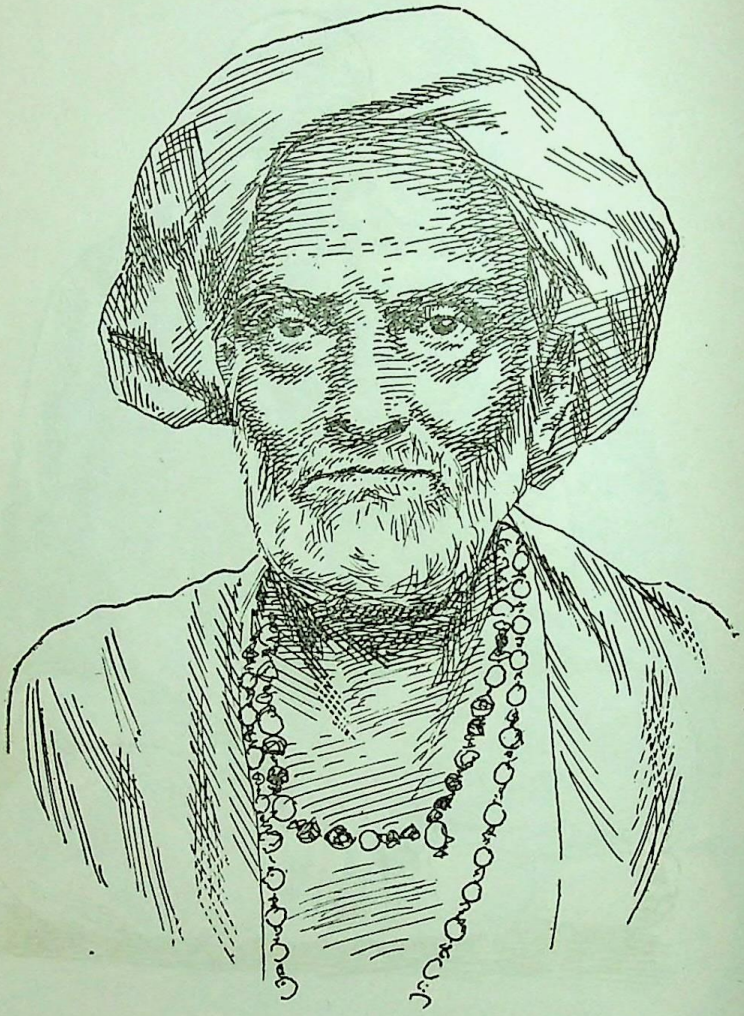

चित्र ५२ : पं० रामचंद्रशास्त्री रटाटे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

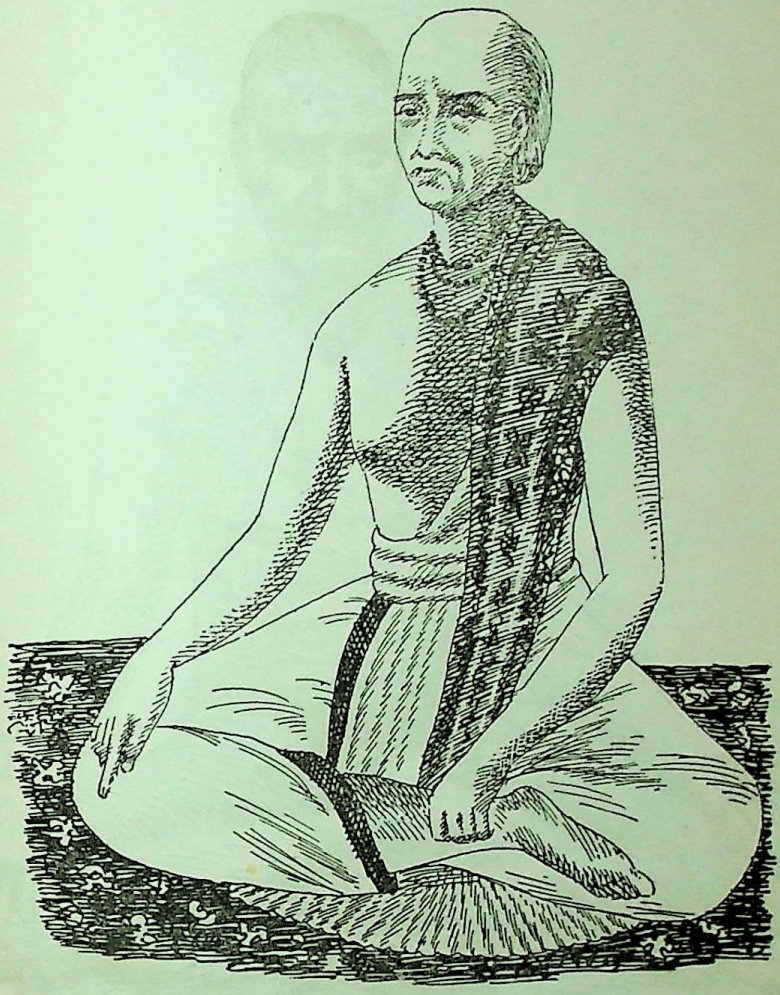

चित्र ५३ : पं० कृपाकृष्ण जानी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

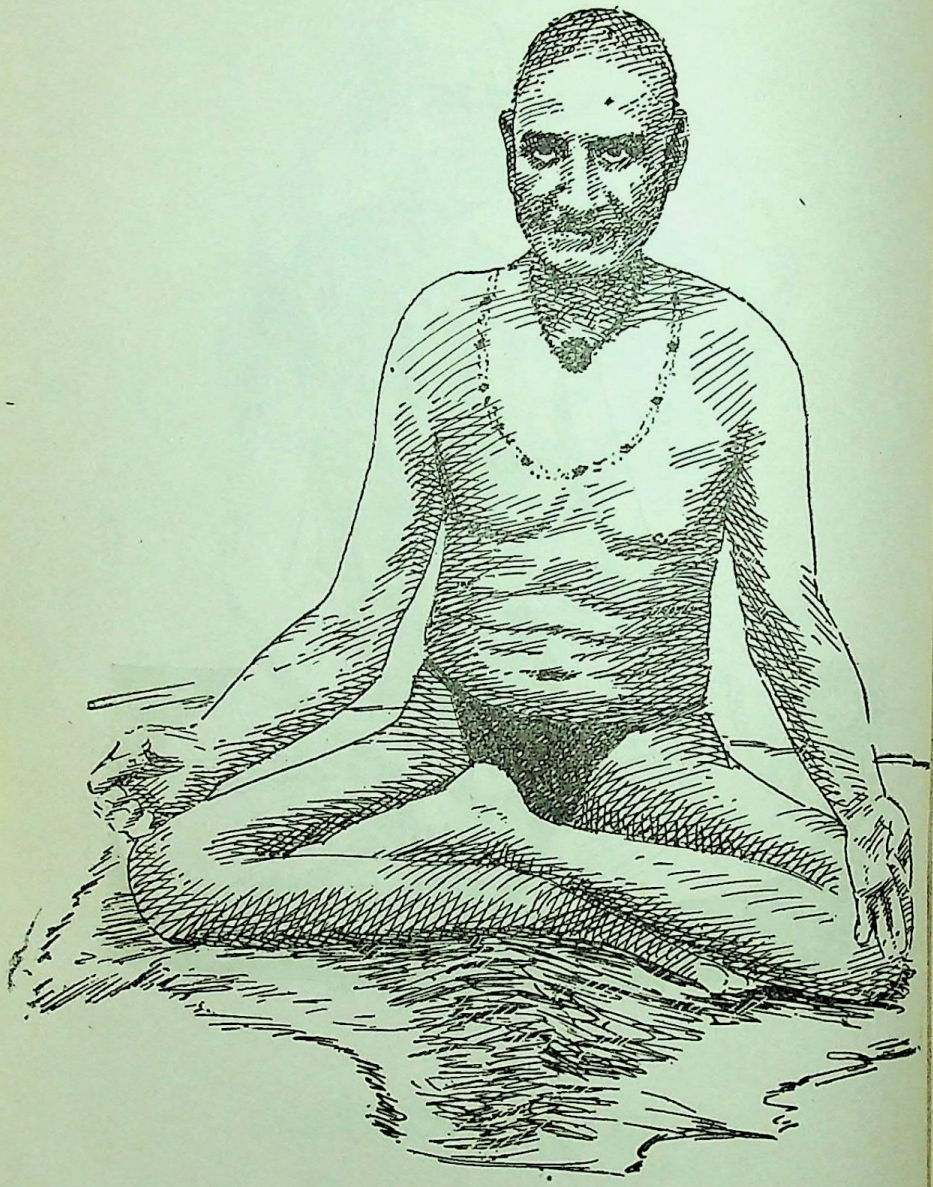

चित्र ५४ : पं० देवाश्रम स्वामी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

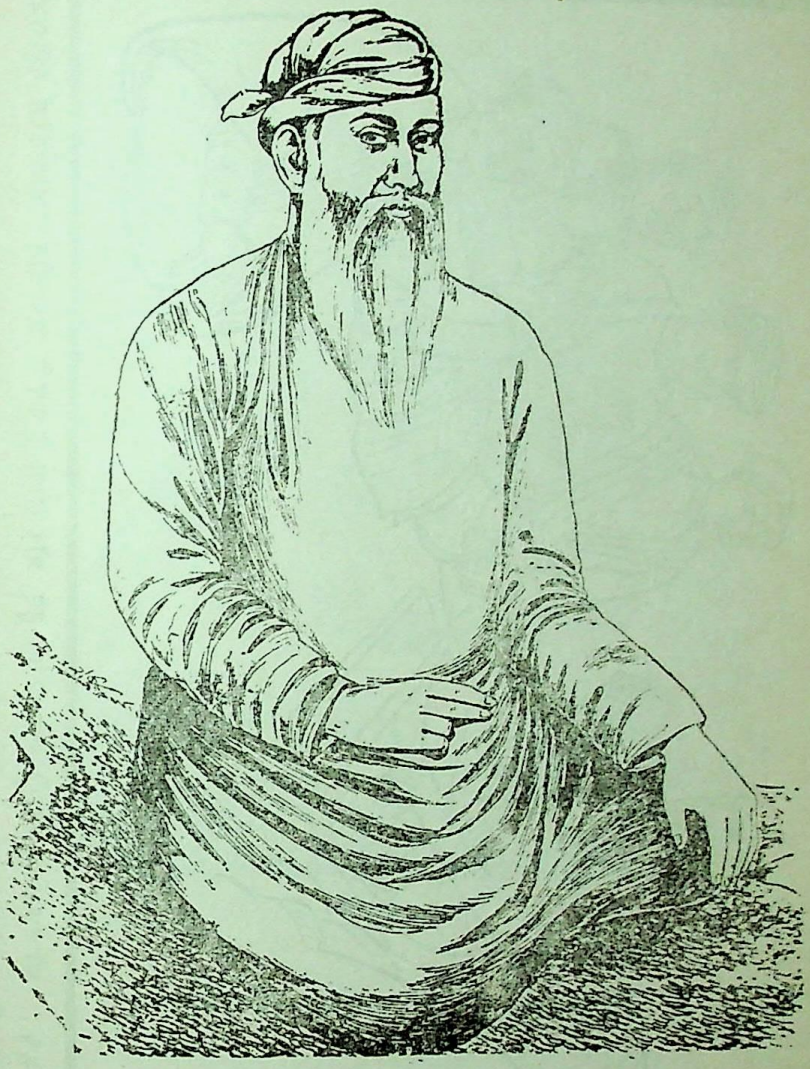

चित्र ५५ : काष्ठजिह्व स्वामी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

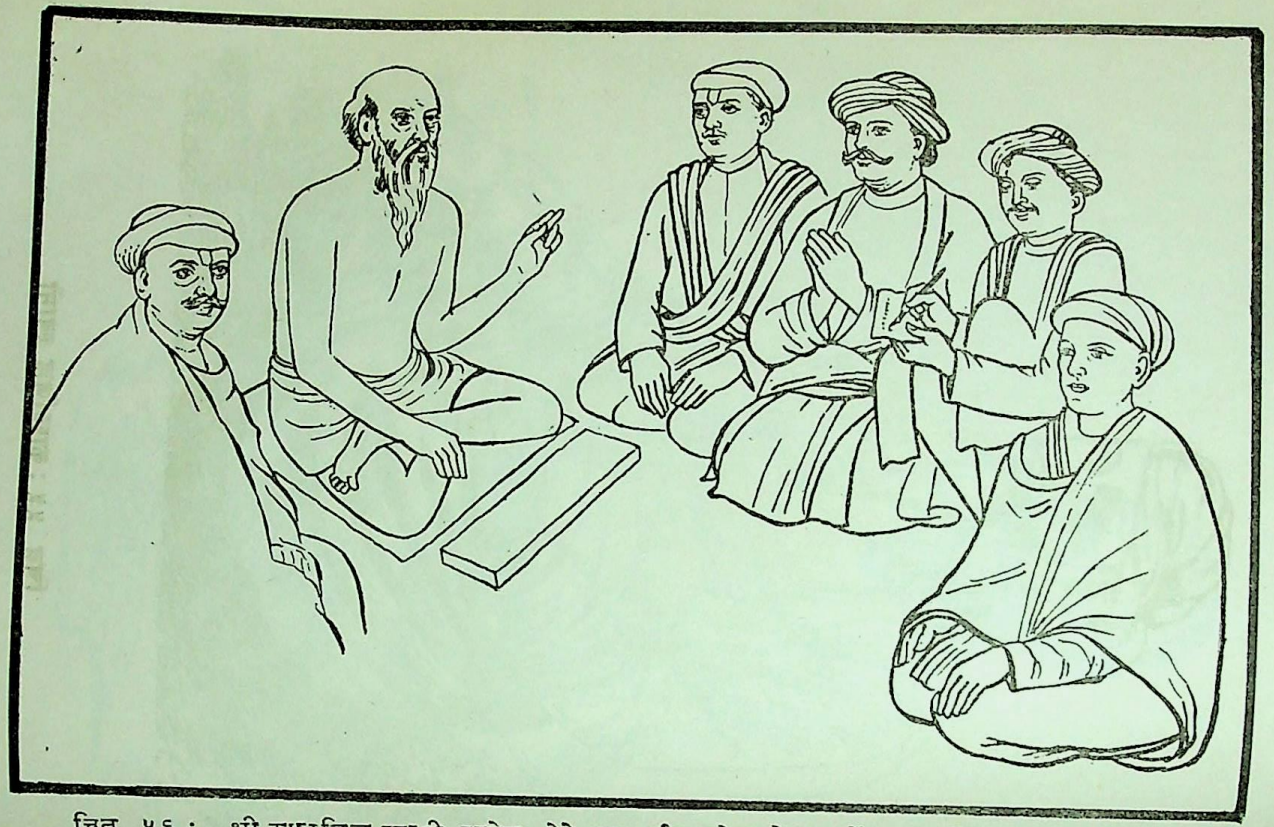

चित्र ५६ : श्री काष्ठजिह्व स्वामी उपदेश देते हुए और श्रोता के रूप में तत्कालीन काशीनरेश महाराजा ईश्वरीनारायण सिंह अपने प्रधान सभासदों के साथ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

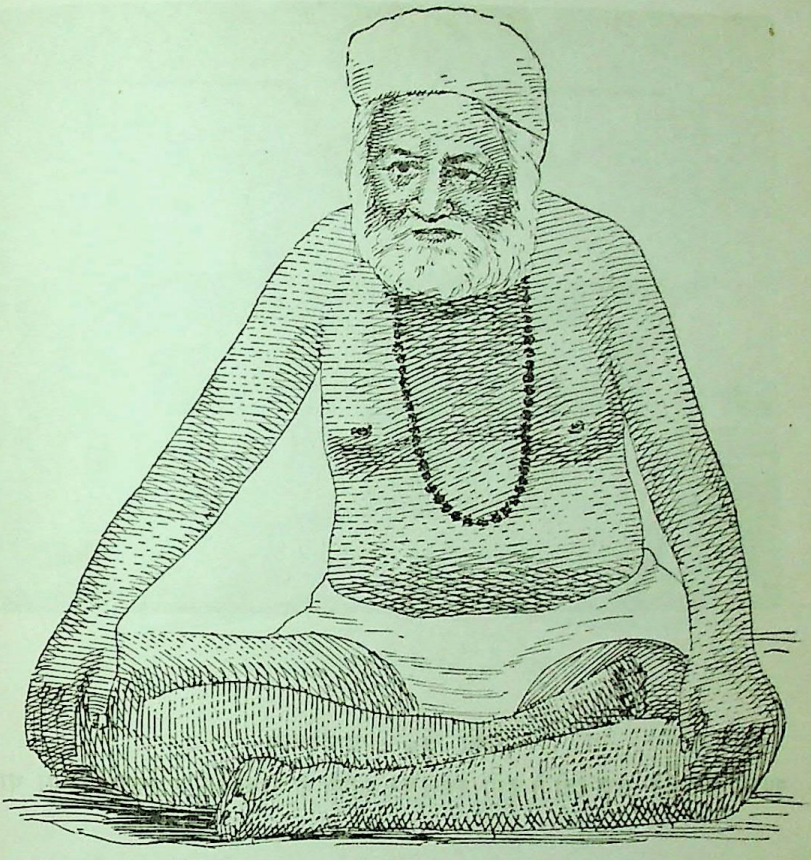

चित्र ५७ : स्वामी विशुद्धानंद सरस्वती

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

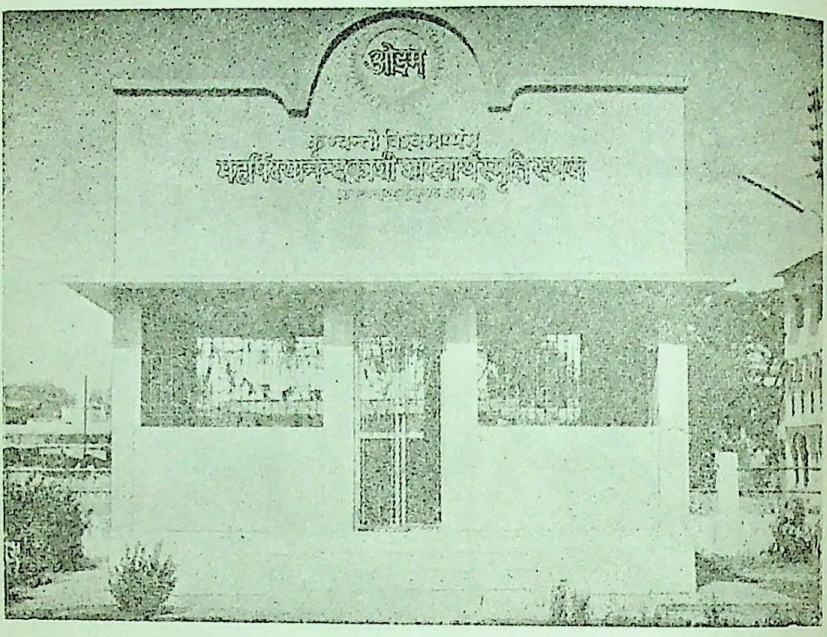

चित्र ५८ : आनंदबाग

स्वामी दयानंद सरस्वती ने इसी स्थल पर काशी के पंडितों से शास्त्रार्थ किया था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

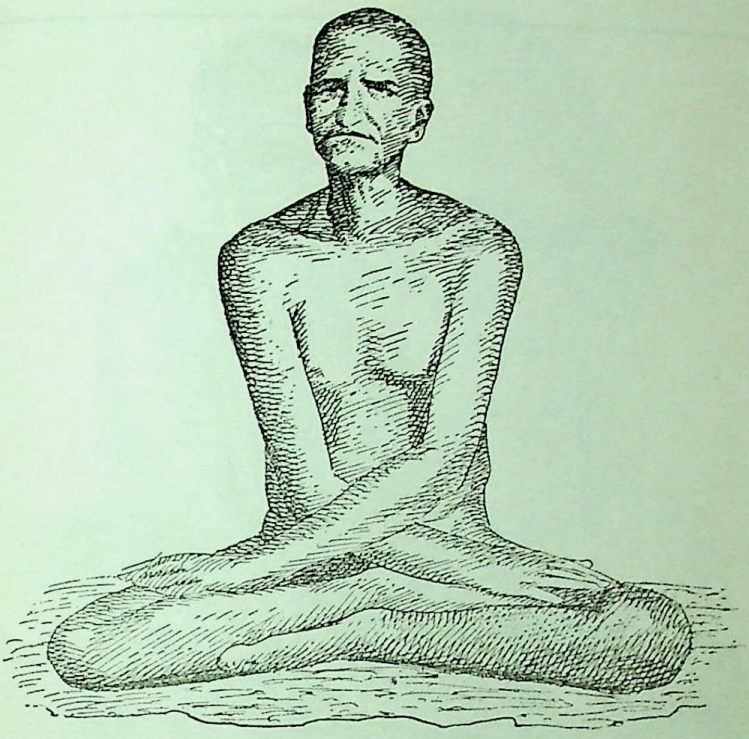

चित्र ५९ : स्वामी भास्करानंद सरस्वती

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

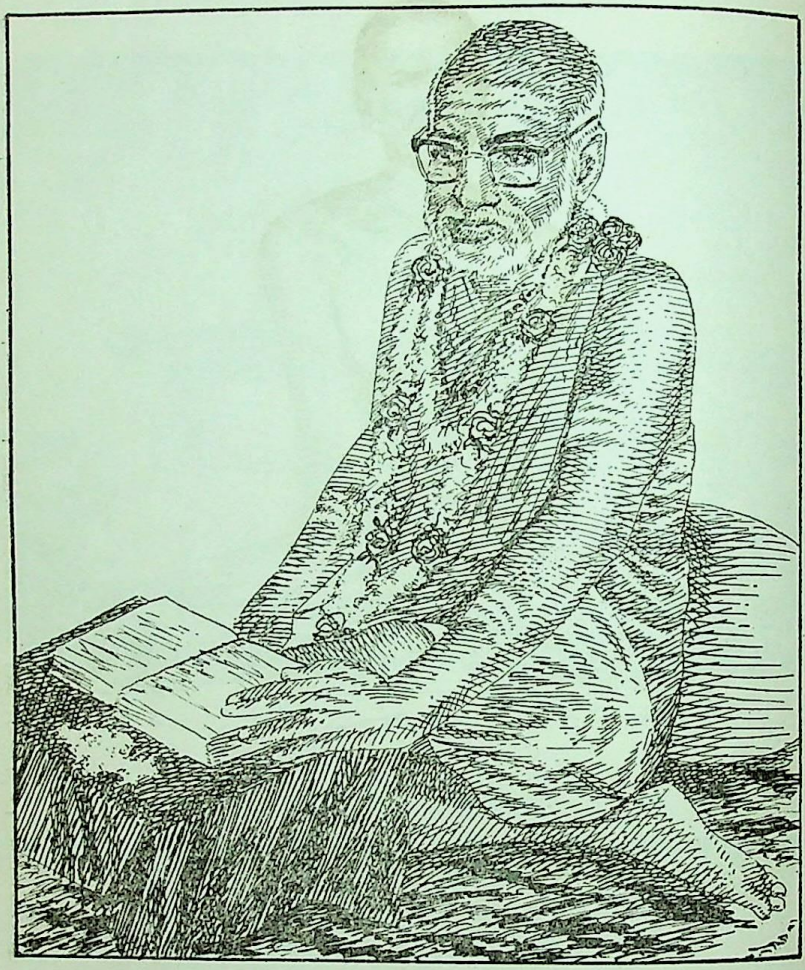

चित्र ६० : स्वामी करपात्रीजी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

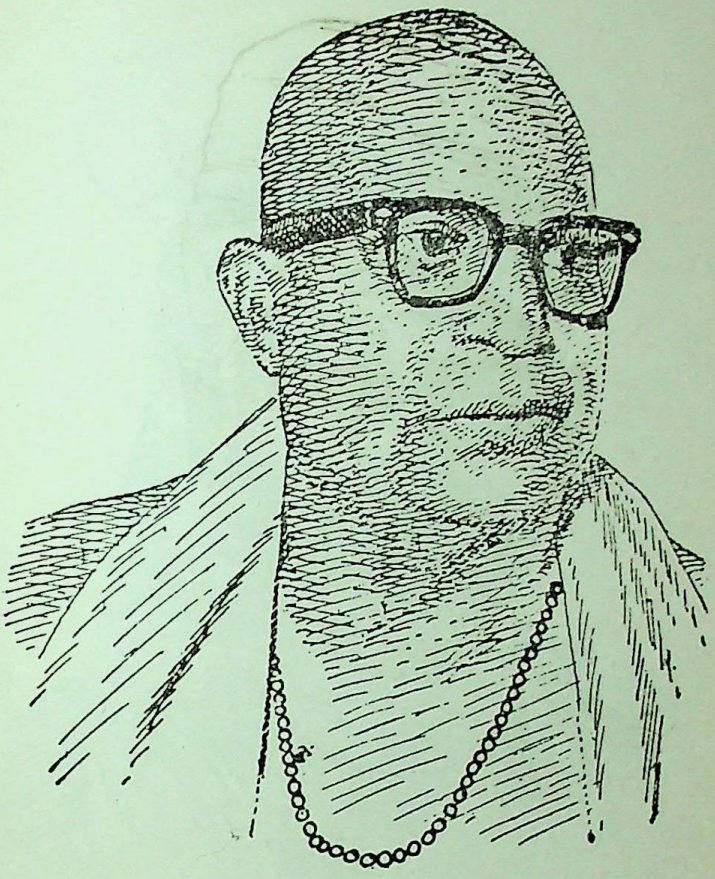

चित्र ६१ : स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र ६२: महामना पं० मदनमोहन मालवीय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र ६३ : पं० आदित्यराम भट्टाचार्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

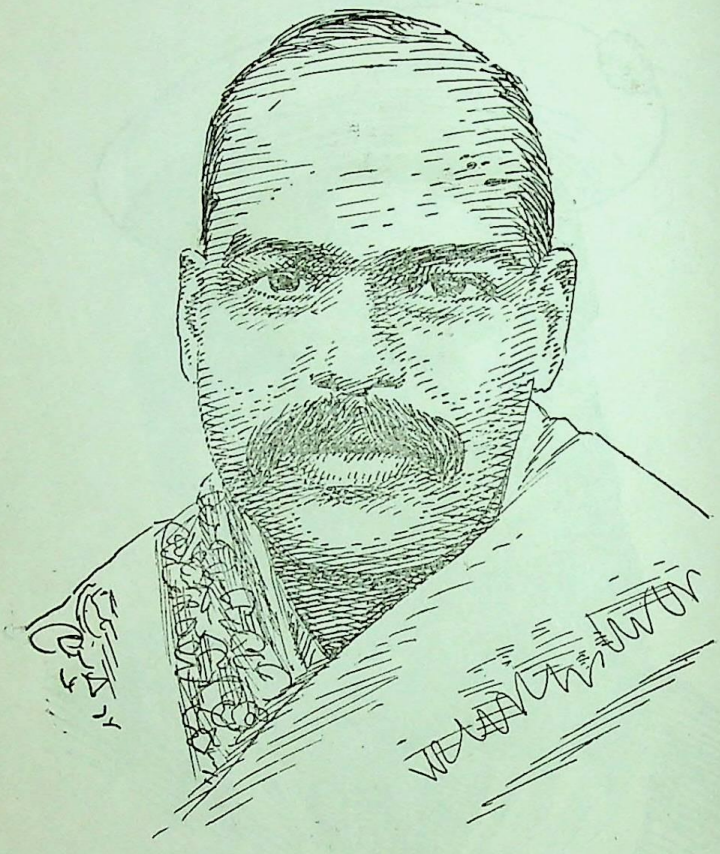

चित्र ६४ : पं० रामावतार शर्मा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

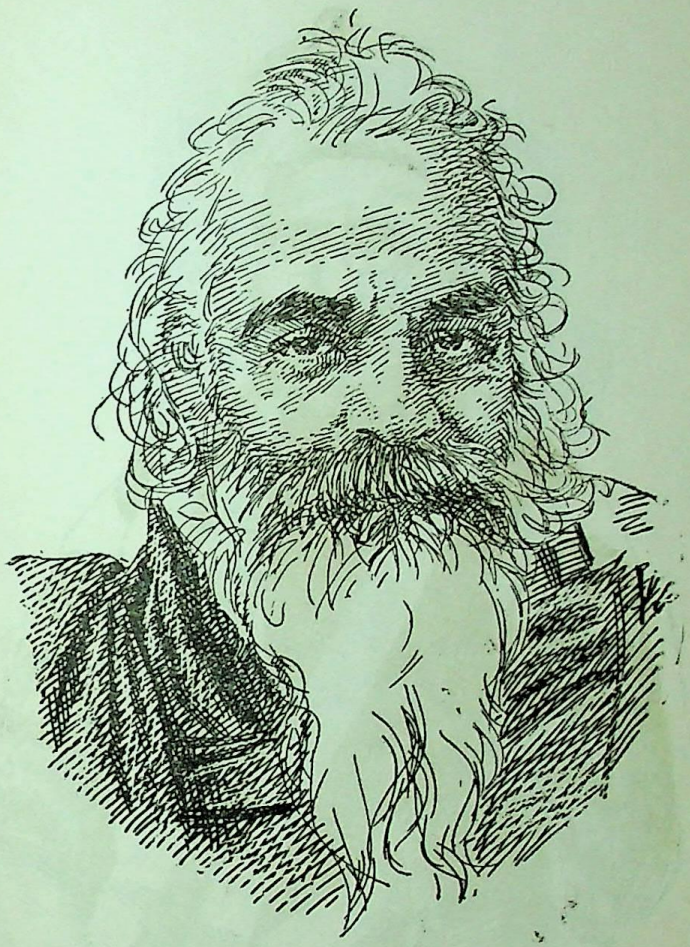

चित्र ६५ : पं० गोपालशास्त्री दर्शनकेसरी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र ६६ : डा. गंगानाथ झा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

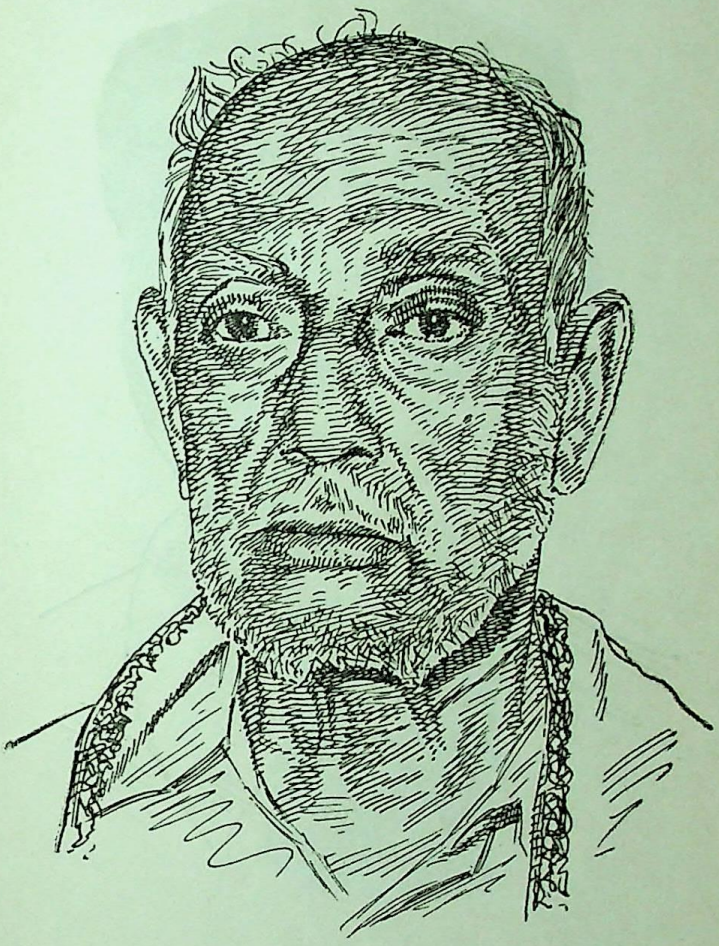

चित्र ६७ : पं० गोपीनाथ कविराज

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

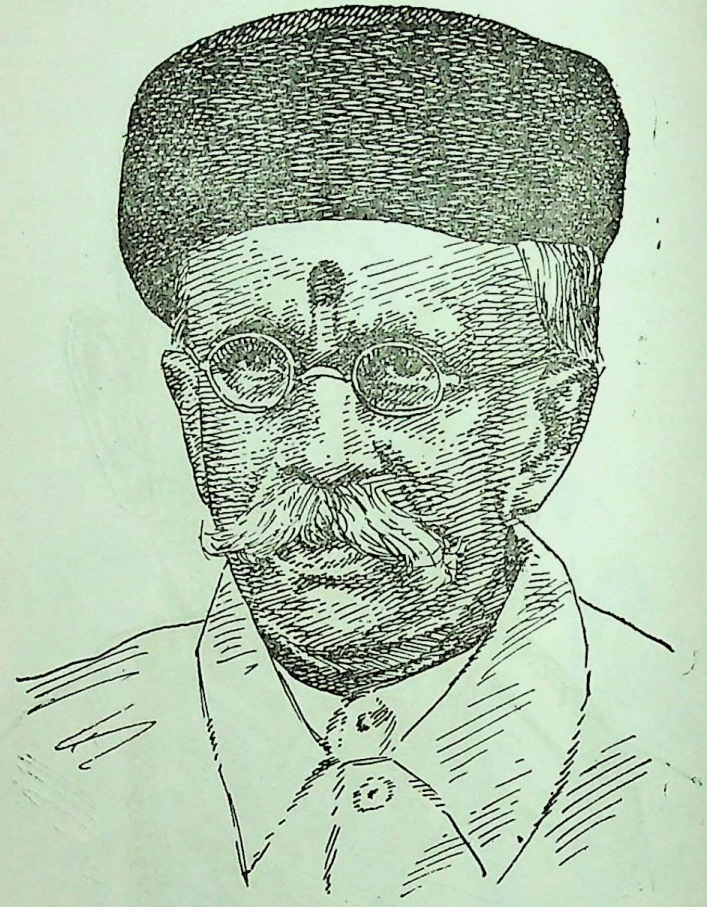

चित्र ६८ : आचार्य आनंदशंकर बापूभाई ध्रुव

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

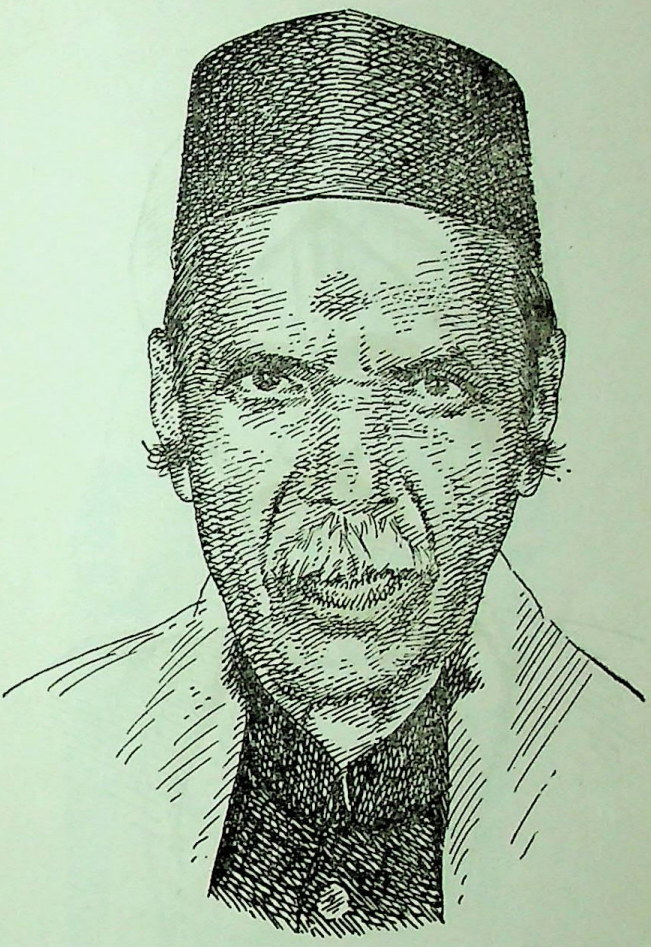

चित्र ६९ : आचार्य बलदेव उपाध्याय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र ७० : पितृश्री पं० रामसुचित उपाध्याय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

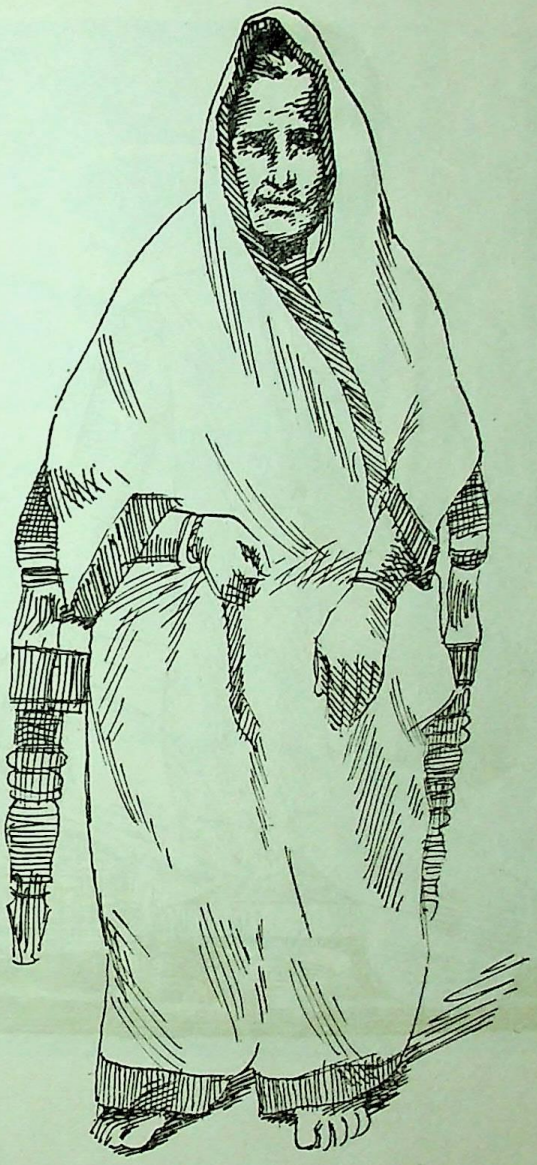

चित्र ७१ : मातृश्री मूर्तिदेवी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

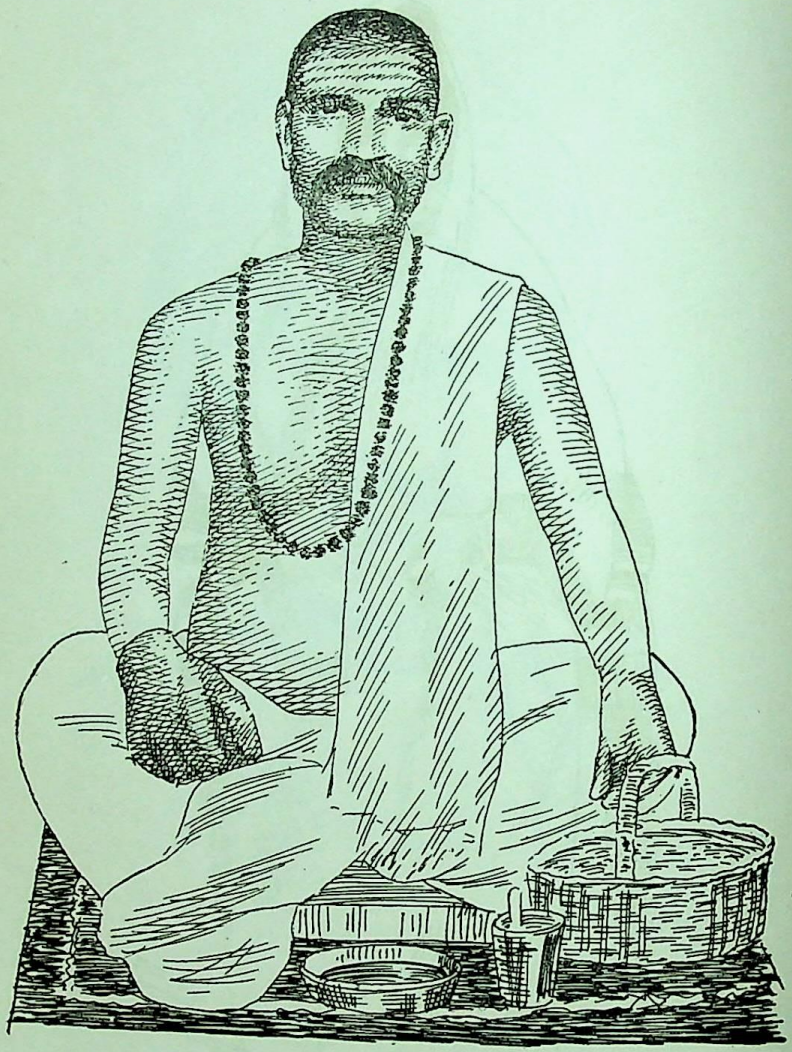

चित्र ७२ : पं० रामउदित उपाध्याय

CC-0. Gurukul.Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

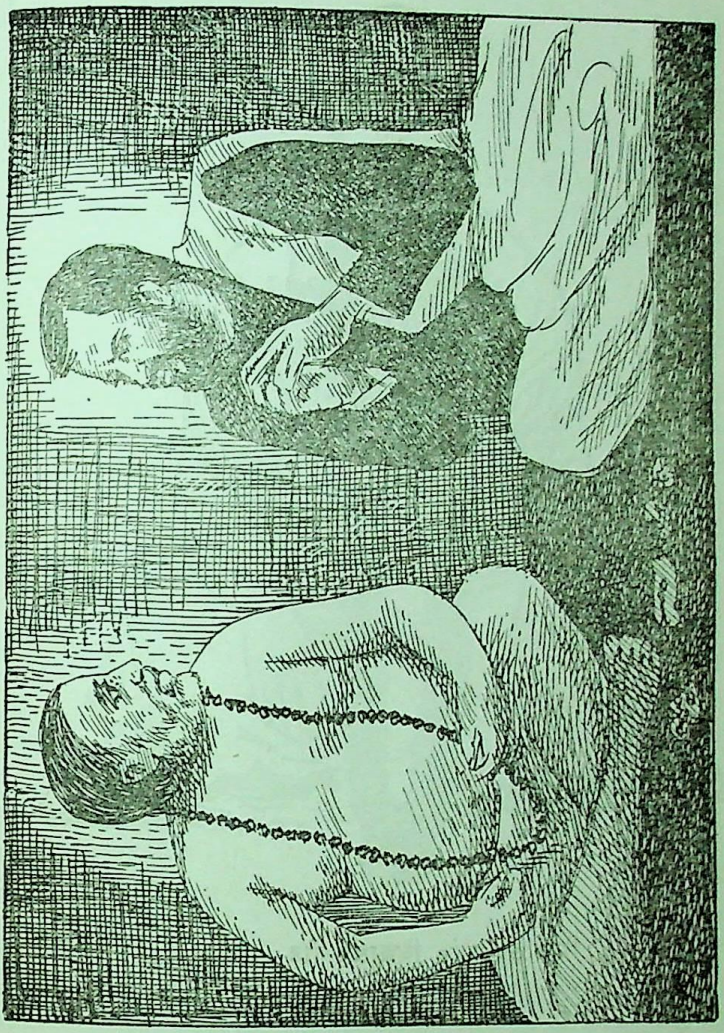

चित्र ७२ : बाबा तैलंग स्वामी तथा रामकृष्ण परमहंस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

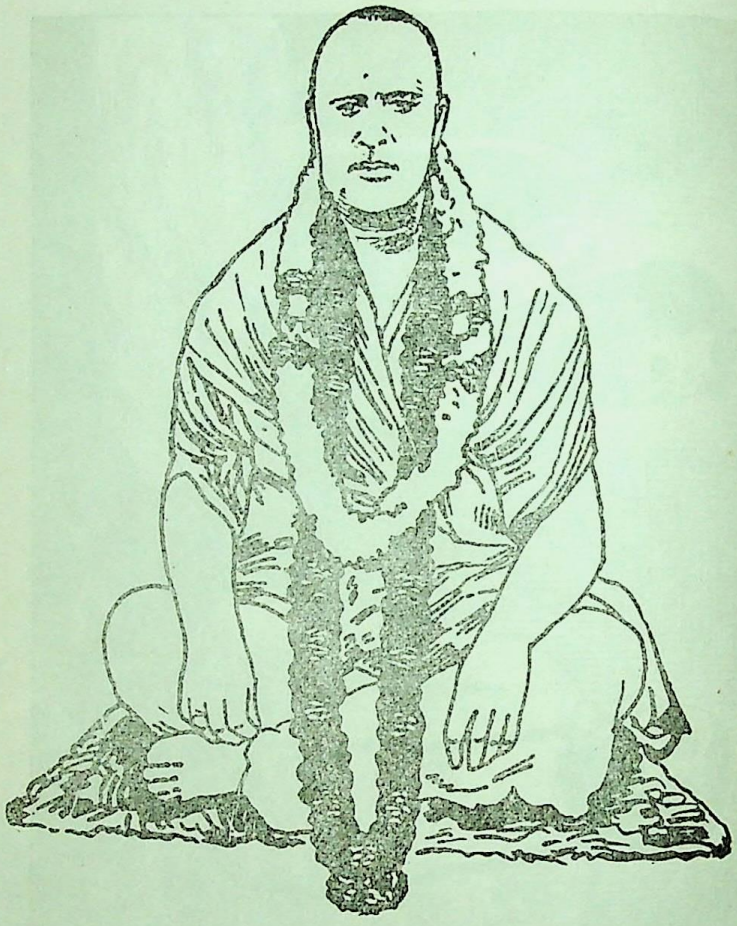

चित्र ७४ : पं० विद्याधर गौड़

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशी की पाण्डित्य परम्परा

[द्वितीय भाग]

उत्तर पीठिका

(द्वितीय खण्ड)

(क) विद्वान् संन्यासी

(ख) अंग्रेजी-वेत्ता संस्कृत विद्वान्

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान् संन्यासी

१

श्री देवतीर्थ स्वामी

(प्रसिद्ध नाम—काष्ठजिह्व स्वामी)

गत शताब्दी के उत्तरार्ध में काशी के संन्यासियों में काष्ठजिह्व स्वामी का शीर्षस्थ स्थान था। ये जितने बड़े विद्वान् थे उतने ही बड़े साधक थे। शास्त्रीय विषयों के साथ तांत्रिक विषयों का भी इन्होंने सम्यक् अनुशीलन किया था। तत्कालीन काशी-नरेश महाराजा ईश्वरीनारायण सिंह के आराध्य गुरु होने के कारण भी इनकी ख्याति कुछ कम नहीं थी। काशीनरेश जैसे विद्वान् तथा विद्याव्यसनी पुरुष थे, स्वामीजी भी उनके अनुरूप ही गुरु मिल गये थे। दोनों का मिलन मणिकाञ्चन योग ही समझना चाहिए। विद्या की वृद्धि में, आध्यात्मिकता की समृद्धि में इन दोनों विद्वानों का सान्निध्य सोने में सुगन्ध के समान था। रामचरित मानस के टीका ग्रन्थों के इतिहास में काष्ठजिह्व स्वामी की टिप्पणी और महाराजा ईश्वरीनारायण की व्याख्या इस अनुपम संयोग का परिणाम है।

स्वामीजी बड़े ही विनम्र व्यक्ति थे। इनकी विनम्रता का सूचक तो इनका नाम ही है। इनके विषय में कहा जाता है कि एक बार इन्होंने अपने किसी गुरुतुल्य व्यक्ति के लिए अपशब्द का प्रयोग कर दिया था। इसके कारण इनको घोर दुःख और आत्म-ग्लानि हुई। फलस्वरूप इन्होंने अपनी जीभ में काठ की बनी खोल चढ़ा ली जिससे ये फिर कभी अपशब्द न कह सकें। इनका गुरुप्रदत्त नाम **'देव स्वामी'** था परन्तु काठ की जीभ लगा लेने के कारण इनका नाम काष्ठजिह्व स्वामी पड़ गया।

जीवन चरित

स्वामीजी ने अपने जीवन के सम्बन्ध में अपने ग्रन्थों में कहीं कुछ भी निर्देश नहीं किया है जिससे इनके जीवन चरित को समग्र रूप से जिज्ञासु के सामने प्रकट नहीं किया जा सकता। उनके एक ग्रन्थ के अध्ययन से प्रतीत होता है कि स्वामीजी का जन्म-स्थान हिन्दी कवियों के लिये प्रसिद्ध 'असनी' ग्राम है। इस विषय में प्रमाण रूप उनका एकमात्र **'अश्विनी कुमार बिन्दु'** नामक ग्रन्थ ही है जिसमें ३१ पद तथा कवित्त हैं। स्वामीजी 'असनी' को अश्विनीकुमार से सम्बद्ध बताते हैं। इस नगर की प्रशंसा में इन्होंने बहुत कुछ लिखा है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि ये असनी के ही निवासी थे और स्वयं कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। असनी की प्रशंसा में इनके एक-दो पद्य इस प्रकार हैं—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असनी के कवि समान आन कोऊ कबि नहीं।
काऊ मान्य सभा चतुर बातन में दबि नहीं॥
चँवर ढरन कविता असजलधि उमे फबि नहीं।
सुधा आदि मधुर वस्तु उनमा अस चबि नहीं॥
इनकी गति अगम तल पहुँच सकत रबि नहीं।
देवन को भाग आन पाय सकत हबि नहीं॥

(अश्विनी कुमार विन्दु, पृष्ठ ४–५)

इसी तरह के बड़े प्रशंसात्मक पद स्वामीजी ने इस नगर के विषय में लिखे हैं। इससे ज्ञात होता है कि काष्ठजिह्व स्वामी का इस नगर के प्रति इतना आग्रह, इतनी प्रशंसा, भौगोलिक विविध स्थानों का इतना परिचय, असनी के प्रति इनके गाढ़ अनुराग का पूर्ण परिचायक है। असनी के आसपास के भौगोलिक स्थानों की उनकी जानकारी इतनी विस्तृत है कि यह अनुमान लगाना अनुचित नहीं है कि इनका इस नगर से गाढ़ परिचय था तथा यह इनका जन्म स्थान था।

स्वामीजी की शिक्षा-दीक्षा का कुछ भी परिचय प्राप्त नहीं होता है। हस्तलेखों में इनके गृहस्थाश्रम का नाम मिलता है और वह है **'विश्वेश्वर दत्त मिश्र'**। इनके गुरु कानाम **विद्यारण्य तीर्थ** था जिनसे इन्होंने संन्यास दीक्षा ग्रहण की थी। अनुमान है कि इनके गुरु काशी में ही रहते थे और काष्ठजिह्व स्वामीजी की साधनास्थली गुरु के सम्पर्क में आने पर यह काशी नगरी ही बनी। इनके गुरु के नाम से दो ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं—(१ **विष्णुसहस्रनाम परिचर्या**[1], (२) **श्याम सुधा**[2]। प्रथम ग्रन्थ १८५२ ई० में लिथो में प्रकाशित हुआ था। यह विष्णु सहस्र नाम की टीका है। परन्तु प्रत्येक नाम की टीका न होकर स्थान-स्थान पर कुछ प्रख्यात नामों के ही ऊपर टिप्पणी है। इन टिप्पणियों से विद्यारण्य तीर्थ के वैदुष्य का पता चलता है। अपने अर्थ के लिए स्वामीजी ने वेद मंत्रों को उद्धृत किया है और इनका अर्थ भी किया है। फलतः इनकी वेद तथा शास्त्र में गहरी पैठ रही; यह भलीभाँति कहा जा सकता है। द्वितीय पुस्तक हिन्दी भाषा में है जिसमें नाना देवताओं के विषय में भक्ति भाव से पूरित बड़े ही कमनीय पद हैं। इसमें ३०२ पद हैं। अन्तिम पद के अध्ययन से इसका रचना काल रामनवमी संवत् १८९८ (१८४१ ई०) प्रतीत होता है। ग्रन्थ के मुख पृष्ठ पर जो सूचना दी गई है उससे प्रतीत होता है कि काष्ठजिह्व स्वामी ने ही अपने गुरुजी के नाम पर इसे बनाया।

---

१. शिवाला घाट हनुमानजी के पास आनन्द वन यंत्र में लिथो में मुद्रित काशी, सम्वत् १९०९ (१८५२ ई०)।

२. भारत जीवन यन्त्रालय काशी में मुद्रित तथा १९४५ सम्वत् (१८१८ ई०) में प्रकाशित।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह **श्याम सुधा** भगवान कृष्णचन्द्र की ललित लीलाओं के वर्णन में लिखी गई है। कविता बहुत ही सुन्दर है। भाव बड़े कोमल तथा हृदय को बलात् आकृष्ट करने वाले हैं। एक पद्य यहाँ दिया जाता है—

छवि छलकि रही है लालन की।
चंदा के चहुदिसि तारा जस तैसी भीर गोपालन की॥
सुन्दर भौंह नयन नासा पुट का बरनौं दुति गालन की।
मधुर हसनि अनियारी चितवनि दमकनि कुण्डल हालन की॥
काँस फूल के चँवर बनाये ग्वालन छाँह रसालन की।
धूप महक दीपन की जगमग बरसनि सुमनसमालन की॥
तरवा चाटति है श्रुति गैया जहाँ बिभूति निहालन की।
देव रूप रसिकन को कबहूँ चाहत औरी चालन की॥

इन्हीं विद्यारण्य तीर्थजी के द्वारा संन्यास आश्रम में दीक्षित होने पर विश्वेश्वर दत्त मिश्र **'देवतीर्थ स्वामी'** के नाम से प्रसिद्ध हुए। ये काशीनरेश महाराजा ईश्वरी नारायण सिंह के गुरु रूप में प्रतिष्ठित हुए। गुरु और शिष्य दोनों का जीवन रामनगर में बड़ी शान्ति और सरलता से साथ-साथ व्यतीत हुआ। महाराज की इनके ऊपर अटूट श्रद्धा थी और स्वामीजी की भी इस सुयोग्य शिष्य पर अपार अनुकम्पा थी। उस समय के चित्र में (जो यहाँ दिया जा रहा है) स्वामीजी उपदेश मुद्रा में चित्रित किये गये हैं। उनके सामने महाराजा ईश्वरीनारायण सिंह अपने प्रधान समासदों के साथ बैठे हैं और स्वामीजी के उपदेशों को श्रद्धा से सुन रहे हैं।

ग्रन्थ रचना

काष्ठजिह्व स्वामी के दो रूप आलोचकों के सामने दृष्टिगत होते हैं। एक तो इनका साधक रूप और दूसरा इनका कवि रूप। कवि रूप में इनका साधक रूप इस प्रकार घुल-मिल गया है कि एक को दूसरे से पृथक् करना बड़ा कठिन है। स्वामीजी जितने बड़े साधक थे उतने ही बड़े कवि भी थे। इनके साधक जीवन की कहानी अभी तक अन्तराल में ही छिपी है। परन्तु इनकी काव्य कला की कथा मुद्रित होकर रसिकों के हृदय को उल्लसित तथा आनन्दित करती है। स्वामी जी का संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था। कहा जा चुका है, काष्ठजिह्व स्वामी स्वर्गीय काशीनरेश महाराजा ईश्वरी नारायण सिंह के गुरु थे। उन्हीं के आग्रह तथा अनुरोध से स्वामी जी ने अनेक ग्रन्थों की रचना की। ये अलौकिक महात्मा थे। इसके साथ महान् विद्वान् भी थे। शास्त्र, संगीत एवं साहित्य के क्षेत्र में इनकी अद्भुत प्रतिभा थी। इनकी सभी रचनाएँ **'काशिराज सागर'** नामक ग्रन्थ के अन्तर्गत हैं। इसीलिए किसी ग्रन्थ का नाम तरंग है तो किसी का नाम बिन्दु है, तो कोई सुधा के नाम से प्रसिद्ध है। तात्पर्य यह है कि स्वामी जी के 'काशिराज सागर' के छोटे-बड़े अंग होने के कारण ये ग्रन्थ तत् तत् अन्वर्थक नामों से प्रसिद्ध हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत ग्रन्थ[1]

इन्होंने अनेक संस्कृत ग्रन्थों का प्रणयन किया था जो अभी तक प्रकाशित नहीं हो सके हैं, परन्तु इनकी हस्तलिखित प्रतियाँ काशी नरेश के रामनगर दुर्ग के पुस्तकालय में आज भी सुरक्षित हैं। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या तथा उनके नाम निम्नांकित हैं। (१) **शिवचरण** परिचर्या (२) **रामचरण** परिचर्या तथा विवृति (३) **कृष्णचरण** परिचर्या तथा विवृति (रामायण व्याख्यान परिशिष्ट तथा श्रीमद्भागवत व्याख्यान सहित) (४) **महाभाष्य** परिचर्या (५) **रामानुज** परिचर्या (६ **सहस्रनाम** परिचर्या (७) **रामरक्षा** परिचर्या (८) **पद्धति** परिचर्या। इन पुस्तकों के अतिरिक्त इन्होंने निम्नलिखित ग्रन्थों का भी प्रणयन किया था --(९) **नीति-तरंग** (१०) **धर्म-तरंग** ११) **योग-तरंग** (१२) **सांख्य-तरंग** (१३) **कला-तरंग** (१४) **छन्द-तरंग** (१५) **शब्दशक्ति-तरंग** (१६) **उपपत्ति-तरंग** (१७) **उपनिषत्-तरंग** (१८ **शिक्षा व्याख्या** (१९ **शांडिल्य सूत्र व्याख्या** (२०) **गायत्री व्याख्या** तथा (२१) **उदासीन साधु स्तोत्र**।[2]

इन उपर्युक्त पुस्तकों में डा० आउफ्रेट ने अपनी बृहत् ग्रन्थ-सूची (कैतलोगुस कैतलोगारुम) में केवल निम्नांकित ग्रन्थों का ही उल्लेख किया है :—(१) **योग-तरंग** (२) **सांख्य-तरंग** (३) **उदासीन साधु स्तोत्र** तथा (४) **भास्कर स्तोत्र**। अतएव इन ग्रन्थों की प्रामाणिकता में किसी प्रकार का संदेह करने का लेशमात्र भी स्थान नहीं है।

उदासीन साधु स्तोत्र - काष्ठजिह्व स्वामी जी का यह स्तोत्र ग्रन्थ अत्यन्त लोकप्रिय है। यह आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व ब्रह्मानन्द जी की टीका के साथ अमृतसर (पंजाब) से प्रकाशित हुआ था। ब्रिटिश म्युजियम की प्रकाशित ग्रन्थ सूची (सन् १८९२ ई०) में इस ग्रन्थ का प्रथम उल्लेख पाया जाता है। परन्तु आजकल इस स्तोत्र का जो संस्करण उपलब्ध होता है वह साधुवेला आश्रम, वाराणसी से छपा हुआ है।[3]

इस स्तोत्र ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि काष्ठजिह्व स्वामी का दूसरा नाम **देवतीर्थ स्वामी था**। इस स्तोत्र में २२ पद्य हैं जिनमें १६ श्लोकों के अन्त में निम्नांकित पदों की बार-बार पुनरावृत्ति की गई है।

"उदासीन-साधून् नमस्ये नमस्ये।"

इस स्तोत्र में उदासीन सम्प्रदाय के अन्तर्भुक्त साधु पद-वाच्य विरक्त पुरुषों के

---

१. काष्ठजिह्व स्वामी के इन ग्रन्थों की सूची इनकी पुस्तक राम सुधा' (प्रकाशक : सर्व भारतीय काशिराज न्यास, वाराणसी) में प्रकाशित ग्रन्थ सूची से ली गई है। (१९६८ ई०)।

२. प्रकाशक : श्री साधुवेला आश्रम, २५६, भदैनी, बनारस–१। प्रथम आवृत्ति सन् १६५२ ई०।

३. "इति श्रीमत् परमहंस परिव्राजकाचार्य काशिराज गुरु श्री काष्ठजिह्व अपर नामधेय श्रीमत् देवतीर्थ स्वामी विरचितं उदासीन साधुस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥ पृ० ५०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाना गुणों का वर्णन बड़े सरल तथा सुबोध शब्दों में किया गया है। किन्हीं-किन्हीं पद्यों में अद्वैत तत्त्व का प्रतिपादन बड़ी ही ललित भाषा में उपलब्ध होता है। एक-दो उदाहरण ही यहाँ पर्याप्त होंगे।

"जितद्वन्द्वदोषान् विरक्तानसक्तान्,
महाधारणाध्यान–योगाधिरूढान्।
गुरुं ब्रह्म जानन्ति ये तान् प्रशस्तान्,
उदासीनसाधून् नमस्ये नमस्ये॥"

निम्नलिखित पद्य में 'तत्त्वमसि' महासिद्धान्त वाक्य का अर्थ बड़ी ही सुन्दर तथा सरल रीति से अभिव्यक्त किया गया है। तत् अर्थात् ब्रह्म त्वं अर्थात् जीव इन दोनों का असि (हो) पद के द्वारा किस प्रकार की लक्षणा से ऐक्य सिद्ध किया जाता है, इसका संक्षेप में वर्णन इस पद्य में प्रस्तुत किया गया है :

"असीति क्रियेयं त्वमो नो तदोऽपि,
तदा तत्त्वमो नित्यमङ्गाङ्गिभावः।
तदैक्ये द्वयोः सिद्धमाहुश्च ये तान्,
उदासीनसाधून् नमस्ये नमस्ये॥"

उदासीन साधुओं का सामान्य आचरण-परक यह पद्य नितान्त सरल तथा प्रसाद गुण से युक्त है :

"अरण्ये नदीसैकते वा वसन्तः,
तथा पर्वतानां दरीमाश्रयन्तः।
विदेहाः प्रविष्टाः परे धाम्नि ये तान्,
उदासीनसाधून् नमस्ये नमस्ये॥"

उदासीन-साधु-स्तोत्र की रचना के विषय में निम्नांकित किंवदन्ती साधु समाज में प्रचलित है। एक बार काष्ठजिह्व स्वामी श्वित्र (सफेद चरक) रोग से पीड़ित हो गये थे। इसके निराकरण के लिए इन्होंने किसी साधु से उपाय पूछा। उसने बतलाया कि आज-कल अनेक उदासीन महात्मा काशी में निवास कर रहे हैं। अतः यदि आप उनकी स्तुति में किसी स्तोत्र की रचना करें तो इस रोग से मुक्ति मिल सकती है। अतः स्वामी जी ने उस साधु के कथनानुसार इस स्तोत्र की रचना की और ये इस रोग से मुक्त हो गये। इस स्तोत्र की टीका (मंजुला नाम्नी) संस्कृत में तथा हिन्दी अनुवाद पं० महादेव पाण्डेय ने किया है। मूल स्तोत्र के साथ यह टीका भी साधुबेला आश्रम (काशी) से प्रकाशित है।

श्री काष्ठजिह्व स्वामी के संस्कृत ग्रन्थों का नाम निर्देश ऊपर किया गया है। इन ग्रन्थों में अधिकांश ग्रन्थ अभी तक हस्तलेख के रूप में उपलब्ध हैं तथा महाराजा काशीनरेश के पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। लीथो में मुद्रित शिवचरण परिचर्या के अनु-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीलन का अवसर लेखक को प्राप्त हुआ। उसके आधार पर स्वामी जी की तान्त्रिकता तथा निगमागम-प्रवीणता का सद्यः संकेत प्राप्त होता है। 'शिवचरण परिचर्या' में स्वामी जी ने भगवान् शङ्कर के निर्गुणरूप, सगुणरूप, परिवार का स्वरूप, भूषण, वाहन आदि सब के तात्त्विक आध्यात्मिक रूप की बड़ी ही सुन्दर, प्रामाणिक तथा शास्त्रसम्मत व्याख्या श्लोकों में की है। इसी के साथ देवीस्तुति, गणेशस्तुति तथा काशीस्तुति आदि कई स्तोत्र भी दिये गये हैं। इन समस्त पदार्थों के अन्तराल में विद्यमान जो इनका आध्यात्मिक रूप है उसका संकेत स्वामी जी ने पदे-पदे किया है। एक-दो दृष्टान्त ही नमूने के तौर पर दिये जाते हैं—

शिवरूप का रहस्य

योऽखण्डमण्डलनिभः प्रणवस्य मूर्धा
यस्माद् भवन्ति विरमन्ति च यत्र सर्वं।
बिन्दुः स एव परमार्थवपुः शिवोऽयं
यं तं चतुर्थमिति वेदविदो वदन्ति॥

(शिवचरणपरिचर्या, श्लोक ३)

शिवजी के पञ्चतत्त्वों के प्रतीक रूप में विद्यमान भूषणों का रूप देखिये—

भूरेव भूतिः सलिलं च गङ्गा—
जलं तृतीयं नयनं च तेजः।
व्यालः समीरो डमरुर्नभो महत्
चिन्त्यानि चैवं शिवभूषणानि॥

(वही, श्लोक ८)

एक पद्य में स्वामी जी ने देवताओं की उपासना के प्रसंग में वेद स्मृति आदि का तुलनात्मक विचार प्रकट किया है—

उत्तमो वैदिको मन्त्रः स्मार्त आचार उत्तमः।
आगमोऽस्योत्तमो भावः पौराणी स्तुतिरुत्तमा॥

इस संक्षिप्त विवरण से स्वामी जी की व्याख्या पद्धति का किञ्चित् रूप उद्भासित होता है। हिन्दी के पदों में भी इस पद्धति का प्रयोग उपलब्ध होता है। तात्पर्य यह है कि श्री काष्ठजिह्व स्वामी जी की साधना बड़ी ही उच्चकोटि की थी। ये एक सिद्ध पुरुष थे—इसमें सन्देह नहीं। इसी साधना का परिणत फल है—हिन्दी में पदावली की रचना। इसमें भी आध्यात्मिकता का साम्राज्य विराजमान है। तन्त्रविद्या में विपुल वैदुष्य सम्पन्न होने के कारण स्वामी जी की रचना **'काशिराज सागर तन्त्र,** मन्त्र, यन्त्र आदि के प्रभूत संकेतों से युक्त होने के कारण संस्कृत विद्वानों के लिए अगम्य है, साधारण व्यक्ति की तो कथा निराली है।

हिन्दी ग्रन्थ

काष्ठजिह्व स्वामी ने अनेक ग्रन्थों की हिन्दी में रचना की है। साधु होते हुए भी ये स्वभाव से कवि थे। अतः इन्होंने गीतों में अपनी काव्यरचना की है। भोजपुरी क्षेत्र

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के निवासी होने के कारण इन्होंने भोजपुरी लोकसाहित्य में उपलब्ध होने वाले जो छन्द हैं—जैसे कजली, होरी, घाटो, चैता आदि—उनमें अपनी काव्य रचना की है। प्रधानतया इन्हीं छन्दों में इनकी कविता निबद्ध है। इनकी कविता में भोजपुरी भाषा की माधुरी और सरसता पायी जाती है। ऐसा कहा जाता है कि इन्होंने लगभग (२०००) दो हजार गीति पदों की रचना की है। इनके बिखरे हुए गेय पदों को काशीनरेश महाराजा ईश्वरीनारायण की आज्ञा से संग्रह कर प्रकाशित किया गया है। स्वयं महाराजा ने कई ग्रन्थों पर टीका लिखी है। हिन्दी में स्वामी जी ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है जिनकी सूची निम्नांकित है :—

(क) **देवसुधा** (पदावली)

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित पुस्तकें हैं :

(१) गणेश बिन्दु, (२) रामसुधा, (३) श्यामसुधा, (४) पंचकोश सुधा आदि।

(ख) **देव बिन्दु** (पदावली)

इसके अन्तर्गत ये ग्रन्थ आते हैं :

(५) जानकी बिन्दु, (६) अयोध्या बिन्दु, (७) मथुरा बिन्दु, (८) काशी बिन्दु, (९) कान्ति बिन्दु, (१०) बैजनाथ बिन्दु, (११) गया बिन्दु (१२) प्रयाग बिन्दु, (१३) अश्विनीकुमार बिन्दु, (१४) जैन बिन्दु और (१५) हनुमद् बिन्दु।

(ग) **देवसर्वस्व** (पदावली)

इस संग्रह में नीचे लिखे ग्रन्थ हैं :

(१६) उपासना सर्वस्व, (१७) विनयामृत, (१८) रामलगन, (१९) श्यामलगन, (२०) रामरंग, (२१) श्यामरंग, (२२) भूषणरहस्य, (२३) आनापुर के पद, (बनौधा), (२४) बुन्देलखण्ड के पद और (२५) बन्दिन के जगावै के पद।

इन उपर्युक्त ग्रन्थों में से आजकल मुद्रित और प्रकाशित इनकी पुस्तकों का यहाँ संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

देवरत्न

(१) **देवरत्न**—यह ग्रन्थ स्वामीजी के सुन्दर पदों का संग्रह है। इसमें ३१३ पद हैं। इसके दो खण्ड हैं—पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। इनके पदों में शब्दों की मधुरता, अर्थ की गम्भीरता तथा कल्पना की नवीनता रसिक आलोचकों को अपने पूर्ण वैभव से मुग्ध कर देती हैं। तद्भव शब्दों तथा स्थानीय पदों का प्रयोग अधिकता से किया गया है जिससे इनकी कविता बड़ी मनोहारिणी हो गई है। साहित्यिक शैली तथा रसों की दृष्टि से स्वामीजी की कविता की विविधता देखकर आश्चर्यचकित होना पड़ता है। संगीत क्षेत्र में भी इनके गीति पदों का विस्तार लोकगीतों से लेकर ख्याल और ध्रुपद पर्यन्त है। रागों की विविधता भी अपूर्व है। ऐसे विशाल साहित्य का यह संग्रह सच्चा प्रतिनिधि है। इस संकलन के कुछ सरस पदों को देखिए—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिय जू के अरुनारे दोउ तरवा,
अनुरागन के घरवा ॥ टेक ॥
का गुलाब का कमल कँटीलो; का बड़ लाल अनरवा।
का कुसुंभ जल बुन्द परत ही; बिगरत रंग निचोरवा ॥ १ ॥
का मखमल का सरसो कलँगी; का मालती पतरवा।
इनकी कोमलता के आगे; का कपोल बट परवा ॥ २ ॥
ऊरध पदुम कलपतरु अंकुस; रेखन को उजियरवा।
एक-एक रेखन पर वारों; त्रिभुवन को सिंगरवा ॥ ३ ॥
जिनके धोवत डरत देवता; जिनि चुइ परइ अतरवा।
इनसे लगन नहीं तौं विरथा; दण्ड, कमण्डल करवा ॥ ४ ॥

स्वामीजी ने लोक-साहित्य में प्रचलित अनेक छन्दों का भी प्रयोग किया है। यह नीचे का पद कितना सुन्दर है—

बावरे कहैं जमुना तट में,
वह तो श्याम बसैं याही घट में ॥ टेक ॥
जैसे खेलारी पुतरी नचावै; रहिकै अन्तरपट में।
तैसे नचावत मन इन्द्रिन को, अलख जगत झंझट में ॥
सपने में सब साज पसारै, ज्यों बनिया चौहट में।
जागत साज समाज कहाँ वह; नट को सो चटपट में ॥
सब सोवहु पर जागि रह्यो जो, दीपक सो बड़ि ठट में।
जागे पर आनन्द बखानत; छपि माया को बट में ॥
बन-बन में क्या ढूढ़ौ वाकौ, क्या ग्रन्थन के गठ में।
कहुँ एकन्त में देव मिलौंगो; मति राधा के सट में ॥

इस कविता में स्वामीजी ने कृष्ण को यमुना के घाट पर खोजने की अपेक्षा अपने घट (शरीर) में खोजने का उपदेश दिया है। इनका कहना है कि वह श्यामसुन्दर बाह्यजगत् में बन-बन में ढूँढ़ने से नहीं मिलता और न ग्रन्थों के पृष्ठों के भीतर ही वह छिपा हुआ है। वह तो शान्त भाव से एकान्त में चिन्तन करने वाले साधक के चित में निवास करता है। वह घाट पर नहीं; बल्कि घट में निवास करता है।

(२) **रामसुधा**—स्वामीजी की दूसरी पुस्तक '**रामसुधा**' है। इसमें ११३ पद हैं। इसमें कुछ में तो रामचन्द्र के चरित का वर्णन है और कुछ में उनके जीवन के आदर्शों को लेकर उपदेश तथा शिक्षा दी गई है। रामायण के आधार पर इस 'राम सुधा' की रचना की गई है। परन्तु पुनरुक्ति रूप में नहीं प्रत्युत निरुक्ति रूप में। विभिन्न रामायणों के विरोधों का समन्वय, अपेक्षित शंकाओं का समाधान एवं अद्भुत अर्थों का प्रतिपादन इस ग्रन्थ की महती विशेषता है। इस ग्रन्थ का उत्तरकाण्ड महत्त्व तथा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विस्तार की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके अन्तर्गत 'राम सेवा' नामक खण्ड का उपासना की दृष्टि से, सीता हनुमत् संवाद खण्ड का सैद्धान्तिक दृष्टि से एवं षट्-ऋतु वर्णन का साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्त्व है। यह पूर्ण ग्रन्थ ही राग-रागिनियों में निबद्ध है। इस ग्रन्थलेखक के गूढ़ अर्थों को अभिव्यक्त करने के लिए काशीनरेश ईश्वरीप्रसाद सिंह ने इस की सारगर्भित टीका लिखी है। इस प्रकार ग्रन्थ गुरु और शिष्य दोनों के सम्मिलित प्रयत्न का सुन्दर परिणाम है। गीति छन्द में लिखा गया यह प्रभात वर्णन कितना सरस और सुन्दर है :—

"मंगल ऊषा समय दिन मुख है।
जहँ तहँ लोग जागे, गौवा दुहन लागे,
लोहिया लगन को रुख है।
नखत झलमलाये चंदहु लटकि आये,
रजनी होहे रही पुख है॥"

इस ग्रन्थ में स्वामी जी ने राम के वनवास में छहों ऋतुओं के निवास का वर्णन किया है। वसन्त का यह वर्णन कितना सरस तथा मधुर है :

"महँकै सिय अंग बसन्त सोई,
कर पल्लव कोमल लाल लसे।
मुख चंद चुवै रस बोल सदा;
पद पंकज मानस में बिकसे॥"

इसके अतिरिक्त स्वामी जी ने निम्नांकित ग्रन्थों की भी हिन्दी में रचना की है जिनमें से कुछ प्रकाशित तथा कुछ अप्रकाशित हैं :—

(१) **देव रामायण**, (२) **कृष्ण सुधा**, (३) **पंचक्रोशी सुधा**, (४) **मथुरा बिन्दु**, (५) **गया बिन्दु**[1] आदि। 'गया बिन्दु' काव्य ग्रन्थ में गया के तीर्थ स्थानों के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। इसमें केवल ३५ गेय पद हैं। भाषा सरल तथा सरस है। **'मथुरा बिन्दु'**[2]— इस काव्य में ८५ पद हैं जिसमें राधाकृष्ण की लीलाओं का वर्णन राग-रागनियों में किया गया है। **'कृष्ण सुधा'**[3] में कृष्ण चरित के अनेक मार्मिक रहस्यों, षड्ऋतुचर्या, लोकजीवनोपयोगी विविध विषयों का संकलन, आध्यात्मिक तत्वों का विश्लेषण है। यह ग्रन्थ काशीराज की टीका से संवलित है।

रामायण परिचर्या

यह काष्ठजिह्व स्वामी का सबसे बड़ा तथा महत्पूर्ण ग्रन्थ है। रामायण के गंभीर तात्पर्य को प्रकट करने में यह ग्रन्थ नितान्त समर्थ है। स्वामी जी ने इस रामायण की

---

१. वाराणसी संस्कृत प्रेस में छपा। सन् १८६७ ई०।
२. बनारस लाइट छापाखाना में गोपीनाथ पाठक द्वारा मुद्रित। संवत् १९२६ वि० (१८६६ ई०)।
३. रामनगर, वाराणसी से प्रकाशित।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो टीका लिखी है वह वास्तव में टीका नहीं बल्कि टिप्पणी है। वह सारगर्भित होने के कारण अत्यन्त कठिन तथा दुरूह है। इस टिप्पणी का नाम 'परिचर्या' था। इसके अर्थ को स्पष्ट करने के लिए महाराजा ईश्वरीनारायण सिंह ने इसका उ.बृंहण (विस्तार) करते हुए जो टीका लिखी उसका नाम 'परिशिष्ट' है। इतने पर भी यह टीका साधारण जनता के लिए बोधगम्य नहीं हो सकी। तब तीसरे व्यक्ति श्री हरिहर प्रसाद जी—जो महाराजा के फुफेरे भाई लगते थे और कमच्छा में बटुक भैरव मंदिर के पास एक मकान में रहते थे—ने इसके अर्थ को अधिक सरल तथा जनसामान्य को समझने के लिए सहज बनाते हुए अपनी टीका लिखी जिसका नाम 'प्रकाश' है। इसलिए इन तीनों ग्रन्थकर्ताओं की टीका के साथ यह ग्रन्थ "रामायण परिचर्या परिशिष्ट प्रकाश" नाम से प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन महाराजा प्रभुनारायण सिंह के आदेश से खड्विलास प्रेस, पटना से बालकाण्ड तथा अयोध्याकाण्ड का प्रकाशन सन् १८९८ ई० में तथा अरण्यकाण्ड से उत्तरकाण्ड तक का प्रकाशन सन् १८९६ ई० में हुआ।

रामायण परिचर्या की रचना की कथा

काष्ठजिह्व स्वामी ने 'रामायण परिचर्या' की रचना कैसे की? इसकी भी एक अपनी रामकहानी है। ऐसा कहा जाता है कि महाराजा ईश्वरीनारायण सिंह के राजवैद्य पं० बिहारीलाल वैद्यराज ने विजयादशमी के दिन स्वामीजी से यह प्रार्थना की कि महाराजा की बहुत इच्छा है कि आप रामायण की एक टीका लिखें जिससे सर्वसाधारण उसका अर्थ सरलता से समझ सकें। स्वामी जी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। ये इसके बीस-पचीस दिन बाद काशी आये और कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी सम्वत् १८९४ वि० (सन् १८३७ ई०) हनुमत् जयन्ती के दिन अस्सी घाट पर स्थित हनुमान जी की मन्दिर में जाकर पूजा की और उस मंदिर में स्थापित श्रीरामयंत्रराज की विधिवत् अर्चना की। इसके पश्चात् इन्होंने उस मंदिर के पुजारी श्री लक्ष्मणदास (लछुमनदास) से अनुमति लेकर रामायण की उस हस्तलिखित प्रति को प्राप्त किया जो सं० १७०० वि० (१६४३ ई०) में लिपिबद्ध की गई थी। इस विषय में 'रामायण परिचर्या परिशिष्ट प्रकाश' की भूमिका में जो विवरण दिया गया है वह इस प्रकार है :—

"हनुमन्त जन्म दिन गोसाईं जी के मंदिर जाय,
पूजा करी जाग्रत श्रीरामयंत्रराज की।
तहाँ मारुतनन्दन की अर्चा किई तैसी
श्री महाराज लछमनदास साधु सिरताज की॥
मुदित मन आज्ञा भई, सुद्ध खास पोथी मिली;
सत्रह सौ साल की।
साधु चरन कमल धूरि सीसै धरि तिलक करौ
सम्बत्, जुग, अंक, आठ, एक मिली आज की॥"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार सन् १८३७ ई० में काष्ठजिह्व स्वामी ने 'रामायण परिचर्या' का लिखना प्रारम्भ किया। श्री हरिहरप्रसाद जी ने 'रामायण प्रकाश' नामक अपनी टीका का सं० १९१२ वि० (सन् १८५५ ई०) में निर्माण करना आरम्भ किया और इस टीका की समाप्ति १९२८ वि० (१८७१) में हुई। इन दोनों के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि महाराजा ईश्वरीनारायण सिंह ने 'रामायण परिचर्या' पर अपनी 'परिशिष्ट' नामक टीका का निर्माण सन् १८३७ ई० और सन् १८५५ ई० के बीच में किया होगा। परन्तु किस सम्वत् में उन्होंने इस टीका का प्रारम्भ किया था ? यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। सन् १८३५ ई० में महाराजा ईश्वरीनारायण सिंह राजगद्दी पर बैठे। परन्तु रामायण के प्रति उनका इतना प्रगाढ़ अनुराग था कि राजगद्दी पर बैठने के केवल दो वर्ष बाद ही सन् १८३७ ई० में उन्होंने अपने राजवैद्य को स्वामी जी से रामायण की टीका लिखवाने के लिए प्रेरित किया।[1]

रामायण परिचर्या की रचना का उद्देश्य

काष्ठजिह्व स्वामी ने अपनी टीका की रचना का उद्देश्य बतलाते हुए लिखा कि मैंने महाराजा ईश्वरी नारायण सिंह के 'नितनव आनन्द' हेतु इसका निर्माण किया। इस टीका की रचना में स्वामीजी को एक वर्ष से भी कम समय लगा था क्योंकि सन् १८३७ ई० की हनुमत् जयन्ती से प्रारम्भ करके इन्होंने इसे सन् १८३८ ई० की रामनवमी को ही समाप्त कर दिया था। इसका निर्देश स्वामीजी की इस पंक्ति मे पाया जाता है—

"बान, अंक, आठ, एक सम्बत में जौन दिन।
जनक उछाह रामदेव सिरताज के॥"

'परिचर्या' के अन्त में स्वामीजी ने जीवन के उद्देश्य के सम्बन्ध में यह पद्य लिखा है जिससे इनके जीवन-दर्शन का पता चलता है।

"एहि नामहिं की सुचिता कन ते,
सुचिता भई तीरथ लाखन में।
अमरत्व मिठास दोऊ जु नये;
इनहीं के सुधा रस चाखन में।
बल, तेज बढ़ावन नामहूं को गुन,
कामदुघा वर माखन में।
भल राम-सिया पद-मूल गह्यो,
अब को उरझै तरु-साखन में॥"

---

१. 'रामायण परिचर्या' की रचना का यह प्रामाणिक विवरण "रामायण परिचर्या परिशिष्ट प्रकाश" की भूमिका से लिया गया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराजा ईश्वरीनारायण सिंह ने अपनी 'परिशिष्ट' नामक टीका के अन्त में भगवान् के प्रति प्रार्थना और अपनी चेष्टा की लघुता के विषय में यह सुन्दर श्लोक लिखा है—

"हित्वाऽवलम्बमखिलं शरणं प्रपन्नो,
याचे पुनः पुनरिदं रचिताञ्जलिस्त्वाम् ।
सद्यः प्रसीदसि यया करुणैकसिन्धो,
सा दीनता वसतु में हृदि दीनबन्धो ॥
मम कपि-चेष्टितमेतद्, दृष्ट्वा सन्तः प्रसीदन्तु ।
ऋक्षवनौकश्चरितं दृष्ट्वा श्रीरामचन्द्र इव ॥"

इसी प्रकार 'प्रकाश' नामक टीका के रचयिता श्री हरिहरप्रसाद ने अपनी टीका के अन्त में इसकी समाप्ति की तिथि निम्नलिखित दी है—

"पुनन्तु साधुचरणाः साङ्गा वेदाः पुनन्तु च ।
रामप्रिया भगवती सरयूश्च पुनातु माम् ॥
जित-नूतन-वारिद-द्युतिर्जयति
श्री रघुनन्दनच्छविः ।
जित-चम्पक-काञ्चन-द्युतिः
जयति श्री धरणीसुता छविः ॥

टीका के अन्त की तिथि इस प्रकार है ।

माघ कृष्ण एकादशी सिद्धि, परव ।
निधि, ब्रह्म अब्द शुभ मेदन सो सरसै ॥

इस उल्लेख के अनुसार प्रकाश की रचना सं० १९२८ वि० अर्थात सन् १८७१ ई० में समाप्त हो गई थी ।

मानस परिचर्या के अनुशीलन करने से काष्ठजिह्व स्वामी के गंभीर शास्त्रीय चिन्तन, तांत्रिक वैदुष्य तथा लोकातीत व्यक्तित्व का पूरा परिचय मिलता है । ये संस्कृत व्याकरण के भी ज्ञाता थे । फलतः रामचरितमानस में आये हुए अपाणिनीय प्रयोगों को भी शुद्ध रूप सिद्ध करने के लिए इन्होंने अनेक स्थलों पर सूत्रों का उल्लेख किया है । परिचर्या का सम्पूर्ण विवेचन तो उस ग्रन्थ को सम्पूर्ण रूप से अध्ययन करने पर ही हो सकता है । परन्तु यहाँ पर स्थालीपुलाक न्याय से उनके द्वारा प्रतिपादित मानस के एक-दो स्थलों की विशेषता का ही उल्लेख किया जा सकता है ।

(क) रामचरित मानस के पाँचवे काण्ड का 'सुन्दर' नामकरण गोस्वामी जी ने क्यों किया ? इसकी सुन्दर विवेचना स्वामी जी ने की है । उत्तर तथा दक्षिण दोनों दिशाओं में ध्रुव नामक तारा है । उत्तर में सुमेरु पर्वत है । उसका प्रतिरूप दक्षिण में लंका विराजमान है । सुमेरु के तीन शिखरों के समान लंका में भी त्रिकूट (तीन शिखर)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं जिनके नाम हैं (१) नील, (२) सुन्दर तथा (३) सुबेल। नीलकूट पर लंका बसी है। सुन्दरकूट पर अशोकावटिका की स्थिति है और सुवेलकूट के ऊपर लंका की रणभूमि अवस्थित थी, जहाँ राम और रावण का युद्ध हुआ था। सुन्दरकूट पर विराजमान अशोकवाटिका की कथा का ही वर्णन इसमें मुख्यतः हुआ है। अतः इस काण्ड का नाम सुन्दरकाण्ड रखा गया है। इस सूचना का आधार 'उपमेरु तंत्र' नामक तंत्रशास्त्र का एक ग्रन्थ है जिसमें ये बातें लिखी हुई हैं। ऐसा स्वामी जी का कहना है। नीचे के दोहे में सुन्दरकाण्ड की कथा का संक्षिप्त उल्लेख पाया जाता है।

"रघुवर ससि, सीता प्रभा;
हनुमत् उदय हुलास।
सुन्दर सुन्दर काण्ड यह,
सुन्दर लह्यौ प्रकास॥"

(ख) मानस के षष्ठ काण्ड का नाम गोस्वामी जी ने 'लंका काण्ड' रखा है जब कि वाल्मीकि ने इसका नाम युद्धकाण्ड लिखा है। अतः विचारणीय प्रश्न यह कि गोस्वामी जी ने इसका नामकरण लंका क्यों किया? इस प्रश्न के उत्तर में स्वामी जी ने कई कारण दिये हैं—

(१) ल = लक्ष्मी; अंक = चिह्न (लक्ष्मी के चिह्नभूत सोना, चाँदी, हीरा आदि से सम्पन्न होने के कारण)।

(२) ल = पृथ्वी; अंक = गोदी (पृथ्वी की कन्या सीता को अपनी गोद में धारण करने के कारण लंका नाम पड़ा)।

(३) ल = हनुमान; अंक = दाह, जलाना (अर्थात् हनुमान के द्वारा जलाए जाने के कारण 'लंका' नाम पड़ा)।

(४) ल = लवण समुद्र; अंक = परिखा, घेरा (लवण समुद्र से घिरे रहने के कारण लंका नाम) स्वामी जी ने अपने तर्कों के प्रमाण में एकाक्षरी कोश तथा मेदिनी कोश का प्रमाण भी दिया है। अतः इन्होंने लंका नामकरण के जो कारण दिये हैं वे प्रमाण—पुरस्सर हैं।

(ग) गोस्वामीजी ने अपने मानस के प्रारम्भ में वाल्मीकि की स्तुति करते हुए यह यह श्लोक लिखा है—

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्य-विहारिणौ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ, कवीश्वर—कपीश्वरौ॥

इस श्लोक पर टिप्पणी करते हुए स्वामीजी ने लिखा है कि कवीश्वर वाल्मीकि कपीश्वर हनुमान् "दूनौ जनो रामचरित के विहारी। एक दक्षिणचारी एक उत्तरचारी।" स्वामीजी की इस संक्षिप्त टिप्पणी की व्याख्या करते हुए महाराजा ईश्वरी नारायण सिंह ने परिशिष्ट में लिखा है कि "वाल्मीकिजी चित्रकूट रामसो मिलन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानस में लिखा। अतएव वे हुए दक्षिणचारी। हनुमान उत्तरचारी। कदली विपिन विहारार्थं भीम से मिलन। वनपर्व अध्याय १४५ महाभारत में।" राजा साहब की इस टीका पर हरिहर प्रसादजी ने अपने 'प्रकाश' में यह लिखा है "दोनों को प्रणाम। वाल्मीकिजी वक्ताशिरोमणि, हनुमान् श्रोता शिरोमणि। पुण्यारण्य विहारिणी— दोनों वनवासी हैं—एक दक्षिण, एक उत्तरवासी होने से दोनों तुल्य हैं।"

ऊपर के उद्धरण में तीनों ग्रन्थकारों की गद्य-शैली का नमूना प्रस्तुत करने के लिए ही उनकी वाणी अक्षरशः उद्धृत की गयी है। इस गद्यशैली के विषय में यह ध्यान रखना चाहिए कि यह 'हरिश्चन्द्री हिन्दी' के उदय के पहले की हिन्दी है। 'हरिश्चन्द्री हिन्दी' का उदय सन् १८७९ ई० में हुआ। परन्तु जिस हिन्दी का उद्धरण ऊपर दिया गया है उसका जन्म सन् १८३७ ई० में हुआ। इस प्रकार यह हरिश्चन्द्र से लगभग ४० चालीस वर्ष पहले की हिन्दी का यह नमूना है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों को शैली की दृष्टि से स्वामीजी की हिन्दी का अध्ययन करना चाहिए।

(घ) गोस्वामीजी ने अयोध्याकाण्ड में यह प्रसिद्ध चौपाई लिखी है—

"लिखत सुधाकर गा लिखि राहू।
बिधि गति बाम सदा सब काहू॥"

इस चौपाई का सीधा अर्थ यह है कि भाग्य के उल्टा होने के कारण सुधाकर अर्थात् चन्द्रमा को लिखते समय गलती से राहु लिख गया। परन्तु सुधाकर लिखते समय राहु कैसे लिखा जा सकता है? इस समस्या का समाधान काष्ठजिह्व स्वामी ने अपनी अलौकिक प्रतिभा के बल से पहली बार किया है। स्वामीजी ने इस पर केवल इतनी ही सक्षिप्त टिप्पणी जड़ी है कि—**"एक ओर अधिक मसी गिर जाने से।"** इस संक्षिप्त तथा गूढ़ टिप्पणी का भाव राजा साहब की व्याख्या से ही स्पष्ट होता है। उन्होंने लिखा है कि 'लिखना' शब्द का अर्थ 'चित्र बनाना' है, लेखनकर्म करना नहीं है। 'राहोः शिरः' इस उक्ति के अनुसार राहु के चित्र में केवल उसका सिर ही बनाया जाता है। चन्द्रमा का चित्रण केवल 'सिर' मात्र से किया जाता है। इसी 'सिर' के चित्र में अधिक स्याही के गिर जाने से सिर की मोटी आकृति बन जाने से वह राहु का प्रतीत हो जाता है। अतः इस प्रकार सुधाकर अर्थात् चन्द्रमा का सिर चित्रित करते समय राहु का चित्र बन जाना स्वाभाविक है। ऐसे विचित्र अर्थ की ओर स्वामीजी का संकेत है।

(ङ) गोस्वामी जी ने मानस में संस्कृत के कुछ श्लोक भी लिखे हैं। उन श्लोकों में संस्कृत के कुछ विद्वान् अपाणिनीय प्रयोग करने का आक्षेप गोस्वामी जी पर लगाते हैं। परन्तु स्वामीजी ने अपने प्रकाण्ड व्याकरण-ज्ञान के द्वारा गोस्वामी जी के संस्कृत के प्रयोगों को शुद्ध तथा पाणिनीय सिद्ध किया है। उदाहरण के लिए तुलसीदास जी ने राम का वर्णन करते हुए **"केकी कण्ठाभनीलं सुरतरु विलसद् विप्रपादाब्ज चिह्नम्।"**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, मंगल श्लोक) में 'केकीकण्ठाभनीलं' के प्रथम पद में 'केकि'— ह्रस्व इकार होना चाहिए। केका (वाणी मयूरस्य) से सम्पन्न होने के कारण मयूर को 'केकी' (केकिन्) कहते हैं। फलतः किसी पद के साथ समास होने पर ह्रस्व इकार होना ही उचित है। अतः तुलसीदासजी का 'केकीकण्ठ' पद अपाणिनीय है। इसी प्रकार उत्तरकाण्ड के द्वितीय श्लोक के उत्तरार्ध 'जानकी-कर-सरोज-लालितौ चिन्तकस्य मनभृंगसंगिनौ' में विद्यमान 'मनभृंग' पद अपाणिनीय है, क्योंकि 'मनस्' शब्द के सकारान्त होने के कारण 'मनोभृंग' होना ही समुचित है। इन दोनों आक्षेपों के उत्तर में स्वामीजी का कहना है कि व्याकरण के अनुसार ये दोनों पद बनते हैं। 'मनस्' शब्द सकारान्त होने के साथ ही साथ अकारान्त (मन) भी है। मयूरवाची शब्द दोनों प्रकार का है—केकिन् (इन्नन्त) तथा केकी (दीर्घ ईकारान्त)। इसी प्रकार तुलसीदास के अपाणिनीय प्रयोगों को श्री काष्ठजिह्व स्वामी संस्कृत व्याकरण की रीति से अशुद्ध नहीं मानते। वे अन्य व्याकरण सम्प्रदायों की ओर संकेत करते हैं। उनकी आस्था प्रतीत होती है कि तुलसीदास के अनेक संस्कृत पद पाणिनीय व्याकरण से संगत न होने पर भी अशुद्ध नहीं हैं। अन्य व्याकरण सम्प्रदायों से उनकी शुद्धता प्रमाणित की जा सकती है। इस विषय की विशेष मीमांसा के लिए स्वामी जी की 'रामायण परिचर्या' के तत्तत् स्थल देखना चाहिए।

इस प्रकार **'रामायण परिचर्या'** को श्री काष्ठजिह्व स्वामी की हिन्दी रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ माना जाना चाहिए।

काशिराज-सागर

स्वामीजी ने संस्कृत में छोटे-छोटे अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है जिनमें दार्शनिक स्तोत्रों का प्राचुर्य है। यह 'काशिराज सागरः' उनकी संस्कृत रचनाओं में निगूढार्थ-सम्पन्न सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। श्रीकाष्ठजिह्व स्वामीजी तान्त्रिक साधना के महनीय उपासक, तन्त्रसिद्धान्तों के गम्भीर मनीषी तथा तन्त्रों के अन्तरग रहस्यों के पुंखानुपुंख ज्ञाता विद्वान् थे और उन्होंने इस संस्कृत ग्रन्थ में देववाणी के माध्यम से अपनी चिर चिन्तना से परिनिष्ठित तत्त्वों का विवरण प्रस्तुत किया है, परन्तु ग्रन्थ इतना गूढ़ तथा दुरूह है कि उसके तात्पर्य को समझना आज के पाण्डित्य के लिए एक दुर्धर्ष चुनौती बना हुआ है। उनके संस्कृत स्तोत्रों पर टीकाएँ सुनी जाती हैं। उनके 'शिवचरण परिचर्या' को काशी के एक उत्कृष्ट विद्वान् पण्डित **चन्द्रशेखर** त्रिपाठी ने अपनी अभिराम व्याख्या के द्वारा सरल-सुबोध बनाने का प्रयास किया है— ऐसा सुना जाता है। इनके द्वारा प्रणीत ग्रन्थ हैं—(१) शारीरक सूत्रवृत्ति, (२) परिभाषेन्दुशेखर विचार, (३) श्लोकबद्ध अष्टाध्यायी, (४) पूजापुष्करिणी, (५) रामकथा तथा (६) मत्स्यपुराण टीका। ये त्रिपाठी जी पण्डित कमलापति त्रिपाठी के पूज्यपिता के ज्येष्ठ पितृव्य थे। शास्त्रीय वैदुष्य से मण्डित होने के साथ ही साथ उत्कृष्ट साधक थे। इनके विद्या-वैभव की इतनी कीर्ति थी कि तत्कालीन काशीनरेश महाराज ईश्वरीनारायण सिंहजी उनका दर्शन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने तथा आशीर्वाद लेने के लिए उनके घर स्वयं आते थे। इस कोटि के किसी विद्वान् ने यदि व्याख्या लिखने की कृपा की होती, तो 'काशिराज सागर' पाठकों के लिए सरल-सुबोध बन गया होता। परन्तु ऐसा न हो सका। काशीनरेश के पुस्तकालय में सुरक्षित हस्तलेख के रूप में वर्तमान यह ग्रन्थ आज भी किसी उत्कृष्ट तन्त्र रहस्य-वेत्ता विद्वान् की व्याख्या की अपेक्षा कर रहा है। व्याख्या के अभाव में इसे समझ पाना विद्वानों के लिए एक दुरूह व्यापार है। श्री काष्ठजिह्व स्वामीजी के तान्त्रिक वैदुष्य का यह ग्रन्थ सचमुच मेरुदण्ड है।

सामान्य जनता में स्वामी जी एक ललित गीतिकार के रूप में चिर स्मरणीय रहेंगे। इनके हिन्दी में निबद्ध पदों की संख्या बड़ी विशाल है जिनमें से थोड़े ही पद मुद्रित होकर रसिकों के सामने प्रस्तुत हैं। ऊपर निर्दिष्ट ग्रन्थों में पद ही पद तो हैं। स्वामी जी राम तथा श्याम दोनों के ही भक्त थे। फलतः दोनों की ललित लीलाओं के वर्णनपरक पदों का प्राचुर्य है। इन पदों के अनुशीलन करने से लेखक की यह दृढ़ धारणा बन गई है कि वेदान्त के मर्मज्ञ स्वामी जी किशोरी जानकी जी के चरणों के दिव्य उपासक थे। भक्तिरस से स्निग्ध, आनन्द सागर में डुबकी लगाने वाले स्वामीजी सियाजू के चरणों पर अपने आपको निछावर करने वाले साधक थे। **'जानकीबिन्दु'** में मनोरम पदों का संग्रह स्वामीजी के हृदयंगम भावों का तथा मधुरिम काव्यकला का स्पष्ट निदर्शन है।

जानकीजी के नाम की महिमा देखिए—

जानकी नाम मनोहर मीठ॥
जापक जन सुषदायक सीधो जनु सिद्धिन को पीठ॥ १॥
महावर हूं को करत रँगीलो जैसे रस मंजीठ।
रसना पर आवत जनु आयो सिय दरसन को चीठ॥ २॥
जाके मनन गुनन ते झलकत अंदर निरमल डीठ।
बरबस काल फाँसते छोरत बड़े जबर बड़ ढीठ॥ ३॥
अंदर बाहर को मल सोधत जस अंबर को रीठ।
जाके रस के आगे लागत देवसुधा हूँ सीठ॥ ४॥

(जानकी बिन्दु)

जानकीजी के कँगना की शोभा निरखिए —

मोरे मन बसल सियाजू कै कंगना॥
कंचन को पँचरंग जडित मनि अभरन मांह कइउ रँग रँगना।
लाल पीत सित नील विचित्रित बरषा में जनु सांझि पतँगना॥ १॥
गोल गोल कोरन में मोती कमल निकट जनु बाल बिहँगना।
कील जड़े कंचन के जेहि ते परि न सकै भागन में भँगना॥ २॥
षेलत दुइ रवि मंडल मानहुँ नरम कलैया लहि कै गँगना।
कर पदुमन को नित विकसावन कारन धरे मनहुँ भल ढँगना॥ ३॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवराज पद कों को चाहत को चाहत तरिवर से टेंगना।
श्री जानकी चरन-पंकज कै मन रंगो एतनै बर मेंगना ॥ ४ ॥

(देवरत्न,[1] पद संख्या १९५)

निम्नलिखित पद में सीताजी को 'इष्टदेवता' के रूप मे उल्लिखित किया गया है। स्वामीजी का कहना है कि मानव मन तृन घास का (सूखे विषयों का) भूखा है। उसे रामरस कैसे चिखाया जाय ? राम रसायन को घोल कर पीने से ही जानकी जो प्रसन्न होकर तुम्हारे पास स्वत: आजावेंगी।

मैं कैसे कै चिषावों राम रसवा।
मन चाहे तृन घसवा ॥ १ ॥
इरषा जर से इहि जिभिया के मीठौ दूध तिताय।
खुलत न मुख कै पाप जंत्रिका हारेउँ करि करि कसवा ॥ २ ॥
सतसंगति कै रंग न लागे जदपि करै सतसंग।
शून्य हृदै बेंसवा के जैसे मलया गिरि कै बेंसवा ॥ ३ ॥
हरिअर तरु पर पंछी सुख से बोलत अंमृत बानी।
अवचट लागल दोउ पंखन में लाग लगी कै लसवा ॥ ४ ॥
जे मन चाहै तेही में जौ रामरसायन घोरौं।
इष्ट देवता सिय करुणा से सुढर ढरै तौ पसवा ॥ ५ ॥

— (विनयामृत[2], नौंवा पद)

स्वामी जी महाराज के इन भक्तिरस से स्निग्ध पदों में जितना अवगाहन किया जायगा, उतना ही साधकों का मन भगवान् के चरणारविन्द में आसक्त होगा और इस प्रपंच से छूट कर वह इस धराधाम पर ही जीवन्मुक्त हो जायेगा।

श्री काशिराजोज्ज्वलगौरवेश्वरी-
प्रसादभूभृत्गुरुवर्यसत्कथ:।
श्री काष्ठजिह्वापर-नाम-विश्रुत:
श्री देवतीर्थो यतिराड् विराजते ॥

●

---

१. प्रकाशक श्री काशिराज सरस्वती भण्डार, दुर्ग रामनगर, वाराणसी, १९६२ ई०।
२. २९ पदों का यह लघुकाव्य श्रील श्रीयुत महाराज ईश्वरीनारायण सिंह काशी-नरेश बहादुर श्री आज्ञा से अम्बिकाचरण चट्टोपाध्याय के द्वारा 'अमर यन्त्रालय' में मुद्रित हुआ था (वाराणसी, संवत् १९४१ = १८८४ ई०)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२

स्वामी महादेवाश्रम

(प्रसिद्ध नाम—श्रीरामनिरञ्जन स्वामी)

गत शताब्दी के उत्तरार्ध में स्वामी महादेवाश्रमजी अपने अलौकिक वैदुष्य, असाधारण आचरण तथा उदात्त आध्यात्मिकता के कारण काशीस्थ संन्यासियों में अग्रणी माने जाते थे। ये **रामनिरञ्जन स्वामी** के नाम से विशेषकर प्रख्यात थे। यह नाम उनके गृहस्थाश्रम के नाम के कारण ही प्रसिद्ध हो गया था। ये काशी में गऊघाट (या गायघाट) पर निवास करते थे। इसलिए 'गऊघाट के स्वामीजी' के नाम से काशीस्थ जनता में लोकप्रिय थे। ये काष्ठजिह्व स्वामी के समसामयिक ही नहीं, प्रत्युत अन्तरंग सुहृद् थे। दोनों स्वामीजी जब आपस में मिलते थे, तब कौन प्रणम्य है ?—इस विषय को लेकर दोनों में खूब नोंकझोंक होती थी। महादेवाश्रमजी काष्ठजिह्व स्वामी से कहते थे, "भाई, आप ही मेरे लिए प्रणम्य हैं। आप मेरी अपेक्षा साधुता तथा शास्त्रीय ज्ञान दोनों में विशेष योग्यता रखते हैं। अतएव मुझे आपके आगमन पर अभ्युत्थान करना चाहिए।" उधर काष्ठजिह्व स्वामी कहा करते थे, 'मैं केवल साधक हूँ, शास्त्र के गम्भीर ज्ञान के आश्रय तो आप ही हैं। मुझमें इतनी योग्यता नहीं कि प्रथमतः मैं ही प्रणम्य होऊँ। फलतः मैं आपको अभ्युत्थान करने का अधिकारी हूँ। आप मेरा अभ्युत्थान नहीं किया करें।" दोनों स्वामीजी विद्वत्ता तथा आध्यात्मिकता में बढ़े-चढ़े थे। 'को बड़ छोट कहत अपराधू।' परन्तु ये दोनों जन आपस में इस प्रकार का हास्यविनोद किया करते थे। दोनों ही संन्यासियों की मण्डली में शीर्ष स्थान के अधिकारी माने जाते थे।

अध्ययन-अध्यापन

श्रीरामनिरञ्जन स्वामीजी हथुआ के समीपस्थ किसी ग्राम के निवासी थे। उनका जन्म एक मध्यमवर्गीय सरयूपारीण ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनका पूर्वाश्रम का नाम था—**पण्डित रामनिरञ्जन मिश्र** और यह नाम इतना लोकप्रिय था कि दीक्षानाम **महादेवाश्रम** की अपेक्षा कहीं अधिक व्याप्त तथा विश्रुत रहा। इन्होंने हथुआ के राजा के आश्रय में ही अपना गृहस्थाश्रम बिताया। उनके अध्ययन की तो विशेष जानकारी हमको नहीं मिल सकी, परन्तु अनुमान है कि ये हथुआराज की राजकीय पाठशाला के पण्डितजी से व्याकरण तथा दर्शन आदि शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन कर एक सुबुद्ध प्रतिभाशाली विद्वान् की ख्याति से तुरन्त मण्डित हो गये। छात्र होने के नाते उसी पाठशाला में अध्यापक के पद पर शीघ्र ही नियुक्त किये गये। इन्होंने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया और बड़े मनोयोग से उस विद्यालय में छात्रों का अध्यापन करने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगे। उस समय हथुआ के राजा तिलकधारी शाही थे और उनकी दृष्टि में पण्डित रामनिरञ्जन मिश्र की विद्या के क्षेत्र में बड़ी प्रतिष्ठा थी।

इसी काल में एक ऐसी घटना घटी जिसने मिश्रजी के जीवन को एक नूतन मोड़ दिया। **पण्डित सीताराम शास्त्री** नामक एक विद्वान् राजदरबार में आये और मिश्रजी से शास्त्रार्थ करने की इच्छा प्रकट की। मिश्रजी वादविवाद में, शास्त्रार्थ में अखाड़े के एक महारथी थे। इन्होंने सीताराम शास्त्री को चुनौती स्वीकार कर ली और दोनों में शास्त्र की किसी गम्भीर समस्या के सुलझाने के लिए शास्त्रार्थ होने लगा। सुनते हैं यह शास्त्रार्थ तीन दिन और तीन रात तक लगातार चलता रहा। कोई भी वादी अपना पक्ष दुर्बल मानने के लिए तैयार न था। राजा तिलकधारी शाही शास्त्रार्थ के अध्यक्ष थे। उन्होंने आगन्तुक पण्डित की प्रतिष्ठा रक्षा के लिए अपने ही दरबारी पण्डित रामनिरञ्जनजी के पक्ष को दुर्बल बताया और शास्त्रार्थ को समाप्त करने की सम्मति दी। शास्त्रार्थ तो समाप्त हो गया, परन्तु रामनिरञ्जनजी को राजा का यह निर्णय पक्षपातपूर्ण प्रतीत हुआ। फलतः उनके हृदय में तीव्र वैराग्य की भावना जागरित हो उठी। उन्होंने राजकीय पाठशाला की सम्मान-सम्पन्न अध्यापकी ही नहीं छोड़ी, प्रत्युत घर-गृहस्थी को भी सदा के लिए तिलाञ्जलि दे डाली और काशी में संन्यास-दीक्षा लेने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

स्वामीजी : काशी में

कुछ दिनों में पैदल चलकर मिश्रजी काशी आये। कोई जाना-पहिचाना व्यक्ति तो था ही नहीं जिसके यहाँ अपना डेराडण्डा डालकर विश्राम करते। राजघाट के पास ही एक शिवाले में विश्राम कर थकान मिटाने के लिए सो गये। उसी समय गायघाट के ही एक ब्राह्मण देवता **त्रिलोचन पाण्डेय** वहाँ पहुँचे। मिश्रजी को जगाया और उनका सब वृत्तान्त सुनकर अपने घर चलने की प्रार्थना की। मिश्रजी का गृहस्थ के घर में टिकने का तथा आराम करने का प्रलोभन शान्त हो गया था। उन्होंने त्रिलोचन पाण्डेय से उनके पुत्र जगन्नाथ पाण्डेय को माँग कर अपना सेवक तो बनाया, परन्तु उनके घर नहीं गये और पञ्चगङ्गा घाट के किसी मठ में विरक्त जीवन बिताने लगे। यहीं पर किसी विरक्त संन्यासी से मिश्रजी ने संन्यास की दीक्षा ली। दीक्षित होने पर इनका गुरुप्रदत्त नाम हुआ— **महादेवाश्रम**। यह घटना अनुमानतः १८२४–२५ ई० के आसपास की प्रतीत होती है। उस समय संन्यासीजी अपने जीवन की प्रौढ़ावस्था में विद्यमान थे। उस समय उनका वय ४०–४२ से कम नहीं था। कुछ दिनों तक वे पञ्चगङ्गा घाट पर ही विराजमान रहे। अनन्तर एकान्त स्थान खोजकर सेवक जगन्नाथ पाण्डेय स्वामीजी को गायघाट के ऊपर किराये की किसी कोठरी में ले आये।

स्वामीजी की ख्याति

एक विचित्र घटना ने रामनिरञ्जन स्वामी को रातोंरात काशी की जनता में प्रसिद्ध बना डाला। बात यों हुई, काशीनाथ खत्री नामक किसी धनाढ्य व्यक्ति का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुत्र मर गया। उसका शव गऊघाट पर गङ्गा में उतारा गया। खत्रियों की यह चाल है कि पूरे परिवार तथा सम्बन्धीजनों की स्त्रियाँ मातमपुरसी के लिए शव के साथ गङ्गा पर उतरती हैं और अपनी छाती पीट-पीट कर रोती-धोती हैं। बड़ा कोहराम मचता है उस समय। ऐसी ही घटना उस समय घटी। रोने-धोने का हल्ला स्वामीजी की कोठरी में पहुँचा जिससे उनकी ध्यान-पूजा में बड़ा विघ्न उपस्थित हुआ। उन्होंने अपने सेवक जगन्नाथ पाण्डेय से सब बातें जानीं। विघ्न के निवारण का सद्यः कारगर उपाय न देखकर स्वामीजी ने सेवक पाण्डेय से कहा—'जाकर कह दो, हल्लागुल्ला ज्यादा मत मचावें। कमण्डलु का यह थोड़ा जल ले जाओ। मृत बालक के मुँह में डाल दो और कहो कि सब भाग जायँ।' जगन्नाथ पाण्डेय ने तदनुसार कमण्डलु का वह जल मृतक के मुँह में डाला। थोड़ी देर में उसमें चेतना आ गई। स्वामीजी महाराज का यशोगान करते हुए शोककर्ताओं का वह दल आनन्द से जीवित बालक के साथ घर लौट आया। इस घटना के अनन्तर काशी की जनता स्वामीजी के अलौकिक चमत्कार से परिचित हो गई। स्वामीजी के पास दीन-दुःखियों का ही नहीं, राजा-महाराजाओं का जमघट सदा लगने लगा। इस घटना की सूचना लेखक को स्वामीजी के निरन्तर सेवक पण्डित जगन्नाथ पाण्डेय के पौत्र पण्डित लक्ष्मी-नारायण पाण्डेय से मिली जिन्होंने अपने पितामह से इस विचित्र घटना को सुन रखा था।

अब श्रीरामनिरञ्जन स्वामी की कीर्ति दिगन्त व्यापिनी हो गई। हथुआ के राजा तो स्वामीजी के पास भोजन तथा वस्त्र की पूरी व्यवस्था कर किसी नौकर के हाथ प्रतिवर्ष भेजते ही थे। उनकी व्यवस्था में किसी प्रकार की कमी या त्रुटि नहीं होती। बहुत-सी सनदें तथा पत्र लक्ष्मीनारायण पाण्डेय ने लेखक को दिखलाये जिनमें हथुआ के राजा बड़े आदर तथा सम्मान के साथ स्वामीजी के लिए वस्त्र आदि उपकरणों के साथ नगद रुपया भी जगन्नाथ पाण्डेय के द्वारा भेजवाते थे। बाँसी के राजा महेन्द्रसिंह द्वारा भेजे गये सामान तथा ५०) रुपया की सनद देखने को मिली जिसके लिखने का समय १९२० विक्रमी संवत् है (१८६३ ई०)। धनाढ्य राजाओं और जमींदारों का स्वामीजी के प्रति इतना आकर्षण हुआ कि बिहार के समग्र भूमिहार राजा स्वामीजी के शिष्य हो गये। उत्तरप्रदेश के राजा-महाराजाओं की भी इसी प्रकार पूज्य बुद्धि स्वामीजी की ओर बनी रही। इस कार्य के लिए उन्होंने स्थान-स्थान पर भूमि भी सेवाकार्य के लिए प्रदान की। अयोध्या के राजा ददुआ जी स्वामीजी के सेवानुरक्त प्रशंसक तथा दीक्षासम्पन्न शिष्य थे। हथुआनरेश की तो कथा ही न्यारी है। स्वामीजी तो कभी उनके दरबार के राजपण्डित ही थे। फलतः स्वामीजी के सेवाकार्य के लिए वे सबसे अधिक जागरूक शिष्य थे। उनके द्वारा भेजे गये संस्कृत में लिखित पत्रों को लेखक ने देखा है। उनसे उनकी रामनिरञ्जन स्वामी के प्रति अगाध भक्ति तथा प्रगाढ़ अनुराग पदे-पदे अभिव्यक्त होता है। इसके प्रमाण में केवल एक ही पत्र नीचे दिया जा रहा है। इन पत्रों में एक ही त्रुटि लक्षित होती है कि इसके लिखने का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संवत् नहीं दिया गया है जिसके अभाव में इनका पौर्वापर्य निश्चित नहीं किया जा सकता। पत्र इस प्रकार है :

श्री परब्रह्मणे नमः

श्री श्री श्री श्री श्री परमेश्वर भक्तजन समुद्धरण हेतु-धृतमाया-विग्रह निजानन्दानुभव-तिरस्कृत-जगत्प्रपञ्च श्रीनारायणस्वामि श्रीचरणकमलयुगल-परागपीठेषु श्रीमहाराजकुमार युवराज श्रीतिलक शाहि शर्म श्री वीर प्रतापशर्मणोः प्रणति कोटयः संयन्तु-तरामहार्छवं सम्प्रति कुशलं शरीरमावयोः श्री महागुरूणां पितृणां श्री साम्बशिवं स्मरन् मनसा वचसा च जल्पन् त्रिभिरेवरश्मेण विमुक्ति संसार सागराघाता युक्तयोगिनामिव तेनातीवाकुलमनसोरावयोर्व्यावहारिकं सुखं महामोहविलसितं स्याच्छ्रीचरणं भक्ताः पितर इति मत्वा हार्दया वचो विधातुचितमेव गुणारणाननुध्यानेनावयोरिति प्रार्थना श्रीचरणं सविधे लेखोयं कार्तिकं सप्तम्यां मङ्गले शुभम्।

विलक्षण भविष्यवाणी

काशीनरेश महाराजा ईश्वरीनारायण सिंह आरम्भ से ही स्वामीजी के भक्त थे तथा उन्हें गुरुकल्प मानते थे। एक विशिष्ट घटना ने इन्हें स्वामीजी का बहुत समीपी तथा अन्तरंग बना दिया। इस घटना की चमत्कारमयी भविष्यवाणी ने स्वामी रामनिरंजनजी की आध्यात्मिक प्रतिभा को सदा सर्वदा के लिए चारों ओर बिखेर दिया एवं उनके व्यक्तित्व की अलौकिकता को सद्यः परिस्फुरित कर दिया। घटना आश्चर्यमयी तथा ऐतिहासिक है।

महाराजा ईश्वरीनारायण सिंह को रामनगर के राज-सिंहासन पर बैठे अनेक वर्ष बीत गये थे, परन्तु उत्तराधिकारी राजकुमार का अभाव उन्हें सातिशय पीड़ा पहुँचा रहा था। न उन्हें कोई पुत्र था, न उनके अनुज नरनारायण बाबू को। फलतः आपस में परामर्श तथा विचार कर इस अभाव की पूर्त्ति के लिए बाबू नरनारायण सिंह ने गोद लेने का विचार किया। उचित पात्र भी चुन लिया गया। केवल स्वामीजी के आदेश की प्रतीक्षा थी। सो एक बार वे गऊ घाट पर स्वामी रामनिरंजनजी के पास गये और बड़े ही विनीत शब्दों में गुरुजी के सामने अपना विचार प्रकट किया और उनके चरणों में नतमस्तक होकर उनका दिव्य आशीर्वाद माँगा। प्रस्ताव सुनते ही स्वामीजी ने तुरन्त उत्तर दिया—"दत्तक लेने की आवश्यकता ही नहीं। तुम्हारे यहाँ तो एक दिव्य राजपुरुष आ रहा है जो गोब्राह्मण का सेवक, सनातन धर्म का रक्षक तथा तुम्हारे वंश को उजागर करने वाला होगा। विश्वास रखो उनके आने में विशेष विलम्ब नहीं है।" इस दिव्यवाणी को सुनकर नरनारायण बाबू तो आनन्द से गद्गद हो गये। स्वामीजी का आशीर्वाद लेकर वह सानन्द रामनगर लौटे। थोड़े ही दिनों बाद १८५५ ई० में श्रीप्रभुनारायण सिंहजी का जन्म हुआ। रामनिरंजन स्वामीजी ने उनका जो भविष्य बतलाया था वह अक्षरशः सिद्ध हुआ। वे सचमुच ही बड़े धर्मात्मा, सनातन धर्म के उन्नायक, संस्कृत शास्त्रों के पण्डित तथा कमनीय कविता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के स्रष्टा सिद्ध हुए। महाराजा प्रभुनारायण सिंह को महाकवि कालिदास का 'अभिज्ञानशकुन्तल' इतना प्रिय था कि उन्होंने उस नाटक के रमणीय दृश्यों का भित्तिचित्र अपने महल के एक स्वतन्त्र कमरे में बनवाया। वे सचमुच ही वंश को उजागर करने वाले सिद्ध हुए; क्योंकि उनके ही शासनकाल में रामनगर को एक स्वतन्त्र रियासत का दर्जा मिला था। महाराजा ईश्वरीनारायण सिंहजी ने उन्हें समय आने पर अपने उत्तराधिकारी युवराज के पद पर अभिषिक्त किया। पिता बाबू नरनारायण सिंह ने स्वामीजी से उन्हें दीक्षा दिलवा दी तथा उनके जीवन को आध्यात्मिक दिशा की ओर अग्रसर कर अपने शेष जीवन को सन्तोष एवं आनन्द से बिताया। ऐसी थी चमत्कारिणी भविष्यवाणी श्री रामनिरंजन स्वामीजी की। इसके अनन्तर स्वामीजी के साथ काशीनरेश के वंश का अच्छेद्य सम्बन्ध स्थापित हो गया। इस ऐतिहासिक घटना का विवरण लेखक को वर्तमान काशीनरेश डा० विभूतिनारायण सिंहजी ने दिया जो अपने वंश के प्राचीन पारम्परिक इतिवृत्त से पूर्ण परिचय रखते हैं तथा जो महाराजा प्रभुनारायण सिंहजी के योग्य पौत्र होने का गौरव धारण करते हैं।

यह विवरण विश्रुत अनुश्रुति के आधार पर संकलित किया गया है। इधर स्वामीजी के द्वारा प्रणीत **पञ्चाक्षरी-भाष्य-व्याख्या** नामक अपूर्व वेदान्त ग्रन्थ की उपलब्धि लेखक को हुई है। इसके आरम्भ में हथुआनरेश राजा कृष्णप्रताप साही के सभापण्डित **रघुवीर कवि** ने ग्रन्थ के आरम्भ में १५५ श्लोकों में स्वामीजी का तथा हथुआनरेश के पूर्वपुरुषों का क्रमिक वर्णन कर तत्कालीन नवीन ऐतिहासिक तथ्यों का महनीय विवरण प्रस्तुत किया है। उसी के आधार पर श्री रामनिरंजन स्वामी के जीवनवृत्त की कतिपय घटनाएँ दी जाती हैं। यह नूतन वृत्त इस प्रकार है।

नवीन वृत्त

हथुआ नगर के समीपस्थ किसी ग्राम में घृतकौशिकवंशीय पण्डित **रामधन मिश्र** रहते थे जो बड़े तपस्वी, शान्तदान्त तथा अनेक शास्त्रों में निष्णात व्यक्ति थे। उनके पुत्र सामान्य विद्वान् थे। फलतः रामधनजी ने भगवद्भक्त एवं विद्वान् पौत्र की कामना से घोर तपस्या की जिसके फलस्वरूप स्वामीजी का जन्म हुआ। पितामह ने ही इनका नाम **रामनिरञ्जन** रखा। इनके दो ही गुरु हुए। घर पर पितामह से आरम्भिक संस्कृत शिक्षा ग्रहण कर वे काशी पधारे जहाँ **पण्डित प्राणनाथजी** से दर्शन के विविध अंगों का ज्ञान बड़ी निष्ठा तथा अश्रान्त परिश्रम के बल पर प्राप्त कर वे वैदुष्यमण्डित दार्शनिक पण्डित बन गए। लगभग बीस वर्ष के वय में वे घर लौटे जहाँ अपने ही घर पर संस्कृत अध्यापन का कार्य करने लगे। एक विचित्र घटना ने उनके जीवन की दिशा में एक नवीन तथा सुखकर मोड़ उत्पन्न कर दिया। वह घटना थी अपने ही ग्राम के किसी सम्पन्न व्यक्ति के कन्या-विवाह में समागत वरपक्षीय विद्वान् का इनके द्वारा शास्त्रार्थ में पराजय। वरपक्षीय विद्वान् को इस घटना से बड़ी चोट पहुँची तथा वे नितान्त खिन्न तथा म्लानमुख होकर बारात से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैरन लौट गये। पं० रामनिरञ्जन मिश्र को भी इस घटना ने उद्वेलित कर दिया और वे भी आधी धोती ओढ़े हुए घर छोड़कर एकान्त विरक्त होकर हथुआ चले आये। हथुआराज के तत्कालीन शासक राजा छत्रधारी शाही ने मिश्रजी को अपने राजमहल में आश्रय दिया और उनसे भारतीय धर्म तथा वेदान्त की शिक्षा ग्रहण करना आरम्भ किया। राजमाता काञ्चनकुमारी पुत्र के इस सद्व्यवहार से अधिक प्रसन्न हुईं और वह भी मिश्र जी को अपना गुरु बनाकर अध्यात्म तथा पुराण की शिक्षा विधिवत् लेने लगीं। संस्कृत विद्यालय में भी पण्डित जी को अध्यापक बना दिया गया जहाँ उनकी कीर्ति सुनकर दूर-दूर से छात्रगण विद्याध्ययन के लिए आने लगे। इस प्रकार छात्रों को विद्यादान देते हुए पण्डितजी ने लगभग बीस साल हथुआ में बिताया। राजा साहब बड़े ही शास्त्ररसिक थे। पण्डितजी से वे नियमित रूप से वेदान्त का श्रवण तथा मनन करते थे। परन्तु रामनिरंजनजी का विरक्त मन इस अध्यापन की वृत्ति से ऊब गया और अपने वैराग्य की पूर्णता के लिए काशी के लिए मचलने लगा। हथुआनरेश ने वेदान्त-शिक्षण के लिए मिश्रजी से दक्षिणा माँगने को कहा। इस पर उन्होंने काशीवास करने की तथा संन्यास लेने की राजा से दक्षिणा माँगी। राजा साहब ने मिश्र जी की बात तो मान ली, परन्तु एक ही शर्त पर, कि वे यावज्जीवन उन्हीं की भिक्षा ग्रहण करेंगे। पण्डितजी ने इसे स्वीकारा और काशी आकर संन्यासी बन गये। तब उनका दीक्षा नाम तो पड़ा महादेवाश्रम, परतु लोकप्रिय गृहस्थ नाम की इतनी ख्याति थी कि सब लोग इन्हें **रामनिरंजन स्वामी** के नाम से ही पुकारते रहे। काशी में रहकर ये हथुआ-नरेश की ही प्रधानतया भिक्षा ग्रहण करते थे। उन्हीं की ओर से इनके जीवनयापन की सम्पूर्ण सुखद व्यवस्था की गई थी। काशी में स्वामी जी ४८ वर्षों तक दण्ड धारण करते रहे। राजा-महाराजाओं के द्वारा सत्कृत तथा पूजित होते रहे, विशेषतः काशी-नरेश ईश्वरीनारायण सिंह तथा उनके अनुज नरनारायण बाबू के द्वारा। स्वामीजी को वि० सं० १९२७ = १८७० ई०) के मार्गशीर्ष अमावास्या के दिन शिवसायुज्य प्राप्त हुआ। उस समय उनकी आयु ८५ साल की थी। फलतः उनका जन्म वि० सं० १८४२ (१७८५ ईस्वी) मानना उचित प्रतीत होता है।

इस विषय में रघुवीर पण्डित जी का कहना है (श्लोक ६५) :—

नागद्व्यङ्कमहीमिते क्षितिपतेः श्रीविक्रमस्याब्दके
मार्गे दर्शतिथौ शिवत्वमगमत् सच्चिन्मुदात्मप्रभुः।

स्वामी जी के निर्वाण तिथि (अगहन की अमावस्या) को अनेक वर्षों तक महाराजा रामनगर प्रतिवर्ष अपने किला में संन्यासियों का भण्डारा किया करते थे। स्वामी जी की पावन स्मृति में ऊपर तत्कालीन पत्रों की सहायता से दिखलाया गया है कि स्वामीजी छत्रधारी शाही की ही प्रधानतया भिक्षा ग्रहण करते थे। काशी की दिव्य विभूति थे श्री रामनिरंजन स्वामीजी जिनकी यह प्रशस्ति यथार्थ है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभूदभूतप्रतिमस्तपस्वी
स्वधर्मकर्माभिरतो यशस्वी ।
काशीनरेशादि-महीप-पूज्यो
यतीश्वरो रामनिरञ्जनाख्यः ॥

स्वामीजी का ग्रन्थ

स्वामी जी के मुद्रित ग्रन्थ का नाम है—**पञ्चाक्षरीभाष्यप्रकाशिका**। यह पद्मपादाचार्य रचित **पञ्चाक्षरीभाष्य** का विशदार्थ प्रतिपादक एवं अद्वैत वेदान्त के गूढ़ सिद्धान्तों का रोचक विवेचक व्याख्याग्रंथ है। मूल में तो केवल २३ ही अनुष्टुप् हैं, परन्तु इसकी व्याख्या के प्रसंग में स्वामीजी ने अद्वैत के खण्डनकर्ताओं के मतों का निरसन बड़े कौशल एवं युक्तियों के सहारे किया है। इस ग्रन्थ के अध्ययन से अद्वैत-वेदान्त के समस्त तत्त्वों का ज्ञान भली भाँति हो जाता है। संस्कृतभाषा में निबद्ध ग्रन्थ की शैली बड़ी ही आवर्जक एवं आकर्षक है। लब्धकीर्ति अद्वैताचार्यों की प्रख्यात रचनाओं में यह अपनी प्रौढ़ता तथा प्रामाणिकता के कारण स्थान पाने की क्षमता रखता है। इसके अनुशीलन से रामनिरंजन स्वामी के उत्कट वैदुष्य का परिचय पदे-पदे मिलता है। हथुआनरेश कृष्णप्रताप शाही ने स्वामीजी के निर्वाण के अनन्तर बड़े परिश्रम से इसें प्राप्त किया, और इसे मुद्रित कर जिज्ञासु पण्डितों में इसका वितरण किया। इसका मुद्रण अम्बिकाचरण चट्टोपाध्याय ने अपने **अमर यन्त्रणालय** में १८८७ ई० में काशी में किया। राजा कृष्णप्रतापजी संस्कृत के प्रेमी, यज्ञानुष्ठानों के कर्ता तथा विद्यारसिक नरेश थे। १८८५ ई० में उन्होंने काशी में बड़ा ही विशाल यज्ञ किया था जिसका वर्णन रघुवीर पण्डित ने इस ग्रन्थ के आरम्भ में किया है। इस प्रकार इस ग्रन्थ का प्रकाशन स्वामीजी की मृत्यु के १७ साल पीछे हुआ। इस ग्रन्थ के पुनर्मुद्रण की आवश्यकता है।

स्वामीजी के सेवक

स्वामीजी का यह विवरण उनके पट्टशिष्य एवं नैष्ठिक सेवक **पण्डित जगन्नाथ पाण्डेय** के परिचय के बिना अधूरा ही रह जायगा। फलतः पाण्डेयजी का भी संक्षिप्त परिचय दिया जाता है। उनकी सेवा की चर्चा तो ऊपर की जा चुकी है। वे स्वामीजी के एकान्त भक्त थे और उन्होंने उन्हीं के चरणों में समर्पित जीवन बिताया। वे संस्कृत के अच्छे पण्डित थे। स्वामीजी के कैलासवासी हो जाने के तीस वर्ष बाद उन्होंने १९०१ ई० में गायघाट पर अग्निष्टोम यज्ञ किया। यह यज्ञ १६ जून से आरम्भ होकर २३ जून को समाप्त हुआ। इसके मुद्रित निमन्त्रण पत्र को लेखक ने देखा है। इसके आरम्भ में स्वामीजी की इन शब्दों में स्तुति है—

श्रीमत्परमहंसार्य-परिव्राजक-पूजितः ।
जयति स्म पुरा रामनिरञ्जनयतीश्वरः ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने विषय में पाण्डेयजी का कथन है—

शिष्यस्तदीयो गुरुपादभक्तः
पाण्डे जगन्नाथ इति प्रतीतः ।
धृताग्निहोत्रः पुरि काशिकायां
गोघट्टवासी विनयाऽवनम्रः ॥

यह यज्ञ बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ था । इसमें समग्र वैदिक विधानों का यथावत् अनुष्ठान किया गया था । पाण्डेयजी ने इसे स्वामीजी की सेवा का परिणत फल माना है । वे स्वयं अग्निहोत्री थे । फलतः अग्निष्टोम के पूरे अधिकारी थे । उनके कुल में इस यज्ञ के चार वर्षों के बाद एक दूसरा भी **अग्निष्टोम यज्ञ** हुआ १९०५ ई० में, जिसका सम्पादन जगन्नाथ पाण्डेय के जेठे पुत्र **अग्निहोत्री शीतलाप्रसादजी** ने किया था । यह यज्ञ १९६२ विक्रमी सं० चैत्र शुक्ल द्वितीया से आरम्भ होकर चैत्र शुक्ल सप्तमी तक (तदनुसार ६ अप्रैल १९०५ ई० से लेकर ११ अप्रैल तक) निर्विघ्न चल कर समाप्त हुआ था । इस प्रकार स्वामीजी के सेवक ही स्वयं अग्निहोत्री न थे, प्रत्युत उनके पुत्र भी अग्निहोत्री थे । दोनों ने इस महनीय यज्ञ का सम्पादन कर वैदिक कर्म का यथेष्ट निष्ठापूर्वक विधान किया था । यह वंश आज भी है और उसमें ब्राह्मण आचार-विचार का निष्ठापूर्वक पालन होता है । इस वंश में स्वामीजी का हाथ से बना एक प्राचीन चित्र भी है जिसकी नित्य पूजा होती है ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३

स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती

श्री स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती गत शताब्दी में काशीस्थ संन्यासियों में अपनी अलौकिक वैदुषी, नूतन कल्पनामयी शैमुषी तथा लोकातीत योगविद्या के प्रभाव से शीर्ष-स्थान पर विराजमान थे। उन्होंने बड़ी दीर्घ आयु पाई थी। जन्म तो उनका हुआ था गत शताब्दी के प्रथम चरण के अन्तिम वर्षों में, और उनका कैलासवास हुआ था शताब्दी के अन्तिम वर्ष। इस सुदीर्घकाल में उन्होंने अनेक प्रौढ़ शिष्यों को तैयार किया जिन्होंने भारतीय दर्शन की विभिन्न शाखाओं में – विशेषकर अद्वैत वेदान्त एवं मीमांसा में—विशेष प्रौढ़ि प्राप्त कर उन शास्त्रों के परिवर्धन तथा विकास में विशेष योगदान दिया। उनके जीवन की महनीय उपलब्धि थी आर्यसमाज के विख्यात संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती के ऊपर अपनी विद्वत्ता की धाक जमाकर उस ऐतिहासिक शास्त्रार्थ में विजयश्री का संवरण। इस एक ही घटना ने स्वामी विशुद्धानन्दजी का नाम भारतीय धार्मिक जनता के हृदय में सदा सर्वदा के लिए अंकित कर दिया। इन्हीं स्वामी जी के जीवन की एक दिव्य झाँकी हम विज्ञ पाठकों के सामने प्रस्तुत कर रहे हैं।

वंश तथा जन्म

उत्तरप्रदेश के सीतापुर मण्डल के वाड़ी नामक ग्राम में स्वामीजी का जन्म एक मध्यमवर्गी सनातनधर्मी कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ था। पिता का नाम था संगमलाल शुक्ल। वे स्वभाव से भगवान् सदाशिव महादेव के अनन्य उपासक थे। उन्हीं की धर्मपत्नी की कोख से १७४२ शाके (१८२० ई०) में स्वामीजी का आविर्भाव हुआ था। बाल्यकाल का इनका नाम था **वंशीधर**। ये बाल्यकाल में बड़े ही हृष्ट-पुष्ट शरीर के चपल शिशु थे। इनका जन्म इनके ननिहाल में हुआ था। इनके नाना लक्ष्मी के कृपापात्र थे। इनके मामा पण्डित लक्ष्मीधर शर्मा हैदराबाद के निजाम की सेना में एक वरिष्ठ अधिकारी थे। बालक की तीव्र बुद्धि तथा अलौकिक व्यवहार को प्रत्यक्ष करने वाले स्थानीय लोग इन्हें योगभ्रष्ट व्यक्ति मानने लगे थे।

बाल्यकाल में एक ऐसी घटना घटी जिससे इनकी योगभ्रष्टता का प्रमाण लोगों को मिलने लगा। जब ये तीन-चार साल के ही थे, तब इन्हें अपस्मार रोग (लकवा) हो गया। इस आकस्मिक रोग के निवारण के लिए माता-पिता तथा बन्धुजनों ने बड़ा उद्योग किया, बड़े तथा कुशल चिकित्सकों से चिकित्सा कराई, परन्तु रोग में ह्रास नहीं हुआ। तब इन्होंने अपने पिता से कहा—"पिताजी, मेरे रोग का निवारण किसी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औषध से नहीं होगा, कुटिया के ऊपरी खण्ड में रखी हुई पुस्तक को देखने से मेरा यह रोग निवृत्त हो सकेगा।" पिताजी ने खोज की परन्तु पुस्तक मिली नहीं। तब उन्होंने इसे प्रलाप मानकर उसकी अवहेलना की और किसी प्रकार बालक के रुग्णावस्था में ही दिन बीतने लगे। कुछ समय बाद एक विचित्र घटना हुई। इनके गाँव के पास कीर्णा तथा मञ्जीरा नामक नदियों के संगम पर वसन्त काल में मेला लगता था। उस साल भी वह मेला वहाँ लगा। उसमें जाने के लिए बालक ने बड़ा हठ किया। फलतः इनके मामा इन्हें उस पवित्र संगम स्थल पर ले गये तथा स्नानादि करने के बाद तीर पर ही एक कुटिया में रहने वाले योगीश्वर के आश्रम में जब जाने लगे, तब यह बालक वहाँ अपने भी जाने के लिए आग्रह करने लगा। मामा बालक को लेकर उस आश्रम में गये, बालक ने उस आश्रम के संन्यासीजी को प्रणाम किया और कहने लगा—"इस कुटिया के ऊपर मेरी पुस्तक रखी हुई है। उसे मँगवाइये, तब मेरा रोग हट जाएगा।" आदमी उसे खोजकर ले आया। वह पोथी जो कपड़े के बेठन में बँधी थी, बालक को दी गई। बालक उसे अपने हाथ में लेकर बोल उठा—'बस अब मेरा रोग हट गया। अब मैं भला चंगा हो गया।' मठ के स्वामी जी इस घटना को देखकर अचंभित हुए और विश्वास-भरे शब्दों में कहा कि यह बालक हो न हो इस मठ का अधिपति मेरा गुरु है। तीस साल पूर्व मेरे गुरु जी का यहीं स्वर्गवास हुआ था। मृत्यु के कुछ दिन पूर्व ही वह कहा करते थे—"कुटिया के ऊपर गीता की मेरी पोथी रखी हुई है। उसे ले आओ। उसके दर्शन से ही मैं रोगमुक्त हो जाऊँगा।" पुस्तक बहुत परिश्रम से खोजने पर भी न मिल सकी। आश्चर्य है कि वही पुस्तक आज मिल गई। इस बालक को इस तथ्य की स्मृति आज भी जागरूक रही। फलतः ये मेरे गुरु जी का अवतार है। गृहस्थी में तो यह रहेगा ही नहीं। यह कोई विशिष्ट मनीषी महात्मा होगा। आप लोग इसकी विधिवत् सेवा करें।"

सैनिक वृत्ति

माता-पिता बालक को लेकर घर लौटे, परन्तु उनके भाग्य में इस बालक के अलौकिक चरित्र देखने का सुयोग नहीं था। कुछ ही दिनों के बाद वे दोनों अपने भविष्णु आत्मज को मातुल की संरक्षता में देकर स्वयं स्वर्गवासी हो गये।

बालक के मामा स्वयं सेना के वरिष्ठ अधिकारी थे। उन्होंने अपने भांजे को उसी सैनिक सेवा के लिए तैयार करने की अभिलाषा से उसकी शारीरिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। अश्वारोहण, खड्ग-सञ्चालन आदि के शिक्षण के साथ ही व्यायाम पर अत्यधिक बल देने पर बालक का शरीर बड़ा ही हृष्ट-पुष्ट हो गया। १८ वर्ष के वय में मामा वंशीधर को अपने साथ हैदराबाद ले गये और वहीं निजाम की सेना में इन्हें किसी सैनिक पद पर नियुक्त करा दिया।

वंशीधर को भौतिक सौख्य की सब सामग्री उपलब्ध थी। मामा ऊँचे पदाधिकारी थे। कमी ही क्या हो सकती थी? परन्तु इनका मन उस कार्य से उचट गया। ये

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जंगलों में प्रायः जाकर एकान्त चिन्तन किया करते थे। फलतः जन्मान्तर की सुप्त विरक्त भावना अवसर पाकर प्रबुद्ध हो उठी। निजाम की नौकरी छोड़ कर ये तीर्थों में विद्वानों तथा विरक्त महात्माओं के दर्शन के लिए हैदराबाद से उत्तर की ओर चल निकले।

स्वामीजी की उत्तराखण्ड यात्रा

प्रथमतः इन्होंने गोदावरी के तट पर नासिक में अपना आसन जमाया। वहीं मठ में निवास करते हुए इन्होंने वेदों का अध्ययन किया और तीन वर्षों तक वहाँ निवास किया। अनन्तर ये ब्रह्मावर्त में आये और गंगा के तीर विठूर में निवास किया। इन्हीं दिनों अन्तिम पेशवा पूना के अनेक पण्डित जनों तथा समासदों, वरिष्ठ मंत्रियों के संग में विठूर में ही रहते थे। यहीं रहकर वंशीधर जी ने **श्रीराघवेन्द्राचार्य** नामक पण्डित से व्याकरण का अध्ययन शुरू किया और तीन वर्षों में ही इन्होंने पाणिनीय व्याकरण के माष्यान्त ग्रन्थों का विधिवत् अध्ययन तथा मनन किया। विठूर से चलकर ये हरिद्वार के मार्ग से बदरिकाश्रम गये। भगवान् बदरीनाथ का दर्शन कर ये उसी रास्ते से लौट आये और तीन वर्ष हरिद्वार में निवास कर कठिन तपस्या द्वारा अपने को संन्यासी जीवन के लिए तैयार कर लिया।

स्वामी जी : काशी में

काशी प्राचीनकाल से विद्या का केन्द्र रही है और अध्यात्म विद्या के शिक्षण तथा अनुसन्धान के लिए इससे बढ़ कर भारतवर्ष में कोई भी विद्यापीठ नहीं है। मध्ययुग में काशी के संन्यासियों ने अपने विमल चरित्र एव प्रामाणिक रचना के द्वारा समस्त भारतवर्ष के संन्यासियों के लिए एक अनुपम आदर्श प्रस्तुत किया जो नितान्त अनुकरणीय तथा श्लाघनीय है। ब्रह्मचारी वंशीधर शुक्ल ने इसीलिए संन्यास आश्रम में दीक्षा लेने के लिए काशी के निमित्त हरिद्वार से प्रस्थान किया और चार महीनों में पैदल यात्रा कर काशी आये। उन्होंने सुन रखा था कि काशी में दशाश्वमेघाट के समीप ही अहिल्याबाई घाट पर इस युग के नितान्त विश्रुत तथा मनीषी विद्वान् संन्यासी **श्री गौड स्वामी** निवास करते हैं। वे उस समय के काशीस्थ संन्यासियों के शीर्षस्थान पर विराजमान माने जाते थे। उनकी विद्या-बुद्धि उन्हें लोकातीत वैदुष्य से मण्डित करती हुई विद्वज्जनों के हृदय में दृढ़ भक्ति तथा गाढ़ अनुराग उत्पन्न करती थी—

शास्त्रेषु प्रतिबुद्धधीर-धिषणः सिद्धान्तदीक्षागुरुः
वैराग्योज्ज्वलदीप-दीप्तमहसा रागं तमो ध्वंसयन्।
आत्मन्यात्मसमीक्षणव्यसनिना योगेन भास्वद्वपुः
साक्षादिन्दुललाटमूर्तिरनिशं भस्माङ्कभालस्थलः॥

यह पद्य उनके विशाल व्यक्तित्व तथा अद्भुत अध्यात्म ज्ञान के सामान्य आभास का द्योतक कर रहा है। वे योगिराज भगवान् शङ्कर के ही भास्वान् विग्रह थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वंशीधरजी को देखकर तथा उनका परीक्षण कर गौड स्वामी ने उन्हें खरा सोना पाया और संन्यासाश्रम में दीक्षित होने की उनकी अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए वे उद्यत हुए। शुभमुहूर्त में दीक्षा का यह पुण्यमय कार्य सम्पन्न हुआ। ब्रह्मचारी वंशीधर अब दीक्षित होने पर **विशुद्धानन्द सरस्वती** के नूतन अभिधान से प्रसिद्ध हुए। दर्शन के मार्मिक विद्वान् गौड स्वामी ने विशुद्धानन्दजी को दर्शन के नाना सम्प्रदायों का विधिवत् अध्ययन कराया। योगमार्ग के पथिक विशुद्धानन्दजी की बुद्धि बड़ी तीव्र तथा तलस्पर्शिनी थी। कुछ समय के अध्ययन से वे नाना शास्त्रों में—विशेषतः मीमांसा तथा अद्वैत वेदान्त में—नितान्त निष्णात हो गये। इन शास्त्रों के चूडान्त ग्रन्थों का उन्होंने आलोडन तथा अनुशीलन किया और गुरुजी के आदेश से वे श्रद्धालु छात्रों को इन गम्भीर शास्त्रों का अध्यापन भी करने लगे। इनकी विपुल कीर्ति से आकृष्ट होकर अन्य प्रान्तों से भी छात्र यहाँ आने लगे और स्वामीजी के उपदेश तथा शिक्षण से प्रौढ़ विद्वत्ता के अधिकारी बन गये। समय बीतते देर नहीं लगती। गौड स्वामीजी नितान्त वृद्ध थे ही। १९१६ विक्रमी (१८५९ ई०) में वे कैलासवासी हो गये। उस समय विशुद्धानन्दजी अपने वैदुष्य, तपस्या तथा प्रभाव के चरम उत्कर्ष पर पहुँचे थे। गुरुजी की रिक्त गद्दी पर अभिषिक्त होकर ये विराजने लगे। गुरु के स्थान पर मठ का अधीश्वर बन कर गुरु जी की विद्या-परम्परा को आगे बढ़ाने का सुयोग प्राप्त कर लेना विशुद्धानन्दजी के जीवन के पूर्वार्ध की चरम परिणति थी।

स्वामीजी का सार्वभौम प्रभाव

विशुद्धानन्द स्वामी अलौकिक विद्वान् होने के अतिरिक्त सिद्ध महायोगी थे। उनके यहाँ सरस्वती तथा लक्ष्मी का नैसर्गिक विरोध शान्त हो गया था। जितने बड़े ये विद्वान् थे, उतने बड़े लक्ष्मी के कृपापात्र भी थे। चञ्चला लक्ष्मी प्रतीत होता था इनके यहाँ अपनी चपलता को त्याग कर स्थिरता धारण कर बैठी हुई है। यह वैभव अयाचित था, अप्रत्याशित था। उत्तर भारत के राजा-महाराजा उनके चरणों की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त कर अपने को धन्य मानते थे, अपने जीवन को कृतार्थ समझते थे और उनसे मन्त्रदीक्षा लेकर शिष्य बनने में अपना गौरव बोध करते थे। उत्तर भारत के समग्र प्रख्यात नरेश उनके मठ में समय-समय पर सेवाकार्य के लिए आते थे। स्वामीजी का सचमुच दरबार लगा करता था। द्वार पर चोबदार अपनी ड्यूटी बजाता था। कोई भी आगन्तुक तथा दर्शनार्थी—चाहे वह सामान्यजन हो या धनकुबेर नरेश हो—बिना उनकी आज्ञा के प्रवेश नहीं पा सकता था। स्वामीजी स्वयं राजसी ठाट-बाट से घिरे रहते थे, परन्तु इनके हृदय में विषयों के प्रति तनिक भी आकर्षण नहीं था। ये परम वैराग्य के अधिकारी पुरुष थे—विषयानुरक्ति से कोसों दूर, लौकैषणा के स्पर्श से वर्जित, परन्तु थे ये धनाढ्य भक्तजनों के आग्रह से साज-सज्जा के आवरण को आपाततः स्वीकार करने वाले महनीय सन्त पुरुष।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामीजी की विरक्ति

एक विचित्र घटना का उल्लेख उनकी मनोवृत्ति का साक्षात् परिचायक माना जा सकता है। एक बार हथुआ के महाराजा कृष्णप्रताप शाही स्वामी विशुद्धानन्दजी के स्थान पर दर्शनार्थ आये। परन्तु इन्हें बेशकीमत शय्या पर बैठे, सोने-चाँदी के बरतनों से घिरा हुआ देखकर उनके मन में बड़ा ही कौतूहल जागा। ऐं, स्वामी होकर इतना ठाट-बाट !!! उन्होंने अपने राजसी अभिमान के वशीभूत होकर पूछ ही तो डाला, "स्वामी जी महाराज, स्वामियों का धर्म तथा कर्तव्य क्या है ?" विशुद्धानन्दजी का इस बेहूदे सवाल पर रंज होना स्वाभाविक था। इन्होंने चोपदार को जोरों से पुकारा और कहा कि इस राजा को कान पकड़ कर हमारे मठ से बाहर निकालो। हथुआ महाराज इस आदेश को सुनते ही स्वामीजी को प्रणाम कर उलटे पाँव तुरन्त लौट आये। वे काशी-नरेश प्रभुनारायण सिंह के पास गये और अपनी गलती कह सुनाई और स्वामीजी को मनाने की बात उनसे पूछी। काशी नरेश (जो हथुआ महाराज के सजातीय ही नहीं, प्रत्युत सम्बन्धी भी थे) ने उन्हें बताया कि स्वामीजी बड़े दयालु हैं। ऐसा ऊटपटाँग सवाल तो उनसे पूछना नहीं चाहिए था आपको। आप स्वयं आदेश लेकर जाइए और उनसे क्षमा माँगिये। वे अवश्य क्षमा कर देंगे।

दूसरे दिन हथुआनरेश स्वामीजी का आदेश लेकर उनके पास गये और अपने दुर्व्यवहार के लिए क्षमा माँगी। विशुद्धानन्दजी ने बड़े सरलभाव से कहा—"राजा साहब, मेरे भक्त लोग ये उपहार मुझे दे जाते हैं और उनकी इच्छा रखने के लिए ही मुझे इन्हें व्यवहार में लाना पड़ता है। यदि ऐसा न करूँ, तो उन्हें क्लेश होता है, परन्तु मेरा मन इसमें तनिक भी नहीं रमता। मेरे लिए तो हाथ की हथेली ही पात्र है और बिस्तर से विहीन भूमि ही मेरे लिए सेज है। आपका पूछना उचित ही था। मैं आपसे अप्रसन्न नहीं हूँ।"

हथुआनरेश इस समुचित उत्तर से बड़े ही प्रभावित हुए और उन्होंने स्वामीजी की मनोवृत्ति के सच्चे रूप का परिचय पाया। वे स्वामीजी के केवल प्रशंसक ही नहीं बने, प्रत्युत उन्होंने उनका आज्ञाकारी शिष्य बनने में अपना अहोभाग्य माना।

स्वामीजी की शिष्यमण्डली

स्वामीजी महाराज की शिष्यकोटि में अन्तर्भुक्त होने वाले राजाओं में काश्मीर, ग्वालियर, इन्दौर, बूँदी, मिथिला तथा जयपुर के नरेशों के नाम उल्लेखनीय हैं। ये सब शासक लोग विशुद्धानन्दजी को अपना दीक्षागुरु ही नहीं मानते थे, प्रत्युत व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक उभय प्रकार की समस्याओं के समाधान के लिए भी इनके उपदेश तथा परामर्श को अपना मार्गदर्शक स्वीकारते थे। जम्बू-कश्मीर के महाराज प्रतापसिंह तथा मिथिलानरेश लक्ष्मीश्वर सिंह ने स्वामीजी से इनके मठ के खर्च के लिए विशेष द्रव्य देने के लिए आग्रह किया, परन्तु इन्होंने वह द्रव्य लेना अस्वीकार कर दिया और काशी में संस्कृत विद्यालय की स्थापना के लिए उस द्रव्य के उपयोग

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का आदेश दिया। दोनों राजाओं ने अपने अलग-अलग विद्यालयों की स्थापना स्वामी जी की आज्ञा से कर दी। काश्मीरनरेश ने **रणवीर संस्कृत पाठशाला** की स्थापना की जो आज हिन्दू विश्वविद्यालय के अन्तर्गत स्थित होकर विशेष उन्नति कर रहा है। दरभंगानरेश ने **दरभंगा संस्कृत पाठशाला** नामक एक बड़े ही सुव्यवस्थित विद्यालय की स्थापना की जिसमें महामहोपाध्याय पण्डित **शिवकुमार शास्त्रीजी** आजीवन अध्यापक रहे तथा म० म० दामोदर शास्त्रीजी एवं म० म० तात्या शास्त्रीजी भी गवर्नमेण्ट संस्कृतकालेज में नियुक्ति के पूर्व तक अनेक वर्षों तक छात्रों का अध्यापन करते थे। किसी समय में प्रथम श्रेणी का यह विद्यालय आज उपेक्षित दशा में अपना दिन काट रहा है।

काशीनरेश प्रभुनारायण सिंह भी विशुद्धानन्दजी के अनन्य सेवक थे तथा इनके धार्मिक आदेशों का विधिवत् पालन करते थे। वे संस्कृत भाषा तथा साहित्य के भी बहुत ही अच्छे जानकार थे। उनकी सुन्दर समस्यापूर्तियाँ भी संस्कृत की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थीं। उनकी रूपकमयी रचना 'पार्थपाथेय' के नाम से प्रकाशित है तथा विद्वानों में समादृत है। अवध मण्डलान्तर्गत 'सिसेंडी' राज्याधिपति योगीन्द्र त्रिपाठिवंशावतंस **राजा चन्द्रशेखर त्रिपाठी** स्वामीजी के द्वारा योगविद्या में दीक्षित होकर उच्चकोटि के योगाभ्यासी हो गए थे। वे हिन्दी में कविता भी करते थे। स्कन्द पुराण के उत्तरखण्ड में उमा-महेश्वर संवाद रूप में २७३ पद्योंवाली **गुरुगीता** पर्याप्त प्रसिद्ध है जिसमें गुरु की अलौकिक महिमा का प्रतिपादन किया गया है। राजा चन्द्रशेखर ने इसीका हिन्दी दोहा-चौपाइयों में बड़ा ही सुबोध अनुवाद किया जो काशी के ही 'काशी यन्त्रालय' में १९६९ विक्रमी (= १९१२ ई०) में मुद्रित होकर प्रकाशित है।

यह तो है स्वामीजी के भूमिपति शिष्यों का संक्षिप्त परिचय। अब मध्यवर्गीय शिष्यों का उल्लेख किया जाता है। इस कोटि के उनके शिष्यों की एक लम्बी परम्परा है। कतिपय प्रख्यात शिष्यों का उल्लेख पर्याप्त होगा। पण्डितप्रवर **दुःखभंजन कवीन्द्र** आपके गण्य-मान्य शिष्य थे। ये उस युग के काशीस्थ कविजनों में शीर्षस्थान के अधिकारी माने जाते थे। ये शाक्त तान्त्रिक थे जिनकी अलौकिक प्रतिभा की कथा काशी के विद्वत्समाज में पर्याप्त रूपेण विस्तृत तथा व्याप्त थी।

व्याख्यान-वाचस्पति **दीनदयालु शर्मा** जो सनातन धर्म के उपदेशकों में लब्धवर्ण विद्वान् थे स्वामीजी के ही शिष्य थे। शर्माजी अपने समय के सनातन धर्म के महनीय उपदेशकों में शीर्षस्थानीय, बड़े ही प्रौढ़ व्याख्याता थे। आर्यसमाज के विद्वानों से शास्त्रार्थ करने तथा सनातनधर्मी पक्ष के उन्नयन में पं० दीनदयालुजी का नाम सदा स्मरणीय रहेगा।[1] श्री बालशास्त्री के काशीलाभ हो जाने पर म० म० शिवकुमार पण्डितजी ने स्वामीजी से 'अद्वैतसिद्धि' का अध्ययन किया तथा 'खण्डनखण्डखाद्य'

१. द्रष्टव्य—म० म० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी : आत्मकथा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में प्रौढ़ता प्राप्त की। वैद्यराज उमाचरण कविराज ने दर्शन के ग्रन्थों का अध्ययन विशुद्धानन्दजी से किया। अन्तिम कोटि के शिष्यों में महामहोपाध्याय पण्डित प्रमथनाथ भट्टाचार्य का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने 'विजयप्रकाश'[1] नामक काव्य में विशुद्धानन्दजी का जीवन-चरित्र बड़े ही ललित छन्दों में लिखा है। इस काव्य में लम्बे-लम्बे वृत्तों में निबद्ध २०८ पद्य हैं। भाषा सुबोध तथा शैली प्रसादमयी है। ग्रन्थ के अन्त में इन्होंने अपने पिता का नाम ताराचरण भट्टाचार्य लिखा है (२०७ पद्य) जो काशीनरेश ईश्वरीनारायण सिंह के सभा-पण्डित थे। प्रमथनाथजी आगे चलकर हिन्दू विश्वविद्यालय के 'संस्कृत महाविद्यालय' के अध्यक्ष बने थे। उस समय (१८६१ ई०) में ये दरभंगा संस्कृत पाठशाला में अलंकार तथा न्यायशास्त्र के अध्यापक थे। काशीनरेश प्रभुनारायण सिंह की आज्ञा से संस्कृत में प्रणीत यह काव्य स्वामी जी की जीवन घटनाओं की जानकारी के लिए सर्वथा प्रामाणिक एकमात्र ग्रन्थ है। यह स्वामीजी के जीवित काल में प्रकाशित हुआ था।

एक बार स्वामीजी अपनी शिष्यमण्डली के साथ हरिद्वार यात्रा पर गये थे गंगा स्नान के निमित्त। अपनी पूर्वपरिचित तपःस्थली हरिद्वार का पुनः दर्शन कर ये अत्यन्त प्रसन्न हुए। सम्भवतः इसी यात्रा के अवसर पर काश्मीरनरेश रणवीर सिंह इन्हें बड़े आदर-सत्कार के साथ अपनी राजधानी श्रीनगर ले गये थे। कुछ दिनों तक स्वामीजी ने वहीं निवास किया। अनन्तर ये काशी लौट आये। लौट आने पर दरभंगा-नरेश लक्ष्मीश्वर सिंह ने प्रवास की बातें पूछीं और किसी विचित्र वस्तु के निर्देश करने के लिए संकेत किया। स्वामीजी ने कहा—"वहाँ मैंने बड़ी सुन्दर बावडी देखी जिसमें नहाने-धोने का उत्तम प्रबन्ध था। इसी प्रकार की बावडी काशी में बन जाय, तो जनता का बड़ा हित हो।" स्वामीजी का संकेत ही पर्याप्त था। लक्ष्मीश्वर सिंह ने रोहनिया थाने के पास, काशी से आठ-दस मील की दूरी पर, स्वामीजी के मठ के पास ही एक बड़ी विशाल बावड़ी बनवा दी जो आज भी जनता का कल्याण कर रही है। उसी के किनारे गणेश तथा मारुतनन्दन हनुमानजी की विशाल मूर्ति की स्थापना की गई है। स्वामीजी प्रतिवर्ष गणेशजी का विधिवत् पूजन किया करते थे और उस माध्यम से अपने शिष्यों को कर्मकाण्ड की मानों शिक्षा दिया करते थे। यह गणेश की स्वच्छ संगमर्मर की बड़ी ही भव्य तथा सुन्दर प्रतिमा है। हनुमानजी की मूर्ति काले पत्थर से निर्मित है। आज भी ये दोनों मूर्तियाँ उसी स्थान पर विराजमान हैं तथा सर्वथा दर्शनीय हैं।

स्वामी विशुद्धानन्दजी उपनिषदों के विलक्षण विद्वान् थे। उनमें बहुत-सी विद्याएं उल्लिखित हैं जिनका गूढ़ रहस्य समझना आजकल नितान्त दुर्लभ है। तथ्य यह है कि ये विद्याएँ उदात्त योग के सहारे ही गम्य हैं और नितान्त व्यावहारिक हैं। इसके

---

१. वाराणसी के 'अमर यन्त्र' नामक प्रेस में मुद्रित, १९४८ विक्रमी (=१८९१ ई०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए आवश्यकता है योगी गुरु की, जो उनका अभ्यास स्वयं व्यवहारतः करता हो और तद्रूप ही शिक्षा प्रदान करता हो। इन औपनिषद विद्याओं के ज्ञाता की कमी अवश्य है। विशुद्धानन्दजी योगविद्या के पारंगत विद्वान् थे। फलतः उन विद्याओं के रहस्य को समझने-समझाने में उनकी अद्भुत क्षमता थी। मृत्यु समीप आने पर प्राणोत्सर्ग विद्या के द्वारा उपनिषद् प्राणों के विसर्जन की शिक्षा देता है। स्वामीजी इस विद्या को पूर्णतः जानते थे। अध्यापन के समय वे इसका रहस्य शिष्यों को बताते ही थे। अन्तकाल में उन्होंने इसी विद्या का आश्रयण कर अपने प्राणों का विसर्जन किया था। अपने शिष्यों से कह दिया कि अब मेरे जाने का समय है। मुझे एकान्त में रहने दो और कोई मुझसे बातचीत न करे। वे आसन मार कर बैठ गये और इस औपनिषद विद्या की पद्धति से अपने प्राणों के उत्क्रमण को सिद्ध किया। तीन दिनों तक वे लगातार बैठे रहे और अन्त में उनका कैलासवास हो गया। इसके प्रत्यक्षदर्शी म० म० प्रमथनाथजी ने इसका विधिवत् वर्णन किया है। यह घटना १९५६ वि० सं० की है जब स्वामीजी ८० वर्ष की आयु के थे।

स्वामीजी के ग्रन्थ

स्वामी विशुद्धानन्दजी की कृतियों से हमें परिचय नहीं है, परन्तु बहुत खोज करने पर उनकी हिन्दी में **कपिलगीता** की व्याख्या उपलब्ध हुई है। इस ग्रन्थ की रचना स्वामी जी ने अपने प्रिय शिष्य अवधमण्डल के अन्तर्गत सिसेण्डीपुर के अधिपति राजा चन्द्रशेखर शर्मा त्रिपाठी की प्रार्थना से की थी और इसका प्रकाशन उन्हीं के दूसरे शिष्य पण्डित वासुदेव त्रिपाठी ने सं० १९४६ विक्रमी (फाल्गुन कृष्ण द्वादशी, रविवार) को किया था (१८८९ ई०)। काशी के ही 'अमर यन्त्रणालय' में ग्रन्थ का मुद्रण हुआ था। ग्रन्थ के अन्त में स्वामी जी ने अपने अधीत ग्रन्थों की एक लम्बी सूची दी है जिसमें न्याय, वेदान्त तथा योग के महत्वपूर्ण ग्रन्थों का नाम उल्लिखित है। लिखा है कि "इन ग्रन्थों का गुरुमुख से अध्ययन करके अध्यापन भी किया। तदनन्तर अर्थवश से कालवचन का अनादर कर के मनुष्य मात्र के उपकारार्थ योग का अत्यन्त उपकारी जान के इस कपिलगीता की व्याख्या करके निजछात्र पण्डित वासुदेव त्रिपाठी से लिखवाया।" इसमें विशुद्धानन्दजी ने अपने गुरु का नाम उल्लिखित किया है—**'तारक ब्रह्मानन्द सरस्वती'**। ग्रन्थ के समापन का काल निर्दिष्ट है—संवत् १९४६ (१८८९ ई०) फाल्गुन कृष्ण पञ्चमी सोमवार।

'कपिलगीता' के प्रवक्ता योगीश्वर कपिल ऋषि हैं। यह पद्मपुराण के अन्तर्गत बतलाया गया है। इसमें पाँच अध्याय हैं। कपिलगीता आदि से अन्त तक योगशास्त्र के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक उभयपक्षों से सम्बद्ध तत्त्वों का विस्तार से विवेचन प्रस्तुत करती है। समस्त ग्रन्थ योग के पारिभाषिक शब्दों का भण्डार प्रतीत होता है। इसकी व्याख्या करने में योगशास्त्र के सिद्धान्त तथा व्यवहार उभयपक्ष का ज्ञाता व्यक्ति ही समर्थ हो सकता है और स्वामी विशुद्धानन्दजी में यह योग्यता प्रभूत मात्रा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में थी। इसीलिए उनकी व्याख्या नितान्त सरल एवं प्रामाणिक है। स्वामी जी बड़े भारी योगी थे और कहा गया ही है कि देह त्यागने के समय जो प्रकार उपनिषदों में वर्णित है, उसी का अनुगमन कर उन्होंने अपना यह पाञ्चभौतिक शरीर छोड़ा था। फलतः वे इस गीता की व्याख्या करने के सर्वथा अधिकारी थे। एक ही उदाहरण यहाँ नमूने के तौर पर प्रस्तुत किया जाता है।

प्रथम अध्याय का २३वाँ श्लोक है—

पिपीलिका विहङ्गश्च कपिमार्गो हि मीनकः।
शेषमार्गो हि संख्यायां पञ्चमार्गाः पुरातनाः॥

इसकी व्याख्या स्वामीजी के शब्दों में इस प्रकार है—"ये जो पञ्च मार्ग हैं उसमें पिपीलिका मार्ग यह है कि—वृक्ष के अग्र में जाय के भी पिपीलिका दो पाँव को उठवाता है अवलम्ब मिले तो और बड़े शनैः-शनैः पूर्व भूमी का अवलम्बन करके उत्तर भूमी को अवलम्बन करता है ऐसे योगी अध ऊर्त्ध्व शून्य को अवलम्बन करके निःशून्य में जाता है। विहंगम मार्ग यह कहावे जो कि षट् चक्रादिकों से अनपेक्ष योगी सप्तम चक्र जो पुण्याद्रि वहाँ मन को ले जाता है। कपि मार्ग वह कहावे जिस भूमि को जय कर्ता है योगी उसको नहीं छोड़ता जैसा कि कपि मुट्ठी में जो धरता उसको नहीं छोड़ता। मीन मार्ग वह कहावे जैसा की मीन उलटी धारा पर चलता है तैसा योगी मणिबल से अधो भाग से ऊर्त्ध्व भाग ब्रह्मरंध्र तक जाता है। शेष मार्ग वह कहावे जैसा कि सर्प बिल में जाय के निष्क्रिय होयके वायु पीता है ऐसे ही योगी ओट पीट अथवा पुण्याद्रि पर जाय के निष्क्रिय होता है।"—(कपिलगीता पृष्ठ १५-१६)

स्वामी जी की व्याख्या जैसी मुद्रित है वैसी ही ऊपर लिखित है। इसके पढ़ने से योग के इन सुप्रसिद्ध मार्गों का परिचय पूर्णतया मिलता है। साथ ही साथ हिन्दी के वाक्यों का प्रयोग तथा शब्दों की वर्तनी जिस प्रकार आज से नब्बे वर्ष पहले काशी के संन्यासियों द्वारा प्रयुक्त होती थी, उसकी भी एक झलक ऊपर के सन्दर्भ के अनुशीलन से मिल जाती है। इस भाषादृष्टि से भी इस पूरे ग्रन्थ का महत्त्व है।

स्वामी दयानन्द के साथ शास्त्रार्थ

स्वामी विशुद्धानन्दजी के जीवन की महती उपलब्धि थी स्वामी दयानन्दजी के साथ शास्त्रार्थ विचार में विजयश्री का संवरण। यह महत्त्वशाली ऐतिहासिक शास्त्रार्थ काशी में दुर्गाकुण्ड के समीपस्थ राजा अमेठी के 'आनन्द बाग' में सम्पन्न हुआ था। दयानन्द स्वामीजी का आवास इसी स्थान पर था। फलतः शास्त्रार्थ का यही स्थल था। समय था १९२६ सं० वि० की कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी मंगलवार, तदनुसार १८६९ ई० के नवम्बर की कोई तारीख। ४८ वर्षीय काशीनरेश महाराजा ईश्वरीनारायण सिंह अध्यक्ष के स्थान पर अपने १४ वर्षीय राजकुमार प्रभुनारायण सिंह के साथ विराजमान थे। उनके प्रधान सभापण्डित ताराचरण तर्करत्न भट्टाचार्य महाराज के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ उपस्थित थे। ये तर्करत्नजी साहित्य तथा न्याय के विशेष विद्वान् थे, अनेक ग्रन्थों के प्रणेता थे तथा महाराजा के धार्मिक कृत्यों के विमर्शदाता महनीय विद्वान् थे। काशी की विद्वन्मण्डली की ओर से दो ही प्रतिनिधि शास्त्रार्थ के लिए चुने गये थे — मनीषी योगिराज विशुद्धानन्द सरस्वती और पण्डिताग्रगणी बालशास्त्री। ४५ वर्षीय स्वामी दयानन्द वेद-विरुद्ध तथा वेदों में अनिर्दिष्ट किसी भी धार्मिक सिद्धान्त को मानने के लिए तैयार नहीं थे। उनका आग्रह था कि आजकल हिन्दू धर्म में मूर्तिपूजा, श्राद्ध आदि धार्मिक मान्यताएँ वेदविरुद्ध हैं। अतएव वे नितान्त अग्राह्य हैं।

काशी के पण्डितों के साथ इस शास्त्रार्थ का विषय था—**मूर्तिपूजा**। उस सभा में काशी के मान्य पण्डितों के संग में काशी की धार्मिक जनता प्रभूत संख्या में उपस्थित थी। इस शास्त्रार्थ में सम्मिलित होने वाले चालीस विद्वानों के नाम 'वेदवाणी' पत्रिका के प्रथम वर्ष (नवम्बर १९७०, पृ० १५) के अङ्क में दिये गये हैं वे यथार्थ हैं। ये पण्डित उस समय काशी में निवास कर रहे थे। पण्डितों के अतिरिक्त काशी के प्रख्यात रईस तथा कवि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र अपने अनुज गोकुलचन्द्र जी के साथ सभा में उपस्थित थे। काशी के बाहर के कुछ मान्य सज्जन थे। यह तो सब ठीक है, परन्तु जनता की उपस्थिति ६० हजार लिखी गई है—यह कुछ अत्युक्ति-सी प्रतीत हो रही है। काशीवासियों में इस शास्त्रार्थ की विशेष चर्चा थी ही। इसके दो प्रकार के विवरण उपलब्ध होते हैं। आर्यसमाज का तथा सनातन धर्म का। उस समय की मान्य '**प्रत्नकम्प्रनन्दिनी**' नामक संस्कृत मासिक पत्रिका में संस्कृत में एक विवरण निकला था जिसके आधार पर पण्डित मथुराप्रसाद दीक्षित (आगे चलकर वे महामहोपाध्याय हुए) ने '**सच्चा काशी शास्त्रार्थ**'[1] नामक हिन्दी पुस्तक १९१६ ईस्वी में प्रकाशित की थी। उसका पुनर्मुद्रण द्वितीय तथा तृतीय संस्करण के रूप में दो बार प्रकाशित हुए हैं (सन् १९६९ में तथा सन् १९७२ में) उसी के आधार पर यहाँ प्रस्तुत है—

शास्त्रार्थ का संक्षिप्त विवरण

समय—अपराह्न कार्तिक सुदी १३, सं० १९२६।

स्थान—आनन्द बाग, दुर्गामन्दिर के समीप (वाराणसी)।

काशीनरेश—अपने सभापण्डित ताराचरण तर्करत्न को आदेश दिया कि शास्त्रार्थ आरम्भ कीजिए। मैं भी वादी तथा प्रतिवादी के कथनों का सारांश समझ कर पक्षपात-शून्य होकर विचार को सुनने के लिए सावधान बैठा हूँ।

ताराचरण (बोलने के लिए उद्यत होते हैं)।

दयानन्द—प्रतिमापूजन वेद में कहाँ लिखा हुआ है? उत्तर एक ही व्यक्ति एक बार दे।

---

१. सम्पादक स्वामी केशवपुरीजी तथा प्रकाशक, शक्ति प्रकाशन संन्यासी संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी। प्रकाशन के लिए दोनों सज्जन धन्यवाद के पात्र हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताराचरण – केवल वेद ही प्रमाण हैं और कुछ (स्मृति, इतिहास, पुराण आदि ग्रन्थ) प्रमाण नहीं हैं। इसमें क्या प्रमाण है ?

दयानन्द—वेद में जो नहीं मिलता है, वह अप्रमाण ही है, वह कथमपि प्रमाण नहीं है।

ताराचरण—क्यों ? अर्थात् जो वेद में न मिले, परन्तु स्मृति, पुराण आदि में उपलब्ध हो, वह प्रमाण क्यों न माना जाय ? इसमें प्रमाण क्या ?

दयानन्द—वेदविरुद्ध वस्तुओं का प्रमाण नही है।

ताराचरण—आपके इस कथन में क्या प्रमाण है ?

दयानन्द – इसमें प्रमाण है श्रुति एवं मनुस्मृति।

ताराचरण—उसी को बताइए। जो वेदमन्त्र वेदातिरिक्त स्मृति, पुराण, इतिहास, सदाचार के प्रामाण्य का निषेधक है, उसे कहिए। अथवा मनुस्मृति का वह श्लोक ही बतलाइए जिसमें यह तथ्य प्रतिपादित है।

दयानन्द – प्रामाण्य विचार आगे होगा। इस समय प्रस्तुत वेदविचार कीजिए।

ताराचरण—कैसा वेदविचार करना चाहते हो ? वेद के नित्यत्व-अनित्यत्व का विचार ? अथवा वेद की प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता का विचार ?

दयानन्द पत्थर की प्रतिमा का पूजन वेद में है या नहीं ? यही विचार करना चाहिए।

ताराचरण—वेद के समान स्मृति आदि का भी प्रामाण्य हमें स्वीकृत है। पुराणादिकों में प्रतिमापूजन का विधान है। तब प्रतिमा का पूजन शास्त्र से सम्मत सिद्ध हो ही जाता है।

दयानन्द – वेद से अतिरिक्त प्रमाण नहीं होते। हम स्मृति तथा पुराण का प्रमाण नहीं मानते।

ताराचरण—आपके कथन का प्रमाण क्या है ? वेदविरुद्ध का प्रामाण्य क्यों नहीं स्वीकृत होता ?

दयानन्द वेदविरुद्ध का प्रामाण्य नहीं होता।

ताराचरण—वेदविरुद्ध क्या है ? स्मृति, इतिहास आदि तो वेदविरुद्ध नहीं हैं। तब 'वेदविरुद्ध' किसे कहते हैं ?

दयानन्द—जो वेद में नहीं है, वह वेदविरुद्ध है।

ताराचरण—यह वेद का कथन है अथवा श्रीमान् जी का कथन है ?

दयानन्द—आपके प्रश्न का उत्तर मैं पीछे दूँगा। प्रस्तुत बात यही है कि वेद में प्रतिमापूजन है या नहीं।

बालशास्त्री—वेद में अनुक्त वस्तु (जिसका कथन नहीं किया गया है) अप्रमाण है इस कथन में क्या हेतु है। इसका विचार आरम्भ में करना चाहिए।

दयानन्द—श्रुति, स्मृति आदि का मूल वेद है। मनु, कात्यायन, महाभारत आदि इसके प्रमाण हैं। जिस प्रकार मन्त्रादिकों का तथा वेदान्त मीमांसा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सूत्रों का मूल वेद है, उसी प्रकार प्रतिमापूजन का वेद में मूल दिखलाइए ।

विशुद्धानन्द स्वामी—क्या बारम्बार आप कहते हैं कि वेदान्तसूत्रों का मूल वेद है । यदि यह बात है तो बताओ 'रचनानुपपत्तेश्च नानुमानं प्रमाणम्' इस ब्रह्मसूत्र (२।२।१) का मूलभूत वेद कहाँ है ?

इसका उत्तर दयानन्द स्वामी से नहीं हो सका, उन्होंने स्वीकारा कि मुझे सब वेद कण्ठस्थ नहीं है । मैं इसका उत्तर नहीं दे सकता । विशुद्धानन्दजी को लक्ष्य कर उन्होंने पूछा कि यदि आपको सब उपस्थित है, तो धर्म का लक्षण बताइये । इसके उत्तर में विशुद्धानन्दजी ने मीमांसासम्मत धर्म का लक्षण झट से कह दिया—**चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः** । जब उन्होंने धर्म के एक ही लक्षण होने की बात कही, तो दयानन्दजी बोल उठे—धर्म के दस लक्षण हैं । मनु ने लिखा है—**धृतिः क्षमादमोऽस्तेयः** आदि । इस पर ताराचरण जी ने कहा—ये दसो धर्म के लक्षण थोड़े ही हैं, प्रत्युत ये तो अनुमापक-हेतु हैं ।

दयानन्दजी ने इस पर क्रुद्ध होकर विशुद्धानन्दजी की ओर झुक कर पूछा—तुम बोलो स्वामी धर्म में कौन श्रुति है अर्थात् धर्म के मानने में कौन वेद का आधार है । विशुद्धानन्दजी झट बोल उठे—अग्निहोत्रं जुहोति आदि । दयानन्द स्वामी ने देखा कि शास्त्रार्थ बढ़ता चला जाता है । अतः उसे समाप्त करने की दृष्टि से उन्होंने अपने प्रश्न का उत्तर स्वयं दिया कि वेद में प्रतिमापूजन का कहीं विधान नहीं है । सामवेद में केवल एक बार प्रतिमा का निर्देश है, परन्तु वह इस भूलोक की बात न होकर ब्रह्म-लोक की बात है ।

[यह निर्देश सामवेद के षड्विंश ब्राह्मण के पञ्चम प्रपाठक के दशम खण्ड में उप-लब्ध है 'यदाऽस्यामुक्तानि यानानिवर्तन्ते' आदि । इसका अर्थ है कि बैलों के बिना गाड़ी अपने आप चलने लगे अथवा देवता की प्रतिमा हँसती हो, रोती हो, गाने लगे, नाचने लगे, आँख निकाल कर देखने लगे या आँखें मींचने लगे, तब 'इदं विष्णुर्विचक्रमे' मन्त्र से खीर की आहुति देनी चाहिए । इसे स्वामीजी ब्रह्मलोकपरक होने में प्रसंग तथा सन्दर्भ को कारण मानते हैं । यह **'अद्भुत शान्ति'** का प्रकरण षड्विंशब्रा० में है । ऊपर निर्दिष्ट अद्भुत अर्थात् उत्पात (असाधारण घटना) घटित होने पर लोगों को शान्ति करनी चाहिए ।]

ब्रह्मलोकपरक होने की बात कहने पर बालशास्त्री ने आपत्ति उठाई । आप जैसा तात्पर्य समझ रहे हैं, वैसा तात्पर्य नहीं निकलता । आपके दिये उद्धरण में **'अन्वावर्तन'** शब्द आया है । इसका अर्थ है—'अनु = अनुलक्ष्यीकृत्य आवर्तनम्' अर्थात् ब्रह्मलोक में जब उपद्रव हो, तब उसके लिए शान्ति करनी चाहिए । कहाँ ? इस मर्त्यलोक में ही तो । जब उनसे पूछा गया कि ब्रह्मलोक में कौन करेगा ? तब उन्होंने बताया—स्वर्ग आदि लोक में इन्द्रादिक देवता हैं या नहीं ? इस पर विशुद्धानन्दजी ने कहा कि मन्त्रमयी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवता अर्थात् देवता मन्त्रात्मक होते हैं। इन्द्र आदि देवता के तत्तत् वैदिक मन्त्र ही स्वरूप हैं, उनकी देह होती ही नहीं, तब शान्ति करेगा ही कौन ? इस पर दयानन्दजी ने उपासना की बात उठाई। उपासना ऐसे देवता की कैसे होती है ? विशुद्धानन्द—प्रतीकोपासना ही होती है। वेद की सहस्र से ऊपर शाखाएँ हैं। उन्हीं किसी में यह रहस्य उद्घाटित है।

दयानन्दजी ने कहा—प्रतिवेद की केवल एक ही शाखा है। विशुद्धानन्दजी के द्वारा कृष्णयजुर्वेद की कठशाखा की बात पूछने पर स्वामीजी ने कहा कि मार्गप्रवर्तक होने से ऐसी शाखा हुई। इस पर काशीनरेश ने अपने अमात्यमण्डल की ओर लक्ष्य कर कहा—ऐसा भी क्या कभी होता है कि मार्ग के प्रवर्तक के नाम पर वेद की शाखा हो ?

विशुद्धानन्दजी वेद अपौरुषेय हैं, तब इनका प्रवर्तक कौन है ? इसके उत्तर में दयानन्दजी ने कहा - वेदों का प्रवर्तक ईश्वर ही है। इस उत्तर पर विशुद्धानन्दजी ने पूछा—किस प्रकार के ईश्वर में वेद रहते हैं - नित्य-ज्ञान-विशिष्ट ईश्वर में ? (न्याय) अथवा योगसिद्ध क्लेशादि शून्य ईश्वर में ? अथवा वेदान्त मतानुसारी सच्चिदानन्द ईश्वर में ? दयानन्दजी ने कुछ रोष में आकर अपनी पीठ से विशुद्धानन्दजी का हाथ हटाकर कहा कि तब आपने सब पढ़ लिया है। इसका स्वीकारात्मक उत्तर देने पर विशुद्धानन्दजी से आँखें लाल करके गरजकर पूछा - तब तो आपने व्याकरण भी पढ़ लिया है। बताइये—'कल्म' संज्ञा किसी की होती है ? इसके उत्तर में महावैयाकरण बालशास्त्री तुरन्त बोल उठे—"पतञ्जलि के महाभाष्य में एक स्थान पर परिहास में ही कल्म संज्ञा कही गई है, परन्तु यह प्रकृत संज्ञा नहीं है (आशय यह है कि पाणिनीय व्याकरण की संज्ञाओं का वास्तव उपभोग होता है। वे पद की साधुता में उपकारक होती हैं। 'कल्म संज्ञा' इस प्रकार की नहीं है। अतएव उसकी चर्चा करना अनावश्यक और असामयिक है)। प्रकृत विचार में संलग्न होकर आप अप्रकृत की चर्चा क्यों करते हैं ? प्रकृत विचार है पुराणों को वेद-विरुद्धता। तो इसी को सिद्ध कीजिए। अन्य चर्चा की क्या जरूरत ? इस पर दयानन्दजी (सम्हल कर बैठ) पूछने लगे—पुराणों में ही म्लेच्छ भाषा के अध्ययन का निषेध है। वेद में कहाँ है ? बतलाइये। बालशास्त्री ने झट से उत्तर दिया—**न म्लेच्छितवै नापभाषितवै** अर्थात् म्लेच्छ भाषा न बोले और अपशब्द नहीं कहे—यही वैदिक वाक्य का प्रमाण है। इसका अर्थ विशुद्धानन्दजी ने किया कि शूद्र श्मशान के तुल्य होता है। अतः शूद्र के समीप वेद न पढ़ना चाहिए। दयानन्दजी ने आरोप लगाया-- यह संहिता है या ब्राह्मण ? पुस्तक मँगाइये तो निर्णय हो (यह ब्राह्मण का वाक्य है। दयानन्दजी प्राचीन परम्परा का उल्लंघन कर इसे वेद नहीं मानते थे)।

जब दयानन्दजी ने वेदान्ताभिमत ईश्वर में वेद का निवास बताया, तब विशुद्धानन्दजी ने कहा कि सच्चिदानन्द तो निराकार ब्रह्म है, उसमें वेदों का रहना कैसे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्भव हो सकता है ? इस पर कुछ वाद-विवाद चला। विशुद्धानन्दजी ने दयानन्दजी की पीठ पर बाँया हाथ रख कर हिन्दी में कहा—अरे बाबा, तूँ अभी कुछ पढ़ा नहीं। काशी में कुछ दिनों तक पढ़। (हँसकर)—

घटं छित्त्वा पटं भित्त्वा कृत्वा गर्दभरोहणम्।
येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत्॥

किसी विषय का प्रमाण खोजने के लिए दयानन्द स्वामी ने काशीनरेश से वेद की पुस्तक लाने को कहा, तो महाराज ने सिर नीचा कर कहा—पण्डितों को तो सब कण्ठस्थ ही है, पोथी की क्या जरूरत ? आगे चलकर पुराणों की वैदिकता का प्रसंग उपस्थित हो गया। दयानन्दजी का कहना था कि जहाँ वेदों में 'पुराण' शब्द आया है, वहाँ वह विशेषण है। पुराण का प्रामाण्य है ही नहीं। इस पर माधवाचारी ने तैत्तिरीय श्रुति का प्रमाण उद्धृत किया—

यदा गच्छन् पथिभिर्देवयानै-
रिष्टापूर्ते कृणुतादाविरस्मै।

यहाँ 'पूर्त' शब्द पौराणिक विधि-विधान को संकेत करता है। वापी तडाग आदि की पूर्त संज्ञा है। बताइए वापी आदि की उत्सर्ग विधि कहाँ है ? पुराण मे या वेद में ? पुराण में ही तो इस विधि का वर्णन है। फलतः श्रुति पुराण का सद्यः संकेत करती है।

दयानन्दजी ने पूर्त का यह अर्थ नहीं स्वीकारा। तब माधवाचारी ने कहा—वेद में साक्षात् रूप से भी पुराण शब्द प्रयुक्त है—

अजाह्वे ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पं गाथा नाराशसीमेवाहुः।

दयानन्दजी ने यहाँ 'पुराणानि' को 'ब्राह्मणानि' का विशेषण ही माना, स्वतन्त्र विशेष्यपद नहीं। इस पर विशुद्धानन्दजी का कहना था कि बीच में व्यवधान होने से यह दूरान्वय है। अतएवः यह पद विशेषण नहीं हो सकता। दयानन्दजी ने उत्तर में कहा कि व्यवधान कोई हानि नहीं करता—**अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे**' यहाँ दूरान्वय तथा व्यवधान होने पर कोई क्षति नहीं है। इस पर विशुद्धानन्दजी का उत्तर था कि इस वाक्य में सब शब्द विशेषण पद हैं विशेष्य पद के अभाव में वहाँ व्यवधान नहीं है। जब दयानन्दजी ने छान्दोग्य का यह वचन दिखा कर **ऋग्वेदं विजानाति··· ·····इतिहासपुराणं**, पुराण को विशेषण ही माना। इस पर सब समासद सिर हिलाकर कहने लगे--यह ठीक पाठ नहीं है, पाठ है **इतिहासः पुराणम्**। 'पुराणं' इतिहास का विशेषण हो नहीं सकता। क्योंकि यदि यह विशेषण होता, तो विशेष्य का समानलिंगी होता। पुंलिग 'इतिहास' शब्द विशेषण होने पर 'पुराण' को भी (पुराणः) पुंलिग ही होना चाहिए, पुराणं नहीं। इस कथन पर दयानन्दजी आत्म-विश्वास से गर्जते हुए बोल उठे--

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहासपुराणः इत्येवमेव पाठः इति । नोचेत् मत्पराजयः, अन्यथा युष्माकं पराजय इति लिख्यताम् ।

अर्थात् 'इतिहास पुराणः' यही पाठ है । यदि इतिहासः पुराणं निकल आवे, तो मेरी पराजय । यदि ऐसा न निकले तो आप लोगों की पराजय--इसे लिख लो । आत्म-विश्वास से उद्भावित उनकी यह अन्तिम घोषणा थी । इस पर माधवाचारीजी ने शतपथ ब्राह्मण के अश्वमेध के प्रकरण का वह अंश दिखला दिया जिसका अन्तिम अंश है--**तानुपदिशति पुराणं वेदः सोऽयमिति । किञ्चित् पुराणमाचक्षीत । एवमेवाध्वर्युः संप्रेष्यति । न प्रक्रमान् जुहोति ।**

--शतपथ ब्राह्मण १३।४।३।१५

'पुराणं वेदः' इस पाठ को देखकर दयानन्दजी ग्रन्थ का पन्ना अपने हाथ में लेकर बहुत देर तक उलट-पुलट कर देखते रहे और उसे लौटाकर चुप बैठ गये । **मौनं स्वीकारलक्षणम् ।** मौन होकर उन्होंने पुराण को वेद मान लिया । तब सब लोगों को मालूम हो गया कि पुराणप्रतिपादित मूर्तिपूजा वैदिक तत्त्व है—माननीय है तथा यथार्थ है । फलतः दयानन्दजी ने अपनी पराजय मौन होकर स्वीकार कर ली । विशुद्धानन्दजी बोल उठे—हर-हर महादेव । कहते हुए उठ खड़े हुए । सभा समाप्त हो गई । करतलध्वनि से आकाश गूँज उठा । काशीनरेश राजा ईश्वरीनारायण सिंह ने अपनी राजकीय घोषणा कह सुनाई—

पराजितो दयानन्दः । विजेता विशुद्धानन्दः

इस घोषणा के साथ ही वह ऐतिहासिक शास्त्रार्थ सभा समाप्त हो गयी ।[1]

शास्त्रार्थ की समाप्ति पर दयानन्दजी चिन्तित तथा अन्यमनस्क हो गये । पराजय की पीड़ा उनके हृदय को बेधने जो लगी । स्वामी विशुद्धानन्दजी तब दयानन्दजी की पीठ को अपने हाथों से ठोकते हुए बनारसी भोजपुरी में बड़े प्रेम से बोलने लगे—स्वामी, अभी नया मूँड़ मुँड़ौले हव । कुछ दिन काशी में रहिकै पंडितन के सहवास कर, कुछ सीखऽऽ तब वेद शास्त्र के मरम के पता लगी । धरम के मरम समझल बड़ा कठिन काम हवे । "धर्मस्यतत्त्वं निहितं गुहायाम्"—त जनते हवऽऽ । उदास भइले का अवसर कवन बाटे' । विशुद्धानन्दजी की प्रेममरी वाणी सुनकर दयानन्दजी मुसुकाने लगे, प्रसन्न हुए और इसी प्रसन्न वातावरण में यह ऐतिहासिक शास्त्रार्थ समाप्त हुआ ।

इस शास्त्रार्थ में विजयश्री का वरण हो स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती की महती उपलब्धि है जो सनातन धर्म के समुत्थान के इच्छुक विद्वज्जनों के द्वारा सर्वदा समादृत होती रहेगी । इस घटना को घटे आज से १११ वर्ष (एक सौ ग्यारह वर्ष) हो गये, परन्तु आज भी यह धर्मप्रेमियों के हृदय को आनन्द से आप्लावित करने में समर्थ है । तथास्तु ।

---

१. 'पुराण और वेद' के परस्पर सम्बन्ध के लिए द्रष्टव्य बलदेव उपाध्याय रचित 'पुराण विमर्श', पृ० ३७–५५ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिव्य संस्मरण

स्वामीजी का महाप्रयाण[1]

"वाराणसी धाम के सुप्रसिद्ध दण्डी स्वामी परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमत् स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती ने सन् १८९८ ई० के वैशाख मास में अहल्याबाई घाट पर अपने आश्रम में ८० वर्ष की वयस् में भौतिक देह का परित्याग कर निर्वाण प्राप्त किया था। उनके वेदान्त शास्त्र के अगाध पाण्डित्य की प्रशंसा आज भी समस्त भारत के विद्वान् करते हैं, उनकी सर्वतोमुखी असाधारण प्रतिभा की बातें वृद्ध विद्वानों से सुनकर शिक्षित युवक विस्मित हो जाते हैं, परन्तु आज इस लेख में उन सब बातों की आलोचना नहीं की जाती। उनके आध्यात्मिक जीवन में ऐसी अनेकों आश्चर्य घटनाएँ हैं, जिनकी आलोचना करने से हिन्दू मात्र के आध्यात्मिक जीवन में नवीन प्रकाश की किरणें प्रसारित होंगी और भारतीय साधु-महात्माओं के प्रति श्रद्धा-भक्ति बढ़ेगी।

प्राक्तन पुण्यबल से मुझे लगातार दस वर्ष तक उनके चरणों में बैठकर पूर्व और उत्तरमीमांसा पढ़ने का दुर्लभ सुयोग प्राप्त हुआ था। अध्ययन आरम्भ करने के समय मेरी उम्र बीस वर्ष की थी। स्वाध्याय तिथियों में प्रतिदिन दो-से तीन-साढ़े तीन बजे तक मेरा पाठ चलता। एक दिन वर्षाकाल में श्रावण के अन्त में लगभग तीन बजे मैं अध्ययन कर रहा था, उस समय बड़े जोरों से वर्षा हो रही थी। अहल्याबाई घाट पर स्वामी जी का आश्रम था, उसमें ऊपर के तल्ले में एक छोटे घर में स्वामी जी उत्तराभिमुख अपने आसन पर विराजमान थे। मैं पूर्व की ओर मुँह करके बैठा था। सामने श्रावण की पूर्णावयवा उत्तरवाहिनी भागीरथी अपनी कलकल ध्वनि से अविश्रान्त वर्षा ध्वनि से मुखरित दिशाओं को प्रतिध्वनित करती हुई प्रवाहित हो रही थीं। स्वामी जी पद्मासन से बैठे थे, उनके विशाल प्रशान्त नेत्रों से हृदयस्थित ज्योत्स्ना द्वारा स्नात एक अननुभूतपूर्व समुज्ज्वल अध्यात्मज्योति विकसित हो रही थी, सामने द्रवब्रह्ममयी भागीरथी जी थीं। मेरे हाथ में छान्दोग्योपनिषद् की पुस्तक थी, स्वामीजी महाराज उसकी व्याख्या कर रहे थे। वह अपूर्व मनोहर दृश्य आज भी मेरे स्मृतिपट पर गाढ़ रूप से अंकित है। छान्दोग्योपनिषद् के छठे अध्याय में प्रयाण के समय दक्षिण मार्ग की गति उस दिन का पाठ्य-विषय था—**पुरुषं सोम्योतोपतापिनं ज्ञातयः पर्युपासते जानासि मां जानासि मामिति तस्य यावन्न वाङ् मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायां तावज्जानाति। अथ यदास्य वाङ् मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायामथ न जानाति।**' (छान्दोग्य० ६।१५)।

---

१. श्री प्रमथनाथ तर्कभूषणजी का यह लेख 'चिन्तामणि' के किसी पुराने अंक में प्रकाशित हुआ था। इस महत्त्वपूर्ण लेख को प्रकाशनार्थ सुलभ करने के लिए स्वामी अखण्डानन्दजी धार्मिक जनता के धन्यवाद के पात्र हैं। इसके लिए मैं उनका आभार मानता हूँ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् मनुष्य जब मृत्यु शय्या पर पड़ा हुआ सन्ताप को प्राप्त होता है, तब उसके घर के लोग उसके समीप आकर व्याकुलता से पूछते हैं—'मुझको पहचानते हो क्या ? मुझे पहचान गये हो ?' इत्यादि। उसकी बहिरिन्द्रिय जब तक मन में नहीं मिल जाती, मन प्राण में विलीन नहीं हो जाता, प्राण तेजोधातु में परिणत नहीं हो जाते और तेज भी परदेवता में प्रवेश नहीं कर जाता, तभी तक वह उन लोगों को पहचान सकता है। जब बहिरिन्द्रिय मन में मिल जाती है, मन प्राणों में विलीन हो जाता है, प्राण तेजोधातु में परिणत हो जाते हैं और अन्त में जब तेज भी पर-देवता में प्रविष्ट हो जाता है, तब वह किसी को भी नहीं पहचान सकता, उसका ज्ञान विलुप्त हो जाता है, यही उसका मरण है।

इस प्रसंग में स्वामी जी उस दिन देवयान या उत्तरमार्ग की बात चलाकर कहने लगे - 'जो योगी है, उसका प्रयाण इस तरह नहीं होता। प्रत्येक मनुष्य के हृदयकमल के ऊपर कुछ सूक्ष्म नाड़ियाँ हैं, इन नाड़ियों को सिता कहते हैं, इनमें किसी का वर्ण लाल है, किसी का पीला आदि है। ये नाड़ियाँ अत्यन्त सूक्ष्म हैं, यहाँ तक कि केश के सौवें भाग के समान इनकी सूक्ष्मता है। इन सूक्ष्म नाड़ियों में एक का नाम है सुषुम्णा। यह सुषुम्णा ऊर्ध्व में ब्रह्मरन्ध्र तक गयी है। इस सुषुम्णा में योगबल से अपना प्राण प्रवेश कराकर जो योगी प्रयाण करता है, वह फिर लौटकर इस संसार में नहीं आता। ब्रह्मलोक में उसकी गति होती है और कल्पान्त के समय ब्रह्मलोक के अधिष्ठाता सगुण ब्रह्म के साथ वह निर्वाण को प्राप्त होता है।' सनातन धर्म की इन आध्यात्मिक बातों को पूज्यपाद स्वामीजी महाराज उस दिन बड़ी ही स्फूर्ति के साथ — बड़े ही अभिनिवेश और उत्साह के साथ—कह रहे थे। किन्तु न मालूम क्यों, मेरे मन में वे बातें मानों उस दिन गम्भीरता के साथ प्रवेश नहीं कर रही थीं। मेरी बेजानकारी में शायद गुरुदेव स्वामी जी महाराज ने मेरे चेहरे को या मेरी अन्य किसी शारीरिक चेष्टा को देखकर मेरी अन्यमनस्कता की बात को जान लिया और बड़ी रुखाई के साथ जरा उत्तेजित से होकर मेरी ओर देखकर कम्पित स्वर से बोले - 'प्रमथनाथ ! आज यहीं पाठ बन्द करो, तुम्हारा चेहरा देखकर मालूम होता है कि मैं तुम्हें जो कुछ कह रहा हूँ वे सब बातें सत्य पर प्रतिष्ठित हैं या नहीं, तुम्हारे मन के इस सन्देह ने तुम्हारे चित्त को श्रद्धाहीन कर दिया है। जिसके मन में श्रद्धा नहीं है, उसके लिए इन बातों का न सुनना ही अच्छा है और कहने वाले के लिए भी यह विडम्बनामात्र है।'

पूज्य स्वामी जी के मुख से ऐसी कड़ी बातें मैंने इससे पहले कभी नहीं सुनी थीं। इन बातों को सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ, मैंने जल्दी से उठकर उनके चरणों पर गिर कर भक्तिभाव से अश्रुसिक्त नेत्रों से प्रणाम किया और कहा—'गुरुदेव ! मैं अज्ञ हूँ, मेरे इस अज्ञानकृत प्रथम अपराध को आप यदि क्षमा नहीं करेंगे तो मेरा जीवित रहना भी विडम्बनामात्र है !' मेरे इन शब्दों को सुनकर स्वामी जी बहुत देरतक गम्भीरता से चुपचाप बैठे रहे, फिर बहुत धीरे से मेरी ओर देखकर कहने लगे—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अच्छी बात है, मैंने क्षमा किया। इस प्रसंग में मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ, खूब ध्यान देकर सुनो।' स्वामीजी के इन शब्दों से आश्वस्त होकर मैं अपनी जगह हाथ जोड़े बैठा हुआ उनके चेहरे की ओर देखने लगा और बड़े आग्रह के साथ उनकी बातें सुनने के लिए उत्सुकता से बाट जोहने लगा। कुछ देर बाद स्वामी जी कहने लगे—

'आजकल ज्यों-ज्यों पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव बढ़ रहा है, त्यों-ही-त्यों संस्कृत-शिक्षा-पद्धति का प्रचुर रूप में ह्रास हो रहा है। अध्यात्मशास्त्र के प्रति लोगों की अश्रद्धा होना इसी का परिणाम है। परन्तु यह अश्रद्धा ही हिन्दू-समाज का सर्वनाश कर रही है, इस बात को याद रखना। मैं जो तुम्हें सुषुम्णा नाड़ी द्वारा उत्क्रमण की बात कह रहा था, यह कोई कवि-कल्पना या धर्मोन्मादना नहीं है, ध्रुव सत्य है। इसकी ध्रुव सत्यता का मैंने निज में अनुभव किया है; और स्वयं जाना है तथा विश्वास किया है, इसीसे तुमसे कह रहा था। तुम देखते हो मैं प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान के बाद आठ बजे के समय इस घर में प्रवेश करके सब दरवाजों को बन्द करके दोपहर तक बैठता हूँ। इन चार घण्टों में मुझसे कोई भी मिल नहीं सकता, यहाँ तक कि इस घर की तरफ किसी को आने का भी अधिकार नहीं है, जानते हो इस समय मैं रोज क्या करता हूँ। आज बीस वर्ष से भी अधिक काल हो गया, मैं योग प्रक्रिया के अनुसार सुषुम्णा के द्वारा उत्क्रान्ति के मार्ग का अनुसन्धान कर रहा हूँ। सुनो प्रमथनाथ! इतने परिश्रम का मेरा यह अनुसन्धान व्यर्थ नहीं गया। मैंने इस पथ को पा लिया है। कल्पना की दृष्टि से नहीं, सचमुच यह मेरे हस्तगत हो गया है। याद रखना, कुछ समय बाद उत्तरायण के वैशाख शुक्ल पक्ष में मैं इसी तरह सदा की भाँति बद्धपद्मासन लगाये द्रवब्रह्ममयी भगवती भागीरथी को देखते-देखते, हँसते-हँसते, प्रशान्त चित्त से भौतिक देह को त्याग कर अमृतधाम को चला जाऊँगा।'

इतना कहकर स्वामीजी चुप हो गये। कुछ देर बाद फिर बोले—'आज पढ़ाई नहीं होगी, अब तुम घर जाओ। तुम्हारा उपनिषद्-पाठ कुछ समय के लिए बन्द रहेगा। कल से मैं तुम्हें वेदान्तशास्त्र के सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ 'अद्वैतसिद्धि' को पढ़ाऊँगा।' इसके बाद मैं विस्मयाविष्ट चित्त से काँपते हुए भक्तिभाव से श्रीस्वामीजी के चरण-कमलों में सिर नवाकर प्रणाम करके घर चला आया।

इस उत्तर मार्ग से प्रयाण के सम्बन्ध में स्वामीजी ने और कभी कोई संकेत नहीं किया। दूसरे दिन से मैं 'अद्वैत-सिद्धि' पढ़ने लगा। इस घटना के पाँच वर्ष बाद मेरी कलकत्ते के गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज में धर्मशास्त्र के अध्यापक पद पर नियुक्ति हो गयी। इससे बाध्य होकर मुझे काशीधाम छोड़ना पड़ा। स्वामीजी से अध्ययन करना भी समाप्त हो गया। सन् १८९७ ई० के नवम्बर महीने से मैं संस्कृत कॉलेज में अध्यापन कार्य करने लगा। सन् १८९८ ई० के वैशाख महीने में स्वामीजी ने भौतिक देह का त्याग कर दिया। देहत्याग के दिन से तीन दिन पहले सन्ध्या को घूमकर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रम में आने पर आपने कहा—'देवाप्रसाद! (ये स्वामीजी के सर्वापेक्षा घनिष्ठ सेवक एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे) मेरा शरीर आज कुछ शिथिल-सा मालूम होता है। तुम लोग घबराना नहीं। परसों मेरे महाप्रस्थान का दिन है; व्यर्थ हो-हल्ला न करना, मुझको तंग न करना, किसी वैद्य को न बुलाना, मुझे स्थिर रूप से बैठे रहने देना, मैं कुछ कहूँ तो वही करना, अपनी इच्छा से कुछ भी करके मेरे चित्त में विक्षेप न करना।' इतना कहकर स्वामीजी बद्धपद्मासन लगाकर बैठ गये और ध्यानस्थ हो गये। दूसरा दिन भी इसी तरह बीत गया। तीसरे दिन ठीक मध्याह्न काल में उसी तरह बद्धपद्मासन से बैठे-बैठे, हँसते-हँसते उत्तरवाहिनी त्रिलोकपावनी भगवती भागीरथी को देखते-देखते सुषुम्णारन्ध्र को भेदकर परमहंस परिव्राजकाचार्य स्वामी श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती द्वारा उत्तर पथ से पुनरावृत्तिहीन महाप्रयाण की बात तुरन्त सारी काशी में फैल गयी। हजारों नर-नारी आबाल-वृद्ध स्वामीजी के गतप्राण पुण्यदेह का दर्शन करके जीवन धन्य करने के लिए दौड़ आये। सबने देखा, बद्धपद्मासन से विराजमान वर्तमान युग के सर्वश्रेष्ठ संन्यासी परम ज्ञानी, परम विरक्त स्वामीजी का वही ललाई लिए सुन्दर गौर विग्रह है, मुख पर वही स्मित ज्योत्स्ना खेल रही है, और नेत्र अर्ध-निमीलित हैं। प्राण निकल गये हैं परन्तु दैवी सुषमा अब भी उस सर्वाङ्गसुन्दर देह को त्याग करने में मानो संकोच कर रही है। वर्तमान काशिराज के पिता महाराज प्रभुनारायण सिंहजी उस समय जीवित थे, वे स्वामीजो के परम भक्त थे। समाचार सुनते ही वे दौड़ आये थे और उन्होंने उस समय का एक छायाचित्र लिया था।

मैंने अपनी आँखों से जो कुछ देखा है और उनके मुँह से सुना है, उसी को यहां लिखा है। उन्होंने मुझे दीर्घकाल तक चरणसेवा करने का अधिकार दया करके दिया था। मेरा विश्वास है कि जो इस पर ध्यान देंगे वे भारतीय अध्यात्मविज्ञान-सम्पन्न साधु-महात्माओं के पुण्य चरित्र के प्रति विशेष श्रद्धासम्पन्न हो सकेंगे और वैराग्य-प्रधान सनातन धर्म के प्रति उनकी गाढ़ अनुरक्ति होगी।''

स्वामी विशुद्धानन्द की प्रशस्ति

स्वामीजी की प्रशस्ति संस्कृत तथा हिन्दी उभय भाषा के पद्यों में उपलब्ध होती है। दो-तीन दृष्टान्त ही पर्याप्त होंगे—

[१]

यतो विद्याकीर्तिः परमसुखदा, यस्य करुणा
प्रबोधस्योद्बोधो यदमलपदाराधनविधेः।
सदा शान्तः कान्तः परमतिमतामद्भुतगुणो
विशुद्धानन्दाख्यः परमपुरुषः कोऽपि जयति॥

(प्रमथनाथ तर्कभूषण)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[२]

संसारार्णवलीन-दीनजनता-पीनाघभीनाशिनं
भक्ताधीन-महीनमानसमुपासीनं नवीनद्युतिम् ।
धर्माधर्मविचारचारुचतुरं चञ्चच्चरित्रोच्चयं
सद्विद्यं निरवद्यकं गुरुविशुद्धानन्दमीशं भजे ॥

(देवीप्रसाद कविचक्रवर्ती)

[३]

सरस सुधा की साज जाकी मुसुकान बांकी
विद्युत छटा की ज्योति जाहिर मुकामी की ।
भारी जमजातना विमोचन विरोचना की
छबि अति छीन छाकी बासना अकामी की ।
अवधि उदारता की खान मनकामना की
चिन्तामणि चिन्तना की आनि अन्तर्जामी की ।
ऐसी हम झाँकी तीन लोकहू न झाँकी जैसी
झाँकी अब झाँकी श्रीविशुद्धानन्द स्वामी की ॥

(दुःखभञ्जन कवीन्द्र)

[४]

ललित ललाम लाल लालित सुलीलाऽऽलय
लेखा लखि लीन लोल लोचन सभी के हैं ।
चित्त चञ्चरीक चोर चञ्चल विचित्र चारु
चमक प्रचार त्यों मरीचि मञ्जरी के हैं ।
अमल अमोल मेल कोमल प्रबाल कल्प
कलिमल मूल मलि मङ्गल मही के हैं ।
भूप चन्द्रशेखर के शरण विराजमान
चरण सरोज श्री विशुद्धानन्द जी के हैं ॥

(देवीप्रसाद कविचक्रवर्ती)

[५]

सागर दया के नय आगर विभा के खान
गुन सो उजागर बिबेक धन धामी हैं ।
मूल मुद मंगल समूह के मनोहर ये
मोहर मुनीशन के सोहत अरामी हैं ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्पतरु कामधेनु मान के हरनहार
हर अवतार चारु सत्य के कलामी हैं।
दीनजन बन्धु सिन्धु सुन्दरमती के खास
ज्योतिः स्वरूप श्री विशुद्धानन्द स्वामी हैं॥

(देवीप्रसाद कविचक्रवर्ती)

[६]

दयानन्दमत्तद्विपोद्दामदर्पो
यथावस्तमुच्चैः कटाक्षेण यस्य।
स्फुरत्-सर्वविद्या-लसत्सर्वभूतिः
प्रसन्नोऽस्तु देवः स नः श्रीनृसिंहः॥

(प्रमथनाथ तर्कभूषण)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४

स्वामी भास्करानन्द सरस्वती

गत शताब्दी के उत्तरार्ध में काशी को सुशोभित करने वाले विद्वान् संन्यासियों में स्वामी भास्करानन्द सरस्वती का स्थान निःसन्देह महत्त्वपूर्ण है। उस युग में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। भारतवर्ष के अनेक राजा महाराजा इनके दर्शन के लिए आते थे। इतना ही नहीं विदेशी संस्कृत के विद्वान् जब काशी पधारते थे तब वे स्वामीजी के दर्शनों के लिए अवश्य ही आते थे। जर्मनी के सुप्रसिद्ध संस्कृतज्ञ तथा दार्शनिक विद्वान् पाल डायसन सन् १८९४ ई० के आसपास काशी आये थे और उन्होंने स्वामी भास्करानन्द सरस्वती का दर्शन किया था। इस घटना का उल्लेख उन्होंने अपने भारत-यात्राविवरण[1] में किया है। इनकी गणना उस युग के दर्शनीय विद्वानों में की जाती थी। कदाचित् शायद ही कोई विशिष्ट व्यक्ति हो जो इनके दर्शन के बिना काशी से लौट जाय। साधना तथा ज्ञानविज्ञान दोनों दृष्टियों से महनीय होने के कारण स्वामीजी परमपूज्य माने जाते थे।

स्वामीजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १८९० (१८३३ ई०) आश्विन शुक्ल सप्तमी तिथि को कानपुर मण्डल के 'मैथेलाल' नामक गांव में हुआ था। कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में 'मधुकर' के मिश्र अपने आभिजात्य के लिए नितान्त प्रसिद्ध हैं। इसी ब्राह्मण-वंश में स्वामी जी का जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम मिश्रीलाल मिश्र था। स्वामीजी का गृहस्थाश्रम का नाम मतिराम मिश्र था। ये मध्यम परिवार में उत्पन्न हुए थे। साधारणतया खाने-पीने की कोई कमी नहीं थी। आठवें वर्ष में इनका उपनयन संस्कार हुआ और इसके बाद ये पाणिनि व्याकरण के अध्ययन में संलग्न हो गये। इन्होंने लगातार बारह वर्षों तक व्याकरण आदि शास्त्रों का अध्ययन कर इनमें व्युत्पत्ति प्राप्त की।

तत्कालीन प्रथा के अनुसार इनका विवाह केवल १२ वर्ष की उम्र में हो गया था। १८ वर्ष के वय में इनको एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो कुछ दिनों के बाद परलोक सिधार गया। इस दुर्घटना से इनका चित्त विचलित हो गया। ये घर से नितान्त उदासीन हो गये और गृह का परित्याग कर जहाँ-तहाँ विचरने लगे। ये कभी हरिद्वार, कभी प्रयाग, कभी अयोध्या और कभी उज्जैन में घूमते रहे। स्वामीजी दो बार घर छोड़कर भागे। परन्तु घरवाले इन्हें पकड़ कर घर लौटा लाये और वहीं पर रहने का आग्रह किया।

---

१. यह यात्रा विवरण 'माई ट्रेवेल्स इन इण्डिया' नाम से अंग्रेजी में मद्रास की नटेसन एण्ड कम्पनी ने प्रकाशित किया है। छोटा होने पर भी यह उस युग की अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन करता है। रोचक एवं उपादेय है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु तीसरी बार ये ऐसे घर से भागे कि किसी को पता नहीं चला और सुदूर उज्जैन में जाकर रहने लगे। वहीं पर अनेक वर्षों तक रहकर इन्होंने वेद, शास्त्र, दर्शन आदि का अध्ययन किया। वहाँ से लौटकर ये फतेहपुर जिला में स्थित असनी नामक नगर में आये जो हिन्दी के अनेक कवियों की जन्मभूमि रही है। यहीं पर इन्होंने स्वामी पूर्णानन्दजी से २७ वर्ष के वय में संन्यास दीक्षा ली और तब से ये भास्करानन्द सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

तपश्चर्या

संन्यास ग्रहण करने के अनन्तर स्वामीजी भारत के तीर्थाटन के लिए निकल पड़े। वे पैदल ही यात्रा करते थे। किसी को अपने संग में नहीं लेते थे। उज्जैन से चल कर ये नर्मदा के किनारे कुछ दिनों तक वास कर अपनी तपस्या में लीन रहे। कुछ दिनों तक इन्होंने शृंगिरामपुर नामक स्थान में वास किया। वहीं पर इन्हें इनके एकादशवर्षीय इकलौते पुत्र के निधन का समाचार मिला, परन्तु ये तनिक भी विचलित नहीं हुए, और अपनी यात्रा के क्रम को शिथिल नहीं होने दिया। वहाँ से घूमते हुए ये काशी आये, परन्तु कुछ ही दिनों तक निवासकर ये फतहपुर जिले के प्रख्यात नगर असनी चले गये। यहीं पर इन्होंने दण्ड का त्याग कर दिया। वहाँ से कानपुर आये और भक्तों के विशेष आग्रह पर अपने तीन भक्तजनों—रामचरण, गयादत्त एवं रामनारायण द्विवेदी—के संग में अपने जन्मस्थान मैथेलाल गये। पिता, माता तथा धर्मपत्नी से भेंट किया, परन्तु आसक्तिहीन स्वामीजी की वीतरागिता पर इस भेंट का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने अपने शरीर के सकल आवरणों को सर्वदा के लिए परित्याग कर दिया। केवल कौपीन (लँगोटी) ही उनका एकमात्र संगी रह गया। अब वृक्षों के नीचे निवास, गंगा के पवित्र तीर पर आवास, पञ्चाग्नि-साधन एवं शीत ऋतु में जल-शयन आदि कठोर तपस्या की साधना ने उनके चित्त को नितान्त आकृष्ट कर लिया।

तीर्थाटन

असनी से ये सीधे हरिद्वार पैदल ही यात्रा कर पहुँचे। वहाँ से उत्तराखण्ड के समस्त प्रख्यात तीर्थों की—गंगोत्री, बदरी, केदार तथा मानसरोवर की— इन्होंने सविधि यात्रा सम्पन्न की। लौटने पर ज्वालामुखी (कांगड़ा, नैमिषारण्य मिसरिख (जहाँ दधीचि ने अपना देहत्याग किया था), अयोध्या, काशी, प्रयाग, वृन्दावन, पुष्कर, द्वारिका, रामेश्वर अर्थात् उत्तर भारत से लेकर दक्षिण भारत के समस्त तीर्थों की मनोरम यात्रा सम्पन्न कर हरिद्वार मे जम गये लगातार १३ वर्षों तक। उद्देश्य था न केवल कठोर तपस्या, प्रत्युत शास्त्रों का गम्भीर स्वाध्याय। हरिद्वार में उन्हें एक नितान्त वैदुष्यसम्पन्न विद्वान् से साक्षात्कार हुआ। इनका नाम था – पण्डित अनन्त-राम शास्त्री। ये पण्डितजी पटना के समीपस्थ राघवपुर ग्राम के निवासी शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे। इनसे स्वामीजी ने अद्वैत वेदान्त के चूडान्त ग्रन्थों तथा प्रस्थानत्रयी का विधिवत् अनुशीलन एवं आलोड़न किया। गुरु की अगाधभक्ति से प्रेरित होकर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भास्करानन्दजी ने उनकी दया का स्मरण अपने प्रत्येक ग्रन्थ के अन्त में किया है। अपने गुरु अनन्तरामजी का ये बड़ा गुण मानते थे, क्योंकि उनकी ही कृपा से भास्करानन्दजी को शास्त्रों में अनुपम विद्वत्ता प्राप्त हुई थी। अपने ग्रन्थों के अन्त में उन्होंने यह श्लोकार्ध सर्वत्र निविष्ट किया है—

दयया ऽनन्तरामस्य मृदुर्ग्रन्थोऽयमुम्भितः।

(अनन्तराम की दया से यह मधुर ग्रन्थ की रचना की गई है)। इससे उनकी विशिष्ट गुरुभक्ति का परिचय हमें प्राप्त होता है।

अपरिग्रही स्वामीजी कोई भी वस्तु अपने पास नहीं रखते थे। वस्त्र के नाम पर ये केवल एक लँगोटी धारण करते थे, परन्तु बाद में इन्होंने उसका भी परित्याग कर दिया। हरिद्वार से काशी आने के बाद ये पहले मड़ुआडीह के आस-पास किसी बगीचे में रहा करते थे। परन्तु अमेठी (सुलतानपुर) के राजा लालमाधव सिंह ने, जिन्होंने इनसे दीक्षा ली थी, इनसे दुर्गाकुण्ड पर स्थित अपने उद्यान 'आनन्द बाग' में चलने का आग्रह किया। स्वामीजी उनकी प्रार्थना स्वीकार कर आनन्द बाग चले आये और आजीवन इस बाग में साधना और तपस्या करते रहे। इस स्थान को छोड़कर कहीं बाहर गये ही नहीं।

काशी का यह 'आनन्द बाग' एक ऐतिहासिक स्थान है जिसका निर्माण पूना के अन्तिम पेशवा अमृत राव ने किया था। इस बाग को सिपाही-विद्रोह के अवसर पर नीलाम किया गया। तब अमेठी के राजा ने खरीद लिया था। स्वामी विशुद्धानन्द जी के प्रसंग में ऊपर कहा ही गया है कि इसी आनन्द बाग में स्वामी दयानन्द का काशी के पण्डितों से सन् १८६९ ई० में शास्त्रार्थ हुआ था जिसमें दयानन्द जी को पराजित होना पड़ा था। यह बाग दुर्गामन्दिर के पूरब में विद्यमान है। स्वामीजी इसी बाग के दक्षिण भाग में एक भूगर्भ गृह में तपस्या करते थे तथा यहीं पर उन्होंने कैवल्यधाम प्राप्त किया। आज उसी स्थान पर भास्करानन्द जी की संगमर्मर की भव्य समाधि बनी हुई है।

१९२५ वि० स० (=१८६८ ई०) में स्वामीजी काशी में आये। २७ वर्षों तक लगातार क्षेत्र संन्यास लेकर यहीं निवास किया १९५२ सं० (=१८९५ ई०) तक। भक्त गयाप्रसाद के विशेष आग्रह पर इसके बाद एक बार वे अपने जन्मस्थान पर गये थे। प्रसंग यह था कि कानपुर के इस धनसम्पन्न भक्त ने उस गाँव में एक पोखरा खुदवाया था तथा स्वामीजी मूर्ति से संवलित एक मन्दिर भी बनवाया था। इन दोनों के उद्घाटन का प्रासंगिक अवसर था। भक्तशिष्य के गम्भीर आग्रह को दयालु गुरु टाल नहीं सके और इच्छा न होने पर भी स्वामीजी वहाँ गये और कई दिनों में ही लौट आये। यह उनकी अन्तिम यात्रा थी।

अब उनके देहत्याग का अवसर आ गया था। इसकी पूर्वसूचना स्वामीजी ने अपनी अन्तर्दृष्टि से मानों देख ली थी। इन्होंने अपने एक नैतिक भक्त बाबू पद्मदेव नारायण पाण्डेय (जो बलिया मण्डल के बैरिया ग्राम के निवासी तथा लेखक के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्मस्थान के समीपस्थ उदार व्यक्ति थे) के द्वारा अपने अन्तिम विचारों को प्रकाशित कराया था। स्वामीजी की इच्छा था कि जैसे वे जीवन भर अपरिग्रही रहे, उसी प्रकार उनका अन्तिम समय भी अपरिग्रही होना चाहिए। न उनके नाम पर कोई संस्थान खोला जाय और न कोई मठ ही स्थापित किया जाय। न उनकी कोई गद्दी चलनी चाहिए और न उनके नाम पर कोई विद्यालय ही प्रतिष्ठित होवे।

संवत् १९५६ की आषाढ़ शुक्ल प्रतिपद् की वह मध्यरात्रि बेला थी। १८९९ ई० की ९ जुलाई की अर्धरात्रि १२ बजे परिव्राजकाचार्य महामान्य भास्करानन्द सरस्वती का महानिर्वाण सम्पन्न हो गया। "स्वामीजी ने पद्मासन पर, अपने नित्य के योगिप्रिय आसन पर, बैठे-बैठे अपने नश्वर शरीर का परित्याग कर दिया—मुख सदा की भाँति प्रसन्न, नेत्रों से सर्वदा की भाँति ज्ञान-सुधा की वृष्टि" (हिन्दी बंगवासी, जुलाई १८९९)। अमृत बाजार पत्रिका ने (१८९९ ई० २६ जुलाई) इसकी सूचना देते हुए स्वामीजी के भव्य सात्त्विक गुणों का संकेत बड़ी ही सुन्दर भाषा में, प्रौढ शब्दों में दिया है।[1]

इस अंग्रेजी वाक्य का तात्पर्य है—"वह व्यक्ति (स्वामीजी) तो चला गया, परन्तु वह अपने पीछे छोड़ गया है अपने ही उदात्त व्यक्तित्व को और अपने निरंजन एवं पावनतम जीवन को, अपनी तपःपूत एवं पवित्रतम सत्ता को, पवित्रता के आदर्श को और मानवीय पूर्णताओं के अनुपम उदाहरण को।" स्वामी भास्करानन्द जी के आध्यात्मिक जीवन की यह एक निष्कलंक शाब्दिक झाँकी है।

त्याग की साधना

स्वामी भास्करानन्द त्याग के जीवन्त रूप थे। इनमें त्याग इतना अधिक था, अपरिग्रह की वृत्ति इतनी जागरूक थी कि अपने भक्त राजा और महाराजाओं के द्वारा सादर तथा साग्रह निमंत्रित किये जाने पर भी ये उनकी राजधानी में न तो कभी गये और न इन्होने उनके द्वारा प्रदत्त किसी प्रकार की आर्थिक सहायता ही स्वीकार की। काशी आने के पहले ये अपने अनावृत (नंगे) शरीर पर केवल एक लँगोटी लगाये रहते थे परन्तु भूतभावन की इस भव्य नगरी में आने पर तो इन्होंने उस नगण्य लँगोटी का भी परित्याग कर दिया और पूरे दिगम्बर वेश में अपने आराध्यदेव शंकर की प्रतिमूर्ति बनकर बैठ गये। ये अनिकेतन तो नहीं थे, परन्तु अनावरण अवश्य थे। इनके शरीर पर झीनी चादर डाल दी जाती थी जब कोई विशिष्ट व्यक्ति – विशेष कर विदेशी—इनके दर्शन के लिए आता था। इनका जीवन तपःपूत था। इनके जीवन

---

1. The man is gone but he has left behind him his own noble self, his stainless and immaculate life, his holy and saintly existence the pattern of purity the paradigm of human perfection.
—A. B. Patrika, July 26, 1899.

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में एक ही धारा प्रवाहित होती थी और वह थी अखण्ड तपस्या की। ये आनन्द बाग (दुर्गाकुण्ड) में एक भूगर्भ में अपनी साधना और तपस्या किया करते थे। आनन्द बाग का वह स्थान आज भी सुरक्षित है जहाँ ये समाधि लगा कर बैठा करते थे। इन्होंने क्षेत्र-संन्यास ले लिया था। अतः काशी से बाहर जाने की कथा तो दूर रही, ये अपनी साधना-स्थली से भी कभी बाहर नहीं जाते थे।

आकर्षण के केन्द्र

ऐसी दिव्य विभूति के प्रति सर्वसाधारण का आकर्षित होना स्वाभाविक था। धनी, मानी, राजा, महाराजा इनके अलौकिक व्यक्तित्व से प्रभावित होकर इनके उपदेश सुनने के लिए आया करते थे। अमेठी के राजा लालमाधव सिंह इनके एकनिष्ठ भक्त और शिष्य थे। उन्होंने ही भास्करानन्द जी को अपने आनन्द बाग में तपस्या के लिए स्थान दिया था। बड़हर रियासत की रानी वेदशरण कुँअरि स्वामी जी की अनन्य सेविका तथा शिष्या थीं। अयोध्या के राजा ददुआ जी ने स्वामी जी को अपने राजधानी में ले जाने के लिए बड़ी प्रार्थना की, बड़ा ही आग्रह किया परन्तु स्वामी जी ने इसे स्वीकार नहीं किया। नागोद (मध्य प्रदेश) के राजा यादवेन्द्र सिंह स्वामी जी के उतने ही बड़े भक्त थे, जितने बड़े श्रद्धालु थे काशीनरेश महाराजा प्रभुनारायण सिंह। चाँदपुर के राजा स्वामी जी के परम भक्त थे और वे इनकी प्रतिमा बना कर घर पर ही इनकी पूजा करते थे।

चमत्कार

भास्करानन्द जी सिद्ध महात्मा थे। इनकी वाणी सिद्ध थी। अतः ये अपने पवित्र मुँह से जो भी आशीर्वाद देते थे उनका प्रत्यक्षफल दिखाई पड़ता था। इनके अनेक चमत्कारों की कथा प्रसिद्ध है जिनमें से दो तीन का ही उल्लेख पर्याप्त होगा।

(१) एक बार काशी के ब्रह्मनाल मुहल्ले के निवासी पं० सीतलप्रसाद जी का नौजवान पुत्र मकान की ऊपरी छत से गिर गया था जिसके बचने की कोई आशा नहीं थी। वे घबरा कर स्वामी जी के पास पहुँचे और उनसे अपना दुखड़ा सुनाते हुए कहा कि पुत्र के बचने की कोई आशा नहीं है। स्वामी जी ने उसे सान्त्वना देते हुए भगवान् का चरणामृत उसे देकर पुत्र को पिला देने के लिए कहा। सीतलप्रसाद जी ने यह चरणामृत पुत्र को पिला दिया जिसके फलस्वरूप उनका एकलौता मरणासन्न पुत्र जीवित हो गया। इस घटना का उल्लेख श्रीशिवकुमार शास्त्री ने 'यतीन्द्र जीवन-चरितम्' में किया है।

(२) एक बार प्रयाग की प्रसिद्ध वेश्या जानकी बाई—जो छप्पन छुरी के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध थी—स्वामी जी के पास आई और कण्ठ की रुक्षता की बात कह सुनाई। स्वामी जी ने उसे अपने समीप भक्ति संगीत सुनाने का आदेश दिया और उसे आशीर्वाद दिया कि तुम्हारा गला ठीक हो जाएगा। अकस्मात् चोर एक दिन उसके घर में घुस आये और उसके गले पर चाकू से प्रहार किया। संयोगवश इसी प्रहार के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फलस्वरूप उसका कण्ठावरोध नष्ट हो गया और वह मधुर गीत गाने लगी। फिर तो बाद में इसने बड़ा धन तथा यश कमाया।

(३) काशी के तत्कालीन अंग्रेज कलक्टर की पत्नी लन्दन में बीमार पड़ी हुई थी। उसका कुशल-समाचार न मिलने कारण कलक्टर साहब बहुत परेशान थे। उन्होंने स्वामी के पास अपना कष्ट सुनाया। स्वामी जी ने कहा कि तुम्हारी पत्नी सकुशल है और शीघ्र उसकी कुशलता का समाचार तुम्हें मिल जाएगा। इसके एक सप्ताह बाद उसके पास पत्नी का पत्र आ गया। उसने स्वामी जी के पास आकर अपनी कृतज्ञता प्रकट की।[1]

(४) एक निःसन्तान ब्राह्मण को स्वामीजी की अनुकम्पा से पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई थी। वह स्वामीजी से पुत्र की प्रार्थना किया करता था। स्वामीजी उसकी बातें सुनते और टाल देते थे। एक बार वह आया और अपनी पूर्व प्रार्थना को दुहराया। स्वामी जी प्रसन्न मुद्रा में थे। उन्होंने कहा कि यदि वह इस समय अपनी सहधर्मिणी से समागम करे, तो उसे वाञ्छित फल की प्राप्ति होगी। ब्राह्मण ने तदनुसार ही आचरण किया और सफल मनोरथ हुआ।[2]

(५) बाबू रमेशचन्द्र मजूमदार नामक सज्जन ने स्वामीजी की एक अलौकिक घटना का वर्णन किया है। वे फोटोग्राफर थे। एक दिन वे विशुद्धानन्द सरस्वती के यहाँ काश्मीरनरेश के फोटो खींचने के लिए गये थे, परन्तु सरस्वती जी ने फोटो लेने की आज्ञा नहीं दी। हताश घर लौट आये। दूसरे दिन प्रातः भास्करानन्द जी ने उन्हें बुला भेजा और पूछा—क्यों, कल विशुद्धानन्द जी ने तुम्हें फोटो नहीं लेने दिया। आज मेरे यहाँ ले सकते हो। काश्मीर के सेनाध्यक्ष सर रामसिंह आने वाले हैं। रमेश बाबू ने स्वामीजी की आज्ञा से दोनों का एक ग्रुप फोटो लिया जो भास्करानन्द चरितामृत में छपा है, परन्तु भास्करानन्द जी गत दिन की घटना क्योंकर जान गये। रमेश बाबू ने किसी से इसे नहीं कहा था। 'अगमजानी' इसे ही तो कहते हैं जो अगम्य को जान जाय। स्वामी जी ऐसे ही तापस थे।[3]

स्वामीजी के ग्रन्थ

स्वामी भास्करानन्द जी ने साधना एवं तपस्या से अपना कुछ समय निकाल कर सरस्वती की सेवा में भी लगाया। अध्यात्मविषयक ग्रन्थों की सुलभ-सुबोध व्याख्या लिखकर उन्होंने अध्यात्मप्रेमियों का बड़ा उपकार किया। इसी प्रकार कठिन तथा

---

१. इन घटनाओं का उल्लेख लेखक से स्वामी जी के सेवक के पौत्र मणिराम मिश्र ने किया जो आज भी स्वामी जी की पूजा-अर्चा में अपना दिन बिताते हैं तथा उनके समाधि-मन्दिर के नैष्ठिक व्यवस्थापक हैं।

२. भास्करानन्द चरितामृत (बंगला), पृ० २६६।

३. वही, पृ० २७२–७४।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुरूह काव्य की संक्षिप्त टिप्पणी का निर्माण कर उन्होंने काव्यप्रेमियों का कम उपकार नहीं किया। स्वामीजी के द्वारा प्रणीत ग्रन्थों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(क) **स्वाराज्य सिद्धि** की टीका – वेदान्त का यह कठिन ग्रन्थ व्याख्या की अपेक्षा रखता है। उस आवश्यकता की पूर्ति स्वामीजी की टीका से भली-भाँति हो जाती है। इस ग्रन्थ में विशुद्ध ज्ञान के समाश्रयण से मोक्षप्राप्ति के मार्ग को निश्चयरूपेण उपाय प्रदर्शित किया गया है। स्वामीजी की टीका सुबोध एवं सरल है। रचनाकाल है—१९४८ विक्रमी (=१८९१ ई०)। प्रकाशन काशी से १९५३ वि० सं० में (=१८९६ ई०)

(ख) **दशोपनिषद्** की टीका जिसका नाम **प्रकाश** है। स्वामीजी ने दशों उपनिषदों के ऊपर अपनी यह सुबोध व्याख्या प्रस्तुत की है। उपनिषदों के ऊपर व्याख्याओं की कमी नहीं है। स्वामी भास्करानन्द जी का लक्ष्य सामान्य अध्यात्म-तत्त्व- जिज्ञासु जनों के लिए उपनिषदों के महनीय एवं गूढ़ तत्त्वों का उद्घाटन करना है। शैली बड़ी ही सीधी सादी है। टीका के सहारे साधारण संस्कृत ज्ञाता भी उपनिषदों के दुर्ग में प्रवेश कर सकता है—इसमें सन्देह करने के लिए स्थान नहीं है। रचनाकाल है—१९५२ विक्रमी संवत् (=१८९५ ई०)। प्रकाशन काशी से १९५३ वि० सं०(=१८९६ ई०)। इन दोनों ग्रन्थों का प्रकाशन तो स्वामीजी के जीवनकाल में हुआ था, परन्तु तीसरे ग्रंथ का प्रकाशन स्वामीजी के निर्वाण प्राप्ति के अनन्तर ही हो सका।

(ग) **नलोदय काव्य की संक्षिप्त व्याख्या**—नलोदय काव्य अपनी यमक-सम्पत्ति के लिए नितान्त प्रसिद्ध है। कुछ विद्वान् इसे महाकवि कालिदास की ही रचना मानते हैं, परन्तु नलोदय की यमकमयी रचनाशैली कालिदास की पद्धति से नितान्त भिन्न है। इसके वास्तविक रचयिता **रविदेव** हैं। **रामर्षि** (१६०० ई० लगभग) की प्राचीन टीका उपलब्ध है। स्वामीजी की टिप्पणी का प्रकाशन '**सुबोधनी**' के साथ हुआ है जिसके रचयिता पण्डित **प्रज्ञाकर मिश्र** हैं जो **आनन्दकर मिश्र** के पौत्र एवं **विद्याकर मिश्र** के पुत्र हैं। सुबोधिनी के विवरण से ग्रन्थकार मैथिल पण्डित प्रतीत होता है। यह सुबोधिनी टीका विस्तृत तथा पाण्डित्यपूर्ण है जिसकी सहायता से ग्रन्थ का आशय भली भाँति समझा जा सकता है। स्वामी भास्करानन्द जी की टीका सुबोधिनी को सचमुच सुबोधिनी बना देती है। ग्रन्थ के अन्त में स्वामीजी का यही कहना है—

सुबोधिनी सुबोधिनी यथा भवेन् नलोदये।
तथा श्रमोऽयमर्भकप्रमोदकृद् यतेरणुः॥

स्वामीजी ने स्वल्पश्रम से साध्य अपनी टीका को जो 'अर्भक-प्रमोदकृत्' अर्थात् बालकों को आनन्द देने वाला लिखा है वह यथार्थ है। इसका प्रकाशन स्वामीजी के ही अनन्य शिष्य अयोध्यानरेश महाराज प्रतापनारायण सिंह के० सी० आई० ई० की आज्ञा से किया गया। ग्रन्थ काशी के ही तत्कालीन प्रसिद्ध यन्त्रालय 'भारत जीवन' में मुद्रित किया गया था। प्रकाशन वर्ष १८५९ वि० सं० अर्थात् १९०२

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ई० है। स्वामीजी के निधन के दो वर्ष अनन्तर इसका प्रकाशन हुआ। सुबोधिनी के प्रणेता पं० विद्याधर मिश्र मैथिल का परिचय ज्ञात नहीं है, प्रत्युत अन्वेष्टव्य है।

स्वदेशी भक्त तथा दर्शकवृन्द

स्वामी भास्करानन्दजी के आवास का द्वार सब भक्तों के लिए खुला रहता था चाहे वह धनसम्पन्न सेठ हो, चाहे प्रभूत भूसम्पत्ति का स्वामी राजा-महाराजा हो अथवा वह नितान्त अकिञ्चन सामान्यकोटि का व्यक्ति हो। इनके यहाँ भक्तों का ताँता लगा रहता था। स्वामीजी के केवल दिव्य दर्शन पाने के लिए अथवा अपनी किसी दुर्लभ अभिलाषा की सिद्धि के लिए दूर-दूर से भक्तजन तथा दर्शक आया करते थे। राजा महाराजा लोग अपनी बढ़िया सवारी छोड़कर अपने आवास-स्थान से आनन्दबाग तक पैदल ही चलकर आने में अपना अहोभाग्य मानते थे। काश्मीर के नरेश दलबल के साथ स्वामीजी के दर्शनार्थ नगर के अपने निवास-स्थान से दुर्गाकुण्ड तक पैदल ही जाया करते थे। १८९९ ई० की १४ जनवरी को तत्कालीन काश्मीरनरेश महाराज सर प्रताप सिंह, अपने मध्यम भ्राता राज्य के सेनापति राजा रामसिंह तथा कनिष्ठ भ्राता राजा अमरसिंह के साथ आनन्दबाग में स्वामीजी के दिव्यदर्शन की इच्छा से पैदल ही पधारे थे। इसका विवरण देते हुए काशी के प्रख्यात समाचारपत्र भारतजीवन ने १८ जुलाई १८९९ के अंक में यह समाचार दिया था—

"जिस समय श्रीमान् (काश्मीराधिपति) काशीजी में स्वामीजी के दर्शन के लिए आए थे उस समय जिन लोगों ने देखा है, वे कह सकते हैं कि श्रीमान् के रोम-रोम में स्वामीजी की भक्ति का उमंग टपका पड़ता था।"

स्वामीजी के प्रति दर्शकों में इतनी भक्ति तथा अनुरक्ति थी कि वे केवल दर्शन की लालसा से ही सैकड़ों मील की दूरी पार कर काशी आया करते थे। इस तथ्य का उल्लेख अमेरिकन साहित्यिक मार्क ट्वेन ने बड़े ही उल्लास से किया है।[1]

अयोध्यानरेश सर प्रतापनारायण सिंह बहादुर स्वामीजी के बड़े ही अनुरागी भक्तों में अन्यतम थे। उनके दर्शन के निमित्त वे काशी अनेक बार आया करते थे। एक समय की घटना की सत्यता का प्रमाण उनके ही पत्र से चलता है। उन्हें आये अनेक दिन हो गये थे। वे प्रतिदिन स्वामीजी का दर्शन करते एवं उपदेशामृत का पान कर अपने को कृतकृत्य करते थे। उसी समय अयोध्या से उनके लिए तुरन्त लौट जाने की अकस्मात् सूचना मिली। शासनिक कार्य था नितान्त आवश्यक। उन्होंने स्वामीजी से लौटने के लिए आदेश पाने की प्रार्थना की, परन्तु स्वामीजी ने उन्हें कड़े शब्दों में रोक दिया। परन्तु कार्य की आवश्यकता की दृष्टि से वे प्रार्थना करते ही रहे। अन्त में

---

1. Suddenly a man came up who had travelled hundreds of miles, for this very object.

—Mark Twain in the Englishman, Calcutta, 1896.

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाध्य होकर स्वामीजी ने कहा कि यदि इतना अधिक आवश्यक काम उपस्थित है, तो तुम जा सकते हो, परन्तु जिस गाड़ी से जाने के लिए उद्यत हो, उसे छोड़ दो। उसके बाद वाली ट्रेन से जा सकते हो। स्वामीजी का आदेश पाकर राजा साहब काशी स्टेशन पर पहुँचे दूसरी गाड़ी से जाने के लिए। स्टेशन पर पहुँचने पर उनके आश्चर्य की सीमा न रही जब स्टेशन मास्टर से पता चला कि इससे पहले चलने वाली ट्रेन आगे जाकर ज्ञानपुर के पास दुर्घटनाग्रस्त हो गयी थी। राजा साहब की जान में जान आई और स्वामीजी के आदेश मानने से उन्हें एक महान् दुर्घटना से बच जाने का सौभाग्य प्राप्त हो सका।

आगामी घटना की जानकारी का यह अद्भुत उदाहरण स्वामीजी की अलौकिकता का स्पष्ट परिचायक है।

भिनगा के राजा उदयप्रताप सिंह स्वामीजी के दीक्षित शिष्य थे। अपनी राजधानी से आने में उन्हें अनेक अड़चनें होती थीं। फलतः उन्होने काशी में ही अपना निजी मकान बनाने की योजना बनाई जिसमें वे सस्त्रीक काशीवास कर सकें। इसके लिए उन्होंने अपने गुरु के समीप ही स्थान चुना और अपना विशाल महल बनवाया। यह भवन दुर्गाजी के मन्दिर के पास 'आनन्दबाग' के समीप ही दक्षिण ओर है। यहीं वे रहते थे जहाँ से स्वामीजी के दर्शन तथा सत्संग का लाभ उन्हें अनायास ही प्राप्त होता था। राजा साहब बड़े विरक्त पुरुष थे। उन्होंने ही क्षत्रिय बालकों की शिक्षा-दीक्षा के के लिए काशी में एक विद्यालय की स्थापना की जो आज बढ़कर एक डिग्री कालेज के रूप में विराजमान है। 'उदयप्रताप कालेज' के संस्थापक राजा साहब ही तो थे।

इसी प्रकार दरभंगानरेश राजा लक्ष्मीश्वर सिंह स्वामीजी की बड़ी भक्ति करते थे। उन्होंने लिखा है– "मैंने अपने जीवन में अनेक सुखसमृद्धि की प्राप्ति की है, परन्तु उससे, इस विशाल भूसम्पत्ति से जो सुख मिलता था, वह केवल बाहरी था। स्वामी भास्करानन्दजी महाराज के प्रथम दिव्यदर्शन का सौभाग्य जिस दिन मुझे प्राप्त हुआ, उसे मैं अपने जीवन का परम सौभाग्य का दिन मानता हूँ और मेरे हृदय में जो परमोल्लास उत्पन्न हुआ, वह मेरे जीवन की एक अविस्मरणीय अनुभूति है।" वे जीवनभर स्वामी जी के चरणसेवक बने रहे।

स्वामीजी के तीन शिष्यों ने उनकी कीर्ति को फैलाने तथा सुरक्षित रखने का महनीय कार्य किया है। इनमें प्रथम शिष्य—**चौधुरी महादेवप्रसाद**—जिला मुजफ्फरपुर (बिहार) के नान्हपुर परगना के जमीन्दार चौधरी रुद्रप्रसाद जी के पुत्र थे। इन्होंने ही कायस्थ पाठशाला की प्रयाग में स्थापना की। इन्होंने शिक्षा के प्रचार में अपनी समस्त सम्पत्ति का दान कर दिया था। इन्होंने काशी के पण्डित महामहोपाध्याय शिवकुमार शास्त्री को प्रेरित कर उनसे भास्करानन्दजी का जीवनचरित संस्कृत में लिखवाया जो **'यतीन्द्र जीवनचरितम्'** के नाम से प्रकाशित है। इस काव्य में स्वामीजी का जीवनचरित तथा उपदेश दोनों सम्मिलत हैं। इनके

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे शिष्य बलिया जिले के बैरिया गाँव के निवासी जमींदार श्री **पद्मदेव नारायण पाण्डेय** थे जिन्होंने स्वामीजी के जीवनकाल में ही उनकी प्रतिमा का निर्माण करा कर आनन्दबाग में ही एक छोटे से मंदिर में स्थापना की जो आज भी उपासना का केन्द्र है। इस प्रकार स्वामीजी अपने जीवनकाल में ही पूजे जाने लगे थे। इनके तीसरे शिष्य थे कानपुर के उद्योगपति गयाप्रसाद खत्री, इनको कोई सन्तान नहीं थी। अतः इन्होंने अपनी सम्पत्ति की व्यवस्था के लिए एक ट्रस्ट 'छोटेलाल—गयाप्रसाद' के नाम से स्थापित किया। इसी ट्रस्ट के द्वारा आनन्दबाग, वाराणसी में स्वामीजी की समाधि पर एक संगमरमर का बहुत ही सुन्दर मंदिर सन् १९१० ई० में बनाया गया जो आज ७० वर्ष बीत जाने के बाद भी वैसा ही सुन्दर है। इन्हीं तीनों शिष्यों ने इनकी कीर्ति को भारत में फैलाने का श्लाघनीय प्रयास किया। इसी ट्रस्ट (न्यास) के न्यासियों ने स्वामीजी के जन्मस्थान गाँव मैथेलाल में एक छोटा मन्दिर बनवाया है तथा वहाँ के लोगों की सुविधा के लिए एक तालाब भी खुदवा दिया है।

स्वामीजी के शिष्यों की संख्या बड़ी विस्तृत रही। ऊपर विवरण में उनके उत्तर-प्रदेशीय शिष्यों का ही परिचय दिया गया है। बंगाली सज्जनों में भी उनके शिष्यों तथा परिचितों की कमी नहीं थी। काशी के तथा बाहर के बंगालियों में गण्यमान्य व्यक्ति उनके प्रेमी एवं प्रशंसक रहे हैं। कतिपय प्रधान व्यक्तियों का ही निर्देश यहाँ किया जा रहा है—

बिहार प्रान्त में शिक्षा के प्रसार के विशेष उत्तरदायी विशिष्ट शिक्षाधिकारी श्री **भूदेव मुखोपाध्याय** स्वामीजी के भक्त शिष्यों में अन्यतम थे। वे इनके दर्शनार्थ बहुशः आया करते थे। आनन्दबाग में स्थापित स्वामी की प्रस्तरमूर्ति के नीचे यह परिचयात्मक पद्य भूदेव बाबू की ही मनोज्ञ रचना है—

जातो ब्रह्मकुले स्वतो हि पवितः, पूतः पुनर्विद्यया
ज्ञानेन ज्वलितस्तपोभिरुदितो ब्राह्मंमहामूर्तिमत्।
भित्त्वा संतमसं प्रबोध्य जगतीमानन्दयन् प्राणिनो
ज्ञानप्रेममयोऽर्कवेन्द्र मिलितः श्री भास्करानन्दकः॥

काशी के ही तत्कालीन प्रख्यात होमियोपाथ डा० ईश्वरचन्द्र चौधरी स्वामीजी के अन्यतम भक्त शिष्य थे। उनके पुत्र को स्वामीजी ने नीरोग किया था। वह अष्टादशवर्षीय बालक रोग से नितान्त आक्रान्त था। पिता ने स्वामीजी से उसकी दशा का वर्णन कर औषध के लिए प्रार्थना की। स्वामीजी ने प्रसादरूप से एक फल खाने को दिया। उसी के सेवन से वह भलाचंगा हो गया। इसी प्रकार १८९४ ई० में चौधरीजी की भगिनी के ऊपर कालरा का भीषण आक्रमण हुआ, इतना अधिक कि हाथ पैर सब ठंढे पड़ गये। जीवन की आशा क्षीण हो गई। स्वामीजी ने गुलाब का फूल सूँघने को दिया। रोगिणी ने सूँघा जिससे वह विकट संकट दूर हो गया। वह बच गई। फलतः चौधरी जी स्वामीजी को देवस्वरूप मानते थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलकत्ते से बड़े-बड़े वकील, जज, डाक्टर तथा शिक्षाविद् स्वामीजी के दर्शनार्थ आते थे और सफलमनोरथ होकर लौटते थे। ऐसे व्यक्तियों में मुकुन्ददेव मुखोपाध्याय, (डिप्टी मजिस्ट्रेट), तेजचन्द्र मुखर्जी (सेशन जज), महाराजा यतीन्द्रमोहन टैगोर (लक्षपति जमीन्दार), प्रतापचन्द्र मजूमदार (विख्यात होमियोपैथिक डाक्टर) आदि महानुभाव स्वामीजी के प्रशंसक, आराधक एवं उपासक भक्त थे। ऐसे ही भक्तजनों में सुरेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय का नाम बड़े आदर से लिया जा सकता है। वे स्वामीजी के अनन्य सेवक तथा नैष्ठिक भक्त थे। उन्होंने बँगला में स्वामीजी की बड़ा ही प्रामाणिक अथच प्रमेयबहुल तथ्यपूर्ण जीवनी **'भास्करानन्दचरितामृत'** के नाम से लिख कर प्रकाशित की है। बड़ी छानबीन के साथ इसका प्रणयन हुआ है। चमत्कारी घटनाओं की सचाई पर विशेष अनुसन्धान किया गया है और सत्यापित होने पर ही उन्हें ग्रन्थ में स्थान दिया गया है। स्वामीजी के कीर्तिप्रसार में इससे अधिक सेवा हो ही क्या सकती है।[1] स्वामीजी ने कितने नास्तिकों को अपने उपदेश से आस्तिक बनाया, इसकी गणना नहीं की जा सकती।

विदेशी भक्त और दर्शकवृन्द

स्वामी भास्करानन्दजी के त्याग एवं तपस्या की, अलौकिक शक्ति एवं आध्यात्मिक चमत्कार की कीर्ति उत्तरप्रदेश में इतनी फैली कि काशी में आने वाला प्रत्येक विदेशी अपनी भारतयात्रा को तब तक पूर्णतया सम्पन्न नहीं मानता था, जब तक वह स्वामी के चरणों का दर्शन नहीं कर लेता था। उनके विदेशी भक्तों की एक लम्बी परम्परा है जिसका पूरा परिचय दीर्घ स्थान की अपेक्षा रखता है। अनेक विदेशी भक्त स्वामीजी से मन्त्रदीक्षा देने के लिए विशेष आग्रह करते थे, परन्तु वे वैदिक धर्मावलम्बियों को छोड़कर किसी भी अन्य धर्माश्रयियों को कभी दीक्षा नहीं देते थे। ईसाई धर्म के मुख्य तथ्यों से उनका परिचय प्रशंसनीय था और वे उनको स्वधर्म की विधिवत् उपासना करने के लिए ही शिक्षा देते थे। वे विदेशी भक्त स्वामीजी के सामने नतजानु होकर इनके दक्षिण हाथ का चुम्बन करते थे। अपनी भक्ति एवं आस्था दिखाने का यही पश्चिमी तरीका है। ऐसे भी भक्त होते थे—साहब तथा मेम दोनों ही, जो केवल दर्शनमात्र के लिए सुदूर विदेश से आकर अपनी भक्ति दिखाते तथा स्वामीजी का दर्शन कर अपनी चिर अभिलाषा पूरी करते। स्वामीजी के भक्तों एवं दर्शकों में स्वदेशी एवं विदेशी व्यक्तियों की गणना की संख्या अधिक है। यूरोप का कोई भी ऐसा देश नहीं था जहाँ का कोई निवासी भारतयात्रा के प्रसंग में श्री भास्करानन्दजी का दर्शन

---

१. कलकत्ते से प्रकाशित प्रथम संस्करण १९०६ ई० तथा तृतीय परिवर्धित संस्करण १९२२ ई०। इस परिच्छेद में वर्णित घटनाओं के लिए लेखक सुरेन्द्रबाबू का बड़ा आभार मानता है। इसके लिए उन्हीं का यही ग्रन्थ प्रधान आधार है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर अपना अहोभाग्य न मानता हो। ऐसे भक्तों तथा दर्शकों के नाम तथा परिचय के लिए सुरेन्द्र बाबू के बंगला ग्रन्थ का परिशिष्ट देखना नितान्त आवश्यक है।[1]

प्रयाग में उस समय गत शताब्दी के उत्तरार्ध में वेचलर एण्ड को० नामक एक प्रतिष्ठित संस्था थी जो जर्मनी से संगमरमर के छोटे टुकड़ों पर स्वामीजी की छोटी शुभ्र मूर्ति बनवाकर मँगाती थी और घड़ल्ले से दस रुपयों में बेचती थी। ऐसी लोकप्रियता विराजती थी स्वामीजी की। सुनते हैं कि जर्मन सम्राट् विलहेल्म द्वितीय के हाथों कभी वह मूर्ति पड़ी। वह उससे इतना चमत्कृत हुआ कि उसने अपने विशेष अधिकारी को, जिसका नाम गफ कनिगम् मार्क था, काशी स्वामीजी को जर्मनी लाने के लिए भेजा। वह काशी आया और जर्मन सम्राट् के विशेष आग्रह से स्वामीजी को जर्मनी चलने के लिए कहा, परन्तु स्वामीजी ने जाना अस्वीकार कर दिया, तथापि वे स्वामीजी से उनके स्वास्थ्य तथा उनके आशीर्वाद के लिए सर्वदा पत्राचार करते थे।[2]

काशी तथा उत्तरप्रदेश के अंग्रेज अधिकारी इंगलैण्ड में स्थित अपने परिवार के कुशलक्षेम के लिए स्वामीजी की सेवा में सर्वदा उपस्थित होते थे। वे पुत्र की कामना से तथा आर्थिक अभ्युदय के लिए प्रार्थी होकर काशी आते और स्वामीजी का आशीर्वाद लेकर अपने स्थानों पर चले जाते तथा कालान्तर में सफल-मनोरथ होते थे। अनेक विदेशी अपने कुतूहल की शान्ति के लिए भी आते, परन्तु विदेश के संस्कृत प्राध्यापक दर्शन एवं अध्यात्म-विषयक अपनी जिज्ञासा की शान्ति के लिए विशेषकर स्वामीजी की सेवा में उपस्थित होते। जर्मनी के प्रख्यात दार्शनिक डा० पाल डायसन ने अपने यात्राविवरण में स्वामीजी से अध्यात्मविषयक समस्याओं का सुन्दर तथा सन्तोषजनक समाधान पाकर अपने संतोष का विशेष विवरण दिया है। स्वामीजी के विदेशी

---

१. द्रष्टव्य—श्री सुरेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय प्रणीत 'भास्करानन्द चरितामृत' नामक बंगला ग्रन्थ, पृष्ठ २३७–७४।

२. इसी जर्मन अधिकारी ने जर्मनी से स्वामीजी के आशीर्वाद के लिए जर्मन साम्राज्य के संस्थापक बादशाह विलहेल्म प्रथम तथा उनके पौत्र तत्कालीन बादशाह का फोटो भेजा था। उसका पत्र इस प्रकार है—

5th February, 1895

Dear Sir,

I have a special pleasure in sending you the photos of the Emperor Wilhelm I, the founder of the German Empire and of his grandson, our present Emperor.

I wish you health and long life.

Your most obedient servant
Gruf Konigs Mark.

To, Swami Bhaskarananda. (भास्करानन्द चरितामृत में उद्धृत, पृ० २५८)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तों तथा दर्शकों में दो-तीन व्यक्तियों का ही संक्षिप्त परिचय यहाँ देना सामयिक होगा।

उत्तर प्रदेश के तत्कालीन छोटे लाट लाटूश साहब समय-समय पर अपनी धर्म-पत्नी के साथ काशी के कलक्टर तथा कमिश्नर के संग बिना किसी सूचना के ही स्वामी भास्करानन्दजी के दर्शन के निमित्त पधारते थे जिससे उन्हें एकान्त में निश्चिन्त वार्ता-लाप करने का अवसर मिलता था। पूर्व सूचना होने पर काशी के गण्यमान्य व्यक्तियों से सम्पर्क होने के कारण स्वामीजी के दर्शनों में बाधा पड़ती थी। स्वामीजी के व्यक्तित्व के विषय में उनका महत्त्वपूर्ण कथन नीचे दिया जा रहा है जो उनके पत्र से यहाँ उद्धृत है।[1]

स्वामीजी और मार्क ट्वेन

अमेरिका के प्रख्यात हास्यलेखक मार्क ट्वेन अपनी भारतयात्रा के प्रसंग में काशी आये थे और स्वामीजी का दर्शन कर उन्होंने अपने को कृतज्ञ तथा सफलमनोरथ माना था। बात यह है कि कोई भी विदेशी स्वामी भास्करानन्दजी के दर्शन के बिना अपनी काशीयात्रा को पूरा सम्पन्न मानता ही न था। मार्कट्वेन ने अपनी प्रतिक्रिया का विवरण विस्तार से अपने 'मोर ट्रैम्प्स अब्रोड' ग्रन्थ में तथा कलकत्ते के टाउनहाल में अपने अभिनन्दन के प्रसंग में दिया है। वे स्वामीजी को एक अद्भुत व्यक्ति मानते थे। उन्होंने कहा कि "भारत के द्वारा किये गये भौतिक उन्नयनों की बात तो मैं पहले से ही जानता हूँ, परन्तु स्वामीजी के दर्शन के समान अनुभव तो जीवनभर में एक ही बार होता है।" इससे बढ़कर महत्त्वपूर्ण उद्गार और हो ही क्या सकता है? "मैं यह कहने में बिन्दुमात्र भी संकुचित नहीं होता कि मैंने अपने समस्त भ्रमणों में इस संन्यासी के समान आश्चर्यजनक मनुष्य किसी को देखा ही नहीं। इनका दर्शन पूरे जीवन में एक बार ही होता है, दुबारा नहीं होता।"[2]

मार्क ट्वेन ने अपनी यात्रा के विवरण में स्वामीजी के निवास-स्थान 'आनन्द बाग' में पहुँचने का वर्णन किया है—"जब हम लोग वहाँ पहुँचे, तब हम लोगों को इधर-

---

१. The manners of the Swami were those of a perfect gentleman, free from any embarassment or self-assertion, anxious to give pleasure to his guest and to show that he was pleased and interested in the conversation.

२. I have no hesitation in saying that in all my travels, I have never seen anybody so wonderful as that recluse. These modern improvements have been familiar to me for years but such an experience as the other is only met with once in a life time.

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उधर घूमकर प्रतीक्षा करनी पड़ी थी। भेंट होने की आशा भी क्षीण थी, क्योंकि उस दिन स्वामीजी ने राजाओं और महाराजाओं से भेंट करना अस्वीकार कर दिया था और केवल साधारणजनों से ही भेंट करते थे। ऊँचा पद उनकी दृष्टि में कोई महत्त्वपूर्ण वस्तु नहीं है। वे कभी-कभी राजा से ही भेंट करते हैं और भिखमंगों को बाहर निकाल देते हैं। वे ही दूसरे समय भिखमंगों का ही स्वागत करते हैं और राजाओं को दूर हटा देते हैं।"[1] ऐसी विलक्षणता थी स्वामीजी में।

कलकत्ते के टाउनहाल की सभा में मार्क ट्वेन ने कहा था—स्वामीजी ऐसे व्यक्ति हैं जो भारतवर्ष के एक छोर से दूसरे छोर तक अपनी तपस्या एवं पवित्रता के लिए के पूजे जाते हैं। सभा में उन्होंने निरावरण स्वामीजी के फोटो को सबसे दिखलाया, परन्तु उनमें न कोई हँसी की बात थी और न किसी अपमान की छाया। वे अमेरिका के सबसे प्रख्यात हास्यलेखक हैं, जिनके स्वभाव में हँसोड़पना कूट-कूट कर भरा हुआ है, परन्तु जब वे गम्भीर होते हैं, तो नितान्त गम्भीर होते हैं। स्वामीजी के फोटो दिखलाते समय वे नितान्त गम्भीर भाव से बोलते थे। उस सभा में उत्तेजित होकर मार्क ट्वेन ने कहा—"वे एक देवता हैं।"[2] मार्क ट्वेन से स्वामीजी का यह साक्षात्कार ४ फरवरी, १८९६ ई० में आनन्द बाग में हुआ था।

मार्क ट्वेन ने अपनी 'मोर ट्रैम्प्स एब्रोड' नामक प्रसिद्ध पुस्तक में स्वामी भास्करानन्दजी के अतुलनीय व्यक्तित्व का वर्णन बड़े ही चमत्कारी शब्दों में किया है।[3]

---

१. When we arrived, we also had to stand around in the garden (Ananda bag) a little while and wait and the outlook was not good, for he (Swamiji) had been turning away Rajas and Maharajah that day and receiving only the riffraff—Rank is nothing to him. To him all men are alike. Sometimes he receives a prince and denies himself to a pauper; at other times he receives the pauper and turns the prince away.

—More Tramps Abroad

२. "He is a man who is worshipped for his holiness from one end of India to the other."

He Mark Twain) pointed to the photo-graph but neither in mockery nor contempt. It may surprise many readers but when Mark Twain is serious, he is very serious. Mark Twain pursued with animation—"he is a divinity."

३. What is the Taj, as a marvel, a spectacle, and an uplifting and overpowering wonder, compared with a living, breathing, speaking personage, whom several millions of human beings

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका कहना है कि ताजमहल की बड़ी ख्याति है, नितान्त प्रसिद्ध है। परन्तु आश्चर्य-जनक वस्तु की दृष्टि से वह क्या है ? एक तुच्छ सामान्य ही वस्तु है। उसकी स्वामीजी जैसे महापुरुष के साथ कथमपि तुलना हो ही नहीं सकती। वे एक महनीय रहस्यमय व्यक्तित्वसम्पन्न महापुरुष हैं जिन्हें करोड़ों मनुष्य श्रद्धापूर्वक, धार्मिक भावना से एवं बिना किसी सन्देहलेश के हृदय से साक्षात् ईश्वर मानते हैं तथा नम्रता एवं कृतज्ञता-पूर्वक ईश्वर के रूप में पूजन करते हैं। उनके शब्दों का चमत्कार दर्शनीय हैं।

स्वामीजी और जंगी लाट

१८९८ ईस्वी के २० दिसम्बर को भारत सरकार के सेना के सर्वोच्च अधिकारी जंगी लाट (कमान्डर इन चीफ) का आगमन स्वामीजी के दर्शन के निमित्त काशी के 'आनन्द बाग' में हुआ। जंगी लाट का नाम था सर विलियम लाकहर्ट, जिन्होंने अफगान युद्ध में बहादुर अफरीदियों को अपनी सैनिक योग्यता एवं वीरता के कारण परास्त किया था और इसी कारण विश्वभर में अंग्रेजी शासन की प्रतिष्ठा के उन्नायकों में गिने जाने लगे थे। लाट साहब के साथ उनकी पत्नी, उनके सैनिक सचिव कर्नल वी० डफ०, काशी के कलक्टर तथा कमिश्नर सब दल-बल के साथ उपस्थित थे। जंगी लाट के लिए स्वामीजी के आवास पर आना कोई नई बात न थी, क्योंकि इससे पूर्व भी अनेक वाइसराय (बड़ा लाट) स्वामीजी के दर्शन के लिए आये थे और दर्शन कर अपनी अभिलाषा पूरी की थी। स्वामीजी ने उनका बड़ा स्वागत किया और अपने द्वारा उपहार में दी गई मालाएँ लाट साहब तथा उनके साथियों को पहना दीं। वार्तालाप का क्रम आरम्भ हुआ। लाट साहब अफरीदियों को परास्त करने में अपनी बहादुरी की डींग हाँकते हुए अभिमान से फूल गये और उसका प्रदर्शन भी उन्होंने अपने उच्च स्वर से बड़ी भावुकता से कर दिखलाया।

स्वामीजी वृत्तान्त सुनकर मुस्कराते रहे। इस समय एक ऐसी घटना घटी जिसे सुनकर तथा देखकर श्रोता आश्चर्यचकित हो उठता है। उस समय वहाँ एक पेन्सिल पड़ी हुई थी। स्वामीजी ने लाट साहब से उसे उठाकर उन्हें देने के लिए कहा। लाट साहब उठकर उस पेन्सिल को उठाने लगे। परन्तु आश्चर्यम्, महदाश्चर्यम्! वह पेन्सिल टस से मस नहीं हुई। उतने बड़े अभिमानी विजयी सेनापति के अनेक प्रयत्न करने पर भी अपने स्थान से टली नहीं। स्वामीजी ने तब इसका रहस्य बतलाना शुरू किया। उन्होंने कहा—तुमने युद्ध में जय लाभ किया है, इस प्रकार की भावना मत करो। जय-पराजय का कर्ता तो केवल एकजन ईश्वर है। मैंने जिस प्रकार तुम्हारी शक्ति का हरण कर लिया, वे भी उसी प्रकार तुम्हारी बुद्धि का हरण कर

---

devoutly, sincerely and unquestioningly believe to be a God and humbly and gratefully worship as a God.

—More Tramps Abroad.

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकते थे। ऐसा होने पर जिस कौशल के बल पर तुमने अफरीदियों का पराजय किया है, वह बुद्धि युद्ध में कथमपि उपस्थित ही नहीं हो सकती थी। फलतः ईश्वर के ऊपर ही सबको निर्भर करना चाहिए। जय-पराजय का, शक्ति के ह्रास तथा वृद्धि का वही एकमात्र स्वामी है। मनुष्य तो उसके हाथ का एक कठपुतला है--ईश्वर के ऊपर भरोसा रखो, अभिमान का कोई अवसर नहीं।"

लाकहार्ट साहब स्वामीजी के इस उपदेश से बड़े प्रभावित हुए। वे उनके आस्थावान् भक्त थे। अपनी पत्नी के साथ समय-समय पर स्वामीजी का दर्शन करते थे।[1]

स्वामीजी की विलक्षण अध्यात्मशक्ति का परिचय देते हुए काशी के प्रख्यात पत्र 'भारत जीवन' ने (१७ जुलाई, १८९९ ई० के अंक में[2]) लिखा था—

यह स्वामी महाराजजी का ही योगप्रसाद था कि केवल भारतीय राजा-महाराजाओं के रत्नजड़ित मुकुट ही स्वामीजी की चरणद्युति से भास्वर नहीं होते थे, वरन् यूरोप और अमेरिका के बड़े बड़े विद्वान् और धनवान् जन बड़ी नम्रता और श्रद्धा-भक्ति से परमपद प्राप्त स्वामीजी के चरणदर्शन से अपने को कृतकृत्य मानते थे। यह स्वामीजी महाराज के योगबल ही का प्रभाव था कि विदेशी, विजातीय, विधर्मी जन द्वेषरहित होकर नतग्रीव होते थे।[3]

भास्करानन्द प्रशस्ति

स्वामी भास्करानन्द सरस्वती की ज्ञानगरिमा तथा विमल ज्ञान-वैराग्य की भावना से समाकृष्ट भक्तजनों ने संस्कृत एवं हिन्दी उभय भाषाओं में सुललित पद्यों के द्वारा

---

१. इस घटना के प्रत्यक्षदर्शी श्री शैलेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के आधार पर यह घटना वर्णित है। द्रष्टव्य भास्करानन्द चरितामृत (पृ० २७०–७७) में उद्धृत उनका पत्र नम्बर १४।

२. यह अंक स्वामीजी के निर्वाण के बाद प्रकाशित होने वाला प्रथम अंक था।

३. स्वामी भास्करानन्द सरस्वती के जीवनचरित एवं व्यक्तित्व के विषय में द्रष्टव्य सन्दर्भ ग्रन्थ—

(१) पण्डित शिवकुमार शास्त्री : यतीन्द्र जीवनचरितम् (संस्कृत, काशी)।

(२ श्रीसुरेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय : भास्करानन्द चरितामृत (बंगला, कलकत्ता, १९२२ ई०, तृतीय संस्करण)।

(३) मार्क ट्वेन : मोर ट्रैम्प्स अब्रोड (५५वाँ परिच्छेद)
Mark Twain : More Tramps Abroad (London).

(४) प्रोफेसर जान कैम्पबेल ओमन : दि मिस्टिक्स, एसेटिक्स एण्ड दि सेण्ट्स आफ इण्डिया।
Prof. John Campbel Oman : The Mystics, Ascetics and the Saints of India.

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी विमल प्रशस्ति का निर्माण किया है। उनमें से चुनकर कुछ प्रशस्ति पद्य यहाँ उद्धृत किये जाते हैं जिनके अध्ययन से स्वामीजी के विरक्त व्यक्तित्व का एक आभास पाठकों को मिल सकेगा।

(१)

सदानन्ददेहं परानन्दकन्दं
यतिं भास्करानन्दमीशं प्रसन्नम्।
भवेद् यस्य सान्निध्यमात्रेण जन्तु-
श्चिदानन्दरूपो गुरुं तं नमामि॥
—महादेवप्रसाद चौधरी (यतीन्द्र स्तोत्र)

(२)

ज्ञात्वा वेदार्थसङ्घं मुनिवररचितं प्राप्तबोधः सविज्ञः
सत्वा चालीकमेतत् सकलमिह जगद् योगमार्गैकलग्नः।
ध्यायन् तं देवमाद्यं भवभयहरणं भास्करानन्दविद् यः
दुर्गायाः पूर्वभागे विलसति विपिने काशिकायां यतीन्द्रः॥
—ज्योतिर्वित् सोनेलाल शर्मा (यतीन्द्र स्तोत्र)

(३)

भवोद्भूतभोगं सुरेशस्य लोकं
त्रिवर्गं च तुच्छं सदा मन्वते यः।
पिबन्तं रसं ब्रह्मचिद्रूपमग्र्यं
भजे भास्करानन्दमीशं मुनीशम्॥
—गङ्गाचरण वेदान्तवागीश (भास्करानन्दाष्टक)

(४)

यस्तत्त्वमस्यादि — विचारदक्षः
स्वच्छान्तरात्मा श्रुतिमार्गगामी।
समं सुवर्णं सिकता च यस्य
तं भास्करानन्द गुरुं नमामि॥
—वृन्दावन शर्मा (गुर्वष्टक)

(५)

विभुं विश्वनाथं सदोदारकीर्तिं
शिवं भोगदं रोगकालं विशालम्।
प्रसन्नेन्द्रियं धर्ममूलं वरेण्यं
सदा ध्यानगं भास्करानन्दमीडे॥
—महादेव शुक्ल (यतीन्द्र स्तोत्र)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६)

कलिकाल कराल-मुखातिविभीत-
मुमुक्षु - सुरक्षण - दक्षदयः ।
स च पुत्रकलत्र—सुखैषिजनार्थ-
कृते ननु कल्पतरोरुदयः ॥ १११ ॥
—शिवकुमार शास्त्री (यतीन्द्रजीवन चरित)

(७)

जोग व्रत साधैं कोऊ देव अवराधैं कोऊ
इन्द्रियन बाँधैं जपि बीज आखरन को ।
तीरथ अटन कोऊ रामको रटन पाप
ताप के कटन, शोधैं अन्तःकरन को ।
वेद मत धारैं कोऊ करत अचारैं कोऊ
जग व्यवहारैं त्यागि, चाहत तरन को ।
मेटि सब दोसो देहु आपनो परोसो
'लछिमन' को भरोसो स्वामी रावरे चरन को ॥
—लाल लक्षिमन सिंह (गुरुपंचरत्न)

(८)

ब्रह्म समान अमान सदा समता करै रंक करोरपती को ।
त्यागि बिषै विष से अवधूत पुनीत करै विषसो धरती को ।
भागि भरो जन जो जग में ढिग जाय करै के लिए विनती को ।
लोचन-गोचर सोई करै भवमोचन भास्करानन्द यती को ॥
(अष्टक)

(९)

अतिमति दायक सहायक सुयोगिन के
होत ही दरस पाप पुंज के हरन हैं ।
योगीजन धनिक धनेश धरामण्डल के
जासु रज नीको करैं भाल आभरन हैं ।
ध्यान के धरत ज्ञान परम प्रकाश करै
वृन्दावन सद ब्रह्म पद वितरन हैं ।
बारिज बरन सुख संपति करन स्वामी
भासकरानन्द महाराज के चरन हैं ॥
—(अज्ञात)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५

स्वामी करपात्रीजी

[स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती]

अनन्त श्रीविभूषित स्वामी करपात्रीजी महाराज आधुनिक युग में काशीस्थ संन्यासियों के शिरोमणि रूप से विराजमान रहे हैं। उनकी वाणी और लेखनी दोनों में धर्म के रहस्यों के उद्घाटन करने की अलौकिक क्षमता थी। वे हृदयावर्जिका विमला वाणी के जैसे प्रेरक मनीषी थे, वैसे ही ललितललाम लेखनी के धनी थे। वाणी और लेखनी का यह मञ्जुल सामरस्य किस विद्वान् को अपनी ओर आकृष्ट करने में समर्थ नहीं होता ? वे वैदिक शास्त्र के मर्म के उन्मीलन में समर्थ वाग्मी थे जिनके विषय में कहा गया है—"वाग्मी भवति वा न वा"। वे वैसे नीरस वेदान्ती नहीं थे जो वेदान्त के शुष्क तर्कों के चिन्तन में ही अपनी प्रतिभा का उपयोग करता है, प्रत्युत वे सौन्दर्य-सार-सर्वस्व रसामृतमूर्ति निकुञ्जविहारी की परम पावन निकुञ्जलीला के भक्ति-रसाप्लुत सहृदय उपासक थे जिनकी कमनीय वाणी से भक्तिरस के मधुमय कण बिखरे पड़ते थे। उनकी लेखनी ने जो कुछ भी निबद्ध किया वह केवल मस्तिष्क की वस्तु नहीं है, प्रत्युत उनके रस-सान्द्र हृदय का आनन्दमय उल्लास है। ऐसे गम्भीर चिन्तक, नैष्ठिक उपासक तथा सहृदय लेखक के सात्त्विक जीवन की धारा से परिचित होकर अपने को सुधारने तथा सँवारने की अभिलाषा किस व्यक्ति में न होगी ? उसी जीवन की एक भव्य झाँकी यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

जन्म और शिक्षा

स्वामी करपात्रीजी का जन्म उत्तरप्रदेश में प्रतापगढ़ जिले के भटनी नामक गाँव में श्रावण शुक्ला द्वितीया को सं० १९६४ वि० (सन् १९०७) में हुआ। इनके पूर्वज गोरखपुर जिले के ओझौली गाँव के निवासी थे। परन्तु कालान्तर में कालाकाँकर के राजा स्वामीजी के पितामह को भटनी (प्रतापगढ़) ले गये जहाँ जाकर वे बस गये। स्वामीजी सरयूपारीण ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम पण्डित रामनिधि ओझा था जो बड़े ही सात्त्विक तथा धार्मिक प्रकृति के व्यक्ति थे।

पण्डित रामनिधि ओझा के तीन पुत्र हुए जिनमें कनिष्ठ पुत्र का नाम हरनारायण था। यही हरनारायण कालान्तर में स्वामी करपात्री के नाम से प्रसिद्ध हुए। ओझाजी का परिवार पुरातन सभ्यता तथा संस्कृति का बड़ा प्रेमी था। अतः गाँव की प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् ओझाजी ने अपने इस पुत्र को संस्कृत पढ़ाने का निश्चय किया। अतः उन्होंने घर पर ही प्रथमा परीक्षा के पाठ्यग्रन्थों को पढ़ाना आरम्भ कर दिया। तीक्ष्ण बुद्धि होने के कारण हरनारायण ने शीघ्र ही संस्कृत का साधारण ज्ञान प्राप्त कर लिया। परन्तु इन्होंने किसी विद्यालय में विधिवत् अध्ययन नहीं किया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाह तथा वैराग्य

बालक हरनारायण का स्वभाव जन्म से ही विरागी था। इसे सांसारिक कार्यों में कोई आनन्द नहीं आता था। केवल नौ वर्ष के वय में ही इसे जीवन से उचाट तथा उदासीनता हो गयी और यह बार-बार घर छोड़कर किसी अज्ञात वस्तु की खोज में भागने लगा। एक-दो बार इनके पिता और भाई इन्हें खोजकर घर ले आये परन्तु फिर भी इनका मन घर में नहीं लगता था। पिता ने यह समझकर कि सम्भवतः विवाह कर देने पर इसका मन संसार में लगने लगेगा, उन्होंने विवाह पास के ही खण्डवा नामक गाँव में कर दिया, परन्तु हरनारायण के विरागी मन में विवाह करने के पश्चात् भी राग उत्पन्न नहीं हो सका। घर छोड़कर भागने का इनका क्रम जारी रहा। अन्त में पिता ने देखा कि इनका मन जब घर में लगता ही नहीं तब इन्हें रोकना व्यर्थ है। अतः इनसे निवेदन किया कि सन्तानोत्पत्ति के बाद तुम घर छोड़कर जा सकते हो। सत्रह वर्ष के वय में सन् १९२४ ई० में इन्हें एक कन्या उत्पन्न हुई। इस प्रकार पिता के आदेश का पालन कर इन्होंने अन्तिम रूप से घर छोड़ने का निश्चय कर लिया। फलतः हरनारायण ने अपने बूढ़े पिता और बूढ़ी माता, युवती स्त्री और अबोध पुत्री को रोते और कलपते हुए छोड़कर संसार से सदा के लिए अपना नाता तोड़ लिया। यही हरनारायण के महाभिनिष्क्रमण' की संक्षिप्त कथा है।

गुरु की खोज में

केवल सत्रह वर्ष के वय में युवक हरनारायण घर छोड़कर वैरागी बन गये। ये घर से निकल तो पड़े परन्तु इन्हें कहाँ जाना है और क्या करना है, इसका इन्हें स्वयं पता नहीं था। अपने गाँव से पैदल ये अनेक नदी-नालों को पार करते हुए, बीहड़ मार्गों का अतिक्रमण करते हुए आगे बढ़े चले जा रहे थे। अनेक दिनों की पैदल यात्रा करने के पश्चात् ये प्रयाग के समीप कुटेश्वर गाँव में पहुँचे। वहाँ एकाएक देखा कि एक महात्मा वटवृक्ष की छाया में बैठे हुए तपस्या कर रहे हैं। वे महात्मा टाट का कोपीन धारण किये हुए ध्यानमग्न थे। ध्यान भंग होने पर उन्होंने अपने सामने एक नवयुवक को खड़ा पाया। उससे प्रश्न करके उसका आशय जान लेने के पश्चात् उन्होंने हरनारायण से कहा कि "तुम नरवर जाकर अभी अध्ययन करो। तुम पर माँ सरस्वती की विशेष कृपा रहेगी।" इस महात्मा की आज्ञा मानकर हरनारायण नरवर के लिए चल पड़े। कहने की आवश्यकता नहीं कि वे महात्मा स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वतीजी महाराज थे जो आगे चलकर ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य हुए। उनका प्रधान आश्रम प्रयाग के 'अलोपी बाग' में था जो आज भी वहीं विद्यमान है।

नरवर में अध्ययन

प्राचीन काल से ही नरवर शिक्षा का केन्द्र रहा है। वहां सांगवेद विद्यालय स्थापित है। इसी विद्यालय में उन दिनों नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्रीजीवनदत्तजी महाराज

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यापन कार्य करते थे। उन्हीं के चरणों में बैठकर हरनारायण ने देववाणी संस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ किया। यहीं पर उन दिनों स्वामी विश्वेश्वराश्रम महाराज भी विद्यमान थे जो षड्दर्शनाचार्य होने के अतिरिक्त प्रकाण्ड विद्वान् थे। हरनारायण ने इन्हीं विद्वान् से व्याकरण तथा दर्शनशास्त्र का अध्ययन अनेक वर्षों तक किया। कुछ दिनों के पश्चात् स्वामी अच्युतमुनि के अनुरोध पर जब स्वामी विश्वेश्वराश्रमजी नरवर को त्याग कर वहाँ से लगभग ७-८ मील की दूरी पर स्थित 'भृगुक्षेत्र' चले गये, तब हरनारायण को भी उनका अनुगमन करना पड़ा। वहाँ भी इन्होंने अपने अध्ययन का क्रम चालू रखा और कुछ ही वर्षों में अपने स्वाध्याय तथा गुरु की कृपा से प्रकाण्ड पाण्डित्य प्राप्त कर लिया।

घोर तपस्या

अध्ययन के पश्चात् हरनारायण ने तपस्या करने का निश्चय किया। अब इन्होंने हरिहर चेतन (चैतन्य) नाम धारण कर लिया था। तपस्या के आकर्षण के कारण ये उत्तराखण्ड में स्थित हिमालय की हिम से आच्छादित तलहटियों में बैठकर तपस्या करने लगे। भूख और प्यास की यातना सहते हुए ये अपने शरीर की ममता को त्याग कर साधना में निरत हो गये। इस प्रकार ये तीन वर्षों तक घनघोर तपस्या करते रहे। इसी बीच इन्हें आत्मज्ञान की प्राप्ति हुई और तपस्या सफलीभूत हो गयी। जब ये अपनी साधना समाप्त कर परमहंस के रूप में आश्रम में लौटे तब इनके मुखमण्डल पर अलौकिक आभा दिखाई पड़ने लगी थी। इनके साथियों ने इनका स्वागत किया और बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। हरिहर चेतन ने सर्वप्रथम अपने गुरु के चरणों की वन्दना की और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया।

अब हरिहर चेतन केवल एक कोपीन धारण करते थे। केवल पवित्र तथा सदाचारी ब्राह्मणों के घर में ही भिक्षा करने के लिए जाते थे। ये अपने कर (हाथ) को ही पात्र बनाकर उसी में भोजन किया करते थे। अपने वास्तविक नाम की अपेक्षा इसीलिए ये 'करपात्रीजी' के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध हुए।

एक बार करपात्रीजी नरवर आश्रम से प्रयाग आये। वहाँ इन्होंने अपने गुरु स्वामी ब्रह्मानन्दजी सरस्वती का दर्शन किया। स्वामी विश्वेश्वराश्रमजी के अनुरोध से करपात्रीजी ने गुरु ब्रह्मानन्दजी से सन् १९३१ ई० में संन्यास की दीक्षा ली और तभी से ये दण्ड धारण करने लगे। संन्यासाश्रम में दीक्षित होने के पश्चात् स्वामीजी ने धर्म और संस्कृति का प्रचार करना प्रारम्भ किया। इन्होंने भागवत की कथा सुनाकर जनता में धर्म के प्रति आस्था उत्पन्न की। इनकी अनेक कथाओं में इन पंक्तियों के लेखक को भी उपस्थित होने का अवसर मिला है। इनकी प्रवचन की पद्धति समुचित तथा विद्वत्तापूर्ण होते हुए संस्कृत की कठिन तथा अप्रयुक्त शब्दावली से इतनी अधिक बोझिल थी कि साधारण श्रोता इसे समझने में नितान्त असमर्थ होता था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मसंघ की स्थापना

भारत में धर्म का प्रचार करने तथा भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए करपात्री जी ने सन् १९४० ई० में काशी में धर्मसङ्घ की स्थापना की। इस सङ्घ का प्रधान कार्यालय दुर्गाकुण्ड रोड पर दुर्गाजी के मन्दिर के पास ही स्थित है। धर्मसङ्घ के दो विभाग हैं—(१) शैक्षणिक विभाग तथा (२) राजनैतिक विभाग। शैक्षणिक विभाग के अन्तर्गत धर्मसङ्घ के विस्तृत परिसर में ही एक संस्कृत पाठशाला की स्थापना की गयी जिसमें पाँच-छह अध्यापक बड़े मनोयोग से संस्कृत का अध्यापन करते हैं। इस पाठशाला में व्याकरण, साहित्य, ज्योतिष, वेद आदि अनेक शास्त्रों का अध्यापन आचार्य कक्षा तक होता है। करपात्री जी ने इस पाठशाला के लिए सरकारी अनुदान (ग्राण्ट) स्वीकार नहीं किया और इसे धार्मिक जनता के दान से ही सञ्चालित करते थे। यह पाठशाला धर्मसङ्घ शिक्षा-मण्डल के अन्तर्गत सञ्चालित होती है। आजकल इस मण्डल के द्वारा बीसियों संस्कृत पाठशालाएँ सञ्चालित हो रही हैं। करपात्री जी के इस पवित्र कार्य में स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी, पं० विजयानन्द त्रिपाठी तथा म० म० पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने प्रचुर योगदान किया था। इन विद्वानों की सहायता से करपात्री जी के द्वारा संस्थापित शिक्षा-मण्डल का कार्य सुचारु रूप से सञ्चालित हो रहा है। इन पाठशालाओं की स्थापना से संस्कृत विद्या का प्रचार देश में हो रहा है।

राजनैतिक विभाग

धर्मसङ्घ का दूसरा अङ्ग राजनैतिक विभाग का कार्य है। प्राचीन शास्त्रों के अनुसार इस देश में राज्य सञ्चालन हो, इस उद्देश्य से स्वामी करपात्री जी ने 'रामराज्य परिषद्' नामक संस्था की स्थापना सन् १९५२ ई० में की थी। इस संस्था का एकमात्र लक्ष्य इस देश में रामराज्य की स्थापना है। 'रामराज्य' से करपात्री का अभिप्राय है देश में पक्षपातरहित, न्यायपरायण, धार्मिक शासन की स्थापना, जिसमें इस देश के सभी व्यक्तियों को वर्णाश्रम के आधार पर समान अधिकार प्राप्त हो और सभी लोग शास्त्रों में वर्णित अपने कर्मों को करने में सदा संलग्न रहें।

इसी अभिप्राय से करपात्री जी ने धर्मसङ्घ की स्थापना की। रामराज्य-परिषद् की ओर से सन् १९५२ ई० के प्रथम लोकसभा चुनाव के अवसर पर उम्मीदवार खड़े किये गये थे जिसमें अनेक राजे-महाराजे भी थे। इन उम्मीदवारों में अनेक लोकसभा के सदस्य चुन लिये गये थे। बाद के चुनावों में रामराज्य परिषद् को विशेष सफलता नहीं मिल सकी। इस प्रकार जिस उद्देश्य से रामराज्य-परिषद् की स्थापना की गयी थी वह पूरा नहीं हो सका।

हिन्दू कोड बिल का विरोध

जब पण्डित जवाहरलाल नेहरू प्रधानमन्त्री थे तब उन्होंने लोकसभा में हिन्दू कोड बिल उपस्थित किया जिसके अनुसार हिन्दुओं के विवाह और दाय-भाग के अधिकार में महान् परिवर्तन की व्यवस्था थी। करपात्री जी ने इस कोड बिल को अशास्त्रीय बताकर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका प्रबल विरोध किया। स्थान-स्थान पर सभा का आयोजन कर इसके विरोध में जनमत तैयार किया। इस कार्य में झूँसी के सन्त श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने इनकी बड़ी सहायता की थी। धार्मिक जनता के प्रबल विरोध के कारण पं० नेहरू को हिन्दू कोड बिल को स्थगित करना पड़ा।

पत्रों का प्रकाशन

स्वामी करपात्री जी ने अपने धार्मिक तथा राजनैतिक विचारों के प्रचार के लिए 'सन्मार्ग' नामक दैनिक समाचारपत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इस पत्र के द्वारा स्वामी जी के विचारों का प्रचार देश में किया जाता है। यह पत्र आजकल काशी और कलकत्ता दोनों स्थानों से प्रकाशित होता है। इन्होंने कुछ दिनों तक 'सिद्धान्त' नामक साप्ताहिक पत्र का भी प्रकाशन किया था जो अनेक वर्षों तक चलता रहा।

गोहत्या-प्रतिरोध

भारत में गोवंश की क्या महत्ता है इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं है। गो को माता कहा गया है। अतः भारतवर्ष में गोहत्या न हो और गोहत्या पर कानून के द्वारा प्रतिरोध लगा दिया जाय, इसके लिए करपात्री जी ने बहुत बड़ा आन्दोलन खड़ा किया। इस कार्य में श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी तथा पुरी के शङ्कराचार्य स्वामी निरंजनदेव तीर्थ ने बड़ा सहयोग किया। इन दोनों सज्जनों ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर गोहत्या पर प्रतिबन्ध लगाने पर आमरण अनशन तक प्रारम्भ कर दिया। स्वामी करपात्री जी ने अपने भाषणों तथा लेखों द्वारा इस आन्दोलन को और भी अधिक बलवान् बनाया। इसके लिए दिल्ली में प्रदर्शन करने के कारण इन्हें जेल की यातना भी भुगतनी पड़ी। अन्त में सरकार झुक गयी और उसने गोहत्या बन्द कर देने का पूर्ण आश्वासन दिया।

यज्ञों की धूम-शिखा

स्वामी करपात्री जी का यह विश्वास था कि देश के कल्याण और मंगल के लिए यज्ञों का विधान अत्यन्त आवश्यक है। इसी सद्भावना से प्रेरित होकर इन्होंने स्थान-स्थान पर अनेक यज्ञों का विधान किया था। सं० १९९९ वि० (१९४२ ई०) में दिल्ली में शतमुखकोटि होम नामक यज्ञ का आयोजन इन्होंने बड़ी धूम-धाम से किया था, जिसको देखने के लिए सहस्रों नर-नारी नित्यप्रति उपस्थित होते थे। इसके एक वर्ष पश्चात् सं० २००० (१९४३ ई०) में कानपुर में गंगा के उस पार एक महान् यज्ञ का आयोजन किया गया। अनेक लोगों के प्रबल विरोध करने पर भी यह यज्ञ सकुशल समाप्त हो गया।

कानपुर के पश्चात् काशी में नगवा के समीप गंगा के तट पर पुनः एक महान् यज्ञ सम्पादित किया गया। इस यज्ञ के अवसर पर १०८ बार श्रीमद्भागवत का सप्ताह पाठ भी आयोजित किया गया था। इस यज्ञ में सम्मिलित होने का सौभाग्य इन पंक्तियों के लेखक को भी प्राप्त हुआ। यज्ञ के अन्त में 'वसुधारा' का दृश्य दर्शनीय था जब सैकड़ों वैदिक विद्वान् अग्नि में आज्य की धारा छोड़ रहे थे। काशी के बाद

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी ने लखनऊ में लक्षचण्डी महायज्ञ का श्रीगणेश किया जो सकुशल समाप्त हुआ। उदयपुर के महाराणा के आग्रह पर स्वामी जी ने वहाँ चातुर्मास्य करना स्वीकार किया और वहाँ लक्षचण्डी यज्ञ का विशाल आयोजन कर उसे राजकीय वैभव के साथ सम्पन्न किया। इस प्रकार इन्होंने यज्ञमय वातावरण उपस्थित कर दिया था।

दैनिक चर्या

स्वामी करपात्री जी का चरित्र अत्यन्त उदात्त तथा पवित्र था। केवल सत्रह वर्ष के वय में ही इन्होंने अपने घर का परित्याग कर सांसारिक मोह-माया से नाता तोड़ भगवान् से नाता जोड़ लिया था। स्वामी जी की दिनचर्या सन्तुलित तथा नियमित थी। ये प्रतिदिन रात्रि में प्रायः २ बजे उठते थे तथा नित्यकर्म करके पूजा के आसन पर बैठ जाते थे। यह पूजन घण्टों प्रातःकाल तक चलता था। ये पूजन के त्रिकाल नियमों का पालन करते थे। दिन में घण्टों वेद-भाष्य की रचना के लिए लेखन का कार्य करते थे। सन्ध्या के समय प्रायः भागवत की कथा कहते थे अथवा आगत भक्तों को उपदेश देते थे। सन्ध्या को पाँच बजे केवल एक बार भोजन ग्रहण करते थे। रात्रि में पुनः पूजा-पाठ का क्रम चलता था। इस चर्या के पालन करने में ये बड़े कठोर थे।

करपात्री जी प्रायः पैदल ही चला करते थे। एक स्थान से सुदूर दूसरे स्थान तक जाने के लिए या तो यह नौका से यात्रा करते थे अथवा पैदल ही चलते थे। परन्तु धर्मसङ्घ की स्थापना होने पर अधिक भ्रमण की आवश्यकता को ध्यान में रखकर इधर ये मोटर कार का भी प्रयोग करने लगे थे। सम्भवतः वायुयान का प्रयोग भी यात्रा के लिए उत्तम समझते थे परन्तु रेलगाड़ी का प्रयोग सम्भवतः स्पर्शास्पर्श के कारण उचित नहीं मानते थे।

ग्रन्थरचना

स्वामी करपात्री जी के लिखने की शक्ति भाषणों की अपेक्षा कम नहीं थी। ये लेखनी के धनी और संस्कृत एवं हिन्दी उभय भाषाओं में ग्रन्थों का प्रणयन कर इन्होंने पण्डितों का तथा जिज्ञासु जनता का महान् उपकार किया। संस्कृत ग्रन्थ पण्डितों को लक्ष्य कर लिखे गये हैं और हिन्दी ग्रन्थ उस भाषा से अनभिज्ञ सामान्य जनता के लिए। संस्कृत ग्रन्थों के विषय वेद, तन्त्र तथा भक्ति शास्त्र हैं। संस्कृत रचनाओं में प्रमुख ग्रन्थ हैं—

(क) वेदविषयक ग्रन्थ : वेदार्थ-पारिजातः (बृहत् विशाल दो खण्डों में विभक्त), वेदस्वरूपविमर्शः, वेदप्रामाण्यमीमांसा।
(ख) तन्त्रविषयक ग्रन्थ : श्रीविद्यारत्नाकरः।
(ग) भक्तिविषयक ग्रन्थ : भक्तिरसार्णवः।

(१) वेदार्थ पारिजात

स्वामी करपात्रीजी नवीन शैली से वेदों की व्याख्या करने में संलग्न थे। स्वामी जी ने 'आध्यात्मिक शैली' को महत्व प्रदान कर इसी का पूर्णतः उपयोग अपने वेद के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाष्य में किया है। शुक्ल यजुर्वेद संहिता के चालीसों अध्याय का इन्होंने विस्तृत भाष्य लिखा जो अभी यन्त्रस्थ है। वेदों के सम्बन्ध में स्वामी जी की वेदभाष्य भूमिका दो विस्तृत खण्डों में प्रकाशित हो चुकी है जिसमें हिन्दी पाठकों को ध्यान में रखकर संस्कृत के साथ ही उसका हिन्दी अनुवाद भी दिया गया है। वेदार्थ पारिजात[1] नामक यह ग्रन्थ दो हजार पृष्ठों में है जो इनके वेद-भाष्य की भूमिका मात्र है। सनातनी परम्परा के पोषक तथा प्रचारक होने के कारण स्वामी जी मन्त्र और ब्राह्मण दोनों को श्रुति मानते थे। वेद अपौरुषेय हैं। ऋषिगण मन्त्रों के द्रष्टा हैं, कर्त्ता नहीं। इसी प्रकार के अन्य सिद्धान्तों की पुष्टि तर्क तथा युक्ति के सहारे की गयी है और इन सिद्धान्तों का विरोध करने वाले व्यक्तियों के मतों का खण्डन इन्होंने बड़े विस्तार तथा वैशद्य से किया।

(२) वेदस्वरूप विमर्शः[2]—स्वामी करपात्री जी ने वेद के विशुद्ध स्वरूप का परिचय देने के लिए तथा परम्परागत वेद-प्रामाण्य की मीमांसा के लिए इस महनीय ग्रन्थ का निर्माण किया। तर्क-वितर्क वाली शास्त्रीय पद्धति में निबद्ध होने वाला यह ग्रन्थ बड़े विस्तार के साथ वैदिक तत्त्वों का उन्मीलन करता है। इस ग्रन्थ में चार अध्याय या विमर्श हैं—(१) वेदस्वरूप विमर्शः, (२) वेदप्रामाण्य विमर्शः, (३) वेद अपौरुषेय विमर्शः और (४) ब्राह्मणानां वेदत्वविमर्शः। प्रथम विमर्श में वेद शब्द की निरुक्ति, वेद की अनन्तता, यज्ञमीमांसा आदि विषयों का विवेचन कर वेद में विज्ञान और इतिहास का अन्वेषण करने वाले विद्वानों के मत का खण्डन बड़े विस्तार के साथ किया गया है। द्वितीय विमर्श में वेद के नित्यत्व तथा स्वतःप्रमाण होने के सिद्धान्त का निरूपण किया गया है। बुद्ध की सर्वज्ञता का खण्डन कर अन्त में वेदाध्ययन के अधिकारी का निरूपण किया गया है। तृतीय विमर्श में वेद के अपौरुषेयत्व के सम्बन्ध में गम्भीर विचार किया गया है। इस अध्याय के अन्त में वैयाकरणों के वेदविषयक सिद्धान्त का प्रतिपादन बड़ी विद्वत्ता के साथ सम्पन्न हुआ है। चतुर्थ विमर्श में यह बड़े ऊहापोह के साथ दिखलाया गया है कि वेदों का ब्राह्मण (ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद्) भाग भी श्रुति का अविभाज्य अङ्ग है। यह ग्रन्थ ४५० पृष्ठों में निर्मित है। वेदों के सम्बन्ध में यावत् ज्ञातव्य वस्तुएँ हैं उन सभी का एकत्र सङ्कलन इस ग्रन्थ में मौलिक रूप में पाया जाता है।

(३) वेद-प्रामाण्य-मीमांसा[3]—पूर्वग्रन्थ के द्वितीय विमर्श के वर्ण्य विषयों की सामग्री कुछ अधिक विस्तार के साथ वेद-प्रामाण्य-मीमांसा नामक इस छोटी सी पुस्तिका

---

१. यह ग्रन्थ राधाकृष्ण प्रकाशन संस्थान, कलकत्ता से १९८० ई० में प्रकाशित है।

२. वेदस्वरूपविमर्शः : करपात्री जी, भक्तिसुधा साहित्य परिषद्, कलकत्ता, सं० २०२६ वि० (१९६९ ई०)।

३. धर्मसङ्घ शिक्षा मण्डल, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी से प्रकाशित, सं० २०१७ वि०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में वर्णित है। विषय की महत्ता तथा विपुल प्रचार की दृष्टि से इसे स्वतन्त्र रूप दिया गया है।

(४) श्रीविद्यारत्नाकरः

करपात्री जी महाराज के तन्त्रशास्त्र-विषयक प्रगाढ़ वैदुष्य का परिचायक यह 'श्रीविद्यारत्नाकरः' संस्कृत ग्रन्थ अनेक दिशाओं में अपना प्रामुख्य धारण करता है। इसके अनुशीलन से प्रतीत होता है कि वे तन्त्र की आनुष्ठानिक विधियों के, व्यावहारिक कार्यकलापों के तथा तान्त्रिक पूजा-अर्चा के सूक्ष्मतत्वों के गम्भीर विद्वान् थे। यह ग्रन्थ तन्त्रशास्त्र के प्राचीन महनीय ग्रन्थ जैसे कुलार्णव, तन्त्रराज, कल्पसूत्र, श्रीविद्यार्णव, त्रिपुरारहस्य एवं नित्योत्सव आदि को मुख्य आधार मान कर तत्तत् विषयों का पुंखानुपंख विवरण प्रस्तुत करता है। आरम्भ में दीक्षाक्रम का वर्णन है। तदनन्तर **महागणपतिक्रम**-पुरश्चरण विधि, गणेशसहस्र नामावलि आदि के विवरण के साथ प्रतिपादित किया गया है। श्रीक्रम के विविध अनुष्ठान विस्तार से व्याख्यात हैं (पृ० ७५–२३४), तदनन्तर श्यामाक्रम (पृ० २३५–६०), दण्डिनीक्रम, वाराहीक्रम (पृ०२६१–७५) तथा परापद्धति का प्रतिपादन है। अन्त में परिशिष्ट (पृ० २८२–४७०) के भीतर श्रीविद्यामन्त्रभाष्य, वांछाकल्पलता के पश्चात् पूर्णाभिषेक का वर्णन बड़े विस्तार एवं वैशद्य के साथ दिया गया है। श्रीविद्या के सर्वस्वभूत षड् आम्नायों से सम्बद्ध मन्त्रों का भी सुन्दर वर्णन है। ग्रन्थ के अन्त में आदि शंकराचार्य द्वारा प्रणीत प्रख्यातस्तोत्र सौन्दर्यलहरी, त्रिपुरसुन्दरी, मानसपूजा स्तोत्र, बालात्रिपुरासुन्दरी-मानसपूजा स्तोत्र भी दिये गये हैं। अनन्तर महायागक्रम में प्रयोगविधि समेत भावनोपनिषद् दिया गया है। वर्ण्य विषयों की इस संक्षिप्त सूची से ही ग्रन्थ के विस्तार, गम्भीर तान्त्रिक विवेचन तथा विशिष्ट विषय-विन्यास का जिज्ञासु पाठकों को संकेत मिल जाता है। ग्रन्थ की उपादेयता तथा अपूर्वता नितान्त स्पृहणीय है (प्र० भक्तिसुधा साहित्य परिषद्, कलकत्ता, २०२९ वि० सं०)।

(५) **भक्तिरसार्णवः**—इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य संस्कृत में 'भक्ति रस' का विस्तृत तथा गम्भीर विवेचन है। इस ग्रन्थ-रत्न में भक्ति रस के स्वरूप का विवेचन शास्त्रीय पद्धति से किया गया है। यह मधुसूदन सरस्वती के भक्तिरसायन की शैली में ही निबद्ध है परन्तु उससे अनेक बातों में अपनी विलक्षणता रखता है। संस्कृत की शास्त्रीय पद्धति में निबद्ध होने पर भी उदाहरण की प्रचुरता के कारण यह ग्रन्थ सरल और सुबोध है। इस ग्रन्थ में वेद से सम्बद्ध भी अनेक लेखों तथा निबन्धों का संग्रह है। भक्तिरस का विस्तृत तथा विशाल विवेचन ग्रन्थ की महत्ता तथा उपादेयता का स्पष्ट प्रमाण है।

हिन्दी रचनाएँ

हिन्दी में इनकी रचनाएँ बहुत हैं और प्रमेय-बहुल हैं। उनके प्रधान ग्रन्थ इस प्रकार हैं—(१) विचारपीयूष, (२) रामायण मीमांसा, (३) भक्तिसुधा, (४) श्रीभगवद्

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्व, (५) रामराज्य और मार्क्सवाद, (६) राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और हिन्दू धर्म। यहाँ इनका संक्षिप्त परिचय ही ग्रन्थ की उपादेयता तथा प्रामाणिकता को प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त होगा।

(१) विचारपीयूष

यह ग्रन्थ करपात्रीजी द्वारा रचित पुस्तकों में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस ग्रन्थ में दो विभाग हैं— (१) भारतीय राजनीति, और (२) आधुनिक वाद। प्रथम विभाग में स्वामीजी ने वेद, शास्त्र, काव्य, इतिहास और पुराणों में वर्णित राजनीति का सम्यक् विवेचन किया है। महाभारत इतिहास का ग्रन्थ होने के अतिरिक्त राजनीति का अगाध भाण्डार है। इसके शान्ति पर्व में राजनीति का सुन्दर प्रतिपादन किया गया है। स्वामीजी ने महाभारत में उपलब्ध भारतीय राजनीति के विभिन्न तत्वों का उद्-घाटन बड़ी ही विद्वत्ता से किया है। इसके साथ ही भारतीय नीतिकारों तथा संस्कृत के कवियों विशेषकर भारवि और माघ—ने कूटनीति का जो विवरण अपने ग्रन्थों में प्रस्तुत किया है उसका वर्णन स्वामीजी ने सरल रीति से हिन्दी पाठकों के लिए किया है। इस विभाग में इन्होंने छह विषयों का मूल उद्धरणों के साथ विवेचन किया।

दूसरा विभाग 'आधुनिकवाद' है जिसमें विभिन्न प्रकार के ग्यारह विषयों (टापिक) पर विचार प्रकट किये गये हैं। स्वामीजी के द्वारा विचारणीय विषयों की सीमा बड़ी विस्तृत है। इन्होंने भारतीय राष्ट्रीयता से ले कर वैयक्तिक सम्पत्ति, मार्क्सवाद, जनतंत्र, धर्मसापेक्षता और कौटिलीय अर्थशास्त्र तक को भी अपने विचारों का विषय बनाया। इन्होंने गुरुजी गोलवलकर की पुस्तक 'विचार-नवनीत' में संकलित विचारों का खण्डन किया। स्वामी करपात्रीजी की धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक विचार-धारा से भले ही कोई सहमत न हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस ग्रन्थ की रचना से इनकी राजनीतिक विद्वत्ता का पदे-पदे पता चलता है।

(२) रामायण मीमांसा

स्वामी करपात्रीजी द्वारा रचित यह विशालकाय ग्रन्थ रायल साइज के १११४ पृष्ठों में समाप्त हुआ है। इस ग्रन्थ में करपात्रीजी ने कामिल बुल्के द्वारा लिखित 'रामकथा' के आक्षेपों का उत्तर दिया। इसके साथ ही रामकथा से सम्बन्धित जो उपलब्ध सामग्री है उसका एकत्र संकलन किया गया। इस मोटी सी पुस्तक में कुल मिलाकर २२ (बाईस) अध्याय हैं। स्वामीजी ने रामकथा की परम्परा तथा इस कथा के विभिन्न पात्रों के चरित्र के विकास का वर्णन बड़ी ही विद्वत्ता से किया। रामायण के विभिन्न काण्डों की कथा का प्रामाणिक तथा शास्त्रीय विवरण स्वामीजी के द्वारा प्रस्तुत है। परन्तु सबसे अधिक आश्चर्यजनक विषय है स्वामीजी के द्वारा भारतीय भाषाओं में रामकथा-साहित्य का पाण्डित्यपूर्ण विवेचन। करपात्रीजी ने हिन्दी, बंगला, उड़िया, असमिया, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में उपलब्ध रामकथा-सम्बन्धी ग्रन्थों का विवरण प्रस्तुत करने के पश्चात् दक्षिण भारतीय भाषाओं—तमिल, तेलुगु,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्नड़ तथा मलयालम में उपलब्ध भगवान् राम के चरित-सम्बन्धी काव्यों का सांगोपांग विवेचन किया है। किम्बहुना, उर्दू साहित्य में राम कथा को लेकर जो काव्य लिखे गये हैं उनका भी वर्णन यहाँ पाया जाता है। राम की कथा का प्रचार तथा प्रसार प्राचीन काल में भारत के बाहर दक्षिण-पूर्वी एशिया तथा तिब्बत, चीन और लंका में भी पाया जाता है। इस विषय के सम्बल में पुस्तकों का अभाव है। परन्तु करपात्रीजी ने अपनी अलौकिक विद्वता से तिब्बत, खोतान, हिन्देशिया, मलाया, जावा, हिन्दचीन, श्याम, बर्मा आदि देशों में प्रचलित रामकथा का बड़ा ही प्रामाणिक तथा विशद वर्णन किया है। इससे स्वामीजी के अगाध पाण्डित्य का पता चलता है।

दूसरी बात जो भारतीय विद्वानों को स्वामीजी के गम्भीर अध्ययन की सूचना देती है वह है रामायण और महाभारत का काल-निर्णय। भारतीय इतिहास के इन महाकाव्य ग्रन्थों के समय-निर्धारण के सम्बन्ध में यूरोपीय विद्वानों—जैसे मैक्समूलर, मैकडानल, कीथ, वेवर, ब्यूलर आदि—ने जो विवेचन किया है, उसे पूर्वपक्ष मान कर स्वामीजी ने उनके मतों का बड़ी ही गम्भीरता के साथ खण्डन किया है। इतना ही नहीं प्रिंसेप, एलेन, मार्शल स्मिथ तथा कनिंघम आदि विदेशी विद्वानों ने भारतीय इतिहास तथा अशोक के शिलालेखों के सम्बन्ध में जो मत व्यक्त किया है स्वामीजी ने उसकी भी खरी आलोचना की है। पश्चिमी तथा भारतीय विद्वानों के मत से रामायण तथा महाभारत की रचना बुद्ध के पश्चात् और ईसा के पहिले दूसरी या तीसरी शती में हुई थी। परन्तु स्वामीजी ने इसकी रचना ईसा से हजारों वर्ष पूर्व में सिद्ध करने का प्रयास किया। यह दूसरी बात है कि करपात्रीजी के तर्कों तथा उनकी स्थापनाओं से भले ही कोई देशी या विदेशी विद्वान् सहमत न हो, परन्तु जिस विद्वत्ता के साथ स्वामीजी ने इन तर्कों को प्रस्तुत किया है उसकी प्रशंसा किये बिना कोई नहीं रह सकता। कहाँ वेदान्त का ज्ञान और कहाँ भारतीय पुरातत्व तथा अभिलेख शास्त्र का अध्ययन। परन्तु स्वामीजी के व्यक्तित्व में इन दोनों ही प्राचीन तथा नवीन—विद्याओं का मनोहर समन्वय पाया जाता था।

(३) भक्तिसुधा[1]

स्वामीजी के भागवत-विषयक ग्रन्थों में यह ग्रन्थ निःसन्देह मुकुटमणि है। इस का प्रथम संस्करण तीन खण्डों में विभिन्न समयों में प्रकाशित हुआ था। नवीन द्वितीय संस्करण उसी का एक ही खण्ड में परिष्कृत एवं परिवृंहित स्वरूप प्रस्तुत करता है। लगभग एक सहस्र पृष्ठों में सम्वलित यह विपुलकाय ग्रन्थ परिमाणतः ही विपुल एवं अभिराम नहीं है, प्रत्युत गुणतः भी कमनीय एवं रमणीय है। स्वामीजी का यह मौलिक ग्रन्थ निःसन्देह उनकी तपःपूत लेखनी का अद्भुत चमत्कार है। इसके दो तिहाई भाग में (लगभग सात सौ पृष्ठों में) व्रजनन्दन श्री वृन्दावन लीला के ही नानारूपों का सांगोपांग विवेचन रसिकों के लिए चिन्तन एवं मनन की विपुल नूतन सामग्री प्रस्तुत करता

१. राधाकृष्ण धानुका प्रकाशन संस्थान, कलकत्ता द्वारा १९८० ई० में प्रकाशित।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। वेणुगीत, चीरहरण, रासलीला एवं रासपंचाध्यायी का गम्भीर विवेचन रोचक शैली में निबद्ध होकर अपने पूर्ण वैभव के साथ यहाँ प्रस्तुत किया गया है। श्री मद्भागवत के प्रचुर श्लोकों की गम्भीर एवं नवीन व्याख्या स्वामीजी की अलौकिक प्रतिभा का प्रसाद उपस्थित करती है। केवल यह एक ही ग्रन्थ करपात्रीजी की अलौकिक कल्पना, विशद व्याख्यान-शैली एवं नवीन आध्यात्मिक तथ्यों की विवेचना का द्योतक ग्रन्थरत्न माना जा सकता है।

(४) भगवत्-तत्व[1]

यह भी करपात्रीजी के द्वारा लिखित, विशिष्ट महत्वपूर्ण निबन्धों का संग्रह है।

(५) मार्क्सवाद और रामराज्य[2]

इसमें पाश्चात्य राजनीति और भारतीय राजनीति का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत कर कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों की अनुपयोगिता सिद्ध की गयी है।

स्वामी जी के इतर हिन्दी ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—(१) वर्णाश्रम धर्म और संकीर्तन मीमांसा, (२) वेद का स्वरूप और प्रामाण्य, (३) अहमर्थ और परमार्थता, (४) संघर्ष और शान्ति, (५) राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और हिन्दू धर्म (६) विदेश यात्रा का शास्त्रीय पक्ष, (७) पूंजीवाद, समाजवाद एवं रामराज्य।

करपात्री जी का व्यक्तित्व

स्वामी करपात्रीजी महाराज का व्यक्तित्व अलौकिक था जिसमें दृढ़ कर्मठता का, दीर्घ तपस्या के बल से उपार्जित विशुद्ध ज्ञान का तथा सात्त्विक हृदय में उद्वेलित परमानन्द से आप्लुत भक्ति का मधुमय सामंजस्य सद्यः प्रस्फुटित होता था। जिस किसी विषय के विश्लेषण में उनकी शेमुषी संलग्न होती थी, वह विषय गम्भीरतम, कठिन से कठिन होने पर भी श्रोताओं तथा पाठकों के हृदय में अत्यन्त सरलता से उपस्थित हो जाता था। उनकी वाणी तथा लेखनी दोनों ही धार्मिक जनता को आकृष्ट करने की अद्भुत क्षमता रखती थी। उनकी मधुर वाणी का चमत्कार उनके अद्भुत भाषणों में दृष्टिगोचर होता था तो उन की प्रौढ़ लेखनी का प्रभाव उनके प्रमेयबहुल ग्रन्थों में भूरिशः अनुभवगम्य बनता था। इस तथ्य को दृष्टान्तों के सहारे बतलाने की आवश्यकता नहीं है।

स्वामीजी के भाषणों एवं ग्रन्थों - दोनों की एक मधुर दिशा है। इन्हें सुनकर तथा पढ़कर व्यक्ति के हृदय में तत्तद् विषयों के प्रति किसी प्रकार के संशय का लेश भी विद्यमान नहीं रहता। शास्त्रीय तथ्यों के विश्लेषण के समय उनकी वाणी जितनी तर्कनिष्ठ एवं युक्तिप्रवण होती थी, भक्ति रस के विवरण में वह उतनी ही मधुर, सरल-सुबोध एवं आनन्द-प्रसविनी बनती थी। भागवत की 'रासपंचाध्यायी' के रहस्यों का उद्घाटन उनकी भक्तिमयी वाणी इतनी सुन्दरता से करती थी कि उसमें नये-नये भावों

१. मूलचन्द चोपड़ा द्वारा बनारस से १९९७ वि० में प्रकाशित।
२. गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की व्यंजना से, नवीन अर्थों की अभिव्यक्ति से एवं भगवल्लीला के अविराम आयामों की स्फूर्ति से श्रोताओं का हृदय आनन्द से आप्लावित हो उठता था। राधा-माधव की निकुंज लीला में प्रवेश कर वे अपनी विलक्षण अनुभूति का वर्णन सुना कर विज्ञ श्रोताओं को रसविभोर बना डालते थे। उनके व्यक्तित्व में मस्तिष्क और हृदय दोनों की उदात्त वृत्तियों को जगाने की, उद्बुद्ध करने की तथा संचारित करने की विलक्षण प्रतिभा थी।

करपात्री जी के जीवन में कर्म, ज्ञान तथा भक्ति की विमल त्रिवेणी प्रवाहित होती थी। रामराज्य परिषद् की स्थापना, राजनीतिक चुनाओं में भाग लेना, अपने विषय के प्रतिपादन के लिए सभा मंचों से भाषण देना, धर्मसंघ की स्थापना तथा संस्कृत विद्या के प्रचार के लिए संस्कृत विद्यालय की स्थापना —ये उनके कर्मठ जीवन के उज्ज्वल प्रतीक हैं। अध्यात्मविषयक अनेक ग्रन्थों की संस्कृत तथा हिन्दी में रचनाएं इनके जीवन के ज्ञानपक्ष को उद्योतित करती हैं। अपने जीवन के प्रारम्भिक भाषणों में ज्ञानपरक विषयों को ये संस्कृतमयी, लच्छेदार तथा कठिन भाषा का प्रयोग इतना अधिक करते थे कि श्रोताओं के समूह में शायद हो दो-चार व्यक्ति इनके आशय को समझने में समर्थ हो सकते थे। परन्तु धीरे-धीरे इन्होंने अपने भाषण के स्तर को सरल बनाया था जिससे सभी लोग आसानी से समझ सकें।

भक्तिरस के विवेचन में भी करपात्रीजी बड़े ही अनुरागी व्याख्याता थे। श्रीमद्-भागवत की व्याख्या की ओर इनका नैसर्गिक आकर्षण था। राधा-माधव की लीलाओं के रहस्य का उद्घाटन ये इतनी सुन्दरता से करते थे कि कथा सुनने वाले लोग मुग्ध हो जाते थे।

भक्तिरस का उदय तथा अभ्युदय, विचार एवं विश्लेषण—सब कुछ श्रीमद्भागवत के ही अनुशीलन का व्यापक फल और इस महनीय कार्य के सम्पादन का श्रेय मिलना चाहिए काशी के अद्वैत वेदान्त मनीषी संन्यासियों को हो। इसी काशी नगरी के मह-नीय अद्वैती संन्यासी श्रीधर स्वामी ने अपनी 'भावार्थ दीपिका' नामक भागवत की व्याख्या के द्वारा भागवत के गम्भीर अर्थ को सर्वसाधारण के लिए सरल तथा सुबोध बनाया। यह घटना १४ वीं शताब्दी की है। इसके तीन शताब्दी बाद में विद्यमान गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन मधुसूदन सरस्वती शुष्क ज्ञानमार्ग के अनुयायी, अद्वैतवादी संन्यासी नहीं थे प्रत्युत भक्ति रस के व्याख्याता एवं भक्तिस्निग्ध हृदय से सम्पन्न एक महामान्य साधक तथा भक्त भी थे। अद्वैतसिद्धि जैसे अद्वैत ज्ञान से मंडित ग्रन्थ-रत्न के प्रणेता होने के साथ ही साथ ये 'भक्तिरसायन' जैसे भक्तिरस की व्याख्या करने वाले ग्रन्थ के रचयिता भी थे। चौंसट्ठी घाट पर विद्यमान अपने मठ में रहने वाले मधुसूदन सरस्वती काशी की ही प्रतिभाशाली विभूति थे। १८ वीं शती में विराजमान स्वामी नारायणतीर्थ ने जहाँ वेदान्त के चूड़ान्त ग्रन्थों का प्रणयन किया, वहीं वे 'शाण्डिल्य भक्तिसूत्र' की भक्तिचन्द्रिका नामक व्याख्या लिखकर भक्ति के तत्त्व, प्रकार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा साधना को वेदमन्त्रों के द्वारा प्रतिष्ठित करने वाले व्याख्याकार थे। ये भी वाराणसी के ही संन्यासी सम्प्रदाय के अलंकार थे। स्वामी करपात्री जी भी काशी की इसी भक्तिमार्गीय, भागवती अद्वैती संन्यासियों की परम्परा के मुकुटमणि के रूप में विराजमान थे। बड़े दुःख का विषय है कि ऐसे दिव्य मनीषी ७ फरवरी १९८२ को ब्रह्मलीन हो गये और उनके तिरोधान से सनातनधर्म की अपूरणीय क्षति हुई है।

स्वामीजी का व्यक्तित्व

श्री करपात्रीजी का व्यक्तित्व बड़ा ही विशाल था। वे अद्वैत वेदान्त के प्रतिभा-सम्पन्न उच्चकोटि के मर्मज्ञ विद्वान् थे। उनका शास्त्रीय वैदुष्य गुरुमत से अधिगत विद्या का प्रसाद नहीं था, प्रत्युत वह उनकी लोकातीत प्रतिभा की अन्तःस्फूर्ति का दिव्य प्रतीक था। अद्वैत के सहायक तथा पोषक मीमांसा, न्याय तथा सांख्ययोग शास्त्रों का भी ज्ञान उनका उतना ही पूर्ण तथा प्रभावशाली था। शास्त्रार्थ में उनकी वाक्पटुता तथा तर्कानुगामिता उतनी ही आवर्जक थी। सनातन धर्म के सिद्धान्तों के मण्डन करने में तथा उसके प्रतिस्पर्धियों के तर्काभास से परिपुष्ट मतों को ध्वस्त करने में उनकी तर्क-चातुरी का चमत्कार प्रौढ़ विद्वानों को भी आश्चर्यचकित करने वाला था। उनके आरम्भिक कथा-प्रवचनों में वेदान्त के शास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों का बहुल प्रयोग उनके श्रोताओं के लिए एक विषम समस्या थी। परन्तु स्वामीजी ने धीरे-धीरे अपने भाषणों को जनता के लिए बोधगम्य बनाने की दृष्टि से उनके स्तर को कुछ कोमल बनाया। कठिन विषय के समझाने की उनकी शैली बड़ी ही रोचक तथा आकर्षक थी। उपनिषद् तथा शास्त्रों के प्रमाणभूत वचन उनके मुख से अनायास ही स्थान-स्थान पर आते रहते थे। फलतः स्वामीजी के समान अन्तराल में पहुँच कर शास्त्र के गूढ़ मर्मों को सीधी-सादी भाषा में जनता को समझाने वाला कोई दूसरा वक्ता नहीं था। वह सामान्य वक्ता न होकर शास्त्रार्थपटु अलौकिक वाग्मी थे जिसके विरल अस्तित्व के विषय में शास्त्र की उक्ति है—'वाग्मी भवति वा न वा'।

स्वामी करपात्रीजी भारतीय राजनीति के एक कर्मठ उपासक एवं दिव्य आदर्श के प्रतिष्ठाता थे। वे शास्त्रानुमोदित शासन को राजनीति का आधार मानते थे और इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए उन्होंने 'रामराज्य परिषद्' की स्थापना की थी। पाश्चात्य भौतिकवादी राजनीति का कोई भी दृढ़ दार्शनिक आधार नहीं है। प्रथम बार कार्ल मार्क्स ने 'कैपिटल' नामक मौलिक राजनीतिक ग्रन्थ में साम्यवाद और सामाजिक भौतिकवाद की व्याख्या दार्शनिक आधार पर की। स्वामी करपात्रीजी मार्क्सवाद तथा तत् सम्बद्ध राजनीतिक समस्याओं का मूल्यांकन अपने सुचिन्तित ग्रन्थ 'मार्क्सवाद और रामराज्य' में किया है। भौतिक विषयोपयोग, पूँजीवाद एवं श्रमिकवाद के दलदल से राजनीति को समुद्धृत कर स्वामीजी ने रामराज्य के मर्यादावाद एवं अध्यात्मवाद पर केन्द्रित किया। उन्होंने दिखलाया कि पूँजी तथा श्रम के परस्पर पोषक होने से स्वार्थान्धता एवं वर्गविद्वेष, तथा वैयक्तिक, सामाजिक राष्ट्रीय तथा अन्ताराष्ट्रिय संघर्षों को

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्रम मिलेगा जो मानव समाज तथा विश्व के विनाश का कारण बनेगा। भारतीय राजनीति इस सिद्धान्त के कोसों दूर है। रामराज्यवाद ही आध्यात्मिकता पर आधारित, धर्मनियन्त्रित नीति से प्राणिमात्र को 'अमृतस्य पुत्राः' परमेश्वरी सन्तान मानकर उनके प्रति सहज भ्रातृभाव का समर्थन करता है। इस प्रकार प्रायः बारह सौ पृष्ठों के इस महनीय ग्रन्थरत्न में राजनीतिक क्षेत्र में विश्व को सुखशान्ति देने वाला रामराज्य ही विश्व का एकमात्र कल्याण-साधन हो सकता है—इस तथ्य का प्रतिपादन स्वामीजी ने बड़े तर्क तथा दृढ़ युक्तियों के सहारे सिद्ध किया। भारतीय राजनीति का ठोस दार्शनिक आधार प्रस्तुत करने वाला यह ग्रन्थ श्री करपात्रीजी के राजनीतिक चिन्तन तथा अनुशीलन का अनुपम प्रतीक है।

वर्तमान युग में भौतिकवाद के झंझावात से डाँवाडोल होने वाले वैदिक धर्म के संरक्षण, परिबृंहण तथा प्रस्थापन के निमित्त श्री स्वामीजी ने जो अश्रान्त अदम्य प्रयासों को संचारित किया उनका सुफल हमारे सामने विद्यमान है। उन्होंने भौतिकवाद की प्रबल आँधी से सनातन धर्म को मुक्त कर देश में धार्मिक एवं आध्यात्मिक वातावरण की सर्जना की। श्रौतस्मार्त पद्धतियों से परिपूर्ण यज्ञों के अनुष्ठान की परम्परा का श्रीगणेश किया और शास्त्र एवं शास्त्रीयता की मर्यादा को उच्चतम शिखर पर पहुँचा दिया। 'सर्ववेदशाखा सम्मेलनों' के माध्यम से उन्होंने देश में वैदिक धर्म की पुनः स्थापना की। वेदों की अपौरुषेयता, उनका प्रामाण्य एवं उनकी सनातन उपयोगिता को सिद्ध कर स्वामीजी ने वेदों के प्रति लोगों में श्रद्धा उत्पन्न की, शास्त्रीय पद्धति को जीवन-यापन का मार्ग बनाया तथा सनातन धर्म की ज्योति को सर्वदा के लिए आलोकित कर दिया। सचमुच उनका व्यक्तित्व बड़ा विशाल था। वे लोक-कल्याण में निरन्तर संलग्न महामनीषी थे। वे सचमुच ही धर्मसम्राट् थे—अलौकिक महापुरुष थे, जिनके लोकातीत कार्यों का मूल्यांकन भविष्य की पीढ़ियाँ बड़े आदर और सम्मान से आगे करती रहेंगी।

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्॥

काशी में भागवत व्यासों की परम्परा

काशी में श्रीमद्भागवत के प्रवचन करने वाले विद्वान् व्यासों की परम्परा रही है। इस परम्परा के अन्तर्गत गुजरात, महाराष्ट्र तथा उत्तरप्रदेश से सम्बद्ध ब्राह्मण परिवारों का अन्तर्भाव होता है। वल्लभाचार्य के द्वारा प्रवर्तित पुष्टिमार्गीय वैष्णवों की क्रीडास्थली होने के कारण भागवत के कथाकार व्यासों का प्राचुर्य काशी में होना नितान्त स्वाभाविक है। महाराष्ट्रीय वैष्णवसन्त भी काशी में आकर अनेक वर्षों तक यहाँ निवास करते थे तथा मराठी में भागवत-विषयक ग्रन्थों का प्रणयन करते थे। प्रसिद्ध सन्त एकनाथ ने काशी में ही अपने प्रख्यात आध्यात्मिक ग्रन्थ **एकनाथी भागवत** का प्रणयन किया था (समाप्तिकाल १५७३ ई०)। उत्तरप्रदेश के महनीय वैष्णव सन्त

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा पण्डित काशी में निवास करते थे तथा भागवत की मनोरम कथा का प्रचार अपने व्याख्यानों एवं भागवत प्रवचनों द्वारा किया करते थे। यह परम्परा आज भी जागरूक है तथा प्रगति पर है।

पण्डित भागवती जी— ऐसे ही काशी मण्डल में जनमे एक भागवत-मर्मज्ञ व्यास का संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जाता है। इनका नाम तो था **श्री भूपनारायण मिश्र**, परन्तु वे अपनी 'भागवतीजी' की अन्वर्थक आख्या से ही विशेष प्रसिद्ध थे। इनका जन्म हुआ था वाराणसी मण्डल के 'महाइच' परगने में 'महेशी' नामक ग्राम में पण्डित परमेश्वरदत्त मिश्र के आत्मज-रूप में विक्रम सम्वत् १९१६ (१८५९ ई०) में।

इनका घर का नाम भूपनारायण मिश्र था। पाँच भाइयों में ये तृतीय थे। कहा जाता है कि विद्याध्ययन के लिए वाराणसी आकर किसी कार्यवश शीघ्र ही घर लौट कर जाते समय मार्ग में ग्राम के एक ब्राह्मण ने उपहास में कहा कि 'ये देखो भूपन बनारस से भागवत पढ़ के आ गये।' इस बात की प्रतिक्रिया के रूप में पण्डित जी ने पुनः वाराणसी आकर उस समय के विभिन्न विषयों के प्रख्यात विद्वानों से व्याकरण, साहित्य, मीमांसा, वेदान्त, धर्मशास्त्र, महाभारत एवं श्रीमद्भागवत का गम्भीर प्रौढ़ अध्ययन किया और भागवत के पूर्ण विद्वान् के रूप में ही पुनः घर लौटे। उन्होंने श्रीमद्भागवत का अध्ययन पं० **विश्वेश्वरदत्त ब्रह्मचारी भागवतीजी** से किया और उनके ही स्थान नीलकण्ठ मुहल्ला में राममन्दिर पर भागवत का अध्यापन नित्य पूर्वाह्न और अपराह्न दोनों समय निरन्तर यावज्जीवन करते रहे। यदाकदा वाल्मीकि रामायण और महाभारत का भी पाठ चलता रहा। श्रीधरी टीका अधिकतर इनको कण्ठस्थ थी। श्रीधरी के अनुसार ही ये व्याख्या करते थे।

इनकी अध्यापन शैली व्याकरण, साहित्य और दर्शन के प्रौढ़ विद्वानों को भी श्रद्धावनत और मुग्ध करती थी। अनेक विद्यालय का मूर्धन्य विद्वद्वर्ग एवं साधुवर्ग इनसे निःसङ्कोच अध्ययन करता था। जब वे 'लोकेव्यवायामिषमद्य सेवा' इत्यादि श्लोकों की व्याख्या करते थे तब लगता था कि ये कोई उद्भट मीमांसक हैं। भागवत की 'वेद स्तुति' ऐसे स्थलों की व्याख्या के अवसर पर उनका दार्शनिक ज्ञान दर्शन के अच्छे विद्वानों को भी आश्चर्य-चकित कर देता था। मारवाड़ी संस्कृत महाविद्यालय के अध्यक्ष श्री मदनमोहन शास्त्री और सेठ गौरीशंकर गोयनका अपने-अपने महाविद्यालयों में उन्हें भागवत के अध्यापन के लिए ले जाना चाहते थे किन्तु इन्होंने वृत्तिकाध्यापन को अस्वीकार कर दिया। अन्तिम समय में अनन्तश्री करपात्री जी के धर्मसङ्घ महाविद्यालय, वाराणसी में अध्यापन करते रहे। वाराणसी के प्रख्यात प्रतिष्ठित व्यक्ति कामेश्वरप्रसाद अग्रवाल के नीचीबाग़ के मन्दिर में प्रतिदिन वर्षों तक उनका कथा प्रवचन चलता रहा। उनके सहस्रों शिष्य भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में बिखरे हुए हैं जिनमें कई धर्माचार्य संन्यासी महात्मा भी हैं। उन्हीं में एक स्वामी अखण्डानन्द

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती जी भी हैं। उनके छोटे पुत्र राधाकान्त मिश्र महेशी में और दो पौत्र श्रीचन्द्रकान्त मिश्र और शशिकान्त मिश्र वाराणसी में रहते हैं। इनका निधन वाराणसी में राममन्दिर में ही संवत् २०१४ (१९५७ ई०), भाद्रपद शुक्ल तृतीय को ६८ वर्ष की आयु में हुआ। पण्डितवर्ग एवं सम्मानित जनवर्ग में पण्डित जी की उच्चकोटि की प्रतिष्ठा थी। उन्होंने भागवत के प्रचार-प्रसार का अनुपम कार्य किया और भागवत के कई उच्च विद्वान् देश को दिये।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६

स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती

श्रीमद्भागवत, उपनिषद् तथा अनेक शास्त्रों के उद्भट विद्वान् एवं प्रवचनकर्त्ता स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी का शास्त्रीय वैदुष्य जितना उच्च कोटि का है, उतनी ही उदात्त कोटि की है इनकी आध्यात्मिक साधना एवं दीर्घ तपस्या। आरम्भ से ही उनके चित्त को संसार का वासनामय वातावरण आकृष्ट नहीं कर सका और निसर्गतः इनकी प्रवृत्ति अध्यात्म-चिन्तन एवं विरक्ति की ओर उन्मुख रही। फलतः ये अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपने जीवन की महनीय उपलब्धि-भगवद्वैकर्म—के लिए अनेक स्थानों में निवास करते हुए अपने को तैयार कर रहे थे। गोरखपुर के प्रख्यात आध्यात्मिक पत्र 'कल्याण' के द्वारा साहित्य-सेवा करते हुए भी इन्होंने अपने को परम उद्देश्य की प्रगति की ओर बढ़ाया। श्रीमद्भागवत की हिन्दी व्याख्या, भक्ति तथा ज्ञान प्रचुर लेखों, दार्शनिक गूढ़ विषयों के विवेचन-प्रवचन आदि के द्वारा शान्तनु-विहारी द्विवेदी जी का एक मात्र लक्ष्य रहा—'भगवान् की 'पीयूषमयी कथा की ओर जनता-जनार्दन को उन्मुख करना तथा विद्वानों के हृदय में तात्त्विक भक्तिभाव की सद्यः स्फूर्ति करा देना।' आज भी स्वामी जी इसी कार्य में लगे हुए हैं, सनातन धर्म का प्रचुर प्रचार कर जनता में धार्मिक जागृति का समुज्ज्वल उदय कर रहे हैं।

जन्म

स्वामी जी का जन्म वाराणसी मण्डल के महाइच परगने के महराई गाँव में पंडित हर्षेन्दु द्विवेदी के आत्मज-रूप में सं० १९६८ (१९११ ईसवी) की श्रावण अमावस्या को हुआ। इनके पितामह श्री चन्द्रशेखर द्विवेदी धर्मशास्त्र एवं ज्योतिष के प्रसिद्ध विद्वान् और विशाल प्रतिष्ठित जनवर्ग के कुलगुरु थे। इनके पिता की अनेक सन्तानें अल्पकाल में ही कालकवलित हो गयी थीं। फलतः इनकी पितामही ने मथुरा मण्डल के प्रसिद्ध देव-विग्रह (सतोहा) सन्तानविहारीजी (श्रीकृष्णजी) की वंशवर्धन सन्तान की कामना के लिए बड़ी आराधना की। उसके फलस्वरूप इनका जन्म हुआ और इसीलिए इनका नाम रखा गया—शान्तनुविहारी (सन्तानविहारी)। भाग्यवश पिता जी की छाया इनके सिर से वि० स० १८७५ (१९१८) में ही उठ गयी, जब ये केवल सात साल के बालक थे। अतः इनके पालन-पोषण का भार इनके पितामह तथा पूजनीया माताजी पर पड़ा। इनके दो भाइयों की मृत्यु इनके जन्म के पहले ही हो चुकी थी। फलतः ये माता-पिता की इकलौती सन्तान थे। ध्यान देने की बात है कि जिस बालक का जन्म भगवान् श्रीकृष्ण की दीर्घ उपासना और विमल मान्यता के फलस्वरूप हुआ, उसके जीवन में उनकी सरस अनुकम्पा तथा विशद भक्तिभावना का प्रसाद यदि अबाध गति से प्रवाहित हो चला, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी की माताजी पतिपरायणा तथा सती-साध्वी स्त्री थीं। अपने पति के परलोक गमन के पश्चात् अपने ससुर की आज्ञा लेकर चारों धाम की यात्रा करने के लिए गयी थीं। वे रामचरितमानस की बड़ी भक्त थीं। जब वे रामायण का पाठ करने लगतीं तब उनकी आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती थी। अपने छोटे बच्चे (अखण्डानन्दजी) के हृदय में उन्होंने ही प्रेम की भावना जाग्रत की। सच तो यह है कि अक्षरारम्भ का अभ्यास इन्होंने रामायण पढ़ कर ही किया था।

शिक्षा और गुरु

स्वामी अखण्डानन्दजी की पाठशालीय शिक्षा कुछ विशेष नहीं हुई। इन्होंने केवल दूसरी कक्षा तक ही नियमित रूप से शिक्षा प्राप्त की थी। गाँव की पाठशाला में कुछ दिनों तक पढ़ने के पश्चात् संस्कृत-साहित्य, व्याकरण तथा दर्शन शास्त्रों का विशेष अध्ययन करने के लिए ये काशी चले आये। यहाँ इन्होंने पं० रामभवन उपाध्याय से व्याकरण का अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त पं० रामपरीक्षण शास्त्री से दर्शन शास्त्र का पाठ पढ़ा। स्वामी मनीष्यानन्दजी के साथ सत्सङ्ग करने से इन्हें मानसिक पवित्रता की प्राप्ति हुई। इस प्रकार लगभग छह-सात वर्षों तक ये गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज बनारस में विभिन्न गुरुओं से व्याकरण, दर्शन, धर्मशास्त्र, ज्योतिष आदि शास्त्रों का अध्ययन करते रहे। ये नित्यप्रति भागवती कथा का श्रवण भी करते थे। कुल की गुरु-परम्परा होने से बचपन से ही कथा सुनाने का अभ्यास था और इनके पितामह ही इसके प्रेरणा-स्रोत थे। विद्यारम्भ के पूर्व ही उन्होंने अनेक स्तोत्र, मन्त्र, ग्रन्थ इन्हें कण्ठस्थ करा दिये थे।

संन्यास

स्वामीजी के पितामह बहुत बड़े ज्योतिषी थे। उन्होंने अपने पौत्र की कुण्डली में मारक योग देख कर इनका विवाह सं० १९८० वि० (सन् १९२३ ई०) में कर दिया। उस समय इनका वय केवल १२ वर्ष का था। संयोग से १९ वर्ष के वय के पहले इन्हें सन्तान की प्राप्ति भी हो गयी। इस उम्र में इनके शरीर पर मारकेश ग्रह का तो कोई प्रभाव नहीं पड़ा, परन्तु इनके मन में संसार से विरक्ति अवश्य हो गयी। जब स्वामीजी कल्याण के सम्पादनार्थ गोरखपुर में निवास कर रहे थे, तब स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती की बड़ी ख्याति थी। कुछ वर्षों के पश्चात् ये ही ब्रह्मानन्दजी बदरिकाश्रम के ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य के सिंहासन पर आसीन हुए। १९४२ ई० में इन्हीं स्वामीजी से इन्होंने सांन्यास की दीक्षा ग्रहण की और पं० शान्तनुविहारी द्विवेदी पूर्वाश्रम के नाम का परित्याग कर स्वामी 'अखण्डानन्द सरस्वती' नाम धारण कर लिया।

साधु-महात्माओं से सत्संग

स्वामीजी को अनेक प्रसिद्ध साधु-सन्तों से सत्सङ्ग करने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। सुप्रसिद्ध महात्मा श्री उड़िया बाबाजी का सान्निध्य इन्हें प्राप्त था। सहेपुर के स्वामी योगानन्दजी, मोकलपुर के बाबा, मधईपुर के बाबा अविनाशचन्द्रजी, नेपाल के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री परमहंसजी, भिक्षु शंकरानन्दजी, श्री गुलाबचन्दजी आनन्द आदि महात्माओं से सत्सङ्ग करने का इन्हें सुअवसर प्राप्त हुआ। अपनी तीर्थयात्राओं में उत्तरी तथा दक्षिणी भारत के अनेक साधु-महात्माओं के इन्होंने दर्शन किये थे। साधु-सन्तों के अतिरिक्त इनका सम्पर्क भारत के चोटी के दार्शनिकों तथा विद्वानों से भी था। स्वामीजी ने अपना पहला चातुर्मास्य कर्णवास क्षेत्र में किया था। वहाँ ये उड़िया बाबा के सान्निध्य में माण्डूक्य कारिका का प्रवचन करते थे। वहाँ देश के प्रसिद्ध दार्शनिकों का जमघट होता था। नरवर के ब्रह्मचारी पं० जीवनदत्तजी, पं० गिरधर शर्मा चतुर्वेदी, पं० अखिलानन्दजी आदि विद्वान् सम्मिलित होते थे।

इनके सान्निध्य में ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्री स्वरूपानन्दजी तथा स्वामी श्री शान्तानन्दजी वर्षों तक रहे। आज के भारतप्रसिद्ध रामचरितमानस के लोकप्रिय वक्ता श्रीरामकिंकर उपाध्याय इनसे ही दीक्षित हुए हैं।

तीर्थाटन

स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती ने समस्त भारत का पर्यटन कर इस देश के विभिन्न भागों में स्थित तीर्थों तथा धामों के दर्शन किये। ये बड़े पर्यटक ही प्रकृति के साधु हैं। अतः इन्होंने पैदल तथा रेल के द्वारा इस पवित्र देश की अनेक बार परिक्रमा की है। हिमालय से कन्याकुमारी तक और जगन्नाथ पुरी से द्वारका तक यात्रा कर इन्होंने शंकराचार्य की प्राचीन परम्परा का अनुसरण किया। उत्तराखण्ड की यात्रा में गंगोत्तरी में श्री कृष्णाश्रमजी महाराज तथा जोशीमठ में अपने संन्यासगुरु शंकराचार्य के पद पर प्रतिष्ठित स्वामी ब्रह्मानन्द जी के भी दर्शन किये। इसी प्रकार दक्षिण भारत की यात्रा इन्होंने दो बार स्पेशल ट्रेन से की। दक्षिण की इस यात्रा में इन्होंने पाण्डेचरी में अरविन्द आश्रम देखा और तिरुवण्णमलै में श्री रमण महर्षि का भी सत्संग प्राप्त किया। कांची में कामकोटिपीठाधिपति शंकराचार्य के दर्शन किये। इस प्रकार इस तीर्थयात्रा में इन्होंने अनेक महात्माओं, साधुओं तथा सन्तों के दर्शन कर उनसे सत्संग का विशेष लाभ उठाया।

ट्रस्टों की स्थापना

स्वामी जी ने जनता के कल्याण के लिए अनेक ट्रस्टों की स्थापना की है जिनके द्वारा धर्म का प्रचार अनवरत गति से किया जा रहा है। स्वामी जी ने जिन ट्रस्टों की स्वयं स्थापना की है अथवा जिनसे इनका सम्बन्ध है उनकी सूची निम्नांकित है—

१. श्री उड़िया बाबा ट्रस्ट, अध्यक्ष
२. श्री कृष्ण-जन्मस्थान सेवा संस्थान, मथुरा, अध्यक्ष
३. स्वर्गाश्रम ट्रस्ट, ऋषीकेश, अध्यक्ष
४. आनन्द वृन्दाबन चैरिटेबल ट्रस्ट, अध्यक्ष
५. जनता-जनार्दन सेवा ट्रस्ट, अध्यक्ष
६. प्रेमानन्द ट्रस्ट, ओरैया, इटावा, अध्यक्ष

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७. सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट, बम्बई, संस्थापक अध्यक्ष
८. लोकहित-प्रन्यास, अध्यक्ष
९. स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती सेवा संस्थान, अध्यक्ष
१०. ब्रह्ममूर्ति श्री उड़िया बाबा लोककल्याण ट्रस्ट, अध्यक्ष

इन ट्रस्टों से स्वामी जी के क्रिया-कलापों का कुछ परिचय प्राप्त होता है।

ग्रन्थ-रचना

स्वामी अखण्डानन्द जी ने अनेक ट्रस्टों की स्थापना कर देश में धर्म, दर्शन तथा साहित्य के प्रचार में प्रमुख योगदान दिया है। सत् साहित्य के निर्माण तथा प्रचार के लिए इन्होंने बम्बई में 'सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट' स्थापित किया है जहाँ से प्रायः स्वामी जी की पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों की सूची निम्नांकित है —

(१) माण्डूक्य-प्रवचन (आगम प्रकरण), (२) माण्डूक्य कारिका प्रवचन (वैतथ्य प्रकरण), (३) माण्डूक्य कारिका (भाग ३), (४) कठोपनिषद् (भाग १ तथा २), (५) श्रीमद्भागवत रहस्य, (६) सांख्य योग, (७) ध्यान योग, (८) कर्म योग, (९) भक्ति योग, (१०) ज्ञान विज्ञान योग, (११) विभूति योग, (१२) भक्ति सर्वस्व, (१३) अपरोक्षानुभूति, (१४) साधना और ब्रह्मानुभूति, (१५) नारदभक्तिदर्शन, (१६) भक्ति रसायनम्, (१७) मानव जीवन और भागवत धर्म, (१८) व्यवहार और परमार्थ, (१९) मुण्डक प्रवचन, (२०) ईशावास्य प्रवचन, (२१) पुरुषोत्तम योग, (२२) ब्रह्मज्ञान और उसकी साधना, (२३) भागवतामृत, (२४) भागवत दर्शन, (२५) मानव जीवन और भागवत-धर्म, (२६) गीता में मानव-धर्म भक्ति-ज्ञान समन्वय, (२७) निगम-चिन्तन, (२८) चारु चिन्तन, (२९) गम्भीर चिन्तन, (३०) गीता-दर्शन (१-८)।

इन विभिन्न ग्रन्थों के नाम से ही इनके विषय-वैविध्य का पता चलता है। वेद, दर्शन शास्त्र, भागवत आदि सभी विषयों में आपका प्रकाण्ड पाण्डित्य परिलक्षित होता है। साधु-सन्त तथा महात्मा लोग मौखिक रूप से प्रवचन तो करते हैं परन्तु लेखन-कर्म से वे प्रायः विरत रहते हैं। परन्तु स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती की विशेषता यह है कि ये उपनिषदों, वेदान्त ग्रन्थों एवं भागवत के मधुर वाचक ही नहीं हैं, प्रत्युत लेखनी के भी धनी हैं। इनकी वाणी और लेखनी दोनों ही अध्यात्म के उपदेश में समभावेन गतिशील हैं।

श्रीमद्भागवत के उत्कृष्ट प्रवचन कर्त्ता

स्वामी अखण्डानन्दजी के जीवन का सर्वोत्कृष्ट वैशिष्ट्य है श्रीमद्भागवत का प्रवचन। स्वामी जी ने दिव्य शरीर के साथ ही दिव्य वाणी भी प्राप्त की है। इनकी सुमधुर वाणी से निकले हुए भागवत के मधुर श्लोक श्रोताओं के ऊपर अलौकिक प्रभाव उत्पन्न करते हैं। इनकी कथा-शैली इतनी रोचक और प्रभावोत्पादक है कि स्वयं महामना मालवीय महाराज ने इनसे भागवत की कथा सुनने की इच्छा प्रकट की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इनकी कथा सुन कर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। भारत के बड़े से बड़े सेठ-साहूकार, धनी-मानी व्यक्ति इनके शिष्य हैं और वे लोग अपने यहाँ भागवत की कथा सुनाने के लिए इन्हें बार-बार आग्रहपूर्वक निमन्त्रण देकर बुलाते हैं। स्वामी जी की कथा कहने की विशेषता यह है कि अपने प्रवचन के बीच में उपदेशात्मक रोचक कथाएँ भी सुनाते रहते हैं जिससे श्रोता का मन ऊबने नहीं पाता। भागवत के श्लोकों का पाठ इनकी मधुर वाणी से सुनकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। भागवत की कथा को लोकप्रिय बनाने में स्वामी जी का योगदान प्रचुर परिमाण में पाया जाता है। ये आज भी अपने प्रवचनों के द्वारा सर्वसाधारण जनता में भक्ति का प्रचार करने में संलग्न हैं और सपरिश्रम संलग्न हैं। इस पवित्र कार्य के लिए इन्होंने अपना जीवन ही समर्पित कर दिया है। श्री वृन्दावन में उड़िया बाबा के आश्रम के अधिष्ठाता रूप में और भी निजी आश्रम 'आनन्द वृन्दावन' के सञ्चालक रूप में आपका व्यवस्थापक रूप भी नितान्त स्पृहणीय एवं आदरणीय है। आपके प्रवचनों में जितनी मधुरता एवं सरसता का सञ्चार पाया जाता है, आपके लेखों में उतनी गम्भीरता एवं तार्किकता का प्रसार उपलब्ध होता है। एक दो उदाहरण पढ़िए—

(क) लीला तथा चरित्र का सूक्ष्म अन्तर जान लेना आवश्यक है। चरित्र का एक उद्देश्य होता है। उसमें कर्तृत्व का भी कुछ न कुछ अंश रहता ही है, चाहे वह बाधितानुवृत्ति से ही क्यों न हो। चरित्र में चाहे कर्ता की भावना से, चाहे जनता की भावना से जगत् के हित का उद्देश्य समाविष्ट रहता है। परन्तु लीला भगवान् की मौज है। वह केवल लीला के लिए है। ऐसा कोई माई का लाल नहीं हुआ जो अन्तर्यामी के समान भगवान् के हृद्गत संकल्प को जानकर यह कह दे कि इस प्रयोजन से उन्होंने लीला की है। वह सप्रयोजन मानव का चरित्र थोड़े ही है। भगवान् की लीला हो रही है, वह सहज है, स्वाभाविक है। उनमें न उद्देश्य है, न प्रेरणा है, उसमें काल का स्पर्श नहीं है। भगवान् की लीला अनादि है, अनन्त है, एकरस है, स्वरूप है। उसमें न क्रिया है, न संकल्प है, न स्पन्दन है। वह लीला है, ज्यों की त्यों लीला है। —श्री मद्भागवत रहस्य, पृ० ३०-३१।

(ख) **कृष्णलीला**—श्रीकृष्णावतार के प्रसंग में देवकी-वसुदेव रूप शुद्ध प्रज्ञा एवं शुद्ध सत्त्व से आविर्भूत श्रीकृष्ण का गोकुल में जाना और वहाँ यशोदा-नन्द को माता-पिता के रूप में स्वीकृति देना इस बात का सूचक है कि भगवान् के माता-पिता वास्तविक नहीं होते, भाग्य की गाढ़ता एवं दृढ़ता के तारतम्य से ही उनमें मातृत्व और पितृत्व का उपचार होता है। पूतना अविद्या है, शकटासुर जड़वाद है, वकासुर दम्भ है, अघासुर पाप है, धेनुकासुर देहाध्यास है, कालियनाग भोगासक्ति रूप विषय है—ये सब बातें ध्यान देने योग्य हैं। चीरहरण का अर्थ आवारण-भंग है और रासलीला का अर्थ अन्तःकरण को शान्त एवं मुदित, लीन एवं गतिशील सभी वृत्तियों में भगवत् तत्त्व का अनुपम रूप से स्फुरित होना है। यह हल्लीसक नृत्य भौतिक नहीं आध्यात्मिक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—इसका अनुभवी साधक तत्त्वदर्शी हो जाता है और जीवनमुक्ति के विलक्षण सुख का भाजन बनता है। – वही, पृ० ८-६

इसीलिए भागवत धर्म के शास्त्र-सम्मत प्रवचनों से देश के अनुपम उपकारी स्वामीजी के लिए भक्तों का यह उद्‌गार मृषोद्य नहीं है, सत्यवाक् है :

प्रेम भरा है जीवन इनका, प्रेम भरे हैं मीठे बोल।
प्रेम भरे हैं नयन मनोहर, जीवन को करते अनमोल ॥

श्री स्वामीजी द्वारा रचित कतिपय संस्कृत-श्लोक जिनका प्रयोग ये कथा आरम्भ के पूर्व करते हैं—

(१)

श्री - पूर्णानन्दतीर्थंस्फुरदमृतगवीविप्रुषाऽऽप्लावितानां
नास्माकं मोक्षचिन्ता प्रविदितमहसां ब्रह्मभावं गतानाम्।
किन्त्वेषा बोधधारा विघटितनिखिलाकारसंस्कारकारा
स्वच्छन्दं दन्ध्वनीति प्रतिपदमधुना तामनुध्यञ्जयामः ॥

ये हैं श्री पूर्णानन्द तीर्थ ! इस अद्भुत तीर्थ से वचन सुधा लहराती है। हम उसके सीकरों में स्नान कर चुके हैं। हमें अद्वितीय ज्योतिका बोध हो गया है और ब्रह्मात्म-भाव का अनुभव है, मोक्ष की कोई चिन्ता नहीं है। फिर भी उस कृपा-सीकर से प्राप्त बोध की धारा प्रवाहित होकर समस्त आकार एवं संस्कार के कारागार को छिन्न-भिन्न कर रही है और स्वच्छन्द उपदेश-ध्वनि से परिपूर्ण कर रही है।

(२)

शिक्षा सर्वागमानां निखिलजनमनः पावनी कापि दीक्षा
दीक्षा सर्वात्मदृष्टिर्निरवधिकरुणा किं नु वात्सल्यवृष्टिः।
निष्ठा ब्रह्मात्मविद्याद्युतिदलिततमस्तोम -- विद्वन्मणीनां
श्रीपूर्णानन्दतीर्थो जगति विजयते सत्प्रतिष्ठा यतीनाम् ॥

श्री पूर्णानन्द तीर्थ की जय हो, जय हो ! यह हमारे महाराज श्री सम्पूर्ण शास्त्रों की मूर्त्तिमती शिक्षा हैं। अथवा निखिल जनता के मानस को पावन करने वाली कोई दीक्षा। ये प्रदीप्त सर्वात्म दृष्टि हैं। हो न हो, ब्रह्मात्मविद्या की द्युति से अज्ञानान्धकार को दूर—अपसारित करनेवाले ज्ञानी पुरुषों के मुकुटमणि हैं, ऐसा लगता है जैसे महा-त्माओं की शाश्वत प्रतिष्ठा ही इनके रूप में प्रकट हो गयी।

(३)

सम्भोगे विप्रलम्भे निरुभयमभयं भाति भूपो रसानां
विक्षेपे वा समाधौ विहरणनिपुणा ब्रह्मविद्यैव नूनम्।
इत्थं लोकैरशोकैरनुपदमधिकं भाव्यमनोऽवधूतः
श्रीपूर्णानन्दतीर्थः पथि पथि पथिकान् नन्दयन् बम्भ्रमीति ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संयोग शृङ्गार और वियोग शृङ्गार दोनों से अलग और दोनों में विद्यमान ये निर्भय रसराज ही हैं क्या ? हो सकता है विक्षेप एवं समाधि में समान विहार करने-वाली ब्रह्मात्म विद्या ही इनके रूप में प्रकट हुई हो। आनन्द से भरपूर जनता सब ओर इनके बारे में उद्भावना कर रही है। ये कौन है ? कोई अवधूत हैं। इनको लोग श्री पूर्णानन्द तीर्थ के नाम से जानते हैं। मार्गवासी लोगों को आनन्द देने के लिए ये पैदल ही पथ-पथ पर विचरण करते हैं।

(४)

ब्रह्मानन्दाब्धिलीलाललितलहरिकाव्यञ्जितासंख्यविन्दु -
ब्रह्माण्डव्रातरोमा विधुतविधिविधुत्र्यक्षविस्तारसीमा।
संविद्भूमांशुमालोज्ज्वल - विमल-रुचिध्वस्तमायाविलासः
श्रीपूर्णानन्दतीर्थो मम मनसि मनागात्मभावं बिभर्त्तु ॥

ये हैं श्री पूर्णानन्द तीर्थ। ब्रह्मानन्द सागर की लीला ललित असंख्य विन्दुओं से छलकते हुए राशि-राशि ब्रह्माण्ड इनके रोम-रोम में स्थित हैं। विष्णु, ब्रह्मा और शङ्कर के विस्तार की सीमा टूट चुकी है। अनन्त संवित् के राशि-राशि चिदाभास रश्मि-समूह की चमक से माया-विलास का विध्वंस हो रहा है। यही श्री महाराजजी कृपापूर्वक मन में थोड़ा-सा आत्मभाव भर दें।

(५)

तीर्थानां नास्ति संख्या विलसति पुरतः कापि तेषामभिख्या
येषां स्नानप्रदानप्रवचनपटिमा कां कलां नातिशेते।
तच्चित्रं यस्य चित्रं कलितमपि मनाक् छ्रेयसां प्रेयसां च
पारोक्ष्यं संविधत्ते वितरति परमां पूर्णतामात्मरूपाम् ॥

तीर्थों की संख्या नहीं है। गंगा-पुष्करादि, महात्मागण विद्वान् सभी तीर्थ हैं। उनकी अद्भुत शोभा प्रत्यक्ष रूप से अनुभव में आती रहती है। उनमें स्नान करो, दान करो, प्रवचन करो। उनकी पटुता सभी कलाओं का अतिक्रमण कर जाती है। परन्तु श्री पूर्णानन्द तीर्थ में एक विचित्रता है। यदि एक बार थोड़ी देर के लिए उनके चित्र का भी आकलन कर लिया जाय तो वह श्रेय एवं प्रेय दोनों को प्रत्यक्ष कर देता है और आत्मस्वरूप सच्ची पूर्णता का दान कर देता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७

अंग्रेजीवेत्ता संस्कृत विद्वान्

महामना पं० मदनमोहन मालवीय

(आस्पद--चतुर्वेदी; उपाधि--महामना)

महामना मालवीय जी सुप्रसिद्ध देशभक्त, राजनीतिज्ञ, वाग्मी, शिक्षाशास्त्री, पत्रकार, वकील, समाज-सुधारक तथा धर्मप्रचारक थे। इनके विशाल व्यक्तित्व में इन उपर्युक्त सभी धर्मों का समन्वय पाया जाता है। इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। अतः जिस कार्य को ये अपने हाथों में लेते थे उसे सफलता की कोटि तक पहुँचा कर ही छोड़ते थे। सरकारी स्कूल में एक साधारण अध्यापक के रूप में इन्होंने अपने जीवन का श्रीगणेश किया था। परन्तु योग्यता, प्रतिभा, बुद्धिबल, आशावादिता और निर्मल चरित्र के द्वारा इनकी गणना देश की महान् विभूतियों में होने लगी थी। सच तो यह है कि महात्मा गाँधी को केवल एकमात्र अपवाद स्वरूप छोड़कर देश में कोई भी ऐसा राष्ट्रीय नेता नहीं है जो लोकप्रियता, त्याग और तपस्या में मालवीय जी की तुलना कर सके। इन्होंने अपने जीवन में हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान इन तीनों की एकाग्र चित्त और एकान्त मन से अनवरत सेवा की। कचहरियों में हिन्दी को प्रवेश कराने का श्रेय मालवीय जी ही को प्राप्त है। हिन्दू समाज को संगठित बनाने तथा उसमें धैर्य एवं सदाचार की भावना भरने का काम मालवीय जी ने ही सम्पादित किया। काँग्रेस के द्वारा देश की सेवा करने में आज इनका कोई सानी नहीं है। परन्तु हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना इनके जीवन का सर्वोत्कृष्ट तथा सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है। इस विश्व-विद्यालय ने शिक्षा के प्रसार के क्षेत्र में जो अलौकिक कार्य किया है वह सर्वविदित है।

मालवीय जी अलौकिक वाग्मी थे। इनकी जिह्वा पर सरस्वती का निवास था। अतः ये अपनी ओजस्विनी वक्तृता के द्वारा जनसमूह को अनायास ही प्रभावित कर देते थे। इनकी वाणी में जादू था जिससे ये श्रोताओं के मन को मोह लेते थे। इसमें सन्देह नहीं कि मालवीय जी ने अपने जीवन में जो सफलता प्राप्त की उसमें उनकी अद्भुत-वाणी का प्रचुर योगदान था।

वंश तथा जन्म

मालवीयजी एक मध्यमवर्गीय मालवीय ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हुए थे जो धार्मिक आस्था की दृष्टि से एकान्त वैष्णव था। इनके पितामह का नाम था प्रेमधर चतुर्वेदी तथा पिता का व्रजनाथ चतुर्वेदी। मूलतः महामना के वंश का आस्पद 'चतुर्वेदी' था, इन्होंने ही अपने को सर्वप्रथम 'मालवीय' कहना आरम्भ किया। तब से यह नाम प्रख्यात हो चला। प्रेमधरजी के विषय में विशेष परिचय नहीं मिलता, परन्तु थे वे परम भागवत। उनके कुल की उपास्य देवी थीं राधिकाजी, जिनका श्रीविग्रह कुल में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत दिनों से प्रतिष्ठित था। जन्माष्टमी का उत्सव बड़े समारोह से मनाया जाता था पूरी साज-सज्जा तथा सङ्गीत के साथ। परम भागवत पिता के सुयोग्य पुत्र ब्रजनाथजी श्री मद्भागवत के व्युत्पन्न तथा रसिक कथावाचक थे। व्यास-वृत्ति ही उनकी जीवन-वृत्ति थी। भागवत की कथा सुनाने से जो चढ़ावा आता था, उस अयाचित वृत्ति से वे अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण किया करते थे और जीविका का अन्य कोई साधन न था। लेखक ने अपने गाँव के वयोवृद्ध मुन्शी रघुनाथ लाल से सुन रखा है कि मालवीय के पिताजी गाँव के समीपस्थ बैरिया (जिला बलिया) के प्रधान रईस उदारचेता बाबू रघुनन्दनप्रसाद पाण्डेय की ड्योढ़ी पर प्रयाग से आकर यदा कदा भागवत की कथा सुनाया करते थे। कथा कहने का ढङ्ग बड़ा ही आकर्षक था। स्थानीय श्रोताओं की भीड़ लगती थी। उस समय तक मालवीय जी बी० ए० पास कर चुके थे। जानकार लोग कहा करते थे कि व्यास जी साधारण व्यक्ति नहीं हैं, प्रत्युत उनका बेटा बी० ए० पास है। उस युग में (सन् १८८०-८२ के आस-पास) लोगों में बी० ए० पास होने वाले व्यक्ति की बड़ी महिमा थी। प्रतीत होता था कि वह सर्वज्ञाता के उच्च पद पर आसीन हो गया है। महामना बलिया तथा छपरा के अपने व्याख्यानों में बड़े गर्व के साथ कहा करते थे कि उन नगरों के उस अन्न से ही मेरा यह शरीर पोषित और वृद्धिगत हुआ है जिसे मेरे पिताजी चढ़ावा के रूप में यहाँ से ले जाते थे और इसलिए मुझे भी यहाँ के निवासी कहलाने का उतना ही अधिकार है जितना आप सज्जनों को।

श्री ब्रजनाथ मालवीय को अपने पुत्र मदनमोहन पर ममता का होना स्वाभाविक था। उनकी गृहिणी मूना देवी मालवीय जी की जननी आदर्श महिला थीं जो गृहस्थी के सञ्चालन में अपने पति का पूरा हाथ बटाया करती थीं। घर में जब अन्न का अभाव हो जाता, तब मुहल्ले के बनिया के घर वे सौभाग्यचिह्न होने पर भी अपने हाथ का चाँदी का बना भूषण गिरो रख देतीं और उस द्रव्य से गृहस्थी चलातीं। कथा में रुपया-पैसा मिलने पर वह गहना छुड़ा लिया जाता। इस प्रकार न मालूम कितनी बार वह गिरो रखा जाता और छुड़ाया जाता था। ऐसी चुमने वाली गरीबी में पले महामना गरीबों के दुःख को भली-भाँति जानते थे और ऐसे गरीब छात्रों की शिक्षा-दीक्षा के निमित्त ही एक भव्य विश्वविद्यालय की स्थापना की कामना उनके हृदय के कोने में जागी।

पितृभक्ति

महामना की पितृभक्ति आदर्श थी। ये अपने माता-पिता के अनन्य सेवक एवं भक्त थे। मृत्युशय्या पर पड़े पिता की, स्वरचित ग्रन्थ के प्रकाशन की अन्तिम इच्छा की पूर्ति इन्होंने जिस लगन तथा परिश्रम से की वह एक रोचक कहानी है। ब्रजनाथ चतुर्वेदी सस्कृत के मर्मज्ञ विद्वान्, परम आस्तिक तथा भागवती कथा के रसिक जीव थे। उन्होंने संस्कृत में ही भगवद्भक्ति-विषयक अध्यात्म-प्रधान ग्रन्थ का प्रणयन तो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर दिया था, परन्तु उसके प्रकाशन का अवसर न आने से वे नितान्त खिन्न थे। उनकी रुग्णता बढ़ती जाती थी। महामना से उन्होंने अपनी इच्छा प्रकट की कि क्या मेरे इतने दिनों के मनन-चिन्तन का परिनिष्ठित फल यों ही पड़ा रह जाएगा। अथवा मैं उसे प्रकाशित देख सकूँगा? बस, क्या था! पितृभक्त महामना को यह बात लग गई। इन्होंने इस ग्रन्थ के मुद्रण में रात-दिन एक कर दिया। प्रयाग के प्रसिद्ध शिव-राम वैद्य ने, जिनके प्रेस में वह ग्रन्थ छपता था, अपने संस्मरण में लिखा है कि मदन-मोहन बिना खाये-पीये आधी रात तक बैठकर प्रूफ देखा करते, ग्रन्थ को संवारा करते और उसे प्रकाशित करने की लालसा में लिपट गये थे। आखिर ४५० पृष्ठों वाली पोथी को मुद्रित कर जब इन्होंने अपने पिता जी के हाथ में रखा, तब वे आनन्द से विह्वल हो उठे और अपने दीर्घ जीवन की साहित्यिक तपस्या के फलस्वरूप **सिद्धान्त-दर्पण** की उपलब्धि से अपने को कृतकार्य मानने लगे। उन्होंने अपने सुयोग्य पुत्र की पितृभक्ति की भूरिशः सराहना की। ऐसी थी महामना की स्वपितृ-चरणों की आराधना। इस ग्रन्थ के लेखन का समय १९५५ स० (१८६८ ई०) है तथा प्रकाशन का १९५३ स० (१९०६ ई०) भक्ति के सिद्धान्तों का प्रमाणपुरस्सर निरूपण इस ग्रन्थ की महती विशिष्टता है। आज तो यह दुर्लभ है, परन्तु इसकी उपादेयता पहले से भी अधिक है। वैष्णवी साधना के रहस्य को समझाने वाला यह 'सिद्धान्त दर्पण' महामना की आध्यात्मिक जीवनधारा को अग्रसर करने वाला महनीय ग्रन्थ है — इस विषय में दो मत नहीं हो सकते।

गुरुभक्ति

मालवीयजी की गुरुभक्ति आदर्श कोटि में प्रतिष्ठित थी। 'आचार्यदेवो भव' का औपनिषद उपदेश इसके विषय में अक्षरशः चरितार्थ होता है। ये अपने विद्यागुरु महामहोपाध्याय पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य को देवतारूप मानते थे और देवसुलभ भक्तिभाव-संभृत हृदय से उनकी आराधना करते थे। गुरु आदित्यराम जी मदनमोहन मालवीय जैसा शिष्य पाकर अपने जीवन-सन्देश को सफल एवं सार्थक मानते थे। म्योर सेन्ट्रल कालेज में संस्कृत के प्रोफेसर पदासीन भट्टाचार्यजी ने महामना को संस्कृत विद्या का दान कर उच्चकोटि का संस्कृत विद्वान् एवं संस्कृत विद्या का प्रचारक-प्रसारक ही नहीं बनाया, प्रत्युत अपने व्यावहारिक उपदेशों से महामना के जीवन में ऐसा महत्त्व-पूर्ण मोड़ ला दिया जिससे ये देशसेवा के अभियान में आगे बढ़ते-बढ़ते भारत को स्वतन्त्र बनाने के अप्रतिम लक्ष्य पर पहुँच गये। १८८६ ई० में घटी यह घटना ऐतिहासिक महत्त्व रखती है; न केवल महामना के जीवन में प्रत्युत भारतवर्ष के राजनीतिक इतिहास में भी। इस वर्ष अखिल भारतीय कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ते में होने जा रहा था। राष्ट्रीयता के प्रेमी आदित्यराम जी उसमें सम्मिलित होने के लिए कलकत्ते जाने वाले थे। साथ में अपने प्रिय प्रतिभाशाली होनहार शिष्य मदनमोहन को भी लेते गए। इनका राजनीतिक नेताओं से परिचय कराया तथा कांग्रेस के खुले सेशन में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मिलित होने के लिए इन्हें अग्रसर कर दिया। फिर क्या था? २५ वर्ष के इस युवक मदनमोहन ने ऐसा सारगर्भित भाषण किया कि कांग्रेस के महामन्त्री ने अपनी रिपोर्ट में इनके भाषण की भूरि-भूरि प्रशंसा की। मालवीय जी ने अपने प्रथम राजनीतिक भाषण में एक ऐसे महनीय सारगर्भित वाक्य का प्रयोग किया जो कांग्रेस के इतिहास में एक नये युग का सूत्रपात करने वाला सिद्ध हुआ। No taxation without representation is the first Commondament of the political Bible of Englishmen. अर्थात् बिना किसी प्रतिनिधित्व के कोई भी टैक्स नहीं लगाया जाता—यह अंग्रेजों को राजनीतिक बाइबिल का प्रथम आदेश है। मालवीय जी का विशुद्ध अंग्रेजी में सारगर्भित भाषण सुनकर कांग्रेसी नेता चमत्कृत हो उठे। मालवीय जी के जीवन-प्रवाह की दिशा राजनीति तथा देशकल्याण की ओर निश्चित हो गई जिसका अनुगमन कर ये महान् राष्ट्रीय नेता तथा स्वतन्त्रता सेनानी बन गये। इसके लिए महामना ही नहीं, प्रत्युत समग्र भारतीय राष्ट्र आदित्यराम जी का सर्वदा के लिए ऋणी रहेगा।

यह तो हुई गुरु की कल्याणमयी कृपा। अब शिष्य की नैसर्गिक भक्ति की मधुर भावना देखिए। मालवीय जी की गुरुनिष्ठा की एक ही घटना का उल्लेख पर्याप्त होगा। सायं सन्ध्या की मधुरिम वेला। प्रयाग के दारागंज में भगवती भागीरथी का दिव्य तट। उस पार उज्ज्वल बालुकाराशि का विशाल मैदान। उधर आदित्यराम जी झूंसी की ओर से घर को धीरे-धीरे लौट रहे थे और इधर मालवीय जी कार्यवश उधर ही जा रहे थे। उसी बालुकाराशि पर गुरु-शिष्य का हुआ आमना-सामना। फिर क्या था? महामना अपने परिचित धवल परिधान से सुशोभित थे। गुरुजी के मुखमंडल पर ज्योंही इनकी दृष्टि पड़ी, इन्होंने बिना किसी हिचक के, बिना क्षणिक विलम्ब के, झट से गुरुचरणों पर साष्टांग प्रणाम निवेदन किया। इन्होंने एक क्षण के लिए भी विचार नहीं किया कि इस साष्टांग प्रणति की क्रिया में मेरे कपड़े गंदे हो जायेंगे अथवा कोई इसे अनौचित्य की पराकाष्ठा मानेगा। झट से अपने को गुरुचरणों पर डाल ही तो दिया। गुरुजी ने इनकी पीठ ठोंककर आशीर्वाद दिया और उठाकर अपने हृदय से लगा लिया। इस घटना के प्रत्यक्षदर्शी हैं दारागंज के ही निवासी प्रसिद्ध विद्वान् पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी जो इस आश्चर्यजनक गुरुभक्ति को देखकर विस्मय-स्तब्ध हो गये थे और जो इसे अपने जीवन की एक विशिष्ट उपलब्धि मानते हैं।

इतना ही नहीं, हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना में भी भट्टाचार्यजी की आशीर्वाद-अनुकम्पा सर्वथा प्रेरणा देती रही। विश्वविद्यालय की स्थापना हो जाने पर महामना ने उन्हें रेक्टर बनाया, परन्तु आदित्यरामजी अस्वस्थता के कारण अधिक दिनों तक इस पद पर रह नहीं सके। वे प्रयाग लौट गये। परन्तु महामना ने उनकी पुण्य स्मृति को चिरस्थायी बनाने के उद्देश्य से मालवीय नगर के पास ही 'आदित्य नगर' की स्थापना कर दी जिससे आदित्यराम जी के सौजन्य तथा वैदुष्य की, अध्यात्म चिन्तन तथा देश-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम की कहानी विश्वविद्यालय के छात्रों में भव्य प्रेरणा तथा नूतन स्फूर्ति देती रहे।

अद्‌भुत वक्तृत्व शक्ति

महामना के स्कूल में एक मास्टर साहब राय साहब सांवलदास जी ने इनके विषय में अपना संस्मरण मालवीय अभिनन्दन ग्रन्थ (१९३२) में लिखा है। इससे पता चलता है कि मालवीय जी ने छात्रावस्था से ही अपने को सनातन धर्म के उपदेशक तथा प्रचारक के रूप में गढ़ने का श्लाघनीय प्रयास किया था। माघ मेला के अवसर पर उन्हें लोगों को धर्म का उपदेश देने का सुयोग मिलता था। अभी तो इन्होंने स्कूल की चहारदीवारी भी पार नहीं की थी। लोगों के कानों तक उनके शब्द पहुँच सकें, इसके लिए वे अपने साथ एक टिन का कनस्टर रखा करते थे। भीड़ जभी देखते, तब झट से कनस्टर को पीटकर लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करते और उसी कनस्टर पर खड़े होकर अपना धार्मिक उपदेश देने लगते। लोग प्रेम से कुछ देर तक सुन कर चले जाते। स्कूल के साथियों के लिए तो यह खालिस मजाक था। वे इनकी इस विचित्र करतूत पर हँसते, फबतियाँ कसते, मजाक उड़ाते, परन्तु साथियों के इस दुर्व्यवहार का तनिक भी प्रभाव महामना के अभीप्सित कार्य पर नहीं पड़ता। धुन के पक्के ये अपने कार्य में मस्त रहते। स्कूल की वाद-प्रतिवाद सभा (डिबेटिंग सोसाइटी) में भी ये भाग लेते थे तो इनके भाषण का प्रभाव छात्रों पर नहीं पड़ता था, परन्तु धीरे-धीरे ये वक्ता के निश्चित मार्ग पर दृढ़ता से आगे बढ़ते गये और वाग्मी होने के अपने अभीष्ट लक्ष्य पर पहुँच कर ही रुके।

मास्टर साहब ने लिखा है कि महनमोहन में अपने वचनों द्वारा दूसरे को प्रभावित करने की अद्‌भुत क्षमता थी। महामना हिन्दू बोर्डिंग हाउस के लिए चन्दा उगाहने के लिए उनके पास गये और अपने पक्ष की सिद्धि के लिए इतने जोरदार प्रमाण देने लगे कि अनचाहते भी विना विचार किये ही, मास्टरजी ने एक हजार रुपयों का चेक दे ही तो डाला। पीछे वे कहने लगे कि मैंने बहुत ही जल्दबाजी की। देने से पहले खूब विचार कर लेना चाहिए था। परन्तु मालवीयजी की वाग्धारा के प्रभाव को रोक ही कौन सकता था? किसी उर्दू शायर ने अनजाने ही इस शेर के द्वारा मानों मालवीय जी की ही जुबान में जादू होने की सुन्दर बात कही है—

असर लुभाने का प्यारे तेरे बयाँ में है।
किसी की आँख में जादू, तेरी जुबाँ में है॥

शास्त्रों ने "वाग्मी भवति वा न वा" कह कर मानव समाज में वाग्मी-पुरुष को सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति बतलाया है परन्तु उसके अस्तित्व के विषय में उन्हें सन्देह ही है। परन्तु महामना मदनमोहनमालवीयजी की वाग्मिता में किसी प्रकार के सन्देह का लेश भी विद्यमान नहीं है। ऐसा वाग्मी होना सचमुच ही दुर्लभ है जो केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा से बिना किसी नोट या टिप्पणी का सहारा लिए पाँच घंटों तक लगातार अबाधित गति से बोलता रहे और सभा पर हावी बना रहे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यापन

महामना मालवीयजी राजनीति में प्रवेश करने के पहले एक स्कूल में अंग्रेजी के अध्यापक थे और सफल अध्यापक थे। यह इनके जीवनकाल की आदिम घटना है। १९१८ ई० में हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा स्थापित 'प्रशिक्षण महाविद्यालय' के वार्षिक समारोह के अवसर पर समापन भाषण में महामना ने अपने अध्यापक जीवन की मार्मिक कहानी सुनाई थी जिसके महत्त्वपूर्ण अंश इस प्रकार हैं। मालवीयजी ने कहा—"ग्रैजुएट होने के बाद वृत्ति की खोज करते हुए मुझे म्योर सेन्ट्रल कालेज के स्कूल में अध्यापकी मिल गई। मैं बड़े प्रेम तथा परिश्रम से अंग्रेजी पढ़ाने लगा। मैं नियमतः घर पर तैयारी करते समय प्रत्येक महत्त्वपूर्ण अंग्रेजी शब्द के व्युत्पत्तिजन्य अर्थ की छानबीन करता। इस कार्य में मैं ट्रेञ्च के Biography of English words और English-Past and Present नामक ग्रन्थों का खूब अभ्यास करता था जिससे अंग्रेजी शब्दों की व्युत्पत्ति का, उसके मूल अर्थ का तथा उसके इतिहास का पूरा परिचय मिल जाता था। इतने नये-नये तथ्य प्राप्त होते थे कि मैं कृतकृत्य हो जाता। ग्रन्थों से नये ज्ञान का अर्जन करता और उन्हें अपने छात्रों में बाँट देता था। बड़ा सुखद था वह मेरा अध्यापकी जीवन। मुझे चालीस रुपये मासिक मिलता था। इनमें से बीस रुपये तो अपने पिताजी को घर खर्च के लिए दे दिया करता था, दस रुपया निजी खर्च के लिए रखता, आठ रुपयों को अन्य छोटे-मोटे कार्यों में लगाता और अन्तिम दो रुपयों को अपनी श्रीमतीजी को दे देता।" इस अवसर पर मालवीयजी ने बड़े ही नाटकीय ढंग से आँखें मींच कर दो उँगलियों को ऊपर उठाकर ऐसा अभिनय किया कि श्रोतागण (जिनमें छात्रों की मण्डली में उनके वयस्क पुत्र भी बैठे थे) हँसते-हँसते लोटपोट हो गये। ऐसा विशुद्ध हास्य था महामना का। उनकी उल्लासमयी मुखाकृति आज भी मेरे सामने झलक रही है।

"मैं अपने जीवन से बड़ा ही सन्तुष्ट था। उन दिनों पढ़ने-पढ़ाने में ही मेरा जीवन बीतता था, परन्तु उस समय मेरे जीवन ने एक नया मोड़ लिया। जब मेरे पूज्य गुरुजी आदित्य रामजी मुझे अपने साथ कलकत्ते ले गये और कांग्रेस के मंच पर राजनीतिक भाषण करने के लिए मुझे खड़ा कर दिया। यहीं से मेरी जीवन दिशा बदली और सदा के लिए अध्यापक जीवन की इतिश्री हो गई।"

नैष्ठिक उपासक

मालवीयजी महाराज वैदिक धर्म की जीवन्त मूर्ति थे। उनके रोम-रोम में धर्म रमता था और पद-पद पर धार्मिक आचार की निष्ठा अभिव्यक्त होती थी। रिक्थ रूप में प्राप्त धर्माचरण को इन्होंने अपने गम्भीर शास्त्रचिन्तम के द्वारा प्रतिष्ठित एवं परिष्कृत बनाया था। ये पञ्चायतन के उपासक धर्मप्राण हिन्दूगृहस्थ थे, परन्तु इन्हें किसी भी इतर धर्मावलम्बी से कथमपि रागद्वेष नहीं था। ये अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक नारायण के जितने भावुक भक्त थे, उतने ही कैलासवासी भूतभावन विश्वनाथ के अखण्ड नैष्ठिक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासक थे। उस दिन शिवजी के पावन पुलिन पर सुसज्जित सभा के प्राङ्गण में अपने ऊपर दल बदलने के आरोप करने वाले व्यक्तियों के साथ समस्त सभ्यों को उन्होंने आश्चर्यचकित कर दिया, जब उन्होंने मंच पर खड़े होकर ऊँचे स्वर में कहा था कि मेरा कोई भी दल नहीं है। मैं दलदल में नहीं हूँ। मैं तो किसी भी दल को नहीं जानता, सिवाय इस एक दल के, तुलसीदल के। इस कथन के साथ ही उन्होंने अपने पाकेट से निकाल कर तुलसीदल दिखाते हुए सबको अवाक् कर दिया। अचरज से मूक बना डाला। इसी प्रकार बाबा विश्वनाथ में भी उनकी अगाध भक्ति थी, अनुपमेय निष्ठा थी। महामना कहा करते थे कि मैंने तीर्थराज प्रयाग को छोड़ कर वाराणसी में विश्वविद्यालय की स्थापना विश्वनाथजी की अहैतुकी अनुकम्पा के भरोसे ही तो की है। मुझे पूरा विश्वास है कि विश्वविद्यालय के ऊपर मँडराने वाली सकल आपदाएँ, डरावनी समग्र आर्थिक कठिनाइयाँ, विश्वनाथजी की कृपा से देखते ही देखते अन्तर्हित हो जाएँगी। महामना का यह दृढ़ विश्वास सर्वदा सफल होता रहा और विश्वेश्वर की महनीय कृपा के संबल को लेकर विश्वविद्यालय अपने कण्टकाकीर्ण पथ पर सानन्द अग्रसर होता रहा और अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच कर ही उसने विश्राम लिया।

इस प्रसंग का एक श्लाघनीय संस्मरण सुनाया मालवीय जी के चिरसहचर एवं परिकर ज्योतिषाचार्य पण्डित रामव्यास जी ने लेखक को। अंग्रेजों का जमाना था। केन्द्रीय सरकार हिन्दूविश्वविद्यालय की गति-विधि पर सर्वदा क्रूरतामरी सन्देह दृष्टि रखती थी। सोलह लाख का कर्जा चढ़ गया विश्वविद्यालय पर जिसके सूद के रूप में तीस हजार रूपये देने पड़ते थे। मालवीय जी इस आर्थिक विपन्नता से गम्भीर रूप से चिन्तित थे। इन्होंने बड़े उद्योग किए परन्तु सरकार इस ऋण को चुकता करने के लिए तैयार नहीं हुई। बड़ी उदासीनता एवं वैराग्य में दिन बीत रहे थे परन्तु ये हताश होने वाले व्यक्ति थोड़े ही थे। इन्होंने व्यास जी से कहा कि चलो, बाबा विश्वनाथ का दर्शन करने चलें। प्रातः १०-११ बजे का समय हो रहा था। विश्वनाथ जी के मन्दिर के एक कोने में खड़े होकर पूजा के समाप्त होने पर मालवीय जी अपने चिरपरिचित स्तोत्रों से बाबा की स्तुति करने लगे—मुख से गद्गद वाणी निकल रही थी और नेत्र से आँसू झरकर गिर रहे थे। महामना आँखें मूँद कर इस व्यापार में लगे थे। बहुत समय बीत गया, भक्तों की भीड़ छँट गयी, मध्याह्नवेला में भोग लगाने का समय आ गया। पंडा लोग अधीर होने लगे, परन्तु मालवीय जी की मुद्रा में कोई अन्तर नहीं आया। अन्ततोगत्वा उन लोगों ने व्यास जी से संकेत करने के लिए कहा। उन्होंने शब्दों से कुछ इशारा किया। मालवीय का पाठ रुका। विश्वनाथ को प्रणाम कर ज्यों ही ये मन्दिर से बाहर आये, इन्होंने तपाक से कहा—"व्यास जी बाबा विश्वनाथ ने विश्वविद्यालय का ऋण चुका दिया। अब मुझे चिन्ता नहीं है।" विश्वविद्यालयीय आवास लौटने पर पता चला कि इनकी अनुपस्थिति में दिल्ली से सर गिरिजाशंकर वाजपेयी का फोन आया था जो उस समय केन्द्रीय शासन के शिक्षासचिव थे। मालवीय की आज्ञा से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० रामव्यास जी ने पुनः फोन लगाया। वाजपेयी जी ने मालवीय जी को उसी फोन पर कहा कि सरकार ने तीन वर्षों में उस सोलह लाख ऋण को चुकता कर देने की व्यवस्था कर दी। यह आपको आधिकारिक सूचना है। अब विश्वविद्यालय का यह आर्थिक संकट टल गया। महामना बड़े प्रसन्न हुए और प्रसन्न मुद्रा में कहने लगे—बाबा विश्वनाथ की अनुकम्पा का ही तो यह परिणत फल है। मन्दिर में ही बाबा ने अपना आदेश मुझे दे दिया था। ऐसी अटूट भक्ति थी महामना की बाबा विश्वनाथ के श्रीचरणों में।

दिनचर्या

मालवीयजी का जीवन बड़ा संयत था और उनकी दिनचर्या बड़ी ही नपी-तुली थी। प्रातःकाल के चार बजे ही उठ जाया करते थे। इसी समय नित्यकर्म के अनन्तर ये कपड़े से देह पोछ कर स्नान-संन्ध्या कर लिया करते थे। पूजा-पाठ का भी यही नित्य का समय था। इससे निवृत्त होकर ये विश्वविद्यालय का कार्य देखने लगते। उस दिन होने वाली मीटिंग के लिए आवश्यक कागज-पत्रों को देखते। मीटिंग में जाते। ग्यारह बजे लौटने पर ये नियम से चमेली के तेल से मालिश करवाते थे। उस समय कोई भेंट करने के लिए आ जाता, तो उससे भेंट भी करते जाते थे, परन्तु मालिश का काम रुकता नहीं, चलता ही रहता। इसके बाद स्नान के अनन्तर ये भोजनकर विश्राम करते थे। अपराह्ण में फिर मीटिंग, विश्वविद्यालय के परिसर में आवश्यक भ्रमण आदि कार्यों के अनन्तर रात में दुबारा भोजन एवं शयन—यही उनकी सामान्य दिनचर्या थी।

भोजन के विषय में इनकी विवेकशीलता देखकर आश्चर्य होता है। एक बार का प्रसंग है। पद्मकान्त मालवीय वहीं उन्ही के साथ कुलपति निवास में रहकर हिन्दू स्कूल में पढ़ने जाते थे। गोबिन्द मालवीय (महामना के कनिष्ठ पुत्र) का भी परिवार वहीं उसी मकान में रहता था। एक दिन स्कूल जाने का समय हो गया था परन्तु गोविन्द जी की रसोई तैयार नहीं थी। फलतः पद्मकान्त मालवीय ने महामना के चौके में जाकर रसोईदार से खाने की बात कही। महामना पास ही पूजा पर बैठे थे। इनके कानों में यह भनक पड़ी। झटसे इन्होने पद्मकान्त को अपने पास बुलाया और उनके हाथ पर एक रुपया रखकर इन्होंने स्कूल के पास वाली दूकान से मिठाई खरीद कर खाने का आदेश दिया। पद्मकान्त आज्ञानुसार चले तो गये, परन्तु रास्ते भर महामना की कटु आलोचना से विरत नहीं हुए जिन्होंने तैयार भोजन करने से उन्हें रोक दिया था। १ बजे लौटने पर रसोइया ने कहा कि क्यों देर लगायी ? महाराज तुम्हारे लिए बैठे हैं। अभी तक भोजन नहीं किया। बालक को आश्चर्य हुआ। महामना ने पास बुलाकर उससे कहा—"देखो, बुरा न मानना तैयार भोजन मैंने तुम्हें करने नहीं दिया। इसका एक गम्भीर कारण है। मेरे चौके का सब सामान शिवप्रसाद (बाबू शिव-प्रसाद गुप्त) के घर से आता है। दिन-रात में कुछ देर ही सही मैं देश के तथा राष्ट्र के हित का काम करता हूँ। अतः मैं तो उसे पचा लेता हूँ, परन्तु तुम लोग उसे पचा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं सकते। वह देशसेवक के ही पाचन योग्य अन्न है, विद्यासेवक के लिए नहीं, इसी लिए मेरा चौका अलग है जिसमें मैं तथा मेरे देशसेवक अतिथि ही भोजन कर सकते हैं, दूसरा कोई नहीं।" मालवीय जी के इस कथन की टीका क्या की जाय ? ऐसी विवेकशक्ति को शतशः प्रणाम।

महामना मालवीय जी छोटी से छोटी बात पर ध्यान दिया करते थे, दृष्टि जो पैनी थी उनकी। किसी बड़े से मुलाकात करने के समय वे सुन्दर वेष तथा स्वच्छ वस्त्र धारण के विशेष पक्षपाती थे। इस प्रसङ्ग में वे इस प्राचीन श्लोक को प्रायः सुनाया करते थे जिसमें पाँच वकारादि वस्तुओं के धारण करने पर ही गौरव मिलने की बात बताई गई है :

विद्यया वपुषा वाचा वस्त्रेण विभवेन च।
वकारैः पञ्चभिर्युक्तो नरः प्राप्नोति गौरवम्॥

किसी सभा में अभिनन्दनार्थ पहनाई गई माला को झट से उतार फेंकने के ये बड़े विरोधी थे। ये कहते थे कि ऐसा करना माला पहनाने वाले का ही घोर अपमान नहीं है, प्रत्युत उस पुष्पमाला का भी। इस प्रसङ्ग में उर्दू का यह शेर भी सुनाया करते थे जिसमें वह फूल माला अपनी घोर तपस्या के फलस्वरूप ऊँचे गले पर पहुँचने के अपने सौभाग्य पर प्रसन्नता अभिव्यक्त करती है--

हारों में गुँथे, जकड़े भी गये,
गुलशन भी छुटा, सीना भी छिदा।
पहुँचे मगर उनकी गरदन तक,
यह खुश इक़बाली फूलों की॥

माला उतारने से फूलों की खुश- इक़बाली (भाग्यशालिता) भी हम नष्ट कर देते हैं। यह नितान्त निन्दनीय है। यह शेर कवि बिस्मिल इलाहाबादी के गुरु शायर नूर नारवी का है।

महामना के साहित्यिक संस्मरण

महामना मालवीय जी महाराज युगान्तरकारी पुरुष थे। ऐसे महामानव सर्वदा इस पृथ्वी पर नहीं पधारते। भगवान् की ऐसी दिव्य विभूति यदाकदा ही इस धराधाम पर अवतीर्ण होती है, स्वनिर्दिष्ट कार्य का विधिवत् सम्पादन कर भूतल के मानवों के शिक्षणार्थ अपना आदर्श चरित्र उपन्यस्त कर पुनः विभूति के उस आधार में अपने जीवन को समर्पित कर देती है। महामना मालवीय जी ऐसे ही एक अलोकसामान्य प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति थे जिनकी प्रतिभा भारतीय समाज के प्रत्येक अङ्ग को आलोकित करती थी, जिनका स्पर्श सामान्य मनुष्य को भी सुवर्ण बना देता था और जिनकी पीयूष वाणी श्रोताओं के कर्णकुहरों में प्रवेश कर हृदय को आप्यायित, आवर्जित तथा अभ्युदित कर देती थी। इन्हीं के विषय में ये कतिपय दिव्य संस्मरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं। लिखने का उद्देश्य महाकवि श्री श्रीहर्ष के शब्दों में यही है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पवित्रमत्रातनुते जगद् युगे
स्मृता रसक्षालनयेव यत्कथा।
कथं न सा मद्-गिरमाविलामपि
स्वसेविनीमेव पवित्रयिष्यति ॥ नैषध १।३)

महामना मालवीय जी भाषा के प्रयोग के प्रति बड़े ही जागरूक रहते थे। कोई भी भाषा हो संस्कृत, हिन्दी अथवा अंग्रेजी—वे तत्तत् शब्दों के उच्चारण में, शब्दों के चयन में, वाक्यों के रुचिर विन्यास में बड़ी ही जागरूकता रखते थे। वे विबुधवन्दित वाग्मी थे, भाषण के अवसर पर उनकी मधुर वाणी अजस्र गति से प्रवाहित होती थी, वह कहीं अवरोध या रुकावट का नाम ही नहीं जानती थी। मानवों की गणना में शीर्षस्थान पर विराजमान वाग्मी के वे सद्यः प्रतीक थे, जिसके विषय में कहा गया है—वाग्मी भवति वा न वा। संस्कृत भाषा तथा साहित्य का अध्ययन उन्होंने उस युग के मूर्धन्य संस्कृतज्ञ महामहोपाध्याय पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य से किया था जिनके लिए महामना की श्रद्धा एवं पूज्य भावना सातिशय थी। महामना संस्कृत में धारा-प्रवाह भाषण करते थे, परन्तु कहीं भी व्याकरण-सम्बन्धी त्रुटि का दर्शन नहीं होता था। पण्डितों ने सावधानी से जागरूक होकर उनके संस्कृत भाषणों को सुना, परन्तु त्रुटि लक्षित नहीं हुई। महामना के सामने कोई संस्कृत शब्दों का अशुद्ध उच्चारण कर दे और वह उनकी डाँट से बच जाय—ऐसा कभी नहीं देखा हमने। तुलसी जयन्ती के अवसर पर उन्हें निमन्त्रित करने वाले एक विज्ञ व्यक्ति के मुख से शकार-संवलित 'तुलशी' का उच्चारण कई बार सुनकर महामना से नहीं रहा गया और उन्होंने उन्हें डाँट—मीठी डाँट—बताई और उनका उच्चारण ठीक किया। अंग्रेजी शब्दों के उच्चारण के प्रति भी उनका विशेष अवधान हमने देखा है। म्योर सेण्ट्रल कालेज के अंग्रेज अध्यापकों के सम्पर्क में विशेष आने के कारण वे Student का उच्चारण सर्वदा यकार विशिष्ट किया करते थे—स्टयूडेण्ट। पूछने पर उन्होंने बताया कि इसका यही विशुद्ध उच्चारण है। एक बार लेखक अपने मित्र पण्डित बटुकनाथ जी के साथ पुस्तकालय में पुस्तकें देख रहा था। मालवीय जी अकस्मात् वहाँ आ गये और अंग्रेजी में बोल उठे ———What are you doing there ? जब उत्तर दिया—Looking for books on literature. तब अन्तिम शब्द का 'लिटरेचर' उच्चारण सुनकर वे तपाक से बोल उठे—Don't say लिटरेचर but 'लिटरेटचोर'। उन्होंने शुद्ध उच्चारण ही नहीं बतलाया, बल्कि कई बार उस विशुद्ध उच्चारण की आवृत्ति भी कराई। तब कहीं उन्होंने हम लोगों को छोड़ा।

मालवीय जी विशुद्ध शब्द के प्रयोग के प्रति दृढ़ आस्थावान् थे। वे खिचड़ी भाषा के प्रयोग की नितान्त अवहेलना करते थे। वे हिन्दी के तत्सम शब्दों की अपेक्षा तद्भव शब्दों के प्रयोग को सर्वजनहिताय विशेष महत्त्व देते थे। वे नहीं चाहते थे कि हिन्दी के भाषणों में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया जाय। तुलसी जयन्ती का सुखद अवसर था। विश्वविद्यालय के केन्द्रीय 'हाल' में विशद समारोह बड़े उमंग से चल रहा था। प्रधान

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वक्ता थे लाला भगवानदीन जी। व्याख्यान बड़ा ही सुन्दर और सारगर्भित था, परन्तु लाला जी का स्वभाव था कि व्याख्यान को विशेष आकर्षक बनाने के लिए वे उर्दू तथा अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग खुलकर किया करते थे—कक्षा में तथा व्याख्यानमञ्च पर भी। उस दिन भी ऐसा ही हुआ था। मालवीयजी जब व्याख्यान देने खड़े हुए तब उन्होंने एक ही वाक्य में लालाजी के पूरे व्याख्यान की तीखी आलोचना कर डाली—'भाई, हिन्दी व्याख्यान में अंग्रेजी शब्दों की छौंक हमें अच्छी नहीं लगती।' इस वाक्य में समुचित रूपेण प्रयुक्त 'छौंक' शब्द ने हम सब अध्यापकों को चौंका दिया। मालवीय जी ने नाक-भौंह सिकोड़ कर ऐसे नाटकीय ढङ्ग से इस वाक्य को कहा कि सुनने वालों के कान मानों छौंक उठे। इस शब्द के समुचित प्रयोग से श्रोतागण नितान्त आप्यायित हो उठे और महामना के शब्द चयन पर सब चमत्कृत हो गये।

महामना स्वयं महनीय वक्ता थे। चार-चार घण्टों तक विना किसी नोट के व्यवस्थापिका सभा में व्याख्यान देने में वे कथमपि श्रान्त नहीं होते थे, परन्तु वे अधिक बोलने को शक्तिक्षय करने वाला मानते थे और कुछ समय के लिए मौन धारण करने को श्रेयस्कर बतलाते थे। संस्कृत महाविद्यालय के अध्यक्ष पण्डित बालकृष्ण मिश्रजी राजयक्ष्मा की दवा करा कर राँची से नीरोग होकर लौटे थे। महामना जी से भेंट करने के लिए वे मालवीय भवन में आये थे। लेखक भी वहाँ उपस्थित था। मालवीय जी ने उनके नैरुज्य के विषय में पूछा। मिश्र जी ने कहा कि आपकी कृपा से मैं इस समय नीरोग हो गया हूँ, परन्तु आपके ही उपदेशों की अवहेलना का फल मुझे भुगतना पड़ रहा है। आपने मुझसे कहा था कि विद्यालय बन्द हो जाने के बाद भ्रमण किया करो, घर पर शाम को या रात को छात्रों को मत पढ़ाया करो। **'शुक्रक्षयात् वाक्क्षयो बलीयान्'** शुक्र के क्षय की अपेक्षा वाक् का क्षय बलवान् होता है। इसे भूलना मत। महामना का तात्पर्य था कि बोलने से अधिक शक्ति क्षीण होती है शुक्र के क्षय से बढ़ कर। इसीलिए तो मुनि लोग मौन धारण किया करते हैं। महामना का यह उपदेश हमारे लिए एक महनीय मन्त्र है जिसका अनुष्ठान हमें सतत करना चाहिए।

मालवीय जी बड़े रसिक थे। जहाँ वह पण्डितों को देखते, उनकी रसमयी वाणी सुनने के लिए आग्रह करते थे। वे स्वयं कमनीय सरस-सुबोध सूक्तियाँ सुनाते तथा ऐसी ही सूक्तियाँ सुनने के लिए आतुर रहते थे। एक बार का प्रसङ्ग है जब वे बाबू शिवप्रसाद गुप्त जी की नगवा कोठी में निवास करते थे। पूर्वाह्ण में ही मेरे मित्र बटुकनाथ शर्मा उनके दर्शनों के लिए वहाँ पहुँच गये। वे कवि थे—साहित्य के रसिक मर्मज्ञ। नायिका-भेद का प्रसङ्ग उठ खड़ा हुआ। महामना 'नवोढा' की व्याख्या करने लगे। सहायक रजिस्ट्रार पं० श्यामसुन्दर शर्मा से 'साहित्य-दर्पण' में उद्धृत उदाहरण को पूरा करने के लिए कहा। जब बटुकनाथ जी ने नवोढ़ा का उदाहरण पढ़ सुनाया, तब मालवीय जी गद्गद हो उठे। श्लोक विश्वनाथ कविराज-रचित है और इस प्रकार है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धत्ते सालसमन्थरं भुवि पदं निर्याति नान्तःपुरात्
नोद्दामं हसति, क्षणात् कलयते ह्रीयन्त्रणां कामपि।
किञ्चिद् भावगभीर-वक्रिमलवस्पृष्टं मनाग् भाषते
सभ्रूभङ्गमुदीक्षते प्रियकथामुल्लापयन्तीं सखीम् ॥

रसिकगोविन्द रचित इस पद्य का अनुवाद जब सुनाया गया, तब तो आनन्द से वे भावविह्वल हो उठे और नवोढ़ा का अभिनय ही करने लगे—

आलस सौं मन्द मन्द धरा पै धरति पाय,
भीतर से बाहिर न आवे चित चाय कै।
रोकति दृगनि छिन-छिन प्रति लाज साज,
बहुत हँसी की दीनी बानि बिसराय कै॥
बोलति बचन मृदु, मधुर बनाइ उर—
अन्तर के भाव की गभीरता जमाय कै॥
बात सखी सुन्दर गोविन्द की कहति तिन्हैं,
सुन्दरि बिलोकै बंक भृकुटी नचाय कै॥

वे भगवान् को धर्मरूप मानते थे और इस प्रसङ्ग में 'भीष्मस्तवराज' का यह प्रख्यात पद्य सुनाया करते थे—

यं पृथग्धर्मचरणाः पृथग्धर्मफलैषिणः।
पृथग्धर्मैः समर्चन्ति तस्मै धर्मात्मने नमः॥

वे धर्म की उपमा 'लालटेन' से दिया करते थे जिसका आधार सत्य है, तप तेल है, दया बत्ती है, क्षमा शिखा (लौ) है। यदि अन्धकार में प्रवेश करने के इच्छुक हो, तो धर्म की इस लालटेन को लेकर आगे बढ़ो। तुम्हारा रास्ता प्रकाशमान होता जावेगा। लालटेन की यह उपमा महामना को बहुत ही प्रिय थी—

सत्याधारः तपः तैलं दया वर्तिः क्षमा शिखा।
अन्धकारे प्रवेष्टव्ये दीपो यत्नेन धार्यताम्॥

महामना के जीवन की सिद्धान्तचतुष्टयी

मालवीय जी के जीवन की चतुःसूत्री इन प्रख्यात पद्यों के द्वारा निरूपित की जा सकती है—

(क) मृदुता की तीक्ष्णता—मालवीय जी महाराज के जीवनादर्श धर्मराज थे—पाण्डवों के अग्रज, सत्य के ऊपर एकान्त निष्ठावान् तथा अन्याय का स्वप्न में भी आचरण न करने वाले व्यक्ति। मालवीय जी भी मृदुता के अवतार थे, जीवन में कभी उग्रता को आश्रय नहीं दिया। परन्तु उनकी मृदुता दुर्बलता की प्रतीक न थी। वे मृदुता से कोई भी वस्तु असाध्य नहीं मानते थे—चाहे राजनीति का क्षेत्र हो, चाहे धर्म का क्षेत्र हो। इस प्रसङ्ग में वे वनपर्व में युधिष्ठिर के इस वचन को सातिशय महत्त्व देते थे तथा बारंबार इसकी चर्चा किया करते थे—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृदुना सुमृदुं हन्ति मृदुना हन्ति दारुणम्।
नासाध्यं मृदुनः किञ्चित् तस्मात् तीक्ष्णतरं मृदु ॥

(ख) **धर्म की कसौटी**—मालवीय जी के लिए तुलाधार प्रसङ्ग में दिया गया यह विश्रुत पद्य धर्म की सच्ची कसौटी को प्रकट करता है। यदि मनुष्य चाहता है कि कोई कर्म दूसरा व्यक्ति उसके साथ न करे, क्योंकि वह उसे नितान्त अप्रिय प्रतीत होता है, तो उसका भी यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह भी दूसरों के प्रति उसका व्यवहार न करे—

यदन्यैर्विहितं नेच्छेत् आत्मनः कर्म पूरुषः।
न तत् परेषु कुर्वीत जानन्नप्रियमात्मनः ॥

(ग) **उद्योग की निरन्तर संवर्धना**—मालवीय जी उत्साह तथा उद्योग के उज्ज्वल प्रतीक थे। वे जीवन में कभी भी निरुत्साहित तथा निराश नहीं होते थे। एक बार वे प्रयाग में बहुत बीमार पड़ गये। जीवन की आशा क्षीण होने लगी। उनसे भेंट करने संस्कृत महाविद्यालय के पंडितगण समवेत रूप से उनके आवास पर पहुँचे। महामना ने तब कहा था कि घनघोर विपत्ति या विषम सङ्कट में मैं कभी निरुत्साहित नहीं होता। जब मैं पतझड़ में पत्रहीन पीपल वृक्ष को वसन्त के आगमन पर नवीन सुकुमार पत्तों से हरा-भरा होकर लहलहाता देखता हूँ, तो मुझमें नया जोश उमड़ पड़ता है। मेरी दुर्बल देहयष्टि पुनः पुष्ट तथा सबल बन जाएगी, यही आशा मुझे जिलाती है।

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु।
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः ॥ (उद्योगपर्व १३५।३०)

(घ) **सात्त्विक कर्त्ता की दृष्टि**—एक बार मैंने महाराजजी से पूछा था कि इतने व्यस्त जीवन में आपने समत्व कैसे रखा, विकट परिस्थितियों में संकट के आक्रमण को श्रीमान् ने किस प्रकार प्रभावहीन किया? तब मालवीयजी ने कहा था कि गीता के इस सात्त्विक कर्त्ता के आदर्श को अपने सामने रखा करो, जीवन कण्टक की क्यारी न होकर शिरीष की गद्दी बन जावेगा। सात्त्विक कर्त्ता का यह लक्षण गीता की महनीय देन है मानव समाज के लिए—

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्त्ता सात्त्विक उच्यते ॥ (गीता १८।२६)

गीता के इस पद्य में चार तथ्यों पर आग्रह किया गया है—आसक्तिहीन रहे (अनासक्ति-योग), 'मैं' और 'मेरा' न कहे (अहन्ता तथा ममता से हीन रहे), सिद्धि तथा असिद्धि में विकार रहित रहे और धैर्य-उत्साह के साथ कार्य का सम्पादन करे। वही सात्त्विक कर्त्ता कहलाता है। महामना ऐसे ही सात्त्विक कर्त्ता के रूप में महामानव तथा घनिष्ठ कर्मयोगी थे।

उनके श्रीमुख से भिन्न-भिन्न अवसरों पर कहे इन चारों श्लोकों को मैं उनके जीवन की चतुःसूत्री मानता हूँ। भारतीयों को इस चतुःसूत्री को अपने जीवन में सम्यग् रूप

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उतारना चाहिए—तभी हमारा कल्याण होगा। भगवान् मनु का यह आदर्श महामना के जीवन से पूर्णरूपेण संगत बैठता है यह कथन तथ्यवाद है, अर्थवाद नहीं—

उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिर्धर्मस्य शाश्वती।
स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

महामना मालवीय का जीवन-दर्शन

मालवीय जी महाराज के जीवन-दर्शन की रूपरेखा इतनी समुज्ज्वल तथा अभिव्यक्त है कि उसके समझने के लिए विशेष आयास करने की आवश्यकता नहीं। उनके समीप में आनेवाले व्यक्तियों के लिए उनका विश्लेषण करना विशेष प्रयाससाध्य नहीं है।

हम यहाँ महामना के 'जीवन-दर्शन' की चतुःसूत्री संक्षेप में उपस्थित कर रहे हैं। इस चतुःसूत्री का प्रथम सूत्र है—**आस्तिक्य**—शास्त्र तथा तत्प्रतिपाद्य ईश्वर में अभ्रान्त श्रद्धा। मालवीय जी को ईश्वर की सत्ता तथा क्रियाशीलता में अटूट विश्वास था और यह विश्वास ही उनके सात्त्विक जीवन के महनीय कार्यों की सिद्धि का मूलमन्त्र था। विश्वविद्यालय के ऊपर आर्थिक संकटों का व्यूह खड़ा हो जाता था, परन्तु क्या मजाल कि महामना को इनकी रंचक भी चिन्ता हो। वे विचारतः तथा कार्यतः दोनों दृष्टियों से आस्तिक थे। वे हमेशा कहा करते थे कि विश्वविद्यालय की स्थापना काशी में बाबा विश्वनाथ जी की अनुकम्पा से ही की गई है, सहायता के समग्र स्रोत भले सूख जायँ, परन्तु भगवान् विश्वनाथ के अनुग्रह का स्रोत तो कभी सूख ही नहीं सकता। वह तो अजस्र प्रवाहित होता रहेगा। उसी के बल पर तो उनकी नगरी काशी में ही इस शिक्षा संस्थान की स्थापना की गई है। अनेक बार भारत के गण्यमान्य दार्शनिकों को मालवीय जी ने अपनी दार्शनिक युक्ति तथा तर्क-प्रणाली से चमत्कृत कर दिया था। दर्शन उनका विषय नहीं था, परन्तु उन्होंने विश्वविद्यालय में समाहूत 'आल इण्डिया फिलासोफिकल कांग्रेस' (द्वितीय अधिवेशन) के विशिष्ट दार्शनिकों को 'ईश्वरसिद्धि' पर अपने दार्शनिक भाषण से इतना प्रभावित किया कि जीवन भर दर्शन का अध्ययन-अध्यापन करने वाले वे तत्त्ववेत्ता विद्वान् हतप्रभ से हो गये और महामना की अद्भुत दार्शनिक युक्तियों को सुनकर वे चमत्कृत हो उठे। मालवीय जी की दार्शनिक विचारधारा का अक्लान्त स्रोत श्रीमद्भागवत था। वे भागवत के मर्मज्ञ विद्वान् तथा सरस व्याख्याता थे। इस पुराण की कमनीय स्तुतियाँ उनकी जिह्वा पर नाचती थीं। दर्शन के अध्यापकगण तो ईश्वर के अस्ति-नास्ति के विषय में अनेक तर्क उपस्थित करने में लगे थे, परन्तु मालवीय जी ने भागवत के आधार पर ईश्वर के विषय में इतना अकाट्य प्रमाण, प्रबल युक्ति, बोधगम्य भाषा में प्रस्तुत किया कि श्रोतागण अवाक् रह गये। मालवीय जी अपने जीवन के व्यवहारों में भी पूर्ण आस्तिक थे। ईश्वर पर असीम श्रद्धा रखते थे।

कर्तव्यनिष्ठा—उनके जीवनदर्शन का दूसरा सूत्र था। जिस कार्य का सम्पादन उनके लिए अनिवार्य था उसमें मालवीय जी इतनी लगन से लग जाते थे कि सफलता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दासी की तरह उनके पीछे लोटती थी। इस विषय में वे भीष्मस्तवराज का यह प्रसिद्ध श्लोक अपना आदर्शवाक्य (मॉटो) मानते थे जिसमें ब्रह्म को कार्यरूप बतलाया गया है—

अकुण्ठं सर्वकार्येषु धर्मकामार्थमुद्यतम्।
वैकुण्ठस्य च यद्रूपं तस्मै कार्यात्मने नमः॥

चाहे किसी धार्मिक कृत्य का सम्पादन हो, चाहे किसी राजनैतिक कार्य का, वे समान अश्रान्तनिष्ठा से उन कार्यों का सम्पादन करते थे। विश्वविद्यालय की स्थापना का एक बार जब उन्होंने त्रिवेणी के पावन तट पर संकल्प कर लिया, तब उनकी उपासना का, अनुष्ठान का बस वही एकमात्र विषय था। लोगों ने उनकी खिल्लियाँ उड़ायीं, नाना प्रकार से उनकी योजना को 'खयाली पुलाव' नाम देकर तिरस्कृत वस्तु की कोटि में परिगणित किया, परन्तु महामना के चित्त पर इन विरुद्ध आलोचनाओं का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। वे अपने कार्य में अधिक निष्ठा से लग गये जिसका ज्वलन्त दृष्टान्त है यह विशाल हिन्दू विश्वविद्यालय। इस प्रसंग में एक रोचक बात लिखनी है। गर्मी के दिनों में मालवीय जी नैनीताल अक्सर जाया करते थे। उस साल प्रयाग के गण्यमान वकीलों की मण्डली के साथ वे नैनीताल पहुँचे जिसमें सर सुन्दरलाल, मुंशी ईश्वरशरण आदि प्रख्यात वकील सम्मिलित थे। विश्वविद्यालय की चर्चा उस समय जोरों पर थी, परन्तु प्रायः लोग उसे कल्पना-जगत् की वस्तु से अधिक महत्त्व नहीं देते थे। हँसी खेल में ही एक शाम को सर सुन्दरलाल पूछ बैठे—well, Malviyajee when is your toy university coming into being? अर्थात् आपका गुड़िया विश्वविद्यालय कब जन्म ले रहा है? कर्तव्यनिष्ठ मालवीय जी ने तुरन्त उत्तर दिया—my university is bound to come into being in no distant future and you, Sir Sunderlaljee, will be its first Vice-chancellor, अर्थात्, मेरा विश्वविद्यालय नातिदूर भविष्य में उत्पन्न होगा और सुन्दरलाल जी, आप ही उसके प्रथम कुलपति होंगे। मालवीय जी की इस कर्तव्यनिष्ठा पर, इस सहज-सलोने उत्तर पर, वह विद्वन्मण्डली चमत्कृत हो उठी और सचमुच महामना के वाक्य शीघ्र ही चरितार्थ हुए। इस योजना के विदूषक सर सुन्दरलाल इसके प्रशंसक सूत्रधार बने तथा इसके प्रथम कुलपति भी। मालवीय जी की वाणी अमोघ सिद्ध हुई।

उत्साह—उनके जीवन-दर्शन का तीसरा सूत्र था। वे अदम्य उत्साह के सन्तत प्रगतिशील उत्स थे। उनकी वाणी में, उनके कार्य में तथा उनके मन में—इन तीनों स्तरों पर उत्साह विलसित होता था। जान पड़ता था कि 'विषाद' शब्द उनके कोश में कहीं भी विद्यमान नहीं है। वे कभी विषाद को जानते ही न थे। विषण्ण होना उनके स्वभाव के सर्वथा प्रतिकूल था। मालवीय जी के वे दिव्यवचन आज भी हमारे कर्णकुहरों में गूँज रहे हैं जिन्हें दीर्घरोग से क्षीणकाय होने पर भी उन्होंने पण्डितों से कहा था—आज मेरा शरीर इस रोग के कारण अवश्य ही क्षीण और निर्बल हो गया है, परन्तु मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं पूर्ववत् स्वस्थ हो जाऊँगा। पतझड़ के दिनों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पीपल का पत्ता झड़ने लगता है। वह केवल एक निष्पत्र स्थाणु (ठूँठ) रह जाता है। परन्तु शीघ्र ही उसमें नई-नई कोमल पत्तियाँ निकल आती हैं। उसे देखकर मैं जीवन से कभी हताश नहीं होता। मेरी क्षीण काया पुनः पूर्ववत् बल-सम्पन्न तथा पुष्ट हो जायगी। मुझे पूर्ण विश्वास है।

महामना के उन वचनों को याद करें। वे कहा करते थे कि **जब तक असफलता मनुष्य की छाती पर बैठ कर उसका गला न घोंटे, जब तक आशा की एक फीकी किरण भी दूरस्थ क्षितिज पर दीख पड़े, तब तक मनुष्य को निराश न होना चाहिए,** प्रत्युत पूर्ण उत्साह के साथ काम में डट जाना चाहिए। विश्वास रखें वह काम सिद्ध होकर ही रहेगा। इस विषय में उनका प्रिय श्लोक था--

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु।
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः॥

'काम होकर ही रहेगा'—यह मान करके सन्तत व्यथाहीन होकर मानवों को उठना चाहिए; जागना चाहिए तथा कल्याणप्रद कामों में निरन्तर लगना चाहिए।

महामना इस श्लोक के समुज्ज्वल उदाहरण थे। निराशा वे कभी जानते ही न थे। कार्य के सम्पादन में व्यथा उन्हें कभी पीड़ा नहीं पहुँचाती थी। वे सोच ही नहीं सकते थे कि यदि कार्य विधिवत् किया जाय, तो वह किस प्रकार सिद्ध नहीं हो सकता।

आत्मविश्वास—उनके जीवन-दर्शन का चतुर्थ सूत्र है। अपने ऊपर, अपनी शक्तियों के ऊपर अटूट विश्वास उनमें कूट-कूट कर भरा था। इसका उपदेश वे सदा दिया करते थे—गीता प्रवचन के अवसर पर इस विषय में उनका प्रिय श्लोक था—

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

'आत्मावसाद' बड़ी ही बुरी वस्तु है और आत्मविश्वास बड़ा ही महनीय पदार्थ है। आत्मा अनन्त शक्तियों का निकेतन है। विश्व की समस्त शक्तियाँ आत्मा में अन्तर्हित रहती हैं। आवश्यकता है उनके उद्बोधन की, उन्हें जगाने की। महामना आत्मविश्वास की जाग्रत मूर्ति थे। विश्वविद्यालय की सिद्धि में इस मन्त्र ने बड़ा ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया। मालवीय जी को अपने उद्देश्य की पवित्रता में पूर्ण विश्वास था। इसी गुण के कारण उन्होंने अनेक विषम विपत्तियों को दूर भगाया तथा जीवन में अनेक विजयें प्राप्त कीं। विश्वविद्यालय की स्थापना के अवसर पर गान्धीजी को महामना ने इसी सद्गुण के कारण लोगों की दृष्टि में सम्मानित किया था। लेखक ने एक बार साहस बटोर कर उनके जीवन-दर्शन के विषय में यह पूछा था—महाराज, आपने स्वार्थ तथा परमार्थ का, सिद्धान्त तथा लोक-व्यवहार का अपने जीवन में अद्भुत सामञ्जस्य उपस्थित किया है। हम लोग एक ओर झुकते हैं तो दूसरा दृष्टि से ओझल हो जाता है। इस विषय में आपका उपदेश क्या है? महामना ने छूटते

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही गीता के सात्त्विककर्ता के विषय में कथित इस श्लोक को अपने जीवन का आदर्श बतलाया—

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते ॥

(गीता १८।२८)

यह श्लोक मालवीय जी के जीवन-दर्शन का सार अंश प्रस्तुत करता है। वे यथार्थतः सात्त्विककर्त्ता थे। इतने बड़े महत्त्वपूर्ण कार्य का सम्पादन किया, परन्तु उन्हें इसका न हर्ष था और न गर्व। वे देश तथा राष्ट्र के मंगल के निमित्त इस कार्य में अटूट श्रद्धा से, अदम्य उत्साह से, कर्तव्य बुद्धि से लगे रहे और जो किया वह सचमुच विलक्षण था।

मालवीय जी सच्चे अर्थ में महात्मा थे। 'महात्मा' का लक्षण इस प्रसिद्ध श्लोक में वर्णित है—

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि वाकपटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥

महात्मा के जो छह लक्षण यहाँ बतलाये गये हैं वे महामना में पूर्ण वैभव के साथ प्रकट थे। विपत्तियों में धीरता, अभ्युदय में क्षमा, सभा में वाक्-चातुरी, युद्ध में विक्रम, यश में अभिरुचि तथा शास्त्र-श्रवण में अनुराग—इन छहों की सत्ता महामना में पूरे रूप में थी। 'महामना' यह उपाधि भी उनमें सर्वथा चरितार्थ होती थी। मालवीय जी में हृदय ही हृदय था। विपन्न के साथ पूरी सहानुभूति तथा अनुराग उनके जीवन में पग-पग पर दृष्टिगोचर होते हैं। ऊपर उनके बहुमुखी जीवन के विश्लेषण करने पर लेखक के हाथ जो चार सूत्र उपलब्ध हुए हैं वे इस अनुष्टुप् में निबद्धहैं —

आस्तिक्यं चात्मविश्वासो ह्युत्साहः कार्यनिष्ठता।
चतुःसूत्री समाख्याता मालवीयमहात्मनः ॥

महामना की पवित्र स्मृति में उनकी महती कृपा से आनम्र लेखक की ये पंक्तियाँ श्रद्धांजलि के रूप में यहाँ उपन्यस्त हैं। इन महापुरुष का जीवन-दर्शन हमारे जीवन में प्रकाश-स्तम्भ का कार्य करे; भगवान् से यही प्रार्थना है।

देशी भाषा

महामनाजी हिन्दी के उन्नायकों में अन्यतम हैं। देशी भाषा के विषय में उनके विचार पढ़िये—

साहित्य और देश की उन्नति अपने देश की भाषा ही के द्वारा हो सकती है। हाँ' यह सच है कि अंग्रेजी का भाण्डार बहुत बड़ा है। उसमें राजनीतिक भाव बहुत

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छे हैं। आधुनिक विज्ञान का परिचय भी हमको उसी भाषा के द्वारा हुआ है। अब यह लाभ देशव्यापी करना है। यह कार्य देशी भाषा के द्वारा हो सकता है। बिजली की रोशनी से रात्रि का अंधकार दूर हो सकता है किन्तु सूर्य का काम बिजली नहीं कर सकती है। इसी भाँति विदेशी भाषा के द्वारा सूर्य का प्रकाश नहीं कर सकते। अंग्रेजी के द्वारा जो बात जानी गई है उसे अब देशी भाषा के द्वारा सारे देश में फैलाना चहिए। सार्वजनिक रूप से यह कार्य हिन्दी ही के द्वारा हो सकता है। हम यह नहीं कहते कि देश भर में एक ही भाषा रहे, नहीं सब प्रान्तों में अपने-अपने प्रांत की भाषा की उन्नति हो। इन सबके रहते हुए हिन्दी भाषा राष्ट्रभाषा के तौर पर प्रयुक्त हो। अभी तक जो कार्य अंग्रेजी के द्वारा होता आया है वह अब हिन्दी के द्वारा होना चाहिए।[1]

महामना की संस्कृत-सेवा

महामना मालवीयजी को काशी की पाण्डित्यपरम्परा का अनुयायी मानना सर्वथा उचित है। कारण यह है कि जिनसे इन्होंने संस्कृत विद्या पढ़ी, भारतीय संस्कृति के प्रति गाढ अनुरक्ति प्राप्त की तथा देववाणी के प्रचार-प्रसार की प्रेरणा उपलब्ध की वे उनके गुरु महामहोपाध्याय आदित्यराम भट्टाचार्यजी कैलासचन्द्र शिरोमणि के शिष्य होने के नाते काशी की वैदुषी से मण्डित संस्कृतज्ञ विद्वान् थे। महामना संस्कृत के स्वयं पण्डित थे ही, उन्होंने संस्कृत महाविद्यालय की हिन्दू विश्वविद्यालय के अन्तर्गत स्थापना कर उसे प्रामुख्य भी प्रदान किया। फलतः देववाणी के प्रचार-प्रसार में उनका कार्य सुवर्णाक्षरों में अंकित किए जाने की योग्यता रखता है।

पण्डित अम्बिकाप्रसाद उपाध्याय संस्कृत महाविद्यालय के व्याकरण विभाग के प्राध्यापक थे तथा मालवीयजी के साथ उनका लगभग पचीस वर्षों तक निकट का सम्पर्क था। उन्होंने अपने एक अभिराम संस्मरण में मालवीयजी के संस्कृत व्याख्यान की विशिष्टता, शुद्धता तथा धारावाहिकता की खूब प्रशंसा की है :—

"संस्कृत भाषा के ऊपर मालवीयजी महाराज का पूर्ण अधिकार था। पुराणों का पाठ वे प्रायः सदा करते थे। महाभारत तथा श्रीमद्भागवत का तो पूरा अभ्यास था। भागवत का अनुशीलन तो उनकी पैतृक सम्पत्ति ही थी। काशी में हिन्दू महासभा का एक अधिवेशन आयोजित किया गया था। उसी के साथ संस्कृत साहित्य सम्मेलन का भी अधिवेशन सम्पन्न होने वाला था। मालवीयजी उसके स्वागताध्यक्ष थे, परन्तु अस्वस्थ होने के कारण भाषण तैयार नहीं कर सके। म० म० पण्डित प्रमथनाथजी ने भाषण लिखकर मेरे पास भेज दिया। मालवीय जी को दिखाया, तो कहने लगे कि यह तो बँगला हो गया है। अच्छा छपा दो। ऐसा बाँचना नहीं होगा। हम अपना बोल लेंगे। समय पर बोलने के लिए उठकर खड़े हो गये और धीरे से बोले, अशुद्धियों को गिनकर कहना। मैं ध्यान लगाये था, परन्तु कहीं भी कोई अशुद्धि नहीं हुई। व्याख्यान समाप्त

[1] सन् १९१६ ई० में नवम हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्षीय भाषण से।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने पर अशुद्धियों के बारे में पूछा। मैंने कहा कि हनुमान् जी के व्याख्यान के बाद वाल्मीकिजी ने जो टिप्पणी लिखी है—बहु व्याहरताऽनेन न किञ्चिदपशब्दितम्—वही मेरी स्मृति में आ गई है। वाल्मीकि की टिप्पणी आपके व्याख्यान के लिए भी उपयुक्त है। इस पर मालवीयजी हँसने लगे।"

मालवीयजी सुन्दर संस्कृत पद्यों की भी रचना करते थे। प्रयाग में १९८४ वि० सं (१९२७ ई०) को माघकृष्ण एकादशी से प्रतिपद् तक होने वाली सनातन धर्म महासभा का पद्यबद्ध निमन्त्रण पत्र स्वयं मालवीयजी ने तैयार किया था जो इस प्रकार है—

प्रार्थना निवेदनम्

नमो धर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे।
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य प्रार्थये धर्मवर्धनम् ॥१॥
श्रुति-स्मृति-पुराणोक्तः वर्णाश्रमविभूषितः।
पुण्यः सत्यदमोपेतो धर्मः श्रेष्ठः सनातनः ॥२॥
यस्य संस्थापनार्थाय काले काले जगद्गुरुः।
अजोऽपि सन्नव्ययात्मा ह्यात्मानं सृजति स्वयम् ॥३॥
रक्षार्थं यस्य धर्मस्य ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा।
वैश्याः शूद्रा महाभागा अर्थान् प्राणाँश्च तत्यजुः ॥४॥
कलिना पीडितः सोऽयं दुरवस्थामवापितः।
अज्ञानेन स्वकीयानामन्येषामाक्रमेण च ॥५॥
हे नाथ! हे रमानाथ विश्वनाथार्तिनाशन।
सत्यां कुरु प्रतिज्ञां स्वां पातुं पुनरिहाव्रज ॥६॥
धर्मज्ञानप्रचारार्थं जातिरक्षार्थमेव च।
विश्वजन्यां मतिं यच्छ उद्धर्षय मनांसि नः ॥७॥
तीर्थराजे प्रयागे वै माघे मास्यसिते दले।
विदुषां धर्मकामानां भविष्यति महासभा ॥८॥
तत्रागत्य तु कर्तव्यो विचारः शास्त्रसम्मतः।
उपायाश्चिन्तनीयाश्च धर्मरक्षाप्रसाधकाः ॥९॥
इतीयं प्रार्थना हृद्या स्वीकर्त्तव्या मनीषिभिः।
धर्मरक्षाविवृद्धयर्थी ह्यनुग्राह्यो निवेदकः ॥१०॥

-- मालवीयो मदनमोहनः[1] ॥

महामना की एक दूसरी रचना—जनता को उपदेश—विश्वपञ्चांग के मुखपृष्ठ पर प्रतिवर्ष प्रकाशित होने से नितान्त प्रसिद्ध है। अतएव यहाँ देने की आवश्यकता नहीं है। अब उनके संस्कृत प्रचारकरूप का अवलोकन करें।

१. प्रज्ञा (मालवीय जन्मशती विशेषाङ्क) भाग ६, १९६१, हिन्दू विश्वविद्यालय से प्रकाशित पृ० १६१।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना

महामना मालवीयजी का हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना में सबसे महनीय उद्देश्य था हिन्दू धर्म और संस्कृति की रक्षा एवं संस्कृत विद्या, का प्रचार-प्रसार। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने सबसे पहले संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना की। हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना तो सन् १९१६ ई० में हुई थी परन्तु संस्कृत महाविद्यालय—जो आजकल प्राच्य विद्या तथा धर्म विज्ञान संकाय के नाम प्रसिद्ध है—में अध्ययन तथा अध्यापन का कार्य सन् १९१८ ई० से सुचारु रूप से प्रारम्भ हुआ। इस महाविद्यालय के सबसे प्रथम प्रिन्सिपल महामहोपाध्याय प० रामावतार शर्मा थे जो संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उनकी अध्यक्षता में इस महाविद्यालय में सुचारु रूप से पठन-पाठन होने लगा। स्वयं मालवीय जी आर्य परम्परा के अनन्य उपासक थे। अतः संस्कृत महाविद्यालय के प्रति उनका विशिष्ट प्रेम होना स्वाभाविक था। फलस्वरूप वे इसके संरक्षण एवं संवर्धन में सर्वथा सचेष्ट रहते थे। वे संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वानों को भारतवर्ष के कोने-कोने से खोज कर ले आते थे और संस्कृत विश्वविद्यालय में उन्हें आदर तथा सम्मान के साथ स्थान देते थे। ऊपर इस महाविद्यालय के प्रथम प्रिन्सिपल प० रामावतार शर्मा का उल्लेख किया जा चुका है। शर्माजी के पटना चले जाने पर महाविद्यालय के अध्यक्ष पण्डित **चन्द्रधर शर्मा गुलेरी** बने, परन्तु दो-तीन वर्षों के अनन्तर उनका काशी में ही निधन हो गया। तदनन्तर कुछ दिनों के पश्चात् महामहोपाध्याय पण्डित **प्रमथनाथ तर्कभूषण** को प्रिन्सिपल के पद पर प्रतिष्ठित किया गया। उन्होंने बीसियों वर्षों तक इस पद को सुशोभित किया। उनकी अध्यक्षता के काल में इस महाविद्यालय की सर्वाङ्गीण समुन्नति हुई। अनेक नये विभागों का सर्जन हुआ और सभी विषयों के अध्यापन की सम्यक् व्यवस्था की गई।

साङ्गवेदाध्यापन की व्यवस्था—

महाविद्यालय में वेदों के अध्यापन के साथ उसके छह अंगों—(१) व्याकरण, (२) शिक्षा, (३) ज्योतिष, (४) निरुक्त, (५) कल्प और (६) छन्द—के भी पठन-पाठन की सम्यक् व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त इसमें निम्नलिखित शास्त्रों का सुचारु रूप से अध्यापन किया जाता है। (१) धर्मशास्त्र, (२ न्याय-वैशेषिक, (३) सांख्य-योग, (४) पूर्व मीमांसा-उत्तर मीमांसा, (५) साहित्य, (६) कर्मकाण्ड, (७) पौरोहित्य आदि के साथ बौद्ध तथा जैन-दर्शनों की भी शिक्षा दी जाती है। सच तो यह है कि संस्कृत विद्या की कोई भी शाखा या प्रशाखा ऐसी नहीं है जिसका अध्ययन-अध्यापन यहाँ न किया जाता हो। इस समय इस महाविद्यालय में लगभग पैंतीस अध्यापक अध्यापन का कार्य कर रहे हैं और छात्रों की संख्या तीन सौ के आस पास है।

इस महाविद्यालय में पूर्व मध्यमा, उत्तर मध्यमा, शास्त्री और आचार्य की पढ़ाई होती है। यहाँ जो छात्र आचार्य को परीक्षा उत्तीर्ण करते हैं उन्हें 'शास्त्राचार्य' की उपाधि प्रदान की जाती है—जैसे व्याकरणशास्त्राचार्य, साहित्यशास्त्राचार्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि। जो वेद में आचार्य होते हैं उन्हें 'वेदाचार्य' की उपाधि दी जाती है। इस महाविद्यालय में अध्ययन के लिए कोई फीस या शुल्क नहीं लिया जाता। अतः निर्धन से भी निर्धन छात्र यहाँ निःशुल्क विद्याध्ययन कर सकता है। यहाँ मेधावी विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति भी प्रदान की जाती है। छात्रों के आवास के लिए छात्रावास का भी प्रबन्ध हैं जहाँ वे निःशुल्क निवास करते हैं। इस प्रकार इस महाविद्यालय में न तो अध्ययन करने के लिए शुल्क देना पड़ता है और न छात्रावास में रहने के लिए। इस प्रकार सहस्रों विद्यार्थियों ने इन सुविधाओं का लाभ उठाया है और उच्चतम परीक्षाओं को उत्तीर्ण कर यश और धन का अर्जन किया है तथा आज भी कर रहे हैं।

संस्कृत वाङ्मय के विभिन्न शास्त्रों में अनुसन्धान करने वाले अनुसन्दिधित्सुओं को 'चक्रवर्ती' और 'वाचस्पति' की उपाधि प्रदान की जाती है जो क्रमशः पी॰एच॰ डी॰ और डि॰ लिट्॰ के स्तर की मानी जाती है।

प्राच्य विद्या तथा धर्म विज्ञान संकाय में छह विभाग हैं जिनका पूर्णरूपेण विकास हो चुका है :—(१) वेद विभाग (२) मीमांसा-धर्मशास्त्र विभाग (३) व्याकरण विभाग (४) दर्शन विभाग (५) साहित्य विभाग और (६) ज्योतिष विभाग। इनके अतिरिक्त धर्म-शिक्षा नामक एक सर्वथा सातवाँ विभाग भी है जिसका रूप विकसित हो गया है। ज्योतिष विभाग के अन्तर्गत एक पञ्चाङ्ग उपविभाग भी है जिसके द्वारा "**विश्व पञ्चाङ्ग**" प्रकाशित किया जाता है। इस पञ्चाङ्ग के सर्वप्रथम सम्पादक महामना पं॰ मदनमोहन मालवीय और पं॰ रामयत्न ओझा थे। इस महाविद्यालय के प्राध्यापक तथा प्रिन्सिपल के पद को अनेक महान् विद्वानों ने सुशोभित किया है जिनमें म॰ म॰ चिन्नस्वामी शास्त्री, म॰ म॰ विद्याधर गौड़ और म॰ म॰ जयदेव मिश्र प्रधान हैं। यह महाविद्यालय संस्कृत विद्या का प्रचार करते हुए दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति कर रहा है—

"**संस्थापितः प्रथममेव महामहिम्ना**
विद्यालयः सुरगिरः सुधियामुपास्यः।
शश्वत् समुन्नतिगिरेः शिखराधिरूढो
जीयात् चिरं समुदयं विदधत् नराणाम्॥"

आयुर्वेद महाविद्यालय—

प्राचीन भारतीय चिकित्सा-प्रणाली की रक्षा करने तथा उसे समुचित प्रोत्साहन प्रदान करने लिए महामना मालवीय जी ने हिन्दूविश्वविद्यालय की स्थापना के पश्चात् **आयुर्वेद महाविद्यालय** की स्थापना की। उस समय आयुर्वेद के केवल दो ही महाविद्यालय इस प्रान्त में थे। पहिला ऋषिकुल, हरिद्वार का आयुर्वेद विद्यालय और दूसरा हिन्दू विश्वविद्यालय के अन्तर्गत यह महाविद्यालय। इस प्रकार इस आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना से महामना ने एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की। पहले यह विद्यालय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू विश्वविद्यलय के प्राच्य विद्या और धर्म संकाय विभाग का एक अंग था परन्तु सन् १९२४–२५ ई० से यह स्वतंत्र रूप से कार्य करने लगा। इस महाविद्यालय के प्रथम प्रिन्सिपल महान् वैद्य पण्डित **धर्मदास कविराज** थे। पहले इस विद्यालय में शुद्ध आयुर्वेदिक पद्धति से चरक, सुश्रुत, वाग्भट के ग्रन्थों का अध्यापन होता था। और इन पुस्तकों को पढ़कर जो विद्यार्थी निकलते थे वे शुद्ध आयुर्वेद की पद्धति से चिकित्सा करते थे। परन्तु चिकित्सा प्रणाली को आधुनिक बनाने के विचार से सन् १९२८ ई० में इसमें मेडिसिन और सर्जरी (शल्य चिकित्सा) का अध्यापन भी होने लगा। इस प्रकार प्राचीन आयुर्वेद की प्रणाली का ज्ञान होने के साथ ही ये छात्र आधुनिक शल्य चिकित्सा की विधि से भी परिचित होने लगे। इस परिवर्तन के फलस्वरूप जहाँ पहिले इन विद्यार्थियों को आयुर्वेदाचार्य की उपाधि प्रदान की जाती थी उन्हें अब ए० बी० एम० एस० की डिग्री दी जाने लगी।

धर्मदासजी के सेवानिवृत्त होने पर गुजरात के प्रसिद्ध चिकित्सक डा० बालकृष्ण अमरजी पाठक १९३९ ई० में आयुर्वेद कालेज के अध्यक्ष बनकर आये और लगभग एक दशक तक इस पद पर रहे। आपका स्वर्गवास यहीं काशी में हुआ।

आयुर्वेद महाविद्यालय के प्रिन्सिपलों में **पं० सत्यनारायण शास्त्री कविराज** का नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध है। ये आयुर्वेद शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे जिनका परिचय इसी ग्रन्थ में अन्यत्र दिया गया है। इनकी अध्यक्षता में इस महाविद्यालय की सर्वाङ्गीण समुन्नति हुई। इस समय इस महाविद्यालय में काय चिकित्सा, प्रसूति तंत्र, द्रव्यगुण और मौलिक सिद्धान्त इन विषयों का अध्यापन बड़ी ही सुन्दर रीति से होता था। यह विद्यालय दिन-प्रति-दिन उन्नति कर रहा था। इसने अनेक योग्य तथा विद्वान् वैद्यों को उत्पन्न किया था।

परन्तु दैवदुर्विपाक से सन् १९६० ई० में आयुर्वेद महाविद्यालय के स्नातक पाठ्यक्रम को समाप्त कर दिया गया। दूसरे शब्दों में आयुर्वेद विद्यालय को तोड़ दिया गया और उसके स्थान पर कालेज आफ मेडिकल साइन्सेज की स्थापना की गई। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने जून सन् १९६० ई० में यहाँ मेडिकल कालेज की स्थापना की अनुमति प्रदान की और उसी वर्ष सितम्बर सन् १९६० ई० में ही चिकित्सा विज्ञान (मेडिकल कालेज) कालेज की स्थापना हो गई। इसके तीन वर्षों के पश्चात् सन् १९६३ ई० में 'चिकित्सा विज्ञान संस्थान' की स्थापना की गई। आयुर्वेद का अध्यापन बन्द करने के कारण जनता ने इसका बड़ा विरोध किया। इसके फलस्वरूप 'स्नातकोत्तर आयुर्वेदिक अनुसन्धान विभाग' खोला गया है जिसमें केवल शोध कार्य किया जाता है। यद्यपि आजकल हिन्दूविश्वविद्यालय में "चिकित्सा विज्ञान संस्थान" की स्थापना से आधुनिक चिकित्सा प्रणाली का बड़ा विस्तार हो गया है तथापि जिस उद्देश्य से मालवीय जी ने आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना की थी वह उद्देश्य पूरा नहीं हो सका।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत महाविद्यालय-- के अध्यक्ष और अध्यापकों में देश के बड़े ही गण्यमान्य विद्वानों की नियुक्ति की गई। सर्वप्रथम पण्डित रामावतार शर्मा अध्यक्ष थे। जैसा ऊपर कहा गया है, उनके पटना चले जाने पर जयपुर के पुरातत्त्ववेत्ता विद्वान् पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी अध्यक्ष बने। अल्पायु में ही उनका शरीरपात हो गया। तब पण्डित प्रमथनाथजी १९२३ ई० में अध्यक्ष बने। बहुत वर्षों तक वे इस पद की गरिमा को सँभालते हुए अध्यक्ष बने रहे। उनके अवकाश ग्रहण के अनन्तर म० म० पण्डित बालकृष्ण मिश्रजी अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित हुए, परन्तु उनकी अकाल मृत्यु हो जाने पर अध्यक्ष के पद पर पण्डित कालीप्रसाद मिश्र की नियुक्ति हुई। मिश्रजी की संक्षिप्त जीवनी यहाँ दी जाती है।

पण्डित कालीप्रसाद मिश्र

(आस्पद मिश्र, उपाधि वैयाकरण-सार्वभौम)

पण्डित बालकृष्ण मिश्र के आकस्मिक निधन के अनन्तर संस्कृत महाविद्यालय के रिक्त अध्यक्ष पद पर पण्डित **कालीप्रसाद मिश्र** की नियुक्ति की गई। ये पहले ही उपाध्यक्ष थे। फलतः विद्यालय के आचार्य पद पर नियुक्ति में कोई बाधा नहीं उठी। पण्डित जी का जन्म गोरखपुर के 'टिकरिया' नामक गाँव में १९४६ वि० सं० (= १८८९ ईस्वी) में एक विद्यावदात सरयूपारीण ब्राह्मण कुल में हुआ था। पिता का नाम था पं० जयजयराम मिश्र तथा माता का सुखदा देवी। १८ वर्ष की उम्र में इन्होने अयोध्या की वैष्णव-धर्म प्रवर्धिनी पाठशाला से १९०६ ई० में व्याकरण की मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण की। काशी में आकर इन्होंने दामोदर शास्त्री से आचार्य के ग्रन्थों का अध्ययन आरम्भ किया, परन्तु उनके शीघ्र ही कैलासवासी हो जाने पर उन्हीं के पद पर नियुक्त प्रसिद्ध विद्वान् पण्डित रामभवन उपाध्याय का शिष्यत्व ग्रहण कर इन्होंने छह वर्षों में क्रमशः व्याकरणाचार्य के छहों खण्डों की परीक्षा बड़ी योग्यता से उत्तीर्ण की। पण्डित जीवनाथ मिश्र से इन्होंने न्यायदर्शन का सविधि अध्ययन किया। प्रयाग की धर्मज्ञानोपदेश संस्कृत पाठशाला में व्याकरण के अध्यापक का काम कई वर्षों तक आपने बड़े प्रेम और परिश्रम से सम्पन्न किया। प्रयाग में रहते समय ये महामना मालवीय के सम्पर्क में आये। मालवीय जी इनके सदाचार, सुशीलता तथा अध्यापन-कुशलता से बड़े प्रभावित हुए और अपने परिवार के बालक-बालिकाओं को संस्कृत पढ़ाने का कार्य भी इनके सुपुर्द किया।

काशी में संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना हो चुकी थी। उसके अध्यक्ष पण्डित रामावतार शर्मा के अनुरोध से मालवीय जी ने १९१९ ई० में पं० देवनारायण त्रिपाठी (तिवारी जी) की राजकीय संस्कृत महाविद्यालय में नियुक्ति हो जाने पर उनके रिक्त स्थान पर इन्हें नियुक्त किया। व्याकरण विभाग के अध्यक्ष म० म० जयदेव मिश्र जी के देहावसान के अनन्तर १९२५ ई० में ये उनके स्थान पर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभागाध्यक्ष बनाये गये। १९३७ ई० में नवनिर्मित उपाध्यक्ष पद का भी कार्य देखने लगे। इनकी कार्यकुशलता तथा अनुशासन-परायणता से प्रसन्न होकर विश्वविद्यालय के कुलपति डा० राधाकृष्णन् ने १९४३ ई० में इन्हें विद्यालय के अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। १९५२ ई० में बत्तीस वर्ष तक अनवच्छिन्न रूप से विश्वविद्यालय की सेवा करने के अनन्तर इन्होंने अवकाश ग्रहण किया।

पण्डित कालीप्रसाद मिश्र दृढ़ अनुशासक तथा सफल अध्यापक थे। पढ़ाने की इनकी शैली बड़ी ही रोचक तथा हृदयावर्जक थी। महाभाष्य के ये बड़े ही मर्मज्ञ विद्वान् माने जाते थे। महाभाष्य की ग्रन्थ-ग्रन्थियों के सुलझाने में इनकी बुद्धि इतनी प्रखर थी कि पतञ्जलि का व्याकरण-सिद्धान्त जिज्ञासु छात्रों के हृदय में अनायास ही इनकी शिक्षा के अनन्तर उद्दीप्त हो उठता था। महाकवि कालिदास ने आदर्श शिक्षक के लिए जिन दो गुणों का—निर्मल बुद्धि से आत्मस्थित ग्रन्थवैदुष्य का तथा छात्रों में तथ्यों को विशेष संक्रान्ति का—उल्लेख किया है, वे मिश्र जी में पूर्ण-रूप से विद्यमान थे।

३२ वर्षों की अनवरत सेवा के अनन्तर १९५२ ई० में इन्होंने अवकाश ग्रहण किया और विश्वनाथ जी के मन्दिर के समीप ही अपने आवास स्थान पर रह कर समागत पण्डितों के शास्त्रगत संशयों का निराकरण करते थे जहाँ ६ अगस्त १९७७ ई० में ८८ वर्ष की आयु में आपका निधन हुआ।

पण्डितजी अनेक आदर्श गुणों के पुञ्ज थे। निर्मल हृदय, विशुद्ध सात्त्विक आचरण, समीचीन व्यवहार-निपुणता, छात्रों पर अकृत्रिम स्नेह, सस्कृत ग्रन्थों का गम्भीर अनुशीलन आदि ऐसे गुण हैं जो इनकी विद्वत्ता की अमिट छाप छात्रों पर ही नहीं, प्रत्युत परिचित व्यक्तियों पर भी छोड़ गये हैं। लेखक पण्डितजी को भारतीय परम्परा का आदर्श अध्यापक मानता है। निम्नलिखित पद्य आपके व्यक्तित्व का सद्यः परिचायक है—

अतिशय-विमल-चरित्रं मधुरा मूर्तिर्मनोहरा वाणी।
सरसाऽध्यापनशैली विद्या विशदा यशो दिगन्तगतम्॥

बत्तीस साल के अपने सुदीर्घ कार्यकाल में इन्होंने अनेक सुयोग्य छात्रों को तैयार किया जो उत्तर भारत के विभिन्न स्थानों में संस्कृत विद्या की उन्नति में संलग्न हैं। इनके पट्टशिष्य **पण्डित निरीक्षणपति मिश्र** ने अध्यापन के द्वारा विमल कीर्ति अर्जित कर कुछ साल पहिले हिन्दूविश्वविद्यालय के संस्कृत महाविद्यालय के व्याकरण विभाग के अध्यक्ष पद से अवकाश ग्रहण किया है। भारतीय दर्शन के विद्वान् **डॉ० वेंकटाचलमूर्ति** ने मिश्रजी से व्याकरणशास्त्र की शिक्षा ग्रहण की है। पण्डित **करुणापति त्रिपाठी** (संस्कृत विश्वविद्यालय के निवर्तमान कुलपति) तथा **पं० रामचन्द्र मालवीय** (संस्कृत विश्व-विद्यालय के रजिस्ट्रार) मिश्रजी के ही शिष्यों में गणनीय विद्वान् हैं। अन्य शिष्यों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पं० **कमलाकान्त मिश्र**, मुनिवर मिश्र, महादेव शास्त्री तथा रामप्रसाद त्रिपाठी समधिक उल्लेखयोग्य हैं।

मिश्रजी के सेवानिवृत्त होने के कुछ काल अनन्तर पण्डित महादेव पाण्डेयजी महाविद्यालय के अध्यक्ष बने। 'कवितार्किक चूडामणि' की उपाधि इनके साहित्य तथा दर्शनविषयक गाढ वैदुष्य की सद्यः परिचायिका है। इनके पिता का नाम था—अम्बिकादत्त पाण्डेय एवं माता का सुमित्रादेवी। आप संस्कृत महाविद्यालय के ही छात्र थे। अध्यापन का कार्य इसी में करते रहे, साहित्यविभाग के प्राध्यापक तथा अध्यक्ष पद पर। न्याय वेदान्त के प्रौढ़ विद्वान् थे। साहित्य के चूडान्त ग्रन्थों के अध्यापन में लब्धवर्ण थे। बड़ी सुन्दर कविता करते थे। इनके काव्यग्रन्थों में **भारतशतक** विशेष प्रख्यात है। इस मञ्जुल काव्य में भारत के प्राचीन गौरव तथा वर्तमान स्वतन्त्रता-प्राप्ति का बड़ा ही विशद, उद्बोधक एवं आवर्जक वर्णन किया गया है। स्तोत्र रचनाओं में **शिवशतक** नितान्त सुन्दर है। काष्ठजिह्व स्वामी के 'उदासीन साधु स्तोत्र' की इनकी 'मंजुला टीका' सरल-सुबोध है। सेवानिवृत्त होने पर ये काशीस्थ ऊर्ध्वाम्नाय के शंकराचार्य बनाये गये महेश्वरानन्द स्वामी के नाम से। काशी में ही इनका देहावसान हुआ।

संस्कृत महाविद्यालय का दर्शन विभाग अनेक प्रतिष्ठित पण्डितों के अध्यापन के कारण नितान्त प्रख्यात तथा लोकप्रिय हो गया था जिसकी कीर्ति सुन कर अन्य प्रान्तों से भी छात्रगण आकर तत्तत् दर्शन का विधिवत् अध्ययन करते थे। छहों दर्शनों के पृथक्पृथक् विभाग चलते थे जिनमें न्याय, वेदान्त तथा मीमांसा की प्रधानता थी। इन विभागों के अध्यापक अखिल भारतीय कीर्ति से मण्डित व्यक्ति होते थे। न्यायशास्त्र का अध्यापन पण्डित **श्रीशंकर भट्टाचार्य** तथा अध्यक्षप्रवर **बालकृष्ण मिश्रजी** करते थे। वेदान्त का अध्यापन म० म० पण्डित **प्रमथनाथ तर्करत्न** तथा पण्डित **लक्ष्मीकान्त झा** करते थे तथा मीमांसादर्शन का शिक्षण म० म० पण्डित **चिन्न स्वामी** के हाथ में था। चिन्नस्वामी तो उनकी लोकप्रिय आख्या थी। वस्तुतः उनका नाम वेङ्कट सुब्रह्मण्य शास्त्री था। इन शास्त्रों के प्रौढ़ विद्वानों के कारण महाविद्यालय का दर्शन विभाग बड़ी ख्याति तथा कीर्ति से सम्पन्न था। विद्यालय के अनेक विद्वानों का परिचय ग्रन्थ में अन्यत्र दिया गया है। पण्डित लक्ष्मीकान्त झा का परिचय संक्षेप में यहाँ दिया जा रहा है।

पण्डित लक्ष्मीकान्त झा

(आस्पद झा; उपाधि—वेदान्त-वाचस्पति)

पण्डित लक्ष्मीनाथ झा - पण्डित बच्चा झा की वृद्धावस्था के शिष्य थे। इन्होंने लिखा है कि बच्चा झा जी अत्यन्त वृद्ध हो गये थे, परन्तु इनकी गुरुभक्ति से इतने प्रसन्न थे कि दर्शनों का रहस्य बड़ी सरलता से इन्हें पढ़ाया। ये दरभंगा मण्डल के अन्तर्गत मधुबनी के समीपस्थ सीमा ग्राम के निवासी थे। संस्कृत महाविद्यालय में दर्शन विभाग के अध्यक्ष थे। इनके दो ग्रन्थ प्रकाशित हैं—(१) व्युत्पत्तिवाद की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाश व्याख्या, (२) भामती (चतुः सूत्री) पर **प्रकाश** तथा **विकाश** नामक टीका-द्वयी। भामती जैसे कठिन ग्रन्थ को पण्डित लक्ष्मीकान्तजी ने अपनी दोनों टीकाओं के द्वारा सरल-सुबोध बनाने का श्लाघनीय उद्योग किया है। स्वामी करपात्रीजी ने इस पर अपनी लम्बी भूमिका लिख कर ग्रन्थ की प्रामाणिकता तथा ग्रन्थकार की वैदुषी पर अपनी मुहर लगा दी है। ग्रन्थ की रचना का काल १८७४ शक संवत् (=१९५२ ई०) है।[1]

ग्रन्थ परिमाण में बहुत ही विस्तृत तथा विशाल है। वाचस्पति मिश्र ने भामती की चतुःसूत्री में जिन पदार्थों का विवरण संक्षेप में दिया है उनकी दुरूहता को दूर पर व्याख्याकार ने उसे विस्तृत रूप से व्याख्या कर सरल तथा सुबोध बनाया। विवेचन बहुत ही सुन्दर तथा तलस्पर्शी है। वेदान्त के तत्त्व अपने पूर्ण वैभव के साथ यहाँ प्रकाशित हो रहे हैं। इस एक ही ग्रन्थ से पण्डित लक्ष्मीकान्तजी का दार्शनिक वैदुष्य सद्यः प्रस्फुटित हो रहा है।

इस महाविद्यालय का ज्योतिष विभाग भी बड़ा ही समर्थ एवं प्रतिष्ठित विभाग है। मालवीय जी की बड़ी कृपादृष्टि इस विभाग पर रहती थी। इसका परिणत फल हुआ एक नवीन पञ्चाङ्ग के प्रकाशन का सूत्रपात। पञ्चाङ्ग विभाग के द्वारा प्रकाशित **विश्वपञ्चाङ्ग** अपनी नाना प्रकार की उपयोगिता में—विशेषकर धार्मिक विशिष्टता में—अन्य पञ्चांगों से अधिक महत्त्वशाली सिद्ध हुआ है। महामना ज्योतिष विभागाध्यक्ष पण्डित रामयत्न ओझा के साथ इसके आद्य सम्पादक रहे। ओझा जी तथा पण्डित बलदेव पाठक का चरित अन्यत्र वर्णित है। इनके शिष्यों में पण्डित रामव्यास पाण्डेय अपने ज्योतिष-विषयक वैदुष्य तथा व्यावहारिक नैपुण्य के कारण अग्रगण्य माने जाते थे। इनके अनेक सुयोग्य शिष्य हैं जो उनके द्वारा प्रचारित कार्य को अग्रसर कर रहे हैं।

महाविद्यालय का साहित्य विभाग भी प्रमुख विभागों में है। पण्डित चन्द्रधर शर्मा इसके सुयोग्य अध्यापक तथा अग्रणी साहित्यिक थे। पण्डित महादेव पाण्डेय का विवरण ऊपर दिया गया है। ये प्रथमतः इसी विभाग के अध्यक्ष थे। तदनन्तर पूरे महाविद्यालय के अध्यक्ष बने। पं० रामकुबेर मालवीय भी इसी विभाग के कुछ वर्षों तक अध्यक्ष रहे। उन्होंने **मालवीय-चरितम्** महाकाव्य की रचना से अपनी काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया है। इस प्रकार इस महाविद्यालय में संस्कृत के अभ्युत्थान में विशेष योग दिया है। यह महामना की **संस्कृत सेवा** का भव्य प्रतीक है।

पण्डित **मधुसूदन शास्त्री** साहित्य विभाग के अध्यक्ष पद को अनेक वर्षों तक सुशोभित करते थे। व्याकरण, साहित्य के सफल अध्यापक होने के अतिरिक्त इन्होंने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है। काव्यमीमांसा की तथा महिमभट्ट के दुरूह ग्रन्थ

---

१. ग्रन्थकार के ही द्वारा प्रकाशित, काशी २००९ वि० सं०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्तिविवेक की बड़ी ही विशद टीका आपने प्रस्तुत की है। नाट्यशास्त्र के कई अध्यायों पर भी आपकी उपादेय व्याख्या है।

पण्डित महादेव पाण्डेयजी के अनेक शिष्य अध्यापन कार्य करते हैं जिनमें दो विद्वानों के नाम उल्लेखनीय हैं—(१) **डॉ० त्रिनाथ शर्मा** तथा (२) **डा० राममूर्ति त्रिपाठी**। पण्डित त्रिनाथ शर्मा उत्कल (जगन्नाथपुरी) के निवासी हैं। नैषधचरित के ऊपर बड़ा ही प्रमेयबहुल निबन्ध लिखकर आपने अपने वैदुष्य का परिचय दिया है। साहित्य के रसिक एवं वेदान्त के प्रौढ़ अध्यापक के रूप में हिन्दू विश्वविद्यालय में आपने अच्छी कीर्ति अर्जित की है। **डा० राममूर्ति त्रिपाठी** आजकल विक्रम विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं। साहित्य तथा तन्त्र के प्रौढ़ विद्वान् होने के कारण इनकी हिन्दी रचनाएँ प्रौढ़ता तथा प्रामाणिकता से सुतरां मण्डित हैं। इनका **'लक्षणा तथा उसका हिन्दी काव्य में प्रसार'**[1] नामक ग्रन्थ लक्षणा का बड़ा ही विशद एवं विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है। संस्कृत ग्रन्थों पर आधारित यह तुलनात्मक विवरण नितान्त उपादेय एवं स्पृहणीय है। **'तुलसी तथा तन्त्र'** नामक ग्रन्थ रामचरितमानस में उपलब्ध तान्त्रिक तथ्यों की गम्भीर विवेचना कर एक नयी दिशा का संकेतक है।

संस्कृत महाविद्यालय ने दो ऐसे मूर्धन्य विद्वानों को संस्कृत जगत् को दिया है जिन्होंने अपने-अपने शास्त्रों के उत्कृष्ट पण्डित होने के अतिरिक्त प्रशासन के कार्य में भी अपनी योग्यता एवं व्यवहार-कुशलता का प्रचुर परिचय दिया है। इनमें से एक हैं—**पण्डित करुणापति त्रिपाठी** और दूसरे हैं **पण्डित बदरीनाथ शुक्ल**। दोनों ही व्यक्ति साहित्य एवं न्याय के क्रमशः वैदुष्यमण्डित पण्डित हैं तथा सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति पद पर प्रतिष्ठित होकर दोनों ने संस्कृत साहित्य के प्रसार-प्रचार, संस्कृत परीक्षाओं के व्यवस्थापन एवं विश्वविद्यालय की सार्वत्रिक उन्नति में विशेष योग दिया है। शुक्लजी का परिचय पूर्व ही दिया गया है। पण्डित करुणापति त्रिपाठी काशी के ही सरस्वती तथा लक्ष्मी दोनों के पात्रभूत सरयूपारीण ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हैं। उनकी शिक्षा इस महाविद्यालय में आरम्भ से अन्त तक हुई। व्याकरण तथा साहित्य दोनों शास्त्रों में उनकी व्युत्पत्ति प्रशंसनीय तथा आदरणीय है। अपने ही पूर्वपुरुष पण्डित रामानन्दपति त्रिपाठी की महनीय रचना रसिक जीवन' का इन्होंने बड़ा ही विमर्शात्मक संस्करण निकाला है तथा मार्मिक समालोचना भूमिका के अन्तर्गत की है। हिन्दी में इनके अनेक प्रौढ़ ग्रन्थ तथा निबन्ध प्रकाशित है जो उच्चकोटि के होने से महत्त्वशाली हैं। ये संस्कृत कालेज के प्रथम अध्यापक हैं जिन्होंने कुलपति पद को सुशोभित किया। इनके अनन्तर ही पण्डित बदरीनाथ शुक्ल उस प्रतिष्ठित पद पर आसीन हुए थे जहाँ से ये अभी सेवाकार्य से निवृत्त हुए हैं। दोनों को सुयोग्य कुलपति बनाने का श्रेय इसी संस्कृत महाविद्यालय को प्राप्त है।

---

१. प्रकाशक, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० वि० २०२३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री बदरीनाथ शुक्ल द्वारा रचित ग्रन्थ

१ **'आरम्भवाद'** यह ग्रन्थ संस्कृत भाषा में नव्यन्याय की शैली से लिखा गया है। इसमें असत्कार्यवाद की स्थापना की गई है। सत्कार्यवाद की गम्भीर आलोचना तथा परमाणु-कारणतावाद का युक्तिपूर्ण प्रतिपादन किया गया है। इस सन्दर्भ में शंकराचार्य, मधुसूदन सरस्वती तथा इसके नवीनतम आलोचक बच्चा झा के विचारों का पर्यालोचन करते हुए उनके तर्कों का प्रतिवाद किया गया है। अन्त में प्रकृति और विद्या की विश्वोपादानता का निराकरण किया गया है। इसका प्रकाशन शारदा प्रकाशन, अगस्त कुण्ड वाराणसी से हुआ है।

२. **तत्त्वचिन्तामणि का मंगलवाद**—तत्त्वचिन्तामणि नव्यन्याय का सर्वोच्च ग्रन्थ है इसकी रचना मिथिला के महान् नैयायिक गंगेश्वर उपाध्याय ने की है। इसके आरम्भ में मंगलवाद पर विशेष विचार किया गया है और मंगल की उपयोगिता के सम्बन्ध में विविध मतों की समीक्षा की गयी है। इसके ऊपर मथुरानाथ तर्कवागीश की अत्यन्त विस्तृत और प्रौढ़ व्याख्या है जिसका सम्पादन करते हुए श्री शुक्लजी ने मूल और व्याख्या के महत्त्वपूर्ण स्थलों पर पाण्डित्यपूर्ण टिप्पणियाँ लिखी हैं। इसका प्रकाशन सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय (वाराणसी) द्वारा किया गया है।

३. **तर्कभाषा**—यह आचार्य केशव मिश्र की महत्त्वपूर्ण रचना है। श्री शुक्लजी ने हिन्दी में इस पर विस्तृत व्याख्या लिखी है। इस व्याख्या में तर्कभाषा में चर्चित न्याय शास्त्र के अनेक सिद्धान्तों पर मौलिक विचार प्रकट किये गये हैं। यह ग्रन्थ व्याख्यात्मक होते हुए भी मौलिक ग्रन्थ की प्रकृति से मण्डित है। व्याख्या की भाषा और शैली अत्यन्त प्राञ्जल और मनोरम है। इसका प्रकाशन मोतीलाल बनारसी दास (वाराणसी) द्वारा हुआ है।

४. **वेदान्तसार**—यह वेदान्त पर सदानन्द की प्रसिद्ध रचना है। श्री शुक्लजी ने इस पर हिन्दी भाषा में विशद और विस्तृत व्याख्या लिखी है। इसमें विद्वन्मनोरञ्जनी के अनेक विचारों के औचित्य की वैदुष्यपूर्ण आलोचना की गयी है और उनका सटीक प्रतिवाद किया गया है। यह ग्रन्थ भी व्याख्यात्मक होते हुए भी मौलिक ग्रन्थ की विशेषताएं रखता है। इसका प्रकाशन मोतीलाल बनारसी दास (वाराणसी) द्वारा हुआ है।

५. **न्याय-खाद्य-खण्डन**—यह जैनाचार्य हरिभद्र सूरि की महनीय कृति है। इसे 'महावीर स्तव' के नाम से भी अभिहित किया जाता है। इस पर संस्कृत में यशोविजय सूरि की नव्यन्याय शैली में लिखित व्याख्या बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। श्री शुक्लजी ने इस पद्यात्मक संस्कृत ग्रन्थ पर हिन्दी भाषा में एक विस्तृत व्याख्या लिखी है। उन्होंने अपनी व्याख्या में जैन दर्शन के अनेक सिद्धान्तों का, जो मूल ग्रन्थ में चर्चित हैं, विशद निरूपण किया है। मूल ग्रन्थ में आलोचित अन्य दार्शनिक मतों का भी व्याख्या में बहुत सुन्दर ढंग से विशदीकरण किया गया है। इसका प्रकाशन चौखम्भा वाराणसी में हुआ है।

६. **शास्त्रवार्ता-समुच्चय**—यह जैन दर्शन का एक महान् ग्रन्थ है। आचार्य हरिभद्र सूरि ने इसकी श्लोकबद्ध रचना की है, इसमें वैदिक और बौद्ध सभी शास्त्रों के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धान्तों को पूर्वपक्ष के रूप में प्रस्तुत किया गया है, और उनका पाण्डित्यपूर्ण प्रतिपादन करते हुए उन्हें गम्भीर तर्क शैली से त्याज्य बतलाया गया है और आलोचित सभी सिद्धान्तों के प्रतिपक्ष में जैन सिद्धान्तों की युक्तियूर्ण प्रतिष्ठा की गयी है। इस पर उपाध्याय यशोविजय सूरि की अत्यन्त विस्तृत व्याख्या नव्यन्याय शैली में उपलब्ध है। आचार्य श्री शुक्लजी ने इस महान् ग्रन्थ पर हिन्दी भाषा में एक महत्वपूर्ण व्याख्या ग्रन्थ की रचना की है। इस व्याख्या से मूल और व्याख्या ग्रन्थ की दुर्बोधता का पूर्णरूप से निराकरण हो गया है। हिन्दी व्याख्या को देखने से ऐसा लगता है कि यह एक मौलिक ग्रन्थ जैसा है और इसमें सभी शास्त्रों के विषयों का न्यायपूर्ण विवेचन किया गया है। जैनेतर शास्त्रों के विचारों की आलोचना और जैन शास्त्रीय मान्यताओं की प्रतिष्ठापना, दोनों में निष्पक्षता बरती गयी है। यह महान् व्याख्याग्रन्थ ६ खण्डों में पूरा हुआ है। इसके प्रथम खण्ड का प्रकाशन चौखम्भा वाराणसी से हुआ है तथा अन्य खण्डों का प्रकाशन अहमदाबाद से हो रहा है। यह ग्रन्थ श्री शुक्लजी के विद्या-शिष्य जैनाचार्य श्री विजयभानु सूरि की प्रेरणा से लिखा गया है।

७. व्याप्ति पञ्चक—इस ग्रन्थ में तत्त्व चिन्तामणि के अनुमान खण्ड में उपलब्ध व्याप्ति के प्रथम पाँच लक्षणों का वर्णन है। 'पञ्च लक्षणी' नाम से भी इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि है। इस पर शशिधर मिश्र, वासुदेव सार्वभौम, जगदीश तर्कालङ्कार, मथुरानाथ तर्कवागीश आदि की विस्तृत व्याख्याएँ हैं जो सभी मूल ग्रन्थ की महिमा से मण्डित हैं। श्री शुक्लजी ने इसकी माथुरी टीका पर हिन्दी भाषा में एक व्याख्या लिखी है। नव्य-न्याय शैली के इस गम्भीर ग्रन्थ पर हिन्दी भाषा में एक सरल सुबोध व्याख्या लिखना अत्यन्त श्लाघनीय कार्य है जिसे श्री शुक्लजी ने बड़ी सफलता से सम्पन्न किया है। इसका प्रकाशन हिन्दी ग्रन्थ अकादमी राजस्थान की ओर से हुआ है।

८. नव्यन्याय-प्रवेश—यह हिन्दी भाषा में पण्डित बदरीनाथजी का मौलिक ग्रन्थ है जिसमें नव्यन्याय के प्रमुख पारिभाषिक शब्दों का परिचय प्रस्तुत किया गया है। निश्चय ही इस ग्रन्थ के अध्ययन से नव्यन्याय में प्रविष्ट होने का मार्ग प्रशस्त हो सकता है। ग्रन्थ की भाषा और विषय को सुबोध रूप से प्रस्तुत करने की शैली अत्यन्त समी-चीन और मनोरम है।

९. मार्कण्डेय पुराण : एक अध्ययन—यह ग्रन्थ श्री शुक्ल द्वारा हिन्दी भाषा में लिखा गया है। इसकी भूमिका अत्यन्त उपादेय है। प्रत्येक अध्याय के विषयों का संक्षिप्त वर्णन और अध्यायों में आयी हुई सूक्तियों का संकलन अध्याय के अन्त में किया गया है। पूरे पुराण की कथाओं को प्राञ्जल और सुन्दर भाषा में दिया गया है। इसका प्रकाशन चौखम्भा वाराणसी से हुआ है।

उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त श्री शुक्ल ने वेद, व्याकरण, साहित्य, न्याय, वेदान्त, सांख्य, योग, मीमांसा, जैन दर्शन, बौद्ध दर्शन, आगम और भारतीय विधिशास्त्र पर निबन्ध लिखे हैं जिनका प्रकाशन विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में हुआ है।

●

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८

पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य

(आस्पद–भट्टाचार्य, उपाधि–महामहोपाध्याय)

मानव जीवन की उदात्तत्ता के लिए पवित्र चरित्र ही सर्वस्व है। यह ठीक ही है कि विद्या, वैभव तथा वंश-गौरव के द्वारा मनुष्य महान् बनता है और जीवन में सफलता प्राप्त करता है, परन्तु ये ही वस्तुएँ मनुष्य की उदात्तता को कसौटी नहीं हैं। केवल शुद्ध चरित्र के कारण ही मनुष्य मानव से परिपूजित और प्रशंसित होता है। यदि अमल धवल चरित्र के साथ प्रशस्त विद्या और विमल वंश का भी संयोग हो तो इसे मणि-कञ्चन योग ही समझना चाहिए।

प्रयाग विश्वविद्यालय के अन्तर्गत म्योर सेन्ट्रल कालेज के संस्कृत के प्रोफेसर महामहोपाध्याय पं० आदित्यराम भट्टाचार्य इसी कोटि के नरपुंगव थे। ये अनेक वर्षों तक उत्तर प्रदेश के सबसे प्रसिद्ध अंग्रेजी शिक्षा-विद्यालय म्योर सेन्ट्रल कालेज, प्रयाग में संस्कृत के प्राध्यापक रहे। इन्होंने संस्कृत विद्या का स्वयं अध्ययन तथा अध्यापन ही नहीं किया, बल्कि इसके प्रचार तथा प्रसार में भी समधिक योगदान किया।

पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य जी द्वारा प्रकाशित निज गुरु पण्डित शिवशर्मा की संस्कृत रचना **'वासुदेव-रसानन्द'** के आरम्भ में महामना मालवीयजी ने अपने गुरु आदित्यरामजी की संक्षिप्त जीवनी निबद्ध की है। वही यहाँ उनके ही शब्दों में दी जाती है। इसके द्वारा महामना की सरस-सुबोध शैली तथा अकृत्रिम गुरुभक्ति का स्पष्ट परिचय मिलता है।

गुरु-गौरव गान : महामना की लेखनी से

"पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य के पूर्वज कलकत्ते के पास, जिला चौबीस परगना के अन्तर्गत, राजपुर नामक गाँव के निवासी थे। वंगदेश के ब्राह्मणों में कुछ लोग 'पाश्चात्य वैदिक' श्रेणी के ब्राह्मण कहलाते हैं। उसी श्रेणी के अन्तर्गत भट्टाचार्यजी का घराना है। इस श्रेणी के ब्राह्मण वंगदेश में सबसे अधिक मर्यादावान् माने जाते हैं। भट्टपल्ली तथा नवद्वीप आदि में जो बड़े-बड़े नामी विद्वान् होते आये हैं, वे सब प्रायः इसी श्रेणी के ब्राह्मण थे। राजा आदिशूर के द्वारा वैदिक धर्म के प्रचारार्थ बुलाये जाने वाले ये ब्राह्मण उत्तर प्रदेश के कान्यकुब्ज के निवासी थे और इसीलिए पश्चिम देश से आने के कारण ये **पाश्चात्य वैदिक** नाम से प्रख्यात हैं।

"पण्डित आदित्यरामजी का गोत्र घृत कौशिक है और इनकी शुक्ल यजुर्वेद के अन्तर्गत काण्व शाखा है। स्मार्त रघुनन्दन के प्रसिद्ध टीकाकार पण्डित **काशीराम**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाचस्पति के पौत्र महाविद्वान् पण्डित **राजीवलोचन न्यायभूषण** इनके मातामह थे। पं० राजीवलोचन वङ्ग देश के विष्णुपुर (बाँकुडा जिला) के निवासी थे। प्रतिभाशाली एकमात्र पुत्र की युवावस्था में मृत्यु के कारण विरक्त होकर काशी आये। काशी के पण्डित-समाज में अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त होने के कारण राजकीय संस्कृत कालेज में वेदान्त के अध्यापक पद पर नियुक्त हो गये थे। यह सन् १८२८ ईसवी की बात है।

पण्डित आदित्यरामजी के पिता का नाम रामकमल भट्टाचार्य था। बाल्यकाल में माता-पिता से हीन होकर ये नाना के यहाँ पले थे। बड़ा होने पर अपने मकान राजपुर चले गये थे। उस समय घर में इनके एक पितृव्य थे जो विपत्नीक और सन्ततिहीन थे। उन्होंने तीर्थ-यात्रा के लिए काशी, प्रयाग तथा वृन्दावन जाने का निश्चय किया। युवक रामकमल ने भी उनके साथ चलने का विनयपूर्वक आग्रह किया। उस समय उन्हें रामकमल के उस विनयपूर्ण आग्रह को स्वीकार करना पड़ा और घूमते-घामते वे दोनों प्रयाग आये तथा यहाँ अपने सजातीय पं० राजीवलोचन से मिले। पं० राजीवलोचनजी की एक कन्या थी जिसका नाम श्रीमती धन्यगोपी देवी था। 'कन्याप्येवं पालनीया शिक्षणीया च यत्नतः'—मनुजी के इस वचनानुसार पण्डितजी अपनी कन्या को संस्कृतादि की अच्छी शिक्षा दे रहे थे। परमसुन्दर युवक रामकमल को दूर देश में अपने निकट पाकर उनको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने अपनी कन्या का विवाह रामकमल के साथ करने का प्रस्ताव किया और वृन्दावन से लौटकर रामकमल के पितृव्य ने इनका विवाह पं० राजीवलोचन की सुन्दरी और सद्गुणसम्पन्ना कन्या के साथ काशीजी जाकर कर दिया। वङ्ग देश में अपने घर में किसी के न रहने के कारण और ससुराल का बंधन अधिक होने से रामकमल वृद्ध सास-ससुर को इस दूर देश में छोड़कर अपनी पत्नी को साथ लेकर स्वदेश न जा सके। उनको यहीं बस जाना पड़ा। उनकी जितनी संततियाँ हुई थीं उनमें तीन पुत्र और तीन कन्याएँ जीवित रहीं। ज्येष्ठ पुत्र का नाम वेणीमाधव, मध्यम का घनश्याम और कनिष्ठ का आदित्यराम भट्टाचार्य था। इन लोगों का जन्म प्रयाग में ही हुआ था। ज्येष्ठ और कनिष्ठ पुत्र प्रयाग में ही घर बनाकर स्थायी हो गये और मध्यम पुत्र घनश्याम वङ्ग देश में जाकर रहने लगे।

जन्म तथा अध्ययन

पण्डितजी की माता धन्यगोपी देवी, अपने पिता से पढ़कर, बड़ी विदुषी हो गयी थीं। सूतिकागार में ही उन्होंने पण्डितजी की जन्मकुण्डली बना ली थी जो अभी तक सुरक्षित है। ये बड़ी धर्म-परायणा थीं। रसोई बनाते-बनाते भी शास्त्रीय विषयों में ही मग्न रहती थीं। वे रात्रि को तीन बजे उठकर प्रतिदिन पड़ोस की दो-चार स्त्रियों के साथ कीटगंज से त्रिवेणी जाकर स्नान करती थीं। वे बड़ी दानशीला थीं। शरीर पर के सोने के गहने भी उतार कर दे देती थीं। कहते हैं कि जब पण्डित आदित्यरामजी गर्भ में थे तभी इनको स्वप्न हुआ था कि तुम्हारे गर्भ में एक विशिष्ट पुरुष आया है। तभी से इन्होंने निश्चय कर लिया था कि जन्म होने पर इस पुत्र का नाम आदित्यराम

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखूंगी। इनका जन्म संवत् १९०४ के मार्गशीर्ष कृष्ण द्वितीया (तदनुसार २३ नवम्बर सन् १८४७ ई०) को हुआ। आदित्यराम ने अपनी बाल्यावस्था प्रयाग में ही बितायी थी। दस वर्ष की अवस्था में ये अपने कुटुम्बियों के साथ वङ्ग देश गये थे। वहीं भट्टपल्ली (भाटपाड़ा) में गङ्गा-तट पर इनकी माता ने स्वर्ग-लाभ किया। इस दुर्घटना के बाद ये लोग प्रयाग लौट आये। यहाँ आदित्यराम की नानी जीवित थीं। इस स्थान में इनके विद्याभ्यास का प्रबन्ध ठीक-ठीक नहीं हो रहा था। उन दिनों यहाँ कोई अंग्रेजी विद्यालय न रहने के कारण कुछ बड़े होते ही, तेरह वर्ष की अवस्था में, इनके ज्येष्ठ भ्राता ने इनको काशी भेज दिया। वहाँ जाकर इनका पढ़ने में बड़ा मन लगा।

काशी में आदित्यरामजी सरकारी स्कूल में अंग्रेजी और घर पर संस्कृत पढ़ने लगे। उनको इस बात की धुन थी कि इस समय काशी में जो बड़े-बड़े प्राचीन पण्डित हैं उन सबके पास जा-जाकर कुछ-न-कुछ पढ़ते रहे। लोग भी उनको स्नेहवश पढ़ाया करते थे। इस तरह से इन्होंने पण्डित कैलासचन्द्र शिरोमणि, पण्डित प्रेमचन्द्र तर्क-वागीश, पण्डित बेचनराम त्रिपाठी और पण्डित जयनारायण तर्कालङ्कार के पास संस्कृत का अध्ययन किया। उधर अंग्रेजी पढ़ने में भी ध्यान रखते थे। सरकारी स्कूल में प्रवेशिका परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होकर कालेज में भरती हो गये। यह सन् १८६४ ई० की बात है।

कालेज में जाने के बाद कुछ ही दिनों में अपने प्रतिभा-बल से ये कालेज के अध्यक्ष स्वर्गवासी श्रीमान् ग्रिफिथ साहब की निगाह में पड़ गये। ग्रिफिथ साहब बड़े विद्वान् और संस्कृत के भी बड़े पण्डित थे। उन्होंने वेद, वाल्मीकीय रामायण तथा और भी अनेक संस्कृत काव्यों का अँग्रेजी के गद्य और पद्य में अनुवाद किया था। उस समय उनको दो छात्र बड़े प्रिय थे। एक तो थे पं० लक्ष्मीशङ्कर मिश्र और दूसरे पण्डित आदित्यरामजी। उनमें पण्डित लक्ष्मीशंकर आदित्यरामजी से उच्च कक्षा में पढ़ते थे। बी० ए० परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद जब सर्वोच्च कक्षा एम० ए० में पढ़ने का समय आया, तब आदित्यरामजी ने अंग्रेजी साहित्य में एम० ए० पास करने का निश्चय किया जिससे कि ग्रिफिथ साहब के अंग्रेजी भाषा के पाण्डित्य से लाभ उठावें, परन्तु साहब ने कहा कि तुम पण्डित बनो। उनके आज्ञानुसार इन्होंने संस्कृत में ही एम० ए० पास करने का निश्चय किया।

उन दिनों इस प्रान्त में कोई विश्वविद्यालय नहीं था। आगरा तक के सब कालेज कलकत्ता विश्वविद्यालय के अन्तर्गत थे। काशी के कालेज में कुछ दिन एम० ए० में संस्कृत पढ़कर कलकत्ते के सरकारी संस्कृत कालेज में जाकर पढ़ने की आवश्यकता हुई। वहाँ स्वर्गवासी महामहोपाध्याय पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न की अधीनता में बहुत सी वृत्तियाँ, सुवर्णपदक और पारितोषिक प्राप्त किये थे। एक-एक साल में दो-तीन वृत्तियाँ तक पाते रहे। इस कारण इनको घर से खर्च लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। ये छात्रावस्था में प्रबन्ध आदि लिखकर पत्र-पत्रिकाओं में छपाया करते थे। अखबारों में प्रबन्ध आदि लिखने का शौक इनको उसी समय से हो गया था। इसी समय, बीस वर्ष की अवस्था में, इनका विवाह हुआ। कलकत्ता से कुछ दूर काँठाल-पाड़ा नामक एक प्रसिद्ध कसबा है। सुप्रसिद्ध औपन्यासिक बाबू बङ्किमचन्द्र का वहाँ मकान था। इसी स्थान के एक विद्वान्-कुल की कन्या श्रीमती श्यामाङ्गिनी देवी के साथ इनका विवाह हुआ।

अध्यापन

एम० ए० पास करने पर इन्हें बुलाकर ग्रिफिथ साहब ने शिक्षा-विभाग में एक सरकारी पद पर नियुक्त कर दिया। मध्यप्रदेश में सागर के विद्यालय में, सन् १८७२ ई० के प्रारम्भ में, ये संस्कृताध्यापक के पद पर नियुक्त हुए। उसी समय ग्रिफिथ साहब भी इस प्रान्त के शिक्षा-विभाग के अध्यक्ष पद पर नियुक्त होकर प्रयाग में आ गये। सागर में पण्डितजी का बहुत दिन तक रहना नहीं हुआ। उसी समय प्रयाग में म्योर सेन्ट्रल कालेज के नाम से सरकारी कालेज स्थापित किया गया। आजकल जिस कोठी का नाम 'दरभङ्गा कैसल' है उन दिनों उसका नाम 'लौदर कैसल' (लौदर साहब की कोठी) था। उसी कोठी में यह कालेज खोला गया। पण्डित जी सागर में तीन-चार महीने भी न रह पाये थे कि ग्रिफिथ साहब ने इनको प्रयाग बुला लिया और नये कालेज में इन्हें संस्कृताध्यापक के पद पर नियुक्त कर दिया। इस पद से ५५ वर्ष की अवस्था में पण्डित जी ने अवकाश ग्रहण किया। बीच-बीच में कई बार आपको संस्कृत का पढ़ाना छोड़कर अंग्रेजी साहित्य भी, थोड़े-थोड़े दिनों के लिए, पढ़ाना पड़ा था। काशीस्थ सरकारी संस्कृत कालेज में आप अंग्रेजी भाषा के अध्यापक होकर करीब ढाई वर्ष तक रहे। यह पद उन दिनों अंग्रेजों के लिए सुरक्षित था, परन्तु पण्डितजी ने कुछ दिनों के लिए इसको सुशोभित किया था। आप ही ऐसे भारतीय विद्वान् थे जो इस पद पर पहले पहल नियुक्त किये गये थे। पीछे जब टीबो साहब, जो जर्मन थे, उस पद के लिए स्थायी रूप से नियुक्त होकर आये तब ये प्रयाग कालेज के अपने पुराने पद पर फिर लौट आये।

पण्डितजी ने इलाहाबाद युनिवर्सिटी के शिक्षा-विभाग के कार्यों में भी भाग लेकर अच्छी कीर्ति पायी थी। क्या देशी क्या अंग्रेज, सभी इनको मानते थे। अवकाश ग्रहण करते समय संयुक्त प्रांत के तत्कालीन गवर्नर साहब, शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर साहब और म्योर कालेज के प्रिंसिपल साहब तथा विश्वविद्यालय की अन्यान्य शिक्षा-समितियों ने इनको बहुत प्रशंसा करके, विदा किया था। विश्वविद्यालय के प्रबन्ध-विषयों में पण्डितजी ने बहुत स्वतन्त्रता और निर्भीकता से काम किया था, जिसके लिए इन्हें यश भी बहुत मिला था। ये प्रवेशिका से लेकर एम० ए० की परीक्षा तक के संस्कृत के परीक्षक होते थे। ये बड़े ही न्यायनिष्ठ थे और किसी के साथ तनिक भी पक्षपात नहीं करते थे। प्रयोजन पड़ने पर बड़े स्पष्टवक्ता थे। इस कारण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी-कभी अफसर लोग उनसे चिढ़ जाते थे, तो भी इनकी न्याय-परायणता के कारण इनका सदा सम्मान करते थे।

हिन्दी के भी ये बड़े ही प्रेमी थे और हिन्दी साहित्य की उन्नति के लिए सदा उत्साह दिखाते थे। उस समय हिन्दी-भाषा में कोई अच्छी मासिक पत्रिका नहीं थी। इस अभाव को दूर करने के लिए इन्होंने बहुत चेष्टा की थी और जब प्रयाग के इण्डियन प्रेस ने सरस्वती नाम की पत्रिका निकाली तब इनको बड़ा सन्तोष हुआ। ये काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के सदस्य और शुभेच्छु थे।

छात्र-प्रेम

हिन्दू-छात्र-मण्डली में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। छात्रों का पक्ष लेकर समय-समय पर, ये अधिकारियों से लड़ तक बैठते थे और इसका सदा ध्यान रखते थे कि उन छात्रों के साथ कोई अन्याय न हो। ये सब बातें अब पुरानी और विस्तृत कहानी-सी हो गयी हैं। छात्र लोग भी इनको देवता और गुरु के समान मानते थे। ये सब प्रांतों के छात्रों का समान भाव से आदर करते थे और जो छात्र अन्य प्रान्तों से पढ़ने के लिए आते थे उन पर तो और भी अधिक कृपा करते थे। उनके कितने ही छात्र दूर-दूर स्थानों में उच्च पदों पर पहुँचे हैं और आज भी उनकी प्रीति और उनके उच्च चरित्र की वार्ता प्रायः करते रहते हैं। सरकारी नौकर होने के कारण ये सार्वजनिक कामों में योगदान नहीं कर सकते थे, तथापि लोगों को यथोचित उत्साह बराबर देते रहते थे और देश के कामों में सहानुभूति भी रखते थे। बीच-बीच में अंग्रेजी समाचार-पत्रों में सामयिक विषयों पर अपने गम्भीर विचार के प्रबन्ध आदि भी छपवा दिया करते थे। वह समय आजकल के समान नहीं था, देश-हित की बातें कम लोग समझते थे और खड़े होकर बोलने-लिखने वाले तो इस प्रान्त में बहुत ही कम थे। कुछ दिनों तक इन्होंने 'इंडियन यूनियन' नामक एक स्थानीय अंग्रेजी समाचार-पत्र का अस्थायी रूप से और परोक्ष भाव से, प्रयोजनवश, सम्पादन भी किया था। ये देश की बनी हुई वस्तुओं के व्यवहार के विषय में बड़े कट्टर थे। वङ्ग देश में इस विषय का पहले पहल आन्दोलन होने के बहुत पहले से ही वे इस विषय पर ध्यान देकर इसके अनुरागी हो गये थे। प्रयाग में 'हिन्दू समाज' इन्हीं के उपदेश और प्रोत्साहन से स्थापित हुआ था। पण्डितजी की लिखी हुई अपील आज भी पढ़ने योग्य है। अंग्रेजी राज्य के समय में हिन्दू-समाज के सङ्गठन का यह पहला प्रयत्न था। इससे हिन्दू सज्जनों का उत्साह बहुत बढ़ा था। हिन्दू-समाज कई वर्ष तक हिन्दुओं के संगठन का कार्य करता रहा। पण्डितजी के उपदेश और प्रोत्साहन से मैं भी उसका सदस्य हो गया था। मैं उस समय म्योर सेंट्रल कालेज का छात्र था। पण्डितजी मुझपर बहुत स्नेह रखते थे। उनके सम्पर्क से मुझ में देश-भक्ति का भाव दृढ़ होता गया।

पण्डितजी 'थियोसोफिकल सोसायटी' में शामिल हो गये थे; क्योंकि उससे प्रारम्भ में हिन्दू-धर्म को बहुत सहायता मिली थी। अच्छे-अच्छे प्रतिभाशाली अंग्रेज,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईसाई पादरियों का प्रतिवाद करके, जब हिन्दू-धर्म का समर्थन करने लगे तब हिन्दू-धर्म को बहुत बल मिला और जिन अंग्रेजी पढ़े देशी लोगों की श्रद्धा अपने धर्म पर शिथिल हो रही थी, उनकी बुद्धि लौटी और वे स्वधर्म के प्रेमी होने लगे। परन्तु पीछे जब थियोसोफिकल समाज में अवान्तर की बहुतेरी बातें ग्रहण की जाने लगीं, तब उससे पण्डितजी की श्रद्धा घट गयी; यहाँ तक कि उससे उनका सम्बन्ध भी शिथिल हो गया।

हिन्दू विश्वविद्यालय की सेवा

हिन्दू लड़कों का स्वधर्म में छात्रावस्था से ही प्रेम बना रहे और वे दूसरे के बहकाने से न बहकें, इस अभिप्राय से जब १८९८ ई० में काशी में श्रीमती एनी बेसेंट, बाबू गोविन्ददास, डाक्टर भगवानदास, बाबू उपेन्द्रनाथ वसु तथा अन्य सज्जनों ने 'सेन्ट्रल हिन्दू कालेज' खोला तब पण्डितजी ने उसके एक बड़े समर्थक के रूप में उत्साहपूर्वक उसमें सहयोग किया था और जब उसके संचालकों की यह राय हुई कि कोई प्रतिष्ठित हिन्दू विद्वान् उस कालेज का प्रिंसिपल बनाया जाय तब उन्होंने पण्डितजी को निमन्त्रित किया। उसकी अध्यक्षता ग्रहण कर उन्होंने उन हिन्दू सज्जनों का, जो उसको सन्देह की दृष्टि से देखते थे, सन्देह दूर कर दिया। यह कार्य उन्होंने सरकारी नौकरी से अलग होने के पीछे सन् १९०४ से १९०६ ई० तक किया था। फिर जब काशी हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापित करने की चर्चा उठी तब फिर पण्डितजी का उत्साह दूना हो गया। यद्यपि इस समय इनकी अवस्था अधिक हो गई थी तथापि उस कार्य में इन्होंने बहुत प्रोत्साहन दिया। विश्वविद्यालय के स्थापित हो जाने पर उसमें प्रो-वाइस-चांसलर का उच्च पद ग्रहण कर वे फिर काशी गये और सन् १९१६ से १९१९ ई० तक बड़े परिश्रम और उत्साह से उस पद का काम करते रहे। एक नवीन आदर्श विश्वविद्यालय की संस्थापना और उसका संगठन करने के लिए वृद्धावस्था में पण्डितजी को बहुत परिश्रम करना पड़ा। इसका यह परिणाम हुआ कि उनके नेत्रों की ज्योति जाती रही और शरीर भी टूट गया; अतएव ७१ वर्ष की अवस्था में वे अपने प्रयाग के मकान में लौट आये। फिर उनका स्वास्थ्य और दृष्टि-शक्ति नहीं सुधरी और तीन वर्ष बाद उनका शरीर भी छूट गया।

पारिवारिक शोक

पण्डितजी ने अपनी संस्कृत पाठशाला के लिए अपने घर से लगा हुआ भवन बनवाया था, उसी में आकर वे उन दिनों रहने लगे थे। गृहस्थाश्रम का मकान छोड़ दिया था। १८ अक्टूबर सन् १९११ ई० कार्तिक कृष्ण द्वितीया सम्वत् १९७८) को अरुणोदय के समय वे उसी भवन में पर-ब्रह्म में लीन हुए। पण्डितजी को गवर्नमेण्ट ने सन् १८९७ ई० में महामहोपाध्याय की पदवी देकर सम्मानित किया था। इस समय इनकी अवस्था ५० वर्ष की थी। इसी समय इनको गार्हस्थ्य शोक भी पड़ा। इसके पूर्व वर्ष में उनके मध्यम भ्राता श्री घनश्याम भट्टाचार्यजी का देहान्त हो गया। पण्डितजी को भ्रातृ-वियोग का शोक अभी ताजा ही था कि इसी समय उन पर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा वज्रपात हुआ। उनका सुयोग्य और अत्यन्त स्नेहभाजन ज्येष्ठ पुत्र सत्यवान् भट्टाचार्य चौबीस वर्ष की अवस्था में माता-पिता तथा सब कुटुम्ब को गम्भीर शोक में डालकर परलोक को चला गया। इस दुर्घटना से पण्डितजी को प्राणान्तक पीड़ा पहुँची। उनका हृदय इस परम शोक से बहुत व्यथित हुआ, परन्तु उनके चरित्र की गम्भीरता का अद्भुत परिचय इसी समय मिला। इनको इस भारी शोक में भी अश्रुपात करते कभी किसी ने नहीं देखा। केवल निद्रा की अचेतनावस्था में शोक का गम्भीर उच्छ्वास सुनने में आता था। इस दुर्घटना के पूर्व तक इनके केश बिलकुल काले थे, किन्तु अब छः महीने के अन्दर आधे श्वेत हो गये। बाहर से ये पहले के समान ही अपनी दिनचर्या में लगे रहते थे, उसमें कोई त्रुटि नहीं होने पाती थी। इनकी पूजनीया पत्नी भी शोक से अभिभूत रहती थीं।

इस दुर्घटना के बाद पण्डितजी ने और पाँच वर्ष तक नौकरी की। ३० वर्ष की नौकरी पूरी करके, ५५ वर्ष की अवस्था में सन् १९०१ ई० में उन्होंने अपने काम से अवकाश ग्रहण किया। अधिकारी चाहते थे कि ये अभी और कुछ दिनों तक काम करें परन्तु इस बात को इन्होंने नहीं स्वीकार किया। कालेज के अध्यक्ष टीबो साहब और अन्य सब अध्यापकों तथा छात्र-मण्डली ने मिलकर सभा की और पण्डितजी की प्रशंसा करके, खेद के साथ इन्हें बिदा किया। इस अवसर पर, आपस में चन्दा करके, पण्डित जी का एक बड़ा चित्र कालेज के पुस्तकालय में लगा दिया गया। कदाचित् ही कभी किसी अध्यापक की इतने सम्मानपूर्वक समारोह से बिदाई हुई हो।

नौकरी से अवकाश ले लेने पर भी प्रयाग की युनिवर्सिटी के साथ पण्डितजी का सम्बन्ध बना रहा। अधिकारियों के आग्रह से उसकी समितियों में इनको और भी कुछ वर्षों तक काम करना पड़ा, पर जब उस युनिवर्सिटी का नवीन सङ्गठन होने लगा तब पण्डितजी अवसर पाकर हट आये, परन्तु हिन्दू विश्वविद्यालय के कार्य के लिये उन्हें कई बार काशी जाना पड़ा था। इस तरह शरीर के अस्वस्थ हो जाने पर जीवन के अन्तिम तीन वर्षों को छोड़कर वे अपनी आयु भर बराबर विद्यादान के पवित्र कार्य में ही लगे रहे।

पण्डितजी की आत्मानुभव-सम्बन्धी बातें

पण्डितजी बाल्यावस्था से ही बलिष्ठ, तेजस्वी और उद्यमशील थे। छात्रावस्था से प्रौढ़ावस्था तक बराबर व्यायाम करते रहे। बादाम का सेवन उन्होंने नियमपूर्वक आजन्म किया। गृहस्थी में रहकर भी वे ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। उनके ओजपूर्ण नेत्र उनके नाम को सार्थक करते थे। वे सत्यभाषी और स्पष्टवक्ता थे। घुमा-फिराकर बातें करना नहीं जानते थे। परन्तु व्यक्तिगत भाव से न तो किसी का प्रतिवाद करते थे और न कटुवचन कहकर किसी को दुःखी करते थे। वे परमार्थ-साधन में नियमपूर्वक लगे रहते थे। अपने जीवन की नित्यचर्या में वे यह बात दिखला गये हैं कि अपनी गृहस्थी का काम, जनता का काम और पारमार्थिक काम, इन सभी की तरफ ध्यान

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखकर और इनका सामंजस्य कर मनुष्य को किस तरह कर्मशील होना चाहिये। वस्तुतः वे एक गृहस्थ योगी थे।

उनके धार्मिक जीवन पर सर्वप्रथम एक योगाभ्यासी साधु बाबा सुदर्शनदास का प्रभाव पड़ा। ये श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय के वैरागी साधु थे और प्रयाग के गङ्गापार पुरानी झूंसी के समुद्रकूप नाम के प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान में रहते थे। इनके सिवा एक और महात्मा थे जो प्रयाग के दारागंज मुहल्ले में, उनके मकान के पास ही रहते थे। इनका नाम पं० अम्बिकादत्तजी शास्त्री था। विशेष पढ़े-लिखे तो नहीं थे परन्तु दैवी विभूति के बल से बहुश्रुत एवं सर्वशास्त्रों के पण्डित हो गये थे। बड़े-बड़े विद्वान् उनके पास जाकर उनसे भिन्न-भिन्न शास्त्रों की कठिन-कठिन समस्याओं का सामंजस्य करवाते थे। इनकी और भी बहुत-सी अलौकिक बातें थीं। ये शक्ति के सुसिद्ध उपासक थे। इन्होंने ज्वालामुखी पर्वत पर बहुत दिनों तक कठोर तप किया था। पण्डितजी इनके भी बड़े भक्त थे और इन्होंने नौकरी करते समय इनसे भी कुछ विद्याभ्यास किया था। इनके सत्सङ्ग के कारण वे आजन्म साधु-सन्तों के प्रेमी हो गये थे। वे अच्छे महात्माओं की खोज में सदा रहते थे और परिश्रम कर दौड़-दौड़कर जङ्गलों-पहाड़ों में भी उनके पास जा-जाकर उनका सत्सङ्ग किया करते थे। ऐसा करते-करते उन्हें एक विलक्षण महापुरुष की कृपा प्राप्त हुई। सपत्नीक पण्डितजी उनके शिष्य हो गये।

पण्डितजी के शरीर में जब तक बल रहा तब तक वे नित्य सायंकाल त्रिवेणीतट को जाते थे। सूर्य की उपासना भी विशेष रूप से करते थे। रात्रि में तीन बजे उठकर, पूजन आदि करके, सूर्योदय के समय सूर्य के अष्टोत्तर-शतनाम का पाठ कर उनको साष्टांग प्रणाम करते थे। जब तक शरीर में बल बना रहा तब तक पण्डितजी बराबर ऐसा ही करते रहे। पीछे घटाते-घटाते बैठे ही बैठे अपनी साधना करने लगे और सायंकाल को त्रिवेणीजी के भ्रमण समय में गङ्गाजल घण्टी में ले जाते थे। जहाँ सूर्यास्त होने लगता था वहाँ जूता उतार खड़े होकर सूर्य को अर्घ्य देते थे। जब यूनिवर्सिटी की कमेटियों में या और कहीं सायंकाल आ जाता था तब भी पण्डितजी काम छोड़कर उसी घण्टी में रखे गङ्गाजल से अर्घ्य देते थे। वे दोनों समय अग्नि में आहुति भी देते थे। जीवन के अन्तिम दिवस तक इन सब नियमों का कभी उल्लंघन नहीं हुआ। उपासना के समय वे अपने पास एक इकतारा भी रखते थे। उसको लेकर नित्य दोनों वक्त पूजा के अन्त में भजन गाया करते थे। वे बङ्गला, हिन्दी, पंजाबी आदि सब तरह के भजन गाते थे। उनका क्या इष्ट था, कौन सम्प्रदाय था, यह उनके आचरण से कोई नहीं जान सकता था। सबके समान प्रेमी थे। साकार-निराकार, वैष्णव-शैव, आचारी-औघड़ और भिन्न-भिन्न दूसरे धर्मों के अनुयायी सब उनसे समान आदर पाते थे। क्रिस्तान, सूफी, मुसलमान, पारसी, सिक्ख—वे सभी का सन्मान करते और सबसे आदरपूर्वक मिलते थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबकी खातिर करते हुए भी वे अपने सनातन हिन्दू-धर्म में पूर्ण श्रद्धा और अनुराग से लगे रहे।

पण्डितजी का वासस्थान भी बड़ा उत्तम था। इनका मकान प्रयाग के दारागंज मुहल्ले में, गंगा-तट पर, प्राचीन दशाश्वमेधजी से लगा हुआ है। इसे इन्होंने १८७९ ई० में खरीदा था। जिस समय यहाँ पहले कोई मकान नहीं था उस समय वहाँ झोपड़ी बनाकर एक बड़े विद्वान् महापुरुष रहते थे। उनका नाम शिवशर्मा था। वे बालब्रह्मचारी विरक्त महात्मा नेपाल देश के थे। उन्हीं के नाम पर पण्डितजी ने अपने व्यय से एक संस्कृत पाठशाला स्थापित करायी है, जिसका प्रबन्ध काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय करता है। ये हिन्दुओं की प्राचीन संपत्ति और धर्म के प्राण-स्वरूप शास्त्रों का सुरक्षण अत्यावश्यक समझते थे। इस काल में इसका अनादर होने से इसके गलित हो जाने की भी बड़ी आशङ्का थी। अतएव ये संस्कृत विद्या द्वारा उपार्जित अपनी स्थावर-जंगम सब सम्पत्ति इसी के पोषण के लिए अर्पित कर गये हैं। वह काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय के हाथ में सुरक्षित है और वहाँ के प्रबन्ध से, उस धन के अधिकांश द्वारा अपने गंगातट के मकान में पाठशाला के चलाने की व्यवस्था ये अपनी मृत्यु के पूर्व ही कर गये हैं।"[1]

संस्कृत का प्रचार-कार्य

पं० आदित्यराम भट्टाचार्य ने संस्कृत विद्या के प्रसार तथा प्रचार में प्रचुर परिमाण में योगदान दिया है। प्रयाग का म्योर सेन्ट्रल कालेज उस समय उत्तर प्रदेश में प्रथम श्रेणी का गवर्नमेण्ट कालेज माना जाता था। सच तो यह है कि इतना बड़ा तथा प्रसिद्ध कालेज—क्वीन्स कालेज, काशी को छोड़कर – उत्तर प्रदेश में कोई दूसरा नहीं था। इस महान् कालेज में संस्कृत साहित्य का प्रधानाध्यापक होना कोई साधारण बात नहीं थी। सच तो यह है इस कालेज का संस्कृताध्यापक ही उत्तर प्रदेश में संस्कृत शिक्षा के अध्ययन का नियमन करता था। म० म० आदित्यराम भट्टाचार्य इस महनीय पद को लगभग ३० वर्षों तक सुशोभित करते रहे। इस सुदीर्घकाल में संस्कृत शिक्षण की व्यवस्था का पूर्ण अधिकार इनके हाथों में था। सन् १८७५ ई० से लेकर १९२०ई० तक इस प्रान्त में संस्कृत शिक्षा के प्रबन्ध का सारा भार आदित्यरामजी के ऊपर था। अपने अध्यापन काल में आपने संस्कृत शिक्षा का जो पाठ्य-क्रम बनाया, वह लगभग चालीस वर्षों तक चलता रहा।

आपने संस्कृत सीखने वाले छात्रों की सुविधा के लिए '**ऋजु व्याकरण**' की रचना की थी। इस पुस्तक में संस्कृत जैसी कठिन भाषा को सीखने वाले व्यक्तियों के लिए संस्कृत व्याकरण के नियमों को बड़ी ही सरल तथा सुबोध भाषा में लिखा गया था। सहस्रों छात्रों ने इस पुस्तक से लाभ उठाया। इस पुस्तक का प्रचार सन् १९२० ई०

---

१. यहीं महामना द्वारा लिखित जीवनी समाप्त होती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक था। यह पुस्तक पाँच भागों में लिखी गई थी जिसमें संस्कृत व्याकरण तथा संस्कृत रचना का विशद विवेचन किया गया था। लगभग ४०-४५ वर्षों तक यह पुस्तक संस्कृत के अध्ययन-कर्ताओं के लिए अत्यन्त आवश्यक साधन थी। संस्कृत विद्या के प्रचार में इस ग्रन्थ का महत्त्व कदापि अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

इतना ही नहीं, संस्कृत के सम्यक् प्रचार तथा पठन-पाठन के लिए इन्होंने अपने गुरु के नाम पर **शिवशर्मा संस्कृत पाठशाला** की स्थापना भी की थी। इस पाठशाला की स्थापना इन्होंने अपने घर के पास ही प्रयाग के दारागंज मुहल्ले में की थी। इस विद्यालय का सारा खर्च ये अपने पाकेट से दिया करते थे। यहाँ सहस्रों छात्रों ने अध्ययन करके संस्कृत भाषा का सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया था। यह पाठशाला आदित्य-रामजी के लिए प्राणों से भी प्रिय थी। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में ये अपने घर से विरक्त होकर इसी पाठशाला में स्थायी रूप से निवास करते थे। इस प्रकार आदित्य-रामजी ने आजीवन केवल अध्यापन कार्य से ही संस्कृत विद्या की सेवा नहीं की, प्रत्युत अपने द्रव्य से संस्कृत पाठशाला की स्थापना कर इसके प्रचार तथा प्रसार में भी अपना अलौकिक योगदान दिया। ये दिनरात- संस्कृत के प्रचार में लगे रहते थे और इसी विद्यालय के प्रांगण में इन्होंने अपनी ऐहिक लीला सन् १९२१ ई० में समाप्त की।

धार्मिकता

पं० आदित्यराम भट्टाचार्य अत्यन्त धार्मिक व्यक्ति थे। इनको धर्मप्राण विद्वान् कहा जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी। ये रात्रि में तीन बजे उठते थे। नित्य कर्म से निवृत्त होकर ये पूजा-पाठ करने लगते थे। जब पूजा करते हुए सूर्योदय हो जाता था तब भगवान् भास्कर के अष्टोत्तर शत नाम का पाठ कर उनको साष्टांग प्रणाम करते थे। जब तक शरीर में बल रहा पण्डित जी बराबर इस नियम का पालन करते रहे। कुछ दिनों के पश्चात्, शारीरिक बल के अभाव में ये अपने आसन पर बैठे ही पूजा-पाठ करते रहे। ये प्रतिदिन सायंकाल त्रिवेणी के तट पर भ्रमण करने के लिए जाया करते थे। सदा गंगा जल एक छोटी से लुटिया में अपने पास रखते थे। जहाँ सूर्यास्त होने लगता था वहीं पर जूता उतार कर, ध्यानस्थ ही भगवान् सूर्य को अर्घ देने लगते थे। यदि कभी कदाचित् इस कार्य के लिए जल उपलब्ध नहीं हुआ, तब गंगा स्वच्छ तथा बालू से ही भगवान् भास्कर को अर्घ प्रदान करते थे। जब कभी ये यूनिवर्सिटी को किसी कमेटी की मीटिंग में बैठे रहते थे और कदाचित् सन्ध्या होने लगती, तब ये कार्यों को छोड़ उसी सतत साथ रहने वाली लुटिया में रखे गंगा जल से सविता को अर्घ प्रदान कर उनकी उपासना करने लगते थे। इनका यह नियम इतना पक्का था कि इसमें किसी भी प्रकार व्यवधान नहीं पड़ सकता था। ये ऐसी किसी भी बाधा को सहन नहीं कर सकते थे।

जीवन के अन्तिम दिनों तक इस नियम का कभी उल्लंघन नहीं हुआ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० आदित्यरामजी को संगीत से भी प्रेम था। उपासना के समय ये अपने पास एकतारा नामक वाद्ययंत्र रखते थे। पूजा के अन्त में ये इस एकतारा को बजाते हुए भजन गाया करते थे। ये बंगला, हिन्दी तथा पंजाबी आदि अनेक भाषाओं में भजन गाने में प्रवीण थे। इनका इष्ट कौनसा देवता था, इनका सम्प्रदाय क्या था, इसका पता इनके आचरण से कदापि नहीं लग सकता था। ये सभी सम्प्रदायों के लोगों का चाहे वह वैष्णव हो, शैव हो या शाक्त, सभी का समान रूप से आदर करते थे। ये सनातन वैदिक धर्म के पूर्ण अनुयायी थे परन्तु धार्मिक कट्टरता तथा अनुदारता इन्हें छू तक नहीं गई थी। ये हिन्दुओं की प्राचीन परम्परा, संस्कृति तथा शास्त्रों का संरक्षण अत्यन्त आवश्यक मानते थे।

भट्टाचार्यजी बड़े ही उदार तथा निःस्पृह व्यक्ति थे। इन्होंने जिस संस्कृत पाठशाला की स्थापना की थी उसका संचालन भविष्य में भी सुचारु रूप से होता रहे इसके लिए इन्होंने अपनी समस्त चल और अचल सम्पत्ति इसी पाठशाला को अर्पित कर दी। यह पाठशाला आज भी सुचारु रूप से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संरक्षण में चल रही है। इस प्रकार आदित्यरामजी का समस्त जीवन संस्कृत-विद्या के प्रचार तथा सनातनधर्म की सुरक्षा में व्यतीत हुआ।

साधुओं का जीवन पर प्रभाव

पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य के जीवन पर एक योगाभ्यासी साधु का बड़ा ही प्रभाव था जिनका नाम सुदर्शनदास था। ये श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के वैरागी साधु थे। ये महात्मा गंगा के उस पार झूसी में समुद्र कूप के पास रहा करते थे। इनके अतिरिक्त एक दूसरे योगी ने भी इनके जीवन को बड़ा प्रभावित किया था। इनका नाम अम्बिकादत्त शास्त्री था। ये विशेष पढ़े-लिखे तो नहीं थे परन्तु दैवी विभूति के बल से अखिल शास्त्रों में विद्वत्ता प्राप्त कर ली थी। बड़े-बड़े विद्वान् इनके पास आकर अपनी शास्त्रीय समस्याओं का इनसे समाधान पूछा करते थे। ये शक्ति के उपासक और बड़े भक्त थे। इन्हें ने ज्वालामुखी पर्वत पर अनेक वर्षों तक कठिन तपस्या की थी। पं० आदित्यरामजी ने अपनी नौकरी के समय में इनसे अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया था। इन महात्मा के सत्संग का प्रभाव इन पर इतना अधिक पड़ा कि ये साधु-सन्तों के श्रद्धालु बन गये। ये सच्चे साधुओं तथा महात्माओं की खोज में सदा रहते थे और अत्यन्त कष्ट उठाकर भी उनसे सत्संगलाभ के लिए दूर-दूर के स्थानों में भी जाया करते थे। ऐसे ही विलक्षण गुणों से सम्पन्न एक महात्मा को पाकर इन्होंने सपत्नीक उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया था।

राष्ट्रीयता तथा सुधारप्रियता

प्राचीन परम्परा के परम तथा कट्टर उपासक होते हुए भी पं० आदित्यराम भट्टाचार्य दकियानूसी विचार वाले कूपमंडूक संस्कृत के पण्डित नहीं थे। इनमें देश के प्रति प्रेम कूट कूट कर भरा हुआ था। ब्रिटिश साम्राज्य के उस गौरवशाला युग में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब भारत में राष्ट्रीयता का नाम लेना भी दण्डनीय अपराध समझा जाता था, पण्डित आदित्यरामजी ने अपने प्रिय शिष्य मदनमोहन मालवीय के साथ सन् १८८६ में कलकत्ता के कांग्रेस के द्वितीय अधिवेशन में प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया था। ये देशोन्नति की कामना करने वाले महापुरुष थे। अतः इस देश को पराधीनता की बेड़ी से मुक्त करने के लिए ये चाहते थे कि हमारे देश के नवयुवक राष्ट्राय आन्दोलन में अधिक से अधिक संख्या में भाग लें। कांग्रेस के कलकत्ता के अधिवेशन में इनका स्वयं सम्मिलित होना इसी बात का सूचक था।

ये सामाजिक सुधार के भी पक्षपाती थे। हिन्दू समाज में जिन अनेक कुप्रथाओं का आगमन हो गया है उनके सुधार के अनन्य पक्षपाती थे। सन् १९२८-२९ ई० में मालवीयजी महाराज ने अछूतों को मंत्रदीक्षा देने का जो आन्दोलन चलाया था उसका पूर्ण समर्थन पं० भट्टाचार्यजी यदि जीवित रहते तो अवश्य ही करते। ये अन्य संस्कृत के पण्डितों की तरह संकीर्ण विचार-धारा के व्यक्ति नहीं थे, प्रत्युत इसके ठीक विपरीत अत्यन्त उदारमना, त्यागी, तपस्वी और सदाचारी सत्पुरुष थे।

परिवार

पण्डित जी के अग्रज पण्डित वेणीमाधवजी बड़े चरित्रवान् व्यक्ति थे। बाल्य-काल से ही वे सदाचारी एवं नैष्ठिक हिन्दू थे। वे अपने मातामहकुल के शालग्राम नारायण को बंगदेश से प्रयाग लाकर उनकी विधिवत् अर्चना करते थे। अपने बाद भी सेवा-पूजा ठीक ढंग से होती रहे, इसके लिए ये एक बाग और नगद रुपया रजिस्टरी करके देवसम्पत्ति बनाकर छोड़ गये। प्रयाग में लाट साहब के दफ्तर में नौकर थे। ५० वर्ष की अवस्था में विपत्नीक हो गये, नौकरी से अवकाश ले लिया। ये बड़े ही सात्त्विक स्वभाव के ईमानदार व्यक्ति थे। अवकाश लेने के बाद सामाजिक सेवा में दत्तचित्त रहे और माघ मेला में साधुसन्तों की मुस्लिम पुलिस अफसरों से रक्षा के लिए बड़ा काम किया। हिन्दू जाति तथा हिन्दूधर्म के लिए सदैव कटिबद्ध रहे। ८० साल की आयु में प्रयाग में ही इनका देहावसान हुआ।

आदित्यरामजी को पारिवारिक विपदा तथा संकटों से भी संघर्ष करना पड़ा था। १८९६ ई० में इनके मध्यम भ्राता घनश्याम भट्टाचार्य का आकस्मिक निधन हो गया। इससे भी अधिक धक्का इन्हें लगा अपने सुयोग्य ज्येष्ठ पुत्र श्री सत्यव्रत भट्टाचार्य की २४ साल की अल्पायु में मृत्यु हो जाने से। इस भीषण शोक घटना से इनका हृदय विदीर्ण हो जाना स्वाभाविक था, परन्तु आदित्यरामजी इतने दृढ़ तथा धैर्यवान् थे कि उनकी आँखों में आँसू भी नहीं आये। इनके कनिष्ठ पुत्र सत्यव्रत भट्टाचार्य एम० ए० अनेक वर्षों तक हिन्दू विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के प्राध्यापक थे वे अपने आदरणीय पिताजी के द्वारा आरम्भ किये गये धार्मिक कृत्यों का तथा पाठशाला आदि का व्यवस्थापन यथावत् अपनी वृद्धावस्था में भी करते रहे। आदित्य-रामजी ने अपने गुरुवर्य पण्डित शिवशर्मा के द्वारा प्रणीत **वासुदेवरसानन्द** नामक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थ का प्रकाशन कर जिज्ञासु जनों में अमूल्य वितरित किया था। ग्रन्थ भक्ति-रस से आप्लुत आध्यात्मिक रहस्यों का उद्घाटन करता है। प्रौढ़ संस्कृत में रचित होने के कारण सामान्य जनों के लिए यह कठिन तथा दुरूह था। इस त्रुटि को दूर करने के लिए इसके हिन्दी अनुवाद के साथ द्वितीय परिवर्धित संस्करण भी सत्यव्रत भट्टाचार्य ने १९३५ ईसवी में प्रकाशित किया और विद्वज्जनों में इसका वितरण कर अपने आदरणीय पिता के आदर्श चरित्र का निष्ठापूर्वक पालन किया। इस ग्रन्थ के आरम्भ में महामनाजी ने पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य की संक्षिप्त जीवनी स्वयं लिखकर ग्रन्थ के महत्व को बढ़ाया। यही जीवनी ऊपर अक्षरशः उद्धृत की गयी है।

पं० आदित्यरामजी स्वभाव से बड़े ही कोमल तथा सज्जन व्यक्ति थे। परन्तु अपने सिद्धान्त की रक्षा तथा नियमों के पालन में बड़े ही कठोर थे। ये नारिकेल के फल के समान ऊपर से कर्कश और कठोर होते हुए भी भीतर से—हृदय से—अत्यन्त सुकोमल तथा सहृदय थे। सहस्रों छात्रों को इन्होंने विद्या का दान मुक्तहस्त से दिया और अपनी अर्जित विद्या के वितरण में इन्होंने किसी प्रकार का कार्पण्य नहीं दिखाया।

महामहोपाध्याय पं० आदित्यराम भट्टाचार्य के जीवन में अनेक विशेषताएँ थीं। इनका सबसे बड़ा गुण निष्ठापूर्वक संस्कृत भाषा का प्रचार तथा प्रसार था। संस्कृत पाठशाला की स्थापना कर इन्होंने अपनी इस रुचि का प्रत्यक्ष प्रमाण दिया था। दूसरा गुण प्राचीन भारतीय धर्म, दर्शन तथा संस्कृति में अटूट निष्ठा थी। इनका तीसरा गुण स्फटिक के समान उज्ज्वल चरित्र और गंगा के समान पवित्र हृदय था। संस्कृत के ऐसे विद्वान् की कीर्ति अजर, अमर हो।

आदित्यरामजी के ज्येष्ठ सतीर्थ्य

बाबू प्रमदादास मित्र

गत शताब्दी के उत्तरार्ध में बाबू प्रमदादास मित्र काशी की संस्कृतज्ञ मण्डली में अपनी विद्यावैदुषी के कारण अग्रगण्य व्यक्तियों में स्थान रखते थे। ये जात्या बंगाली कायस्थ थे, परन्तु आचार की सात्त्विकता में, विचार की उदात्तता में एवं भूतभावन बाबा विश्वनाथ की नैष्ठिकी उपासना में किसी भी महनीय भूदेव से न्यून नहीं थे। ऊपर इस तथ्य की चर्चा की गयी है कि इनका कुटुम्ब लक्ष्मी एवं सरस्वती दोनों का समभावेन उपासक था और इनके भव्य प्रासाद के प्रशस्त प्रांगण में किसी भी विशिष्ट सामाजिक तथा साहित्यिक समारोह में काशिकेय विद्वानों का जमघट जुटता था और इस कुल के प्रतिष्ठित व्यक्ति की अध्यक्षता में सभा का विधिवत् संचालन होकर तत्कालीन समस्याओं का समाधान किया जाता था।

इसी बंगाली मित्रवंश के महिमामय व्यक्ति थे—श्री प्रमदादास मित्र। ये संस्कृत एवं अंग्रेजी दोनों के प्रौढ़ विद्वान् थे। ये काशिक राजकीय पाठशाला के ही छात्र थे। संस्कृत शास्त्रों का अध्ययन इन्होंने पण्डितों के पास किया और अंग्रेजी साहित्य में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके गुरु थे तत्कालीन प्रिंसिपल डा० ग्रिफिथ, जिनकी कृपा तथा औदार्य की चर्चा इन्होंने अपने ग्रन्थ में की है। जब संस्कृत कालेज में एंग्लो विभाग की स्थापना संस्कृत-छात्रों को अंग्रेजी भाषा की शिक्षा देने के निमित्त हुई, तब ये इस विभाग के अध्यापक पद पर नियुक्त किये गये। पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य भी डा० ग्रिफिथ के प्रिय छात्रों में से थे। इस प्रकार ये दोनों ही बंगाली संस्कृतज्ञ समसामयिक तथा सतीर्थ्य थे। ये संस्कृत विद्या के प्रचारक थे, संस्कृत के निर्धन छात्रों को अपनी ओर से पुस्तकें तथा द्रव्य की सहायता दिया करते थे। श्री नारायण शास्त्री खिस्ते ने अपने संस्मरण में इनकी आर्थिक सहायता तथा अकृत्रिम उदारता की बड़ी प्रशंसा की है। ये भगवान् शंकर के बड़े भक्त थे। पूजा के अवसर पर संस्कृत छात्रों से देववाणी में ही संभाषण करते थे। पण्डित गोपीनाथ कविराज का कहना था कि उनके गुरुकल्प सान्याल महाशय—शिवराम किंकर को आर्थिक सहायता भेजने के लिए भगवान् शंकर ने स्वप्न में बाबू प्रमदादास मित्र को आदेश ही नहीं दिया, प्रत्युत कलकत्ते में रहने वाले सान्याल महाशय का पूरा पता भी धनादेश भेजने के लिए दिया था। ऐसी विचित्र कृपा भगवान् शिवशंकर की अपने निष्ठावान् भक्त के लिए! इसकी चर्चा पीछे की गई है।

बाबू प्रमदादास मित्र संस्कृत एवं अंग्रेजी दोनों भाषाओं के प्रवीण पारखी थे। **'साहित्य दर्पण'** का 'मिरर आफ कॉम्पोजिशन' के नाम से प्रकाशित अंग्रेजी अनुवाद इनके गम्भीर अध्ययन तथा साहित्य-मर्मज्ञता का प्रकृष्ट प्रमाण है। इस अनुवाद का केवल चतुर्थांश किया डा० बेलेन्टाइन ने, परन्तु कारणवश इसे अधूरा छोड़ रखा। प्रमदादास मित्र ने इस ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है कि गुरुवर ग्रिफिथ साहब की प्रेरणा से उद्युक्त होकर मैंने इस अधूरे ग्रन्थ को पूर्णता पर पहुँचाया और इस श्रमसाध्य कार्य में उन्हीं का उदाहरण जागरूक होकर मार्गदर्शन का काम करता था। अनुवाद की भूमिका बड़ी विद्वत्तापूर्ण है। बेलेन्टाइन साहब ने 'रस' के लिए फ्लेवर[1] शब्द का प्रयोग किया था जिसे उतना समुचित न मानकर प्रमदादासजी ने टेस्ट[2] अथवा रेलिश[3] शब्द का प्रयोग किया है। वर्ड्सवर्थ तथा शेली के समुचित पद्यों को समुद्धृत कर उनमें भारतीय दृष्टि से रस की स्थिति का निरूपण किया है। आज से सौ वर्ष से भी पहले प्रकाशित यह अंग्रेजी अनुवाद आज भी उपादेय तथा संग्रहणीय है। कलकत्ते की एशियाटिक सोसाइटी ने १८६५ ई० में अपनी ग्रन्थमाला में इसे प्रकाशित किया था। मोतीलाल बनारसीदास ने इसी का पुनर्मुद्रण १९५८ ई० में किया जो आज अप्राप्य हो गया है।

श्री प्रमदादासजी की अगाध शिवभक्ति का पता काश्मीर के माहेश्वराचार्य **श्री उत्पलाचार्य** रचित **स्तोत्ररत्नावली** के प्रकाशन से चलता है। इस ग्रन्थ की

---

१. Flavour. २. Taste. ३. Relish.

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हस्तलिखित प्रति बड़े परिश्रम तथा अनुसन्धान से उन्होंने काश्मीर में ढूँढ़ निकाली थी। इस कार्य में उन्हें काश्मीरनरेश के प्रधानमन्त्री पण्डित दयाकृष्ण कौल की सहायता से समुचित हस्तलेख प्राप्त हुआ था। इसका प्रकाशन चौखम्भा ग्रन्थमाला (ग्रन्थ संख्या १५) से १९०२ ई० में हुआ। मुद्रण आरम्भ होने के कुछ ही दिनों बाद लगभग १६०१ ई० में प्रमदादासजी दिवंगत हो गए। फलतः उन्हीं के सुयोग्य पुत्र बाबू कालीचरण मित्र ने पिता के द्वारा आरब्ध कार्य को सुचारु रूप से समाप्त किया। इस स्तोत्रावली में प्रत्यभिज्ञा शैवदर्शन के मन्तव्यों का सरस प्रकाशन है। मम्मट के द्वारा उदाहृत यह सुभग पद्य उत्पलाचार्य का ही है—

कण्ठकोणविनिविष्टमीश ! ते कालकूटमपि मे महामृतम्।
अप्युपात्तममृतं भवद्वपुर्भेदवृत्ति यदि मे न रोचते॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९

पण्डित रामावतार शर्मा

(आस्पद--पाण्डेय; उपाधि--महामहोपाध्याय)

महामहोपाध्याय विद्वत्तल्लज पण्डित रामावतार शर्मा अपनी लोकातीत वैदुषी, सुमधुर काव्य-प्रतिभा तथा स्वच्छन्द विचारणा के कारण काशी की विद्वन्मण्डली में एक स्पृहणीय स्थान के अधिकारी थे। इनकी कीर्ति देश-देशान्तर में व्याप्त थी, परन्तु इनकी जीवनलीला तीन स्थानों में ही सिमट कर विद्यमान रही--छपरा, काशी तथा पटना। छपरा इनका जन्मस्थान था। काशी इनकी अध्ययन स्थली थी और पटना इनका कार्यक्षेत्र था। सुयोग्य वंशवद ब्राह्मण के समान अध्ययन-अध्यापन, मनन-चिन्तन तथा लेखन-प्रकाशन इनके जीवन का मुख्य कार्य था। तथ्य तो यह है कि ये द्विकर्मा ब्राह्मण थे। अध्ययन तथा अध्यापन इन्हीं दो कर्मों में इनका षट्कर्म ब्राह्मणत्व सीमित था, परन्तु इन दो कर्मों की जितनी निष्ठापूर्वक उपासना इन्होंने की, वह नितान्त श्लाघनीय तथा अनुकरणीय है।

जन्म

छपरा के ही नबीगंज मुहल्ले में (जिसका संस्कृत नाम उन्होंने 'नवकुञ्ज' रखा था) १९३१ वि० फाल्गुन शुक्ल चतुर्थी (१८७७ ईस्वी के ६ मार्च को) उनका जन्म हुआ था। पिता का नाम था देवनारायण शर्मा जिनका सादर समुल्लेख इन्होंने अपनी रचनाओं में बहुशः किया है। आरम्भिक शिक्षा छपरे में ही हुई। छपरा जिला स्कूल के संस्कृताध्यापक **पण्डित रामवर ओझा** इनके प्रथम गुरु थे। ओझाजी प्रख्यात वैयाकरण थे। उनसे व्याकरण की शिक्षा प्राप्त कर शर्माजी ने काशी के विश्रुत विद्वान् म० म० पं० गंगाधर शास्त्रीजी के चरणों में बैठ कर अन्य शास्त्रों का, विशेषतः साहित्यशास्त्र का, विधिवत् अध्ययन किया तथा गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज से साहित्याचार्य की उपाधि प्राप्त की। साथ ही साथ अंग्रेजी का भी प्राइवेट रूप से अध्ययन करते रहे और हाई स्कूल से लेकर एम० ए० तक सब परीक्षाएं प्राइवेट छात्र के रूप में ही इन्होंने उत्तीर्ण कीं। तीव्रबुद्धि होने से छात्रावस्था में ही ललित कविता की आराधना सुचारु रूप से करते थे। अंग्रेजी की सब परीक्षाओं को प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करना इनके बायें हाथ का खेल था। एम० ए० होने के बाद छपरा के एक स्कूल में अध्यापक हो गए और वहीं इन्होंने भारत के भावी प्रथम राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्रप्रसादजी को पढ़ाया था जिसका स्मरण वे बड़ी श्रद्धा से किया करते थे। सन् १९०२ ई० के आसपास ये काशी में नये स्थापित सेन्ट्रल हिन्दू कालेज में संस्कृत के व्याख्याता नियुक्त हुए। कई वर्षों तक इस पद पर रहे। अनन्तर १९०७-८ ईस्वी में ये कलकत्ता विश्वविद्यालय में श्रीवसुगोपाल मल्लिक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याख्याता के पद पर नियुक्त हुए और वेदान्त के ऊपर इनके व्याख्यान हुए जो 'वेदान्तिजम' के नाम से ग्रन्थरूप में प्रकाशित हैं (१९०९ ई०)। व्याख्याता का कार्यकाल समाप्त होने पर ये पटना विश्वविद्यालय में संस्कृत के अध्यापक नियुक्त हुए। वहीं पर रह कर इन्होंने अध्यापन कार्य यावज्जीवन किया। केवल तीन वर्षों के लिए (१९१६–१९२२ ई०) महामना मालवीयजो ने संस्कृत महाविद्यालय के सुचारु संचालन तथा व्यवस्थापन के लिए शर्माजी की सेवाएँ हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए बिहार सरकार से माँग ली थीं। फलतः शर्माजो इन वर्षों में काशी में ही रहते थे। ये संस्कृत महाविद्यालय के अध्यक्ष होने के साथ ही साथ आर्ट्स कालेज में संस्कृत विभाग में एम० ए० के छात्रों को भी वेद, दर्शन तथा साहित्य आदि विषयों को पढ़ाया करते थे। इसी समय लेखक को इनके शिष्य होने का सुयोग मिला था। १९२२ ई० में ये पटना लौट गये और वहीं १९२९ ई० में इनका देहावसान हो गया। उस समय इनको आयु केवल ५२ वर्ष २७ दिन की थी। उन्हीं दिनों इन्हें 'महामहोपाध्याय' का सम्मान भी प्राप्त हुआ था।

अद्भुत स्मरणशक्ति

पं० रामावतारजी की स्मरण-शक्ति अद्भुत तथा अलौकिक थी। एक बार जो वस्तु इन्होंने संस्कृत अथवा अंग्रेजी में पढ़ ली वह इनके स्मृतिपटल पर इतनी दृढ़ता से अंकित हो जाती थी कि बरसों बाद ये उसे झट से अक्षरशः कह-डालते थे। लेखक को इस तथ्य का अनुभव उनके साथ सम्पर्क में आने पर अनेक बार हुआ था। 'हरविजय' संस्कृत का एक बड़ा प्रौढ़, प्राञ्जल तथा विशाल महाकाव्य है, परन्तु लोकप्रिय न होने से उससे परिचय पाना साधारण संस्कृतज्ञों के बूते की बात नहीं है। उसी काव्य का अत्यन्त रसपेशल अंश पण्डितजी ने अपनी कापी में एम० ए० की छात्रावस्था में ही लिख डाला था। वह अंश पण्डित जी ने मुझे पढ़ने को दिया। पण्डितजी फाउन्टेनपेन से लिखते थे और उनके अक्षर बड़े सुडौल परन्तु बहुत छोटे होते थे। पढ़ते समय मैं स्थान-स्थान पर रुक जाता था, परन्तु पण्डितजी बिना रोक-टोक उसे कहते ही चले जाते थे। जब मैंने चकित होकर पूछा कि कितनी बार के पढ़ने से ये श्लोक आपकी स्मृति में अंकित हुए हैं, तब शर्माजी ने कहा कि एम० ए० की तैयारी करते समय आज से बीसों साल पहले, अत्यन्त सुन्दर होने के कारण मैंने इन्हें लिख रखा, पीछे इन्हें पढ़ने-पढाने का अवसर ही नहीं मिला। परन्तु तभी से ये मुझे अक्षरशः याद हैं। संस्कृत काव्यों तक ही यह शक्ति सीमित नहीं थी, अंग्रेजी के शब्दों की भी उनकी स्मृति विलक्षण थी। इन्हें चैम्बर्स अंग्रेजी डिक्शनरी पूरी की पूरी कण्ठस्थ थी और इस अंग्रेजी कोश की सहायता से इन्होंने शेक्सपियर के समग्र नाटकों का भी अध्ययन इन्ट्रेन्स पास होने के बाद ही ग्रीष्मावकाश में कर डाला था। ये स्वयं स्वीकार करते थे कि इस अध्ययन का तात्पर्य लगाना उचित न होगा कि इस महान् नाटककार के समग्र नाटकों को मैंने विधिवत् समझ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया था, परन्तु मैं शेक्सपियर के विषय में अंग्रेजी के अधिकांश अध्यापकों से अधिक जानता था जो इनके नाटकों के नाम तथा संख्या से भी पूर्णतया परिचय नहीं रखते थे।

आयुर्वेद की औषधियों से भी ये विशेष परिचय रखते थे। आयुर्वेद के निघण्टुओं का भी इन्होंने विशेष परिशीलन किया था, क्योंकि इनकी जानकारी कोशकार्य के लिए अनिवार्य थी। विभिन्न ओषधियों के गुणदोषों का परिशीलन कर ये चिकित्सकों को अपने उत्तर से चमत्कृत किया करते थे। ये कहते थे कि खजुली की दवा चकवड़ का होना उसके नाम से ही सिद्ध होता है। खजुली को अंग्रेजी में 'रिंगवर्म' (अँगूठी की तरह होने वाला रोग) कहते हैं और चकवड़ भी चक्राकार होता है। अतः उसका खजुली की औषधि होना स्वभाव-सिद्ध है। निष्कर्ष यह है कि औषधियों के नाम का अनुशीलन कर ये उनके द्वारा चिकित्स्य रोगों का अनुमान स्वतः लगा लेते थे। शर्माजी की यह विशिष्टता सचमुच चमत्कारजनक मानी जानी चाहिए।

पं० रामावतार जी को संस्कृत के काव्य प्रायः कण्ठस्थ थे। इनकी अद्भुत स्मरण-शक्ति का एक उदाहरण देना यहाँ अनुचित न होगा। एक बार हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रो० वाइसचान्सलर आचार्य ध्रुवजी ने—जो संस्कृत विभाग के अध्यक्ष भी थे—पंडित जी को संस्कृत एम० ए० का पाठ्यक्रम बनाने के लिए बुलाया। परन्तु जब यह कार्य प्रारम्भ करना था उस समय केन्द्रीय पुस्तकालय बन्द हो चुका था। अतः ध्रुव जी ने इस कार्य को कल के लिए स्थगित करने की इच्छा प्रकट की। परन्तु रामावतारजी ने कहा कि पुस्तकालय बन्द होने से कोई हानि नहीं होगी। इसके पश्चात् इन्होंने अपनी स्मरणशक्ति से वैदिक तथा लौकिक संस्कृत के काव्य और नाटकों के विभिन्न सर्गों तथा अंकों के महत्त्वपूर्ण अंशों को उद्धृत करते हुए उसे पाठ्यक्रम के लिए निर्धारित कर लिया। आचार्य ध्रुव शर्माजी की अलौकिक स्मरणशक्ति को देखकर आश्चर्य-चकित हो गये और कहा कि शर्माजी आपकी स्मृति-शक्ति विलक्षण है। इस पर शर्माजी ने मुस्कराते हुए कहा कि ध्रुवजी, आप ने मेरे गुरु जी को नहीं देखा था, अन्यथा आप उनकी स्मरण शक्ति के सामने मेरी इतनी प्रशंसा नहीं करते।

शर्मा जी श्रुतिधर थे। अर्थात् ये एक बार जिस श्लोक को सुन या पढ़ लेते थे वह इनकी स्मृति के कोष में सदा के लिए सुरक्षित हो जाता था। क्या संस्कृत और क्या अंग्रेजी भाषा, शर्मा जी की स्मरण शक्ति का जादू सब पर समान रूप से चलता था। पं० गौरीनन्दन उपाध्याय ने अपने एक संस्मरण में लिखा है कि शर्मा जी, जो उनके बहनोई लगते थे, एक दिन उनके घर आये और अंग्रेजी 'लीडर' पत्र का सम्पादकीय पढ़ने लगे जो प्रसिद्ध अंग्रेजी-वेत्ता स्वर्गीय सी० वाई० चिन्तामणि का लिखा हुआ था। कुछ काल के पश्चात् उपाध्याय जी की बहिन ने शर्मा जी से पूछा कि आज क्या समाचार है? इस पर शर्मा जी ने "सम्पादकीय" भाग का अंश शुरू से अंग्रेजी में सुनाना प्रारम्भ किया और लगभग आधा लेख अक्षरशः सुना दिया। इनकी इस स्मरण-शक्ति को देखकर सभी चकित हो गये। चिन्तामणि के कठिन सम्पादकीय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंग्रेजी के लेख को केवल एक बार पढ़कर उसे पुनः अक्षरशः उद्धृत कर देना शर्माजी की अप्रतिम स्मृति का चमत्कार है।

शब्द-निर्माण-शक्ति

पण्डित रामावतार शर्मा में शब्दसर्जन की अद्भुत शक्ति थी। वे अंग्रेजी शब्दों का संस्कृतीकरण इतनी सुगमता से तथा शीघ्रता से करते थे कि सुनने वालों को आश्चर्य-चकित हो जाना पड़ता था। संस्कृत शब्दों के अन्तरंग से उनका परिचय बड़ा ही सांगोपांग था। उस दिन उन्होंने अपने ज्वराक्रान्त सेवक के होमियोपैथिक चिकित्सक को होमियो दवाओं का संस्कृत नाम सुनाकर अचंभित कर दिया था। नौकर ज्वर से पीड़ित था। डाक्टर साहब ने 'एकोनाइट' नामक दवा उसे पीड़ा निवृत्ति के लिए दी। प्राचीन औषधियों की प्रसंगतः चर्चा छिड़ जाने पर शर्मा जी ने तुरन्त कह डाला कि संस्कृत ग्रन्थों में आपकी दवा का उल्लेख मिलता है—**'अकुनीतं ज्वरे दद्यात् नक्षं दद्याद् विरोचने।'** होमियो डाक्टर ने जब यह वाक्य सुना जिसमें 'अकोनाइट' का उल्लेख 'अकुनीत' नाम्ना तथा 'नक्स' का 'नक्ष' रूप में था, तब वे चकित हो गये और कह उठे कि पण्डित जी जब आप वर्तमान हैं, तब संस्कृत में सब कुछ है।

उनके प्रत्युपन्नमतित्व का दृष्टान्त उनके ही शिष्य ने एक संस्मरण में दिया है। पटना कालेज में पण्डित जी पढ़ा रहे थे। गरमी बड़ी तेज थी। उस समय बिजली का आगमन नहीं हुआ था। गरमी के निवारण के लिए झालरीदार पंखा ही झला जाता था और उसे बरामदे में बैठकर नौकर खींचकर चलाया करता था। उस दिन नौकर पंखा चला रहा था जरूर, परन्तु बीच-बीच में निद्राभिभूत होने से वह ठीक-ठीक काम नहीं कर रहा था। गर्मी से तंग आकर विद्यार्थी उसे डाँट-डपट रहे थे। शर्मा जी ने देखा कि पढ़ाई में व्याघात हो रहा है। झट से उन्होंने कहा – जाने दो उसे। वह बड़ा स्टुपिड (मूर्ख) है। बरामदे से उसी समय कालेज के अंग्रेज प्रिन्सिपल साहब जा रहे थे। उनके कानों में जब ये शब्द पड़े, तब वे कक्षा में चले आये, अभ्यर्थना में छात्र लोग उठ खड़े हुए। वस्तुस्थिति से परिचय पाकर उन्होंने छात्रों को शान्त किया और कमरे से बाहर जाते समय उन्होंने विनोद में पण्डित जी से पूछ दिया कि संस्कृत के पण्डित होकर आपने अंग्रेजी के 'स्टुपिड (stupid) शब्द का कैसे प्रयोग कर दिया। पण्डित जी ने तत्काल उत्तर दिया कि प्रयुक्त शब्द संस्कृत का है, अंग्रेजी का नहीं। शब्द है 'इष्टपिट्' जिसका व्युत्पत्तिजन्य अर्थ है 'इष्टं पिनष्टीति' अर्थात् जो इष्ट को पीस दे; मनचाही बात को विनष्ट कर दे, अर्थात् जड़-मूर्ख। प्रिन्सिपल महोदय जब इस अर्थ से अवगत हुए, तब पण्डित जी के इस असाधारण शब्द-चमत्कार पर आश्चर्य-चकित होकर चले गये।

संस्कृत शब्दों का उनका ज्ञान अगाध था, तलस्पर्शी था। अपने 'संस्कृतवाङ्मयार्णव' के निर्माण के लिए उन्होंने यावत् उपलब्ध कोशग्रन्थों का अध्ययन-अनुशीलन इतनी दक्षता से किया था कि समस्त शब्द उनके सामने नाचते रहते थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शर्माजी नये शब्दों का निर्माण करने में—विशेषकर अंग्रेजी के शब्दों का संस्कृत रूपान्तर गढ़ने में—बड़े ही सिद्धहस्त थे। 'स्टुपिड' शब्द की चर्चा पहले की जा चुकी है। वे व्यक्तिगत तथा भौगोलिक नामों के संस्कृतीकरण में बड़े ही दक्ष थे। झट से किसी भी व्यक्ति, नगर या देश परक नाम का संस्कृत रूप दे देना उनके बायें हाथ का खेल था। अपने विस्तृत भाषाज्ञान के कारण वे इस काम को बड़ी आसानी से किया करते थे। नीचे कुछ भौगोलिक तथा व्यक्तिगत नाम दिये जाते हैं जिनका संस्कृतीकरण उन्होंने कितना सटीक किया है :

आरब्य—अरेबिया	सुक्रतु—साक्रेटीज (सुकरात)
औष्ट्रालय—आस्ट्रेलिया	अरिष्टोत्तर—अरिस्टाटल
दानव—डेन्यूब	नन्दन—लण्डन
शर्मण्य—जर्मनी	नवार्क—न्यूयार्क
अलक्षेन्द्र—अलेकजेण्डर	उरगजिह्व—औरंगजेब

इससे शर्माजी की शब्द-निर्माण-शक्ति का सहज में ही अनुमान किया जा सकता है। इस प्रसंग में एक विशिष्ट घटना लेखक के स्मृति के पटल पर आ रही है। शर्माजी हिन्दू विश्वविद्यालय में वाक् परीक्षा लेने के लिए पधारे थे। लौटते समय मित्रवर पण्डित बटुकनाथ शर्माजी के कालभैरव वाले आवास पर अकस्मात् पहुँच गये। संस्कृत शिक्षा की अभिवृद्धि की चर्चा के अवसर पर लेखक ने शर्माजी से पूछा—पण्डितजी, संस्कृत की पटना में आजकल क्या उन्नति हो रही है? उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया—उस प्रान्त में संस्कृत की अभिवृद्धि की बात सोचना भी व्यर्थ है जहाँ का उच्चतम शासनाधिकारी 'गोबरनर' है। उत्तर सुनकर लेखक के अधरों पर हास्य बिखर उठा। पण्डित जी भाँप गये कि उनके 'गोबरनर' की समञ्जसता पर सन्देह किया जा रहा है। तपाक से उन्होंने कहा—इस संस्कृतीकरण में सन्देह का स्थान कहाँ? अंग्रेजी के गवर्नर (governor) शब्द में व कार (v) की सत्ता अवश्य है, परन्तु मूलतः वह वकार न होकर बकार है। इसीलिए तो उनका विशेषण पद बनता है गुबरनटोरियल (gubernatorial) जिसमें बकार की सत्ता नितान्त प्रत्यक्ष है। इस उत्तर से हमलोग आश्चर्य से अवाक् रह गये। पण्डित जी ने हँसी में ही ऐसा समुचित शब्द गढ़कर रख दिया, जिसका औचित्य व्यावहारिक रीत्या ही नहीं, भाषाशास्त्रीय दृष्टया भी यथार्थ है।

शर्माजी की अलौकिकता

शर्माजी अलौकिक व्यक्ति थे। अतः इनके कुछ कार्य सामान्य लोगों की पद्धति से हटकर हुआ करते थे। ऐसा कहा जा सकता है कि अलोकसामान्य कार्य करने में ही इन्हें आनन्द आता था। यहाँ केवल दो-तीन घटनाओं का उल्लेख ही पर्याप्त होगा।

(१) शर्माजी सन् १९२१ ई० में हिन्दू विश्वविद्यालय के अन्तर्गत संस्कृत महाविद्यालय के प्रधानाचार्य थे। इसके साथ ही साथ वे आर्ट्स कालेज के एम० ए० (संस्कृत) के छात्रों का भी अध्यापन किया करते थे। उन दिनों दोनों विद्यालयों में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कक्षाएँ प्रातःकाल में ही लगती थीं। अतः कोई असुविधा नहीं होती थी। शर्मा जी घर से प्रातः भ्रमण के लिए निकलते थे और इसके पश्चात् सीधे कालेज चले आते थे। एक बार कालेज के समय में बाहर के मैदान में बैठकर वे अपनी हजामत भी बनवाते जाते थे और इसके साथ ही एम० ए० के छात्रों को "शारीरक भाष्य" जैसे उच्चकोटि के कठिन वेदान्त-ग्रन्थ का अध्यापन भी करते जाते थे। शर्मा जी को इस प्रकार के विरुद्ध तथा विपरीत कार्यों को करने में न तो कोई संकोच मालूम होता था और न कोई आयास। हिन्दू विश्वविद्यालय के तत्कालीन प्रो-वाइस-चान्सलर आचार्य ए० बी० ध्रुव—जो स्वयं संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे—ऊपरी मंजिल से इस दृश्य को देख रहे थे। इस विसंगति को देखकर वे अवाक् रह गये और उनके मुँह से अनायास निकल पड़ा—Panditji can do anything (पं० जी कुछ भी कर सकते हैं।)

(२) शर्मा जी की **वेश-भूषा** भी बड़ी विलक्षण थी। अंग्रेजों का हैट उन्हें बड़ा प्रिय था। वे कहा करते थे कि हैट अत्यन्त उपयोगी वस्तु है। इसका उपयोग दो कार्यों को सिद्ध करता है—सिर का आवरण (टोपी का) तथा धूप से सिर की रक्षा (छाते का काम)। घुटनों तक मोटे खद्दर की धोती, कमर तक मोटे कपड़े का कुर्ता तथा छह फुट लम्बा मिर्जापुरी डंडा इनके हाथ को सुशोभित करता था। साथ ही साथ इनके सिर पर हैट विराजता रहता था। यह शर्माजी की विलक्षण वेशभूषा उनकी अलौकिक सूझबूझ की द्योतिका थी।

(३) शर्माजी की एक अन्य विलक्षणता की चर्चा करना उचित प्रतीत होता है।

सन् १९२२ ई० की बात होगी। शर्माजी उन दिनों काशी में संकट मोचन के पास रहा करते थे। उन्होंने अपने बबुआ (अपने पुत्र नलिनविलोचन शर्मा) के लिए एक टट्टू खरीद रखा था जिस पर उसे बैठाकर सायंकाल गंगा की ओर घुमाने ले जाया करते थे। उस दिन का एक अपूर्व दृश्य था। टट्टू के ऊपर काठी बाँधी गई थी जिसमें अपने बबुआ को बैठा रखा था। उन्होंने उस टट्टू की लगाम को अपनी कमर में बांध लिया था और टट्टू अपनी चाल से धीमे-धीमे चल रहा था। शर्माजी ने घुटनों तक धोती के ऊपर नियमानुसार हैट लगा रखा था। वे बायें हाथ में कागज और दाहिने में फाउन्टेनपेन लेकर उससे कुछ लिखते हुए अपनी मस्ती में चले जा रहे थे। पण्डितजी लिखते हुए आगे-आगे और टट्टू 'बबुआ' को अपनी पीठ पर बैठाये पीछे-पीछे चल रहा था। यह एक गजब का दृश्य था। मैंने विस्मय-विस्फारित आँखों से इस अलौकिक दृश्य को देखा और देखकर अवाक् रह गया।

(४) शास्त्र के अनुयायी पण्डित लोग प्रायः शनिवार को क्षौर कर्म करना निषिद्ध मानते हैं। परन्तु शर्माजी क्षौर के सम्बन्ध में किसी भी विधि-निषेध को नहीं मानते थे। एक समय ठीक शनिवार के ही दिन उन्होंने अपने सिर के बालों का मुण्डन करवाया था जो प्रायः किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् अशौच में करवाया जाता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। ठीक उसी दिन सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डा० काशीप्रसाद जायसवाल शर्माजी के घर उनसे मिलने के लिये आए। शर्माजी को शनिवार के दिन मुण्डित मुण्ड देखकर अनिष्ट की आशंका से, घबरा कर उन्होंने मुण्डन का कारण पूछा। शर्माजी ने उन्हें बतलाया कि किसी के जन्म तथा मृत्यु के समय मुण्डन कराया जाता है। आज मेरे ज्ञान का जन्म और अज्ञान की मृत्यु हुई है। इसीलिए सिर का मुण्डन कराया है।

शर्माजी किसी अंग्रेज अधिकारी अथवा व्यक्ति से हाथ मिलाने पर पवित्रता को ध्यान में रखकर नियमतः अपने हाथों को मिट्टी से मल कर धोया करते थे। यह भी उनकी विलक्षणता ही थी। शर्माजी लोकोत्तर पुरुष थे। अतः उन्हें सामान्य जन के मार्ग पर चलना उचित नहीं प्रतीत होता था। कुछ अलौकिक कार्य करने की यह अन्तर्भावना ही उन्हें इन कार्यों में नियुक्त करती थी। शर्माजी इस सिद्धान्त की नित्य ही अवहेलना किया करते थे :—

"यद्यपि सिद्धं लोकविरुद्धं
नाचरणीयं नाचरणीयम् ॥"

पण्डित रामावतार जी के विषय में पण्डितराज जगन्नाथ की यह उक्ति सर्वात्मना चरितार्थ होती है—

सर्वं पण्डितराजराजितिलकेनाकारि लोकाद्भुतम् ॥

राष्ट्रप्रेम

पं० रामावतार शर्मा भारतीय वेश, भारतीय भाषा, भारतीय संस्कृति के साथ भारतीय राष्ट्र के भी परम पुजारी थे। उन्हें जिस प्रकार अपनी भाषा और संस्कृति से प्रेम था उसी प्रकार वे राष्ट्र के भी उपासक थे। वे भारत की परतंत्रता को देखकर बहुत दुःखी रहते थे और अपने देश को अंग्रेजी शासन के बन्धन से मुक्त देखना चाहते थे। शर्माजी ने इसीलिए भारतीयों के यौवन को ललकारा है तथा उन्हें देश की स्वतंत्रता के लिए मर-मिटने की चुनौती दी है। उनकी निम्नांकित कविता केवल उद्बोधन गीत ही नहीं है बल्कि बलिदान चढ़ाने का मंत्र भी है—

"हे भाइयो ! सोओ न अब, तैयार हो तैयार हो।
सोये बहुत जागो उठो, जिससे कि बेड़ा पार हो ॥"

भारतीयों के हृदय में अतीत के गौरव को जगाते हुए शर्माजी ने हमारा अपने महिमामय इतिहास की ओर ध्यान दिलाया है। शर्मा जी की वाणी में नवजीवन का स्पन्दन, विरोध का गर्जन, तथा भावी युग का दर्शन पाया जाता है। उनका विश्वास था कि इसी भारत में सर्वप्रथम सभ्यता और संस्कृति का विकास हुआ था। कवीन्द्र रवीन्द्र की वाणी 'प्रथम प्रभात उदय तब गगने' की भाँति भारतीय राष्ट्रीयता का यह अग्रदूत गा उठता है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"प्रथम ज्ञान रवि उदित गगन तुव।
प्रथम प्रकाशित दिव्य भवन तुव।
प्रथम जगे जग माँझ सुवन तुव।
जयति जगत मंगल करणी,
जय, जय, जय, जय, भारत जननी॥"

अतः वास्तव में शर्माजी को भारतीय राष्ट्रीयता का 'प्राफेट' कहा जा सकता है।

सामाजिक विचार

पं० रामावतार शर्मा हिन्दू-समाज में प्रचलित बुराइयों के कट्टर विरोधी थे। विशेषकर तिलक-दहेज की प्रथा, विवाह में अत्यधिक अपव्यय, बारातियों की अधिक संख्या, विवाह में गाना-बजाना आदि कुरीतियों के ये प्रबल शत्रु थे। इन्होंने केवल मनसा और वाचा ही नहीं बल्कि कर्मणा भी इनका प्रबल विरोध किया था। ये विवाह में बारातियों के अधिक संख्या में जाने के नितान्त विरुद्ध थे। इनकी एक पुत्री ने अपने संस्मरण में लिखा है कि पिताजी ने मेरे विवाह में केवल पाँच व्यक्तियों को ही बारात में आने के लिए कहा था। मेरे ससुर बहुत डरते-डरते केवल सात व्यक्तियों को बारात में ले आये थे। इसी प्रकार विवाह में बाजा-गाजा तथा नाच-गाना में व्यर्थ का अपव्यय करना इन्हें बिलकुल ही पसन्द नहीं था। अतः इन्होंने जेठी पुत्री के विवाह में कोई बाजा न तो स्वयं किया था और न वर पक्ष वालों को बाजा लाने को कहा था। फिर भला किसकी हिम्मत जो बाजा ले आता? परन्तु शर्माजी के शिष्यों ने देखा कि बिना बाजा के विवाह का उत्सव सूना लगेगा, अतः उन्होंने चुपके से एक बाजे का प्रबन्ध कर दिया। सामाजिक बुराइयों के शर्मा जी भयंकर शत्रु थे। परन्तु उनका यह विरोध केवल वाचिक ही नहीं, व्यावहारिक भी होता था।

शर्माजी का साहित्य

पं० रामावतार शर्मा राष्ट्रीय विचारधारा से पूर्णतः प्रभावित थे। अतः ये देव-भाषा तथा राष्ट्रभाषा के भाण्डार को भरना चाहते थे। इनका विचार था कि संस्कृत में जिन विषयों के ग्रन्थों का अभाव है उनकी पूर्ति अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं के ग्रन्थों का अनुवाद करके करनी चाहिए। इसी राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर इन्होंने केवल संस्कृत तथा हिन्दी में ही अपने ग्रन्थों की रचना की, यद्यपि शर्मा जी का अंग्रेजी भाषा पर भी पूर्ण अधिकार था, तथापि इन्होंने एक-दो ग्रन्थों को छोड़कर किसी भी महनीय ग्रन्थ की रचना अंग्रेजी में नहीं की। नीचे शर्मा जी के ग्रन्थों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

(क) संस्कृत ग्रन्थ

(१) वाङ्मयार्णव[१]—यह शर्माजी का सबसे प्रसिद्ध तथा विद्वत्तापूर्ण कोषग्रन्थ है। शर्मा जी ने इसके प्रणयन में बीसियों वर्षों तक घनघोर परिश्रम किया था परन्तु

१. ज्ञानमण्डल लिमिटेड, कबीरचौरा, वाराणसी द्वारा सन् १९६७ ई० में प्रकाशित।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह उनके जीवन काल में प्रकाशित नहीं हो सका। उनकी मृत्यु के लगभग ४० वर्षों के पश्चात् यह ग्रन्थ प्रकाश में आया।

यह संस्कृत का आधुनिकतम नवीन महाकोष है जो प्राचीन परम्परा के अनुसार अमरकोष की भाँति पद्यबद्ध है। परन्तु इसकी विशेषता यह है कि यह आधुनिक कोषों की भाँति अकारादि क्रम से लिखा गया है। शब्दों का अर्थ देने के अतिरिक्त शर्माजी ने विभिन्न शब्दों के अर्थों के सूक्ष्म पार्थक्य को भी स्पष्ट कर दिया है। इसके साथ ही प्रत्येक शब्द का लिंग भी दिया गया है। इसमें वैदिक तथा लौकिक संस्कृत-दोनों प्रकार के शब्दों का समावेश किया गया है। इस प्रकार अनेक दृष्टियों से यह कोष शब्दों का समुद्र ही नहीं, बल्कि महासमुद्र है।[1]

(२) **मारुतिशतक**—हनुमान् की स्तुति में स्रग्धरा छन्द में लिखा गया यह काव्यरत्न एक स्तोत्र ग्रन्थ है। शर्माजी ने अपनी छात्रावस्था में केवल १५ वर्ष के वय में इसका निर्माण किया था। अल्पवय में ऐसे प्रौढ काव्य का निर्माण लेखक की अलौकिक काव्य-प्रतिभा का द्योतक है।

(३) **मुद्गरदूत**—यह कालिदास द्वारा प्रवर्तित दूतकाव्य की परम्परा का अभिनव दूतकाव्य है। इसके तीन भाग है जिनमें पूर्वमुद्गर में ६४, मध्यमुद्गर में ३३ और उत्तर-मुद्गर में ५१ श्लोक हैं। इस प्रकार इस में कुल १४८ श्लोक हैं। यह मेघदूत के अनुसार मन्दाक्रान्ता वृत्त में लिखा गया है। इस काव्य में मूर्खदेव का बड़ा ही विचित्र वर्णन किया गया है। अतः हास्य रस ही इस काव्य का प्रधान रस है। इसमें हिन्दू समाज की बुराइयों पर मार्मिक चोट दी गई है। यदि इसे दूतकाव्य की पैरोडी कहा जाय तो अधिक अच्छा होगा।[2]

(४ **धीरनैषध**—नैषधीयचरित की कथा को लेकर शर्माजी ने इस नाटक की रचना की है। यह छात्रों के द्वारा अभिनय के लिए लिखा गया था और अनेक बार अभिनीत भी हुआ। इसमें कुल सात अंक हैं जिनमें नल तथा दमयन्ती की कथा बड़े ही सुन्दर रूप में कही गई है। नायक तथा नायिका का चरित्र-चित्रण बड़ी ही मार्मिक रीति से किया गया है।

(५) **प्रियदर्शिप्रशस्तयः**[3]—इसमें शर्माजी ने अशोक के जो प्रियदर्शी के नाम से प्रसिद्ध था— शिलालेखों का बड़ी योग्यता से सम्पादन किया है। शिलालेखों को मूल पालि-भाषा में देने के पश्चात् उनका संस्कृत रूप तथा अंग्रेजी में अनुवाद भी कर दिया गया है जिससे संस्कृत तथा अंग्रेजी दोनों प्रकार के विद्वान् इसे सरलता से समझ सकें।

---

१. इस कोष के विस्तृत विवेचन के लिए देखिए।
आचार्य बलदेव उपाध्याय—'वाङ्मयार्णव एक अभिनव कोश'।
रामावतार गाथा, पृ० १८६–१९४ (१६७८ ई०)

२. खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पटना द्वारा सन् १६१४ ई० में प्रकाशित।

३. भारत मिहिर प्रेस, २५ राय बगान स्ट्रीट, कलकत्ता से सन् १९१५ ई० मुद्रित।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६) **सदुक्तिकर्णामृतम्**[१]--श्रीधरदास द्वारा ११२७ शक सं० (= १२०५ ई०) में संकलित विशाल सूक्ति ग्रन्थ है जिसमें बंगाल के अनेक अज्ञात कवियों के मनोरम पद्यों का विधिवत् संकलन है। रामावत रजी ने इसका संस्करण एशिएटिक सोसाइटो की ग्रन्थमाला में सम्पादित किया था।

(७) **कल्पद्रुकोश**[२]--यह केशव द्वारा रचित एक प्राचीन कोशग्रन्थ है जिसका प्रकाशन तबतक नहीं हुआ था। पं० रामावतार शर्मा ने इस कोश का बड़ी ही विद्वत्ता के साथ सम्पादन किया है। इसके साथ ही इन्होंने इस ग्रन्थ की भूमिका में **कोशविद्या** का एक प्रामाणिक तथा विस्तृत इतिहास भी प्रस्तुत किया है जो अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण तथा प्रामाणिक है।

(८) **परमार्थदर्शनम्**[३]--यह शर्माजी का अत्यन्त मौलिक दर्शन ग्रन्थ है जो प्राचीन ग्रन्थों के अनुकरण पर सूत्रशैली में लिखा गया है। शर्माजी ने स्वयं इस ग्रन्थ पर 'वार्तिक' और 'अधिकरण' भी लिखे हैं। इतना ही नहीं, अपने दार्शनिक सिद्धान्त को सरल रीति से समझाने के लिए शर्माजी ने इस पर स्वयं भाष्य भी लिखा है। विद्वानों के मत से यह एक अपूर्व दार्शनिक ग्रन्थ है जिसे 'सप्तम दर्शन' की संज्ञा सामान्यतः दी जा सकती है। इसमें शर्माजी के मौलिक दार्शनिक विचारों का विवेचन पाया जाता है। इनके तत्त्वज्ञान-संबंधी विचारों से भले ही कोई सहमत न हो, परन्तु इस ग्रन्थ के निर्माण में शर्माजी की अद्भुत पैनी बुद्धि, प्रकाण्ड पाण्डित्य तथा तत्त्वभेदिनी प्रज्ञा को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

(९) **प्रकीर्णप्रबन्धाः**[४]--(क) साहित्य रत्नावली--शर्माजी ने अनेक निबन्धों की रचना संस्कृत में की है। उनके साहित्य-संबंधी निबन्ध 'साहित्य रत्नावली' के नाम से प्रकाशित हो चुके हैं जिसमें संस्कृत के महान् कवियों का वर्णन किया गया है।

(ख) **कला कौमुदी**[५]--यह शर्माजी के संस्कृत निबन्धों का संग्रह है जिसमें उनके विज्ञानविषयक विज्ञान-सम्बन्धी ज्ञान का स्पष्ट परिचय मिलता है।

(ख) **हिन्दी ग्रन्थ**

(१) **पाश्चात्य दर्शन**[६]--पं० रामावतार शर्मा ने सबसे पहले हिन्दी भाषा में पाश्चात्य तत्वज्ञान के संबंध में 'पाश्चात्य दर्शन' नामक ग्रन्थ लिख कर हिन्दी के भाण्डार को भरा। कुछ विद्वानों का तो यहाँ तक कहना है कि हिन्दी में ही नहीं बल्कि किसी भी भारतीय भाषा में इसके पहिले पश्चिमी दर्शन के संबंध में कोई पुस्तक नहीं

१. बंगाल एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता के लिए सम्पादित अधूरा ही रह गया।
२. गायकवाड ओरियण्टल सीरीज, बड़ौदा से प्रकाशित।
३. महामण्डल शास्त्र प्रकाशक समिति, काशी द्वारा सन् १९१३ ई० में प्रकाशित।
४. मिथिला विद्यापीठ संस्कृत शोध संस्थान, दरभंगा द्वारा सन् १९५६ ई० में प्रकाशित।
५. प्रकाशक --वही।
६. काशी नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी से प्रकाशित।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखी गई थी। अतः इस ग्रन्थ को हिन्दी का सर्वप्रथम दर्शनग्रन्थ होने का सौभाग्य प्राप्त है।

(२) **निबन्धावली**[1]—शर्माजी ने संस्कृत के अतिरिक्त हिन्दी भाषा में भी पचासों निबन्धों की रचना की है जिनका संग्रह बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना से प्रकाशित हो चुका है। इस निबन्ध-संग्रह में विभिन्न विषयों का शर्माजी ने अधिकार के साथ पांडित्यपूर्ण विवेचन किया है। लेखों के निम्नांकित शीर्षकों से ही उनके विषयों की विभिन्नता का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। जैसे—ज्योतिर्विद्या, भूगोलविद्या, भूगर्भविद्या, नरशास्त्र, पुराणतत्व, काना-वर्करीयं, पौरस्त्य और पाश्चात्य दर्शन। इस निबन्धावली में शर्माजी के ३७ निबन्धों का संकलन पाया जाता है।

(ग) **अंग्रेजी ग्रन्थ**

शर्मा जी ने अंग्रेजी में बहुत कम लिखा है। कलकत्ता विश्वविद्यालय में वेदान्त पर इन्होंने जो व्याख्यान दिये थे वे १) 'श्री गोपाल वसु मल्लिक **लेक्चर्स आन वेदान्तिजम**' के नाम से सन् १९०८ ई० में प्रकाशित हो चुके हैं। इस ग्रन्थ से शर्मा जी के दार्शनिक चिन्तन तथा तत्त्वज्ञान सम्बन्धो गंभीर विद्वत्ता का परिचय मिलता है। (२) इनका दूसरा अप्रकाशित ग्रन्थ 'फिलासफी आफ दि पुरानाज' है जिसमें पुराणों में उपलब्ध दर्शन का विवेचन है। (३) **कालिदासःहिज माइण्ड एण्ड आर्ट**—इस निबंध का प्रकाशन सन् १९०८ ई० में कलकत्ता से हुआ था। इस शोध प्रबन्ध में शर्मा जी ने महाकवि की कला पर पूर्णतया प्रकाश डाला है। (४) **ए थिसिस आन दि एज आफ कालिदास** नामक लेख में महाकवि कालिदास के समय-निरूपण का प्रयास किया गया है। (५) **संस्कृत लेक्सिकोग्राफी**—में संस्कृत साहित्य में उपलब्ध कोषविद्या का विवेचन है। इसके अतिरिक्त शर्माजी ने म० म० डा० पी० वी० काणे द्वारा लिखित 'संस्कृत पोइटिक्स' की आलोचना (रिव्यू) लिखी है, तथा संस्कृत सूक्तियों पर भी लिखा है जो अभी तक अप्रकाशित है।

इस प्रकार शर्मा जी ने अपनी विद्वत्ता के द्वारा संस्कृत तथा हिन्दी भाषा के भाण्डार को भर कर उन्हें समृद्ध बनाया है। इसमें सन्देह नहीं कि शर्माजी की प्रखर प्रतिभा का जो प्रसाद भारतवासियो को मिलना चाहिए था वह उनकी अल्पावस्था के कारण नहीं मिल सका; परन्तु जो कुछ भी मिल सका है वह किसी भी साहित्य के लिए गौरव की वस्तु है।

शर्माजी का तत्त्वज्ञान

पण्डित रामावतार शर्माजी के दो पृथक् रूप हमारे सामने अभिव्यक्त होते हैं। एक तो है उनका प्रचण्ड तार्किक रूप—ठनाठन तर्कों के ही आधार पर सिद्धान्त निरूपण करनेवाले स्वतन्त्र चिन्तक का दिव्य रूप, तो दूसरा है उनका प्रातिभ कवि-रूप—अलौकिक प्रतिभा के बल पर कविता की सद्यः रचना में निपुण काव्य-प्रणेता का

१. बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से सन् १९५४ ई० में प्रकाशित।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भव्यरूप। दोनों रूपों के लिए दो प्रकारों की और प्रायः विभिन्न प्रकारों की प्रज्ञा के उन्मीलन की आवश्यकता होती है। दर्शन-निर्माण के लिए अपेक्षित तीक्ष्ण बौद्धिक उन्मेष की तथा काव्य-प्रणयन के निमित्त अपेक्षित कोमल कल्पना एवं सहृदयता की आवश्यकता अनुभूत की जाती है। यदि प्रथम में बुद्धि-तत्त्व का प्राबल्य रहता है, तो दूसरे में हृदय-तत्त्व का उन्मीलन विद्यमान रहता है। ये दोनों आपस में विरोधी नहीं हैं, परन्तु इनका एकत्र मञ्जुल सामरस्य मिलना अपेक्षाकृत दुर्लभ होता है। शर्माजी में इन दोनों तत्त्वों का बड़ा ही घनिष्ठ तथा शाश्वतिक सामञ्जस्य उपस्थित रहा और यह उनका आदरणीय वैशिष्ट्य था जो दोनों प्रकार के विद्वानों को अपनी ओर आकृष्ट करता था। शास्त्रार्थ में अभिरुचि रखने वाले विद्वान् उनकी ओर स्वतः आकृष्ट रहते थे और काव्य के रसिक व्यक्ति भी उनकी रसपीयूष बरसाने वाली माधुर्य से सान्द्र स्निग्ध सूक्तियों को सुनने के लिए लालायित रहते थे और वे दोनों प्रकार के श्रोताओं का मनोरञ्जन ही नहीं, पर्याप्त मात्रा में ज्ञानवर्धन भी किया करते थे।

शास्त्रार्थ-प्रवीणता

पण्डित रामावतारजी शास्त्रार्थ करने में बड़ा रस लेते थे। उनके शास्त्रार्थ को सुनकर उनका स्वामीष्ट मत जानने की अभिलाषा मृगमरीचिका के समान ही प्रतीत होती है। यदि विपक्षी आस्तिक पक्ष लेकर शास्त्रार्थ करता, तो वे उसके पक्ष का खण्डन करने से कभी नहीं चूकते। यदि विपक्षी नास्तिक पक्ष का आश्रय लेकर अपनी युक्तियों को देता, तो वे उससे द्विगुणित प्रभावशाली युक्तियों के द्वारा उसके तर्क की धज्जियाँ उड़ा देने में कृतकार्य होते। ऐसी विषम स्थिति में उनका अपना मत क्या है? यह जानना टेढ़ी खीर ही समझिए। लेखक का अपना मत यह है कि इन खण्डनों के द्वारा शर्माजी के स्वाभिमत अभिप्राय का पता लगाया ही नहीं जा सकता। मैं तो उन्हें 'खण्डन रस रसिक' कहना तथ्य के अधिक समीप मानने के लिए तैयार हूँ। सत्य तो यह है कि पण्डितजी को खण्डन में रस आता था। प्रकृष्ट तार्किक बुद्धि से सम्पन्न शर्माजी विपक्षी के-- चाहे वह नास्तिक हो अथवा आस्तिक— तर्कों को अपनी प्रखर बुद्धि के द्वारा खण्ड-खण्ड कर देने में ही वास्तविक अभिरुचि रखते थे। लेखक ने उन्हें दोनों अवस्थाओं में तर्क-वितर्क करते स्वयं देखा है।

उस समय आर्यसमाज के उत्कर्ष का युग था। लोक तथा वेद, आचार तथा विचार के विषय में आये दिन स्थान-स्थान पर शास्त्रार्थ ठन जाया करते थे। इनमें पण्डित रामावतारजी प्रमुख भाग लिया करते थे। शास्त्रार्थ के पहले ही वे विपक्षी से पूछ लिया करते थे कि शास्त्रार्थ का आधार क्या होगा? युक्ति अथवा शास्त्र? तर्क अथवा आप्त वाक्य? एक आधार पर प्रस्तुत शास्त्रार्थ को दूसरे आधार की ओर जाने पर तुरन्त प्रतिरोध करते थे। साधारणतः होता है दोनों का मिश्रण; एक के अपर्याप्त होने पर दूसरे सहारे का आश्रयण। परन्तु वे इसके नितान्त विरोधी थे। तर्क तथा वेद—दोनों के वे उत्कृष्ट पण्डित थे। तार्किक बुद्धि के प्रेरणादायक, वे मनीषी तार्किक थे, तो वे वैदिक ऋचाओं को उद्धृत करने में नितान्त निष्णात वैदिक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। तभी ता एम० ए० परीक्षा के वैदिक प्रश्न के उत्तर में गिन कर इन्द्रविषयक एक सौ एक ऋचाओं को उद्धृत कर इन्होंने परीक्षक डा० थीबो साहब को आश्चर्य-चकित कर दिया था। थीबो को विश्वास ही नहीं होता था कि कोई भी छात्र इतनी ऋचाएँ अपनी स्मरण-शक्ति के सहारे उद्धृत करने की क्षमता रखता है। कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति द्वारा परीक्ष्य की लोकातीत मेधाशक्ति के परिचय देने पर ही उसे विश्वास जनमा और तब उसने लेख में पूरा सौ अंक देकर परीक्ष्य रामावतारजी को प्रथम कोटि में उत्तीर्ण कराया था। शर्माजी ने स्वयं यह घटना लेखक को बताई थी।

इतना ही नहीं, पण्डित जी वैदिक छन्दों में ऋचाएँ भी लिखने में पर्याप्त दक्ष थे। इसलिए शास्त्रार्थ की समस्या और भी जटिल हो जाया करती थी। १६२०-२१ ई० की घटना है। आर्यसमाज के वरिष्ठ नेता स्वामी श्रद्धानन्दजी स्वयं हिन्दू विश्वविद्यालय में शास्त्रार्थ के लिए पधारे थे। शास्त्रार्थ चलता था, परन्तु उनको मुँहतोड़ जवाब नहीं मिल पा रहा था। फलतः शास्त्रार्थ के अन्त होने में अनिवार्य विलम्ब लग रहा था। सभा के अध्यक्ष महाराजा दरभंगा ने अपने लोगों से कहा था कि लठ्ठवाले उन पण्डितजी को बुलाओ, तो फैसला जल्दी हो जाय। पण्डित रामावतारजी लट्ठ—मिर्जापुरी मोटा डंडा—साथ लेकर चलते थे। अतः उन्हीं की ओर संकेत था। पण्डितजी संकटमोचन के पास ही रहते थे। बुलाने के लिए कोई विद्वान् कार से भेजा गया। शास्त्रार्थ की बात सुनकर शर्माजी तुरन्त आये और रास्ते में ही एक चिट पर अपना मन्तव्य लिख दिया—"आज मेरे मौन का दिन है। बोलकर शास्त्रार्थ नहीं करूँगा। इस मन्त्र का पूरा संकेत बताने की कृपा करें। संकेत ठीक बता देने पर मैं पराजय मान लूंगा।" मन्त्र उस चिट पर लिख दिया। सभा में पहुँच कर वह चिट श्रद्धानन्द जी के सामने रख दी गयी। पण्डितजी इतना करके लौट आये।

श्रद्धानन्दजी ने उस मन्त्र का निर्देश क्रमशः सब वेदों में बताया। वेदों की सूचियाँ मँगायी गईं। तब कहीं भी वह ऋचा उपलब्ध नहीं हुई। उपलब्ध होती भी कैसे? वह वैदिक संहिताओं की ऋचा थोड़े ही थी। वह तो 'रामीया श्रुति' की ऋचा थी, पण्डित रामावतार जी के द्वारा सद्यः प्रणीता ऋचा। अगत्या स्वामी को हार माननी पड़ी। शास्त्रार्थ का सुखद परिणाम देखकर विश्वविद्यालयीय श्रोताओं को भी कम हर्ष नहीं हुआ। अब आप ही बताइये ऐसे प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति से मन्त्रोद्धरणपूर्वक शास्त्रार्थ हो ही कैसे सकता था? ऐसी प्रतिभा थी पण्डितवरेण्य रामावतार शर्माजी की।

तर्क-कुशलता

तर्क का कौशल तथा स्वतन्त्र चिन्तनधारा की अभिव्यक्ति के लिए शर्माजी का **'परमार्थदर्शन'** नामक नूतन दर्शन ही पर्याप्त परिचायक माना जा सकता है। इसका प्रकाशन १६१३ ईस्वी में **'परमार्थाधिकरणरत्नमाला'** नाम से किया गया। यह ग्रन्थ संस्कृत दर्शन की प्राचीन शैली का अक्षरशः आश्रय लेकर प्रणीत किया गया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके मूल की रचना ४४६ सूत्रों में की गई है जो प्राचीन सूत्रकारों का स्मरण दिलाती है। इसके ऊपर शर्माजी ने भाष्य, वार्तिक तथा अधिकरणों का प्रणयन कर ग्रन्थ को सर्वाङ्गपूर्ण दार्शनिक ग्रन्थ का महनीय स्वरूप प्रदान किया है। परमार्थदर्शन में पद्यबद्ध ८२६ वार्तिकों की रचना रचयिता में कुमारिलभट्ट की श्लोकवार्तिक वाली शैली को प्रकाशित करती है। प्राचीन काल में सूत्र, वार्तिक तथा भाष्य की रचना विभिन्न कालों में भिन्न-भिन्न लेखकों द्वारा की जाती थी, परन्तु यहाँ तो एक ही अभिन्न व्यक्ति ने इन सबका प्रणयन एक ही काल में सम्पन्न कर एक अभिनव रचना कौशल का पर्याप्त निदर्शन किया है। फलतः यह सर्वाङ्गपूर्ण दार्शनिक पद्धति का द्योतक बड़ा ही श्लाघनीय एवं आदरणीय ग्रन्थ है।

इस ग्रन्थ से पूर्व ही १९०८ ई० में पण्डित रामावतार जी कलकत्ता विश्वविद्यालय में श्री गोपाल वसु मल्लिक व्याख्याता नियुक्त किये गये और इन व्याख्यानों का संग्रह ग्रन्थ वेदान्तिज्म (Vedantism) के नाम से प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ में परमार्थ-दर्शन के सिद्धान्तों की ओर रचयिता की अभिरुचि परिलक्षित होती है। १९०५ ई० में काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने पण्डित रामावतारजी की दार्शनिक रचना 'पाश्चात्य दर्शन' प्रकाशित कर हिन्दीभाषी दर्शनप्रेमी पाठकों का बड़ा ही कल्याण किया। पण्डित जी की यह रचना पथप्रदर्शक का काम करती है। डा० मैत्रेय (अध्यक्ष, दर्शन-विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय) ने इस ग्रन्थ की संस्तुति में लेखक से कहा था कि रामावतारजी का यह ग्रन्थ भारतीय भाषाओं में लिखी गई पाश्चात्य दर्शन-विषयक पुस्तकों में अग्रणी है। इससे पूर्व किसी भारतीय लेखक ने किसी भी प्रान्तीय भाषा में पश्चिमी दर्शन का विवरण देने का प्रयास नहीं किया था। पारिभाषिक शब्दों की समस्या के अतिरिक्त यूरोपीय दार्शनिक तथ्यों को भारतीय जामा पहिनाकर प्रस्तुत करना उस युग में एक टेढ़ी खीर थी, परन्तु शर्माजी ने इन दोनों को नियन्त्रित कर जो रचना प्रस्तुत की वह सर्वथा स्तुत्य तथा बोधगम्य थी। पण्डित जी ने बी० ए० परीक्षा देने के लिए पश्चिमी दर्शन का स्वयं बिना किसी गुरु की सहायता के जो अनुशीलन किया था उसीका यह परिणत फल था। यह रचना आज भी स्तुत्य, उपादेय तथा उपयोगी है।[1]

पण्डित रामावतारजी को दम्भ से बड़ी घृणा थी, चाहे वह धार्मिक या दार्शनिक अथवा व्यावहारिक जगत् से सम्बन्ध रखता हो। भारतीय समाज में फैली हुई भ्रान्त-रूढ़ियों को ध्वस्त करने के लिए वे सतत खड्गहस्त रहते थे। दार्शनिक जगत् में व्याप्त दम्भों के निराकरण के लिए ही 'परमार्थदर्शन' का प्रणयन किया गया था। पण्डितजी तर्कबुद्धि की कसौटी पर कसे जाने पर ही किसी सिद्धान्त को प्रामाणिक मानते थे।

पं० रामावतार शर्मा हृदय से आस्तिक व्यक्ति थे। परन्तु कभी-कभी अपनी तीव्र तर्क-बुद्धि के द्वारा ईश्वर तथा धर्म के संबंध में ऐसी बातें कह देते थे जिनसे लोगों के

१. 'पाश्चात्यदर्शन' का नवीन परिवर्धित संस्करण बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् (पटना) ने प्रकाशित कर जिज्ञासुओं का बड़ा उपकार किया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदय में भ्रम उत्पन्न हो जाता था। अपनी तर्क-बुद्धि की कसौटी पर कसने पर जो आचार, विचार, आस्था, ईश्वर तथा धर्म-संबंधी विचार खरे उतरें उन्हीं का संकलन इन्होंने परमार्थ दर्शन में किया है। इनको चार्वाक की कोटि में नहीं रखा जा सकता है क्योंकि चार्वाक के संबंध से इनके विचार अत्यन्त उत्कट हैं। इन्होंने चार्वाक की निन्दा करते हुए लिखा है कि--"परमार्थ दर्शन की मान्यता है कि चार्वाक का प्रत्यक्ष प्रमाण उनकी स्वार्थैषणा का द्योतक है। उसकी अधमर्णता की प्रशंसा संसार की उन्नति में बाधक एवं आलस्योत्पादक है। चार्वाक अर्थात् चार-वाक् चार भूतों से संसार की सृष्टि मानता है। वह न आकाश को मानता है और न ईश्वर की सत्ता को ही स्वीकार करता है। अतः उसका मत कदापि समीचीन नहीं हो सकता।"

इस उद्धरण से ज्ञात होता है कि शर्माजी चार्वाक के मत को निन्दनीय समझते थे। अतः शर्माजी को नास्तिक मानना अत्यन्त भूल होगी।

अद्भुत कवित्व-शक्ति

पं० रामावतारजी को अद्भुत कवित्व-शक्ति प्राप्त थी। संस्कृत की कविता लिखने में ये अद्वितीय थे। छन्द, अलंकार, रस और विषय आदि किसी भी वस्तु का प्रतिबन्ध लगा दिया जाता, फिर भी जब ये अपने हाथ में लेखनी लेकर बैठते थे तब अनायास ही कविता की निर्झरिणी प्रवाहित होने लगती थी। ये **घटिकाशतक** थे अर्थात् एक घड़ी में—चौबीस मिनटों में—एक सौ बड़े-बड़े पद्यों के निर्माण की अद्भुत क्षमता रखते थे। इस प्रसंग में शर्माजी कहा करते थे कि पं० अम्बिकादत्त व्यास घटिकाशतक कहलाते थे, परन्तु उनकी शक्ति सीमित थी क्योंकि वे एक घटिका में सौ अनुष्टुपों ही की रचना कर लिया करते थे, अन्य लोग (अपनी ओर संकेत करते हुए) तो एक घटिका के भीतर बड़े-बड़े (मालिनी, उपजाति आदि) छन्दों में भी एक सौ पद्यों की रचना कर सकते हैं। यह उक्ति शर्माजी के विषय में दर्पोक्ति न होकर स्वभावोक्ति समझनी चाहिए। ये अपने शिष्यों से कहा करते थे कि प्रारम्भ में बड़े-बड़े वृत्तों में शब्दाडम्बर-पूर्ण कविता करनी चाहिए जो ओजगुण से पूर्ण हो। बाद में छोटे वृत्तों में प्रसादमयी कविता का उदय धीरे-धीरे अभ्यास करने पर ही होता है।

शर्माजी के प्रिय कवि महाकवि **कालिदास** तथा नैषधकर **श्रीहर्ष** थे। नैषध के श्लोकों को ये मन्त्र कहा करते थे। मैंने अनेक बार इन्हें परीक्षा की उत्तर पुस्तिकाओं का परीक्षण करते समय नैषध का पाठ करते हुए देखा है। उत्तर पुस्तकों को देखकर अंक जोड़ने के लिए ये मेरे मित्र बटुकनाथ शर्मा को दे दिया करते, और अंकन के साथ ही साथ नैषध का प्रतिपद पाठ भी ये स्वयं करते जाते थे। यह अद्भुत शक्ति देखकर कौन समीक्षक चमत्कृत न हो उठेगा। कालिदास शर्माजी के अत्यन्त प्रिय कवि थे। इनके उत्कट प्रेम का पता केवल इसी बात से चल सकता है कि इन्होंने अपनी पुत्रियों का नामकरण रघुवंश के स्त्री-पात्रों के नाम पर किया है। अपनी पुत्रियों के इन्दुमती, सुनन्दा आदि अभिधान पण्डितजी के कालिदास के प्रति हार्दिक प्रेम के सूचक हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी तथा भोजपुरी प्रेम

आज से साठ-सत्तर वर्ष पूर्व जब हिन्दी राष्ट्रभाषा तथा राजभाषा के पद पर आसीन नहीं हुई थी, पं० रामावतारजी हिन्दी भाषा के परम प्रेमी थे और ये हिन्दी के प्रचार तथा प्रसार में निरत रहते थे। इन्होंने अपनी अनेक पुस्तकों का निर्माण राष्ट्रभाषा हिन्दी में ही किया। अंग्रेजी भाषा के प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी ये अंग्रेजी भाषा में ग्रन्थरचना के विरोधी थे। ये अपना हस्ताक्षर सदैव नागरी लिपि में किया करते थे। ये कहा करते थे कि यह हमारा राष्ट्रीय कर्तव्य है कि हम देववाणी (संस्कृत) तथा राष्ट्रवाणी (हिन्दी) के साहित्य की श्रीवृद्धि करें और इन्होंने अपनी रचनाओं से इन दोनों भाषाओं के साहित्य को भरा है। उनका 'हिन्दी व्याकरण' लघुकाय होने पर भी विचार की गरिमा तथा भाषा-विश्लेषण की महिमा के कारण आज भी बहुमूल्य तथा उपादेय है।

गुरु जी कभी-कभी मस्ती में आकर हिन्दी में कविता भी किया करते थे; परन्तु यह प्रयास केवल मनोरंजन के ही लिए हुआ करता था। पटना कालेज के अंग्रेज अध्यापकों पर व्यङ्ग्य करते हुए इन्होंने एक दोहे में तत्कालीन परिस्थिति पर अच्छी चोट की है ;

"स्वेत द्वीप से तपसी आये;
गंगा तीर बसे छबि छाये।
हमरन के अब मछुआ टोला,
बास उहाँ कबिता कस होला॥

इन दिनों गुरु जी पटना के मछुआ टोली मुहल्ले में रहा करते थे जो बड़ा ही गन्दा था और पटना के अंग्रेज प्राध्यापक गंगा के किनारे स्वच्छ स्थान में बंगलों में निवास करते थे।

पटना में गंगा के घाटों की गन्दगी के सम्बन्ध में उनका यह दोहा कितना व्यङ्ग्यपूर्ण है :

"जहँ, जहँ हिन्दूघाट हैं, मल मसान कर खान।
भरा बिगंध दिमाग में, रहा न कबिता प्रान॥"

रामावतार जी अपनी मातृभाषा भोजपुरी के भी बड़े प्रेमी थे। आज से ८०-९० वर्ष पूर्व जब भोजपुरी का कोई नाम भी नहीं जानता था, आप सदा अपने घर में तथा बाहर भी अपने स्वजनों से भोजपुरी में ही बातें किया करते थे। इनके अनेक शिष्यों तथा मित्रों ने अपने संस्मरणों में इनके भोजपुरी प्रेम को प्रमाणित किया है। इतना ही नहीं, कभी मौज में आकर भोजपुरी में तुकबन्दी में लिख दिया करते थे। बाबू रघुवीर नारायण की सुप्रसिद्ध 'बटोहिया' नामक कविता की पैरोडी की दो-चार पंक्तियाँ देखिए जिनमें भारत की दुर्दशा का वर्णन किया गया है :

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"उल्लू, गीध बोले रामा, बोले टिटिहिरिया;
से सियरा के बोलिया डेरावे रे बटोहिया।
गंगा रे जमुनवा में सब बहे नालावा,
से नलिया झमकि मँहकावे रे बटोहिया।"

शर्माजी की काव्यप्रतिभा

पण्डित रामावतारजी विद्वद्-गोष्ठी में प्रातिभ मधुर कवि के रूप में चिरस्मरणीय रहेंगे। वैदर्भी रीति के सिद्धहस्त कवि होने अतिरिक्त गौडी रीति के भी वे निष्णात कवयिता थे। लोकातीत कल्पना के सामञ्जस्य में, नूतन वर्णन के विशद विन्यास में तथा पाश्चात्य वैज्ञानिकों के द्वारा प्रस्तुत अभिनव पदार्थों के विवरण में शर्माजी अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं रखते थे। वे कहा करते थे कि काव्यरचना के लिए नैसर्गिक प्रतिभा की अपेक्षा होती है, वर्ण्य विषयों की इयत्ता नहीं है। केवल अठारह दिनों तक चलने वाले महाभारतीय युद्ध के सम्यक् विवेचन के लिए जब वेदव्यासजी विशालकाय लक्षश्लोकात्मक 'महाभारत' का प्रणयन कर सकते हैं, तब अठारह महीनों से भी अधिक चलने वाले, नाना स्थलों में विभक्त यूरोपीय महायुद्ध के यथार्थ वर्णन के लिए तो अनेक वायुयान, तारपीडो आदि सामरिक उपकरणों से युक्त महाभारतों की रचना की जा सकती है। लेखनी के धनी रचयिता में केवल अलौकिक प्रतिभा की आवश्यकता है। पण्डित रामावतारजी में यह प्रतिभा अपने पूर्ण वैभव के साथ विद्यमान थी, परन्तु बड़े ही दुःख की बात है कि अल्पवय में ही कालकवलित होने के कारण पण्डितजी 'वाङ्मयार्णव' के महाभारतीय काण्ड की रचना नहीं कर पाये। इसके इतिहास-काण्ड के अन्तर्गत 'भारतीयमितिवृत्तम्' तथा 'देशान्तरीयेतिवृत्तम्' का प्रणयन कर शर्माजी ने उस अभीष्ट ग्रन्थ की एक झाँकी अवश्य प्रस्तुत कर दी है जो भव्य, रोचक तथा ज्ञानवर्धक है।

अपनी छात्रावस्था में ही इनकी प्रतिभा कोमलकान्त पदावली से समन्वित शब्द की रचना की ओर स्वतः आकृष्ट हुई। तभी तो केवल पन्द्रह वर्ष के वय में ही अपने साहित्यिक साथियों के आग्रह पर उन्होंने 'धीरनैषध' जैसे सप्ताङ्की रूपक की रचना कर डाली थी जिसके कारण अपने गुरुवर्य गङ्गाधर शास्त्रीजी के द्वारा इन्हें 'महाकवि' होने का गौरवमय शुभाशीर्वाद प्राप्त हो गया था। बात यों हुई। शर्माजी ने अपने अनुज और शिष्य श्रीकान्तजी को इस स्वनिर्मित नाटक का अध्ययन करा दिया था। एक दिन उन्हें अपने गुरु गङ्गाधर शास्त्रीजी के पास ले जाकर उनका परिचय दिया। शास्त्रीजी ने श्रीकान्तजी से कोई पद्य सुनाने का आदेश दिया, तब उन्होंने यह पद्य सुनाकर शास्त्रीजी को चमत्कृत कर दिया था—

श्रीकृष्णोरसि कौस्तुभच्छविरिव ध्वान्तावृते व्योमनि
प्रत्यग्रा शशिनः कलेव निकषे रेखेव जाम्बूनदी।
प्रावृड्-वारिधरेऽचिरद्युतिरिव श्रीकण्ठकण्ठे भृशं
संसक्ता गिरिजाभुजव्रततिका दूरीक्रियात् दुष्कृतम्॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्लोक के रचयिता तथा ग्रन्थ का परिचय पूछने पर श्रीकान्तजी ने शर्माजी की ओर संकेत किया और इसे 'धीरनैषध' नाटक की नान्दी होने की बात बताई। इस पर शास्त्रीजी ने पूरे नाटक को पढ़कर दूसरे दिन अपनी सम्मति कह सुनाई **'सत्यं महाकवि-रसि'**। गुरु की यह सम्मति वरदान सिद्ध हुई। पण्डित रामावतारजी महाकवि रूप में सचमुच विख्यात हो गये।

शर्मा जी की दूसरी काव्यात्मक कृति **'मारुति-शतक'** भी एक मीठी चुनौती स्वीकारने की ही सुखद परिणति है। सुनते हैं कि पण्डित जी के एक विद्वान् पितृव्य ने हँसी-खेल में ही कह डाला कि 'बबुआ, तू त काव्य रचना बड़ा अच्छा करले। अगर मयूर कवि के 'सूर्यशतक' के समान कोई भव्य शतक बना डाल, त हम तोहार जोग्यता जानी।' बस क्या था? पण्डितजी को बात लग गई। पन्द्रह-सोलह साल के के वय में ही इन्होंने स्रग्धरा जैसे दीर्घवृत्त में हनुमान जी जैसे विकट-प्रचण्ड गर्जनशील देवता की स्तुति में शतक काव्य की रचना कर ही डाली और वह भी ४८ घंटों के भीतर ही। शर्मा जी ने अपनी पत्नी को आदेश दिया कि मुझसे कोई बोले नहीं। थोड़े-थोड़े समय पर मुझे गंगाजल पिला जाया करना। मैं बिना इस काव्य को समाप्त किये नहीं उठूँगा। लगातार बैठकर इस भव्य शतक का निर्माण कर ही तो डाला। इस काव्य के अप्रसिद्ध शब्दों के विषय मे जब मैंने पण्डित जी से पूछा, तब उन्होंने कहा "उस समय मैं कोशों का अध्ययन कर रहा था। नाना प्रकार के अप्रसिद्ध तथा अल्प-प्रसिद्ध शब्दों की मुझे विशेष जानकारी थी। उन्हीं का प्रयोग होने से सम्भव है काव्य में कुछ दुरूहता आ गई हो। परन्तु सब कुछ अयत्नपूर्वक था। उसके लिए कोई विशेष प्रयास मुझे नहीं करना पड़ा।"

स्रग्धरा छन्द में देवस्तुति प्रणयन की परम्परा आज से तेरह सौ वर्ष पूर्व इसी काशी मण्डल के महाकवि मयूर कवि ने चलायी थी। 'सूर्यशतक' का निर्माण कर फलस्वरूप वे कुष्ठ जैसे दुष्ट रोग से मुक्त हो गये थे। 'मारुतिशतक'[1] भी उसी परम्परा का आधुनिक प्रतिनिधि गीति-काव्य है। इसमें हनुमानजी के विकट स्वरूप, गर्जन-तर्जन, विकटाकार लाङ्गूल, पत्थर पर पटकने पर लांगूल से जायमान घोर प्रचण्ड निनाद, स्वर्णपुरी लंका के उदात्त प्रासादों का प्रज्वालन आदि विषयों का बड़ी प्रौढि के साथ गौडी रीति में वर्णन अलौकिक कल्पना की सद्यःस्फूर्ति का जाज्वल्यमान दृष्टान्त है। पूरा काव्य उदात्त शैली में निबद्ध है, अलंकारों की सुषमा अवलोकनीय है, अनुप्रासों की विकट छटा नितान्त आकर्षक है। एक-दो उदाहरण पर्याप्त हैं—

हनुमान के पुच्छ विस्फोट के प्रचण्ड शब्द का विकट वर्णन—

---

१. खड्गविलास प्रेस, पटना से प्रथम प्रकाशित, १९१४ ई०। 'रामावतार गाथा' नामक अभिनन्दन ग्रन्थ में अभी प्रकाशित पृ० ३५३—३६७, प्र० भारतीय शास्त्र समादर समिति, छपरा, १९७८ ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लङ्कातङ्काय शङ्काकुलदनुजवधू-भ्रूणविभ्रंशनार्थं
दम्भारम्भाय जम्भार्यनुसरणकृतां पुच्छविस्फोटशब्दः ।
हन्तानन्ताधिसन्तापितसकल जनानन्दनायोज्जिहानो
दद्यादद्यानवद्यान्युदयविलसितान्याञ्जनेयस्य तूर्णम् ।।

मरुत्नन्दन हनुमान् जी के प्रचण्ड व्यक्तित्व के परिचय के लिए शर्माजी का यह पद्य नितान्त उपयुक्त एवं ओज गुण से मण्डित है। पद्य की भाषा तथा भाव दोनों ही उदात्त तथा मनोरम हैं—

अव्यादव्याजभव्याकृतिरतनुरयव्याप्तनव्यानुभावः ।
सव्यासव्याद्रिदिव्यावनिरुह—कुसुमार्चामृद-व्याकुलाङ्गः ।।
क्रव्यादौघाञ्छरव्याण्युपदधदनिशं साधुरस्यात्मजार्थं ।
हव्या हारव्रजव्याहृतिविनुतिरसौ सज्जानानाञ्जनेयः ।।

(मारुतिशतक, २० पद्य)

हनुमानजी की एक अन्य प्रशस्ति का अवलोकन द्रष्टव्य है—

घोणाघोरान् घनाभान् घनकरटि-घटा-घस्मरान् घोटघोषान्
रक्षोव्याघ्रान् घृणाद्रो घटितघुणनिभान् घूर्णयित्वैव शीघ्रम् ।
जङ्घादघ्नासृगोघान् पविसमभुजगान् द्राग् जघन्यान् जिघांसु-
र्द्राघिष्ठं विघ्ननिघ्नं लघयतु लघु वः साध्वसं गन्धवाहिः ।।७ ।।

इस पद्य के पद्यकार का अनुप्रास-प्रेम नितान्त अवलोकनीय है।

पण्डित रामावतारजी की तीसरी काव्यकृति तो इन दोनों से विलक्षण है। वह है **मुद्गर दूत**। पण्डितजी दम्भ के महान् शत्रु थे, चाहे वह दम्भ समाज में हो, साहित्य में हो अथवा धार्मिक-जगत् में हो। उस युग में विहार में, विशेषत; पटना में, 'सखी समाज' का विशेष जोर था। भक्त लोग अपने इष्टदेव—राम या कृष्ण—को रिझाने के लिए सखी भेष धारण कर नारी के व्यवहार में अपने को आसक्त रखते थे। पण्डितजी ने मुझसे स्वयं कहा था कि जब मैं पटना कालेज के होस्टल का अध्यक्ष था, तब एक विचित्र घटना घटी थी। दस बजे रात को होस्टल के पास के ही एक कुएँ में कोई छात्र गिर गया था। जब वह छात्र अन्य छात्रों के प्रयत्नों से बाहर निकाला गया, तब उसके रूप को देख कर अचंभित होना पड़ा था। शरीर पर लाल साड़ी, माथे में सिन्दूर की चटकदार रेखा, हाथों में झन-झनाती चूड़ियाँ—इनसे सुसज्जित उस छात्र को देख कर सब अचम्भे में पड़ गये थे। पूछने पर मालूम पड़ा कि वह सखी के वेष में पास के ही मन्दिर में भगवान् को रिझाने के लिए नृत्य कर रहा था। हॉस्टल लौटते समय अन्धकार के कारण वह कूएँ में गिर पड़ा था। इसी प्रकार को अन्य विसंगत घटनाओं को देखकर शर्माजी बड़े दु:खित होते थे। तथाकथित योगियों की लीलाओं से भी वे घृणा करते थे। काशी के एक काने ब्रह्मचारीजी का विचित्र चरित्र भी उनकी आलोचना का विषय था। काशी में उस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय (२० वीं शती के आरम्भ में १८९८ ई० – १९१० ई०) थिआसोफी का बड़ा तुमुल प्रभाव था। श्रीमती एनी बेसेन्ट उस संस्था की संचालिका थीं। उन्हीं के द्वारा स्थापित सेन्ट्रल हिन्दू कालेज में संस्कृताध्यापक होने के नाते पण्डितजी को उस समुदाय के लोगों के विचित्र चरित्र को निकट से देखने का अवसर मिला था। इसी प्रकार के अन्य दम्भवार्ता की तीव्र साहित्यिक आलोचना के लिए 'मुद्गरदूत' का अवतरण हुआ। इस आलोचना के माध्यम थे मुद्गरानन्द सरस्वती नामक एक कल्पित पात्र। इन विचित्रताओं के कारण यह दूत-काव्य अपनी परम्परा में एक अभिनव कला का प्रतिनिधि है। इसका नायक कोई 'मूर्खदेव' यूरोप तथा अमेरिका की यात्रा कर वहाँ की विलक्षण वस्तुओं से परिचित होकर अपने जीवन को धन्य मानता है। मुद्गरदूत निःसन्देह रामावतार शर्मा की लोकातीत कल्पना, अनुपम उपहास कथा (पैरोडी), नव्य शब्द-रचना-चातुरी एवं विचित्र भौगोलिक विवरण के लिए जितना स्मरणीय रहेगा, उतना ही समाज की रूढ़ियों के ऊपर घोर निर्मम प्रहारों के लिए भी। सखी समाज का यह दृश्य देखिए –

आनेष्येऽहं हिमगिरितटादौषधं वः क्षुधारि
प्राणायामैर्वियति भवतां साधयिष्ये गतिं वा।
कुब्जे कुब्जे सपदि भविता रामकृष्णावतारः
श्मश्रुच्छित्त्वा प्रकट-वनिता-भाव-भाजो रमध्वम् ॥ १६ ॥
जल्पन्नित्थं रसनगरलै रामकृष्णादिनामा–
न्युग्राचारः किल कलुषयन् आर्तवं बिभ्रदङ्गे।
सिन्दूराक्तो रणितवलयः शाटिकावेष्टिताङ्गः
सायं चैत्ये प्रतिदिनमसावञ्चिताक्षो ननर्त ॥ १७ ॥

अमेरिका अथवा इंगलैण्ड की किसी श्वेताङ्गना का यह वर्णन कितना रोचक, नवीन तथा आवर्जक है। देखिए तो सही। कितना उपहास से सान्द्र तथा रसाभावमय है यह विवरण–

स्थूला श्वेता परुषरसना शीर्णकन्दाधरोष्ठी
मध्ये स्फारा स्तिमितशुनकप्रेक्षणा तुङ्गनाभिः।
श्रोणीकाश्यात् प्रखरगमना दूरनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्यान्नरविकसनात् पूर्वजा वानरीव ॥

इस श्लोक के पठनमात्र से पता चलता है कि यह मेघदूत के निम्नांकित सुन्दर श्लोक की पैरोडी है।

तन्वीश्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्येक्षामा चकितहरिणी-प्रेक्षणा निम्ननाभिः।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः ॥

(मेघदूत उत्तर २२)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस श्लोक के अंतिम चरण में श्वेताङ्गी की जो वानरी से उपमा दी गई है वह नितान्त नवीन तथा अश्रुतपूर्व है। इस ग्रंथ—मुद्गरदूत—के अन्त में उस मूर्खदेव के ब्लाकटानन्द देव की शरण में अमेरिका जाने की जो बात लिखी है वही इस ग्रन्थ को समझने की कुञ्जी है। यह उक्ति है—

"वन्ध्या-पुत्रानुसरणसभां तां विहायातिरुष्टः।
कल्याण्यार्थी शरणमगमत् ब्लाकटानन्द-देवम्॥

इस पंक्ति में 'ब्लाकटानन्द देव' से तात्पर्य है 'कर्नल आल्काट' से, जो थियासोफिकल सोसाइटी के संस्थापक थे तथा अमेरिका के निवासी थे। इस प्रकार रामावतार जी ने इस ग्रन्थ के द्वारा थियासोफिकल सोसाइटी के संस्थापकों तथा विद्वानों के द्वारा हिन्दू धर्म के ऊपर जो आक्षेप किये जाते थे, तथा हिन्दू धर्म के प्रचार की आड़ में जो अनाचार किया जाता था उन सबके ऊपर तीव्र कटाक्ष किया है।

इस ग्रन्थ में अंग्रेजी शब्दों का संस्कृतीकरण करके प्रयोग किया गया है जैसे पावरोटी के लिए 'स्थूलाभ्यूष' तथा केबुल (तार) के लिए 'वार्तातन्त्री'। पाठकों की सुविधा के लिए शर्माजी ने इन शब्दों का कृपा कर अर्थ भी अन्त में दे दिया है, अन्यथा इस ग्रन्थ के तात्पर्य को समझना एक टेढ़ी खीर हो जाता।

शर्माजी ने आज से अस्सी वर्ष पहिले संस्कृत में राष्ट्रीय तथा देश प्रेम से संवलित कविताओं को रचना की थी जो 'भारत गीतिका' के नाम से प्रसिद्ध है। इस कविता के पढ़ने से शर्माजी का राष्ट्रप्रेम प्रकट होता है। इस गीतिका की भाषा बड़ी सरल तथा सरस है जिसमें भारतीय लोगों को अपने भेद-भावों की भुला कर संगठित होने का आह्वान किया गया है। उदाहरण के लिए दो चार पद्य देखिये—

"अलं भारतीया मतानां विभेदैः,
अलं देशभेदेन वैरेण चालम्।
अयं शाश्वतो धर्म एको धरायां,
न सम्भाव्यते धर्मतत्त्वेषु भेदः॥ १॥
दया भूतसंघे मतिर्देवदेवे,
चतुर्वर्ग-चिन्ता-विरोधाद् विरामः।
मनः-काय-वाक्-शोधने चैव बुद्धिः,
परं धर्मतत्त्वं विरोधोऽत्र केषाम्?॥ २॥
गिरं संस्कृतां राजकीयां च वाणां,
समभ्यस्य लोकद्वयस्यापि सौख्यम्।
वशे स्थापयध्वं स्वधर्मं स्वदेशं,
तथा प्रापयध्वं पुनर्गौरवं तत्"॥ ३॥

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह गीतिका राष्ट्रप्रेम की गीता है जिसे पढ़कर भारतीयों के हृदय में अपने अतीत के प्रति गौरव की भावना उत्पन्न होती है। इस गीतिका में राष्ट्रप्रेम कूट-कूट कर भरा हुआ है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाण्डेय रामावतार शर्माजी की प्रतिभा के द्योतक निम्नलिखित पद्य उनकी विद्वत्ता के विषय में अर्थवाद न होकर तथ्यवाद है—

कवितावनितस्वयंवृता दयितास्ते महिता भुवस्तले।
बुधमण्डलसादरेक्षिता जनताविस्मयकारिकीर्तयः॥
प्रौढाः पण्डितमण्डले बहुविधे वादाहवे जित्वरा
विख्याता अपि वादिनः क्षणमलं स्थातुं न येषां पुरः।
वाग्देवी सततं यदीयरसनारङ्गस्थले नृत्यति
प्रीत्या यैर्विहिता जनोपकृतयेऽनेके निबन्धा वराः॥

शर्माजी के घनिष्ठ मित्र

पण्डित गोपाल शास्त्री

(आस्पद त्रिपाठी, उपाधि—दर्शनकेशरी)

पण्डित गोपाल शास्त्री जी संस्कृत शास्त्रों के गम्भीर विद्वान् होने के अतिरिक्त पाणिनीय व्याकरण के प्रसार-प्रचार के नई दिशा के उद्भावक एक महनीय कर्मठ व्यक्ति हैं। विहार प्रान्त के सिवान मण्डल के 'जगन्नाथपुर' गाँव में आपका जन्म १८९२ ईस्वी में हुआ। आप शाण्डिल्यगोत्रीय सरयूपारीण ब्राह्मण हैं। अपने मण्डल की पाठशाला में आरम्भिक संस्कृत शिक्षा प्राप्त कर आप काशी में विद्याध्ययन के लिए आये और तत्कालीन महनीय पण्डितों से आपने व्याकरण तथा दर्शन शास्त्र का गम्भीर अध्ययन कर इन शास्त्रों में माननीय प्रवीणता उपलब्ध की। १९१५ ईस्वी में काशीहिन्दू विश्वविद्यालय आपने से व्याकरण शास्त्राचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की। बिहार से इन्होंने काव्य तथा न्याय विषय में सर्वोच्च 'तीर्थ' परीक्षा में भी सफलता प्राप्त की। अध्यापन समाप्त करने के समय में ही इनका झुकाव कांग्रेस की ओर हो गया और बाबू शिवप्रसाद गुप्तजी के विशेष आग्रह पर इन्होंने काशीविद्यापीठ में संस्कृत अध्यापक का पद स्वीकारा जिस पर ये १९२१ ई० से लेकर १९४७ ईस्वी तक लगातार २६ वर्षों तक व्याकरण तथा दर्शन शास्त्र का अध्यापन करते रहे। यहाँ आपने अनेक शिष्यों को संस्कृत तथा दर्शन का गाढ अनुरागी बनाकर सुयोग्य बनाया जिनमें लालबहादुर शास्त्री तथा अलगू राय शास्त्री प्रभृति अनेक राजनीतिक पुरुषों का नाम अग्रगण्य है। वहाँ से अवकाश लेने के अनन्तर शास्त्री जी ने ज्योतिर्मठ में स्थित 'श्रीबदरीनाथ वेदवेदांग महाविद्यालय' के प्राचार्य पद का निर्वाह बारह वर्षों तक किया। आजकल आप काशी में ही निवास कर 'गाण्डीवम्' नामक सुप्रसिद्ध संस्कृत साप्ताहिक के प्रधान सम्पादक हैं।

ग्रन्थ—पण्डित गोपाल शास्त्री जी ने संस्कृत भाषा में छोटे-बड़े २५ ग्रन्थों का निर्माण किया है जिनका नीचे परिचय दिया गया है। शास्त्रीजी संस्कृत भाषा प्रचार के अग्रदूत हैं। इसके निमित्त एक नवीन पद्धति का उन्होंने आविष्कार किया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इसी पद्धति से स्वस्थापित 'कन्या संस्कृत विद्यालय' में संस्कृत भाषा की शिक्षा देकर थोड़े समय तथा अल्प प्रयास से संस्कृत भाषा के बोलने तथा समझने की योग्यता उत्पन्न कर देते हैं। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए शास्त्री जी ने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है जिनमें मुख्य हैं—(१) पाणिनीय प्रशस्त, (२) पाणिनीय प्रदीपः, (३) पाणिनीय प्रशस्तिनाटकम्, (४) पाणिनीयप्रबोधम् (नाटक), (५) ऋजुपाणिनीयम्, (६) संस्कृतशिक्षकम् (हिन्दी माध्यम से संस्कृत की शिक्षा), (७) ऋजुपाणिनीयम् (अत्यावश्यक सूत्रों का क्रमबद्ध संकलन), (८) बृहदृऋजुपाणिनीयम्, (९) सवृत्तिः अष्टाध्यायी, (१०) पाणिनीय प्रबोधव्याकरणम्, (११) प्रशिक्षण-संविधानम् (संस्कृत माध्यम से शिक्षण की विधि), (१२) भट्टिकाव्य ('काव्यमर्मप्रकाशिका' नामक टीका से संवलित), (१३) भट्टि काव्य-शास्त्रसारः (संवादात्मक), (१४) संस्कृत-संस्कृति-शिक्षकम् (हिन्दी माध्यम से मनुस्मृति में निर्दिष्ट आचारसंहिता का विवरण), (१५) गीतामृत-व्याकरणम् (गीता के प्रयोगों का ही उदाहरण)। इतर ग्रन्थों के द्वारा भारतीय नारियों की महिमा तथा गीता के कर्मयोग का विशद विवेचन किया गया है—(१६) वीरांगना वैभवम् महनीय नारियों के चरितचित्रण), (१७) (१८) नारी जागरणं नाटकम् (संस्कृत तथा हिन्दी उभयमाध्यमों से विशिष्ट नारियों का परिचय), (१९) गोमहिमाऽभिनय नाटकम्, (२०) मीमांसा परिभाषा (दीपिका व्याख्या), तथा (२१) **श्रीगीताकर्मयोग शास्त्रम्** – गीता का तात्पर्य कर्मयोग के प्रतिपादन में है-इसका विस्तृत तथा गम्भीर विवेचन बड़े ही पाण्डित्य के द्वारा तर्क तथा युक्तियों के सहारे किया गया है। दर्शनकेशरी जी का यह महिमा-मण्डित ग्रन्थ उनके दार्शनिक पाण्डित्य का निकषग्रावा है।

दर्शनकेशरीजी का स्वभाव बड़ा ही मधुर एवं सात्त्विक है। संस्कृत भाषा का प्रचार ही उनके सुदीर्घ जीवन का एकमात्र व्रत है और इसके सम्पादन में इनको विपुल सफलता प्राप्त हुई है। ये संस्कृत भाषा के पत्रकार भी हैं। इनके द्वारा सम्पादित गाण्डीवम्' पर्याप्त रूपेण लोकप्रिय संस्कृत साप्ताहिक है। बहुत दिन पूर्व काशी से प्रकाशित होने वाले 'सुप्रभातम्' के भी आप सम्पादक थे। इसी वैदुष्य के कारण शारदा पीठ के शंकराचार्य ने 'दर्शनकेशरी,' भारत धर्म महामण्डल ने 'महामहाध्यापक' की उपाधि से इन्हें सम्मानित किया है। ये पण्डित रामावतार शर्माजी के अकृत्रिम सुहृत् तथा साहित्यिक बन्धु हैं। दोनों बिहार प्रान्त के 'सारन' के निवासी हैं—शर्माजी सारन (छपरा) नगर के वासी थे और दर्शन-केशरीजी सारन-मण्डल के निवासी हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०

डॉ० गंगानाथ झा

(आस्पद—झा उपाधि—महामहोपाध्याय)

बीसवीं शताब्दी के अंग्रेजी भाषा-वेत्ता संस्कृत विद्वानों में जितनी ख्याति और यश का उपार्जन डा० गंगानाथ झा ने किया, उतना सम्भवतः डा० सर रामकृष्ण भाण्डारकर के एक अपवाद को छोड़कर किसी ने नहीं किया। संस्कृत विद्या का अध्ययन करके भी कोई भारतीय अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर सकता है यह बात उनके पहले केवल कल्पनामात्र थी। डा० झा ने अपने जीवन में विपुल कीर्ति एवं अक्षय यश के साथ ही प्रचुर धन का भी अर्जन किया। आप प्राचीन परम्परा के प्रकाण्ड पण्डित थे। आपने प्राचीन भारतीय पद्धति के अनुसार षट् शास्त्रों का अध्ययन गुरुओं के चरणों में बैठ कर किया था। प्राचीन पद्धति से संस्कृत का अध्ययन करने के साथ ही आपने नवीन पाश्चात्य आलोचन प्रणाली से भी संस्कृत साहित्य का मन्थन किया था। इस प्रकार आपकी विद्वत्ता में प्राचीन भारतीय पद्धति तथा नवीन पाश्चात्य शैली का मणि-कांचन संयोग उपलब्ध होता है। आपके संबंध में "हेम्नः परमामोदः" (सोने में सुगन्ध) की उक्ति अक्षरशः चरितार्थ होती है।

यद्यपि आपने समस्त भारतीय दर्शन शास्त्रों का सम्यक् आलोकन किया था, तथापि मीमांसा शास्त्र के प्रति आपकी विशेष अभिरुचि थी। आपने इस शास्त्र का, गुरु के चरणों में उपस्थित होकर सम्यक् अध्ययन किया था, अतः यह विशेष फलदायी हुआ था। मीमांसा शास्त्र के विषय में नवीन पुस्तकें लिखकर तथा प्राचीन ग्रन्थों का अनुवाद कर आपने इस कथन की पुष्टि की है। ये धर्मशास्त्र के भी प्रकाण्ड पण्डित थे। 'हिन्दू ला इन इट्स सोर्सेज' नामक पुस्तक से इनकी विद्वत्ता का कुछ अनुमान किया जा सकता है। परन्तु दर्शन तथा धर्मशास्त्र के अतिरिक्त साहित्यशास्त्र के भी ये पारंगत मनीषी थे। इन्होंने अपनी छात्रावस्था में ही **काव्य-प्रकाश** जैसे ठोस तथा कठिन संस्कृत ग्रन्थ का अंग्रेजी में अनुवाद कर विद्वानों को चकित कर दिया था। आपने मनुस्मृति के ऊपर मेधातिथि के द्वारा लिखे गये बृहत् भाष्य का भी अंग्रेजी में अनुवाद प्रस्तुत किया है जिससे आपके कठोर परिश्रम तथा अद्भुत विद्वत्ता का पता चलता है। इस प्रकार दर्शनशास्त्र, धर्मशास्त्र और काव्यशास्त्र संबन्धी विद्वत्ता का अद्भुत संमिश्रण आपके व्यक्तित्व में उपलब्ध होता है।

डा० गंगानाथ अत्यन्त भाग्यशाली पुरुष थे। जो सबसे अधिक विशिष्ट वस्तु आपके जीवन में परिलक्षित होती है वह है आपकी लोकोत्तर भाग्यशालिता। कोई व्यक्ति अपने जीवन में सतत परिश्रम के द्वारा विद्वत्ता तो प्राप्त कर सकता है परन्तु भाग्य का उपार्जन करना भगवान् के अनुग्रह से ही होता है। ऐसा प्रायः देखा जाता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, महान् व्यक्तियों की सन्तानें प्रायः महान् नहीं होतीं और जीवन की गोधूलि में उन्हें पारिवारिक सुख भी प्राप्त नहीं होता। परन्तु डा० गंगानाथ झा इस नियम के सर्वथा अपवाद थे। डा० झा को पारिवारिक सुख भी पूर्णतया प्राप्त था। जीवन के अन्तिम दिनों में ये पाँचों पाण्डवों की भाँति अपने सुयोग्य, विद्वान्, यशस्वी तथा पितृभक्त पाँचों पुत्रों को देख सचमुच ही स्वर्ग के सुख का अनुभव करते होंगे। इसी-लिए किसी सूक्तिकार ने बिल्कुल उचित ही कहा है :—

"यदि रामा, यदि च रमा,
यदि तनयो विनयधी-गुणोपेतः।
तनयात् तनयोत्पत्तिः
सुरवरनगरे किमाधिक्यम्॥

पूर्व पुरुष—

डा० गंगानाथ झा के पूर्वज दरभंगा जिले के सरिसव गाँव के निवासी थे। इनके पूर्व पुरुष श्रोत्रिय ब्राह्मण थे जो मैथिल ब्राह्मणों में सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं। इनके प्रपितामह का नाम **लक्ष्मीदेव झा** था जो अपने समय के बहुत बड़े वैयाकरण थे। मैथिल ब्राह्मणों के इतिहासग्रन्थ **पंजी पुस्तकों** में उनका **वैयाकरण अमृतनाथ** के रूप में उल्लेख किया गया है। वे महाराजाधिराज दरभंगा के द्वारा अपनी विद्वत्ता के लिए समादृत भी थे। उन्होंने प्रचुर सम्मान प्राप्त किया था। झा जी के पितामह अपने गाँव में निवास करने वाले सन्तोषी तथा सात्त्विक ब्राह्मण थे। वे अत्यन्त धार्मिक तथा भक्त जीव थे।

डा० गंगानाथ झा के पिता का नाम **तीर्थनाथ झा** था परन्तु ये धर्मनाथ झा के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध थे। इनकी माता का नाम रामकाशी देवी था। काशी में उत्पन्न होने के कारण ही उनका ऐसा नामकरण हुआ था। झा जी के पिता का विवाह गंगुली नामक गाँव में हुआ था। मातृपक्ष की ओर से गंगानाथ झा महाराजा-धिराज दरभंगा से सम्बन्धित थे। दरभंगा राज्य के संस्थापक श्री महेश ठाकुर के वंश में उत्पन्न महाराजाधिराज वासुदेव सिंह ने अपनी पुत्री का विवाह झा जी के पिता तीर्थनाथ झा से किया था। अतः इनकी माता दरभंगा राज-कुल की पुत्री थीं। इस प्रकार दरभंगा के तत्कालीन राजा झाजी के मामा लगते थे।

अपने पिता के पञ्चपुत्रों में ये तृतीय पुत्र थे। इनका जन्म २५ दिसम्बर १८७२ ईस्वी को अपने ही गाँव में हुआ।

इनके पिता बड़े ही धार्मिक पुरुष थे। वे नित्यप्रति गायत्री मन्त्र को जपते थे। उनका शरीर बलिष्ठ तथा स्वस्थ था। ६५ वर्ष के वय में वे प्रथम बार विषम ज्वरसे पीड़ित हुए थे, जिसके दो वर्षों के पश्चात् उनकी मृत्यु हो गई। दरभंगानरेश राजा लक्ष्मीश्वर सिंह जी इनका बड़ा आदर तथा सत्कार करते थे। सामान्य जनता तथा विद्वान् लोग सभी इनको सम्मान की दृष्टि से देखते थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० गंगानाथ झा के ज्येष्ठ भ्राता का नाम **विद्यानाथ झा** था। वे बड़े ही प्रगल्भ तथा उदात्त प्रकृति के व्यक्ति थे। केवल नौ (९) वर्ष के वय में ही उपनयन के पश्चात् इनका विवाह हो गया था। झाजी अपने ज्येष्ठ भ्राता के परम भक्त थे। दूर रहने पर दोनों भाई प्रतिदिन एक दूसरे को पत्र लिखा करते थे। इनके दूसरे भाई का नाम गणनाथ झा था जो इनसे केवल दो साल जेठे थे। झाजी इनके साथ प्रायः समान-वयस्क होने के कारण खेला करते थे।

शिक्षा—

झाजी का अक्षरारम्भ संस्कार पाँच वर्ष के वय में सम्पन्न किया गया। उन दिनों स्लेट और पेन्सिल का अभाव होने के कारण ये जमीन पर ही खड़िया से अक्षरों को लिखा करते थे। अपनी दैनिक पढ़ाई समाप्त करने के पश्चात् ये अक्षरों को मिटा देते थे और खड़िया की धूल को संभवतः अपने गुरु की आज्ञा से अपने शरीर में मल देते थे। उस समय ऐसा लोकविश्वास था कि ऐसा करने से समस्त विद्या हृदयंगम हो जाती है। गंगानाथजी ने तत्कालीन शिक्षा-प्रणाली के अनुसार कुछ दिनों तक फारसी पढ़ने का भी प्रयास किया। परन्तु उसकी उल्टी-सीधी लिपिमाला इनकी समझ में नहीं आती थी और केवल प्रथम दो अक्षरों—अलिफ तथा बे-को छोड़कर इनकी प्रगति आगे नहीं हो सकी।

सन् १८७८-७९ ई० में इनकी मातामही ने काशी आने का निश्चय किया। परन्तु वे धार्मिक भावनाओं के कारण रेलगाड़ी से यात्रा करना नहीं चाहती थीं। अतः नावों का बेड़ा यात्रा के लिए ठीक किया गया। इस यात्रा में बीसियों व्यक्ति सम्मिलित थे जिनमें महोमहोपाध्याय **पं० राजनाथ मिश्र** तथा महामहोपाध्याय **पं० जयदेव मिश्र** भी थे। झा जी के परिवार के सभी व्यक्ति काशी में एक वर्ष तक रहे। उस समय इनकी अवस्था छह या सात वर्ष की थी और ये संस्कृत व्याकरण का थोड़ा-थोड़ा अध्ययन कर रहे थे। इसी अवसर पर इनके निवास-स्थान पर काशी के पण्डितों की एक महती सभा का आयोजन किया गया था जिसमें ५०० विद्वान् सम्मिलित हुए थे और प्रत्येक पण्डित को दस रुपया दक्षिणा दी गई थी। इसी सभा में बालक गंगानाथ ने काशी के भारत-प्रसिद्ध विद्वान् बालशास्त्री के दर्शन किये जो इसमें अपने चार प्रकाण्ड प्रसिद्ध विद्वान् शिष्यों के साथ उपस्थित थे। इन प्रकाण्ड विद्वानों का प्रभाव गंगानाथ के जीवन पर बहुत अधिक पड़ा था। इस एक वर्ष के काशी-निवास में इनका संस्कृत के विद्वानों के प्रति आदर और श्रद्धा अधिक हो गई जिसका स्थायी प्रभाव इनके जीवन पर मूरिशः पड़ा।

सन् १८८० ई० में काशी से दरभंगा लौट जाने पर दरभंगा राज्य के इंग्लिश मिडिल स्कूल में नाम लिखाकर ये पढ़ने लगे। इसी वर्ष इस स्कूल को हाई स्कूल तक की मान्यता मिल गई थी। बालक गंगानाथ इस स्कूल में मन लगाकर पढ़ने लगे। ये लगातार यहाँ सात वर्षों तक अध्ययन करते रहे। और सन् १८८६ ई० कलकत्ता विश्वविद्यालय से एन्ट्रेन्स की परीक्षा तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण की।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १८८६ ई० में गंगानाथ झा ने क्वीन्स कालेज, बनारस में इन्टर की कक्षा में प्रवेश किया। उस समय इस कालेज के प्रिन्सिपल डा० थीबो थे। झाजी अपनी कुशाग्र बुद्धि तथा तीक्ष्णता के कारण थीबो साहब के शीघ्र ही प्रियपात्र बन गये। वाराणसी में अध्ययन करते समय इनके सहपाठी डा० भगवान् दास के ज्येष्ठ भ्राता **बाबू गोविन्ददासजी** थे। झाजी की उनसे बड़ी घनिष्ठता हो गई। वे बड़ी ही साहित्यिक रुचि के व्यक्ति थे। झाजी इनके घर प्रायः जाते और ये दोनों देर रात तक मेघदूत और नैषधीय चरित का पाठ करते थे। इसी समय इनका परिचय **पण्डित हरिनाथजी** से हुआ जो संन्यास लेने के पश्चात् स्वामी **मनीष्यानन्द** के नाम से प्रसिद्ध हुए। झाजी ने इनसे छान्दोग्य उपनिषद् तथा वेदान्त के अन्य ग्रन्थों का भी अध्ययन किया।

क्वीन्स कालेज में अध्ययन

बनारस का क्वीन्स कालेज उन दिनों समस्त उत्तर भारत में अंग्रेजी शिक्षा के लिए प्रसिद्ध था और यहाँ एम० ए० तक की शिक्षा दी जाती थी। गंगानाथ झा के अध्ययन काल में यहाँ पर अंग्रेजी डा० वेनिस, गणित बाबू उमेशचन्द्र सान्याल, विज्ञान बाबू अभयचरण सान्याल जैसे धुरन्धर विद्वान पढ़ाया करते थे। संस्कृत के प्राध्यापक पं० **विन्ध्येश्वरी प्रसाद दूबे** थे जो बड़े ही मनमौजी तथा विनोदी जीव थे। वे संगीत के भी प्रेमी थे। कभी-कभी आकाश को मेघों से आच्छन्न देखकर वह कक्षा में कहा करते थे कि "ठहर जावो, अभी थोड़ी मलार की तान ले लें।" वे कक्षा में सिपाही-विद्रोह के अपने संस्मरण भी बड़े रोचक ढंग से सुनाया करते थे। डा० वेनिस अंग्रेजी का अध्यापन करने के साथ ही दर्शन-शास्त्र भी छात्रों को पढ़ाया करते थे।

डा० झा इन सुयोग्य अध्यापकों से विभिन्न शास्त्रों का अध्ययन बड़े मनोयोग से करने लगे और शीघ्र ही अपनी तीक्ष्ण बुद्धि तथा प्रतिभा के कारण अपनी कक्षा में तेज विद्यार्थी गिने जाने लगे। इन्होंने शीघ्र अपनी कक्षा में तथा कालेज में—अनेक पारिवारिक आपदाओं के आने पर भी—प्रथम स्थान प्राप्त किया (१८९०ई०)। एम० ए० की कक्षाओं में पढ़ते समय म० म० पं० जयदेव मिश्र से इन्होंने भारतीय दर्शन का अध्ययन किया। इस प्रकार सत् १८९२ ईस्वी में झा जी ने एम० ए० की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की। एम० ए० की मौखिक परीक्षा के परीक्षक म० म० पं० आदित्यराम भट्टाचार्य थे जिन्होंने लगातार एक घण्टे तक केवल काव्य-प्रकाश पर ही झाजी से प्रश्न किये। परन्तु इन्होंने संतोषजनक उत्तर दिया और ७०% अंक प्राप्त किये।

सन् १८९२ ई० में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् महाराजा दरभंगा की प्रेरणा से झाजी ने एल० एल० बी० की पुस्तकों का अध्ययन प्रारम्भ किया। परन्तु इस कक्षा में अध्यापकों का भाषण कुछ ही दिनों तक सुनने के पश्चात्

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनकी चित्तवृत्ति इसमें नहीं रमी। अतः काशी के तत्कालीन विद्वानों से प्रभावित होकर इन्होंने अपना जीवन संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन में व्यतीत करना ही उचित समझा। अतः इन्होंने काशी की 'दरभंगा पाठशाला' के तत्कालीन प्रधानाध्यापक म० म० पं० **शिवकुमार शास्त्री** से अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया। ये प्रतिदिन प्रातः ७ बजे से ९ बजे तक शास्त्री जी से अध्ययन करते थे और बाद में अधीत ग्रन्थों का अंग्रेजी में अनुवाद प्रस्तुत करते थे। दिन में ये महामहोपाध्याय पं० **जयदेव मिश्र** के चरणों में बैठकर व्याकरण और न्यायशास्त्र का पाठ पढ़ते थे। इसके बाद ये म० म० पं० **कैलासचन्द्र शिरोमणि** के पास जाकर वेदान्त के ग्रन्थों का अध्ययन करते थे। कभी-कभी ये म० म० पं० गंगाधर शास्त्री के यहाँ भी शास्त्रचिन्तन के लिए जाया करते थे। इस प्रकार प्रातःकाल से लेकर रात्रि तक गंगानाथ झा काशी के उपर्युक्त विद्वानों से विभिन्न शास्त्रों का अध्ययन करते तथा नवीन ग्रन्थों के अध्ययन से अपनी विद्या की वृद्धि करते थे।

इसी समय बाबू गोविन्ददासजी के कारण ये **थियासोफिकल सोसाइटी** के सम्पर्क में आये। काशी में ही इन्होंने कालोनल आलकाट तथा डा० एनी बेसेन्ट से भेंट की और उनसे बहुत प्रभावित हुए। यद्यपि अनेक वर्षों के पश्चात् इन्होंने थियोसोफिकल सोसाइटी से साक्षात् सम्बन्ध तोड़ दिया तथापि ये जीवनपर्यन्त थियोसोफी के समर्थक बने रहे।

नौकरी

महाराजा दरभंगा झाजी की साहित्यिक अभिरुचि से पूर्णतया परिचित थे। अतः उन्होंने अपने राज्य के पुस्तकालय के पुस्तकालयाध्यक्ष पद पर १००) मासिक वेतन पर इनकी नियुक्ति कर दी। इस समय इनका वय केवल २४ वर्षों का था। कहने की आवश्यकता नहीं कि गंगानाथ झा के लिए यह कार्य इनकी प्रवृत्ति और इच्छा के सर्वथा अनुकूल था। इन्होंने इस पद पर पाँच वर्षों तक कार्य किया जो इनके जीवन के सर्वाधिक आनन्दप्रद दिन थे। यहाँ पुस्तकालय में प्रातः केवल ७ बजे से १२ बजे तक काम करना पड़ता था। फिर शेष दिन में अवकाश ही रहता था। इन्होंने सुप्रसिद्ध विद्वान् म० म० पं० **चित्रधर मिश्र** से मीमांसा पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। मिश्रजी अलौकिक विद्वान् थे। वे महीनों झाजी के घर पर आकर लगभग तीन घंटों तक इन्हें श्लोक-वार्तिक का अध्यापन करते रहे। श्लोकवार्तिक का अध्ययन समाप्त करने के बाद इन्होंने तन्त्र-वार्तिक पढ़ना प्रारम्भ किया। अध्ययन का यह क्रम सन् १९०२ ई० तक चलता रहा, जब तक ये पुस्तकालयाध्यक्ष के पद पर दरभंगा में कार्य करते रहे।

अध्यापन

प्रयाग के म्योर सेन्ट्रल कालेज में संस्कृत के प्रोफेसर के पद को महामहोपाध्याय पं० आदित्यराम भट्टाचार्य सुशोभित कर रहे थे। इस कालेज में लगभग ३० वर्षों तक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नौकरी करने के पश्चात् सन् १९०१ ई० में उन्होंने इस पद से अवकाश ग्रहण कर लिया। उन दिनों इस कालेज के प्रिन्सिपल डा० थीबो थे जो क्वीन्स कालेज बनारस से स्थानान्तरित होकर वहाँ गए थे। उन्होंने बनारस में गंगानाथ झा को विद्यार्थी के रूप में पढ़ाया था। अत: पं० आदित्यराम भट्टाचार्य के सेवानिर्मुक्त होने पर डा० थीबो ने डा० वेनिस की संस्तुति पर इन्हें सन् १९०२ ई० में म्योर सेन्ट्रल कालेज में संस्कृत का प्रोफेसर नियुक्त कर दिया। यद्यपि इस पद को ग्रहण करने में कोई विशेष आर्थिक लाभ नहीं था तथापि स्वाध्याय करने, चिन्तन-मनन तथा ग्रन्थ-लेखन की सुविधा यहाँ अवश्य थी। झाजी ने इसी पद पर रहते हुए डा० थीबो के साथ विद्यारण्यलिखित **विवरण-प्रमेय-संग्रह** नामक प्रौढ़ वेदान्त ग्रन्थ का अंग्रेजी में अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने स्वयं अकेले ही **प्रशस्त-पाद-भाष्य** को अंग्रेजी में अनूदित करना प्रारम्भ किया था। म्योर सेन्ट्रल कालेज में अध्यापन के समय में ही १९०९ ईस्वी में प्रोफेसर गङ्गानाथ झा ने 'प्रभाकर स्कूल आफ मीमांसा' नामक निबन्ध प्रयाग विश्व-विद्यालय में प्रस्तुत किया और इसके फलस्वरूप इन्हें 'डाक्टर आफ फिलासफी' उपाधि प्राप्त हुई। आगे चलकर सरकार के द्वारा ये महामहोपाध्याय की उपाधि से भी मण्डित किए गए थे।

गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस के प्रिन्सिपल

डा० गङ्गानाथ झा ने सन् १९०३ ई० से सन् १९१८ ई० तक म्योर सेन्ट्रल कालेज प्रयाग में संस्कृत के प्रोफेसर के पद पर काम किया। तदनन्तर इनकी नियुक्ति सन् १९१८ ई० में गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज बनारस में प्रिन्सिपल के पद पर हुई, जब डा० वेनिस सेवामुक्त हो गए। यह बात उल्लेखनोय है कि ये प्रथम भारतीय विद्वान् थे जिन्होंने इस पद को सुशोभित किया। कालेज के स्थापनाकाल से लेकर झाजी के पहले तक इस कालेज के प्रिन्सिपल सदा विदेशी विद्वान् (अंग्रेज तथा जर्मन) ही होते चले आए थे। ऐसी परिस्थिति में डा० झा की नियुक्ति विशेष महत्त्व-पूर्ण थी। कालेज के अध्यक्ष काल में ही डा० झा को केन्द्रीय सरकार ने कौन्सिल आफ स्टेट (राज्य सभा) का सदस्य मनोनीत किया (१९२०-१९२३ ई०), जहाँ इन्होंने बड़े सम्मान के साथ अपनी सदस्यता निभाई।

प्रयाग विश्वविद्यालय में वाइस चान्सलर

डा० गङ्गानाथ झा जब संस्कृत कालेज में प्रिन्सिपल थे उसी समय प्रयाग विश्वविद्यालय के तत्कालीन वाइस चान्सलर श्री डेला फास ने किन्हीं कारणों से त्याग-पत्र दे दिया। अत: उनके रिक्त स्थान पर तत्कालीन शिक्षा-निदेशक (डी० पी० आई०) श्री मेकेञ्जी के आदेश से अपनी नियुक्ति स्थानापन्न कुलपति के रूप में सन् १९२३ ई० में होने के कारण इन्होंने प्रिन्सिपल के पद से त्यागपत्र दे दिया। कुछ महीनों के पश्चात् वाइस चान्सलर के स्थायी पद पर इनका चुनाव हो गया। डा० झा इस पद पर लगातार तीन बार चुने गए। इस प्रकार इन्होंने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नव (९) वर्षों तक प्रयाग विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर के पद को सुशोभित किया। यह बात उल्लेखनीय है कि इस पद के पूर्व अधिकारी डेला फास को जहाँ ३०००) तीन हजार रुपया मासिक वेतन दिया जाता था वहाँ डा० झा को भारतीय होने के कारण केवल २,०००) रुपया ही वेतन दिया गया परन्तु इन्होंने इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं की। डा० झा के कुलपतित्व-काल की दो घटनाएँ उल्लेखयोग्य हैं जिनका सामना इन्हें करना पड़ा था:—(१) असहयोग आन्दोलन में छात्रों का उपद्रव और (२) सहशिक्षा के विरोधियों से मुठभेड़। झा के कुलपतित्व काल में असहयोग आन्दोलन अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ था। आन्दोलनकारी छात्र विश्वविद्यालय में आकर पिकेटिंग करते और अन्य छात्रों को पढ़ने से रोकते थे। डा० झा ने उन छात्रों को शान्तिपूर्वक समझाया कि वे अपने कार्य से विरत हो जायँ। इन्होंने इस कार्य का सम्पादन करने में कभी पुलिस की सहायता नहीं ली जिसका प्रभाव छात्रों पर बड़ा ही अच्छा पड़ा और पिकेटिंग बन्द हो गई।

दूसरा कार्य सहशिक्षा के विरोधियों का सामना करना था। प्राचीन परम्परा के अनुयायी डा० झा चाहते थे कि लड़कियों के अध्यापन के लिए एक पृथक् कालेज की स्थापना की जाय। परन्तु नवीन शिक्षा-दीक्षित विद्वानों—जिनमें कुंजरूजी प्रधान थे—की सम्मति में यह कार्य उचित नहीं था। जब विश्वविद्यालय की कौन्सिल में डा० झा ने सहशिक्षा को विभक्त करने का प्रस्ताव रखा तो उन लोगों ने इनका घनघोर विरोध किया। परन्तु झाजी ने अपनी प्रखर वाणी से उनका मुँहतोड़ उत्तर दिया जिससे उन लोगों की बोलती बन्द हो गई और लड़कियों की शिक्षा के लिए एक पृथक् गर्ल्स कालेज की स्थापना विश्वविद्यालय के अन्तर्गत हो गई।

इनका तीसरा कार्य व्यक्तिगत था परन्तु इसमें भी इनको सफलता प्राप्त हो गई। प्रयाग विश्वविद्यालय में अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष प्रो० डन के अवकाश ग्रहण करने पर वह पद रिक्त हो गया। नियमानुसार वह पद डा० झा के सुपुत्र प्रो० अमरनाथ झा को मिलना चाहिए था परन्तु कुचक्रियों ने उस पद के लिए बड़ा षड्यंत्र किया और आगरा से प्रिन्सिपल फील्डन को बुलाकर उम्मेदवार के रूप में खड़ा कर दिया। परन्तु चयन-समिति ने प्रोफेसर अमरनाथ झा को ही उस पद के लिए चुना। इस प्रकार व्यक्तिगत कार्य में भी डा० झा की विजय हो गई।

डा० गंगानाथ झा ने लगातार नव (९) वर्षों (१९२३ ई० से १९३२ ई०) तक प्रयाग विश्वविद्यालय के कुलपति-पद को सुशोभित किया। लगातार तीन बार कुलपति के पद के लिए चुना जाना डा० झा की योग्यता और लोकप्रियता को प्रमाणित करता है।

सम्मान तथा उपाधियाँ

डा० गंगानाथ झाजी ने अपने जीवन में अनेक सन्मान तथा उपाधियाँ प्राप्त कीं। सन् १९०० ई० में इन्हें अपनी थीसिस "पूर्व मीमांसा में प्रभाकर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का सम्प्रदाय" (Prabhakar School of Purva Mimansa) पर डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त हुई थी। सन् १९०१ ई० में भारत सरकार ने इनकी अलौकिक विद्वत्ता के फलस्वरूप इन्हें 'महामहोपाध्याय' की उपाधि से विभूषित किया था। केन्द्रीय सरकार ने इन्हें 'कौन्सिल आफ स्टेट' का सदस्य मनोनीत कर इन्हें सन्मान प्रदान किया था, इसकी चर्चा पिछले पृष्ठों में की जा चुकी है। बम्बई की एशियाटिक सोसाइटी ने इन्हें "कैम्पवेल मेडल" प्रदान कर मानो अपने को ही सन्मानित किया था। लन्दन की रायल एशियाटिक सोसाइटी ने इन्हें अपना 'आनरेरी मेम्बर' चुना था। यह सन्मान संसार के बड़े-बड़े विद्वानों को ही प्रायः दिया जाता है। साठ वर्ष के वय को प्राप्त करने पर सन् १९३२ ई० में इन छात्रों, मित्रों और प्रशंसकों ने इनके सन्मान में एक **अभिनन्दन ग्रन्थ** भी इन्हें अर्पित किया था। केन्द्रीय सरकार ने गंगानाथ झा की मृत्यु के कुछ ही दिनों पूर्व इन्हें नाइटहुड (सर) की महनीय उपाधि से विभूषित किया था। डा० सर रामकृष्ण भाण्डारकर के केवल एकमात्र अपवाद को छोड़कर संस्कृत के किसी भी विद्वान् को आज तक यह उपाधि प्राप्त नहीं हो सकी है। इसी एक घटना से डा० झा की महत्ता का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। सन् १९७२ ई० में गंगानाथ झा रिसर्च इन्स्टीट्यूट के अधिकारियों ने इनकी जन्म-शती के अवसर पर एक ग्रन्थ का प्रकाशन भी किया था जो "गंगानाथ झा सेन्टेनरी वाल्यूम" नाम से विख्यात है। सन् १९७६ ई० में इसी संस्था ने—जो अब गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ के नाम से प्रसिद्ध है—झाजी का आत्मचरित "आटोबाइ-ग्राफिकल नोट्स आफ डा० गंगानाथ झा" के नाम से प्रकाशित कर अपनी कृतज्ञता प्रकट की है।

ग्रन्थ

गंगानाथ झा की प्रतिभा संस्कृत के दुरूह ग्रन्थों के मर्म के अनुशीलन तथा उद्धरण में जितनी प्रखर थी, उनकी लेखनी उन तत्त्वों के प्रकाशन में उसी सफलता के साथ समर्थ थी। निःसन्देह ये सरस्वती के वरद पुत्र थे तथा लेखनी के धनी थे। अंग्रेजी भाषा ही इनके ग्रन्थों का माध्यम थी। मौलिक ग्रन्थ की रचना का विषय धर्मशास्त्र, मीमांसा तथा वेदान्त था। इन ग्रन्थों में इनकी विद्वत्ता का सद्यः परिचय मिलता है परन्तु इससे भी अधिक परिचय प्राप्त होता है भारतीय दर्शन के दुरूह ग्रन्थों के उन अनुवादों में जो गंगानाथ झा की लेखनी से प्रस्तुत होकर अंग्रेजीवेत्ता भारतीयों तथा विदेशी विद्वानों के कण्ठहार बने हुए हैं। मीमांसा दर्शन में शबर-भाष्य, श्लोक-वार्तिक तथा तन्त्रवार्तिक, वेदान्त दर्शन में खण्डनखण्डखाद्य, तथा न्यायदर्शन में न्याय-भाष्य तथा न्यायवार्तिक ऐसे ही दुरूह ग्रन्थ हैं, जिनकी प्राचीन परम्परा से सुयोग्य गुरुओं के चरणों में बैठकर विषम पंक्तियों को समझना विद्वानों के लिए भी टेढ़ी खोर बना रहता है। डाक्टर झा ने इन ग्रन्थों का सर्वप्रथम अंग्रेजी में अनुवाद किया और सफल अनुवाद किया। ये ग्रन्थ अर्थतः ही विषम नहीं हैं, प्रत्युत परिमाणतः भी विशाल हैं। इन समस्त ग्रन्थों के प्रथम अंग्रेजी अनुवादक होने के नाते डा०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झा की प्रतिभा अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में विख्यात हो गयी और ये संस्कृत विद्वानों में अग्रगण्य गिने जाने लगे।

डा० झा बौद्धदर्शन के अच्छे ज्ञाता प्रतीत होते हैं। उस दर्शन में भी इनकी दृष्टि बहुत पैनी थी। तभी तो तत्त्वसंग्रह जैसे विशालकाय प्रमेयबहुल बौद्ध दार्शनिक ग्रन्थ के अनुवाद करने में इनकी लेखनी का चमत्कार सर्वत्र प्रशंसित हुआ है।

धर्मशास्त्र में भी इनका पाण्डित्य बड़ा ही पुंखानुपुंख था। मनुस्मृति के सर्वश्रेष्ठ भाष्य (मेधातिथिभाष्य) के अनुवादक होने का गौरव इन्हें प्राप्त है। इसके अतिरिक्त इन्होंने मनुस्मृति के प्रधान टीकाकारों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। मनुस्मृति के ऊपर इनका तुलनात्मक अध्ययन अनेक भागों में प्रकाशित है। इस प्रकार विभिन्न विषयों के प्रौढ़ ग्रन्थों के संस्कर्ता, व्याख्याता तथा अनुवादक होने का गौरव प्राप्त कर महामहोपाध्याय डा० गंगानाथ झा ने अपनी विमल कीर्ति सदा के लिए पण्डित-जगत् में प्रसारित कर दी।[1]

गंगानाथ झा रिसर्च इन्स्टीट्यूट

९ नवम्बर सन् १९४१ ई० में डा० गंगानाथ जी का देहावसान प्रयाग में हो गया। उस समय इनके पाँचों पुत्र जीवित थे और अनेक बड़े-बड़े उच्च पदों को सुशोभित कर रहे थे। डा० सर गोपालकृष्ण भण्डारकर ने अपनी मृत्यु से पहले ही "भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट" की स्थापना की थी। संभवतः उसी संस्था से प्रेरणा प्राप्त कर इनके सुयोग्य पुत्रों, छात्रों, मित्रों तथा प्रशंसकों ने डा० झाजी की कीर्ति को अमर बनाने के लिए सन् १९४५ ई० में प्रयाग में **"गंगानाथ झा रिसर्च इन्स्टीट्यूट"** की स्थापना की। इसके भवन का शिलान्यास तत्कालीन गवर्नर सर मारिस हेलेट ने किया था। यह भवन आज प्रयाग के एलफ्रेड पार्क में पब्लिक लाइब्रेरी के पास अवस्थित है। इस शोध-संस्थान ने अनेक पुस्तकों का प्रकाशन किया। इस संस्थान के तत्वावधान में एक शोधपत्रिका भी प्रकाशित होती है जिसमें भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति से संबन्धित विद्वत्तापूर्ण शोध निबन्ध छपते हैं। इस संस्था के द्वारा डा० उमेश मिश्र, डा० बाबूराम सक्सेना तथा क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय की प्रशंसा में 'अभिनन्दन ग्रन्थ' भी प्रकाशित किए गये हैं। इधर अनेक वर्ष हुए केन्द्रीय सरकार ने इसका अधिग्रहण कर इसका नामकरण **"गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ"** कर दिया है। अब संस्था में शोधकार्य के अतिरिक्त संस्कृत की उच्च कक्षाओं में अध्यापन का कार्य भी किया जाता है। इस प्रकार इस संस्थान के द्वारा संस्कृत के दुर्लभ ग्रन्थों का प्रकाशन, अध्ययन तथा अध्यापन किया जा रहा है।

---

१. डा० गंगानाथ झा की समस्त रचनाओं—मौलिक तथा अनूदित ग्रन्थों—के लिए विशेष द्रष्टव्य—उनकी अंग्रेजी में निबद्ध आत्मकथा (प्रकाशकः गंगानाथ झा संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरलता

डा० गंगानाथ झा सरलता और आस्तिकता की जीवन्त मूर्ति थे। इन्होंने प्राचीन परम्परा से संस्कृत के शास्त्रीय ग्रन्थों का मर्मज्ञ गुरुओं के चरणों में बैठकर विधिवत् अध्ययन किया था। ये पंक्ति-पाण्डित्य के प्रेमी प्रवीण पण्डित थे। 'पंक्ति' का अर्थ है शास्त्रीय ग्रन्थों के कठिन तथा विषम स्थल जिनका अनुशीलन विशेष परिश्रम तथा अभ्यास से ही संभव होता है। प्राचीन पद्धति से इन पंक्तियों में पाण्डित्य प्राप्त करना ही विद्वत्ता की कसौटी थी। गंगानाथ झाजी इसी पद्धति के प्रकाण्ड पण्डित थे। फलतः इन्होंने न्यायभाष्य, न्यायवार्तिक, खण्डनखण्डखाद्य, श्लोकवार्तिक, तन्त्रवार्तिक और मेधातिथि का मनुस्मृति पर भाष्य जैसे कठिन तथा दुरूह ग्रन्थों का इतना प्रामाणिक तथा विद्वत्तापूर्ण अंग्रेजी में अनुवाद किया है कि उसको समझना भी कठिन है, उसमें कोई त्रुटि निकालने की कथा तो दूर रही। इन अंग्रेजी अनुवादों का पढ़कर पाश्चात्य शिक्षा से मण्डित विद्वान् अपने ज्ञान के भाण्डार को भरते हैं। इन्हीं अनुवादों के कारण संस्कृत-जगत् में डा० गंगानाथ झा को अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हो गई थी।

इतनी अन्ताराष्ट्रीय प्रसिद्धि प्राप्त करने के पश्चात् भी डा० झा अत्यन्त विनम्र तथा सज्जन व्यक्ति थे। 'विद्या ददाति विनयम्' की यह प्रत्यक्ष मूर्ति थे। ये अपने ज्ञान की सीमा से पूर्णतया परिचित थे। यही इनकी सबसे बड़ी विनम्रता थी। श्लोकवार्तिक का अंग्रेजी अनुवाद करने के पश्चात् इन्होंने म० म० गोपीनाथ कविराज से उसकी इतिहास-सम्बन्धी भूमिका लिखने का निवेदन किया था। इस बात की चर्चा इन्होंने अपने वक्तव्य में स्पष्ट रूप से की है।

इन्होंने अपनी जीवनी में स्पष्टतया इस बात का उल्लेख किया है—"पं रामावतार शर्मा मुझसे पाण्डित्य में सभी प्रकार से बड़े हैं। शर्माजी ने प्राचीन पद्धति से शास्त्र का अनुशीलन तो किया ही है पाश्चात्य आलोचनात्मक शैली के भी वे प्रकाण्ड विद्वान् हैं। शर्माजी ने संस्कृत में ग्रन्थों का निर्माण किया इससे उनका उतना नाम नहीं हो सका जितना होना चाहिए। परन्तु मैंने अंग्रेजी भाषा में ग्रन्थों का प्रणयन किया है। अतः अपेक्षाकृत मेरी प्रसिद्धि उनसे अधिक हुई।" आजकल के आत्मश्लाघी युग में भला ऐसा कौन पण्डित होगा जो दूसरे विद्वान् को अपने से बड़ा बतलाएगा। यह स्पष्टोक्ति इनके हृदय की महत्ता और विशालता की परिचायिका है।

कक्षा में जब कोई छात्र इनसे कोई प्रश्न करता था और वह प्रश्न अप्रासंगिक होता था, तब ये उस छात्र को निरुत्साहित करने के स्थान पर प्रोत्साहित करते थे और दूसरे दिन उसका सम्यक् उत्तर देते थे। आजकल के गुरु छात्र को चकमा देकर अपनी विद्वत्ता की झूठी धाक जमाने का प्रयास करते हैं। परन्तु डा० झा इस मामले में भी अत्यन्त स्पष्टभाषी थे।

आस्तिकता

डा० गंगानाथ झा उच्चकोटि के आस्तिक थे। प्रातःकाल चार बजे नित्य-प्रति ये उठ जाया करते और शौच आदि से निवृत्त होकर पूजा पर बैठ जाते

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। ये नित्यप्रति एक सहस्र गायत्री मंत्र का जप करते थे। इस मंत्र को बिना जपे ये अन्न ग्रहण की बात तो दूर रही, जल ग्रहण भी नहीं करते थे। यह गायत्री मंत्र-जाप ही इनके पूजा-पाठ का विशिष्ट अंग था।

डा० झा बड़े ही संयमी पुरुष थे। ये संयम को जीवन के लिए आवश्यक समझते थे। भोजन छाजन, स्वप्न तथा अवबोध में तो संयम का बर्ताव करते ही थे। ये अध्ययन तथा लेखनकार्य में भी संयम का व्यवहार करते थे। नियमित रूप से नित्य-प्रति सीमित मात्रा में लेखनकार्य करना इनके दैनिक जीवन का अंग बन गया था। ये कहा करते थे कि संयम का पालन करने से ही मैं इतने अधिक ग्रन्थों के प्रणयन में समर्थ हो सका हूँ। संयमी पुरुष ही कर्मकुशल या कर्मयोगी होता है। अतः डा० झा सच्चे अर्थों में कर्मयोगी थे। इनकी आस्तिकता और संयम का ही यह फल है कि इन्होंने विद्वत्ता के जगत् में इतनी कीर्ति अर्जित की।

संस्कृत के प्रचारक

डा० झा संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् ही नहीं थे प्रत्युत उसके प्रचारक भी थे। इन्होंने संस्कृत के प्रचार के लिए नाटकों के अभिनय की व्यवस्था की थी। माघ शुक्ला वसन्त पंचमी का उत्सव प्रतिवर्ष ये बड़े ही उत्साह के साथ मनाते थे। इस दिन ये पंडितों में शास्त्रार्थ का भी आयोजन करते थे। दिन में पंडितों का अखण्ड शास्त्रार्थ होता था। काशी के दिग्गज विद्वान् इस दिन डा० झा के घर आते और शास्त्रार्थ किया करते थे। ऐसे ही एक शास्त्रार्थ के अवसर पर **पं० रामावतार शर्मा** और **रुद्रं भट्ट** भी उपस्थित थे। अधिकांश पण्डित विशिष्टाद्वैत का पक्ष लेकर रुद्रं-भट्ट से शास्त्रार्थ करने लगे।। रुद्रं भट्ट अद्वैतवाद के पक्षपाती थे। पण्डितों के उस झुण्ड में रुद्रं भट्ट का पक्ष निर्बल होते देखकर स्वयं रामावतारजी शास्त्रार्थ के अखाड़े मे उतर आये और अपनी अद्वितीय विद्वत्ता और वाक्चातुरी से विशिष्टाद्वैतवादी उन पण्डितों की बोलती बन्द कर दी। इस प्रकार रुद्रं भट्ट की जीत हो गई। शास्त्रार्थ के इस आयोजन से विद्वानों को शास्त्रार्थ करने का एक सुन्दर सुअवसर मिलता था जब वे अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया करते थे।

वसन्त पंचमी के दिन संस्कृत के नाटकों का अभिनय भी हुआ करता था। प्रायः भट्ट नारायण के वेणीसंहार नाटक को इस कार्य के लिए चुना जाता था। झाजी के पाँचों पुत्र इस अभिनय में भाग लिया करते थे। उनके अतिरिक्त झाजी के शिष्य इस अभिनय में हाथ बटाते थे। इस प्रकार बहुसंख्यक दर्शक इस नाटक को देखने के लिए आते थे। इससे संस्कृत का प्रचार होता था और नाटकों के प्रति अभिरुचि उत्पन्न होती थी।

सिद्धान्त की दृढ़ता

डा० गंगानाथ झा अपने सिद्धान्तों का दृढ़ता से पालन करने वाले व्यक्ति थे। ये अपने सिद्धान्तों के सम्बन्ध में किसी से समझौता करने वाले व्यक्ति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं थे। प्राचीन परम्परा के अनुयायी तथा भक्त होने के कारण ये स्वभाव से ही सहशिक्षा के विरोधी थे। परन्तु अंग्रेजी शिक्षा में दीक्षित सिनेट के सदस्य इन्हें एक दकियानूसी पण्डित तथा प्रतिगामी पुरुष समझते थे। एक दिन सिनेट की मीटिंग थी जिसमें इनके विरोधियों ने इनका प्रबल विरोध करने का निश्चय किया था। मीटिंग का विचारणीय विषय था सहशिक्षा या कोएजुकेशन। विरोधियों ने झाजी के तथाकथित दकियानूसी विचारों को तीक्ष्णतर्क उपस्थित करके खण्डित करने का असफल प्रयास किया। डा० झा के व्यक्तित्व पर अनेक भीषण प्रहार भी किये गये। परन्तु इस ब्राह्मण का ब्रह्मवर्चस्व उस समय दिखाई पड़ा जब इन्होंने धीर गम्भीर वाणी में, सुविचारित तर्कों के द्वारा अपने प्रतिपक्षी कुँजरू आदि जैसे विशिष्ट व्यक्तियों को भी अपनी सटीक युक्तियों तथा सारगर्भित भाषण से पराजित तथा नितान्त ध्वस्त कर दिया। अपने भाषण के बीच में ही इन्होंने पत्रों का एक पुलिन्दा सिनेट के सदस्यों के सामने दृढ़ता से फेंक कर कहा कि लीजिए और इसे पढ़िये। इस पुलिन्दा में छात्राओं के वे पत्र थे जो उन्होंने अपने प्रेमी छात्रों के पास भेजे थे तथा इसमें उन अभिभावकों के भी पत्र थे जिन्होंने डा० झा से छात्राओं को पृथक् शिक्षा देने की व्यवस्था के लिए इनसे प्रार्थना की थी। इन पत्रों को पढ़कर सिनेटर अवाक् हो गये और उन लोगों ने अन्त में सह-शिक्षा को समाप्त करने का डा० झा का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। जो सिनेटर इनका कट्टर विरोध करने तथा इन्हें पदच्युत करने के लिए आये थे, वे इनके प्रशंसक बनकर लौटे। सिनेट की इस ऐतिहासिक मीटिंग में डा० का झा ब्रह्मवर्चस्व, ब्राह्मण-तेज और भाषण-पटुता देखते ही बनता था।[1]

संस्मरण

(१) १९२२ई० का २० अप्रैल। समय अपराह्न। हिन्दू विश्वविद्यालय के वर्तमान भूभाग का परिसर। उस दिन संस्कृत एम० ए० परीक्षा का अन्तिम दिन था और दो परीक्षाएँ होने वाली थीं। पूर्वाह्न में लेख परीक्षा थी और अपराह्न में मौखिक परीक्षा। मेरे छात्र-जीवन की वही अन्तिम परीक्षा थी। विश्वविद्यालय के नगवा क्षेत्र से दूर शहर के भीतर रहने के कारण तथा यातायात के साधनों के तीव्र अभाव के कारण मैंने लेख-परीक्षा की समाप्ति के अनन्तर मौखिक परीक्षा के लिए उसी परिसर में आम्रवृक्ष के नीचे विश्राम किया और परीक्षाकाल से बहुत पहले ही आर्ट्स कालेज में पहुँच गया। मेरी वाक्-परीक्षा के अन्तरंग परीक्षक तो आचार्य आनन्दशंकर ध्रुवजी थे और बहिरंग परीक्षक थे डा० गंगानाथ झा।

ठीक ३ बजे अपराह्न में ध्रुवजी ने डा० झा को अपने साथ लेकर अपने कमरे में, जहाँ मौखिक परीक्षा होने वाली थी, प्रवेश किया। हमलोग परीक्ष्य छात्र संख्या में पाँच ही थे जिनमें उमेश मिश्र डा० झा के शिक्षा-गुरु महामहोपाध्याय पं० जयदेव

---

१. इस घटना का प्रत्यक्षदर्शी वर्णन प्रो० क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय ने लेखक को सुनाया था जो स्वयं उस सिनेट की सभा में उपस्थित थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिश्र के आत्मज होने के नाते उनके परिवार के ही सदस्यकल्प थे। मेरी बारी सबसे पहले ही आई। परीक्षा के कमरे में प्रवेश करने पर ध्रुवजी ने डा० झा से मेरी पूर्वपीठिका कह सुनाई कि मैंने गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज से (जिसमें डा० झा ही तत्कालीन प्रिन्सिपल थे) साहित्याचार्य के अनेक खण्डों की परीक्षा बड़ी योग्यता के साथ उत्तीर्ण की है और उनकी कक्षा का एक सुयोग्य छात्र हूँ। डा० गंगानाथ झा ने मेरे परीक्ष्य ग्रन्थों में से सबसे कठिन ग्रन्थ 'काव्यप्रकाश' से प्रश्न पूछना आरम्भ किया। डाक्टर साहब मीमांसा के मूर्धन्य विद्वान् थे। फलतः इन्होंने काव्यप्रकाश के व्यञ्जना – साधक उल्लास (पंचम उल्लास) से मीमांसा शास्त्र से संवलित एक महनीय प्रश्न को उठाया और उस समस्या का समाधान माँगा। पूर्वपक्ष का प्रश्न है कि शब्दश्रवण के अनन्तर जितने अर्थ उपस्थित होते हैं, उनके उपस्थापन में अभिधा का ही व्यापार जागरूक रहता है, तब व्यंजना की आवश्यकता क्या है? उत्तर पक्ष का समाधान है कि यदि यह तथ्य स्वीकारा जाय तो श्रुति, लिंग, वाक्य, प्रकरण, स्थान और समाख्या के समवाय होने पर पूर्व-पूर्व की बलवत्ता मीमांसा शास्त्र में क्यों मानी जाती है। डा० झा ने उत्तर पक्ष से इसी समाधान की बात पूछी और श्रुति, लिंग आदि छहों प्रमाणों का उदाहरण-पुरस्सर विवरण माँगा। साहित्य के छात्र के सामने मीमांसा-तथ्य का विवरण देना एक दुरूह समस्या ही उपस्थित हो जाती है। आचार्य ध्रुवजी ने इसका समाधान संक्षेप मे ही बतलाया था, परन्तु मीमांसा-प्रवीण डा० झा ने इन छहों का दृष्टान्त अलग-अलग माँगा जिसके लिए वैदिक याग विधि का परिनिष्ठित ज्ञान अपेक्षित था। भगवान् की कृपा ही समझिये कि मैंने इनका उदाहरण टीकाग्रन्थों की सहायता से तैयार कर रखा था। अतः डा० झा के प्रश्न का सम्यक् उत्तर दे सका। इसके अनन्तर ध्रुवजी ने काव्यलक्षण, लक्षणा आदि प्रश्नों को पूछ कर ठेठ साहित्य विषय की ओर प्रश्नों की दिशा बदल दी। पण्डित गंगानाथ झा ने बड़ी कड़ाई से अपने प्रश्न का उत्तर माँगा और मेरे यथोचित उत्तर देने पर वे वस्तुतः बड़े प्रसन्न हुए। उनकी प्रसन्नता की सूचना मुझे घंटे भर के भीतर ही विचित्र ढंग से मिल गई।

घटना यों घटी। परीक्षा समाप्त होने पर मैं दुर्गाजी के दर्शनों के लिए दुर्गाकुण्ड स्थित उनके मन्दिर में गया। मैं दर्शन कर सड़क के किनारे खड़ा ही हुआ था कि पण्डित गंगानाथ झा की मोटर सामने से निकल गई। उनकी दृष्टि मुझपर पड़ी और उन्होंने उमेशमिश्र से (जो उनके साथ ही मोटर में बैठे थे) मेरे विषय में पूछ-ताछ की। इसका उल्लेख उमेशजी ने मुझसे भेंट होने पर अगले दिन किया। उन्होंने अपनी ओर से यह भी कहा—"झा साहब आपके उत्तर से अत्यन्त प्रसन्न हुए थे और आपके विषय में अनेक प्रश्नों को पूछ कर उन्होंने प्रकारान्तर से अपनी अनुकूल सम्मति आपके लिए दी थी।"

डा० गंगानाथ से काशी में प्रिंसिपल रहते समय मेरी यही पहली भेंट थी। इससे मुझे तभी उनके स्वभाव का परिचय मिल गया कि वे 'व्याघ्रमुख गौ' थे—देखने में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहिरंग तो बड़ा ही रूखा और कठोर, परन्तु अन्तरंग अत्यन्त कोमल तथा सहानुभूति-पूर्ण। मुझे हर्ष हुआ जब मेरे मित्रों ने भी इस सम्मति से अपनी सहमति प्रकट की।

(२) १९२२ई० में ही मुझे पण्डित गंगानाथजी के दर्शन का दूसरा अवसर भी प्राप्त हुआ। जून १९२२ ई० की बात है। उस समय मैंने एम० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की थी और अपनी कक्षा में प्रथम स्थान भी प्राप्त किया था। संयोगवश इसी समय हिन्दूविश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में एक असिस्टेण्ट प्रोफेसर का स्थान रिक्त हुआ जिसके लिए मैंने प्रार्थनापत्र दिया था। इस संबंध में मैं संस्कृत विभाग के अध्यक्ष आचार्य ए० बी० ध्रुव से जो विश्वविद्यालय के प्रो० वाइसचान्सलर भी थे— मिला और उनसे अपना प्रयोजन कह सुनाया। ध्रुव के प्रिय शिष्य होने के कारण वे मुझे अच्छी तरह से जानते थे। अतः उन्होंने मुझे यह सलाह दी कि तुम पं० गोपीनाथ कविराज और डा० झा से एक प्रशंसात्मक पत्र (टेसृमोनियल) ले आओ। इससे तुम्हारी नियुक्ति में सुविधा होगी।

इसी उद्देश्य से मैं दूसरे दिन प्रातःकाल डा० झा के "मिथिला" नामक निवास स्थान पर पहुँचा। उस समय डा० झा को बग्गी तैयार थी और वे कहीं जाने के लिए उद्यत थे। मैं जब उनके पास पहुँचा तब उन्होंने पूछा, क्या है ? इसपर मैंने विनम्रता से अपने आने का उद्देश्य उन्हें बतलाया। इसपर छूटते ही उन्होंने कहा, "मैं आपको नहीं जानता। अतः प्रशंसात्मक पत्र कैसे दे सकता हूँ ? इस पर मैंने पुनः निवेदन किया कि आप एम० ए० की मेरी मौखिक परीक्षा के परीक्षक रह चुके हैं और आपने मुझे जो उच्च अंक प्रदान किया था उससे ज्ञात होता है कि आप मेरे उत्तर से अत्यन्त सन्तुष्ट थे। इस आधार पर चाहें तो प्रशंसापत्र मुझे दे सकते हैं। इस पर डा० झा ने कहा "यह तो गोपनीय विषय है। इसके आधार पर कोई टेस्टिमोनियल नहीं दिया जा सकता।" मैं निराश होकर पं० गोपीनाथ कविराज के यहाँ गया और उनसे सब घटना कह सुनाई। कविराजजी ने सलाह दी कि पहले मैं तुमको प्रशंसात्मक पत्र देता हूँ। इसे लेकर तुम डा० झा को दिखला देना। इस आधार पर वे निश्चय ही तुमको वह सर्टिफिकेट दे देंगे।

दूसरे दिन पुनः मैं प्रातःकाल डा० झा के निवास स्थान पर पहुँचा। समय प्रातः ८ बजे के आसपास था। डा० झा अपने कमरे में नंगे बदन पूजा करके बैठे हुए थे एक काठ के बड़े तख्ते (चौकी) पर, ललाट पर त्रिपुण्ड सुशोभित था और गले में रुद्राक्ष की मोटी माला पड़ी थी। वे कोई पुस्तक पढ़ रहे थे। मैंने जाकर उन्हें कविराजजी का वह प्रशंसा-पत्र दे दिया। उन्होंने उसे पढ़ा और मुझसे बिना कुछ कहे ही एक बहुत सुन्दर प्रशंसापत्र लिखकर दे दिया जिसमें मेरी योग्यता की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई थी। इससे इनके चरित्र की इस विशेषता का पता चलता है कि ये बिना व्यक्ति को अच्छी तरह जाने, बिना निश्चित आधार के प्रशस्तिपत्र नहीं दिया करते थे। इस प्रकार इनके चरित्र की ईमानदारी का पता चलता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) मैं सन् १९६४-६५ में संस्कृत विश्वविद्यालय में शोधसंस्थान के निदेशक के पद पर नियुक्त था। उस समय डा० झाजी के ज्येष्ठ जामाता पं० दुर्गाधर झा शोध-सहायक के पद पर कार्य कर रहे। उनसे यदा कदा डा० झा० के संबंध में वार्तालाप करने का अवसर मिल जाता था। एक दिन पं० दुर्गाधर झा ने कहा कि डा० झा बड़े ही संयमी पुरुष थे। वे स्वाध्याय तथा दैनिक व्यवहार में सदा संयम तथा नियम का पालन किया करते थे।

वे प्रायः एक ही बार—मास में घर के व्यवहार में आने वाले समस्त खाद्य पदार्थों— दाल, चावल, गेहूँ, घी, तेल, नमक, मसाला आदि को किसी एक ही बनिये की दुकान से खरीद कर रख दिया करते थे। कुछ लोगों ने उनसे कहा, वह बनिया आपको बहुत ठगता है। अतः आप उससे सामान न खरीदा करें। झाजी ने उत्तर दिया कि मेरे पास इतना समय नहीं है कि रोज-रोज मैं बाजार जाकर सामान खरीदता फिरूँ। ये अपने रुपयों को सदा बकस में ताला-चाभी के भीतर रखा करते थे। अपने खर्च का सदा हिसाब रखते थे। इस प्रकार इन्हें अपने जीवन में कभी आर्थिक कष्ट का सामना नहीं करना पड़ा।

अध्ययन और लेखन कार्य के संबंध में भी ये सदा संयम बरतते थे। इनका नियम था, प्रतिदिन प्रातःकाल पूजा-पाठ के पश्चात् स्वाध्याय तथा लेखन का काम करना। इस नियम में कभी व्याघात नहीं हो सकता था। बचपन से ही ये स्वाध्याय के व्यसनी थे। कालेज में गुरुमुख से ये जो कुछ पढ़ते थे उसका उसी दिन रात में अंग्रेजी भाषा में अनुवाद कर लिया करते थे। इस संयमित लेखन कार्य के कारण ही डा० झा इतनी पुस्तकों के लेखन, सम्पादन तथा अनुवाद में सफलीभूत हो सके।

पं० नारायण शास्त्री खिस्ते ने अपने ग्रन्थ 'विद्वत्चरित पंचकम्' में डा० झा के चरित्र का जो विश्लेषण निम्नांकित शब्दों में किया है वह अक्षरशः सत्य है।

"विद्यावंश-यशांसि सन्ति विमलान्युच्चैस्तमं वैभवं,
चेतः किञ्च दयाघनं विजयते येषां श्रियं पुष्णताम्।
वाग्देवी सततं स्थिति वितनुते यद्-वक्त्र-पद्मासने,
पद्मा पाणिगतैव राजतितमां प्रीत्यैव यत्सन्निधौ॥

× × ×

सौभाग्यं स्पृहणीयमेव सकलैर्वर्धिष्णु येषां सदा,
पुत्राः किञ्च पवित्रचारु-चरिताः विद्वद्गणे संस्तुताः।
नाना ग्रन्थविधानजा निरुपमा कीर्तिश्च लोकोत्तरा,
गङ्गानाथपदाङ्कपण्डितवराः राजन्ति राजोपमाः॥

परिवार

डा० गगानाथ झा का पारिवारिक जीवन बड़ा सुखी था। भगवान् की कृपा से इन्हें पाँच पुत्र थे और पाँचों ही सुयोग्य, सुशील तथा उच्चपदाधिकरी थे। (१)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० भवनाथ झा (दरभंगाराज के मुख्य चिकित्साधिकारी); (२) डा० अमरनाथ झा (अंग्रेजी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् तथा प्रयाग विश्वविद्यालय के दीर्घकालीन कुलपति); (३) पं० शिवनाथ झा (उत्तर प्रदेश सरकार के जिला विद्यालय निरीक्षक); (४) पं० विभूतिनाथ झा (बिहार सरकार के शासनाधिकारी); (५) पं० आदित्यनाथ झा (उत्तर प्रदेश शासन के मुख्य सचिव, दिल्ली प्रदेश के उपराज्यपाल तथा संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी के प्रथम कुलपति)। इन पाँचों सुयोग्य पुत्रों में से अमरनाथ झा तथा आदित्यनाथ झा अपनी प्रतिभा, शासनयोग्यता तथा शैक्षणिक वैदुषी के कारण नितान्त विश्रुत एवं लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् थे। इन दोनों के ऊपर डा० गंगानाथ झा की संस्कृतविषयक विद्वत्ता की तथा शासन-सम्बन्धी कर्मठता की गहरी छाप पड़ी थी। परन्तु दुःख से कहना पड़ता है कि ये पाँचों ही अल्पायु हुए और साठ-बासठ वर्ष के वय तक पहुँचते-पहुँचते दिवंगत हो गए। हा ! हन्त !!

शिष्य-मण्डली

डा० गंगानाथ झा की शिष्य-मण्डली बड़ी विस्तृत थी। म्योर सेन्ट्रल कालेज, प्रयाग में अध्यापन करते समय सहस्रों छात्रों को इन्होंने विद्यादान दिया जिनमें तीन शिष्यों का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है—(१) डा० बाबूराम सक्सेना, २) डा० उमेश मिश्र तथा (३) प्रो० क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय।

(१) **डा० बाबूराम सक्सेना** ने डा० झा से संस्कृत साहित्य का गंभीर अध्ययन किया। म्योर सेन्ट्रल कालेज प्रयाग में इन्होंने डा० झा के चरणों में बैठकर संस्कृत के साथ ही भाषाशास्त्र को भी अपने शोध का विषय बनाया। प्रयाग विश्वविद्यालय से एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् ये काशी चले आये और सुप्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक डा० टर्नर के निर्देशन में शोध कार्य करने लगे। अनुसन्धान-कार्य समाप्त होने के पश्चात् इन्होंने "इवोल्यूशन आफ अवधी" (अवधी भाषा का विकास) विषय पर डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त की। आपको प्रयाग विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में प्राध्यापक पद पर नियुक्ति हो गई। डा० आचार्य के अवकाश ग्रहण के पश्चात् इन्होंने अध्यक्ष पद को अनेक वर्षों तक सुशोभित किया। संस्कृत विभाग के अध्यक्ष पद से अवकाश लेने के बाद सागर विश्वविद्यालय (मध्य प्रदेश) में भाषाशास्त्र विभाग के अध्यक्ष बने। तदनन्तर रायपुर में रविशंकर विश्वविद्यालय के कुलपति के पद पर नियुक्त होकर इन्होंने उस विश्वविद्यालय की बड़ी सेवा की तथा उसे सुप्रतिष्ठित बनाने में विशेष योगदान दिया। इसके अनन्तर केन्द्रीय हिन्दी-संस्थान के उपाध्यक्ष पद का कार्य बड़ी योग्यता से सँभाला। अन्त में कुछ दिनों तक प्रयाग हिन्दू विश्वविद्यालय के भी कुलपति रहे।

डा० बाबूराम सक्सेना बड़े ही कार्य-कुशल प्रशासक तथा नितान्त सफल प्राध्यापक हैं। जिस कार्य को इन्होंने अपने हाथ में लिया उसे बड़े सफलतापूर्वक सम्पन्न किया। भाषाविज्ञान के विषय में इनके द्वारा प्रणीत ग्रन्थ अपने विषय के मान्यमानक ग्रन्थ हैं। हिन्दी की बोली पर भाषावैज्ञानिक अनुसंधान करने का कार्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० सक्सेना ने ही सर्वप्रथम आरम्भ किया। इनका शोधप्रबन्ध 'इवोलूशन आफ अवधी' इस विषय में एक प्रामाणिक शोधप्रबन्ध है। इनका 'सामान्य भाषाविज्ञान' नामक ग्रंन्थ हिन्दी के विषय की विवेचना तथा भाषाशास्त्रीय सूक्ष्म दृष्टि के कारण नितान्त प्रसिद्ध है जिसके द्वारा हिन्दी के छात्र तथा जिज्ञासु जन भाषाशास्त्र से प्रामाणिक परिचय सरलता से प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार ये हिन्दीजगत् में भाषाविज्ञान के प्रचारक तथा प्रसारक के रूप में विशेष उल्लेखनीय हैं।

(२) डा० उमेश मिश्र

डा० गंगानाथ झा के शिष्यों में डा० उमेश मिश्र अन्यतम थे। डा० उमेश मिश्र के पिता म० म० पं० जयदेव मिश्र डा० झा के गुरु थे। अतः गुरु के पुत्र के ऊपर इनकी विशेष कृपादृष्टि का होना स्वाभाविक ही था। इनका जन्म मिथिला में जनकपुर के पास ही किसी ग्राम में १८९५ ई० में हुआ था।

पं० उमेश मिश्र ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से एम० ए० की परीक्षा सन् १९२२ ई० उत्तीर्ण की थी। ये वर्तमान लेखक के सतीर्थ्य थे। एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् डा० गंगानाथ झा ने—जो उस समय प्रयाग विश्वविद्यालय के कुलपति के पद को सुशोभित कर रहे थे—इन्हें प्रयाग में संस्कृत विभाग में प्राध्यापक के पद पर नियुक्त किया। जब डा० झा संस्कृत कालेज के प्रिंसिपल थे, तब उमेश मिश्र ने उनसे मीमांसा शास्त्र का सम्यक् अध्ययन किया। अन्य दर्शनों में भी इनकी पैनी पैठ थी। उमेश मिश्र ने डा० झा के ही निर्देशन में प्रयाग विश्वविद्यालय से १९३१ ई० में दर्शनशास्त्र में डा० लिट् की उपाधि प्राप्त की। कुछ वर्षों के पश्चात् ये प्रयाग विश्वविद्यालय में रीडर के पद पर नियुक्त हुए। डा० बाबूराम सक्सेना के अवकाश प्राप्त करने पर इन्होंने कुछ वर्षों तक संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष पद को सुशोभित किया था। इस पद से निवृत्त होने के पहले ही ये संस्कृत विश्वविद्यालय दरभंगा के कुलपति के पद पर नियुक्त किये गये। अनेक वर्षों तक इन्होंने इस पद को सुशोभित किया और वहाँ से सेवानिवृत्त होने पर ये प्रयाग के अपने आवास में ही रहते थे। 'महामहोपाध्याय' की उपाधि से ये पहले ही सत्कृत किये जा चुके थे। इनका देहावसान प्रयाग में ही १९६७ ईस्वी में हुआ।

डा० उमेश निश्र ने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन अंग्रेजी, हिन्दी तथा मैथिली में किया है। अंग्रेजी में इनके मौलिक ग्रन्थ हैं—(१) **हिस्ट्री आफ इन्डियन फिलासफी** (३ भाग, जिनमें प्रथम दो भाग प्रकाशित है। १९५७), (२) **कन्सेप्शन आफ मैटर एकारडिंग टु न्यायवैशेषिक** (१९३६), (३) **मीमांसा कुसुमांजलि** (मीमांसा ग्रन्थों का विवेचनात्मक सूचीपत्र), (४) **ए क्रिटिकल स्टडी आफ भगवद्गीता** (१९६६), हिन्दी में (५) **सांख्ययोग** दर्शन, (१९५८), **भारतीय तर्कशास्त्र** की रूपरेखा (१९५०), **भारतीयदर्शन** (१९६०) (उत्तर प्रदेश सरकार की हिन्दी समिति द्वारा प्रकाशित) और **विद्यापति ठाकुर** (हिन्दुस्तानी एकेडमी)। मैथिली में चार मौलिक ग्रन्थ (कथा, तथा साहित्य-सम्बन्धी)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्होंने अनेक संस्कृतग्रन्थों का विमर्शात्मक संस्करण प्रकाशित किया है जिनमें मुख्य हैं--महादेवकृत **न्यायकौस्तुभ**, हलायुधकृत **मीमांसा-सारसर्वस्व** (पटना १९३४), **विज्ञान दीपिका** (विवृति के साथ, पद्मपादाचार्यकृत, प्रयाग); **विद्याकर सहस्रकम्** (विद्याकर मिश्र द्वारा प्रणीत सूक्ति-संग्रह), आलोक तथा दर्पण के साथ **तत्त्व चिन्तामणि** (दरभंगा १९५७) । इनके अतिरिक्त अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत तथा मैथिली की शोध पत्रिकाओं में अनेक शोध लेख प्रकाशित किये गये हैं ।

(३) प्रो० क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय

प्रो० क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय डा० झा के शिष्यों में अन्यतम थे । ये संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् थे । इसके साथ ही इन्होंने वेदों का गम्भीर अध्ययन किया था । वेदों के अनुशीलन के साथ-साथ जरथुस्त्र धर्म के आदि ग्रन्थ जेन्दा अवेस्ता का भी इनका अध्ययन गम्भीर था । भारतीय इतिहास और संस्कृति विषयों को भी इन्होंने अपने शोध का विषय बनाया था और प्राचीन भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में इनके अनेक सिद्धान्त प्रचलित थे । डा० झा से इन्होंने मीमांसा शास्त्र का विधिवत् अध्ययन किया था । अतः प्राच्य शास्त्रों के सम्यक् अनुशीलन के साथ ही ये नवीन पाश्चात्य शोध-पद्धति के भी पूर्ण ज्ञाता थे ।

जन्म तथा शिक्षा

क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय का जन्म बंगाल में २७ अक्टूबर सन् १८९६ ई० को हुआ था । बंगाल के सुप्रसिद्ध चौबीस परगना नामक जिला में निमता गाँव इनकी जन्मभूमि थी । ये उसी उच्चकुल में पैदा हुए थे जिसको बंगाल के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार और 'वन्देमातरम्' के जन्मदाता बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने अलंकृत किया था । इनके पिता का नाम अतुलचन्द्र चट्टोपाध्याय और माता का नाम सुरसुन्दरी देवी था । इनकी माता बड़ी धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थीं जिनका प्रभाव चट्टोपाध्यायजी के जीवन पर प्रचुर मात्रा में पड़ा । इनके पिता उत्तर प्रदेश (सचिवालय) में डिपुटी सेक्रेटरी के पद को सुशोभित करते थे । ये अंग्रेजी के भी अच्छे विद्वान् थे ।

क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय ने सन् १९१३ ई० में मेट्रिकुलेशन परीक्षा कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्रथम श्रेणी में, सन् १८१५ ई० में इण्टर परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में ही 'पास' की । म्योर सेण्ट्रल कालेज, इलाहाबाद से सन् १९१७ ई० में बी० ए० की डिग्री प्राप्त की । परन्तु एम० ए० में अध्ययन करने के लिए ये काशी चले आये और क्वीन्स कालेज, बनारस से १८१८ ई० में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की । सन् १९२१ ई० में वेद विषय लेकर तथा सन् १८२२ ई० में वेदान्त लेकर इन्होंने पुनः एम० ए० की परीक्षा कलकत्ता विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण की ।

काशी में अध्ययन करते समय भाषाविज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान् डा० तुकाराम कृष्ण लड्डु से भाषाशास्त्र का सम्यक् अध्ययन किया । इस प्रकार इन्होंने वेद और जेन्दा अवेस्ता की भाषाओं का गुरुओं से गम्भीर अध्ययन किया । डा० गंगानाथ झा के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणों में बैठकर इन्होंने मीमांसा शास्त्र को प्राचीन पद्धति से पढ़ा। अध्ययन समाप्ति के साथ ही साथ इन्हें अध्यापक का पद प्राप्त हो गया। १९१९ ई० से लेकर १९२३ ई० तक ये बंगाल के रंगपुर में स्थित कारमाइकेल कालेज में संस्कृत के व्याख्याता पद पर बड़ी योग्यता से कार्य करते रहे। इन वर्षों में इन्होंने अध्यापकी के साथ कलकत्ता विश्वविद्यालय से वेद तथा वेदान्त विषय लेकर एम० ए० की परीक्षा बड़ी योग्यता के साथ उत्तीर्ण की। १९२४ ईस्वी में प्रयाग विश्वविद्यालय में नियुक्त होकर प्रयाग आ गये। यहीं ३४ वर्षों तक आपने बड़े उत्साह तथा लगन के साथ अध्यापन कार्य किया। १९५८ ई० में सेवानिवृत्त हो गये। इनका वैदुष्य भारतीय दर्शन विशेष कर वेदान्त तथा मीमांसा में तथा वैदिक साहित्य के नाना विभागों में विद्वानों के द्वारा प्रशंसित एवं सत्कृत था।

संस्कृत विश्वविद्यालय, बनारस में संस्कृत शोधसंस्थान में निर्देशक के पद पर नियुक्ति हो गई। वहाँ से पुनः अवकाश ग्रहण करने के बाद ये रेडियो विभाग में संस्कृत के सलाहकार के पद पर भी कार्य करते रहे। इन्होंने संस्कृत विश्वविद्यालय में कुलपति के पद को भी कुछ समय के लिए सुशोभित किया था।

भाषण तथा सन्मान

चट्टोपाध्याय जी की विद्वत्ता की धाक सभी जगह जमी हुई थी। अतः अनेक विश्वविद्यालयों ने इन्हें अपने यहाँ व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया था। सन् १९६६ ई० में इन्होंने तिरुपति विश्वविद्यालय में वेद तथा अवेस्ता पर भाषण दिया था। लालबहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली में इन्होंने कालिदास को अपने व्याख्यान का विषय बनाया था। सन् १९३७ ई० में आल इण्डिया ओरिएन्टल कान्फरेन्स के एक अधिवेशन के वेद विभाग के आप अध्यक्ष चुने गये थे। सन् १९४६ ई० में साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के कराची अधिवेशन में आपने दर्शन विभाग की अध्यक्षता की थी। भारत की स्वतंत्रता-प्राप्ति के अवसर पर सन् १९४७ ई० में आपने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठत करने में सर्वाधिक योगदान किया था। इसके फलस्वरूप हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने सन् १९४९ ई० 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि से आपको अलंकृत किया।

चट्टोपाध्यायजी विद्या के धनी होते हुए भी लेखनी में बद्धमुष्टि थे। अतः इन्होंने विशेष ग्रन्थों की रचना नहीं की है। कलकत्ता विश्वविद्यालय में 'तुलनात्मक धर्म' पर तथा हिन्दू विश्वविद्यालय में 'वैदिक धर्म' के ऊपर इन्होंने अंग्रेजी में जो भाषण दिये थे वे ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। ३ मार्च सन् १९७४ ई० में काशी में ही संस्कृत का यह विद्वान् परलोक को चला गया।

पं० क्षेत्रेशचन्द्रजी का वैदुष्य संस्कृत भाषा तथा साहित्य में बड़ा ही गम्भीर था। एक ही विषय के ऊपर नयी-नयी खोजों से संवलित इनके लेख इन बात के स्पष्ट सूचक हैं कि ये किसी तथ्य के मूल तक पहुँचने के लिए कितना परिश्रम करते थे और समस्या

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का यथार्थ समाधान करके ही वे सिद्ध मनोरथ होते थे। वेद तो इनका अपना विषय ही था। अवस्ता का अध्ययन इन्होंने अपने ही परिश्रम एवं प्रयत्न से किया था। फ्रेञ्च और जर्मन भाषा के मर्मज्ञ विद्वान् थे। तुलनात्मक अध्ययन करने में इनकी प्रतिभा बहुत चमत्कृत होती थी। प्राचीन भारत के इतिहास के विषय में भी इनके अनुसंधान बड़े गम्भीर तथा तलस्पर्शी होते थे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्राचीन इतिहास तथा पुरातत्त्व का नया विभाग इन्हीं के प्रयास का फल है जिसके अध्यक्ष डा० गोवर्धनराय शर्मा इन्हीं के पट्ट शिष्य हैं। प्रगाढ़ अनुशीलन में व्यस्त रहने के कारण ही इनके द्वारा लिखित सामग्री मात्रा में न्यून भले ही हो, परन्तु अपनी गम्भीरता में तथा विविधता में किसी प्रकार न्यून नहीं है। इन्हीं के विद्वान् शिष्य डा० विद्यानिवास मिश्र ने इनके शोध-प्रबन्धों के चार भागों में प्रकाशन की योजना तैयार की है जिसमें दो भाग मुद्रित तथा प्रकाशित हो गये हैं। विदेशों में भी इनके वैदुष्य की ख्याति विशेष थी। इसी लिए इन्होंने मास्को तथा अमेरिका में होने वाली अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृत कांग्रेस के कई विभागों का अध्यक्षपद सुशोभित किया था।

विद्यानिवास मिश्र

पण्डित क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय की प्रसृत शिष्य मण्डली में डा० विद्यानिवास मिश्र का नाम अवश्यमेव अग्रगण्य है। ये भाषाविज्ञान के बड़े ही प्रवीण मर्मज्ञ हैं। पाणिनीय व्याकरण तथा संस्कृत साहित्य का इनका अध्ययन नितान्त गम्भीर तथा तलस्पर्शी है। अष्टाध्यायी का भाषाशास्त्रीय विश्लेषण सम्पादन कर इन्होंने अपने वैदुष्य का बड़ा मनोरम निदर्शन प्रस्तुत किया है। ये साहित्य के मर्मज्ञ आलोचक, हिन्दी गद्य के अद्भुत शैलीकार लेखक तथा भारतीय संस्कृति के परम उन्नायक है। इनकी गुरुभक्ति नितान्त श्लाघनीय तथा प्रशंसनीय है। चट्टोपाध्यायजी के शोधपत्रिकाओं में बिखरे गम्भीर शोधलेखों को सम्पादित कर चार खण्डों में प्रकाशित करने की इनकी योजना बड़ी उपादेय है जिसके अनुसार दो खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। शेष प्रकाशनाधीन हैं। इस प्रकार अपने आराध्य गुरुदेव की कीर्ति को स्थायी एवं प्रोज्ज्वल बनाने में डा० विद्यानिवासजी का प्रयास सर्वथा श्लाघनीय एवं अनुकरणीय है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११

पण्डित गोपीनाथ कविराज

(आस्पद—कविराज, उपाधि—महामहोपाध्याय, पद्मविभूषण)

महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित, भारतीय दर्शन के अद्भुत विद्वान् तथा तंत्रशास्त्र के तलस्पर्शी ज्ञाता थे। यदि इन्हें 'भारतीय विद्या का चलता-फिरता विश्वकोश' कहा जाय तो कुछ अत्युक्ति नहीं होगी। कविराजजी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। अतः भारतीय विद्या का कोई भी ऐसा अंग नहीं जो इनकी प्रतिभा से अछूता रह गया हो। इन्होंने अपने विद्यार्थी जीवन में साहित्य तथा दर्शन का ही अध्ययन नहीं किया था बल्कि भारतीय इतिहास तथा पुराशास्त्र एवं अभिलेख भी इनके अनुसन्धान के विषय रहे। इस प्रकार प्राचीन तथा अर्वाचीन सभी विषयों का इन्होंने केवल अध्ययन नहीं किया था प्रत्युत इन्हें हस्तामलक भी कर लिया था।

कविराजजी अभूतपूर्व बहुश्रुत विद्वान् थे। संस्कृत साहित्य के अतिरिक्त इन्होंने पाश्चात्य देशों के साहित्य—अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन—का भी गम्भीर अध्ययन किया था। इस प्रकार प्राच्य और पाश्चात्य दोनों के साहित्य का इन्हें परिनिष्ठत ज्ञान ही नहीं था, बल्कि इनके ये पारंगत पण्डित भी थे। दर्शन और तन्त्रशास्त्र इनके शोध के प्रधान विषय थे। दर्शन शास्त्र में भी न्याय और वैशेषिक की इन्होंने जो 'बिब्लियोग्राफी' लिखी है उससे इनकी तलस्पर्शी विद्वत्ता का पता चलता है। भारतीय दर्शन की किसी भी समस्या को ये अपने प्रातिभ ज्ञान से सरल में ही सुलझा दिया करते थे। इसीलिए भारत के विभिन्न प्रान्तों के विद्वान् तथा शोधार्थी अपनी शंकाओं के समाधान के लिए इनकी शरण में आया करते थे।

कविराजजी विद्वान् होने के अतिरिक्त एक पहुँचे हुए साधक भी थे। इनका सारा समय साधना तथा योग-क्रियाओं के अभ्यास में व्यतीत होता था। तन्त्रशास्त्र के ये पारगामी मनीषी थे। साधक होने के कारण ये तन्त्रशास्त्र के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों पक्षों के पूर्ण ज्ञाता थे। ये साधना की अतिभूमि में पहुँचे हुए साधक थे। अतः ये सांसारिक विषय-वासनाओं, मान-अपमान की भावना से परे थे। कविराजजी पूर्णतया स्थितप्रज्ञ पुरुष थे। गीता के 'मानापमानयोः तुल्यः, तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः' के ये मूर्तिमान् प्रतीक थे। ये जितने बड़े तलस्पर्शी विद्वान् थे उतने ही बड़े साधक भी थे। अतः विद्वत्ता, साधना और स्थितप्रज्ञता का मणिकांचन संयोग इनके व्यक्तित्व की प्रधान विशिष्टता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म तथा शिक्षा

कविराजजी के पूर्वज बंगाल (अब बाँगला देश) के मैमनसिंह जिले के तंगइल तहसील के दन्या नामक गाँव के निवासी थे। इनके प्रपितामह पं० कमलाकान्त बड़े धनी व्यक्ति थे तथा वे सामन्ती वैभव के प्रतीक माने जाते थे। परन्तु अकस्मात् उनके पुत्र चन्द्रनाथजी की मृत्यु असमय में ही हो गयी। कविराजजी के पिता का नाम वैकुंठनाथ था जो अपने पिता (चन्द्रनाथ) जी की मृत्यु के समय केवल छः या सात वर्षों के थे। इस प्रकार छोटी अवस्था में ही वैकुण्ठनाथ सर्वथा निराश्रित हो गये। ऐसी विषम दशा में इनके मामा पं० कलाचन्द्र सान्याल इन्हें अपने काँठालिया ग्राम में ले गये। यह गाँव कविराजजी के पैतृक निवासस्थान दन्या से केवल अठारह मील दूर था।

पं० कलाचन्द सान्याल धनी व्यक्ति थे। परन्तु उन्हें कोई सन्तान नहीं थी। इसीलिए उन्होंने अपने भानजे (वैकुण्ठनाथ) का लालन-पालन पुत्र की ही भाँति किया। उन्होंने वैकुण्ठनाथ का विवाह धामराई गाँव के प्रसिद्ध मौलिक परिवार में सन् १८७६ ई० में कर दिया। वैकुण्ठनाथ ने गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज कलकत्ता से एम० ए० (संस्कृत) प्रथम वर्ष में प्रवेश लिया था परन्तु वार्षिक परीक्षा के पूर्व ही ये बीमार पड़ गये और अकस्मात् ३० अप्रेल १८८७ ई० में इनका देहावसान हो गया।

कविराजजी का जन्म अपने पिता की मृत्यु के पाँच महीने पश्चात् ७ सितम्बर १८८७ ई० में, धामराई में अपनी नानी वामासुन्दरी के घर पर हुआ था। इनकी माता का नाम सुखदा सुन्दरी था जो अपनी असली माता की मृत्यु के पश्चात् अपनी कृतक जननी वामासुन्दरी के यहाँ रहा करती थीं। इस अनाथ बालक गोपीनाथ के लिए अब केवल दो ही आश्रय के स्थान थे : (१) अपने पिता के मामा पं० कलाचन्द सान्याल के घर काँठालिया में तथा (२) धामराई में अपनी नानी वामासुन्दरी का घर। इनकी माता सुखदा सुन्दरी अपने दुःख के दिन इन्हीं दोनों स्थानों में घूम-घूमकर काटा करती थीं।

शिक्षा

गोपीनाथजी की प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता के मामा के गाँव काँठालिया के प्राइमरी स्कूल में हुई। यहीं ९ वर्ष के वय में सन् १८९६ ई० में इनका उपनयन संस्कार हुआ। सन् १८९६ ई० तक ये काँठालिया में ही बंगला, संस्कृत और अंग्रेजी पढ़ते रहे। इसी समय धामराई में एक नया अंग्रेजी स्कूल खुला। अतः इनकी माता इस अंग्रेजी स्कूल में इन्हें पढ़ाने के लिए काँठालिया से धामराई चली आईं, जहाँ तीसरी कक्षा में इनका प्रवेश हो गया। इस स्कूल के हेडमास्टर ने आठवीं कक्षा तक यहाँ पढ़ने के लिए इनका प्रबन्ध कर दिया। इस विद्यालय के संस्कृत अध्यापकों के अध्यापन के फलस्वरूप इनके हृदय में संस्कृत भाषा और साहित्य के अध्ययन के प्रति रुचि और निष्ठा उत्पन्न हो गयी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० कलाचन्द ने १९०० ई० में गोपीनाथजी का विवाह केवल तेरह वर्ष के वय में कुसुम कामिनी देवी से कर दिया। धामराई में रहते अभी तीन वर्ष भी नहीं व्यतीत हुए थे कि इनके अनन्यतम अभिभावक पं० कलाचन्द सान्याल की १९०१ ई० में मृत्यु हो गई। इस प्रकार यह आश्रय-स्थान भी नष्ट हो गया और इनकी माता पुनः निराश्रित हो गयीं। धामराई में आठवीं कक्षा की शिक्षा प्राप्त करके गोपीनाथजी अध्ययन के लिए ढाका चले गये और वहाँ जुबली स्कूल में नाम लिखाकर पढ़ने लगे। इस विद्यालय में इन्होंने वामाचरण विद्यालंकार से संस्कृत का अध्ययन किया। यहाँ गोपीनाथजी की अनेक व्यक्तियों से भेंट हुई जिनसे इनको साहित्यिक प्रेरणा प्राप्त हुई।

संस्कृत पढ़ने की इनकी विशेष अभिरुचि अध्ययन काल के प्रारम्भ से ही थी। काँठालिया में अपने पिता के द्वारा संगृहीत संस्कृत ग्रन्थों का विशाल संग्रह इन्हें रिक्थ के रूप में मिला था। संस्कृत अध्ययन का संस्कार इनके मन पर इन्हीं पुस्तकों से पड़ा था। धामराई में रहते हुए इन्होंने अनेक पण्डितों से संस्कृत व्याकरण का अध्ययन किया था। ढाका आने पर इनको पं० रजनीकान्त तथा पं० विद्युभूषण गोस्वामी से व्याकरण का गम्भीर अध्ययन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन की रुचि भी यहीं ढाका में ही जागृत हुई। ढाका के जगन्नाथ कालेज के प्रिन्सिपल की प्रेरणा तथा प्रोत्साहन से इन्होंने अंग्रेजी के प्रधान कवियों शेक्सपियर, मिलटन, बाइरन और वर्ड्सवर्थ की समस्त कृतियों को पढ़ डाला।

ढाका में हाईस्कूल की परीक्षा समाप्त करने के पश्चात् अब उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इन्हें चिन्ता हुई। उच्चशिक्षा प्राप्त करने के लिए न तो इनके पास धन था और न कोई अभिभावक ही था जो इनका पथ-प्रदर्शन करता। उच्च शिक्षा के लिए जायँ तो कहाँ जायँ और कैसे जायँ। बड़ी विषम परिस्थिति थी। न तो इनके पास कोई साधन था और न कोई उपाय ही सूझता था। ऐसी ही स्थिति में धर्मानन्द महाभारती नामक किसी सज्जन के 'बांधव' नामक पत्र में 'जयपुर' के संबंध में एक लेख प्रकाशित हुआ जिसमें इस बात का उल्लेख किया गया था कि जयपुर राज्य के प्रधानमंत्री श्री संसार-चन्द्रसेन हैं और वहाँ के नगर नियोजक विद्याधर चक्रवर्ती नामक बंगाली सज्जन हैं। इन दोनों प्रभावशाली बंगाली अधिकारियों का नाम देखकर कविराज जी के मन में यह आशा बँधी कि जयपुर जाने पर संभवतः इनकी पढ़ाई-लिखाई का कोई न कोई प्रबन्ध वहाँ हो जायेगा। यह सोचकर केवल १७ वर्ष के अल्प वय में इस निराश्रित बालक ने जयपुर जाने का पूर्ण निश्चय कर लिया।

जुलाई सन् १९०६ ई० में बालक गोपीनाथ अपने किसी मित्र से जयपुर यात्रा के लिए रुपया माँगकर अपने गन्तव्य स्थान के लिए निकल पड़े। जयपुर में न तो किसी से जान-पहचान थी और न वहाँ निवास करने के लिए कोई स्थान ही मालूम था। जयपुर जाने के लिए न तो पर्याप्त धन ही पास में था और न वहाँ जाने का मार्ग ही ज्ञात था। किम्बहुना हिन्दी प्रदेशों में बोली जाने वाली भाषा हिन्दी का भी इन्हें

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिल्कुल ज्ञान नहीं था। इन सभी कठिनाइयों के होते हुए भी गोपीनाथजी जयपुर के लिए चल पड़े। वहाँ जाने का रेलवे का रास्ता ज्ञात न होने के कारण इन्होंने हाबड़ा स्टेशन पर रेलवे टाइमटेबुल खरीदा और गाड़ी में बैठ गये। संयोग से उसी डिब्बे में एक ऐसे सज्जन बैठे थे जो जयपुर जा रहे थे। उन्हीं के साथ ये किसी प्रकार जयपुर पहुँचे और उन्हीं के साथ दो तीन दिन तक रहे। बड़ी कठिनाई के साथ इन्होंने प्रधान-मंत्री संसारचन्द्र सेन से भेंट की जिन्होंने अपनी स्वाभाविक उदारता से अपने पुत्र के विशाल भवन में इनके आवास तथा भोजन का प्रबन्ध कर दिया। प्रधान मंत्री के प्रभाव से इन्हें 'महाराजा कालेज' में प्रवेश भी मिल गया। इस कालेज में ट्यूशन फी (शिक्षा-शुल्क) नहीं लगती थी और एम० ए० तक निःशुल्क शिक्षा प्राप्त की जा सकती थी। संयोग से कालेज के प्रिन्सिपल भी एक बंगाली सज्जन थे जिनका नाम संजीवन गांगुली था। ये गोपीनाथजी की प्रतिभा को देखकर बड़े प्रभावित हुए और अपने कालेज में इनके अध्ययन के लिए समस्त सुविधाएँ उपस्थित कर दीं। इस प्रकार सन् १९०६ ई० में इण्टर में नाम लिखाकर गोपीनाथजी वहाँ पढ़ने लगे।

प्रिन्सिपल की कृपा से इन्हें १५) प्रतिमास की छात्रवृत्ति भी मिलने लगी। इससे आर्थिक चिन्ता से इन्हें पूर्णतया मुक्ति मिल गई। अतः ये सावधान चित्त से अध्ययन करने लगे।

जयपुर में कविराजजी ने अपनी पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त भारतीय धर्म और दर्शन, पुरातत्व, इतिहास और यूरोप के प्राचीन तथा मध्ययुगीन साहित्य का गंभीर अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त फ्रेंच, इटालियन, जर्मन तथा रूसी साहित्य का अनुशीलन उनके अंग्रेजी अनुवादों के माध्यम से किया। इनके प्रिय कवि थे वर्ड्सवर्थ, टेनिसन, ब्राउनिंग (अंग्रेजी), गेटे और शिलर (जर्मन), तालस्ताय (रूसी) और मोलियर, वाल्टेयर और रूसो (फ्रेंच)। इसके साथ ही इन्होंने बौद्ध धर्म तथा वेदान्त-विषयक ग्रन्थों का भी अनुशीलन किया। इस प्रकार इन्होंने जयपुर में अध्ययन करते हुए पाश्चात्य साहित्य तथा भारतीय धर्म और दर्शन में प्रगाढ़ पाण्डित्य प्राप्त कर लिया।

इस प्रकार कविराजजी १९०६ से लेकर १९१० तक जयपुर में रहकर अध्ययन में संलग्न रहे। सन् १९१० ई० में इन्होंने प्रयाग में आकर बी० ए० की परीक्षा दी क्योंकि उन दिनों प्रयाग विश्वविद्यालय का क्षेत्र राजस्थान तक फैला हुआ था। बी० ए० परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर ये पुनः अपने गाँव लौट गये। सच तो यह है कि कविराजजी का जयपुर में निवास-काल इनकी तपस्या तथा अध्ययन का काल कहा जा सकता है। इनके पाण्डित्य की स्रोत-भूमि वही रही है।

काशी में अध्ययन

जयपुर से बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् कविराजजी ने काशी आकर एम० ए० में पढ़ने का निश्चय किया। इसके दो कारण थे : (१ कलकत्ता की मलेरिया का रोग पैदा करने वाली जलवायु से मुक्ति और (२) गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज काशी के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्कालीन प्रिन्सिपल डा० वेनिस की विद्वत्ता के प्रति असीम श्रद्धा तथा आस्था। कविराजजी ने जयपुर में ही डा० वेनिस के द्वारा अंग्रेजी में अनूदित भारतीय दर्शन के अनेक ग्रन्थों को पढ़ रखा था। अतः ये डा० वेनिस की विद्वत्ता से विशेष प्रभावित थे। अतएव सन् १९१० ई० में कविराजजी काशी आये और डा० वेनिस से मिलकर अपने आने का प्रयोजन बतलाया। गुणग्राही डा० वेनिस ने कविराजजी की योग्यता को देखकर इन्हें एम० ए० में पढ़ने की अनुमति दे दी तथा आर्थिक सहायता देने के लिए भी कहा।

डा० वेनिस अभिलेख शास्त्र (एपिग्राफी) तथा भारतीय दर्शन के विद्वान् थे। अतः कविराजजी ने एम०ए० में यही ग्रुप लेकर वेनिस से अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया। इन्होंने इतिहास तथा अभिलेखों का अध्ययन करने के साथ ही म० म० पं० वामाचरण भट्टाचार्य से न्यायशास्त्र पढ़ना प्रारम्भ किया। इस प्रकार डा० वेनिस के संरक्षण में इनका अध्ययन सुचारु रूप से चलने लगा। डा० वेनिस ने इन्हें एक छात्रवृत्ति भी दिला दी थी, जो इनकी एक वर्ष की बीमारी में भी मिलती रही। सन् १९१३ ई० में कविराजजी ने एम० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। इनके कालेज के सहपाठियों में आचार्य नरेन्द्रदेव भी थे जो आगे चलकर लखनऊ तथा हिन्दूविश्वविद्यालय के वाइसचान्सलर हुए।

नौकरी

कविराजजी के एम० ए० परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने के पश्चात् डा० वेनिस के पास इनकी नियुक्ति के संबंध में दो स्थानों से 'आफर' आये—(१) लाहौर कालेज के प्रिन्सिपल डा० उलनर का और (२) मेयो कालेज, अजमेर में संस्कृत प्रोफेसर के स्थान के लिए महाराजा कालेज के प्रिन्सिपल संजीवन बाबू का, परन्तु डा० वेनिस के आदेशानुसार कविराजजी ने इन दोनों पदों को अस्वीकार कर दिया। सन् १९१४ ई० में गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज के पुस्तकालय का नया भवन जो 'सरस्वती भवन' के नाम से प्रसिद्ध है—बन कर तैयार हो गया था। इसके लिए अधीक्षक के एक नये पद का निर्माण हुआ। डा० वेनिस ने इसी नये पद पर कविराज जी की नियुक्ति करा दी। यह कार्य करते हुए इन्हें अध्ययन तथा अनुसंधान की भी सुविधा प्रदान कर दी। कविराजजी ने सन् १९१४ ई० में इस पद का कार्यभार सँभाला। कुछ महीनों के अनन्तर ही डा० वेनिस ने अपने पद से अवकाश ग्रहण कर लिया और काशी में ही रहने लगे। सन् १९१८ ई० में डा० वेनिस के दिवंगत हो जाने पर डा० गंगानाथ झा की प्रिंसिपल के पद पर नियुक्ति हुई। सन् १९२४ ई० में डा० झा के इस पद से निवृत्त होने पर पं० गोपीनाथ कविराज की विद्वत्ता से प्रभावित होकर सरकार ने इन्हें प्रिंसिपल के पद पर नियुक्त किया। इस पद को कविराजजी ने बड़ी निष्ठा के साथ १३ वर्षों तक सुशोभित किया। ये सन् १९३७ ई० में केवल ४७ वर्ष की अवस्था में अपने सेवानिवृत्ति काल से ८ वर्ष पहले ही अपने पद से निवृत्त हो गये। शिक्षाविभाग के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाइरेक्टर ने इनको सभी सुविधाएँ प्रदान करने का भी आश्वासन दिया परन्तु इन्होंने उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की।

इस प्रकार कविराजजी ने सन् १९१४ ई० से लेकर सन् १९३७ ई० तक लगातार २३ वर्षों तक गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज की सेवा की। इनकी प्रिन्सिपली के काल में इस कालेज ने बड़ी उन्नति की। 'सरस्वती भवन टेक्स्ट्स' तथा 'सरस्वती भवन स्टडीज' इन दोनों ही ग्रन्थ-मालाओं में अनेक विद्वत्तापूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन हुआ जो सर्वथा मौलिक तथा इसके पहले अप्रकाशित थीं।

सन् १९३७ ई० में संस्कृत कालेज से अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् कविराजजी अपनी आध्यात्मिक साधना में संलग्न हो गये। इन्होंने एक प्रकार से क्षेत्र संन्यास ले लिया और काशी से बाहर कहीं नहीं आते-जाते थे। सन् १९५८ ई० में जब काशी में संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना हुई तब प्रान्तीय सरकार ने इसके प्रथम कुलपति (वाइसचान्सलर) के पद को सुशोभित करने के लिए इनसे प्रार्थना की परन्तु वीतराग कविराजजी ने इस प्रार्थना को ठुकरा दिया। सच है, आत्मकामस्य का स्पृहा। परन्तु सन् १९६५ ई० में उत्तर प्रदेश के योग्य गवर्नर श्री विश्वनाथदास के विशेष आग्रह से इन्होंने इस विश्वविद्यालय में नवनिर्मित तंत्रयोग विभाग का अध्यक्ष बनना स्वीकार कर लिया। शोधी छात्र तथा अध्यापक इन्हीं के घर पर आकर इनका निर्देशन प्राप्त करते। कविराजजी अपने निवास स्थान से ही इस विभाग की अध्यक्षता किया करते थे। परन्तु सन् १९६९ ई० में इन्होंने इस पद का भी परित्याग कर दिया। इसके बाद ये एक स्वतंत्र साधक रूप में अपना दिन बिताने लगे थे।

परिवार

कविराजजी को पारिवारिक सुख विशेष प्राप्त नहीं हो सका। अपने पिता की मृत्यु के पाँच महीने बाद ये पैदा हुए थे, अतः ये पितृ-सुख से सदा वंचित रहे। इनकी माता सुखदा सुन्दरी का स्वर्गवास सन् १९२५ ई० में हो गया था। कविराजजी की दो सन्तानें हुईं एक पुत्री सुधारानी और एक पुत्र जितेन्द्रनाथ। इन दोनों का जन्म कविराजजी के पैतृक गाँव दन्या में ही हुआ था। सन् १९२५ ई० में सुधारानी का विवाह ढाका जिला (अब बाँगला देश) के निवासी श्री सुशीलनाथ के साथ सम्पन्न हुआ था। भारत विभाजन के पश्चात् ये दमदम (कलकत्ता) में बस गये थे। सन् १९६६ ई० में इनका देहान्त हो गया। अब सुधारानी अपने दो पुत्रों के साथ दमदम में ही रहती हैं। आपके पुत्र जितेन्द्रनाथ ने बी-एस० सी०, एल०-एल० बी० की उपाधि प्राप्त की थी और भारत बैंक में कुछ दिनों तक सहायक मैनेजर थे। इसके बाद इन्होंने राशनिंग विभाग में नौकरी कर ली और सीनियर मार्केटिंग इन्स्पेक्टर के पद पर काम करते रहे। इनको दो पुत्रियाँ और एक पुत्र हुआ। परन्तु कुछ ही वर्षों में भरी जवानी में इनका असामयिक निधन हो गया। इस वज्रपात से कविराजजी को मर्मान्तिक पीड़ा हुई परन्तु इनकी आँखों में आँसू नहीं आये। इनकी नानी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वामासुन्दरी का निधन सन् १९१२ ई० में धामराई में हो चुका था और इनके मौसे की मृत्यु सन् १९१८ ई० काशी में हो गई। इस प्रकार कविराजजी के जीवन काल में ही इनकी माता, स्त्री, पुत्र, पुत्री सभी की दुःखदायी मृत्यु हो गई थी। भर्तृहरि ने सचमुच ठीक ही कहा है—"सततदुर्गतः सज्जनः।"

सन्मान तथा उपाधियाँ—पं० गोपीनाथ कविराज अत्यन्त वीतराग पुरुष थे। ये उस प्राचीन सिद्धान्त के अनुयायी थे जिसमें कहा गया है—

प्रतिष्ठा शूकरीविष्ठा, गौरवं घोररौरवम्।
मानं चैव सुरापानं, त्रयं त्यक्त्वा सुखी भवेत्॥

अतएव ये किसी मान या उपाधि को व्याधि समझते थे और उससे सदा दूर रहने की चेष्टा किया करते थे। इन्होंने अपनी साधना के लिए गवर्नमेण्ट की 'क्लास वन' की सरविस से समय पूजने के सात वर्ष पहले ही अवकाश ग्रहण कर लिया था। इसके बाद काशी छोड़कर किसी सभासोसाइटी में सम्मिलित होने के लिए कहीं बाहर नहीं गये। इलाहाबाद विश्व विद्यालय ने इन्हें सन् १९४७ ई० डि० लिट् की मानद उपाधि से अलंकृत किया था, परन्तु ये उस गौरवपूर्ण उपाधि को प्राप्त करने के लिए प्रयाग नहीं गये। किम्बहुना हिन्दू विश्वविद्यालय काशी ने जब सन् १९५४ में डि० लिट्० की मानद उपाधि प्रदान की तब भी इसी काशी में निवास करते हुए भी ये उपाधि वितरणोत्सव में इस डिग्री को लेने के लिए नहीं गये। भारत सरकार की साहित्य अकादमी ने जब इन्हें अपना फेलो मनोनीत किया उस समय भी कविराज ने दिल्ली जाना अस्वीकार कर दिया। तब अकादमी के अधिकारी स्वयं वाराणसी आये और इन्हें आदरपूर्वक फेलोशिप का प्रमाण-पत्र दिया। कलकत्ता विश्वविद्यालय ने सन् १९६४ई० में इन्हें डि० लिट्० की पदवी प्रदान की तथा बर्दमान विश्वविद्यालय ने सन् १९६४ ई० में अपना फेलो चुना। इस प्रकार इन विश्वविद्यालयों ने कविराजजी को सन्मानित कर स्वयं अपना ही सन्मान किया।

ब्रिटिश सरकार ने कविराजजी की लोकोत्तर विद्वत्ता से प्रभावित होकर सन् १९३४ ई० में महामहोपाध्याय की पदवी से विभूषित किया था। यह उपाधि संस्कृत के केवल मूर्धन्य विद्वानों को ही प्रदान की जाती है। स्वतंत्र भारत की राष्ट्रीय सरकार भी इनके सन्मान में पीछे नहीं रही। सन् १९५६ ई० में राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने इन्हें 'सर्टिफिकेट आफ आनर' से विभूषित किया। इस सर्टिफिकेट के साथ सरकार इसके प्राप्तकर्त्ता को तीन हजार मासिक की आजीवन पेन्शन भी दिया करती है जो कविराजजी को भी मृत्यु-पर्यन्त प्राप्त होती रही। इतना ही नहीं, भारत सरकार ने इन्हें सन् १९६४ ई० में 'पद्मविभूषण' की विशिष्ट पदवी से भी अलंकृत किया जो प्रायः राजनीति के नेताओं को ही मिला करती है। सन् १९६४ ई० में साहित्य-अकादमी ने इन्हें अपना साहित्यिक पुरस्कार दिया तथा इसी वर्ष गंगानाथ रिसर्च इन्स्टीटचूट प्रयाग ने इन्हें अपना अध्यक्ष मनोनीत किया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयाग ने सन् १९६५ ई० में साहित्य-वाचस्पति की पदवी प्रदान की। यह कुछ कम उल्लेखनीय नहीं है कि ये समस्त सन्मान तथा उपाधियाँ कविराज को सरकारी सेवा से निवृत्त होने के बाद ही मिलीं जब ये अपनी साधना में संलग्न थे।

सादा जीवन, उच्च विचार

कविराजजी की वेशभूषा बहुत ही साधारण थी। ये प्रायः धोती-कुर्ता पहना करते थे। घर में, अपने कक्ष में ये प्रायः नंगे बदन रहा करते थे। भारत के राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद की भाँति इन्होंने वेशभूषा को प्रधानता नहीं दी। हाँ, गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, काशी के प्रिन्सिपल के पद को सुशोभित करते हुए ये बन्द गले का कोट तथा पैण्ट अवश्य पहना कहते थे। उस समय भी इनके गले में उत्तरीय तथा सिर पर गोल टोपी विराजमान रहती थी। परन्तु यह केवल औपचारिक वेशभूषा थी। कालेज से लौट कर घर आने पर फिर वही धोती और चादर।

अपने अध्ययन कक्ष में ये सदा किसी काठ के तख्त पर विराजमान रहते थे और कभी तो जमीन पर ही सीतलपाटी बिछा कर बैठते थे। ये आगन्तुक विद्वानों के प्रति किसी प्रकार की औपचारिकता का व्यवहार नहीं करते थे। जो भी विद्वान् आता वह जमीन पर अपना आसन ग्रहण करता था। इनके अध्ययन कक्ष में पुस्तकों का पहाड़ लगा रहता था। सारे कमरे में पुस्तकें, पत्रिकाएँ तथा अखबार अस्त-व्यस्त, बिना किसी व्यवस्था के बिखरे पड़े रहते थे। कविराजजी इन्हीं पुस्तकों से चारो ओर से घिरे हुए, इनके बीच में बैठ कर अपना स्वाध्याय किया करते थे। सुप्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक पाल ब्रन्टन ने अपनी पुस्तक 'सर्च इन सिक्रेट इण्डिया' में—कविराजजी से अपनी भेंट का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "He was buried among the hill of books." अर्थात् वे अपने चारों ओर पुस्तकों के पहाड़ से दबे हुए थे। भगवान् कृष्ण ने अपने लिए कहा है कि 'गवां मध्ये वसाम्यहम्', इस उक्ति में थोड़ा ही परिवर्तन करके कविराजजी भी कह सकते थे कि 'ग्रन्थमध्ये वसाम्यहम्'। वास्तव में कविराजजी जैसे उच्चकोटि के विद्वान् के लिए पुस्तकों के सान्निध्य को छोड़कर अन्य समुचित स्थान कौन सा हो सकता था।

कविराजजी का यह अध्ययन कक्ष ही वह 'नर्सरी' (उद्यानशाला) थी जहाँ साधना, तपस्या और विद्वत्ता के पुष्प विकसित होकर अपने सौरभ से समस्त भारत को सुरभित कर देते थे। भारतवर्ष—प्रायः उत्तरी भारत—के सभी प्रान्तों से विद्वान् व्यक्ति आकर अपनी शंकाओं का समाधान पाकर संतुष्ट होकर घर लौट जाते थे। ये घंटों बैठ कर साहित्य, दर्शन शास्त्र, धर्मशास्त्र और तंत्रशास्त्र के ऊपर अपना प्रवचन किया करते थे जिसे सभी लोग बड़े ही ध्यान से सुनते थे। भारतीयविद्या का कोई भी ऐसा अंग नहीं था जिस पर कविराजजी का पूर्ण अधिकार न हो। अतः ये अबाध गति से घंटों धर्म और दर्शन के गूढ़ तत्वों के संबंध में प्रवचन किया करते थे।

पं० गोपीनाथ कविराजजी के साहित्यिक "दरबार" में केवल दो प्रकार के ही व्यक्ति उपस्थित होते थे :—(१) शोधार्थी छात्र और (२) जिज्ञासु विद्वान्। विभिन्न

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वविद्यालयों के विभिन्न विषयों के अनुसन्धान में संलग्न शोधार्थी छात्र अपने विषय की रूप-रेखा (सिनाप्सिस) तथा उस विषय से संबंधित साहित्य (बिब्लियोग्राफी) के संबंध में जानकारी प्राप्त करने के लिए कविराज की शरण में आया करते थे। ये बड़े प्रेम से उनके शोध के विषय में आवश्यक ग्रन्थों के विषय में उन्हें बतलाते थे और अमुक पद्धति या प्रकार से शोध करने का आदेश देते थे। इन शोधार्थी छात्रों के अनुसन्धान के विषय भारतीय इतिहास, पुरातत्व और मुद्राशास्त्र से लेकर भारतीय धर्म, दर्शन, तांत्रिक साधना जैसे गूढ़ विषय तक हुआ करते थे। परन्तु कविराजजी सभी छात्रों को शोध के लिए प्रभूत ज्ञान प्रदान कर उन्हें सन्तुष्ट कर देते थे।

दूसरे वर्ग के लोग जिज्ञासु विद्वान् थे जो अपनी जिज्ञासा की पूर्ति के लिए कविराजजी के पास आते थे। ये इन पण्डितों की शंका का समाधान इस रीति से करते थे कि उन्हें पूर्ण संतोष प्राप्त होता था। अनेक विद्वानों ने अपने संस्मरणों में कविराजजी संबंधी इस विषय की चर्चा की है। कविराजजी के यहाँ जिस प्रकार संस्कृत की प्राचीन परम्परा के पण्डितों का जमघट लगा रहता था उससे कहीं अधिक अंग्रेजी शिक्षा––दीक्षित संस्कृत तथा दर्शनशास्त्र के प्रोफेसरों की भीड़ लगी रहती थी। सरस्वती का यह वरद पुत्र प्राचीन तथा नवीन सभी प्रकार के विद्वानों की जिज्ञासा को अपने विद्वत्तापूर्ण प्रवचन से शान्त करता था और उनकी शास्त्र-संबंधी शंकाओं का समाधान संतोषजनक रीति से सम्पादित करता था।

दैनिक कार्यक्रम

कविराजजी का दैनिक कार्यक्रम अत्यन्त संतुलित तथा नियमित था। गीता में लिखा है :—

"युक्ताहारविहारस्य, युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य, योगो भावत दुःखहा॥"

पं० गोपीनाथजी का आहार, विहार, स्वप्न और जागरण सभी युक्त तथा नियमित था। ये सदा पाँच बजे प्रातःकाल उठते थे। नित्यकर्म से निवृत्त होकर पूजा पर बैठ जाते थे। इसमें एक घंटा समय लगता था। फिर मिलने वालों का ताँता प्रातः ६ बजे से लग जाता था। उनके साथ ग्यारह या बारह बजे तक सत्संग और उपदेश चलता था। इसी बीच यदि इन्हें समय मिल गया तो जलपान कर लेते थे। परन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता था कि ये प्रवचन में इतने तल्लीन हो जाते थे कि जलपान की सुधि-बुधि भी नहीं रहती थी। ये अपराह्ण में एक बजे के आस-पास भोजन करते थे। ये दिन में विश्राम नहीं करते थे। भोजन के शीघ्र ही पश्चात् ये अपने आसन पर पुनः विराजमान हो जाते थे। जिज्ञासुओं का आगमन पुनः होने लगता था। प्रवचन का कार्य पुनः प्रारम्भ होकर सन्ध्या को पाँच बजे तक चलता था। एक घण्टे में नित्यक्रिया समाप्त कर ८ बजे रात तक पूजा-पाठ में बिताते थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि इस समय घनिष्ठ व्यक्ति आता तो उससे बातें करते, अथवा उपदेश देते थे। १० बजे रात के आस-पास भोजन करते थे। इसके पश्चात् अपनी तांत्रिक साधना में प्रवृत्त हो जाते थे। यह साधना कब तक चलती थी इसका पता नहीं। ये कब सोते तथा कब जागते हैं इसका पता इनके आस-पास रहने वाले आश्रमवासियों को भी नहीं लगता था।

शिष्यमण्डली—कविराज ने औपचारिकरूप से उच्चकक्षाओं में छात्रों का कभी अध्यापन नहीं किया। जब ये संस्कृत कालेज के प्रिन्सिपल थे तब भी इनका कार्य शासकीय अधिक था और अध्यापकीय बहुत कम। अतएव इन्होंने नियमित रूप से छात्रों को कभी नहीं पढ़ाया। सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् भी ये नियमित रूप से किसी छात्र को कोई ग्रन्थ नहीं पढ़ाते थे क्योंकि यह कार्य इनके लिए नीरस तथा शुष्क था। इनके अध्यापन का प्रकार प्रवचन पद्धति के रूप में था। जो भी विद्वान् अपनी शास्त्रीय शंका अथवा समस्या इनके सामने उपस्थित करता था उस विषय को लेकर ये घंटों प्रवचन किया करते थे। इस प्रवचन को वहाँ उपस्थित सभी विद्वान् बिना भेद-भाव के सुन सकते थे और उससे लाभ उठा सकते थे। बहुत से शोधार्थी छात्र इस प्रवचन को सुनकर नोट कर लिया करते थे और अपने अनुसन्धान में उसका उपयोग करते थे। इस प्रकार सैकड़ों किम्वा सहस्रों विद्वानों ने इन सारगर्भित प्रवचनों से अपने ज्ञान की राशि में परिवर्धन किया। उत्तरी भारत में शायद ही कोई संस्कृत साहित्य तथा भारतीय धर्म दर्शन और तंत्र का माननीय विद्वान् होगा जो कविराजजी के सम्पर्क में न आया हो और जिसने इन प्रवचनों से लाभ न उठाया हो। इस प्रकार इनके मानसपुत्रों की संख्या हजारों में गिनी जा सकती है। इन पंक्तियों के लेखक को भी इनके प्रवचनों को सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। परन्तु कविराजजी के पट्ट शिष्य कौन विद्वान् थे यह कहना बड़ा ही कठिन है। सच तो यह है कि जिन सहस्रों विद्वानों ने इन प्रवचनों को सुनकर अपने ज्ञान की वृद्धि की है उन सभी की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूप से इनके शिष्यों में गणना की जा सकती है।

गुण तथा स्वभाव—कविराजजी का स्वभाव उनकी वेशभूषा के ही समान बड़ा सीधा-सादा था। इनके दरबार में सभी प्रकार के लोगों का सदा स्वागत था। संस्कृत का एक तुच्छ विद्यार्थी हो अथवा प्रकाण्ड पण्डित, इनके पास सभी आसानी से पहुँच सकते थे। यद्यपि इनके यहाँ शोधार्थियों तथा जिज्ञासु लोगों की भीड़ सदा लगा करती थी जो इनका बहुत सा समय नष्ट करते थे, तथापि कविराज जी इस कारण कभी झुँझलाते नहीं थे और सभी लोगों के आगमन का स्वागत करते थे।

पं० गोपीनाथ कविराज ने काम, क्रोध, लोभ और मद इन सभी आन्तरिक शत्रुओं को जीत लिया था। इन्हें कभी क्रोधित होते हुए किसी ने नहीं देखा होगा। यदि कभी किसी परिचारक या छात्र ने कोई गलती भी की तो क्रोधित होने के स्थान

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर उसे शान्त भाव से समझा देते थे। लोभ इन्हें छू तक नहीं गया था। सरकारी नौकरी से समय से आठ वर्ष पहले अवकाश ग्रहण कर लेना इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। रिटायर होने पर, जब संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना हुई तब सरकार ने इन्हें प्रथम कुलपति के पद को ग्रहण करने की प्रार्थना की परन्तु इन्होंने इस प्रार्थना को भी ठुकरा दिया। निःस्पृहता का इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है? 'विद्या ददाति विनयम्' के कविराजजी मूर्तिमान् प्रतीक थे। प्रकाण्ड विद्वान् होने पर भी इन्हें अपनी विद्वत्ता का तनिक भी गर्व नहीं था। इन्होंने अपनी योग्यता का 'परेड' कभी नहीं किया और सदा विनीत भाव से सभी से मिलते थे। ये वीतराग और अपरिग्रही थे। ये जीवनभर किराये के मकान में रहे। हाँ, अवकाश ग्रहण कर एक गृह का निर्माण अवश्य किया, परन्तु जीवन के अन्तिम दिनों में उसे भी अपने एक शिष्य को रहने के लिए दे दिया।

ग्रन्थ रचना—कविराजजी अत्यन्त विद्या-व्यसनी थे। ये 'वोरेशस रीडर' थे। इन्होंने अपने जयपुर के प्रवास में उस कालेज के पुस्तकालय के समस्त ग्रन्थों का पारायण कर डाला था। इसके बाद काशी में सरस्वती भवन पुस्तकालय के अध्यक्ष के पद पर नियुक्त होने के पश्चात् इनको स्वाध्याय करने का प्रचुर अवकाश मिला। अतः यहाँ भी इन्होंने धर्म, दर्शन, तंत्र तथा धर्मशास्त्र के सहस्रों ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन किया। इस प्रकार इन्होंने निखिल शास्त्रों में अगाध ज्ञान का उपार्जन किया। जीवन के उत्तरार्ध में ये अपनी गुह्य साधना में सदा संलग्न रहते थे। अतः प्रवचन करने के पश्चात् इन्हें ग्रन्थरचना के लिए बहुत कम अवकाश प्राप्त होता था। यही कारण है कि जिस परिमाण में कविराजजी उच्चकोटि के गम्भीर विद्वान् थे, उस परिमाण में इन्होंने ग्रन्थों की रचना नहीं की। फिर भी, ऐसी स्थिति में अनेक ग्रन्थों के रूप में इनकी प्रतिभा का जो कुछ प्रसाद हमें मिल सका है, उसी से सन्तोष करना पड़ता है।

कविराजजी ने अंग्रेजी, संस्कृत, हिन्दी और बंगला चार भाषाओं में ग्रन्थों की रचना की है। इन ग्रन्थों में से कुछ मौलिक हैं और कुछ सम्पादित। संस्कृत के प्राचीन अनेक ग्रन्थों को इन्होंने विमर्शात्मक पद्धति से सम्पादित कर प्रकाशित किया है। सैकड़ों विद्वानों के ग्रन्थों की इन्होंने विद्वत्तापूर्ण भूमिका लिखी है। इसके अतिरिक्त इन्होंने सैकड़ों शोधपूर्ण निबन्ध अंग्रेजी, हिन्दी और बंगला भाषा में लिखे हैं जो संख्या में ही अधिक नहीं है, बल्कि विद्वत्ता से भी परिपूर्ण हैं। इनके द्वारा विभिन्न भाषाओं में लिखे गये ग्रन्थों की सूची निम्नांकित है :—

(क) हिन्दी

(१) **भारतीय संस्कृति और साधना** भाग १, २
(बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना १९६३)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) तांत्रिक वाङ्मय में शाक्तदृष्टि ।
(बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना)
(३) काशी की सारस्वत साधना ।
(बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना १९६५)
(४) तांत्रिक संस्कृति (वाराणसी, १९६५)
(५) साधुदर्शन और सत्प्रसंग (प्रथम भाग)
(भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी)
(६) श्रीकृष्णप्रसंग (प्रकाशक वही) ।
(७) तान्त्रिक साहित्य ।
(उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ)

—०—

(ख) अंग्रेजी

(1) A Catalogue of Sanskrit Manuscripts acquired for the Sanskrit College, Benares during 1918-1919. (Published by U. P. Government, Allahabad)
(2) A Descriptive Catalogue of Mimansa Manuscripts in the Sanskrit College, Benares with introduction, 1923 (U. P. Government, Allahabad).
(3) Bibliography of Nyaya-Vaisesika Literature 1961 (Shambhu Nath Street, Calcutta).
(4) Aspects of Indian Thought. 1966 (Burdwan University, Burdwan, West Bengal).

—०—

(ग) बाँगला

(१) श्री श्री विशुद्धानन्द प्रसंग, खण्ड १, २, ३, ४
(विशुद्धानन्द कानन आश्रम, वाराणसी)
(२) अखण्ड महायोग (चटर्जी-चक्रवर्ती
एण्ड को, १५ कालेज स्क्वायर, कलकत्ता)
(३) साधुदर्शन ओ सत्प्रसंग, भाग १ तथा २
१९६२-६३ (प्राची पब्लिकेशन्स, कलकत्ता)
(४) तंत्र ओ आगम शास्त्रेर दिग्दर्शन ।
(गवर्न० संस्कृत कालेज, कलकत्ता)
(५) विशुद्धानन्द वाक्यामृत, १९६४ ई०
(विशुद्धानन्द कानन आश्रम, वाराणसी)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६) भारतीय साधनार धारा, १९६५ ई०
(गवर्न० संस्कृत कालेज, कलकत्ता)
(७) साहित्य चिन्ता, १९६६ ई०
(इण्डियन एसोशियेटेड पब्लिशिंग हाउस, कलकत्ता)
(८) श्रीकृष्ण प्रसंग (श्रीकृष्ण संघ, कलकत्ता)
(९) विशुद्धवाणी, खण्ड १ – ८ (वि. का. आ. काशी)
(१०) तांत्रिक सिद्धान्त ओ साधना (बर्दवान वि. वि.)
(११ पूजा–स्वामी प्रेमानन्द तीर्थेर उपदेश
(प्रकाशक–गोपीनाथ कविराज, सिगरा, वाराणसी)

संस्मरण

कविराजजी का अंग्रेजी साहित्य का ज्ञान बड़ा विशाल एवं परिनिष्ठित था। जयपुर की महाराजा लाइब्रेरी तथा काशी के संस्कृत कालेज के पुस्तकालय में उपलब्ध एतद्विषयक समग्र ग्रंथों का अनुशीलन बड़ी निष्ठा तथा लगन के साथ इन्होंने किया था। इस तथ्य का परिचय लेखक को तब मिला जब हिन्दू विश्वविद्यालय में अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर पी० शेषाद्रि को इनकी एक जानकारी ने आश्चर्य में डाल दिया। वह घटना इस प्रकार घटी थी। कविराजजी ने जर्मन महाकवि गेटे के विषय में अंग्रेजी-के प्रख्यात आलोचक कारलाइल के मत का निर्देश उनकी रचना 'हिस्ट्री आफ यूरोपियन लिट्रेचर' (यूरोपी-साहित्य का इतिहास) से उद्धृत कर हमें बताया था और कहा कि कारलाइल ने इस ग्रन्थ में यूरोपीय साहित्य के विषय में अनेक गम्भीर ऐतिहासिक तथा विमर्शात्मक आलोचना का विस्तार से निरूपण किया है। मेरे मित्र पण्डित बटुकनाथ शर्मा शेषाद्रि साहब के बड़े अनुरागी भक्त थे और उनके पास प्रायः जाया करते थे। एक बार हम दोनों मित्रों ने प्रो० शेषाद्रि से साहित्यिक चर्चा के बीच में कारलाइल के मत तथा ग्रन्थ का उल्लेख किया। इस पर शेषाद्रि साहब ने आश्चर्य प्रकट किया और वे झट से बोल उठे—Is there such a book by Carlyle ? In my studies I have not come across such a book of Carlyle. "क्या सचमुच कारलाइल की लिखी ऐसी कोई पुस्तक है ? अपने अध्ययन में तो मुझे ऐसे ग्रन्थ के देखने का अवसर नहीं मिला।" प्रोफेसर साहब अंग्रेजी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् थे—उनका अध्ययन विशाल तथा विस्तृत था। उनके इस निषेध से हम लोगों को भी अचरज हुआ और इस ग्रन्थ के अस्तित्व के विषय में हम लोगों के ज्ञान को भी हल्का झटका लगा। दूसरे दिन हम लोगों ने इस घटना का उल्लेख श्री कविराजजी से किया। उन्होंने उसी समय सेवक को भेज कर संस्कृत कालेज के पुस्तकालय से पुस्तक को निकाल मँगाया और शेषाद्रि साहब को दिखाने के लिए दे दिया। हम लोगों ने प्रोफेसर शेषाद्रि साहब को जब यह पुरानी मुद्रित पुस्तक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखलायी, तब वे अवाक् रह गये और उन्होंने मुक्तकण्ठ से कविराजजी के ज्ञान की प्रशंसा की—"एक संस्कृत का ज्ञाता होकर भी वे अंग्रेजी का इतना सांगोपांग परिचय रखते हैं। मैं स्वयं अंग्रेजीदाँ हूँ। कार्लाइल के ग्रन्थों से पूर्ण परिचित होने का दावा रखता हूँ, परन्तु फिर भी यह पुस्तक मेरी दृष्टि से ओझल ही रही। आश्चर्य !!!"

प्राचीन इतिहास और भारतीय पुरातत्त्व विषय का कविराजजो ने डा० वेनिस से विधिवत् अध्ययन किया था और एम० ए० परीक्षा में इसी विषय में वे प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए थे। डॉ० वेनिस ने अपने प्रिय शिष्य के द्वारा प्राप्त अंकों को देखकर कहा था कि इलाहाबाद विश्वविद्यालय के इतिहास में यह एक अनहोनी घटना है। आजतक यहाँ के किसी परीक्षार्थी ने एम० ए० के किसी विषय में इतने प्रतिशत अंक प्राप्त नहीं किये थे। यह तथ्य कथन कविराजजी के इतिहास-विषयक विपुल ज्ञान के ऊपर एक गंभीर आलोचना है। भारतीय धर्म और दर्शन की विशेष अभिरुचि रखने तथा व्यापक अध्ययन करने के साथ ही साथ पुरातत्त्व का गम्भीर अनुशीलन ये किया करते थे। 'सरस्वती भवन' पुस्तकालय के अध्यक्षपद पर प्रतिष्ठित होने पर तो इनके अध्ययन के निमित्त विशाल सामग्री ही उपस्थित थी। इनकी रुचि इसमें कम नहीं थी। ये अनुसन्धान पत्रिकाओं में प्रकाशित पुरातत्त्वीय निबन्धों का विधिवत् अध्ययन करते रहते।

एक दिन पं० गोपीनाथजी ने अपनी इस अलौकिक जागरूकता के कारण डा० डी० आर० भंडारकर (डा० देवदत्तरामकृष्ण भण्डारकर) को उनकी अनेक अशुद्धियों को, शिलालेखों के पढ़ने में तथा उनकी व्याख्या में, बतलाकर सचमुच आश्चर्य में ही डाल दिया। कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्रथम बार भारतीय प्राचीन इतिहास तथा पुरातत्त्व का विभाग खोला गया जिसके अध्यक्षपद पर कलकत्ता विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति सर आशुतोष मुखर्जी ने डी० आर० भंडारकर को प्रतिष्ठित किया। भंडारकर साहब सुयोग्य पिता के सुयोग्य पुत्र थे और प्राचीन इतिहास और पुरातत्त्व के उस समय के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् माने जाते थे। विद्वान् तो वे अवश्य थे, परन्तु उन्हें अपनी विद्वत्ता तथा इतिहास के वैदुष्य पर परिमाण से अधिक गर्व तथा अभिमान था। एक बार वे सरस्वती भवन पुस्तकालय देखने आये। यह घटना १६२० ई० के आसपास की है। आते ही उन्होंने सीधे-सादे पुस्तकालयाध्यक्ष कविराजजी पर धौंस जमाने के लिए कहा, 'यह पुस्तक दिखाओ। वह पुस्तक दिखाओ।' वे इन्हें केवल पुस्तकों का निरीक्षण करने वाला ही व्यक्ति समझते थे जो पुस्तकों का संग्रह करने, पुस्तकों पर जमी धूल झाड़ने में ही अपना समय व्यतीत करता है। जब यह व्यापार समाप्त हो गया, तब कविराजजी ने अपना असली स्वरूप दिखाना आरम्भ किया। "भंडारकर साहब, आपके लेखों का मैंने अध्ययन किया है, परन्तु उनके बहुत से अंशों में विसंगतियाँ दृष्टिगोचर हो रही हैं। मेरी बहुत सी शंकाएँ हैं। क्या आप उनका निराकरण करने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की कृपा करेंगे ?" स्वीकृति देने पर कविराजजी ने अपना रजिस्टर खोला और डा० भण्डारकर के लेखों की ऐतिहासिक भूलों की जब ये आलोचना करने लगे, तब तो वे आश्चर्यचकित हो उठे। सचमुच ये विसंगतियाँ सही थीं, अशुद्धियाँ वास्तविक थीं। उनको अपनी आँखों पर विश्वास न हो रहा था कि जिसे वे एक सामान्य अर्धशिक्षित व्यक्ति समझ बैठे थे, वह इतना प्रवीण पुरातत्त्वज्ञ तथा इतिहासवेत्ता होगा ! उनका गर्व अब रफूचक्कर हो गया। उनके मुख-मण्डल पर नम्रता ने आसन जमाया और तब भंडारकर साहब ने बड़ी नम्रता से कहा—"कविराज महाशय, मुझे तो इन लेखों पर अभिमान था कि ये तथ्यपूर्ण हैं। आज तक किसी ने भी इनमें अशुद्धि दिखलाने का साहस नहीं किया था। परन्तु मेरे लेखों में अशुद्धियाँ तथा विसंगतियाँ वर्तमान हैं जैसी आपने मुझे दिखाई हैं। अपने अन्य लेखों में मैं इनका यथाशक्ति निवारण करूँगा।"

भंडारकर साहब आलोचक बन कर आये थे और प्रशंसक बन कर लौटे। कविराजजी की पुरातत्व-विषयक वैदुषी ही ऐसी थी जो बड़े से बड़े इतिहास-वेत्ताओं को इनके सामने झुका देती थी !!!

एक बार आशुतोष मुखर्जी ने काशी में ही शारदीय नवरात्र का उत्सव बड़े समारोह और उल्लास से मनाया था। उस समय काशी के बंगीय विद्वानों से उनका समागम तथा सम्पर्क हुआ। पण्डित गोपीनाथ कविराज के असाधारण दार्शनिक, साहित्यिक तथा पुरातत्वीय पाण्डित्य को देखकर वे बड़े ही आह्लादित हुए और उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष पद पर इन्हें नियुक्त करने की अपनी तीव्र अभिलाषा प्रकट की। कविराजजी ने उसे धन्यवादपूर्वक अस्वीकार कर दिया और संक्षेप में उनकी गुणग्रहिता की प्रशंसा करते हुए इतना ही कहा—'काशी का परित्याग मेरे लिए असह्य है। डा० वेनिस द्वारा स्थापित परम्परा को अग्रसर करना ही मेरे जीवन का लक्ष्य है। अपने लेखों, भाषणों तथा ग्रन्थों से मैं उसे यथासाध्य अग्रसर करता रहता हूँ। मैं काशी छोड़ कर किसी भी मूल्य पर बाहर नहीं जा सकता।" आशुबाबू इस उत्तर से निरुत्तर हो गये और कविराजजी को कलकत्ता ले जाने की योजना यहीं समाप्त हो गई।

महापुरुषों से भेंट

डा० ब्रजेन्द्रनाथ शील से भेंट करने पर कविराजजी ने अध्यात्म—चिन्तन की नई दिशा का ज्ञान प्राप्त किया। डा० शील कविराजजी के पिता वैकुण्ठनाथ कविराज के सतीर्थ्य थे। भेंट होने पर वे बड़े प्रसन्न हुए। वे जानते भी न थे कि वैकुण्ठनाथ की कोई सन्तान भी है। परिचित होने पर कविराजजी ने उनसे अध्यात्म-विषयक प्रश्न किया। उन्हीं दिनों संजीवनी नामक पत्रिका में अरविन्दघोष का 'कारा काहिनी' नामक लेख निकला था, जिसमें उन्होंने कारागार में वासुदेव दर्शन तथा उनसे उपदेश पाने की घटना का उल्लेख किया था। कविराजजी ने इसके तथ्य पर प्रश्न किया

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि जब आप श्रीकृष्ण को ऐतिहासिक व्यक्ति मानते हैं, तब उनका अरविन्द बाबू के सामने उपस्थित होना तथा उपदेश देने की घटना क्यों कर सत्य हो सकती है? प्रश्न पूछने में एक गम्भीर उद्देश्य था। डा० शील ब्रह्मसमाजी थे जिनका ऐसी घटनाओं में विश्वास रखना असम्भव ही था। इसलिए कविराजजी डा० शील के उत्तर से अधिक चमत्कृत हुए।

शील महाशय ने गम्भीर होकर कहना आरम्भ किया—"कृष्ण पृथ्वी पर रहे हों या नहीं? उससे कृष्ण-दर्शन से क्या सम्बन्ध? दोनों पृथक् वस्तुएँ हैं। क्राइस्ट (ईसा मसीह) की ऐतिहासिकता पर भी लोगों को सन्देह है, किन्तु सेन्ट थेरेसा तथा विभिन्न काल के ईसाई सन्तों ने उनके दर्शन देने का उल्लेख किया है। पृथ्वी पर अवतरित होकर शरीर धारण न करते हुए भी उनकी आत्मा दर्शन दे सकती है। ऐतिहासिक कृष्ण एवं तत्त्वरूपी कृष्ण का पृथक् अस्तित्व नितान्त सम्भव है। उनके प्रति जिनकी जैसी भावना होगी वे तदनुरूप प्राप्त हो जायेंगे। सब सन्तों का कथन कथमपि झूठा नहीं हो सकता। ध्याता के भावानुसार परम शक्ति स्वयं ही तदाकार होकर प्रत्यक्ष हो जाती है। यह तथ्य है, ऐतिहासिकता से इसका कोई सरोकार नहीं है।"

उन्नीसवीं शती के वैज्ञानिक युग में ब्रह्मसमाजी विद्वान् का यह कथन नितान्त आश्चर्यजनक था और प्राचीन शास्त्रों के ही इस कथन का पूर्णतया समर्थक था—
यद् यद् धिया त उरुगाय ! विभावयन्ति, तत् तद् वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय।

परलोकगत आत्मा की स्थिति के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए शील महाशय ने अपना व्यक्तिगत अनुभव कह सुनाया, कि किस प्रकार उनकी दिवंगता धर्मपत्नी ने स्वप्न में प्रकट होकर जमीन्दारी के किसी विशेष कागज के स्थान का ठीक-ठीक पता दिया, जिसकी नितान्त आवश्यकता होने पर भी उसका पता नहीं चलता था।

डा० शील के द्वारा इन उद्घाटनों को सुनकर कविराजजी को शास्त्र के प्राचीन वचनों में पूर्ण आस्था रखने में विशेष संबल प्राप्त हुआ और उनकी अकाट्य सत्यता पर स्वतः अप्रत्याशित निष्ठा जम गई।

आध्यात्मिक जीवन : दीक्षा तथा गुरु

कविराजजी को अपने जीवन के आरम्भकाल से ही अध्यात्म-चिन्तन की ओर स्वतः प्रवृत्ति जागरूक हो गई थी। उनके परिवार का वातावरण ही नितान्त धार्मिक था। तत्कालीन प्रख्यात धर्मोपदेशक पण्डित शंशधर तर्कचूड़ामणि के 'धर्म व्याख्या' नामक ग्रन्थ के अध्ययन का भी इन पर प्रभाव पड़ा। ढाका में अध्ययन करते समय उस क्षेत्र के प्रसिद्ध धर्मोपदेशक श्री रामदयाल मजूमदार का इनकी धार्मिक प्रवृत्ति के अभ्युत्थान में विशेष योगदान था। उनकी गीता पर लिखी व्याख्या को पढ़कर कविराजजी की जीवन की ओर दृष्टि ही बदल गई। इन सबसे बढ़कर भी शिवराम किंकर योगत्रयानन्दजी के सम्पर्क में आने पर कविराजजी की धार्मिक साधना की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर तात्त्विक प्रवृत्ति जागरूक हो गई। ये योगत्रयानन्दजी गृहस्थ सन्त थे—भगवान् के एकनिष्ठ भक्त तथा अध्यात्म शास्त्र के मर्मज्ञ मनीषी थे। इनके अनुपम ग्रन्थ 'आर्यशास्त्र प्रदीप' के अध्ययन ने शास्त्रों के गम्भीर रहस्यों का उद्घाटन कर इनकी दृष्टि ही बदल डाली। प्रथम संपर्क में ही श्री शिवराम-किंकर ने 'नैको मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्' की विलक्षण व्याख्या कर कविराजजी के चित्त को बलात् आकृष्ट कर लिया। कविराजजी का प्रश्न था—तत्त्ववेत्ता मुनियों का मत भिन्न क्योंकर हो सकता है ? जब तत्त्व तो एक ही होता है। इस पर योगत्रयानन्दजी ने इसके विश्लेषण में कहा था—

धर्म का तत्त्व एक अत्यन्त गम्भीर रहस्य है जो मन से अतीत है। मन का निरोध किये बिना इस गुहा में प्रवेश असम्भव है। मुनिवर्ग मन को लेकर ही शास्त्र की व्याख्या करता है। जो मन से इसकी व्याख्या करेगा, उसको शास्त्र के तत्त्व अपनी प्रकृति के अनुसार ही दिखाई पड़ेंगे। प्रत्येक मुनि की प्रकृति भिन्न होती है। अतः उनके मतों में भिन्नता होना स्वाभाविक है। तत्त्व का साक्षात्कार मन को अतिक्रमण करके होता है। तत्त्व का साक्षात्कार वहीं होता है, जहाँ मन नहीं रहता। परन्तु तत्त्वों का साक्षात्कार कराया जाता है बीच में से, जहाँ मन की आवश्यकता होती है। यह ज्ञान विकल्प ज्ञान है, किन्तु साक्षात्कार विकल्पशून्य निर्विकल्प है। वेदस्मृति सब शब्दात्मक हैं। अतः परम प्रामाणिक होने पर भी वे विकल्परहित नहीं हैं। मुनि भी मननशील हैं, वे विकल्प से रहित नहीं हैं। इसलिए धर्म का तत्त्वान्वेषण करना हो, तो हृदयगुहा में प्रवेश करना पड़ता है, परन्तु जनसाधारण के लिए यह संभव नहीं है। उनके लिए एकमात्र उपाय है—महाजनो येन गतः स पन्थाः—"महाजनों के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण"।

कहना न होगा कि शिवराम किंकरजी के एतत्-सदृश व्याख्यानों तथा विश्लेषणों ने कविराजजी की आँखें खोल दीं। वे इन्हें अनेक कारणवश अपना गुरु न बना सके, परन्तु इनका कविराज जी के तत्त्वचिन्तन के ऊपर विशेष प्रभाव पड़ा—हम निःसन्देह कह सकते हैं। स्वामीजी ने अनेक धार्मिक ग्रन्थों का प्रणयन बंगला में किया है, जिनमें से महाशिवरात्रिविषयक पुस्तक का दो खण्डों में हिन्दी में वाराणसी से प्रकाशन हुआ है। इनकी दूसरी पुस्तक का नाम 'शिव और शिवार्चन तत्त्व" है जो दो भागों में छपी है।

परमहंस विशुद्धानन्दजी

कविराजजी को गुरु की खोज लगी हुई थी जो अपने "शक्तिपात" से उनके शरीर में तथा मन में अलौकिक अध्यात्म की चेतना उत्पन्न कर सके। "जिन खोजा तिन पाइयाँ।" किसी आध्यात्मिक सुहृद ने तिब्बत से योगविद्या का अध्ययन कर विशिष्ट सिद्धि लाभ करने वाले किसी परमहंसजी का परिचय इन्हें दिया। उन्हीं के साथ उनका साक्षात्कार करने के लिए ये शिवाला मुहल्ले में स्थित उनके आवास पर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये। परमहंसजी उस समय अपने सिद्धिक्षेत्र 'ज्ञानगंज' तथा अपने गुरुजी की अलौकिक सिद्धि की चर्चा कर रहे थे। कविराजजी उनके अध्यात्म-विषयक भाषणों तथा तत्त्वचिन्तन की चर्चाओं से नितान्त प्रभावित हुए और २१ जनवरी, १९१८ ई० को हनुमानघाट पर उनसे विधिवत् मन्त्रोपदेश संस्कार ग्रहण किया। उनके बताये हुए अध्यात्म-मार्ग पर चलकर कविराजजी ने भी विशेष आध्यात्मिक लाभ उठाया। परमहंसजी का लोकान्तरण ११ जुलाई, १९३७ ई० में कलकत्ते में हुआ। इन १८-१९ वर्षों तक कविराजजी का गुरुदेव विशुद्धानन्दजी के साथ घनिष्ठ सम्पर्क रहा। परमहंसजी के काशी के बाहर कलकत्ता, पुरी, वर्दवान आदि स्थानों में भी आश्रम थे जहाँ वे कुछ काल तक रहते थे, परन्तु काशी से उनकी विशेष ममता थी। यहाँ वे पाँच-छह महीनों तक लगातार रहते थे। इन दिनों कविराजजी उनका छायावत् अनुगमन किया करते थे।

विशुद्धानन्दजी का एक बढ़िया आश्रम वाराणसी के मलदहिया मुहल्ले में छावनी स्टेशन के रास्ते में लबे-सड़क भक्तों के सहयोग से निर्मित किया गया था जहाँ कविराजजी के संग में लेखक तथा उसके घनिष्ठ मित्र पण्डित बटुकनाथ शर्मा भी प्रायः जाया करते थे। परमहंसजी के इस आश्रम में शक्तिपीठ की स्थापना की गई थी जहाँ शारदीय नवरात्र के समय शक्तिपूजा बड़े समारोह से मनाई जाती, विशिष्ट गौरी-पूजन होता तथा कुमारी-भोजन बड़ी संख्या में सम्पन्न होता। विशुद्धानन्दजी के अनेक योग-सम्बन्धी चमत्कार देखने को मिलते थे। वे 'सूर्यविज्ञान' के चमत्कारी उपासक थे। उनकी मान्यता थी कि सूर्य में पदार्थों के परिवर्तन करने की विशिष्ट शक्ति वर्तमान है। वे स्वयं नाना प्रकार की गन्धों को उत्पन्न करने की अलौकिक क्षमता रखते थे। सूर्य की किरणों का वे प्रथमतः पुष्पविशेष पर (फोकस) पुञ्जीकरण कर देते थे जिससे वह गन्धहीन हो जाता। तदनन्तर वे दर्शकों के द्वारा वाञ्छित विशिष्ट गन्ध को दूसरे प्रकार के लेन्स (शीशा) के द्वारा सूर्य-रश्मियों के फोकस से उत्पन्न कर देते थे। यह नवीन गन्ध कई दिनों तक रहती थी और हफ्तों के बाद वह स्वतः कम होती-होती विलीन हो जाती थी। गेंदा के फूल को गन्धहीन कर उसमें गुलाब की गन्ध उत्पन्न करने की प्रक्रिया को लेखक ने अनेक बार देखा है। इस प्रकार किसी दर्शक के रूमाल को खस की गन्ध से सुवासित करने की घटना को लेखक ने बहुशः प्रत्यक्षीकृत किया है। रूमाल की गन्ध उड़ती नहीं थी, प्रत्युत अनेक दिनों तक उसमें बनी रहती थी। फलतः इसमें किसी जादूगर की कला का नितान्त अभाव मानना तथा योगसिद्धि का विशिष्ट चमत्कार समझना ही न्याय्य प्रतीत होता है।

स्वामी विशुद्धानन्दजी सूर्यविज्ञान की प्रयोगशाला (लेबोरेटरी) ही स्थापित करना चाहते थे। उसके लिए बड़े मोटे दल के शीशे की आवश्यकता उन्होंने बताई थी। सुना था कि ऐसा मोटा शीशा जर्मनी में ही तैयार होता है। जर्मनी के किसी वैज्ञानिक व्यवसायी से इसे प्राप्त करने का प्रयास तो उस समय जारी था, परन्तु स्वामीजी के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकस्मिक लोकान्तरण के कारण यह प्रयोगशाला स्थापित हो न सकी। योगियों के अन्वेषणकारी पाल ब्रन्टन ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'सर्च इन सिक्रेट इंडिया'[1] में स्वामीजी के द्वारा मृत पक्षी को जीवनदान की अलौकिक घटना का उल्लेख किया है जिसका विवरण वहीं से प्राप्त किया जा सकता है। कहना न होगा कि स्वामी विशुद्धानन्दजी के घनिष्ठ सम्पर्क में आने से कविराजजी को अध्यात्मचिन्तन के सोपानों को पार करने में विशेष लाभ हुआ जिसका उल्लेख कविराजजी ने स्वयं किया है।

आनन्दमयी माँ

सन् १९३७ ई० में अपने दीक्षागुरु स्वामी विशुद्धानन्द की मृत्यु के पश्चात्, पं० गोपीनाथ कविराज, अपने जीवन के उत्तरार्ध में, आनन्दमयी माँ के अलौकिक व्यक्तित्व और साधना से अत्यन्त प्रभावित हुए। ये उनके परममक्त बन गये। यद्यपि माँ से इन्होंने दीक्षा ग्रहण नहीं की, फिर भी ये उन्हें अपना आध्यात्मिक गुरु मानते थे। आनन्दमयी माँ के अभिनन्दन में जो ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है उसमें कविराजजी ने माँ के सम्बन्ध में अपना जो हार्दिक उद्‌गार प्रकट किया है उससे माँ के विषय में इनकी पूर्णभक्ति का पता चलता है। माँ की साधना तथा उनकी विशेषताओं का इन्होंने जैसा वर्णन किया है, उससे इनकी उत्कट भक्ति प्रकट होती है।

आनन्दमयी माँ इन्हें अपने पट्ट शिष्य तथा परम भक्त के रूप में मानती थीं। किम्बहुना, माँ ने इनकी भक्ति से प्रसन्न होकर इन्हें भदैनी घाट पर स्थित अपने आश्रम में रहने का आग्रह किया था। अतः कविराजजी अपने सिगरा मुहल्ले में स्थित निजी मकान को छोड़कर माँ के आश्रम में ही रहने लगे थे। माँ अपने पुत्र की तरह ही इनकी देखभाल सदा करती थीं। आश्रम की स्त्रियाँ इनकी परिचर्या में सदा उपस्थित रहती थीं।

एक बार कविराजजी बहुत बीमार पड़ गये। माँ दिल्ली के प्रसिद्ध डा० सेन के 'नर्सिंग होम' में इन्हें 'मेडिकल चेक अप' के लिए ले गयीं। डाक्टरी जाँच के पश्चात् डा० सेन ने कैन्सर होने की सम्भावना प्रकट की और उसके आपरेशन के लिए 'टाटा मेडिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट' बम्बई जाने की सलाह दी। माताजी इन्हें अपने साथ लेकर बम्बई गईं और आपरेशन के लिए वहाँ भर्ती करा दिया। जिस दिन कविराजजी का वहाँ आपरेशन हुआ उस दिन माँ के आदेश से उनके बम्बई, पूना और वाराणसी स्थित सभी आश्रमों में अखण्ड कीर्तन हुआ। भगवान् की कृपा और माँ के शुभ आशीर्वाद से आपरेशन सफल हो गया। माँ ने पूर्ण विश्राम के लिए कविराजजी को अपने पूना वाले आश्रम में रखा और इनको आवास और भोजन आदि की सभी सुविधाएँ प्रदान कीं। इस प्रकार माँ के आशीस से ये पूर्ण स्वस्थ होकर कुछ महीनों के बाद काशी लौट आये। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में कविराजजी अनेक वर्षों से

---

१. यह पुस्तक विदेश में छपी है परन्तु इसका हिन्दी अनुवाद 'गुप्त भारत की खोज' के नाम से लीडर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुआ है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँ के आश्रम में ही रहा करते थे और यहीं सन् १९७६ ई० में इन्होंने कैवल्य धाम को प्राप्त किया।

ऊपर की इस घटना से ही कविराज जी के प्रति माँ के वात्सल्य स्नेह का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। साधक कविराजजी को माँ के इस साधना क्षेत्र में पूर्ण शान्ति मिलती थी और वे सुखपूर्वक अपना अन्तिम दिन यहाँ बिता रहे थे। यद्यपि बीमारी के दिनों में विशेष बोल नहीं सकते थे फिर भी दर्शनार्थियों की भीड़ लगी रहती थी और भक्तगण इनका दर्शन कर सन्तोष लाभ कर चले जाते थे। माँ के आश्रम में रहते हुए आने वाले भक्तों को आनन्दमयी माँ और साधक कविराज का दर्शन एक साथ ही प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त होता था। धन्य है यह सरस्वती का उपासक जिसने जीवन के अन्तिम क्षण तक सरस्वती की सेवा की और धन्य है यह साधक जिसकी साधना अन्त तक चलती रही। यह सच ही कहा है—

"कीर्तिर्यस्य स जीवति।"

कविराजजी के उपदेश

कविराजजी के उपदेश नाना प्रकार के गम्भीर तथ्यों का विवेचन करते हैं। उनको धारण कर तदनुसार जीवन यापन करने का प्रयास कर साधक निःसंदेह लाभ उठा सकता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं। कतिपय उपदेशप्रद वचन यहाँ निर्दिष्ट किये जाते हैं—

जीवन में प्रतिकूलता होने पर उसे भी भगवत्-कृपा मानना चाहिए। प्रत्येक स्थिति में भगवान् की इच्छा को ही प्रधानता देनी चाहिए। वही कल्याणकर होती है। इस तथ्य के विरुद्ध तर्क करने पर वे आवेश में आकर कहते थे—'तोमार इच्छेइ इच्छा भगवानेर इच्छा इच्छेइ नाइ' (तुम्हारी इच्छा ही इच्छा है, भगवान् की इच्छा-इच्छा ही नहीं है)। 'तुमी डिक्टेट करबो, तब से शुनबे' (तुम आदेश दोगे, तभी वह सुनेगा)। 'Proposal तोमार किन्तु Disposal तार' (प्रस्ताव तुम्हार किन्तु निर्णय उसका)।

'अखण्ड महायोग' के विषय में उसके तत्व को इन शब्दों में रखते थे—"समन्वय दृष्टि के बिना जगत् का कल्याण नहीं। साम्प्रदायिक दृष्टि खण्डदृष्टि है। साधक के संस्कार अथवा रुचि के अनुसार साधना में इसे राम, कृष्ण, शिव तथा शक्ति की उपासना में दृष्टिभेद होना स्वाभाविक है, किन्तु भावदृष्टि इन सारे दृष्टि-भेदों को समाप्त कर देती है। वही पूर्ण या समष्टि दृष्टि है। अखण्ड महायोग का यही लक्ष्य है। समष्टि परिवर्तन इसी के द्वारा सम्भव है।"

नाम-जप की प्रक्रिया

नाम का अर्थ है भीतरी स्वरूप शक्ति। नाम लेने में प्राण, इच्छा और वाक् तीनों की समष्टि होती है। इनके ठीक मिलन का यदि प्रयास हो, तो भीतर से ही नाम-ध्वनि निकलने लगती है—बिना जप किये ही जप होने लगता है, यही अजपाजप है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकों को अधिक बोलना ठीक नहीं होता। बोलने से भीतरी शक्ति बाहर जाकर बिखर जाती है। उसे भीतर ही भीतर संचित रखने की आवश्यकता होती है। "सब भीतर राखते हय, किछू बोल्लई ओटा कालेर प्रवाहे—पोड़े जा" (सब कुछ भीतर रखना चाहिए। यदि कुछ कहो, तो वह काल के प्रवाह में पड़ जाता है)

समग्र विश्व ही काल के अधीन है। महाकाल धीवर के समान है जिसने समग्र विश्व में अपना जाल फेंक रखा है। मछलियों का आश्रय अगाध जल है। उनमें से जिसको वह चाहता है खींच लेता है। महाशक्तिशाली काल के ऊपर किसी का वश नहीं—

अगाध जले मीनेर आश्रय
जले जाल फेलेछे भुवनमय।
से जखन जाके मने करे
तखन तारे धोरे आने॥

इसीलिए श्रीमद्भागवत में प्राणियों के जीने की आशा को सद्यः छिन्न-भिन्न करने वाले काल को भगवद्रूप मानकर स्तुति की गई है—

यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां
सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै।

जपयोग—वाचिक जप से उपांशु जप श्रेष्ठ है और उपांशु जप से मानस जप श्रेष्ठ होता है—यह शास्त्र में प्रसिद्ध है। वाचिक जप में बाह्य वायु के साथ सम्बन्ध अधिक रहता है, परन्तु उपांशु जप में यह सम्बन्ध प्रायः छिन्न हो जाता है, फिर भी कुछ रहता है। यथार्थ मानस जप में बाह्य वायु का सम्बन्ध एक प्रकार से नहीं रहता। बाह्य वायु के प्रभाव से ही चित्त विक्षिप्त हो जाता है। वाचिक जप में श्वास-प्रश्वास की क्रिया स्वाभाविक रूप से चलती है, परन्तु ठीक भाव से जप होने पर श्वास-प्रश्वास की क्रिया मन्द पड़ जाती है। श्वास की गति ह्रास होने के साथ ही साथ वाचिक जप उपांशु जप में परिणत हो जाता है। श्वास-प्रश्वास की गति एकान्तरूप से क्षीण होने पर बिना चेष्टा के ही उपांशु जप मानस जप में परिणत हो जाता है। यह मानस जप ही इसीलिए सर्वोत्तम माना गया है।

प्रेमसाधना—भाव परिपक्व होने पर प्रेम के रूप में परिणत हो जाता है। इसकी स्थिति पुष्प में सुगन्ध के समान है। वही गन्ध जब परिणत होकर रस का रूप धारण कर लेती है, मकरन्द मधु में परिणत हो जाता है तब वह प्रेमपद-वाच्य होता है। पुष्प में मधु या रस का उद्गम होने से भृंग को आकृष्ट करना नहीं पड़ता, वह आप ही आप आता है। उसी प्रकार भाव के प्रेम में परिणत होने पर भगवत्-स्वरूप स्वतः आविर्भूत हो जाता है, उसे बुलाने की आवश्यकता नहीं होती। क्रियात्मिका भक्ति से भाव-भक्ति की यही विलक्षणता है।

योगियों की मृत्यु के विषय में कविराजजी की धारणा थी कि उनकी मृत्यु न होकर उनका लोकान्तरण हो जाता है। उनका कहना था कि श्री अरविन्द का देहा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वसान वस्तुतः हुआ नहीं है। देहत्याग तो औपचारिक भौतिक क्रिया है। वस्तुतः जिस कार्य को एक देहबिन्दु की उपाधि से ग्रस्त होकर श्री अरविन्द कर रहे थे, उसी कार्य को निरुपाधिक धरातल से प्रशस्ततर रूप में वे अब कर रहे हैं। रामकृष्ण परमहंस तथा विवेकानन्द की मृत्यु के विषय में भी इनका कथन इसी प्रकार का था। ये मृत्यु को मायात्मिका ही मानते थे। ये भौतिक दृष्टि का उपहास करते थे और शुद्धदेह के पक्षपाती थे। इनका कहना था कि चिन्तनरत योगी इस भौतिक देह की पर्वाह नहीं करता। साधारण जन को जो अपार दुःख मृत्यु के कारण होता है, शुद्धदेह विकसित होने के कारण वह सर्वथा उसका अतिक्रमण किये रहता है। इन कथनों से स्पष्ट है कि अपार ज्ञानराशि के साथ ही साधना के धरातल पर आरोहण कविराजजी का वैशिष्ट्य है।

कविराजजी का कहना था कि जिस वस्तु की एवं पुस्तक की इन्हें उत्कट इच्छा होती थी, वह अनायास ही इन्हें प्राप्त हो जाती थी। भगवान् की कृपा से वह वाञ्छित वस्तु आपसे आप आ जाती थी। वराहमिहिर ने ऐसे कार्य वाले पुरुष को धन्य व्यक्तियों की कोटि में रखा है। बृहत्-संहिता में उनका कथन है—

श्रान्तस्य यानमशनं च बुभुक्षितस्य
पानं तृषापरिगतस्य भयेषु रक्षा।
एतानि यस्य पुरुषस्य भवन्ति काले
धन्यं वदन्ति किल तं खलु लक्षणज्ञाः॥

कालिदास ने भी ऐसे व्यक्ति को पुण्यशाली बतलाया है :—

सद्य एव सुकृतां हि पच्यते कल्पवृक्षफल-धर्मि कांक्षितम्।

अर्थात् पुण्यवन्तों का मनोरथ कल्पवृक्ष के समान फल देने वाला होता है। कविराजजी इस दृष्टि से नितान्त पुण्यवन्त थे—इसमें तनिक भी सन्देह नही है।

व्यक्तित्व का मूल्यांकन

यदि अधार्मिकता के इस युग में त्याग-तपस्या की सजीव मूर्ति का साक्षात्कार करना हो, यदि अविश्वास के इस कलुषित वातावरण में सौम्य विश्वास की प्रतिमा का निरीक्षण करना होता, तो मेरा पाठकों से विनम्र आग्रह था कि वे स्वनामधन्य पद्मविभूषण महामहोपाध्याय डाक्टर पूज्यचरण श्री गोपीनाथ कविराज का दर्शन अवश्य करें। वे उनके दर्शन से ही कृतकार्य हो जावेंगे तथा उनके बिना सरल सुबोध प्रवचनों के ही दर्शनमात्र से अपने भीतर एक पावत्र शांति का बोध करेंगे। तथ्य यह है कि हम लोग कविराजजी का इसलिए आदर नहीं करते थे कि वे प्राच्य तथा प्रतीच्य विद्याओं के चलते-फिरते विश्वकोश थे, प्रत्युत इसलिए कि इनका जीवन आध्यात्मिकता का उज्ज्वल दृष्टान्त था, निश्छल पवित्रता का पावन उत्स था, एवं नैसर्गिक सरलता का मधु-मय निकेतन था। अगाध पाण्डित्य तथा उन्नत आध्यात्मिकता इनके ऊपर अपना प्रज्ञाभार डालने में कथमपि समर्थ नहीं हो सकी। ये बालक के समान सरल थे, सन्त के समान सर्वसुलभ थे, अध्यात्मवेत्ता के समान विश्व पारखी थे और कवि के समान प्रतिभा-सम्पन्न

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे और सबसे बढ़कर थे महामानव के समान करुणा तथा मैत्री से परिपूर्ण हृदय के धनी व्यक्ति।

ये बचपन से ही गम्भीर प्रकृति के जीव थे। अल्पवयस् में ही शास्त्रों के मर्मी पिता की छत्रच्छाया से वंचित होने का दुर्भाग्य उन्हें प्राप्त था, परन्तु दयामयी माता के स्नेहसिक्त वातावरण में लालित-पालित होने से इनके हृदय में पीड़ितों की वेदना समझने की नैसर्गिक योग्यता थी। जन्म तो हुआ इनका पूर्वी बंगाल के मैमनसिंह जिले के एक गाँव में, परन्तु इनका समस्त जीवन—अध्ययन तथा अध्यापन—इस भूतभावन की विभूतियों की भव्य नगरी वाराणसी में ही व्यतीत हुआ। इस प्रकार काशी से इनका अविच्छेद्य सम्बन्ध था।

इनका विद्यार्थी जीवन नाना विद्याओं तथा अनेक भाषाओं के अर्जन में बीता। पुस्तकों के ये इतने बड़े अध्येता थे कि यह प्रसिद्धि यथार्थ है कि इन्होंने अपनी बी० ए० कक्षाओं में पढ़ते समय महाराज कालेज जयपुर (जहाँ वे विद्याध्ययन के निमित्त बंगाल से गये थे) के पुस्तकालय के साहित्य तथा दर्शन सम्बन्धी समस्त ग्रन्थों को विधिवत् पढ़ डाला था तथा क्वीन्स कालेज के पुस्तकालय के अंग्रेजी तथा संस्कृत के समग्र ग्रन्थों को अपनी एम० ए० परीक्षा के काल में पढ़कर समाप्त कर दिया था। फलतः छात्रावस्था से ही इन्हें साहित्य (अंग्रेजी, संस्कृत, बंगला) तथा दर्शन (यूनानी, यूरोपियन तथा भारतीय) में दक्षता प्राप्त हो गयी थी। फलतः अपनी विद्वत्ता से ये अपने विद्यागुरु, क्वीन्स कालेज के अध्यक्ष, डाक्टर आर्थर वेनिस को सदा आश्चर्य-चकित किया करते थे।

कविराजजी की सबसे बड़ी विशिष्टता थी—तुलनात्मक अनुशीलन के द्वारा धर्म तथा दर्शन के निगूढ़ रहस्यों का सुबोध अभिव्यक्तीकरण। ये प्रत्येक धर्म के अन्तस्तल में प्रवेश कर उसके मर्म समझने तथा समझाने की विलक्षण शक्ति रखते थे। जब ये ईसाई मत के गम्भीर तत्त्वों की वैदिक धर्म के तत्त्वों से सन्तुलित कर व्याख्या करने लगते थे, तब हमको पूरा विश्वास जागरित हो जाता था कि ऐसी व्याख्या शायद ही कोई पादरी कर सके। जैन तथा बौद्ध धर्म की व्याख्या के अवसर पर भी यही भावना जागरूक होती थी। तथ्य यह है कि कविराजजी की दृष्टि में ये नाना धर्म, देश तथा काल की परिधि द्वारा विमक्त तथा पृथक् होने पर भी एक ही मूल तथ्य से प्रत्यक्षीकृत धर्म एक ही है परन्तु उसकी अभिव्यक्ति के प्रकार नाना हैं। सूक्ष्मता से विचार करने पर इनके बाह्य आवरण को हटाकर भीतर देखने वालों के लिए वही मूल तत्त्व प्रद्योतित होता है। कविराजजी की व्याख्याएँ गम्भीर अवश्य होती थीं, परन्तु उनका प्रतिपादन ये इतनी सुबोध शैली में करते थे कि सुनने वालों को वे तत्त्व अनायास हृदयंगम हो जाते थे। निगूढ़ रहस्य इनकी व्याख्या के अनन्तर अपनी गम्भीरता खो डालता था और वह एक परिचित तथ्य के समान विज्ञ श्रोताओं की दृष्टि में आ जाता था। कविराजजी की दृष्टि में धर्म तथा दर्शन की गुत्थी सुलझाने की कुंजी तन्त्रशास्त्र में थी। वेदान्त की दृष्टि से भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों की संगति को

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याख्या हमारे मान्य दार्शनिक सर्वदा करते आये हैं। मधुसूदन सरस्वती ने अपने 'प्रस्थान-भेद' में इसी दृष्टि की मुख्यता मानकर सर्वदृष्टियों का समन्वय प्रस्तुत किया है, परन्तु कविराजजी तान्त्रिक दृष्टि को लक्ष्य कर दर्शन की नाना धाराओं में सम्भाव्यमान विरोधों के परिहार-सम्पादन के पक्ष में थे। तथ्य तो यह है कि ये तन्त्रशास्त्र को भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन का परिनिष्ठित अमृतमय परिणाम स्वीकार करते थे। कविराजजी ने तन्त्रों का विधिवत् अध्ययन किया था, उनके गम्भीर तथा निगूढ़ रहस्यों को समझने की इनकी अपनी एक विशिष्ट शैली थी। साधक होने के कारण इनकी अन्तश्चेतना में ये तथ्य प्रतिफलित होते थे जिससे उनकी व्याख्या में मौलिकता प्रत्येक विज्ञ आलोचक को लक्षित होती थी। प्रातिभ दृष्टि से सम्पन्न होने के हेतु कविराजजी को ऐसे तथ्य स्वतः सूझ जाते थे जो उस दृष्टि से विरहित केवल शब्द—अर्थ जोड़ने में व्यस्त पण्डित की दृष्टि में कभी नहीं आते। किसी सिद्ध पुरुष की उक्तियों, तर्कों तथा सिद्धान्तों को समझने के लिए साधक को उस कोटि में अपने को लाना ही पड़ता है। इस कार्य में जो व्यक्ति जितना समर्थ होता है, वह तथ्य निर्धारण में उतना ही कृतकार्य होता है—यह मौलिक सिद्धान्त इस प्रसंग में भुलाया नहीं जा सकता। तन्त्र के विषय में कविराजजी की मान्यता इस प्रकार व्यक्त की जा सकती है--वेद और तन्त्र का निगूढ़ रूप एक ही प्रकार का है। दोनों ही अक्षरात्मक हैं अर्थात् शब्दात्मक ज्ञानविशेष हैं। ये शब्द लौकिक नहीं--दिव्य हैं और अपौरुषेय हैं। मन्त्रदर्शीगण इसे ही प्राप्त कर सर्वज्ञत्व लाभ किया करते थे और वे अन्त में आत्मसाक्षात्कार द्वारा अपना जीवन सफल करते थे। निरुक्त आदि ग्रन्थों की आलोचना से प्रतीत होता है कि ऋषिगण साक्षात्कृतधर्मा थे। वे उन सामान्य जनों को उपदेश द्वारा मन्त्र दिया करते थे जो असाक्षात्कृतधर्मा थे। ये ऋषि लोग इतने शक्तिशाली होते थे कि किसी से उपदेश ग्रहण किये बिना अपने प्रतिभान के बल से मन्त्रद्रष्टा होते थे। ऐसे प्रातिभ ज्ञान के आश्रय से ही मूल तथ्य का आविष्कार तथा प्रत्यक्ष किया जा सकता है। फलतः तन्त्रों के उपदेश से मूल तत्त्व का दर्शन पूर्णतः किया जा सकता है। तन्त्र केवल सिद्धान्त ही प्रतिपादन नहीं करते, प्रत्युत उस कोटि पर पहुँचने के लिए तत्तत् आचार का भी उन्मीलन करते हैं। फलतः उभयविध शिक्षण के कारण तन्त्रों का माहात्म्य आज के युग में सर्वातिशायी है।

तन्त्र के रहस्यों के प्रतिपादन के लिए कविराजजी ने अनेक बृहत् लेख तथा ग्रन्थों का प्रणयन किया था। 'भारतीय संस्कृति और साधना' (२ भाग) तथा 'तान्त्रिक वाङ्मय में शास्त्र दृष्टि' ऐसे ही प्रमेयबहुल ग्रन्थ हिन्दी में प्रकाशित हैं। अंग्रेजी में तथा बंगला में इनके तन्त्र-सम्बन्धी लेखों के संग्रह पुस्तक रूप में कलकत्ता विश्वविद्यालय तथा बर्दवान विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुए हैं तथा हो रहे हैं। इन रचनाओं के द्वारा भी कविराजजी ने तन्त्र के विभिन्न प्रकारों को जिज्ञासु जनों के सामने प्रस्तुत कर तन्त्र को नितान्त लोकप्रिय बनाया। हिन्दी जगत् में तन्त्रों के अध्ययन के प्रति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो अभिनव रुचि उत्पन्न हुई है, उसके लिए आपके लेख तथा ग्रन्थ बहुल अंशों में कारण हैं—यह मैं मानता हूँ।

कविराजजी में विद्वत्ता तथा आध्यात्मिकता का मणिकांचन योग था। यही कारण है कि इनकी रचनाएँ, इनके प्रवचन पाठक तथा श्रोताओं पर अपना पूरा प्रभाव पैदा करते थे। ये पण्डित ही नहीं थे, प्रत्युत सन्त थे, योगी थे जिन्होंने शास्त्र-चिन्तन को अपने व्यावहारिक जीवन में उतारने का पूर्ण प्रयास किया था। इस कार्य में ये नितान्त सफल थे। वे जीवन्मुक्त थे। पार्थिव प्रलोभनों से दूर रहकर इन्होंने अपने जीवन के आदर्श को समुन्नत बनाया था। इनके जीवन को समीप से देखने वाले भली भाँति जानते हैं कि इकलौते जवान पुत्र की आकस्मिक मृत्यु इन्हें तनिक भी विचलित नहीं कर सकी। इनके चित्त पर उस घटना का तनिक भी असर नहीं पड़ा, जब सामान्य कोटि का मानव अविश्वास तथा अन्धकार के गर्त में गिर कर सदा के लिए नास्तिक रहता। अर्थ इनके चित्त को अपनी ओर नहीं खींच सका। तभी तो अपने समय से पहले ही इन्होंने सरकारी नौकरी का परित्याग कर अपने समय को शान्ति से बिताने का व्रत ले लिया।

ब्राह्मण की कसौटी त्याग और तपस्या है। बिना त्याग और तपस्या की सिद्धि के ब्राह्मणत्व का आदर्श पूर्ण नहीं हो सकता। कविराजजी में ये दोनों गुण विद्यमान थे। त्याग भी तथा तपस्या भी। ये संसारी गृहस्थ होकर भी विरागी थे। इनका एक ही व्यसन था—शास्त्र का चिन्तन, मनन तथा निदिध्यासन तथा उसका सुयोग्य व्यक्तियों में वितरण। ये कभी-कभी हमारी केवल व्यावहारिक दृष्टि पर उलाहना दिया करते थे जिसके कारण हम अपनी तात्त्विक दृष्टि को अग्रसर करने में समर्थ नहीं होते। ये अन्तर्दृष्टि के जागरण पर विशेष बल देते थे और कहते थे कि बिना उसके खुले शास्त्रों का मर्म नहीं समझा जा सकता। ये आजकल के बाजारू अध्ययन की निन्दा किया करते थे और अपने छात्रों को इससे पराङ्मुख होने का उपदेश देते थे। बाजारू अध्ययन से इनका अभिप्राय उस अध्ययन से है जो केवल आर्थिक लाभ की दृष्टि से किया जाता है, शास्त्र के अन्तस्तल में पहुँचने से जो हमेशा हमें रोक देता है। इसीलिए ये शास्त्रीय अध्ययन के लिए निष्पक्ष दृष्टि की प्रशंसा करते थे। इनके पास भारत के कोने-कोने से ही नहीं, प्रत्युत विदेशों से भी जिज्ञासु जन आते थे तथा अपनी शंकाओं का पूर्ण समाधान पाकर अपने को सिद्ध-मनोरथ बनाते थे। इनका द्वार प्रत्येक जिज्ञासु के लिए खुला था। एक बात हमारे ध्यान देने की यह है कि इनके ग्रन्थ-लेखन तथा प्रवचन की शैली में अन्तर उपलब्ध होता था। जब ये लिखते थे तब इतना जमकर लिखते थे कि थोड़े स्थान में अधिक भावों की अभिव्यक्ति के कारण उनके कथन में दुरूहता आ जाती थी। सामान्य पण्डितजन के लिए भी इनके कथन व्याख्या की अपेक्षा रखते थे, परन्तु इनके प्रवचन इतने सरल, सुबोध तथा उदाहरण-प्रचुर होते थे कि विषय की दुरूहता का पता नहीं चलता था, कठिन से कठिन विषय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी हृदयंगम हो जाता था। परन्तु इसके लिए विषय में श्रोताओं के प्रवेश की आवश्यकता नितान्त अपेक्षित होती थी। साधारण जानकारी वाला व्यक्ति उनके प्रवचनों से लाभ उठा नहीं सकता था।

निष्कर्ष यह है कि शास्त्र की प्राचीन परम्पराओं, साधना के कठिन मार्ग को, आध्यात्मिकता के समुन्नत स्तर को जागरूक रखने में पण्डित गोपीनाथ कविराजजी एक दिव्य विभूति थे। प्राचीन महर्षियों के ज्ञान-वैराग्यमय जीवन की दिव्य झाँकी को कहीं देखना आज भी यदि किसी व्यक्ति को अभीष्ट होता तो वह कविराजजी के जीवन में देख सकता था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२

आचार्य आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव

(आस्पद—ध्रुव, उपाधि—सर्वतन्त्रस्वतन्त्र)

आचार्य ध्रुव एक प्रतिभासम्पन्न दार्शनिक, प्रज्ञामण्डित लेखक तथा व्यवहार-कुशल शासक थे। महामना मालवीय महाराज को व्युत्पन्न सनातनधर्मानुयायी, आस्तिक विद्वान्, भारतीय संस्कृति के मूल्यों के प्रवीण पारखी तथा व्यवहार-चतुर शासनदक्ष व्यक्ति की खोज थी जो हिन्दूविश्वविद्यालय के संवर्धन तथा प्रसारण में उनकी पूर्णतया सहायता कर सके। वह विश्वविद्यालय का शैशवकाल था, उसके मार्गदर्शन के लिए नितान्त आवश्यकता थी ऐसे विज्ञ पुरुष की, जो शिक्षण संस्थाओं का उत्थान करने में सफलता प्राप्त कर चुका हो तथा नयी-नयी प्रशासनिक समस्याओं के समाधान की पूरी क्षमता से मण्डित हो। मालवीयजी के पास व्यवहार-निपुण सहयोगियों की कमी नहीं थी, परन्तु शैक्षणिक योग्यता से मण्डित, भारत की प्राचीन शिक्षा में दीक्षित एवं उसके उन्नयन करने की व्यावहारिक प्रतिभा से सम्पन्न व्यक्ति का तो अभाव ही था। फलतः महामना ने महात्मा गान्धीजी से ऐसे व्यक्ति को चुन कर भेजने का आग्रह किया जो प्राचीनता का प्रेमी होते हुए भी अर्वाचीनता का विरोधी न हो, दोनों विरुद्ध दिशाओं के बीच जिसकी शेमुषी सुवर्णमय मध्यम मार्ग का संवरण कर सके तथा जो 'विद्या धर्मेण शोभते' इस विश्वविद्यालयीय आदर्श का जीवन्त प्रतीक हो। बापू ने आचार्य आनन्दभाई ध्रुव को मालवीय महाराज के द्वारा निर्धारित तुला पर तौल कर विज्ञ मनीषी तथा चतुर शासनकर्ता निश्चित कर ही हिन्दूविश्वविद्यालय के लिए वरिष्ठ अधिकारी के रूप में भेजा। अपने प्रथम माङ्गलिक भाषण में ही ध्रुवजी ने अपनी विशिष्टता का परिचय देकर मालवीयजी को मुग्ध कर लिया; अपनी वाक्-चातुरी से श्रोताओं के हृदय को हठात् आकृष्ट कर लिया। श्रोताओं तथा दर्शकों को यह जानते देर नहीं लगी कि काशी हिन्दूविश्वविद्यालय के जीवन में आज से एक नया मोड़ उत्पन्न हो गया है—ऐसा मोड़, जो उसे उन्नति के मार्ग पर अग्रसर ही नहीं करेगा, प्रत्युत सम्भावित खाइयों तथा संघर्षों से बचा कर उसे भौतिक उत्कर्ष का सुनहला भविष्य भी दिखलाएगा।

प्रथम परिचय

सन् १९२० ई० का उथल-पुथल का युग। सेन्ट्रल हिन्दू कालेज का काशीनरेश हाल। अपराह्न की विमल वेला। 'हाल' छात्रों, अध्यापकों तथा दर्शकों से खचाखच भरा हुआ था। सभी लोग गान्धीजी के द्वारा मनोनीत गुजराती विद्वान् के दर्शन करने तथा भाषण सुनने के लिए उद्ग्रीव आसनों पर बैठे थे। छात्रों की तालियों की गड़गड़ाहट के बीच महामना मालवीयजी अपने साथ एक भव्य व्यक्ति को

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ लेकर हाल में उपस्थित हुए। दोनों ने अपना आसन ग्रहण किया। लेखक उस वर्ष बी० ए० की प्रारम्भिक कक्षा में था और उस ऐतिहासिक व्याख्यान को सुनने के लिए उत्सुकता की मूर्ति बना बेंच पर बैठा बड़े मनोयोग से आगन्तुक व्यक्ति का दर्शन कर रहा था। मालवीयजी ने अपने भाषण में ध्रुवजी का परिचय दिया, गुजरात के विद्वानों में उन्हें अत्यन्त प्रतिभाशाली विद्वान् होने की बात कही तथा आशा की कि ऐसे सुयोग्य व्यक्ति के शासन काल में हिन्दू विश्वविद्यालय अपने निर्धारित लक्ष्य पर पहुँचने में विलम्ब नहीं लगाएगा।

आचार्य ध्रुवजी व्याख्यान देने के लिए उठे। श्रोताओं में नीरवता व्याप्त हो गई। इनका व्यक्तित्व बड़ा ही आकर्षक था। इनका परिधान पूर्णतया भारतीय था। सफेद धोती, लम्बा पारसी कोट, माथे पर रक्तवर्ण गुजराती पगड़ी, उन्नत ललाट पर विराजमान केसरिया टीका—इसी वेष में ध्रुवजी अपना रुचिर भाषण करने लगे। उनका अंग्रेजी उच्चारण बड़ा ही स्पष्ट था, भाषण की शैली रोचक एवं आवर्जक थी। इन्होंने अपने कार्यकलाप का संक्षिप्त परिचय दिया। गान्धीजी के साथ सम्पर्क में में आने का तथा उनके आश्रम की शिक्षापद्धति को सँवारने का तथा प्रिन्सिपल के रूप में अहमदाबाद के गुजरात कालेज के विविध विस्तार का परिचय इन्होंने संक्षेप में दिया। भाषण के बीच इन्होंने आत्मविश्वास से कहा कि महाशय, मैं योग्यता पर विश्वास करता हूँ, संख्या पर नहीं। छात्रों की अधिक संख्या के ऊपर मेरा कोई आग्रह नहीं है। यदि आग्रह है, तो वह उनके गुणों के ऊपर है (Gentlemen, I am a firm believer in the dictum that quality is better than quantity.) सज्जनो, संख्या से बढ़ कर योग्यता होती है।' मैं इस सिद्धान्त का पूर्ण विश्वासी हूँ। इस प्रसंग में अपने कथ्य की प्रामाणिकता के ऊपर महाकवि कालिदास की मुहर लगाते हुए इन्होंने बड़ी ही मधुर वाणी में इन्दुमती स्वयम्वर वाला यह रघुवंशीय श्लोक बड़ी सुन्दर भावभंगी के साथ कह सुनाया—

कामं नृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये
राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम्।
नक्षत्र-तारा-ग्रह-संकुलापि
ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः॥
(रघु० ६। ३२)

भले ही हजारों दूसरे राजा लोग हों, परन्तु भूमि राजन्वती है, शोभन राजा से सम्पन्न है यह कथन इसी राजा के कारण ही सम्भव हो सका है। आकाश में नक्षत्रों से, ताराओं से एवं ग्रहों से व्याप्त होने पर भी रात्रि के ज्योतिष्मती - ज्योति से युक्त—होने की सत्यता एक चन्द्रमा के कारण ही सिद्ध होती है। करोड़ों नक्षत्र-तारागण चमकते भले ही रहें, परन्तु उनके कारण रात्रि 'ज्योतिष्मती' नहीं होती, वह होती है केवल एक चन्द्रमा के कारण ही तो। फलतः गुणों का ही माहात्म्य होता है, संख्या का नहीं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े लोच से कालिदास के इस श्लोक को समुचित अवसर पर सुना कर आचार्य ध्रुव ने विज्ञ श्रोताओं के मन को बलात् मुग्ध कर लिया। सबके मन में यह बात इस प्रथम भाषण से ही बैठ गई कि इस महापुरुष के द्वारा विद्यालय का परम कल्याण होगा। अंग्रेजी की यह कहावत ठीक ही निकली—First impression is the best impression. (प्रथम छाप ही सर्वोत्तम छाप होती है)।

सफल अध्यापक

आचार्य ध्रुव एक सफल अध्यापक थे। नाना शास्त्रों की विवेचना में निष्णात, व्याख्यान की कला में लब्धकीर्ति, एवं विवेच्य तथा पाठ्य विषयों पर पूर्ण अधिकार से सम्पन्न होने के कारण ये एक आदर्श अध्यापक सिद्ध हुए। शिष्यों में विषय की संक्रान्ति भी विशेष श्लाघनीय थी। जिस विषय का अध्यापन करते थे, शिष्यगण उसे सद्यः हृदयंगम कर लेते थे।

शकुन्तला नाटक उनका प्रिय नाटक था जिसे वे बड़े ही प्रेम तथा भावुकता के साथ पढ़ाया करते थे। इनकी कक्षा में अध्ययन-कर्ता छात्रों की भीड़ लग जाती थी। शिष्य ही नहीं, अपि तु अध्यापक भी इनके विद्वत्तापूर्ण भाषणों को सुनने के लिए आया करते थे। इन पंक्तियों के लेखक को ध्रुवजी के पूज्य चरणों में बैठ कर अध्ययन करने का सुवर्ण अवसर मिला था तथा दस-बारह वर्षों तक उनके सहकर्मी होने का भी सौभाग्य प्राप्त था। अतः वह निर्विवाद कह सकता है कि उनके समान आदर्श अध्यापक मिलना अत्यन्त दुष्कर है।

अध्यापन शैली

ध्रुवजी का व्यक्तित्व बड़ा ही आकर्षक था। जो भी कोई उनके निकट सम्पर्क में आता, वह उनके स्वभाव की कोमलता, दीनदुखियों के ऊपर स्वाभाविक सहानुभूति तथा शासन की समस्याओं को सुलझाने की व्यावहारिक बुद्धि को कभी भूल नहीं सकता। वे शिक्षण-कला के प्रवीण पारखी थे। उनकी अध्यापन शैली नवीनता से परिपूर्ण थी। अध्यापन में उनका दृष्टिकोण एकाङ्गी न होकर सर्वाङ्गीण होता था। वह छात्रों को सर्वदा सिखाया करते थे कि तुम अपनी दृष्टि को उदार तथा विशाल बनाओ। तुम्हारे अध्ययन की सीमा केवल निर्धारित ग्रन्थ ही न हो, प्रत्युत विषय से सम्बद्ध दूसरे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का भी परिशीलन तुम्हारे लिए नितान्त आवश्यक है। वे साहित्य तथा आलोचना के प्रसंग में वे तुलनात्मक पद्धति को आश्रय दिया करते थे। काव्यप्रकाश संस्कृत एम० ए० परीक्षा का पाठ्य निर्दिष्ट ग्रन्थ तो था ही। साथ ही साथ बी० ए० आनर्स के लिए भी निर्धारित था। ध्रुवजी इस ग्रन्थ को बड़े प्रेम तथा अतिशय अनुराग के साथ पढ़ाते थे। मम्मट के काव्यलक्षण की केवल पूरी व्याख्या करने से ही उन्हें सन्तोष नहीं होता था, प्रत्युत अरिस्टाटल के प्रख्यात आलोचना-ग्रन्थ 'पोयटिक्स' की भी तुलना से उसे पुष्ट तथा परिबृंहित किया करते थे। ये कक्षा में समुचित अंशों का भी उद्धरण पढ़कर सुनाया करते थे और पढ़ाने में इतने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मग्न हो जाते थे कि इस तथ्य का उन्हें ध्यान भी न होता था कि उसी कक्षा में बी० ए० के प्रथम वर्ष का नौसिखुआ छात्र भी एक कोने में बैठ कर उनके व्याख्यान के मर्म समझने से प्रायः वंचित हो रहा है। ये अध्यापन कला के पारंगामी पण्डित थे। ये इतनी विशदता से मूल ग्रन्थ की ग्रन्थियों का स्फोटन किया करते—दुर्भेद्य ग्रन्थि को सुलझाया करते कि साधारण छात्र को भी विषय के अन्तरंग में प्रवेश करने में विलम्ब नहीं होता था। संस्कृत साहित्य के अतिरिक्त ये अंग्रेजी साहित्य के भी मर्मज्ञ विद्वान् थे और दोनों के पढ़ाने में तुलनात्मक पद्धति का ही प्रचुर उपयोग किया करते थे। कुछ दिनों तक अंग्रेजी के प्राध्यापक के अभाव में ये स्वयं बी० ए० कक्षा में शेक्सपियर के नाटक तथा ब्राउनिंग की कविता को इतनी तन्मयता तथा अन्तरंगता से पढ़ाते थे कि इन्हें सुनने के लिए अंग्रेजी एम० ए० के छात्र ही नहीं, प्रत्युत अंग्रेजी के प्रबुद्ध अध्यापक भी इनकी कक्षा में बैठकर इनका पढ़ाना सुनते तथा चमत्कृत होते थे।

आचार्य ध्रुव पुराने उदाहरणों को नई व्याख्या के द्वारा परिष्कृत कर अपने कक्षा-भाषणों में भी जान डाल दिया करते थे। मम्मट के काव्यलक्षण में 'अनलंकृती पुनः क्वापि' अपना वैशिष्ट्य रखता है। इसका अर्थ है कि काव्य में अलंकारों का होना अनिवार्य नहीं है। ऐसे भी स्थल होते हैं जहाँ अलंकार के अभाव में भी रसादिकों के द्वारा चमत्कार का आविर्भाव होता है और वे उत्तम काव्य माने जाते हैं। तथ्य को परिष्कृत करने के लिए ये यह पद्य उदाहरण रूप में दिया करते थे—

हारो नारोपितः कण्ठे मया विश्लेषभीरुणा।
इदानीमावयोर्मध्ये सरित्—सागर—भूधराः॥

नायक का वचन प्रेमिका के प्रति। आश्लेष का रसिक मैं तुम्हारे कण्ठ में मोतियों का कीमती हार इसीलिए नहीं पहनाता था कि मेरा और तुम्हारा विश्लेष हो जायगा। यह तो संयोग काल की बात थी, परन्तु वियोग में दशा कितनी बदल गई है। इस समय हम दोनों के बीच अगम्य नदियाँ बह रही हैं, सागर लहरा रहे हैं तथा दुर्लङ्घ्य पर्वत खड़े हैं। अलंकार के अभाव में भी रसजन्य चमत्कार से यह पद्य उत्तम काव्य का उदाहरण है। उत्तरार्ध को वे इतने विलम्बित स्वर में पढ़ते थे कि दोनों के बीच व्यवधान का आतिशय्य प्रतीत होने लगता था। ये प्रत्येक वर्ण पर ठहर कर व्यवधान की अतिशयता की व्यञ्जना कर देते थे--इ=दानी--मावयोर्मध्ये सरि=त्—सा—ग--र - भू—ध - राः॥ श्लोक तो है यह पुराना ही, परन्तु इसकी मार्मिक व्याख्या के द्वारा नवीनता का संचार हो जाता था।

ध्वनि के प्रसंग में अंग्रेजी कवि ड्राइडेन की यह पंक्ति उद्धृत कर ध्रुवजी उसकी अस्फुट कल्पना को स्फुट तथा विशद बना देते थे। पंक्ति यह है—

More is meant than meets the ear (मोर इज मेन्ट दैन मीट्स दी ईअर) अर्थात् व्यंग्य काव्य में जितना कानों को सुनाई पड़ता है उतना ही उसका तात्पर्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं होता, प्रत्युत कवि को उससे कहीं अधिक अर्थ अभिप्रेत तथा अभीष्ट होता है। यही तो ध्वन्यर्थ होता है। दशरूपक के अध्यापन के समय पञ्चसन्धि के तथ्य को पाश्चात्य आलोचना के द्वारा निर्णीत Dramatic lines (ड्रेमेटिक लाइन्स) के साथ तुलना कर उसे विशद तथा सद्यःबोधगम्य बना देते थे। इस प्रकार पाश्चात्य आलोचना के साथ भारतीय आलोचना का तुलनात्मक सामञ्जस्य दिखा कर वे उसे सरल, सुबोध तथा हृदयंगम बना डालते थे—ध्रुवजी की यह महती विशेषता थी।

पैनी साहित्यिक दृष्टि

संस्कृत कविता का उनका अनुशीलन भी बड़ी सहृदयता तथा मार्मिकता से पूर्ण होता था। अन्तरंग में सहृदयता से प्रवेश करने के हेतु उनकी व्याख्या एवं आलोचना बड़ी तलस्पर्शी होती थी। एक-दो उदाहरण पर्याप्त होंगे। 'अभिज्ञान-शकुन्तल' के तृतीय अंक में दुष्यन्त की एक बड़ी सुन्दर उक्ति है कि सम दुःख-सुख वाली अपनी सखी के द्वारा अन्तरंग दशा पूछे जाने पर यह ऋषिबाला अपनी आधि का कारण नहीं बताए, ऐसा हो नहीं सकता। वह अवश्य बतावेगी। कालिदास के शब्द हैं—

पृष्टा जनेन समदुःखसुखेन बाला
नेयं न वक्ष्यति मनोगतमाधिहेतुम्।
दृष्टो विवृत्य बहुशोऽप्यनया सतृष्ण-
मत्रान्तरे श्रवणकातरतां गतोऽस्मि॥

(अभिज्ञान-शकुन्तल, ३।९)

अभिज्ञानशकुन्तल नाटक के तृतीय अंक का प्रसंग है। तात्पर्य है अनुसूया और प्रियम्वदा शकुन्तला से उसकी बेचैनी का कारण पूछ रही हैं। राजा बड़ी उत्सुकता से उसका उत्तर सुनना चाहता है। वह कहता है--दुःख-सुख में साथ देने वाली अपनी इन सखियों के पूछने पर यह बाला अवश्यमेव अपने मन की व्यथा बता देगी। यद्यपि शकुन्तला ने उस समय बड़े प्यार से बार-बार मेरी ओर ललचाई आँखों से देखा था, तथापि इस समय वह क्या कारण बताती है—इसे सुनने के लिए मैं कातर हो रहा हूँ।

यहाँ 'समदुःखसुखेन' पद में सुख से पहले ही 'दुःख' शब्द का प्रयोग कर कवि एक महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक तथ्य का उद्घाटन कर रहा है। मानसिक समता या सहानुभूति सुख की अपेक्षा दुःख के समय में ही विशेष रूप से अभिव्यक्त की जाती है। सुख के समय सहानुभूति के प्रदर्शन का कोई विशेष मूल्य नहीं होता, परन्तु दुःख के समय तो वह एक मूल्यवान् निधि होती है। फलतः कालिदास ने 'समदुःखसुखेन' में 'सुख' शब्द से पूर्व 'दुःख' शब्द का विन्यास कर अपने कथन में जान डाल दी है।

आचार्य ध्रुवजी की यह आलोचना यथार्थ तथा मर्मस्पर्शी है। वाल्मीकीय-रामायण की एक उक्ति इसका पूर्ण समर्थन करती है। उत्तरकाण्ड में भगवान् राम हनुमान्‌जी के उपकार के बदले में प्रत्युपकार करने में अपने को सर्वथा असमर्थ पाते हैं। क्यों? इसका कारण सुनिये। भगवान् राम उपकारी हनुमान से कह रहे हैं :—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मय्येव जीर्णतां यातु यत् त्वयोपकृतं कपे।
नरः प्रत्युपकाराणां आपद्यायाति पात्रताम् ॥

पद्य का आशय है—"तुमने जो मेरे साथ उपकार किया है, वह मुझ में ही जीर्ण हो जाय, गल जाय, पच जाय। उसके बदले में प्रत्युपकार करने का मुझे कोई अवसर ही न मिले। कारण यह है कि आपत्ति होने पर ही तो मनुष्य सहानुभूति द्वारा प्रत्युपकार का पात्र होता है। फलतः मैं चाहता हूँ कि आपके ऊपर कोई आपत्ति ही नहीं आवे जिससे मुझे सहानुभूति दिखलाने का तथा उपकार करने का कोई अवसर ही न आवे।" यह श्लोक ध्रुवजी की आलोचना का पूरा समर्थन कर रहा है।

मेघदूत के 'पृच्छन्तीं वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थां कच्चिद् भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति' इस विश्रुत पद्यांश (उत्तरमेघ) में रसिक शब्द के औचित्य की वे बड़ी मार्मिक व्याख्या करते थे। यक्षपत्नी पिंजड़े में पली अपनी सारिका से पूछ रही है कि हे रसिके, तुम मेरे भर्ता के विषय में व्याकुल होकर स्मरण किया करती हो क्या ?[1] 'भर्तुः' की षष्ठी विभक्ति में यही ध्वनि है। तो इस प्रश्न का वह उत्तर देती—नहीं, नहीं, मैं उन्हें याद नहीं करती। इसी निषेधात्मक उत्तर की ओर ही 'रसिके' विशेषण का स्वारस्य है। यदि वह स्वीकारात्मक उत्तर देती, तो प्रश्नों का ताँता वहीं टूट जाता, बात वहीं खतम हो जाती। सद्यः रस-भंग हो जाता।

ऐसी मार्मिक आलोचना ध्रुवजी की सहृदयता के द्योतक सुखद प्रसंग हैं।

आचार्यजी के जीवनकाल की यह चरम परिणति थी विश्वविद्यालय की प्राचार्यता। यहाँ तक पहुँचने के लिए उन्होंने बड़ी साहित्यिक योग्यता प्राप्त की थी। इसे जानने के लिए उनके पूर्व पुरुषों का कार्यकलाप जानने की आवश्यकता है और अब वही प्रस्तुत किया जा रहा है।

पूर्व पुरुष

डॉ० आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव के पूर्वपुरुष गुजरात प्रान्त के अहमदाबाद नगर के निवासी थे। ये लोग नागर ब्राह्मण थे जो गुजरात में अपनी विद्वत्ता तथा उच्च

---

१. 'अधीगर्थदयेशां कर्मणि' सूत्र के अनुसार स्मृ धातु के योग में विशेषतः प्रयोग किया जाता है—षष्ठी विभक्ति का। द्वितीया का प्रयोग तो साधारण स्मरण के अर्थ में किया जाता है जैसे 'पाठं स्मरति'। परन्तु यदि स्मरण के साथ चिन्तन, उद्वेग या दुःख की कल्पना हो तब कर्म में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है। जैसे—मातुः स्मरति कृष्णः मथुरायाम् अर्थात् कृष्ण गोकुल से आकर मथुरा में निवास करते हुए अपनी माता यशोदा का दुःख के साथ स्मरण करते हैं। मेघदूत के इस श्लोक के "भर्तुः स्मरसि" में 'भर्तुः' शब्द में प्रयुक्त षष्ठी विभक्ति इसी तथ्य की द्योतिका है कि यहाँ भर्ता का सामान्य स्मरण न होकर उद्वेग-संवलित स्मरण है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृति के लिए प्रसिद्ध हैं। ध्रुवजी के पितामह का नाम दयाशंकर ध्रुव था जो मध्यम श्रेणी के ब्राह्मण परिवार के सदस्य थे। धनवान न होने पर भी वे अधिक उदार तथा सज्जन व्यक्ति थे। दयाशंकर के पुत्र का नाम बापूभाई था। ये ही आनन्दशकर ध्रुवजी के पिता थे। इन्होंने अधिक शिक्षा नहीं प्राप्त की थी। फिर भी अपने पिता तथा नागर ब्राह्मणों के गुणों से सम्पन्न थे। इन्होंने राजकोट के पोलिटिकल एजेण्ट के आफिस में एक साधारण क्लर्क की नौकरी स्वीकार कर ली थी। थोड़े ही दिनों में इनकी कार्य-कुशलता तथा ईमानदारी से प्रसन्न होकर इनके आफिसरों ने दफ्तरदार के पद पर इनकी उन्नति कर दी। सरकार ने इन्हें 'रावसाहिब' की पदवी भी प्रदान की थी। सरकारी नौकरी से अवकाश प्राप्त करने पर इन्होंने कुछ दिनों तक बड़ौदा स्टेट के नायब दीवान के पद पर भी काम किया। ये बड़े ही शिवभक्त थे। इन्होंने राजकोट में अपने कुलदेवता हाटकेश्वर' के मन्दिर का निर्माण भी किया था। इन्हीं पिताजी की सज्जनता, धार्मिकता तथा कर्तव्य-परायणता आदि गुणों का प्रभाव इनके पुत्र आनन्दशंकर पर प्रचुर परिमाण में पड़ा।

जन्म तथा शिक्षा

आनन्द शंकर ध्रुव का जन्म अहमदाबाद में २५ फरवरी सन् १८६६ ई० में हुआ था। यह संयोग की ही बात है कि इसी वर्ष पोरबन्दर में महात्मा गाँधी का भी जन्म हुआ जिनके जीवन से ध्रुवजी बहुत ही प्रभावित थे। ध्रुवजी का बाल्यकाल राजकोट और बड़ौदा में व्यतीत हुआ जहाँ इनके पिता सरकारी कर्मचारी थे। आनन्दशंकर अपने पिता के एकमात्र पुत्र थे। अतः इनका लालन-पालन बड़े ही प्रेम से हुआ।

लड़कपन में आनन्दशंकर को घुड़सवारी का बड़ा शौक था। ये प्रतिदिन प्रातःकाल घोड़े पर चढ़ कर घूमा करते थे। उसी समय इन्हें कण्ठ-संगीत से भी प्रेम हो गया और इन्होंने संगीत का भी अभ्यास किया। इनकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। ये एक प्रतिभा-सम्पन्न विद्यार्थी थे। हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् इन्होंने सन् १८६० ई० में बी० ए० तथा सन् १८६२ ई० में एम० ए० की परीक्षाओं में उच्च श्रेणी में सफलता प्राप्त की। इसके पश्चात् इन्होंने एल-एल० बी० की भी परीक्षा पास की।

कालेज में अध्ययन करते समय इनके गुरुओं में श्री **भास्कर शास्त्री** तथा पं० **रणछोड़ लाल शास्त्री** थे। इन्हीं दोनों गुरुओं ने इनके हृदय में संस्कृत अध्ययन के प्रति प्रेम पैदा किया तथा संस्कृत के विद्वान् बनने की प्रेरणा दी। बाद में इन्होंने अहमदाबाद में ही प्रसिद्ध मैथिल विद्वान् पं० बच्चा झा से न्याय शास्त्र तथा वेदान्त का गहन अध्ययन किया तथा गुरु की कृपा से भारतीय दर्शन में गम्भीर वैदुष्य प्राप्त किया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यापन कार्य

सन् १८६२ ई० में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् ध्रुव जी की नियुक्ति इसी वर्ष गवर्नमेण्ट कालेज अहमदाबाद में संस्कृत के प्राध्यापक के पद पर हो गयी। यह ध्यान में रखना चाहिए कि यह सरकारी कालेज अत्यन्त विख्यात था और इसकी वही प्रतिष्ठा थी जो इलाहाबाद के म्योर सेण्ट्रल कालेज की उस समय में थी। यद्यपि इस कालेज में इनकी नियुक्ति मूलतः संस्कृत के प्राध्यापक के पद पर ही हुई थी, परन्तु ये दर्शन शास्त्र का भी अध्यापन किया करते थे। अतः सन् १९१६ में इनको वेदान्त के प्रोफेसर के सम्मानित पद पर प्रतिष्ठापित किया गया। ध्रुवजी अनेक वर्षों तक इस कालेज के प्रिन्सिपल के पद पर भी प्रतिष्ठित रहे और इस महान् उत्तरदायित्व के पद को इन्होंने बड़ी ही योग्यता से सँभाला। यह उल्लेखनीय है कि ब्रिटिशराज के उस उत्कर्ष काल में गवर्नमेण्ट कालेजों के प्रिन्सिपल सदा अंग्रेज ही लोग हुआ करते थे। आनन्दशंकर ध्रुव सर्वप्रथम भारतीय थे जिन्होंने इस गवर्नमेण्ट कालेज के प्रिन्सिपल के पद को सुशोभित किया था। उन दिनों शिक्षा विभाग में भी आई० सी० एस० के समान अखिल भारतीय शिक्षक पद होता था जिसे आई० ई० एस० (इंडियन एजुकेशनल सर्विस) कहते थे। इस पद पर शिक्षा विभाग के उच्च अधिकारी ही नियुक्त किये जाते थे। अध्यक्ष पद पर काम करते समय ध्रुवजी की नियुक्ति इसी आई० ई० एस० ग्रेड में हुई थी जो उन दिनों शिक्षा विभाग में सर्वोच्च पद तथा ग्रेड समझा जाता था।

ध्रुवजी ने गवर्नमेण्ट कालेज, अहमदाबाद में संस्कृत के प्रोफेसर, दर्शन शास्त्र (वेदान्त) के प्रोफेसर तथा प्रिन्सिपल के रूप में सन् १८६२ ई० से लेकर सन् १९१९ ई० तक अर्थात् लगातार २७ (सत्ताईस) वर्षों तक अध्यापन तथा शासन का कार्य बड़ी योग्यता से सम्पन्न किया। ये संस्कृत तथा दर्शन के अतिरिक्त इस कालेज में अंग्रेजी साहित्य का भी अध्यापन कभी-कभी किया करते थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष के अभाव में इन्होंने कुछ दिनों तक अंग्रेजी साहित्य का भी अध्यापन किया था। टेनिसन और ब्राउनिंग इनके प्रिय कवि थे। इन्होंने इनके विषय में अंग्रेजी में पुस्तकें भी लिखी हैं जिससे इनके अंग्रेजी साहित्य के प्रति गम्भीर अनुराग तथा विस्तृत अनुशीलन का पता चलता है। अंग्रेजी साहित्य में निष्णात होने के कारण ये अंग्रेजी में बहुत ही मधुर एवं प्रभावशाली भाषण दिया करते थे। जिन लोगों को इनके भाषणों को सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है वे इनके अमिट प्रभाव को कभी भूल नहीं सकते।

परिवार

ध्रुवजी का प्रथम विवाह तत्कालीन बाल-विवाह-प्रथा के अनुसार केवल १६ वर्ष की अवस्था में हुआ था। प्रथम स्त्री से इन्हें एक पुत्री तथा पुत्र की उत्पत्ति हुई परन्तु ये दोनों ही अकाल में ही काल-कवलित हो गये। कुछ दिनों के पश्चात्

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्होंने दूसरा विवाह भी किया जिससे तीन पुत्र तथा एक कन्या का जन्म हुआ। एक पुत्र एक वर्ष की आयु में ही जाता रहा। इनके शेष दो पुत्रों के नाम ध्रुव भाई तथा प्रह्लाद भाई थे। ध्रुवजी के पुत्रों में 'ध्रुव भाई' सबसे योग्य थे। इन्होंने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम० ए० की उपाधि प्राप्त की थी। वहाँ से लौटने पर इनकी नियुक्ति गवर्नमेण्ट कालेज, अहमदाबाद में ही अंग्रेजी के प्रोफेसर के पद पर हुई। इस पद को इन्होंने अनेक वर्षों तक सुशोभित किया। कुछ वर्षों के पश्चात् इन्होंने अपने पिताजी की ही भाँति इस कालेज के प्रिन्सिपल के पद को भी अलंकृत किया। इस प्रकार ये अपने योग्य पिता के सुयोग्य पुत्र सिद्ध हुए। आचार्य ध्रुवजी के पौत्र तथा ध्रुव भाई के पुत्र आजकल राजस्थान के एक विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के पद को सुशोभित कर रहे हैं। ध्रुवजी की पुत्री जुली बहिन का विवाह भूतपूर्व सौराष्ट्र स्टेट के तत्कालीन चीफ जस्टिस श्री.एच० वी० दिवैतिया से हुआ था जो एक बहुत बड़े विधि-वेत्ता तथा सुयोग्य न्यायाधीश थे।

दार्शनिक व्युत्पत्ति

आचार्य आनन्दशंकर ध्रुव भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शन के प्रौढ़ विद्वान् थे। पाश्चात्य दर्शन का अध्ययन तो इन्होंने अपने कालेज के गुरुजनों से किया परन्तु भारतीय दर्शन का अध्ययन प्राचीन परम्परा के द्वारा ही किया था। इस प्रसंग में ये मैथिल नैयायिक पण्डित बच्चा झा का नाम बड़े आदर तथा सत्कार के साथ लिया करते थे जिनसे उन्होंने न्याय तथा वेदान्त के चूडान्त ग्रन्थों का विधिवत् अध्ययन गुजरात में किया था। जैनदर्शन तथा बौद्धदर्शन के भी ये मर्मज्ञ विद्वान् थे। इन्होंने जैनदर्शन के विश्रुत ग्रन्थ **"स्याद्वादमञ्जरी"** का एक बड़ा ही विमर्शात्मक संस्करण 'बाम्बे संस्कृत सीरीज' में प्रकाशित किया था तथा विषम स्थलों पर अंग्रेजी में पाण्डित्य-पूर्ण टिप्पणियाँ तथा मार्मिक आलोचना भी लिखी थी। हेमचन्द्र ने इस दार्शनिक ग्रन्थ में ब्राह्मण तथा बौद्ध दर्शन का बड़ी दृढ़ता से खण्डन कर स्याद्वाद के जैन सिद्धान्त का मण्डन किया है। इस ग्रन्थ पर टिप्पणी लिखना टेढ़ी खीर है। भारतीय दर्शन के अन्तरंग से परिचित विद्वान् ही इन दार्शनिक टिप्पणों के लिखने में न्याय कर सकता है और ध्रुवजी ने इसके सम्पादन तथा टिप्पणी-निर्माण में जैन दर्शन में अपने प्रौढ़ पाण्डित्य का प्रभूत परिचय दिया है।

इसी प्रकार आचार्य दिङ्नाग का **'न्यायप्रवेश'** बौद्ध न्याय का प्रमेयबहुल प्रमाण-ग्रन्थ है। इसका तिब्बती अनुवाद तो उपलब्ध होता था, परन्तु संस्कृत मूल का पता नहीं था। संयोगवश जैन भंडारों से इसका हस्तलेख प्राप्त हुआ। उसी को ध्रुवजी ने भूमिका तथा टिप्पणियों से संवलित विमर्शात्मक संस्करण बडौदा के गायकवाड ओरियण्टल सीरीज में प्रकाशित कर, साधारणतया न्यायशास्त्र को, विशेषतः बौद्धन्याय शास्त्र को, समझने में बड़ा लाभ पहुँचाया। ये दोनों ग्रन्थ इनके अवैदिक न्यायशास्त्र के पाण्डित्य के सूचक हैं। वैदिक न्याय के तो ये मूलतः पण्डित थे ही।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ए० ए० कक्षा में ये हम लोगों को न्यायमुक्तावली बड़े ही अनुराग तथा परिश्रम से पढ़ाया करते थे। यहाँ भी ये तुलनात्मक पद्धति का उपभोग बड़ी मात्रा में किया करते थे। पाश्चात्य न्याय के तथ्यों से तुलना करने पर भारतीय न्याय के सिद्धान्तों का महत्त्व खिल उठता है और ध्रुवजी के अध्यापन की यही विशेषता रही। इनके अध्यापन का क्षितिज विस्तृत था। फलतः इनकी व्याख्या छात्रों के हृदय में सद्यः प्रवेश कर जाती थी तथा उनकी दृष्टि विस्तृत, विशाल तथा पैनी हो जाती थी। न्याय जैसे नीरस विषय का इनका अध्यापन पर्याप्तरूपेण सरस तथा आकर्षक होता था।

विषय को रुचिकर तथा आकर्षक बनाने के लिए ये प्राचीन पद्यों का यत्र-तत्र पुट देकर उसे सरल-सुबोध बना दिया करते थे। तम के द्रव्यत्व के विषय में नैयायिक तथा मीमांसक के विभिन्न मतों की सुबोध समीक्षा के अवसर पर यह समुचित पद्य सुना कर ये छात्रों को प्रसन्न कर देते थे —

तमो द्रव्यं नैल्यात् घटवदिति भाने समुदिते
यदीदं रूपि स्यात् कथमिह न भवेत् स्पार्शनगुणः।
इतीमं सत्तर्कं शिथिलयितुमन्तर्व्यबसिता
तमोवृन्दं धत्ते कचभरमिषादिन्दुवदना॥

'तम नीलरूप होने के कारण घट के समान द्रव्य है'—मीमांसक के इस तर्क पर नैयायिकों का आक्षेप है कि यदि तम रूपवान् होता, तो उसमें स्पर्श गुण का अस्तित्व अवश्यमेव रहता जैसे नीलघट में वह रहता है। परन्तु तम का तो हम स्पर्श कर नहीं सकते। अतः उसे द्रव्य मानना नितान्त युक्तिहीन है (नैयायिक मत)। न्याय के इस शोभन तर्क को शिथिल बनाने के लिए ही प्रतीत होता है कि चन्द्रवदनी सुन्दरी आग्रह-पूर्वक अपने सिर पर केशकलाप के व्याज से तम के समूह को ही धारण कर रही है। आशय है कि इन्दुवदनी के सिर पर यह केशपाश नहीं है, प्रत्युत तम का एक पुंज ही है। यहाँ साहित्य के द्वारा दार्शनिक तथ्य की संपुष्टि बड़ी हृदयावर्जक है।

न्याय अनुमान के प्रसंग में **पञ्चावयव वाक्य** का प्रयोग करता है। यह वाक्य आज तो पाँच अवयवों में विभक्त होकर विराजमान है, परन्तु प्राचीन काल में इसके तीन ही अवयव होते थे। ऐसे ही अनुमान वाक्य का प्रयोग पाश्चात्य लाजिक में भी किया जाता है जहाँ वह 'सिलाजिज्म' के नाम से प्रख्यात है। यूनानी तार्किक अरस्तू ने 'सिलाजिज्म' के रूप तथा प्रकार का बड़ा विशद निरूपण किया है। आचार्य ध्रुव गौतम के पञ्चावयव वाक्य की तुलना अरस्तू के सिलाजिज्म के साथ बड़ी मार्मिकता से कर दोनों विचार-धाराओं के पारस्परिक भेद का स्वरूप अभिव्यक्त करते थे। इससे छात्रों का बड़ा लाभ होता, उनकी संकुचित दृष्टि विस्तृत हो जाती तथा उनके ज्ञान में एक नया मोड़ उपस्थित हो जाता। आचार्य ध्रुव की अध्यापन शैली का मेरुदण्ड था यही तुलनात्मक विवेचन, भारतीय तथा पाश्चात्य दार्शनिक विचारों के साम्य—वैषम्य का विश्लेषण। अखिल भारतीय दर्शन कांग्रेस के अध्यक्षीय भाषण में ध्रुवजी ने कान्ताचार्य (कैन्ट) तथा शङ्कराचार्य के विचारों में साम्य वाले अनेक मार्मिक स्थलों का निर्देश तथा दोनों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के उदात्त तथ्यों का तौलनिक विश्लेषण किया था। श्रीभाष्य का उनका गुजराती अनुवाद आज भी प्रामाणिक एवं उपादेय माना जाता है।

ध्रुवजी नाना विषयों के ज्ञाता विश्रुत विद्वान् थे। कला, विज्ञान, इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति आदि विषयों की इन्हें अच्छी जानकारी थी और इन विविध विषयों में इनकी पैनी दृष्टि तथा परिनिष्ठित ज्ञान का परिचय अध्यक्षीय भाषणों में मिला करता था। विश्वविद्यालय का वरिष्ठ अधिकारी होने के नाते आगन्तुक विद्वानों के भाषणों के अवसर पर इन्हीं को अध्यक्ष बनना पड़ता था तथा समापन भाषण में ये वक्ता के तथ्यों पर अपनी मार्मिक टिप्पणी (रिमार्क) बिना दिये न रहते थे। इससे प्राचीन शास्त्रों में इनके व्यापक पाण्डित्य एवं नाना आधुनिक शास्त्रों में इनका अन्तरंग प्रवेश श्रोताओं के चमत्कार एवं आह्लाद का विषय बनता था। वक्ता के कथन की आलोचना में भारतीय दृष्टिकोण से ध्रुवजी कुछ न कुछ नई बातें अवश्य कहते थे। यह इनका चमत्कारी गुण था जो श्रोताओं को आकृष्ट करता तथा विमुग्ध कर देता था। तथ्य तो यह है कि ये वक्ता न होकर वाग्मी थे। 'वक्ता' तथा 'वाग्मी' का अन्तर अंग्रेजी के 'स्पीकर' तथा 'ओरेटर' के समान ही समझना चाहिए। वक्ता व्याख्यानों में अपने अभिप्रायमात्र का द्योतन कर देता है, परन्तु वाग्मी अपने भाषणों द्वारा श्रोताओं के ऊपर छा जाता है एवं उन्हें अपने मत का पक्षधर बना डालता है। शास्त्रों ने तो 'वाग्मी भवति वा न वा' कहकर विद्वत्समाज में वाग्मी के अस्तित्व को विरल ही अंगीकार किया है।

ध्रुवजी की वाग्मिता

आचार्य ध्रुवजी वाग्मी थे। संस्कृत, अंग्रेजी, गुजराती, हिन्दी आदि भाषाओं के पण्डित होने से इनके व्याख्यान बड़े ही रोचक एवं प्रभावशाली होते थे। एक-दो प्रसंगों की चर्चा करना ही पर्याप्त होगा। एक समय ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के इतिहास के प्रसिद्ध अध्यापक डा० इर्विन ने विश्वविद्यालय के केन्द्रीय हाल में व्याख्यान दिया। व्याख्यान का विषय था, 'विभिन्न सभ्यताओं की एकता'। इस विषय के वे विशेष अनुशीलन विद्वान् थे और यूनिटी सीरीज नामक ग्रन्थमाला का प्रवर्तन कर अनेक मूल्यवान् ग्रन्थों के रचयिता एवं सम्पादक भी थे। उन्होंने अपना तैयार किया भाषण किया, परन्तु अपनी मातृभाषा अंग्रेजी में बोलने पर भी वे अपने मन्तव्यों का स्पष्ट प्रतिपादन न कर सके और उत्सुक श्रोताओं के पल्ले उनके भाषण का कोई भी हिस्सा न पड़ा। ध्रुवजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में प्रथमतः तो अपने सुचिन्तित शब्दों में उनके कथन का स्वरूप श्रोताओं के सामने इतनी सुन्दरता से प्रकट कर दिया कि वे इर्विन साहब के मन्तव्यों को भली भाँति समझ गये। अनन्तर उन्होंने भारतीय दृष्टिकोण से उसकी आलोचना भी की। उनके केवल एक ही भाषण से श्रोताओं को उनके संस्कृत-विषयक अनुशीलन तथा भारतीय शास्त्रों के मर्म समझने की कला से तुरन्त अवगति हो गई। अंग्रेजी में इनका भाषण उतना मार्मिक एवं विस्पष्ट था ही।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अन्य घटना का संस्मरण कम रोचक नहीं है। आचार्य ध्रुवजी के एक पुराने गुजराती छात्र मिस्टर देसाई विलायत से आई० सी० एस० की परीक्षा पास कर उत्तर प्रदेश के शासनाधिकारी नियुक्त थे। उस समय बाँदा में कलक्टर थे और उनका बड़ा आग्रह था अपने पुराने गुरु को अपने यहाँ बुलाकर सम्मानित करने का। शिष्य के तीव्र आग्रह को गुरु टाल भी नहीं सका। ये वहाँ जाने के लिए राजी हो गये, परन्तु अकेले नहीं, प्रत्युत अपने मित्र एवं विश्वविद्यालय में माइनिंग कालेज के अध्यक्ष डा० गान्धी के साथ। जब ये दोनों सज्जन बाँदा स्टेशन पर पहुँचे, तब वहाँ एकत्र विशाल जन-समूह को देखकर अवाक् रह गये। बात यह हुई कि किसी तरह से महात्मा गान्धी के दर्शन के लिए लालायित स्थानीय जनता में यह बात फैल गई कि गान्धीजी आज बाँदा आ रहे हैं। फिर क्या था ? जनता की अपार भीड़, तिल रखने की जगह नहीं। स्टेशन पर गाड़ी पहुँची। कलक्टर मिस्टर देसाई ने अपने विशिष्ट अतिथियों के कम्पार्टमेन्ट में जाकर विषम स्थिति का परिचय दिया। जनता को महात्माजी के आगमन का निषेध कितना भी किया जाता, वह मानने के लिए तथा स्टेशन से हटने के लिए तैयार नहीं थी। हिन्दूविश्वविद्यालय के इंजीनियर गान्धी तो काँपने लगे कि इतनी जनता का मैं सामना कैसे कर सकूँगा। आचार्य ध्रुवजी ने स्थिति सँभाली। स्टेशन के प्लेटफार्म पर ही एक बड़े टेबुल पर खड़े होकर भाषण करना शुरू किया—"सज्जनो, मैं आप लोगों के महात्मा गान्धीजी के प्रति गाढ़ अनुराग और सादर भावना को देखकर नितान्त प्रसन्न हूँ। मेरे साथी गान्धी इंजीनियर गान्धी हैं, महात्मा गान्धी नहीं। ये गान्धी-वंश से सम्बन्ध अवश्य रखते हैं परन्तु महात्माजी नहीं हैं।" इसके अनन्तर महात्माजी के उपदेशों को सरल सुबोध हिन्दी में ध्रुवजी ने इतनी सुन्दरता से प्रकट किया कि जनता ने सन्तोष की साँस ली। उसने एकान्तचित्त से इनके भाषण को सुना और तृप्त होकर घर चली गई। आचार्य ध्रुव के भाषण का बड़ा ही सुखद परिणाम हुआ। ऐसी थी वाग्मिता आचार्य ध्रुव की। विशाल भीड़ को—विस्तृत जन-समूह को—अपने मधुर भाषणों से तृप्त कर अपने वश में कर लेना उनके बायें हाथ का खेल ही तो था।

हिन्दू विश्वविद्यालय में आचार्य ध्रुव

ऊपर कहा गया है कि आचार्य ध्रुवजी को महात्मा गान्धीजी की संस्तुति पर महामना मालवीयजो ने हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रिन्सिपल पद पर प्रतिष्ठित किया था (१९१९ ईस्वी) जहाँ ये अपनी कार्यकुशलता तथा अनुशासन-प्रियता के कारण विश्वविद्यालय के अनेक महत्त्वपूर्ण एवं उत्तरदायित्व-सम्पन्न पदों पर रहते हुए उसकी अभिवृद्धि में अपनी अविस्मरणीय छाप छोड़ गये हैं। संस्कृत विभाग के अध्यक्ष होने के अतिरिक्त ये आर्ट्स कालेज, साइन्स कालेज तथा ला कालेज के प्रिन्सिपल भी थे।

महामना मालवीयजी विश्वविद्यालय के कुलपति अवश्य थे, परन्तु देश के राजनीतिक एवं सामाजिक कार्यों में व्यस्तता के कारण उन्हें विश्वविद्यालय के दैनंदिन शासन के संचालन का अवकाश बहुत ही कम मिलता था। अतः उन्होंने प्रो-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाइस-चान्सलर के एक नये पद का निर्माण कर इस महान् शिक्षासंस्था के संचालन तथा शासन का समस्त भार ध्रुवजी को ही प्रदान कर दिया। इस प्रकार ध्रुवजी प्रो-वाइस-चान्सलर के पद पर कार्य करते हुए भी वास्तविक रूप में वाइस चान्सलर थे। मालवीयजी ने जैसा गम्भीर विद्वान् तथा सुयोग्य शासक महात्मा गाँधी से माँगा था, ध्रुवजी ठीक उसी के अनुरूप योग्य तथा उपयुक्त सिद्ध हुए।

ध्रुवजी ने सन् १९१९ ई० से लेकर सन् १९३६ ई० तक अर्थात् लगातार १७ (सत्रह) वर्षों तक विश्वविद्यालय का संचालन सम्यक् रूप से योग्यतापूर्वक किया। इनके शासनकाल में इन सुदीर्घ १७ सालों तक न तो छात्रों की कोई हड़ताल हुई और न छात्र-आन्दोलन का ही कहीं पता था। इन पंक्तियों का लेखक—जिसे ध्रुवजी के साथ संस्कृत विभाग में अध्यापन करने का भी सौभाग्य प्राप्त है—दावे के साथ कह सकता है कि जो शान्ति, सुव्यवस्था तथा अनुशासन उस समय विद्यमान थे उनका दर्शन फिर कभी नहीं हुआ। सन् १९३६ ई० में ध्रुवजी ने हिन्दू विश्वविद्यालय से अवकाश प्राप्त किया। उसके बाद कितने ही प्रिन्सिपल तथा संस्कृत-विभागाध्यक्ष आये, परन्तु जो प्रशान्त शैक्षणिक वातावरण ध्रुवजी के समय में था वह फिर कभी दिखाई नहीं पड़ा।

सफल शासक

अपने मधुर एवं कोमल स्वभाव के कारण ही ध्रुवजी एक सफल शासक सिद्ध हुए। इनके मुखमण्डल पर सर्वदा शान्ति विराजती थी। अधरों पर स्मित की रेखा सदा उल्लास बिखेरती दीखती थी। कोप की लालिमा इनके चेहरे को विकृत करती हुई नहीं देखी गयी। फलतः इनकी सौजन्य—मुद्रा के सामने सेवकों तथा अध्यापकों के पारस्परिक कलह तथा वैमनस्य स्वतः शान्त हो जाया करते थे। ये अकेले ही पाँच पदों को सुशोभित करते थे—संस्कृत विभाग का अध्यक्ष, आर्ट्स कालेज, साइन्स कालेज तथा ला कालेज—इन तीन महाविद्यालयों के प्रिन्सिपल, तथा उपकुलपति—इन पाँचों का पद ये एक साथ बड़ी मर्यादा तथा शालीनता के साथ सुशोभित किया करते थे। ये अजातशत्रु थे। युवावर्ग इनका उतना ही गुण-ग्राहक था, जितना वृद्धवर्ग इनका प्रशंसक था।

सम्मान तथा उपाधि

हिन्दू विश्वविद्यालय से अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् ध्रुवजी अहमदाबाद जाकर सामाजिक कार्यों में अपना समय लगाने लगे। संस्कृत का अध्यापन कार्य करते हुए इन्होंने अपनी मातृभाषा गुजराती की भी प्रचुर सेवा की। सन् १९२० ई० में 'गुजराती साहित्य-परिषद्' के स्वागताध्यक्ष तथा सन् १९२९ ई० में इसी सम्मेलन के नड़ियाद अधिवेशन के सभापति थे। सन् १९३० ई० में इन्होंने इण्टर यूनिवर्सिटी बोर्ड के चेयरमैन (अध्यक्ष) के पद को सुशोभित किया था। हिन्दू विश्वविद्यालय ने सुदीर्घ काल तक इनकी सेवाओं तथा अलौकिक विद्वत्ता के फलस्वरूप इन्हें डि० लिट्०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की मानद उपाधि से सम्मानित किया था। डा० कन्हैयालाल मुन्शी ने अपनी संस्था भारतीय विद्या भवन, बम्बई से इनकी तलस्पर्शिनी वैदुषी के उपलक्ष्य में इनके सम्मान में "अभिनन्दन ग्रन्थ" प्रकाशित किया था। बम्बई विश्वविद्यालय ने "विलसन फाइलोलाजिकल लेक्चर्स" देने के लिए इन्हें आमंत्रित कर इनको आदर प्रदान किया था। आपने "इण्डियन फिलोसोफी कांग्रेस" के अध्यक्ष पद को भी सुशोभित किया। आप "गुजरात वर्नाक्युलर सोसाइटी" के अनेक वर्षों तक अध्यक्ष भी थे। इस प्रकार ध्रुवजी ने अनेक विद्वत्-परिषदों की अध्यक्षता की। अनेक विश्वविद्यालयों ने इस "पूर्व तथा पाश्चात्य विद्या के अन्तिम सेतु" को उपाधियों से अलंकृत कर अपने को ही गौरवान्वित करने का प्रयास किया।

ग्रन्थ-रचना

ध्रुवजी संस्कृत साहित्य तथा दर्शन शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे। वैदिक दर्शनों के साथ ही इन्होंने अवैदिक दर्शनों का भी सम्यक् आलोडन किया था। इसके अतिरिक्त ये अंग्रेजी साहित्य के भी गंभीर मनीषी थे। इन्होंने अंग्रेजी साहित्य का तलस्पर्शी अध्ययन के साथ ही अध्यापन भी किया था। अतः संस्कृत के ही समान इनका अंग्रेजी भाषा पर भी समान अधिकार था। परन्तु ये जितने अधिक अगाध विद्वान् थे उतनी मात्रा में इन्होंने ग्रन्थों की रचना नहीं की। इसका कारण शासन-कार्य में निरत होने से समय का अभाव ही कहा जा सकता है। इनके ग्रन्थों की सूची नीचे दी जाती है –

(क) गुजराती ग्रन्थ : (१) **आपणो धर्म,** (२) **हिन्दू वेद-धर्म,** (३) **धर्म वर्णन,** (४) **नीति शिक्षण,** (५) **हिन्दू धर्मनी बाल पोथी,** (६) **काव्य तत्त्व विचार,** (७) **साहित्य-विचार,** (८) **दिग्दर्शन और** (९) **विचार माधुरी।**

(ख) अंग्रेजी में लिखित ग्रन्थ: (१) टेनिसन एण्ड ब्राउनिंग, (२) काण्ट एण्ड टेनिसन।

(ग) सम्पादित ग्रन्थ - इन्होंने संस्कृत के दो ग्रन्थों का सम्पादन बड़ी विद्वत्ता के साथ किया है :—

(१) **स्याद्वादमंजरी**—यह जैन दर्शन का प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है।

(२) **न्यायप्रवेश**—दिङ्नाग का यह बौद्ध दार्शनिक ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसका विद्वत्तापूर्ण प्रथम सम्पादन ध्रुवजी ने किया है जो 'ओरिएन्टल संस्कृत सीरीज', बड़ौदा से प्रकाशित हुआ है।

इन दोनों की लेखन शैली दुरूह तथा समझने में कठिन है, सरलतया बोधगम्य नहीं है। आचार्य ध्रुव ने इनके ऊपर बड़ी विशद तथा प्रमेयबहुल टिप्पणियाँ लिखकर इन्हें बोधगम्य बनाया है। ध्रुवजी तुलनात्मक शैली से भारतीय दर्शन के अध्ययन-अध्यापन के पक्षपाती थे। पूर्वी दर्शन के सिद्धान्तों का पश्चिमी दर्शन से तत्सम्बद्ध तथ्यों के साथ तुलना कर दोनों का तारतम्य बतलाना इनकी शैली की विशिष्टता थी। न्यायप्रवेश तिब्बती अनुवाद में उपलब्ध होने पर भी मूल संस्कृत में अनुपलब्ध था। इस दुरूह ग्रन्थ के एकमात्र प्राचीन उपलब्ध हस्तलेख से सुव्यवस्थित संस्करण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकालना ध्रुवजी के पाण्डित्य का प्रकर्ष है। टिप्पणियाँ सर्वत्र तात्त्विक वैशद्य तथा गाम्भीर्य से संवलित तथा तुलनात्मक हैं। स्याद्वादमंजरी की टिप्पणियों का भी यही वैशिष्ट्य है।

हिन्दी ग्रन्थों की रचना

आचार्य आनन्दशंकर ध्रुवजी हिन्दूधर्म-शास्त्र के बड़े विज्ञ जानकार थे। सनातन धर्म एवं नीति के तत्त्वों की व्याख्या ये इतने सरल-सुबोध ढंग से करते थे कि श्रोताओं के हृदय में वह गम्भीर विषय सद्यः प्रद्योतित हो उठता था। इनकी धारणा थी कि भारतीय धर्म एवं नीति की शिक्षा बाल्यावस्था में ही देनी चाहिए। इस विषय में ये हितोपदेश के रचयिता के इस श्लोक की सराहना करते थे—

यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्।
कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते॥

कच्चे घड़े में लगा हुआ संस्कार (रंग से रँगना आदि) अन्यथा नहीं होता, वह घड़े के जीवनभर उसके साथ बना ही रहता है। इसी प्रकार बालकों को कथा के व्याज से जो नीति उपदिष्ट होती है वह उनके हृदय में बैठ जाती है और यावज्जीवन उनके जीवन का अविभाज्य अंग बन जाती है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए इन्होने बड़ौदा राज्य के स्कूली छात्रों के पाठ्यरूप में **'नीति रत्नमाला'** तथा **'हिन्दूधर्म की बालपोथी'** नामक दो छोटी, परन्तु नितान्त रोचक एवं उपादेय, पुस्तकों का प्रणयन बड़ौदा नरेश सयाजीराव गायकवाड की आज्ञा से किया था। मूलतः ये ग्रन्थ गुजराती में थे, परन्तु काशी हिन्दूविश्वविद्यालय में आने पर इन्होंने इनका सुबोध हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित किया। इन दोनों ग्रन्थों में कथाशैली का उपयोग कर धर्म-शिक्षा दी गई है। यह शैली इतनी सुन्दर एव रोचक है कि बालकों के साथ ही उनके अभिभावकों-- माता-पिताओं—को भी धर्म तथा नीति के तत्त्वों का सद्यः परिचय मिल जाता है। इस दृष्टि से ये दोनों ही ग्रन्थ अनमोल तथा अनूठे हैं। **'नीति रत्नमाला'**[1] में कथाओं का विश्व के महान् धार्मिक ग्रन्थों से बड़े ऊहापोह के साथ चयन किया गया है। **'हिन्दू धर्म की बालपोथी'**[2] में उपनिषद्, महाभारत, रामायण आदि मान्य ग्रन्थों से संगृहीत आख्यानों के द्वारा वैदिकधर्म के मूल सिद्धान्तों का संक्षिप्त, किन्तु प्रामाणिक विवेचन किया गया है। फलतः ये दोनों ग्रन्थ बालकों के संग वयस्कों के लिए एवं युवकों के साथ वृद्धों के लिए भी उपादेय तथा संग्रहणीय हैं।

---

१. 'नीति रत्नमाला' (२ भाग) का प्रकाशन लखनऊ से हुआ था।

२. इसका प्रकाशन ज्ञान मण्डल, वाराणसी से १९२२ ईस्वी में हुआ था। दोनों ग्रन्थों का गुजराती से हिन्दी में अनुवाद किया था प्रोफेसर गङ्गाप्रसादमेहता ने जो हिन्दू विश्वविद्यालय के इतिहास के प्राध्यापक तथा अनन्तर वहीं रजिस्ट्रार पद पर नियुक्त थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवपूजा : अग्निपूजा की परिणति

आचार्य ध्रुव का धार्मिक साहित्य का अनुशीलन बड़ा गम्भीर था। वैदिक धर्म के तो ये मार्मिक मीमांसक थे। ये पौराणिक देवताओं को कहीं बाहर से आयातित न मानकर वैदिक देवों का ही विकसित स्वरूप मानते थे। विष्णु तो वेद में भी सौर देवों में अन्यतम हैं। फलतः पौराणिक विष्णु को सूर्य का प्रतिनिधि मानना कथमपि असंगत नहीं है। परन्तु शिव के विषय में विभिन्न मान्यताएँ हैं। पाश्चात्य वैदिकों का तथा उनके अनुयायी भारतीय विद्वानों का भी यही मत है कि शिव आर्यों के देवता न होकर द्रविड़ों के मूल देवता हैं और आर्यों ने उन्हें द्रविड़ों से ही लेकर पौराणिक देवमण्डल में सम्मिलित कर लिया। ध्रुवजी इस सिद्धान्त के कट्टर विरोधी थे। इनका मत है कि वेदों की अग्निपूजा ही पुराणों में शिवपूजा के रूप में विकसित होकर विराजमान है। इनका संक्षिप्त सूत्रात्मक कथन है[1]—"वेद के समय की अग्निपूजा आजकल शिव-पूजा में परिणत हो गई है। अग्नि की वेदी जलाधारी है। अग्नि की ज्वाला शिवलिङ्ग है। ज्वाला के अन्तर्गत धुआँ शिव की जटा है। अग्नि में होम करने की घी की धार शिवलिङ्ग पर जल का अभिषेक है और अग्नि को ही 'महान् देव' कह कर वृषभ की उपमा दी गई है जिसके कारण महादेव के सामने वृषभ रूप में नन्दी की स्थापना की जाती है। लोग शिवजी के प्रसादरूप भस्म को लगाते हैं जो अग्नि के द्वारा उत्पन्न द्रव्य है। इस प्रकार अग्नि की पूजा के स्थान पर शिवजी की पूजा का आरम्भ हुआ। शिवपूजा अग्निपूजा का ही रूपान्तर है।"

ध्रुवजी की इस मान्यता के पोषक वैदिक प्रमाणों की कमी नहीं है। शिव तथा रुद्र की एकता पूर्व संकेत के ऊपर ही आश्रित है। अग्नि के वस्तुतः दो रूप होते हैं—घोरा तनु और अघोरा तनु। संसार का संहार करने वाला घोर तनु अग्नि तो 'रुद्र' का प्रतीक है और संसार के पालनकर्ता अग्नि का अघोर तनु कल्याणकारी 'शिव' रूप है।

अग्नि को शतपथ ब्राह्मण अशनिरूप मानता है। सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर प्रलय में ही सृष्टि के बीज निहित रहते हैं तथा संहार में भी उत्पत्ति का निदान अन्तर्हित रहता है। फलतः अग्नि की घोरा तनु का भी उपयोग है जगत् के मंगल के लिए। इसीलिए कालिदास को अग्नि की संहारकारिणी शक्ति में भी उपादेयता दीख पड़ती है। उनका स्पष्ट कथन है—

शापोऽप्यदृष्टतनयानन-पद्मशोभे
सानुग्रहो भगवता मयि पातितोऽयम्।
कृष्यां दहन्नपि खलु क्षितिमिन्धनेद्धो
बीजप्ररोह-जननीं—ज्वलनः करोति॥[2]

---

१. द्रष्टव्य आचार्य ध्रुवः 'हिन्दू धर्म की बालपोथी', पृष्ठ ६६–६७ (प्रकाशक-ज्ञान-मण्डल, वाराणसी १६०९ वि० सं० = १६२२ ई०)

२. रघुवंश, नवम सर्ग, ८० वाँ श्लोक।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रघुवंश का यह प्रसंग राजा दशरथ को अन्ध मुनि के शाप का है। राजा का कहना है—हे मुनि, मुझे आजतक पुत्र के मुख-कमल के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त नहीं है। आपने पुत्र के शोक में मरने का जो शाप दिया, उसे मैं वरदान ही मानता हूँ। जंगल की लकड़ी की आग एक बार कृषियोग्य पृथ्वी को भले जला दे किन्तु वह पृथ्वी को इतनी उपजाऊ बना देती है कि आगे उसमें बड़ी अच्छी उपज होती है। फलतः दाहिका आग भी पोषिका आग सिद्ध होती है।

इस प्रकार पौराणिक शिवपूजा को वैदिक अग्निपूजा की परिणति मानना सर्वथा समुचित है।[1]

ध्रुवजी का व्यक्तित्व

ध्रुवजी का व्यक्तित्व बड़ा ही भव्य तथा दिव्य था। बाल्यावस्था में इन्हें घुड़सवारी का शौक था और संगीत से प्रगाढ़ प्रेम था। इनके गौर वर्ण, उन्नत ललाट और स्मितपूर्वाभिभाषण का दर्शकों पर बड़ा प्रभाव पड़ता था। श्वेत वस्त्र से इन्हें विशेष अनुराग था। खद्दर का लम्बा सफेद कोट, महीन श्वेत धोती, सिर पर लाल गुजराती पगड़ी और पैरों में सुन्दर चप्पल, यही इनकी आकर्षक वेशभूषा थी। इनकी आँखें हीरे के समान चमकती थीं और मुखाकृति अत्यन्त कान्तिमान् थी। ये बड़े ही मधुर-भाषी थे और शासक होते हुए भी किसी के दिल को दुखाना नहीं जानते थे[2]।

ध्रुवजी संस्कृत साहित्य तथा दर्शन शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इनकी पैनी बुद्धि शास्त्र के तत्त्व के भेदन में बड़ी कुशल थी। किसी शास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन तथा अध्यापन इनकी वैदुषी की विशेषता थी। इन्होंने जैन तथा बौद्ध दर्शन के जिन चूडान्त ग्रन्थों का सम्पादन किया है उससे इनके प्रकाण्ड पांडित्य का पता चलता है। संस्कृतसाहित्य तथा भारतीय दर्शनों के प्राचीन परम्परा के अनुसार स्वाध्याय के साथ ही ये पाश्चात्य के भी गम्भीर विद्वान् थे। गुजरात में प्राचीन संस्कृत पांडित्य तथा नवीन पाश्चात्य ऐतिहासिक गवेषणात्मक पद्धति से सम्पन्न विद्वानों की एक श्लाघनीय परम्परा रही है। आचार्य आनन्द शंकर बापूभाई ध्रुव इसी परम्परा की अन्तिम कड़ी थे। इसीलिए कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शीजी ने ध्रुवजी को 'प्राच्य विद्या तथा पाश्चात्य विद्या के सम्मेलन कराने वाले सेतु' की जो उपाधि प्रदान की है, वह सर्वथा यथार्थ तथा अभिनन्दनीय है। ये वास्तव में ऐसे थे ही। इसलिए इतने दिनों का अन्तराल होने पर भी इनके श्रद्धालु छात्रों के हृदय में इनकी सौम्यमूर्ति अपने पूर्ण वैभव के साथ आज भी विराजमान है।

---

१. द्रष्टव्य, बलदेव उपाध्यायः भारतीय धर्म और दर्शन, (पृ० ५५–५८ चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, १९७८ ई०)।

२. डा० ध्रुव के आरम्भिक जीवनचरित को लिखने में प्रो० पुष्कर चन्द्रावरकर के द्वारा प्रदत्त सामग्री से बड़ी सहायता ली गई है। अतः लेखक प्रो० चन्द्रावरकर का इसके लिए अत्यन्त आभारी है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य ध्रुव के शिष्यों की एक लम्बी परम्परा है। यहाँ केवल चार प्रधान शिष्यों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

(१) **डा० हरदत्त शर्मा**—मेरठ शहर के निवासी हरदत्त शर्मा ने साहित्य विषय लेकर प्रथम श्रेणी में एम ए० पास किया था। बड़ी ही तीक्ष्ण बुद्धि के चलतेपुर्जे व्यक्ति थे। 'चेकोस्लोवाकिया' के प्रयाग विश्वविद्यालय से प्रख्यात जर्मन संस्कृतज्ञ डा० विन्टरनित्स की अध्यक्षता में डाक्टरेट की डिग्री प्राप्त की थी। रामजस कालेज (दिल्ली), सनातन धर्म कालेज (कानपुर) तथा हिन्दू कालेज (दिल्ली) में इन्होंने क्रमशः अध्यापन कार्य किया था। अनेक शोधनिबन्धों के द्वारा इन्होंने अपनी अध्ययनशीलता तथा विद्वत्ता का परिचय दिया था। 'कालिदास एण्ड पद्मपुराण' नामक शोधमूलक ग्रन्थ में इन्होंने कालिदास को पद्मपुराण के आधार पर अपने प्रख्यात नाटकों के निर्माण का तथ्य प्रकट किया है। इनके सम्पादित ग्रन्थों में जयमंगला टीका के साथ **'सांख्य-कारिका'**, **कवीन्द्रचन्द्रोदय** (पूना) तथा **सदुक्तिकर्णामृत** (मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर) मुख्य हैं। अल्पायु में निधन हो गया। फलतः ये अपनी प्रतिभा का पूरा प्रकाश रचनाओं द्वारा नहीं कर सके।

(२) **पण्डित चिम्मनलाल गोस्वामी**—बीकानेर (राजपूताने) के निवासी पण्डित चिम्मनलालजी बड़े ही सुबुद्ध, आचार-सम्पन्न विद्वान् थे जिन्होंने बीकानेर राज्य के समुन्नत शासन पद को छोड़कर सनातन धर्म की अकृत्रिम सेवा करना अपने जीवन का उदात्त लक्ष्य बनाया। विख्यात धार्मिक पत्र 'कल्याण' (गोरखपुर) को इन्होंने अपनी अमूल्य सेवाएँ समर्पित कर दीं। १९२२ ई० में न्यायदर्शन में विशेष योग्यता के साथ इन्होने संस्कृत में एम ए० परीक्षा उत्तीर्ण की। वल्लभाचार्य के वंशज तथा श्रद्धालु अनुयायी होने से इनमें संगीत का मार्मिक ज्ञान, सनातनधर्म के प्रति अटूट श्रद्धा तथा धर्म-प्रचार का नैसर्गिक अनुराग कूट-कूट कर भरा था। 'कल्याण' के संस्थापक एवं सम्पादक श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार के आग्रह पर बीकानेर दरबार का उन्नत पद छोड़कर 'कल्याण' की सेवा करने ये आ गये। 'कल्याण कल्पतरु' के सम्पादक के रूप में गोस्वामीजी ने वैदिक धर्म तथा संस्कृत साहित्य की चिरस्मरणीय सेवा की है। अंग्रेजी तथा संस्कृत दोनों के मर्मज्ञ विद्वान् होने से संस्कृत ग्रन्थों का इनका अंग्रेजी अनुवाद बड़ा ही सुन्दर, प्रामाणिक तथा आवर्जक है। 'वाल्मीकीय रामायण', 'श्रीमद्भागवत' तथा 'रामचरित-मानस' के गीता प्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी अनुवाद अपनी शुद्धता तथा प्रामाणिकता के लिए सन्तत स्मरणीय रहेंगे। ये इन ग्रन्थों के मानक अनुवाद हैं। चार-पाँच वर्ष पूर्व इनका निधन हो गया है।

(३) **पण्डित सत्यांशुमोहन मुखोपाध्याय**—वाराणसी के विंशशताब्दी के विद्वज्जनों में दिवंगत श्री सत्यांशुमोहन मुखोपाध्याय का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। वे संस्कृत के उच्चकोटि के विद्वान् होने के साथ-साथ पालि, प्राकृत, बंगाली, हिन्दी, उर्दू, जर्मन इत्यादि भाषाओं तथा साहित्य के अच्छे ज्ञाता थे। केवल यही नहीं, वे प्राच्य और पाश्चात्त्य दर्शन के प्रगाढ़ पण्डित, प्रसिद्ध प्राच्यविद्याविशारद, प्रख्यात

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षाशास्त्री एवं उपर्युक्त संस्कृत-पालि इत्यादि भाषाओं के व्याकरण में भलीभाँति निष्णात थे।

उनके परम भागवत पिता दिवंगत श्री ललितमोहन बंगाल (अधुना बाँगला देश) के जैसोर जिले के एक प्रख्यात संस्कृतज्ञ तथा संस्कृत अध्ययन-अध्यापन-निरत, पण्डितकुल में उत्पन्न हुए थे। ललित बाबू काशी के संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी, बंगला, उर्दू के विद्वानों में मूर्धन्य तो थे ही; अपि तु वैष्णव साहित्य और उसका शिरोमणि श्री मद्भागवत उनके नखाग्र में था। ज्ञान, कर्म और भक्ति का अपूर्व समन्वय उनके जीवन में हुआ था और इन सभी का सम्पूर्ण दाय पुत्र सत्यांशुमोहन में आ गया था। जीवन के अन्त तक अध्ययन करते रहना, भिन्न-भिन्न शास्त्रों का रसास्वादन करते रहना भी सत्यांशुमोहन ने पिता से ही सीखा था।

इन्होंने १९२२ ई० में दर्शनशास्त्र को लेकर काशी विश्वविद्यालय से एम० ए० परीक्षा पास की और परिक्षार्थियों में आपका स्थान सर्वोच्च रहा। इस समय ये (उत्तरकाल में महामहोपाध्याय और पद्मविभूषण) पंडित गोपीनाथ कविराजजी के व्यक्तिगत सम्पर्क में आये और उनसे न्यायवैशेषिक दर्शन, भाषातत्त्व तथा पालिभाषा एवं साहित्य का अध्ययन किया। इसके अनन्तर भिक्षु अनागरिक धर्मपाल और धर्मश्री से भी इन्होंने पालि का अध्ययन किया। १९२३ में इन्होंने एल०टी० की परीक्षा भी, काशी हिन्दूविश्वविद्यालय से पास की। ये काशी के गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज के साधोलाल स्कॉलर भी रहे।

सन् १९२४ में ये प्राध्यापक नियुक्त हुए। दूसरे वर्ष ये दिल्ली के रामजस कालेज में प्राध्यापक पद प्राप्त करके चले गये एवं १९२८ में, कानपुर के सनातन धर्म कालेज में प्राध्यापक नियुक्त हुए। इन संस्थाओं में अत्यन्त सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त करने पर भी काशी नगरी इनको निरन्तर अपनी ओर आकृष्ट करती रहती थी, जिसके परिणाम-स्वरूप ये कानपुर छोड़कर काशीस्थ गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज के 'सरस्वती भवन' लाइब्रेरी में लाइब्रेरियन बने। इसके पहले ही सन् १९३० में ये संस्कृत में एम० ए० पास कर चुके थे।

चाहे अध्यापन करें, चाहे लाइब्रेरियन पद का दायित्व सँभालें, सभी स्थितियों में इन्होंने अधिकारियों की तथा अन्य विद्वज्जनों की प्रशंसा अर्जित की। लाइब्रेरियन रहते समय इन्होंने ग्रन्थों की तरह-तरह से सेवा करके वाणी की अद्भुत पूजा की। उच्च-कोटि के विद्वान् तो ये थे ही किन्तु इस समय ग्रन्थ-संरक्षण तथा ग्रन्थागार-विषयक ज्ञान इन्होंने पूर्णरूपेण प्राप्त किया। ग्रन्थों पर इनका अगाध प्रेम था और पुस्तकों को के ये देवी सरस्वती का प्रतीक मानते थे। घर में एवं अन्यत्र भी पुस्तक पर हस्तापर्ण ये इतनी श्रद्धा से तथा आदर को भावना से करते थे जैसे कि वह एक स्नेहपात्र सजीव प्राणी हो।

अपने परम भागवत पिता के सेन्ट्रल हिन्दू ब्वायज स्कूल से, असामयिक अवसर ग्रहण से ये १९३३ में उसी पद पर बुला लिये गये। छह साल अत्यन्त यश और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनप्रियता अर्जन करके शिष्यों के प्रिय अध्यापक बनकर हिन्दू स्कूल में रहने के अनंतर ये विश्वविद्यालय कर्तृपक्ष से, टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज में 'स्पेशल इंग्लिश' पढ़ाने के लिए स्नानान्तरित कर दिये गये। १९५१-५२ में इन्होंने इसी कालेज का प्राचार्य-पद भी सँभाला। इस संस्था में भी इनकी शैक्षणिक तथा प्रशासनिक योग्यता का बहुत समादर हुआ। इसी कॉलेज से सन् १९६० में आप सेवा-निवृत्त हुए।

ये बड़े सफल अध्यापक थे। शिक्षण के निमित्त ये डाइरेक्ट मेथड के पक्षपाती थे। इनकी दृष्टि में शिक्षा जीवन भर साधना, अध्ययन, अध्यापन एवं प्रयोग की एक लम्बी परम्परा होती है। प्रत्येक प्रकार के बन्धन से वह मुक्ति देती है तथा आत्मा का सच्चे अर्थ में प्रसार सम्पादन करती है।[1]

इन्होंने 'सरल संस्कृत व्याकरण' नाम का एक व्याकरण ग्रन्थ लिखा था जिससे प्रथमा, मध्यमा, हाई स्कूल, इन्टर मीडिएट सभी वर्ग के संस्कृत के छात्र बहुत उपकृत हुए। व्याकरण जैसे कठिन विषय का इसमें सरल, हृदयग्राही और मौलिकरूप से विवेचन किया गया है जिसके कारण अभी भी भिन्न-भिन्न स्तर के छात्र इसके लिए आग्रह करते हैं।

अध्ययन इनकी एक तपस्या थी और ये एकदेशदर्शिता से परे थे। प्राचीन और आधुनिक, प्राच्य तथा पाश्चात्त्य, प्राच्यविद्या तथा दर्शन-विषयक एवं पाश्चात्त्य साहित्य, विज्ञान तथा दर्शन-विषयक, बौद्ध-जैन धर्म-सम्बन्धित ग्रन्थ तथा वेद, उपनिषद्, पुराण, उपपुराण, स्मृति, तन्त्रआगम, आयुर्वेद, होमियोपैथी इत्यादि नाना विषयक ग्रन्थ-रत्नों से इन्होंने एक विशाल पारिवारिक ग्रन्थागार बनाया था। अपना ग्रन्थागार तथा अन्य ग्रन्थागारों के ग्रन्थों की विषयवस्तु, ग्रन्थों के प्रकाशन, संस्करण, मूल्य इत्यादि वे सटीक रूप से स्मृति से बतला देते थे। 'सैकेन्दिया ग्रन्थशाला' से मानों उनमें एक सचल, सजीव, मूर्तिमान् रूप लिया था।

ये एक निष्ठावान् ब्रह्मतेज से परिपूर्ण आस्तिक ब्राह्मण थे। श्रीमद्भागवत, महाभारत, रामायण का पारायण इन्होंने बहुशः किया। गायत्री-सन्ध्या बिना किये ये अस्वस्थ दशा में भी जल तक नहीं पीते थे। ये अपने सिद्धान्त के पक्के थे। क्या नीति या आदर्शगत सिद्धान्त की रक्षा के लिए, क्या सत्यपालन हेतु, क्या ब्राह्मण के नीति-नियम के पालन के लिए ये किसी भी शक्ति के सामने झुकते नहीं थे—स्नेह, ममता, भय, निन्दा किसी भी कारण ये अपनी नीति से भ्रष्ट नहीं होते थे।

४ नवम्बर सन् १९७६ ई० में हृदयरोग के आकस्मिक आक्रमण के कारण काशी में ही इनका निधन हो गया!

---

1. "Education is a life-long Sadhana,—study, teaching and practice for freedom from bondage of all kinds and expansion of the self in the truest sense of the term."

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनका परिवार आचारवान् व्यक्तियों के कारण नितान्त प्रसिद्ध है। इनके दो विद्वान् पुत्र तथा तीन विदुषी पुत्रियाँ, पिता के द्वारा प्रदर्शित शोभन आचार से सम्पन्न होकर अध्यापन कार्य करती हैं। उनकी विदुषी अनुजा डा० भक्तिसुधा मुखोपाध्याय ने संस्कृत की आराधना में अपना जीवन ही लगा दिया है। मत्स्यपुराण के मार्मिक अध्ययन पर आश्रित इनका महानिबन्ध (थीसिस) इनके दीर्घ अध्यवसाय एवं गाढ़ अनुशीलन का सद्यः परिचायक है। हिन्दू विश्वविद्यालय के महिला महाविद्यालय में अनेक वर्षों तक संस्कृत साहित्य का निष्ठापूर्वक अध्यापन करने के अनन्तर गतवर्ष रीडर पद से इन्होंने अब अवकाश ग्रहण किया है।[1]

(४) **बलदेव उपाध्याय**—इस ग्रन्थ का लेखक भी आचार्य ध्रुवजी का अन्यतम शिष्य था। वह अपना परिचय यहाँ अपने ही शब्दों में दे रहा है।

१. श्री मुखोपाध्यायजी का यह परिचय स्वयं भक्तिसुधाजी ने लिखा है। इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१३

आत्म-परिचय

उत्तर प्रदेश के सबसे पूर्वी बलिया-मण्डल में गंगा तथा सरयू के द्वारा आप्लावित पुण्यभूमि से सम्पन्न 'दुआबा' परगने के अन्तर्गत 'सोनबरसा' नामक ग्राम में शारदीय नवरात्र की द्वितीया तिथि सं० १९५६ वि० (तदनुसार ६ अक्टूबर, १८९९ ई०) में एक मध्यमवित्तीय सरयूपारीण ब्राह्मण परिवार में मेरा जन्म हुआ। पूज्य पिताजी का नाम था पण्डित रामसुचित उपाध्याय तथा माताजी का मूर्ति देवी। पिताजी की आर्थिक स्थिति नितान्त सामान्य थी। नाममात्र की भूसम्पत्ति दो-चार बीघों में सीमित थी। मेरे पूर्वजों के द्वारा तान्त्रिकी दीक्षा से दीक्षित शिष्यों की एक आस्तिक परम्परा अवश्य विद्यमान थी जिनके द्वारा समय-समय पर आर्थिक सहायता प्राप्त होने से पिताजी कुटुम्ब का भरण-पोषण सामान्य रीति से करने में समर्थ थे। आस्तिक शिष्यों की यह परम्परा लगभग एक सौ वर्षों से भी अधिक प्राचीन थी। मेरे पञ्चम पूर्वपुरुष अध्यात्मरसिक भगवद्भक्त सन्त थे जिन्होंने पुत्र के रूप में प्रथम सन्तान को प्राप्त कर एकदम घर से नाता तोड़कर पूर्ण वैराग्य ले लिया और अपने कतिपय भक्त अनुयायियों के साथ तीर्थाटन करना, भगवान् की नैष्ठिक पूजा-अर्चा करना तथा भागवत का मनन-निदिध्यासन के साथ प्रवचन करना ही उनके जीवन की दैनिकचर्या का अंग बन गया। उस युग में तीर्थों का भ्रमण तथा भगवद्विग्रह का दर्शन पैदल ही चलकर करना पड़ता था। सन्त का व्यक्तित्व आकर्षक था। फलतः इन्हीं तीर्थयात्राओं में उनके आचरण एवं भागवत-प्रवचन से आकृष्ट होकर रास्ते में पड़ने वाले गाँवों के सदाचारी गृहस्थ उनके शिष्य बन गये तथा उनसे दीक्षा लेकर अध्यात्म-मार्ग का अनुसरण करने लगे। फलतः पूरबी उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बिहार में मेरे पूर्वजों के ये सदाचारी, धर्मनिष्ठ शिष्य फैले हुए थे। आध्यात्मिक रिक्थ के रूप में ये शिष्य मेरे पूज्य पिताजी को प्राप्त हुए। इन्हीं शिष्यों को अध्यात्म-रामायण तथा श्रीमद् भागवत की कथा सुनाकर उनसे दक्षिणारूप में जो कुछ धन प्राप्त होता था, उसीसे वे अपनी जीविका चलाते, कुटुम्ब का पालन करते और अपनी छोटी गृहस्थी के योगक्षेम की सुव्यवस्था करते थे।

पिताजी

मेरे पिताजी ने संस्कृत शिक्षा अयोध्याजी में पाई थी। मेरे ग्राम के समीपस्थ 'बैरिया' ग्राम के एक सन्त महात्मा ने अयोध्या में एक वैष्णव स्थान की महन्थी पाई थी। वे इस क्षेत्र के छात्रों को अपने स्थान में रखते थे, भोजन-छाजन की व्यवस्था करते और अपनी पाठशाला में इन्हें संस्कृत की शिक्षा देते थे। पिताजी भी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी ही छात्र-मण्डली में अन्तर्भुक्त होकर अयोध्या गये तथा ज्योतिष एवं कर्मकाण्ड का अभ्यास किया। अपने पिता पण्डित मेघूदत्त उपाध्याय के वाधक्यं के कारण पिता की सेवा करने के लिए तथा उनके साथ-साथ शिष्यों में घूमने के लिए पिताजी को अधिक पढ़ने का अवकाश ही नहीं मिल सका। अयोध्या के वैष्णव वातावरण में परिपुष्ट होने के कारण पिताजी स्वभावतः भगवान् लक्ष्मी-नारायण के परम भक्त, आस्तिक उपासक एवं सदाचारी सन्त थे। १६ वर्ष के वय में ही उनके वृद्ध पिता का अकस्मात् देहावसान हो गया। फलतः गृहस्थी का पूरा भार उन्हीं के दुर्बल कन्धों के ऊपर आ टिका। संस्कृत पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी और शिष्यों में घूम-घूमकर भागवती कथा का प्रवचन कर अपनी जीविका चलाना ही उनका अर्थोपार्जन का एकमात्र साधन बन गया।

पिताजी व्यासवृत्ति से अपना जीवन-यापन करते थे। उनके कोमल हृदय में भगवान् के प्रति सहज अनुरक्ति का बीज विद्यमान था जो श्रीमद्भागवत के पढ़ने से, भगवान् की लीला की सरस कथा सुनाने से तथा अध्यात्म चिन्तन से अंकुरित, पुष्पित तथा कालान्तर में फलित हो चला। वे अपनी कथा को साहित्य के संयोग से ललित तथा हृदयावर्जक बनाते थे।

पिताजी की वैष्णव भक्ति अनेक रूपों में प्रकाशित होती थी। वे प्रतिवर्ष नियमपूर्वक जन्माष्टमी का उत्सव करते थे। श्रीकृष्ण की 'दोलायात्रा' बड़े प्रेम तथा भक्ति के साथ सम्पादित की जाती थी। इसे हमारी ओर 'डोल धरना' कहते हैं। इस उत्सव को मनाने के लिए पिताजी दालान की चूने से सफेदी कराते थे तथा उस पर सुन्दर-सुन्दर हिन्दी की उपदेशात्मक कविताएँ भी गेरू रंग से लिखवाते थे जो देखने में बड़ी ही भव्य लगती थीं।

१९०७ ई० में लिखी उनकी नोटबुक आज भी मेरे पुस्तकालय का भूषण है। सुडौल अक्षरों में लिखे गये संस्कृत तथा हिन्दी के अभिराम सरस पद्यों का यह सुभग संग्रह आज भी महत्त्व बनाये हुए है। उनके संग्रह के दो चार पद्यों की अभिरामता देखिए--

दाहिने हाथ से बाँये हाथ की महत्ता अधिक होने पर भी दान के लिए उद्यमशील न होने के कारण ब्रह्मा ने उसे "शौचाधिकारी' – सफाई का जमादार-बना दिया है। इस भाव से सम्पन्न यह चमत्कारी पद्य पढ़िये—

"गृह्णात्येष रिपोः शिरः प्रजविनं कर्षत्यहो वाजिनं
धृत्वा चर्मधनुः प्रयाति समरं संग्रामभूमावपि।
चौर्यं, द्यूतमपि, स्त्रियं, न शपथं जानाति वामः करो
दानानुद्यमतां विलोक्य विधिना शौचाधिकारी कृतः॥"

संकल्प करने के लिए जल लेने के समय दाँहिना हाथ ही आगे बढ़ता है, बायाँ हाथ पीठ की ओर सटक जाता है। यही हेतु है दाहिने हाथ की पवित्रता का एवं वामहस्त की जघन्यता का।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यद्यपि का नो हानिः परकीयां चरति रासभो द्राक्षाम् ।
असमञ्जसमिति मत्वा तथापि परितप्यते चेतः ॥"

आशय है कि यदि गदहा दूसरे के अंगूरों को चरता है, तो अपनी इसमें हानि क्या है ? परन्तु अपने से सम्बद्ध न होने पर भी इस अटपटी बात को देखकर अपना चित्त स्वयं सन्तप्त होता है। विषम अनौचित्य का प्रदर्शन कितने सुन्दर दृष्टान्त द्वारा यहाँ अभिव्यक्त किया गया है।

हिन्दी के दो पद्य यहाँ उद्धृत किये जाते हैं। पहले पद्य में मानव जीवन के सफल यापन की एक रमणीय पद्धति बतलाई गई है, तो दूसरे पद्य में राधारानी के नेत्रों का कमनीय वर्णन है—

सुनिये सबहीं कहिये न कछू, विधि या रहिये यहि बागर में।
मिलिये सबसे दुरभाव नहीं, बसिये सतसंग उजागर में।
करिये ब्रतनेम महातप से जेहिते तरिये भवसागर में।
'रसखान' गोबिन्दहि यों भजिये जस नागरि को चित गागर में॥

एक ही झपाके तें छपाके मन मोह दृग
ऐसे शारदा के ना उमा के ना रमा के हैं।
दसहु दिसा के मनसा के फल देन हारे,
करन निसा के इमि ताके और काके हैं।
जायके जहाँ के तहाँ मीन जल ढाँके गये
हरिन दरीन हाँके कमल कहाँ के हैं।
सदन समा के सुखमा के उपमा के चारु
चंचल चलाके नैन बाँके राधिका के हैं॥

इस पद्य-चतुष्टयी से पिताजी की साहित्यिक अभिरुचि तथा मानसिक रुझान की दिशा का सकेत सद्यः मिल जाता है। फलतः वे जैसे-तैसे कथा कहने वाले व्यास नहीं थे, प्रत्युत रस से स्निग्ध हृदय वाले सहृदय विदग्ध थे।

माताजी

माताजी उस युग की महिला थीं जब स्त्रियों को शिक्षा देने की घटना ही अनहोनी मानी जाती थी। शिक्षित न होने पर भी वे बुद्धिमती थीं और घर-गिरस्ती के कामों में पूरी आस्था एवं निष्ठा से लगी रहती थीं। भोजपुर मण्डल में बालक के जन्म, जनेऊ तथा विवाह आदि संस्कारों के अनुष्ठानके समय जिन मनोहर गीतों का गायन किया जाता है उनका एक मनोरम भण्डार उनकी जिह्वा पर सर्वदा विराजमान रहता था। भोजपुरी गीतों के गायन की उन्हें अच्छी जानकारी थी। उनकी मधुर वाणी के द्वारा गाये गये गीतों में अलौकिक आकर्षण था। आजकल संस्कार-सम्बन्धी भोजपुरी लोकगीतों का जो मुद्रित रूप उपलब्ध होता है, उसका बहुत कुछ श्रेय हमारी माताजी को है। बात ऐसी हुई कि जिस परिवार में मेरी कनिष्ठ भगिनी सौ० जानकी देवी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का विवाह हुआ, उसमें उसकी सास जीवित न थीं। फलतः वहाँ उसे उचित समय पर गेय गीतों से परिचित कराने वाला कोई व्यक्ति न था। माताजी ने इस त्रुटि की पूर्ति स्वयं करा दी। उन्होंने इन आवश्यक लोकगीतों को अपनी कन्या के कल्याण तथा उपयोग के लिए स्वयं लिखा डाला। इनको लोकगीतों को अर्थसहित सुन्दर सम्पादन कर मेरे अनुज डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने **'भोजपुरी लोकगीत'** के नाम से दो खण्डों में प्रकाशित किया है (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)। इतना ही नहीं, इन गीतों का आकर्षण कृष्णदेवजी के लिए इतना प्रभावशाली सिद्ध हुआ कि इन्होंने भोजपुरी लोक-साहित्य के प्रचार तथा प्रसार में अपने जीवन को समर्पित कर दिया। फलतः लोक-संस्कृति के ये मानेजाने विद्वानों में गिने जाते हैं तथा इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए इन्होंने अमेरिका तथा यूरोप की कई यात्राएँ की हैं। लोक-संस्कृति के इस प्रचार-प्रसार में मेरी माताजी का प्रयास कम श्लाघनीय नहीं माना जा सकता। वे स्वभाव से ही भगवद्भक्त थीं तथा दीनजनों की यथाशक्ति सहायता किया करती थीं।

फलतः भागवत-पारायण पिता तथा संस्कृति-पारायणा माता के ज्येष्ठ सन्तान तथा ज्येष्ठ आत्मज होने का जो गौरव मुझे प्राप्त है, उसे मैं उस करुणावरुणालय की अगाध अनुकम्पा का ही प्रसाद मानता हूँ।

शिक्षा-दीक्षा

अपने जन्मस्थान सोनबरसा' के ही प्राइमरी हिन्दी स्कूल में मेरी आरम्भिक हिन्दी शिक्षा सम्पन्न हुई। आठ-नौ वर्ष के वय तक हिन्दी पढ़ने-लिखने तथा समझने-बूझने की योग्यता मुझे प्राप्त हो गई। मेरे घर की पोथियों में लल्लूलाल के द्वारा रचित **'प्रेमसागर'** की एक प्राचीन मुद्रित प्रति मुझे मिल गई। उसको मैं आदि से अन्त तक कई बार पढ़ गया। पढ़ने से दो प्रकार के लाभ मुझे मिले। एक तो मैं हिन्दी में निबद्ध सन्दर्भ को समझने में आंशिक रूप से परिचित हो गया। प्रेमसागर की भाषा में ब्रज-भाषा का पुट बड़ा ही प्रभावशाली था। 'लड़ने के लिए आया वह नोच, माथे पर नाच रही है मीच' के समान वाक्यों की उसमें प्रचुरता थी। सर्वांशतः तो नहीं, परन्तु अंशतः समझने से भाषा के निबन्धों की जानकारी मुझे हो गई। साथ ही साथ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की पूरी कथा से भी मुझे उसी काल में परिचय हो गया। यह परिचय उस समय और भी गाढ़ हो गया जब मैं अपने पिताजी के साथ शिष्यों में जाता तथा उनके द्वारा व्याख्यात भागवत की कथा सुनने का मुझे अवसर मिलता। फलतः संस्कृत भाषा से परिचय होने के पूर्व ही मैं भागवत की कथा से पूर्णतया परिचित हो गया। उस कोमल वय में भागवती कथा की स्निग्धता तथा अभिरामता की जो छाप मेरे हृदय पर पड़ी, वह मेरे जीवन की एक अमिट अनुभूति है। इन घटनाओं ने श्रीमद्भागवती कथा के सुनने-समझने की ओर मेरी चित्त-वृत्ति को जो मोड़ दिया, वह मेरे जीवन की एक बहुमूल्य निधि है।

मेरी स्कूली शिक्षा बलिया के गवर्नमेण्ट हाई स्कूल में पूरी हुई (१९११ ई० से लेकर १९१४ ई० तक)। इन्ट्रेन्स परीक्षा (जो उस समय 'स्कूल लीविंग सर्टिफिकेट'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षा कहलाती थी) मैंने फैजाबाद गवर्नमेन्ट हाई स्कूल से १९१६ ई० प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की तथा पूरे उत्तर प्रदेश के उत्तीर्ण छात्रों में योग्यता क्रम से मेरा चतुर्थ नंबर था और इसके लिए मुझे दो वर्षों तक सरकारी छात्रवृत्ति भी प्राप्त हुई थी। स्कूल के छात्र जीवन में दो अध्यापकों के शिक्षण का प्रचुर प्रभाव मेरे जीवन पर पड़ा। ये दोनों सुयोग्य अध्यापक बंगाली ब्राह्मण थे–(१) श्री रणेन्द्रनाथ मोइत्र तथा (२) श्री तारापद भट्टाचार्य। इनके अध्यापन का, सच्चरित्र का तथा सदाचार का पूरा प्रभाव आस्थावान् छात्रों के ऊपर पड़ा था और उन छात्रों में मैं अपनी भी गणना करता हूँ।

उच्च शिक्षा के लिए मैं सेन्ट्रल हिन्दू कालेज, वाराणसी में १९१६ ई० के जुलाई में प्रविष्ट हुआ और वहीं से इन्टर (१९१८), बी० ए (१९२०) तथा एम० ए० परीक्षाएँ, की भी उत्तीर्ण कीं (१९२२ ई०) एम० ए० में संस्कृत साहित्य में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ और उत्तीर्ण छात्रों में मेरा योग्यता स्थान प्रथम रहा। इन्टर तथा बी० ए० कक्षाओं में संस्कृत के मेरे अध्यापकों में पण्डित नीलकमल भट्टाचार्य तथा पण्डित गुरुपद भट्टाचार्य मुख्य थे। दोनों ही चरित्रवान् आदर्श गुरु थे। नीलकमल बाबू संस्कृत व्याकरण के पारंगत विद्वान् थे, तो गुरुबाबू साहित्य के मर्मज्ञ थे और प्रख्यात विद्वान् महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री के सुयोग्य शिष्य होने के कारण ये काव्य-शास्त्र की गूढ़ समस्याओं का समाधान करने में प्रवीण थे। एम० ए० कक्षा में मुझे महामहोपाध्याय पण्डित रामावतार शर्मा तथा आचार्य आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव से वेद, दर्शन तथा साहित्य के गम्भीर अध्ययन तथा अनुशीलन का सुवर्ण अवसर प्राप्त हुआ।

अंग्रेजी पढ़ने के साथ ही साथ मैं संस्कृत का भी अध्ययन करने लगा। इस विषय में मेरे गुरु थे—मेरे ही पितृव्यचरण **पण्डित रामउदित उपाध्यायजी**, जो मेरे पिताजी के एकमात्र अनुज थे। काशी से मेरे कुटुम्ब का शैक्षणिक सम्बन्ध अनेक वर्षों पूर्व ही सम्पन्न हुआ था। मेरे परिवार के ही पण्डित **रामयत्न उपाध्यायजी** ने काशी के विद्वान् गुरुजनों के चरणों में बैठकर अपनी संस्कृत विद्या का अध्ययन पूर्ण किया था। मेरे पितृव्य पण्डित रामउदित उपाध्याय की आरम्भिक संस्कृत शिक्षा तो आरा के तिवारी जी (पण्डित बालगोविन्द तिवारीजी) की विख्यात पाठशाला में, हमारे ग्राम के समीप 'मठिया' ग्राम के निवासी **पण्डित गणपति मिश्र** व्याकरणाचार्य के अध्यापकत्व में सम्पन्न हुई थी। व्याकरण के टीकाग्रन्थों के अध्ययन के निमित्त वे काशी आकर संस्कृत कालेज के लब्धप्रतिष्ठ वैयाकरण तात्याशास्त्रीजी के शिष्य हुए और उन्हीं की कृपा से पाणिनिव्याकरण में विशेष व्युत्पत्ति सम्पादित की। आज से सौ साल पूर्व ही मेरे 'अजिया श्वशुर' पण्डित **यागेश्वर ओझाजी** बालशास्त्री के सतीर्थ्य थे और दोनों सज्जनों ने काशीनाथ शास्त्री के चरणों में बैठकर व्याकरण शास्त्र का तलस्पर्शी वैदुष्य अर्जित किया। मेरे चाचाजी जब भारत-धर्म-महामण्डल द्वारा स्थापित 'ब्रह्मचर्याश्रम' के प्रधान पण्डित थे, तब मैं १९१० ई० में काशी आया और संस्कृत का अध्ययन आरम्भ किया। दोनों भाषाओं की—संस्कृत तथा अंग्रेजी की—मेरी पढ़ाई साथ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही साथ चलती थी। १६२२ में ईस्वी एम० ए० उत्तीर्ण होने के समय मैं संस्कृत कालेज से साहित्याचार्य के अनेक खण्डों को पास कर चुका था। शेष खण्डों की पूर्ति भी कालान्तर में हुई।

छात्र-जीवन की अविस्मरणीय घटनाएँ

डा० गणेशप्रसाद से पहली भेट

१६१८ ईस्वी के जुलाई मास के पठन सत्र के आरम्भ से पहले ही गणितशास्त्र के ख्यातनामा विद्वान् डा० गणेशप्रसादजी अध्यक्ष पद पर नियुक्त हो चुके थे। वे बनारस की सिविल लाइन्स में एक बँगले में रहते थे और यहीं से घोड़ा गाड़ी पर चढ़ कर वे कमच्छा में स्थित सेन्ट्रल हिन्दू कालेज में आते थे। वे समय के बड़े ही पाबन्द थे। उनका समय नपा-तुला होता था। कालेज खुलने के ठीक समय पर वे उसके दरवाजे पर पहुँच जाते थे। अपने कमरे का ताला वे स्वयं बन्द करते थे, चाभी अपने पास रखते थे तथा खोलने का काम वे स्वयं अपने ही हाथों किया करते थे। कमरे के पूर्णतया बन्द होने से आश्वस्त होने के निमित्त वे बन्द ताले को तीन बार जोरों से झटका देते थे। खट खट खट—की तीन बार आवाज होने पर ही वे जाने के लिए उद्यत होते थे। कभी जल्दीबाजी में वे कोई काम नहीं करते थे। यह उनका नित्य का नियम था। इसमें किसी प्रकार की त्रुटि नहीं होती थी।

जुलाई में कालेज खुलने से कुछ पहले मैं अपने चाचाजी पण्डित रामउदित उपाध्यायजी के साथ सेन्ट्रल हिन्दू कालेज में प्रविष्ट होने के लिए काशी आया। कालेज के भूतपूर्व अध्यक्ष प्रोफेसर फनी बाबू (फणिभूषण अधिकारी दर्शन विभाग के अध्यक्ष) के स्थान पर डॉ० गणेशप्रसादजी की नियुक्ति की खबर पाकर हम लोगों ने नये अध्यक्ष महोदय से भेंट करने का निश्चय किया। बलिया शहर के समीपस्थ जीराबस्ती ग्राम के डा० प्रसाद के निवासी होने से सुख आत्मीयता की भावना ही इसके लिए प्रेरिका थी। अपराह्न में चाचाजी के साथ मैं जब उनके बँगले में प्रविष्ट हुआ, तो उनकी विचित्र वेषभूशा ने हमें आश्चर्य-चकित कर दिया। आँगन में बैठकर वे कुछ लिखपढ़ रहे थे। वे श्याम रँग के नाटे कद के व्यक्ति थे। वे नीले रंग के खद्दर का पाजामा पहने हुए थे, जिसे उन्होंने सफेद रँग की कुछ मोटी सुतली से ऊपर से बाँध रखा था जिससे वह पाजामा खिसककर नीचे न गिर जाय। देखते ही मालूम पड़ा कि ये एकदम सीधे-सादे व्यक्ति हैं—दिखावे से कोसों दूर, दम्भ के कट्टर शत्रु तथा सादगी के जीते-जागते पुतले। हमारे चाचाजी बलिया के 'जुबिली संस्कृत कालेज' के प्रिन्सिपल हैं—यह परिचय पाकर वे बड़े प्रसन्न हुए और मुझे यथायोग्य उचित साहाय्य देने का आश्वासन दिया। शास्त्र की चर्चा छिड़ने पर वे निर्भीक रूप से कहने लगे—पण्डितजी, मैंने गणित शास्त्र के विषय में गम्भीर गवेषणा की है, नवीन तथ्यों को खोज निकाला है। ये ही तथ्य यदि संस्कृत में निबद्ध कर दिये जायँ, तो वही वेद बन जायगा। वेद भी तो इसी प्रकार की खोज से निर्धारित किये गये सिद्धान्तों का ही

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो समुच्चय है। उनके इस कथन से तथा उनकी वेद-सम्बधिनी विचित्र भावना से हम लोगों को आश्चर्य हुआ परन्तु उनकी सचाई, दम्भहीनता तथा सादगी की छाप हमारे हृदय पर सदा के लिए अंकित हो गई।

डाक्टर गणेशप्रसादजी कायदा-कानून के बड़े जानकार थे। वे छात्रों पर कृपा रखने वाले एक सफल अध्यापक भी थे। सन् १९१८ ई०-१९२३ ई० तक पाँच वर्षों तक आप ने हिन्दूविश्वविद्यालय की निश्छल सेवा की। प्रशासन के कार्य में नितान्त पटु, डाक्टर साहब सफल अध्यक्ष सिद्ध हुए, परन्तु अध्यापन कार्य में अधिक समय तथा विशेष व्यवस्था को दृष्टि में रखकर उन्होंने अपने कार्य को गणित के विभागीय अध्यक्ष तक ही सीमित रखा। वे हिन्दू विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी समिति के बड़े ही प्रतिष्ठित सदस्य थे जिनकी स्थिति का प्रत्येक सदस्य नितान्त इच्छुक रहता था, क्योंकि उनकी अनुपस्थिति रहने पर कितने ही प्रस्ताव नियम के विरुद्ध पास हो जाया करते थे।

उपाधि-सहित सम्पूर्ण नाम लिखने के वे बड़े पक्षपाती थे। एक दिन मेरे मित्र, संस्कृत के प्राध्यापक पण्डित बटुकनाथ शर्मा किसी आवेदनपत्र पर डाक्टर साहब की संस्तुति की अभिलाषा से उनके पास गये। गणेशप्रसादजी कागज देखते ही जोर से चिल्लाकर बोलने लगे – Panditji, what have you done ? पण्डितजी आपने यह क्या किया ? हमारे मित्र किसी भयंकर अशुद्धि या असंगति की भावना से ठिठक गये। तब डाक्टर साहब ने मृदुल स्वर में कहा – You have not added M. A. after your name. Insist on adding your degree after your name. I always write Dr. Ganesh Prasad, D. Sc. आप अपने नाम के बाद अपनी उपाधि लिखना भूल गये हैं। ऐसा न करें। अपने नाम के बाद अपनी शैक्षणिक उपाधि एम० ए० अवश्य लिखा करें। मुझे देखिए। मैं हमेशा अपने को डा० गणेश प्रसाद डी० एस-सी० लिखता हूँ। नाम के पीछे उपाधि लिखना हमलोग अकिञ्चित्-कर मानते हैं, परन्तु डाक्टर साहब उपाधि लिखने को बड़ा महत्त्व देते थे। उसके बिना केवल नाम लिखने को वे अधूरा ही मानते थे। गणित के अगाध विद्वान् होने पर भी वे इन छोटी से छोटी बातों पर भी विशेष ध्यान दिया करते थे। यह उनके बहुमुखी व्यक्तित्व का एक अविभाज्य अंग ही बन गया था।

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ का प्रथम दर्शन

नोबुल पुरस्कार विजेता होने के नाते कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ की ख्याति संसार की साहित्य गोष्ठियों में अनायास व्याप्त हो गयी थी। भारतवर्ष के साहित्यमनोषी उनका भव्य स्वागत करने के लिए सर्वदा उत्सुक तथा लालायित रहते थे। सन् १९१८ ईस्वी के आसपास उन्होंने हिन्दू विश्वविद्यालय में पदार्पण किया तथा हिन्दू कालेज के विशाल 'हाल' में उनका भव्य स्वागत किया गया। उस समय इन्होंने एक छोटा सा भाषण भी किया था जिसमें भारतीय साहित्य की विशिष्टता का अभिराम परिचय था। दूसरे ही दिन पूर्वाह्ण में थियासोफिकल सोसाइटी में भी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनका स्वागत बड़े समारोह के साथ किया गया। उस समारोह में रविबाबू ने अपना एक लघुकाय रूपक भी सुनाया था जिसका मंचन विश्वभारती के मांगलिक पर्व के अवसर पर पूर्व ही किया गया था। रूपक सुनाने के समय कविवर का अभिनेता स्वरूप स्वतः परिस्फुरित हो रहा था। रविबाबू उच्च आसनासीन होकर अपना अंग्रेजी रूपक इतनी रमणीय स्वरभंगिमा में सुना रहे थे कि प्रतीत होता था कि वह नाटक अपने पूरे वैभव के साथ अभिनीत किया जा रहा हो। नाटक में तीन ही पात्र थे। रविबाबू इन पात्रों के वार्तालाप को विभिन्न स्वरभंगिमा (इन्टोनेशन) में कह रहे थे जिससे पात्रों का पार्थक्य स्पष्ट झलक रहा था। अभिनेता तो वे स्वयं एकाकी ही थे, परन्तु उनके कथन का ढंग इतना विभिन्नतायुक्त वैचित्र्य-सम्पन्न था कि पात्रों का पार्थक्य समझने में श्रोताओं को किसी प्रकार का क्लेश उठाना नहीं पड़ता था। भाव के अनुसार उनका स्वर कभी आरोह में ऊपर चढ़ता था, तो कभी अवरोह में नीचे उतरता था, इतनी स्वाभाविकता तथा नाटकीयता से कि आँख मूँद लेने पर भी श्रोताओं के सामने पूरे नाटक का चित्र उपस्थित हो जाता था। नाटक को सुनकर श्रोता लोग मुग्ध हो गये। इस मण्डली में वाराणसी के उच्चकोटि के विद्वान् तथा साहित्यिक लोग उपस्थित होकर कविवर के मधुर अभिनय का रसास्वादन कर रहे थे।

नाटक की समाप्ति पर इन्हीं विज्ञजनों ने छात्रों को धीरे से परामर्श दिया कि रविबाबू से किसी स्व-रचित गीतिका के गायन के लिए आग्रह करो। फिर क्या था? छात्रों ने बड़ी नम्रता एवं विनय से गायन का प्रस्ताव रविबाबू के सामने रखा। पहले तो कविवर ने बड़ा हीलाहवाला किया कि मैं कवि हूँ, गायक नहीं हूँ। गीतों की रचना तो कर लेता हूँ, परन्तु गाने की लोच मेरे गले में नहीं है। परन्तु हम सब लड़के कब मानने लगे इनके कथन को। बड़ा आग्रह किया। कविवर पसीजे और बड़ी सुन्दर तथा मीठी वाणी में उन्होंने अपना वह सुप्रसिद्ध भारत-गीत सुनाया—

अयि भुवनमनोमोहिनी
अयि निर्मलसूर्यकरोज्वल धारिणी
जनक जननी जननी।
नीलसिन्धुजलधौत—चरणतल,
अनिल-विकम्पित श्यामल अंचल,
अम्बर चुम्बित भाल हिमाचल,
शुभ्र तुषार किरीटिनी॥

प्रथम प्रभात उदय तव गगने,
प्रथम सामरव तव तपोवने,
प्रथम प्रचारित तव वनभवने,
ज्ञान धर्म कत काव्यकाहिनी॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिर कल्याणमयी तुम धन्य,
देश विदेशे वितरिछ अन्न,
जान्हवी यमुना विगलित करुना,
पुण्य पियूष स्तन्यवाहिनी ॥

रविबाबू की सुरीली आवाज में गाये गये इस गीत से मानों अमृत बरसने लगा, सहृदय श्रोता उसका पान कर आनन्दविभोर हो गये। रविबाबू की कोमल कान्त पदावली तथा मञ्जुल मधुर वाणी की विपुल प्रशंसा करते हुए श्रोतागण अघाते नहीं थे। ऐसा था भव्य व्यक्तित्व कवीन्द्र रवीन्द्र का। कवि की मृदुल सहृदयता की छाप सदा सर्वदा के लिए मेरे हृदय पर अमिट रूपेण पड़ गई। वह छाप आज इतने सुदीर्घ काल के अनन्तर भी हृदय पर अंकित है, विराजमान है।

पण्डित विष्णु दिगम्बर की वह संगीत संध्या

सन् १९२० इस्वी की वह अविस्मरणीय सन्ध्या वेला। स्थान सेन्ट्रल हिन्दू कालेज के परिसर के दक्षिण भाग में विद्यमान 'किंग एडवर्ड होस्टल' का ऊपरी 'हाल'। भारतविश्रुत पण्डित विष्णु दिगम्बरजी का संगीतमय उपदेश सुनने के लिए कालेज के छात्र उपस्थित थे। पण्डितजी का व्यक्तित्व नितान्त आकर्षक था। लम्बे शरीर पर कषायरंग में रँगा हुआ एक झूल लटक रहा था। गले में तुलसी की माला विराजमान थी। दोनों हाथों में बजाने के लिए करताल शोभित हो रहे थे। भव्य ललाट के ऊपर चन्दन का तिलक चमक रहा था। पण्डितजी ने खड़े होकर और बीच-बीच में करतालों को बजाकर अपनी सुरीली आवाज में, तुलसीकृत रामायण की कथा कहना आरम्भ की। उत्तरकाण्ड के आरम्भ की कथा सुनाकर विष्णु दिगम्बरजी भरतजी के चरित्र का सुचारु चित्रण करने लगे। रामायण की कथा मैंने पहले भी सुनी थी और बाद में भी सुनता ही आता हूँ, परन्तु उस दिन की कथा में जो आनन्द आया, जो रस की धारा पण्डितजी ने अपने कोमल शब्दों के द्वारा प्रवाहित की उसकी तुलना कहाँ? वे प्रथम श्रेणी के प्रवीण शास्त्रीय गायक थे और साथ ही साथ उदात्त कोटि के साधक भी थे। संगीत एवं साधना के मञ्जुल सामरस्य के कारण इनकी कथा में जो अद्भुत चमत्कार उत्पन्न हुआ, जो लोकातीत आकर्षण छलक उठा, उसका फीका आभास भी शब्दों के माध्यम से देना असम्भव प्रतीत हो रहा है।

दिगम्बरजी तुलसीदासजी के दोहों और चौपाइयों को गाकर सुनाते थे, उनका रहस्य बतलाते थे और भरतजी के चरित्र की मीमांसा करते थे। उत्तरकाण्ड के आरम्भ में ही भरत तथा हनुमानजी के मिलने का सूचक यह प्रसिद्ध दोहा है—

राम प्रानप्रिय नाथ तुम्ह, सत्यवचन मम तात।
पुनि पुनि मिलत भरत सुनि, हरष न हृदयँ समात॥

दोहे का आशय स्पष्ट है। हनुमानजी भरतजी से कह रहे हैं—हे नाथ, तुम रामजी के प्राणों से भी प्रिय हो। हे तात, यह मेरा वचन सत्य है। इस वचन को सुनकर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भरतजी बारम्बार हनुमानजी से मिलते हैं। हर्ष उनके हृदय में समाता ही नहीं। इस दोहे के उत्तरार्ध को पण्डित दिगम्बरजी ने इतने सुन्दर ढंग से कहा कि श्रोता आनन्द से लोट-पोट हो गये। तृतीय चरण का उन्होंने बड़े द्रुत स्वर में इतनी शीघ्रता से पढ़ सुनाया कि मालूम पड़ता था कि भरतजी हनुमानजी के बारम्बार गले लग रहे हों। 'पुनि पुनि' की अनेक बार आवृत्तियाँ कीं। चतुर्थ चरण में, इसके विपरीत बात हुई। 'हरष न हृदय समात' के 'हरष' शब्द के अक्षर-अक्षर पर विलम्बित स्वर में विराम लेते गये–'ह–र–ष' अन्तिम पद 'समात' में वे अन्तिम अक्षर को सुदीर्घ काल तक विलम्बित स्वर में कहते गये (समाऽऽऽत) जिससे हरष की विपुलता की व्यञ्जना श्रोताओं के सामने स्वतः परिस्फुरित होने लगी।

पण्डित विष्णुदिगम्बरजी गायक-शिरोमणि थे। फलतः उनका साधारण गायन भी महत्ता से परिपूर्ण था। उनके इस गायन की स्मृति को लेखक अपने हृदय में एक बहुमूल्य निधि के रूप सँजाये हुए है। तथास्तु।

पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी से साक्षात्कार

पण्डित रामावतार शर्माजी के अनन्तर पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य पद पर बड़े सम्मान तथा सातिशय सत्कार के साथ नियुक्त किये गये, परन्तु उनका कार्यकाल इतना स्वल्प था कि महाविद्यालय को उनके गौरव-शाली वैदुष्य से समुचित लाभ उठाने का सुयोग प्राप्त नहीं हो सका। १९२३ ईस्वी में महाविद्यालय के प्राचार्य होने से पूर्व ही, उनके वैदुष्य की आभा उत्तर भारत में, विशेष कर राजस्थान में, फैल चुकी थी। उनके प्रतिष्ठा प्राप्त करने की गाथा बड़ी ही रोचक है।

उनका जन्म आजकल के हिमाचल प्रदेश के सांस्कृतिक दृष्टि से नितान्त प्रख्यात नगर 'गुलेर' में हुआ था और इसी लिए वे अपने नाम के साथ अपने आभिजात्य-सूचक 'गुलेरी' शब्द का सदा प्रयोग करते थे। पर्वतीय सारस्वत ब्राह्मण परिवार में लब्धजन्मा उनके पूज्य पिता पण्डित शिवरामजी गुलेरी काँगड़ा प्रान्तीय 'गुलेर' ग्राम के राजपुरोहित थे। उनका अध्ययन काशी में सम्पन्न हुआ था।

इनका जन्म सन् १८८३ ई० (१९४० वि० सं०) में हुआ था। नौ दस वर्ष के वय में ये प्रयाग विश्वविद्यालय की एन्ट्रेंस परीक्षा में सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुए। सन् १९०२ ई० में, १६ वर्ष के वय में ही मानमन्दिर के जीर्णोद्धार के कार्य में दो विदेशी विशेषज्ञों को सहायता प्रदान की। 'सम्राट् सिद्धान्त' जैसे ज्योतिष ग्रन्थ का अनुवाद किया तथा 'जयपुर की वेधशाला तथा उसके निर्माता' नामक अंग्रेजी ग्रन्थ का एक विशेषज्ञ के साथ प्रणयन किया। सन् १९०३ ई० में प्रयाग विश्वविद्यालय की बी० ए० परीक्षा मे सर्वप्रथम पास हुए। सन् १९०४ ई० मे जयपुर दरबार के आदेश पर खेतड़ी के राजा जयसिंह के अभिभावक तथा शिक्षक होकर इन्हें 'मेयो कालेज' अजमेर जाना पड़ा। भाषाविज्ञान, साहित्य, दर्शन तथा प्राचीन भारतीय इतिहास का गम्भीर अध्ययन किया और भारत के धुरीणों में मान्य हुए। १९२० ई० में महामना ने इन्हें

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वविद्यालय में 'भारतीय इतिहास' विभाग का अध्यक्ष तथा संस्कृत महाविद्यालय के प्रधान के पद पर प्रतिष्ठित किया। सन् १९२२ ई० में केवल ३९ साल की अल्प आयु में ही ये दिवंगत हो गये। जयपुर से प्रकाशित होने 'समालोचक' पत्र का तथा काशी की 'नागरी प्रचारणी पत्रिका' का कई वर्षों तक इन्होंने सम्पादन का कार्य किया। ये प्राचीन भारतीय इतिहास के मर्मज्ञ माने जाते थे। संस्कृत साहित्य, पुरातत्त्व और प्राचीन भारतीय इतिहास के ये परिनिष्ठित तथा लब्धकीर्ति विद्वान् थे। संस्कृत में बड़ी ही अभिराम तथा आवर्जक पद्य-रचना करने में गुलेरीजी बड़े अभ्यस्त थे। जयपुर से प्रकाशित 'संस्कृत रत्नाकर' के आरम्भिक वर्षों में आपको ललित पद्यावली के मनोरम दर्शन होते हैं। एक-दो ही पद्य नमूने के तौर पर यहाँ दिये जाते हैं —

लार्ड हार्डिज के बम दुर्घटना से बाल-बाल बचने तथा आरोग्य लाभ करने के अवसर पर आपने यह पद्य सुनाया था —

उज्झितगदशयनफणस्तीर्णायूदधिः सकान्तिरमणीकः।
विधिनियम-सभाद्युमणिर्दिष्टद्याद्य चकास्ति हार्डिजः॥

'पञ्चनदस्तवः' नामक पद्यसंग्रह में गुलेरीजी पंजाब के प्राचीन कालीन दिव्य गौरव की गाथा का वर्णन बड़े ही मार्मिक पद्यों में किया है। एक उदाहरण देखिये—

तत्र स्रोतस्विनी पुण्या या वसिष्ठं व्यपाशत
यदैश्वर्येर्ष्यया ज्येष्ठा सपत्नी शतधाऽद्रवत्॥
भूदेवदुर्लभा रम्या तामुदग् भाति पार्वती
कूपान् सुधोदकान् यत्स्थान् चिरं सस्मार पाणिनिः॥

इन पद्यों में क्रमशः निरुक्त ९।२६ तथा अष्टाध्यायी ४।१।७४ की ओर गुलेरीजी ने मार्मिकता के साथ संकेत किया है।

हिन्दी कहानी साहित्य के इतिहास में तो उनका नाम 'उसने कहा था' नामक प्रख्यात कहानी के कारण अमर हो गया है। शोधपूर्ण ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक सैकड़ों लेखों तथा निबन्धों का निर्माण कर गुलेरी ने एक नवीन शैली की छटा दिखलाई है। प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं के भी ये अद्वितीय विद्वान् थे। इनके भाषा-शास्त्रीय लेख का कमनीय संग्रह 'पुरानी हिन्दी' के नाम से प्रकाशित है (नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा) जो अपने विषय का नितान्त ज्ञानवर्धक तथा प्रमेयबहुल ग्रन्थ है। ऐसे विद्वान् के अकाल में ही काल-कवलित हो जाने से संस्कृत तथा हिन्दी, प्राकृत तथा अपभ्रंश, पुरातत्त्व तथा प्राचीन इतिहास की अपूरणीय क्षति हुई।

सन् १९२१–२२ में काशी में इनके सम्पर्क में आने का सुयोग लेखक को प्राप्त हुआ था। इनका व्यक्तित्व बड़ा ही गम्भीर तथा आकर्षक था। स्वच्छ धोती, लम्बा अंगरखा, माथे पर राजस्थानी लाल पगड़ी, ललाट पर त्रिपुण्ड्र, गले में बड़े-बड़े रुद्राक्षों की माला पण्डित चन्द्रधर शर्माजी की यह अभिराम वेषभूषा इनके ब्राह्मणत्व,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन आदर्शानुगामित्व तथा अगाध शैवनिष्ठा की सद्यः अभिव्यञ्जिका थी। ये बड़े निर्भीक थे। किसी की कटु आलोचना से ये अपने निर्दिष्ट मार्ग से तनिक भी नहीं डिगते थे। पण्डित अम्बिकाप्रसाद उपाध्यायजी ने (जो संस्कृत महाविद्यालय में व्याकरण के अध्यापक थे) उनसे एक बार पूछा था कि बड़े रुद्राक्षों की माला आप अपने अचकन के ऊपर क्यों पहनते हैं? अनेक लोग इस पर आक्षेप करते हैं। तब गुलेरीजी ने तुरन्त उत्तर दिया था—उपाध्यायजी, मैं किसी की कड़वी आलोचना को सहने के लिए तैयार हूँ। धर्म का चिह्न क्या कोई छिपाने की वस्तु है कि उसे कपड़े के भीतर छिपा कर रखा जाय। रुद्राक्षमाला भगवान् भूत-भावन को प्रिय है। इसे देखने वाला भी पुण्य का भाजन होगा, पहनने वाला तो होता ही है।

ऐसी थी इनकी भावना। हिन्दी में इनके निबन्ध इनकी धार्मिक उदारता तथा विशाल दृष्टि के सद्यः परिचायक हैं। इनके शोध-निबन्ध आज भी उपादेय तथा तथ्यपूर्ण हैं। ऐसे सुयोग्य, धर्मनिष्ठ, विद्वान् का अकाल में ही तिरोधान नितान्त शोचनीय हैं।

अध्यापकों की अध्यापन शैली : एक विवेचन

मुझे संस्कृत के बड़े ही धुरन्धर तथा अलौकिक प्रतिभा से सम्पन्न तीन दिग्गज विद्वानों से पढ़ने का तथा उनके गम्भीर व्याख्यानों को मनोयोग से सुनने-समझने का सुयोग प्राप्त हुआ है। अतएव मैं अपने वैयक्तिक अनुभव के आधार पर उनकी अध्यापन शैली की विशिष्टता का निरूपण संक्षेप में यहाँ करना चाहूँगा। ये तीनों ही कुछ समय तक एक साथ काशी में निवास करते थे तथा हिन्दू विश्वविद्यालय से सम्बद्ध थे। ये तीनों थे—(१) म० म० पण्डित रामावतार शर्मा, (२) आचार्य आनन्दशंकर ध्रुव तथा (३) म० म० पण्डित गोपीनाथ कविराज। इन तीनों की संस्कृत वैदुषी अनेक दृष्टियों से विभिन्न एवं विलक्षण थी। अध्ययन शैली की विभिन्नता के कारण इनकी अध्यापन-शैली में विभेद होना अनिवार्य था।

इन तीनों विद्वानों में पण्डित रामावतारजी विलक्षण प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे—उस प्रतिभा के, जिसके विषय में शास्त्र का विश्रुत वचन है—

"प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता"

जो नव-नव उन्मेष रखनेवाली प्रज्ञा की ही अपर संज्ञा है। नया से नया भी ग्रन्थ क्यों न हो? वे उसका अध्यापन पूर्व-चिन्तन तथा मनन के बिना ही किया करते थे। 'व्यक्ति-विवेक' का उस समय १९२० ई० के आस-पास अनन्तशयन ग्रन्थावली में प्रथम बार प्रकाशन हुआ था। पटियाला के निवासी साहित्यिक माधवशास्त्री नामक एक सुयोग्य छात्र को पण्डितजी समयाभाव के कारण प्रातःकाल टहलने के समय ही पढ़ाते थे। काश्मीर के मर्मज्ञ साहित्य-वेत्ता महिमभट्ट ने इस दुरूह ग्रन्थ में ध्वन्यालोक के तथ्यों का बड़ी नृशंसता से खण्डन किया है। रामावतारजी ध्वन्यालोक के सिद्धान्त को प्रथमतः बतला कर 'व्यक्तिविवेक' की आलोचना को समझाते थे। इतना ही नहीं, महिमभट्ट के कथन का वे स्वयं खण्डन कर आनन्दवर्धन के ध्वनि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धान्त का मण्डन भी करते जाते थे। इसी प्रकार उन्होंने पूरे ग्रन्थ का गम्भीर अध्यापन इसी शैली से किया। खण्डनात्मक प्राचीन ग्रन्थ पूर्वचिन्तन-मनन की अपेक्षा रखता था, परन्तु शर्माजी को इसकी आवश्यकता ही नहीं थी। एक बार सुनते ही समग्र खण्डन-प्रक्रिया सामने खड़ी हो जाती थी। हम लोगों को ऋग्वेद का अध्यापन भी इसी शैली में करते थे। पूरा मन्त्र छात्रों से सुन कर उसका प्रथमतः सारांश बताना, तदनन्तर एक-एक शब्द को लेकर उसके अर्थ की विवेचना करना उनकी शैली की विशिष्टता थी। तदनन्तर सायण के भाष्य को सुन कर जो उनकी अरुचि होती थी उसे भी वे बतलाते थे। फलतः शास्त्र के अन्तराल में पैठने की उनकी सूझ इतनी अपूर्व थी कि अपनी विशदता तथा उर्वरता के कारण वह छात्रों के हृदय में सद्यः प्रवेश कर जाती थी। जिस ग्रन्थ के सिद्धान्त पर उनकी आस्था थी, तथा तर्क-वितर्क की कसौटी पर कसने पर जो प्रामाणिक उतरता था, उसे ही वे पढ़ाते थे, अन्य को नहीं। तभी तो प्रिन्सिपल ध्रुवजी द्वारा श्रीभाष्य को पढ़ाने के आग्रह करने पर भी उन्होंने उसे कभी नहीं पढ़ाया, क्योंकि उनकी दृष्टि में उसके सिद्धान्त तर्कसंगत प्रतीत नहीं होते थे। शारीरक भाष्य को ही वे एम० ए० की कक्षा में पढ़ाते थे। ग्रन्थों की आनुपूर्वी उनको जिह्वा पर जो नाचती थी।

आचार्य ध्रुवजी की अध्यापन शैली इससे विभिन्न ही थी। वे आधुनिक पाश्चात्य शैली से शिक्षित विद्वान् के समान उस तथ्य के विषय में विद्वानों की टीका-टिप्पणी को प्रथमतः बतलाते थे। तदनन्तर उसकी आलोचना कर विरुद्ध अंश को त्याज्य बतला कर अपना व्यक्तिगत मत प्रकट करते थे। बी० ए० में शतपथ ब्राह्मण का 'मनोरवसर्पण' वाला अंश पाठ्यक्रम में था जिसे पढ़ाते समय ध्रुवजी पाश्चात्य वैदिक विद्वानों की व्याख्या का प्रथमतः उल्लेख करते, अनन्तर उसकी आलोचना करते और अन्त में अपना निसृष्टार्थ बतलाते थे। वे तुलनात्मक शैली के पुरस्कर्ता थे सब विषयों के अध्यापन में। साहित्य शास्त्र का अध्यापन तब तक पूरा नहीं होता था, जब तक 'वर्सफोर्ड' का 'प्रिन्सिपुल्स आफ क्रिटिसिजम' तथा अरस्तू का 'पोइटिक्स' में व्याख्यात तत्तत् सिद्धान्तों का परिचय तथा तुलना वे कक्षा में पूरी तरह बता नहीं देते थे। पाश्चात्यों के 'ड्रेमेटिक लाइन्स' का दशरूपक की 'पञ्चसन्धि' के साथ बिना तुलना किये उनका अध्यापन पूर्ण नहीं होता था। फलतः उनके द्वारा व्याख्यात 'काव्यप्रकाश' का काव्यलक्षण एक सीमित पौरस्त्य सिद्धान्त न होकर एक विश्वजनीन सिद्धान्त के रूप में उभर आता था। क्यों न हो ? वे गम्भीर 'तुलनात्मक आलोचना' के एक प्रवीण पारखी मनस्वी जो थे।

पण्डित-प्रवर गोपीनाथजी की अध्यापन शैली अपने में विलक्षणता लिए हुए थी। धर्म तथा दर्शन का वे पृथक्-पृथक् अध्यापन नहीं करते थे। धर्म व्यवहार-पक्ष को अग्रसर करता है, तो दर्शन सिद्धान्त-पक्ष की आलोचना का पक्षपाती होता है। ऐसी मान्यता रखने वाले कविराजजी, शास्त्र के अन्तस्तल में प्रवेश करने की अद्भुत क्षमता रखते थे। 'तुलनात्मक धर्मविज्ञान' के पुरस्कर्ता विद्वानों में वे अग्रगण्य थ। विश्व के धार्मिक सम्प्रदायों को वे असंपृक्त, बन्द कमरों में विभक्त होकर पृथक् सत्ताशील

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वीकार नहीं करते थे। प्रत्युत एक ही महत्तम धर्मकल्पतरु की उन्हें विभिन्न शाखाएँ एवं टहनियाँ मानते थे। फलतः किसी धार्मिक तत्त्व की विवेचना में समग्र सम्प्रदायों के दृष्टिकोण को सामने रखकर वे व्याख्या करते थे। 'तन्त्र' धर्म-कल्पद्रुम का सारतम भाग उपस्थित करता है। वे इस तन्त्र के माने-जाने मर्मज्ञ विद्वान थे। उनके व्याख्यान देने की शैली तुलनात्मक तथा सरल सुबोध थी। उसे सुनकर दुरूह तथ्यों की अवगति अनायासेन हो जाती थी। परन्तु उनका उसी विषय का प्रतिपादक लेख बड़ा ही ठोस, कसावदार तथा नितान्त तथ्य-संवलित होता था जिसे समझने के लिए पुनः पुनः मनन की अपेक्षा होती थी। कहा जा सकता है कि कविराजजी का लेख सूत्रशैली में निबद्ध होने से दुरूह हो जाता था, परन्तु उनका व्याख्यान भाष्य-शैली में होने से बड़ा ही आकर्षक एवं रोचक होने से लौकिक दृष्टान्तों के सहारे सद्यः हृदय में प्रवेश कर जाता था। कविराजजी किसी भी ग्रन्थ का पंक्तिशः अध्यापन नहीं कर सकते थे। सिद्धान्त के प्रतिपादन के प्रति अत्यधिक आग्रह होने से वे किसी ग्रन्थपंक्ति के भीतर अपने को बाँध नहीं सकते थे।

मेरी दृष्टि में ये तीनों ही दिग्गज विद्वान् अपनी-अपनी दिशा में अलौकिक थे। दुरूह विषय को सुबोध बनाने में इन तीनों का वैदुष्य अप्रतिम था।

अध्यापन कार्य

मैं १९२२ ई० के अप्रैल मास में एम० ए० (संस्कृत साहित्य) में प्रथम श्रेणी में प्रथम उत्तीर्ण हुआ और केवल तीन महीनों के भीतर ही २७ जुलाई १९२२ को संस्कृत विभाग में रिक्त प्रवक्ता पद पर मेरी नियुक्ति हो गई। तब से लेकर १९६० ई० के ३१ मार्च तक सुदीर्घ ३८ वर्षों तक मैंने अध्यापन कार्य इसी विभाग में क्रमशः प्रवक्ता, रीडर तथा अध्यक्ष (अस्थायी के पदों पर किया। पटना विश्वविद्यालय के विभागाध्यक्ष के पद पर आचार्य ध्रुवजी मुझे सरकारी आदेश पर साग्रह भेज रहे थे, परन्तु काशी विश्वविद्यालय से नैसर्गिक स्नेह तथा आन्तरिक लगाव होने के कारण मैंने वह पद स्वीकार नहीं किया और अपने ही पद पर बना रहा। सेवा-निर्मुक्त होने पर पाँच वर्षों के लिए स्थानीय वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय की मैंने सेवा की—प्रारम्भिक दो वर्षों तक इतिहास-पुराण विभाग के अध्यक्ष पद पर तथा तदनन्तर तीन वर्षों तक अनुसन्धान विभाग के संचालक पद पर। संस्कृत विश्वविद्यालय में मुझ जैसे एकांगी व्यक्ति की नियुक्ति का श्रेय विश्वविद्यालय के कुलपति पण्डित सुरतिनारायण मणि त्रिपाठीजी को है जिन्हें व्यक्तियों के गुण-दोष को आँकने की अद्भुत क्षमता थी और जो विश्वविद्यालय के हित को किसी वैयक्तिक हित की अपेक्षा अधिक महनीय एवं माननीय मानने के लिए यथार्थतः विख्यात थे। इस प्रकार मैंने ४३ तैंतालीस वर्षों की एक लम्बी अवधि के कालखण्ड को संस्कृत साहित्य के विभिन्न शास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन में बड़े मनोयोग तथा लगन के साथ अपने मन को लगाया तथा भगवती शारदा के विशाल मन्दिर के किसी कोने में स्थित अज्ञानान्धकार को दूर कर किञ्चित् प्रकाशित करने का आत्मसन्तोष प्राप्त किया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपाध्याय साहित्य

मेरी रचनाएँ

लिखने की ओर मुझे प्रवृत्त करने का श्रेय पण्डित रामावतार शर्माजी को है। अन्य गुरुओं की अपेक्षा उनका सान्निध्य मुझे अधिक प्राप्त हुआ। शर्माजी की जिह्वा पर प्राचीन कवियों के स्फुट कमनीय पद्य ही नहीं, प्रत्युत उनके काव्यों के सर्ग के सर्ग आनुपूर्वीरूप से विराजमान रहते थे। फलतः संस्कृत की रसमयी सूक्तियों को सुनाकर एवं लिखाकर वे अपने छात्रों के हृदय में साहित्य सौन्दर्य के परखने की क्षमता उत्पन्न करते, साहित्य के प्रति अकृत्रिम आकर्षण की तीव्रता पैदा करते तथा सुकवियों का जीवनवृत्त बतलाकर ऐतिहासिक अभिरुचि की अभिरामता के कारण बनते। उनकी ही अनुकम्पा से मुझे संस्कृत के ललित साहित्य पढ़ने तथा कविजनों के ऐतिहासिक विवरण जानने की स्वतः प्रवृत्ति अपने अध्यापन काल के प्रभात में ही जाग उठी। फलतः उस प्रवृत्ति के फलस्वरूप मैंने दो ग्रन्थों की रचना की। **'सुक्तिमुक्तावली'** (१९३२ ईस्वी) में संस्कृत कवियों के उद्भट पद्यों का श्लाघनीय संग्रह ही नहीं है, प्रत्युत उनका नितान्त चोजभरी हिन्दी में चटकदार अनुवाद भी है। इसका परिवर्धित नूतन संस्करण 'सूक्तिमञ्जरी' के नाम से चौखम्भा विद्याभवन ने प्रकाशित किया है (१९७० ई०)। **संस्कृत-कविचर्चा** उसी आरम्भिक काल की मेरी समीक्षात्मक रचना है जिसमें संस्कृत साहित्य के विश्रुत महाकवियों की जीवनी, ग्रन्थ तथा उनकी कविता की सोदाहरण समीक्षा प्रस्तुत की गई हैं। इस अप्राप्य ग्रन्थ का परिवर्धित संस्करण इधर **'संस्कृत-सुकविसमीक्षा'** के नाम से प्रकाशित हुआ है (चौखम्भा विद्याभवन १९७८)। 'संस्कृत कविचर्चा' हिन्दी में इस विषय की प्रथम प्रामाणिक रचना होने के कारण इसका अनुवाद नेपाली भाषा में लेखक की अनुमति के बिना ही अनेक संस्करणों में प्रकाशित होता रहा है।

सम्पादित संस्कृत ग्रंथ

१. १९२६ वररुचि—प्राकृतप्रकाश	(वसन्तराजकृत सञ्जीवनी, सदानन्द कृत सुबोधिनी के साथ सम्पादित) द्वितीय संस्करण १९७५ सरस्वती भवन सीरीज, वाराणसी।
२. १९२८ भामह—काव्यालंकार	चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।
३. १९३१ हर्ष—नागानन्द	चौखम्भा, संस्कृत सीरीज वाराणसी।
४. १९३२ भरत—नाट्यशास्त्र	चौखम्भा, द्वितीय सं० १९८०
५. १९४० सायण—वेदभाष्य-भूमिका-संग्रह	चौखम्भा, द्वितीय सं० १९८०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६.	१९४३ माधवाचार्य--शंकर दिग्विजय	श्रवणनाथ ज्ञानमन्दिर हरिद्वार, तृतीय संस्करण १९७५
७.	१९६७ भक्तिचन्द्रिका—शाण्डिल्य भक्तिसूत्र की नारायण तीर्थ रचित व्याख्या	संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी
८.	अग्निपुराणम्	चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वारणसी।
९.	कालिकापुराणम्	चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।

संस्कृत विश्वविद्यालय के अनुसन्धान संस्थान के निर्देशक के रूप में सम्पादित तथा भूमिका-प्रस्तावना से संवलित संस्कृत ग्रन्थों का नाम नीचे दिया जाता है। इनका सम्पादन विभिन्न विद्वानों ने किया है, परन्तु इनका विशिष्ट निरीक्षण एवं नियोजन आचार्य उपाध्याय के द्वारा किया गया है जिन्होंने प्रत्येक ग्रन्थ की महत्त्वसूचक ऐतिहासिक प्रस्तावना संस्कृत में निबद्ध की है।

भगवद्गीता भाष्य--भट्टभास्कर रचित १९६५

प्रक्रियाकौमुदी विमर्शः—आद्याप्रसाद मिश्र रचित, १९६७

भारतस्य सांस्कृतिको विजयः—मूल हिन्दी लेखक हरिदत्त वेदालङ्कार, संस्कृतानुवादक कालिकाप्रसाद शुक्ल, १९६७

भक्तिरत्नावली—विष्णुपुरी रचित सटीक, १९६८

बृहत् संहिता—वराहमिहिर रचित द्वितीय सं०, १९६८

वाक्यपदीय—भर्तृहरिकृत (टीका पं० रघुनाथ शर्मा कृत) द्वितीय भाग, १९६८

हयत ग्रन्थः (अरबीय सिद्धान्त ज्योतिष) सुखानन्द उपाध्याय रचित, १९६७

पारसीक प्रकाशः (फारसी का संस्कृत में व्याकरण) बिहारी कृष्णदास रचित, १९६५

अभिधम्मत्थ संग्रहो (पालि में बौद्धदर्शन) 'अभिधर्म प्रकाशिनी' व्याख्या तथा बृहत् टीका भाष्य सहित। दो भाग, १९६७

नित्याषोडशिकार्णवः (दो प्राचीन टीकाओं से युक्त) (योगतन्त्र ग्रन्थमाला संख्या १) १९६८ ई०

सम्पादित ग्रन्थों का परिचय

संस्कृत ग्रन्थों के विमर्शात्मक संस्करण निकालने के प्रति मेरी अभिरुचि आरम्भ से रही है। इसके लिए मुझे अपने अग्रजतुल्य वरिष्ठ साहित्यिक साहित्याचार्य **पण्डित बटुकनाथ शर्मा** का सहयोग प्राप्त होता रहा। आरम्भिक तीनों ग्रन्थों का संस्करण मेरे तथा शर्माजी के संयुक्त सम्पादकत्व में प्रकाशित हैं। वे हैं—भामह काव्यालंकार (१९२८), वररुचि प्राकृत-प्रकाश (१९२६) तथा भरतनाट्यशास्त्र (१९३२ ई०)। इन ग्रन्थों के संस्करणों की उस युग के प्रख्यात समीक्षकों ने शोध पत्रिकाओं में बड़ी प्रशंसा तथा निर्दिष्ट आविर्भावकाल को प्रमाणित माना। 'काव्यालंकार' की विस्तृत अंग्रेजी भूमिका में भामह के आविर्भावकाल का जो गम्भीर निर्णय किया गया है

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका औचित्य तथा प्रामाण्य डा० नोवेल (मारबुर्ग विश्वविद्यालय के जर्मन संस्कृतज्ञ) तथा डा० तुची (रोम विश्वविद्यालय के इतालियन संस्कृतज्ञ) ने स्वीकार किया है (द्रष्टव्य इंडियन ऐन्टिक्वेरी, १९३०)। प्राकृतप्रकाश का संस्करण संजीवनी एवं सुबोधिनी नामक प्राचीन टीकाओं से संवलित है। **'संजीवनी'** 'इंडिया आफिस लाइब्रेरी' (लण्डन) के एकमात्र दुर्लभ हस्तलेख के आधार पर है जिसकी विलक्षण लेख-पद्धति ने डा० ग्रियर्सन तथा प्रो० कावेल जैसे आङ्ग्ल संस्कृतज्ञों के दीर्घ प्रयत्नों को असफल कर दिया था। दैवयोग से मुझे इस टीका के प्रथम परिच्छेद की एक सुबोध प्रति 'सरस्वती भवन' में उपलब्ध हुई जिसके आधार पर उस विचित्र लिपि का रहस्य समझ में आया और पूरे ग्रन्थ का विमर्शात्मक संस्करण प्रस्तुत किया गया। इसका नूतन संस्करण संस्कृत विश्वविद्यालय से चार टीकाओं, हिन्दी अनुवाद, भाषाशास्त्रीय टिप्पणी तथा साधनिका से मण्डित होकर प्रकाशित किया गया है। **नाट्य शास्त्र** का हस्तलेख बड़ा ही प्रामाणिक तथा विशुद्ध था। फलतः हमलोगों का यह संस्करण काव्यमाला एवं गायकवाड संस्कृत सीरीज से (बडौदा में प्रकाशित संस्करणों से अनेक अंशों में विभिन्न तथा विलक्षण माना गया है। अनेक दशकों तक अप्राप्य रहने के अनन्तर अभी हाल में ही इसका नूतन संस्करण प्रकाशित हुआ है। इन तीन ग्रन्थों के संस्करण निकालने के बाद पण्डित बटुकनाथ शर्माजी का निधन हो गया। फलतः निम्नलिखित मान्य संस्कृत ग्रन्थों का संस्करण मैंने अपने ही प्रयास से प्रकाशित किया :—

(४) **श्रीहर्ष : नागानन्द**—नवीन संस्कृत टीका तथा हिन्दी अनुवाद के साथ, १९३१ ई०।

(५) **सायण : वेदभाष्य भूमिका संग्रह**—सायणाचार्य के अपने वेदभाष्यों के आरम्भ में जो महनीय वैदिक-तथ्य-संवलित भूमिकाएँ निबद्ध की हैं, उन्हीं का एकत्र संग्रह है। आरम्भ में सायण की जीवनी, ग्रन्थ तथा महत्त्व के विषय में गम्भीर विवेचन संस्कृत तथा अंग्रेजी दोनों भाषाओं में है (१९४०)।

(६) **माधवाचार्य : शंकर-दिग्विजय**—ऐतिहासिक भूमिका, विस्तृत दार्शनिक टिप्पण, तथा हिन्दी अनुवाद के साथ श्रावणनाथ ज्ञानमन्दिर हरिद्वार द्वारा प्रकाशित. १९४३।

(७) **नारायण तीर्थ : भक्तिचन्द्रिका**—शाण्डिल्य भक्तिसूत्र की यह प्रमेयबहुला व्याख्या काशी के प्रख्यात संन्यासी नारायणतीर्थ की बहुमूल्य रचना है जिसमें भक्ति-शास्त्र के सम्बन्ध में वैष्णव सम्प्रदायों के सिद्धान्त, भक्ति का वैदिक उद्गम आदि विषयों का विस्तारशः वर्णन है (रचनाकाल १८वीं शती का आरम्भ काल)। ग्रन्थ की प्रस्तावना में मैंने धर्म की महत्ता, वैदिक धर्म के स्वरूप तथा अखिल मतों की उपजीव्यता, भक्ति का वैदिक संहिता में उद्गम, व्याख्या की महत्ता आदि का विस्तृत विवेचन संस्कृत भूमिका में किया है। भक्तितत्त्व विवरण, त्रिविध भक्ति विवरण, 'नारद भक्तिसूत्र' तथा भक्तिमीमांसा' नामक प्राचीन भक्तिसूत्रों को सम्मिलित कर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वप्नेश्वर की प्राचीन व्याख्या से यह संवलित कर दिया गया है (संस्कृत विश्वविद्यालय से प्रकाशित, १९६७ ई०, वाराणसी)। फलतः यह ग्रन्थ भक्तिशास्त्र का सांगोपांग विवेचक तथा भक्तिशास्त्रीय प्रमेयों का महनीय विमर्शात्मक अपूर्व ग्रन्थ है।

(८) **अग्नि पुराण**—चौखम्भा से प्रकाशित। आरम्भ में विस्तृत विवेचनात्मक भूमिका से समन्वित, जिसमें पुराणस्थ विषयों का विस्तृत अन्वेषण किया गया है।

(९) **कालिका पुराण**—भगवती कालिका के स्वरूप तथा तत्सम्बन्धी तान्त्रिक उपासना का यह पुराण विधिवत् वर्णन करता है। आरम्भ में तन्त्रशास्त्रीय प्रमेयों तथा अनुष्ठान विधिविधानों का सुचारु वर्णनपरक विस्तृत प्रस्तावना से मैंने इसे मण्डित किया है। उपपुराण होने पर भी महत्त्व की दृष्टि में यह किसी देवी महापुराण से न्यून नहीं है।

हिन्दीग्रन्थ सूची

ईस्वी	पुस्तक नाम	प्रकाशक
१९२८	रसिक गोविन्द और उनकी कविता	हिन्दी प्रचारणी सभा, बलिया
१९३२	सुक्ति मुक्तावली	हरिदास, मथुरा
१९३२	संस्कृत कविचर्चा	मास्टर खेलाड़ीलाल, काशी
१९३४	संस्कृत साहित्य का इतिहास	शारदा मन्दिर, काशी
१९४२	भारतीय दर्शन	शारदा मन्दिर, काशी
१९४६	आचार्य सायण और माधव	हिन्दी साहित्य संमेलन प्रयाग
	बौद्धदर्शन	शारदा मन्दिर, काशी
१९४७	धर्म और दर्शन	शारदा मन्दिर, काशी
	आर्य संस्कृति के मूलाधार	शारदा मन्दिर, काशी
१९४८	भारतीय साहित्य शास्त्र, द्वितीय खण्ड	प्रसाद परिषद्, काशी
१९४९	भारतीय साहित्य शास्त्र प्रथम खण्ड	प्रसाद परिषद्, काशी
१९५०	आचार्य शंकर	हिन्दुस्तानी एकेडमी प्रयाग
१९५४	भागवत सम्प्रदाय	नागरी प्रचारणी सभा, काशी
	वैदिक साहित्य और संस्कृति	शारदा संस्थान, वाराणसी
१९६५	पुराण विमर्श	चौखम्भा विद्याभवन, काशी
१९६९	संस्कृत शास्त्रों का इतिहास	शारदा मन्दिर काशी
	संस्कृत वाङ्मय	शारदा मन्दिर काशी
	वैदिक कहानियाँ	शारदा मन्दिर काशी
१९७०	भारतीय दर्शन सार	सस्ता साहित्य मंडल दिल्ली
	भारतीय वाङ्मय में श्री राधा	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना
	सूक्ति मंजरी	चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी
१९७७	संस्कृत आलोचना	हिन्दी समिति, लखनऊ
	संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	शारदा संस्थान, काशी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७८	बौद्धदर्शन मीमांस"	चौखम्भा पुस्तकालय वाराणसी
	भारतीय धर्म और दर्शन	चौखम्भा ओरियनटालिया काशी
	ज्ञान की गरिमा	सस्ता साहित्य मंडल दिल्ली
१९७९	भारतीय दर्शन की रूपरेखा	चौखम्भा विश्वभारती, वाराणसी
	काव्यानुशीलन	त्रिपोलिया बाजार जयपुर
१९८०	वैष्णव संम्प्रदायों का साहित्य और सिद्धान्त	चौखम्भा अमर भारती, काशी
१९८२	काशी की पाण्डित्य-परम्परा	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

भारतीयदर्शन तथा तन्त्र के अलौकिक मर्मज्ञ विद्वान् पण्डित गोपीनाथ कविराजजी के गाढ़ सम्पर्क तथा सन्निध्य में आने से दर्शन शास्त्र के अध्ययन की ओर मेरी रुचि बढ़ी तथा मैंने भिन्न-भिन्न दर्शनों के मूल सिद्धान्तपरक ग्रन्थों का अध्ययन किया। आज से चालीस वर्ष पूर्व हिन्दी में ऐसा कोई सुबोध ग्रन्थ नहीं था जिसकी सहायता से जिज्ञासु जन तथा विद्यालयीय छात्र दर्शन के गम्भीर तथ्यों को सुबोध भाषा में समझ-कर अपने ज्ञान की वृद्धि करता। इसी त्रुटि को दूर करने के लिए मैंने सहज-सुबोध शैली में, दुरूह शास्त्रीय भाषा का वर्जन कर. सरल हिन्दी में ग्रन्थ लिखने का प्रयास किया। **भारतीय दर्शन** उसी प्रयास की चरम परिणति है। कविराजजी का परामर्श मुझे सुलभ था। ग्रन्थ को स्थान-स्थान पर उन्होंने अपनी लेखनी से शुद्ध किया जिसको मैं उनका अत्यन्त आभार मानता हूँ। तन्त्र शास्त्र के सिद्धान्तों का विवेचन उन्हीं के परा-मर्श का परिणाम है। फलतः प्रकाशन के वर्ष में यह अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन (प्रयाग) के द्वारा 'मंगलाप्रसाद पुरस्कार' के द्वारा सत्कृत तथा सम्मानित किया गया और हिन्दी जगत् ने इस भारतीय दर्शन को एक स्वर से हिन्दी दर्शन-साहित्य का शिरोमणि तथा 'पृथिकृत्' ग्रन्थ माना जिसने अन्य लेखकों के लिए तत्त्वज्ञान के विषय में लिखने के मार्ग को प्रशस्त कर दिया। इस ग्रन्थ के प्रणयन से मुझे अपनी लेखनी के ऊपर दृढ़ विश्वास जमा और अपने लेख की प्रमविष्णुता पर आत्मविश्वास जग गया। इस रचना को अखिल भारतीय कीर्ति प्राप्त हुई। इसका अनुवाद उड़िया, तेलुगु तथा कन्नड़ (मैसूर विश्वविद्यालय द्वारा) में किया गया तथा उन भाषाओं के विद्वानों ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। आज यह अपने नवम संस्करण के द्वारा जिज्ञासुओं की सेवा कर रहा है।

दर्शनविषयक ग्रन्थों के प्रणयन में मैंने 'नामूलं लिख्यते किञ्चित् नानपेक्षितमुच्यते' मल्लिनाथी पद्धति का यथाशक्ति अनुसरण करने का प्रयत्न किया है। मूल ग्रन्थ के गम्भीर अनुशीलन के आधार पर निर्मित इन महनीय ग्रन्थों में विषय के मौलिक उपन्यास पर विशेष आग्रह किया गया है। साहित्य, सिद्धान्त एवं समीक्षा को दृष्टि में रख कर प्रत्येक दर्शन के साहित्य का तदनन्तर उसके सिद्धान्तों का तथा उन सिद्धान्तों की अद्वैत दृष्टि से की गई समीक्षा का, सुव्यवस्थित रूप से प्रतिपादन किया गया है। भाषा के बोधगम्य तथा शैली के आकर्षक होने से इन ग्रन्थों का अध्ययन करना कभी भी भारभूत प्रतीत नहीं होता। भारतीय दर्शन की इसी शैली का यथावत् अनुसरण मैंने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्धदर्शन मीमांसा में भी किया है। बौद्धदर्शन के नाना सम्प्रदायों का—हीनयान, महायान, मन्त्रयान, कालचक्रयान आदि का मार्मिक विवेचन ग्रन्थ की मौलिकता का स्पष्ट परिचायक है। इसीलिए मर्मज्ञ आलोचकों की दृष्टि में 'हिन्दी में हीं क्यों, अंग्रेजी भाषा में भी इतनी सर्वांगपूर्ण पुस्तक नहीं है जिसमें बौद्ध धर्म तथा दर्शन के इतिहास तथा सिद्धान्तों का इतना प्रामाणिक विवेचन किया गया हो। इस पञ्चखण्डात्मक ग्रन्थ में बौद्धों के विख्यात सम्प्रदाय चतुष्टयी, बौद्धन्याय, बौद्धयोग एवं बौद्धतन्त्र का मार्मिक विवरण ग्रन्थ की विशालता का स्पष्ट प्रमाण है। महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराज की सम्मति है कि बौद्धदर्शन का यह सर्वांगीण विवेचन इतना विशाल है कि इसकी विशालता को देखकर बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान् भी आश्चर्य-चकित हो उठेंगे।[1] वे इसे बौद्धधर्म और दर्शन के सिद्धान्त जानने के लिए एक छोटा विश्वकोष ही मानते हैं। हिन्दी में अपने विषय की सर्वश्रेष्ठ रचना होने के कारण यह हिन्दी जगत् के सर्वश्रेष्ठ पारितोषिक 'हरजीलाल डालमिया पुरस्कार' से सम्मानित है। बर्मी तथा सिंघली जैसी एशियाई भाषाओं में अनूदित होने का गौरव इस रचना को प्राप्त है।

वेदान्त के दार्शनिक तत्व के परिज्ञान के लिए मैंने आचार्य शंकर नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया[2] जिसमें आदि शङ्कराचार्य के विस्तृत जीवन चरित, तद्रचित ग्रन्थ, आविर्भाव काल एवं अद्वैत दर्शन के सिद्धान्तों का विशद प्रतिपादन किया गया है। शंकर स्थापित पञ्चपीठों के उदय तथा अभ्युदय का तथा पीठासीन आचार्यों का इतिहास वर्णन इस ग्रन्थ को ऐतिहासिक महत्त्व प्रदान करता है। पुस्तक की प्रामाणिकता एवं उपादेयता का अनुमान इसके कन्नड अनुवाद से[3] भी लगाया जा सकता है। इसका प्रामाण्य पीठों के वर्तमान आचार्य भी एक स्वर से स्वीकारते हैं। इस ग्रन्थ का प्रणयन उपलब्ध 'शंकरदिग्विजयों' के तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित है। इतः पूर्व मैंने माधवाचार्य रचित 'शंकरदिग्विजय' का हिन्दी अनुवाद दार्शनिक तथा ऐतिहासिक टिप्पणियों से तथा विस्तृत ऐतिहासिक भूमिका से संवलित कर प्रकाशित किया था जो इस महनीय ग्रन्थ का प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद है।[4]

उस दिन आदरसंवलित विस्मय का भाव अकस्मात् मेरे मन में जाग्रत हुआ जब काशी में कामकोटीश्वर शिवमन्दिर के शिलान्यास के अवसर पर काञ्चीमठ के काशीस्थ मन्त्री ने मुझ से शिलान्यास के निमित्त निर्मित गर्त में पाँच ईंटों को रखने के लिए सातिशय आग्रह किया। उनका कहना था, काञ्चीपीठ के शंकराचार्य का मेरे लिए

---

1. I congratulate Pandit Baldeva upadhyay on having successfully fulfilled a self-imposed and heavy task the enormity of which stagvers even giants.—Foreword p. 28.
२. प्रकाशक : हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद।
३. प्रकाशक : काव्यालय पबलिशर्स, जयनगर, मैसूर।
४. प्रकाशक : श्रवणनाथ ज्ञानमन्दिर, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही आदेश है। मेरे आश्चर्य प्रकट करने पर उन्होंने कहा कि शंकराचार्यजी ने आपके 'आचार्य शंकर' के कन्नड अनुवाद को अच्छी तरह पढ़ा है, ग्रन्थ की प्रामाणिकता की वे सराहना करते थे और इसीलिए उनका वह आदेश है। तब मुझे भासित हुआ कि जिस ग्रन्थ का प्रामाण्य परम्परा पदासीन शंकराचार्य स्वयं कर रहे हैं, वह ग्रन्थ अवश्यमेव महत्वपूर्ण है। अन्य चारों पीठों के शकराचार्यों की भी इस विषय में सहमति है। तभी तो श्री करपात्री महाराज ने ज्योतिर्मठ के विवाद प्रसंग में मेरे इस ग्रन्थ को प्रयाग के उच्च न्यायालय में अपना पक्ष सिद्ध करने के लिए साक्षीरूप में प्रस्तुत किया था। तथास्तु।

भागवत सम्प्रदाय

वैष्णवधर्म के ग्रन्थों तथा सिद्धान्तों का आलोडन कर मैंने दो ग्रन्थों का प्रणयन किया है—

(१) भागवत सम्प्रदाय तथा (२) भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा।

भागवत सम्प्रदाय का नूतन परिवृंहित संस्करण **वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य और सिद्धान्त** नाम से हाल में (१९७८ ई०) प्रकाशित किया गया है। वैष्णव सम्प्रदायों ने भारतीय जनमानस पर तथा भारतीय साहित्य पर जो अपनी अमिट छाप जमाई है, उसका अध्ययन इस महनीय ग्रन्थ का उद्देश्य है। यह ग्रन्थ वैष्णव समुदायों के तत्वज्ञान तथा साधना-सम्बन्धी सिद्धान्तों को प्रकाश में लाता है तथा बृहत्तर भारत के देशों तथा साहित्य में व्याप्त वैष्णव प्रभावों का पुंखानुपुंख रूप से तुलना-मूलक विवरण प्रस्तुत करता है। इस का उत्कृष्ट प्रभाव भारतीय साहित्य, कलाकौशल तथा सामान्य जनजीवन पर अधिक परिमाण में पड़ा है। वैष्णवधर्म के महनीय प्रभाव से भारतीय साहित्य सौन्दर्य तथा माधुर्य का उत्स है। यह मानव जीवन की कोमल एवं ललित भावनाओं का अक्षय स्रोत है; जीवन सरिता को सरस मार्ग पर प्रवाहित करने वाला मानसरोवर है। वात्सल्य एवं शृंगार की नाना अभिव्यक्तियों के चारु चित्रण में भारतवर्ष का साहित्य जितना सरस तथा रस-स्निग्ध है, उतना ही वह भक्त हृदय की नम्रता, सहानुभूति और आत्मसमर्पण की भावना से कोमल तथा हृदयावर्जक है।[1] वैष्णव धर्म ने ही इस भारतभूमि पर प्रथमतः अहिंसा का शंखवाद किया था जिसकी प्रतिध्वनि जैनधर्म तथा बौद्ध धर्म में आज भी गूँज रही है। वैष्णव सम्प्रदाय की इन शाखाओं के उद्भव-विकाश, साहित्य एवं सिद्धान्तों का विवरण इस ग्रन्थ की भूयसी विशिष्टता है।

भारतीय वाङ्मय में श्री राधा

पटना के राष्ट्रभाषा परिषद् की व्याख्यानमाला का परिवृंहित तथा परिमार्जित स्वरूप इस ग्रन्थ में बड़ी सहृदयता के साथ उपन्यस्त है। श्री राधा के भारतीय साहित्य में उद्भव एवं विकास की अभिराम परम्परा की विशद व्याख्या के कारण यह ग्रन्थ

१. विशेष द्रष्टव्य—वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य-सिद्धान्त, पृ० २२।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नितान्त प्रौढ़, प्रामाणिक तथा प्राञ्जल है। यहाँ तीन आलोकों में राधा चित्रित की गई है। इतिहास, दर्शन तथा साहित्य—इन तीनों के रंगीन आलोक में राधा की उदात्त कल्पना पाठकों के सामने एक नितान्त स्निग्ध तथा दिव्य आनन्द की परम्परा प्रस्तुत करती है। इतिहास में राधा की मूर्त्ति का स्फुरण कब होता है? आनन्द रसामृत मूर्त्ति व्रजनन्दन श्री कृष्णचन्द्र की शक्ति के रूप में राधा वैष्णव दर्शन के क्षितिज पर किस प्रकार उदय लेती है? दक्षिण तथा उत्तर भारत में विभिन्न भाषीय साहित्य में राधा का चित्रण किन रूपों में किया जाता है। इन व्यापक समस्याओं का समाधान करना इस ग्रन्थ की महती उपलब्धि है। हिन्दी जगत् के एक विशिष्ट दशक (१९६५ ई०–१९७५ ई०) में सर्वश्रेष्ठ मौलिक ग्रन्थ की गरिमा से मण्डित होने से इस ग्रन्थ को प्रयाग की 'हिन्दुस्तानी अकादमी' ने अपने सर्वश्रेष्ठ दो सहस्र-रूप्यकों के पुरस्कार से पुरस्कृत किया है।[1]

साहित्य-इतिहास एवं आलोचना

संस्कृत का साहित्य विशाल एवं वैविध्यसम्पन्न है। वेद, पुराण, ललित साहित्य (दृश्यकाव्य, श्रव्यकाव्य, गीतिकाव्य एवं खण्डकाव्य) शास्त्रीय साहित्य – इन विविध खण्डों में विभक्त संस्कृत साहित्य का इतिहास निबद्ध करना बड़ा विषम समस्या है, परन्तु इस समस्या का मैंने यथाशक्ति नाना ग्रन्थों के प्रणयन द्वारा समाधान करने का अश्रान्त प्रयास किया है। **'वैदिक साहित्य और संस्कृति'**[2] वेद के विपुल साहित्य एवं धार्मिक, सामाजिक दशा का विवरण प्रस्तुत कर भारतीय समीक्षकों एवं पाश्चात्य आलोचकों की विचार-धाराओं को एक साथ आलोचनात्मक ढंग से उपस्थित करता है। **आचार्य सायण और माधव**[3] वेद के अनुशीलन का इतिहास तथा वेदभाष्यकार सायणाचार्य और उनके प्रेरक अग्रज गुरुकल्प माधवाचार्य के जीवन चरित्र, ग्रन्थ तथा साहित्यिक महत्त्व का प्रतिपादन कर पूर्व ग्रन्थ का पूरक ग्रन्थ कहलाने की योग्यता रखता है। पुराण साहित्य का अनुशीलन **'पुराण विमर्श'**[4] का विषय है जिसमें पुराण का लक्षण, देशकाल, पौराणिक भूगोल, पौराणिक धर्म और देवता, पौराणिक प्रतीकवाद तथा वेदार्थ का उपबृंहण आदि विषयों का विशद विवरण ग्रन्थ की अपूर्वता तथा परिपूर्णता का पर्याप्त दिग्दर्शन है।

संस्कृत साहित्य का इतिहास[5] देववाणी के ललित साहित्य के स्वरूप, उदय तथा अभ्युदय, कविकृत तथा उनकी आलोचना बड़े ही विस्तार तथा वैशद्य के साथ प्रस्तुत

---

१. प्रकाशक : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९६५ ईस्वी
२. प्रकाशक : शारदा संस्थान वाराणसी, पंचम संस्करण, १९८० ई०
३. प्रकाशक : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
४. प्रकाशक : चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी १९७९ ई० (द्वि० सं)
५. प्रकाशक : शारदा संस्थान, वाराणसी, दशम संस्करण (१९७८ ई०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है। साहित्य के प्रेरक तथा उपजीव्य ग्रन्थों में रामायण तथा महाभारत के साथ श्रीमद् भागवत को साहित्य की मुख्यधारा में लाने का तथा मध्ययुगीय भक्ति साहित्य पर उसके अन्तरंग प्रभाव के द्योतन का श्रेय इसी ग्रन्थ को प्राप्त है। इसमें दिखलाया गया है कि किस प्रकार रामायण, पञ्चतन्त्र तथा चाणक्य नीति शास्त्र ने विश्व में भ्रमण कर नाना देशीय साहित्य पर अपनी अमिट छाप डाली है और सप्रमाण सिद्ध किया है कि संस्कृत साहित्य एकांगी साहित्य न होकर सर्वाङ्गीण साहित्य है जिसकी प्रभा से विश्वसाहित्य उद्द्योतित हुआ है तथा जिसने अपने सांस्कृतिक सन्देश से इस वैविध्यपूर्ण जगत् का महान् उपकार किया है। यह ग्रन्थ मनुस्मृति के इस विश्रुत तथ्य का भाष्य प्रस्तुत करता है जो भारतवर्ष तथा संस्कृत भाषा को ही संस्कृति का आदि वाहक, प्रभावक तथा प्रेरणा स्रोत सिद्ध करता है।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

इसका कन्नड भाषा में विशद अनुवाद कर्नाटक प्रदेश में नितान्त लोकप्रिय हुआ है। इससे अधिक आश्चर्यमयी घटना है इसका उर्दू अनुवाद, जो 'केन्द्रीय उर्दू संस्थान' के द्वारा प्रस्तुत होकर उर्दू भाषीय बुद्धिजीवियों को संस्कृत साहित्य की दिव्य विभूति एवं लालित्य का परिचय प्रदान करता है।

'संस्कृत शास्त्रों का इतिहास'[1] इसी का पूरक ग्रन्थ है जो संस्कृत के छः महनीय शास्त्रों का – आयुर्वेद, ज्योतिष, साहित्यशास्त्र, छन्दःशास्त्र, कोशविद्या एवं व्याकरण शास्त्र का—सांगोपांग ऐतिहासिक तथा विमर्शात्मक प्रतिपादन कर संस्कृत में निबद्ध शास्त्रीय विषयों को ऐतिहासिक दृष्टि से आलोचन करने का अवसर प्रदान करता है।

संस्कृत भाषा के आलोचना शास्त्र के गूढ़ सिद्धान्तों के परिचय के निमित्त मैंने दो ग्रन्थ का प्रणयन किया है—**संस्कृत आलोचना**[2] तथा **भारतीय साहित्यशास्त्र**[3] (दो खण्ड)। प्रथम ग्रन्थ संस्कृत आलोचना शास्त्र के महनीय सिद्धान्तों का प्रतिपादन है जिसमें काव्य, काव्यरूप एवं काव्य-सिद्धान्त का विशद विवेचन बड़ी ही सरल सुखद शैली में किया गया है। दूसरा ग्रन्थ बड़ा विशाल है। यह साहित्य शास्त्र का शृंखलाबद्ध इतिहास प्रस्तुत कर आलोचना के विभिन्न सम्प्रदायों के—रस, रीति, गुण, अलंकार आदि के उदय एवं अभ्युदय का ऐतिहासिक अनुशीलन भी प्रस्तुत करता हैं। इसके दूसरे भाग में औचित्य, रीति, वृत्ति तथा वक्रोक्ति नामक काव्य-तत्त्वों का निरूपण ऐतिहासिक दृष्टि से किया गया है। तुलनात्मक दृष्टि से तथ्य-प्रतिपादन इसे गौरव प्रदान करता है। पाश्चात्य आलोचना में इन तत्त्वों के समानान्तर तत्त्वों का विवेचन किस प्रकार किया गया है? इसका विशद विवेचन आलोचना के नये आयामों की दिशा प्रदर्शित करता है।

---

१. प्रकाशक : शारदा संस्थान, वाराणसी १९६७ ई०
२. प्रकाशक : हिन्दी समिति, लखनऊ (तृतीय सं०)
३. प्रकाशक : नन्दकिशोर एण्ड सन्स, वाराणसी (तृतीय सं०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निष्कर्ष यह कि संस्कृत भाषा में निबद्ध विशाल साहित्य के स्वरूप तथा महत्त्व के प्रतिपादन का कठिन कार्य अत्यन्त निष्ठा से निष्पन्न कर ग्रन्थकार अन्तःसन्तोष का अनुभव कर रहा है कि अज्ञात तथा अल्पज्ञात विषयों का विशेष विवरण देकर उसने उन्हें सुज्ञात तथा परिज्ञात बनाने का यथाशक्ति प्रयास किया है।

परिवार परिचय

मेरे पिताजी पण्डित रामसुचित उपाध्याय के एक ही अनुज थे पण्डित राम उदित उपाध्यायजी। इनकी चर्चा ऊपर की गई है। व्याकरण तथा साहित्य के गम्भीर विद्वान् होने के अतिरिक्त ये एक कर्मठ एवं व्यवहार-कुशल व्यक्ति थे। इन्होंने बलिया नगर में स्थापित 'जुबिली संस्कृत पाठशाला' को अपनी व्यवहार-कुशलता से एक महनीय महाविद्यालय (कालेज) का रूप प्रदान कर संस्कृत के प्रचार-प्रसार मे विशेष योगदान दिया। इनके आत्मज पण्डित ब्रह्मदेव उपाध्यायजी ज्योतिष, कर्मकाण्ड तथा वैद्यक के अच्छे विद्वान् थे। इनके तीन पुत्र हैं और ये तीनों ही अपने-अपने विषय के डाक्टर हैं—डा० शिवशंकर उपाध्याय, बिहार विश्व विद्यालय मुजफ्फरपुर में संस्कृत बिभाग के रीडर हैं, जिनका अंग्रेजी में निबद्ध नारद पुराण विषयक महानिबन्ध भक्तिशास्त्र का गम्भीर विवेचक तथा दार्शनिक तथ्यों का प्रकाशक है। मध्यम पुत्र डा० उमाशंकर उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय में गणित के अध्यापक हैं तथा कनिष्ठ पुत्र डा० कन्हैया शंकर उपाध्याय भी प्रयाग विश्वविद्यालय में गणित विभाग के लोकप्रिय व्याख्याता हैं।

मेरे दोनों अनुज अपने विषय के लब्धकीर्ति प्रध्यापक एवं लोकप्रिय ग्रन्थ रचयिता हैं। डा० वासुदेव उपाध्याय पटना विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग के रीडर थे जिन्होंने अनेक विद्वत्तापूर्ण इतिहास तथा कला-विषयक ग्रन्थों का प्रणयन कर अखिल भारतीय कीर्ति अर्जित की है। 'गुप्तसाम्राज्य का इतिहास' (दो भाग) लिख कर इन्होंने कम उम्र में ही मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त किया था। प्राचीन भारत के इतिहास, शिलालेख तथा कला के मर्मज्ञ होने के कारण इनके ग्रन्थ विद्वानों के द्वारा प्रशंसित तथा लोकप्रिय हैं। इनके नाम हैं—विजयनगर साम्राज्य का इतिहास (सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली), पूर्व-मध्यकालीन भारत, भारतीय गौरव (लीडर प्रेस, प्रयाग), भारत के प्राचीन ग्राम (भार्गव प्रेस, प्रयाग), प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान (चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी), प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन (दो भागों में विभक्त), प्राचीन भारतीय मुद्राएँ (प्रज्ञा प्रकाशन, पटना), 'भारत के प्राचीन स्तूप, गुहा तथा मन्दिर,' गुप्त अभिलेख (बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना), अंग्रेजी में 'सोशियो-रिलिजस कण्डिशन आफ नार्थ इण्डिया' तथा 'क्रिमिनोलाजी' (चौखम्भा विश्वभारती, वाराणसी)। इन ग्रन्थों के ऊपर इन्हें अनेक पुरस्कार तथा पदक प्राप्त हुए थे जिनके नाम हैं – मंगलाप्रसाद पुरस्कार, जोध सिंह पुरस्कार, बंगाल हिन्दी-मण्डल पुरस्कार, हीरालाल स्वर्णपदक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं गुलेरी पदक, हनुमान मन्दिर पुरस्कार (कलकत्ता)। इन्हें दिवंगत हुए अभी दो-चार वर्ष ही व्यतीत हुए हैं। इनके दोनों पुत्र तथा पौत्र उच्च शिक्षाप्राप्त हैं तथा सरस्वती की सेवा में लगे हुए हैं:—सुरेन्द्रनाथ उपाध्याय (प्राध्यापक, केन्द्रीय विद्यालय, राँची), डा० विजयशंकर उपाध्याय (रीडर, नृतत्त्व-विज्ञान विभाग, राँची विश्व-विद्यालय), पौत्र राजेश कुमार उपाध्याय (राँची कालेज में विज्ञान व्याख्याता, राँची)।

मेरे द्वितीय अनुज हैं—डा० कृष्णदेव उपाध्याय जो भारतीय लोकसंस्कृति के प्रौढ विद्वान के रूप में विद्वद्गोष्ठी में नितरां प्रसिद्ध हैं। ये भोजपुरी भाषा तथा साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् माने जाते हैं। अपने उत्कृष्ट वैदुष्य के कारण इंगलैण्ड, अमेरिका तथा यूरोप में अनेक बार निमन्त्रित होकर अनेक विश्वविद्यालयों में भारत की लोक-संस्कृति तथा समाज-विज्ञान पर व्यख्यान दिया है। जर्मनी के मारबुर्ग में आयोजित जर्मन लोक-साहित्य-सम्मेलन में एकमात्र भारतीय प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुए (१९६५ ई०) तथा अगले वर्ष गटिंगन विश्वविद्यालय में भारतीय लोक-संस्कृति पर व्याख्यान दिया सम्मानित प्रोफेसर के रूप में (१९६६ ई०)। रोमानिया के बुखारेस्ट नगर में संयोजित अन्तर्राष्ट्रीय फोकलोर कांग्रेस में भारत सरकार का प्रातिनिध्य किया (१९६९ ई०)। अमेरिका में इण्डियाना विश्वविद्यालय के द्वारा निमंत्रित होकर भारतीय लोकसंस्कृति पर व्याख्यान दिया (१९६६ ई०) तथा जार्जिया के एटलान्टा विश्वविद्यालय में भी भारतीय लोकगीतों तथा लोक-कला के ऊपर भाषण किया (१९८० ई०)। भारतीय लोक संस्कृति के विषय में एक संस्थान की स्थापना की है (वाराणसी में) जहाँ से एतद्-विषयक अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है। इन्होंने भारत की लोकसंस्कृति-बिषयक ज्ञान के प्रचार-प्रसार में अपने जीवन को सर्वथा समर्पित कर दिया है। इन्होंने इस विषय में अनेक प्रौढ़, विद्वत्तापूर्ण तथा ज्ञानवर्धक ग्रन्थों का प्रणयन तथा सम्पादन किया है—(१) मौलिक ग्रन्थ – भोजपुरी और उसका साहित्य, भोजपुरी साहित्य का इतिहास, लोक-साहित्य की भूमिका, हिन्दू विवाह की उत्पत्ति एवं विकाश, आंचलिक रेखाचित्र। (२) सम्पादित ग्रन्थ— भोजपुरी लोकगीत (२ भाग, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग) भारतीय लोक संस्कृति, हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास भाग १६ (लोक साहित्य, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी), अवधी लोक गीत। अंग्रेजी में भी ग्रन्थों का प्रणयन तथा संपादन किया है जिनके नाम हैं—फोकलोर आफ उत्तर प्रदेश, इण्डियन फोक-लोर, स्टडीज इन इण्डियन फोक कल्चर, सम ऐसपेक्ट्स आफ इण्डियन फोक कल्चर।

इनके दोनों पुत्र उच्च शिक्षा-प्राप्त हैं तथा भारतीय विद्या के प्रशिक्षण में संलग्न हैं। प्रथम पुत्र डा० हरिशंकर उपाध्याय अमेरिका में जार्जिया स्टेट के एटलाण्टा विश्वविद्यालय में भारतीय इतिहास तथा समाज-शास्त्र के प्राध्यापक है तथा द्वितीय पुत्र डा० रविशंकर उपाध्याय अपने पिता के ही पद-चिह्नों का अनुसरण कर हिन्दी तथा भोजपुरी के गम्भीर अध्ययन में संलग्न है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे दोनों आत्मज विद्या के क्षेत्र में उच्च शिक्षा प्राप्त कर सरस्वती की सेवा में समर्पित जीवन बिता रहे हैं। मेरे ज्येष्ठ पुत्र गौरीशंकर उपाध्याय एम० ए० (संस्कृत तथा हिन्दी) हाल ही में सामाजिक शिक्षा के सहायक निदेशक पद से सेवानिर्मुक्त हुए हैं। कनिष्ठ पुत्र डा० गोपाल शंकर उपाध्याय धातुकी विभाग, आई० आई० टी० (कानपुर) में वरिष्ठ प्रोफेसर के पद पर नियुक्त हैं। इन्होंने धातुकी (मेटलर्जी) की उच्च शिक्षा रूस के मास्को विश्वविद्यालय से प्राप्त की है, रूसी भाषा के अच्छे ज्ञाता हैं और उसी भाषा में अपने मौलिक वैज्ञानिक ग्रन्थ का प्रणयन भी किया है। अपनी वैज्ञानिक तथा तकनीकी विद्वत्ता के कारण 'पाउडर मेटलर्जी' विषयक अनेक अन्तर्राष्ट्रीय विद्वद्गोष्ठियों (सेमिनार) में समादृत होकर यूरोप तथा अमेरिका का अनेक बार भ्रमण किया है। मेरे पाँच पौत्रों में से गोपालजी के दोनों पुत्र—अनीश तथा आशीष—अभी बालक हैं और स्कूल में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। तीनों वयस्क पौत्र गौरीशंकरजी के पुत्र हैं। तीनों ही उच्च शिक्षा प्राप्त कर विभिन्न संस्थानों में कार्य कर रहे हैं] डा० लक्ष्मीनारायण (एम० एस सी०, पी एच० डी०) केन्द्रीय शासन द्वारा स्थापित 'इन्डियन स्कूल आफ माइन्स' (धनबाद, बिहार) में सांख्यिकी का व्याख्याता है; मेरा प्रथम प्रपौत्र सिद्धार्थ तथा प्रपौत्री श्रुति इसी पौत्र की सन्तान हैं। सुधीरनारायण (एम० ए०) पुस्तकालय विज्ञान की प्रौढ़ शिक्षा प्राप्त कर राजकीय डिग्री कालेज (चकिया, वाराणसी) का वरिष्ठ पुस्तकालयाध्यक्ष है तथा सुनील नारायण (एम० एस सी०) वाणिज्य प्रबन्धशास्त्र की उच्च शिक्षा प्राप्त कर काशी में ही एक विख्यात उद्योग-संस्थान में कार्य-निरत है। मेरा वरिष्ठ दौहित्र डॉ० रवीन्द्रकुमार दूबे आजकल आई० आई० टी० कानपुर में धातुकी विभाग में रीडर है। इसने इंगलैण्ड के वेल्स विश्वविद्यालय में बड़े परिश्रम से अपने विज्ञान में उल्लेखनीय अनुसन्धान किया है। गोपाल तथा रवीन्द्र कुमार—दोनों का सम्मिलित वैज्ञानिक ग्रन्थ अंग्रेजी में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से सम्मान के साथ प्रकाशित हुआ है। ग्रन्थ की महत्ता से प्रेरित होकर उसका अनुवाद स्पेनी भाषा में अर्जेन्टाइना (दक्षिणी अमेरिका) से प्रकाशित हुआ है तथा सुयोग्य वैज्ञानिकों के द्वारा बहुशः समादृत तथा चर्चित है। इसका आत्मज अभिषेक अभी कम उम्र का है और शिशु विद्यालय में पढ़ता है।

इस प्रकार मेरे परिवार के समग्र सदस्य उच्च शिक्षा से मण्डित हैं, अपने-अपने ढंग से भगवती शारदा की सेवा में समर्पित है तथा भारतीय विद्या के प्रचार-प्रसार में संलग्न है।

मेरे परिवार का महिलावर्ग भी पर्याप्तरूपेण शिक्षित एवं प्रबुद्ध है। मेरी भ्रातुष्पुत्री श्रीमती निर्मला उपाध्याय (एम० ए०) राँची के एक महनीय शिक्षा संस्थान में प्राध्यापिका है। मेरी कनिष्ठ पुत्री डा० मालती त्रिपाठी ने 'वामन पुराण का सांस्कृतिक अध्ययन' शीर्षक बड़े ही उपयोगी महानिबन्ध (थीसिस) का प्रणयन किया है जिसमें वामन पुराण के वर्ण्य विषयों का बड़ा ही सांगोपांग विवेचन है। मेरी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकमात्र पौत्री डा० सुषमा त्रिपाठी हिन्दू विश्वविद्यालय के 'महिला महाविद्यालय' में सांख्यिकी विभाग की प्राध्यापिका है। सांख्यिकी-विषयक उसकी थीसिस जर्मन परीक्षक के द्वारा बहुशः प्रशंसित की गई है। मेरी कनिष्ठ पुत्र-वधू डा० गीता उपाध्याय का महानिबन्ध 'पोलिटिकल थाट इन संस्कृत काव्य' संस्कृत काव्यों में राजनीति के तथ्यों का निरूपण कर सामयिकता से सुतरां मण्डित है। इसमें राजनीति-विषयक नवीन तथ्यों का संकलन बड़ी विद्वत्ता से किया गया है। मेरी दौहित्र-वधू डा० मंजु दूबे का महानिबन्ध 'कन्सेप्ट आफ गाड इन वैष्णव फिलासोफिकल सिस्टम्स' वैष्णव दर्शनों में बहुशः चर्चित ईश्वर के स्वरूप का विवेचन बड़े पाण्डित्य तथा अनुसन्धान के साथ करता है तथा रामानुज, निम्बार्क, मध्व तथा वल्लभ के दर्शनों में वर्णित ईश्वर के तुलनात्मक रूप का विवरण प्रस्तुत कर जिज्ञासुओं के लिए उपयोगी तात्त्विक सामग्री प्रस्तुत करता है। मेरी कनिष्ठ भ्रातृष्पुत्री डॉ० वीणा द्विवेदी ने अपने 'पद्मावत में लोक संस्कृति' नामक महानिबन्ध में जायसी के काव्य का अध्ययन एक नई दिशा से किया है जो सर्वथा प्रशंसनीय है।

अन्त में, मैं अपनी चिरजीवन-संगिनी श्रीमती शिवमुनि देवी के विषय में दो-चार शब्द कहना अप्रासंगिक नहीं समझता। यह देवी मेरी रचनाओं के अन्तराल में छाया के समान सर्वदा विद्यमान रही है। गृहस्थी का समग्र बोझ अपने ऊपर लेकर इसने मुझे सांसारिक झंझटों से सदा मुक्त रखा है और ऐसे शान्त वातावरण का निर्माण किया है, जो लेखन के लिए आवश्यक मानसिक संतुलन का व्यवस्थापक होता है। अपने एकमात्र भाई के सन्तान रहित होने के कारण यह आपने मातृकुल के लिए सदा चिन्तित रहती है। विधि की जैसी विडम्बना! अपनी रचनाओं की प्रेरणा शक्ति के रूप में इस सौभाग्यशालिनी का गुण मानता हुआ मैं यही अपना परिचय समाप्त करता हूँ।

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः

काशीस्थविदुषामेषा चर्चा चर्यासमन्विता।
विश्वनाथ-पदाम्भोजे सप्रमोदं समर्प्यते।

—०—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट १

वाराणसी माहात्म्यः पुराणों में

वाराणसी का माहात्म्य पुराण साहित्य में विशेषरूप से प्राप्त होता है। पुराण के स्थलों का निर्देश यहाँ दिया जाता है--

अग्नि पुराण	अध्याय ११२।१-७
कूर्म पुराण	प्रथम भाग २९ अ०
नारद पुराण	प्रथम भाग ६ अ० । ३४-७०
	द्वितीय भाग २९ अ० । १-७२
	द्वितीय भाग अ० ४८-५१
पद्म पुराण	तृतीय खण्ड अ० ३३-३६
मत्स्य ,,	तृतीय खण्ड अ० १७९ से १८४ अ० तक
लिङ्ग पुराण	प्रथम भाग अ० १०३ । ७-७८
वामन पुराण	प्रथम भाग अ० ३ । ३१-३९
शिव पुराण	चतुर्थ खण्ड अ० २३ । १-५७
स्कन्द पुराण	चतुर्थ (काशी) खण्ड, अ० २५, २६, ३०, ६४

स्कान्दे काशीखण्डे-काशीमाहात्म्यम्—

कार्त्तिकेयः अगस्त्यं प्रति-पञ्चविंशतितमेऽध्याये—

भूर्भुवः स्वस्तले वापि न पातालतलेऽमलम्
नोर्ध्वलोके मया दृष्टं तादृक् क्षेत्रं क्वचिन्मुने ॥ २१ ॥
न तत्पुण्यैर्न तद्दानैर्नतपोभिर्न तज्जपैः ।
न लब्धं विविधैर्यज्ञैर्लभ्यमैशादनुग्रहात् ॥ २३ ॥
ईश्वरानुग्रहादेव काशीवासः सुदुर्लभः ।
सुलभः स्यान्मुने नूनं न वै सुकृतकोटिभिः ॥ २४ ॥
अन्यैव काचित् सा सृष्टिर्विधातुर्यातिरेकिणी ।
न तत्क्षेत्रगुणान् वक्तुमीश्वरोऽपीश्वरो यतः ॥ २५ ॥
अहो मतेः सुदौर्बल्यमहो भाग्यस्य दौर्विधम् ।
अहो मोहस्य माहात्म्यं यत्काशीह न सेव्यते ॥ २६ ॥
यावज्जीवं वसेद् यस्तु क्षेत्रमाहात्म्यविन्नरः ।
जन्ममृत्युमयं हित्वा स याति परमां गतिम् ॥ ६४ ॥
ब्रह्महा योऽभिगच्छेद्वै दैवाद्वाराणसीं पुरीम् ।
तस्य क्षेत्रस्य माहात्म्याद् ब्रह्महत्या निवर्तते ॥ ६६ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अविमुक्तं न मुञ्चेत संसारमयमोचनम् ।
प्राप्य विश्वेश्वरं देवं न स भूयोऽभिजायते ॥ ७० ॥

कूर्म पुराणे—प्रथमभागे—२६ अध्याये—

न दानैर्न तपोभिश्च न यज्ञैर्नापि विद्यया ।
प्राप्यते गतिरुत्कृष्टा याऽविमुक्ते न लभ्यते ॥ २१ ॥
अविमुक्तं परं ज्ञानम् अविमुक्तं परं पदम् ।
अविमुक्तं परं तत्त्वमविमुक्तं परं शिवम् ॥ ४३ ॥
ये स्मरन्ति सदा कालं विन्दन्ति च पुरीमिमाम् ।
तेषां विनश्यति क्षिप्रमिहामुत्र च पातकम् ॥ ७३ ॥
गायन्ति सिद्धाः किल गीतकानि ।
ये वाराणस्यां निवसन्ति विप्राः ॥
तेषामथैकेन भवेन मुक्तिर् ।
ये कृत्तिवासं शरणं प्रपन्नाः ॥ ३० ॥ अध्याये २६

मात्स्ये देवीं प्रति सदाशिवस्य उक्तिः—१८० अध्याये

विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तधर्मरतिर्नरः
इह क्षेत्रे मृतः सोऽपि संसारं न पुनर्विशेत् ।
वाराणसी तु भुवनत्रयसारभूता रम्या सदा मम पुरी गिरिराजपुत्रि ।
अत्रागता विविधदुष्कृतकारिणोऽपि पापक्षयाद्विरजसः प्रतिभान्ति मर्त्याः ॥७८॥
एतत् स्मृतं प्रियतमं मम देवि नित्यं क्षेत्रं विचित्रतरुगुल्मलतासुपुष्पम् ।
अस्मिन्मृतास्तनुभृतः पदमाप्नुवन्ति मूर्खाऽऽगमेन रहितापि न संशयोऽत्र ॥७९॥

१८१ अध्याये तत्रैव

अविमुक्ते परा सिद्धिरविमुक्ते परा गतिः ।
जप्तं दत्तं हुतं चेष्टं तपस्तप्तं कृतं च यत् ॥ १६ ॥
ध्यानमध्ययनं दानं सर्वं भवति चाक्षयम् ।
जन्मान्तर-सहस्रेण यत्पापं पूर्वसञ्चितम् ॥ १७ ॥
अविमुक्ते प्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम् ।
अविमुक्ताग्निना दग्धमग्नौ तूलमिवाहितम् ॥ १८ ॥

लिङ्गपुराणे प्रथमभागे १०३ अध्याये—

किं मया वर्ण्यते देवि ह्यविमुक्तफलोदयः ।
पापिनां यत्र मुक्तिः स्यान्मृतानामेकजन्मना ॥ ७५ ॥
अन्यत्र तु कृतं पापं वाराणस्यां विनश्यति ।
वाराणस्यां कृतं पापं पैशाच्यनरकावहम् ।
कृत्वा पापसहस्राणि पिशाचत्वं वरं नृणाम् ॥ ७६ ॥
न तु शक्रसहस्रत्वं स्वर्गे काशीपुरीं विना ॥ ७७ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वामने समीक्षित संस्करणे—तृतीयाध्याये —

विलासिनीनां रशनास्वनेन श्रुतिस्वनैर्ब्राह्मणपुङ्गवानाम् ।
शुचिस्वरत्वं गुरवो निशम्य हास्यादशासन्त मुहुर्मुहुस्तान् ॥३१॥
व्रजत्सु योषित्सु चतुष्पथेषु, पदान्यलक्तारुणितानि दृष्ट्वा ।
ययौ शशी विस्मयमेव यस्यां किं स्वित् प्रयाता स्थलपद्मिनीनाम् ॥३२॥
तुङ्गानि यस्यां सुरमन्दिराणि रुन्धन्ति चन्द्रं रजनीमुखेषु ।
दिवापि सूर्यं पवनाप्लुताभिः दीर्घाभिरेवं सुपताकिकाभिः ॥३३॥
भृङ्गाश्च यस्यां शशिकान्तभित्तौ प्रलोभ्यमानाः प्रतिविम्बितेषु ।
आलेख्ययोषिद्विमलाननाब्जेष्वीयुर्भ्रमान्नैव च पुष्पकान्तरम् ॥३४॥
परिश्रमश्चापि पराजितेषु नरेषु संमोहन-खेलनेन ।
यस्यां जलक्रीडनसंगतासु न स्त्रीषु शंभो गृहदीर्घिकासु ।
न चैव कश्चित् परमन्दिराणि रुणद्धि शंभो सहसा ऋतेऽक्षान् ।
न चाबलानां तरसा पराक्रमं करोति यस्यां सुरतं हि मुक्त्वा ॥३६॥
पाशग्रन्थिर्गजेन्द्राणां दानच्छेदो मदच्युतौ ।
यस्यां मानमदौ पुंसां करिणां यौवनागमे ॥३७॥
प्रियदोषाः सदा यस्यां कौशिका नेतरे जनाः ।
तारागणेऽकुलीनत्वं गद्ये वृत्तच्युतिर्विभो ॥३८॥
भूतिलुब्धा विलासिन्यो भुजंगपरिवारिताः ।
चन्द्रभूषितदेहाश्च यस्यां त्वमिव शंकर ॥ ३९ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट २

अर्थवत्त्व परिष्कारः

पाणिनीयशब्दानुशासने प्रातिपदिकसंज्ञाविधानार्थं सूत्रद्वयं प्रवर्तते—"अर्थवद्धातुरप्रत्ययः प्रतिपदिकम् कृत्तद्धितसमासाश्चेति। तत्र प्रथमसूत्रेण प्रकृतिप्रत्ययविभागरहितस्य कस्मिंश्चिदर्थे रूढस्य शब्दस्य प्रातिपदिकसंज्ञा भवति। द्वितीयेनोत्तरसूत्रेण तु प्रकृतिप्रत्ययविभागवतोऽर्थवतः शब्दस्वरूपस्य भवति प्रातिपदिकसंज्ञा। उभयत्र प्रातिपदिकार्थमर्थवच्छब्दस्वरूपमावश्यकमस्ति। तत्र किन्नामार्थवत्त्वमिति जिज्ञासायां? प्राचीनवैयाकरणैः प्रथम – सूत्रे अर्थविषयकबोधजनकत्वमर्थवत्त्वम् द्वितीयसूत्रे च एकार्थीभावेन लौकिकप्रयोगे प्रसिद्धत्वमर्थवत्त्वमिति द्विविधमर्थवत्त्वं स्वीकृतम्। द्विविधार्थवत्त्वस्वीकारे तेषां तात्पर्यमिदमस्ति यत् अर्थविषयकबोधजनकत्वमर्थवत्त्वमिति लक्षणं सामान्यतः प्रत्ययमात्रेऽपि संगच्छते, तेन "हरिषु" इत्यत्र सोरपि प्रातिपदिकसंज्ञा माभूदेतदर्थं पूर्वसूत्रे "अप्रत्ययः" इति पर्युदासो भवति सार्थकः। यद्येवंभूतमर्थवत्त्वं तत्र न स्यात्तदा 'अप्रत्ययः' इति पर्युदासो व्यर्थएव भवेत्। "हरिषु" इत्यत्र प्रत्ययस्य प्रातिपदिकसंज्ञा फलन्तु औत्सर्गिकैकवचनापत्तिरिति बोध्यम्।

कृत्तद्धित-समासाश्चेत्युत्तरसूत्रे तु "कृत्तद्धितान्तश्चैवार्थवन्न केवलाः कृतस्तद्धिता वेति भाष्योक्तसिद्धान्तात्", धात्वादीनां विशुद्धानां लौकिकोऽर्थो न विद्यते" इति हरिवचनाच्च" एकार्थीभावेन लौकिक—प्रयोगे प्रसिद्धत्वमर्थवत्त्वमित्युक्तम्। एकार्थीभावश्च शब्दविशिष्टा काचिच्छक्तिरेव। तथा चैकार्थीभावात्मकशक्तिज्ञानाधीनबोधजनकत्वमर्थवत्त्वमिति फलति।

अत्र नवीन-वैयाकरणनागेशभट्टप्रभृतयः सूत्रद्वयेऽपि एतत्संज्ञाफलभूतविभक्तीतरसमभिव्याहारानपेक्षयार्थबोधजनकत्वमर्थवत्त्वमङ्गीकृतवन्तः। उभयत्रैकार्थवत्त्वस्वीकारे चैतल्लाघवमस्ति यत् प्राचीनमते विभिन्नरूपेण बोधद्वयं प्रति अर्थवत्त्वद्वयोपस्थितिद्वयस्य कारणता वक्तव्या। अस्माकं मते सूत्रद्वये अर्थवत्त्वस्यैकत्वे तु बोधद्वयं प्रत्येकरूपेणैवार्थवत्त्वोपस्थितेः कारणमिति लाघवम्।

किच्च पूर्वसूत्रे "अप्रत्यय" इति पर्युदासो न कर्त्तव्य इति महल्लाघवम्। अर्थवत्त्वलक्षणसमन्वयश्चैवं क्रियते एतस्यार्थवत्त्वेन विवक्षितस्य या संज्ञा प्रातिपदिकसंज्ञा तत्फलभूता या विभक्तिस्तदितरानपेक्षयेत्यर्थः। प्रत्ययमात्रस्यात्रार्थवत्त्वन्तु नैव भविष्यति, यतो हरिषु इत्यत्र सुप् प्रत्ययस्य या प्रातिपदिकसंज्ञा तत्फलभूतविभक्तीतरा प्रकृतिस्तत्समभिव्याहारापेक्षयैवार्थवत्त्वं भवति।" रामेत्यत्र प्रातिपदिकसंज्ञाफलभूतविभक्त्यपेक्षत्वेऽपि तदितानपेक्षयैवार्थबोधकत्वात् प्रातिपदिकत्वं निष्पद्यते। न चैवंभूतार्थवत्त्वस्वीकारे रमा, गौरीत्यादौ रम्, गौरित्यस्य या प्रातिपदिकसंज्ञा तत्फलभूतविभक्तीतरष्टाप् ङीष् तदपेक्षयैवार्थवत्त्वमतः प्रातिपदिसंज्ञा न स्यादिति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाच्यम्, अर्थवत्त्वपरिष्कारे विभक्तिपदस्य प्रत्ययपरत्वात्। अर्थात् एतत्संज्ञाफलभूत-प्रत्ययेतर समभिहारानपेक्षयाऽर्थबोधजनकत्वमर्थवत्त्वमिति स्वीकारेणादोषात्। न चैवमपि इन्दाणीत्यत्र इन्द्रेत्यस्य या प्रातिपदिकसंज्ञा तत् फलभूतप्रत्ययेतर आनुगागमः, तत्समभिव्याहारापेक्षत्वेन प्रातिपदिकत्वानुपत्तिरिति वाच्यम्, एतत् संज्ञाफलभूत-प्रत्ययेतर इत्यस्य स्थाने एतत् संज्ञाफलभूतेतरपरिष्कारेणादोषात्। पुनरपि "एधाञ्चक्रे" इत्यत्र दोषः स्यात्, यतो हि—एधाञ्चक्रे इत्यादौ एधामित्यस्य या प्रातिपदिक संज्ञा तत्फलभूतेतरत्वं चक्रे इत्यस्य, तत्समभिव्याहारापेक्षयैवार्थवत्त्वादिति चेत्। अत्रोच्यते—एतन्निष्ठोद्देश्यता निरूपित विधेयताश्रयेतरसमभिहारानपेक्षयाऽर्थबोधजनकत्वमर्थवत्त्वमिति परिष्कारेणादोषात्। "चक्रे" इत्यस्य एधाम्निष्ठोद्देश्यतानिरूपितविधेयताश्रयत्वस्यैव-सत्वादि भावः। न चैवं कुम्मकार इत्यत्र कारेत्यस्य प्रातिपदिक संज्ञा न स्यात्, यतः कारेत्यस्य स्वनिष्ठोद्देश्यता निरूपितविधेयताश्रयेतरकुम्मसमभिव्याहारेणैवार्थवत्त्वमिति वाच्यम्, स्वनिष्ठोदेश्यतानिरूपितविधेयताश्रयेतरो यः पदेतरस्तत् समभिव्याहारान-पेक्षयाऽर्थबोधजनकत्वमर्थवत्त्वामिति स्वीकारेणादोषात्। पञ्चगवधन इत्यादौ पञ्चगवेत्य-स्यार्थवत्त्वेन प्रातिपदिकत्वापत्त्या ङीबापत्तिः यतस्तस्य धनापेक्षयाबोधकत्वेऽपि धनस्य पदेतरत्वाभावादिति चेत्, पदेतरेत्यस्य स्थाने पूर्वं पदेतरस्य निवेशेनादोषात्।

तदेवं स्वनिष्ठोद्देश्यता निरूपित विधेयताश्रयेतरो यः पूर्वपदेतरस्तत्समभि-व्याहारानपेक्षयाऽर्थबोधजनकमर्थवत्त्वमित्यर्थवत्त्वपरिष्कारः स्वीकार्यः।

अत्रापि दोषः समुपस्थाप्यते तत्समाधानञ्चैवंरीत्या शब्दसन्निवेशेन क्रियते इति परिष्कारप्रवाहः प्राचलल्लक्षण परिमार्जने नागेशभट्टप्रभृतीनां वैयाकरणानामिति भावः।[1]

१. इस परिष्कार के लेखक हैं—पं० चक्रवर्ती रामाधीन चतुर्वेदो (रीडर, संस्कृत महाविद्यालय, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी) इसके लिए ग्रन्थकार चतुर्वेदीजी का विशेष आभारी है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट ३

परमयोगी तैलंग स्वामी

काशी में समाधिस्थ हुए परमयोगी बाबा तैलंग स्वामी के योगसाधन और चमत्कारों की चर्चा रहती है। सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में दक्षिण भारत के विजियाना गाँव के एक शिव-भक्त ब्राह्मण परिवार में सन् १५२९ ई० में महात्मा तैलंग स्वामी अवतीर्ण हुए। आपके बाल्यकाल का नाम 'शिवराम' था।

बचपन से ही आप प्रखर बुद्धिवाले, शांत और पर-दुःख से कातर होने वाले प्राणी थे। किशोरावस्था को धीरे-धीरे पारकर आपने युवावस्था में पदार्पण किया लेकिन यौवन-सुलभ उत्साह एवं खुशी की जगह आप अन्यमनस्क रहने लगे। इनकी इस अवस्था को देखकर इनके पिता नृसिंहधर को बहुत दुःख हुआ और पुत्र के मन में परिवर्तन करने के लिए उनके विवाह के बारे में सोचने लगे। लेकिन आपने विवाह नहीं किया और कहा कि इस क्षणभंगुर और नश्वर जीवन में जब कोई स्थिर नहीं है तब इसे मायाजाल में फँसाने का क्या प्रयोजन है ?

पिता

शिवराम के पुत्र को तैलंगधर भी पुकारा जाता था। माता विद्यावती प्रतिदिन भगवान शिव की पूजा और स्तोत्र पाठ भक्ति से करती थीं। जब वे ध्यान में मग्न रहती थीं तो उनके मुखमण्डल से ज्योति निकलती थी। ऐसी ध्यानमग्न स्थिति में सिवाय तैलंगधर के कोई उनके सन्मुख आने की हिम्मत नहीं करता था। विद्यावती प्रारम्भ से ही अपने पुत्र तैलंगधर के मानसिक भाव पर दृष्टि रखती थीं। उनके कार्य-कलापों को देखकर वह अनुभव करने लगी थीं कि वह अनित्य संसार के माया-मोह में फँसना नहीं चाहता। इस विचारमात्र से उनका दुःखी होना तो दूर रहा, वे और भी अधिक आनन्दित होती थीं। इसीलिए तैलंगधर के विवाह करने की अनिच्छा पर इन्होंने किसी प्रकार का दुःख अथवा आश्चर्य नहीं प्रकट किया।

तैलंगधर को उनकी माता विद्यावती शुरू-शुरू में उपदेश दिया करती थीं। माता के उपदेश को सुनकर तैलंगधर अनिवर्चनीय आनन्द में लीन हो जाया करते थे, हृदय में धर्म की आकांक्षा क्रमशः बलवती होती गयी तथा हृदयपटल में अपूर्व रस का भाव प्रस्फुटित होने लगा।

इसी बीच तैलंगधरजी के पिता का स्वर्गवास हो गया।

माता

उस समय आप की अवस्था ४० वर्ष की थी। पिता की मृत्यु के शोक से विह्वल उनकी माता सिर्फ भगवत्-चिन्तन को छोड़कर संसार के प्रति उदासीन रहने लगीं। तैलंगधर भी माता के साथ भगवत्-चिन्तन में रत हो गये। बारह वर्ष पश्चात् उनकी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवी तुल्य माँ भी शाश्वत धाम को सिधारीं। माता की मृत्यु के बाद संसार के प्रति उनकी उदासीनता का भाव बढ़ता ही गया। जिस स्थान पर माता का अन्तिम संस्कार हुआ था वह स्थान उन्हें अतिविचित्र एवं मनोरम बोध होने लगा और माता की चिता भस्म को मस्तक पर धारण कर वह श्मशान पर ही रहने लगे। कुटुम्बी जनों का प्रेम और संसार का प्रलोभन उन्हें आकर्षित करने में असमर्थ रहा और स्वामीजी ने कहा कि इस क्षणभंगुर शरीर को लेकर अनित्य संसार-सुख में डूबने से क्या होगा ? जो नित्य और अनश्वर है, जिसके सुख का आदि और अन्त नहीं, जिसको पाने पर और कुछ पाने की आकांक्षा नहीं रहती, अशान्ति जिससे दूर भाग जाती है, हमने उन्हीं की शरण ली। हमसे अब घर लौटने का अनुरोध मत करो।

तीर्थ-यात्रा

वहाँ २० वर्ष व्यतीत करने के बाद स्वामीजी तैलंगधर भगीरथ स्वामी के साथ पुष्कर तीर्थ गये और वहीं पर स्वामीजी से दीक्षा ग्रहण की। अब आप गणपति स्वामी की नाम से पुकारे जाने लगे। भगीरथ स्वामी के शरीर-त्याग करने के पश्चात् आप पुष्करावती (पुष्कर-तीर्थ) से तीर्थयात्रा करने निकले। तीर्थयात्रा पूरी करने के बाद आप नेपाल गये और वहाँ पर निर्जन वन में योगाभ्यास करने लगे।

एक दिन नेपाल के राजा सेना के साथ मृगया के लिए वन में विचरण करने गये। उनके सेनापति ने एक शेर को लक्ष्य करके गोली चलायी। शेर प्राणभय से भयभीत होकर आर्तनाद करता हुआ वेग से भागने लगा और जहाँ पर स्वामीजी ध्यानमग्न बैठे थे वहीं पर बिल्ली की भाँति उनके पैरों पर लेट गया। स्वामीजी का ध्यान भंग हो गया। आँखें खोलते ही वे सब विषय समझ गये तथा उन्होंने बाघ के शरीर पर हाथ फेरकर उसे आश्वस्त किया। शेर का पीछा करने बाले सैनिक उस दृश्य को देखकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये और जड़वत् उस दृश्य को देखने लगे और अतिभयभीत अवस्था में धीरे-धीरे स्वामीजी के पास आये और उन्हें प्रणाम किया। तब स्वामीजी मुस्कराकर बोले—आश्चर्य में होने की कोई बात नहीं। यदि तुम हिंसा की प्रवृत्ति छोड़ दो, तो कोई भी हिंसक पशु तुम्हारे प्रति हिंसा का भाव नहीं रखेगा। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह देखो कि शेर कैसा शान्त होकर लेटा है। तुम अब भी उसी भय से पीड़ित हो रहे हो। अगर होता तो तुम बहुत पहले ही इसका (शरीर का) वधकर सकते थे। इस संसार में सभी प्राणी समान हैं। किसी को किसी की हिंसा करना या उसे पीड़ित करना उचित नहीं है।

सैनिकों ने अविलम्ब सम्पूर्ण घटना विस्तारपूर्वक महाराज (नेपालनरेश) को बतायी। राजा अपने पार्षदों और सैनिकों को साथ लेकर स्वामीजी की सेवा में उपस्थित हुए और बहुमूल्य रत्न भेंटकर स्वामीजी के चरणों को स्पर्श किया। स्वामीजी ने राजा तथा सैनिकों को देखा तथा मुस्कराये और राजा की दी हुई वस्तु को स्पर्श भी नहीं किया। विश्वम्भर के रत्न-भण्डार का अमूल्यरत्न उपभोग करके जो तृप्त

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो उसके लिए इन नश्वर पार्थिव पदार्थों का क्या आकर्षण ? स्वामीजी ने राजा को उचित सम्मान सहित नाना प्रकार के सदुपदेश देकर बिदा किया। स्वामीजी के इस प्रकार के कार्य-कलाप का राज्य में प्रचार होने लगा जिससे उनके पारमार्थिक कार्य में विघ्न पड़ने लगा। इसलिए वे नेपाल राज्य को छोड़कर तिब्बत चले गये और वहाँ पर कुछ दिन रहने के बाद मानसरोवर चले आये। वहीं पर बहुत दिनों तक योग-साधन किया।

अलौकिक शक्ति

मानसरोवर के बाद स्वामीजी नर्मदा तट पर मार्कण्डेय आश्रम में रहे। फिर प्रयाग धाम गये। एक दिन स्वामीजी घाट पर बैठे थे। उसी समय एक नाव यात्रियों से भरी हुई उस पार से आ रही थी। नाव बीच धार में पहुँची ही थी कि अकस्मात् आकाश में बादल छा गये और मूसल धार वर्षा होने लगी। प्राणभय से प्रायः सभी व्यक्ति घाट छोड़कर जाने लगे लेकिन स्वामीजी घाट पर ही बैठे रहे। रामतारण भट्टाचार्य नामक एक ब्राह्मण, जो स्वामीजी को पहचानता था, उनको इस तरह से तूफान और वर्षा में बैठे देखकर आश्चर्य और कौतूहल से भर गया तथा स्वामीजी के पास आकर उसने उनसे विनयपूर्वक अपने साथ चलने को कहा। स्वामीजी ने कहा कि बाबा, तुम मेरे लिए नाहक परेशान हो रहे हो। मुझे किसी भी तरह कष्ट का अनुभव नहीं हो रहा है। हम अभी यहाँ से नहीं जा सकते। जो नाव तुम यात्रियों से भरी देख रहे हो वह डूब जायगी। उसके यात्रियों को बचाना है। इतना कहने भर की देर थी कि वह नाव एकाएक डूब गई और साथ ही स्वामीजी भी अदृश्य हो गये। यह सब देखकर वह ब्राह्मण जड़वत् वहीं खड़ा हो गया और आगे के परिणाम की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ ही क्षण के पश्चात् ब्राह्मण ने देखा कि नाव पानी पर तैरती आकर किनारे लग गयी। यात्रियों के साथ स्वामीजी को भी साथ उतरते देखा तथा यात्री भी एक निर्वस्त्र व्यक्ति को अपने साथ देखकर बहुत चकित हुए। ब्राह्मण भी चकित होकर स्वामीजी के चरणों पर गिर पड़ा और कौतूहलवश जानने की इच्छा कर रहा था कि स्वामीजी उसके मनोभाव को समझकर स्वयं ही बोले कि इस घटना को देखकर इतने चकित क्यों हो रहे हो ? आश्चर्य करने की बात नहीं है। मनुष्य इस संसार के अनित्य सुख मात्र में डूबा रहता है, अपनी क्षमता की ओर ध्यान नहीं देता। भगवान् इस शरीर का सृजन कर स्वयं इसमें विराजते हैं। प्रत्येक मनुष्य में ईश्वरीय शक्ति विद्यमान है। इस अनित्य संसार के सुख के लिए मनुष्य जितना परिश्रम करता है, यदि उस परिश्रम के एक अंश से भी प्रयत्न करे तो भगवान् को प्राप्त कर सकता है और संसार में उसके लिए कोई भी वस्तु असाध्य नहीं रहेगी। तुम आश्चर्य मत करो और व्यर्थ में ही वर्षा में भीगकर कष्ट मत उठाओ, घर जाओ। ऐसा कहकर स्वामीजी वहाँ से अदृश्य हो गये।

अनन्तर स्वामीजी माघ के महीने में प्रयागघाट को छोड़कर काशी आये और अस्सीघाट पर तुलसीदासजी के बगीचे में रहने लगे। वहाँ रहते समय कभी-कभी लोलार्क

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुण्ड पर जाया करते थे। वहाँ पर उन्होंने कुष्ठ रोग से ग्रसित ब्रह्म सिंह नामक एक बधिर को अपने स्पर्शमात्र से ही ठीक किया।

बाद में बाबा वेदव्यासजी के आश्रम में रहने लगे। उन्होंने एक बंगाली ब्राह्मण को, जो यक्ष्मा के रोग से पीड़ित होकर अपने जीवन से हताश हो चुका था लगास्वस्थ किया वह बाबा के दर्शन एवं मिट्टी (गंगा नदी की) के देने मात्र से पूर्ण स्वस्थ हो गया। कुछ दिनों बाद बाबा वेदव्यास आश्रम छोड़कर हनुमान् घाट पर रहने लगे।

स्वामीजी के इस तरह के कार्यों का अत्यधिक प्रचार होने से उन्हें लोग अपने मनोरथों के लिए परेशान करने लगे। इसलिए स्वामीजी ने मौन धारण कर लिया। कोई भी जो कुछ देता था आप उसे ग्रहण कर लेते थे, किसी भी प्रकार का विचार नहीं करते थे। काशीवासी और यात्रीगण आपका दर्शन करके अपने को धन्य तथा जीवन को कृतार्थ समझते थे। उसी समय से काशीवासी तेलंग देश का होने के कारण उनका गुरुदत्त या पितृदत्त नाम **गणपति स्वामी** और **तैलंगधर** न जानने के कारण, उन्हें **तैलंग स्वामी** के नाम से पुकारने लगे।

खाने-पीने में कुछ विचार न करने के कारण एक दिन किसी दुष्ट व्यक्ति ने उन्हें चूना घोलकर पिला दिया और स्वामीजी ने निर्विकार भाव से उसे पीकर उसके सामने ही लघुशंका करके पानी और चूना अलग-अलग निकाल दिया। एक दिन एक धनीमानी व्यक्ति ने २० भर सोने के दो कंगन स्वामीजी के हाथों में पहना दिये। पुनः कुछ दुष्ट व्यक्तियों ने काफी मात्रा में मद्यपान कराकर उनको बेहोश कर उनका कंकण लेना चाहा। मद्यपान से न तो स्वामीजी बेहोश हुए और न क्रुद्ध ही, बल्कि उन व्यक्तियों का अभिप्राय समझकर उसी समय दोनों कंगन उन व्यक्तियों को दे दिये।

तैलंग स्वामी निर्वस्त्र रहते थे। इसलिए एक दिन कई पुलिस कर्मचारी उनको पकड़कर जिले के अधिकारी के पास ले गये। अधिकारी ने उन्हें वस्त्र पहनने का आदेश दिया। उसने उन्हें झूठा संन्यासी समझकर जेल में बन्द कर दिया। दूसरे दिन सुबह लोग देखते हैं कि जेल की कोठरी पानी से भरी है और स्वामीजी मुस्कराते हुए बाहर घूम रहे हैं। अधिकारी ने पूछा, तुम कैसे बाहर निकल आये और कोठरी में इतना पानी कैसे भरा पड़ा है? स्वामीजी ने कहा कि रात्रि को जोर से लघुशंका लगी हुई थी और कमरे में ताला बन्द था। इसीलिए लघुशंका कर दिया और कमरे के बाहर निकल आया। कोई किसी का जीवन ताला में बन्द करके नहीं रख सकता है। अगर ऐसा होता तो जेल में बन्द कर देने से मृत्युकाल में मनुष्य मरता नहीं। इस आश्चर्यजनक घटना को देखकर अधिकारी अवाक् रह गये तथा उन्हें यथेच्छ घूमने की अनुमति दे दी।

स्वामीजी कुछ दिनों तक दशाश्वमेध घाट पर रहते थे और बाद में पंचगंगा घाट पर स्थित बिन्दुमाधव के मन्दिर के निकट एक दक्षिणी ब्राह्मण मंगल भट्ट के मकान में आकर रहने लगे। उस समय वे किसी से बात नहीं करते थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बार उज्जैन के राजा काशी आये। अपने बन्धु-बान्धवों के साथ नौका से मणिकर्णिका घाट आ रहे थे। कुछ दूर आने के बाद उन्होंने तैलंग स्वामी को जल के ऊपर बैठे हुए देखा और आश्चर्यान्वित हो उठे। किसी से स्वामीजी का परिचय पूछा तो एक भक्त ने बताया कि आप प्रसिद्ध योगी हैं, जल, थल और वायु पर आपका समान अधिकार है। इस बात को सुनकर महाराज कौतूहलवश बोले, जो मनुष्य अपने शरीर-स्थित शत्रुओं का दमन कर चुका है उसका बाहरी शत्रु क्या बिगाड़ सकता है? और उनको नौका पर लाने की इच्छा व्यक्त की। महाराज का अभिप्राय व्यक्त करने के पूर्व ही स्वामीजी नौका पर चढ़ गये। महाराज इससे बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्हें ऐसा देखकर विस्मय हुआ। महाराज के हाथ में अंग्रेज सरकार के द्वारा उनकी किसी वीरता के कार्य के उपलक्ष्य में दी हुई एक तलवार थी। स्वामीजी उस तलवार को देखने के इच्छुक हुए। महाराज भी उस तलवार को स्वामीजी के हाथों में देकर अपने को बहुत सौभाग्यवान् समझने लगे। स्वामीजी ने उस तलवार को अच्छी तरह से देखकर गंगा में फेंक दिया। महाराज अत्यन्त क्रोधित होकर कहने लगे, यह कैसा कपटी साधु है जो दूसरों के द्रव्य को लेकर उसका गुण न जानकर नष्ट कर दे। इनकी साधुता पर दुःख है। न जाने इनके किस गुण को देखकर आपलोग इनकी प्रशंसा कर रहे थे। महाराज का ऐसा वचन सुनकर लोग मर्माहत हो उठे। स्वामीजी का एक भक्त विनीत भाव से महाराज से बोला कि आप क्रोध न करें। हम आपकी तलवार निकलवा देते हैं।

इस तरह बात करते-करते नाव घाट के पास आ गयी और स्वामीजी ने नौका पर से उतरना चाहा। लेकिन महाराज ने उन्हें उतरने नहीं दिया और उन्हें विशेष दण्ड देने का संकल्प किया। महाराज क्रोध और क्षोभ से पीड़ित होकर जल रहे थे। ऐसा समझकर स्वामीजी ने गंगा में हाथ डाला और तुरन्त वैसी ही दो तलवारें उठाकर महाराज के हाथ में दे दीं और बोले कि जो तुम्हारी हो उसे ले लो। दोनों तलवारें बिलकुल एक-सी होने के कारण महाराज उसे पहचान नहीं सके। इस पर बाबा ने कहा कि जब तुम अपनी वस्तु नहीं पहचान सकते तो उस पर तुम्हारा स्वामित्व कैसा या वह तुम्हारी कैसे? यदि यह तुम्हारी होती तो तुम अवश्य पहचानते। जो वस्तु तुम्हारी नहीं है उसके लिए इतना क्रोध क्यों? तुम्हारे जैसा मूर्ख दुनियाँ में कोई नहीं। एक तलवार स्वामीजी ने उन्हें देकर, दूसरी पानी में फेंक दी।

तैलंग स्वामी कभी असहनीय शीत के समय पानी में अवस्थान करते, कभी प्रचण्ड ग्रीष्म के उत्ताप से जब कोई बाहर जाने का साहस नहीं करता, वे अनायास ही उत्तप्त बालुका पर आराम से शयन करते। कभी-कभी तीन-चार घण्टे पानी में डूबे रहते, तो कभी स्थिर भाव से पानी के ऊपर बहते हुए बहाव के विपरीत जाते।

उपदेश

जगत् में जो जैसा अधिकारी है उसको वैसी प्रणाली से तत्वज्ञान शिक्षा देने के लिए स्वामीजी ने स्वयं देव-देवियों की मूर्ति की प्रतिष्ठा की है। मन की धारणा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति के अनुसार जीव ईश्वर की सत्ता का अनुभव करता है। स्वामीजी हिन्दू ब्राह्मण थे और हिन्दू रीति से ही पवित्र जीवन गठन कर उन्होंने हिन्दू धर्म का चरम उत्कर्ष दिखलाया। उन्होंने दूसरे धर्म का दोष-गुण नहीं विचारा तथा उन्हें द्वेष की दृष्टि से न देखकर शान्त भाव से हिन्दू धर्म की सेवा की। असीम शक्ति के रहने पर भी वह सब विषयों से उदासीन रहते थे। मान, अपमान, यश और अपयश सभी उनके लिए समान थे। इस लिए उनके अन्दर हिंसा-द्वेष का कोई भाव न था। सभी के उपास्य देवता और परब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है। सहजज्ञान और सन्तुष्ट चित्त से जो भी जिसकी उपासना करे, वही दिव्य ज्ञान-लाभ प्राप्त करने में समर्थ होता है।

किसी के धर्म के प्रति अश्रद्धा करना या उसका निरादर करना कदापि उचित नहीं है। वे सम्पूर्ण जगत् के अणु एवं परमाणु को ब्रह्ममय समझते थे।

स्वामीजी कहते थे कि मन के स्थूलभाव से ईश्वर का स्थूलभाव, मन के सूक्ष्म-भाव से ईश्वर का सूक्ष्मभाव और मन के विलय से ईश्वर का स्वरूप उपलब्ध होता है। मन के रहते हुए कोई भी निराकार या निर्गुण पदार्थ की धारणा नहीं कर सकता है। भाव विकास के साथ भावमय भगवान् की मूर्ति का विकास होता है। भाव की घनीभूत अवस्था से मूर्ति प्रकाशित होती है। जो व्यक्ति मन की विशुद्धता और सरल भाव के अधिकारी हैं, वे ही प्रेम और भक्ति के आवेग से ईश्वर का दर्शन पाकर कृतार्थ हो सकते हैं या होते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट ४

डा० गंगानाथ झा के ग्रन्थ

डा० गंगानाथ झा ने अनेक महत्त्वशाली तथा विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थों की रचना की। इनकी रचनाओं में संस्कृत के दार्शनिक ग्रन्थों के अंग्रेजी अनुवाद ही अधिक प्रसिद्ध हैं। डा० झा भारतीय साहित्य एवं संस्कृत भाषा का प्रचार विदेशियों में भी करना चाहते थे। इसी भावना से प्रेरित होकर इन्होंने संस्कृत के कठिन तथा दुरूह दार्शनिक ग्रन्थों का अंग्रेजी में अनुवाद किया जिससे ये ग्रन्थ विदेशी विद्वानों के लिए सुलभ हो जायँ।

डा० गंगानाथ झा की प्रशस्त प्रतिभा का प्रसाद संस्कृत से अंग्रेजी में अनूदित इनके ग्रन्थों में विशेष रूपेण पाया जाता है। **शाबर भाष्य, मेधातिथि-भाष्य तथा खण्डन-खण्ड-खाद्य** जैसे दुर्गम एवं दुरूह दार्शनिक ग्रन्थों का अनुवाद अंग्रेजी में प्रस्तुत करना अत्यन्त कठिन कार्य है। बड़े-बड़े संस्कृत के दिग्गज विद्वान् भी इन ग्रन्थों को हृदयंगम करने में ही चकरा जाते हैं, फिर इनका अनुवाद करने की कथा ही दूर रही। परन्तु डा० झा ने अपने गम्भीर अध्ययन, कठोर अध्यवसाय तथा अटूट लगन के द्वारा इन दार्शनिक ग्रन्थों को अंग्रेजी में सुलभ कर दिया। वास्तव में इनकी प्रतिभा अनुवाद-प्रवण थी। अतः यदि इन्हें 'अनुवाद-शूर' की उपाधि से अलंकृत किया जाय, तो कुछ अनुचित न होगा।

डा० गंगानाथ झा के ग्रन्थों को साधारणतया तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है —

(क) मौलिक ग्रन्थ
(ख) अनूदित ग्रन्थ
(ग) सम्पादित ग्रन्थ

मौलिक ग्रन्थ

इन मौलिक रचनाओं का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जाता है।

(१) हिन्दू विधि का स्रोत — डा० झा ने सन् १९२९ ई० में पटना विश्वविद्यालय में 'रामदीन लेक्चर्स' रूप में हिन्दी में कुछ व्याख्यान दिये थे। इन्हीं व्याख्यानों का संग्रह इस ग्रन्थ में किया गया है जो सन् १९३१ ई० में पटना विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुआ।

(२) दि फिलासोफिकल डिसिप्लिन — कलकत्ता विश्वविद्यालय में सन् १९२६ ई० में डा० झा ने 'कमला लेक्चर्स' के नाम से जो भाषण दिये थे उन्हीं का संकलन इस ग्रन्थ में प्रकाशित हुआ है (कलकत्ता विश्वविद्यालय सन् १९२८ ई०)। इस ग्रन्थ में भारतीय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शनों की आचार-मीमांसा का निरूपण बड़े विस्तार से किया गया है। भारतीय दर्शन ज्ञान की उपलब्धि के प्रकारों का वर्णन कर अपने ज्ञानपक्ष का ही स्वरूप प्रकट करता है, परन्तु इतने से ही उसका लक्ष्य पूर्ण नहीं होता, जब तक यह ज्ञान जीवन के माध्यम से व्यावहारिक जगत् में परिणत नहीं किया जाता। इसी का निर्देश इस ग्रन्थ में है।

(३) **पूर्व मीमांसा इन इट्स सोर्सेज** - यह ग्रन्थ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सन् १९४२ ई० में प्रकाशित हुआ था। डा० उमेश मिश्र ने अपनी आलोचनात्मक सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची से इसे संवलित किया है। मीमांसा दर्शन के सिद्धान्तों का निरूपण उनके प्रतिपादक मूल ग्रन्थों के तत्तत् स्थलों के अनुवादों द्वारा किया गया है। विशुद्ध प्रतिपादन की दृष्टि से यही मार्ग श्रेयस्कर है और मीमांसा के मर्मज्ञ विद्वान् होने के नाते डा० गंगानाथ झाजी ने इसी मार्ग को सफलतापूर्वक अपनाया है। इसका द्वितीय संस्करण १९६४ ई० में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित है।

(४) **शंकर वेदान्त**—दरभंगा नरेश सर रमेश्वर सिंह भाषणमाला के अन्तर्गत व्याख्यानरूप में प्रथम प्रदत्त होकर यह इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा १९३९ ई० में प्रकाशित हुआ है। इस पाण्डित्यपूर्ण अंग्रेजी ग्रन्थ में अद्वैत वेदान्त की आचार-मीमांसा का विशेषरूपेण प्रतिपादन है। डा० झा की सम्मति है कि शंकर द्वारा प्रतिपादित वेदान्त केवल मस्तिष्क को सन्तोष देने वाला दर्शन न होकर मानव जीवन को उदात्त तथा उन्नत बनाने वाला अध्यात्म-मार्ग है।

(५) **योग दर्शन**—पतञ्जलि के योगसूत्रों पर व्यास भाष्य के आधार पर प्रणीत मौलिक अंग्रेजी ग्रन्थ जिसका प्रकाशन थियोसाफिकल सोसाइटी, अड्यार (मद्रास) ने किया है।

(६) **दि प्रभाकर स्कूल आफ पूर्व मीमांसा**—डा० झा का यह बहुचर्चित तथा बहुप्रशंसित ग्रन्थ डी० लिट् की थीसिस है। यह नितान्त महत्त्वपूर्ण प्रमेयबहुल ग्रन्थ है जिसमें मीमांसा दर्शन में प्रभाकर के सिद्धान्तों का आकलन तथा निरूपण प्रथम बार किया गया है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित, १९११ ई०।

(७) **सोर्सेज ऑफ हिन्दू लॉ**—हिन्दू ला (हिन्दू विधि) के मूल स्रोतों का इसमें बड़े विस्तार से अनुशीलन किया गया है। विषय से सम्बद्ध समग्र प्रमेयों का विवरण मूल धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों, उनकी टीकाओं एवं निबन्ध ग्रन्थों के आधार पर दिया गया है। इंडियन प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित, १९३०-१९३३ ई०।

अभिनन्दन ग्रन्थों में प्रकाशित लेख—आर्यन इनवेजन आफ इण्डिया—इज इट ए मिथ ? (आचार्य डी० आर० भण्डारकर पुष्पाञ्जलि वालूम, कलकत्ता सन् १९४० ई० में प्रकाशित)। भागवतम् (डा० कुप्पु स्वामी शास्त्री कामेमोरेशन वालूम, मद्रास सन् १९३७); कुमारिल एण्ड वेदान्त (रायल एशियाटिक सोसाइटी, बाम्बे ब्राञ्च न्यू० सी० भाग ६ (१९३०, पृ० २२८-३९), ए नोट आन शाबर भाष्य (डा० मोदी मेमोरियल वालूम, बम्बई सन् १९३० ई०)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभाकर थ्योरी आफ एरर—(डा० डी० आर० भण्डारकर पुष्पाञ्जलि वालूम कलकत्ता १९४०) रिलिजन—दि नीड आफ दि प्रेजेण्ट जेनेरेशन—प्रो० के० वी० रङ्गस्वामी एय्यर कामेमोरेशन वालूम, मद्रास १९४० ई०)

सम रेअर वर्क्स आन वैद्यक (डा० एस० कृष्ण स्वामी एयङ्गार कामेमोरेशन वालूम, मद्रास सन् १९३६ ई०)।

सोर्सेज आफ प्रापर्टी अण्डर हिन्दू ला (मालवीय कामेमो० वालूम, बनारस १९३२)।

दि टीचींग आफ ला इन इण्डियन यूनिवर्सिटीज—(रामलिंग रेड्डी षष्टि अब्द पूर्ति कामेमो० वालूम, वाल्टेयर १९४०।

इन विशिष्ट निबन्धों के अतिरिक्त डा० झा ने 'इण्डियन थाट' नामक शोध पत्रिका के अनेक अंकों में 'न्याय फिलासोफी आफ गौतम' शीर्षक से अनेक विमर्शात्मक लेखों को लिखकर प्रकाशित कराया था।

डा० झा ने केवल अंग्रेजी भाषा में ही अपने ग्रन्थों की रचना नहीं की है प्रत्युत राष्ट्रभाषा हिन्दी में भी दो या तीन ग्रन्थ लिखे हैं—

(१) **कवि-रहस्य**—इसमें कवि-जीवन, कवि-शिक्षा आदि विषयों का 'काव्य मीमांसा' के आधार पर रोचक वर्णन पाया जाता है।

(२) **न्याय-प्रकाश** और (३) **वैशेषिक दर्शन** ये—दोनों ग्रन्थ नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से सन् १९२० तथा १९२१ ई० में प्रकाशित हुए। कवि रहस्य का प्रकाशन हिन्दुस्तानी अकादमी प्रयाग से सन् १९५० ई० में हुआ था।

अनूदित ग्रन्थ

अनुवाद के कार्य में गङ्गानाथ झा की बुद्धि जितनी कुशलता से चलती थी, उतनी अन्यत्र नहीं। इनकी बुद्धि का वैभव और प्रतिभा का प्रसाद हमें इनके अनूदित दार्शनिक ग्रन्थों में विशेष रूपेण प्राप्त होता है। इन ग्रन्थों का विवरण यहाँ प्रस्तुत है :—

(१) **गोतम का न्यायसूत्र**—वात्स्यायन के भाष्य तथा डा० झा के द्वारा लिखित टिप्पणियों के साथ अंग्रेजी में अनूदित।[1]

(२) **गोतम का न्यायसूत्र—वात्सायन के भाष्य तथा उद्योतकर के वार्तिक** एवं वाचस्पति मिश्र की न्याय-वार्तिक-तात्पर्यटीका और उदयनाचार्य की तात्पर्य-परिशुद्धि की टिप्पणियों के साथ अंग्रेजी में अनुवाद।[2]

(३) **दि पूर्वमीमांसा शास्त्र आफ जैमिनि**[3]—डा० झा ने इस ग्रन्थ के प्रथम तीन अध्यायों का स्वरचित मौलिक टीका के साथ अंग्रेजी में अनुवाद किया है।

---

१. ओरियण्टल बुक एजेन्सी, पूना सन् १९६३ ई०।

२. 'इण्डियन थाट' नामक शोध पत्रिका के सन् १९१२ ई० से १९१८ तक के विभिन्न अंकों में प्रकाशित।

३. पाणिनि आफिस, इलाहाबाद से १९१६ में प्रकाशित।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) **तर्कभाषा**—न्याय शास्त्र का यह प्राइमर माना जाता है।[1] यही ग्रन्थ बाद में ओरिएण्टल बुक एजेन्सी पूना से सन् १९२५ ई० में पुस्तक रूप में भी प्रकाशित हुआ।

(५) **श्लोक वार्तिक**—सुप्रसिद्ध विद्वान् कुमारिल भट्ट द्वारा रचित यह निःसन्देह मीमांसाशास्त्र का एक उत्कृष्ट तथा कठिन ग्रन्थ है। डा० झा ने सुचरित मिश्र की टीका के कतिपय अंशों, तथा पार्थसारथि मिश्र की टीका के साथ इसका अंग्रेजी में रूपान्तर किया है।[2]

(६) **तन्त्र वार्तिक**—कुमारिल भट्ट के द्वारा निर्मित यह शाबर भाष्य की सुप्रसिद्ध टीका है। जैमिनि के पूर्व मीमांसा सूत्रों पर शबर मुनि के अपना सुप्रसिद्ध 'शाबर भाष्य' लिखा है। इसी भाष्य की यह कुमारिल द्वारा विरचित टीका है जो विषय की कठोरता तथा विस्तार में अद्वितीय है।[3] बड़े परिश्रम से इसका अंग्रेजी में अनुवाद प्रस्तुत किया गया है।

(७) **अद्वैतसिद्धि**—मधुसूदन सरस्वती द्वारा रचित यह ग्रन्थ अद्वैत दर्शन का प्रौढ़ एवं प्रमेय-बहुल प्रतिपादक है। यह बड़ा कठिन ग्रन्थ माना जाता है। अनुवाद डा० झा ने किया है।[4]

(८) **मनुस्मृति**—मनुस्मृति के ऊपर मेधातिथि ने अपने पाण्डित्यपूर्ण तथा प्रकाण्ड मनुभाष्य की रचना की है। इसी महान् विद्वत्तापूर्ण भाष्य का डा० झा ने बड़े परिश्रम तथा अध्यवसाय के साथ अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया है।[5]

(९) **मनुस्मृति**—डा० गंगानाथ झा द्वारा अंग्रेजी में लिखे गये तुलनात्मक टिप्पण तीन भागों में[6]।

(१०) **योगदर्शन**—पतञ्जलि के योग सूत्रों तथा उस पर व्यास द्वारा लिखित भाष्य का अंग्रेजी में अनुवाद। इसके साथ ही वाचस्पति मिश्र की तत्त्व-वैशारदी, विज्ञानभिक्षु का योगवार्तिक तथा भोज के राजमार्तण्ड के टीका ग्रन्थों से टिप्पणियों के साथ अनुवाद।[7]

---

१. 'इण्डियन थॉट' भाग ५, अंक (१९१० ई०)
२. एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल कलकत्ता १९०० ई० (बिब्लोथिका इण्डिका भाग ५)
३. एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल कलकत्ता सन् १९२४ ई० (बिब्लोथिका इण्डिका नं० १६१)।
४. 'इण्डियन थॉट' भाग ५ तथा ६ (१९१४ ई०) के विभिन्न अंकों में प्रकाशित।
५. कलकत्ता विश्वविद्यालय से पाँच भागों में वृहत् जिल्दों में प्रकाशित (१९२०-२६ई०)
६. कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता भाग १–३ सन् १९२४–२९ ई०
७. थियोसोफिकल पब्लिकेशन, बम्बई १९०७ ई०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(११) **पदार्थ-धर्म-संग्रह**—प्रशस्तपाद द्वारा रचित इस ग्रन्थ के ऊपर श्रीधर ने न्यायकन्दली नामक टीका लिखी है। डा० झा ने मूल तथा टीका दोनों ग्रन्थों का अनुवाद किया है।[1]

(१२) **शाबर भाष्य**—जैमिनि के मीमांसा सूत्रों के ऊपर शबर मुनि या स्वामी का शाबर भाष्य अत्यन्त प्रसिद्ध, विद्वत्तापूर्ण तथा दुरूह ग्रन्थ है। इस प्रकाण्ड ग्रन्थ का भी डा० झा ने अंग्रेजी में रूपान्तर प्रस्तुत किया है। यह ग्रन्थ वास्तव में किसी विद्वान् की वैदुषी का निकषग्रावा है जिस पर कसने पर डा० झा की विद्वत्ता निखर उठती है।[2]

(१३) **तत्त्वसंग्रह** - बौद्ध विद्वान् शान्तरक्षित द्वारा रचित यह बड़ा ही पाण्डित्यपूर्ण विशालकाय ग्रन्थ है। इस पर कमलशील ने टीका लिखी है। डा० झा ने इस बौद्ध धर्म के दार्शनिक ग्रन्थ का भी टीका के साथ अनुवाद किया है जो दो बृहत् भागों में प्रकाशित हुआ है।[3]

(१४) **खण्डन-खण्ड-खाद्य**—नैषधीय-चरित के रचयिता महाकवि श्रीहर्ष के द्वारा प्रणीत वेदान्त दर्शन का यह चूडान्त ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ विषय की दृष्टि से जितना दुरूह और कठिन है उतना ही प्रतिपादन की दृष्टि से ठोस तथा गम्भीर है। इस ग्रन्थ को समझना भी पण्डितों के लिए टढ़ी-खीर है। ऐसे शुष्क तथा दुरूह ग्रन्थ का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद सचमुच ही दुःसाध्य व्यापार है जिसे डा० झा ने बड़ी सफलता के साथ सम्पन्न किया है। इस कार्य में डा० थीबो ने भी योगदान किया है।[4]

(१५) **छान्दोग्योपनिषद्**—शंकराचार्य के भाष्य के साथ इस उपनिषद् का सरल अनुवाद।[5]

(१६) **योगसार संग्रह**—विज्ञान भिक्षु रचित इस ग्रन्थ का अनुवाद।

(१७) **योगसार संग्रह**—इसी ग्रन्थ का देवनागरी लिपि में मूल पाठ के साथ अंग्रेजी में अनुवाद किया है।[6]

---

१. 'पण्डित' नामक शोधपत्र के १९०२ ई० से लेकर १९१५ ई० तक के विभिन्न अंकों में प्रकाशित।

२. बड़ौदा ओरिएण्टल इन्स्टीट्यूट (गायकवाड ओरिएण्टल सीरीज नं० ६६, ७०, ७३) (सन् १९३३-३६ ई०)

३. बड़ौदा ओरिएण्टल इन्स्टीट्यूट सन् १९३७-६ (गायकवाड ओरिएण्टल सीरीज नं० ८०, ८१ में प्रकाशित)।

४. 'इण्डियन थाट' पत्रिका के १९०७ से १९१४ ई० तक के अनेक अंको में प्रकाशित।

५. जी० ए० नटेसन एण्ड को, मद्रास सन् १८९९ ई०

६. थियासोफिकल पब्लिकेशन, बम्बई सन् १८९४ ई०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादित ग्रन्थ

डा० गंगानाथ झा ने अनेक दार्शनिक तथा साहित्यिक ग्रन्थों का सम्पादन भी किया है जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

(१) **मीमांसा-न्यायप्रकाश**—आपदेव द्वारा विरचित इस मीमांसा-ग्रन्थ का सम्पादन डा० झा ने 'दि पण्डित' नामक शोधपत्र के विभिन्न अंकों में किया है (सन् १९०४ और १९०५ के अंक)

(२) **गौतम का न्यायसूत्र**—वात्स्यायन के भाष्य तथा खद्योत नामक स्वरचित टिप्पणी (नोट्स) के साथ सम्पादन।[1]

(३) **न्यायदर्शन**—गोतम के सूत्रों के साथ वात्स्यायन का भाष्य। इसके अतिरिक्त डा० झा द्वारा लिखित **खद्योत** नामक टीका तथा रघूत्तम द्वारा निर्मित **भाष्यचन्द्र** नामक टीकाओं से संवलित ग्रन्थ का सम्पादन, ढुंढिराज शास्त्री महोदय के साथ।[2]

(४) **जयन्त भट्ट की न्यायकलिका**—भूमिका के साथ इस ग्रन्थ का सम्पादन।[3]

(५) **मीमांसा परिभाषा**—मेडिकल हाल प्रेस, बनारस से १९०५ ई० में सम्पादित कर प्रकाशित।

(६) **भावना-विवेक**—मण्डन मिश्र के द्वारा रचित इस ग्रन्थ का भट्ट उम्बेक की टीका के साथ सम्पादन। साथ में झाजी की भूमिका से संवलित।[4]

(७) मण्डन मिश्र ने श्लोकों में पूरे मीमांसा सूत्रों के विषय का संक्षेप बड़ी कुशलता से एक ग्रन्थ में किया था जिसका नाम है—**मीमांसानुक्रमणिका**। परन्तु यह ग्रन्थ बहुत ही संक्षिप्त था। फलतः डा० गंगानाथ झा ने इसके ऊपर एक विस्तृत संस्कृत टीका का निर्माण किया जिसका नाम रखा—**मीमांसा-मण्डन**। फलतः इन दोनों का सम्पादन कर चौखम्भा सीरीज में प्रकाशित किया। टीका पाण्डित्यपूर्ण है और टीकाकार के मीमांसा-विषयक वैदुष्य का सद्यः परिचायक तथा प्रमापक है।[5]

(८) **मनुस्मृति**—मेधातिथि के मनुभाष्य के साथ विमर्शात्मक संस्करण।[6]

(९) **तन्त्ररत्न**—पार्थसारथि मिश्र के द्वारा कुमारिल भट्ट की 'टुप् टीका' की यह व्याख्या है। प्रथम भाग का ही सम्पादन।[7]

---

१. ओरिएण्टल बुक एजेन्सी, पूना से सन् १९३१ में प्रकाशित।
२. चौखम्भा संस्कृत सीरीज सन् १९२५ ई०।
३. सरस्वती भवन टेक्ट्स नं० १७ (सन् १९२५ ई०)
४. गवर्नमेण्ट प्रेस, इलाहाबाद सन् १९२२।
५. चौखम्भा संस्कृत सीरीज, काशी।
६. एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल १९३२ ई०।
७. सरस्वती भवन टेक्ट्स, काशी, सन् १९३० ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१०) **वाद विनोद**—शंकर मिश्र द्वारा रचित न्यायविषयक उपादेय ग्रन्थ का प्रकाशन।[1]

(११) **खण्डनखण्ड-खाद्य**—श्रीहर्ष के इस सुप्रसिद्ध ग्रन्थ का डा० झा ने **विद्या सागरी** अथवा **खण्डन-फक्किका-विभञ्जन** (आनन्दपूर्ण रचित) तथा चित्सुख, शंकर मिश्र एवं रघुनाथ की टीकाओं के कतिपय अंशों को उद्धृत करते हुए सम्पादन किया है।[2]

(१२) **पुरुष-परीक्षा**—मैथिलकोकिल विद्यापति द्वारा रचित पुरुषपरीक्षा नामक ग्रन्थ का विद्वत्तापूर्ण सम्पादन।[3]

डा० गंगानाथ झा ने इन दार्शनिक ग्रन्थों के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य के अनेक काव्य ग्रन्थों का भी सम्पादन किया है जिससे इनकी दर्शन की रुचि साथ ही साथ साहित्यिक रुचि का भी पता चलता है।

(१) **कादम्बरी**—बाणभट्ट की अनुपम कृति का यह संक्षिप्त संस्करण है जो विश्व-विद्यालयों के पाठ्य-ग्रन्थ के रूप में सम्पादित किया गया था।

(२) **प्रसन्नराघव नाटक**—इस नाटक की भावबोधिनी नामक नवीन संस्कृत टीका डा० झा ने लिखी।

(३) **मेघदूतम्**—कालिदास के खण्डकाव्य मेघदूत का यह सम्पादित रूप है।

—:o:—

१. इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद सन् १९१५ ई०।
२. चौखम्भा संस्कृत सीरीज, काशी सन् १९१४ ई०।
३. वेलवेडियर प्रिन्टिंग वर्क्स, इलाहाबाद सन् १९११ ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट ५

काशीवासी एक यूनानी संस्कृतज्ञ

डेमेट्रियस गैलेनोस (१७६० ई०–१८३३ ई०)

प्राचीन यूनान कला तथा साहित्य के क्षेत्र में समस्त पाश्चात्य जगत् का गुरु-स्थानीय है। वहाँ से विकीर्ण होने वाली ज्ञान-किरणों ने पश्चिमी संसार के अज्ञानान्धकार को दूर करने में सर्वथा कृत-कृत्यता प्राप्त की थी। १८ वीं शताब्दी में वह मुसलमान तुर्क साम्राज्य के द्वारा परास्त होकर उसका दास बना हुआ था। उसके निवासी दूर-दूरस्थ देशों से व्यापार करते थे तथा अपने देश का नाम व्यापार के जगत् में उजागर किये हुए थे। भारतवर्ष में भी ये व्यापारी विशेषत: कलकत्ता, नारायणपुर तथा ढाका में अपनी बस्तियाँ बना कर व्यापार करते थे। इनके लिए एक ईसाई धर्मगुरु की आवश्यकता थी जो इनके धार्मिक कार्यों का सम्पादन ख्रिष्टीय विधि-विधानों के द्वारा विधिवत् करावे। इसी कार्य के लिए डेमिट्रियस गैलेनोस यूनान से भारतवर्ष ईसाई धर्मोपदेशक के रूप में १८ वीं सदी के अन्तिम चरण में आया था। गैलेनोस का जन्म यूनान के प्रख्यात नगर एथेन्स में १७६० ई० में हुआ। उसने 'पैटमास' नामक टापू के ईसाई विद्यालय में ईसाई धर्म का शिक्षण प्राप्त किया। उसका उद्देश्य था पूरबी देशों में जाकर ईसाई धर्म का प्रचार करना और इसीलिए वह बंगाल में रहने वाले यूनानी सौदागरों की धार्मिक शिक्षा-दीक्षा के लिए कलकत्ते आया। वहाँ केवल छह सालों तक अध्यापन किया और साथ में व्यापार भी। तदनन्तर वह संस्कृत की शिक्षा प्राप्त करने के लिए काशी चला आया। १७९३ ईस्वी के आस-पास और तब से लेकर अपने निधन पर्यन्त (१८३३ ई०) लगातार ४० साल के सुदीर्घ कालखण्ड में वह वाराणसी में ही रहा, देवभाषा का अध्ययन किया तथा संस्कृत के मान्य ग्रन्थों का अपनी मातृभाषा (यूनानी) में अनुवाद किया।

काशी के उनके सहायक तथा परामर्शदाता थे **मुंशी शीतल सिंह**। 'बनारस राज का तवारीख' (फारसी में निबद्ध तथा लखनऊ से प्रकाशित) के अनुसार १७७६ ई० में जनमे शीतल सिंह १८१६ ई० में काशीनरेश महाराजा **उदितनारायण सिंह** के मुन्शी नियुक्त किये गये। ये अनेक भाषाओं के ज्ञाता, सुयोग्य शासक, 'हिकमत' के विशेष जानकार तथा 'बेखुद' के तखल्लुस से कविता लिखने वाले एक उच्चकोटि के शायर थे। 'रिलिजस सेक्ट्स आफ हिन्दूज' (हिन्दुओं के धार्मिक सम्प्रदाय) नामक ग्रन्थ में उस युग के प्रख्यात अंग्रेज संस्कृतज्ञ विल्सन साहब ने लिखा है कि उन्होंने उस ग्रन्थ की सामग्री दो विद्वान् भारतीयों के फारसी ग्रन्थों से संकलित की है, जिनमें एक थे—**मथुरानाथ** जो वाराणसी के हिन्दूकालेज के पुस्तकालयाध्यक्ष थे और दूसरे थे—**शीतलप्रसाद** जो बनारस के राजा (काशीनरेश) के मुन्शी थे। इनका निधन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८५४ ई० में १८ दिसम्बर को हुआ। इन्हीं शीतलप्रसाद (जो ब्राह्मण थे) के उद्योग से गैलेनोस का परिचय तत्कालीन काशीनरेश महाराज उदितनारायण सिंह के साथ हुआ और इन्हीं के परामर्श तथा उत्साह से प्रेरित होकर उन्होंने संस्कृत का गम्भीर अध्ययन किया और सुयोग्य संस्कृतज्ञ के रूप में कीर्ति प्राप्त की। इनके संस्कृतशिक्षक का ठीक परिचय नहीं मिलता, परन्तु मृत्युकालीन 'विल' (मृत्यु-पत्र) में इनका नाम **'पण्डित शिवराम'** दिया गया है जिन्हें तीन सौ रूपया देने की व्यवस्था की गई थी। गैलेनोस का निधन वाराणसी में ही १८३३ ई० में हुआ और उन्होंने अपने मृत्युपत्र में लिखा है कि चार सौ रुपये मुन्शी शीतलप्रसाद को दे दिये जायँ जिससे वे मेरी कब्र के लिए जमीन खरीद लें, जहाँ मृत्यु के बाद मेरा शरीर गाड़ा जायेगा। इस विवरण से स्पष्ट है कि गैलेनोस को शीतलप्रसाद के सौजन्य तथा मैत्री पर गाढ़ विश्वास था, अन्यथा इन आवश्यक कार्यों का भार उनके ऊपर डालने का औचित्य कथमपि सिद्ध नहीं होता।

काशी में गैलेनोस के शील, स्वभाव तथा आचार-विचार का परिचय कलकत्ते के **बिशप हेबर** के द्वारा लिखित 'यात्रा विवरण' के अवलोकन से मिलता है। १८२४ ई० के आस-पास बिशप हेबर काशी आये थे। उन्होंने लिखा है—

वाराणसी के यूरोपदेशीय व्यक्तियों में एक यूनानी रहता है जो हिन्दू धर्म के विषय में विशेष जानता है। उसका स्वभाव बड़ा ही शिष्ट तथा कोमल है। वह बहुत दिनों से काशी में रहता है। अपने ही साधनों से जीवन-निर्वाह करता है। वह संस्कृत का अध्ययन करता है। वह अपने देश की भाषा का बड़ा ही सुयोग्य विद्वान् है। वह अंग्रेजों से कम सम्पर्क रखता है, परन्तु काशी के प्रधान हिन्दू-परिवारों के साथ वह बड़ी मित्रता रखता है। मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि वह अपने देश को छोड़कर काशी में केवल संस्कृत पढ़ने के निमित्त निवास करता है।

यह गैलेनोस के काशीनिवास के समय का विवरण है। इससे स्पष्ट है कि वह संस्कृत भाषा का बड़ा नैष्ठिक अध्येता था तथा हिन्दू परिवारों के साथ गाढ़ सम्पर्क रखता था और हिन्दूसमाज में प्रतिष्ठा तथा सम्मान का भाजन था।

गैलेनोस को काशी से बड़ा प्रेम था। वह संस्कृत का गाढ़ अनुशीली था। उसके द्वारा अपनी मातृभाषा यूनानी में अनूदित संस्कृत ग्रन्थों का विवरण संक्षिप्तरूप से दिया जाता है। अपने निधन के समय अपने ग्रन्थों, अनुवादों के हस्तलेखों को उसने अपने जन्मनगर एथेन्स के पुस्तकालय को समर्पित कर दिया था जहाँ वे सात भागों में उसकी मृत्यु के अनन्तर प्रकाशित किये गये (१८४५–१८५३ ई०)।

प्रथम खण्ड (१८४५) में उसकी संक्षिप्त जीवनी के साथ भर्तृहरि के, लघुचाणक्य के तथा पण्डितराज जगन्नाथ के भामिनीविलास के चुने हुए पद्यों का अनुवाद प्रस्तुत किया गया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खण्ड २ में जैन कवि अमरचन्द्र के 'बाल भारत' का, खण्ड ३ में भगवद्गीता का (जिसकी रचना १८०२ ई० में की गई), खण्ड ४ में रघुवंश का, खण्ड ५ में इतिहास-समुच्चय का (मूल संस्कृत की प्रति अभी तक उपलब्ध नहीं हुई है), खण्ड ६ में पञ्चतन्त्र, हितोपदेश तथा शुकसप्तति का तथा अन्तिम खण्ड ७ में देवी माहात्म्य (दुर्गासप्तशती) का अनुवाद यूनानी भाषा में प्रकाशित हुए हैं।

इनके अतिरिक्त गैलेनोस ने संस्कृत भाषा के कोश की भी सामग्री इकट्ठी की थी। इस कोश में संस्कृत के अतिरिक्त बँगला, हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के शब्द पर्यायरूप से दिये गये हैं। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। एक संस्कृत-अंग्रेजी-यूनानी कोश के प्रकाशन के निमित्त सामग्री एकत्र की थी। परन्तु यह कार्य भी अधूरा ही रह गया। जितना उपलब्ध है, वह अंश भी पृष्ठों की अस्त-व्यस्तता के कारण उपयोगी होने पर भी प्रकाशन के योग्य नहीं है।

उपरिनिर्दिष्ट अनुवादों में से **देवी माहात्म्य** के यूनानी अनुवाद का विवरण, विश्लेषण तथा मूल्यांकन हाल में ही प्रकाशित हुआ है 'पुराणम्' पत्रिका के एक लेख में (भाग २४, संख्या एक, जनवरी १९८२, रामनगर दुर्ग, वाराणसी)। इसके अध्ययन से अनुवादक के गम्भीर संस्कृत ज्ञान का परिचय मिलता है। उसने बड़ी योग्यता से इस ग्रन्थ का यूनानी भाषा में पद्यानुवाद प्रस्तुत किया है। गैलेनोस ने 'भागवतपुराण' का भी अनु वाद किया था, परन्तु यह अनुवाद भी अधूरा ही उपलब्ध होता है।

इस प्रकार काशीवासी इस यूनानी विद्वान् ने काशी में संस्कृत का अध्ययन किया तथा अपनी मातृभाषा यूनानी में संस्कृत ग्रन्थों के प्रथम बार अनुवाद प्रस्तुत कर समग्र यूरोप के विद्वानों की ज्ञानवृद्धि में अभूतपूर्व योगदान दिया। इस युग में अंग्रेज विद्वानों ने भी संस्कृत का अध्ययन किया तथा ग्रन्थों का प्रणयन किया, परन्तु उसका प्रधान लक्ष्य राजनीतिक था। शासन के सौकर्य तथा दृढ़ता के लिए ही उनका संस्कृत-प्रेम था, परन्तु यूनानी गैलेनोस के संस्कृताध्ययन का उद्देश्य विशुद्ध साहित्यिक था। यूरोप के विद्वानों को संस्कृत भाषा तथा साहित्य से परिचित कराना ही उसका मुख्य लक्ष्य था और इस शोभन प्रयास में वह सर्वथा कृतकार्य रहा। इस प्रकार काशी की पाण्डित्य परम्परा को विदेशों में परिचित कराने के लिए हम इस यूनानी विद्वान् डेमेट्रियस गैलेनोस के सर्वथा आभारी हैं और इस विस्मृतप्राय विदेशी संस्कृतज्ञ के नाम तथा काम को अधिक परिचित कराने के लिए यह विवरण यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।[1]

•

१. विशेष के लिए द्रष्टव्य 'जर्मन स्कालर्स आन इंडिया' नामक ग्रन्थ, भाग २, पृष्ठ २५१–२६३ (नचिकेता पब्लिकेशन्स, दिल्ली, १९७६)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायक ग्रन्थ सूची

अम्बिकादत्त व्यास—साहित्य नवनीत (लेखसंग्रह, षष्ठ सं०, वाराणसी १९१९)

काणे, म० म० पी० वी०—हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र (दोनों भाग म० ओ० रि० इ० पूना ।

कुबेरनाथ सुकुल—वाराणसी वैभव, राष्ट्रभाषा परिषद् पटना १९७८

केदारदत्त जोशी—म० म० पं० सुधाकर द्विवेदी का जीवन और कृतियाँ (लेखक द्वारा प्रकाशित, वाराणसी १९६३)

गंगाधर शास्त्री--राजाराम शास्त्री का जीवन चरित (पण्डित, भाग १०, लाजरस प्रेस काशी से प्रकाशित) ।

गंगाधर शास्त्री– बाल शास्त्री की जीवनी (संस्कृत) दी 'पण्डित' पत्र में प्रकाशित, लाजरस प्रेस, वाराणसी ।

गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी—आत्मकथा और संस्मरण (शारदा प्रकाशन वाराणसी १९६७)

गोपीनाथ कविराज—काशी की सारस्वत साधना (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना)

नारायणशास्त्री खिस्ते--विद्वत्चरित–पंचकम्--(सरस्वती भवन टेक्ट्स सं० २७, वाराणसी १९२८)

नारायणशास्त्री पटवर्धन—बालशास्त्री का जीवन चरित (राजराजेश्वरी प्रेस, काशी)

नारायणशास्त्री पटवर्धन--बापूदेव शास्त्री की जीवनी (प्र० राजराजेश्वरी प्रेस दुर्गाघाट, काशी)

प्रज्ञा--रजत जयन्ती अंक (हिन्दू विश्वविद्यालय, १९७६ ई०)

प्रमथनाथ तर्कभूषण—विजयप्रकाशः (अमरयंत्र प्रेस, काशी १८६१ ई०)

भगवतीप्रसाद सिंह -मनीषी की लोकयात्रा (विश्वविद्यालय प्रकाशन, काशी १९६८ई०)

महथा सुखदेव नारायण सिंह--रामावतार गाथा (भारतीय शास्त्र समादर समिति, छपरा, बिहार १९७८)

मथुराप्रसाद दीक्षित—दयानन्दजी का काशी का सच्चा शास्त्रार्थ (प्र० केशवपुरी, वाराणसी) ।

माधवप्रसाद मिश्र—स्वामी विशुद्धानन्द का जीवनचरित (भारत जीवन प्रेस, काशी)

रघुनन्दन त्रिपाठी—हरिहरचरितम् हिन्दी अनुवाद सहित (मुरारका संस्कृत कालेज, पटना सिटी १९९८ विक्रमी)

रामचन्द्र झा—विद्वद्विभूति, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस काशी, १९७१ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामचन्द्र मालवीय—संस्कृत के विद्वान् तथा पण्डित (चौखम्भा विद्याभवन, काशी, १९७२)।

रामचन्द्रशास्त्री जोशी—वैदिक विद्वानांचा परिचय (मराठी), भाग ३, शाके १९०३; पुणें वेदपाठशाला प्रकाशन, पूना।

वंगीय महामहोपाध्यायार जीवनी--(बँगला, कलकत्ता)।

शताब्दी स्मारिका—मुरारका संस्कृत कालेज, पटना, १९७९।

शिवकुमार शास्त्री—यतीन्द्र-जीवन-चरितम् (गंगा प्रसाद ट्रस्ट, कानपुर)।

श्रीधर शास्त्र वारे—याज्ञवल्क्यचरित्र (मराठी) प्रकाशक, लेखक स्वयं, नासिक।

संस्कृतसाहित्य सम्मेलन पत्रिका—(हरिहर कृपालु द्विवेदी विशेषांक), प्रकाशक मुरारका संस्कृत कालेज, पटना, १९७१ ई०

सत्यनारायण शास्त्री अभिनन्दनग्रंथ--(चौखम्भा विद्याभवन, १९६१, काशी।

संतशरण वेदान्ती—करपात्रीजी का जीवनचरित, (धर्मसंघ, वाराणसी,)

सारस्वती सुषमा—(वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय की शोधपत्रिका) वर्ष १, अंक १, १९४२ ई०। वर्ष ३३, अंक ३-४, १९७९ ई०, वाराणसी।

सीताराम चतुर्वेदी—महामना मालवीयजी का जीवन चरित (विक्रम परिषद्, बनारस १९४३ ई०)।

,, ,, --मालवीयजी का जीवन चरित (सूचना तथा प्रकाशन मंत्रालय, दिल्ली)।

सीताराम विष्णु केलकर वैदिक विद्वानांचा परिचय, (भाग १, शाके १८७४। भाग २, शाके १८८४) पुणें वेद पाठशाला प्रकाशन, पुणें (पूना)।

सुधाकर द्विवेदी - गणक तरङ्गिणी (द्वितीय सं०, सम्पादक पद्माकर द्विवेदी; वाराणसी)

सुरेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय—भास्करानन्द-चरितामृत (बँगला, तृतीय संस्करण १९२२ ई० कलकत्ता)।

स्मारिकाएँ—(प्रकाशक वेदवेदांग विद्यालय, रामघाट, काशी)।

Autobiographical notes of Dr. Ganganath Jha, Published by Ganganath Jha Research Institute, Allahabad. Vol. 30

Ganganath Jha Centenary Volume, G. N. Jha Research Journal Vol. xxix Allahabad.

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

G. N. Kaviraja Commemoration Volume. All India Sanskrit Parishad, Lucknow. 1967.

G. N. Kaviraja Commemoration Volume. G. N. Jha Research Journal, Vol. xxxii, Allahabad.

History of Government Sanskrit College, Banaras, U. P. Government, Lucknow.

K. C. Chattopadhyaya Felicitation Volume, G. N. Jha Research Institute, Allahabad.

Malaviya Commemoration Volume, Banaras Hindu University, 1930.

Malaviya Centenary Volume, Benaras Hindu University, Varanasi, 1961.

Mark Twain : More Tramps Abroad, London.

Oman, Prof. John Campbel : Mystics, Ascetics and Saints of India.

Dr. Umesh Mishra Commemoration Volume, Ganga Nath Jha Research Institute, Allahabad, 1970.

●

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामानुक्रमणी

(अ)

अखण्डानन्द सरस्वती २७३, (क) ८३-८६
अनन्त (दैवज्ञ) ४६
अनन्त पण्डित ६७
अन्यदाचरण तर्कचूडामणि (म. म.) ५९२-९३
अप्पय दीक्षित ३३
अम्बिकादत्त व्यास १३७, ३२८-४०
अम्बिकाप्रसाद उपाध्याय ४८२
अयोध्यानाथ शर्मा (ज्यो० सम्राट्) ५७५-७७
अरविन्द घोष (क) १६१
अर्जुन मिश्र ६०९
अवन्ति सुन्दरी १४८
अशोक (सम्राट्) ९
अश्वघोष ६
अहिभूषण भट्टाचार्य ५८८
अहिल्याबाई ११
अहोबल शास्त्री १४१

(आ)

आदित्यराम भट्टाचार्य (म. म.) (क) ११९-३३
आनन्दमयी माँ (क) १९५-९६
आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव (आचार्य) (क) २०३-२३
आशुतोष मुखर्जी (सर) (क) १९१

(इ)

इलिएट १२ (पा. टि.)
ईश्वर कृष्ण ३१
ईश्वरनाथ झा ५३७
ईश्वरीनारायण सिंह (काशीनरेश) ११५-१६, १३६

(उ)

उत्पलाचार्य (क) १३२
उदयन (आचार्य) १०
उदितनारायणसिंह (काशिराज) ११०
उमाचरण कविराज ६०९
उमानन्द झा ५३७
उमानन्दनाथ (जगन्नाथ) २७
उमापति द्विवेदी (नकछेदराम दूबे) ३५७-६६
उमापति शर्मा १४९
उमापतिशर्मा द्विवेदी ३७२-७३
उमेश मिश्र (डॉ०) क) १७२-७३
ऊलनर (डॉ०) १०१

(क)

कणाद (महर्षि) २८
कन्हैयालाल ५५०
कपिल (महर्षि) ३१
कबीर २३
कमलाकर भट्ट ३४, ४३-४५
कमलाकर भट्ट (ज्यो०) ५१
कमलाकान्त मिश्र ५१०-११, ५१३-१४, (क) ११४
करपात्री (हरिहरानन्द सरस्वती) ३६, (क) ६७-८२
करुणापति त्रिपाठी (क) ११३, ११६
कल्हण २०
कवीन्द्राचार्य सरस्वती ७५-८७
काणे (डॉ०) ११, १८ (पा. टि.), १९, २०
कार्नवालिस ११, ६१
कालविष्ट ६२९ (पा. टि.)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिका त्रिपाठी ५१३
कालिकाप्रसाद शुक्ल ४८१
कालीप्रसाद मिश्र (वै. सा.) २७३, (क) ११२-१४
काशीनाथ (कविराज) ६१६
काशीनाथ द्विवेदी ३६६-७२
काशीनाथ भट्ट हर्डीकर ६३१
काशीनाथ शास्त्री १५५-५७, १६६
काशीनाथ शास्त्री (वै. वा.) ४७३-७६
काशीराम वाचस्पति (क) ११६
काश्यप (अर्जुन चौबे) १९ (पा. टि.)
काष्ठजिह्व स्वामी ११६
कुतुबुद्दीन (ऐबक) १५
कुबेरनाथ सुकुल २१ (पा. टि.)
कुल्लूक भट्ट ४१
कृपाकृष्ण जानी ६३२
कृष्णदेव १६७
कृष्णदेव उपाध्याय (डॉ०) क ३४८
कृष्ण दैवज्ञ ४८
कृष्ण पन्त (धर्माधिकारी) ११८
कृष्णबोधाश्रम (स्वामी) ५१०-११
कृष्णभट्ट पुराणिक ६३०
कृष्णानन्द पन्त ५७१
केदारनाथ ओझा ५३६
केदारनाथ सारस्वत ४४१-४२
केलकर (न. चि.) १४७
केशवप्रसाद मिश्र (आचार्य) १३२ (पा. टि.)
केशव शास्त्री मराठे (म. म.) २८६-८८
कैयट १३३
कैलासचन्द्र शिरोमणि (म. म.) ६७, १२६, ३०८-१६
कोलब्रुक (डॉ०) १४९
कौण्ड भट्ट ६०, ६१, १४९
क्षितिमोहन सेन ५३१-३२
क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय (क) १७४-७६

(ख)

खण्डदेव मिश्र ३२, १४७

(ग)

गंगाधर तंगिराल ६३५
गंगाधर शास्त्री (म० म०, सी० आई० ई०) ९७, ११६, १२८, १२९, १३१, १३२, १३७, १३९, २३६-६४
गङ्गानाथ झा (म० म०) ६७, १०१, ५१७, (क) १५९—७६, १८१
गङ्गाप्रसाद मेहता (क) २१७
गङ्गाराम त्रिपाठी १५४
गङ्गासहाय पाण्डेय ६१६
गङ्गेश उपाध्याय १०
गट्टू लाल १२८
गणपति रामकृष्ण हेब्बार ६३१
गणपति शास्त्री मोकाटे २७४,४८०
गणेशदत्त झा ५४४
गणेशदत्त त्रिपाठी १२१
गणेशप्रसाद (डॉ) (क) २२९—३०
गणेशराम (सामवेदी) ६३३
गणेश भट्ट मार्तण्ड ६३६
गणेश शास्त्री गोडसे ६३२
गदाधर ३८
गम्भीर राय दीक्षित २६
गयादत्त पाण्डेय २७४
गागाभट्ट ३४, १४७
गार्ग्य बालाकि २
गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी (म० म०) ५५०, ५५६—७१
गेटे (महाकवि) (क) १८९
गोकुलनाथ (कवि) १०६, १११, ११२, ११३, ११४
गोडबोले (एन० बी०) ८१
गोडे पी० के० (डॉ०) ८३

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोपालशंकर उपाध्याय (डॉ०) (क) २४६
गोपाल शास्त्री (दर्शनकेशरी) (क) १५५—५६
गोपीनाथ कविराज (म० म०) ६७, १०१, १०३, ११२, ११४, (क) १७७–२०२
गोप्तृनाथ मिश्र ५३७
गोमतीप्रसाद मिश्र (कविराज) ६१६
गोविन्दगोपाल मुखोपाध्याय ५८८
गोविन्द चन्द्र (सम्राट्) १७
गोविन्दाचार्य १५४
गौरीदत्त (सामवेदी) ६३३
गौरीनाथ शास्त्री ५८८
गौरीशंकर उपाध्याय (क) २४६
ग्रिफिथ (आर० टी० एच०) ६५

(च)

चण्डीप्रसाद पाठक ४८९-९०
चण्डीप्रसाद शुक्ल (वे० सा०) ४०९-१३
चन्द्रदत्त चौधरी ५५०
चन्द्रधर शर्मा गुलेरी (आचार्य) (क) २३३-३५ । २७३.
चन्द्रभूषण २७४
चन्द्रशेखर कवि ७०
चित्रधर मिश्र (म० म०) ५६४-९६
चिन्तामणि (दैवज्ञ) ४७
चिन्नस्वामी शास्त्री द्राविड (म० म०) ५९६-६०१; (क) ११४
चिम्मनलाल गोस्वामी (क) २२०
चूडामणि सुकुल ४३७
चेतसिंह (काशिराज) १०८-६
चैतन्य (महाप्रभु) २२-२३

(ज)

जयनारायण तर्कालंकार क १२१
जगन्नाथ पाण्डेय (क) २६

(ट)

टोवो (जी०, डॉ०) ९५

(ठ)

ठाकुरप्रसाद ओझा १६६-२००
ठाकुरप्रसाद द्विवेदी २७३

(ड)

डंकन साहब (रीजेण्ट) ९१-६२
डाउसन १५ (पा० टि०)
डेमेट्रियस गैलेनोस (क) २६९-७१

(ढ)

ढुण्ढिराज (धर्माधिकारी) १३९
ढुण्ढिराजशास्त्री टोपले ४६०

(त)

तपन मिश्र २२
तात्याशास्त्री (म० म०) २७९-८५
ताराचरण (तर्करत्न) ११६-१७
ताराचरण भट्टाचार्य (सा० वा०) ४०६-८
तारादत्त पन्त ५७१
तुलसीदास (गोस्वामी) २३, ४०
तेगबहादुर (गुरु) ७७
तैलङ्ग स्वामी (परम योगी) (क) २५६-६१
त्रिनाथ शर्मा (क) ११६
त्र्यम्बक शास्त्री ६०७-६

(थ)

थेरेसा (सेण्ट) (क) १९२

(द)

दण्डी ८१
दयानन्द (स्वामी) ११६, १२८
दयानन्द स्वामी (बँगलाभाषी) १३७
दशरथ (अयोध्यानरेश) ५
दामोदरमिश्र ५१७

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दामोदरलाल गोस्वामी (न्यायरत्न) ४३१–३६
दामोदर शास्त्री (म.म.) १२८, २६५-७४
दाराशिकोह ७०, ८०, ८७
दिनकरभट्ट (दिवाकरभट्ट) ३४
दिवाकरभट्ट ५०
दिवोदास (राजा) ३,४
दिव्यसिंह मिश्र ३२
दुःखभञ्जन कवीन्द्र ४३७–३८
दुर्गादत्त (सामवेदी) ६३३
दुर्गाशंकर पाठक १६८
देव (वैयाकरण) १४७
देवकृष्ण शर्मा १६८
देवतीर्थ स्वामी (काष्ठजिह्व स्वामी) (क) ३-१६
देवनायकाचार्य ४८६, ५७२-७४
देवनारायण त्रिपाठी (तिवारीजी, व्याकरण-सार्वभौम, ४६७-७२
देवभद्र (पुरोहित) १०९
देवाचार्य अवस्थी ३८२
देवीप्रसाद कविचक्रवर्ती (म० म०) ४३६-४२
देवीदत्त शर्मा ५७१
दौलतराम गौड ६२४

(ध)

धर्मदास कविराज ६०६-१०
धूपंकर ६३०

(न)

नथमल टाँटिया (डॉ०) ५८८
नन्दकिशोर पांडेय (डॉ०) ५४५
नन्द पण्डित ४२
नन्दलाल शर्मा १६८
नरदेव शास्त्री ४७३
नरसिंह त्रिपाठी ७४
नरसिंह शास्त्री १३७
नरहरि भट सप्तर्षि ६३२
नरहरि विशारद २९
नरेन्द्रदेव (आचार्य) (क) १८१
नर्मदाशंकर पंचोली ६३५
नागेश भट्ट ६०, ६३-६५
नागोजिभट्ट ४५
नाथूलाल पंचोली ६३५
नानक (गुरु) २४
नारायणतीर्थ ३५-३६, ३७
नारायण कवि १३६
नारायण तीर्थ ४०
नारायण धुले ६३५
नारायणभट्ट ३३
नारायणभट्ट (जगद्गुरु) ४२-४३
नारायणशास्त्री खिस्ते (म.म.) ३५१-५६
नित्यानन्दपन्त पर्वतीय ३८६-९६
नित्यानन्द मीमांसक ४४१
निरञ्जनदेव तीर्थ (पुरी के शंकराचार्य) ४८९
निरीक्षणपति मिश्र (क) ११३
निवेदिता (भगिनी) ११
नीलकण्ठ २७
नीलकण्ठ भट्ट ४५-४७
नीलकण्ठ शास्त्री १४१
नृसिंह (दैवज्ञ) ५०
नृसिंह त्रिपाठी ४७१-७२
नृसिंह सरस्वती ९५ (पा० टि०)
नृसिंहाश्रम ३७

(प)

पक्षधर मिश्र (नैयायिक) १०
पञ्चानन तर्करत्न (म. म.) ४५७–६६
पटवर्धन (रामकृष्ण शास्त्री) १३६
पट्टाभिराम शास्त्री ६०१–२
पतञ्जलि ३, ५२-५५, १२८, १३२, १३४, १३५

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पन्त (प्रेमनिधि) २६
पन्त (उमापति) २६
परब (के० पी०) ८१
पद्मनाभ शास्त्री ४४२
पद्मसिंह शर्मा ४७४
परमानन्द पाठक १४६
परमेश्वर झा (म. म.) ५५६-५८
परमेश्वरानन्द शास्त्री (म. म.) ५७
परशुराम रामडोहकर ६३५
पाणिनि १५३
पार्थसारथि मिश्र ३३
पार्श्वनाथ (तीर्थङ्कर) ८
पालथीमे (डॉ०) ५१३
पॉलब्रण्टन (क) १८४
पुरुषोत्तम त्रिपाठी ५४४
पुरुषोत्तम सरस्वती ४०
पूर्णचन्द्राचार्य २७४
पूर्णभद्र (भट्ट) २६
पेरु भट्ट ३४
प्रकाशात्मदेव ३०
प्रकाशानन्द ३७
प्रकाशानन्द (सरस्वती) २३
प्रगल्भ (शुभङ्कर) २९
प्रतर्दन (ऋषि) ३
प्रभुदत्त अग्निहोत्री (म. म.) ६१७-२१
प्रभुनारायण सिंह (काशीनरेश) ११६-२२
प्रमथनाथ तर्कभूषण (म. म.) ११८, ४६२-९९
प्रमदादास मिश्र (म. म.) (क) १३१
प्रसादमाधव (योगी) ३२
प्राणमञ्जरी २६
प्रियनाथ तत्त्वरत्न ११७
प्रियव्रतशर्मा (आचार्य) ६१६
प्रेमचन्द्र तर्कवागीश (क) १२१

(फ)

फणिभूषण तर्कवागीश (म. म.) ५८६-३१
फाहियान (यात्री) ३

(ब)

बच्चा झा (सर्वतन्त्र स्वतन्त्र) १२८, २७४-७८
बटुकनाथ शर्मा (रसिकसुधानिधि) ४२२-३० (क) १३८
बदरीनाथ शुक्ल ५३६, (क) ११६-१८
बनारसी लाल पाण्डेय १०७ (पा. टि.)
बबुआ ज्योतिषी ११०-११
बर्नल (डॉ०) ८२
बर्नियर ७५, ७६
बलदेव उपाध्याय (क) २२३-५०
बलदेव मिश्र ६२४
बलदेव मिश्र (ज्यो० र०) ४००-१
बलवन्त सिंह (काशिराज) १०५-७
बलभद्र १५०
बलभद्र कवि १११
बल्लाल सेन ४१
बाइरन (महाकवि) (क) १७६
बापूदेव शास्त्री म. म.) १३६, १३७, १३६, १६७-८०
बाबा सुदर्शनदास (क) १२६
बाबूराम सक्सेना (क) १७२
बालकृष्ण पंचोली ४८१
बालकृष्ण भट्ट ३५
बालकृष्ण महादेव सप्रे ६३१
बालकृष्ण मिश्र (क) ११४
बालकृष्ण मिश्र (म. म.) ५३३-४३
बालदीक्षित काले ६३०
बालबोध मिश्र (दा. सा.) ५४४
बालबोध मिश्र (वै. शि.) ५४५-४७
बालम्भट्ट (पायगुण्डे) १४७
बालशास्त्री (म. म.) २५, १८१-६४

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालशास्त्री वापटजो ६३६
बिट्ठल शास्त्री ९३
बीरबल (राजा) ५७
बुद्ध (गौतम) ७
बेकन ६३
बेचनराम शास्त्री १३९, (क) १२१
बेनीमाधव विद्याधर लेले ६३१-३२
बेलेन्टाइन (जे. आर.) ६३,९४, (क)१३२
बोपदेव ४७
ब्रह्मदत्त (कवि) ११५
ब्रह्मदत्त (कविराज) ८
ब्रह्मदत्त द्विवेदी ५१०-१२
ब्रह्मानन्द सरस्वती ३७, ४०

(भ)

भगवतीप्रसाद सिंह (डॉ०) ६८ (पा० टि०)
भगवानलाल (अग्निहोत्री) ६३४
भगवानीलाल पंचोली ६३५
भट्टोजि दीक्षित ५७-६०
भण्डारकर (डी० आर०, डॉ०) (क) १९०-९१
भर्तृहरि १५२
भवनाथ मिश्र २८
भवानन्द (सिद्धान्तवागीश) ३०
भानुजि दीक्षित ६१
भारतेन्दु (हरिश्चन्द्र) २४, ११६, ११७, १३६, १३९-४०
भावागणेश दीक्षित ३२
भास्कर राय (भास्करराज दीक्षित, भासुरानन्द, भास्करानन्द) २६
भास्कर शास्त्री (क) २०९
भास्कर शास्त्री अभ्यंकर १५४
भास्कराचार्य ४९, ५१
भास्करानन्द सरस्वती (स्वामी) (क) ४९-६६
भिकंभट्ट पटवर्धन ६३१
भीष्म ७
भूपनारायण झा ५४४
भैरव मिश्र १४१
भोजदेव ४१
भोलानाथ मिश्र १०६

(म)

मकरन्द (ज्योतिषी) ४६
मङ्गलदेव शास्त्री (डॉ०) १०१
मनुदेव १४६
महादेव (ज्योतिषी) ४७
मणिदेव ११२, ११४
मणिशङ्कर शर्मा ५७१
मदनमोहन मालवीय (महामना) (क) ९०-११२
मदनलाल ५५०
मधुकान्त झा ५४४
मधुसूदन ओझा ५४८-५५
मधुसूदन शास्त्री (क) ११५-१६
मधुसूदन सरस्वती ३५, ३७-४१
मध्व (आचार्य) २२
मनसाराम (काशिराज) १०५
मनीष्यानन्द (स्वामी) २३३-३५
मनुदेव १४७
मनोज (काशिराज) ७
मनोहरलाल द्विवेदी (डॉ०) ६३५
मम्मट ६६
महादेव पाण्डेय (कवितार्किक चूडामणि) (क) १४४, ११५
महादेव पुणताम्बेकर ३०
महादेवाश्रम (क) २०-२७
महानन्द ठाकुर ५४४
महानन्द द्विवेदी ५१३
महोधर २६
महीपनारायण सिंह (काशिराज) १०९

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महेशचन्द्र न्यायरत्न (क) १२१
महेश ठाकुर २९-३०
मामा पेण्डशे ६३०
माधवप्रसाद मिश्र ६ ४
माधव भट्ट ३३
माधव सरस्वती ३८
मार्कण्डेय मिश्र ५१७
मार्तण्ड शास्त्री ६२४
मिलटन (महाकवि) (क) १७९
मुंशीराम (श्रद्धानन्द स्वामी) ९५
मुनीश्वर (ज्योति०) ४९
मुरलीधर उपाध्याय ४८९
मुरलीधर झा (म० म०) ३९७–४००
मुरलीधर मिश्र ४८०
मूर्तिदेवी (क) २२४
मेकडानल (डॉ) १३१
मेधातिथि ४१, (क) १५०
मोतीलाल शास्त्री ५५१
मोहनलाल वेदान्ताचार्य ३८२–८५
म्योर (जे०) ९३

(य)

यदुनन्दन उपाध्याय ६१४–१५
यमुनाप्रसाद शुक्ल ५१३
यागेश्वर शास्त्री (वै० के०) १५३, १९५-२०७
यादवेश्वर तर्करत्न (म० म०) ५२४–२६
युगलकिशोर पाठक ६२०–२१
युधिष्ठिर (ज्येष्ठ पाण्डव) ६
युधिष्ठिर मीमांसक ६०२–५
योगीन्द्रनाथ बसु ४९३

(र)

रघुनन्दन ४१
रघुनन्दन त्रिपाठी ५१०-११
रघुनाथ कवि १०७
रघुनाथ शर्मा ४७५-७६
रघुनाथ शास्त्री १५५
रघुनाथ शिरोमणि २९
रघुवराचार्य वेदान्तकेसरी (म०म०) ५३७
रघुवीर कवि (क) २४, (क) २५
रङ्गनाथ १५५
रङ्गनाथ (ज्योतिषी) १०९
रङ्गनाथ दैवज्ञ ४९
रङ्गोजि भट्ट ६०
रजनीकान्त (क) १७९
रज्जोमिश्र (म० म०) ५१५
रणछोड़लाल (शास्त्री) (क) २०९
रणवीरदत्त त्रिपाठी ६३३
रत्नाकर (जगन्नाथदास) ११५ (पा०टि०)
रत्नाकर (भट्ट) २६
रमानाथ द्विवेदी ६१५
रमानाथ व्यास (भारताचार्य) ३४०-४३
रमापति दूबे १३९
रमापति मिश्र ४७४
रवीन्द्रनाथ ठाकुर (क) २३०-२३२
रवीन्द्रनाथ दूबे (अ०) (क) २४९
राखालदास न्यायरत्न (म० म०) ३१६-२०
राघवदास (बाबा) ४७४-७५
राघव भट्ट २६
राघवेन्द्राचार्य (ग० ग०) १४१
राजनाथ मिश्र (म० म०) (क) १५९
राजनारायण शास्त्री (पंडितराज) ५१७
राजशेखर (आचार्य) १३३
राजाराम शास्त्री ९२, १३८, १३९, १५८-६६
राजाराम शास्त्री कार्लेकर ६३१
राजीवलोचन न्यायभूषण (क) १२०
राजेन्द्रप्रसाद (राष्ट्रपति, डॉ०) (क) १८३–८४
राजेन्द्रलाल मित्र ८१-८२

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजेश्वर शास्त्री द्राविड (पण्डितराज) १०३-४, १३७, ४४८-५६
राधाकृष्ण झा ५३७
राधाप्रसाद शास्त्री ४७४
राधेश्याम मिश्र ५४४
राम उदित उपाध्याय (क) २२८
(क) २४७
रामकृष्ण झा ५४४
रामकृष्ण दीक्षित फड़के ६३०
रामकृष्ण भट्ट ३३
रामकुबेर मालवीय (क) ११५
रामचन्द्र आठवले ६३५
रामचन्द्र झा १३७ (पा० टि०), ५४४
रामचन्द्र दीक्षित ६३१
रामचन्द्र मालवीय (क) ११३
रामचन्द्र शास्त्री खनंग ५१३
रामचन्द्रशास्त्री रटाटे ६२६-३८
रामचन्द्र शुक्ल (आचार्य) १०७ (पा० टि०), ११३ (पा० टि०)
रामचन्द्राचार्य ५५-५६
रामजसन १३७
रामजीव द्विवेदी ६२४
रामदयाल मजूमदार (क) १६२
रामदवर ओझा (क) १३४
रामदास (सन्त) २३,२४
रामनाथ ज्योतिषी (भट्ट) ५७७-७८
रामनारायण मिश्र १४१
रामनिरञ्जन स्वामी (क) २०-२७
रामनिवास गर्ग ५१३
रामप्रसाद त्रिपाठी ४६२
रामबालक शास्त्री ३७२
रामभवन उपाध्याय २७२-७३
राममिश्र शास्त्री (म० म०) ३२१-२७
राममूर्ति त्रिपाठी (डॉ०) (क) ११६
रामयत्न ओझा (क) ११५
रामयश त्रिपाठी 'महाशयजी' ४८२-६१
रामशास्त्री तैलङ्ग (म० म०) ३४५-५१
रामशास्त्री भागवताचार्य (म० म०) ३७४-८२
रामसुचित उपाध्याय (क) २२४
रामसेवक झा ५४४-५४५
रामाज्ञा पाण्डेय ४६६-७१
रामाधीन चतुर्वेदी ५७१
रामानन्द २३, ३८
रामानन्दपति त्रिपाठी ७०-७४
रामानन्द पाठक १५०
रामानन्द सरस्वती (रामनाथ शुक्ल) ४८९
रामानुज ओझा ५१०-११
रामावतार शर्मा (म०म०) (क) १३४-५५
रामेश्वरदत्त शुक्ल ४१४-१५
रायकृष्ण दास १३७
रुद्र (न्यायवाचस्पति) ३०
रैप्सन (डॉ०) १३१

(ल)

लक्ष्मण शास्त्री तैलंग १३७, ४१६-२२
लक्ष्मण शास्त्री द्राविड़ (म० म०) ४४३-४८
लक्ष्मी १४८
लक्ष्मीकान्त झा (क) ११४-१५
लक्ष्मीदेव झा (क) १५८
लक्ष्मीधर भट्ट ४१
लक्ष्मीपति १५१
लक्ष्मीपति (पर्वतीय) १६७
लक्ष्मीशंकर द्विवेदी ६३४
लक्ष्मीशंकर मिश्र (क) १२१
लक्ष्मीश्वर सिंह (दरभंगा नरेश) ४६३
लज्जाशंकर शर्मा १६७
ललितमोहन मुखोपाध्याय (क) २२१
लालबिहारी मिश्र ४९०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लीलाधर शास्त्री ५७०
लुड्विग आल्सडोर्फ ५१३
लोष्टदेव १०, ६९

(व)

वर्डस्वर्थ (महाकवि) (क) १७९
वल्लभाचार्य (स्वामी) २२
वागीश शास्त्री ४९०
वाचस्पति मिश्र ३२
वामदेव पण्डित ४७४
वामन गङ्गाधरदेव ६३०
वामाचरण भट्टाचार्य (म० म०) ४०२-६
(क) १८१
वाल्मीकि (रामायणकार) ६
वासुदेव दीक्षित ६०
वासुदेव (सार्वभौम) पृ० १०, २९
वासुदेव उपाध्याय (डॉ०) ९ (पा०टि०)
(क) २४७
वासुदेवाचार्य ५३७
विजयचन्द्र (राजा) १०
विजयचन्द्र चतुर्वेदी ५२४
विज्जका १४८
विज्ञान भिक्षु ३१
विज्ञानेश्वर ४१
विट्ठल (वैयाकरण) ५५
विद्याधर गौड (म० म०) ६२१--२८
विद्याधर शर्मा ५७१
विद्यानाथ व्यास (वाचस्पति) ३४३-४४
विद्यानिवास भट्टाचार्य ३०
विद्यानिवास मिश्र (क) १७६
विद्यारण्य तीर्थ (क) ४
विधुभूषण (क) १७६
विधुशेखर शास्त्री (म० म०) ५२७-३१
विनायक (शास्त्री) १३६
विनायक नारायण दीक्षित ६३०
विनायक नारायण रटाटे ६३५
विनायक भट्ट काले ६३१
विनायक भट्ट डोंगरे ६३१
विन्ध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी (क) १६०
विभूतिनारायण सिंह (डॉ०) १२२-२३
विभूतिभूषण भट्टाचार्य ४०७
विशुद्धानन्द (परमहंस) (क) १६३-६५
विशुद्धानन्द सरस्वती (स्वामी) (क) २८-४८
विश्वनाथ भट्टाचार्य ४०७
विश्वनाथ सिद्धान्त पञ्चानन) २६,३०
विश्वनाथ झा ५६६
विश्वनाथदेव (डॉ०) ६३०
विश्वनाथ द्विवेदी ६१५
विश्वेश्वर पाण्डेय ६६-६७, ७३
विष्णुदिगम्बर (क) २३२-३३
विष्णुदेव झा ५४४
वीरमणि प्रसाद उपाध्याय (डॉ०) ५३६
वीरेश्वर शास्त्री द्रविड़ २०१
वीरेश्वर स्मृतितीर्थ ४६३
वेङ्कटाचल मूर्ति (क) ११३
वेणीराम गौड़ ६२४
वेदानन्द झा ५४४
वेनिस (डॉ०) (क) १८१, १६०-६१
वैद्यनाथ पायगुंडे १४७
व्यास (द्वैपायन) ६
व्रजेन्द्रनाथ शील (डॉ०) (क) १६१-६२

(श)

शङ्कर (आचार्य) ३१
शङ्करचैतन्य भारती ५८५
शङ्कर भट्ट ३३
शङ्कर मिश्र २८
शंकरानन्द सरस्वती ५१०
शम्भु भट्ट (शङ्करानन्द) २६, ३२
शशधर (तर्कचूडामणि) (क) १६२

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शालिग्राम शास्त्री ४७४
शाण्डिल्य ३६
शाहजहाँ ७०, ७७, ८०, ८५, ८७
शिवकुमार शास्त्री (म. म.) २०८-३३
शिवचन्द्र सार्वभौम ४६३
शिवदत्त चतुर्वेदी ५४४-७१
शिवदत्त पाण्डेय ५१३
शिवदत्त (सामवेदी) ६३३
शिव दैवज्ञ ५०
शिवमुनि देवी (क) २५०
शिवलाल पाठक १५०
शिव शर्मा (क) १२९, (क) १३०
शिवसिंह (ठाकुर) १०७
शिवाजी (छत्रपति) २३
शीतलप्रसाद १३६
शीला १४८
शुकदेव झा ४६०
शूलपाणि ४१
शेक्सपियर (महाकवि) (क) १७६
शेषकृष्ण (वैया०) ५५-५७
शेष गोविन्द ४०
शेषचक्रपाणि ५६
शेषवीरेश्वर ५६
शेरिङ्ग १६
शेषाद्रि पी० (डॉ०) (क) १८६
शोभित मिश्र ५४४
श्रीकृष्णदेव (डॉ०) ६३०
श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी (डॉ०) ४८६
श्रीकृष्णविनायक रटाटे ६३६
श्रीधर (स्वामी) २०, २७
श्रीशङ्कर भट्टाचार्य (क) ११४
श्रीहर्ष (महाकवि) २५, २९, ६७-६६, (क) १४८
श्रेयांसनाथ (तीर्थङ्कर) ६

(स)

संजीवन गांगुली (क) १८०
सत्यध्यान तीर्थस्वामी ५२१
सत्यनारायण शास्त्री (पद्मभूषण) ६०६-१६, (क) १११
सत्यव्रत शास्त्री ४६०
सत्यांशुमोहन मुखोपाध्याय (क) २२०
सदानन्द झा ५३७
सभापति उपाध्याय (व्या० वृ०) ४७७-८२
सम्पूर्णानन्द (डॉ०) १०१
सिद्धेश्वर भट्ट १४७
सिद्धेश्वर भट्टाचार्य ५८७
सीताराम झा ५८०-८५
सीताराम शास्त्री (क) २१
सुरतिनारायण मणि त्रिपाठी १०३, १०४
सुदेव (काशिराज) ३
सुधाकर द्विवेदी (म. म.) १३१, २८६-३०७
सुधीभूषण भट्टाचार्य ५८८-८६
सुश्रुत ४
सूर्यनारायण (आचार्य) ५५०
सोमनाथ सोलापुरकर ६३०
सोमनाथ भट्ट ६३२
स्कन्दगुप्त (सम्राट्) ६

(ह)

हनुमान कवि १३६
हरदत्त शर्मा (डॉ) ८०, (क) २२०
हरप्रसाद शास्त्री (म. म.) ३८
हरिदीक्षित ६१, १४६
हरिश्चन्द्र, इन्द्रचन्द्र, जयचन्द्र ४७४
हरिहरकृपालु द्विवेदी (म. म.) ५००-१२
हर्यश्व (काशिराज) ३
हल्ली झा ५१५

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाराणचन्द्र भट्टाचार्य (म. म.) १२९, ५१८-२३
हीरमिश्र ३७
हृषीकेश उपाध्याय (ज्यो० रत्ना०) ५७८-८०
हृषीकेश शास्त्री ४६३
हैवेल १६
ह्वेनसांग (यात्री) १५

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थानुक्रमणी

(अ)

अंकगणित का इतिहास २९४
अंग्रेजी मीडीवियल मिसटिसिज्म ५३२
अखण्ड महायोग (बंगला) १८८२
अगदतत्र ६१५
अग्निदुराण १२
अतुल यंत्रम् १७३
अद्वैत चन्द्रिका ४०
अद्वैत कौस्तुभ ६०
अद्वैत चन्द्रिका २४४
अद्वैत चिन्तामणि ६०
अद्वैतमत विमर्श ५२१
अद्वैतरत्नरक्षण ३९
अद्वैतवाद खण्डन ३१८
अद्वैत सारोद्धार ६०
अद्वैतसिद्धान्त-विद्योतन ४०
अद्वैतसिद्धान्त विमर्श खण्डन ५२१
अद्वैत सिद्धि ३३क, ३५,३६,४३५
अद्वैतसिद्धिचन्द्रिका रिथष १७७
अध्यात्म रमायण (बंगला में) ४६३
अध्वरमीमांसा कुतूहलवृत्ति ६०२
अनन्तसुधारस ५०
अनिर्वचनीयता सर्वस्व ४११
अनुवाकाध्याय परिशिष्ट ६२१
अन्त्यकर्मदीपक ३९१
अन्त्येष्टि पद्धति ४३
अन्नपूर्णास्तोत्रम् ५२६
अन्योक्ति मुक्तावली ३७६, ३८०
अपरवाद ५५१,५५३
अपरोक्षानुभूति ८६ क
अबकहडा ५८१
अबोधनिवारण ३३३
अभिज्ञानशकुन्तल २०७ क
अभिज्ञानशाकुन्तल नवीन टीका ३५३
अभिनन्दन ग्रन्थ १६४ क
अभिनवनेत्ररोग विज्ञान ६१५
अभिनव शरीर-क्रियाविज्ञान ६१६
अमरकोष ११२
अमरमंगल ४६२
अमृत बाजार पत्रिका ५२ क
अमृतमृत्युवाद ५५३
अमृतलहरी ६५, ७०
अम्बचरित ५८१, ५८२
अम्मोवाद ५५१, ५३
अयोध्या बिन्दु २ क
अर्थशास्त्र की जयमंगला टीका ४५२
अर्थसंग्रह ६४
अलकार कौस्तुम ६७
अलंकार दर्पण ५८२
अलंकार प्रदीप ६७
अलंकार मुक्तावली ६७
अलिविलासिसंलाप २४६, २४७, २४८
अवच्छेदकत्व निरुक्ति मनोरमा टीका ४०५
अवच्छेदकत्वनिरुक्ति विवेचन २७७
अवतार मीमांसा ३३३
अवतार मीमांसा-कारिका ३३२
अवयव प्रकरण संस्कृत टीका ५८४
अशोक (उपन्यास) बंगला में ५२६
अशौचनिर्णय ४६
अशौच निर्णय-त्रिंशत्-श्लोकी २३४
अश्रुबिन्दुम् ५२६
अश्रुविसर्जनम् ५२६

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अश्वधाही ३४६
अश्विनीकुमार बिन्दु ३क, ४क, ६क
अष्टक ६६ क
अष्टसाहस्री विवरण ३१०
अष्टाध्यायी ३
अहमर्थ और परमार्थता ७७ क
अहिबलचक्र ५८१
अहोरात्रवाद ५५१, ५५३

(आ)

आख्यातवाद ३१०
आगम प्रामाण्य ३२४
आगमशास्त्र ५३०
आचारादर्श ४१
आचारेन्दुशेखर ४६
आचार्य शंकर (क) २४१
आचार्य सायण और माधव (क) २४१
आत्मकथा १६५ क
आत्मकथा और संस्मरण ५६४, ५६९
आत्मसोपान २८७
आद्यास्तवराज ७१
आनन्दी २३५
आनापुर के पद (बनौधा) ९ क
आपस्तम्ब गृहसूत्र ६००
आपस्तम्ब श्रौतसूत्र ६००
आमी ऐकटी अवतार (बंगला में) ५२६
आत्मतत्त्व विवेक ४६१
आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास ६१६
आयुर्वेद की औषधियाँ और वर्गीकरण ६१५
आरम्भवाद ११७ क
आर्यभटीयम्–टीका ४०१
आर्यशास्त्र प्रदीप १६३ क
आर्यसंस्कृति के मूलाधार (क) २४१
आवरणवाद ५५१, ५५३
आशौचशङ्कर व्यवस्था ४१५
आश्चर्यवृत्तान्त ३३३
आसफ विलास ६६
आह्निकपद्धति सटीक ५५८

(इ)

इतिहास तमोमणि ९३
इण्डियनथाट ६६, ४१३
इण्डियन यूनियन १२३ क
इन्दिरागांधी चरितम् ४९०
इन्द्रविजय ५५१
इन्द्रियानुशासन ४६२
इवोलूशन आफ अवधी १७३ क
ईशावास्यप्रवचन ८६ क
इश्क महोत्सव १०७
ईश्वरेच्छा ३३३

(उ)

उकरा ४०७
उदयान्वय वर्णन १७७
उदासीनसाधुस्तोत्र ६क, ७क
उदासीनसाधुस्तोत्र मंजुल टीका ११४ क
उद्योग पर्व १०२ क
उद्योत की टीका-छाया ६५
उपनयन पद्धति ६२६
उपनिषत् तरंग ६क
उपनिषद् परिशीलन ६४
उपनिषत्–प्रवचन ६४
उपपत्ति तरंग ६ क
उपासना सर्वस्व ९ क
उपलक्षण संग्रह ५९५
उपस्कार २८
उभयाभावादिवारक–परिष्कार की प्रकाश टीका ५३७

(ऋ)

ऋक्प्रातिशाख्य ६१८, ६२१
ऋग्वेद ३, २८ ऋक्संहिता ६०४
ऋग्वेदभाष्य ६०४

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेद प्रातिशाख्य १०१
ऋषिविवेचन ५६५
ऋजुपाणिनीयम् १५६ क
ऋजुव्याकरण १२७ क
ऋजुव्याकरण दीपिका २८२
ऋतुवर्णन ५५८
ऋतुसहार ३४७

(ए)

एकनामी भागवत ८० क
एकादशीतत्त्व (बंगला) ५२६
ए कैटलाग आफ संस्कृत मैनसक्रिप्ट्स एक्वायर्ड फार संस्कृत कालेज १८८क
ए क्रिटिकल स्टडी आफ भगवद् गीता १७३क
एजुकेशन गजट ५९३
ए डिसक्रिप्टिव कैटलॉग आफ मीमांसा मैनसकृप्ट १८८ क
ए थिसिस आन दि एज आफ कालिदास १४४ क
एस्पेक्ट्स आफ इण्डियन थाट १८८ क
ओल्ड टेस्टामेन्ट १३५
औषधि विज्ञान ६१५

(क)

कंसवध ५७
कटाक्ष शतकम् ७२
कठोपनिषद् याग १, २, ८६२
कथाकुसुम ३३२
कथाकुसुम रसिक ३३३
कथा सरित्सागर ४४२
कनसेप्शन आफ मैटर अकार्डिंग टू न्याय वैशेषिक १७३ क
कपिल गीता—व्याख्या ३५ क, ३६ क
करण कुतूहल वासना २६३
करण प्रकाश २६३
कर्मयोग ४६३ ८६ क,
कर्मविपाक रत्न ४४
कर्मोपदेशिनी पद्धति ४१
करुणा लहरी ६५, ७०, ६६
कला कौमुदी १४३ क
कला तरंग ६ क
कला (मंजूषा) की टीका ६५
कल्पकलिका ५०७
कल्पतरु ४१
कल्पद्रु कोष १४३ क
कल्पद्रुम ४१
कल्पवृक्ष ४१
कल्याण ४५७, ४६५, ४९७
कवितावली ३१८
कवित्तसुधानिधि ४४१
कवीन्द्र कण्ठाभरण ६७
कवीन्द्र कल्पद्रुम ८१
कवीन्द्र चन्द्रोदय ७८, ७९ ८०
कातन्त्र परिशिष्ट—कौमुदी टीका ५९३
कान्ति बिन्दु ९ क
कात्यायन शाब्दसूत्र—श्राद्ध प्रकाशिका वृत्ति ६१८
कात्यायन श्रौतसूत्र, ३९०—सरला वृत्ति ४०६—शुल्वसूत्र वृत्ति ४०९
कातीयेष्टि दीपक ३९१
कादम्बरी वरीयस्ता ३७८
कानन शतक ११७
कामन्दक नीतिसार १३७, ४५२
कामधेनु गणित ४७
काय चिकित्सा ६१६
कायस्थ धर्म प्रदीप १४८
काल निर्णय दीपिका ५५
कालपञ्चाङ्ग विवेक ५८२
कालविवेक ४१७
कालिकामन्दाक्रान्ता शतक ११९

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास हिज माइण्ड एन्ड आर्ट १४४२
काव्य कलाधर १०७
काव्यप्रकाश १६९ क, २०५ क
काव्यप्रकाश—प्राकृतार्थं, ७२
काव्यप्रकाशस्य दोषोद्धार: ३७८
काशिका (परिभाषेन्दु की टीका,) ६५
काव्यमीमांसा ११५ क ३५३, ४४२
काव्यात्मसंशोधनम् २३८
काव्यालंकार ४२४
काशकृत्स्न धातु-व्याख्यानम् ६०४
काशिका १४६, ३९६
काशी की पाण्डित्य परम्परा (क) २४२
काशी की सारस्वत साधना १८८ र
काशी कूतूहल ७२
काशीखण्ड १५, १७, १८
काशीखण्ड का बंगला अनुवाद ४६५
काशीराज सागर ८ क १७ क
काशी बिन्दु २४ क
काशीविद्या सुधानिधि २४, १८७
काशीश–विनोद ११८
काशीश्वर पुष्पाञ्जलि १२१
किरणावली प्रकाश—दीधिति ३१०
किरात भावदीपिका ७२
कुमारचरित चारुता ३७८
कुमारसंभवम् ४६६
कुलदेवता-स्थापन–पद्धति ५१७
कुसुमांजलि वर्धमान टिप्पणी २७७
कुसुमांजलि —३४ कुसुमाञ्जलि कारिका ३०
कूर्मपुराण १२
कृत्यकल्पतरु ४१
कृट-विमला ५६३
कृष्णकौतूहल (पदचन्द्रिका विवरण) ५७
कृष्णचरण परिचर्या तथा विवृति ६ क
कृष्णयजुर्वेद ३४५
कृष्णसुधा ११ क
कैथदेव-निघन्टु (संक्षिप्त) ६१६
कोकिल दूतम् ४६५, ४६६
कौटिलीयम् अर्थशास्त्र ४५२ ४५३
कौमुदी १३४
कौषितकी ब्राह्मण ४
कौलोपनिषद् भाष्य २७
कौषितकी उपनिषद् ३,४
क्रोडपत्र ४५२
क्रोडपत्र-संग्रह ४६१

(ख)

खगोलसार: १७३
खण्डनखण्डखाद्य, २६, ३३, ३६, ६७, ३७७, ३८३, ६८, ३१०, शारदा व्याख्या ५८५ टिप्पण २७३,-हिन्दी अनुवाद ३०
खण्डनगर्त प्रदेशिनी ३८३
खण्डम दर्पण २६
खण्डन फक्किका विभंजन (विद्यासागरी व्याख्या) ४१३
खण्डनरत्नमालिका ४१५

(ग)

गङ्गादर्शनकाव्यम् ५२६
गंगालहरी ६६,७०
गंभीरचिन्तन ८६ क
गणक तरंगिणी ४६, १५०, १६७, १६१, २६२
गदा (परिभाषेन्दु) की टीका ६५
गणितचन्द्रिका ५८१
गणिततत्वचिन्तामणि ५१
गणित सोपान ५८१
गणेश बिन्दु ६ क
गदाधरन्यूनतावाद ३१८
गया बिन्दु ६ क, ११ क

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गरुड पुराण १३' ५८४
गाण्डीवम् १५५ क, ३७२
गादाधरी ३६०,४६१
गायत्रीव्याख्या ६ क
गीता १०२ क, १०६ क
गीतादर्शन ८६ क
गीता प्रवचन व्याख्यानमाला ५६३
गीताभाष्य–हिन्दी अनुवाद ५०८
गीतामृत व्याकरणम् १५६ क
गीताविज्ञान ५५१
गुप्त भारत की खोज १३५ क
गूढार्थ दीपिका ३६, ५०६
गूढार्थ प्रकाश ४६
गृह्यसूत्र ३
गोतमसूत्र वृत्ति–तात्पर्यविवृति ५३७
गोत्रप्रवर दर्पण ४४
गोमहिमाभिनय नाटकक् १५६ क
गोलपरिभाषा ५८१
गोलप्रकाश १७२
गोलबोध ५८१
गोविन्द सिंह चरितम् ४६०
गोसंकट नाटक ३३३
गुप्तामिलेख ९
गुप्तअशुद्धि प्रदर्शनम् ३३२
गुप्तवती (दुर्गासप्तशती की व्याख्या) २७
गुरुगीता ३२ क
गुरुचन्द्रिका ४०
गुरुपञ्चरत्न ६६ क
गुरुमर्मप्रकाशिका ६६
गौडीवीशकुल प्रशस्ति ६८
ग्रहणकृत्य व्यवस्था ४६२
ग्रहणे छादक निर्णयः २६२
ग्रहलाघव २९३
ग्रहशान्ति ५८४

(च)

चतुर्वर्ग चिन्तामणि ४२
चतुर्वेदिसंस्कृत-निबन्धावली ५६२
चतुःशतक ५३०
चन्द्रदूतम् ५२६
चन्द्रप्रभा ५३०
चन्द्रशेखर-चरित महाकाव्य ४३८
चरक-चिन्तन ६१६
चरक-संहिता जल्पकल्पतरु व्याख्या ५, ६०८। ६१२
चरक संहिता अंग्रेजी अनुवाद ६१६
चरणव्यूह २६
चरणव्यूह परिशिष्ट ६२१
चलन-कलन २६४, ४०१
चलराशि कलन २६४
चापीय त्रिकोणमिति १७२
चारुचिन्तन ८६ क
चिन्तामणि ४३ क
चिन्तामणि दीधिति ३०
चित्रकाव्य कौतुकम् २२४
चित्रमीमांसा ६६
चित्रोपहार ५८३
चित्सुखी ४७५
चिदस्थिमाला (लघुशब्देन्दुशेखर की टीका) ६५
चूड़ाकरणपद्धति ६२६
चेत चन्द्रिका १०६, १११
चेतसिंह विलास १०५, १०६, १५०
चेतसिंह विलास चम्पू १११
चैम्बर्स १३५ क
चौराश्कतुरियम् ४६६

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(छ)

छन्दतरंग ६ क
छन्दसमीक्षा ५५१
छन्दोगवृषोत्सर्ग ५५८
छन्दोनिरुक्ति ५५१, ५५२
छादक निर्णय ४८
छान्दोग्योपनिषद् ४३ क
छिन्द प्रशस्ति ६८

(ज)

जगत मोहन १०७
जगत विमोहन १०७
जगद्गुरुवैभव ५५१
जगदाभरण ६६, ६६
जटादिविकृति लक्षण ६२१
जन्मपत्रविधान ५८१
जयवंश महाकाव्य ६०२
जातक पद्धति ४७
जानकी बिन्दु ६ क, १८ क
जाबवाल उपनिषद् १४
जैन बिन्दु ६ क
जैमिनि गान ६०५
जैमिनि मीमांसा सूत्र ३३
जैमिनि सूत्र-टीका २६६
जैमिनिसूत्रवृत्ति ३८६
ज्ञान विज्ञानयोग ८६ क
ज्ञानसार ८३
ज्योतिषशास्त्रप्रयोजन ५८१

(त)

तंत्र ओ आगम शास्त्रेर दिग्दर्शन (बंगल) १८८ क
तंत्र वार्तिक ३३, २४२
तंत्र वार्तिक तात्पर्य ३४
तंत्रसिद्धान्त ५६६
तन्त्राधिकार ६०
तडाग गया पद्धति ५५८
तर्ककुतूहल ६७
तर्कभाषा ११६ क ४०३, ५३६
तर्क प्रदीप ६१
तर्कभाषा रहस्य ४६१
तर्करत्नाकर ११७
तर्करत्न ६१
तर्करत्नावली ११८
तर्कसंग्रहदीपिकामयूख ४१५
तत्त्वचिन्तामणि–विधिविख्यात ३०६
तत्त्वचिन्तामणि १७४ क १०, २९, ११८ २१६
तत्त्वचिन्तामणि–मंगलवाद मथुरानाथी संस्कृत भाषा में प्रकाशित ५३६
तत्त्वचिन्तामणि–मंगलवाद १०७ क
तत्त्वचिन्तामणि का मंगलवाद ११७ क
तत्त्वचिन्तामणि ११८ क
तत्त्वचिन्तामणि मिताक्षरा ४१५
तत्त्वत्रय ३२१ ३६१
तत्त्वदीपन (अभेदरत्न की टीका) ३७
तत्त्वमुक्ता कलाप ३५४
तत्त्वविवेक ५८
तत्त्वविवेक परीक्षा १७२
तत्त्वसार ३१८
तत्त्वसिद्धान्त चन्द्रिका ६०
तत्त्वसिद्धान्त दीपिका ६०
तर्क व्याख्या १६२ क
तांत्रिक नीलकण्ठी ४७
तांत्रिकवाङ्मय में शास्त्र दृष्टि २९० क
तांत्रिक सिद्धान्त ओ साधना (बंगला) १८६ क
ताजिक नीलकण्ठी व्याख्या ५८१
ताण्ड्य ब्राह्मण ५९६
ताण्ड्य महाब्राह्मण ६०१
तांत्रिक संस्कृति १८८ क

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तात्पर्य-परिशुद्धि ३६
तार्किकरक्षा (वरदराज) ३५४
तास कौतुक पचासा ३३३
तिथीन्दुशेखर ४६
तुरीया मीमांसा ३२७
तुलसी तथा तत्र ११६ क
तुलसी सतसई २६४
तुलसी सुधाकर २६४
तुलादान पद्धति ५१४
तैत्तिरीय संध्या भाषा ६०
तैल संग्रह ६१५
तौवातितमततिलकम् ६००, ६०२
त्रिकोणमिति ३९६
त्रिदोषालोक ६१५
त्रिपिटक ७
त्रिसन्ध्या तत्त्व बंगला ५२६
त्रिस्थलीसेतु ४३
त्रिंशिका २६३
त्रिक् मीमांसा ४२

(द)

दत्तक विजय वैजयन्ती ३२७
दर्शन अनुचिन्तन ५६३
दर्शनशास्त्रम् वर्कले २८७
दर्शनसर्वस्वम् ५८५
दशकुमार चरित ४६३ संस्कृत ८१
दशवादरहस्य ५५१, ५५३
दशरूपक २०७ क
दादू (बंगला) ५३२
दान कमलाकर ४४
दानविवेक ६१
दार्शनिक निबन्ध ५६४
दिङ्मीमांसा २६२
दि पण्डित ९५
दीधिति प्रवेश ६७
दीधीतिकृत-न्यूनतावाद २१८
दीनाक्रन्दन स्तोत्र ६६
दीपन व्याख्या ६०
दीपप्रकाश ११०, ११५
दी बेसिकन सेपक्शन आफ बुद्धिज्म ५३०
दीर्घवृत्त ४०१
दीर्घवृत्त लक्षणम् २९२
दुर्गा सप्तशती ३४२
दुःखद्रुमकुठार ३३२
दूषण दूषण १०७
दृक्-सिद्ध पंचाङ्ग १७४, १७५, १७७
दीधितितरंग ६ क
द्वैतोक्ति रत्नमाला ४६२
देवतानिवित् ५५१
देवबिन्दु ६ क
देवरत्न ९ क, ११ क
देवरामायण ११ क
देवसर्वस्व (पदादपी) ६ क
देवसुधा ६ क
देशान्तरीयेतिवृत्तम् १५० क
दैववाद ५५३
दोषदूषकतामूलनिर्णयः ३८३
दोषाभास-निरासः १३९, १६५, १८७
द्युचरचारः २९२
द्रव्यगुण विज्ञान ६१६
द्रव्यगुण शतक द्रव्यदीपिका टीका ६००
द्रौपदी काव्य (बंगला में) ५२६

(ध)

धन्यशतकम् ७२
धराभ्रमे प्राचीन नवीनयोर्विचारः २६२
धर्म और दर्शन (क) २४१
धर्मकल्पद्रुम १३७
धर्म-तरंग ६ क
धर्मशास्त्र का इतिहास ११, १२, १३, १४८

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मशास्त्र कोष ५६३
धर्मशास्त्र संग्रह १४६
धर्मसमीक्षा ५५२
धर्माधर्मकलकलम् ३३२
धातुचित्रम् ५६३
धातुपाठ निर्णय ५९
धार्मिक निबन्ध ५६४
धात्वर्थविज्ञानम् ४६०
धीरनैषध १४२ क १५० क
ध्वनियोग ८६ क
ध्रुवभूषण ५७८
नक्षत्रनिर्णय ५५८

(न)

नमस्कार-विवेकः ५६३
नयकमलाकरः ३७८
नलोदय काव्य की संक्षिप्त व्याख्या ५५ क
नवसाहसांक चरितसार ६८
नवाङ्कुरा ४८
नव्यन्याय प्रवेश ११८ क
नाड़ी विज्ञान ६१५
नारद भक्ति दर्शन ८६ क
नारदीय पुराण ११
नारायण काव्य ३६१
नारायणीयम् २३२
नारी जागरणनाट्य १५६ क
निगम चिन्तन ८६ क
निगमानन्द कृतम् ४६६
निबन्धावली १४४ क
निजवृत्तान्त ३३३
निरुक्त ४७०
निरुक्तसमुच्चयः ६०४
निर्णयसिन्धु ३४, ४४, १४८
निर्णयसिन्धु भाषाटीका ५८४ भाष्य ४३
निर्णयसिन्धु ३९६ टीका कृष्णभट्टी ३९५
निर्विकल्पतावाद ४१५
निसृष्टार्थदूती ४९
नीलकण्ठी ४७
नीलवृषोत्सर्ग पद्धति ५१७
नूतन पंचांग निर्माणम् १७३
नूत्नोदन्तोदोत्स ९३
नैषध चरित ३६, ११६ क, ४१३, ४३७ ६३, ६८, ९९३, २०९, ४४०
नोणुतुम आरगैनुम ९३
न्यायकन्दली ५८८
न्याय कुसुमाञ्जलि १०, ४६, ५८८ टीका ५०७
न्यायकौस्तुभ १७४ क
न्याय खाद्य खण्डन ११७ क
न्याय पदार्थ दीपिका ६१
न्याय परिचय ५८९
न्याय प्रकाश–सारविवेचनी टीका ५९९
न्यायप्रवेश (तिब्बती) ५३०
न्यायभाष्य-उद्योतकर का वार्तिक वाचस्पति-तात्पर्य टीका उदयनाचार्य तात्पर्य परिशुद्धि ५८६ बंगलाभाषा अनुवाद ५८९
न्यायभाष्य टीका २७७. ३१४
न्याय मंजरी ४९१
न्यायमतरक्षणम् ४१५
न्यायमुक्तावली संस्कृत टीका हिन्दी-टीका ५८५
न्यायमुक्तावली ३०
न्याय रत्नावली ४०
न्याय रहस्यम् ५९३
न्यायलीलावती (वल्लभ) ३५३–४९१
न्याय वार्तिक ३५४
न्यायशास्त्र–अनुमिति विवृति टीका ४६३

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्याय सिद्धाञ्जन ३६४
न्याय सिद्धान्त मुक्तावली ४११
न्याय सूत्रवृत्ति ३०
न्यायामृत ३६
न्यायामृत तरङ्गिणी ३६

(प)

पंचकोश सुधा ६ क
पंचक्रोशी यात्रा निर्णयः १७३
पंचक्रोशी सुधा ११ क
पंचाक्षरी-भाष्य व्याख्या २४ क
पञ्चदशी व्याख्या ४७५
पञ्चपादिका विवरण की टीका ३७
पञ्चलक्षणी ११८ क
पञ्चसिद्धान्तिका ६६,२८७, २९३
पंचाक्षरीभाष्य १३ क
पञ्चाक्षरीभाष्य प्रकाशिका २६ क
पञ्चाङ्गतेयपादनम् १७३
पतञ्जलि चरित ५३
पदचन्द्रिका ५७, ८१
पदार्थतत्त्व निरूपण ३१०
पदार्थदीपिका ६१
पद्मजातक ५०
पद्धति परिचर्या ६ क
पद्धति प्रकाश ५०
पद्मपीयूषम् ७२
पद्मपुराण १२, १४, १५
पद्म मंजरी २४२
परमत खंडन ६१
परिभाषेन्दुशेखर ६०
परमेश्वरकोष ५५८
परमार्थदर्शनम् १४३ क
परमार्थदर्शन १४६ क
परमार्थाधिकरणरत्नमाला १४६ क
परमेश्वरानन्द ग्रन्थ ७०
परमलघुमंजूषा (टिप्पणी) ३९२
परिचर्या १२ क
परिभाषेन्दुशेखर ४७३, ४८७
परिभाषेन्दुशेखर २०३ गदानाम्नी टीका २०३ सारासार विवेक-टिप्पणी २०४
परिभाषेन्दुशेखर विचार १७ क
परिभाषेन्दुशेखर 'भूति' टीका १५३, हैमवती टीका ४१, १५३-१५७
परिभाषेन्दुशेखर ६२ विजया टीका ६१७
परिभाषेन्दुशेखर सारासार विवेक टीका १८६,१८७, जटा-टीका ३६१
परिशिष्ट दीपक ३८०
पाणिनि-शिक्षा - शिक्षाप्रकाशिका व्याख्या २७३
पाणिनीय प्रशस्ति १५६ क
पाणिनीय प्रबोध व्याकरण १५६ क
पाणिनीय धातुपाठ समीक्षा ४६०
पाणिनीय व्याकरणे प्रमाणसमीक्षा ४७२
पाणिनीय शिक्षा १३२
पाण्डव विक्रमम् ४६६
पाटीसार ४६
पातंजल प्रतिबिम्ब ३३२
पातञ्जल महाभाष्य ४७०
पारिजातहरण ३७३
पातिजात हरण चम्पू ५७
पार्थपाथेय ३३ क
पार्थाश्वमेध ४६२
पालिप्रकाश ५२६, ५३०
पाश्चात्यदर्शन १४३ क
पाश्चात्यदर्शन १४७ क
पारसीकप्रकाश ४०७

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पार्थपाथेयम् उल्लाप्य भूमिका ४०५
पालिजातकावलि ४२४
पाषण्डमत खण्डन ३१
पिङ्गलछन्दशास्त्र ५५१
पिण्डप्रभाकर २६२
पितृदयिता ४१
पीयूषधारा ४७ टीका ४८
पीयूष पत्रिका ६००
पुराणम् १२३
पुराणविमर्श २४१ क
प्रकाश १२ क
पुराण परिशीलन पृ० ६४
पुराण पत्रिका ४४६
पुराणपर्यालोचनम् ४८६
पुराण पारिजात ५६४
पुराणरहस्यम् ५६२
पुराणविमर्श ४२ क
पुराणेतिहासयोः सांख्य योगदर्शनविमर्शः ४८६
पुरुषसूक्त टीका २६
प्रक्रिया प्रकाश २५
पूँजीवाद, समाजवाद एवं रामराज्य ७७ क
पूजापुष्करिणी १७ क
पूर्तकमलाकर ४४
पूर्वमीमांसा १६३ क
पूर्वमीमांसा अर्थसंग्रह टीका ४६५
प्रकाश ५५
प्रकीर्ण प्रबन्धाः १४३ क
प्रक्रिया कौमुदी ५५, ५८
प्रक्रिया—कौमुदी प्रकाश व्याख्या ४८० रश्मि' टिप्पणी ४८०
प्रक्रियाकौमुदी विमर्श ५६
प्रक्रिया दीपक ५६
प्रक्रिया प्रकाश ५६, ५७
प्रज्ञा-पत्रिका १०८ क
प्रतिज्ञा परिशिष्ट (समाष्य) ६२०
प्रगिविम्बचित्र-चिन्तामणि ३८३
प्रतिमाक्षरा ७२
प्रतिमाबोधकः २६२
प्रतिष्ठा प्रभु ६२६
प्रत्यक्ष-औपधि निर्माण ६१५
प्रत्यभिज्ञा-दर्शन ४७६
प्रभावती ३३, ३५
प्रमाणमंजरी ६०२
प्रमेयपारिजात ५६२
प्रमाणप्रमोदः ५६६
प्रयाग बिन्दु ६ क
प्रयोग रत्न ४३
प्रत्नकूप्रनन्दिनी सचित्र ३७ क
प्रशस्तपादभाष्य (प्रशस्तपाद) ३५४
प्रशस्तपाद भाष्य १६२ क
प्रशान्तकुसुमम् ५२६
प्रशिक्षण संविधानम् १५६ क
प्रश्नमाणिक्य माला १४६
प्रसाद ५५
प्रसूति-विज्ञान ६१५
प्राकृतप्रकाश २३८ क
प्राकृत विचित्र-शब्दार्थ कोष
प्राचीन ज्योतिषाचार्याशय वर्णनम् १७२
प्राणदूत ४६२
प्राणाभरण ६६
प्रतिशाख्य कीर्तिप्रकाश ६२०
प्रायश्चित्त विधि ४६२
प्रायश्चित्त रत्न ४४
प्रायश्चित्तेन्दुशेखर ४६
प्रियदर्शिप्रशस्तयः १४२ क

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रातिशाख्य ४७०
प्रातिमोक्ष ५३०
प्रौढ़ मनोरमा ५६
प्रौढ़ मनोरमा खण्डन ५६
प्रौढ़ मनोरमा प्रभा टिप्पणी ३६४

(फ)

फलित विकाश २६६
फलित विचार १७२
फिलासफी आफ दि पुरानाज १४४ क
फुटफाल्स आफ इण्डियन हिस्ट्री ११

(ब)

बन्दिन के जगावै के पद ६ क
बह्वृचाह्निक ४४
बांगलार बाउल (बंगला में) ५३२
बांगालौर वैष्णवधर्म ४६५
बाल गोपाल चरित्र १०७
बाइग्राफी आफ इग्लिश वर्डस ६५ क
बाल मनोरमा ६०
बालम्मट्टी १४८
बालव्याकरण ३३२
बालशास्त्री का जीवन १ ग्रन्थ २८२
बिन्दुसंदीपन ४०
बिब्लोमोग्राफी १७७ क
बिब्लोयोग्राफी आफ न्याय वैशेषिक लिटरेचर १८८ क
बिब्लियोग्राफी आफ मुगल इण्डिया ८६
'बिब्लोथिका इण्डिका १८२ १७२
बिहारो सतसई ३३८
बीजगणित १३६, १२१, १७३
बीजगणित उत्पत्ति एवं टिप्पणी ३६६
बीजाङ्कुरा ४८
बुन्देलखण्ड के पद ६ क
बृहज्जातक—टीका ५८१
बृहज्ज्योतिष्टोम पद्धति १८७, १६०
बृहद् ऋजुपाणिनीयम् १५६ क
बृहत् पराशर—होराशास्त्र ५८२
बृहत्-शब्दरत्न ६१
बृहती ६०१, ६०६
बृहत् संहिता १६८, २६३
बृहदारण्यक वार्तिकसार ४१०
बौद्धदर्शन २४१ क
बौद्धधर्म और दर्शन ४६५
बौद्धधिक्कार ३६
बौद्धधिक्कार शिरोमणि ३१०
बौधायन धर्मसूत्र ६००
ब्रह्मज्ञान और उसकी साधना ८६ क
ब्रह्ममीमांसाभाष्य (निम्बार्काचार्य) ३५४
ब्रह्मविज्ञान ५५१
ब्रह्मविज्ञान-प्रवेशिका ५५१
ब्रह्मसमन्वय ५५१
ब्रह्मसिद्धान्त ५५३, ५५४
ब्रह्मसूत्र—देवीभाष्य ४६३
ब्रह्मसूत्र वृत्ति ६०, ३२४
ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य ४१०
ब्रह्मचतुष्पदी ५५१
ब्राह्मण सावधान ४६०
ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त—'तिलक'—२-२६३

(भ)

भक्तिचन्द्रिका ४०
भगवद्गीता-टीका ४६५
भगवन्त भास्कर २५, ४५
भट्टि काव्यम् १६५ क
भट्टिकाव्य-शास्त्रसार १५६ क
भागवत ३४१, ३४२, ३३३
भक्तिरसायन ४३८
भगवन्नामकौमुदी ४३३

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भरतनाट्य-शास्त्र ४२४
भाट्ट चिन्तामणि मयूख ४१६
भारत गीतिका ४०८
भवभेषजम् ३७८
भारतगीतिका १५४ क
भारतचम्पू टिप्पणी २७८
भारतशतक ११३ क
भारतीय तर्कशास्त्र की रूपरेखा १७३ क
भारतीयदर्शन २०१ क
भारतीयमितिवृत्तम् १५० क
भाषाविज्ञान १०१
भारतीय संस्कृति का विकास १०१
भामिनीविलास ६६
भाषाचन्द्रिका २८२
भाव प्रकाशिका ६१
भूति-टीका २७४ २८१, २८५
भारत सौभाग्य ३३३
भ्रूभ्रमरेखा-निरूपणम् २६२
भगवद् गीता की टीका २७७
भक्तिरसार्णव ७२ क
भगवत् तत्त्व ७७क
भगवद्भक्ति-रसायन २६
भट्टकौस्तुभ ३२
भट्टसंकटम् ४६६
भागवत दर्शन ८६ क
भागवत सम्प्रदाय २४१ क
भागवतामृत ८६ क
भाट्ट चिन्तामणि ३४
भाट्ट दीपिका १४८
भाट्ट दीपिका ३२, ३३-प्रभावती टीका ३४
भाट्ट रहस्य ३२
भामती-टीका ४९१
भामती (चतुः सूत्री)-प्रकाश तथा विकाश टीकाएँ ११५ क
भारतगाथा ५२६
भारत जीवन ६४ क
भारतजीवन (पत्रम्) २२७
भारत शतक ११४ क
भारतीयदर्शन २४१ क
भारतीयदर्शनसार २४१ क
भारतीय धर्म दर्शन २४१ क
भारतीय नाटिकल अलमनक १७४
भारतीय मध्ययुगेर साधनार धारा (बंगला में) ५३२
भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा २४१ क
भारतीय संस्कृति और साधना २०० क
भारतीय साधनार धारा बंगला १८९ क
भारतीय साहित्य शास्त्र २४१ क
भावनोपनिषद् २७
भावानन्द चरित महाकाव्य २३४
भावानन्दी-प्रकाश ३०
भाषिक परिशिष्ट सूत्र भाष्य ६२१
भास्कर स्तोत्र ६ क
भास्करानन्द चरितामृतम्-बंगला ५४ क ५६ क ६० क
भास्करानन्दाष्टक ६५ क
भगवद् गीता-पद्यात्मक अनुवाद ५८२
भक्ति चन्द्रिका ३६
भक्तियोग ८६ क
भक्तिसुधा ७६ क
भक्ति रसायनम् ८६ क
भक्तिरसार्णवः ७४ क, ३६
भक्ति सर्वस्व ८६ क
भावदीप २८
भाव प्रकाशिका ३७
भिषक्-कर्म-सिद्धि ६१५

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीष्मस्तवराज १०१ क, १०४ क
भूति २०३
भूति–नवीन व्याख्या ४८०
भूषण रहस्य ९ क
भेदरत्न प्रकाश २८
भेद धिक्कार (भेदभाव का खण्डन) ३७
मीजाजानीय जातक ८
भूकम्पवर्णन ५८२
भूगोल वर्णनम् १७३
भेदरत्न ३९
मोट प्रकाश ५३०
मजूषा ५४
मंत्र मीमांसा ३२७
मकरन्द ४६
मकरन्द विवरण ५०
मण्डप कुण्ड सिद्धि २९७
मणिभद्र ४९५
मत्स्यपुराण ७, ९, ११, १२, १५, १६
मत्स्यपुराण टीका १७ क
मथुरा बिन्दु ६ क, ११ क
मध्यान्त विभाग सूत्रभाष्य टीका ५३०
मनांचे श्लोक २०५
मनीषी की लोकयात्रा ६८, २३९
मनुस्मृति १५७ क, १६५ क, ४५०
मनुस्मृति मेधातिथि तथा कुल्लूक भट्ट के क्रमशः भाष्य तथा व्याख्या–बंगला ४९७ बंगला अनुवाद ४९५
मनोरमा ४७३
मनोरमा कुचमर्दन ६६
मनोरमा मण्डन ६१
मंत्र प्रकाश ४७
मंत्र भागवत २८
मन्त्र महोदधि २६
मंत्र रामायण २८
मन्दार मंजरी ७४
मन्वर्थ मुक्तावली ४६
मयूख १४८
मरीचि व्याख्या ४६
मरीचि भाष्य ५१
महाभारत ११२, ३६२, ३६३
महाकवि कालिदासम् ४६६
महाभारत १०७ क१५० क, ३४१
महाभाष्य ३, ५४, ११३ क १३४, ३४५, ४६७
महाभाष्य परिचर्या ६ क
महाभाष्य हिन्दी व्याख्या ६०४
महाभाष्य पर टिप्पणी १८६
महाभाष्य प्रदीपोद्योत ६३
महामोहविद्रावणम् ३७३, ३८४
महायान विवेक ५३०
महाराजा बलवन्त सिंह और काशी का अतीत १०७
महाभारत दर्पण ११२
महावाक्य रत्नावली व्याख्या ४७५
महाविनायक स्थापन पद्धति ५१७
महिषासुर वध नाटक ५५८
महाप्रस्थानम् ५६३
माई ट्रेवैल्स इन इन्डिया ४६ क
माण्डूक्य का टीका ८५ क
माण्डूक्य का टीका प्रवचन (वैतथ्य प्रकरण) ८६ क
माण्डूक्य प्रवचन (आगम प्रकरण) ८६ क
मातृकार्णव निघण्टु २६
माधव-द्रव्यगुण (संयालि) ६१६
माध्यन्दिन पद-पाठ ६०४
मानसोपायन १४०
माध्वभ्रान्ति निरास ४१५

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माध्वमुखभङ्ग ३१५
मानमन्दिर वर्णनम् १८२
मानव जीवन और भागवत धर्म ८६ क
मायावाद ४६५, ४९७
मायावाद निरास ३१८
मारुतिशतक १४२ क, १५१ क, १५२ क
मार्कट्विन इन दी इंग्लिश मैन ५६ क
मार्कण्डेय पुराण–एक अध्ययन ११८ क
मालतीमाधव ३६३
मालवीय चरितम् ११५ क
मालवीय चरितम् ११५ क
मालवीयो मदनमोहन: १०८ क
मिताक्षरा ४२
मिताक्षरा–दायभाग–हिन्दी अनुवाद २३५
मिताक्षरा–लक्ष्मी व्याख्या १४७
मित्रगोष्ठी ४०८
मित्रगोष्ठी पत्रिका ५२८
मित्रालाप ३३२
मिथिलातत्त्वविमर्श ५५८
मिथिलेश प्रशस्ति ५५८
मिरर आफ कम्पोजिशन १३२ क
मिलिन्द प्रश्न ५३०
मीमांसा कुसुमांजलि १७३ क
मीमांसा कौस्तुभ ६००, ६०१
मीमांसा परिभाषा १५६ क
मीमांसा परिभाषा ३६०
मीमांसा बाल प्रकाश ३३
मीमांसाशाबर भाष्य ६०४, ६०५
मीमांसा सार संग्रह ३३
मीमांसा सार संग्रह ५६५
मीमांसा सारसर्वस्व १७४ क
मुक्तावली प्रकाश ४७१
मुक्तावली मयूख ४१५
मुण्डक प्रवचन ८६ क
मुद्गर दूत १४२ क, १५१ क, १५५ क
मुहूर्त कल्पद्रुम–व्याख्या मंजरी ५१
मुहूर्त चिन्तामणि ४३७
मुहूर्त चूडामणि ४७, ५०
मुहूर्त मार्तण्ड ५८१
मूर्तिपूजा ३३३
मेघदूत १५३ क, २०८ क
मेधातिथि भाष्य १६५ क १६६ क
मैथिली काव्योपवन ५८२
मैथिल संस्कृत कविनामावली ५६५

(य)

यंत्र निधण्टु २६
यन्त्रराज: २६३
यक्षसमागम काव्य ५५७, ५५८
यज्ञतत्त्व-प्रकाश ५६६
यतीन्द्र जीवनचरितम् ६४ क
यतीन्द्र जीवनचरितम् ५३ क, २१७, २१८
यतीन्द्र स्तोत्र ६५ क
यमुनावर्णन चम्पू ६६
युक्तिवाद ४६१
युक्ति स्नेह- प्रपूरणी ३३
योग तरंग ६ क
योग भास्कर ८२
योग वार्तिक २८४, २८८
योगवाशिष्ठ ४१०
योगवाशिष्ठसार ८३
योगसार संग्रह ३२
योगसूत्र २३९
योगाचार भूमि ५३०

(र)

रघुवंश ४५०, २०४ क
रजोवाद ५५३

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रत्नकोष काव्य ५२६
रत्नप्रकाशिका ६१
रत्नमाला ४६५
रत्नावली ११६, ३६३
रश्मिमाला १०१
रसगंगाधर ६६, २४२
रसचन्द्रिका ६६, ६७, ५३६
रसायन शास्त्र ६१५
रसिक गोविन्द और उनकी कविता क २४१
रसिक जीवन ७२, ११६ क
रसिक मोहन १०७
राज्याभिषेक काव्यम् ५२६
राधाकृष्ण विलास ११२
राधाजू को नखशिख ११२
राधानयन द्विशती संस्कृत टीका ५३७
रामकथा १७ क
रामायण परिचर्या तथा विवृत्ति ६ क
रामचरितमानस १७ क
रामचरित्रम् ७२
रामरंग ६ क
रामरक्षापरिचर्या ६ क
रामराज्य और मार्क्सवाद ७७ क, ७५ क
रामर्षि ५५ क
रामलगन ६ क
रामविनोद ४७
रामसुधा ६ क
रामसुधा १० क
रामानुज परिचर्या ६ क
रामाभ्युदयम् ५६३
रामायण ३४१, ३४४
रामायण ५, २०४
रामायण १२ क
रामायण परिचर्या ११६, ११ क, १७ क १३ क,
रामायण परिचर्या परिशिष्ट प्रकाश १२ क
रामायण परिशिष्ट ११६
रामायण मीमांसा ३५ क
रामावतार गाथा १५१ क
रामाश्रमी ६१
रामेश्वर कीर्ति कौमुदी ५०७
राष्ट्रीय स्वयं सेवकसंघ और हिन्दू धर्म ७७ क
रास पंचाध्यायी ३६, ३४२, ३४३
रास रसोदयम् ४६५
रुक्मिणीहरण ३७
रुद्राष्टाध्यायी भाषा टीका ५८४
रोगीरोग विमर्श ६१५

(ल)

लक्षणा तथा उसका हिन्दी काव्य में प्रसार ११६ क
लक्ष्मी लहरी ६६, ७४
लक्ष्मीश्वरोपायनम् २२०
लक्ष्मीश्वरी चरित ५३७
लक्ष्मी सहस्र ३४६, ३५१
लघु चन्द्रिका ४०
लघुमञ्जूषा आकाशादि प्रकरण ४१५
लघुमंजूषा की रत्नप्रभा टीका ४७९
लघु शब्दरत्न ६१
लघु सिद्धान्त कौमुदी ६४
लघुशब्देन्दुशेखर ३६२
ललिता नाटिका ३३३
लिङ्ग धारण चन्द्रिका व्याख्या २११
लिङ्गपुराण १२, १४
लिङ्गानुशासन वृत्ति ५६
लघुशब्देन्दुशेखर ६२
लीलावती २६३
लेक्चर्स आन वेदान्तिज्म १४४ क

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(व)

वरदाम्बिका परिषद् चम्पू अनुवाद ५६२
वरवर्णिनी (टीका) ४४१
वरिवस्यारहस्य २७
वर्णव्यवस्था का इतिहास ५८२
वर्णश्रमधर्म और संकीर्तन मीमांसा ७७ क
वर्षकृत्य दीपक ३९१
वल्लरी पत्रिका ४१९-४२५
वसन्तोत्सव निर्णय ४१५
वसिष्ठसार ८३
वाक्यपदीय २८४
वाक्यपदीय ५४, ६३, २४२
वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड ४१५
वाक्यपदीय ४३३
वाक्यपदीय ४७० ब्रह्मकाण्ड-प्रकाश टीका ४७१, ४७२, ४७२
वाक्यपदीय ४७५, ४७६ अम्बाकर्त्री व्याख्या ४७५
वाक्यपदीय १५२
वाग्भट विवेचन ६१६
वाग्वल्लभ ४३४, ४३८
वाङ्मयार्णव १४२-४२ क
वाणीविजयम् ५२६
वादरत्नम् ४१५
वाराह पुराण १२३
वाल्मीकि रामायण 'सुन्दरी' टीका १५०
वायु पुराण ८
वासना वार्त्तिक ५०
वासुदेव रसानन्द ११६ क
वास्तव चन्द्रशृंगोन्नति साधनम् २९२
वास्तुशान्ति पद्धति ६२६
वास्तु-पद्धति ५१७
विजय प्रकाशम् ३४ क, ४६५
विजय-प्रकाश ४६५
विजय प्रशस्ति ६८
विचार पीयूष ७४ क, ७५ क
विचित्र-प्रश्न-संग्रहः सोत्तरः १७२
विजया टीका (परिभाषेन्दुशेखर पर) ५१८
विज्ञान-दीपिका १७४ क
विज्ञान विद्युत् ५५१
विज्ञानसार संग्रह ९३
विज्ञानमृत भाष्य ३१
विज्ञानेतिवृत्तवाद ५५३
विदेश यात्रा का शास्त्रीय पक्ष ७७ क
विद्याकर-सहस्रकम् १७४ क
विद्याचक्रम् ९४
विद्यापति पदावली के ऊपर टिप्पणी ५३७
विद्यामन्दिर पत्रिका ४४७
विद्यावाचस्पति जी का जीवन तथा कृतियाँ ५६५
विद्वत्-चरित-पंचकम् १७१ क, ३५४
विद्वद्-विभूति ५४६
विधवोद्वाहखण्डनम् ३१२
विवरण प्रमेय संग्रह १६२ क
विविध विचार ३१८
विधवोद्वाह-शंका-समाधिः १६३, १५६, १६०, १९०
विधितत्त्व संग्रह ६९०
विधि रसायन ३३
विधि रसायन दूषण ३३
विनयपत्रिका १५०
विनयामृत ६ क, १६ क
विभक्ति-विलास ३३३
विभूति योग ८६ क
विरह गीतिका ११८
विराड् विवरण ७१

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विलायती विचार (बंगला मे) ५२६
विवरण ५८
विवादताण्डव ४३, ४४
विवाद रत्नाकर ४१
विवाहपद्धति ६२६
विशुद्ध नित्यकर्म ४८२
विशिष्टाद्वैवाधिकरणमाला २४५
विशुद्ध वाणी (बंगला) १८९ क
विशुद्धानन्द चरित्र ४६५
विशुद्धानन्द वाक्यामृत (बंगला) १८८ क
विश्वपंचाङ्ग ११० क, ११५ क
विश्वादर्श ४२
विष्णु सहस्रनाम १६३
विष्णुसहस्रनाम परिचर्या ४ क
विहारी बिहार ३३३
वीर मित्रोदय १३८
वीरांगना वैभवम् १५६ क
वृत्ति प्रभाकर ३८३, ३८४
वृत्तिप्रभाकर ३८३
वेणीसंहार नाटक १६७ क
वेतस्वती सार्थवाह ४१६
वेद का स्वरूप और प्रामाण्य ७७ क
वेददीप २६
वेदनिर्णय २३४
वेवप्रकाश ६०२
वेद प्रामाण्य मीमांसा ७३ क
वेदभाष्यसार ६०
वेदवाणी पत्रिका ३७ क ३७ क
वेदसमीक्षा ५५२
वेदस्वरूप विमर्श ७२ क, ७३ क
वेदाङ्ग ज्योतिष-भाष्य २६४
वेदान्त कल्पलतिका ३६
वेदान्ततत्त्व कौस्तुभ ६०
वेदान्ततत्त्व विवेक ३७
वेदान्ततत्त्व विवेक की टीका दीपन ३७
वेदान्त-प्रबन्ध ५०३
वेदान्त परिभाषा ६७
वेदान्त मुक्तावली ६७
वेदान्तसार ११७ क
वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली ३७
वेदान्त सिद्धान्तादर्शः ३८३
वेदान्तिजये १४७ क
वेदार्थ पारिजात ७२ क
वेदार्थ संग्रह ३२४
वेदों का अपौरुषेयत्व ४५०, ४५१, ४५२
वेदार्थविचार ३६३
वैजयन्ती ४२
वैदिक कहानियाँ २४१ क
वैदिक छन्दोमीमांसा ६०४
वैदिकधर्म रहस्य ४७६
वैदिक निबन्ध ५६४
वैदिक-धर्ममीमांसा ५६६
वैदिक विकास और भारतीय संस्कृति ५६२
वैदिक साहित्य और संस्कृति २४१ क
वैदिक सिद्धान्त रक्षिणी ४५२
वैदिक स्वर मीमांसा ६०४
वैदिकी ४६०
वैयाकरण भूषणसार ६१
वैयाकरण भूषणसार ३६५
सरल टीका ३१७ ३६५
वैयाकरण भूषण १५२
वैयाकरण भूषणसार दर्पण-टीका ३६६
वैयाकरण भूषणसार १४६
लघुभूषण कान्ति टीका १४६
वैयाकरण सिद्धान्त मंजूषा ६२, ६३, ४८१
वैयाकरण सिद्धान्त सुधानिधि ६७
वैष्णवधर्म—(बंगला में) ४६६

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशेषिक दर्शन टीका ४६१
वैष्णव संप्रदायों का साहित्य और सिद्धान्त २४१ क
वैष्णव सिद्धान्त दीपिका ५५
व्यक्त गणित १७७
व्यक्त गणितम् १७३
व्यक्तिविवेक ११६ क
व्यङ्ग्यार्थ कौमुदी ६७
व्यवहार और परमार्थ ८६ क
व्यवहार तत्त्व ४५
व्यवहार मयूख ४५
व्याकरण दर्शनम् ४७०
व्याकरण महाभाष्य ३६४
व्याकरण महाभाष्य टिप्पणी १८७
व्याकरण सिद्धान्त ११३ क
व्याकरण सिद्धान्त सुधानिधि
व्याप्तिपंचक की टीका २७७, ११८ क
व्यास भाष्य २३६
व्याप्ति पंचक ११८ क
व्याप्तिपंचक माधुरी-रहस्य विवृत्ति
व्याप्त्यनुगर्भ विवेचन २७७
व्यास शिक्षा ६०२
व्युत्पत्तिवाद की 'जया' टीका ५१७
व्युत्पत्तिवाद गूढार्थ तत्त्वालोक २७७
व्यत्पत्तिवाद की प्रकाश व्याख्या ११५ क
व्योमवाद ५५१, ५५३
व्रत कमलाकर ४४
व्रात्य संस्कार मीमांसा ३२७

(श)

शंकर दिग्विजय ५२
शक्तिवाद टिप्पण २७७
शक्तिवाद रहस्य ३१८
शतचण्डी पद्धति ५१७
शतपथ ब्राह्मण ४२ क
शतपथ ब्राह्मण ३
शतपथ ब्राह्मण बंगला अनुवाद ५३०
शतपथ ब्राह्मण भाष्य ८२
शत साहस्री संहिता ४
शनि माहात्म्य २८८
शवर भाष्य १६४ क
शब्द कौस्तुभ ५९
शब्द कौस्तुभ की टीका प्रभा ६५
शब्दरत्न की टीका का भाव प्रकाशिका ६५
शब्द कालितरंग ६ क
शब्दालंकार ५७
शब्देन्दुशेखर ६०
शब्देन्दुशेखर ३६१ पथ टीका
शशांक शतकाम् ७२
शांकर भाष्य—भामती रत्नप्रभा सहित ब्रह्मसूत्र ४६५
शाक्य सिंह ४९५
शाण्डिल्य सूत्र-व्याख्या ६ क
शान्ति का अग्रदूत ४५०
शान्ति रत्न ४४
शारदा तिलक २६
शारदा तिलक २६
शारदा पचीसी ४४१
शारीरक भाष्य ६६
शालाक्य तन्त्र ९१५
शारीरक विमर्श ५५१
शारीरक भाष्य—हिन्दी अनुवाद ५८३
शारीरक सूत्रवृत्ति १७ क
शाश्वत धर्मदीपिका ३४१
शास्त्र दीपिका ३३
शास्त्र दीपिका ६०२
शास्त्र दीपिका प्रकाश ३३

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्र दीपिका की आलोक नामक व्याख्या ३४
शास्त्र भाषा वृत्ति ३४
शास्त्र वार्ता समुच्चय ११७ क
शास्त्रार्थ और समालोचनम् ५६५
शास्त्रार्थ रत्नावली ५१७
शास्त्रार्थ रत्नावली ५१८
शिक्षा–व्याख्या ६ क
शिक्षा संग्रह ६२१
शिलान्यास पद्धति ६२६
शिल्प चमत्कार चिन्तामणि ३८३
शिवकोष ६०७
शिवचरण परिचर्या ६ क, ७ क, १७ क
शिवमहिम्नः स्तोत्र— टीका २२२
शिवराजविजय ३३२
शिवप्रकाश ६०७
शिवशतक ११४ क
शिवस्तोत्रम् ५२६
शिवस्वरोदय ३९९
शिवार्कोदय (श्लोक वार्तिक की टीका)
शिवाश्व घाटी ३४६, ३४९
शिष्यधीवृद्धि तन्त्रम् २९३
शुक्लयजुः प्रातिशाख्य–उव्वट भाष्य ६२०
शुद्धिचन्द्रिका ४२
शुद्धि–सर्वस्व १३९, ३२४
शुल्वसूत्र २८७
शुल्व सूत्र–टीका ६२६
शूद्र कमलाकर ४४
शृंगार विलासिनी ३३९
शृंगार सागर
शेक्सपियर १३५ क
शोकद (काव्य ग्रन्थ) ४६२
शब्दरत्न सहित प्रौढ़ मनोरमा की प्रभा टीका ४७६
शोक तरंगिणी ५२६
शोध पत्रिका (गंगानाथ झा शोध संस्थन) १६५ क
श्यामरंग ९ क
श्यामलगन ९ क
श्यामसुधा ९ क
श्याम–सुधा ४ क, ५ क
श्यामास्तवराज ७१
श्राद्धकल्पलता ४२
श्राद्धरत्न सटिप्पण ५५८
श्रीकण्ठ चरित ६९
श्रीकृष्ण प्रसंग (बंगला) १८६
श्रीगीता कर्म योग शास्पद १५६
श्री गीतिरत्न ३४६
श्रीचण्डीश बाँगला अनुवाद ४६५
श्री जगदीश यात्रा ४२१
श्री तात चरणालोक ३७८
श्री पद्धति की टीका ४८
श्री भगवत् तत्व ७५ क
श्रीभाष्य ९६
श्रीभाष्य ३२४
श्रीमद् भागवत १९७ क, १०७क १०३क
श्रीमद् भागवत (बंगला में) ४६३
श्रीमद् भागवत रहस्य ८६ क, ८७ क
श्री विद्या रत्नाकर ७२ क, ७४ क
श्री श्री विशुद्धानन्द प्रसंग (बंगला में) १८८ क
श्री सूत्र भाष्य ४६१
श्रैव नारसिंह ६३२
श्रौतसूत्र—सरला टीका ६२६
श्लोकबद्ध अष्टाध्यायी १७ क
श्लोक वार्तिक ५८८
श्लोक वार्तिक १६१ १४७ क,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्लोक वार्तिक १६४ क, १६६ क
श्लोक वार्तिक अनुवाद ४९१

(ष)

षट्कार्य-विवेकः ५९३
षड्ऋतु विलास ३४६
षड्दर्शनसमुच्चय ४३३
षड्विंशब्राह्मण ३९ क

(स)

संक्षेप शारीरिकसार संग्रह ३६
संग्रह ६३
संघर्ष और शान्ति ७७ क
संजीवनी (पत्रिका) १९१ क
संज्ञा संमुच्चय ६०६
संशयनिरसन (बंगला में) ५२६
संशयोच्छेदवाद ५५१, ५५३
संस्कार कौस्तुभ १४८
संस्कारदशकर्म पद्धति टीका ५५८
संस्कार दीपक ३६०
संस्कारभास्कर ६३२
संस्कृत अभ्यास पुस्तकम् ३३२
संस्कृत आलोचना २४१ क
संस्कृत कविचर्चा २४१ क
संस्कृत पोइटिक्स १४४ क
संस्कृत रत्नाकर ६००
संस्कृत-रत्नाकर पत्र ५७१, पृ० ६६
संस्कृत वाङ्मय २४१ क
संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास ६०४
संस्कृत विद्येचे पुनरुज्जीवन १४७
संस्कृत शास्त्रों का इतिहास २४१ क
संस्कृत-शिक्षकम् १५६ क
संस्कृत संजीवन ३३३
संस्कृत संस्कृति शिक्षकम् १५६ क
संस्कृत साहित्य का इतिहास २४१ क
संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास २४१क
संस्कृत सोपान २८२
संस्कृत हिन्दी कोष १३
सच्चा काशी शास्त्रार्थ ३७ क
सज्जनेन्द्र प्रयोग कल्पद्रुम ११६, १७७
सत्प्रतिपक्ष प्रकरण ५८४
सत्प्रतिपक्षसटिप्पण २७७
सत्यनारायण कथा ११७
सदसद्वाद ५५१, ५५३
सदाचार दर्पण ५५८
सदुक्तिकर्णामृतम् १४३ क
सनातन धर्मोद्धार ३५६, ३६१
सनातन हिन्दू ४९५
सन्मार्ग पत्र ६३३
सपिण्ड मंजरी ४६
सप्तशती १२४
समयसार ८३
समस्या समज्या ३७९
समीकरण मीमांसा २६२
सरल त्रिकोणमिति १७२
सरस्वती भवन ग्रन्थमाला ६६, १६०
सरस्वती भवन टेक्टस १८२
सरस्वती भवन सृडीज ६६
सर्च इन सिक्रेट इण्डिया १८४ क, १९५क
सर्वतीर्थ विधि ४४
सर्वदेव-प्रतिष्ठा ५८४
सर्वमंगलोदय ४६२
सवृत्त रत्नावली ३७८
सव्यभिचार टिप्पण २७७
सव्यभिचार प्रकरण ५८४
सहस्रनाम परिचर्या ६ क
सहस्रनाम रामायणम् ३३२
सवृत्तिः अष्टाध्यायी १५६ क

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांख्य अफारिक्स आफ कपिल ६४
सांख्य कारिकां ३१
सांख्यकारिका अनुवाद ४६१
सांख्य तत्त्वकौमुदी—संस्कृत-हिन्दी टीका ५८५
सांख्य तरंग ६ क
सांख्य-दर्शन-पूर्णिमा टीका ४६२
सांख्य प्रवचन भाष्य ३१
सांख्य योग ८६ क
सांख्य योगदर्शन १७३ क
सांख्य संग्रह (क्षेत्रेंदु) ३५४
सांख्यसागर सुधा ३३२
सांख्यसार ३२
सांख्यसूत्र ३१
साधना और ब्रह्मानुभूति ८६ क
साधुदर्शन ओ सत्प्रसंग (बंगला) १८८ क
साधुदर्शन और सत्प्रसंग १८८२
सापिण्डय दीपक ३६१
सामवतम् ३३२
सामवेद ३९ क
सामान्य निरुक्ति २३०
सामान्य भाषाविज्ञान १७३ क
सायनवादः १७२
सारनाथ का इतिहास वंगला में ५२६
सारस्वतशतकम् ४६६
सारस्वती सुषमा ४९०
साहित्य चिन्ता (बंगला) १८९ क
साहित्यदर्पण १३२ क
साहित्यदर्पण—विमला टीका ४७४
साहित्य नवनीत ३३२
साहित्यनवनीत १६७
साहित्य रत्नावली १३३ क
संस्कृत लेक्सिकोग्राफी १४४ क
साहित्य सागर २३८
साहित्यालोचना ग्रन्थ ५३२
साहित्यिक निबन्ध ५६४
सिद्धान्तकौमुदी ५६,६०,
सिद्धान्तकौमुदी १९९
सिद्धान्तकौमुदी ३७३
सिद्धान्तकौमुदी—हिन्दी व्याख्या ३६६
सिद्धान्तकौमुदी—लक्ष्मी व्याख्या ४७९
सिद्धान्तकौमुदी—बालमनोरमा टीका—५६२
सिद्धान्तचन्द्र ४०
तत्त्व बोधिनी टीका ५६२
सिद्धान्त तत्त्वविवेक ३९९
सिद्धान्त (पद) ६३३
सिद्धान्त विन्दु ३८
सिद्धान्त मंजूषा ४७०
सिद्धान्तदक्षिणी ४५३
सिद्धान्त रहस्य ४०
सिद्धान्तलक्षण विवेचन २७७
सिद्धान्तलेश ४९५
सिद्धान्तवाद ५५३
सिद्धान्तशिरोमणि १७०, २९३
सिद्धान्तशिरोमणि मरीचि व्याख्या २६७
सिद्धान्त सार्वभौम ४६
सीताराम गुणार्णव रामायण ११२
सुकवि संतसई ३३३
सुधाकर चन्द्रिका २९४
सुधाकर भाष्य-लघुविवरण (टीका) ३९९
सुधालहरी ६६
सुनाग के वार्तिक ५४
सुन्दरी महोदय २६
सुप्रभातम् पत्र ४३७
सुभद्राहरणम् ५२६
सुमनोऽञ्जलि १३६, ५९३
सुरजन चरित ७०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुलोचनामाधव चम्पू २७६
सुश्रुत संहिता ४,५
सूक्तिमंजरी क २४१
सूक्तिमुक्तावली क २४१
सूक्ति सप्तशती १६१
सूक्तिसुधा ३४५, ३४६, ३४७
सूर्यशतक १५१ क
सूर्यसिद्धान्त १७२
सूर्यसिद्धान्त टिप्पणी ४८
सूर्यसिद्धान्त व्याख्या ५८१
सूर्यसिद्धान्तः सोपपतिकः १७२
सूर्यसिद्धान्त सुधावर्षिणी टीका २६४
सूर्यसिद्धान्त सौरवासना टीका सौरभाष्य २६३
सूर्योदय ६००
सेक्रेड बुक आफ दि ईस्ट ६६
सोमाकर शेष भाष्य २९४
सौभाग्य भास्कर २७
सौर भाष्य ५०
सौश्रुती ५१५
स्कन्द पुराण १२, १४, १५ १७
स्टडीज इन इन्डियन लिटरेरी हिस्ट्री ८३
स्तोत्ररत्नावली १३२ क
स्थैर्य विचारण प्रकरण ६८
स्नेह पूर्ति परीक्षा २८७
स्नेहपूर्ति ३२४, ३२७
स्फोट विमर्शिनी व्याख्या ३९४
स्मार्त प्रभु ६२६
स्मृति ग्रन्थ ६२६
स्वर्ण सभा ३६३
स्वानुभवोद्रेक ३८३
स्वाराज्य सिद्धि की टीका ५५ क

(ह)

हंसदूत काव्य ८२
हंसाष्टक २५३
हनुमद विन्दु ६ क
हयत (ह्यत) ४०७
हरविजय काव्य टिप्पणी ३७८
हरिभक्ति रसामृत सिन्धु ४३३
हरिवंश ११२
हरिवंश पुराण ४
हरिश्चन्द्र चरित्र ५३०
हरिहर चरितम् ५०४
हरिहर चरित ३५९
हरिहर चरितम् ५११
हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण ८३
हास्य सागर ७२
हिन्दी भारत में जातिभेद (समाजशास्त्र) ३२
हिन्दी बंगवासी ५२ क
हिस्टारिकल इन्ट्रोडक्शन टू दी इन्डियन स्कूल्स आफ बुधिज्म ५३०
हिन्दी कवि कीर्तिकौमुदी ११८
हिन्दी व्याकरण १४६ क
हिन्दू ला इन इटस् सोर्सेज १५७ क
हिस्ट्री आफ इन्डियन फिलासफी १६३ क
हिस्ट्री आफ इन्डिया १५
हिस्ट्री आफ फिलासफी ५३०
हिस्ट्री आफ यूरोपीयन लिटरेचर १६ क
हृषीकेश पंचांग ५७६
हेमन्त कुमार ४१९
हैमवती २०२, २८५, ४८१

7 2595

सूचना—इन अनुक्रमणियों में 'क' से चिह्नित पृष्ठ द्वितीय भाग से सम्बन्ध रखते हैं।

7 2595
CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Acc. 72595
Class. 876 U,1K

Gurukul Kangri Library

Acces on
Class on
Cat. on
Tag etc
Checked
Any Other

EAR
SK
2612

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य बलदेव उपाध्याय

जन्म–१० अक्तूबर, १८९९ ई०
स्थान–सोनवरसा, जिला बलिया (उ० प्र०)

आरम्भिक शिक्षा गवर्नमेन्ट हाई स्कूल, बलिया से प्राप्त कर हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी से एम० ए० प्रथम श्रेणी (प्रथम) में १९२२ ई० में उत्तीर्ण किया। साहित्याचार्य की उपाधि संस्कृत कालेज वाराणसी से प्राप्त की। १९२२ ई० से लेकर १९६० ई० तक लगातार ३८ वर्षों तक हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में व्याख्याता, रीडर तथा अध्यक्ष पद को सुशोभित करते हुए अध्यापन कार्य किया। सेवा-निर्मुक्त होने पर दो वर्षों तक वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के अन्तर्गत पुराणेतिहास विभाग के अध्यक्ष पद का कार्य सँभाला। १९६८ ई० में वहीं अनुसंधान संचालक के पद पर तीन वर्षों तक कार्य करने के उपरान्त सेवाकार्य से निर्मुक्त हुए।

ग्रन्थ–भारतीय दर्शन, बौद्ध दर्शन-मीमांसा, वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य तथा सिद्धान्त, भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा, संस्कृत साहित्य का बृहत् इतिहास आदि ग्रन्थों का हिन्दी में प्रणयन किया। प्राकृतप्रकाश, भामह-काव्यालंकार, नाट्य-शास्त्र, आदि संस्कृत ग्रन्थों का विमर्शात्मक संस्करण प्रकाशित किया। इन ग्रन्थों में से अनेक विभिन्न संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत तथा कन्नड़, तेलुगु आदि भाषाओं में अनूदित हैं।

पुरस्कार– मंगलाप्रसाद पुरस्कार, डालमिया पुरस्कार, हिन्दुस्तानी अकादमी पुरस्कार, श्रवणनाथ पुरस्कार, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रदत्त अनेक पुरस्कार।

मानद उपाधियाँ : साहित्य वारिधि–हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, १९६२ ई०। वाचस्पति–संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी १९७७ ई०। सर्टिफिकेट आफ आनर–राष्ट्रपति जाकिर हुसेन १९६८ ई०। कालिदास साहित्य रत्न–कालिदास अकादमी उज्जैन, १९८२ ई०।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मरणं मङ्गलं यत्र विभूतिश्च विभूषणम् ।
कौपीनं यत्र कौशेयं सा काशी किन्न सेव्यते ।।

मनोनिवृत्तिः परमोपशान्तिः
सा तीर्थवर्या मणिकर्णिका च ।
ज्ञानप्रवाहा विमलादिगङ्गा
सा काशिकाऽहं निजबोधरूपा ।।

काश्यां हि काश्यते काशी काशी सर्वप्रकाशिका ।
सा काशी विदिता येन तेन प्राप्ता हि काशिका ।।

—श्री शङ्कराचार्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar